पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

# अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



# अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस



*प्रकाशक*
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐

प्रकाशक

**अखण्ड ज्योति संस्थान**

मथुरा - २८१००३

❐

© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❐

**मूल्य १२५)**

❐

मुद्रक

**जनजागरण प्रेस, मथुरा**

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

# समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

# विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान पंरिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

# भूमिका

मनुष्य पूज्यवर के शब्दों में एक भटका हुआ देवता है, जिसे यदि सच्ची राह दिखाई जा सके, उसके देवत्त्व को उभारा जा सके जो आज प्रसुप्त पड़ा हुआ है, तो उसके व्यक्तित्त्व रूपी समुच्चय में इतनी शक्ति भरी पड़ी है कि वह जो चाहे वह कर सकता है, असंभव से भी असंभव दीख पड़ने वाले पुरुषार्थ संपन्न कर सकता है । विडम्बना यही है कि मनुष्य इस प्रसुप्त पड़े भाण्डागार को जिसमें अपरिमित संभावनाएँ हैं, पहचान नहीं पाता एवं विषम परिस्थितियों में पड़ ज्यों त्यों कर जिन्दगी गुजारता देखा जाता है । पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य मूलतः पशु है व वहाँ से उठकर बंदर की योनि से मनुष्य बना है । पूज्यवर वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की कसौटी पर कसे गए आध्यात्मिक विकासवाद की दुहाई देते हुए कहते हैं यह नितान्त एक कल्पना है । मनुष्य मूलतः देवता है, पथ से भटक गया है, यह योनि उसे इसलिए दी है कि वह देवत्त्व की दिशा में अग्रगमन कर सके । यदि यह संभव हो सका तो वह देवत्त्व को अर्जित कर स्वयं को क्षमता संपन्न विभूतिवान बना सकता है ।

मानवी व्यक्तित्व को एक कल्पवृक्ष बताते हुए उससे मनोवांछित उपलब्धियाँ पाने की बात कहते हुए गुरुदेव कहते हैं कि यदि मनुष्य चाहे तो अपने को सर्वशक्तिमान बना सकता है । विचारों की शक्ति बड़ी प्रचण्ड है । आत्मसत्ता को जिन विचारों से सम्प्रेषित-अनुप्राणित किया गया है उसी आधार पर इसका बहिरंग का ढाँचा विनिर्मित होगा । अपूर्णता से पूर्णता की ओर चलते चलना व सतत विधेयात्मक चिन्तन बनाए रखना ही मनुष्य के हित में है । विधेयात्मक-सृजनात्मक विचारों में बड़ी शक्ति होती है व्यक्तित्व का निर्माण करने में । निषेधात्मक सोच सोचकर एक प्रतिभा संपन्न बुद्धिमान किशोर भी अपने को कमशः घटिया व्यक्तित्व वाला बनाता चलता है एवं सतत विधेयात्मक सोच रखते हुए एक क्षुद्र सा प्रगति की ओर अग्रसर व्यक्ति अपने को श्रेष्ठ व्यक्तित्व की सम्पदा से अभिभूत कर सकता है । यह सब कुछ विचारों का ही खेल है जो ब्राह्मीचेतना के सूक्ष्मतरंगों के रूप में संव्याप्त मानवीसत्ता को ओत-प्रोत किए रहते हैं ।

पूज्यवर के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है-विधेयात्मक चिन्तन-सतत प्रगति की ओर-आशावाद की ओर ले जाने वाला चिन्तन एवं यही वास्तविक जीवन मूरि है आज के आस्था संकट प्रधान युग में । पूज्यवर ने अपनी पहली पुस्तक जो १९४० में लिखी थी-'मैं क्या हूँ' के रूप में विशुद्धतः एक आत्मोपनिषद की शैली में लिखी थी । इस पुस्तक से ही 'अखण्ड ज्योति' का क्रांतिकारी प्रारंभ हुआ है, यह अत्युक्ति नहीं है । 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका इसके प्रकाशन व इसके बाद से सतत इसी चिन्तन के रूप में मुखरित होती रही है । इसी ने लाखों को नया जीवन व प्राण दिए हैं । यदि व्यक्ति यह जान जाए कि वह क्या है, कितनी बड़ी सत्ता परमात्मा की उसमें समायी हुई है तो वह एक महामानव, देवदूत, जीवनमुक्त-अवतारी स्तर की सत्ता तक उत्कर्ष कर सकती है । 'मैं क्या हूँ' पुस्तक ने एक कीर्तिमान स्थापित किया था । उसके अनेकानेक संस्करण १९४०-४१ से ४८ तक छपते रहे एवं पुनर्प्रकाशन उनका १९८९-९० में हुआ व कई भाषाओं में अनुवाद भी । इसी पुस्तक की धुरी पर केन्द्रित है वाङ्मय का यह खण्ड ।

परम पूज्य गुरुदेव विचार विज्ञान की कला सिखाने के साथ-साथ यह भी कहते हैं प्रधानता आत्मा को दें मन को नहीं । आत्मसत्ता से ही वह भाव संवेदनाओं की गंगा निकलती है जो मन को श्रेष्ठ चिंतन की दिशा की ओर ले जाती है । यदि व्यक्ति यह तथ्य मूलतः समझ ले तो वह क्या से क्या बन सकता है । आत्मा की-अंतकरण की आवाज सुनना यदि हममें से हर कोई आरंभ कर दे तो हम कभी गड़बड़ाने नहीं पाएँगें, हमारी आस्था के बीजांकुर कभी सूखेंगे नहीं तथा सतत उच्चतर स्तर की चिंतन करने की प्रेरणा मन को मिलती रहेगी ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाङ्मय के इस खण्ड में मनुष्य की दैनन्दिन जीवन में प्रगति कैसे हो इसके लिए अनेकानेक उपाय बताए गए हैं । यहाँ 'मेनमेनेजमेण्ट'- व्यक्तित्व का प्रबन्धक्षमता की दृष्टि से विकास है । मन के हारे हार है और मन के जीते जीत-इस सूत्र को समझाते हुए उनने लिखा है कि यदि मानवी मन छोटी-छोटी बात में गड़बड़ाए नहीं, निराश न हो, निषेधात्मक न सोचे तो कभी भी जीवन पथ पर असफलता उसे मिलेगी नहीं । इसकी शुरुआत पूज्यवर के अनुसार व्यक्ति के स्वयं के अपने आपे से होनी चाहिए । हम अपने आपकों बदलने से-सुधारने से प्रक्रिया आरंभ करें तो सारा युग-सारा समाज-जमाना बदलता चला जाएगा ।

मानव जीवन एक उद्देश्य विशेष के लिए, एक प्रयोजन के लिए मिला है, यदि इसका सदुपयोग किया जा सके तो सब कुछ अर्जित किया जा सकता है, यह पूज्यवर का विधेयात्मक चिन्तन ही उस जीवन दर्शन की धुरी है जिसने इतना बड़ा मिशन विनिर्मित किया है । हर परिजन पाठक इस खण्ड के विवेचन द्वारा स्वयं को शक्तिमान बनाते हुए अपने गुरु मन के स्वप्नों का मानव-नया समाज, नया युग लाने का पुरुषार्थ कर सकता है ।

**ब्रह्मवर्चस**

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

# विषय सूची


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **अध्याय-१** | |
| **मनुष्य एक भटका हुआ देवता** | **१.१** |
| हे मनुष्य ! तुम महान हो ! | १.१ |
| दैवी सम्पदाएँ | १.७ |
| प्रथम सम्पदा-भय का अभाव | १.७ |
| द्वितीय सम्पदा-अन्त:करण की स्वच्छता | १.८ |
| तृतीय सम्पदा- ज्ञानयोगव्यवस्थित | १.८ |
| चतुर्थ सम्पदा-सात्त्विक दान | १.९ |
| पाँचवीं सम्पदा-इन्द्रियों का दमन | १.१० |
| छठी सम्पदा-पूजा एवं अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण | १.११ |
| सातवीं सम्पदा-कीर्तन | १.११ |
| आठवीं सम्पदा-स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन | १.१२ |
| नवीं सम्पदा-अन्त:करण की सरलता | १.१३ |
| दसवीं सम्पदा-अहिंसा | १.१४ |
| ग्यारहवीं सम्पदा-प्रिय शब्दावलि एवं मधुर भाषण | १.१४ |
| बारहवीं सम्पदा-अक्रोध | १.१५ |
| तेरहवीं सम्पदा-कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग | १.१६ |
| चौदहवीं सम्पदा-अन्त:करण की उपरामता | १.१७ |
| पन्द्रहवीं सम्पदा-निन्दा चुगली इत्यादि न करना | १.१८ |
| सोलहवीं सम्पदा-हेतु रहित दया | १.१९ |
| सतरहवीं सम्पदा-आसक्ति का न होना | १.२० |
| अट्ठारहवीं सम्पदा-स्वभाव की कोमलता | १.२१ |
| उन्नीसवीं सम्पदा-लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा | १.२१ |
| बीसवीं सम्पदा-व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव | १.२३ |
| इक्कीसवीं सम्पदा-आत्म-तेज | १.२३ |
| बाइसवीं सम्पदा-क्षमा | १.२४ |
| तेइसवीं सम्पदा-धृति अर्थात् धैर्य धारण | १.२४ |
| चौबीसवीं सम्पदा-पवित्रता | १.२४ |
| पच्चीसवीं सम्पदा-किसी भी प्राणी के प्रति वैर भाव न रखना | १.२५ |
| छब्बीसवीं सम्पदा-वर्ण, जाति, कुल विद्या रूप का अभिमान न करना | १.२६ |
| **अध्याय-२** | |
| **आप सर्वशक्तिमान हैं** | **२.१** |
| आप ईश्वर के पुत्र हैं | २.१ |
| आप ईश्वर के पुत्र होना स्वीकार कर लीजिए | २.१ |
| आप सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं | २.२ |
| आत्मशक्ति का अक्षय भण्डार | २.४ |
| आपका मूल्य क्या है | २.६ |
| आप बहुत कुछ कर सकते हैं | २.८ |
| प्रत्येक उत्तम वस्तु आपकी ही है | २.१० |
| निरन्तर आगे बढ़ते रहिये | २.१२ |
| आप एक महान व्यक्ति हैं | २.१४ |
| उन्नति करना अपने वश की बात है | २.१४ |
| दिव्य शक्तियों के उपयोग से उन्हें विकसित कीजिये | २.१४ |
| सफलता एक आदत है | २.१५ |
| अपनी महानता में अखण्ड विश्वास रखिये | २.१५ |
| आप शरीर नहीं, सर्वशक्तिमान हैं | २.१६ |
| जीवन का अमृत | २.१७ |
| प्रत्येक अच्छी पुस्तक जीवन का निचोड़ होती है | २.१७ |
| आकर्षक व्यक्तित्व बनाइये | २.१९ |
| दूसरे की सुनिए | २.२० |
| व्यर्थ की आलोचना अथवा दोषारोपण न कीजिये | २.२१ |
| दूसरों को देखकर प्रसन्न होइये | २.२१ |
| विश्वास एक आध्यात्मिक शक्ति है | २.२२ |
| अधिक सुन्दर बनिये | २.२४ |
| बड़े महात्माओं का सौन्दर्य | २.२४ |
| चेहरे के सौन्दर्य का कारण मन में छिपा है | २.२४ |
| सुखद सुन्दर विचारों की भाव-धारा से सुन्दरता बढ़ती है | २.२५ |
| बाधाओं को दूर कीजिये | २.२६ |
| मधुरता: जीवन का नवनीत | २.२८ |


# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| मैत्री-भावना एक अमोघ अमृत है | २.३० |
| आत्मोन्नति का अर्थ सीखें | २.३२ |
| उन्नति की गुप्त साधना | २.३३ |
| एकाग्रता में सबसे आवश्यक बात | २.३४ |
| तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है ? | २.३५ |
| सुखों का भण्डार | २.३६ |
| जीवन संग्राम में विजयी कैसे हो | २.३७ |
| जीवन में श्रेष्ठतम लाभ उठाने के छह नियम | २.४० |
| विगत चिन्ताएँ दूर कीजिये | २.४१ |
| बीती ताहि विसार दे | २.४१ |
| उजला पहलू ही देखिए | २.४१ |
| जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्न | २.४१ |
| **अध्याय-३** | |
| **मैं क्या हूँ** | **३.१** |
| पहला सूत्र | ३.१ |
| दूसरा सूत्र | ३.६ |
| तीसरा सूत्र | ३.१३ |
| अभ्यास | ३.१५ |
| चौथा सूत्र | ३.१८ |
| एकता अनुभव करने का अभ्यास | ३.२० |
| अमर हो तुम, अमरत्व को पहिचानो | ३.२१ |
| **अध्याय-४** | |
| **अपूर्णता से पूर्णता की ओर** | **४.१** |
| जीवन की श्रेष्ठता और उसका सदुपयोग | ४.३ |
| मनुष्य अपनी तुच्छता भी जाने | ४.५ |
| सर्वांगीण विकास और उसका आधार | ४.७ |
| त्याग से जीवन मुक्त | ४.१० |
| त्याग करें पर किसका | ४.१२ |
| आत्म-भावना से आत्म कल्याण | ४.१४ |
| पूर्णता की प्रार्थना | ४.१५ |
| ब्रह्म विद्या के सात सिद्धान्त | ४.१७ |
| आस्तिकता | ४.१८ |
| तत्त्वदर्शन | ४.१९ |
| आत्मनिष्ठा | ४.२० |
| शक्ति साधना | ४.२१ |
| संयम | ४.२२ |
| आत्म विस्तार | ४.२३ |
| ब्रह्म परायणता | ४.२४ |
| साधना की वैज्ञानिक आधार | ४.२५ |
| साधनाओं के उद्देश्य | ४.२६ |
| अस्तिक्य | ४.२६ |
| तत्त्वदर्शन | ४.२७ |
| आत्मनिष्ठा | ४.२७ |
| शक्ति साधना | ४.२८ |
| संयम | ४.२८ |
| आत्म विस्तार | ४.२९ |
| ब्रह्म परायणता | ४.३० |
| सम्पन्नता के चार आधार | ४.३० |
| शारीरिक बल | ४.३१ |
| समाज बल | ४.३१ |
| अर्थ बल | ४.३२ |
| बुद्धि बल | ४.३२ |
| शक्ति से सिद्धि | ४.३३ |
| योग शक्तियों का उद्गम | ४.३६ |
| प्रत्यक्ष अष्ट सिद्धियाँ | ४.४१ |
| निराकुलता | ४.४१ |
| सहायता | ४.४१ |
| आरोग्यता | ४.४१ |
| सफल | ४.४२ |
| सम्पन्नता | ४.४३ |
| लोकप्रियता | ४.४३ |
| प्रसन्नता | ४.४३ |
| स्वतन्त्रता | ४.४४ |
| **अध्याय-५** | |
| **प्रधानता आत्मा को दें मन को नहीं** | **५.१** |
| दो में से एक का चुनाव | ५.१ |
| हम एक मार्ग चुन लें | ५.४ |
| मन से छीनकर प्रधानता आत्मा को दीजिये | ५.८ |
| अध्यात्म ही प्रधान है | ५.१० |
| आत्मा की अनन्त सामर्थ्य | ५.१२ |
| आन्तरिक अशान्ति की समस्या और समाधान | ५.१६ |
| आध्यात्मिक जीवन | ५.१७ |
| वैराग्य भावना से मनोविकारों का शमन | ५.१९ |
| देवासुर संग्राम में हम निरपेक्ष न रहें | ५.२२ |
| तप और त्याग की आवश्यकता | ५.२५ |
| हम निष्पाप बनें | ५.२६ |


# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| अपने को परिष्कृत होने दीजिये | ५.२९ |
| विभूतियाँ अर्जित करें, सम्पदा नहीं | ५.२९ |
| आत्मनिर्माण-जीवन का प्रथम सोपान | ५.३३ |
| आत्मिक प्रगति की दिशाधारा | ५.३६ |
| **अध्याय-६** | |
| **विचार करने की कला का विकास** | **६.१** |
| चेतन सत्ता की अनन्त सामर्थ्यवान् शक्ति-विचार | ६.१ |
| हमारी इच्छा शक्ति प्रबल एवं प्रखर हो | ६.३ |
| विचारों की शक्ति अपरिमित है | ६.६ |
| कार्यों के मूल स्त्रोत-विचार | ६.१० |
| विचार की रचना | ६.११ |
| मन तथा शरीर की समस्वरता | ६.११ |
| विचार के मन्त्र का उपयोग | ६.१२ |
| मस्तिष्क को विकसित करने के साधन | ६.१२ |
| विचार द्वारा उपचार | ६.१३ |
| हृदय पर शक्ति का प्रभाव | ६.१३ |
| हमारे कल्पित भय | ६.१४ |
| बुरे विचारों से प्राणशक्ति का क्षय | ६.१४ |
| पुन:शिक्षा की योजना | ६.१४ |
| अपने हितैषी बनो | ६.१४ |
| निराशावाद तथा आशावाद | ६.१५ |
| व्यर्थ दोषारोपण न कीजिए | ६.१६ |
| विचार शक्ति द्वारा समृद्धि प्राप्ति | ६.१७ |
| विचार की दरिद्रता | ६.१७ |
| दरिद्रता के कीटाणु क्यों कर फैलते हैं ? | ६.१७ |
| विचार दरिद्र से ग्रस्त व्यक्ति की विचार प्रणाली | ६.१७ |
| हमारी गुरुतम त्रुटि | ६.१८ |
| समृद्धिशाली जीवन प्राप्त करने के उपाय | ६.१८ |
| विचारों का स्वभाव | ६.१८ |
| विचार शक्ति का भला और बुरा उपयोग | ६.१९ |
| विचारों में बल क्यों कर आता है ? | ६.१९ |
| विचार एकाग्र करने की विधि | ६.२० |
| प्रत्येक विचार मस्तिष्क का एक मार्ग है | ६.२० |
| दुष्ट विचारों से मुक्ति का उपाय | ६.२१ |
| आत्म निरीक्षण कीजिए | ६.२१ |
| स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न समूह | ६.२२ |
| बुद्धि सम्बन्धी प्रश्न समूह | ६.२२ |
| आध्यात्मिक उन्नति सम्बन्धी प्रश्न समूह | ६.२२ |
| समाज सम्बन्धी प्रश्न समूह | ६.२२ |
| विविध विषयक प्रश्न समूह | ६.२२ |
| तुम्हें विचार तथा संकल्प का सहयोग चाहिए | ६.२३ |
| विचारों को क्रियात्मक रूप दीजिए | ६.२३ |
| हमें शरीर के कार्यों द्वारा प्रत्यक्ष कीजिये | ६.२३ |
| विचार की दो अवस्थाएँ | ६.२३ |
| कार्यक्षेत्र में उतर आइये | ६.२४ |
| कर्मयोगी बनिए | ६.२४ |
| हम कोरे वक्की झक्की तो नहीं हैं | ६.२५ |
| जीवन निर्माण के लिए किन-किन विचारों की आवश्यकता है ? | ६.२६ |
| नया कदम उठाओ | ६.२७ |
| विचारों को सुदृढ़ करने की विधि | ६.२७ |
| चिन्तन के लिए हित प्रेरित संकल्प | ६.२८ |
| आत्मा को आध्यात्मिक आहार दीजिए | ६.२९ |
| प्रार्थना भी विचार करने की एक प्रणाली है | ६.२९ |
| प्रात:काल की प्रार्थना | ६.३० |
| आध्यात्मिक शाश्वत तरंगें | ६.३१ |
| अन्तरात्मा का अनुशासन | ६.३१ |
| अपने विचारों पर नियन्त्रण रखिए | ६.३२ |
| विचार शक्ति का प्रभाव क्षमता के वैज्ञानिक प्रमाण | ६.३६ |
| शारीरिक शक्ति से वृहत्तर-इच्छा शक्ति | ६.३८ |
| दृढ़ इच्छा-शक्ति के चमत्कार | ६.४१ |
| विचार शक्ति सन्मार्गगामी हो | ६.४३ |
| **अध्याय-७** | |
| **सफलता के तीन साधन** | **७.१** |
| आकांक्षा | ७.१ |
| कष्ट सहिष्णुता | ७.११ |
| परिश्रमशीलता | ७.१९ |
| **अध्याय-८** | |
| **आगे बढ़ने की तैयारी** | **८.१** |
| आगे बढ़िए, उन्नति कीजिए, विकसित हूजिए | ८.१ |

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| दूसरा पाठ-सफलताओं की जननी आरोग्यता-की रक्षा कीजिए | ८.६ |
| आद्य शक्ति की उपासना से जीवन को सुखी बनाइए | ८.१२ |
| चौथा पाठ-अपने विश्वास और सिद्धान्तों पर श्रद्धा कीजिए | ८.१६ |
| पाँचवा पाठ-इन परिस्थितियों में ही आगे बढ़िए | ८.२१ |
| संजीवनी विद्या क्या है ? | ८.२३ |
| सब सुखों की कुंजी अपने अन्दर है | ८.२७ |
| अपने सच्चे स्वरूप को पहचानों | ८.३० |
| उद्देश्यों को ऊँचा रखिए | ८.३४ |
| सुनिये सबकी-करिए मन की | ८.३८ |
| बलवान बनिये, जागरूक रहिये | ८.४२ |
| **अध्याय-९** | |
| **मन के हारे हार है मन के जीते जीत** | **९.१** |
| परिस्थितियों को सन्तुलन पर हावी न होने दें | ९.१ |
| न खीजें-न उद्विग्न हों | ९.३ |
| हमारा सबसे निकटवर्ती शत्रु-क्रोध | ९.६ |
| असन्तुलन के दुष्परिणामों एवं निवारण के उपाय | ९.९ |
| विचार संस्थान की सुव्यवस्था अत्यन्त अनिवार्य | ९.१४ |
| हिम्मत बटोरें-आत्महीनता छोड़ें | ९.१९ |
| विवेक से जुड़ी भावुकता ही श्रेयस्कर | ९.२१ |
| आस्था तन्त्र की विकृति भी मानस रोगों के लिए उत्तरदायी | ९.२४ |
| तनाव के कारण और उपचार के उपाय | ९.२६ |
| **अध्याय-१०** | |
| **हम बदलें तो दुनिया बदले** | **१०.१** |
| दृष्टिकोण का परिवर्तन | १०.१ |
| मानसिक स्वच्छता का महत्व | १०.४ |
| विचार ही जीवन का निर्माण करते हैं | १०.६ |
| मन को सुधारा जाय | १०.९ |
| हमारा आन्तरिक महाभारत | १०.१२ |
| युग धर्म का परिपालन अनिवार्य | १०.२० |
| गरीबों द्वारा अमीरी का आडम्बर | १०.२१ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| तीनों उद्यान फलेंगे और निहाल करेंगे | १०.२३ |
| दुरुपयोग के रहते अभाव कैसे मिटें | १०.२५ |
| साधनों से भी अधिक सद्गुणों की आवश्यकता | १०.२६ |
| उदारता अपनायी ही जाय | १०.२९ |
| मन: स्थिति बदलें तो परिस्थिति बदले | १०.३० |
| परिवर्तन का आधार तो ढूँढ़ें | १०.३२ |
| **अध्याय-११** | |
| **अपना उद्धार आप करें** | **११.१** |
| आत्मा को जानिए | ११.१ |
| अध्यात्म और उसकी महान उपलब्धि | ११.४ |
| बाह्य जीवन में आदर्शवाद का प्रयोग | ११.८ |
| समृद्धि और सुसम्पन्नता का मार्ग | ११.११ |
| आत्म-निर्माण एक प्रबल पुरुषार्थ | ११.१२ |
| आत्म शोधन-अध्यात्म का श्रीगणेश | ११.१५ |
| हम पहले अपने को ही क्यों न सुधारें | ११.१८ |
| अपना सुधार-संसार की सबसे बड़ी सेवा | ११.२४ |
| सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हमारा मन | ११.२७ |
| हम अपनी ही सेवा क्यों न करें | ११.३० |
| आत्म-विकास हमारा प्रमुख कर्त्तव्य | ११.३३ |
| आप भला तो जग भला | ११.३७ |
| आध्यात्मिक दृष्टिकोण | ११.४० |
| आत्म-सुधार से ही सच्ची शान्ति सम्भव है | ११.४३ |
| दोषों में भी गुण ढूँढ़ निकालिए | ११.४७ |
| हम पहले मन को ही क्यों न सुधारें | ११.५० |
| अपने को बदलें तो जमाना बदले | ११.५४ |
| गुत्थियों का हल अपने भीतर है | ११.५५ |
| सच्चरित्रा अनिवार्य है | ११.५७ |
| **अध्याय-१२** | |
| **स्व संकेतों द्वारा आत्म निर्माण की साधना** | **१२.१** |
| संकेतों द्वारा परिवर्तन | १२.२ |
| हमारी दबी हुई मनोवृत्तियाँ | १२.४ |
| संकेत का प्रभाव कहाँ पड़ता है | १२.७ |
| रात्रि में अव्यक्त का निर्माण | १२.१२ |
| दैनिक जीवन में संकेत का प्रयोग | १२.१६ |
| स्वयं अपने आपको संकेत देना | १२.१८ |
| तुम दास हो या स्वामी | १२.२२ |
| भीरु होकर नहीं निर्भय बनकर जियें | १२.२५ |


# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| विपत्ति को कैसे पराजित किया जाए | १२.२७ |
| अन्ध-विश्वास से मानसिक व्याधियाँ | १२.३० |
| आत्महीनता की प्रवृत्ति एक रोग है | १२.३१ |
| आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्मित होने के कारण | १२.३३ |
| अपने को तुच्छ एवं नगण्य न समझें | १२.३९ |
| आत्महीनता से मुक्ति के उपाय | १२.४२ |
| अभय होने का अमोघ उपाय | १२.४५ |
| संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करें | १२.४९ |
| विचारों की जागृति | १२.५२ |
| शुभ विचार गुप्त मन में जमायें | १२.५४ |
| कलुषित विचारों से बचें | १२.५६ |
| उन्नति का मूल है-कर्मशीलता | १२.५९ |
| कुंठा ग्रस्त बनना ठीक नहीं | १२.६० |
| मन को हल्का कीजिए | १२.६२ |
| आप क्या नहीं कर सकते | १२.६५ |
| आप कितना मानसिक आघात सहन कर सकते हैं | १२.६७ |
| मानसिक आघात से आत्म-हत्या | १२.६७ |
| मानसिक आघात सहन करने की शक्ति | १२.६८ |
| ध्यान और प्रार्थना से आत्म-विकास | १२.६८ |
| प्रसन्नता की साधना | १२.७० |
| वृत्तियों का परिमार्जन, व्यक्तित्व का उदात्तीकरण | १२.७१ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **अध्याय-१३** | |
| **जीवन श्रेष्ठ एवं सार्थक कैसे बने** | **१३.१** |
| जीवन की श्रेष्ठता और उसका सदुपयोग | १३.१ |
| जीवन को सार्थक बनाया जाय | १३.३ |
| जीवन महान कैसे बने | १३.६ |
| उत्कृष्ट जीवन की आवश्यकता | १३.८ |
| जीवन और उसका सहयोग | १३.१० |
| जीवन का कुछ उद्देश्य भी तो हो | १३.११ |
| जीवन एक अमूल्य सम्पदा | १३.१३ |
| जीवन को सार्थक बनाने का सही सुयोग | १३.१४ |
| **अध्याय-१४** | |
| **मानव जीवन का उद्देश्य, स्वरूप और सदुपयोग** | **१४.१** |
| केवल अपना ही नहीं सबका हित सोचें | १४.१ |
| 'समाज-निष्ठा' हर दृष्टि से अनिवार्य | १४.५ |
| मानवी गरिमा अन्त की उत्कृष्टता पर निर्भर | १४.८ |
| आत्मा की एक ही प्यास : सहानुभूति | १४.१३ |
| सहृदयता भी जीवन में उतनी ही अनिवार्य | १४.१४ |
| करुणा महानता का प्रथम चिन्ह | १४.१८ |
| अहिंसा का सही अर्थ समझें | १४.२२ |
| विवेकशील बनें-दूरदर्शिता अपनाएँ | १४.२६ |
| समाज की उत्कृष्टता मनुष्य के समग्र परिष्कार द्वारा ही सम्भव | १४.२९ |


# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# मनुष्य एक भटका हुआ देवता

## हे मनुष्य ! तुम महान हो !

तुम्हारा वास्तविक स्वरूप—तुम्हारे हिस्से में स्वर्ग की अगणित विभूतियाँ आई हैं न कि नर्क की कुत्सित यातनाएँ और तुमको वही लेना चाहिये जो तुम्हारे हिस्से में आया है । स्वर्ग तुम्हारी ही सम्पत्ति है । शक्ति तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है । तुमको केवल स्वर्ग में प्रवेश करना है तथा शक्ति का अर्जन कर लेना है । स्वर्ग में सुख ही सुख है । वहाँ आत्मा को न तो किसी बात की चिन्ता रहती है न किसी प्रकार की इच्छा । वहाँ तो अखण्ड शान्ति अखण्ड पवित्रता तथा अखण्ड तृप्ति है । तूफान मचाने वाले विकारों की आसुरी लीला या भय के भूतों का लेश भी वहाँ नहीं है । वह 'स्वर्ग' इस संसार में ही है । वह तुम्हारे भीतर है । उसे खोजने का प्रयत्न करो, अवश्य तुम्हें प्राप्त हो जायगा ।

संसार में फैले हुए पाप, निकृष्टता, भय शोक तुम्हारे हिस्से में नहीं आये हैं । मोह, शंका, क्षोभ की तरंगें तुम्हारे मानस-सरोवर में नहीं उठ सकतीं क्योंकि विक्षोभ उत्पन्न करने वाली आसुरी प्रवृत्तियों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं । संशय तथा शंकाओं से दब कर तुम्हें इधर-उधर मारा नहीं फिरना है । क्षण-क्षण उद्विग्न तथा उत्तेजित नहीं होना है । शान्त तथा पवित्र आत्मा में क्लेश, भय, दुःख शंका का स्पर्श कैसे हो सकता है ? यदि तुम इन कुत्सित वस्तुओं को अपनाओगे तो अवश्य ही ये तुम्हारे गले पड़ेंगे और तुम्हारे जीवन की, तुम्हारी महत्वाकांक्षा की, तुम्हारे भावी जीवन की इति श्री कर देंगे ।

तुम्हारा मनुष्य होना ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारी शक्ति अपरिमित है । संसार की ओर आँख उठाकर देखो ! प्रकृति पर मनुष्य का आधिपत्य है, बड़े से बड़े पशु उसके इङ्गित पर नृत्य करते हैं । ऊँची से ऊँची वस्तु पर उसका पूर्ण आधिपत्य है । उससे शक्तिशाली प्राणी पृथ्वी पर दूसरा नहीं है । उसकी बराबरी करने वाले अन्य जीव की सृष्टि नहीं हुई । मनुष्य पशुओं का राजा है ।

एक कवि कहता है-''मनुष्य ! तू कितना शक्तिशाली है । तेरी सृष्टि में उस दैवी-कलाकार ने अपनी कला की इतिश्री करदी है ।''

''तेरे प्रत्येक भाग में शक्ति का अस्तर लगाया गया है और वह इसलिए कि तू निर्भयता से पृथ्वी पर राज्य कर सके ।''

''तेरे बल का पारावार नहीं, जिन साधनों से सम्पन्न करके तुझे पृथ्वी पर भेजा गया है वे अचूक हैं, उनके आगे कोई ठहर नहीं सकता ।''

''तुझमें शारीरिक शक्ति का भण्डार है, तेरे हाथ, पाँव, छाती, पट्ठों में शक्ति इसीलिए दी गई है कि कोई तुझे दबा न सके, तेरी बराबरी न कर सके, जहाँ तेरी शारीरिक सम्पन्नता कार्य न करे, वहाँ कार्य के लिए तुझे बुद्धि की असीम शक्तियाँ प्रदान की गई हैं । इनकी ताकत अनेक इन्द्रवज्रों से उत्कृष्ट है । इनके आगे दूसरे की नहीं चल सकती ।''

''तुझमें असीम सामर्थ्य वर्तमान है, शक्ति का वृहत् पुञ्ज भरा पड़ा है । तुझे किसी के आगे हाथ पसार कर माँगने की आवश्यकता नहीं है । तुझे किसी देव की कृपा सम्पादन की आवश्यकता नहीं है । संसार के क्षुद्र आघात प्रतिघातों में इतना हिम्मत नहीं कि तुझे विचलित कर सकें ।''

''तू निष्पाप है, तू आनन्द है, तू अविनाशी आत्मा है तू सच्चिदानन्द रूप है, तू शोक रहित, भय रहित, नित्य मुक्त स्वभाव वाला देव है । न दुःख, न क्लेश, न रञ्ज, न भूत, न प्रतिद्वन्द्वी-तुझे अपने जन्म जात अधिकारों से कोई विचलित नहीं कर सकता । वासनाएँ तुझे मजबूर नहीं कर सकतीं ।''

''तू ईश्वर का महान पुत्र है । ईश्वर की शक्ति का ही तेरे अन्दर प्रकाश है । तू ईश्वर को ही अपने भीतर से कार्य करने दे । ईश्वर को स्वयं प्रकाशित होने दे । ईश्वर जैसा ही बन कर रह । ईश्वर होकर खा, पी, और ईश्वर होकर ही साँस ले, तभी तू अपनी महान् पैतृक सम्पत्ति का स्वामी बन सकेगा ।''

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

## १.२ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

सृष्टि नियंता-परमेश्वर ने मनुष्य को परम निर्भय बनाया था । वह जगत् का अधिपति डरपोक रह कर क्यों कर राज्य कर सकता था ? समाज के प्रतिबंधों ने उसे डरपोक बना दिया है ।

संसार के असंख्य व्यक्ति आज जिस मानसिक व्यथा से क्षुब्ध हो रहे हैं वह मनोजनित रोग-भय है । मनुष्य के मन की निर्बल आदतों को जन्म देने वाला अन्य कोई नहीं केवल भय ही है । अविश्वास, अकर्मण्यता, अधैर्य, ईर्ष्या, असन्तोष, मन की चञ्चलता तथा ऐसे अनेकों मनोजनित रोग केवल भय की ही विभिन्न स्थितियाँ है । भय से उद्भूत कुत्सित मनोवृत्तियाँ उपयोगी पुरुषार्थ को जड़ मूल से नष्ट कर देती हैं । केवल एक भय को अन्त:करण से उखाड़ फेंकने से अनेक अवगुण स्वयं विनष्ट हो जाते हैं ।

अति निकट और अति दूर की उपेक्षा करना मानव का सहज स्वभाव है । यह उक्ति जीवन सम्पदा के हर क्षेत्र में लागू होती है । जीवन हम हर घड़ी जीते हैं, पर न तो उसकी गरिमा समझते और न यह सोच पाते हैं कि इसके सदुपयोग से क्या-क्या सिद्धियाँ उपलब्ध हो सकती हैं । प्राणी जन्म लेता और पेट प्रजनन की, प्राकृतिक उत्तेजनाओं से विक्षुब्ध होकर, निर्वाह की जरूरतें पूरी करते हुए दम तोड़ देता है । ऐसे क्षण कदाचित् ही कभी आते हैं, जब यह सोचा हो कि स्रष्टा की तिजोरी का सर्वोपरि उपहार मनुष्य जीवन है । जिसे अनुग्रह पूर्वक यह जीवन दिया गया है, उससे यह आशा की गई है कि वह उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करेगा । अपनी अपूर्णता पूरी करके तुच्छ से महान बनेगा, साथ ही विश्व उद्यान को कुशल माली की तरह सींचते-सँजोते, यह सिद्ध करेगा कि उसे स्वार्थ और परमार्थ के सही रूप का ज्ञान है । स्वार्थ इसमें है कि पशु प्रवृत्तियों की कुसंस्कारिता से पीछा छुड़ाएँ और सत्प्रवृत्तियों की आवश्यक मात्रा में अवधारणा करते हुए उस परीक्षा में उत्तीर्ण हों, जो धरोहर का सदुपयोग कर सकने के रूप में सामने प्रस्तुत हुई है । जो उसमें उत्तीर्ण होता है, वह देव मानव की कक्षा में प्रवेश करता है । अपना ही भला नहीं करता, असंख्यों को अपनी नाव में बिठाकर पार करता है । ऐसों को ही अभिनन्दनीय, अनुकरणीय महामानव कहा जाता है । तृप्ति, तुष्टि-शान्ति के त्रिविध आनन्द ऐसों को ही मिलते हैं ।

मनुष्य जीवन दिव्य सत्ता की एक बहुमूल्य धरोहर है, जिसे सौंपते समय उसकी सत्पात्रता पर विश्वास किया जाता है । मनुष्य के साथ यह पक्षपात नहीं है वरन् ऊँचे अनुदान देने के लिए यह प्रयोग परीक्षण है । अन्य जीवधारी शरीर भर की बात सोचते और क्रिया करते हैं, किन्तु मनुष्य को स्रष्टा का उत्तराधिकारी युवराज होने के नाते अनेकानेक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व निबाहने पड़ते हैं । उसी में उसकी गरिमा और सार्थकता है । यदि पेट प्रजनन तक, लोभ, मोह तक उसकी गतिविधियाँ सीमित रहें तो उसे नर-पशु के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा ? लोभ-मोह के साथ अहंकार और जुड़ जाने पर तो बात और भी अधिक बिगड़ती है । महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उभरी अहमन्यता अनेकों प्रकार के कुचक्र रचतीं और पतन पराभव के गर्त में गिरती हैं । अहंता से प्रेरित व्यक्ति अनाचारी बनता है और आक्रामक भी । ऐसी दशा में उसका स्वरूप और भी भयंकर हो जाता है । दुष्ट दुरात्मा एवं नर पिशाच स्तर की आसुरी गतिविधियाँ अपनाता है । इस प्रकार मनुष्य जीवन जहाँ श्रेष्ठ-सौभाग्य का प्रतीक था, वहाँ वह दुर्भाग्य और दुर्गति का कारण ही बनता है । इसी को कहते हैं वरदान को अभिशाप बना लेना । दोनों ही दिशाएँ हर किसी के लिए खुली हैं । जो इनमें से जिसे चाहता है उसे चुन लेता है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप जो है ।

साधकों में भिन्नता देखी जाती है । उनके भिन्न-भिन्न इष्ट देव उपास्य होते हैं । उनसे अनुग्रह अनुकम्पा की आशा की जाती है और विभिन्न मनोकामनाएँ पूर्ण करने की अपेक्षा रखी जाती है । इनमें से कितने सफल होते हैं, इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि पराधीनता की स्थिति में स्वामी की इच्छा पर सब कुछ निर्भर रहता है । सेवक तो अनुनय विनय ही करता रह सकता है, किन्तु जीवन देवता के सम्बन्ध में यह बात नहीं है । उसकी अभ्यर्थना सही रूप में बन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पड़ने पर, वह सब कुछ इसी कल्प-वृक्ष के नीचे प्राप्त किया जा सकता है, जिसकी कहीं अन्यत्र से पाने की आशा लगाई जाती है ।

ब्रह्माण्ड का छोटा सा रूप पिण्ड परमाणु है । जो ब्रह्माण्ड में है वह सब कुछ पदार्थ के सबसे छोटे घटक परमाणु में भी विद्यमान है और सौर मण्डल की समस्त क्रिया-प्रक्रिया अपने में धारण किये हुए है । इसे विज्ञानवेत्ताओं ने एक स्वर से स्वीकार किया है । इसी प्रतिपादन का दूसरा पक्ष यह है कि परम सत्ता ब्रह्माण्डीय चेतना का छोटा किन्तु समग्र प्रतीक जीव है । वेदान्त दर्शन के अनुसार परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है । तत्वदर्शन के अनुसार इसी काय-कलेवर में समस्त देवताओं का निवास है । परब्रह्म की दिव्य क्षमताओं का समस्त वैभव जीवब्रह्म के प्रसुप्त संस्थानों में समग्र रूप से विद्यमान है । यदि उन्हें जगाया जा सके तो विज्ञात अतीन्द्रिय क्षमतायें और अविज्ञात दिव्य विभूतियाँ जाग्रत, सक्षम एवं क्रियाशील हो सकती हैं । तपस्वी, योगी, ऋषि, मनीषी, महामानव सिद्ध-पुरुष ऐसी ही विभूतियों से सम्पन्न देखे गये हैं । तथ्य शाश्वत और सनातन हैं । जो कभी हो चुका है वह अब भी हो सकता है । जीवन देवता की साधना से ही महान सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । कस्तूरी के हिरण जैसी बात है । बाहर खोजने में थकान और खीझ ही हाथ लगती है । शान्ति तब मिलती है जब उस सुगन्ध का केन्द्र अपनी ही नाभि में होने का पता चलता है । परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए अन्यत्र खोजबीन करने की योजना व्यर्थ है । वह एक देशकाल तक सीमित नहीं है, कलेवरधारी भी नहीं । उसे अति निकटवर्ती क्षेत्र में देखना हो तो वह अपना अन्तःकरण ही हो सकता है । समग्र जीवन इसी की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है ।

गीताकार ने उस परब्रह्म को श्रद्धा में ही समाहित बताया है और कहा है कि जिसकी जैसी श्रद्धा हो वह वैसा ही है, जो अपने को जैसा मानता है वह वैसा ही बन जाता है । यदि अपने को तुच्छ और हेय समझते रहा जायगा तो व्यक्तित्व उसी ढाँचे में ढल जायगा । जिसने अपने अन्दर में महानता आरोपित की है उसे अपना अस्तित्व मानवी गरिमा से ओत-प्रोत दिखाई पड़ेगा ।

परमात्मा सब कुछ करने में समर्थ है । उसमें समस्त विभूतियाँ विद्यमान हैं । इसी शास्त्र वचन को यों भी कहा जा सकता है कि उसका प्रतीक प्रतिनिधि-उत्तराधिकारी युवराज भी, अपने सृजेता की विशेषताओं से सम्पन्न है । कठिनाई तब पड़ती है जब आत्म-विस्मृति का अज्ञानान्धकार अपनी सघनता से वस्तु स्थिति को आच्छादित कर लेता है । अँधेरे में झाड़ी को भूत और रस्सी को साँप के रूप में देखा जाता है । जिधर भी कदम बढ़ाया जाय उधर ही ठोकरें लगती हैं, किन्तु यदि प्रकाश की व्यवस्था बन जाय तो सब कुछ यथावत् दिखाई पड़ेगा । आत्मबोध को उस प्रकाश का उदय माना जाता है, जिसमें अपने सही स्वरूप का आभास भी मिलता है और सही मार्ग ढूँढ़ने में भी विलम्ब नहीं लगता ।

भेड़ों के झुण्ड में पले सिंह शावक की कथा सर्वविदित है । अपने इर्द-गिर्द का वातावरण और प्रचलन मनुष्य को अपने ही समूह में घसीट ले जाता है, पर जब आत्मबोध होता है तो पता चलता है कि आत्म सत्ता ''शुद्धोऽसि-बुद्धोऽसि'' के सिद्धान्त को अक्षरशः चरितार्थ करती है । 'मनुष्य भटका हुआ देवता है'' इस कथन में उसका सहो विश्लेषण देखा जा सकता है । यदि भटकाव दूर हो जाय तो समझना चाहिए कि समस्त समस्याओं का हल निकल आया । समस्त भवबन्धनों से छुटकारा मिल गया । मोक्ष और कुछ नहीं अपने सम्बन्ध में जो अचिन्त्य-चिन्तनवश भूल हो गई है, उससे त्राण पी लेने का परम पुरुषार्थ है । मकड़ी अपने लिए जाला अपने भीतर का द्रव निकाल कर स्वयं ही बुनती है, स्वयं ही उसमें उलझती और छटपटाती है, किन्तु देखा यह भी गया है कि जब उसे उमंग उठती है तो उस जाले को समेट बटोर कर स्वयं ही निकल भी जाती है । हेय जीवन स्वीकृत है । जैसा सोचा गया, चाहा गया, माना गया वैसी ही परिस्थितियाँ बन गईं । अब उसे बदलने का मन हो तो मान्यताओं, आकांक्षाओं और गतिविधियों को उलटने की देर है । निकृष्ट को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है । क्षुद्र से महान बना जा सकता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

## १.४ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

''साधना से सिद्धि'' का सिद्धान्त सर्वमान्य है । देखना इतना भर है कि साधना किसकी की जाय । अन्यान्य इष्ट देवों के बारे में कहा नहीं जा सकता कि उनका निर्धारित स्वरूप और स्वभाव वैसा है या नहीं, जैसा कि सोचा-जाना गया है । इसमें संदेह-होने का कारण भी स्पष्ट है । समूची विश्व-व्यवस्था एक है । सूर्य ,चन्द्र, पवन आदि सार्वभौम हैं । ईश्वर भी सर्वजनीन है, सर्वव्यापी भी । फिर उसके अनेक रूप कैसे बने ? अनेक आकार-प्रकार और गुण स्वभाव का उसे कैसे देखा गया ? मान्यता यदि यथार्थ है तो उसका स्वरूप सार्वभौम होना चाहिए । यदि वह मतमतान्तरों के कारण अनेक प्रकार का होता है, तो समझना चाहिए कि यह मान्यताओं की ही चित्र-विचित्र अभिव्यक्तियाँ हैं । ऐसी दशा में सत्य तक कैसे पहुँचा जाय ? प्रश्न का सही उत्तर यह है कि जीवन को ही जीवित जाग्रत देवता माना जाय । उसके ऊपर चढ़े कषाय-कल्मषों का परिमार्जन करने का प्रयत्न किया जाय । अंगार पर राख की परत जम जाने पर वह काला-कलूटा दिख पड़ता है, पर जब वह परत हटा दी जाती है तो भीतर छिपी अग्नि स्पष्ट दीखने लगती है । साधना का उद्देश्य इन आवरण अच्छाइयों को हटा देना भर है । इसे प्रसुप्ति को जागरण में बदल देना ही कहा जा सकता है ।

अध्यात्म विज्ञान के तत्त्ववेत्ताओं ने अनेक प्रकार के साधना उपचार बताए हैं । यदि गम्भीरता पूर्वक उनका विश्लेषण विवेचन किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह प्रतीक पूजा और कुछ नहीं मात्र आत्म परिष्कार का ही बाल बोध स्तर का प्रतिपादन है । पात्रता और प्रखरता का अभिवर्धन ही योग और तप का लक्ष्य है । पात्रता एक चुम्बक है जो अपने उपयोग की वस्तुओं-शक्तियों को अपनी ओर सहज ही आकर्षित करती रहती है । मनुष्य में विकसित हुए देवत्व का चुम्बक संसार में संव्याप्त शक्तियों और परिस्थितियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है । जलाशय गहरे होते हैं । सब ओर से पानी सिमटकर इकट्ठा होने के लिए उनमें जा पहुँचता है । समुद्र में सभी नदियाँ जा मिलती हैं । यह उसकी गहराई का ही प्रतिफल है । पर्वत की चोटियों पर यदि शीत की अधिकता से बर्फ जम भी जाय तो वह गर्मी पड़ते ही पिघल जाती है और नदियों से होकर समुद्र में पहुँच कर रुकता है । इसी को कहते हैं ''पात्रता'' । पात्रता का अभिवर्धन ही साधना का मूलभूत उद्देश्य है । ईश्वर को न किसी की मनुहार चाहिए और न उपहार । वह छोटी-मोटी भेट-पूजाओं से या स्तवन गुणगान से प्रसन्न नहीं होता । ऐसी प्रकृति तो क्षुद्र लोगों की होती है । भगवान का ऐसा मानस नहीं । वह न्यायनिष्ठ और विवेकवान है । व्यक्तित्व में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश होने पर जो गरिमा उभरती है उसी के आधार पर वह प्रसन्न होता और अनुग्रह बरसाता है । उसे फुसलाने का प्रयास करने वालों की बाल-क्रीड़ा निराशा ही प्रदान करती है ।

ऋषि ने पूछा ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' अर्थात् ''हम किस देवता के लिए यजन करें '' उसका सुनिश्चित उत्तर है आत्म देव के लिए अपने आप को चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की कसौटियों पर खरा सिद्ध होना ही वह स्थिति है जिसे सौ टंच सोना कहते हैं । पेड़ पर फल-फूल ऊपर से टपक कर नहीं लदते, वरन् जड़ें जमीन से जो रस खींचती हैं उसी से वृक्ष बढ़ता है और फलता-फूलता है । जड़ें अपने अन्दर हैं, जो समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं । इसी प्रखरता के आधार पर वे सिद्धियाँ-विभूतियाँ प्राप्त होती हैं जिनके आधार पर आध्यात्मिक महानता और भौतिक प्रगतिशीलता के उभय पक्षीय लाभ मिलते हैं । यही उपासना, साधना और आराधना का समन्वित स्वरूप है । यही वह साधना है जिसके आधार पर सिद्धियाँ और सफलताएँ सुनिश्चित बनती हैं । दूसरे के सामने हाथ पसारने, गिड़गिड़ाने भर से पात्रता के अभाव में कुछ प्राप्त नहीं होता । भले ही यह दानी परमेश्वर ही क्यों न हो । कहा गया है कि ईश्वर केवल उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं, अपनी सहायता करने को तत्पर हैं । आत्मपरिष्कार, आत्मशोधन, यही जीवन साधना है । इसी को परम पुरुषार्थ कहा गया है । जिन्होंने इस लक्ष्य को समझा, जानना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चाहिए कि उन्होंने अध्यात्म तत्व ज्ञान का रहस्य और मार्ग हस्तगत कर लिया चरम लक्ष्य तक पहुँचने का राजमार्ग पा लिया और दैवीगुणों से सम्पन्न हो ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बन गया ।

वस्तुतः-परमेश्वर का राजकुमार उस जगत् आत्मा का अंश मनुष्य विश्व का सर्वोत्तन सर्वगुण-सम्पन्न उच्चतम प्राणी है । ईश्वर ने उसे श्रेष्ठतम प्राणी उच्चतम शक्तियों से विभूषित महान् जीव इसलिए बताया है कि वह मनुष्यत्व प्राप्त करे और प्रभु के दिव्य उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए परमात्मा के एकत्व में अपनी कल्पित भिन्न सत्ता को सर्वथा विलीन कर दे ।

युग-युग के पुराणों, सत्कार्यों तथा साधनाओं के पश्चात् मनुष्यत्व जैसी दिव्य सम्पदा का अधिकारी जीव बन पाता है । इस संसार में जो सबसे उच्च अधिकारी हैं जो दिव्य गुण, असाधारण समृद्धियाँ, या अनमोल अलौकिक सत्त्व हैं, उन सभी को एकत्रित कर 'मनुष्य' की सृष्टि की गई है । उसे सबसे अधिक सुविधाएँ एवं अधिकार देकर पृथ्वी पर अवतीर्ण किया गया है । मानसिक, शारीरिक आध्यात्मिक विभूतियों से सब प्रकार सज्जित कर दिव्य आत्मानन्द के लिए हमें सभी कुछ दे दिया गया है । मनुष्य के संस्थान में आध्यात्मिक चेतना के असाधारण क्रियाशील तन्तुओं का निर्माण ऐसी अद्‌भुत कारीगरी के साथ सम्पन्न हुआ है कि हम इन दिव्य साधनों के सदुपयोग से परमपिता के समस्त अधिकारों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं । जिस शक्तिशाली देव दुर्लभ मानव-जीवन की रचना पर परमात्मा ने अपनी कला की इतिश्री करदी है, यदि आज की प्रगतिशील दुनिया में वह पशुओं से कुछ भी ऊँची उपयोगिता सिद्ध न कैर सके, तो विक्षिप्त बुद्धि का दुखद प्रलाप ही कहा जायेगा ।

आज मानवता रो रही है । मनुष्य अपने आपको तुच्छ जीव समझने लगा है, वह इन्द्रियों का गुलाम है, पाखण्ड, अभिमान, तृष्णा, पाप स्वार्थ वासना-इन आसुरी ताकतों ने उसे मजबूर कर दिया है । उसमें संकुचित पैठ गई है तथा विषम सीमा बन्धन की दीवारें उसकी आत्मज्योति को विकीर्ण होने में बाधा पहुँचा रही हैं । लोगों के हृदय में वासनाओं का तूफान मचा है । वे मनुष्यतत्व से दूर जा पड़े हैं । आज का 'सभ्यता' की डींग हाँकने वाला मनुष्य साक्षात् असुर बन गया है । उसको पशु प्रकृति, क्रूर वासनाएँ, आसुरी प्रवृत्तियाँ पग-पग पर उसके पतन की सूचना दे रही हैं । एक मनुष्य दूसरे भाई को कच्चा चबा डालने को प्रस्तुत है ।

आज अपने को मनुष्यता की कसौटी पर कसते हुए हमें आत्म-ग्लानि का अनुभव होता है । अनेक ऐसे सुधारक, कवि, लेखक, नेता, पुजारी, पंडे, धर्मोपदेशक आदि हैं, जिन्हें हम आदर की दृष्टि से देखते हैं, परम श्रद्धा का पात्र समझते हैं नमस्ते प्रणाम, दण्डवत् का अधिकारी समझते हैं, उनके भाषण सुनते तथा उनकी रचनाओं का रसास्वादन करते हुए अपने को कृतकृत्य समझते हैं । हम उन्हें आदर्श मानकर उनका यथोचित गुणगान भी करते हैं । देवत्व (Hero-worship) की भावना से प्रेरित होकर हम उन्हें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजते हैं । कम से कम साधारण भोले-भाले भावुक साधकों की तो यही भावना होती है कि वे सुधारक हैं नेता हैं, पत्रकार हैं, विद्वान् पुजारी हैं, परमात्मा के अनन्य उपासक हैं, किन्तु उनमें कितनी भलमनसाहत है, कितनी ईमानदारी, सत्यता, प्रेम, दया, न्याय, सौजन्य है, संक्षेप, में उनमें कितनी 'मनुष्यता' है, इस तत्त्व पर हम प्रायः अपने ज्ञान-चक्षु एकाग्र नहीं करते । किसी नेता, गुरु धर्म प्रचारक, पुजारी, धर्मोपदेशक या हमारे श्रद्धा के पात्र में कितना 'मनुष्यत्व' है, इस पहलू की ओर हम आकर्षित नहीं होते ।

इस देव दुर्लभ शरीर को पाकर यदि हम मनुष्य न बने तो फिर सुधारक, नेता, पुजारी, राष्ट्र के पथ प्रदर्शक बनने से क्या प्रयोजन ? यदि हम में अपने वास्तविक स्वरूप के साधारण उपकरण ही नहीं हैं, तो फिर उपदेशक, नेता, कवि सुधारक बनने की क्या उपयोगिता ?

आज का वैज्ञानिक मनुष्य अपने वैभव पर इतराता है, विपुल धन राशि, सुन्दर ऐश आराम की वस्तुएँ सुस्वादु पकवान, वस्त्र, आभूषण, ऊँची-ऊँची जगन चुम्बी अट्टालिकाएँ देखकर अपने ज्ञान-विज्ञान पर फूला नहीं समाता । बिजली की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चकाचौंध देख कर उसकी वासना फूली नहीं समाती, किन्तु उफ् ! मानवता का मापदण्ड जितना आधुनिक काल में गिरा है उतना कदाचित् किसी समय में पतित नहीं हुआ । सब प्रकार से सुसज्जित एवं सुसंस्कृत कहलाने वाला सभ्य मनुष्य को यदि फाड़ कर देखा जाय, तो वह पुराने बर्बर मनुष्य से भी निम्न श्रेणी का निकलेगा । उसका नैतिक पतन बहुत हुआ है, वह आदमियत की श्रेणी से गिरकर शैतानियत की श्रेणी में आ पहुँचा है । यह आज के सभ्य समाज का कटु सत्य है ।

इस तत्त्व की सिद्धि के लिए हमें अपना दैनिक जीवन तथा व्यवहार अपने रिश्ते और छल-छद्म देखने होंगे । हमें आत्मघात की बढ़ती हुए घटनाओं को देखना होगा, अपने घर के अन्धकारमय वातावरण को देखना होगा, न्यायालयों में दिन पर दिन बढ़ते हुए अभियोगों पर दृष्टिपात करना होगा, हास्पिटलों में पागलपन, मृगी, उन्माद, के अनेक मरीजों को देखना पड़ेगा । ऑफिस, घर तथा सार्वजनिक स्थल प्रायः सभी स्थानों पर आपको एक संकीर्ण, संकुचित और स्वार्थों से सनी हुई दूषित मनोवृत्ति की गन्दगी उपलब्ध होगी ।

इस भयंकर महायुद्ध को देखिये । चारों ओर मारकाट मची है, छीना-झपटी का झावत् चल रहा है कुटुम्ब और मानवता के बीच एक दीवार ख़ड़ी होती जा रही है, वर्ग भेद, रूढ़िवादिता, एवं स्वार्थपरता हमें नष्ट कर रही है । पार्टीबंदी का जोर है, विज्ञापन को पाण्डित्य की कसौटी समझा जाता है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे लोग आदमियत को छोड़ कर पाकिस्तान बना सकते हों । जहाँ आदमियत नहीं इन्सानियत की भव्यता नहीं । वहाँ कैसे स्वतन्त्रता कायम रह सकती है । स्वतन्त्रता की माँग से पूर्व हमें इन्सानियत का तकाजा करना चाहिये । हमारे जीवन में जो कृत्रिमता, बनावट, पदलोलुपता, अधमता, स्वार्थपरता आ गई है, उसका बहिष्कार होना चाहिये सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होने वाले मनुष्य को हमें मानवता का पाठ पढ़ाना चाहिये ।

जैसा व्यक्ति है, वैसा ही समाज विनिर्मित होता है । जब मनुष्य में 'इन्सानियत' नहीं तो समाज में मानवता कहाँ मिल सकती है । मानवता का अभाव ही आज संसार को दुःख के दावानल में भस्मीभूत कर रहा है । हमारी संस्थाएँ संकीर्णता के दूषित दलदल में फँस रही हैं ।

धर्म क्या है ? आदर्श क्या है ? मनुष्य में सबसे अनमोल वस्तु क्या है ? हमारी राय में यह दैवी पदार्थ उसकी 'मानवता' के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । मनुष्य में जो सर्वोकृष्ट है, वह है उसकी मानवता जहाँ-जहाँ सच्ची मानवता का उन्मेष है वही-वहीं धर्म है, सुख है, शान्ति है । जहाँ 'मनुष्यता' का लोप है, वहाँ नास्तिकता है, अत्याचार है, स्वार्थ तथा आसुरी सम्पत्ति का राज्य है ।

देवों तथा असुरों की कोई भिन्न-भिन्न जातियाँ नहीं होतीं और न वे साधारण मनुष्यों से विलक्षण रूपों वाले होते है । 'मानवता' की कसौटी पर खरे उतरने वाले देव, तथा उससे नीचे गिरने वाले असुर होते हैं । दैवी सम्पत्ति के गुण जिनमें अधिक होते है, वे मनुष्य होते हुए भी देव हैं और आसुरी प्रकृति वाले राक्षस हैं । दैवी सम्पदाएँ ही मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति है । वही मानवता का संचार करने वाली है । 'मानवता' का अर्थ है, अपने समान ही दूसरों के सुख-दुःख और अभाव अभियोगों की अनुभूति पूर्ण कल्पना करना, सब की उन्नति में अपनी उन्नति और सब के सुख में अपना सुख मानना, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को समाज के सुख पर बलिदान करना, तरना और दूसरों को तारना, सब से प्रेम-पूर्ण सत्य व्यवहार करना, निर्दयता के विरुद्ध लड़ना । जब मानव हृदय में सात्विक बुद्धि का सर्वाङ्गीण विकास होता है, तब यथार्थ धर्म का उन्मेष होता है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के १६ वें अध्याय में दैवी सम्पदाओं पर प्रचुर प्रकाश डाला है तथा दैवी सम्पदाओं वाले लक्षणों का स्पष्ट विवेचन किया है । जो व्यक्ति सच्ची मानवता का विकास करने के इच्छुक हैं, उन्हें इस दिव्य सन्देश का यथार्थ रूप हृदयंगम करना चाहिए । भक्ति तथा ज्ञान के प्रशस्त मार्ग पर जो आगे बढ़ रहे हैं, उनमें दैवी सम्पत्ति के गुणों का विकास होना अनिवार्य है । साधकों को

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्रतिदिन उसका पाठ करना चाहिए और मनन द्वारा अपने व्यक्तित्व में दैवी सम्पदाएँ उत्पन्न करने तथा आसुरी सम्पत्ति के अवगुणों को दूर करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए । इसी में कल्याण है ।

## दैवी सम्पदाएँ

भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि 'हे अर्जुन ! दैवी सम्पदाएँ मुक्ति के लिए जिन पुरुषों को प्राप्त होती हैं उनके लक्षण ये हैं-

**अभयं सत्त्वसशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः ।**
**दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।। १ ।।**
**अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।**
**दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।। २ ।।**
**तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।**
**भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।। ३ ।।**

अर्थात् जिन महानुभावों को दैवी सम्पदा प्राप्त है, उनमें सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान तथा इन्द्रियों का दमन, भगवत् पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेदशास्त्रों के पठन-पाठन पूर्व भगवत् के नाम और गुणों का कीर्तन तथा स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता तथा मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग एवं अन्तःकरण की उपरामता, अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव और किसी की भी निन्दादि न करना तथा सब भूत प्राणियों में हेतु रहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति न होना और कोमलता तथा लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव तथा तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर भीतर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रु भाव न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव यह सब हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा के प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं । आइये, इन दैवी गुणों पर पृथक्-पृथक् विचार करें ।

दैवी सम्पदा से युक्त व्यक्ति के समीप भय का भूत नहीं आ सकता, वह अपने इष्ट मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक आरूढ़ रहता है । उसके मन में ऐसी अद्भुत सामर्थ्य होती है कि प्रतिकूल प्रसंग सुख-दुःख, हानिलाभ, जयपराजय, हर्ष-शोक का तनिक भी प्रभाव उसकी उत्तम धारणाओं पर नहीं पड़ता भय नामक राक्षस उसके जीवन-प्रवाह को मन्द नहीं कर सकता, शरीर मन तथा उसकी आत्मा की समस्वरता (हारमोनी) में किसी प्रकार का भी व्यवधान उपस्थित नहीं कर सकता ।

## प्रथम सम्पदा-भय का अभाव

सांसारिक पुरुष नाना प्रकार की आवश्यकताओं मायामोह भोगों के चक्र में फँसते हैं और संसार सागर में भयंकर थपेड़े खाते रहते हैं । उन्हें पग-पग पर अपनी आत्मा का ह्रास करना होता है, कितने ही व्यक्तियों का ध्यान रखना पड़ता है । ऐसी अवस्था में भला वे कैसे निर्भय हो सकते हैं ? आज का सभ्य कहलाने वाला ज्ञानी भाँति-भाँति के भयों में फँसा है । उसे अपनी स्थिति कायम रखने, धन जाने का भय पुत्र-पुत्री के स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह की चिन्ता भोजन, वस्त्र, नाश, झूठी-इज्जत, विरोध, समाज की आलोचना, शरीर नाशघर के झगड़ों का डर, अस्त-व्यस्त कर रहा है । उसने अपने चहुँ ओर भाँति-भाँति के व्यर्थ के प्रपंच रच रखे हैं । इन आसुर भावों के फलस्वरूप उसके मन में भयानक अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है । कुछ व्यक्ति रुपये के लोभ में आत्मा की महान् सत्ता को विस्तृत कर सैकड़ों की गुलामी कर रहे हैं । गीता में निर्देश है-

**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।**
**माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।**

अर्थात् माया ने जिनका ज्ञान (सद्बुद्धि ) हरण कर लिया है ऐसे पापी, आसुरी स्वभाव के नराधम मानव मेरी शरण नहीं हो सकते ।

भय का कारण है, अज्ञान, मिथ्या, शिक्षा एवं शरीर के नाश की चिंता अपने वास्तविक स्वरूप में मनुष्य को सद्ज्ञान से परिपूर्ण निर्भय होना चाहिए । मनुष्य तो साक्षात् आत्मा है, नारायण का पवित्र अंश है-उसके समीप भय कैसे रह सकता है । भय हमारी अपनी आदत मात्र है । यदि हम अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


महान् शक्तियों का प्रदर्शन तथा अद्भुत चमत्कार देखना चाहते हैं तो हमें निर्भयता सीखनी चाहिए ।

साधक ! उठ पूर्ण निर्भय हो जा । कायरता के अन्धकार से मुक्त होकर साहस, पौरुष निर्भयता के सूर्य को देख । यही तेरा प्रकाश है । तू ! सावधान होकर आत्म-तत्त्व के दीपक से ब्रह्म तत्त्व का दर्शन कर जिसका तू प्रतिबिम्ब है । भय का अस्तित्व तो अज्ञान में है । तेरे अन्तस्तल प्रदेश में आत्मज्योति जगमग कर रही है फिर तेरे अन्त:करण में भ्रम, शंका, संदेह-चिंता और अनिष्ट प्रसंग कैसे उथल,-पुथल मचा सकते हैं ? तुझे हीनता, का डर नहीं, निकृष्टता, रोग, ग्लानि, प्रतिकूलता व्यग्रता तुझे विचलित नहीं कर सकते । तू अपनी कायरता की केंचुली तोड़ कर आत्म-प्रकाश में जाग ! तू अपने अज्ञान को छोड़ मनुष्यत्व को जान और निर्भयता की शान्ति में उसका विकास कर । मनुष्य में निर्भयता ऐसी शक्ति है जिसके बल से वह इस भूतल का स्वामी बना है और चिरकाल तक राज्य करता रहेगा । स्मरण रख, स्वयं भय खाना या दूसरे को भय दिखाना दोनों ही मनुष्य धर्म के विपरीत हैं ।

जीवन में तुम्हें चहुँ ओर अन्धकार प्रतिकूलता दु:ख, क्लेश दिखाई देते हों तो आत्मा को दैदीप्य मान कर प्रसाद रहित होकर प्रकाश में आने का प्रयत्न करो, निर्बल और त्रस्त विचारों को निकाल कर दृढ़ता, निर्भयता, पुरुषार्थ, एवं प्रसन्नता की भावनाओं को मानस प्रदेश में जमाओ और पूर्ण निर्भय जीवन व्यतीत करो ।

## द्वितीय सम्पदा-अन्त:करण की स्वच्छता

दैवी सम्पदा से युक्त साधक नकली या बनावटी जीवन से बहुत दूर रहता है । जब मन, वचन, कर्म में एकता नहीं रहती तब आन्तरिक अशुद्धि प्रारम्भ होती है और क्रमश: काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अभिमान, राग, द्वेष, छल, कपट एवं दम्भादि दुर्गुण चित्त को अपवित्र बना देते हैं । आज बड़प्पन टीपटाप तो रह गई है, किन्तु आन्तरिक महानता से जीवन बहुत दूर चला गया है । जीवन की आधुनिक कृत्रिमता, बनावट तथा नकलीपन को दृष्टि में रखकर किसी कवि ने क्या ही उत्तम कहा है-

**मन में राखे और कछु, वाणी में कछु और ।**
**कर्म करे कछु और ही, झूठे तीनों ठौर ।।**

मन के स्वार्थ, वासनाओं तथा अहंबुद्धि के परिमार्जन से अन्त:करण की शुद्धि हो सकती है । अपनी आत्मा को ब्रह्म में अर्पण करना दूसरे के दोष न देखना, कुसंग से मुक्ति तमोगुणी वातवरण से दूर रहना, पर स्त्री, संगी, प्रमादी, अकारण द्वेषी, सन्त-साधु-शास्त्र विरोधी, नास्तिक , दम्भी, अभिमानी, पर निन्दापरायण लोभी, परछिद्रान्वेषी से दूर रहने से अहंबुद्धि का नाश तथा आन्तरिक शुद्धि होती है ।

स्वच्छ अन्त:करण में महर्षि पतंजलि की बताई हुई चारों वृत्तियाँ रहती हैं अर्थात् ऐसा व्यक्ति मैत्री **करुणा**, मुदिता, एवं उपेक्षा-इन चारों से कार्य लेता है । वह जिस-जिस को सुखी देखता है, उसके प्रति मित्रता का भाव रखता है । किसी को दु:खी देखे तो अपनी करुणा का मृदु-मरहम उसके घावों पर लगाता है यदि पुण्यवान् से मिलता है, तो प्रसन्न होता है और यदि किसी दुष्ट या पापी को देखता है तो वह उसकी उपेक्षा करता है । इस प्रकार दु:ख से त्रस्त मानव के प्रति करुणा के व्यवहार से उसकी स्वार्थपरता दूर होती है । पुण्यवान् को देखकर प्रसन्न होने से गुणों में दोष देखने की गन्दी आदत नष्ट होती है और दुष्ट की तटस्थता से क्रोध, ईर्ष्या, घृणा आदि दोषों से अन्त:करण स्वस्थ बनता है । दैवी सम्पदा वाला पुरुष सबको समभाव से देखता और प्रेम करता है, वह अपने क्रियात्मक जीवन में वास्तविकता को स्थान देता है, जैसा सोचता है वैसा ही करता है । उसके मन, वचन तथा कर्म तीनों का एक रूप होता है ।

## तृतीय सम्पदा-ज्ञानयोगव्यवस्थिति

परमात्मा के स्वरूप को तत्त्व से जानने के लिए सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में, एकी भाव से ध्यान की निरन्तर गाढ़ स्थिति का ही नाम ''ज्ञानयोग व्यवस्थिति'' है । सम्पूर्ण इन्द्रियों का कोलाहल शान्त होने पर वैरागयुक्त पवित्र चित्त से

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



अपने इष्टदेव भगवान् का आह्वान करने पर ध्यानावस्था में भगवान् के दर्शन होते हैं । ध्यानावस्था योग की उच्चतम स्थिति है जिसमें इष्टदेव के साकार रूप का ध्यान करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती प्रत्युत एक अदृष्ट शक्ति ब्रह्मरंध्र द्वारा अन्तःकरण में प्रवेश होने लगती है ।

इस स्थिति के लिये चुपचाप नेत्र मूँद कर सुखासन से बैठ जाइये और मन में अपने इष्टदेव की मानसिक मूर्ती का निर्माण कीजिए । तदन्तर अपने उपस्यदेव की स्तुति प्रार्थना कीजिए इससे आन्तरिक शान्ति, प्रसन्नता, एवं ज्ञान की दीप्ति होगी । शास्त्र तथा महात्माओं के वचनों के आधार पर तथा अपने इष्टदेव के रुचिकर मित्र के आधार पर भी ध्यान हो सकता है ।

जो व्यक्ति परमात्मा के स्वरूप को तत्त्व से जानने के लिए उनके ध्यान रूपी योग में निरन्तर दृढ़तापूर्वक स्थित रहता है उसे संशय के घमण्ड, क्रोध, दिखाऊपन, कठोरता, प्रवंचना का भय नहीं रहता उसे अतिशय भक्ति, प्रेम, सहानुभूति की प्राप्ति होती है । किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान उनकी भक्ति करने से होता है परन्तु इससे पूर्व शास्त्रों एवं महात्माओं के द्वारा उनका, तथा उनके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है । सत्संग, सद्ग्रन्थावलोकन, एकान्तवास, दीर्घकाल साधन, सदासर्वथा साधु व्यवहार तथा अन्ततः पापों से सदा सावधान रहना चाहिए । एकनिष्ठ होकर निरन्तर भगवन्नाम जप, कीर्तन, मनन, ध्यान करने से स्वतः चित्त चंचलता नष्ट हो जाती है और मनकी स्वाभाविक गति आनन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो जारी है ।

## चतुर्थ सम्पदा-सात्त्विक दान

सात्विक प्रवृत्ति वाला आत्मज्ञ सात्विक दान को जीवन में उपयुक्त स्थान देता है । यदि पूछा जाय तो निखिल विश्व की समस्त गतिविधि 'दान' के सतोगुणी नियम के आधार पर चल रही हैं । परमेश्वर ने कुछ ऐसा क्रम रखा है कि 'पहले दो तब मिलेगा' जो कोई भी तत्त्व अपने दान को प्रक्रिया बन्द कर देता है, वही नष्ट हो जाता है, विकृत एवं कुरूप हो जीवन युद्ध में धराशायी हो जाता है । संसार की किसी भी जड़ चेतन यहाँ तक कि मन्द बुद्धि पशु जाति तक देखिए । सर्वत्र दान का अखंड नियम कार्य कर रहा है ।

यदि कुएँ जल दान देना बन्द कर दें, खेत अन्न देना रोक दे, पेड़ फल, पत्तियाँ, छाल देना बन्द कर दें, हवा, जल, धूप, गाय, भैंस इत्यादि पशु अपनी सेवाएँ रोक दें तो समस्त सृष्टि का संचालन बन्द समझिये । माता-पिता बालक के लिए आत्म-दुःख देना बन्द कर दें तो चेतन जीवों का बीज ही मिट जायेगा और सबसे बड़ा दानी परमेश्वर तो हर पल, हर घड़ी हमें कुछ न कुछ प्रदान करता रहता है । उसकी रचना में दान तत्त्व प्रमुख है ।

दान का अभिप्राय क्या है ? वह है संकीर्णता से छुटकारा आत्म संयम का अभ्यास एवं दूसरों की सहायता की भावना की उत्तेजना । दान करते समय हमारे मन में यश प्राप्ति की इच्छा, फल की आशा, या अहंकार की भावना नहीं होनी चाहिए । दान तो स्वयं प्रसन्नता, सुख एवं सन्तोष का दाता है । दान करना स्वयं एक आनन्द है । देते समय जो सन्तोष की उच्च सात्त्विक दृष्टि अन्तःकरण में उठती है वह इतनी महान् है कि कोई भी भौतिक सुख उसकी तुलना नहीं कर सकता ।

पैसा, धन, तथा वस्तुएँ सबके काम में आनी चाहिए । यदि आपके पास व्यर्थ पड़ा है तो उन्हें मुक्त कण्ठ से दूसरे को दीजिए । पैसे की रुपये की बुरी तरह चौकीदारी करने वाला कंजूस दान के स्वर्गीय आत्म-सुख का रसा-स्वादन करने से वंचित रहता है । जो मुक्त हृदय से देता है, वह वास्तविक आत्मवादी है । जो दान करता है, वह मानव के हृदय में रहने वाले एक सात्त्विक प्रवाह की रक्षा करता है, स्वार्थों को मारता है, और तुच्छ संकीर्णता से ऊपर उठता है ।

आत्मा की संकीर्णता छोड़िये । यदि आप दूसरों को देंगे तो परमात्मा आपको और देगा । किन्तु यदि आप कंजूसी करेंगे तो आपको मिलना बन्द हो जायेगा । जो उदार है, दानी है, सत्कर्मों में अपनी सामर्थ्य भर देता है वास्तव में वही बुद्धिमान है तथा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बुद्धिमानों के ही पास दैवी सम्पदाएँ रहती हैं । देश, काल, पात्र का विचार करके केवल कर्त्तव्य बुद्धि से द्रव्य अथवा आवश्यक वस्तु का दान करना श्रेयस्कर है ।

राल्फ वाल्डो ट्राइन नामक पाश्चात्य आध्यात्म वेत्ता ने धन की उपयोगिता का विवेचन करते हुए लिखा है-''जिस मनुष्य ने अपनी सम्पूर्ण आयु धन कमाने में व्यतीत करदी और मरते समय कुछ दान पुण्य किया, उसकी जिन्दगी उत्तम नहीं मध्य श्रेणी की ही कही जायेगी । मैं अपने फटे हुए निकम्मे जूते किसी को दूँ इसमें कोई महत्त्व नहीं है, किसी पैर जलते हुए मनुष्य को नये मजबूत जूते देने में ही परोपकार है । यदि उन जूतों के साथ अपना प्रेम भी उसे दे दूँ,'' उसको भी दूनी चीज मिल जाती है और मुझको भी दूनी आशीष मिल जाती है ।

मनुष्य एकत्रित किए हुए धन की सदुपयोग करने का अच्छे से अच्छा समय तथा मार्ग यही है कि वह अपने जीवन-काल में ही प्रतिदिन उसका परोपकार (दान) में सदुपयोग करे । ऐसा करने से उसका जीवन अधिक उन्नत और विकसित होगा । एक समय ऐसा आवेगा जब धन का ढेर छोड़ कर मर जाने वाले की पीछे से निन्दा होगी । आशय यह है कि परोपकार का पुण्यकार्य भविष्य की पीढ़ियों तथा दृष्टियों को सौंप जाने की अपेक्षा जीते जी अपने हाथ से कर जाने में ही धन का अधिक सदुपयोग होता है ।

सात्विक दान ही परमगति को देने वाला मुक्ति स्वरूप साधन है । दान से त्याग, बलिदान एवं वैराग्य की त्रिविध भवभय नाशिनी अलौकिक सुधा धारा उत्पन्न होकर हमें जगत् का वास्तविक स्वरूप प्रदान करती है । ऐसा दानी भक्त जगत् के समस्त कर्म करते हुए भी अहंकार, स्वार्थ, मोह, माया से मुक्त रहता है । पाप तापों की कोई शक्ति नहीं जो उसे विचलित कर सकें ।

## पाँचवीं सम्पदा-इन्द्रियों का दमन

अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा निषिद्ध विषयों का सेवन न करना और विहित भोगों का भी उचित मात्रा से अधिक सेवन न करना पाँचवी दैवी सम्पदा है । आत्मवादी इस शरीर रूपी रथ में जुते हुए इन्द्रिय रूपी अश्व के लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होने देता । इनको वश में करने की सामर्थ उसके प्रबल मन या बुद्धि में होती है । वह प्रत्येक कार्य के सब पहलू देखकर कार्य में प्रवृत्त होता है । क्षणिक सुख से मत्त होकर प्रलोभन में प्रतिष्ठ नहीं हो जाता । प्रत्युत बलपूर्वक मन को सात्त्विक कार्यों में मोड़ता है ।

इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं-ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ । कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाक यह ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पाँव, वाक्, पायु, तथा उपस्थ कर्मेन्द्रियाँ हैं किन्तु इनमें ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक प्रबल हैं । इनमें से प्रत्येक में आसक्ति द्वारा अत्यन्त भयंकर पतन सम्भव है । विविध विघ्न-वाधा संकुल जगत में वे ही सात्त्विक मुमुक्ष भाग्यशाली हैं जो भाव विचार, बुद्धि वासना की स्फुरणाएँ अपने विवेक द्वारा रोके रहते हैं और उन्हें पथभ्रष्ट नहीं होने देते । विवेक द्वारा विषय का मनन करने से, शास्त्रों के समीचीन अध्ययन, सत्संग, ब्रह्मचर्य, से संसार की रमणीयता थोथी प्रतीत होती है और शुद्ध बुद्धि का प्रकाश होता है और साधक को धन वैभव विद्या बुद्धि, तेज, प्रभाव, गुण-गौरव, बल-रूप यौवन श्री की सारहीनता स्पष्ट हो जाती है ।

इन्द्रियों के दमन में सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन, अध्ययन कीर्तन अत्यन्त महत्त्व का है । सांसारिक विषय, भोग, तामसिक पदार्थों का सेवन,कुतर्क भोग विलास, परनिन्दा, दम्भ, परदोष, श्रवण, अत्यधिक कामना नियमानुवर्तित का अभाव वृत्तियों को अस्थिर एवं चंचल कर देता है और इन्द्रियाँ विषयों की आसक्ति में फँसती हैं । इसके विपरीत जीवनचर्या को सात्त्विक, प्रेम भक्ति से सराबोर रखने से योग आसनों द्वारा व्यायाम, प्राणायाम से समस्त नीच इन्द्रियाँ फीकी पड़ जाती हैं ।

जिस साधक को अपनी आत्मा की अचल, अव्यय, अनन्त शक्ति में दृढ़ विश्वास है, उसकी इन्द्रियाँ बाह्य पदार्थों में नहीं भटकतीं वह दुष्ट स्वार्थों में चित्त की स्थिरता भंग नहीं होने देता । अतः आत्म श्रद्धा जाग्रत कीजिये मन मन्दिर के मालिक बनिए उपद्रवी प्रलोभनों का प्रवेश निषेध कर दीजिए । मनोनियम के पूर्ण ज्ञान से युक्त होने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पर संसार की वासनाओं के हलचल मचा देने वाले झंकारें तुम्हें उद्वेलित नहीं कर सकते ।

## छठी सम्पदा-पूजा एवं अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण

भगवान् के अथवा किसी शास्त्रोक्त देवता के साकार विग्रह की शास्त्रोक्त विधि के अधिकारानुसार पूजा करना तथा अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण करना दैवी सम्पत्ति के शुभ लक्षण हैं । पूजा से यहाँ सुविस्तृत अभिप्राय लेना चाहिए । सम्पूर्ण विश्व में नाना रूपों में भगवान् हमारी पूजा चाहते हैं । आप चाहे जिस स्थिति में हों, निज कर्मों द्वारा भगवान् के किसी अंश की सेवा कर सकते हैं । यदि डाक्टर हैं तो मरीजों में भगवान् का स्वरूप देखिए, यदि अध्यापक हैं तो विद्यार्थियों में भगवान् आप से सेवा चाहते हैं, यदि दुकानदार हैं तो ग्राहकों को परमेश्वर का अंश मानकर कर्मों द्वारा उनकी सेवा कीजिए । आपकी पूजा सद्व्यवहार, सहानुभूति, प्रेम, सच्ची सेवा, आदर बुद्धि, साधु व्यवहार के रूप में होनी चाहिए । सब से विनम्र व्यवहार रहे, मान प्रतिष्ठा की इच्छा न रहे, केवल कर्त्तव्य मान कर आप संसार में भगवान् के इन सगुण-साकार रूपों की पूजा कीजिए ।

गीता में स्वयं भगवान् ने अपने कर्मों द्वारा उन्हें पूजने का निर्देश किया है । सत्कर्म ही श्रेष्ठ पूजा है, विश्वप्रेम भी ईश्वर प्रेम के अन्तर्गत है । कर्मयोगी निरन्तर नि:स्वार्थ सेवा से अपनी चित्त शुद्धि कर लेता है । उसका व्यवहार प्रेमयुक्त मिलनसार, मृदुल होता है । उसमें सहनशीलता, सहानुभूति, विश्वप्रेम, दया और सब में मिल जाने की सामर्थ्य रहती है । देश सेवा, समाज सेवा, दरिद्र सेवा, रोगी सेवा, पितृ सेवा, गुरु सेवा यह सभी कर्मयोग के अन्तर्गत है । उसके समस्त कर्म्म ''ब्रह्मार्पणम्'' होते हैं ।

हमारा कर्म भगवान् की पूजा तभी कहला सकता है, जब उसके दो भाव-प्रधान रूप से हों । प्रथम तो उसमें ममता, आसक्ति एवं फलेच्छा का त्याग होना अनिवार्य है । वह कर्म फल की आशा न रखता हुआ कार्य करे । जैमिनी ऋषि के मतानुसार अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म ही वास्तविक कर्म हैं । निष्काम भाव से किया हुआ कोई भी कर्म कर्म है । श्रीमद्भगवद्गीता का प्रधान उपदेश कर्म में अनासक्ति ही तो है । दूसरी बात यह है कि प्रत्येक कर्म करते हुए हमें इस बात का स्मरण होना चाहिए कि हम इस कर्म के द्वारा भगवान् की पूजा कर रहे हैं, जिन-जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में हम आ रहे हैं, वे भी भगवान् के ही स्वरूप हैं, समस्त जगत् भगवान् के एक अंश में स्थित है, वे ही इस जगत् के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हैं । इस प्रकार के निस्वार्थ कर्मों द्वारा ही पूजा सम्भव है ।

## सातवीं सम्पदा-कीर्तन

वेदशास्त्रों के पठन पूर्वक भगवान् के नाम और गुण का कीर्तन करना सत्पुरुषों का लक्षण है । इसके लिए सर्वप्रथम सन्त महात्माओं तथा महापुरुषों का सत्संग कर भगवान् के विविध नामों का महत्त्व समझना चाहिए, उनके रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, अलौकिक कृत्य तथा नवधा भक्ति का स्वरूप समझना चाहिए । भगवान् के नामों तथा कार्यों का वास्तविक अभिप्राय समझ कर श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक कीर्तन करने से मन आनन्द विमुग्ध हो जाता है, अहह ! उस दैवी आनन्द की तुलना कौन कर सकता है ? शरीर में दैवी रोमांच हो उठते हैं और हृदय में भक्ति की कली प्रस्फुटित हो उठती है । धन्य तो वे साधक हैं जिनका जीवन भगवान् के विविध नामों, रूपों, लीलाओं, प्रेम, धाम और भक्ति-तत्त्व की अमृतमयी वाणियों के कीर्तन में व्यतीत होता है ।

यह कीर्तन भक्ति मनुष्य की सर्वोच्च दैवी सम्पदा है, जीव तथा परमात्मा के सम्मिलन का साधन हैं भगवत् प्राप्ति का सरल द्वार है । ''ब्राह्मण घाती, पितृ घाती, गोघाती, मातृ घाती, गुरु घाती ऐसे पापी तथा चाण्डाल एवं म्लेच्छ जाति वाले अधम व्यक्ति भी इस कीर्तन से शुद्ध हो जाते हैं ।'' प्राचीन शास्त्रों में कीर्तन भक्ति द्वारा अर्थात् भगवान् के नाम तथा दैवी गुणों के कीर्तन से समस्त अध पापों का नाश एवं भगवत् प्राप्ति बतलाई है ।

कीर्तन में श्रद्धा, प्रेम तथा सत्यता आवश्यक तत्त्व हैं । वह दम्भरहित एवं शुद्ध भावना से सम्पन्न होनी चाहिए । श्री जयदयाल गोयन्दका के शब्दों में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कथा व्याख्यानादि के द्वारा भक्तों के सामने भगवान् के प्रेम-प्रभाव का कथन करना, एकान्त अथवा बहुतों के साथ मिल कर भगवान् को सम्मुख समझते हुए उनके नाम, उपांशु, जप एवं ऊँचे स्वर से कीर्तन करना भगवान् के गुण प्रभाव और चरित्र आदि का श्रद्धा और प्रेम पूर्वक धीरे-धीरे या जोर से खड़े या बैठे रहकर वाद्य या नृत्य साहित्य अथवा बिना वाद्य नृत्य उच्चारण करना तथा दिव्य स्तोत्र एवं पदों के द्वारा भगवान् की स्तुति प्रार्थना यही उत्तम भक्ति को प्राप्त करने का प्रकार है ।''

दैवी सम्पदा एकत्रित करने के इच्छुक को सायं प्रातः अनन्य भाव से प्रेम पूर्वक कीर्तन करना चाहिए, आत्मा को भगवत् प्रेम में इतना तन्मय कर देना चाहिए कि ब्रह्म से तदात्म्य स्थापित हो जाय ।

## आठवीं सम्पदा-स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन

यथार्थ साधक भगवान् बुद्ध की भाँति स्वधर्म पालन के लिए कहता है, इस आसन पर मेरा शरीर सूख जाय माँस त्वचा, अस्थि, नष्ट हो जायँ किन्तु बहु कल्प दुर्लभ बोध प्राप्त किए बिना इस आसन से न उठूँगा । ऐसा साधक स्वधर्म पालन के लिए आने वाली प्रत्येक कठिनाई को धूल के समान समझता है । प्रतिघात एवं प्रतिकूलता उसके संकल्प को करने के स्थान पर नव प्रेरणा प्रदान करते हैं । भयंकर आँधी-तूफान में भी वह कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ता से अग्रसर होता है और अपनी इच्छित वस्तु को ध्रुव की भाँति सदा समान रख कर साधना में आत्म-शक्ति का प्रयोग करता है । उसकी साधना पुरुषार्थ एवं दैवबल के सम्मिलन से अपूर्व दिव्यता का आविर्भाव होता है ।

आपत्तियाँ स्वयं उससे डरती हैं । आपत्तियाँ तो उन पर आती हैं जो आपत्तियों से डरते हैं । जो विपत्ति से घबराता नहीं, वरन् उसका मुकाबला करने को सदैव प्रस्तुत रहता है वे उसके पास फटकती ही नहीं । अन्य व्यक्ति भले ही समझते रहें कि उस पर आपत्ति आई हुई है किन्तु वह इतना दृढ़ एवं आत्म-संयमी होता है कि उस स्थिति में भी अन्तःकरण की शान्ति को भंग नहीं होने देता । जो सौभाग्य में खुशी से नहीं नाचते वे दुर्भाग्य के समय रोते भी नहीं हैं । दैवी सम्पदा युक्त व्यक्ति समझता है कि कठिनाइयाँ प्रतिकूलता साधना के व्यायाम हैं जिनका निर्माण इस उद्देश्य से किया गया है कि साधक की आत्म-शक्ति, दृढ़-विश्वास, तथा अटल संकल्प की परीक्षा हो सके ।

आत्मवादी कष्ट को देख कर डरता था पथच्युत नहीं होता, उसके मुख मण्डल पर चिंता या विषाद की लकीरें नहीं दीखती वरन् स्वधर्म पालन में ही उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है । जब दुःख उसके सामने आते हैं तो वह मुसकराते हुए साहस के साथ कहता है-

ऐ मेरे आने वाले दुःखों ! आओ ! ऐ मेरे बालकों चले आओ ! अपनी भूलों द्वारा मैंने ही तुम्हें उत्पन्न किया है, मैं ही तुम्हें छाती से लगाऊँगा दुराचारिणी वेश्या की तरह तुम्हें ''जार पुत्र'' समझ कर छिपाना या भगाना नहीं चाहता, तुम सती साध्वी के धर्मपुत्र की तरह आओ । मेरे आँचल में क्रीड़ा करो । मैं कायर नहीं हूँ जो तुम्हें देख कर रोऊँ । मैं नपुंसक नहीं हूँ जो तुम्हारा भार उठाने से गिड़गिड़ाऊँ । मैं मिथ्याचारी नहीं हूँ जो अपने किए कर्म का फल भोगने से मुँह छिपाता फिरूँ । ऐ कष्टो ! मैं तुम्हें देखकर घबराता नहीं, डरता नहीं । तुमने बचने के लिए किसी की सहायता नहीं चाहता वरन् एक कर्त्तव्य निष्ठ बहादुर साधक की भाँति तुम्हें स्वीकार करता हूँ ।''

पुण्यभूमि भारत के राजर्षियों के स्वधर्म पालन, उनके दृढ़ संकल्प, निष्ठा एवं दृढ़ता को कौन नहीं जानता ? ज्ञान एवं धर्म के निमित्त इन्होंने दीर्घकाल साधन का आश्रय ग्रहण किया । महर्षि पतंजल ने कहा है-''सतु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेबितो दृढ़भूमिः ।'' अभ्यास जब दीर्घकाल तर निरन्तर सद्संकल्प के साथ किया जाता है तभी स्वधर्म पालन उचित रीति से हो पाता है । राजर्षि विश्वामित्र, राजर्षि जनक, प्रहलाद, ध्रुव इत्यादि के कष्ट किससे छिपे हैं ? ज्ञान, सत्य, धर्म, तथा प्रण की रक्षा के लिए इन्होंने कठोर परिस्थितियों का सामना किया और अन्त में अपने धर्म पालन में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सफल हुए । राजर्षि विश्वामित्र की कठोर तपश्चर्या तो आज भी रोमान्चित करने वाली है ।

जिस मनुष्य ने स्वधर्म पालन को ही अपना मूल मन्त्र बना लिया है, वह सदा सुखी और आनन्दित रहेगा । उसके विचारों में दृढ़ता, संकल्प में निष्ठा एवं भावनाओं में पवित्रता होगी । मनुष्य अपने विचारों का ही फल है । जो स्वधर्म का ही विचार करता है, वह अपने मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की मानसिक लीक बनाता है । वह अपने कर्त्तव्यों में उत्साह पूर्वक संलग्न रहता है । ये विचार शीघ्र ही उसके **बाह्य** जीवन में उत्तम अवस्थाओं के रूप में प्रकट होते हैं ।

जिस मनुष्य को यह आत्मिक गुण-स्वधर्म पालन में दृढ़ता वर्तमान है, वह इन्द्रियों को भी वश में कर सकता है । यह गुण मन को साधते और शिक्षित करने के लिए सर्वोत्तम है । इसी से आत्मवादी बलवान एवं स्वावलम्बी बनता है । यह आत्मा में स्थित होने का फल है । जो आत्मा में स्थित है, वह प्रकृति में स्थित है । उसके लिए न आन्तरिक द्वन्द है, न **बाह्य** प्रतिकूलता । सारे द्वन्द्व निम्न भूमिका में हैं ।

## नवीं सम्पदा-अन्तःकरण की सरलता

अन्तःकरण की सरलता से अभिप्राय है छल द्वेष, प्रपन्च दुरभि संधि से मुक्ति, निःस्वार्थ भाव तथा शुद्ध हृदय से पीड़ित जनता की सेवा, आत्मा का प्रकृति एवं मनुष्यों के साथ स्वच्छन्द सम्पर्क निःसंकोच, निर्भय व्यवहार । सरलता एक सामाजिक अंग है । हैवलाक एलिस ने अपने ''अफरमेशन्स'' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर कहा है कि सन्त फ्रान्सिस ने इसलिए जानबूझ कर दरिद्रता और सरलता अँगीकार की थी कि जिसमें प्रकृति और मनुष्यों के साथ हमारा अवाध्य सम्पर्क स्थापित हो सके । सरलता के सम्बन्ध में आपने कहा है ।

''फ्रान्सिस की आत्मा कहती थी कि जब व्यक्ति की आत्मा का प्रकृति और मनुष्यों के साथ बिल्कुल स्वच्छन्द रूप से सम्पर्क स्थापित होता है, तब उसे बहुत अधिक आनन्द और स्वतन्त्रता का अनुभव होता है । बिल्कुल सीदी-साधी तथा मामूली बातों से ही हमारा जीवन ''वास्तविक'' (Real) बनता है । प्रकृति तथा मनुष्य के साथ इस प्रकार की एकता का आजकल के शिल्प तथा व्यापार आदि में फँसे हुए समाज का आजकल के शिल्प तथा व्यापार आदि में फँसे हुए समाज का बहुत अधिक अभाव देखने में आता है तथा समाज के व्यक्तिगत सदस्यों को इस प्रकार की एकता की बहुत अधिक कामना रहती है । जब कभी लोगों को काम-धन्धे आदि की छुट्टी मिलती है, तब वे छूटते ही देहात या समुद्र तट आदि की ओर दौड़ पड़ते हैं । इसी से सिद्ध होता है कि वे प्रकृति और मनुष्यों के साथ एकता स्थापित करने और उनके सम्पर्क में रहने को अतीव उत्सुक रहते हैं, किन्तु आजकल सब जगह प्रायः यही देखने में आता है कि मनुष्यों में पारस्परिक एकता और मेल-जोल का बहुत अभाव है ।''

एकता के अभाव का कारण है हमारा शक्की मिजाज, छल दूसरे को धोखा देकर अपना काम बना लेने की प्रवृत्ति । यदि हम मनुष्य को मनुष्य समझने लग जाय मन का संचित, मल, ईर्ष्या, असन्तोष कटुता या घृणा निकाल दें तो परिणाम स्वरूप मनुष्यत्व के इतने निकट आ जायँ कि हर एक मनुष्य अपने को दूसरे का भाई समझने लगे । यह एक ही कुटुम्ब का सम्बन्धी अपने को मानने लगे, शान्ति प्रेम सहानुभूति सौन्दर्य मृदुता की धारा प्रवाहित हो उठे । सरलता के अभाव में हमने अपने बीच में जो स्वार्थ की दीवार खड़ी करली है, वह टूट जाय । गरीब एवं अमीर अपने विचारों, अनुभूतियों एवं भावनाओं में सतयुगी बन जायँ ।

जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास रखते हैं उनके लिए तो अन्तःकरण की सरलता की नितान्त आवश्यकता है । दैनिक व्यवहार में भी यदि किसी व्यक्ति को दूसरे का भय लगा रहेगा, वह शान्तिपूर्ण न रह सकेगा । तब तक सरलता पूर्वक व्यवहार करने का अभ्यस्त न होगा, जब तक दूसरों के मन में उसकी शुद्ध-हृदयता और स्वार्थ त्याग की पूर्णता के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत सन्देह बना रहेगा और जब अहिंसा पूर्ण प्रतिरोध का समय आवेगा, तब यह सन्देह उसके विनम्र प्रतिरोध और स्वेच्छा जन्य कष्ट सहन के मार्ग में बाधक होगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सभी धर्मों में अन्त:करण की सरलता पर जोर डाला गया है । हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म तथा ईसाई मतों ने इसको विशिष्ठ महत्त्व प्रदान किया है । सरलता कोमल हृदयता की जननी है । शुद्ध हृदयता, साहस, निष्ठा, मेल-मिलाप की प्रवृत्ति, आज्ञाकारिता, आत्म त्याग और संयम सब गुण अन्त:करण की सरलता में सम्मिलित हैं । सरलता एक प्रकार का मानसिक स्वास्थ्य भी है । जिस अन्त:करण में द्वेष प्रपन्च, डर शंका इत्यादि घुस जाते हैं, वह मानसिक रोगों से युक्त होता है, स्थान-स्थान पर भयंकर गलतियाँ करता है, पग-पग पर अपमानित होता है, स्नायविक रोगों का शिकार बनता है, मन, कल्पना , वासना के उत्पीड़न एवं संघर्षों से कुण्ठित हो जाता है अनुभूति की शक्ति मन्द पड़ जाती है । स्वास्थ्य पर इसका बड़ी दुष्प्रभाव पड़ता है । वही मनुष्य जब अन्त:करण के मल धो डालता है तो इसकी गलत फहमियाँ दूर हो जाती हैं, बुद्धि आत्मा, मन एवं आन्तरिक दृष्टि स्वच्छ हो जाती है ।

## दसवीं सम्पदा-अहिंसा

अहिंसा से अभिप्राय है-मन:, वाणी, शरीर से किसी को किसी प्रकार का भी कष्ट न देना । किसी को अपशब्द कह कर दु:खी कर देना भी उतना ही घातक है, जितना किसी का अपने शरीर से मारना, आघात करना या पीट देना । दैवी सम्पदा युक्त साधक का व्यवहार इतना मृदुल, सहानुभूतिपूर्ण एवं प्रेमपूर्ण होता है कि शस्त्रों में वर्णित तीनों प्रकार के पापों (१) कायिक अर्थात् शरीर से होने वाले, (२) वाचिक अर्थात् वाणी से होने वाले तथा (३) मानसिक अर्थात् दुर्विचार से होने वाले-से वह सर्वदा मुक्त रहता है । मन की प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवद् चिन्तन करने के स्वभाव के कारण वह अनिष्ट चिन्तन से दूर रहता है ।

इस संसार में जो पापों की वृद्धि हो रही है । झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार एवं अनाचार बढ़ रहे हैं, राष्ट्रों में परस्पर विद्वेष एवं कलह की वृद्धि रही है, निर्बलों का शोषण तथा सद्जनों का तिरस्कार हो रहा है, यह वास्तव में हिंसा के ही फलस्वरूप है । ज्यों-ज्यों मनुष्य अपने हिंसक स्वभाव को वश में करता है, त्यों-त्यों उसमें परमात्मा के दैवी गुणों का विकास होता है । ऐसे साधक में धैर्य, क्षमा, दया, त्याग, शान्ति प्रेम, ज्ञान निर्भयता, वत्सलता, सरलता, कोमलता, मधुरता, सुहृदयता आदि गुणों का पार नहीं रहता हिंसा की प्रवृत्ति आत्मिक विकास में बड़ी बाधक है ।

अहिंसा को अत्यन्त व्यापक अर्थ में लेना चाहिए । व्यंग-कटाक्ष के वचन, अनाप-शनाप बकना, द्वेषपूर्ण वाक्य झूठ कपट का व्यवहार भी हिंसा के अन्तर्गत आता है । परदोष दर्शन, दूसरों की आलोचना, साम्यदायिकता से भी मन में कुसंस्कार जाग्रत होते हैं ।

स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के हित के लिए प्रयत्नशील होना, प्रेम द्वारा दूसरों का अपना बना लेना, आत्म-भाव का विस्तार करना, इन्द्रियों के व्यापार में निरत न होना, प्रत्युत दूसरों के लिए कष्ट सहना तक अहिंसा में सम्मिलित है । अहिंसा के लिए एक सुगठित शरीर तथा दृढ़ आत्मा की आवश्यकता है । शास्त्रविहित स्वाभाविक कर्मों द्वारा जो अनिवार्य हिंसादि दोष हुआ करते हैं वे दुराचार नहीं हैं (गीता १८/४८) एवं ऐसे हिंसादि दोष फलेच्छा, राग-द्वेष और अहंकार रहित मनुष्य को दूषित नहीं कर सकते (गीता १८/१७) ।

## ग्यारहवीं सम्पदा-प्रिय शब्दावलि एवं मधुर भाषण

अन्त:करण एवं इन्द्रियों द्वारा जैसा मन में विश्वास किया हो, ठीक वैसा ही प्रिय शब्दों में कहना ग्यारहवीं दैवी सम्पदा है । इस तत्त्व के अन्तर्गत दो बातें आती हैं । (१) शुभ चिन्तन शुद्ध सात्त्विक विचार दूसरों की भलाई सोचना (२) सोचे हुए को प्रिय एवं मधुर शब्दों में व्यक्त करना । मधुर भाषण का प्रभाव अत्यन्त गहन होता है । इसी से कहा गया है-''वशीकरण एक मन्त्र है-तज दे वचन कठोर'' प्रिय शब्दावलि से शत्रु भी परास्त हो जाते हैं । यह वाक् इन्द्रियों का दैवी आभूषण है ।

वाक् कर्मेन्द्रिय है जिसकी साधना द्वारा मनुष्य सद्गति प्राप्त कर सकता है । वाक् साधना कैसे हो

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सकती है ? इस साधना का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य यह निश्चय करे कि सदा सर्वदा मीठी बात बोलूँगा, कम बोलूँगा, सब कुछ मधुरता की मिश्री से युक्त कहूँगा । कड़वी बात से जो भयंकर प्रभाव पड़ता है, सर्वविदित है । किसी से कटु अप्रिय, अभद्र शब्द न बोलिये, अपने से छोटों, नौकरों, बालकों यहाँ तक कि जानवरों तक को अपशब्द द्वारा न पुकारिये ।

भोजन के छहों रस में मधुर रस अग्रणी है । शिशु से लेकर वृद्ध तथा नारी-सम्पूर्ण जगत मीठे वचन को पसन्द करते हैं । मधुरता से मनुष्य क्या देवता भी प्रसन्न हो जाते है यही कारण है कि हवन यज्ञों में मीठे का भाग अवश्य होता है, ब्रह्म भोज में मीठे की प्रधानता होती है । संसार में सबसे अधिक मीठी वस्तु मीठी बोली है । मधुर भाषण जैसी मिठास भला और कहाँ प्राप्त हो सकती है । रहीमजी ने निर्देश किया है ।

**''कागा काको धन हरे, कोयल काको देय ।**
**मीठे वचन सुनाय कर, जग अपना कर लेय ।। ''**

हरिण मधुर शब्दों को सुनकर भागना भूल जाते हैं, मधुर बीन सुनकर विषधर सर्प बिले से बाहर निकल आते हैं । एक विद्वान का कथन है कि- ''प्रिय भाषण में वशीकरण की महान् शक्ति है । इससे पराये भी अपने हो जाते हैं । सर्वत्र मित्र ही मित्र दृष्टिगोचर होते हैं । मधुर भाषण एक दैवी वरदान है, मोहन:शस्त्रों में इस सर्व शिरोमणि कह सकते हैं ।

सत्य भाषण, हितकर भाषण, प्रिय भाषण एवं माधुर्य रस से ओतप्रोत भाषण वाणी की सिद्धियाँ हैं । यह आत्म संयम, स्वार्थ त्याग एवं प्रेम भावना से आती हैं । जिसके मन, वचन, कर्म में दूसरों के प्रति मधुर भाव हैं, उसे वशीकरण विद्या का पूर्णज्ञाता समझिये । जड़ चेतन सभी उसके वश में हैं मुट्ठी में हैं।

मधुर बोलिए, और उसके मीठे फल आपको मिलेंगे । मधुर भाषण करने वाले की जिह्वा पर साक्षात् सिद्धियाँ निवास करती हैं । अन्त:करण एवं इन्द्रियों के द्वारा जैसा निश्चय किया हो ठीक वैसा ही हमें नित्य प्रति के व्यवहार दैविक वार्तालाप तथा आचरण में लाना चाहिए । यह दैवी सम्पत्ति का लक्षण है । शास्त्रकारों का वचन है-''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्त् ब्रूयात्सत्यमप्रियम्'' अर्थात् ''सत्य बोलो और मधुर बोलो । कटु:सत्य मत बोलो । दैवी वाणी का मूल अन्त:करण का औदार्य्य, प्रेम, प्राणिमात्र में मित्र बुद्धि (या आत्मबुद्धि) उत्पन्न करता है । दैवी वाणी निंदा, परदोषदर्शन, आलोचना, छिद्रान्वेषण खरीखोटी, नीचता, असूया, ईर्ष्या आदि से बहुत दूर रहती है । उसका प्रमुख उद्देश्य दूसरों के सद्गुणों, उच्च भावनाओं, सद्विचारों को प्रकट करना है । दैवी वाणी से आयु में वृद्धि होती है ।

दैवी वाणी, मधुर वाणी का ही नित्य प्रति के व्यवहार में उच्चारण कीजिए और उसके मीठे फल चखिये, दूसरे के सद्गुण ही निरखिये, प्रेम, सहानुभूति, भ्रातृभाव, सत्य, हितैषी बातों को कोमल एवं मधुर वाणी से कहिए । आप जितना ही प्रिय भाषण का उच्चारण एवं श्रवण करेंगे, उतनी ही शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति होगी । इसके विपरीत खोटा वचन खोटे रुपये के सदृश है । जिसको तुम दोगे, वही लौटा देगा । मीठी वाणी ही आनन्ददायक है । उसी में माधुर्य है ।

## बारहवीं सम्पदा-अक्रोध

मनुस्मृति जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ में मनु जी ने धर्म के दस लक्षणों की ओर इस प्रकार संकेत किया है-

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम् ।।**

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, पवित्रता (बाह्य एवं आन्तरिक ) इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, आध्यात्म विद्या, सत्य तथा अक्रोध-ये मानव धर्म के दस प्रधान लक्षण हैं । दैवी सम्पदाओं के अन्तर्गत अन्तिम अंग ''अक्रोध'' है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

क्रोध करना प्रत्येक दृष्टि से हेय है । इससे मन में भयंकर उद्वेग, थरथराहट, कम्पन, जलन, दूषित संस्कार उत्पन्न होते हैं जो अन्तःकरण की शान्ति को भंग कर देते हैं, मन की समस्वरता, संतुलन, एवं शान्त प्रकृति नष्ट हो जाती है, बुद्धि पर एक प्रकार का पर्दा सा छा जाता है, सामाजिक कलह की नींव पड़ती है, पारस्परिक सम्बन्धों में भय एवं घृणा की वृद्धि होती है, सब असन्तोष एवं अनिष्ट की अग्नि में जलने लगते हैं, भूल पर भूल होती हैं, मनुष्य की मनोवृत्ति कुछ की कुछ हो जाती हैं । क्रोध एक प्रकार का पागलपन है जिससे सद्संकल्पों का विनाश होता है, मनुष्य बड़े से बड़ा अन्याय करते नहीं हिचकता, द्वेष, क्रोध के रूप में परिणत होकर न्यायान्याय की वृत्ति को पंगु कर देता है और हम कुछ ऐसी बात कर बैठते हैं जो हमारे भविष्य के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होती है । दैवी उन्नति के पथ पर आरूढ़ व्यक्ति के लिए क्रोध साक्षात् विष तुल्य है ।

क्रोध एक प्रकार की मानसिक एवं स्नायविक दुर्बलता का प्रतीक है । दृढ़ संकल्प एवं स्थिर मानसिक शक्ति वाले पुरुष क्रोध के दुःखदायी संस्कारों से मुक्त रहते हैं । क्रोध द्वारा सर्वप्रथम तो उस व्यक्ति को ही क्षोभ पहुँचता है, जो क्रोध करता है, तत्पश्चात् प्रकट होने पर यह चारों ओर क्षोभ का वातावरण उत्पन्न करता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति आन्तरिक दुःख से व्याकुल हो जाता है । क्रोधी अपने हाथ से शिष्टता, माधुर्य, एवं गौरव खो बैठता है । क्रोधी से न्याय की आशा करना मूर्खता है । वह तो अन्याय की दुःखमय मानसिक स्थिति में निवास करता है ।

दैवी सम्पदा से तेजवान् पुरुष अपने शत्रु पर भी क्रोध नहीं करता । सद्भावना, सद्विचार, सद्-इच्छा की प्रकृति उसकी स्थायी मानसिक अवस्था होती है । सद्भावना द्वारा वह सभी पर एक दैवी प्रभाव डाला करता है ।

क्रोध का शारीरिक परिवर्तन से गहन सम्बन्ध है । क्रोध, भय या द्वेष के आवेग में मुँह में पीछे से कैसा कड़ुवा स्वाद आता है, इसका तुमने स्वयं अनुभव किया होगा । यह भयंकर विष होता है, जो जीवन-शक्ति का ह्रास करता है । क्रोध युक्त माता के दुग्धपान से शिशु को ज्वर, अपच, एवं अन्य व्याधियों तक होती देखी गईं हैं । क्रोध, बेचैनी, चिन्ता इत्यादि का भयंकर तथा विषमय प्रभाव ज्ञान तन्तुओं पर पड़ता है । परिणामस्वरूप शरीर में गड़बड़ एवं कष्ट उत्पन्न होते हैं ।

अक्रोध अर्थात् शान्त चित्त वृत्ति ही दैवी पुरुष का लक्षण है । जिस मन में उद्वेग, चिन्ता, घबराहट नहीं है, सब वृत्तियाँ शान्त स्वरूप भगवान् पर एकाग्र हैं जो पूर्ण निर्विकार निर्दोष आत्मा में स्थिर है, जो सब को प्रेम करता है और शत्रु तक के लिए मन में क्रोध, ईर्ष्या, असूया के बुरे भाव नहीं लाता, ऐसी हितैषी वृत्ति को शान्त प्रकृति कहते हैं । दैवी पुरुष के विमल अन्तःकरण में प्रसन्नता, आनन्द एवं हित के विचार ही अखण्ड जाग्रत रहते हैं । वही उसकी स्थायी वृत्तियाँ हैं ।

## तेरहवीं सम्पदा-कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग

"हमारे पुरुषार्थ से यह महान् कार्य सम्पन्न हुआ है, यदि हम इसमें पुण्य संयोग प्रदान न करते तो यह कदापि पूर्ण न होता, अधूरा रह जाता । अन्य किसी में इस कार्य को पूरा करने की शक्ति नहीं है । अतः हमें मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं अर्थ प्राप्ति होनी चाहिए ।" ऐसी विचारधारा से बड़ा उत्पात होता है और कर्ममार्गी साधक राग द्वेष के वशीभूत होकर पतित हो जाता है । दैवी पुरुष को तो निस्वार्थ एवं निष्काम भाव से लोकहित के ही कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए । भगवान् के निष्कामी भक्त ही महान् कार्य करने में समर्थ हुए हैं ।

सत् पुरुष अपने कर्मों की सफलता का श्रेय भगवान् को देता है । उसकी क्रिया एवं कर्म अहंकार प्रेरित न होकर प्रभु प्रेरित हुआ करते हैं । वह अपने आप को प्रभु के हाथों में एक औजार (Instrument) मात्र मानता है । वह यह समझता है कि मेरे कर्मों की बागडोर तो मेरे प्रभु के कर कमलों में है । उन्हीं के द्वारा समस्त कार्य सम्पन्न होता है । मैं तो केवल उनके हाथ में एक मन्त्र हूँ । जब उसके द्वारा कोई महान् कार्य सम्पन्न होता है

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


तो वह यही समझता है कि यह सब तो प्रभु के प्रताप से हुआ है, मैं तो एक निमित्त मात्र हूँ ।

''मैं तो एक निमित्त मात्र हूँ ।'' ऐसा सोचकर दैव पुरुष किसी से द्वेष या घृणा नहीं करता प्रत्युत अपने अन्त:करण की पवित्रता, शान्ति, शीलता, समता, श्रद्धा, दया, इत्यादि भावों के कारण सर्वत्र सुहृदयता की वर्षा करता है । वह अपने हृदय से वक्रता और ऐंठ को खोद-खोद कर उन्मूलन कर डालता है । विनय उसका आभूषण बन जाता है । नम्र बन जाने के कारण परमात्मा निरन्तर उसे दैवी शक्ति से उत्साहित किया करते हैं ।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, तथा कार्यों में अभिमान प्राप्त करने की इच्छा खाज की भाँति बड़ा सुहावना रोग है । इसके वश में हो जाने पर मनुष्य सत् कर्मों तक को अभिमान की अग्नि से भस्म कर देता है, प्रमादी बन जाता है अपने भाग्य पर इतराता है और आत्मा का पतन करता है अभिमान बड़ी संक्रामक बीमारी है, जो मनुष्य को अधोगति में पहुँचा सकती है ।

## चौदहवीं सम्पदा-अन्त:करण की उपरामता

''उपरामता'' से अभिप्राय है कि दैवी पुरुष में चित्त की चंचलता का सर्वथा अभाव रहे । चित्त की चंचलता जगत् प्रसिद्ध है । श्री भगवान् स्वयं कहते हैं-

**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।**
**वश्यात्मना तुयतता श क्योऽवाप्तु मुपायतः ।।**

*-गीता ६-३-६*

अर्थात् जिनका मन वश में नहीं है, उनके लिए योग को प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है किन्तु मन को वश में करने वाले प्रयत्नशील पुरुष साधन द्वारा ''योग प्राप्त कर सकते हैं ।'' इसमें सन्देह नहीं कि चंचल चित्त का निग्रह अत्यन्त कठिन है अर्जुन प्रभृति महान पुरुषों के सन्मुख भी मनोनिग्रह की सीढ़ी पर सब से अधिक कठिनाई पड़ी थी किन्तु बिना इसके दु:खों की निवृत्ति एवं अन्त:करण की शान्ति भी तो सम्भव नहीं है ''मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्ष्यो:'' मनही जगत के बन्धन और मोक्ष का प्रधान कारण है ।

दैवी सम्पदा से युक्त पुरुष के हृदय में वासनाएँ अनन्त इच्छाएँ एवं सांसारिक कामनाएँ इधर-उधर दौड़ नहीं मचातीं मन अप्रिय विषयों में नहीं भटकता उद्देश्य रहित होकर निष्प्रयोजन वस्तुओं में नहीं लगता या एक के पश्चात् दूसरी वस्तु पर नहीं जमता । उसके अन्त:करण प्रदेश में तो एकाग्रता शक्ति एवं आनन्द का साम्राज्य रहता है । वह अपने जीवन के प्रकाशमय, आनन्द एवं प्रेममय पहलुओं पर ही अध्यात्मिक नेत्र एकाग्र करता है । उसका अन्तर्प्रदेश विशेष रहित शक्ति तथा क्षोभ रहित होता है । उसके चित्त की स्थिति आत्मा के आनन्द के कारण स्थायी रहती है ।

चित्त की चंचलता से साधारण मनुष्य क्षुद्रादि क्षुद्र तुच्छ बातों से उद्विग्न हो जाया करता है, उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, वह जरा - जरासी बात पर बिगड़ता है, स्नायविक दुर्बलता के उसके ज्ञानतन्तु कम्याधमान रहते हैं, चंचलता एवं उद्विग्मता से उसकी मन शक्ति का भयानक ह्रास होता है । सम्पूर्ण दिन वह कुछ न कुछ कार्य की चेष्टाएँ किया करता है । इसका जीवन प्रतिकूल एवं प्रतिघात क्षणिक मनावेगों, एवं मनोविकारों के संघर्ष का जीवन है, अनिष्ट की आशंका, फजूल की हाय-हाय, मृत्यु का भय, दरिद्रता रोग, संशय, आत्मघाती विचार उसकी आन्तरिक स्थिति को क्षत-विक्षत किया करते हैं ।

अन्त:करण की उपरमिता प्राप्त करने के क्या साधन हैं ? इसके लिए स्वयं भगवान् ने दो उपाय बताये हैं । प्रथम है अभ्यास बार-बार मन को दुश्चिन्ताओं से मोड़ कर एक प्रधान आत्म तत्त्व पर एकाग्र करना चाहिए । पहिले-पहल तो रोकने से मन पुन:-पुन: रोग, वासना तथा सांसारिक सौन्दर्य में उलझेगा, किन्तु दीर्घकाल के अभ्यास से यह उछल-कूद शान्त हो जायगी । दूसरा साधन है- वैराग्य । सांसारिक पदार्थों का अस्थिर अनित्य स्वरूप समझ में आने से जब जीव सर्वथा वितृष्ण हो जाता है तब सद्विवेक के नेत्र उन्मीलित होते हैं । विषयों में से सौन्दर्य हटकर हम उसके उद्गम स्थान-आत्म-सौन्दर्य पर आ जाते हैं । माया-

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मरीचिका से वितृष्ण होते ही वैराग्य के ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं और सम्पूर्ण अविद्या दूर हो जाती है ।

मन को वश में करने के लिए नित्य नियम से रहना, नियमित दिनचर्या बना कर नियमानुवर्तिता का पालन करना चाहिए । प्रतिदिन सायंकाल सोते समय सम्पूर्ण दिन के शुभ-अशुभ कृत्यों पर मनन करना चाहिए । सात्त्विक कार्यों के लिए मन को प्रोत्साहन एवं दुष्कार्यों के लिए ताड़ना देनी चाहिए । मन के कार्यों एवं विचारों के ऊपर तीखी दृष्टि रखनी चाहिए और दृढ़ता से पछाड़ना चाहिए । बुरे कार्यों, दृश्यों, विचारों, निंद्य चिन्तन से बलपूर्वक हटाकर उसे सत्कार्यों में, भव्य मंगलकारी बातों में संलग्न रखना चाहिए । गीता में एकाग्रता के लिए भगवान् ने निर्देश किया है-

**शनैः शनैरूपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया ।**
**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचदपि चिन्तयेत् ।।**

अर्थात् क्रमशः (मन को स्थिर एवं एकाग्र करने का ) अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो, धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में प्रवेश न करने दे । अतः जहाँ-जहाँ भाग कर यह चंचल मन जाय वहाँ से हटाकर परमेश्वर की कल्पना-प्रसूत मूर्ति में ध्यानावस्थित करना चाहिए, योगदर्शन में वर्णित मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा का अभ्यास करना चाहिए, समाधि एवं प्राणायाम आदि से चित्त स्थिर होता है । इसके अतिरिक्त एकाग्रचित्त होकर श्वांस के द्वारा भगवान् के नाम का जप करना, संसार के व्यतिक्रम तथा प्रपंच से चित्त वृत्ति को हटाकर आनन्दकन्द सत् चित् आनन्द स्वरूप परमात्मा में लगाना मन के संयम का अत्यन्त उत्तम साधन है ।

वृत्ति चांचल्य से मुक्ति एवं चित्त वृत्ति को अन्तर्मुख करने के लिए मन से पृथक् होकर, उसके कार्यों को देखना चाहिए और विकारमय स्वार्थी विचारों को अन्तःकरण में प्रवेश होने से रोकना चाहिए, वासनाओं की ऊहापोह से बचाना चाहिए और एक चौकीदार की भाँति उपद्रवी विचार, भय, शोक, पश्चाताप, मनोविकार, प्रलोभनों का प्रवेश निषिद्ध कर देना चाहिए । ईश्वर-शरणागति, भगवन्नाम का प्रेमपूर्वक कीर्तन मन को जीतने का सहज उपाय भक्तों के हाथ में है । ऐसे आत्म-श्रद्धा सम्पन्न पुरुष बाह्य संसार की हलचलों से प्रभावित नहीं होते ।

वही पुरुष चांचल्य से मुक्त है जो सच्चिदानन्द घन परमात्मा में एकी भाव से स्थित है और जो समष्टि बुद्धि के द्वारा इस सम्पूर्ण दृश्यवर्ग को अपने उस अनन्त निराकार चेतन स्वरूप के अन्तर्गत उसी के संकल्प के आधार पर क्षण भंगुर देखता है । इस प्रकार का अभ्यास करते हुए मनुष्य अपने को ही सब जीवों में आत्मरूप से देखता है । सांसारिक मनुष्यों से सर्व पदार्थों और कर्मों से वैराग्य और उपरामता, निरन्तर विज्ञानानन्द घन ब्रह्म के स्वरूप स्थित रहना-उसके मन का स्वाभाविक धर्म सा हो जाता है ।

## पन्द्रहवीं सम्पदा-निन्दा चुगली इत्यादि न करना

साधन में निन्दा तथा दूसरे की चुगली खाना बड़ा भारी विघ्न है । ऐसा व्यक्ति चुपके-चुपके दूसरे के दोषों, कमियों एवं न्यूनताओं का प्रदर्शन करता फिरता है । वह प्रायः सन्त-साधु-शास्त्र विरोधी होता है, दम्भ, अभिमान, परनिन्दा, परछिद्रान्वेषण के कारण उसका अन्तःकरण काला हो जाता है । सर्वत्र बुराई ही बुराई दृष्टिगोचर होती है, विचार एवं वातावरण तमोगुणी रहता है, प्रमाद के कारण आत्मा के सद्गुणों का ह्रास होने लगता है । जिस प्रकार एक छोटे से पत्थर से सम्पूर्ण सागर में कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं, वैसे ही निन्दा या चुगली के छोटे-छोटे विचार तरंग की भाँति अन्तःकरण के रंग रेशे में व्याप्त हो जाते हैं । ऐसे कुप्रवृत्तियों, आसुरी विचारों दुर्भावों से हृदय में संघर्ष मचा रहता है ।

दोष देखने वाली दृष्टि हमारे व्यक्तित्व में उन दोषों की वृद्धि करती हैं, जिन्हें हम निरन्तर देखने के अभ्यस्त बन जाते हैं । ऐसे व्यक्ति का मन सदैव पाप, दुष्कर्मों तथा दूसरों की दुर्बलताओं में लगा रहता है वह दूसरों से प्रत्यक्ष में तो डरता है, किन्तु उनकी निन्दा चुगली द्वारा अप्रत्यक्ष (Unconsciously) रूप में अपने बड़प्पन का ढोंग करता है

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


और स्वयं निर्दोष बनना चाहता है । निन्दा तथा चुगली दुर्बल हृदय की परछाई है । वह उन बुरी वासनाओं पापमय प्रवृत्तियों, आसुरी विचारों का प्रकाशन है जो बहुत दिनों से उसके अन्त:करण में एकत्रित हो गई हैं ।

साधक को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि उसके मुख से किसी के लिए उसके पीठ पीछे या सामने निंदा या चुगली का क्रूर वचन न निकले ,उसे कभी किसी भी दूसरे धर्म की निन्दा नहीं करनी चाहिए, छल छोड़ कर सबसे साधु मृदुल और सरल व्यवहार करना चाहिए और दम्भाचरण से बड़ा सावधान रहना चाहिए । निन्दा सर्प की भाँति घातक है । तनिक सी पाप की उपेक्षा करने से बहुत दिनों की संचित दैवी सम्पदा विनष्ट हो सकती है । दैवी पुरुष निन्दा या चुगली के स्थान पर शान्तिदायक, सत्य ,प्रिय और मधुर कोमल वचन कहता है ।

## सोलहवीं सम्पदा-हेतु रहित दया

सब प्राणियों पर हेतु रहित दया करना मानव का विशिष्ट गुण है । अन्य पशु-पक्षियों को दया की कोमलता प्रदान नहीं की गई है । हमारे परम पिता परमात्मा का प्रधान गुण दया है अत: वे दया सागर कहलाते हैं । उस दयामय की अनुकम्पा के विषय में जितना विचार किया जाय, उतना ही विमुग्ध हो जाना पड़ता है । भक्तों का आधार अपरिमेय परमात्मा का दया सिन्धु ही तो है । भगवान की दया का वर्णन करने की सामर्थ्य मनुष्य की वाणी में नहीं है, हृदय ही उसका अनुभव कर सकता है, आत्मा ही इस सुख की अनुभूति का रसास्वादन कर सकता है । जो दैवी आनन्द मन, बुद्धि के परे है, जिसका दिग्दर्शन स्वल्प भी नहीं कराया जा सकता, वह दया की शीलता में अवगाहन करने से प्राप्त होता है ।

दया किसी स्वार्थ विशेष से प्रेरित होने पर अपने देवत्व के गुण को खो देती है । जगत् नियन्ता ईश्वर की अपरिमित दया को देखिए । हमारे सम्पूर्ण जीवन में उनकी दया ओतप्रोत है किन्तु भगवान् का इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं । दया की अजस्र धारा नित्य निरन्तर हमारे चारों ओर प्रवाहित हो रही है और उसमें मनुष्य के अनन्त दु:ख, शोक, क्लेश धुल रहे हैं । भगवान् की दया सर्वथा हेतु रहित, अपार एवं सम है । दया के तत्त्व का पूर्ण आनन्द एवं मर्म समझने के लिए साधक को गद्‌गद् वाणी से प्रभु कीर्तन, मनन, विनय पूर्ण सत्-शास्त्रों का अवलोकन करना चाहिए ।

आप जो कार्य करते हों, जीवन की चाहे जिस स्थिति में क्यों न हों, दया का प्रयोग कर सकते हैं तथा उस दिव्य सम्पदा के अमृतोपम लाभ उठा सकते हैं किन्तु इसके लिए सबसे आवश्यक तत्त्व यह है कि जिस पर आप दया करें, जिसको लाभ पहुँचायें, जिस पर आप को तरस आये उसकी सेवा नि:स्वार्थ भाव से कीजिए । यह हमें किसी प्रकार का लाभ पहुँचायेगा या आड़े समय पर काम आवेगा ऐसी कोई भी भावना अन्त:करण में मत रखिये । आप विशाल धर्मशालाएँ बनवाते हैं, कुआँ खुदवाते हैं, प्याऊ लगवाते हैं, सैकड़ों भिखारियों को रोटी, कपड़ा बँटवाते हैं, स्कूलों पाठशालाओं में सार्वजनिक कार्यों में दान देते हैं किन्तु इनमें किसी प्रकार का हेतु कदापि न रखिए । अपनी प्रसिद्धि, लाभ, नफा, नुकसान, दुखिया को धोखा देने या मानवता का अनुमान करने के लिए दया का स्वांग न कीजिए । ऐसी दया धार्मिकता के नाम पर विडम्बना है । पीड़ित मानवता की जितनी भी सेवा आपसे बन पड़े, जितना भी दु:ख, अज्ञान, गरीबी आप हटा सकते हैं, सामाजिक कौटुम्बिक अत्याचार जितना भी आप दूर कर सकते हैं, या सदाचार में अपने जनों की या दूसरों की जो सेवा कर सकते हैं, उन सभी में से अपना स्वार्थ, हेतु, लाभ की बात बिलकुल निकाल दीजिए । महात्माओं की दया में व्यक्तित्व लाभ (Personal-gain)की भावना किंचित् मात्र भी नहीं होती । आप भी यथा सम्भव सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों में फल, लाभ या हेतु की इच्छा मन में रखिये । स्वार्थ के लिए दया न दिखलाइये । गीता में निर्देश किया गया है-

''हे अर्जुन ! सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धि वाला, स्पृहा रहित तथा जीते हुए अन्त:करण वाला पुरुष, सांख्ययोग के द्वारा भी परम नैष्कर्म सिद्धि को प्राप्त

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


होता है । अर्थात् क्रिया रहित शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति रूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है ।''

वास्तविक दया का अर्थ भी समझ लेना चाहिये । ''किसी भी दु:खी, आर्त प्राणी को देखकर उसके दु:ख एवं आर्तता की निवृत्ति के लिए अन्त: करण में जो (हेतु रहित) द्रवता युक्त भाव उत्पन्न होता है उसी का नाम दया है ।'' अपने लाभ की आकांक्षा, का उसमें लेश मात्र भी आवरण नहीं होता । दया तो केवल दया के ही लिए होती है ।

परमात्मा की शरण जाने से उसके दया भरे सांसारिक नियमों पर विचार करने से, प्रार्थना, भजन एवं ध्यान से इसमें नि:स्पृहता, निष्कामता, धैर्य का उत्तरोत्तर विकास होता है और दया का विशुद्ध हेतु रहित स्वरूप प्रकट होता है ।

## सतरहवीं सम्पदा-आसक्ति का न होना

गीता के १८ वें अध्याय में सात्त्विक कार्यों के ऊपर प्रकाश डालते हुए निदर्शन किया गया है-

हे अर्जुन ! जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मा भाव को विभाग रहित, समभाव से स्थित देखता है, इस ज्ञान को तू सात्त्विक जान । (२०) जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया जाता है और कर्त्तापन के अभिमान से रहित, फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा, बिना राग द्वेष से किया जाता है, वह कर्म सात्त्विक कहलाता है, जो कर्त्ता आसक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलने वाला धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य सिद्धि होने में न हर्ष शोकादि विकारों से रहित है, वह कर्ता तो सात्त्विक कहा जाता है, किन्तु जो आसक्ति से युक्त कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला अशुद्धाचारी है और हर्ष शोक से लिपायमान है, वह कर्ता राजस कहा गया है ।

उच्च श्रेणी का कर्ममार्गी कर्त्तव्य को दृष्टि में रखकर प्रत्येक कर्म में प्रवृत्त होता है । संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में और कर्मों में तृष्णा और फल की इच्छा का त्याग शास्त्रों में छठी प्रेमी का त्याग कहा गया है । सांसारिक पदार्थ दूर से आकर्षक किन्तु अन्तत: थोथे और नि:सार हैं । अत: उन्हें अनित्य समझ कर जो व्यक्ति शरीर निर्वाह के लिए शास्त्रोक्त रीति से भोजन, वस्त्र, औषधि का सेवन करता है, सब प्रकार के भोगों की कामना को त्याग कर सुख-दु:ख हानि-लाभ, जीवन-मरण आदि को समान समझ कर सम्पूर्ण बान्धव जनों, मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोक में जितने पदार्थ हैं इन्हें क्षण भंगुर मानकर उनमें ममता एवं आसक्ति का नाश कर देता है और केवल सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही अनन्य भाव से संलग्न हो जाता है , वह गृहस्थ होते हुए भी योगी ही मानना चाहिये ।

गीता के अनुसार जीवनमुक्त वही है, जिसका सर्वत्र समभाव है, जो मन, वाणी, तथा शरीर द्वारा होने वाला समस्त क्रियाओं में ममता और आसक्ति का सर्वथा अभाव रखता है, जो सम्पूर्ण पदार्थों से ऊपर उठकर परमात्मा के विशुद्ध प्रेम में स्थित है ।

द्वेष का मूल कारण वास्तव में आसक्ति है । आसक्ति द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक शत्रु उत्पन्न होकर साधक की मन: शान्ति भंग कर देते हैं । आसक्ति के कारण मनुष्य कर्त्तव्य पथ से च्युत होकर परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है । इसके विपरीत आसक्ति रहित व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कार्यों में स्वार्थ हीन राग-द्वेष रहित होता है मान, बड़ाई, सांसारिक प्रतिष्ठा उसे झूठ कपट में या अन्य अनुचित कार्यों में नहीं खींच सकती । उसकी बुद्धि सर्वत्र सम रहती है । वह अपने जीवन का सद्व्यय लोक-हितकारी कार्यों में करता है । स्वार्थ से रक्षा के लिए आसक्ति का न होना जरूरी है ।

आसक्ति का विस्तृत अर्थ लेना चाहिये । इसमें मोह एवं हर प्रकार की ममता, राग, भोग्य पदार्थों की इच्छा, स्वार्थ, लोभ सभी सम्मिलित हैं । आसक्ति के अधिक्य से कृपणता भी उत्पन्न हो सकता है, मनुष्य विषय लोलुप बन सकता है । पदाधिकारी अनेक उपद्रव कर सकता है । अत: मोह का भंग होना आवश्यक है । सच्चा ज्ञानी कभी छल, कपट, दम्भ, असत्य, और अहिंसा का अवलम्बन नहीं कर सकता ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


## अट्ठारहवीं सम्पदा-स्वभाव की कोमलता

सत्त्वगुण में स्थित हुआ निष्काम साधक अन्त: करण का कोमल होता है । मनुष्य क्या, पशु-पक्षी, कीट, पतंग आदि से भी उसका व्यवहार मृदुता, पूर्ण होता है । सरल होने के कारण वह प्रत्येक से कोमलता का व्यवहार करता है । वह सब का प्रेमी, सुहृद आरै रक्षक है । ईश्वर की साधना द्वारा उसके क्रोध, कठोरता, पशुता, आदि मनोविकार दूर हो जाते हैं, आन्तरिक प्रेम छलक उठता है जो समस्त जीवों के लिए समान भाव से छा जाता है ।

कोमल हृदय में भावुकता होना आवश्यक है । कोमल हृदय वाला समस्त मानवता के दु:ख देख कर दु:खी, सुख देख कर सुखी होता है । उसके मन में, व्यवहार में, वाणी में तथा दैनिक कर्म में मृदुता छलकती रहती है । वह प्रत्येक व्यक्ति से प्रीतिपूर्ण मीठी वाणी में बातचीत करता है । अपने जीवन के किसी भी अंग में कठोरता नहीं आने देता ।

अति कोमलता क्रमश: दीनता में परिणत हो जाती है और कोमलता को न्यूनता कठोरता उत्पन्न कर देती है । कोमलता, दीनता कठोरता के मध्य की स्थिति का नाम है । अत: दैवी सम्पदा से युक्त व्यक्ति यह ध्यान रखता है कि कहीं उसकी कोमलता दीनता या कठोरता में परिणत न हो जाय ।

हम दैनिक व्यवहार में देखते हैं कि अनेक व्यक्ति विशेषत: अफसर लोग अत्यन्त कर्णकटु एवं कर्कश भाषा का प्रयोग करते हैं । बोलते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सिर पर डण्डे मार रहे हैं । उनके मुख से भली बात भी कठोर मालूम होती है । उनके स्वर में असुरता मिश्रित होती है ।

यदि हम संसार में अपने पारस्परिक मेल, रिश्ते, सम्बन्ध अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, अनावश्यक भय, अपमान, निन्दा, दु:खमय स्थिति से बचना चाहते हैं तो हमें कोमलता जैसे दैवी गुण की सिद्दि करनी चाहिये । दैवी कोमलता आंतरिक है । मन उसका निवास स्थान है । हृदय की प्रत्येक भावना, शरीर का प्रत्येक कार्य इस मन की कोमलता से अक्षुणित होती है । जो व्यक्ति केवल कोमलता का स्वांग करते हैं, वे बड़ी भारी भूल करते हैं, क्योंकि उससे उनकी आत्मा को ठेस पहुँचती रहती है तथा बाद में कलई खुल जाती है और पशु-प्रकृति एवं आसुरी तत्त्वों का रहस्य सब को विदित हो जाता है । कोमलता जब हृदय में स्थायी रूप से वास करती है, तभी वह सप्राण बनती है ।

## उन्नीसवीं सम्पदा-लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा

लोक एवं शास्त्रों में आचरण के योग्य अनेक उत्तम नियम वर्णित हैं । सद्गुण एवं सदाचार का सेवन तथा दुर्गुण एवं दुराचार का त्याग ही शुद्ध सात्विक जीवन का स्वरूप है । मनुष्य को चाहिए कि शास्त्रों का गहरा अध्ययन करे और तत्पश्चात् मन, बुद्धि और इन्द्रियों के संयम के साथ-साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करे, किसी को दु:ख देने वाली लोक विरुद्ध वाणी कभी न बोले, किसी का अनिष्ट न करे, किसी के साथ द्वेष या घृणा न करे, घृणित एवं मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहे, काम, क्रोध, लोभ, मोह, रागद्वेष, कुकर्म, अहंकार, दम्भ, दर्प, अभिमान और परछिद्रोन्वेषण आदि का त्याग करे, सात्विक भोजन करे, यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, नियम, वेद-पठन करता रहे, आध्यात्म विद्या के अध्ययन के लिए श्रवण, पठन-पाठन, मनन, चिन्तन, आत्म निरीक्षण करता रहे, व्यवहार में सदा सर्वदा साधुता एवं मृदुता रक्खे, परमार्थ के कार्यों में सहयोग प्रदान करे और अन्त में अपना सब कुछ प्रभु को समर्पित कर दे । इन्द्रियों के संयम, तप, सत्य-पालन एवं आत्म-साक्षात्कार करने से मनुष्य परम पद को प्राप्त कर लेता है ।

भगवान ने स्वयं हमें पापों से सावधानी रखने के निमित्त आसुरी सम्पत्ति के लक्षण स्पष्ट कर दिये हैं । दिखाऊपन, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान-ये आसुरी सम्पत्ति के लक्षण हैं । गीता के १६ वें अध्याय में ७ वें श्लोक से १२ वें तक भगवान् ने आसुरी सम्पदा का वर्णन इस प्रकार किया है -

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

''हे अर्जुन ! आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्त्तव्य कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्त्तव्य कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते । इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है आरै न सत्य भावना ही है ।''

''आसुरी सम्पत्ति वाले पुरुष कहते हैं कि जगत् आश्रय रहित और सर्वथा झूठा एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है । इसलिये केवल भोगों को भोगने के लिये ही है । इसके अतरिक्त है ही क्या ?''

''जिन व्यक्तियों का सद्स्वभाव इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान के अवलम्बन करके नष्ट हो गया है, तथा जिनकी बुद्धि मंद है ऐसे सबका अपकार करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत् का नाश करने के लिये ही उत्पन्न होते हैं ।''

''वे मनुष्य दम्भ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर तथा अज्ञान से मिथ्या, सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त संसार में वर्तते हैं ।''

''वे मरण पर्यन्त रहने वाली चिन्ताओं का आश्रय किये हुए और विषय भोगों के भोग में तत्पर हुए एवं इतना मात्र ही आनन्द है-ऐसे मानने वाले होते हैं ।

''अत: आसुरी सम्पदा वाले व्यक्ति नाना भ्रमों मोह तथा प्रलोभन की सैकड़ों फाँसियों से बाँधे हुए होते हैं और काम, क्रोध के परायण हुए विषय भोगों की पूर्ति के लिये अन्याय पूर्वक धनादिक बहुत से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं ।''

''वे प्राय: ऐसा सोचा करते हैं कि मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊँगा तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह होवेगा ।''

यह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूँगा तथा मैं ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ , और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान और सुखी हूँ । मैं बड़ा धनवान् और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ । मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, हर्ष को प्राप्त होऊँगा इस प्रकार आसुरी सम्पत्ति वाले व्यक्ति अज्ञान से मोहित रहते हैं । इसलिये वे अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्र वाले अज्ञानीजन मोहरूप जाल में फँसे हुए एवं विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुए बड़े अपवित्र नर्क में कठोर यंत्रणाएँ भोगते हैं ।

आसुरी सम्पदा वाले व्यक्ति अपने आपको ही श्रेष्ठ मानते हैं उन्हें धन तथा मान का घमण्ड होता है । वे शास्त्र विधि से रहित केवल नाम मात्र के लिये यज्ञों का पाखण्ड से यतन करते हैं । वे अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तरयामी (भगवान्) से द्वेष करने वाले हैं । ऐसे द्वेषी, पापाचारी तथा कुकर्मी नराधर्मो को मैं संसार में बारम्बार आसुरी योनियों में गिराता हूँ अर्थात् शूकर, कूकर आदि नीच योनियों में ही उत्पन्न करता हूँ । इसलिये, हे अर्जुन ! वे मूढ़, पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए मेरे को (परमात्म-तत्त्व को) आसक्त होकर उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नर्क में पड़ते हैं ।

हे अर्जुन ! काम क्रोध तथा लोभ यह तीनों नर्क के द्वार आत्मा का नाश करने वाले सर्व अनर्थों का मूल कारण है, अधोगति में ले जाने वाले हैं । अत: इन तीनों को त्याग देना चाहिए क्योंकि इन तीनों नर्क के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है ।

जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से व्यवहार करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है तथा न परमगति (मुक्तिपद) को तथा न सुख (ब्रह्मानन्द) को ही प्राप्त होती है । इससे तेरे लिये, इस कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्म को ही करने योग्य है ।''

उपर्युक्त प्रवचनों में भगवान् श्रीकृष्ण ने हमें उन पापों से दूर रहने का निर्देश किया है, जो अज्ञान के कारण हो सकते हैं । साधकों को उपर्युक्त तत्वों पर स्वयं सोचना, मनन करना चाहिये । स्वाध्याय सत्संग द्वारा शास्त्रों में वर्णित कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चाहिये । कल्याण की कामना वाले मनुष्य को चाहिये कि वह मन, वचन, कार्य से आसुरी दुर्गुणों का त्याग करता रहे । पापों से सदा सावधान रहें, अपने आप को सम्हाल कर चले, अज्ञान तथा अविद्या से बचे, प्रभु पर अखण्ड विश्वास रख कर सम्मान में प्रवृत्त हो । उत्तम ग्रन्थों के अध्ययन तथा सत्कर्मों के द्वारा आसुरी अवगुणों को दूर करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए ।

## बीसवीं सम्पदा-व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव

इसके अन्तर्गत उन चेष्टाओं से बचने का निर्देश किया गया है जो शक्ति तो बहुत अधिक क्षय करती हैं किन्तु जिनसे लाभ किंचित् भी नहीं होता । साधन में कुचेष्टाएँ बड़ा विघ्न उपस्थित करती हैं । अनेक व्यक्तियों में व्यर्थ ही दूसरे के छिद्रान्वेषण या मिथ्यारोपण की आदत होती है, कुछ में तर्क बुद्धि विशेषतः बढ़ जाती है, कुछ बेमतलब की उक्तियाँ कह कर यों ही दूसरों को चिढ़ाया करते हैं । कुछ दूसरों को रिझाने वशीकरण के प्रयोगों, पक्षपात, चापलूसी, कपट की कुचेष्टाओं में फँसे रहते हैं । वर्तमान जीवन आडम्बर पूर्ण होने के कारण धन की लालसा से अच्छे-अच्छे आदमी सट्टा, फाटका, ताश, चौपड़, शतरंज पर बाजी लगाकर खेलते हैं, अनेक व्यसनों में फँसते हैं । लाभ होने पर व्यभिचार व्यर्थ का प्रमाद, भोग, आलस्य, अकर्मण्यता इत्यादि घातक बातों से पतन के मुख में जाते हैं । समाज में फैली हुई समस्त कुचेष्टाओं से बचने का संकेत उक्त गुण में सन्निहित है ।

कुचेष्टाओं में पाश्चात्य शिक्षा रहन-सहन में बड़ा घातक प्रहार किया है । हमारी बुद्धि तामसी हो उठी है । चाट पानी हलवाई के यहाँ बैठकर मिठाई खा कर माँस मद्य के आहार, लहसुन, प्याज, बिस्कुट, चाय, आइसक्रीम, तीक्ष्ण मसालों के प्रयोग से हमने कितनी ही अपवित्र वस्तुएँ व्यसन रूप में ले लीं है, स्त्रियों में फैशन, गहनों, इत्र, फुलेल का जोर है । रस्म-रिवाजों की आढ़ लेकर पाप बढ़ता ही जा रहा है । वेश्याओं के नृत्य, भड़ुवों के स्वांग, गन्दे, मजाक, सिनेमा, गन्दे गाने, बेहूदी चेष्टाएँ तो सर्वथा त्याग करने ही योग्य हैं । इसके अतिरिक्त कामोत्तेजक साहित्य, नाटक, विषयी पुरुषों एवं बाजीकरण दवाइयों को भी कमी नहीं है । खुले आम लोग भद्दी-भद्दी दिल्लगियाँ एवं ऐश आराम की सामग्री जुटाने में व्यतीत कर देते हैं ।

हमें चाहिए कि कुचेष्टाओं से उसी प्रकार दूर रहें जिस प्रकार कुविचार से । ईश्वर और धर्म का मजाक बनाना, साधु-संतों को दुतकारना, गाय को ठोकर लगाना, शस्त्रनिर्माता, ऋषि मुनियों का अनादर, पूज्य व्यक्ति को प्रणाम न करना, कर्त्तव्य कर्म में आलस्य करना सदाचरण के पथ से दूर जाना है ।

तमसाच्छादित होने से प्रमाद बढ़ता है, दम्भ पाखंड एवं बाहरी चमक-दमक के लोभ से कुचेष्टा बढ़ती है । एक बहुत बड़ा विघ्न कुसंगति है । जिन व्यक्तियों में छलकपट, भोग विलास, धन स्त्री का अनुराग धूर्तता है उनका संग एक दम त्याग देना चाहिये इसी में आत्म-कल्याण है ।

## इक्कीसवीं सम्पदा-आत्म-तेज

जब साधक की मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ अत्यन्त उन्नत एवं विकसित हो जाती हैं तो वह चुम्बकीय शक्ति से युक्त एक महान् आकर्षण केन्द्र बन जाता है । उसके व्यक्तित्व से आत्म-तरंगें इधर-उधर निकल कर अपना प्रभाव डालती हैं । उसके विचार सचेतन चुम्बक का काम देते हैं । जैसे सूर्य प्रकाश की तरंगें विकीर्ण करता है उसी प्रकार यह व्यक्ति आत्मतेज की किरणें बिखेरता है । वेद में तेज स्वरूप परमात्मा से पुनः आत्म-तेज के लिए प्रार्थना की गई है । कहते हैं आत्म-तेज के प्रताप से ऋषियों के आश्रम स्वर्ग धाम बने रहते थे । पापी से पापी आत्माएँ भी उनके प्रभाव से निखर आती थीं ।

आत्मा सर्वशक्तिमान है । उसकी विकसित शक्तियों द्वारा ही ब्रह्मतेज प्रकट हो सकता है । आत्म-तेज से परिपूर्ण होने पर साधक के मुखमंडल से ओजस शक्ति निकलने लगती है । भगवान् ने अपने योग बल से अर्जुन को दिव्यदृष्टि प्रदान की थी । वह भी आत्म-दृष्टि का ही एक रूप था ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अत: साधकों को आत्मा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और शरीर का तेजोबल प्रदीप्त करना चाहिए ।

अपने आप् को आत्मा मानिये । आत्मा ही आपका वास्तविक स्वरूप है, वही आन्तरिक शक्ति का मूल स्रोत है । उसी में स्थित होने से आत्म-दृढ़ता आती है और आत्म विश्वास प्रकट होता है । आत्म-शक्ति प्रचुर मात्रा में तुम में वर्तमान है सद् विचारों सद संकल्पों एवं श्रद्धा से उस महान् शक्ति के पुंज को खोलो, उस मणि मंजूषा में असंख्य रत्न हैं ।

## बाइसवीं सम्पदा-क्षमा

पूर्ण शक्ति सम्पन्न होने और बदला लेने के साधन होते हुए भी दोषी को माफकर देने का नाम क्षमा है । सशक्त क्षमावान् द्वारा प्रदान की गई क्षमा का चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है । प्राय: देखा गया है कि सजा का प्रभाव इतना नहीं पड़ता जितना प्रसन्नतापूर्वक क्षमा करने का पड़ता है । गलती हो जाना मानव की दुर्बलता है किन्तु इस गलती को माफ कर देना देवत्त्व का सूचक है ।

गलती या दूसरों का अपकार प्राय: ऐसे अल्पबुद्धि व्यक्तियों से होता है जो माया मोह के अज्ञान तिमिर से आच्छादित रहते हैं । वे यह नहीं सोचते कि उनके द्वारा पाप कर्म हो रहा है । बड़े से बड़ा दोषी अपने आपको बुद्धिमान तथा अपकार से दूर समझता है । मोह का पर्दा उसकी बुद्धि को भ्रमित कर देना है । ऐसे लघु बुद्धि मोह में ग्रस्त व्यक्ति को संज्ञा देनी कौनसी महानता है ?

क्रोध करने से उत्पात का नाश नहीं होता, वरन् वह उत्तरोत्तर बढ़ता है । क्रोध से झगड़ा शान्त करना अग्नि में घृत की आहुति डालना है । गम्भीर एवं चिन्तनशील पुरुष धैर्यपूर्वक क्षमा करते हैं, चंचल और क्रोधी डाँट फटकार से कार्य निकलना चाहते हैं । व्यवहार कुशल व्यक्ति प्रेम तथा सहानुभूति द्वारा अधिक कार्य निकालता है ।

क्षमा में दोनों ही ओर का लाभ है । आवेश में सम्भव है आप कुछ ऐसा कार्य कर जायँ जिसके लिए सदा दु:ख उठाना पड़े और एक व्यक्ति सदा के लिए आपका शत्रु बन जाय । यदि प्रतिशोध न लेकर प्रेम तथा सहानुभूति से क्षमा कर दिया जाय तो उसका चिरस्थायी प्रभाव दूसरे हृदय पर पड़ता हैं और मनुष्य सदा के लिए अपना हो जाता हैं ।

## तेइसवीं सम्पदा-धृति अर्थात् धैर्यधारण

धृति के अन्तर्गत धीरज, संतोष, धारणा, सहनशीलता एवं हृदय की समस्वरता सभी आ जाते हैं । आपको अपनी कठिनाइयाँ प्रतिकूलताएँ पर्वत के समान दुभेद्य सिंह के समान भयंकर और अँधकार के समान डरावनी प्रतीत होती हों किन्तु उनमें धैर्य रखिये । घबराइये या गिड़गिड़ाइये नहीं । बकरी की तरह मिमियाइये नहीं बल्कि सिंह के समान दहाड़ते हुए कर्त्तव्य मार्ग पर दृढ़ बने रहिये ।

धैर्य एक ऐसी दैवी सम्पदा है, जिसके बल से साधक पग-पग पर मजबूती से कदम उठाता है । अपना 'सोऽहम्' स्वरूप प्रत्यक्ष करता हुआ दूने वेग से आपत्तियों का प्रतिरोध करता है । धृतिमान् पुरुष उस बात पर शोक नहीं करता कि मैं असफल हो गया हूँ या दूसरों की नजरों में गिर गया हूँ या लोग व्यर्थ दोषारोपण करते हैं, मुझे कोई सहायता नहीं देता वरन् वह आपदाओं के तूफान में भी वेग से आगे बढ़ता है । उसका प्रत्येक कार्य उचित, आवश्यक, लाभदायक धर्म संगत विवेक युक्त होता है । वह दूसरों के कहने-सुनने से अन्याय का पथ नहीं लेता ।

जो साधक धर्म एवं मोक्ष के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, उन्हें धृति धारण करना चाहिये । धैर्य खोकर काम वासना आश्रय लेना नास्तिकता है । वास्तविक शक्ति धैर्य में ही निहित है । उसका कोई अन्त नहीं । यह बल साधारण ताकत का नहीं वरन् दैवी शक्ति है ।

**''धीरज, धरम मित्र अरु नारी,**
**आपति काल परखिये चारी''**

इस उक्ति के अनुसार आपत्ति में सर्वदा धैर्य से काम लेना चाहिये । धैर्य ही धर्म की नींव है ।

## चौबीसवीं सम्पदा-पवित्रता

शौच या पवित्रता दो प्रकार की होती है-बाह्य एवं आन्तरिक । आजकल लोग बाहरी सफाई (पवित्रता) पर बहुत जोर देते हैं । सुन्दर-साफ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कपड़े पहिनते हैं, सफेद पोश रहते हैं, नाना प्रकार के पदार्थों से बाहरी सफाई का ढोंग करते हैं, किन्तु वास्तविक दैवी सम्पदा तो आन्तरिक शुद्धि में ही है । वह साधु उत्तम है जो शरीर तो राख से लीप पोत कर गन्दा रखता है किन्तु अन्तर की शुद्धि में निरन्तर संलग्न रहता है । आन्तरिक जगत् को दुर्भावनाओं, कुविचारों, कुसंकल्पों द्वारा अशुद्धि नहीं रखता । वह अपने दुर्गुणों को कुसंस्कारों, ईर्ष्या, तृष्णा, क्रोध, डाह, क्षोभ, चिन्ता, वासना को विवेक की अग्नि में जला कर भस्मी भूत कर देता है । वह अपने अज्ञान को दूर करके मन मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलाता है ।

वास्तव में आन्तरिक शुद्धि का महत्त्व बहुत अधिक है । अपनी मानसिक तुच्छता, दीनता, हीनता, दासता को हटा कर निर्भयता सत्यता पवित्रता की आत्मिक प्रवृत्तियाँ बढ़ाना करोड़ों मन स्वर्ण दान करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

आत्मा को ब्रह्म के अर्पण करना आन्तरिक शौच है । जब तक अस्थिचर्म के पुतले में अहंभाव राग-द्वेष रहेगा, तब तक आन्तरिक शुद्धि सम्भव नहीं । दुर्भावनाओं को परास्त कीजिए । इनके लिए निरन्तर आत्म निरीक्षण और सद्विचार की आवश्यकता है । वास्तविक शुद्धि तो एक मात्र आत्म ज्ञान से ही होती है । आत्म-ज्ञान से अन्दर के शत्रुओं को परास्त कीजिए । सच्चे आध्यात्मिक व्यक्ति के हृदय में प्रेम, ईमानदारी,सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह भाव उत्पन्न होते हैं ये सब आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं ।

## पच्चीसवीं सम्पदा-किसी भी प्राणी के प्रति वैर भाव न रखना

अहंभाव के संकोच से, आन्तरिक संकुचिता के कारण वैर तथा ईर्ष्या की उत्पित्ति होती है । अज्ञान एवं अविद्या के कारण लोग अपने आप को एक दूसरे से पृथक् समझते हैं । 'तू' और 'मैं' के पृथक् जानने से ही हम दूसरे को विज्ञातीय मानते हैं । बड़े छोटे का भाव मन में आता है तथा अनेक दु:ख उत्पन्न होते हैं ।

अहंभाव का संकोच ही हमारी ईर्ष्या एवं शत्रुता का प्रधान कारण है । अहंभाव का नाश होने से हम में और तुम में कुछ भेद नहीं रहेगा । अविद्या तथा अज्ञान हमें भेद-भाव सिखाता है, आध्यात्म ज्ञान रूप में से संकुचिता निकाल कर सब के लिए समान प्रेम सहानुभूति आदि देता है ।

आप प्रत्येक को अपना भाई, सगा सम्बन्धी समझिये । मनुष्य जाति एक लम्बा-चौड़ा कुटुम्ब है । हम सब उसके पृथक्-पृथक् अंग हैं । हम सब मिल कर एक पूरी समष्टि बनाते हैं । प्रत्येक की उन्नति के लिए प्रयत्न करना, सभी को प्यार करना उद्योगी एवं उपयोगी बनाना, सबका कर्त्तव्य है । ईश्वर की इच्छा है कि हम सभी प्रेम तथा सहानुभूति से रहें कहीं पर वैर-शत्रुता का भाव न हो । पृथ्वी के प्रत्येक भाग में रहने वाली सम्पूर्ण मनुष्य जाति से परस्पर मेल-मिलाप हो ईश्वर की दया, प्रवृत्ति की मनोरम वस्तुएँ सभी के लिए हैं । स्वाधीन हो या पराधीन हों, तुम सब भाई हो तुम्हारी जड़ एक है । तुम सब एक ईश्वरीय नियम के अनुसार चलते हो ।

वैरभाव से हम अपने इर्द-गिर्द विषाद, शोक, हिंसा, द्वेष, अभिमान, लोभ, दम्भ, ईर्ष्या, का दूषित वातावरण उत्पन्न करते हैं । हमारे दूषित संकल्प विषैले परमाणु खींचते हैं । हमारी दुर्भावनाओं का विष भरा प्रभाव समस्त वायुमण्डल में विस्तीर्ण होकर सर्वत्र कलह, ईर्ष्या और वैर उत्पन्न करता है । हमारे प्रेमी मित्र भी पास आते हिचकते हैं । वायु में दो गुण हैं-शब्द और स्पर्श । वह परमाणुओं को एक स्थान से लेकर इधर-उधर बिखेरता है । यही आन्तरिक भावों की कल्पना (Thought Waves) द्वारा इधर-उधर पहुँचाता है । अशुद्ध हृदय से दूषित परमाणु निकल कर वातावरण को विकारमय बना देता है ।

प्राणिमात्रि के प्रति प्रेम करो, भाई-बहिन, परिजन, पड़ौसी, पथिक जो भी मिले उसी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर सहानुभूति की वर्षा करो । सबके साथ मित्रता और शान्तिपूर्ण व्यवहार करो । सबका समान रूप से आदर करो । स्वयं अज्ञानी बनकर अन्यों का सम्मान करो । प्रतिशोध की भावना को मन में कदापि प्रवेश न करने दो । सबमें अपनी आत्मा को समझ कर पवित्र भाव से प्रेम करते रहो ।

## छब्बीसवीं सम्पदा-वर्ण, जाति, कुल विद्या रूप आदि का अभिमान न करना

स्वार्थ एवं अहंकार ही अनाचार का मूल है । अभिमानी व्यक्ति मिथ्या गर्व में लिप्त होकर अनेक पाप करता है । उसकी बुद्धि पर ऐसा पर्दा छा जाता है कि उसे नीर, क्षीर, विवेक नहीं हो पाता ।

अभिमान एक नशा है, जिसका सरूर मनुष्य को अन्धा बना देता है । प्राय: लोग कहा करते हैं कि साधारण व्यक्ति भी अफसरी की कुर्सी पर बैठ कर कुछ का कुछ हो जाता है । ऐसे संकेतों में अभिमान की ही निन्दा की जाती है ।

जिस दिन दैवी सम्पदाओं को हम जीवन में प्रत्यक्ष रूप से उतारने लगेंगे, उन्हीं में मानव की महत्ता समझेंगे उसी दिन रूढ़ियों से युक्त होकर हम मानव-संस्कृति का पुन: निर्माण कर सकेंगे । उसी दिन मानवता के शुभ्र प्रकाश में आज केवल नाम मात्र का 'मानव' न रहकर वास्तविक अर्थों में सच्चा मनुष्य बन सकेगा और यह संसार स्वर्गधाम बने बिना न रह सकेगा । उसी दिन हृदय और मस्तिष्क का समन्वय होगा ।

✸✸✸


www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# आप सर्वशक्तिमान हैं

## आप ईश्वर के पुत्र हैं

जो अपनी पैतृक सम्पत्ति को जान लेता है, अपने वंश के गुण, ऐश्वर्य, शक्ति, सामर्थ्य आदि से पूर्ण परिचित हो जाता है, वह उसी उच्च परम्परा के अनुसार कार्य करता है, वैसा ही शुभ व्यवहार करता है, उसी उत्कृष्ट भूमि में निवास करता है । जब तक किसी को अपने शील, गुण और वंश का ज्ञान नहीं होता, तभी तक वह दीन स्थिति में रहता है । यदि आप से कहा जाय कि आप इस संसार के सब से बड़े सब से अमीर और शक्तिशाली पिता के पुत्र हैं, तो आप मन ही मन क्या सोचेंगे ? आप अपने को असीम शक्तियों का मालिक पाकर हर्ष से उल्लसित हो उठेंगे, आप अपने भाग्य को सराहेंगे ? दूसरे आपको अपने सामने क्षुद्र प्रतीत होंगे ।

वस्तुतः बात यही है । आप साधारण व्यक्ति नहीं हैं । आप एक ऐसे पिता के पुत्र हैं, जिसकी शक्तियाँ इस संसार में सबसे बढ़ी-चढ़ी हैं । जो संसार के सब प्राणियों का जन्मदाता और पालनकर्त्ता है । आप परमात्मा की प्रेरणा और दिव्य-विधान से जन्मे हैं । आपके विचार, आपकी वाणी आपके व्यवहार में परमात्मा के दिव्य तत्व ओतप्रोत हैं । आपका व्यक्तिगत कुछ नहीं, सब परमात्मा का ही है । आपका शरीर, इसकी विभिन्न क्रियाएँ भी ईश्वर के ही अधीन हैं । जिस परमात्मा के विधान से अनन्त ब्रह्मांड लोक संचालित होते हैं, उसी से आपका जीवन और क्रियाएँ भी संचालित होती हैं ।

साधारण अमीर का पुत्र ही अपने को धन्य मानता है और अकड़ कर चलता है, पर आप तो कुवेरों के कुवेर, लक्ष्मीपति के भाग्यशाली पुत्र हैं । आपका शरीर पवित्र मन्दिर है, आपका मन परमात्मा का गृह है । आपकी सम्पदा का कोई पार नहीं, कोई मर्यादा नहीं ।

**आप ईश्वर के पुत्र होना स्वीकार कर लीजिए**—आप हमारी बात मानिये, अपने को ईश्वर का पुत्र होना स्वीकार कर लीजिए । बस, आप उन तमाम सम्पदाओं के स्वामी बन जायेंगे, जो आपके पिता में हैं । पुत्र में पिता के सब गुण आने अवश्यम्भावी हैं । ईश्वर के पुत्र होने के नाते आप भी असीम शक्तियों और दैवी सम्पदाओं के मालिक बन जायेंगे । ईश्वर के अटूट भण्डार के अधिकारी हो जायेंगे ।

इमली के वृक्ष से एक छोटी पत्ती तोड़िये और इसे जिह्वा पर रखिए और दाँतों से चबाइये । आप उसे खट्टी पायेंगे । इमली के फल को चखिए वह और भी खट्टा है । इमली का फूल, छाल, बीज, पत्ती, कोंपलें सभी में खटाई का गुण थोड़े-बहुत अन्तर से समान रूप में वर्तमान है । सर्वत्र वही गुण अदृश्य रूप से रमा हुआ है ।

एक नीम से पत्ती तोड़कर चखिए.....कड़वी है । उसकी निबोरी, उसकी छाल सभी कड़वी है । फल कड़वे हैं । उसकी गन्ध तक से कड़वापन भासित होता है । नीम का बीज कड़वा, उसका पौधा कड़वा, फल कड़वा । जैसा बीज होता है, वैसा ही फल होता है । बीज से फल, और फल से उसी प्रकार का बीज, वैसी ही सृष्टि-यही संसार के प्राणी-जगत् का क्रम है ।

आप जन्तु विज्ञान विशारदों से बातचीत कीजिए । वे आपका बतलायेंगे कि जो गुण किसी भी जीव के पिता में होते हैं, वही उसकी सन्तान में पनपते और फलित होते हैं । दुधारू गाय की बछिया, माँ से भी अधिक दूध देती है । नस्ल-सुधार वाले केवल ऊँची नस्लों वाली गायों की ही रक्षा करते हैं । उन्हीं के बच्चों को ध्यान से पालते हैं । पिता-माता के गुण उनके बच्चों में पूरी तेजी से उभार पर आते हैं । खूब फलते-फूलते हैं ।

फिर यदि आप अपने को ईश्वर का पुत्र होना स्वीकार कर लेते हैं, तो एक ऐसे शक्ति-स्रोत से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, जो अटूट है । संसार के सर्वोच्च गुणों का आदि स्थान है ।

ईश्वर हमको पिता होने के कारण कभी नहीं भूलता, हम ही उसको मूढ़तावश भूल बैठते हैं, यही दुःख का कारण है । यह पानी जैसी चीजों में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


रस की तरह है, सूर्य और चन्द्र में प्रकाश है, वेदों में ॐ है, आकाश में विस्तार है, मनुष्य में उनकी हिम्मत है, जमीन में खुशबू की तरह है, आग में उसकी दमक है और तपस्वियों में उनका तप है ।

गीता के शब्दों में, ''जो मुझे (ईश्वर को ) सब जगह और सब चीजों को मेरे अन्दर देखता है, वह न कभी मुझसे पृथक् होता है और न मैं उससे पृथक् होता हूँ ।'' जो मनुष्य एक मन से एकाग्र होकर सब जानवरों के अन्दर, सब घरों में रहने वाले ईश्वर की पूजा करता है, वह योगी चाहे कहीं भी हो ईश्वर के अन्दर है ।

महात्मा गाँधी जी कहा करते थे, 'मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है । नीति और सदाचार ईश्वर है । आनन्द ईश्वर है । मानवीय सद्गुणों का सर्वोत्कृष्ट रूप है । मानवता की सेवा द्वारा ही ईश्वर के साक्षात्कार का प्रयत्न मैं कर रहा हूँ, क्योंकि ईश्वर न तो स्वर्ग में है और न पाताल में, बल्कि हर एक के हृदय में है ।''

ईश्वर सब लोगों में है, मगर सब लोग ईश्वर में नहीं हैं । क्या आप अपने को ईश्वर का पुत्र मानते हैं ? यदि हाँ, तो उन्हीं गुणों को अपने चरित्र में प्रकट होकर आपने-अपने को तुच्छ, निकृष्ट, या दीन-हीन नहीं कह सकते, क्योंकि ईश्वर तो शक्तिपुंज है ।

ईश्वर के पुत्र होकर आप शर्मनाक, सांसारिक इन्द्रिय भोगों के कुत्सित आनन्द नहीं ले सकते, क्योंकि वह तो दिव्य है, निष्कलङ्क, है निर्मल है ।

ईश्वर के पुत्र होकर आप बैर, क्रोध, प्रतिशोध या शत्रुता के भाव मन में नहीं रख सकते, किसी का बुरा नहीं कर सकते, किसी का अनहित नहीं सोच सकते, क्योंकि यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा का ही रूप है । ''**पुरुष एवेद सर्वम्** ' *-ऋग्वेद १०-९०-२*
इस विश्व में परमात्मा ही अनेक रूपों से जन्म ले रहा है । इर्द-गिर्द समाज में रहने वाले भाई बन्धु परमात्मा की प्रतिमूर्तियाँ हैं ।

''न मैं कैलाश में रहता हूँ, न वैकुण्ठ में, मेरा वास भक्त के हृदय में है ।'' (शिव-स्तोत्र)

आप अपने को क्षुद्र हाड़, माँस, चर्म, रुधिर से बना हुआ पुतला समझना छोड़ दीजिए । मत मानिये कि आपका यह शरीर घृणित मल-मूत्र माँस, रक्त, मवाद् का पिण्ड है । पाप से उत्पन्न, पाप करने वाला पापी है । नाशवान कुमार्गी, वासनामय है । अपने विषय में आज तक बनी सब थोथी धारणाओं को तिलांजलि दे दीजिए ।

आप तो यह मानिये कि मेरा यह शरीर अखण्ड अगणित चेतन अणु परमाणुओं का संगठित तेजपुंज है । ईश्वर का साक्षी, प्रतिनिधि है । अतएव पूर्ण है । इसे दूषित, रोगी, घृणित आदि कहने या मानने का मुझे कोई अधिकार नहीं है । यह सब मेरा भ्रम है ।

जब आपको अपनी इस दिव्य ईश्वरीय वंश-परम्परा का ज्ञान हो जायगा, तब आपका जीवन, व्यवहार, चरित्र, बात-चीत, रहन-सहन और स्वभाव एक उच्च उद्देश्य से परिचालित होना प्रारम्भ हो जायेंगे । आपके सम्पर्क में आने वाले सभी तेजोमण्डल से प्रभावित हो जायेंगे ।

क्या कारण है कि समान परिस्थितियों में रहने वाले कुछ व्यक्ति दुखी हैं, उसी स्थिति के दूसरे सुखी हैं ? अतृप्त और दुःखी व्यक्तियों की धारणा है कि ईश्वर की इच्छानुसार ही लोग सुखी और दुःखी होते हैं । ईश्वर ही विपत्तियाँ देते हैं, हमें सजाएँ देते हैं जो हमारे जन्म के पापों का दुष्परिणाम है । किन्तु यह तर्क थोथा आरै सारहीन है ।

सोच कर देखिए क्या कोई ऐसा पिता हो सकता है जो अपने सब पुत्रों से बराबर प्रेम न करता हो ? या अकारण ही उन्हें दुःखी करता हो ? पिता तो सदैव ही स्नेह की वर्षा करता है । उसकी डाट-फटकार में भी स्नेह, स्निग्धता छिपी रहती है ।

संसार में असंख्य स्त्री-पुरुषों ने ईश्वर के प्रेम, स्नेह, सहायता, दिशा, संकेत को समझा है । मन में अनुभव किया है । फिर यदि आप ही उसे अनुभव नहीं करते तो यह आप ही का दोष है । सूर्य तो चमक रहा है । उसकी रश्मियों को अनुभव न करना आपकी ही गल्ती मानी जायगी ।

## आप सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं

'यह रहस्य-ज्ञान मैं तुमको बताता हूँ कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है ।''

*-महाभारत*

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मनुष्य सृष्टि का सबसे समुन्नत, ईश्वरीय शक्तियों से भरा हुआ, असीम सिद्धियों को धारण किये हुए सबसे शक्तिशाली प्राणी है । बुद्धि और ज्ञान इसके मुख्य गुण हैं, जिनके बल पर यह संसार के सब प्राणियों का सम्राट् है । मनुष्य सर्वशक्तियों का समूह है । भगवान् ने अपने रूप में मनुष्य की सृष्टि की है । सर्वश्रेष्ठ ज्ञान उसके मन, शरीर और आत्मा में भर दिया है । इसी शरीर में देवत्व का दर्शन होता है । उसी से दैवी चेतना विकसित होकर ईश्वर की ज्योति जगमगाती है ।

मनुष्य का निर्माण ईश्वरीय नियम, संदेश, सद्भावनाओं और विवेक आदि के व्यापक प्रसार तथा सृष्टि में सत्य न्याय और प्रेम के स्थापन के लिये किया गया है । ईश्वर को मनुष्य ही ऐसा प्राणी मिला, जिसके द्वारा अन्य प्राणियों द्वारा किया हुआ शक्ति का दुरुपयोग रोका जा सकता था । छल, झूठ, कपट, पाखण्ड, निष्ठुरता, स्वार्थ, कपट, शोषण, अपहरण और बेइमानी का अन्त हो सकता था । उन्होंने मनुष्य को ऐसी दिव्य शक्तियाँ दीं, जिनके द्वारा सात्विक वृतियों की प्रतिष्ठापना हुई, असत्य का अन्त हुआ और धर्म की ध्वजा फहरी । सत्य समानता और सदाचार का व्यापक प्रसार कर मनुष्य ने सृष्टि को रहने योग्य बनाया है । मानवीय अन्तरात्मा की सात्विक वृत्तियों के प्रयोग से ही यह संसार रहने योग्य बना हुआ है ।

मनुष्य के अन्दर ईश्वर का जो केन्द्र है, उसे हम 'आत्मा' कहते हैं । यह मनुष्य का शक्ति-केन्द्र है, जिसके द्वारा हमें ईश्वर के गुप्त सन्देश निरन्तर मिला करते हैं । आत्मा के आदेश से मनुष्य योग्यतम और श्रेष्ठतम कर्तव्य की ओर चलता है, पुण्य-संचय करता है, अन्य प्राणियों से उच्च स्तर पर चढ़ता है । सद्गुणों को बढ़ाता है, आत्म-बल को विकसित करता है, बुद्धि को तीव्र करता है तथा विवेक को जागृत करता है । वास्तव में मनुष्य में अन्य जीवों से अधिक विकसित होने की जो क्रिया चल रही है, उसका प्रधान कारण आत्मा के गुप्त दैवी आदेश ही हैं ।

प्रकृति-विज्ञान के महा पण्डित डाक्टर ई० बी० जेम्स ने बताया कि 'योग्यतम का चुनाव' ही प्रकृति का नियम है । दूसरे शब्दों में प्रकृति स्वयं अच्छे-बुरे बलवान और निर्बल, अयोग्य और योग्यतम का चुनाव प्रतिपल, प्रतिक्षण करती रहती है । जो निर्बल और अयोग्य हैं, वे स्वतः नष्ट हो जाते हैं । प्रकृति उन्हें नहीं रखना चाहती । उसके दरबार में अयोग्य की सजा मौत है । वह बलवान और योग्यतम जीवों को ही जीवित रहने देती है । एक बलवान के लिये वह असंख्य शक्तिहीनों को नष्ट कर देती है । आँधी, ओले, तूफानों में कमजोर वृक्ष टूटकर गिर पड़ते हैं, किन्तु मजबूत ज्यों के त्यों दृढ़तापूर्वक खड़े रहते हैं । कमजोर प्राणी बीमारी, युद्ध, गरीबी में पिसकर समाप्त हो जाते हैं । बड़ी मछलियों की रक्षा के लिये अनेक छोटी मछलियों को उनका ग्रास बनना पड़ता है, वृक्षों को पूरी खुराक देने के लिये छोटे-छोटे पौधों को नष्ट होना पड़ता है । एक पशु को पालने के लिये अनेक छोटे-छोटे कीट-पतंग, घास के तृणों का अन्त हो जाता है । यह 'वीर भोग्या बसुन्धरा' निर्बल के लिये नहीं, सबल और सामर्थ्यवान् के लिये ही है और मनुष्य ही वह पूर्ण विकसित प्राणी है, जो संसार के असंख्य पशु-पक्षियों पर राज्य कर रहा है । उसके शरीर से कई गुने बड़े शरीर वाले प्राणी हैं, जो बात की बात में उसे मसल सकते हैं । परन्तु नहीं ऐसा नहीं होता । मनुष्य अपने बुद्धि-वैभव और बौद्धिक, मानसिक शक्ति से सबको परास्त कर देता है । ईश्वर का वरद हस्त सदा उसके साथ है । हमारा वह शक्तिशाली पिता, गुप्तरूप से शक्ति का स्रोत हमारे पीछे है, तब हम भला कैसे अशक्त, असहाय और अयोग्य बने रह सकते हैं ? हम सब जीवों के सिरमौर हैं । सब निम्नतर जीवों के स्वामी हैं । हम स्रष्टा हैं । शुचि हैं । हम निर्विकार हैं । हमारे कण-कण में ईश्वरीय शक्ति का निवास है । हमें आत्मशक्ति से सर्वत्र राज्य करना है ।

मनुष्यो ! तुम सर्वश्रेष्ठ प्राणी हो । तुम्हारी शक्तियों का पाराबार नहीं । जिन अचूक ब्रह्मास्त्रों को लेकर इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हो, उनके मुकाबले में अन्य कोई कदापि नहीं ठहर सकता ।

तुम परमात्मा के अमर पुत्र हो । सम्राटों के सम्राट परमात्मा के युवराज हो । तुम्हें ऐसे-ऐसे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दिव्य गुणों से विभूषित किया गया है कि दूसरा कोई जीव तुम्हारे मुकाबले में न आ सके । तुम्हें अपनी भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्पदाओं से युक्त होना चाहिये । अनन्त, अखण्ड, सुख-शान्ति का भागी बनना चाहिए ।

**इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं,**
**न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।**
**यन्ति प्रमादमतन्द्राः**

*-ऋ॰ ८/२/१८*

याद रक्खो, जो जागकर (मनुष्योचित) शुभ कर्म करता है, देवता उसी को चाहते हैं । अर्थात् उसी के भीतर देवशक्तियाँ जाग्रत होती हैं । जो सोये पड़े रहते हैं, देवशक्तियाँ उनमें नहीं जागतीं या उनसे प्रेम नहीं करतीं । समझ जाओ, जो प्रमादी हैं, उन्हें कोई सहायता नहीं देता ।

मनुष्यो ! अपनी मानवता प्राप्त करो । मोह और आलस्य-निद्रा से जागो । ऋचाएँ जागे हुए की ही इच्छा करती हैं । सोम का वही लाभ ले सकता है । सोम उसी को मिलता है । इसलिये आपको जागृति से मैत्री करनी चाहिये । आपको मानव-जीवन व्यर्थ के कामों में बिताने के लिये नहीं दिया गया है । वह तो श्रेष्ठ समार्थ्यवान् बनने के लिये ही दिया गया है ।

## आत्मशक्ति का अक्षय भण्डार

प्रत्येक छोटी-सी दीखने वाली वस्तु के पीछे एक वृहत् भण्डार होता है । बूँद के पीछे समुद्र लहरें मार रहा है । बीज के पीछे पेड़ लहलहा रहे हैं, वायु के एक झोंके के पीछे सृष्टि में तूफान उठ रहे हैं, छोटे से पैसे के पीछे टकसाल खनखना रही है ।

यदि बूँद के पीछे एक वृहत् जल का महासागर लहरा रहा है, छोटे से बीज में वृक्ष लहलहा रहे हैं, वायु के पीछे तूफानों का दम है, पैसे के पीछे खनखनाती हुई टकसाल है, तो क्या हमारे आत्म-ज्ञान के पीछे कुछ भी नहीं है ? हमारे मन में दिव्य ज्योति की जो एक किरण यकायक चमक उठती है, क्या उसका मूल केन्द्र-महान् भण्डार कोई नहीं है ? हमारे अन्तःकरण में जो अमृत का स्रोत प्रवाहित हो रहा है, क्या उसका अक्षय सागर कोई नहीं है ? पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है ।

हमारे आत्म-ज्ञान के पीछे, ज्ञान की एक छोटी-सी किरण के पीछे भी एक विशाल कल्पतरु, शक्ति का एक असीम भण्डार, ज्ञान का अक्षय समुद्र है । हमारा आत्म-ज्ञान लावारिस या अनाथ नहीं है । हमारे शरीर में बैठी हुई प्रत्येक आत्मा एक नन्हीं-सी किरण है जो निरन्तर उस ईश्वर रूपी ज्ञान सूर्य की ओर संकेत किया करती है ।

जब आप किसी सुन्दर मधुसिक्त डाली पर हँसते-किलकते सुवासित पुष्प को देखते हैं, तो मन ही मन आपके हृदय में यह इच्छा जाग्रत् होती है कि 'क्या ही अच्छा होता, यदि हम भी ऐसे ही सुन्दर, सुवासित और आकर्षक होते ! हम में भी ऐसा ही चटकीला प्यारा-प्यारा रंग होता । हम भी ऐसे ही सरल और आडम्बर शून्य होते । हम भी ऐसा ही निश्चिन्त जीवन व्यतीत करते ।'

जब हम मोर के पंखों की परम मुग्धकारी, हृदय-विमोहिनी रमणीय चित्रकारी को देखते हैं, या भावमत्त हो उसे नृत्य करते हुए देखते हैं, तो हमारी भी इच्छा होती है कि 'क्या ही अच्छा होता यदि हम भी ऐसा ही विमोहक नृत्य कर पाते । अपनी मत्तता से दूसरों को आकर्षित कर पाते । हमारे क्षिप्र पाँवों की थिरकन हमारे हृदय की गहरी और सच्ची अभिव्यंजना कर पाती । हमारे नृत्य में हमारे हर्ष-विषाद, करुणा-प्रेम-आशा इत्यादि प्रकट हो पाते ।'

जब हम किसी भक्त कवि या कवायित्री की रसस्निग्ध कविता सुनते हैं या भजन गाते हैं, तो अनायास ही हमारी इच्छा होती है कि 'हम भी हृदय-स्पर्शी भजन लिखते और भावभीने मधुर गीत गाते । हम भी अपने भीतर उठने वाले द्वन्द्वों को भक्तिपूर्ण वाणी में प्रकट करते । भक्ति तथा काव्य के सम्मिश्रण से हमें विशुद्ध आनन्द प्राप्त होता और आत्म-श्रद्धा के योग से हमारा जीवन मङ्गलमय और शान्तिमय होता । हमारी वाणी में जनता को सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण मिलता ।''

जब हम प्रहलाद-ध्रुव आदि की धर्मवृत्ति, सतियों के सत्धर्म, दधीचि का देवत्व-रक्षा के लिये बलिदान, देश को गुलामी से मुक्त करने वाले शहीदों की ओजस्वी कहानियाँ, वीर हकीकतराय की दृढ़ता और साहस, सिक्ख गुरुओं के धर्म पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बलिदान होने की प्रेरक कहानियाँ सुनते हैं, तो मन ही मन हमारे अन्दर यह इच्छा जाग्रत् होती है कि 'काश, ये सब सत्य, प्रेम, न्याय, नीति, धर्म, विवेक, बुद्धि, साहस, शौर्य, विद्वत्ता योग्यता, ज्ञान, उत्साह शील, स्फूर्ति, दृढ़ता , स्नेह, अभय, त्याग और तपस्या आदि चारित्रिक विशेषताएँ हमारे चरित्र में प्रकट हो पातीं । स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर हम भी अपने प्राण न्यौछावर कर पाते ।

जहाँ कहीं-प्रकृति में, पशु-पक्षी, नाले-निर्झर, पर्वत-सरिता या किसी व्यक्ति में हम उत्तम गुण, उच्च चरित्र, स्वास्थ्य , सौन्दर्य या कोई प्रशस्त कला देखते हैं, तो हमारे अन्दर कहीं से चुपचाप एक उच्च भाव पैदा होता है कि 'काश, हम भी यही उच्च दैवी भाव या शक्तियाँ प्रकट कर पाते ।'

इस विश्व में व्याप्त प्रत्येक अच्छाई हम में जाग्रति पैदा करती है । हमारी सोयी हुई आत्मशक्ति को जगाती है । वह हमें श्रेष्ठता और देवत्व की ओर बढ़ने का गुप्त संकेत करती है ।

श्रेष्ठता और देवत्व की ओर हमारा उत्साह और रुचि पैदा करने वाली हमारी गुप्त आत्मशक्ति ही है । दूसरों के अच्छे और सद्गुणों के प्रति हमारे हृदय में ललक और अनुकरण की इच्छा इस गुप्त आपशक्ति के भण्डार के कारण होती है । यह एक विचारधारा है ।

दूसरी ओर एक और विचारधारा है । आप जब किसी शराबी या पागल को प्रलाप करते हुए या चिथड़े लपेट भद्दे रूप में अटपटे वाक्य बोलते हुए सुनते हैं, तो आपकी यह इच्छा कभी नहीं होती कि हम भी इस व्यक्ति की तरह मूढ़, उन्मत्त या असन्तुलित बन जायँ ।

जब आप किसी चोर, डाकू या हत्यारे को सजा पाते या समाज में बहिष्कृत, लाञ्छित या अपमानित होते देखते हैं, तो आपकी यह इच्छा कदापि नहीं होती कि आप भी चोर, डाकू या हत्यारे बन जायँ ।

जब हम किसी कोढ़ी, अपाहिज, रोगी, दुर्बल, दीन दरिद्र लाञ्छित , कुरूप, दुष्ट, राक्षसी वृत्ति के व्यक्ति या सजावार अपराधी को देखते हैं, तो हमारा मन अन्दर से यह कभी नहीं चाहता कि हम भी। दुष्ट राक्षसी वृत्ति के आदमी बन जायँ कुरूप को देखकर हम स्वयं बदसूरत होने की कामना नहीं करते । रोगी को देखकर हम स्वयं कभी रोगी होने की इच्छा नहीं करते ।

जब हम अपना प्राचीन साहित्य पढ़ते हैं, तो हम प्रजापीड़क कंस जैसे नहीं बनना चाहते । अनीति और अत्याचार की ओर लगे हुए राक्षसराज रावण के प्रति हमारी कोई सुहानुभूति नहीं होती भाइयों को सताने और असंख्य व्यक्तियों का संहार कराने वाले दुष्ट दुर्योधन के प्रति हमारा ममत्व नहीं जागता ।

न जाने क्यों हम दुष्टों, दुश्चरित्रों, प्रजापीड़कों, अत्याचारियों, नर संहारकों, शोषकों, शराबियों, जुआरियों या व्यभिचारियों से घृणा करते हैं । हम इनमें से कुछ भी नहीं बनना चाहते । अनीति अत्याचार अपराध, अन्याय, दोष, त्रुटि, हानि, दरिद्रता, चोरी, डकैती, ठगी, इत्यादि की ओर हमारी रुचि नहीं होती । इसका मुख्य कारण यह है कि ये तमाम दुष्प्रवृत्तियाँ हमारे अन्दर बैठे देवत्व-आत्मा के विरुद्ध पड़ती हैं । इन पाप वृत्तियों की ओर हमारी नैसर्गिक प्रवृत्ति कभी नहीं होती ।

हम पवित्रता की ओर जाना चाहते हैं, अपवित्रता की ओर जाते हुए डरते हैं । हम अंधकार से प्रकाश की ओर जाना चाहते हैं, अमरता की ओर प्रवृत्त होते हैं । वासना, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मद, मत्सर, द्वेष, वैर, हिंसा का परित्याग कर विषयों से वैराग्य, प्राणियों में सद्भावना, समता, प्रेम, न्याय, सेवा, अहिंसा, मैत्री, दृढ़ भगवद्विश्वास में जाना चाहते हैं, जहाँ शीतलता और पवित्रता का महासागर लहरा रहा है ।

हम केवल सन्मार्ग और दिव्य आत्म प्रवृत्तियों, ऊँची पवित्र कलाओं और देवत्व के दिव्य गुणों की ओर ही अग्रसर होते हैं । प्रत्येक दिव्य गुण का अमृतकुण्ड हमारी आत्मा है-परमात्मा है-

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः**
**सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।**
**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः**
**सक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।**

*-श्वेताश्वतर० ६/११*

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अर्थात् 'वह एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ है सर्वव्यापक है और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है । वही सबके कर्मों का अधिष्ठाता है, सम्पूर्ण भूतों का निवास स्थान, सबका साक्षी, चेतन-स्वरूप एवं सबको चेतना प्रदान करने वाला, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत भी है ।'

हम केवल सन्मार्ग और वित्र प्रवृत्तियों, ऊँची कलाओं और देवत्व के गुणों की ओर अग्रसर होते हैं । प्रत्येक दिव्य गुण का अमृतकुण्ड हमारी आत्मा है । यह ऐसा दिव्य केन्द्र है जिसमें से हमारी उच्च प्रवृतियाँ अग्नि से चिनगारियों की भाँति फैला करती हैं ।

जहाँ पृथ्वी पर जल छिपा हुआ होता है, वहाँ हरे-भरे वृक्ष लहलहाते दृष्टिगोचर होते हैं । इसी प्रकार जहाँ मनुष्य का आत्मतत्व जागरूक होता है वहाँ हमारी प्रवृत्ति आत्मा के दिव्य गुणों की ओर होती है । यह देवत्व की ओर अग्रसर होती है ।

संसार और समाज की सब श्रेष्ठताओं के रूप में हमारा आत्मतत्व ही बह रहा है । हमारी श्रेष्ठता और सौन्दर्य का मूल केन्द्र हमारी सत्-चित् आनन्दस्वरूप यह आत्मा ही है ।

## आपका मूल्य क्या है

टिटियन नामक प्रसिद्ध चित्रकार के जीवन की एक घटना है । वह एक दिन अपने स्टूडियो में बैठा चित्र बना रहा था । उसने अपना सर्वस्व ही चित्रों में उँडेल रखा था । अनेक व्यक्ति उसके पास चित्रों को देखने और खरीदने को आ रहे थे । एक धनिक कलाप्रेमी आया । उसने देर तक एक चित्र को देखकर पूछा, "मैं इस चित्र को अपने लिए चुनता हूँ । इसका मूल्य क्या है ?"

"पचास गिन्नियाँ" चित्रकार ने शान्त स्वर में उत्तर दिया ।

"एक छोटे से चित्र का इतना अधिक मूल्य ! आपको इस चित्र को बनाने में कठिनता से एक सप्ताह लगा होगा । कागज, रंग इत्यादि का खर्च तो नहीं के बराबर है । फिर इसका दाम पचास गिन्नियाँ कैसे ? आप शायद भूल करते हैं ।"

टिटियन ने उत्तर दिया, "महाशय, आप भूलते हैं । पूरे तीन साल निरन्तर परिश्रम करने के बाद मैं इस योग्य बना हूँ कि ऐसे चित्र को चार दिनों में ही बना सकता हूँ । इसके पीछे मेरा वर्षों का अनुभव, साधना और योग्यता छिपी हुई है ।"

धनी व्यक्ति उत्तर से सन्तुष्ट हुआ । उसने इतने बड़े मूल्य पर उस चित्र को खुशी-खुशी खरीद लिया ।

यदि चित्रकार अपनी कला का मूल्य कम लगाता, तो निश्चय ही उसे कम मूल्य मिलता । पर उसके आत्म-विश्वास और कला-साधना की अन्ततः जीत हुई ।

उसने अपने को जितना मूल्यवान् समझा संसार ने उसका उतना ही महत्त्व स्वीकार किया । समाज से उसे उतना ही मूल्य प्राप्त हुआ । हमें उतना ही सम्मान, यश, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि प्राप्त होती है, जितना हम स्वयं अपने व्यक्तित्व का लगाते हैं ।

हम आपसे पूछते हैं, "आप अपने को कैसा समझते हैं ?"

क्या आप अपने को दीन-हीन मानते हैं ? नीच, दुष्ट, राक्षसी स्वभाव का समझते हैं ? बेईमान और नाचीज मानते हैं । कमजोर और पंगु मानते हैं ?

अथवा आप अपने को शिष्ट, सौम्य, विद्वान्, दृढ़, संयमी ख्याल करते हैं ? मजबूत इच्छा-शक्ति वाला व्यापार में कुशल व्यक्ति मानते हैं ? या ऐसा मानते हैं जिसकी दस आदमी सच्ची प्रशंसा करते हैं ?

संक्षेप में हम आपसे जानना चाहते हैं कि आप एकान्त में अपना क्या, किस रूप में (देवता या राक्षस) मूल्यांकन करते हैं । अपने को क्षुद्र मानते हैं अथवा महान् ?

जैसा आप अपने को मान बैठे हैं, वस्तुतः वैसे ही आप हैं, और दुनियाँ भी आपको वैसा ही मानेगी । उसी कसौटी पर सदा आपको कसती रहेगी ।

शान्त चित्त से कभी-कभी अपने चरित्र की अच्छाइयों, श्रेष्ठताओं, दैवी सम्पदाओं, उत्तम गुणों पर विचार किया करें । आप जितनी देर तक अपनी अच्छाइयों पर मन एकाग्र करेंगे, उतना वे आपके

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चरित्र में विकसित होंगी ।

बुराइयों को त्यागने का अमोघ उपाय यह है कि हम एकान्त में अपने चरित्र, स्वभाव और शरीर की अच्छाइयों और श्रेष्ठ गुणों का ही चिन्तन करें, और इस तरह सद्गुणों के चिन्तन से दिव्यताओं की अभिवृद्धि करते रहें ।

मनुष्य के मन में ऐसी अद्भुत गुप्त चमत्कारी शक्तियाँ दबी पड़ी रहती हैं कि वह जिन गुणों का चिन्तन करता है, गुप्त रूप से वे दिव्यगुण उसके चरित्र में बढ़ते और पनपते रहते हैं । आप यदि ध्यान से आत्म-निरीक्षण करें, तो आपको अपने अन्दर चरित्र के अनेक उज्ज्वल पहलू मिल जायेंगे । ये वे पहलू, गुण, दिव्यातएँ, दैवी विभूतियाँ हैं, जो दूसरों में नहीं हैं । आप में, और केवल आप में ही मौजूद हैं । चरित्र के ये दिव्य गुण ईश्वर की ओर से विशेष रूप में आपको ही दिये गये हैं कि आप इन्हें खूब विकसित करें, अभ्यास, साधना, चिन्तन द्वारा निरन्तर बढ़ाएँ और उनके प्रयोग से समाज को समुन्नत करें ।

संसार में अनेक वैज्ञानिक, तत्त्ववेत्ता, विचारक, दर्शन-शास्त्री, कला-विशेषज्ञ, सैनिक, विद्वान् , धर्म-क्षेत्र के नेता, समाज-सुधारक, ऋषि, मुनि हुए हैं, जिन्होंने अपने विशेष गुणों का विकास किया और संसार को आश्चर्य में डाल दिया । हो सकता है आप में भी संसार का कोई महान पुरुष छिपा हुआ हो । किसी बड़ी आत्मा का निवास हो ।

अपनी महानताएँ खोलिये, अपने विशेष गुणों को मालूम कीजिए । देखिये आपकी बुद्धि प्रखरता से किस ओर चलती है ? कौन -सा कार्य करने में आपको विशेष आनन्द आता है ? संसार और समाज आपके किस कार्य की विशेष प्रशंसा करता है ?

आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने चरित्र का वह अमरतत्व, वह दैवी विशिष्ट गुण, वह बहुमूल्य रत्न आप बखूबी मालूम कर सकते हैं, अथवा किसी योग्य चिकित्सक की सहायता ले सकते हैं ।

अब्राहम लिंकन की उन्नति का गुर यही था । उसने निरन्तर ध्यान और मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा अपने छिपे हुए गुणों को खोज निकाला । वह उसी दिशा में उत्तरोत्तर उन्नति करता गया ।

नैपोलियन की इच्छा थी कि वह किसी दिशा में महान बने, प्रसिद्धि प्राप्त करे । उसने अपने लिए साहित्य का क्षेत्र चुना । वह लेखन कार्य में प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए खूब लिखना-पढ़ना, अध्ययन, चिन्तन और नई-नई कल्पनाएँ करता रहा । उसे अपनी निबन्ध लेखन शक्ति पर गर्व था । वह एक बार एक लेखन-प्रतियोगिता में भी सम्मिलित हुआ था । जब उसका निर्णय निकला तो उसे ज्ञात हुआ कि उसका नम्बर सबसे नीचे था और निर्णायकों ने उसके निबन्ध को निकृष्ट ठहराया था । इस पराजय से नैपोलियन को ज्ञात हुआ कि साहित्य-क्षेत्र उसके लिये नहीं है । उसने उसे त्यागकर सैन्य-संचालन का नया मार्ग पकड़ा और इस क्षेत्र में उसे असाधारण सफलता प्राप्त हुई । उसे विश्व का एक महान् विजेता स्वीकार किया गया ।

हर व्यक्ति अपने ऊपर अपनी कीमत की मुहर स्वयं लगाता है । अपने लिये हमें वही मूल्य संसार और समाज से प्राप्त होता है, जिसका हम दृढ़ इच्छा-शक्ति से दावा करते हैं । जो मूल्य निर्धारित करें, वैसी ही दिव्यताएँ और शक्तियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न भी करें ।

फिर क्यों न आप अपनी नयी दृष्टि से मूल्य निर्धारण करें । क्यों न एक बार नए सिरे से अपनी कीमत लगायें । क्यों न यह बात मन में स्थिर करें कि अपनी इच्छा से हम मूल्यवान् या निर्धन बनते हैं । अपनी इच्छा से सुख-दु:खी बनते हैं ।

बाइबिल में इसी सत्य को इन शब्दों में प्रकट किया गया है-"मनुष्य अपने मन में स्वयं को जैसा मान बैठा है, वस्तुत: वह वैसा ही है ।"

प्राय: हम देखते हैं अनेक स्त्रियाँ दूसरों के बच्चों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करती हैं, उन्हें दूसरों में अनेक श्रेष्ठताएँ नजर आती हैं किन्तु अपने बच्चे, अपने पति , घर-बार, वस्त्र इत्यादि कुछ अच्छे नहीं लगते । वे अपने घर वालों की त्रुटियाँ ही देखती हैं और उन्हें धिक्कारती ही रहती हैं । बच्चों को डाटती-फटकारती हैं । सारे दिन बुरा-भला कहती रहती हैं । फल यह होता है कि या तो उनके बच्चे घर से भाग निकलते हैं अथवा बड़े होकर घर नहीं टिकते । वे अपने घर वालों का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कम मूल्य लगाती हैं । फलस्वरूप समाज भी उन्हें घटिया दर्जे का ही मानता है । इससे उनका मूल्य भी गिर जाता है । यदि वे अपने बच्चों या पतियों का ऊँचा मूल्य लागवें, तो संसार से उनकी ऊँची कीमत वसूल कर सकतीं हैं ।

आप कभी-कभी अपने गुणों, अपनी विलक्षण प्रतिभा, अपनी विशेष ईश्वरीय देन के बारे में खूब सोचा कीजिये । त्रुटियों की उपेक्षा कर श्रेष्ठताओं की सूची बनाइये । उन्हीं पर विचार और क्रियाएँ एकाग्र कीजिए । यह अपनी श्रेष्ठताएँ विकसित करने का मनोवैज्ञानिक मार्ग है ।

प्रिय पाठक, आपको अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा अनेक शक्तियों का ज्ञान नहीं है । आप नेत्रों पर पट्टी बाँधे अन्धा-धुन्ध आगे मार्ग टटोल रहे हैं । अपनी शक्तियों के प्रति अज्ञानता में आपका बहुमूल्य समय नष्ट हो गया है । यदि आप अपनी गुप्त शक्तियों के अनुसार आगे बढ़ने लगें, मन को सृजनात्मक रूप में शिक्षित कर लें, तो जीवन फूलों की सेज प्रतीत होगा और अनेक कार्य आप पूर्ण करने लगेंगे ।

आप ताकत की दवाइयाँ खाते हैं, पौष्टिक अन्न लेते हैं, डंड, मुद्गर और तरह-तरह की कसरतें करते हैं, पर सच बात तो यह है कि शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती, वह स्वयं हमारे अन्दर ही मौजूद है और हमारे मन की अवस्था के अनुसार ही घटती-बढ़ती रहती है । डेढ़ पसली के महात्मा गाँधी के शरीर में एक दृढ़ निश्चयी मन की ही ताकत थी । उस मन की शक्ति से ही उन्होंने विदेशी राष्ट्र की जड़ें खोखली कर दी थीं ।

आप में भी असीम शक्तियाँ भरी पड़ी हैं । उनकी खोज की जाय, तो निश्चय ही आप संसार को चमत्कृत कर सकते हैं । फिर नये सिरे से अपने व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए ।

## आप बहुत कुछ कर सकते हैं

श्री हेनरी हैरिसन ब्राउन ने मनोविज्ञान के दो संकेतों का विस्तृत विश्लेषण किया है और उनका विचार है कि इन दोनों की शक्तियों को सही रूप में समझाने वाला व्यक्ति ही संसार में विजयी हो सकता है । वे मनुष्य की समस्त मानसिक शक्तियों को इन दो संकेतों के पीछे-पीछे आना मानते हैं -

१-मैं कर सकता हूँ (सफलता और विजय का मूलमन्त्र)

२-मैं नहीं कर सकूँगा (मँझधार में डुबो देने वाला संकेत)

जब हम इन दोनों संकेतों में से किसी एक का उच्चारण करते हैं अथवा हमारा गुप्त मन इनमें से किसी को दृढ़ता से स्वीकार कर लेता हैं, तो हमारी मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ भी उसी के इर्द-गिर्द इकट्ठी होने लगती हैं । वे हमें वैसा ही उत्तर या सहयोग देती है ।

मान लीजिये आप मानते हैं कि ''मैं यह कार्य कर सकता हूँ'' तो इस संकेत के कारण आपके शरीर, मन, और आत्मा की सब उत्पादक शक्तियाँ एकत्रित होकर आपकी लक्ष्यपूर्ति के लिए तैयार हो जाती है । आप मन में एक गुप्त शक्ति का अनुभव करते हैं और आपकी शक्ति और इच्छा पूर्ति के सामर्थ्य बढ़ते जाते हैं । आप नए साहस और नए उत्साह से अग्रसर होते हैं । इसी विश्वास के कारण आपके मार्ग से विघ्न-बाधाएँ दूर होते जाते हैं ।

दूसरी ओर यदि आप भूल से यह मान बैठते हैं कि ''मैं यह कार्य नहीं कर सकता,'' तो इस गलत संकेत के कारण आप अन्दर ही अन्दर एक प्रकार की कमजोरी का अनुभव करेंगे । शरीर (पीला पड़ जायगा, इन्द्रियाँ जवाब देने लगेंगी, कंधे झुक जायेंगे, कमर में दर्द मालूम होगा, सारी शक्तियाँ क्षय हो जायँगी । आपको अन्दर ही अन्दर ऐसा लगेगा कि न जाने क्यों शरीर और मन गिरा-गिरा सा लग रहा है । काम में तबियत नहीं है ।

पहला संकेत ''मैं कर सकता हूँ मनुष्य के आत्म-विश्वास को पुष्ट करता है, शक्तियों को जगाता है, उसे अपनी सिद्धि और सफलता पर विश्वास हो जाता है । इस सृजनात्मक विचार का शक्तिवर्धक प्रभाव हमारे शरीर के संगठन पर पड़ता है । इन निश्चित दृढ़ और आशा भरे विचारों से हमारा मुखमण्डल दमकता हुआ मालूम पड़ता है और हमारे सम्पूर्ण कार्य सजीव मालूम पड़ते हैं ।

दूसरे संकेत ''मैं कुछ नहीं कर सकूँगा'' से निराशा के विचार हमारे गुप्त मन में छा जाते हैं, मुख मलीन हो उठता है और शरीर तथा मस्तिष्क

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की शक्तियों का ह्रास होने लगता है । इस तथ्य को प्रमाणित किया जा चुका है कि निराशा, अविश्वास, चिन्ता, और शोक इत्यादि हमारी अवांछनीय और दुर्बलता पैदा करने वाली मन: स्थितियाँ हैं । अपने प्रति विश्वास का एक विषैला शब्द या वाक्य मानसिक संस्थान में ही गड़बड़ नहीं मचाता, बल्कि पूरे शरीर पर और विशेषत: हमारे हृदय पर दूषित प्रभाव डालकर उसे कमजोर बना देता है । अनेक कच्चे मन वाले व्यक्ति तो काल्पनिक बीमारियों से व्यर्थ ही परेशान रहा करते हैं । अपने प्रति कमजोर भावनाएँ रखकर रक्त के प्रवाह में रुकावट पैदा कर लेते हैं । रुधिर में विकार उत्पन्न हो जाता है और उससे उसकी पोषण शक्ति में भी विकार पैदा हो जाता है । ''मैं कमजोर हूँ'' ''रोगी हूँ''-ऐसा कहने से तन्तुजाल में भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है और इससे शरीर के समस्त कार्यों में आंशिक शिथिलता आ जाती है ।

दूसरी ओर, ''मैं इस कार्य को अवश्य कर सकता हूँ '' ऐसा कहने और मानने से मन में आशा और विश्वास, शक्ति और साहस, पैदा होते हैं । मन में गुप्त ताकत आती है । रुधिर प्रवाह भी ठीक होकर समस्त शरीर को पुष्ट करता है, जिससे मन प्रसन्न तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है । अड़चनें और विरोध स्वत: दूर होते जाते हैं । ऐसे व्यक्ति कभी निरुत्साहित नहीं होते । भय आदि दूषित विकारों का कोई प्रभाव नहीं होता ।

यह संकेत दृढ़ संकल्प पैदा करता है, जो सफलता की कुंजी है । जो यह मान लेता है कि मुझमें अपने आदर्श तक पहुँचने की शक्ति और सामर्थ्य है वह अन्त में एक दिन अपनी इष्ट-सिद्दि कर ही लेता है । जो यह सोचता रहता है कि ''मैं यह कार्य कर सकूँगा या नहीं '' वह संशय वृत्ति के कारण कुछ भी नहीं कर पाता ।

कहाँ चींटी, कहाँ पक्षियों में सबसे तेज उड़ने वाला गरुड़ । यदि चींटी गरुड़ की तेज रफ्तार को सोचकर स्वयं अपनी धीमी गति से भी काम करना छोड़ दे, तो क्या वह कुछ कर सकती है ? नहीं, चींटी, स्वयं अपने पक्के निश्चय से ही जो कुछ बन पड़ता है, उतनी ही मात्रा में अपना कार्य करती जाती है, दूसरों से निरुत्साहित नहीं होती, फिर अपने लक्ष्य पर भी पहुँच ही जाती है । उसी प्रकार मनुष्य को अपनी छोटी शक्तियों को देखकर निरुत्साहित नहीं होना चाहिए । अपनी छोटी शक्ति से ही कार्य प्रारम्भ कर उसे पूर्ण करने का सतत उद्योग करना चाहिए ।

इन्हीं दोनों संकेतों को सामने रखकर हम समग्र मनुष्य जाति को दो बड़े भागों में विभाजित कर सकते हैं १-वे जो कार्य को कर सकने में आत्मविश्वास रखते हैं । इन्हें हम मिस्टर 'कैन' (अर्थात् कर सकने वाला) तथा २ वे व्यक्ति जो सदा अपनी कमजोरी तथा असफलता के विचारों में डूबे रहते हैं, इन्हें हम मिस्टर 'कान्ट' (न कर सकने वाला व्यक्ति) कह सकते हैं । मिस्टर कैन उद्देश्यपूर्ति में अपनी गुप्त शक्तियों, सामर्थ्य और मनोबल का पूरा-पूरा उपयोग करते हैं, असंख्य विघ्न-बाधाओं के बावजूद अपने मार्ग से विचलित नहीं होते और अन्तत: कार्य को पूरा कर के ही दम लेते हैं ।

इसके विपरीत मिस्टर कान्ट प्रत्येक निश्चय में ढीले-ढाले, आधे मन से कार्यों में हाथ डालने वाले, शक्की मिजाज होते हैं । वे किसी बड़े कार्य को पूर्ण करने के लिए बाहरी शक्तियों का इन्तजार किया करते हैं । भाग्य को दोष देते रहते हैं ज्योतिषियों से भाग्य पलटने की तिथियाँ और उपाय पूछते रहते हैं । अवसर की प्रतीक्षा में टक-टकी लगाये रहते हैं ।

हम पूछते हैं कि आप मिस्टर कैन है, या मिस्टर कान्ट ? तनिक अपने गत जीवन पर तीव्र दृष्टि डालिये और निर्णय कीजिये कि आप किस वर्ग के व्यक्ति हैं ।

क्या आप मिस्टर कैन हैं जो उच्च पद, प्रतिष्ठा, नेतृत्व, बड़ा लाभ, सामर्थ्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए उत्साह से कार्य करते हैं, नए-नए प्रयत्न करते हैं । उत्साह और शक्ति विकसित करते हैं, और विपरीत परिस्थितियों से परास्त नहीं होते, पराजय जैसी निकृष्ट मन: स्थिति को जानते तक नहीं । सम्पद और विपद में समान भाव से अग्रसर होते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यदि आप मिस्टर कान्ट हैं, तो इसके दोषी आप स्वयं ही हैं । इसमें स्वयं आपकी गुप्त पराजय की ग्रन्थि (हीनत्व की भावना) ही कसूरवार है । अपने विषय में दीन-हीन पोच विचार करते-करते ही आपने, अपने-आपको गिरा लिया है । विघ्न, बाधाओं, हानियों, विरोधों के भय से भयभीत होकर आपने कायरता को अपने अन्त:करण में प्रविष्ट करा दिया है । इसी क्षण मन की इस दुर्बलता को जड़ मूल से उखाड़ फेंकिये । आपकी अश्रद्धा और अपनी शक्तियों के प्रति अविश्वास ही आपके दुर्भाग्य की जननी है । अपनी शक्तियों पर पूरा-पूरा ज्वलन्त आत्म-विश्वास कीजिए । अपनी श्रेष्ठता, अच्छाई, ताकत की बात अपने अन्त:करण में जमा लीजिए । दृढ़ निश्चय, तीव्र इच्छा, और प्रबल प्रयत्न के द्वारा अपने गुप्त सामर्थ्य को प्रकट कीजिए । फिर देखिए आपका कैसा भाग्योदय होता है । आप में अपना ईश्वरत्व प्रकट करने की पूरी सामर्थ्य है । फिर क्यों दु:ख, असफलता और चिंता में जीवन नष्ट कर रहे हैं ।

निश्चय जानिये आप मिस्टर कैन हैं । आपकी इच्छा शक्ति दृढ़ है । आपकी संकल्प शक्ति अजेय है । आप जिस कार्य को हाथ में लेंगे, उसे पूर्ण कर देने की आप में गुप्त आत्मिक शक्ति छिपी हुई है ।

आप शक्ति के साक्षात् केन्द्र हैं । आप अपने आन्तरिक आत्मबल पर पूर्ण विश्वास रखते हैं । प्रत्येक कार्य आपकी इच्छा के अनुसार ही होता है । आत्मबल के अनन्त भण्डार से आप सब अभिलाषित कार्यों में सिद्धि पाते हैं । आप प्रबल इच्छाशक्ति से इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करते हैं । आपकी इच्छाशक्ति बड़ी प्रबल है ।

## प्रत्येक उत्तम वस्तु आपकी ही है

संसार में ऐसी कोई दुर्लभ वस्तु नहीं जो तुम्हारे योग्य न हो, या जिस पर तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार न हो । तुम अपनी संकल्प की शक्तियों को आदेश दो कि मैं एक ईश्वरी तत्व से जिसका सम्बन्ध मन से है-तादात्म्य रखता हूँ, अतएव उससे उत्पन्न होने वाली प्रत्येक उत्तम वस्तु का मैं पूरा-पूरा हकदार हूँ, वारिस हूँ । इच्छाशक्ति के लम्बे-चौड़े हाथों से मैं उसे अवश्य प्राप्त कर सकता हूँ ।

हम प्राय: ऐसे अनेक व्यक्तियों को देखते हैं, जो व्यर्थ में अपने आपको तुच्छ एवं नगण्य समझा करते हैं । जिस वस्तु के चिन्तन से हानि होती है, निरन्तर उसी में बल का क्षय करते रहते हैं । प्रतिक्रिया स्वरूप परिणाम घातक सिद्ध होता है ।

जीवन के प्रधान नियमों में कदाचित् प्रमुख नियम यही है कि मनुष्य मन, विचार, आकांक्षा का सदुपयोग सीखे । यह अनुभव करे कि वह परम शक्ति सम्पन्न एक सुदृढ़ चैतन्य आत्म पिण्ड है । संसार की समस्त उत्कृष्टतम् वस्तुओं पर उसका पूर्ण अधिकार है । धन, सम्पत्ति, मान, सम्मान, पदाधिकार, धर्म, मोक्ष इत्यादि कुछ भी क्यों न हो, उससे विमुख नहीं हैं वे उसी के लिये सृजित हैं । अतएव उसे एक दिन अवश्यमेव प्राप्त होंगे ।

कितने ही पुरुष मन की आकांक्षाओं को मृतप्राय: कर डालते हैं, मन केन्द्र में अभिलाषित वस्तु के प्रवेश करते ही यह समझने लगते हैं कि वह हमसे दूर की वस्तुएँ, हमें उपलब्ध न होंगी । ऐसी मनोधारा अत्यन्त घातक है । प्रत्येक उत्तम वस्तु सर्वप्रथम मन: केन्द्र में प्राप्त होती है । तत्पश्चात् वस्तु जगत में उपलब्ध होती है । अत: हमें चाहिये कि अपनी आकांक्षाओं का अनुभव करें । तत्संबन्धी विचारों को मन में उदारतापूर्वक प्रवेश करने दें । अभी से उनका अभ्यास प्रारम्भ कर दें, उसे प्राप्त हुआ देखने की आदत बना लें ।

नेपोलियन ने चिट्ठी लाने वाले सवार को जो उत्तर दिया था वह आत्म-तत्व विद्या के प्रेमियों के लिये बड़े महत्व का है । नेपोलियन को चिट्ठी देने के लिये वह अश्वारोही वायु वेग से अग्रसर हुआ । अश्व पूर्ण क्लान्त हो चुका था । सवार ज्योंही नेपोलियन के निकट पहुँचा और घोड़े से नीचे उतरा, त्योंही थका हुआ घोड़ा पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ । नेपोलियन ने पत्रोत्तर तुरन्त लिखकर सवार को दिया और निर्देश किया "तुम्हारा घोड़ा मर गया है, अतएव तुम मेरे इस विशेष अश्व पर सवार होकर जाओ और सेनापति

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


को हमारा पत्र दो ।'' अश्वारोही घबड़ा गया, उसने सोचा कि क्या ऐसे ऊँचे घोड़े पर बैठने का आदेश सत्य है ? उसने विनयपूर्वक निवेदन किया ''महाराज ! हम जैसे निम्न श्रेणी के तुच्छ सेवकों को आपके घोड़े पर बैठना उचित नहीं है ।'' यह कहते-कहते भृत्य ने सिर झुका लिया । नेपोलियन ने उत्तर दिया ''दुनिया में ऐसी कोई भी उत्कृष्ट वस्तु नहीं है जिस पर फ्रांस के एक छोटे से छोटे सैनिक का अधिकार न हो, या उसे प्राप्त न हो सके । प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सकता है ।''

तुम किस अवस्था में आत्म-विस्मृत किये हो ? तुम्हारा वास्तविक स्वरूप क्या है ? तुम क्यों इन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार नहीं करते ? यदि कोई तुम्हें कमजोर, मूर्ख, डरपोक कहता है तो उसे क्यों स्वीकार कर लेते हो ? तुम क्यों उसका उत्तर नहीं देते और यह क्यों नहीं कहते कि ''मैं शक्ति सम्पन्न ज्योतिर्मय आत्म-पिण्ड हूँ । एक महान शक्ति का पुत्र हूँ । ऐसा कोई पद नहीं, जिसके योग्य मैं न होऊँ । संसार में ऐसी कोई अलभ्य वस्तु नहीं जिस पर मेरा स्वत्व न हो ।

जब तुम्हारे दिल में बुजदिली के विचार प्रवेश करने लगें, तो पुरुषोचित साहस से गर्जना करो कि ''मैं निश्चिन्त हूँ, साहसी हूँ, और सबका स्वामी हूँ, प्रत्येक उत्कृष्ट वस्तु पर मेरा अधिकार है ।'' ऐसे व्यक्ति संसार में अति न्यून हैं जिनमें आत्म-उत्तेजना है और निज शक्ति में विश्वास है, जो संसार की टीका टिप्पणी की तनिक भी परवाह नहीं करते और सदैव शुभ प्रेरणा में अग्रसर हुआ करते हैं ।

जो अपनी वेकदरी करते हैं वे पापी हैं क्योंकि वे परमेश्वर स्वरूप परम-आत्मा की निन्दा करते हैं । कारण ! मनुष्य ईश्वर की प्रतिमूर्ति है । ईश्वर में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं है, सीमा बन्धन नहीं है, प्रत्युत समृद्धि की विपुल सम्पदा भरी पड़ी है । ईश्वर का आदेश है कि ''पूर्ण बनो, जैसा कि मैं हूँ ।'' अतः कभी अपने आपको नीच, दीन, दुखी, दरिद्री, रोगग्रस्त आदि न समझो । प्रत्युत उत्साहपूर्वक कहो और गर्व से छाती फुलाकर कहो कि ''प्रत्येक उत्तम वस्तु पर मेरा अधिकार है । कोई मुझसे वह अधिकार हरण नहीं कर सकता ।'' इस प्रकार मन को भद्दी बातों व भद्दी वस्तुओं से हटाकर सुन्दर और शिवत्व से परिपूर्ण सुमनोहर वस्तुओं पर केन्द्रित करना, विरोध से हटाकर ऐक्य में संलग्न करना, मृत्यु के विचार हटाकर दिव्य जीवन के रहस्य में केन्द्रित करना एक बहुत उत्कृष्ट कला है । इस कला में पारंगत, बनने का प्रयत्न कीजिये ।

पाठको ! आत्मतत्व की प्राप्ति कर संसार की प्रत्येक उत्कृष्ट वस्तु पर अपना अधिकार होने का प्रमाण दो ! दिखला दो कि तुम साधारण नहीं हो, नगण्य नहीं हो, हेय नहीं हो, केवल बात ही बात नहीं करते हो प्रत्युत वस्तुओं के स्वामी हो । उनकी प्राप्ति के निमित्त सद् संकल्प करते हो फिर प्राण-पण से चेष्टा कर उसे प्राप्त भी कर लेते हो । मन खोल कर निर्भयतापूर्वक कह डालो कि मैं अमुक वस्तु की प्राप्ति की आकांक्षा रखता हूँ, उसकी प्राप्ति में सन्देह, शक-शुभा किंचित मात्र भी नहीं रखता हूँ । मुझे अमुक आवश्यकता है अतः चाहे कुछ भी हो मुझे उससे सम्बन्ध स्थापित कर ही लेना है, कोई मुझे उससे रोक नहीं सकता । मैं अपने संकल्पों, महत्वाकांक्षाओं, युक्तियों के प्रति सच्चा हूँ, दृढ़ हूँ, अपने मनोरथों रहने वाला दृढ़ निश्चयी हूँ, निज परिस्थितियों का स्वामी हूँ, परमात्मा सत्ता से अभेद सम्बन्ध रहने वाला अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा हूँ ।

निराशा, निरुत्साह एवं निर्वेदना के क्षयी विचारों को सर्वदा के निमित्त तिलांजलि दे चुका हूँ, मैं आत्म-तत्व में पूर्णता से स्थिति हूँ, सब अवस्थाओं का स्वामी हूँ । अतएव मेरी शक्ति में किसे सन्देह हो सकता है ?

उत्तमता ईश्वरीय तत्व है, अतएव उसके सान्निध्य की आकांक्षा उस परम तत्व को निज शरीर में प्रकट करना है । जो जितना ही उत्तमतत्व के समीप अग्रसर होगा, तदनुकूल ही ईश्वरीय अंश अपने आप में प्रकट करेगा । अनेक व्यक्ति जीवन को बेगार समझ कर कुढ़ते-कुढ़ते जीवन व्यतीत करते हैं । वस्तुतः ऐसे व्यक्ति निम्न श्रेणी के हैं, क्योंकि वे उत्तमता जैसे ईश्वरीय अंश की अवहेलना करते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


तुम जो काम हाथ में लो उसमें उत्कृष्टता प्रकाशित करो । उत्कृष्टता को अपना जय चिह्न बना लो । जो पुरुष संसार में अपना नाम उन्नत कर सके है उन्हें उत्कृष्टता से अधिक प्रीति थी ।

तुम्हारा प्रत्येक कार्य उत्तमता लिये हुये हो । पूरा कार्यक्रम उत्तमता से परिपूर्ण हो । भोजन करो तो उत्तमता (स्वच्छता) से हो । रहन-सहन उत्तमता से परिपूर्ण हो । टहलना, फिरना, बोलना आदि जीवन की प्रत्येक क्रिया अत्यन्त सावधानी से उत्तम रीति से सम्पन्न हो । उसमें सद्व्यवस्था हो, क्रम हो, उत्तमता हो । गीता जी का प्रवचन है:-

''**कर्मण्ये वाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचनः ।**''

इन अमूल्य वचनों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उत्तम रीति से कर्म करने का आग्रह करे । जो जितना ही उत्तमता के निकट आयेगा उतना ही परमेश्वर के निकट होगा । अतः जो कार्य करो उसमें लक्ष्य-उसमें प्रधान लक्ष्य उत्कृष्टता का ही सम्पादन रहे । इसी महत् नियम द्वारा पालनकर्त्ता को उत्कृष्ट फल के दर्शन होते हैं । यह मत विचारो कि हमें उत्कृष्टता के अनुपात का पुरस्कार प्राप्त नहीं हो रहा है, अतः काम को उत्तम रीति से करें । स्मरण रहे उत्तम कृत्य स्वयं ही फल है ऐसा करने से उत्तम (उत्कृष्ट) तत्व की अवश्य सिद्धि होगी ।

अपना प्रत्येक कार्य उत्कृष्टता से करने से जो आनन्द लाभ होता है उसका वर्णन असम्भव है । आत्म-तत्व के पुजारी ! यह कदापि अनुभव न करो कि तुम कार्य को सिर का बोझ समझ रहे हो । नहीं ! तुम उत्कृष्टता से कार्य करने के निमित्त बने हो । तुम सदैव उत्कृष्टता के भ्रमर हो अतएव तुम उत्कृष्ट रस का पान करो ।

## निरन्तर आगे बढ़ते रहिये

जो आगे बढ़ता है, वह स्वस्थ, शक्तिमान और दीर्घजीवी रहता है, जो थककर एक ही स्थान पर हारकर बैठ जाता है, वह निर्बल, अशक्त और अल्पजीवी होता है, यह नियम है जो प्रकृति में सर्वत्र दिखाई देता है ।

निरन्तर तीव्र गति से प्रवाहित कलकल सरिताओं का क्षिप्र जल-जीवन और उल्लास से परिपूर्ण होता है, इसके विपरीत जिस जल में प्रवाह नहीं है, जो एक स्थान पर चारों ओर से घिरकर ठहर गया है, वह सड़कर दुर्गन्धमय हो उठता है । इसी सड़े जल को यदि गतिमान् कर दिया जाय, तो इसी में नवजीवन, शुद्धि एवं शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है ।

गति ही जीवन है, स्थिरता मृत्यु का पर्याय है । प्रकृति का निरीक्षण कीजिये । अनन्त आकाश का भ्रमण करता हुआ सूर्य प्रातः से अपना गतिमान जीवन प्रारम्भ करता है और असंख्य लोकों को द्युतिमान करता हुआ सम्पूर्ण दिन गतिशील रहकर रात्रि में विश्राम करता है । उसका जीवन प्रतिदिन प्रतिक्षण गति से परिपूर्ण रहता है । वह निरन्तर आगे बढ़ता है । गतिशील रहने के कारण उसके द्वारा विश्व का उदरपोषण होता है । सूर्य के एक दिन का विश्राम जीव-जन्तु जगत के लिये मृत्यु का संदेश बन सकता है ।

जीव-जन्तुओं, पक्षियों को देखिये । सर्वत्र गति है । वे आलस्य में चूर कभी नहीं रहते, सतत उद्योगशील बने रहते हैं । गतिमान जीवन के कारण वे स्वास्थ्य, सौन्दर्य, और स्फूर्ति का आनन्द प्राप्त करते हैं । यत्र-तत्र आकाश में विहार करने वाले पक्षी, जंगलों में चौकड़ी भरने वाले हिरण, गतिमान गायें, बकरियाँ, घोड़े, भेड़ और भैस, वृक्षों पर उछल-कूद का जीवन व्यतीत करने वाले बन्दर, जल में नित्य गतिशील मछलियाँ, कछुवे, मगर, इत्यादि पूर्ण स्वस्थ, स्फूर्तियुक्त जीवन व्यतीत करते हैं । इनके जीवन में गति नवउल्लास की प्रतीक है इसके विपरीत आलस्य में जड़-जीवों की तरह स्थिर पड़े रहने वाले जीव पंगु, अल्पायु और अस्वस्थ रहते है । निष्क्रिय जीवन व्यतीत करने वाले जीव जल्दी मृत्यु को प्राप्त होते हैं । उनके अवयव शिथिलता में पड़े रहने के कारण अपना कार्य यथोचित रीति से पूर्ण नहीं कर पाते ।

प्राणिशास्त्र हमें सिखाता है कि जो अपनी शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक शक्तियों का निरन्तर उपयोग करता है, उस गति के कारण उसकी ये शक्तियाँ तथा निरन्तर सक्रिय रहने वाले अवयव पुष्ट होकर सुन्दर बन जाते हैं । काम न

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


करने वाले अवयव सूखकर विनष्ट हो जाते हैं । निरन्तर कार्य से हमारा शरीर पुष्ट होकर आत्मा की ऊँचाई प्राप्त करता है ।

लेखक के लिये अपनी माताजी का उदाहरण गतिमान जीवन का जाग्रत उदाहरण है । वे बड़े तड़के पाँच बजे गृहस्थ के नाना कार्यों में दत्तचित्त हो संलग्न हो जाती हैं । ठण्ड या गरमी में शौचादि से निवृत्त होकर स्नान, ध्यान, पूजन, गीता-पाठ के अतिरिक्त गृहस्थ के सभी कार्य ऐसे करती हैं जैसे किसी मशीन के द्वारा किये जा रहे हों । भैंस दुहने का कार्य हो या वस्त्र धोने का, पाठशाला के कार्य हों या सीने-पिरोने के, वे निरन्तर चलते रहते हैं । समस्त दिन कार्य से थककर वे रात्रि में मीठी नींद सोती हैं । उन्हें पता नहीं रहता कि कहाँ सो रही हैं भोजन कम-से कम, वस्त्र सबसे थोड़े किन्तु कार्य सब से अधिक ! उनसे कोई उनके उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य पूछे, तो वे उसे एक ही वाक्य में कहेंगी, **जो फिरैगो, सो चरैगो, बँधो भूकौ मरैगो ।**' अर्थात् जो चल-फिरकर गतिशील जीवन व्यतीत करेगा, उसे खुलकर भूख लगेगी, जो एक स्थान पर बँधा रहकर गतिविहीन जीवन व्यतीत करेगा, उसकी निष्क्रियता उसे मार डालेगी । इस कथन में उनके स्वस्थ जीवन का सम्पूर्ण कर्म खिंचकर आ जाता है । वे गति को ही जीवन का प्रधान लक्षण मानती हैं ।

आधुनिक मानव के गिरे हुए स्वास्थ्य, कुरूपता, अल्पायु का एक प्रधान कारण स्थिर गतिविहीन जीवन है उसे थोड़ी-थोड़ी दूर के लिये सवारी चाहिये । बस और ट्राम ने उससे यात्रा का आनन्द छीन लिया है । साइकिल आधुनिक मानव का जीवन है, क्योंकि इसने आधुनिक युवक के पाँव जर्जरित, 'पंगु' शक्तिविहीन कर दिये हैं । वह साइकिल का ऐसा क्रीतदास हो गया है कि उसे थोड़ा भी चलना नहीं पड़ता । पाँवों का समुचित उपयोग न करने के कारण उसकी जीवन-शक्ति का ह्रास हो गया है ।

हम यह मानते हैं कि कुछ शौकीन लोग टहलने जाते हैं । बड़ी आबादियों में ऐसे व्यक्ति दस प्रतिशत से अधिक नहीं हैं । चाहे आप कोई और व्यायाम करें अथवा नहीं, किन्तु टहलने का लोकप्रिय व्यायाम अवश्य करें । यदि यह नहीं तो आज से ही साइकिल का प्रयोग बंदकर इधर-उधर जाने के लिये पैरों का ही प्रयोग किया करें ।

'चलते रहो का तात्पर्य विस्तृत है । इसका एक अर्थ यह भी है कि कुछ-न-कुछ कार्य करते रहो, आलस्य में निष्क्रिय जीवन व्यतीत न करो । एक कार्य के पश्चात् दूसरा कोई नवीन कार्य आरम्भ करो । मानसिक कार्य के पश्चात् शारीरिक शारीरिक श्रम के पश्चात् मानसिक कार्य-यह क्रम रखने से मनुष्य निरन्तर कार्य-शीलता का जीवन व्यतीत कर सकता है ।

आलस्य शत्रु है, सक्रियता जीवन-जागृति का लक्षण है । श्रम ही मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट पूँजी है । आलसी व्यक्ति परिवार तथा समाज का शत्रु है वह दूसरों के संचित श्रम पर निर्वाह करता है । ऐसे व्यक्ति से प्रत्येक परिवार को बचना चाहिये ।

परिवार में जितने व्यक्ति हों, सभी सक्रिय रहें, अपना-अपना कार्य जागरूकता से सम्पन्न करें । मुखिया का कर्तव्य है कि बच्चों में प्रारम्भ से ही कार्य करने की आदतों का विकास करे । बच्चों में आलस्य उनके भावी जीवन के लिये हानिकारक है ।

निरन्तर कार्य करने से वासनाएँ नियंत्रित रहती हैं । थक जाने से मनुष्य का मन घृणास्पद कृत्यों से बच जाता है । उसकी प्रवृत्तियाँ शुभ कार्यों की ओर अधिक लगती हैं । कार्यशीलता चरित्र को चमकाकर द्युतिमान कर देती है और स्वास्थ्य सौंदर्य से परिपूर्ण कर देती है ।

गतिशील जीवन का समग्र ज्ञान-विज्ञान एवं मर्म ऐतरेय ब्राह्मण के एक गीत में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है । इस गीत में भगवान इन्द्र ने हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को सक्रिय जीवन व्यतीत करने का उपदेश इस प्रकार किया है -

''रोहित ! श्रमसे जो नहीं थका, ऐसे पुरुष को श्री नहीं मिलती । बैठे हुए आदमी को पाप धर दबाता है । इन्द्र उसका मित्र है, जो बराबर चलता रहता है । इसलिये चलते रहो, चलते रहो !

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


''जो पुरुष चलता है, उसकी जाँघों में फूल-फूलते हैं । उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है । चलने वाले के पाप थककर सोये रहते हैं इसलिये चलते रहो, चलते रहो !''

''बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है । इसलिये चलते रहो, चलते रहो !''

''सोने वाले का नाम कलि है, अँगड़ाई लेने वाला द्वापर है । उठकर खड़े होने वाला त्रेता है और चलने वाला कृतयुगी होता है । इसलिये चलते रहो, चलते रहो !''

''चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है । चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है । सूर्य का परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता । इसलिये चलते रहो !''

## आप एक महान व्यक्ति हैं

हमारे शरीर, मन तथा परिस्थितियों के सम्बन्ध में हमारी बहुत-सी क्रियाएँ हमारी प्रत्यक्ष इच्छा के बिना ही अज्ञान रूप से हुआ करती हैं । जिन क्रियाओं को हम समझते हैं कि हम अपनी इच्छा से ही करते हैं, वे भी प्राय: किसी-न-किसी आवेग के वश ही की जाती हैं ।

उदाहरणस्वरूप जब कोई गवैया किसी बाजे को अच्छी तरह सीख लेता है, तो फिर उसे इस बात की आवश्यकता ही नहीं रहती कि उस बाजे को बजाते समय अपनी प्रत्येक अँगुली की गति पर ध्यान दे । यदि उसका चित उन शब्दों में लगा हुआ हो, जिन्हें वह बाजे पर गा रहा है, तो उसकी उँगुलियाँ स्वयमेव ही ऐसी योग्य गति से बाजे पर पड़ेंगी कि उसमें से राग के अनुकूल ही स्वर-ताल निकलेंगे । ऐसी ही गति हमारी सब क्रियाओं की होती है । यह सब कार्य हमारे गुप्त मन द्वारा होता है । किसी सुपरिचित कार्य के करते समय वाह्य मन भ्रमण भी करने लगता है, तो भी गुप्त मन के प्रभाव से चुपचाप क्रिया स्वयं होती रहती है ।

अपने जीवन में हम प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ नया कार्य करते रहते हैं, जिनका हमें ज्ञान भी नहीं होता । उनमें से कुछ आदतें तो अच्छी होती हैं और कुछ बुरी । पहले तो उनका ज्ञान न होने से उनका प्रभाव बहुत थोड़ा होता है, पर समय पाकर जब वे गहरी जड़ें कर लेती हैं, तो उनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है । पान खाने, बीड़ी-सिगरेट पीने, माँस-भक्षण, सिनेमा देखने की गन्दी आदतें, कड़े-रूखे और अभिमान-भरे वचन मित्रों में तथा समाज में अति सूक्ष्म रूपों में शुरू होती हैं, किन्तु समय पाकर वे गहराई से शरीर में जड़ पकड़ लेती हैं । बच्चों में चोरी अपराध की वृत्ति या युवकों में व्यभिचार की दुष्प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे जमकर बढ़ती जाती हैं । पहले छोटे से कार्य एक गन्दी आदत या विषैले विचार का प्रारम्भ होता है, पर उसी के बढ़ जाने पर उससे छुटकारा पाना असम्भव-सा हो जाता है ।

**उन्नति करना अपने वश की बात है:**-अच्छे विचारों, अच्छी आदतों या शुभ संकल्पों को ग्रहण करना हमारे वश की बात है । देववृत्तियाँ जब सोने लगती हैं, तभी दुष्ट अशुभ वृत्तियाँ जागती हैं । असुर हमारे अन्दर सोये पड़े रहते हैं । या यों कहिये कि हमारे मन में बसने और सदा जाग्रत् रहने वाले देवता उन्हें दबाये रहते हैं । देववृत्तियाँ उन विषैले राक्षसों को दबाये या शक्तिहीन बनाये रखती हैं । यदि हम वास्तविक सुख-शांति चाहें, तो हमें देववृत्तियों-जैसे प्रेम, दया, सहानुभूति, सेवा, विनय आदि को सतत जाग्रत् और विकासोन्मुख रखना चाहिये । यदि शुद्धवृत्तियाँ या आपके मनोराज्य में सोये हुए देवता लगातार जागते रहें, अपना देवोचित कार्य सजगता से करते रहें, तो असुर वृत्तियों को पनपने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता और मनुष्य भव्य मार्गों में बढ़ता चला जाता है । शुभ संकल्पों को ग्रहणकर कार्य रूप में परिणत करना हमारे हाथ में है । यदि हम सदैव सावधान रहें और विवेक से अच्छी आदतों को ही चुनें, तो बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं । हम अपना चरित्र जैसा चाहें, बना सकते हैं । सत्-संकल्प की शक्ति स्वाभाविक रूप से मनुष्य में छिपी हुई है । स्वयं आप में निरन्तर इसका उपयोग कर हम इसे जितना चाहे, बढ़ा सकते हैं ।

**दिव्य शक्तियों के उपयोग से उन्हें विकसित कीजिये**-याद रखिए, आपकी शक्तियाँ उत्तरोत्तर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उपयोग से ही बढ़ती हैं । यदि उनसे काम न लिया जाय, तो वे सोने या क्षय होने लगती हैं । प्रत्येक कार्य का कारण विचार है । हम अपने मानसिक साम्राज्य के स्वतन्त्र राजा हैं ।

यह मानसिक राज्य भी कैसा विचित्र राज्य है । इसमें विचित्र कल्पनाएँ और दुनिया भर की देखी, सुनी, बिन देखी सभी बातें होती हैं । इस राज्य में स्वयं आपके अतिरिक्त किसी दूसरे की पहुँच नहीं है । यह राज्य ऐसा है जहाँ किसी स्थूल की गति दूसरे की पहुँच नहीं है । यह राज्य ऐसा है जहाँ किसी स्थूल की गति नहीं है । यह राज्य शून्य में स्थापित है और वह शून्य साकार-गणित का शून्य नहीं, परन्तु निराकार है । वहाँ वायु की भी पहुँच नहीं है ।

अपने मानसिक, कल्पनात्मक राज्य में आप पूर्ण स्वतन्त्र हैं और सब नियमों के निर्माता आप स्वयं ही हैं । सब कुछ आप ही हैं । असंभव को सम्भव बना सकते हैं । यह आपका ऐसा गुप्त राज्य है, जिसे न तो कोई देख सकता है और न कोई जान सकता है तथा न आपके विचारों से किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की आपत्ति हो सकती है ।

स्मरण रखिये, कठिनाई और सरलता, असफलता और सफलता, लाभ और हानि, उन्नति और अवनति-सब आपके मन के अनुसार ही आपके जीवन में प्रतिबिम्बित होती हैं ।

निराश कभी मत होइये । उन्नति के लिये, अच्छी आदतों के लिये, अपने शुभ-संकल्पों की सिद्धि के लिये सतत प्रयत्न करते रहिये । बार-बार प्रयत्न करने से ही आपको उत्साह मिलेगा । सफलता मिलेगी । आपके कठिन कार्य सरल होते जायेंगे । प्रत्येक प्रयत्न, आपकी प्रत्येक छोटी-सी सफलता आपका आत्म-बल बढ़ाने वाली है । भविष्य में आप कठिनतर कार्य भी हँसते-हँसते कर सकेंगे । जीवन में सबसे आवश्यक अपने शुभ संकल्पों की सिद्धि के लिये सावधान रहकर प्रयत्न करना ही है । इस आत्मबल की आवश्यकता युवकों को ही नहीं, किन्तु वृद्धों के लिये भी है ।

**सफलता एक आदत है** -सफलता एक आदत है । छोटेपन से ही सफलता की आदत बनाइये । मनुष्य के मन में ऐसी अद्‌भुत शक्तियों का भण्डार है, जिसकी कल्पना स्वयं मनुष्य नहीं कर सकता । नैपोलियन बोनापार्ट संसार का एक वीर शक्तिशाली व्यक्ति समझा जाता है । वह एक निर्भीक नेता था । उसके वीरतापूर्ण और साहसिक कार्यों के कारण ही संसार के इतिहास में उसका नाम अमर हो गया है । जब हम उसके प्रारम्भिक जीवन पर ध्यान देते हैं तो हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार नैपोलियन इतनी उन्नति कर सका ।

'क्या वह किसी धनी पूँजीपति का पुत्र था ?'

'बिलकुल नहीं । उसका जन्म कोसिका नामक द्वीप में एक गरीब परिवार में हुआ था ।'

'क्या उसे शिक्षा और जीवन की सुविधाएँ प्राप्त थीं ?

'नहीं, बेचारे नैपोलियन को शिक्षा की कुछ भी व्यवस्था न हो सकी थी ।'

'क्या बचपन में वह आराम और शान से रहा ?'

'नहीं, उसका बचपन अन्धकारमय था । वह अपने बाल्यकाल से ही मन्द बुद्धि वाला लड़का था । उस समय उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था । साथ ही साथ वह अत्यन्त दुर्बल एवं कृश शरीर का व्यक्ति था ।'

इतनी मुसीबतों, कठिनाइयों, विरोधों के बावजूद अपने आत्मबल और उच्च संकल्प शक्तियों के बल पर नैपोलियन ने उन्नति की थी ।

वह गरीब, अल्पशिक्षित होकर भी फ्रांस का शासक बना । यह शासक अपने बचपन के नैपोलियन से बिलकुल भिन्न था । नैपोलियन एक साधारण सैनिक से फ्रांस का सेनापति बना । अनेक यूरोपीय देशों को पराजित करके उसने अपने राज्य में मिलाया । उसकी आश्चर्यजनक उन्नति का कारण उसका आत्म-विश्वास था । वह अपने मनोराज्य में सदा यही सोचा करता था कि वही संसार का एक वीर पुरुष है । उसे बचपन से ही अपनी वीरता और महानता पर विश्वास जम गया था । उसका कहना था कि संकल्प-बल की सहायता से संसार में कोई वस्तु असम्भव नहीं है । वह प्रारम्भ से ही अपने मनोराज्य में विश्व पर शासन करने का स्वप्न देखता था ।

**अपनी महानता में अखण्ड विश्वास रखिये**- अपनी महानता में सदा विश्वास रखिये । मनुष्य के मन में ऐसी अद्‌भुत शक्तियों का भण्डार है, जिसकी कल्पना स्वयं मनुष्य भी नहीं कर सकता ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मन की प्रधानता होने के कारण ही इस शरीर का नाम मनुष्य है । विकसित मन वाले व्यक्ति को ही मनुष्य कहना चाहिये । जीवन में प्रत्येक पल पर मन का प्रभाव देखा जाता है । मनुष्य अपने विचारों के कारण ही बन्धन अथवा मोक्ष में पड़ता है । विचारों को एक उद्देश्य पर केन्द्रित करने से ही शक्ति उत्पन्न होती है । अत: जैसे विचारों का मनन, चिन्तन या मन में निवास होगा, वैसी ही इच्छा शक्ति उत्पन्न होगी ।

यदि आपके विचार नीचे स्तर के, विषय-वासना-व्यर्थ खेल-कूद, मनोरंजन, सैर-सपाटा,-क्षणिक आनन्द के हैं, तो शक्ति वैसी ही होगी । जिनके विचार क्षण-क्षण बदलते रहते हैं, वे भला कैसे आगे बढ़ेंगे ?

**आप शरीर नहीं, सर्वशक्तिमान हैं**-जहाँ विचार दृढ़ और संशय रहित हैं, वहाँ शक्ति प्रबल और तीव्र होती है । विचारों में स्थिरता और टिकाऊपन दृढ़ता और श्रद्धा से होता है ।

जरा विचार कीजिये, आप कौन हैं ? क्या आप शरीर हैं ? क्या आप हाड़, माँस, रक्त, चमड़ा आदि दुर्गन्धयुक्त घृणोत्पादक पदार्थों से बने हुए पुतले हैं ? नहीं, आप हाड़, मांस, रक्त कुछ नहीं है । आप एक देव-मूर्ति हैं । जब शरीर पर कोई थप्पड़ मारता है, तब आप कहते हैं कि ''मुझे मारा ।' यह भूल करते हैं । विचारों, तो आपको मालूम होगा कि आप शरीर नहीं हैं, किन्तु स्वयं विचार हैं । स्वयं शक्ति हैं । आप वैसे ही है, जैसा आप वस्तुत: विचार करते हैं । यदि आप अपने आपको शरीर समझते हैं, तो शरीर मात्र हैं । यदि आप अपने आपको आत्मा, महान् आत्मा, उन्नत, महत्तर आत्मा, सर्वशक्तिमान् आत्मा समझते हैं, तो वास्तव में सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्न योद्धा, धीर-वीर नर-पुंगव है । आप दिव्य-मूर्ति हैं । अपने सङ्कल्प से आप जो चाहें बन सकते हैं ।

आप बलवान्, स्वस्थ, तेजस्वी, होने के जन्मसिद्ध प्रकृत अधिकारी हैं । कभी मत कहिये कि मैं दुखी हूँ, अशक्त हूँ, गरीब हूँ, वृद्ध हूँ, बीमार हूँ, निर्बल हूँ, ज्वर-ग्रस्त हूँ ।' ये सब बातें ऊपरी हैं-शरीर सम्बन्धी हैं ।

आप शरीर से ऊँचे हैं-बुद्धि हैं, आत्मा है । दैवी शक्ति के नायक हैं । सब के स्वामी हैं । मन पर पूर्ण अधिकार कीजिये । उसे बलवान् बनाइये । शरीर भी मन की आज्ञा मानेगा । फिर दु:ख, चिन्ता, निर्बलता वृद्धावस्था या असफलता का अस्तित्व न रहेगा । निर्बलता छोड़ दीजिये भ्रम के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश में जागिये ।

यह 'अगर-मगर' यदि ऐसा होता, तो मैं भी उन्नति करता, मेरी सिफारिश होती तो मैं तरक्की करता.....मगर ऐसा नहीं हुआ, योग्यता की कोई पूछ नहीं-आदि कायरपन के शब्दों का व्यवहार अपनी बातों में कदापि न कीजिये । ये शब्द आपको निर्बल बनाते हैं । हृदय और मन में दु:ख, शोक, रोग, पीड़ा, हानि तथा निर्बलता एवं आपत्ति की बातों को स्थान मत दीजिये । इनसे सामर्थ्य शिथिल होती है, अधिकार भ्रष्ट होता है और आप दासता को प्राप्त होते हैं ।

लोक-लज्जा को अपने ऊँचे ध्येय की पूर्ति के आगे मत लाइये । यह विचार आपको उन्नति करने से रोकता है, आपके पैर पकड़ लेता है । 'लोग हँसेंगे, टीका-टिप्पणी करेंगे, जगत-हँसाई होगी, निंदा होगी', इसकी परवाह मत कीजिये । उन्नति का मार्ग कठोर और दुरूह होता है । संसार को पसन्द नहीं आता । वे उस व्यक्ति से ईर्षा करते हैं, जो उन्नति कर रहा है । यदि आप जगत की व्यर्थ बातों की परवा करेंगे, तो सदैव के लिये निराशा के गड्ढे में गिरकर सदा एक ही स्थिति में सड़ते रहेंगे । कूपमण्डूक बनकर बाहर का संसार न देख सकेंगे । ये दुर्बलता के विचार आपकी संकल्प शक्ति की परीक्षा के लिये आते हैं । अत: इनसे विचलित न होकर अपनी दृढ़ता का परिचय दीजिये । असमर्थता मत दिखाइये । दृढ़ प्रतिज्ञा, आत्म-विश्वास और निरन्तर अभ्यास से असाध्य भी सुसाध्य हो जायगा । भगवान की अहैतुकी कृपा और आत्म-शक्ति पर विश्वास करके सतत आगे बढ़ते रहिये ।

आत्मा का तिरस्कार न होने दो, आत्मा की अवज्ञा न होने दो । अपने अन्तर्वासी, आत्मदीप सदा प्रज्वलित शिखा को मन्द न होने दो ।

हम मानव संसार के कोलाहल में इस अमृतवाणी को सुनकर भी अनसुना कर देते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# जीवन का अमृत

जीवन का ज्ञान ही मनुष्य के जीवन को सही, कंटकविहीन मार्ग पर चलाने वाला अमृत है । जिस व्यक्ति के पास जीवन सम्बन्धी ज्ञान, सुख-दुःख हानि-लाभ अच्छाई-बुराई पाप-पुण्य, उतार-चढ़ाव का ज्ञान अधिक है, वही दूसरे से आगे निकलता है और सफल कहा जाता है ।

जीवन का ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है । मनुष्य स्वयं जीवन जीता है । तरह-तरह की गलतियाँ करता है । प्रत्येक गलती के लिए सजा पाता है, सफलता के लिए प्रशंसा का पात्र बनता है । इस मृदुता और कटुता से उसका जिन्दगी सम्बन्धी अनुभव बनता है । इस अनुभव के आधार पर ही वह जीवन में आने वाले संकटों और विषम परिस्थितियों को पार करता है । बिना अनुभव का कच्चा आदमी पग-पग पर गिरता है और सजा पाता है । यह अनुभव ही मनुष्य के जीवन का निचोड़ है ।

लेकिन अनुभव द्वारा शिक्षा-प्राप्ति का यह मार्ग बड़ा लम्बा और जटिल है । कई व्यक्ति बार-बार गलती करते हैं, फिर भी अनुभव नहीं प्राप्त करते, न उससे लाभ उठाते हैं । जो व्यक्ति केवल अनुभवों के आधार पर आगे बढ़ते हैं, वे लाभ तो उठाते हैं, पर यह अनुभव बड़ी देर में वृद्ध हो जाने पर प्राप्त होता है । कोई-कोई अनुभव तो महीनों और वर्षों में प्राप्त होता है । कभी-कभी ऐसी बड़ी हानि उठानी पड़ती है जिसका मूल्य जीवन भर चुकाना पड़ता है । एक गलत बात का बड़ा हानिकारक प्रभाव हो सकता है ।

दूसरे प्रकार का ज्ञान पुस्तकों में संचित, युग-युगों से रक्षित, उत्तम मनोमुग्धकारी शैली में लिखित अनुभवों से प्राप्त होता है । यदि हम जीवन में प्राप्त अपने निजी अनुभवों पर ही निर्भर रहें, तो आधा जीवन इन्हीं प्रयोगों तथा उपयोगी नियमों को समझने और उपयोग में लाने के तरीकों में लग सकता है, क्योंकि जीवन का प्रत्येक सूत्र बड़ी भारी कीमत पर मिलता है ।

जीवन एक बड़ी पुस्तक है । इसमें प्रत्येक दिन एक-एक पृष्ठ की तरह है, प्रत्येक पंक्ति-पंक्ति पर नये रहस्य प्राप्त होते रहते हैं । लेकिन जीवन एक-दो-दिन या एक-दो वर्ष का न होकर वर्षों का है । पूरे रहस्य हमें तभी प्राप्त होते हैं, जब हमारा पूरा जीवन ही समाप्त हो जाता है फिर उन अनुभवों, निष्कर्षों, बहुमूल्य सूत्रों और उपयोगी जीवन-नियमों को काम में लाने के लिए जीवन की साँसें ही शेष नहीं बचतीं ।

इसलिए जितनी जल्दी हमें जीवन के सच्चे अनुभव, लाभदायक नियम और फायदे की बातें कहीं से प्राप्त हो जायँ, तथा जितनी जल्दी हम उन नियमों का प्रयोग करने लगें, उतनी ही जल्दी हम श्रेष्ठ जीवन का निर्माण कर सकते हैं ।

जिस-जिस व्यक्ति ने जीवन के सम्बन्ध में जो-जो अनुभव पूर्ण बात लिखी हैं, वह उन्हें अपने दैनिक जीवन में धारण करता है । उनके बल पर आगे बढ़ता है । वह उन नियमों से लाभ उठाता है जिन पर चलकर महान् व्यक्तियों ने यश, प्रतिष्ठा और सफलता प्राप्त की थी ।

**प्रत्येक अच्छी पुस्तक जीवन का निचोड़ होती है**- जिसे आप पुस्तक कहते हैं, वह कागज की सूखी, निष्प्राण, निस्पन्द, मरी हुई चीज नहीं है । पुस्तक तथा मासिक पत्र जीते-जागते जीवन की हलचल हैं ।

पुस्तकों तथा समाचार पत्रों के शब्द-शब्द में अनुभव की अमरता है, जीवन पथ की कठिनाइयों के हल हैं, तरु की शीतलता है, नव विश्वास और महकते प्राण हैं, हृदय के सुरभित सुमन खिले हुए हैं, धरती को स्वर्ग बनाने वाले स्वर्ण-सूत्र हैं । आशा का शरच्चन्द्र हँस रहा है, तो उल्लास की रजत रश्मियाँ छिटक रही हैं ।

पुस्तकों की दुनिया में बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं, संसार के बड़े-बड़े विचारक, कवि, लेखक, नेता जीवित है । वे हमारी सहायता के लिए प्रतिफल तैयार हैं, वे दिन को दिन और रात को रात नहीं समझते । हम जब चाहें, जहाँ चाहें पुस्तकों में बैठे हुए अपने गुरुओं तथा मित्रों को साथ ले जा सकते हैं ।

पुस्तकों के पृष्ठों में एक हमेशा सजा रहने वाला जीवित संसार है । इस मरणशील दुनिया में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


यह हाड माँस का नश्वर शरीर पता नहीं कब नष्ट हो जाये, पर जो अनुभव पुस्तकों में लिखे हैं, दीर्घ काल तक अक्षय रहने वाले हैं ।

पुस्तकों में, संसार में दुनिया की सब समस्याओं को हल करने के तरीके हैं । मानव जीवन और समाज के निगूढ़तम रहस्यों के निचोड़ भरे हैं ।

सच मानिये, जो ज्ञान आप पचास वर्ष जीवित रह कर प्राप्त करते, वह पुस्तकों, समाचार पत्रों इत्यादि के माध्यम से आसानी से प्राप्त कर सकते हैं । इनमें जीवन का निगूढ़तम रहस्य भरा पड़ा है और हमारे लिए संचित है ।

जो ज्ञान आपको पचास वर्षों के लम्बे जीवन को जीकर प्राप्त होता, वह अच्छी पुस्तकों के द्वारा आपको जीवन के आरम्भ में ही, बल्कि आज ही या जब आप चाहें प्राप्त हो सकता है ।

जिस घर में पुस्तकों का निवास है, उसमें अनेक विद्वानों, विचारकों, तथा महात्माओं का निवास है । आप अपनी अलमारी में असंख्य समझदार मनुष्यों को साथ रखे हुए हैं ।

ऋषि तिरुवल्लुवर के शब्दों में, ''विद्वान पुरुष सुगन्धित पुष्पों के समान हैं । वे जहाँ जाते हैं, अपने साथ मधुर सुगन्ध का आनन्द ले जाते हैं, उनका सभी जगह घर है और सभी जगह स्वदेश है ।

विद्या धन है । अन्य वस्तुएँ तो उसकी समता में बहुत ही तुच्छ हैं । यह ऐसा धन है, जो अगले जन्मों तक, मनुष्य की पीढ़ियों तक परिवार में संस्कारों के रूप में साथ रहता है ।''

विद्या द्वारा संस्कारित की हुई बुद्धि आगामी जन्मों में क्रमशः उन्नति ही करती जाती है और उसका जीवन उच्चतम बनते हुए पूर्णता तक पहुँच जाता है ।

कुएँ को जितना खोदा जाये, उसमें से उतना ही अधिक जल प्राप्त होता जाता है, इसी प्रकार जितना स्वाध्याय, पठन-पाठन, लेखन इत्यादि किया जाय, मनुष्य उतना ही ज्ञानवान् बनता जाता है ।

मनुष्य क्या है ? विश्व क्या है ? ईश्वर, आत्मा और जीव क्या है ? मनुष्य जीवन के बाद क्या होता है । सर्वोत्तम जीवन कैसे व्यतीत किया जा सकता है ? इन्हें वे ही जान सकते हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े विचारकों के ग्रन्थों का गम्भीरता से अध्ययन किया है, लिखा-पढ़ी की है ।

आश्चर्य होता है, ऐसी अनुपम सम्पत्ति को उपार्जन करने में न जाने क्यों, लोग आलस्य करते हैं ?

आयु का कोई प्रश्न नहीं है । अध्ययन कभी भी, किसी भी उम्र में किया जा सकता है । चाहे मनुष्य बुड्ढा हो जाय, मरने के लिए चारपाई पर पड़ा हो, तो भी विद्या प्राप्त करने में उसे उत्साहित होना चाहिए । ज्ञान तो जन्म-जन्मान्तरों तक साथ रहने वाली दिव्य सम्पत्ति है, जो पढ़ा लिखा है, वही नेत्रवान है । जिसने विद्या नहीं पढ़ी वह अन्धा है । उसके माथे में तो दो गड्ढे मात्र हैं, नेत्र नहीं । नेत्र तो ज्ञान के होते हैं ।

आप का मित्र सम्भव है, आपका साथ छोड़ कर चला जाय, किन्तु पुस्तकरूपी संत्सग सदा आपके लिए खुला हुआ है ।

यदि स्वाध्याय द्वारा प्राप्त उपयोगी ज्ञान को जीवन में उतारा जाय, तो जीवन की अनेक मूर्खताओं से सहज ही बचा जा सकता है ।

पुस्तकों में संचित विचारों ने संसार में बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ उत्पन्न कर दी है । इन्हें निष्प्राण समझना बड़ी भारी भूल है । उनमें महती शक्ति भरी हुई है । वे उतनी ही स्फूर्तिवान् होती हैं जितने उनके लेखक । जिस प्रकार एक शीशी में कोई अतीव गुणकारी ओषधि जीवन में उपयोग के लिए सम्भाल कर रखी जाती है, उसी प्रकार एक अच्छी पुस्तक में एक महान् आत्मा के जीवन का सार-तत्व भरा होता है । उसी जिंदगी के निचोड़ से हम अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकते हैं ।

कवि मिल्टन के शब्द स्मरण रखिये

''एक श्रेष्ठ पुस्तक एक महान् आत्मा की बहुमूल्य रक्त की बूँदों की तरह है, जो शाश्वत उपयोग की वस्तु है, पथ निर्देशक है । उसमें जीवन का सर्वोत्तम रस, अनुभवों का निचोड़ भावी पीढ़ी के लिए मौजूद रहता है ।''

यह मानव जीवन अति दुर्लभ है । बार-बार नहीं मिलता । इस जीवन के अनुभव हम दूसरे नए जीवन में काम में नहीं ला सकते । पता नहीं अगले

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जन्म में हमें यह सुरदर्लभ जीवन प्राप्त हो, या न हो । इसलिए स्वयं अपने अनुभवों के पकने की प्रतीक्षा किए बिना हमें पुस्तकों के स्वाध्याय द्वारा अधिकतम लाभ उठाना चाहिए ।

आप अवकाश के क्षणों को व्यर्थ ही सिनेमा, क्लबों, व्यर्थ की बातचीत, ताश, चौपड़, गप्पबाजी, चुहल तथा वेमतलब की बातों में नष्ट कर देते हैं । ये मनोरंजन के साधन स्वस्थ नहीं हैं । स्वाध्याय का साधन स्वस्थ और गुणकारी है ।

स्वाध्याय से आप अपनी गुप्त शक्तियों का विकास करते हैं और समुन्नत आत्माओं के सत्सङ्ग में रहते हैं । वे आपको पवित्र कल्पनाएँ और विचार की नई दिशाएँ देते हैं । स्वाध्याय हमारे दैनिक जीवन का एक अंग होना चाहिए ।

## आकर्षक व्यक्तित्व बनाइये

आकर्षक व्यक्तित्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कुछ मनोवैज्ञानिक नियमों का ज्ञान आवश्यक है । अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक डेल कार्नेगी ने व्यावहारिक मनोविज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश डाला है और वे कुछ ऐसे उपयोगी निष्कर्षों पर पहुँचे हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं । प्रस्तुत लेख में हम कुछ ऐसे ही उपयोगी नियमों का उल्लेख करेंगे ।

सद्भावना पूर्ण व्यवहार युक्त दूसरे नागरिक ही आपको सामाजिक प्रतिष्ठा और मान-सम्मान देने वाले हैं । उनके दृष्टिकोण एवं विचारधारा पर आपकी सफलता अवलम्बित है । जैसा आपके पड़ौसी मातहत, अफसर, आसपास वाले समझते हैं, वैसे ही वास्तव में आप हैं । समाज में आपके एक-एक कार्य की सूक्ष्म अलक्षित तरंगें निकला करती हैं, और दूसरों पर प्रभाव डाला करती हैं ।

भलाई, शराफत, मृदुता, का एक बार किया हुआ सद्व्यहार वह धन है जो रात-दिन बढ़ता है । यदि दैनिक व्यवहार में आप यह नियम बनालें कि हम जिन लोगों के सम्पर्क में आयेंगे, उनमें से छोटे-बड़े सबके साथ सद्भावनायुक्त व्यवहार करेंगे, मधुर भाषण करेंगे, कटुता और आलोचना से बचते रहेंगे, तो स्मरण रखिये आपके मित्र और हितैषियों की संख्या में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी । आप दूसरों को जितना प्रेम देंगे, जितनी उदारता, सहानुभूति दिखलायेंगे, उससे दस गुनी उदारता और सहानुभूति आपको उनके द्वारा प्राप्त होगी । सद्व्यवहार, दूसरे के ''अहं'' भावकी रक्षा करना वह आकर्षण है जो दूर तक अपना प्रभाव डालता है । धीरे-धीरे उदारता मनुष्य के चरित्र का एक आवश्यक गुण बन जाती है । उदार मनुष्य दूसरों से प्रेम अपने स्वार्थ साधन के हेतु नहीं करता वरन् उनके कल्याण के लिए करता है । उदार व्यक्ति में प्रेम सेवा का रूप धारण कर लेता है । उदार व्यक्ति दूसरे के दु:ख से स्वयं दु:खी होता है । उसे अपने दु:ख-दुख की उतनी चिन्ता नहीं रहती जितनी कि दूसरे के दु:ख-सुख की रहती है ।

सहानुभूति एक प्रामेसरी नोट के समान है । इससे संसार के किसी भी व्यक्ति को वश में किया जा सकता है । जब सहानुभूति आदत का एक अंग बन जाता है, अर्थात् जब अचेतन मन भी उसी में परिपूर्ण हो जाता है, तो उसका प्रभाव छोटे बच्चे से लेकर बड़े-से-बड़े व्यक्ति तक पर पड़ता है ।

संसार में कुछ ऐसी वस्तुयें है, जो देने से बढ़ती हैं न देने से घटती हैं । विद्या यदि दी जाय तो बढ़ेगी । इसी प्रकार सहानुभूति, प्रेम, और मान प्रतिष्ठा है । जो मनुष्य अपने मन को जितना ही सद्भावना युक्त व्यवहार में लगाता है, दूसरों से उतना ही अधिक पाता है ।

दूसरों को सम्मान दीजिए, प्रसिद्धि के लिए दूसरों के सम्मान की रक्षा कीजिए । व्यक्ति अपने ''अहं'' की रक्षा करना चाहता है । प्रत्येक में कुछ न कुछ मात्रा में गर्व, मान, अपने आप को बहुत श्रेष्ठ समझने की उच्च भावना है । प्रत्येक अपने को सज्जन, उच्चतम, पवित्र, ईमानदार, सच्चा, बहादुर, बुद्धिमान्, विज्ञ, वफादार, कुलीन समझता है । अपनी समझदारी तर्क शक्ति, ज्ञान, अध्ययन, पूर्णता उच्चता में नगण्य से नगण्य व्यक्ति को विश्वास है ।

आप किसी से भी यह न कहिए कि ''तुम नीच हो, तुममें बुद्धि, समझदारी, तर्क, शक्ति, ज्ञान, सतर्कता, नहीं, तुम कठोर, कमजोर, दुर्बल, डरपोक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अस्थिर, अविवेकी हो । तुममें सोचने-समझने की शक्ति नहीं । तुममें सहनशीलता, संतुलन और सुस्थिरता नहीं । तुममें स्वास्थ्य, तेजस्विता, शक्ति अपूर्णता, प्रेम का अभाव है । अपनी कार्य-शक्ति में विश्वास नहीं । इस प्रकार के नकारात्मक अभावयुक्त शब्द अपने विषय में कोई भी सुनना पसन्द नहीं करता । दूसरों के गर्व को चूर्ण करने वाले ऐसे अनेक शब्द पारस्परिक वैमनस्य, कटुता, शत्रुता और लड़ाई के कारण बनते हैं ।

आप दूसरे से इस प्रकार की बात-चीत कीजिए कि जिससे उसके सम्मान और गर्व की रक्षा होती चले । वह यह अनुभव करे कि आप उसकी इज्जत करते हैं, उसकी राय की कद्र करते हैं, उससे कुछ सीखना चाहते हैं । यदि किसी व्यक्ति के मन पर अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से यह बात बैठ जाय कि आप उसका सम्मान करते हैं, तो वह सदैव आपकी प्रतिष्ठा करता रहेगा ।

सम्मान देने में कभी-कभी आपको झूठी प्रशंसा और दिखावा भी करना होगा । कुछ ऐसे उत्साहवर्धक शब्द बोलने पड़ेंगे जिनसे उनके गर्व की रक्षा हो सके । इन शब्दों के प्रयोग में बड़े सतर्क रहिए । कहीं ऐसा न हो कि आपकी असावधानी में कुछ ऐसे शब्द निकल जायें या अशिष्ट व्यवहार हो जाय, जिससे दूसरे व्यक्ति को भ्रम हो जाय ।

आप लोगों की प्रशंसा और अभिवादन करना सीखें । प्रशंसा इस प्रकार से की जाय कि दूसरा यह न समझ सके कि उसे बनाया जा रहा है या उसकी हँसी उड़ायी जा रही है । प्रशंसा से दूसरा अत्यन्त उत्साहित होता है तथा अपना हृदय खोलकर रख देता है । जितना ही मनुष्य दूसरे की प्रशंसा करता है, उतनी ही उसमें अच्छा काम करने की शक्ति आती है, यहाँ तक कि कुछ समय के पश्चात् आपको अप्रत्यक्ष रूप से वह प्रेम करने लगता है । आकर्षण का नियम-प्रतिदान और पुरस्कार का नियम निरन्तर हमारे मानसिक जीवन में कार्य कर रहा है । प्रशंसा देने से मिलती है और घृणा, क्रोध, तिरष्कार, कुआलोचना करने से ये ही सब हमें भी प्राप्त होते हैं ।

गुण-ग्राहक बनिए दूसरों में जो उत्तम बातें हैं उन्हें प्रकट में लाने के लिए आप अवसर ढूँढ़ते रहिए । तनिक-सी गुण-ग्राहकता से दूसरा व्यक्ति एकदम आपकी ओर आकर्षित हो जाता है । यह एक मनोवैज्ञानिक नियम है कि जब दूसरा देखता है कि आप उसमें दिलचस्पी ले रहे हैं, उसकी महत्ता स्वीकार कर रहे हैं, गुणों की तारीफ कर रहे हैं, तो वह अनायास ही आपसे प्रभावित हो जाता है । सम्भव है कि कोई किसी समय हतोत्साहित हो रहा हो, और आपकी गुणग्राहकता से उसका टूटता साहस पुनः जाग्रत हो जाय और इस कारण वह आपकी ओर आकर्षित हो । जब हम लोगों को गुणग्राहक दृष्टि से निरीक्षण करने लगते हैं तो हर प्राणी में कितनी ही अच्छाइयाँ, उत्तमतायें और विशेषताएँ दीख पड़ती हैं ।

**दूसरे की सुनिए**-प्रत्येक व्यक्ति अपनी कहते नहीं थकता । वह एक ऐसा आदमी चाहता है, जो उसकी बातें, मनोव्यथायें, आपबीती घटनायें, उसी के विचार और दृष्टिकोण सुनता रहे । प्रत्येक आदमी अपने विचारों में दिलचस्पी रखता है और अपने विचार दूसरों पर प्रकट करना चाहता है ।

लोग जब आपसे वार्त्तालाप करें, तो आप अपनी बातें कहने के स्थान पर उनकी सुनने के लिए तैयार रहिए । उन्हें उन्हीं के विषय में बोलने दीजिये । आपका व्यवहार ऐसा हो कि वे अपनी बातों को खूब दिलचस्पी लेकर सुनाते रहें । मध्य में ही हतोत्साहित न हो जायँ । आप उन्हें उनकी दिलचस्पी की वस्तुओं, व्यक्तियों, दृश्यों, विचारों स्थानों के विषय में कहने दीजिए । उनकी रुचि और सुविधा का ध्यान रखिये ।

दूसरों की बातें धैर्य-पूर्वक सुनना, बहुत बड़ी बात है । मनोविज्ञान की दृष्टि से यह एक प्रकार से दूसरे के 'अहं' को उत्तेजित करना है । आप देखेंगे कि उनकी बातों में आत्म-प्रशंसा, अपनी वीरता बुद्धि धैर्य, कुशलता, सन्तुलन, ईमानदारी, वफादारी, सावधानी, विज्ञता, विपुलता इत्यादि के उदाहरण भरे पड़े होंगे । आपको चाहिए कि जैसा अवसर हो, और जैसा वह व्यक्ति अपने लिए चाहता हो, उसी गुण को आप उसके चरित्र में स्वीकार कर लें ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आप उन्हें यह कहने का अवसर दीजिए कि वे कैसे योग्य वकील हैं । किस उत्तमता से अपना तर्क करते हैं, अपने तर्क की पुष्टि लिए कैसे-कैसे उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । अथवा वे कैसे कुशल व्यापारी हैं, और कैसे अच्छे सौदे पटा सकते हैं, कैसे अच्छे अध्यापक हैं और किस कुशलता से विद्यार्थियों को पढ़ा सकते हैं । उन्हें कहने दीजिए कि वे कैसे चुस्त, चालाक, समझदार हैं । उनके बच्चे और कुटुम्बी कैसे योग्य हैं । ये और इसी प्रकार की अनेकों ऐसी बातें मनुष्यों के अन्तःमन में बन्द पड़ी रहती हैं जिन्हें कोई नहीं सुनना चाहता । यदि आप धैर्य से उन्हें सुनते जायँ, उनमें दिलचस्पी और उत्सुकता दिखाकर उन्हें उत्साहित करते रहें, तो वे सदा के लिए आपके प्रशंसक बन जायँ ।

आप प्रत्येक व्यक्ति की आपबीती बड़े ध्यान से सुनने की आदत डालिए, मानो वास्तव में आप उससे भी अधिक बात सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । अतः अपनी-अपनी मत तानिए, दूसरे की सुनिये, और उसे अपने विषय में अधिक कहने का अवसर दीजिए ।

**व्यर्थ की आलोचना अथवा दोषारोपण न कीजिये**-दूसरों की आलोचना करना बड़ा खतरनाक है । आलोचना इस ढंग से की जाय कि दूसरे की कमजोरियों पर एक इशारा मात्र हो जाय । भोंड़े तरीके से की गई आलोचना या व्यर्थ का दोषारोषण बड़ी हानि पहुँचाता है । अच्छा तो यह है कि आप इस कार्य से दूर ही रहें और इस काम को किसी दूसरे ही को करने दें । यदि करना ही पड़े तो घुमाकर दूसरे की निर्बलताओं की ओर संकेत ही कीजिए ।

मान लीजिए कि आपकी पत्नी ने भोजन अच्छा नहीं बनाया, उसमें मिर्च अधिक है, नमक बहुत कम, और सो भी ठंडा पड़ा है । यदि आप उत्तेजित होकर यों ही कह दें, तो गृह-युद्ध अवश्य छिड़ जायगा । आप यों कहिए..'आज भोजन का स्टैण्डर्ड रोजाना से कुछ नीचा रह गया है । यदि मिर्च कुछ कम होतीं तो बड़ा जायकेदार बन जाता । नमक कुछ चटकीला होता तो भोजन का आनन्द आ जाता । कल को अधिक अच्छा भोजन मिलेगा ।'' इत्यादि ।

आलोचना करते समय यदि किसी दुर्गुण का जिक्र करना पड़े तो पहले किसी सद्गुण से शुरू कीजिए । सद्गुण का बखान करने से दूसरे का ''अहं'' उत्तेजित हो जायगा, और वह आपके द्वारा संकेत किए गये दुर्गुण को दूर करेगा ।

दूसरा जब समझता है कि उसके विषय में आपके हृदय में अति उच्च धारणायें हैं, तो वह केवल आपको प्रसन्न करने मात्र के लिए उसी स्टैण्डर्ड तक आने की चेष्टा करता है । यदि उसमें कोई दुर्गुण भी होता है, तो उसको भी त्याग देता है, प्रत्येक व्यक्ति में दिलचस्पी लेकर उसकी गुप्त दुनिया में प्रवेश कीजिए, उसके गुण-दोष देखिए । फिर प्रीतियुक्त दृष्टिकोण और शहद सी मधुर भाषा में उसे समझाइये ।

**दूसरों को देखकर प्रसन्न होइये**-जब आप दूसरों को प्रसन्न-मुख से अपनी ओर बुलाते हो या बातचीत करते हो, तो उसे हार्दिक प्रसन्नता और उत्साह होता है । प्रसन्नता दैवी आकर्षक तत्व है । आप सदैव प्रसन्नता से ही बातें कीजिए । जब आप दूसरे के पास मिलने जायँ, तो भी आपको प्रसन्नता प्रदर्शित करनी चाहिए । प्रसन्नता से दूसरा व्यक्ति भी पुष्प की भाँति खिल उठता है ।

अगर आप कुशल व्यक्ति हैं तो आप इस बनावटी प्रसन्नता से ही सन्तुष्ट न रहेंगे बल्कि आन्तरिक आह्लाद प्रदर्शित करेंगे । आन्तरिक प्रसन्नता न होने से उतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता तथा और को जो सन्तोष होना चाहिए वह नहीं होता । प्रसन्नता, प्रफुल्लता, हर्ष, खुशी, उत्साह, जिंदादिली, उल्लास और आनन्द शब्द नहीं रत्न है । इनमें से प्रत्येक भाव आश्चर्यजनक प्रभाव डालने वाला है । फूल-सा हँसता हुआ मुख किसे आकर्षित न करेगा ? इन शब्दों के अन्दर छिपे हुए भावों को जीवन में उतारिये और अपने स्वभाव का एक अंग बनाइये ।

वन्दनीय पुरुष कौन है ? इसका उत्तर देखिये-

**बदनं प्रसादसदनं सदय हृदयं सुधामुचो वाचः ।**
**करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ।।**

''जिनका मुख प्रसन्नता का घर है, हृदय दयायुक्त, वाणी अमृत सी मधुर है तथा क्रिया परोपकारमयी है, वे किनके वन्दनीय नहीं होते ?

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्रसन्न मुख एक ऐसे पुष्प के समान है, जिसे मुस्कराता देख हम अनायास ही उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं । प्रसन्न मुख आकर्षण का केन्द्र बना रहता है ।

स्मरण रखिये, लोग आपका रोना नहीं सुनना चाहते, उनके पास अपनी ही मुसीबत कम नहीं है । वे मुहर्रमी सूरत पसन्द नहीं करते । उन्हें तो आपके हास्य, विनोद, उत्तम स्वभाव, प्रसन्न मुख, आकर्षित करने वाली बातें, नई-नई चमत्कार-पूर्ण उक्तियाँ, सरसता की आवश्यकता है । आप जितनी मात्रा में ये वस्तुयें वितरित कर सकते हैं, उतनी ही मात्रा में प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं ।

## विश्वास एक आध्यात्मिक शक्ति है

औरंगजेब मुगल वंश का अन्तिम प्रभावशाली सम्राट् हुआ । वह सबसे छोटा भाई था । अपने भाइयों में, उम्र में सबसे कम, पर बुद्धि में सबसे चतुर, चींटी-जैसा काम में चिपटा हुआ । उसने अपने पिता को छल-बल से जेलखाने में डाला और एक-एक करके सब भाइयों की हत्या कर डाली । धोखा, झूँठ, कपट, फरेब, हत्या, खूंरेजी-जो कुछ भी सम्भव था, वह उसने काम में लिया । इस प्रकार जो छोटा भाई कभी शाहंशाह न बनता, वह भारत का सम्राट हुआ ।

और उसने भारत पर अस्सी वर्ष राज्य किया । हिन्दू उसके नाम से काँपते थे, मुसलमानों का भी वह प्यारा न बन सका । उसका घरेलू और पारिवारिक जीवन भी सुखी और शान्त न रहा ।

इस भारत-सम्राट् की मानसिक अशान्ति का क्या कारण था ? क्या उसके पास रुपये-पैसे, शान-शौकत, नौकर-चाकरों की कमी थी ? क्या शरीर की सेवा करने या चिकित्सा करने वाले डाक्टर उसके पास न थे ? या सांसारिक वैभव की कमी थी ? नहीं, इनमें से किसी की कमी न थी । उसे संसार के समस्त वैभव, सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं ।

पर उसके मन में सबके प्रति घोर अविश्वास था । वह अनेकों को मारकर या सताकर भारत का शाहंशाह बना था । इसलिये सभी को अपने शत्रु-रूप में देखता था । किसी पर किसी तरह का भी विश्वास नहीं करता था ।

खाने-पीने में उसे अपने रसोइया पर विश्वास न था । उसे सदा डर था कि कोई उसे जहर न दे दे । उसे अपने सैनिकों, फौज के अफसरों कार्यकर्त्ताओं, पुत्र-पुत्रियों, मातहतों-किसी पर विश्वास न था । वह सभी को धोखेबाज, मक्कार, बेईमान, झूठे, फरेबी समझता था । उसके शासन काल में अविश्वास का यह विषैला और दूषित वातावरण समग्र भारत में विस्तृत होकर फैल गया । जनता को भी उसमें विश्वास न रहा । उससे घृणा करते रहे । औरंगजेब दमन से काम लेता रहा । उसे यही डर रहता था कि न जाने किस ओर से उसके प्रति विद्वैष, क्रांति और कटुता का ज्वालामुखी फूट पड़े । यह अविश्वास ही अन्ततः विशाल मुगल साम्राज्य के क्षय का कारण बना । यह है अविश्वास का कुप्रभाव ।

विश्वास से विश्वास पैदा होता है, किन्तु अविश्वास से अविश्वास का ही वातावरण फैलता है ।

जब पिता-पुत्र पर, माता-पुत्री पर, पति-पत्नी पर, भाई-भाई पर ग्राहक-दूकानदार पर, अफसर मातहत पर अविश्वास की काली छाया डालता है, तो उससे घर, परिवार, दफ्तर, महकमे या समाज का सौख्य प्रेम, पारस्परिक सद्भाव सब नष्ट हो जाता है । हर व्यक्ति दूसरे से डरता है ।

अविश्वास से घर में स्थान-स्थान पर ताले पड़े रहते हैं । हर एक सन्दूक तथा अलमारी का अलग ताला होता है । घर का स्वामी तालों की कुंजियों को मजबूती से पकड़े रहता । कोई उसके सन्दूक के पास भी जाता है, तो उसे संदेह की नजर से देखता है । रात्रि में जरा-सा खटका होते ही उसकी नींद खुल जाती है ।

अविश्वास के कारण प्रत्येक पारिवारिक सदस्य एक दूसरे से पैसे-पैसे का हिसाब पूछता है । यदि संयोगवश कोई वस्तु यथास्थान पर न मिले तो चोरी का भ्रम उत्पन्न होता है । सन्देहयुक्त व्यवहार से कटुता उत्पन्न होती है ।

अविश्वास के उत्तर में दूसरा भी अविश्वास से जवाब देता है । सम्पूर्ण वातावरण अस्वस्थ विचारों से बोझिल हो जाता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


इंग्लैड का एक पादरी विश्वास की आध्यात्मिक शक्ति में प्रगाढ़ विश्वास करता था । वह प्राय: कहा करता था कि विश्वास के सही प्रयोग द्वारा बुरे आदमी में भी सद्गुणों, सत्-प्रवृत्तियों और शुभ संकल्पों को विकसित किया जा सकता है ।

उसका द्वार सदा-सर्वदा यात्रियों, कष्ट-पीड़ितों, दीनहीन, गरीबों अर्थात् हर किसी के लिये खुला रहता था । दिन तो क्या, रात में वह आतिथ्य करने से न चूकता था । जो कोई उसके घर में एक बार आतिथ्य पा लेता था उसके प्रेमभाव, सेवा, सहयोग और भलमनसाहत से प्रभावित हुए बिना न रहता था ।

एक बार कैद से छूटा हुआ एक भयंकर अपराधी रात को शरण लेने के लिये उसी नगर में इधर-उधर फिर रहा था । उसी पादरी का द्वार खुला हुआ दीखा । अन्दर रोशनी चमक रही थी । उसने उसमें प्रवेश किया ।

पादरी प्रेम की साक्षात् प्रतिमा था । उसने बड़े प्यार से उसका स्वागत किया । भोजन कराया, विश्राम के लिये चारपाई दी । रात्रि में जब अपराधी सो रहा था, तब उसके मन में फिर चोरी की बात आयी, जब सब सो रहे थे, तब उसने पादरी के दो चाँदी के दीपदान चुरा लिये, किन्तु जब वह चुराकर जा रहा था, पुलिस के द्वारा पकड़ा गया, जब वह पादरी के सम्मुख लाया गया, तब उसने कहा-'ये मेरे प्रिय मित्र हैं । मैंने ये दीपदान इन्हें उपहार के रूप में दिये हैं । आप इन्हें छोड़ दीजिये ।'

वह अपराधी छोड़ दिया गया, पर उसके मन में धक्का लगा । उसके ज्ञान के नेत्र खुल गये । अपने पाप पर उसे पश्चात्ताप हुआ । उसे चोरी, डकैती, अन्याय, झूठ, कपट से घृणा हो गयी । उसकी जगी हुई आत्मा ने उसे न्याय, सत्य और विवेक के पथ पर अग्रसर किया । उसने अच्छा नागरिक बनने का प्रयत्न किया और एक दिन आया जब वह बदलकर एक श्रेष्ठ भला नागरिक बन गया । यह था पादरी के भले व्यवहारों का शुभ चमत्कार !

जब आप किसी को शुभ संकेत देते हैं, उसके साथ सद्-व्यवहार करते हैं, तो उसकी भलाई को जाग्रत करते हैं । शुभ संकेतों से मन में सोया हुआ देवत्व जाग उठता है । मनुष्य का नया जन्म होता है ।

दूसरों के भले और उत्तम गुणों को सक्रिय कीजिये । यदि आपको किसी में कोई भली बात, कोई दैवी गुण, कोई श्रेष्ठता दिखाई देती है, तो उसकी जी खोलकर प्रशंसा कीजिये । आपके इस प्रोत्साहन से उस व्यक्ति का दैवी पक्ष जाग उठेगा ।

संसार में कोई व्यक्ति बुरा नहीं है । सब में श्रेष्ठताएँ भरी हुई हैं । आवश्यकता एक ऐसे व्यक्ति की है, जो अच्छाई को लगातार प्रोत्साहन देकर बढ़ाता रहे । कैसे दु:ख की बात है कि हम मनुष्य को उसकी त्रुटियों के लिये तो सजा देते हैं, पर उसकी अच्छाई के लिये प्रशंसा में कंजूसी करते हैं

आप विश्वास के साथ दूसरों को अच्छा कहें, तो निश्चय ही वह श्रेष्ठ बनेगा । मन को अच्छाई पर जमाइये, सर्वत्र अच्छाई ही बढ़ेगी । आपके तथा दूसरे के मन में बैठे हुए देव जाग्रत और चैतन्य होंगे तो उनसे देवत्व बढ़ेगा ।

स्मरण रखिये दोषों के चिन्तन से हानि-ही-हानि है । अपने या दूसरों के दोषों का चिन्तन करने, बार-बार कहने या विचार करने से वे ही उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं । जो मनुष्य नित्य अपने-आपको गलत या कुवाक्य कहता है, वे चाहे झूठ ही क्यों न हों, मन में सत्य जँचने लगते हैं । बार-बार कही हुई बात सत्य प्रतीत होने लगती है । इसलिये सदा सबके लिये शुभ ही उच्चारण कीजिये । जो निराश, दुखी और अपने विषय में दीन-हीन विचार रखते हैं, उन्हें भी सदा शुभ संकेत दीजिये । जो आपके लिये अशुभ वचन बोलते हैं, उनके विषय में भी शुभ विचार और शुभ विश्वास ही प्रकट कीजिये । जिस पर विश्वास करेंगे, वह विश्वास ही लौटायेगा ।

**अपकारिषु य: साधु: पुण्यभाक् स उदाहृत: ।**

*-ब्रह्मपुराण ८०/५५*

''जो अपकार करने वाले की भी भलाई करता है, उसे पुण्यात्मा कहा है ।''

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# अधिक सुन्दर बनिये

आजकल सौंदर्य-प्रसाधनों पर करोड़ों रुपये प्रतिदिन व्यय किये जा रहे हैं । बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में नये-नये कृत्रिम सौंदर्य बढ़ाने के साधन तथा वस्तुएँ बन रही हैं । लोग भूखे रहकर इन सौंदर्य बढ़ाने के तरीकों का प्रयोग कर रहे हैं । बाजार में सौंदर्य-प्रसाधनों का व्यापार जोरों से चल रहा है । बदसूरत से बदसूरत भी इन सौन्दर्य प्रसाधनों को बाजार से खरीदकर सुन्दर बनना चाहता है । पर इससे वास्तविक सौंदर्य नहीं बढ़ता । वेश्याओं की-सी नकली सुन्दरता भले ही बढ़ जाय ।

सच पूछिये तो सच्ची सुन्दरता इन कृत्रिम सौंदर्य-प्रसाधनों में निहित नहीं है, प्रत्युत वह मनुष्य के उत्तम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर है । जब तक आपका शरीर अपना निर्धारित कार्य सुचारु रूप से नहीं करता, तब तक सौंदर्य प्रकट नहीं होगा, न शरीर में रक्त-प्रवाह ही ठीक होगा । सुन्दरता वास्तव में स्वस्थ शरीर, स्वच्छ स्वभाव और अकलुष मन का सामूहिक शुभ परिणाम है ।

कुरूपता एक मानसिक रोग है, सुन्दरता अच्छे स्वभाव का परिणाम है । स्वास्थ्य और सुन्दरता का गहरा सम्बन्ध है । यदि हम पूर्ण स्वस्थ रहें, प्रसन्न और खिले रहें, तो अधिक-से-अधिक आकर्षक दिखाई दे सकते हैं, भले ही हमारा रंग गोरा न हो । साधारण से पुष्प को देखिये, जब वह पूरी तरह खिला हुआ बिहँसता रहता है, तो कितना आकर्षक और प्यारा लगता है । साधारण-सा पक्षी भी जब फुदक-फुदककर हर्ष से कलरव करता है, तो कितना सुहावना लगता है । कुत्ते, बिल्ली, बकरी-यहाँ तक कि सूअर के छोटे-छोटे अबोध बच्चे उछलते-कूदते बड़े सुन्दर लगते हैं । सुन्दरता , उत्तम स्वास्थ्य, निश्चिन्त जीवन, हर्ष और उल्लास में छिपी हुई है । इनके अतिरिक्त सुन्दरता को देर तक स्थिर रखने के लिये मधुर और स्वस्थ मानसिक भावों की भी अतीव आवश्यकता है । जिन व्यक्तियों का मन घरेलू पारिवारिक या सामाजिक कलह संघर्षों या लड़ाई-झगड़ों में उलझा रहता है, गुप्त मन में कोई-न-कोई चिंता या उत्तेजना बनी रहती है, उनके चेहरों पर कर्कशता, क्रोध, आवेश तथा तनाव छाया रहता है । अन्दर की तनी हुई मानसिक स्थिति उनकी मुख-मुद्रा पर उभरकर चेहरे को कुरूप बना देती है । क्रोध, ईर्ष्या, वासना, उत्तेजना, चिन्ताएँ, घृणा-वे कुत्सित दुष्ट भावनाएँ हैं, जो मनुष्य को कुरूप और अनाकर्षक बनाती हैं । आन्तरिक दुर्गुणों से कुरूपता उत्पन्न होती है ।

**बड़े महात्माओं का सौंदर्य:**-क्या आपने हिन्दू देवी, देवताओं, महात्माओं और महापुरुषों के चित्र ध्यान से देखे हैं ? आज तनिक इन चित्रों और मूर्तियों की मुख-मुद्राओं और उससे उत्पन्न उनकी मानसिक, आन्तरिक-मन:स्थितियों पर ध्यान दीजिये, आप उनमें सर्वत्र सद्गुणों की प्रतिच्छाया पायेंगे ।

यह देखिये-भगवान् श्रीकृष्ण के बचपन का चित्र है । बालकृष्ण कैसे विहँस रहे हैं । किलक-किलक कर इधर-उधर घुटनों चल रहे हैं । उनके निर्दोष मनोभाव उनके चेहरे पर प्रकट हो रहे हैं । इसी प्रकार भगवान् राम, सीताजी, भरत, शत्रुघ्न इत्यादि सबके चेहरों पर मधुर मुसकान खेल रही है । सरस्वती, लक्ष्मी, महादेव, विष्णु इत्यादि सबके मुख-मण्डल एक मधुर आभा से प्रदीप्त हैं । बुद्ध भगवान् के चेहरे की शान्ति और तृप्ति देखिये यही तृप्ति, शान्ति, यही मुस्कराहट हमारे सभी देवी-देवताओं के मुख-मण्डल पर दिखाई देती है, हमारे सभी देवी-देवताओं का एक गुण उनका सौंदर्य है, उनकी मृदु और मधुर मुस्कान हमारा दैवीगुण है । मुस्कान धारण कर हम देवताओं के समीप पहुँचते हैं ।

**चेहरे के सौंदर्य का कारण मन में छिपा है:**-हमारे देवताओं तथा महापुरुषों के चेहरे के सौंदर्य का कारण उनके मन में छिपा हुआ है । उनके चेहरे की सरलता, सरसता, हलकी-हलकी मुस्कान पर मानव-मन तथा उसका जीवन बार-बार निछावर होने लगता है । कितना सुन्दर, सुखदायक और आँखों को प्रिय लगता है उनका यह मुख-मण्डल । यह उनके हृदय की सुन्दरता को प्रकट कर रहा है । हम सबका मुख-मण्डल आन्तरिक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सद्गणों से आकर्षक बनता है । शील और सद्गुणों का प्रकाश चारों ओर फैलता है । प्रेम, दया, सज्जनता, ईमानदारी, भलाई इत्यादि में गजब का आकर्षण है । अच्छे भावों का अभिनय कीजिये । मुख पर प्रसन्नता, प्रेम, दया और कोमलता प्रदर्शित कीजिये । वैसे ही भावों की गुप्त तरंगें आपके शरीर में सर्वत्र दौड़ जायेंगी । आत्मा प्रसन्न हो जायगी और मुखमुद्रा मोहक बन जावेगी ।

क्या कारण था कि हमारे देवपुरुषों, महात्माओं के दर्शन से हिंसक जन्तु तक वशीभूत हो जाते थे ? सच पूछा जाय, तो यह उनके चेहरे का मोहक भाव ही था ।

एक विद्वान् लिखते हैं, 'अच्छे और बुरे विचारों की धारा मानसिक केन्द्र से चारों ओर बिखरकर खून के प्रवाह के साथ चमड़ी की सतह तक एक विद्युत-धारा के समान आती और वहाँ अपना प्रभाव छोड़ जाती है । यदि यह मानसिक विचार-धारा निरन्तर आती-जाती रहे तो, उसका प्रभाव भी स्थाई रह जाता है । यदि कोई व्यक्ति दया, प्रेम, सेवा, परोपकार, करुणा, शान्ति, स्वच्छता आदि उत्तमोत्तम दैवी गुणों का निरन्तर मानसिक अभ्यास कर सके, तो वह चाहे कितना ही कुरूप हो , मोहक-मादक आकर्षण-शक्ति से परिपूर्ण हो सकता है ।'

शोक का विषय है कि हम केवल अपनी मानसिक दुर्भावनाओं के कारण अपनी मोहनी शक्ति खो बैठते हैं । आपकी आयु, स्थिति या आमदनी चाहे कुछ भी क्यों न हो, आप मन में मधुर देवोचित भाव रखने, उन्हें अपने जीवन और चेहरे पर प्रदर्शित करने का अभ्यास आज से ही प्रारम्भ कीजिये । प्रेम, दया, स्नेह, शान्ति, आनन्द आदि मीठे उपयोगी देवताओं-जैसे भावों को ही मन में पूर्ण स्थिर कीजिये । सोते-जागते उन्हें रक्त के प्रवाह के साथ समूचे मन और शरीर में घूमने दीजिये । आपमें मोहक शक्ति आयेगी । सभी उससे प्रभावित होंगे ।

क्रोध के अनुगामी अन्याय, अविचार, उत्पीड़न, ईर्ष्या, क्योंकि ये बुरे प्रवंचना, कटुभाषण तथा निर्दयता का परित्याग कीजिए, क्योंकि ये बुरे भाव कुरूपता उत्पन्न करते हैं । जीवन को नरक की ताड़ना से परिपूर्ण कर देते हैं ।

इसी प्रकार काम वासना के दुर्गुण त्यागिये । ये हैं-परनिंदा अधिक निद्रा, कुलटा स्त्रियों का तथा चरित्रहीन पुरुषों का संग, मद्यपान, माँस-भक्षण, कामोद्दीपक गीतों का गान, गन्दे उत्तेजक साहित्य का अध्यन, निरुद्देश्य भ्रमण-ये सभी विनाशकारी भाव उत्पन्न कर आपकी मुखाकृति को बिगाड़ते हैं ।

**सुखद सुन्दर विचारों की भाव-धारा से सुन्दरता बढ़ती है:**-सुखद और सुन्दर भावों को मन में रख तथा उनको चेहरे पर प्रदर्शन कर हम निश्चय ही अधिक आकर्षक बन सकते हैं । आप इस क्रिया का अभ्यास करें । मन एक शक्ति केन्द्र है । उसका समूचे शरीर पर राज्य है । मन में दुःख और चिंताएँ जमी रहेंगी, तो निश्चय ही वे कुरूपता उत्पन्न करेंगी । हमारा स्वास्थ्य और सौंदर्य और नष्ट कर देंगी । इसलिये हमारे यहाँ भावों के कल्याणकारी रूप को ही मन में धारण करने की प्रार्थना की गई है-

'हे मन की मौज ! तू कल्याणकारी स्वरूप को धारण करके हमारे भीतर प्रवेश कर, ताकि जो कुछ तू चाहे, वह पूरा हो (और उससे सबका भला हो ) बुरे विचारों को (हम से ) दूर रख ।'

*-अथर्व ९/२/२५*

सदा प्रसन्नता और आनन्द के भव्य विचारों में ही रमण कीजिये । जब आत्मा प्रसन्न रहती है तो शरीर भी स्वस्थ और सुन्दर रहता है । देखिये, प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता श्रीलालजीराम शुक्ल क्या कहते हैं-

'प्रसन्नता शक्ति की परिचायिका है । जिस मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक शक्ति है, वही प्रसन्न रह सकता है । प्रसन्नता स्वयं उस शक्ति की उत्पादिका भी है । जो मनुष्य जितना प्रसन्न रहता है, वह अपना आध्यात्मिक बल उतना ही बढ़ा लेता है । इतना ही नहीं, वह अपनी शारीरिक शक्ति की भी वृद्धि कर लेता है । मन प्रसन्न रहने पर शरीर की अमृत पैदा करने वाली ग्रंथियाँ अपना काम भली प्रकार से करती हैं और शरीर में उन पदार्थों

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का प्रवाह जारी रखती हैं, जिनसे शरीर अक्षय बना रहता है और बढ़ता है । विरला ही प्रसन्नचित्त मनुष्य रोगी मिलेगा ।'

अत: अधिक-से-अधिक आनन्द और प्रसन्नता के सुखद विचारों में निवास कीजिये और सुन्दर बनिये । आत्मा की प्रसन्नता में अक्षय सौंदर्य निहित है । भव्य विचारों से सुन्दर बनिये ।

## बाधाओं को दूर कीजिये

साधारण जनता का कुछ ऐसा विश्वास है कि उनका आनन्द एवं प्रसन्नता किसी दूरस्थ ध्येय की प्राप्ति में निहित है । वे प्राय: कहते हैं, 'मैं जब अधिक वेतन पाने लगूँगा,' तब आनन्दित रहूँगा, 'जब मेरे पुत्र की नौकरी लग जायगी, अथवा पुत्री का विवाह हो जायगा तब मुझे सुख प्राप्त होगा' 'जब मेरी पेंशन हो जायगी अथवा मेरी बीमा-पालिसी मुझे प्राप्त हो जायगी, जब मेरा मकान तैयार हो जायगा अथवा मोटर खरीद लूँगा, तब सुखी होऊँगा इत्यादि-इत्यादि ।

इस प्रकार के अनेक छोटे-बड़े प्रश्न हमारे दिमाग में चक्कर लगाया करते हैं और हम किसी बाहरी पदार्थ या उद्देश्य की प्राप्ति में अपने सुख तथा आनन्द का निहित होना समझने की भूल करते हैं । हम अपने जीवन के आनन्द को आगे टालते या किसी दूर की वस्तु में होना समझते रहते हैं । हमारे जीवन तथा दूर के उद्देश्य के मध्य में एक गहरी खाई या खाली जगह छूट जाती है । प्रसन्नता मृगतृष्णा की तरह निरन्तर आगे बढ़ती जाती है और हमारा वर्तमान जीवन खाली-खाली सा एक शून्यमय रिक्तता से परिपूर्ण हो जाता है । यही हमारी भूल है ।

आनन्द या प्रसन्नता जीवन का चरम उद्देश्य नहीं, एक क्रिया है, जीवन-यापन करते हुए सदा-सर्वदा मिलने वाला एक मिठास या प्रकाश है । राबर्ट लुई स्टीवेन्स कहा करते थे-'आनन्द किसी गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाने में नहीं है, वरन्' वह तो चलने की, जाने की क्रिया में, सतत उद्योग में है । प्रसन्नता और हमारा आनन्द प्रतिदिन, प्रतिपल बिखरा पड़ा है । यदि हम आज आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते, आज जीवन का रस-पान नहीं कर सकते, तो चाहे हमारा वेतन दुगुना क्यों न हो जाय, चाहे हम बहुमूल्य वस्त्र क्यों न धारण कर लें, भविष्य में हमें आनन्द उपलब्ध होने वाला नहीं है ।

जीवन का आनन्द लूटना एक कला है । यह उत्साह, सन्तोष और आन्तरिक आनन्दपूर्वक जीवन को स्थान-स्थान पर मोड़ने पर निर्भर है । जिसे जीवन का सर्वप्रिय कार्य प्राप्त हो गया है और जो उसे पूर्ण तन्मयता के साथ सम्पन्न करता है वह आनन्द लूटता है । अपनी रुचि एवं स्वभाव के अनुकूल कार्य ढूँढ़िये और उसे सरसता-पूर्ण ढंग से सम्पन्न कीजिये । आपकी परिस्थितियाँ सदा ऐसी ही रहने वाली हैं, उनके परिवर्तित होने की कुछ लम्बी प्रतीक्षा मत देखिये वरन् आप स्थिति, वय, आय, में हैं, उन्हीं में रहकर आनन्द को प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये । यदि आप विवेक-पूर्वक योजना बनायेंगे तो, निश्चय जानिये, इसी परिस्थिति में आपको आनन्द प्राप्त हो सकता है ।

एक पुरानी कहानी है-एक राजा था, जिसे नैराश्य के दौरे-से उठते थे । उसने मानस चिकित्सकों की सलाह ली, तो उसे सूचित किया गया कि राजा तभी आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकेंगे, जब वे किसी प्रसन्न और सदा सुखी, सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति की कमीज पहनेंगे । अत: सारे राज्य में ऐसे व्यक्ति की खोज की गयी । चारों ओर राज्य में तलाश की गयी, किंतु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई । अन्त में उन्हें एक ऐसा व्यक्ति प्राप्त हुआ, जिसका मुख लाल था और जिसका जीवन संगीतमय था । वे जल्दी-जल्दी इस प्रसन्न व्यक्ति को राजधानी में लाये । वह राजा के सम्मुख लाया गया । राजा ने उस निर्धन व्यक्ति से उसकी कमीज खरीदने की माँग की, किन्तु उस व्यक्ति ने कहा मेरे पास कमीज है ही नहीं । उसने एक फटी हुई वास्कट-सी पहन रक्खी थी और उसका पेट नंगा दीख रहा था ।

आनन्द का वास्तविक उद्‌गम हमारा हृदय है । प्रसन्नता की जड़ हमारे अन्त:स्थल में है । बाह्य जगत की नाना विलास या आराम की वस्तुओं में आनन्द नहीं है । वह तो हमारे अन्तर्जगत की क्रिया

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । आनन्द का उद्रेक हमारे प्रदेश से होता है । आनन्द किसी सुदूर उद्देश्य में निहित नहीं है । आनन्द में सीमा-बन्धन का क्रम नहीं है । अमुक सीमा पारकर हम आनन्दित हो सकेंगे-यह एक भ्रमात्मक धारणा है । आनन्द तो स्वयं हमारे जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर है । जीवन में हमें जो थोड़ी-सी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हीं को ठीक प्रकार से सजा-सँवारकर हम आनन्द की उपलब्धि कर सकते हैं । यह हमारी भ्रमात्मक धारणा है कि अमुक वस्तु, स्थिति, आधार या दूसरे की सहायता प्राप्त होने पर हमें पूर्ण आनन्द प्राप्त हो सकेगा ।

मनुष्यों के मन में एक भ्रम यह है कि हम दूसरों को कुछ नहीं दे सकते जब तक स्वयं हमारे पास उस वस्तु को खरीदने के लिये रुपया न हो । जीवन में अनेक ऐसी बहुमूल्य वस्तुएँ हैं जो रुपये-पैसे से नहीं खरीदी जा सकतीं, धन जिन्हें खरीदने में बहुत छोटा पड़ जाता है । प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, सौहार्द इत्यादि वे दैवी सद्गुण हैं, जिनको आप नहीं खरीद सकते । ये सब आपके हृदय में निवास करते हैं और आप प्रचुरता से इन्हें दूसरों को दान कर सकते हैं । निश्चय जानिये, दूसरों को अपना प्रेम, सहानुभूति, सच्ची प्रशंसा देने से आप को सच्ची प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है । जो दूसरे को जितना अधिक प्रेम, सहानुभूति, सच्चाई, ईमानदारी वितरित करता है, वह दूसरों से उतनी ही अधिक पाता भी है । इसी आदान-प्रदान में सुख है । जब दो सच्चे हृदय एक दूसरे से मिलकर एक हो जाते हैं, प्यार से छलछला उठते हैं, या करुणा एवं सहानुभूति से विभोर हो उठते हैं, तब मनुष्य के आनन्द का पारावार नहीं मिलता ।

हम में से गरीब-से-गरीब व्यक्ति इन बहुमूल्य दैवी विभूतियों को दे-लेकर आनन्द का लाभ उठा सकता है । हम गरीबों, नि:सहायों, पीड़ितों पर दया करें, दूसरों के सच्चे कार्यों की सच्ची प्रशंसा करें, दूसरों की कला में दिलचस्पी लें, उनका जीवन प्रेममय सङ्गीत से परिपूर्ण कर दें, तो हम दु:खी, निराश व्यक्ति को ऊँचा उठा सकते हैं । नवीन आशा की रश्मि का संचार कर सकते हैं और संघर्ष करते हुए व्यक्तियों में आत्मविश्वास जाग्रत कर सकते हैं

बड़े-बड़े व्यक्ति भी अपने मन में दूसरों की सहानुभूति, प्रशंसा, प्यार, दाद पाने की आकांक्षा करते हैं । उनके पास रुपये-पैसे की कोई कमी नहीं होती, रुपये से खरीदी जाने वाली वस्तुएँ प्रचुरता से होती हैं, पर वे मनुष्य के हृदय में बसने वाली सहानुभूति एवं प्रशंसा की तीव्र इच्छा रखते हैं । डेल कार्नेगी ने एक स्थान पर लिखा है कि एक बार इग्लैंड के रोजैटी नामक कवि की प्रशंसा में एक लोहार के लड़के ने एक पत्र लिखा था । इस अनजान व्यक्ति की प्रशंसा से रोजैटी जैसे प्रसिद्ध कवि का क्या लाभ हो सकता था ? किन्तु नहीं, रोजैटी ने उसे उत्तर में पत्र लिखा और उसकी प्रशंसा का आभार माना । उसने उसे अपने पास बुला लिया, सेक्रेट्री का पद दिया, वह लड़का प्रसिद्ध बना और हालकेन नाम से प्रसिद्ध उपन्यासकार बना ।

आपके आनन्द को खा जाने वाली महाराक्षसी, ईर्ष्या है । जिस सुखी संतुष्ट व्यक्ति के हृदय में यह दुष्ट स्वार्थी मनोविकार प्रविष्ट हो जाता है, वह दूसरों की वृद्धि, बढ़ोत्तरी अथवा उन्नति देखकर एक प्रकार की आन्तरिक अग्नि से दुग्ध हुआ करता है । ईर्ष्या के आते ही मन असन्तोष और स्वार्थ से परिपूर्ण हो जाता है । हाय ! अमुक व्यक्ति तो ऊँचा उठता जाता है, अमीर बनता जाता है, समाज में प्रतिष्ठा पाता जाता है, हम यों ही पड़े है-'जहाँ अपने प्रति हानि होती है, मन-ही-मन चाहते हैं कि किसी प्रकार दूसरे का भी क्षय हो, विधि का प्रकोप हो, कोई बीमारी, चोरी, मुकदमा या पाप उसे लग जाय, जिससे वह हमारी-जैसी स्थिति में आ जाय' ये दुर्भावनायें और कुविचार स्वयं दुगुने वेग से हमारे आन्तरिक प्रदेश में लौट आते हैं और हमें बड़ी हानि पहुँचाते हैं । हमारी आन्तरिक शान्ति, मानसिक संतुलन, भावात्मक समस्वरता, शीतलता, संतोष नष्ट हो जाते हैं ।

ईर्ष्या आनन्द में बाधक है । आप अपने से ऊँचे, अधिक समृद्धिशाली, अमीर व्यक्तियों से अपने आप को मिलाकर न देखें वरं उनसे अपना जीवन मार्ग पृथक् ही मानें । हममें से अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो हमसे भी गिरे हुए, दुखी, अभावग्रस्त जीवन में पड़े

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हैं । उनकी अपेक्षा हम कितने भाग्यशाली हैं-इस प्रकार तर्क द्वारा मन में संतोष और तृप्ति की भावनाओं को प्रचुरता से प्रविष्ट होने दीजिये । इससे ईर्ष्या दूर होकर शांति प्राप्त होगी, मन आह्लादित रहेगा और आप मानस तृप्ति का अमृत प्राप्त कर सकेंगे ।

इसी प्रकार उत्तेजना, आवेश क्रोध, काम, लोभ आदि दुष्ट मनोविकार हमारे सौख्य को नष्ट कर देते हैं । जो व्यक्ति इनके विपरीत सद्गुणों, शुभ भावनाओं, पवित्र विचारों से मन को परिपूर्ण रखता है, वह शरद्-चन्द्रिका के चन्द्रमा के समान अक्षय आनन्द का सुख प्राप्त करता है । सद्विचार, शुभचिंतन पवित्र भावनाएँ हमारे चारों ओर एक ऐसा शुभ वातावरण निर्मित करते हैं, जिससे न केवल हम प्रत्युत हमारे सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्ति लाभ उठाते हैं ।

आपके आनन्द की एक बड़ी रुकावट नास्तिकता है । नास्तिक ऐसा व्यक्ति हो जाता है जो भौतिकवाद के छोटे-से दायरे में अपना सीमित आनन्द ढूँढ़ा करता है । सुस्वादु भोजन, आकर्षक वस्त्र, आलीशान मकान, वासनापूर्ति, धन, सामाजिक प्रतिष्ठा के आनन्द सीमित हैं । वासनाजन्य सुखों में आनन्द का केवल आभासमात्र है । इन पार्थिव आनन्दों में अधिक रमण करने से मनुष्य को स्वयं इनका थोथापन, कुरूपता और असमर्थता दृष्टिगोचर होने लगती है । नास्तिक इन्हीं क्षुद्र आनन्दों में डूबता उतराता रहता है ।

आस्तिकता वह सुदृढ़ आधार है, जो मनुष्य को उच्चतर आनन्द की ओर अग्रसर करता है । जो व्यक्ति भगवान् को अपने आनन्द का आधार मानता है, निरन्तर दैवी-विचार, भजन, पूजन, प्रार्थना द्वारा उच्च दैवी सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करता है, वह अक्षय दैवी आनन्द का स्रोत होता है । भगवान् की कोई मूर्ति ले लीजिये, किसी स्वरूप में रमण कीजिये, किसी प्रकार भी (सखा, बन्धु, पिता, विधाता, पथ-प्रदर्शक) का सम्बन्ध जोड़कर अपने जीवन में प्रविष्ट कीजिये । आप दैवी आनन्द से सदा परिपूर्ण रहेंगे ।

ईश्वर में अपने आनन्द ढूँढ़ने वाला व्यक्ति कभी धोखा नहीं खाता । उसे जीवन के समस्त सुख-आनन्द एवं सौख्य का सुदृढ़ आधार प्राप्त हो जाता है, जो संकट और विपत्ति में उसे उबारता और प्रसन्न रखता है । निरन्तर अबाधगति से परमात्मा से प्रेम कीजिये । ध्रुव प्रहलाद की भाँति हम भगवान् उनके भक्तों, भगवत्स्मृति उच्च धार्मिक साहित्य एवं सत्सङ्ग द्वारा चिरस्थायी आनन्द की उपलब्धि कर सकते हैं ।

# मधुरता : जीवन का नवनीत

''मधुरता'' शब्द बड़ा व्यापक है । इसका उपयोग नाना अर्थों और जीवन के अनेक भागों में किया जाता है, पर यह ऐसा दिव्य गुण है, जिसे धारण करने से अद्भुत प्रभाव देखा जाता है । बड़े-बड़े कठिन काम और जीवन की अनेक विषम गुत्थियाँ एक मधुरता के प्रयोग से हल हो जाती हैं । यह ऐसी कुंजी है, जो सब तालों को अनायास ही खोल देती है ।

ईश्वर से हमारे यहाँ जब और बातों की सिद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है तो यह भी कहा जाता है-

**''मधु ने अन्तरास्ये ( भवतु )''**

*-पैप्पलाद संहिता २, ७७, ३*

अर्थात्-''हे ईश्वर ! मेरे मुख के भीतर मधु हो । मैं सदा मीठा बोलूँ ।''

मधुर वाणी के प्रभाव से काला नाग भी फन उठाकर नृत्य करने लगता है, हरिण मंत्र-मुग्ध हो एक स्थान पर खड़ा रह जाता है और अपनी आजादी तक को खो देता है । मेघ का मधुर गर्जन सुनकर मोर मस्त हो पंख फैला तन्मयता से नाचने लगता है । कोकिल की कूक किसका मन नहीं मोह लेती ? जो मीठा बोलता है, उसके साथ मित्रों और हित-चिन्तकों की भीड़ रहती है । जो कडुवा है उसका कही भी स्वागत नहीं होता ।

मधुर भाषिणी नारी परिवार को स्वर्ग बनाने वाली होती है । दूसरी ओर कटु भाषिणी अन्य गुणों के होते हुए भी गृहस्थी को नर्कधाम बना देती है । प्रत्येक नारी को पास पड़ोस से सम्बन्ध रखने पड़ते हैं, अनेक परिवारों से मेल-मिलाप बढ़ाना पड़ता है । गृहस्थ के सारे कामों को सँभालने के लिए उसे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बहुत कुछ अपनी वाणी पर ही निर्भर रहना पड़ता है । मुँह की मीठी स्त्री मधुर वाणी से शत्रुओं को भी मित्र बना सकती है ।

एक नारी लेखिका ने सत्य लिखा है, ''जिस प्रकार सुन्दरता, व्यवहार कुशलता, गृह-कार्य में निपुणता स्त्री के गुण माने गये हैं, वैसे ही वाणी की मधुरता भी स्त्री जाति का विशेष गुण है । पुरुष वाह्य संघर्ष में उलझे होने के कारण कठोर हो सकता है, परन्तु स्त्री का कठोर होना उसके सभी दूसरे गुणों पर आवरण डाल देता है । स्त्री में मीठी वाणी के बिना उसका सौन्दर्य, वेश, भूषा, वस्त्र, आभूषण आदि सब नगण्य हैं । मधुरता के समान हमारा श्रृंगार नहीं । मधुरता के समान कोई हित-चिन्तक नहीं । क्रोध के समान हमारा कोई शत्रु नहीं । सतोगुण से मधुरता की उत्पत्ति होती है । जहाँ सतोगुण का अभाव है वहाँ पर कलह का राज होता है । मधुरता अपने चारों ओर एक सुन्दर और मनोहर वातावरण पैदा कर देती है, जिसमें प्रसन्नता ही प्रसन्नता वास करती है । मीठा बोलने वाला सब का प्यारा होता है ।

मधुरता एक ईश्वरीय गुण है । हमारे किसी दैवी-देवता को ध्यान से देखिए । प्रत्येक मूर्ति और चित्र में माधुर्य भरा हुआ है । वह सौन्दर्य, प्रसन्नता और सरसता से परिपूर्ण है, मानो उस देवता के हृदय में मानव-मात्र के लिए सहानुभूति और प्रेम की रस-धारा बह रही हो ! इन देव-मूर्तियों में जो सौन्दर्य हमें आकृष्ट करता है, वह उनके मन में व्याप्त सतोगुणी भावनाओं का ही सौन्दर्य है । हिन्दू तत्वदर्शियों ने मानव मात्र को प्रेरणा और सरसता देने के लिए इन चित्रों तथा देव-मूर्तियों को सहृदयता और सद्भावना का केन्द्र बनाया है ।

जार्ज रसेल ने लिखा है कि ''धर्म और पुण्य किसी भी मनुष्य के हृदय में कितना विद्यमान है, इसकी एक मात्र परीक्षा यह है कि वह उच्च-कोटि की सात्विक, सौन्दर्य और सरस भावनाओं में कितना प्रवाहित होता है ।''

सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के जीवन में मधुरता एक दैवी विभूति है । इसे चरित्र और व्यवहार में धारण करने से नाना लाभ होते हैं । जिससे व्यवहार किया जाता है, उसे तथा जो व्यवहार करता है उसे इस प्रकार दोनों ही पक्षों को तृप्ति, आनन्द और सन्तोष प्राप्त होता है । मधुरता को अपने चारों ओर प्रवाहित करने वाले के इर्द-गिर्द सदा मनुष्यों की भीड़ लगी रहती है, जो उससे प्रेरणा और उत्साह पाते हैं । अनेक दु:खी संतप्त, रोगी, पतित उसकी सरसता से लाभ उठाते हैं ।

रेगिस्तान में जहाँ तनिक भी पानी होता है, स्निग्धता होती है, वहीं हरे-भरे वृक्ष और दूब उग आती है । इसी प्रकार जिस व्यक्ति के आचरण, व्यवहार और स्वभाव में मधुरता होती है, उसके पास सदा इष्ट-मित्र एकत्रित रहते हैं । जो दूसरों को आनन्द, प्रेम, सहानुभूति उदारतापूर्वक देता है, वह स्वयं अपना जीवन आनन्ददायक बना लेता है और साथ ही दूसरों में भी सरसता की अभिवृद्धि करता है ।

सामाजिक जीवन में सरसता का रूप आत्मीयता और सहृदयता है । आप समाज के एक अंग हैं । हमारे वेदों ने हमें अपने व्यवहार में मधुरता लाने का आदेश दिया है ।

''मीठा बोलो । मधुरभाषियों के साथ रहो । जो मधुरता अपनाते हैं, उसके लिए सभी अपने बनते हैं ।''

*-यजु० १/२*

''घृत सी लाभदायक और शहद सी मीठी बोली बोलो । जिसने मीठी वाणी के महत्व को समझ लिया, वह सर्वत्र सफल होगा ।''

*-अथर्व० २०/६५/२*

''परस्पर मधुर वचन बोला करो । मधुर वाणी बोलने से कलह घटता और प्रेम बढ़ता है ।''

*-अथर्व० ३/३०/६*

स्मरण रखिए, आपका सुख और मधुरता दूसरों को सुख और मधुरता देने पर जुड़ी हुई है । अच्छे पड़ोसियों, साथियों, मित्रों और नागरिकों में ही आत्मीयता बढ़ सकती है । अत: जितना ही आप दूसरों को स्नेह देंगे, उनके विषय, कठिनाइयों और उलझनों को सुलझाने में दिलचस्पी लेंगे, उतना ही आपकी आत्मीयता का दायरा बढ़ता जायेगा । आपका जीवन सरस हो जायेगा ।

आप अकेलापन क्यों महसूस करते हैं ? आपको क्यों उपेक्षा मिलती है ? कारण यह है कि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आप स्वयं दूसरों प्रति सच्चे दिल से सरस नहीं हैं । उनमें पूरी तरह दिलचस्पी नहीं लेते । उनके कार्यों तथा रिश्तेदारियों के प्रति उदासीन रहते हैं । किसी के पुत्र-जन्म, वेतन या पदवृद्धि विवाह आदि उत्सवों में सम्मिलित नहीं होते । दावत में आप न जाते हैं, न दूसरों को आमंत्रित करते हैं । किसी के साथ सैर करने न जाते हैं, न अपने साथ टहलने दूसरों को ही बुलाते हैं । जब तक इस स्वार्थमयी नीति को आप नहीं छोड़ते, तब तक संसार से आपको रूखापन और असहयोग ही मिलेगा । मधुरता ही आप का दृष्टिकोण होना चाहिए ।

## मैत्री-भावना एक अमोघ अमृत है

दूसरों के प्रति वैर-भाव रखने से मानस-क्षेत्र में उत्तेजना और असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है । हम जिन व्यक्तियों को शत्रु माने हुए लोगों से घृणा करते हैं, उन्हें याद कर अपने ऊपर हावी कर लेते हैं । गुप्त मन में उन वस्तुओं, व्यक्तियों या शत्रुओं के प्रति भय बना रहता है । मानसिक जगत् में निरन्तर वैर और शत्रुता का भाव बना रहने से हमारे स्वास्थ्य पर दूषित प्रभाव पड़ता है । शत्रु भाव हमारी भूख बन्द कर देता है, नींद भङ्ग हो जाती है, रक्त-संचालन पर बुरा प्रभाव पड़ता है । अन्दर निरन्तर उत्तेजना बनी रहती है । फल यह होता है कि हमारा स्वास्थ्य और प्रसन्नता सदा के लिये नष्ट हो जाते हैं । हम जीवित रहकर भी दुर्भावनाओं के कारण नरक की यातनाएँ भोगते हैं ।

स्मरण रखिये-यदि आपके शत्रुओं को कहीं यह ज्ञात हो जाय कि आप सदा उनके बारे में सोचा करते हैं या चिन्तित रहा करते हैं, वे आपके मन में सदा टकराते रहते हैं तो वे बहुत प्रसन्न होंगे । अतः शत्रुभाव कदापि मन में नहीं रखना चाहिये ।

औरंगजेब मुगल-साम्राज्य का अन्तिम शासक था, जिसने सबसे अधिक दिनों तक राज्य किया । उसका साम्राज्य दूर-दूर तक फैला हुआ था । ऐश्वर्य की विपुल सामग्री उसे सहज ही प्राप्त थी । किन्तु वह कभी मानसिक शान्ति प्राप्त न कर सका । उसका मन सदा शत्रुओं के आक्रमण के भय से भरा रहता था । उसने अपने भाइयों के साथ दुर्व्यवहार किया था । हिन्दुओं पर कर लगाये थे । वह संगीतादि कलाओं का शत्रु था । उसके शत्रुओं की संख्या भी बहुत थी । फल यह हुआ दीर्घकाल तक राज्य करने और एक विशाल भू-खण्ड का स्वामी होने पर भी वह सदा अतृप्त और अशान्त ही बना रहा । जो किसी से शत्रुता का भाव रखेगा, उसे बदले में शत्रुता ही मिलेगी ।

आज विश्व में क्रोध, स्वार्थ और हिंसा का प्राचुर्य है । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को विध्वंस कर देना चाहता है । एक से एक उग्र और विध्वंसात्मक बम बन रहे हैं । बड़े राष्ट्र छोटों को हड़प जाना चाहते हैं । विश्व में झगड़े और मतभेद बढ़ते ही जाते हैं । शत्रुता का बीज बोया जा रहा है और एक दूसरे को नष्ट करने की नाना योजनाएँ बन रही हैं । यह सब हम मानवों का दुर्भाग्य ही है कि विश्व एक ज्वालामुखी पर खड़ा प्रतीत होता है ।

दैनिक और पारिवारिक जीवन में द्वेष, कटुता और वैर-भाव पनप रहे हैं । भाई-भाई में, सास-बहु में, पिता-पुत्र में, अफसर-मातहत में, पति-पत्नी में कटुता है । इसी से द्रोह, कटुता, वैर और मनोमालिन्य अन्दर ही अन्दर पनप रहे हैं । ऐसी परिस्थिति में कैसे शान्ति स्थापित हो सकती है और मनुष्य कैसे सुख, शान्ति तथा आन्तरिक आनन्द का उपभोग कर सकता है ।

कटुता से कटुता बढ़ेगी । हिंसा से हिंसा, फैलेगी । विद्वेष से विद्वेष ही पनपेगा और इनसे विनाश अवश्यम्भावी है । कौरव-पाण्डवों का विद्वेष कैसे भारत के पतन तथा शक्ति-ह्रास का कारण बना, यह सर्व-विदित है । भाई-भाई का तनिक-सा वैमनस्य देश की अमूल्य जनशक्ति के ह्रास का कारण बना । उस महायुद्ध में देश के सर्वश्रेष्ठ योद्धा नष्ट हो गये और वर्षों तक हम उठ न सके ।

अन्तःराष्ट्रीय क्षेत्र में हिटलर और मुसोलिनी का उत्थान ले लीजिये । कितनी हिंसा, दमन-चक्र, क्रूरता बर्बरता, स्वार्थ और अत्याचारों से उन्होंने कमजोर राष्ट्रों को चूसा, अनगिनत अत्याचार किये,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


असंख्य निर्दोष व्यक्तियों की हत्याएँ हुईं, अपरिमित सम्पदा और जायदादें नष्ट हुईं, सर्वत्र विद्वेष फैला । कुछ दिनों तक हिंसा और आतंका का भाव दबा रहा, पर अन्त में हिंसा और कटुता का विषैला वातावरण फूट निकला । सब कुछ ज्वालामुखी की तरह जलकर क्षार-क्षार हो गया । शत्रु-भाव एक संक्रामक रोग की तरह है, जो धीरे-धीरे समस्त वातावरण में व्याप्त होकर उसे विषैला बना देता है ।

शत्रु-भाव की गन्दी विचार-लहरें धीरे-धीरे फैलकर परिवार, समाज, प्रान्त, देश और फिर विश्व भर में छा जाती है । वातावरण में तनाव आ जाता है । तनाव से चारों ओर दम घोंटने वाला वातावरण फैल जाता है । इसमें रहने से मनुष्य का विकास रुक जाता है -यहाँ तक कि जानवर भी उस दूषित वातावरण से घबरा जाते हैं ।

शत्रु-भाव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अप्राकृतिक है । मनुष्य की प्रकृति कुछ ऐसी है कि वह परस्पर प्रेम करना चाहता है, मिल बैठकर प्यार से जिन्दा रहना चाहता है । सहयोग और सौहार्द्र उसके लिये आसान है । प्रेममय रहने से उसका व्यक्तित्व स्वभावतः सही दिशाओं में अपने आप विकसित होता रहता है । शत्रु-भाव मन में प्रविष्ट हो जाने से व्यक्तित्व के बहुत से कोमल और मानवोचित भाग नष्ट हो जाते हैं । मनुष्य प्रेम की ओर स्वाभाविक रूप से अग्रसर हो सकता है । कभी-कभी हम मनुष्य को ऊपरी दृष्टि से ही देखकर यह गलत धारणा बना लेते हैं कि वह शत्रु-भाव से पूर्ण होगा, पर यदि हम उसे गहराई से देखें, उसकी आत्मा से निकलने वाले विचारों और भावनाओं को परखें तो हम पायेंगे कि वह वस्तुतः शुभ, पवित्र और कल्याणकारी है, उसमें किसी के विरोध का तत्व किंचित् भी नहीं है । यह गुप्त आत्मतत्व ही मनुष्य का सच्चा दैवी स्वरूप है, जिसमें सबके लिये पुनीत मैत्री-भाव विराजमान रहता है । प्रेम, दया, सहानुभूति, करुणा, मैत्री हमारे दैवी स्वरूप के दिव्य गुण हैं, जिनके कारण हमें गौरव का अनुभव करना चाहिये और सदा इन्हीं को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिये । जब मनुष्य अपने दैवी गुणों से गिर जाता है, तब उसे स्वयं अपने ऊपर लज्जा का अनुभव होता है । वह आत्मग्लानि से भर जाता है । वह ऐसा अनुभव करता है । जैसे अपने महान् उत्तरदायित्व से नीचे गिर रहा हो । बड़े से बड़ा आदमी यदि किसी दुर्भावना का शिकार होता है तो आत्मिक पतन का अनुभव करता है ।

स्मरण रखिये, अन्यायपूर्वक किसी को सताना दुष्टता है । आप यदि किसी को सताते हैं तो एक दिन ऐसा आयेगा, जब आपसे शक्तिशाली व्यक्ति आपको पीसेगा, दुःखी करेगा और अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करेगा । वह कार्य करो, जिससे दूसरों को कष्ट न हो उन मानसिक पापों से सदा बचते रहो, जिनसे दूसरों को कष्ट पहुँचता है और शत्रुता बढ़ती है ।

शत्रुता, ईर्ष्या और द्वेष के कुविचारों को दूरकर मन में शान्ति और सन्तुलन बनाये रखने का साधन मैत्री-भाव का दीर्घकालीन अभ्यास है । मैत्री-भाव का अर्थ है यह मान लेना कि मेरा कोई शत्रु नहीं है । मेरी सबसे मित्रता है । मैं सबको मित्र-भाव से देखता हूँ । मित्रता का ही व्यवहार करता हूँ । चारों ओर मेरे मित्र ही मित्र हैं । मैत्री-भाव रखने वाला मन में यह सोचता है-

'मैं सबका मित्र हूँ । सब मेरे मित्र और हितैषी हैं । मेरा कोई भी अहित करने वाला नहीं है । मैं किसी का कुछ बिगाड़ने का भाव कभी मन में नहीं रखता । मैत्री-भाव रखने से अब मेरे मन में न कोई घबराहट है, न मानसिक या शारीरिक क्लेश, दुःख-दर्द ।''

''जिस तरह परम सत्ता से सारे कार्य-व्यापार चलते हैं, उसी तरह इस परम पुनीत मैत्री-भाव से मेरा मानसिक जगत् संचालित होता है । मैत्री के मेघ बरसते हैं, प्यार और सौहार्द्र की फसलें उगती हैं । इसी भव्य विचार से मेरा रक्त-संचार होता है, विचार स्फुरित होते हैं । मेरा सारा जीवन मैत्री से ओत-प्रोत है ।''

महर्षि पतंजलि के 'योग सूत्र' में चार प्रकार की भावनाएँ मन में रखने से कल्याण होना माना गया है । ये भावनाएँ ही संसार में विनाशकारी विचारों पर विजय देकर सर्वत्र शान्ति स्थापित करने वाली हैं । चारों इस प्रकार हैं -

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१--मैत्री-भावना-अर्थात् प्राणी मात्र के लिये सत्, प्रेममय और हितकारी भावना रखना-सबसे प्रेम, सौहार्द और मित्रता का भाव । (२) करुणा-भावना-अर्थात् संसार के पीड़ित जन-समुदाय के प्रति हार्दिक सहानुभूति रखना । (३) मुदिता-अर्थात् सुखी वर्ग के सुख में अपने सुख को लय कर देना । (४) उपेक्षा-भाव प्रतिकूल मत या विचार वालों के झंझटों या भ्रान्ति में न फँसना ।

यदि विराट् दृष्टि से देखा जाय तो उपर्युक्त चारों प्रकार की भावनाएँ एक मैत्री-भावना में ही आ जाती हैं । एक मैत्री-भाव से टकराकर सब शत्रुताएँ, तनाव, खिचाव, रंजिश समाप्त हो जाती हैं ।

महर्षि पतञ्जलि का तात्पर्य है कि मनुष्य यदि किसी मनुष्य को सुखी देखे तो उसके प्रति मित्रता का भाव करे । यदि किसी को दुःख से पीड़ित पाये तो उसे अपनी करुणा (सहानुभूति) प्रदान करे । यदि पुण्यवान् को देखे तो प्रसन्न हो और यदि उद्दण्ड पापी को देखे तो उसके प्रति उपेक्षा करे अर्थात् उससे तटस्थ रहे । इन चारों भावनाओं का अभ्यास करने से चित्त का उद्वेग नष्ट होता है ।

यदि आप अपने से ऊँचे, प्रतिष्ठित, समृद्धिशील व्यक्ति से मैत्री-भाव रखेंगे तो चित्त में ईर्ष्या की अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होगी । दुःखी व्यक्ति के प्रति प्रेम-भाव प्रदर्शित करने से उसकी क्रूरता एवं स्वार्थपरता की बुरी आदत छूट जाती है ।

हमारा निरन्तर ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि मैत्री-भावना विकसित होती रहे । जितने व्यक्तियों से भी हमें मिलने का और मित्रता का हाथ बढ़ाने का अवसर मिले, उतना ही श्रेष्ठ है । जिस व्यक्ति के अनेक मित्र हैं, जिसकी आत्मीयता का जितना बड़ा दायरा है, वह उतना ही प्रसन्न है । वह उतने ही अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का आनन्द उपभोग करता है । अपने जीवन, चरित्र और व्यवहार में मृदुता धारण कीजिये ।

## आत्मोन्नति का अर्थ सीखें

आपके मन में जो हर्ष, करुणा, विषाद की नाना-तरंगें लहराती हैं, उनके फलस्वरूप सम्पूर्ण मानव जगत् में एक तूफान-सा उठा रहता है । साधारण व्यक्ति जब क्रोध में होता है तो अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं को तोड़ता-फोड़ता है, बच्चों को मारता-पीटता हैं, गालियाँ देता है और तेजी से इधर से उधर टहलता है ।

घृणा से भरकर वह दुःखी रहता है । भोजन नहीं कर पाता, जिसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई है उसके साथ नहीं बैठता, बोलता या बातें नहीं करता, यथासम्भव उसके संग से दूर भागता है ।

शोक के वश में आकर वह आठ-आठ आँसू बहाता है, रोता चिल्लाता है । आशा और धीरज नहीं रखता । कुछ व्यक्ति शोक के आतंक से इतने प्रभावित हो जाते हैं कि अपने को बिल्कुल भी नहीं सम्हाल पाते ।

साधारण व्यक्ति हर्ष के अवसर पर भी मर्यादा से बाहर हो जाता है । थोड़ा-सा धन-मान पा जाने पर दूसरों को छोटा समझने लगता है । बन-ठन कर रहता है, बनाव शृंगार करता है, मेवा-मिष्ठान्न खाता है, सैर-सपाटे करता है । जीवन की कठिनताओं को विस्मृत कर बैठता है ।

उपरोक्त प्रकार की साधारण स्तर वाली क्रियाएँ तथा मनोवृत्तियाँ प्रत्येक साधारण व्यक्ति में पाई जाती हैं । मनोविकार उसे खूब नाच नचाते हैं । कभी वह हँसता है, तो कभी आँसू बहाता है । कभी वह अपने ऐश्वर्य में पागल रहता है तो कभी अपने धन-जन की हानि से इतना उद्विग्न हो जाता है कि उसे अपना आगा-पीछा कुछ नहीं सूझता ।

आत्मोन्नति का यह अर्थ है कि मनुष्य इन दैनिक जीवन की नित्य प्रति घटने वाली सुख-दुःख हर्ष-विषाद की भावनाओं से ऊपर उठे अर्थात् उनके वश में आने के स्थान पर अपनी आत्मिक दृढ़ता, साहस और संयम द्वारा उन पर राज्य करे । मनोविकारों तथा उद्वेगों के वश में होकर उद्विग्न, चलायमान, पीड़ित, कुद्ध हो जाना, साधारण बातें हैं किन्तु जब मनोविकार अपना जोर दिखा रहे हों, तब उन्हें मजबूती से अपने वश में रखना, उनसे अविचलित रहना, स्वयं अपनी इच्छानुसार उन्हें ढालना, क्रोध के समय प्रसन्न रहना यह आत्मोन्नत व्यक्ति ही कर सकता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आत्मोन्नति एक लम्बी यात्रा है, इसकी भिन्न-भिन्न स्थितियाँ तथा अवस्थाएँ हैं । जब हम एक स्तर ऊँचे उठते हैं, तो हमें नीचे की वस्तुएँ स्वयं नि:सार प्रतीत होने लगती हैं । ज्यों ही मनुष्य को जीवन की नश्वरता, क्षणभंगुरता, निर्बलता का ज्ञान होता है, उसे सांसारिक भोग्य पदार्थों, बनाव, शृंगार, इन्द्रिय-पूजा से विरक्ति होने लगती है । वह जीवन के सच्चे सुख और आनन्द के प्रति सचेष्ट और जागरूक हो उठता है । जब वह किसी भी सांसारिक सुख या प्रपंच के प्रति आकर्षित होता है तो उसे उसकी पृष्ठभूमि में निवास करने वाली कुरूपता, क्षणिकता का बोध हो जाता है । अत: वह इधर से हट कर स्थायी और अधिक काल तक मौजूद रहने वाले सुखों की ओर जाता है ।

आत्मोन्नति का अर्थ है पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर आना । पशुत्व क्या है ? मनोविकारों के ऊपर तनिक भी शासन न कर पाना, जब जैसा मनोविकार आया, उसे ज्यों का त्यों प्रकट कर दिया, काम, क्षुधा, भूख, प्यास आदि वासनाएँ जैसे ही उत्पन्न हुईं कि तुरन्त उनकी पूर्ति करली गई, यह स्थिति पशुत्व की स्थिति है ।

जब इन वासनाओं पर संयम आना प्रारम्भ होता है और मानवता के उच्चतम गुण-प्रेम, सहानुभूति करुणा, दया, सहायता, संगठन सहयोग, समष्टि के लिए व्यक्ति में त्याग इत्यादि भावनाओं का उदय होता है तो मनुष्य मनुष्यत्व के स्तर पर निवास करता है ।

धीरे-धीरे उसका और भी विकास होता है और वह सांसारिक बन्धनों से छूटकर आत्मा जैसे निगूढ़ ईश्वरीय तत्व की प्राप्ति में अग्रसर होता है । उसे प्रतीत होने लगता है कि विश्व में जो कुछ भी है, उसका स्वामी परमात्मा है । सबमें प्रभु का निवास है **तेनसत्यक्तेन भुञ्जीथा** इसीलिये वह त्यागपूर्वक भोग करता है । जिसको यह दृष्टि प्राप्त हो गई वह धन्य है । सबको भगवान्मय देखने का शुभ परिणाम होता है - त्यागमय जीवन । परिग्रह अथवा संग्रह की बुद्धि भगवद्-भक्त में नहीं हो सकती । त्याग को पीछे रखकर भोगमय जीवन आसुरी प्रवृत्ति है, जबकि भोग को गौण बनाकर त्याग को प्रमुखता देना दैवी-सम्पत्ति है । यही आत्मोन्नति का अर्थ है

भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है-

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।**
**कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।**

''नर्क के तीन द्वार हैं-काम, क्रोध और लोभ । आत्म-कल्याण के इच्छुक को चाहिये कि वह इन तीनों से सावधान रहे अन्यथा वह नर्क में पहुँचेगा ।''

''संसार में मानव रूप में जीवन बिताने वाले हे जीव ! तू सर्वत्र उन्नति की ओर बढ़ । कोई ऐसा कार्य न कर जिससे तू नीचे गिरे तथा तुझे दु:ख का सन्ताप हो । अपने जीवन को मृत्यु से मुक्त करता हुआ अर्थात् दीर्घ जीवन के लिये प्रयत्न करता और इस संसार में अग्नि तथा सूर्य की शक्तियों का उपयोग करता हुआ जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर !''

उपयुक्त मन्त्र में भावात्मक तथा क्रियात्मक दोनों प्रकार के कार्यों का वर्णन किया गया है । मनुष्य-जीवन का लक्ष्य क्या हो, इसकी ओर भी संकेत किया गया है ।

अत: आप जहाँ तक पहुँच चुके हैं, वहाँ से उठने और आगे बढ़ने के लिए आपको पुरुषार्थ करना चाहिये ।

अपने अन्दर कभी हीनता की भावना न आने देनी चाहिये । जब तक हमारे भीतर आत्मा की अमरता और नैतिक साहस का भाव दृढ़ न होगा, तब तक हम स्वार्थ व वासना के कीड़े ही बने रहेंगे ।

श्रुति ने ठीक ही निर्देश किया है ''सर्व-व्यापक प्रभु का स्मरण करो और निर्भय जीवन व्यतीत करो, यही आत्मोन्नति का अर्थ है ।''

## उन्नति की गुप्त साधना

मनुष्य का एकाग्र मन उसकी उन्नति में सबसे अधिक सहायक है । जिस मनुष्य ने अपने मन को एकाग्र कर लिया है, वह एक समय में पूरी तरह एक समस्या पर एकाग्र कर सकता है । इस एकाग्रता से वह अनायास ही अनेक समस्याएँ हल कर सकता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

## २.३४ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

आपने देखा होगा कि उन्नतोदर लेन्स को जब सूर्य की किरणों के सामने रखते हैं और उसके आगे जब कोई कपड़ा, कागज या पत्ता इत्यादि रखते हैं, तो कुछ देर बाद वह चीज जलने लगती है ।

इसका कारण क्या है ?

वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि सूर्य की गर्म-गर्म किरणें उस काँच से निकल कर एकत्र हो जाती हैं । काँच की बनावट ही कुछ ऐसी होती है कि वे एक ही स्थान पर केन्द्रित हो उठती हैं । उन एकत्र की हुई किरणों से भयानक गर्मी--यहाँ तक कि अग्नि उत्पन्न होती है । इस अग्नि से ही वह वस्तुएँ जलने लगती हैं । छोटी-छोटी किरणें, जो अलग-अलग साधारण सी गर्म थीं, एकाग्र होकर अग्नि में बदल जाती है ।

यही हाल हमारे मन का है ।

जब हमारा मन दुनिया की छोटी-छोटी समस्याओं और झंझटों में भटकता रहता है, तो किसी बड़े और महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने का निश्चय ही नहीं हो पाता है ।

याद रखिये, जब आपका मन एक ही विषय पर केवल एक ही काम पर पूर्ण एकाग्र होगा, आपकी विचारधारा एक ओर को ही प्रवाहित होगी, तभी वह कार्य या लक्ष्य सिद्ध होगा ।

आपने देखा होगा कि सूर्य की धूप में सारे संसार की वस्तुएँ पड़ी रहती हैं । वे गर्म तो हो जाती है, पर जलती नहीं, क्योंकि उन वस्तुओं पर एक स्थान पर एक ही किरण की गर्मी पड़ती है । अत: जब हमने एक स्थान पर अनेक किरणें एकत्रित करलीं, तो गर्मी अधिक होने से वह जल उठीं । यह है एकता या एकाग्रता का अद्‌भुत बल-

और उदाहरण लीजिये । प्राय: देखा जाता है कि एक मनुष्य यदि दूसरे की बात नहीं मानता, तो दूसरा मनुष्य अन्य भी कई लोगों को उस आदमी को समझाने के लिये बुला लाता है । बहुत से लोग मिल-जुलकर उसे समझाते हैं । अपने-अपने ढङ्ग से, अपने-अपने तर्क से फुसलाते हैं । इन सब एकत्रित विचारों का सामूहिक असर उस मनुष्य की विचारधारा पर पड़ता है और अन्त में वह सामूहिक बात को मान ही जाता है । यह है एकाग्रता का प्रभाव ।

एक बार इस एकाग्रता प्रयोग किसी स्कूल के विद्यार्थियों ने करना चाहा । उन्होंने सलाह की कि किसी दिन छुट्टी लेनी चाहिये ।

अध्यापक महोदय कक्षा में आये ।

एक लड़का बोला, 'पण्डित जी ! आज आप कुछ उदास से दिखाई देते हैं ।'

दूसरा विद्यार्थी बोला मालूम पड़ता है आज आपको बुखार है । चेहरा निढाल है ।'

तीसरे ने कहा, 'बुखार में आप यों स्वास्थ्य की बिना परवाह किये स्कूल चले आये, यह आपने अच्छा नहीं किया ।'

चौथे ने कहा, 'देखिये, आपकी आँखें कैसी चढ़ी हुई हैं ।'

पाँचवें ने कहा, 'मास्टर साहब, आप काँप भी तो रहे हैं ।'

छटे ने कहा, 'जाड़े का बुखार चढ़ा है और आप पढ़ाने स्कूल चले आये । यह अच्छा नहीं किया । आप आराम कीजिये तो ठीक रहे ।'

फिर कुछ विद्यार्थियों ने पण्डित जी का शरीर पकड़ा । किसी ने हाथ, किसी ने सिर, किसी ने पैर और सबने कहा-

'ओहो ! गजब है । आप जाकर अभी लेटिये वरना निमोनिया होने की सम्भावना है ।'

मनुष्य के मन पर सामूहिक विचारधारा का अद्‌भुत प्रभाव देखा गया । एक घण्टे बाद मास्टर को वैसी ही तकलीफ का अनुभव होने लगा, जैसे विचार लड़कों ने मिलकर प्रकट किये थे । मास्टर साहब ने विद्यार्थियों को छुट्टी देकर विश्राम करना प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार एकता और एकाग्रता की विजय हुई ।

**एकाग्रता में सबसे आवश्यक बात**-एकाग्रता में सबसे आवश्यक तत्व यह है कि संसार के झंझटों सम्बन्धी बातों का बहुत कम, और जहाँ तक बन सके, बिल्कुल ही ज्ञान न रक्खा जाय । समाचार पत्रों में प्राय: बहुत-सी बेमतलब बातें, बकवास, अफवाहें, झूठ कपोल-कल्पित घटनाएँ छपती रहती हैं । यथासम्भव अखबार या जासूसी कहानियाँ, फिल्मी कहानियों के पत्र न पढ़े जायँ । इधर-उधर की विविध हलचल की खबरें न पूछी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जायँ । यथासम्भव बातें भी अधिक न की जायँ तो और भी अच्छा ।

अपने सारे विचार अपने ध्येय के चिन्तन में ही लगाये रखिये । घर, परिवार, मुहल्ले, समाज, जाति बिरादरी की उलझनों में आप जितना फँसेंगे, उतना ही मन अस्त-व्यस्त और विचलित होगा । आपका मन छिन्न-भिन्न रहेगा । सदैव भटकता रहेगा । आपको एकाग्रता प्राप्त न होगी ।

जो लोग सनसनी पैदा करने वाले किस्से कहानियाँ, सस्ते कामोत्तेजक उपन्यास अथवा फिल्म सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकों में फँसे रहते हैं, उनकी उत्तम वृत्तियाँ चंचलता की ओर जाती हैं । जटिल और उपयोगी विषयों पर एकाग्रता करने की शक्ति निर्बल हो जाती है ।

जिस काम अथवा विचार से मन में उद्वेग या हलचल पैदा हो, वह एकाग्रता की शक्ति को निर्बल करता हैं ।

सभी प्रकार के उद्वेग हानिकर होते हैं । नशा करने वाले, कामी, क्रोधी, उत्तेजक स्वभाव वाले, लड़ने वाले, गाने-नाचने वाले-इन सबमें एकाग्रता का अभाव होता है, क्योंकि इनकी उच्च शक्तियाँ बिखरती रहती हैं ।

आप किसी साधारण मनुष्य को देखिये, जो अधिक पढ़ा-लिखा या एकाग्र नहीं है । देखिये, वह कैसे बेमतलब अपने हाथ, पैर, मुँह चलाता है और अङ्गों के व्यर्थ परिचालन से अपनी शक्तियों को बिखेरकर कमजोर बनाता है ।

इसी तरह व्यर्थ चिल्लाने, बकवाद करने, निरर्थक बातों और विषयों पर माथापच्ची करने, सिनेमा के अश्लील गीत गुनगुनाने से आप की मानसिक और नैतिक शक्तियों का दुरुपयोग होता है । वे क्षीण होकर नष्ट होती हैं ।

आपको केवल मन को एकाग्र करने की ही आवश्यकता नहीं है, बल्कि आँखों, कानों, उँगलियों के कार्यों पर भी अधिकार रखने की आवश्यकता है । इन सबमें मन का वास होता है ।

यदि तुम बड़े और प्रसिद्ध पुरुषों के पास रहो, अथवा उनके जीवन चरित्र पढ़ो, तो तुम्हें मालूम होगा कि वे दूसरों की बातें सुनते रहते थे । सुनने की अपेक्षा बोलना बहुत सरल है । दूसरों की बातों को ध्यान देकर सुनने की अपेक्षा बढ़कर एकाग्रता का कोई दूसरा साधन नहीं है ।

जब आप किसी को 'नमस्कार' 'प्रणाम' 'जयरामजी' करते हैं, तो उसी से आपकी एकाग्रता का परिचय दूसरों को मिल सकता है । वह आपके शब्द सुनकर, स्वर की ध्वनि और आपकी मुख मुद्रा से जान सकता है कि आपने यह बेपरवाही से या बिना मन से या प्रसन्नतापूर्वक किया है । इसका भेद उसी समय प्रकट हो जाता है ।

प्रेम-भाव की 'राम राम' और शुष्क दुनियादारी की दिखावटी 'राम राम' में तत्क्षण पहचान हो जाती है ।

दो सुयोग्य, सुसंस्कृत, एकाग्रचित्त व्यक्ति मिलते हैं तो उनका वह मिलन कैसा सुखदायक होता है । एक पुरुष किसी चिन्ता-ग्रस्त अथवा क्रोधी से मिलता है तो उनका वह समागम कैसा रूखा होता है । यह देखने में ही आता है । प्रेम, क्रोध, द्वेष, चिड़चिड़ापन इत्यादि भावनाओं का दर्पण हमारा मुख मण्डल ही है ।

यदि आप निरर्थक बातों और गल्पों, व्यर्थ की टीका-टिप्पणी में, राजनीति की चकाचौंध में फँस कर आन्तरिक गुप्त शक्तियों को नहीं समझ सकते, तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ है । स्थायी महत्व का और क्षणिक, लाभदायक-हानिकारक जीवन में अन्तर समझना और स्थायी तत्वों पर एकाग्र करना ही श्रेष्ठ जीवन का लक्षण है । यदि तुमने केवल खाना-पीना, आनन्द मनाना और सोना-को ही मानव-जीवन का आदर्श समझ रखा है, तो वास्तव में तुमने सच्चे जीवन को नहीं समझा है और तुम्हारा यह मानव-जीवन व्यर्थ ही जा रहा है । तुम पशु का जीवन जीओगे, तो अज्ञान और अविचार के दलदल में फँसकर पददलित होओगे और संसार तुम्हारी कुछ परवाह नहीं करेगा ।

**तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है ?**-आपसे मेरा सीधा सवाल है, आखिर आप इस मनुष्य की जिन्दगी से क्या लाभ लेना चाहते हैं ?

आप शायद कहेंगे, 'आनन्द और अभ्युदय का भविष्य !'

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मैं भी यही समझता हूँ आपका जीवन में यही उद्देश्य होगा । परन्तु याद रखिये, इस उपस्थित वर्तमान को बनाने से ही भविष्य उज्ज्वल बनेगा । जैसा आपका वर्तमान होगा, वैसा ही आपका भविष्य होगा । जो तुम वर्तमान में भुगत रहे हो, जिस स्थिति में हो, वह आपके भूतकाल के विचारों और कर्मों का फल है ।

आज हमारे समाज में मानव-जाति के हृदय में काम का फल जल्दी से जल्दी पाने को प्रवृत्ति हो गई है । लोग खेत को बिना जोते ही बिना बोए या सींचे ही शान्ति और सफलता रूपी फसल काटने को तैयार बैठे हैं ।

जब कारण ही नहीं, तो कार्य कैसे हो ? और जब कार्य नहीं तो उसका फल कैसे हो सकता है ? शून्य से कुछ भी पाने की आशा नहीं की जा सकती है ।

हमारा मन एक उपजाऊ खेत है, जिससे जो वस्तु चाहो सीधे रास्ते से पैदा कर सकते हो । उसका उचित उपयोग कीजिये । जैसा बोयेंगे, वैसा ही काटेंगे । शास्त्र का वचन है -

**यदा वै मनुतेऽथ विजानाति ।** *-छा० उ० ७/१८/१*

''जब मनुष्य मनन करता है, तभी ज्ञानी बनता है ।''

## सुखों का भण्डार

शुभ सात्विक और आशापूर्ण विचार एक वस्तु है । वह एक ऐसा किला है जिसमें मनुष्य हर प्रकार के आवेगों और अघातों से मुक्त रह सकता है । लेकिन मनुष्य को उत्तम विचार ही रखने और अपनी आदत में डालने का अभ्यास निरन्तर करना चाहिए ।

विचार फालतू बात नहीं है । वह एक संज्ञा है । एक मजबूत ताकत है । उसका स्पष्ट स्वरूप है । उसमें जीवन है । वह स्वयं ही हमारा मानसिक जीवन है । वह सत्य है । विचार ही मनुष्य का आदिरूप है । पानी में लकड़ी, पत्थर, गोली आदि फेंकने से जैसा आघात होता है, जैसा रूप बनता है, जो प्रभाव होता है, वैसा ही तथा उससे भी अधिक तेज आघात विचारों को फेंकने से होता है ।

आपके सृजनात्मक विचारों में नव-रचना करने की अद्‌भुत शक्ति है । मनुष्य के जिस रङ्ग, रूप , गुण, दिशा, क्रम, संस्कार के विचार होते हैं, उसी दिशा में उसकी तीव्र उन्नति होती जाती है ।

जिनका मन सदा उत्साहपूर्ण रहता है और मन में बड़ा होने की लालसा होती है, जो व्यक्ति बड़ा अधिकारी, लेखक, वक्ता, नायक या नेता होना चाहता है, जिसका मन सदैव शून्य में -अपने मानसिक राज्य में बड़ी-बड़ी वस्तुओं की रचना किया करता है, वास्तव में वह एक दिन बड़ा हो जाता है यही अनुभव की हुई बात है । जितने लोगों ने उन्नति की है, या संसार में अमर नाम कमाया है, उस सभी ने विचारों की ही मुख्यता प्रत्येक कार्य में बताई है ।

सालोमन नामक एक बड़ा विद्वान् कहता है कि मनुष्य चुपचाप मन में जैसे विचार लिये फिरता है वैसा ही वह बनता है, परन्तु बड़ी-बड़ी बातें करने से कि -''मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, यों करूँगा'' आदि बातें करने से कुछ नहीं होता । हमारे कथन में, संकल्प में पूरी सच्चाई होनी चाहिए । रचना करने की शक्ति उन्हीं विचारों में होती है, जिनमें सच्चा विश्वास, दृढ़ श्रद्धा होती है ।

बाइबिल में लिखा है कि इस विश्व में आपको सब कुछ आपके आत्म-विश्वास के अनुसार ही प्राप्त होगा । इससे स्पष्ट है कि शुद्ध और उच्च विचारों के अतिरिक्त उन्नति के लिए दृढ़ श्रद्धा की आवश्यकता है ।

यदि एक विद्यार्थी के मन में सदैव नौकरी करने के विचार ही आते रहते हैं, तो वह आगे के जीवन में नौकरी ही करेगा, परन्तु यदि किसी उच्चाभिलाषी के मन में ऊँचा काम करने की भावनाएँ आती रहती हैं, तो वह भविष्य में किसी अच्छे काम का स्वामी बनेगा और अनेक मनुष्यों का स्वामी बनेगा ।

किसी समाचार पत्र में यह समाचार था कि एक मानसोपचारक ने शुभ विचारों को रोगियों के मन में बसाकर दो सौ से अधिक रोगियों को स्वस्थ कर दिया था । इसका अर्थ यही था कि रोगी को, या किसी को भी, जैसे विचारों का बार-बार उपदेश दिया जायगा, जो भी दृढ़ता से मन में बसाया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जायगा, वैसा ही कार्य उस रोगी के शरीर में प्रारम्भ हो जायगा ।

उन रोगियों को स्वास्थ्य, आनन्द, प्रसन्नता, दीर्घजीवन और यौवन के विचार बार-बार सुनाये जाते थे । इसलिए उनका मन बीमारी के विचारों को छोड़, स्वास्थ्य, आनन्द व शक्ति के विचारों को ग्रहण करता था । धीरे-धीरे वे अपने को स्वस्थ और नीरोग समझने लगे । इस प्रकार स्वास्थ्य के विचारों को मन में बैठाने से धीरे-धीरे उन्होंने स्वास्थ्य, आनन्द और शक्ति का लाभ किया । देखिये, स्वास्थ्य और यौवन, शक्ति और उज्ज्वल भविष्य के विचारों का कितना अद्‌भुत कार्य है ।

हमारे मिलने-जुलने से भी हमारे विचारों का बड़ा कार्य होता है । जो लोग प्रसन्न-चित्त और मुसकराने वाले स्वभाव के होते हैं वे अन्दर मन में सदा आनन्द के रस में ही डूबे रहते हैं । विपत्ति या बड़ी कठिनाई आने पर भी शुभ विचारों में लीन रहते हैं । उनसे जब कोई मिलता है, चाहे वह कैसा हो उदास, खिन्न चिन्ताग्रस्त या विपत्ति-संत्पत क्यों न हो, प्रसन्न मुख को देख अवश्य प्रसन्न हो जाता है । अपना समूचा दुःख-दर्द भूल जाता है और हँसी-खेल में, उसकी बातों में ही मग्न हो जाता है । प्रसन्न विचारों वाले व्यक्ति जहाँ जाते हैं, सर्वत्र आनन्द ही आनन्द की वर्षा करते रहते हैं ।

इसके विपरीत ऐसे लोग भी हैं जिनका मुख क्रोध, चिन्ता, उत्तेजना, ईर्ष्या या जलन से हमेशा फूला रहता है । चेहरा बदसूरत रहता है । उदासी का वातावरण छाया रहता है और उनके पास कोई जाना नहीं चाहता और न कोई बात करना चाहता है । उनका मुख-मण्डल उनके अनुचित विचारों के कारण ही मलीन रहता है ।

संसार में ऐसे मनुष्यों का ही आवश्यकता है, जिनके हृदय पवित्र प्रेम से पूर्ण हों और जो आनन्द के स्रोत हों, जिससे संसार में प्रेम, आनन्द और सुख का साम्राज्य हो । परमात्मा का भण्डार तुम्हारे ही अन्दर होते हुए तुम प्रेम, सुख और आनन्द की भीख बाहर दूसरों से माँगते फिरते हो ! पैसे की भीख क्यों माँगते हो ? मनुष्य की सहायता के भिखारी क्यों बनते हो ! ईश्वर के राज्य में सब वस्तुएँ उसी की हैं । फिर, सीधे ईश्वर से ही क्यों नहीं माँगते ? उस पर विश्वास क्यों नहीं करते ?

कारण यह है कि बचपन से ही तुम्हें इस बात की शिक्षा नहीं दी गई है और संसार के लोगों की देखा-देखी तुम भी ऐसा ही करने लगे । सुख बाहर नहीं है । आपके मन की शान्त और सन्तुलित स्थिति में है । इसी को शान्त करने से, आनन्दमय मनःस्थिति उत्पन्न होती है । केवल ईश्वर पर पूर्ण विश्वास और उच्च भविष्य में विश्वास की आवश्यकता है ।

बाइबिल में कई स्थानों पर आया है कि ''यदि तू मेरे नाम पर माँगे तो मैं अवश्य दूँगा ।''

आगे कहा गया है ''यदि तू माँगता है तो विश्वास कर तू पायेगा । फिर तू अवश्य पा जायेगा ।'' दुःख यह है कि हम इन बातों को पढ़ कर भी आपना सुख बाहर ही ढूँढ़ते फिरते हैं । हमें चाहिए कि हम अपने अन्दर छिपे हुए आनन्द के भण्डार पर विश्वास करें ।

## जीवन संग्राम में विजयी कैसे हो

जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रविष्ट हूजिए, पर प्रविष्ट होने से पूर्व यह समझ लीजिए कि यह एक यज्ञ है, अर्थात् पवित्र कार्य है । ईश्वरत्व के सब गुणों की सहायता से ही आप उसमें पूरी उन्नति कर विकसित और पूर्ण पक्वास्था में पहुँच सकते हैं । आप जीवन के लिए चाहे कोई भी क्षेत्र क्यों न चुनें, आपको नेतृत्व करना चाहिए । दूसरे शब्दों में सामान्य की अपेक्षा ऊँचा उठना चाहिए । आपके पास वे तत्व अधिक मात्रा में होने चाहिए, जो पथ-प्रदर्शकों में होते आये हैं । देश-विदेश के महापुरुषों, नेताओं, समाज-सुधारकों और धार्मिक क्षेत्र में कार्य करने वाले नेताओं के जीवनों का अध्ययन कीजिए । आप पायेंगे कि जीवन-यज्ञ में सफलता लाभ करने वाले वे ही व्यक्ति हैं, जिनमें साधारण की अपेक्षा अधिक ज्ञान था और जिन्होंने सफलता-विज्ञान का विशेष अध्ययन किया था ।

हरवर्ट कैसन नामक लेखक ने अपनी पुस्तक ''नेतृत्व के लिए उपयोगी सूत्र'' में लिखा है, ''नेतृत्व स्वयं अपने आप में एक शास्त्र है । इसमें सफलता के लिए मनुष्य में साधारण की अपेक्षा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अधिक गुण होने चाहिये । इसकी शैली और सिद्धि का तरीका भी अलग है । अन्य कलाओं की तरह जीवन की इस उपयोगी कला को भी सीखा जा सकता है । यह सब कलाओं की सिरमौर कला है ।''

उसी पुस्तक में कैसन साहब ने निम्न सूत्र दिये हैं, जिनसे मनुष्य पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है । इनमें से प्रत्येक सूत्र अपने आप में प्रथक् रूप से मन्थन करने, खूब सोचने विचारने का विषय है, सब में मानवता के उच्चतम गुणों के विकास और दानवता के विनाश का संकेत है । यह दिखाया गया है कि रजोगुण, तमोगुण और दानवता को दूर कर मनुष्योचित सद्गुणों की वृद्धि करते रहना चाहिए । सात्विक भावों और सामर्थ्यों के विकास से व्यक्तित्व का विकास होता है । इन गुणों का विकास कर जाति-धर्म और देश की सांस्कृतिक परिधि को लाँघ कर मानवता की सच्ची सेवा करने वाले वैज्ञानिकों, तत्व-वेत्ताओ, समाज-सुधारकों के जीवन की झाँकियाँ भी दी जा रही हैं, जिनमें इन तत्वों का विकास पाया जाता है । दैवी गुणों (जिन्हें गीता में दैवी सम्पदा कहा गया है ) का विकास करने से मानवता की वृद्धि होती है और जीवन कृतार्थ बनता है, मनुष्य उन्नति करता है ।

संसार में ऐसा कोई नहीं है, जो अन्धाधुन्ध आगे बढ़ता रहे । प्रत्येक महान् व्यक्ति ने अपनी सेवा या उन्नति का एक क्षेत्र चुना । यह चुनाव बड़ी समझदारी और भविष्य चिन्तन के पश्चात् हुआ । उसकी अच्छाई-बुराई, उजला और धुँधला सब पक्ष निर्णय देखे गए । अन्त में उसका निर्णय हुआ । होने के पूर्व अपनी शक्तियों को अच्छी तरह तोल लिया गया । ये उद्देश्य नाना प्रकार के थे, व्यक्तिगत उन्नति के साथ इनमें समाज, राष्ट्र और मानवता मात्र की सामूहिक उन्नति का विधान था । कोई कला, विज्ञान, धर्म, राजनीति में महान् बना, तो कोई मानव-सेवा, समाज-सेवा या भगवत्सेवा में बड़ा बना । किसी ने लोकोपकार के लिए अस्पताल, सेवा-सदन, दानशील संस्थाएँ मनुष्य की सेवा के लिए निर्मित कीं । किसी ने दान किया, कमाया और मुक्त-हस्त से दान किया । किसी ने कला, साहित्य संगीत, चित्रकारी से उच्चतम स्थिति प्राप्त की । आप भी अपनी इच्छानुसार अपने जीवन का उद्देश्य अवश्य रखिए, उसका अच्छी तरह अध्ययन कीजिए, उस क्षेत्र के व्यक्तियों से मिलिये, अधिक से अधिक परामर्श कीजिए ।

यदि आप नेता बनना चाहते हैं, तो जल्दी ही निर्णय करना चाहिए । ''अमुक कार्य करूँ अथवा न करूँ '' ऐसे पशोपेश से बचना चाहिए । यदि आप प्रत्येक व्यक्ति का दान या परामर्श स्वीकार करते जायेंगे, तो कहीं भी न पहुँच पायेंगे । कोई कुछ कहेगा, तो दूसरा विपरीत सलाह देगा । प्रत्येक अपनी-अपनी इच्छा बुद्धि, शक्ति, रुचि और दृष्टिकोण से सलाह देगा । फल यह होगा कि आपकी शक्ति सामर्थ्य से कोई भी मेल न खायेगा । सबके सुझाव पृथक्-पृथक् होंगे, कोई आपके अनुकूल न बैठेगा । प्रत्येक के निष्कर्ष अलग होते हैं । आपको व्यक्तिगत अनुभवों के बल पर ही अपने निर्णय करने चाहिए । आप अपने यहाँ के नेताओं का अध्ययन करें तो आपको प्रतीत होगा कि उनमें शीघ्र निर्णय करने की अद्भुत क्षमता थी । निर्णय करने में अधिक देरी न होने के कारण उनको बहुत-सा समय मिल गया और जबकि दूसरे अन्धकार में हाथ पाँव फैलाये रहे, ये अपने क्षेत्र में उन्नति करते गये ।

नेता भविष्य-दृष्टा होते हैं । अर्थात् स्वतन्त्र रूप से बहुत आगे की सोचते हैं । शब्दों, विचारों, योजनाओं और अपने संकल्पों में स्वतन्त्र होते हैं । अपना अलग-अलग चिन्तन करते हैं । दूसरों के अनुभवों से लाभ अवश्य उठाते हैं, पर अपना मार्ग स्वयं ही निर्धारित करते हैं । आजकल वह युग नहीं कि आदमी अंधगति से जैसा कहा जाय बिना समझे-बूझे वैसा ही करता चला जाय । आजकल स्वयं चिन्तन और नये रूप में सोचने का युग है । नया युग है, नई परिस्थितियाँ हैं, नई समस्याएँ हैं, नए मापदण्ड हैं । इन सबके लिए हमें नए रूप में ही सोचना-बिचारना है । युग के अनुसार अपने आदर्शों को ढालना है-स्वयं ढलना है ।

पुनः-पुनः अपने निर्णयों या आर्दशों को मत बदलिये । आप जानते हैं कि आप उसी को नेता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मान सकते हैं, जो पौरुषपूर्ण हो, चट्टान की तरह दृढ़ हो और स्पष्ट निर्देश दे, जिसे यह ज्ञान हो कि वह वस्तुत: क्या कह रहा है ? क्या करना चाहता है ? जो कुछ वह कह रहा उसका क्या प्रभाव होगा ? आप कभी उस व्यक्ति पर विश्वास न करेंगे, जो थोड़ी देर में अपने विचारों को बदला करता है ? या विषम स्थिति को देखकर डर जाता है । तनिक से विरोध से भयभीत हो जाता है । नेता प्राय: वे ही हैं जिन्होंने अपने मत को खूब सोचा है और फिर उस पर दृढ़ता से डटे रहे हैं ।

मानवता के कष्ट, पीड़ा, वेदना और उत्पीड़न को दूर करने वालों और समता तथा स्वतन्त्रता से जीवन व्यतीत करने वालों में अमेरिका के अब्राहम लिंकन का नाम चिरस्मरणीय रहेगा । उनका जन्म एक साधारण कुल में हुआ, गाँवों में इनका लालन-पालन हुआ, शान्ति के वातावरण में वे पनपते रहे और जीवन भर उन्होंने शान्ति और न्याय का पाठ पढ़ाया । जीवन में वे न्याय के लिए लड़ते रहे और निराशा व विरोधों से टक्कर लेते रहे । गरीबों के साथ भी समानता का व्यवहार हो, यही उनका जीवन ध्येय था ।

अब्राहम लिंकन के जीवन से प्रकट होता है कि जब वे युवक थे, तो वे इलिनोस के चुनाव के लिए खड़े हुए थे । इस चुनाव में वे बुरी तरह हारे थे । उसके बाद उन्होंने सफलता के लिए व्यापार का क्षेत्र चुना किन्तु उसमें भी बुरी तरह असफल हुए । १७ वर्षों तक वे गलत साथी के साथ साझे में कार्य करने से अपने पर चढ़े हुए कर्ज को निपटाते रहे । एक सुन्दर युवती से उनका प्रेम सम्बन्ध हो गया । बहुत दिनों तक वे उसी रङ्गीन जीवन में लगे रहे । एक दिन वह युवती मृत्यु को प्राप्त हुई, फिर वे राजनीति में प्रविष्ट हुए, कांग्रेस के उम्मीदवारी के लिए खड़े हुए, पर हार गये । उन्होंने अमेरिका के लैण्ड आफिस में नौकरी चाही पर वहाँ भी असफलता ही मिली । अमेरिका सीनेट के लिए उन्होंने प्रयत्न किया, परन्तु बुरी तरह पराजित हुए । इतनी असफलताओं से भी वे कदापि निराश न हुए और अन्त में उन्होंने अपने देश का सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया और अमर-कीर्ति के स्वामी बने । ऐसा व्यक्ति ही सफल नेतृत्व के गुणों से सम्पन्न कहा जायगा । प्राय: हमारी असफलताएँ योग्यता के नए पहलू दिखलाती हैं । हमें प्राय: यह ज्ञात नहीं रहता कि जीवन के किस क्षेत्र में, समाज के किस पहलू में सफलता प्राप्त करेंगे ।

जिन व्यक्तियों ने आपको सहयोग सेवा, सलाह या प्रेम किया है, मार्ग दर्शन से सहायता की है, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कीजिए । अपने सफल सहयोगियों की दाद दीजिए अर्थात् उनकी सेवाओं के प्रति प्रोत्साहन कीजिए । संगीत, कविता, कला, लेखन अभिनय प्राय: सभी क्षेत्रों के कलाकार (जो हो सकता है आपके सहयोगी भी हों ) प्रोत्साहन की आकांक्षा करते हैं । बड़े नेता सदा ऐसे विकासोन्मुख कलाकारों को सच्चा प्रोत्साहन किया करते हैं ।

एमर्सन को बौद्धिक ब्राह्मण कहा जाता है । वे अपने संकल्पों पर इतने दृढ़ रहा करते थे कि यदि उनका कोई मित्र उनके नैतिक तथा सत्यसम्बन्धी धरातल पर होता नहीं था तो वे उससे कहा करते थे-''जनाब, आप अपने रास्ते जाइये, मैं अपने मार्ग पर जाऊँगा । दम्भ करने से कोई लाभ नहीं, यदि हम अपने मतानुसार सत्य मार्ग का अनुसरण करते रहे, तो कभी न कभी आगे चलकर एक हो जायेंगे ।'' वे न तो किसी मित्र की प्रतिध्वनि बनना चाहते थे और न किसी को अपनी प्रतिध्वनि बनाना चाहते थे । उनका मत था कि हमें लोगों से मिलना जरूर चाहिए, पर अपनी शर्तों पर और क्षुद्र कारण पर किसी का प्रवेश या बहिष्कार करने का हमें अधिकार होना चाहिए ।

महर्षि एमर्सन के ये शब्द लुई पाश्चर के जीवन के निष्कर्ष हैं, ''जो मनुष्य सुदृढ़ता से धैर्य का आँचल पकड़ लेते हैं, वे फिर जीवन के ऐसे गड्ढे में नहीं गिर सकते कि जहाँ से वे उठ ही न सकें । मैंने धैर्यवान मनुष्य को प्राय: अपने अभूतपूर्व अभीष्ट पर ही पहुँचते देखा है और वास्तव में मनुष्य में इतना सजीव साहस होना चाहिए कि वह संकटकालीन अवस्था में अपने आप को खड़ा रख सके ।''

सेमुएल स्माइल्स के शब्द सुकरात की इन बातों को स्पष्ट करते हैं, ''आत्मोद्धार अथवा अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उन्नति करने में निर्णय शक्ति, दृढ़ निश्चय और तत्परता की आवश्यकता होने की आदत डाल दी जाय और आरम्भ में जिस हद तक हो सके, उसे स्वयं काम करने को स्वतन्त्र किया जाय । अपने ऊपर विश्वास न होने से हमारी उन्नति में बहुत बाधा आ जाती है ।''

## जीवन में श्रेष्ठतम लाभ उठाने के छह नियम

अँग्रेजी के एक लेखक फिलिप डब्ल्यू० यंग ने अपने जीवन भर के निचोड़ को छै स्वर्ण सूत्रों में प्रकट किया है । उनका यह विचार है कि इन नियमों का पालनकर मनुष्य जीवन में सर्वोच्च लाभ उठा सकता है । लोग गलती से यह समझ बैठे हैं कि जीवन में पूरा लाभ उठाने के लिए उनके पास समुचित साधन नहीं है, न प्रतिभा है न रुपया या अन्य वस्तुएँ । यही त्रुटि है । सत्य तो यह है कि चाहे आपकी विद्या बुद्धि कितनी भी सामान्य हो या बैंक की संचित पूँजी कितनी भी कम हो, आप अपने जीवन में सर्वोच्च सफलता और लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इन स्वर्ण-सूत्रों को जीवन में उतारिये ।

यह नुस्खा छै मूल सिद्धान्तों पर आधारित है । इनकी सत्यता और प्रभाव की जाँच पुनः-पुनः हो चुकी है । इनको संसार के बड़े-बड़े विचारकों और प्रसिद्ध दार्शनिकों ने प्रोत्साहित किया है और आज के श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक भी इन्हें पूरी तरह से मानते हैं ।

**जीवन का उद्देश्य निश्चित करें**-आप अपने जीवन का ध्येय दूसरों की सेवा बनाइये, न कि अपने को संकुचित उद्देश्यों की परिधि में बाँध लीजिए । जो व्यक्ति दूसरों के लिए जीता है और उनकी सेवा करता है, वह अक्षय कीर्ति प्राप्त करता है । माहत्मा गाँधी जी सदा देश के लिए जिए और अन्त तक सेवा कार्य में ही लगे रहे । उन्हें भारत की जनता कैसे भूल सकती है ?

सत्यता यह है कि जो व्यक्ति अपना रुपया बढ़ाने की अपेक्षा दूसरों की किसी न किसी रूप में सेवा करने का प्रण करते हैं, वे जीवन में अधिक आनन्द उठाते हैं । उन्हें सार्वजनिक दृष्टि से अधिक सफल कहा जा सकता है ।

हेनरी फोर्ड ने अपने जीवन के बाद के दिनों में अपने रुपये की अपेक्षा अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की थी, क्योंकि उन्होंने केवल निजी कामों के लिये रुपया मात्र कमाने के स्थान पर अपना लक्ष्य देश और जाति की सेवा करना अपना लिया था । फल यह हुआ कि हेनरी फोर्ड संसार में समृद्धि के साथ-साथ एक सफल व्यक्ति भी रहे । अपनी पुस्तक ''मेरा जीवन और कार्य'' में वे स्वयं लिखते हैं-

''जीवन में केवल रुपया मात्र कमाने से मैं कुछ भी प्रसिद्धि और सफलता प्राप्त न कर सका । जन-सेवा का कार्य मुझे उसकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और ठोस मालूम हुआ और फिर तो यही मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य भी हो गया ।''

आप स्वयं अनुभव करके देखिए । यदि आप सेवा-भावना का प्रयोग करें, तो देखेंगे कि आप अधिक रुपया कमा सकेंगे । इससे एक लाभ यह भी होगा कि आप अस्त-व्यस्तता के स्थान पर सन्तुलन स्थापित कर सकेंगे, मन पर अनुचित दबाव के स्थान पर कोई भार न रहेगा और आप ऐसा अनुभव करेंगे जैसे आप किसी उद्देश्य के लिए जी रहे हैं और आपका जीवन भरा-पूरा है ।

**धैर्य धारण करें**-दूसरा तत्व धैर्य की आदत का विकास करना है । धैर्य का अर्थ यह है कि आज आप अपना काम अधिक से अधिक पूरा कर डालने की कोशिश कीजिए । दूसरे शब्दों में जो काम आज हो सकता है उसे कल पर मत छोड़िये । यह आपको साधारण-सी बात जँचती होगी पर वास्तव में आज का पूरा-पूरा सदुपयोग करना, उससे अधिकतम काम निकालना, एक-एक घण्टे और मिनिट का पूरा फायदा लेना एक ऐसा महा-नियम है जिनका प्रत्येक उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को अवश्य पालन करना चाहिए । अगर कोई कार्य आज हो सकता है, तो उसे अवश्य ही आज पूर्ण कर डालिये । उसे कदापि कल पर मत टालिये । कल तो और बहुत से काम, नई-नई समस्याएँ, नए प्रश्न आपके हल करने के लिए सामने आ जायेंगे । हाँ, जो काम वास्तव में आज पूर्ण नहीं हो सकते,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उन्हें आप अवश्य कल मुल्तबी कर सकते हैं । यदि आपका विवेक यह कहता है कि दरअसल यह काम आज पूर्ण नहीं होगा, तो उसे कल पर टाल दीजिए वर्ना उसे आज पूर्ण करने का पूरा प्रयत्न कीजिए ।

**विगत चिन्ताएँ दूर कीजिए**-सम्भव है भविष्य की कुछ चिन्ताएँ आपको दुःखी रखती हों और मन में निरन्तर भार उत्पन्न किए रहती हों । इनसे आपकी उत्पादक शक्तियाँ पंगु हो जाती हैं । अतः इन भावी चिन्ताओं को दूर कीजिए । सबसे उत्तम बात यह है कि इन चिन्ताओं को लिख डालिये जिससे इनका स्पष्ट चित्र आपके सामने आ जाये । इससे आपका मन साफ हो जायगा और भावनाओं पर पड़ा हुआ अनुचित भार दूर हो जायेगा । अब यदि आज के विविध कार्यों में अपने आपको व्यस्त करलें तो पुरानी चिन्ताओं के भार से आपको अनायास ही मुक्ति मिल जायेगी ।

जे० आर्थर बैंक, जो फिल्म निर्माता हैं, के पास चिन्ताएँ दूर करने का अपना निजी तरीका है । शायद आप इसे पसन्द करें । उन्होंने यह तय किया है कि वे अपनी सारी चिन्ता का काम सप्ताह में केवल एक दिन के लिए रिजर्व रखेंगे । इसके लिए उन्होंने बुधवार का दिन तय किया है । यदि किसी अन्य दिन कोई चिन्ता आकर उन्हें परेशान करती है, तो वे उसे उसी दिन के लिए लिखकर एक बक्से को खोलते हैं । फिर उन पर्चियों पर लिखी हुई चिन्ताओं को एक-एक कर देखते हैं, उन्हें मालूम होता है कि आधी चिन्ताएँ तो स्वयमेव समाप्त हो चुकी हैं । शेष को वे फिर अगले बुधवार के लिए टाल देते हैं । अगले बुधवार को फिर पाते हैं कि उनमें से कुछ चिन्ताएँ और समाप्त हो चुकी हैं । इसी प्रकार की घृणित मानसिक आदत मात्र है । जिन चीजों से हम मन ही मन डरा करते हैं, वास्तव में उनमें से बहुत-सी बातें कोरी कल्पना मात्र हैं । वे कभी नहीं न घटने वाली हैं ।

**बीती ताहि विसार दे**-जिस प्रकार समय से आगे भावी युग में रहना मूर्खता-पूर्ण आदत है, उसी प्रकार बीते युग में ही रहते रहना मूर्खता-पूर्ण है । जो बीत चुका, उसे बीत जाने दीजिए । जो गया, सो गया अब उसके लिए पछताने से क्या लाभ ? वह वापस नहीं लाया जा सकता । यदि आप लगातार उसी की बाबत सोचते हैं, तो इसका मतलब है कि आप अभी भी उसी बीते हुए युग में निवास कर रहे हैं । जब कभी आप किसी बीती हुई मूर्खता के लिए चिन्तित होने लगें, तो जरा ठहरिये और सोचिये कि उस पुरानी गलती के कारण अपने मौजूदा आनन्द आरै उज्ज्वल भविष्य को कलुषित करने से क्या फायदा होगा ? फिर क्यों न मजबूती से आज के काम में जुट पड़ें । यदि सम्भव हो तो नया सृजनात्मक कार्य क्यों न करें जिसमें हमारा तन और मन पूरी तरह जुट पड़े । तो अतीत की व्यर्थ चिन्ताएँ छोड़कर दिलचस्पी का नया कार्य शुरू कीजिए । पुरानी अँधेरी कोठरियों से निकल कर उज्ज्वल और प्रकाशमान भविष्य का चिन्तन कीजिए और मौजूदा कार्य कीजिए ।

**उजला पहलू ही देखिए**-हमारे आस-पास के व्यक्तियों और परिस्थितियों में क्या बुरा है ? यह खोज निकालना बड़ा आसान है । सफेद वस्त्र पर भी कालिमा बुरी तरह चमकती है, लेकिन आप व्यक्तियों और मनुष्यों का चमकदार और उजेला पक्ष देखने की आदत विकसित कीजिए । अच्छाइयाँ देखने से आपके व्यक्तित्व की अच्छाइयाँ विकसित होंगी और आप देखेंगे कि व्यक्तियों में अच्छाइयाँ भी यथेष्ट मात्रा में हैं । इनका चिन्तन करने से अच्छाइयों का ही निरन्तर विकास होगा और संसार में प्रेम, सहिष्णुता, सद्भाव का प्रचार होगा । आपका व्यक्तित्व शुभ संकल्पों से देदीप्यमान हो उठेगा । इससे आप स्वयं प्रसन्न बनेंगे और दूसरों को भी आनन्दित कर सकेंगे । आस-पास वाले व्यक्तियों की अच्छाइयों का विकास होते रहने से समाज आगे बढ़ेगा ।

**जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्न**-यह अन्तिम सूत्र है । आप अपनी शक्ति मामूली निम्न स्तर के कार्यों में व्यय मत कीजिए । अपने दिमाग को ऊँचे और अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण कार्यों में लगाइये । व्यर्थ की गपशप, दूसरों की मिथ्या आलोचना, खराबियाँ, चुगली, मित्र-मण्डली के साथ समय को नष्ट करना,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आलस्य में पड़े रहना, आदि अनेक छोटे-छोटे कामों में लोग बड़ा आनन्द लेते हैं । रोजमर्रा के साधारण कार्यों में आप कम से कम समय व्यय कीजिए । ऊँचे काम कीजिए अपनी शक्ति को ऐसे महत्वपूर्ण कार्यों में लगाया कीजिए जिससे आपकी विशेषताएँ स्पष्ट हों, महानता प्रकट हो, देवत्व विकसित हो और आप साधारण की अपेक्षा ऊँचे उठे ।

यों तो इस संसार में जानने योग्य अनेक बातें हैं । विद्या के अनेकों क्षेत्र हैं, खोज के लिए, जानकारी प्राप्त करने के लिए, अमित मार्ग हैं, अनेकों विज्ञान ऐसे हैं जिनकी बहुत कुछ जानकारी, मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है । क्यों ? कैसे ? कहाँ ? कब ? के प्रश्न हर क्षेत्र में वह फेंकता है । इस जिज्ञासा भाव के कारण ही मनुष्य अब तक इतना ज्ञान सम्पन्न और साधन सम्पन्न बना है । सचमुच ज्ञान ही जीवन का प्रकाश स्तम्भ है ।

जानकारी की अनेकों वस्तुओं में से ''अपने आपकी जानकारी'' सर्वोपरि है । हम बाहरी अनेकों बातों को जानते हैं या जानने का प्रयत्न करते हैं पर यह भूल जाते हैं कि हम स्वयं क्या हैं ? अपने आपको ज्ञान प्राप्त किये बिना जीवन क्रम बड़ा डावांडोल अनिश्चित और कंटकाकीर्ण हो जाता है । अपने वास्तविक स्वरूप की जानकारी न होने के कारण मनुष्य न सोचने लायक बातें सोचता है और न करने लायक कार्य करता है नर से नारायण बनने एवं सच्ची सुख-शान्ति का राजमार्ग एक ही है, और वह है-''आत्म ज्ञान'' अर्थात् यह जानना कि ''मैं क्या हूँ ? कहाँ से आया और इस सुरदर्लभ जीवन का उद्देश्य क्या है ?'' इसका उत्तर शब्दों द्वारा नहीं वरन् साधना द्वारा हृदयंगम कराने का प्रयत्न अगले अध्याय में दिया गया है ।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# मैं क्या हूँ ?

## पहला सूत्र

**कोऽहं काचमे शक्ति, कः देश व्यय मागतौ ।**
**कःकाल कानि मित्राणि, एतञ्चिन्त्य मुहुर्मुहुः ।।**

मैं क्या हूँ ? मेरी क्या शक्ति है ? मैं कौन हूँ ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ? आदि बातों का बराबर विचार मंथन सभी मनीषियों, विचारकों ने किया और ज्ञान का एक ही स्वरूप बताया है वह है ''आत्म बोध'' ! अपने सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता । जीव असल में ईश्वर ही है । विचारों से बँधकर वह बुरे रूप में दिखाई देता है, परन्तु उसके भीतर अमूल्य निधि भरी हुई है । शक्ति का वह केन्द्र है और इतना है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । सारी कठिनाइयाँ सारे दुःख इसी बात के हैं कि हम अपने को नहीं जानते । जब आत्म स्वरूप को समझ जाते हैं तब किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं रहता । आत्म स्वरूप का अनुभव करने पर वह कहता है-

**''नाहं जातो जन्म मृत्यु कुतो मे,**
**नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।**
**नाहं चित्तं शोक मोहौ कुतो मे,**
**नाहं कर्ता बंध मोक्षौ कुतो में ।।''**

मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, फिर मेरा जन्म मृत्यु कैसे ? मैं चित्त नहीं हूँ फिर मुझे शोक मोह कैसे ? मैं कर्त्ता हूँ फिर मेरा बन्ध मोक्ष कैसे ?

जब मनुष्य यह समझ जाता है कि मैं क्या हूँ ? तब उसे वास्तविक ज्ञान हो जाता है और सब पदार्थों का रूप ठीक से देख कर उनका उचित उपयोग कर सकता है । चाहे किसी दृष्टि से देखा जाये आत्मज्ञान ही सर्वसुलभ और सर्वोच्चज्ञान ठहरता है ।

किसी व्यक्ति से पूछा जाय कि आप कौन हैं ? तो वह अपने वर्ण, कुल, व्यवसाय, पद या सम्प्रदाय का परिचय देगा । । ब्राह्मण हूँ, अग्रवाल हूँ, बजाज हूँ, तहसीलदार हूँ, वैष्णव हूँ, आदि उत्तर होगें । अधिक पूछने पर अपने निवास स्थान, वंश, व्यवसाय आदि का अधिकाधिक विस्तृत परिचय देगा । प्रश्न के उत्तर के लिये ही यह सब वर्णन हो सो नहीं, उत्तर देने वाला यथार्थ में अपने को वैसा ही मानता है । शरीर भाव में मनुष्य इतना तल्लीन हो गया है कि अपने आपको वह शरीर ही समझने लगा है ।

वंश, वर्ण, व्यवसाय या पद शरीर का होता है । शरीर मनुष्य परिधान, औजार है । परन्तु भ्रम और अज्ञान के कारण मनुष्य अपने आपको शरीर ही मान बैठता है और शरीर के स्वार्थ तथा अपने स्वार्थ को एक कर लेता है । इसी गड़बड़ी में जीवन अनेक अशान्तियों, चिन्ताओं और व्यथाओं का घर बन जाता है ।

मनुष्य शरीर में रहता है यह ठीक है, पर यह भी ठीक है कि वह शरीर नहीं है । जब प्राण निकल जाते हैं तो शरीर ज्यों का त्यों बना रहता है, उसमें से कोई वस्तु घटती नहीं तो भी वह मृत शरीर बेकाम हो जाता है । उसे थोड़ी देर रखा रहने दिया जाये तो लाश सड़ने लगती है, दुर्गन्ध उत्पन्न होती है और कृमि पड़ जाते हैं । देह वही है, ज्यों की त्यों है पर प्राण निकलते ही उसकी दुर्दशा होने लगती है । इससे प्रकट है कि मनुष्य शरीर में निवास तो करता है पर वस्तुतः वह शरीर से भिन्न है । इस भिन्न सत्ता को आत्मा कहते हैं । वास्तव में यही मनुष्य है । मैं क्या हूँ ? इसका सही उत्तर यह है कि-मैं आत्मा हूँ ।

शरीर और आत्मा की प्रथकता की बात हम सब लोगों ने सुन रखी है । सिद्धान्ततः हम सब उसे मानते भी हैं । शायद कोई ऐसा विरोध करे कि देह से जीव प्रथक नहीं है, इस प्रथकता की मान्यता सिद्धान्त रूप से जैसे सर्व साधारण को स्वीकार है, वैसे ही व्यवहार में सभी लोग उसे अस्वीकार करते हैं लोगों के व्यवहार ऐसे होते हैं मानो वे वस्तुतः शरीर ही हैं । शरीर के हानि-लाभ ही उनके हानि लाभ हैं । किसी व्यक्ति को बारीकी के साथ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


निरीक्षण किया जाय और देखा जाय कि वह क्या सोचता है ? क्या कहता है ? और क्या करता है ? तो पता चलेगा कि वह शरीर के बारे में सोचता है उसी के सम्बन्ध में सम्भाषण करता है और जो कुछ करता है, शरीर के लिए करता है । शरीर को ही उसने ''मैं'' मान रखा है ।

शरीर आत्मा का मन्दिर है । उसकी स्वस्थता, स्वच्छता और सुविधा के लिए कार्य करना उचित एवं आवश्यक है, परन्तु यह अहितकर है कि केवल मात्र शरीर के ही बारे में सोचा जाय, उसे अपना स्वरूप मान लिया जाय और अपने वास्तविक स्वरूप को भुला दिया जाय । अपने आपको शरीर मान लेने के कारण शरीर के हानि-लाभों को भी अपने हानि लाभ मान लेता है और अपने वास्तविक हितों को भूल जाता है । यह भूल-भुलैया का खेल जीवन को बड़ा कर्कश और नीरस बना देता है ।

आत्मा शरीर से पृथक है । शरीर और आत्मा के स्वार्थ भी पृथक हैं । शरीर के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व इन्द्रियाँ करती हैं । दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवां मन यह सदा ही शारीरिक दृष्टिकोण से सोचते और कार्य करते हैं । स्वादिष्ट भोजन, बढ़िया वस्त्र, सुन्दर-सुन्दर मनोहर दृश्य, मधुर श्रवण, रूपवती स्त्री, नाना प्रकार के भोग विलास यह इन्द्रिय की आकांक्षा हैं । ऊँचा पद, विपुल धन, दूर-दूर तक यश, रौब, दौब, यह सब मन की आकांक्षाएँ हैं । इन्हीं इच्छाओं को तृप्त करने में प्रायः सारा जीवन लगता है । जब यह इच्छाएँ अधिक उग्र हो जाती हैं तो मनुष्य उनकी किसी भी प्रकार से तृप्ति करने की ठान लेता है और उचित अनुचित का विचार छोड़कर जैसे भी बने वैसे स्वार्थ साधने की नीति पर उतर आता है । यही समस्त पापों का मूल केन्द्र बिन्दु है ।

शरीर भाव में जाग्रत रहने वाला मनुष्य यदि आहार, निद्रा, भय, मैथुन के साधारण कार्यक्रम पर चलता रहे तो भी उस पशुवत जीवन में निरर्थकता ही है सार्थकता कुछ नहीं । यदि उसकी इच्छाएँ जरा अधिक उग्र या आतुर हो जांय तब तो समझिये कि वह पूरा पाप पुञ्ज शैतान ही बन जाता है, अनीति पूर्वक स्वार्थ साधने में उसे कुछ हिचक नहीं होती । इस दृष्टिकोण के व्यक्ति न तो स्वयं सुखी रहते हैं और न दूसरों को सुखी रहने देते हैं । काम और लोभ ऐसे तत्त्व हैं कि कितना ही अधिक से अधिक भोग क्यों न मिले वे तृप्त नहीं होते, जितना ही मिलता है उतनी ही तृष्णा के साथ-साथ अशान्ति, चिन्ता, कामना तथा व्याकुलता भी दिन दूनी और रात चौगुनी होती चलती है । इन भोगों में जितना सुख मिलता है उससे अनेक गुना दुःख भी साथ ही साथ उत्पन्न होता चलता है, इस प्रकार शरीर भावी दृष्टिकोण-मनुष्य को, पाप, ताप, तृष्णा तथा अशान्ति की ओर घसीट ले जाता है ।

जीवन की वास्तविक सफलता और समृद्धि आत्मभाव में जाग्रत रहने में है । जब मनुष्य अपने को आत्मा अनुभव करने लगता है तो उसकी इच्छा, आकांक्षा और अभिरूचि उन्हीं कामों की ओर मुड़ जाती है जिनमें आध्यात्मिक सुख मिलता है । हम देखते हैं कि चोरी, हिंसा, व्याभिचार, छल एवं अनीति भरे हुए दुष्कर्म करते हुए अन्तःकरण में एक प्रकार का कुहराम मच जाता है, पाप करते हुये पांव कांपते हैं और कलेजा धड़कता है इसका तात्पर्य यह है कि इन कामों को आत्मा नापसन्द करता है । यह उसकी रूचि एवं स्वार्थ के विपरीत है । किन्तु जब मनुष्य परोपकार, परमार्थ, सेवा, सहायता, दान, उदारता, त्याग, तप से भरे हुए पुण्य कर्म करता है तो हृदय के भीतरी कौने में बड़ा ही सन्तोष, हल्कापन, आनन्द एवं उल्लास उठता है । इसका अर्थ है कि यह पुण्य कर्म आत्मा के स्वार्थ के अनुकूल है वह ऐसे ही कार्यों को पसन्द करता है । आत्मा की आवाज सुनने वाले और उसी की आवाज पर चलने वाले सदा पुण्य कर्मी होते हैं । पाप की ओर उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती इसलिए वैसे काम उनसे बन भी नहीं पड़ते ।

आत्मा को तत्कालीन सुख सत्कर्मों में आता है । शरीर की मृत्यु होने के उपरान्त जीव को सद्गति मिलने में भी हेतु सत्कर्म ही हैं । लोक और परलोक में आत्मिक सुख-शान्ति सत्कर्मों के ऊपर ही निर्भर है । इसलिए आत्मा का स्वार्थ पुण्य प्रयोजन में है । शरीर का स्वार्थ इसके विपरीत है,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इन्द्रियां और मन संसार के भोगों को अधिकाधिक मात्रा में चाहते हैं । इस कार्य प्रणाली को अपनाने से मनुष्य नाशवान शरीर की इच्छाएँ पूर्ण करने में जीवन को खर्च करता है और पापों का भार इकट्ठा करता रहता है । इससे शरीर और मन का अभिरञ्जन तो होता है पर आत्मा को इस लोक और परलोक में कष्ट उठाना पड़ता है । आत्मा के स्वार्थ के सत्कर्मों में शरीर को भी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं । तप, त्याग, संयम, ब्रह्मचर्य, सेवा, दान आदि के कार्यों में शरीर को कसा जाता है, तब ये सत्कर्म सधते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर का स्वार्थ और आत्मा का स्वार्थ आपस में मेल नहीं खाता, एक के सुख में दूसरे का दुःख होता है । दोनों के स्वार्थ आपस में एक-दूसरे से विरोधी हैं ।

इन दो विरोधी तत्त्वों में से हमें एक को चुनना होता है । जो व्यक्ति अपने आपको शरीर समझते हैं वे आत्मा के सुख की परवाह नहीं करते और शरीर सुख के लिए भौतिक सम्पदाएँ, भोग सामिग्रियाँ एकत्रित करने में ही सारा जीवन व्यतीत करते हैं । ऐसे लोगों का जीवन पशुवत् पाप रूप, निकृष्ट प्रकार का हो जाता है । धर्म, ईश्वर, सदाचार, परलोक, पुण्य, परमार्थ की चर्चा वे भले ही करें पर यथार्थ में उनका पुण्य परलोक सेवार्थ साधन की ही चार दीवारी के अन्दर होता है । यश के लिये, अपने अहंकार को तप्त करने के लिये, दूसरों पर अपना सिक्का जमाने के लिये, वे धर्म का कभी-कभी आश्रय ले लेते हैं । वैसे उनकी मन स्थिति सदैव शरीर से सम्बद्ध रखने वाले स्वार्थ साधनों में ही निमग्न रहती है । परन्तु जब मनुष्य आत्मा के स्वार्थ को स्वीकार कर लेता है तो उसकी अवस्था विलक्षण एवं विपरीत हो जाती है । भोग और ऐश्वर्य के प्रयत्न उसे बालकों की खिलवाड़ जैसे प्रतीत होते हैं । शरीर जो वास्तव में आत्मा का एक वस्त्र या औजार मात्र है इतना महत्त्वपूर्ण उसे दृष्टिगोचर नहीं होता कि उसी के ऐश आराम में जीवन जैसे बहुमूल्य तत्व को बर्बाद कर दिया जाय । आत्म भाव में जगा हुआ मनुष्य अपने आपको आत्मा मानता है और आत्म कल्याण के, आत्म सुख के कार्यों में ही अभिरुचि रखता और प्रयत्नशील रहता है । उसे धर्म-संचय के कार्यों में अपने समय को एक-एक घड़ी लगाने की लगन लगी रहती है । इस प्रकार शरीर भावी व्यक्ति का जीवन पाप की ओर, पशुत्व की ओर चलता है और आत्मभावी व्यक्ति का जीवन-प्रवाह पुण्य की ओर प्रवाहित होता है । यह सर्वविदित है कि इस लोक और परलोक में पाप का परिणाम दुःखदाई और पुण्य का परिणाम सुखदाई होता है । अपने को आत्मा समझने वाले व्यक्ति सदा आनन्दमयी स्थिति का रसास्वादन करते हैं ।

जिसे आत्मज्ञान हो जाता है वह छोटी घटनाओं से अत्याधिक प्रभावित, उत्तेजित या अशान्त नहीं होता । लाभ, हानि, जीवन, मरण, विरह, विक्षोह, मान, अपमान, लोभ, क्रोध, काम, भोग, राग, द्वेष की कोई घटना उसे अत्याधिक प्रभावित नहीं करती, क्योंकि वह जानता है कि यह सब परिवर्तनशील संसार में नित्य का स्वाभाविक क्रम है । मनोवांच्छित वस्तु या स्थिति सदा प्राप्त नहीं होती, कालचक्र के परिवर्तन के साथ-साथ अनिच्छित घटनाऐं भी घटित होती रहती हैं, इसलिए उन परिवर्तनों को एक मनोरंजन की तरह, नाट्य रङ्गमंच की तरह, कौतूहल और विनोद की तरह देखता है । किसी अनिच्छित स्थिति को सामने आया देखकर वह बैचेन नहीं होता । आत्मज्ञानी उन मानसिक कष्टों से सहज ही बचा रहता है जिनमें से शरीर भावी लोग सदा व्यथित और बेचैन रहते हैं और कभी-कभी तो अधिक उत्तेजित होकर आत्महत्या जैसे दुःखद परिणाम उपस्थित कर लेते हैं ।

जीवन को शुद्ध, सरल, स्वाभाविक एवं पुण्य प्रतिष्ठा से भरा-पूरा बनाने का राजमार्ग यह है कि हम अपने आपको शरीर भाव से ऊँचा उठावें और आत्म भाव में जाग्रत हों । इससे सच्चा-सुख, शान्ति और जीवन लक्ष्य की प्राप्ति होती है । अध्यात्म विद्या के आचार्यों ने इस तथ्य को भली प्रकार अनुभव किया है और अपनी साधनाओं में सर्व प्रथम स्थान आत्मज्ञान को दिया है । मैं क्या हूँ ? इस प्रश्न पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता

है कि 'मैं आत्मा हूँ ।' यह भाव जितना ही सुदृढ़ होता जाता है उतने ही उसके विचार और कार्य आध्यात्मिक एवं पुण्य रूप होते जाते हैं । इस पुस्तक में ऐसी ही साधनाऐं निहित हैं जिनके द्वारा हम अपने आत्म रूप को पहिचानें और हृदयंगम करें । आत्मज्ञान हो जाने पर वह सच्चा मार्ग मिलता है जिस पर चलकर हम जीवन लक्ष को-परमपद को-आसानी से प्राप्त कर सकते हैं ।

आत्म स्वरूप को पहिचानने से मनुष्य समझ जाता है कि मैं स्थूल शरीर वा सूक्ष्म शरीर नहीं हूँ । यह मेरे कपड़े हैं । मानसिक चेतनाऐं भी मेरे उपकरण मात्र हैं । इनमें मैं बँधा हुआ नहीं हूँ । ठीक बात को समझते ही सारा भ्रम दूर हो जाता है और बन्दर मुठ्ठी का अनाज छोड़ देता है । आपने यह किस्सा सुना होगा कि एक छोटे मुँह के बर्तन में अनाज जमा था । बन्दर ने उसे लेने के लिए हाथ डाला और मुठ्ठी में भर कर अनाज निकालना चाहा । छोटा मुँह होने के कारण वह निकल न सका बेचारा पड़ा-पड़ा चीखता रहा कि अनाज ने मेरा हाथ पकड़ लिया है पर ज्योंही उसे असलियत का बोध हुआ कि मैंने ही मुठ्ठी बाँध रखी है इसे छोडू तो सही । जैसे ही उसने इसे छोड़ा कि अनाज ने बन्दर को छोड़ दिया । काम क्रोधादि हमें इसलिये सताते हैं कि उनकी दासता हम स्वीकार करते हैं । जिस दिन हम विद्रोह का झंड़ा खड़ा कर देंगे, भ्रम अपने बिल में धँस जायगा । भेड़ों में पला हुआ शेर का बच्चा अपने को भेड़ समझता था । परन्तु जब उसने पानी में अपनी तस्वीर देखी तो पाया कि मैं भेड़ नहीं शेर हूँ । आत्म-स्वरूप का बोध होते ही उसका सारा भेड़पन क्षणमात्र में चला गया । आत्म-दर्शन की महत्ता ऐसी ही है जिसने इसे जाना उसने उन सब दुःख दरिद्रों से छुकारा पा लिया जिनके मारे वह हर घड़ी हाय-हाय किया करता था ।

जानने योग्य इस संसार में अनेक वस्तुऐं हैं पर उन सबमें प्रधान अपने आपको जानना है । जिसने अपने को जान लिया उसने जीवन का रहस्य समझ लिया । भौतिक विज्ञान के अन्वेषकों ने अनेक आश्चर्यजनक आविष्कार किये हैं । प्रकृति के अन्तराल में छिपी हुई विद्युत शक्ति, ईश्वर शक्ति, परमाणु शक्ति आदि को ढूँढ़ निकाला है । अध्यात्म जगत के महान अन्वेषकों ने जीवन-सिन्धु का मन्थन करके 'आत्मा' रूपी अमृत उपलब्ध किया है । इस आत्मा को जानने वाला सच्चा ज्ञानी हो जाता है और इसे प्राप्त करने वाला विश्व-विजयी मायातीत कहा जाता है । इसलिये हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने आपको जाने । मैं क्या हूँ, इस प्रश्न को अपने आपसे पूछे और विचार, चिन्तन तथा मननपूर्वक उसका सही उत्तर प्राप्त करें । अपना ठीक रूप मालूम हो जाने पर, हम अपने वास्तविक अहित को समझ सकते हैं । विषयानुरागी अवस्था में जीव जिन बातों को लाभ समझता है, उनके लिये लालायित रहता है वे लाभ आत्मानुरक्त होने पर तुच्छ एवं हानिकारक प्रतीत होने लगते हैं और माया लिप्त जीव जिन बातों से दूर भागता है उसमें आत्म-परायण का रस आने लगता है । आत्म-साधन के पथ पर अग्रसर होने वाले पथिक की भीतरी आँखं खुल जाती हैं और वह जीवन के महत्वपूर्ण रहस्य को समझकर शाश्वत सत्य की ओर तेजी के कदम बढ़ाता चला जाता है ।

अनेक साधक आध्यात्म-पथ पर बढ़ने का प्रयत्न करते हैं पर उन्हें केवल एकाङ्गी और आंशिक साधन करने के तरीके ही बताये जाते हैं । खुमारी उतारना तो वह है जिस दिशा में मनुष्य अपने रूप को भली भाँति पहचान सके । जिस इलाज से सिर्फ हाथ पैर पटकना ही बन्द होता है या आँखओं की सुर्खी ही मिटती हो वह पूरा इलाज नहीं है । यज्ञ, तप, दान, व्रत, अनुष्ठान, जप आदि साधन लाभप्रद हैं, इनकी उपयोगिता से कोई इनकार नहीं कर सकता । परन्तु यह वास्तविकता नहीं है । इससे पवित्रता बढ़ती है, सतोगुण की वृद्धि होती है, पुण्य बढ़ता है किन्तु वह चेतना प्राप्त नहीं होती जिसके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों का वास्तविक रूप जाना जा सकता है और सारा भ्रम जाल कट जाता है । इस पुस्तक में हमारा उद्देश्य साधक को आत्म-ज्ञान की चेतना में जगा देने का हैं क्योंकि हम समझते हैं कि मुक्ति के लिये इससे बढ़कर सरल एवं निश्चित मार्ग हो नहीं सकता । जिसने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आत्म स्वरूप का अनुभव कर लिया, सद्गुण उसके दास हो जाते हैं और दुर्गुण का पता भी नहीं लगता कि वे कहाँ चले गये ।

आत्म-दर्शन का यह अनुष्ठान साधकों को ऊँचा उठावेगा इस अभ्यास के सहारे वे उस स्थान से ऊँचे उठ जायेंगे जहाँ कि पहिले खड़े थे । इस उच्च शिखर पर खड़े होकर वे देखेंगे कि दुनिया बहुत बड़ी है । मेरा भार बहुत बड़ा है । मेरा राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ है । जितनी चिन्ता अब तक थी उससे अधिक अब मुझे करनी है वह सोचता है कि मैं पहले जितनी वस्तुओं को देखता था, उससे अधिक चीजें मेरी हैं । अब वह और ऊँची चोटी पर चढ़ता है कि मेरे पास कहीं इससे भी अधिक पूँजी तो नहीं है ? जैसे-जैसे ऊँचा चढ़ता है वैसे ही-वैसे उसे अपनी वस्तुएँ अधिकाधिक प्रतीत होती जाती हैं और अन्त में सर्वोच्च शिखिर पर पहुँचकर वह जहाँ तक दृष्टि फैला सकता है वहाँ तक अपनी ही अपनी सब चीजें देखता है । अब तक उसे एक बहिन, दो भाई, माँ, बाप, दो घोड़े, दस नौकरों के पालन की चिन्ता थी अब उसे हजारों गुने प्राणियों के पालने की चिन्ता होती है । यही अहंभाव का प्रसार है । दूसरे आचार्य इसी को अहंभाव का नाश कहते हैं । बात एक ही है फर्क सिर्फ कहने सुनने का है । रबड़ के गुब्बारे जिनमें हवा भरकर बच्चे खेलते हैं तुमने देखे होंगे । इनमें से एक लो और उसमें हवा भरो । जितनी हवा भरती जायेगी उतना ही वह बढ़ता जायेगा और फटने के अधिक निकट पहुँचता जायेगा । कुछ ही देर में उसमें इतनी हवा भर जायगी कि वह गुब्बारे को फाड़कर अपने विराट रूप आकाश में भरे हुए महान वायुतत्व में मिल जाय । यही आत्म-दर्शन प्रणाली है । यह पुस्तक तुम्हें बतावेगी कि आत्म-स्वरूप को जानो और विस्तार करो । बस इतने से ही सूत्र में वह सब महान विज्ञान भरा हुआ है जिसके आधार पर विभिन्न आध्यात्म पथ बनाये गये हैं । वे सब फल इस सूत्र में बीज रूप में मौजूद हैं जो किसी भी सच्ची साधना से कहीं भी और किसी भी प्रकार हो सकते हैं ।

आत्मा के वास्तविक स्वरूप को एक बार झाँकी कर लेने वाला साधक फिर पीछे नहीं लौट सकता । प्यास के मारे जिसके प्राण सूख रहे हैं ऐसा व्यक्ति सुरसरी का शीतल कूल छोड़कर क्या फिर उसी रेगिस्तान में लौटने की इच्छा करेगा, जहाँ प्यास के मारे क्षण-क्षण पर मृत्यु समान असहनीय वेदना अब तक अनुभव करता रहा है । भगवान कहते-**'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम् परमं मम ।'** यहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता ऐसा मेरा धाम है । सचमुच वहाँ पहुँचने पर पीछे को पांव पड़ते ही नहीं । योग भ्रष्ट हो जाने का वहाँ प्रश्न ही नहीं उठता । घर पहुँच जाने पर भी क्या कोई घर का रास्ता भूल सकता है ?

काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार और इन्द्रिय वासनायें मनुष्य के आनन्द में बाधक बनकर उसे दुख डाल में डाले हुए हैं । पाप और बन्धन की यह मूल हैं । पतन इन्ही के द्वारा होता है और क्रमशः नीच श्रेणी में इनके द्वारा जीव घसीटा जाता रहता है । विभिन्न आध्यात्म पन्थों की विराट साधनाऐं इन्हीं दुष्ट शत्रुओं को पराजित करने के चक्रव्यूह हैं । अर्जुन रूपी मन को इसी महाभारत में प्रवृत्त होने का भगवान का उपदेश है ।

इस पुस्तक के अगले अध्यायों में आत्म-दर्शन के लिये जिन सरल साधनों को बताया गया है उनकी साधना करने से हम उस स्थान तक ऊँचे उठ सकते हैं जहाँ सांसरिक प्रवृत्तियों की पहुँच नहीं हो सकती । जब बुराई न रहेगी तो जो शेष रह जाये वह भलाई होगी । इस प्रकार आत्म-दर्शन का स्वाभाविक फल दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करना है । आत्म-स्वरूप का, अहंभाव का आत्यन्तिक विस्तार होते-होते रबड़ के थैले के समान बन्धन टूट जाते हैं और आत्मा परमात्मा में जा मिलता है । इस भावार्थ को जानकर कई व्यक्ति निराश होंगे और कहेंगे यह तो सन्यासियों का मार्ग है जो ईश्वर में लीन होना चाहते हैं या परमार्थ साधना करना चाहते हैं उनके लिये ही यह साधन उपयोगी हो सकता है । इसका लाभ केवल पारलौकिक है किन्तु हमारे जीवन का सारा कार्यक्रम इहलौकिक है । हमारा जो दैनिक कार्यक्रम व्यवसाय, नौकरी,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ज्ञान-सम्पादन, द्रव्य उपार्जन, मनोरंजन आदि है थोड़ा समय पारलौकिक कार्यों के लिये निकाल सकते हैं परन्तु अधिकांश जीवनचर्या हमारी सांसारिक कार्यों में निहित है । इसलिये अपने अधिकाँश जीवन के कार्यक्रम में हम इसका क्या लाभ उठा सकेंगे ।

उपरोक्त शंका स्वाभाविक है, क्योंकि हमारी विचारधारा आज कुछ ऐसी उलझ गई है कि लौकिक और पारलौकिक स्वार्थों के दो विभाग करने पड़ते हैं । वास्तव में ऐसे कोई दो खण्ड नहीं हो सकते जो लौकिक है वही पारलौकिक है । दोनों एक दूसरे से इतने अधिक बँधे हुए हैं जैसे पेट और पीठ । फिर भी हम पूरी विचारधारा को उलट कर पुस्तक के कलेवर का ध्यान रखते हुए नये सिरे से समझाने की यहाँ आवश्यकता नहीं समझते । यहाँ तो इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि आत्म-दर्शन व्यवहारिक जीवन को सफल बनाने की सर्वश्रेष्ठ कला है । आत्मोन्नति के साथ ही सभी सांसारिक उन्नति रहती है । जिसके पास आत्मबल है उसके पास सब कुछ है और सारी सफलताऐं उसके हाथ के नीचे हैं ।

साधारण और स्वाभाविक योग का सारा रहस्य इसमें छिपा हुआ है कि आदमी आत्म-स्वरूप को जाने, अपने गौरव को पहिचाने, अपने अधिकार की तलाश करे और अपने पिता की अतुलित सम्पत्ति पर अपना हक पेश करे । यह राजमार्ग है । सीधा सच्चा और बिना जोखों का है । यह मोटी बात हर किसी की समझ में आ जानी चाहिये कि अपनी शक्ति और औजारों की कार्यक्षमता की जानकारी और अज्ञानता किसी भी काम की सफलता असफलता के लिये अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उत्तम से उत्तम बुद्धि भी तब तक ठीक-ठीक फैसला नहीं कर सकती जब तक उसे वस्तुओं का स्वरूप ठीक तौर से न मालूम हो जाये ।

आध्यात्म शास्त्र कहता है कि-ऐ अविनाशी आत्माओ ! तुम तुच्छ नहीं, महान हो । तुम्हें किसी अशक्तता का अनुभव करना या कुछ माँगना नहीं है । तुम अनन्त शक्तिशाली हो, तुम्हारे बल का पारावर नहीं ! जिन साधनों को लेकर तुम अवतीर्ण हुए हो, वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं । इनकी शक्ति अनेक इन्द्रबज्रों से अधिक है । सफलता और आनन्द तुम्हारा जन्मजात अधिकार है । उठो ! अपने हथियारों को और काम को भली प्रकार पहिचानो और बुद्धिपूर्वक जुट जाओ । फिर देखें कैसे वह चीजें नहीं मिलतीं, जिन्हें तुम चाहते हो । तुम कल्पवृक्ष हो, कामधेनु हो और सफलता की साक्षात मूर्ति हो । भय और निराशा का कण भी तुम्हारी पवित्र रचना में नहीं लगाया गया है । यह लो, अपना अधिकार सँभालो ।

यह पुस्तक बतावेगी कि तुम शरीर नहीं हो, जीव नहीं हो वरन् ईश्वर हो । शरीर की, मन की जितनी भी महान शक्तियाँ हैं, वे तुम्हारे औजार हैं । इन्द्रियों के तुम गुलाम नहीं हो, आदतें तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं, मानसिक विकारों का कोई अस्तित्व नहीं, अपने को और अपने वस्त्रों को ठीक प्रकार से पहचान लो । फिर जीव का स्वाभाविक धर्म उनका ठीक उपयोग करने लगेगा । भ्रमरहित और तत्वदर्शी बुद्धि से हर काम कुशलतापूर्वक किया जा सकता है । यही कर्म कौशल योग है । गीता कहती है-'योगः कर्मसु कौशलम् ।' तुम ऐसे ही कुशल योगी बनो । लौकिक और पारलौकिक कार्यों में तुम अपना उचित स्थान प्राप्त करते हुए सफलता प्राप्त कर सको और निरन्तर विकास की ओर बढ़ते चलो, यही इस साधना के उद्देश्य है । ईश्वर तुम्हें इसी पथ पर प्रेरित करें ।

## दूसरा सूत्र

**''नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो: न मेधया न बहु श्रुतेन'**

शास्त्र कहता है कि-यह आत्मा प्रवचन, बुद्धि या बहुत सुनने से प्राप्त नहीं होती ।

प्रथम सूत्र को समझ लेने के बाद तुम्हें इच्छा हुई होगी कि उस आत्मा का दर्शन करना चाहिए, जिसे देख लेने के बाद और कुछ देखना बाकी नहीं रह जाता । यह इच्छा स्वाभाविक है । शरीर और आत्मा का गठबन्धन कुछ ऐसा ही है, जिसमें जरा जरा अधिक ध्यान से देखने पर वास्तविकता झलक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जाती है । शरीर भौतिक स्थूल पदार्थों से बना हुआ है, किन्तु आत्मा सूक्ष्म है । पानी में तेल डालने पर ही वह ऊपर ही उठ आता है । लकड़ी के टुकड़े को तालाब में कितना ही नीचा पटको, वह ऊपर को ही आने का प्रयत्न करेगा, क्योंकि तेल और लकड़ी के परमाणु पानी की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं । गरमी ऊपर को उठती है, अग्नि की लपटें ऊपर को ही उड़ेगी । पृथ्वी की आकर्षण शक्ति और वायु का दवाब उसे रोक नहीं सकता है । आत्मा शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म है, इसलिए वह इसमें बँधी हुई होते हुए भी इसमें पूरी तरह घुल मिल जाने की अपेक्षा ऊपर उठने की कोशिश करती रहती है । लोग कहते हैं कि इन्द्रियों के भोग हमें अपनी ओर खींचे रहते हैं, पर यह बात सत्य नहीं हैं । सत्य के दर्शन कर सकने के योग्य सुविधा और शिक्षा प्राप्त न होने पर झकमारकर अपनी आन्तरिक प्यास को बुझाने के लिये विषय भोगों की कीचड़ पीता है । यदि उसे एक बार भी आत्मानन्द का चस्का लग जाता तो दर-दर पर क्यों धक्के खाता फिरता ? हम जानते हैं कि इन पंक्तियों को पढ़ते समय तुम्हारा चित्त वैसी ही उत्सुकता और प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है, जैसी बहुत दिनों से बिछुड़ा हुआ परदेशी अपने घर कुटुम्ब के समाचार सुनने के लिये आतुर होता है । यह एक मजबूत प्रमाण है, जिससे सिद्ध होता है कि मनुष्य को आन्तरिक इच्छा आत्म-स्वरूप देखने की बनी रहती हैं । शरीर में रहता हुआ भी वह उसमें घुल-मिल नहीं सकता वरन् उचक-उचक कर अपनी खोई हुई किसी चीज को तलाश करता है । बस, वह स्थान जहाँ भटकता है, यही है । उसे याद नहीं आती कि मैं क्या चीज ढूँढ़ रहा हूँ ? मेरा कुछ खोगया है, इसका अनुभव करता है । खोई हुई वस्तु के अभाव में दुःख पाता है, किन्तु माया-जाल के पर्दे से छिपी हुई चीज को नहीं जान पाता । चित्त बड़ा चंचल है, घड़ी भर भी एक जगह नहीं ठहरता । इसकी सब लोग शिकायत करते हैं, परन्तु कारण नहीं जानते कि मन इतना चंचल क्यों हो रहा है ? वह अपनी खोई हुई वस्तु के लिये हाहाकार मचा रहा है । बारहसिङ्गा कोई अद्भुत गन्ध पाता है और उसके पास पहुँचने के लिये दिन-रात चारों ओर दौड़ता रहता है । क्षण भर भी उसे विश्राम नहीं मिलता । यही हाल मन का है । यदि वह समझ जाये कि कस्तूरी मेरी नाभि में रखी हुई है तो वह कितना आनन्द प्राप्त कर सके और सारी चंचलता भूल जाये ।

आत्म-दर्शन का मतलब अपनी सत्ता, शक्ति और साधनों का ठीक-ठीक स्वरूप अपने मानस-पटल पर इतनी गहराई के साथ अंकित कर लेना है कि वह दिन भर जीवन में कभी भी भुलाया न जा सके । तोता-रटन्त विद्या में तुम बहुत प्रवीण हो सकते हो । इस पुस्तक में जितना कुछ लिखा है, उससे दस गुना ज्ञान तुम सुना सकते हो, बड़े-बड़े तर्क उपस्थित कर सकते हो । शास्त्रीय बारीकियाँ निकाल सकते हो । परन्तु यह बातें आत्म-मन्दिर के फाटक तक ही जाती है, इससे आगे इसकी गति नहीं है । रट्टू तोता पण्डित नहीं बन सकता । शास्त्र ने स्पष्ट कर दिया कि 'यह आत्मा उपदेश, बुद्धि या बहुत सुनने से प्राप्त नहीं हो सकता ।' अब तक तुम इतना सुन चुके हो, जितना अधिकारी भेद के कारण आम लोगों को भ्रम में डाल देता है । आज हम तुम्हारे साथ कोई बहस करने उपस्थित नहीं हुए हैं । यदि तुम्हें यह विषय रुचिकर हो और आत्मदर्शन की लालसा हो तो हमारे साथ चलो आओ अन्यथा अपना मूल्यवान समय नष्ट मत करो ।

आत्म-दर्शन की सीढ़ियों पर चढ़ने से पहले सर्वप्रथम समतल भूमि पर पहुँचना होगा । जहाँ आज तुम भटक रहे हो, वहाँ से लौट आओ उस भूमि पर स्थित हो जाओ, जिसे प्रवेश द्वार कहते हैं । मानलो कि तुमने अपने अन्य सब ज्ञानों को भुला दिया है और नये सिरे से किसी पाठशाला में भर्ती होकर क, ख, ग सीख रहे हो, इसमें अपमान मत समझो । तुम्हारा अब तक का ज्ञान झूँठा नहीं है । तुम उर्दू खूब पढ़े हो और यदि हिन्दी द्वारा भी लाभ प्राप्त करना चाहो तो एक दम उसका दर्शन-शास्त्र नहीं पढ़ने लगोगे वरन् वर्णमाला ही से आरम्भ करोगे । हम अपने आदरणीय और ज्ञानी जिज्ञासुओं की पीठ थपथपाते हुए दो कदम पीछे लौटने को कहते हैं, क्योंकि ऐसा करने से वे प्रथम सीढ़ी पर पाँव रख सकेंगे और आसानी एवं तीव्र गति से ऊपर चढ़ेंगे ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


तुम्हें विचार करना चाहिये कि जब मैं कहता हूँ कि 'मैं' तब उसका क्या अभिप्राय होता है ? पशु, पक्षी तथा अन्य अविकसित प्राणियों में यह 'मैं' की भावना नहीं होती । भौतिक सुख दुख का तो वे अनुभव करते हैं, किन्तु अपने बारे में कुछ अधिक नहीं सोच सकते । गधा नहीं जानता कि मुझ पर किस कारण बोझा लादा जाता है ? लादने वाले के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? मैं किस प्रकार अन्याय का शिकार बनाया जा रहा हूँ ? वह अधिक बोझ लद जाने पर कष्ट का और हरी घास मिल जाने पर शान्ति का अनुभव करता है, पर हमारी तरह सोच नहीं सकता । इन जीवों में शरीर ही आत्म-स्वरूप है । क्रमशः अपना विकास करते-करते मनुष्य आगे बढ़ आया है । फिर भी कितने मनुष्य हैं, जो आत्म-स्वरूप को जानते हैं ? तोते-रटन्त दूसरी बात है । लोग आत्म-ज्ञान की कुछ चर्चा को सुनकर उसे मस्तिष्क में रिकार्ड की तरह भर लेते हैं और समयानुसार उसमें से कुछ सुना देते हैं । ऐसे आदमियों की कमी नहीं, जो आत्मा के बारे में कुछ नहीं जानते । इनमें सोचने विचारने की शक्ति जग गई है । उनका संसार आहार, निद्रा, भय, मैथुन, क्रोध, लोभ, मोह आदि तक ही सीमित होता है । इन्हीं समस्याओं को सोचने समझने और हल करने लायक योग्यता उन्होंने प्राप्त की होती है । मूढ़ मनुष्य भद्दे भोगों से तृप्त हो जाते हैं तो बुद्धिमान कहलाने वाले उनमें सुन्दरता लाने की कोशिश करते हैं । मजदूर को बैलगाड़ी में बैठकर अपनी बुद्धिमानी पर प्रसन्न होता है तो धनवान मोटर में बैठकर जाना सौभाग्य प्रतीत होता है । बात एक ही है । बुद्धि का जो विकास हुआ है, वह भोग-सामिग्री को उन्नत और आकर्षण बनाने में हुआ है । समाज के अधिकांश सभ्य नागरिकों के लिये वास्तव में शरीर ही आत्म-स्वरूप है । धार्मिक रूढ़ियों का पालन मन सन्तोष के लिये वे करते रहते हैं, पर उससे आत्म-ज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं । लड़की के विवाह में दहेज देना पुण्य कर्म समझा जाता है, पर ऐसे पुण्य कर्मों से ही कौन मनुष्य अपने उद्देश्य तक पहुँच सका है ? यज्ञ, तप, ज्ञान, सांसारिक धर्म में लोक-जीवन और समाज-व्यवस्था के लिए इन्हें करते रहना धर्म है, पर इसमें आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती । आत्मा इतनी सूक्ष्म है कि रुपया, पैसा, पूजा-पत्री, दान, मान आदि बाहरी वस्तुएँ उस तक नहीं पहुँच सकती । फिर इनके द्वारा उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

आत्मा के पास तक पहुँचने के साधन जो हमारे पास मौजूद हैं, वह चित्त, अन्तःकरण, मन, बुद्धि आदि ही है । आत्म-दर्शन की साधना इन्हीं के द्वारा हो सकती है । शरीर में सर्वत्र आत्मा व्याप्त है । कोई विशेष स्थान इसके लिये नियुक्त नहीं है, जिस पर किसी साधन विशेष का उपयोग किया जाय । जिस प्रकार आत्मा की आराधना करने में मन, बुद्धि आदि ही समर्थ हो सकते हैं, उसी प्रकार उनके स्थान और स्वरूप का दर्शन मानस-लोक में प्रवेश करने से हो सकता है । मानसिक लोक भी स्थूल लोक की तरह ही है । उसमें इसी बाहरी दुनिया की ही अधिकांश छाया है । अभी हम कलकत्ते का विचार कर रहे हैं, अभी हिमालय पहाड़ की सैर करने लगे । अभी जिनका विचार किया था,वह स्थूल कलकत्ता और हिमालय नहीं थे वरन् मानस-लोक में स्थित उनकी छाया थी, यह छाया असत्य नहीं होती । पदार्थों का सच्चा अस्तित्व हुए बिना कोई कल्पना नहीं हो सकती । इस मानस-लोक को भ्रम नहीं समझना चाहिए । यही वह सूक्ष्म चेतना है, जिसकी सहायता से दुनिया के सारे काम चल रहे हैं । एक दुकानदार जिसे परदेश से माल खरीदने जाना है, वह पहले उस परदेश की यात्रा मानस-लोक में करता है और मार्ग की कठिनाईयों को देख लेता है, तदनुसार उन्हें दूर करने का प्रबन्ध करता है । उच्च आध्यात्मिक चेतनाएँ मानस-लोक से आती हैं । किसी के मन में क्या भाव उपज रहे हैं, कौन हमारे प्रति क्या सोचता है, कौन सम्बन्धी कैसी दशा में है आदि बातों को मानस-लोक में प्रवेश करके हम अस्सी फीसदी ठीक-ठीक जान लेते हैं । यह तो साधारण लोगों के काम-काज की मोटी मोटी बातें हुई । लोग भविष्य को जान लेते हैं, भूतकाल का हल बताते हैं, परोक्ष ज्ञान रखते हैं, ईश्वरीय सब चेतनाऐं

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मानस-लोक में ही आती हैं । उन्हें ग्रहण करके जीभ द्वारा प्रगट कर दिया जाता है । यदि वह मानसिक इन्द्रियाँ नहीं होती तो मनुष्य बिल्कुल वैसा ही चलता फिरता पुतला हुआ होता जैसे यान्त्रिक मनुष्य विज्ञान की सहायता से योरोप और अमेरिका में बनाये गये हैं । दस सेर मिट्टी और बीस सेर पानी के बने हुए इस पुतले की आत्मा और सूक्ष्म जगत से सम्बन्ध जोड़ने वाली चेतना वह मानस-लोक ही समझनी चाहिए ।

अब हमारा प्रयत्न यह होगा कि तुम मानसिक लोक में प्रवेश कर चलो और वहाँ बुद्धि के दिव्य चक्षुओं द्वारा आत्मा का दर्शन और अनुभव करो । यही एक मार्ग दुनिया के सम्पूर्ण साधकों का है । तत्त्व दर्शन मानस-लोक में प्रवेश करके बुद्धि की सहायता द्वारा ही होता है । इसके अतिरिक्त आज तक किसी ने कोई और मार्ग अभी तक नहीं ढूँढ़ पाया है । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधी ही योग की उच्च सीढ़ियाँ हैं । आध्यात्मिक साधक-योगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम अनेक प्रकार की क्रियाऐं करते हैं । हठ योगी नेति, धोति, वस्ति आदि करते हैं अन्य मतावलम्बियों की साधनाऐं अन्य प्रकार की हैं । यह सब शारीरिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये हैं । शरीर को स्वस्थ रखना इसलिए जरूरी समझा जाता है कि मानसिक अभ्यासों में गड़बड़ न पड़े । हम अपने साधकों को स्वस्थ शरीर रखने का उपदेश करते हैं । आज की परिस्थीतियों में उन उग्र शारीरिक व्यायामों की नकल करने में कोई विशेष लाभ प्रतीत नहीं होता । धुँए से भरे हुए शहरी वायुमण्डल में रहने वाले व्यक्ति को उग्र प्राणायाम करने की शिक्षा देना उसके साथ अन्याय करना है । फल और मेवे खाकर पर्वत प्रदेशीय नदियों का अमृत जल पीने वाले और इन्द्रिय भोगों से दूर रहने वाले स्वस्थ साधक हठ योग के जिन कठोर व्यायामों को करते हैं उनकी नकल करने के लिए यदि तुमसे कहें तो हम एक प्रकार का पाप करेंगे और बिना वास्तविकता को जाने उन शारीरिक तपों में उलझन वाले साधक, उस मेंढकी का उदाहरण बनेंगे जो घोडों की नाल ठुकवाते देखकर आपे से बाहर हो गई थी और अपने पैर में भी वैसी ही कील ठुकवा कर मर गई थी । स्वस्थ रहने के साधारण नियमों को सब लोग जानते हैं । उन्हें ही कठोरता पूर्वक पालन करना चाहिए । यदि कोई रोग हो तो किसी कुशल चिकित्सक से इलाज कराना चाहिए ? इस सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र पुस्तक हम भी प्रकाशित करेंगे । पर इस साधन के लिये किसी ऐसी शारीरिक योग्यता की आवश्यकता नहीं है जिसका साधन चिरकाल में पूरा हो सकता हो । स्वस्थ रहो, प्रसन्न रहो, बस इतना ही काफी है ।

अच्छा चलो, अब साधना की ओर चलें । किसी एकान्त स्थान की तलाश करो । यहाँ किसी प्रकार के भय या आकर्षण की वस्तुयें न हों यह स्थान उत्तम है । यद्यपि पूर्ण एकान्त के आदर्श स्थान सदैव प्राप्त नहीं होते तथापि जहाँ तक हो सके निर्जन और कोलाहल से रहित स्थान तलाश करना चाहिए । इस कार्य के लिए नित नये स्थान बदलने की अपेक्षा एक जगह नियत कर लेना अच्छा है । बन, पर्वत, नदी तट आदि की सुविधा न हो तो एक छोटा-सा स्वच्छ कमरा इसके लिए चुन लो जहाँ तुम्हारा मन जुट जावे । इस तरह मत बैठो जिससे नाड़ियों पर तनाव पड़े । अकड़कर छाती या गरदन फुलाकर हाथों को मरोड़कर या पावों को ऐंठकर एक दूसरे के ऊपर चढ़ाते हुए बैठने के लिए हम नहीं कहेंगे क्योंकि इन अवस्थाओं में शरीर को कष्ट होगा और वह अपनी पीड़ा की पुकार को बार-बार मन तक पहुँचाकर उसे उचटने के लिए विवश करेगा । शरीर को बिल्कुल शिथिल कर देना चाहिए, जिससे समस्त माँस-पेशियाँ ढीली हो जावें और देह का प्रत्येक कण शिथिलता, शान्ति और विश्राम का अनुभव करें । इस प्रकार बैठने के लिए आराम कुर्सी बहुत अच्छी चीज है । चारपाई पर लेट जाने से भी कोई काम चल जाता है पर सिर को कुछ ऊँचा रखना जरूरी है । मसन्द, कपड़ों की गठरी या दीवार का सहारा लेकर भी बैठा जा सकता है । बैठने का कोई भी तरीका क्यों न हो उसमें यही बात ध्यान रखने की है कि शरीर रुई की गठरी जैसा ढीला पड़ जावे उसे अपनी साल सँभाल में जरा सा भी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्रयत्न न करना पड़े । उस दशा में यदि समाधि चेतना आने लगे तब शरीर के इधर-उधर लुढ़क पड़ने का भय न रहे । इस प्रकार बैठकर कुछ शरीर को विश्राम और मन को शान्ति का अनुभव करने दो । प्रारम्भिक समय में अभ्यास विशेष प्रयत्न के साथ करना पड़ता है । पीछे अभ्यास बढ़ जाने पर तो साधक जब चाहे तब शान्ति का अनुभव कर लेता है चाहे वह कहीं भी और कैसी भी दशा में क्यों न हो । सावधान रहिए, यह दशा तुमने स्वप्न देखने या कल्पना जगत में चाहे जहाँ उड़ जाने के लिए पैदा नहीं की है और न इसलिए कि इन्द्रिय विकार इस एकान्त बन में कबड्डी खेलने लगें । ध्यान रखिये अपनी इस ध्यानावस्था को भी काबू में रखना और इच्छानुवर्ती बनाना है । यह अवस्था इच्छापूर्वक किसी निश्चित कार्य पर लगाने के लिये पैदा की गई है । आगे चलकर यह ध्यानावस्था चेतना का एक अङ्ग बन जाती है और फिर सदैव स्वयमेव बनी रहती है । तब उसे ध्यान द्वारा उत्पन्न नहीं करना पड़ता वरन् भय, दुःख, क्लेश, आशङ्का, चिन्ता आदि के समय में बिना यत्न के ही वह जाग पड़ती है और साधक अनायास ही उन दुःख क्लेशों से बच जाता है ।

हाँ, तो उपरोक्त ध्यानावस्था में होकर अपने सम्पूर्ण विचारों को 'मैं' के ऊपर इकट्ठा करो । किसी बाहर वस्तु या किसी आदमी के सम्बन्ध में बिलकुल विचार मत करो । भावना करनी चाहिए कि मेरी आत्मा यथार्थ में एक स्वतन्त्र पदार्थ है । वह अनन्त बल वाला अविनाशी और अखण्ड है । वह एक सूर्य है, जिसके इर्द-गिर्द हमारा संसार बराबर घूम रहा है, जैसे सूर्य के चारों ओर नक्षत्र आदि घूमते हैं । अपने को केन्द्र मानना चाहिये सूर्य जैसा प्रकाशवान् । इस भावना को बराबर लगातार अपने मानस प्रयत्न की कल्पना और रचना शक्ति के सहारे, मानस लोक के आकाश में अपनी आत्मा को सूर्यरूप मानते हुए केन्द्र की तरह स्थित हो जाओ और आत्मा से अतिरिक्त अन्य सब चीजों को नक्षत्र तुल्य घूमती हुई देखो । वे मुझसे बँधी हुई हैं, मैं उनसे बँधा नहीं हूँ । अपनी शक्ति से मैं उनका संचालन कर रहा हूँ । फिर भी वे वस्तुएँ मेरी या मैं नहीं हूँ, लगातार परिश्रम के बाद कुछ दिनों में यह चेतना दृढ़ हो जायेगी ।

वह भावना झूँठी या काल्पनिक नहीं है । विश्व का हर एक जड़ चेतन परमाणु बराबर घूम रहा है । सूर्य के आस-पास पृथ्वी आदि ग्रह घूमते हैं और समस्त मण्डल एक अदृश्य चेतना की परिक्रमा करता रहता है । हृदयगत चेतना के कारण रक्त हमारे शरीर की परिक्रमा करता रहता है । शब्द, शक्ति, विचार या अन्य प्रकार के भौतिक परमाणुओं का धर्म परिक्रमा करते हुए आगे बढ़ना है । हमारे आस-पास की प्रकृति का यह स्वाभाविक धर्म अपना काम कर रहा है । हमसे भी जिन परमाणुओं का काम पड़ेगा, वह स्वभावतः हमारी परिक्रमा करेंगे, क्योंकि हम चेतना के केन्द्र हैं । इस बिलकुल स्वाभाविक चेतना को भली भाँति हृदयंगम कर लेने से तुम्हें अपने अन्दर एक विचित्र परिवर्तन मालूम पड़ेगा । ऐसा अनुभव होता हुआ प्रतीत होगा कि मैं चेतना का केन्द्र हूँ, और मेरा संसार, मुझसे सम्बन्धित समस्त भौतिक पदार्थ मेरे इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं । मकान, कपड़े, जेवर, धन-दौलत आदि मुझसे सम्बन्धित हैं, पर वह मुझमें व्याप्त नहीं, बिलकुल अलग हैं । अपने को चेतना का केन्द्र समझने वाला, अपने को माया से सम्बन्धित मानता है, पर पानी में पड़े हुए कमल के पत्ते की तरह कुछ ऊँचा उठा रहता है, उसमें डूब नहीं जाता । जब वह अपने को तुच्छ, अशक्त और बँधे हुए जीव की अपेक्षा चेतन-सत्ता और प्रकाश-केन्द्र स्वीकार करता है तो उसे उसी के अनुसार परिधान भी मिलते हैं । बच्चा जब बड़ा हो जाता है तो उसके छोटे-कपड़े उतार दिये जाते हैं । अपने को हीन, नीच और शरीराभिमानी तुच्छ जीव जब तक समझोगे, तब तक उसी के लायक कपड़े मिलेंगे । लालच, भोगेच्छा, कामेच्छा,चाटुकता, स्वार्थपरता आदि गुण तुम्हें पहनने पड़ेंगे, पर जब अपने स्वरूप को महानतम् अनुभव करोगे, तब यह कपड़े निरर्थक हो जाँयगे । छोटा बच्चा कपड़े पर टट्टी कर देने में कुछ बुराई नहीं समझता, किन्तु बड़ा होने पर वह ऐसा करने से घृणा करता है । कदाचित बीमारी की दशा में वह ऐसा कर भी बैठे तो अपने को बड़ा धिक्कारता है और शर्मिन्दा होता है । नीच विचार, हीन भावनाएँ, पाशविक इच्छाएँ और क्षुद्र

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


स्वार्थपरता ऐसे ही गुण हैं, जिन्हें देखकर अत्म-चेतना में विकसित हुआ मनुष्य घृणा करता है । उसे अपने आप वह गुण मिल गये होते हैं, जो उसके इस शरीर के लिए उपयुक्त हैं । उदारता, विशाल हृदयता, दया, सहानुभूति, सचाई प्रभृति गुण ही तब उसके लायक ठीक वस्त्र होते हैं । बड़ा होते ही मेंढ़क की लम्बी पूँछ जैसे स्वयमेव झड़ पड़ती है, वैसे ही दुर्गुण उससे विदा होने लगते हैं और वयोवृद्ध हाथी के दाँतों की तरह सद्गुण क्रमशः बढ़ते हैं ।

अपने को प्रकाश केन्द्र अनुभव करने के लिए तर्कों से काम न चल सकेगा, क्योंकि हमारी तर्क बहुत ही लंगड़ी और अन्धी हैं । तर्कों के सहारे यह नहीं सिद्ध हो सकता कि वास्तव में वही हमारा पिता है, जिसे पिताजी कहकर सम्बोधन करते हैं । इसलिए योगाभ्यास के दैवी अनुष्ठान में इस अपाहिज तर्क का बहिष्कार करना पड़ता है और धारण, ध्यान एवं समाधि को अपनाना पड़ता है । आत्म-स्वरूप के अनुभव में यह तर्क-वितर्क बाधक न बनें, कुछ देर के लिये विदा कर दो । विश्वास रखो, इन पंक्तियों का लेखक तुम्हें भ्रम में फँसाने या कोई गलत हानिकारक साधन बताने नहीं जा रहा है । उसका निश्चित विश्वास है और वह शपथपूर्वक तुमसे कहता है कि हे मेरे ऊपर विश्वास रखने वाले साधक ! यह ठीक रास्ता है, मेरा देखा हुआ है । आओ, पीछे-पीछे चले आओ, तुम्हें कहीं धकेला नहीं जायेगा वरन् एक ठीक स्थान पर पहुँचा दिया जायेगा । साधन की विधि बार-बार ध्यानावस्थित होकर मानस-लोक में प्रवेश करो । अपने को सूर्य समान प्रकाशवान सत्ता के रूप में देखो और अपना संसार अपने आस-पास घूमता हुआ अनुभव करो । इस अभ्यास को लगातार जारी रखो और इसे हृदय-पट पर गहरा अकिंत करलो तथा इस श्रेणी पर पहुँच जाओ कि जब तुम कहो कि 'मैं', तब उसके साथ ही चित्त में चेतना, विचार, शक्ति और प्रतिभा सहित केन्द्र स्वरूप चित्र भी जाग उठे । संसार पर जब दृष्टि डालो तो वह आत्म-सूर्य की परिक्रमा करता नजर आवे ।

उपरोक्त आत्म-स्वरूप दर्शन के साधन में शीघ्रता होने के लिए तुम्हें हम एक और विधि बताते हैं । ध्यान की दशा में होकर अपने ही नाम को बार-बार, धीरे-धीरे, गम्भीरता और इच्छापूर्वक जपते जाओ । इस अभ्यास से मन आत्म-स्वरूप पर एकाग्र होने लगता है । लार्ड टेनिसल ने अपनी आत्म-शक्ति को इसी उपाय से जगाया था । वे लिखते हैं-'इसी उपाय से हमने कुछ आत्म-ज्ञान प्राप्त किया है । अपनी वास्तविकता और अमरता को जाना है एवं अपनी चेतना के मूल स्रोत का अनुभव कर लिया है ।'

कुछ जिज्ञासु आत्म-स्वरूप का ध्यान करते समय 'मैं' को शरीर के साथ जोड़कर गलत धारणा कर लेते हैं और साधन करने में गड़बड़ा जाते हैं । इस विघ्न को दूर कर देना अवश्यक है अन्यथा इस पंचभूत शरीर की आत्मा बैठने पर तो एक अत्यन्त नीच कोटि का थोड़ा सा फल प्राप्त हो सकेगा ।

इस विघ्न को दूर करने के लिये ध्यानावस्थित होकर ऐसी भावना करो कि मैं शरीर से पृथक हूँ । उसका उपयोग वस्त्र या औजार की तरह करता हूँ । शरीर को वैसा ही समझने की कोशिश करो, जैसा पहनने के कपड़े को समझते हो । अनुभव करो कि शरीर को त्यागकर भी तुम्हारा 'मैं' बना रह सकता है । शरीर को त्यागकर ऊँचे स्थान से उसे देखने की कल्पना करो । शरीर को एक पोले घोसले के रूप में देखो, जिसमें आसानी के साथ तुम बाहर निकल सकते हो । ऐसा अनुभव करो कि इस खोखले को मैं ही स्वस्थ, बलवान, दृढ़ और गतिवान बनाये हुए हूँ, उस पर शासन करता हूँ और इच्छानुसार काम में लाता हूँ । मैं शरीर नहीं हूँ, वह मेरा उपकरण मात्र है । उसमें एक मकान की भांति विश्राम करता हूँ । दैह भौतिक परमाणुओं की बनी हुई है और उन अणुओं को मैंने ही इच्छित वेश के लिये आकर्षित कर लिया है । ध्यान में शरीर को पूरी तरह भुला दो और 'मैं' पर समस्त भावना एकत्रित करो, तब तुम्हें मालूम पड़ेगा कि आत्मा शरीर से भिन्न है । यह अनुभव कर लेने के बाद जब तुम 'मेरा शरीर' कहोगे तो पूर्व की भांति वरन् एक नये ही अर्थ में कहोगे ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उपरोक्त भावना का तात्पर्य यह नहीं है कि तुम शरीर की उपेक्षा करने लगो । ऐसा करना तो अनर्थ होगा । शरीर को आत्मा का पवित्र मन्दिर समझो, उसकी सब प्रकार से रक्षा करना और सुदृढ़ बनाये रखना तुम्हारा परम पावन कर्त्तव्य है ।

शरीर से प्रथकत्व की भावना जब तक साधारण रहती है, तब तक तो साधक का मनोरंजन होता है । पर जैसे ही वह दृढ़ता को प्राप्त होती है, वैसे ही मृत्यु हो जाने जैसा अनुभव होने लगता है और वह वस्तुएँ दिखाई देने लगती हैं, जिन्हें हम साधना के स्थान पर बैठकर खुली आँखों से नहीं देख सकते । सूक्ष्म जगत की कुछ धुन्धली झाँकी उस समय होती है और कोई परोक्ष बातें एवं दैवी दृश्य दिखाई देने लगते हैं । इस स्थिति में नये साधक डर जाते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि इसमें डरने की कोई बात नहीं है । केवल साधन में कुछ शीघ्रता हो गई है और पूर्व संस्कारों के कारण इस चेतना में जरा सा झटका लगते ही वह अचानक जाग पड़ी है । इस श्रेणी तक पहुँचने में जब क्रमशः और धीरे-धीरे अभ्यास होता है तो कुछ आश्चर्य नहीं होता । साधना की उच्च श्रेणी पर पहुँचकर अभ्यासी को वह योग्यता प्राप्त हो जाती है कि सचमुच शरीर के दायरे से ऊपर उठ जाय और उन वस्तुओं को देखने लगे, जो इस शरीर में रहते हुए नहीं देखी जा सकती थीं । उस दशा में अभ्यासी शरीर से सम्बन्ध तोड़ नहीं देता । जैसे कोई आदमी कमरे की खिड़की में से गर्दन बाहर निकालकर देखता है कि बाहर कहाँ क्या होता है और फिर इच्छानुसार सिर को भीतर कर लेता है, यही बात इस दशा में भी होती है । नये दीक्षितों को हम अभी यह अनुभव जगाने की सम्मति नहीं देते, ऐसा करना क्रम का उल्लंघन करना होगा । समयानुसार हम परोक्ष दर्शन की भी शिक्षा देंगे । इस समय तो इसका थोड़ा सा उल्लेख इसलिये करना पड़ा है कि कदाचित् किसी को स्वयमेव ऐसी चेतना आने लगे तो उसे घबराना या डरना न चाहिये ।

जीव के अमर होने के सिद्धान्त को अधिकांश लोग विश्वास के आधार पर स्वीकार कर लेते हैं । उन्हें यह जानना चाहिये कि यह बात कपोल कल्पित नहीं है वरन् स्वयं जीव द्वारा अनुभव में आकर सिद्ध हो सकती है । तुम ध्यानावस्थित होकर ऐसी कल्पना करो कि 'हम' मर गये । कहने-सुनने में यह बात साधारण सी मालूम पड़ती है । जो साधक पिछले पृष्ठों में दी हुई लम्बी-चौड़ी भावनाओं का अभ्यास करते हैं, उनके लिये यह छोटी कल्पना कुछ कठिन प्रतीत न होनी चाहिये, पर जब तुम इसे करने बैठोगे तो यही क़होगे कि यह नहीं हो सकती । ऐसी कल्पना करना असम्भव है । तुम शरीर के मर जाने की कल्पना कर सकते हो, पर साथ ही यह पता रहेगा कि तुम्हारा 'मैं' नहीं मरा है वरन् वह दूर खड़ा हुआ मृत शरीर को देख रहा है । इस प्रकार पता चलेगा कि किसी भी प्रकार अपने 'मैं' के मर जाने की कल्पना नहीं कर सकते । विचार बुद्धि हठ करती है कि आत्मा मर नहीं सकती । उसे जीव के अमरत्त्व पर पूर्ण विश्वास है और चाहे जितना प्रयत्न किया जाय वह अपने अनुभव के, त्याग के लिए उद्यत नहीं होगी । कोई आघात लगकर या क्लोरोफार्म सूँघ कर बेहोश होजाने पर भी 'मैं' जागता रहता है । यदि ऐसा न होता तो उसे जागने पर यह ज्ञान कैसे होता कि मैं इतनी देर बेहोश पड़ा रहा हूँ, बेहोशी और निद्रा की कल्पना हो सकती है पर जब 'मैं' की मृत्यु का प्रश्न आता है तो चारों ओर अस्वीकृत की ही प्रतिध्वनि गूँजती है । कितने हर्ष की बात है कि जीव अपने अमर और अखण्ड होने का प्रमाण अपने ही अन्दर दृढ़तापूर्वक धारण किये हुए है ।

अपने को अमर, अखण्ड, अविनाशी और भौतिक संवेदनाओं से परे समझना, आत्म-स्वरूप दर्शन का आवश्यक अङ्ग है । इसकी अनुमति हुए बिना सच्चा आत्म-विश्वास नहीं होता और जीव बराबर अपनी चिरसेवित तुच्छता की भूमिका में फिसल पड़ता है, जिससे अभ्यास का सारा प्रयत्न गुड़ गोबर होजाता है । इसलिये एकाग्रता पूर्वक अच्छी तरह अनुभव करो कि मैं अविनाशी हूँ । अच्छी तरह इसे अनुभव में लाये बिना आगे मत बढ़ो । जब आगे बढ़ने लगो तब भी कभी-कभी लौटकर अपने इस स्वरूप का फिर परीक्षण करलो । यह भावना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आत्म-स्वरूप के साक्षात्कार में बड़ी सहायता देगी । आगे वह परीक्षण बनाये जाते हैं, जिनके द्वारा अपने ''अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमल्केद्योऽशोष्य एवच । नित्यः सर्वगतस्याणुरचलोऽयं सनातनः ।'' का अनुभव कर सको ।

ध्यानावस्था में आत्म-स्वरूप को देह से अलग करो और क्रमशः उसे आकाश, हवा, अग्नि, पानी, पृथ्वी की परीक्षा में से निकलते हुए देखो । कल्पना करो कि मेरी देह की बाधा हट गई है और अब मैं स्वतन्त्र हो गया हूँ । अब तुम आकाश में इच्छा-पूर्वक ऊँचे-नीचे पखेरुओं की तरह जहाँ चाहें उड़ सकते हो । हवा के वेग से गति में कुछ भी बाधा नहीं पड़ती और न उसके द्वारा जीव कुछ सूखता ही है । कल्पना करो कि बड़ी भारी आग की ज्वाला जल रही है और तुम उसमें होकर मजे में निकल जाते हो और कुछ भी कष्ट नहीं होता है । भला जीव को आग कैसे जला सकती है । उसकी गर्मी की पहुँच तो सिर्फ शरीर तक ही थी । इसी प्रकार पानी और पृथ्वी के भीतर भी जीव की पहुँच वैसे ही है जैसे आकाश में । अर्थात् कोई भी तत्त्व तुम्हें छू नहीं सकता और तुम्हारी स्वतन्त्रता में तनिक भी बाधा नहीं पहुँचा सकता ।

इस भावना से आत्मा का स्थान शरीर से उँचा ही नहीं होता बल्कि उसको प्रभावित करने वाले पंच-तत्त्वों से भी ऊपर उठता है । जीव देखने लगता है कि मैं देह ही नहीं वरन् उसके निर्माता पंच-तत्त्वों से भी ऊपर हूँ । अनुभव की इस चेतना में प्रवेश करते ही तुम्हें प्रतीत होगा कि मेरा नया जन्म हुआ है । नवीन शक्ति का संचार अपने अन्दर होता हुआ प्रतीत होगा और ऐसा भी न होगा कि पुराने वस्त्रों की तरह भय का आवरण ऊपर से हठा दिया गया है । अब ऐसा विश्वास हो जायगा कि जिन वस्तुओं से मैं अब तक डरा करता था वे मुझे कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकतीं । शरीर तक ही उनकी गति है । सो ज्ञान और इच्छा शक्ति द्वारा शरीर से भी इन भयों को दूर हटाया जा सकता है ।

बार-बार समझ लो । प्राथमिक शिक्षा का बीज मन्त्र 'मैं' है । इसका पूरा अनुभव करने के बाद ही आध्यात्म उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकोगे । तुम्हें अनुभव करना होगा मेरी सत्ता शरीर से भिन्न है । अपने को सूर्य के समान शक्ति का एक महान् केन्द्र देखना होगा जिसके इर्द-गिर्द अपना संसार घूम रहा है । इससे नवीन शक्ति आवेगी, जिसे तुम्हारे साथी प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे । तुम स्वयं स्वीकार करोगे अब मैं सुदृढ़ हूँ और जीवन की आँधियाँ मुझे विचलित नहीं कर सकतीं । केवल इतना ही नहीं इससे भी आगे है । अपनी उन्नति के आत्मिक विकास के साथ उस योग्यता को प्राप्त करता हुआ भी देखोगे जिसके द्वारा जीवन की आँधियों को शान्त किया जाता है और उन पर शासन किया जाता है ।

आत्म-ज्ञानी दुनियां के भारी कष्टों की दशा में भी हँसता रहेगा और अपनी भुजा उठाकर कष्टों से कहेगा-'जाओ, चले जाओ, जिस अन्धकार से तुम उत्पन्न हुए हो । उसी में विलीन हो जाओ । ' धन्य है वह, जिससे 'मैं' के बीज मन्त्र को सिद्ध कर लिया है ।

जिज्ञासुओं ! प्रथम शिक्षा का अभ्यास करने के लिये अब हमसे अलग हो जाओ । अपनी मन्दगति देखो तो उतावले मत होओ । आगे चलने में यदि पाँव पीछे फिसल पड़े तो निराश मत होओ । आगे चलकर तुम्हें दूना लाभ मिल जायेगा । सिद्धि और सफलता तुम्हारे लिये है, यह तो प्राप्त होनी ही है । बढ़ो, शान्ति के साथ थोड़ा प्रयत्न करो ।

**स्वसंकेत के मन्त्र**

-मैं प्रतिभा और शक्ति का केन्द्र हूँ ।
-मैं विचार और शक्ति का केन्द्र हूँ ।
-मेरा संसार मेरे चारों और घूम रहा है ।
-मैं शरीर से भिन्न हूँ ।
-मैं अविनासी हूँ, मेरा नाश नहीं हो सकता ।
-मैं अखण्ड हूँ, मेरी क्षति नहीं हो सकती ।

# तीसरा सूत्र

**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यं परं मनः ।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।**

*-गीता ३/४२*

शरीर से इन्द्रियाँ परे (सूक्ष्म) है । इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे आत्मा है । आत्मा तक पहुँचने के लिये क्रमशः सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ेगीं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पिछले सूत्र में आत्मा के शरीर और इन्द्रियों से ऊपर अनुभव करने के साधन बताये गये थे । इस सूत्र में मन का स्वरूप समझने और उससे ऊपर आत्मा को सिद्ध करने का हमारा प्रयत्न होगा । प्राचीन दर्शनशास्त्र मन और बुद्धि को अलग-अलग गिनता है । आधुनिक दर्शनशास्त्र मन को ही सर्वोच्च श्रेणी की बुद्धि मानता है । इस बहस में आपको कोई खास दिलचस्पी लेने की जरूरत नहीं है । दोनों का मतभेद इतना बारीक है कि मोटी निगाह से वह कुछ भी प्रतीत नहीं होता दोनों ही मन तथा बुद्धि को मानते हैं । दोनों स्थूल मन से बुद्धि को सूक्ष्म मानते हैं । हम पाठकों की सुविधा के लिए बुद्धि को मन की ही उन्नत कोटि में गिन लेंगे और आगे का अभ्यास आरम्भ करायेंगे ।

अब तक तुमने यह पहचाना है कि हमारे भौतिक आवरण क्या है ? अब इस पाठ में बताने का प्रयत्न किया जायेगा कि असली अहम् 'मैं' से कितना परे है । वह सूक्ष्म परिक्षण है । भौतिक आवरणों का अनुभव जितनी आसानी से हो जाता है उतना सूक्ष्म शरीर में से अपने वास्तविक अहम् को प्रथक कर सकना आसान नहीं है । इसके लिये कुछ अधिक योग्यता और ऊँची चेतना होनी चाहिये । भौतिक पदार्थों से प्रथकता का अनुभव हो जाने पर भी अहम् के साथ लिपटा हुआ सूक्ष्म शरीर गड़बड़ में डाल देता है । कई लोग मन को ही आत्मा समझने लगे हैं । आगे हम मन के रूप की व्याख्या नहीं करेंगे पर ऐसे उपाय बतावेंगे जिससे स्थूल शरीर और भद्दे मैं के टुकड़े-टुकड़े कर सको और उसमें से तलाश कर सको कि इनमें 'अहम्' कौन-सा है ? और उनमें भिन्न वस्तुयें कौन-सी हैं ? इस विश्लेषण को तुम मन के द्वारा कर सकते हो और उसे इसके लिये मजबूर कर सकते हो कि इन प्रश्नों का सही उत्तर दें ।

शरीर और आत्मा के बीच की चेतना मन है । साधकों की सुविधा के लिए मन को तीन भागों में बाँटा जाता है । मन के पहिले भाग का नाम 'प्रवृत्त मानस' है । यह पशु-पक्षी आदि अविकसित जीवों और मनुष्यों में समान रूप से पाया जाता है । गुप्त मन और सुप्त मानस भी उसे कहते हैं । शरीर के स्वाभाविक जीवन बनाये रखना इसी के हाथ में है । हमारी जानकारी के बिना भी शरीर का व्यापार अपने आप चलता रहता है । भोजन की पाचन क्रिया, रक्त का घूमना, क्रमशः रस, रक्त, माँस, मेदा, अस्थि, वीर्य का बनना, मल त्याग, श्वांस, प्रश्वांस, पलकें खुलना बन्द होना आदि कार्य अपने आप होते रहते हैं । आदतें पड़ जाने का कार्य इसी मन के द्वारा होता है । यह मन देर में किसी बात को ग्रहण करता है पर जिसे ग्रहण कर लेता है उसे आसानी से छोड़ता नहीं । हमारे पूर्वजों के अनुभव और हमारे वे अनुभव को पाशविक जीवन से उठकर इस अवस्था में आने तक प्राप्त हुये हैं, इसी में जमा है । मनुष्य एक अल्प बुद्धि साधारण प्राणी था उस समय की ईर्षा, द्वेष, युद्ध प्रवृत्ति, स्वार्थ, चिन्ता आदि साधारण वृत्तियां इसी के एक कोने में पड़ी रहती हैं । पिछले अनेक जन्मों के नीच स्वभाव जिन्हें प्रबल प्रयत्नों द्वारा काटा नहीं गया है इसी विभाग में इकट्ठे रहते हैं । यह एक अद्भुत अजायबघर है जिसमें सभी तरह की चीजें जमा हैं । कुछ अच्छी और बहुमूल्य है तो कुछ सड़ी-गली, भद्दी तथा भयानक भी हैं । जंगली मनुष्यों, पशुओं तथा दुष्टों में जो लोभ, हिंसा क्रूरता, आवेश, अधीरता आदि वृत्तियाँ होती हैं वह भी सूक्ष्म रूपों से इसमें जमा हैं । यह बात दूसरी है कि कहीं उच्च मन द्वारा पूरी तरह से वे वश में रखी जाती हैं कहीं कम । राजस और तामसी लालसायें इसी मन से सम्बन्ध रखती हैं । इन्द्रियों के भोग, घमण्ड, क्रोध, भूख, प्यास, मैथुनेच्छा, निद्रा आदि 'प्रवृत्त मानस' के रूप हैं ।

प्रवृत्त मन से ऊपर दूसरा मन है, जिसे 'प्रबुद्ध मानस' कहना चाहिए । इस पुस्तक को पढ़ते समय तुम उसी मन का उपयोग कर रहे हो । इसका काम सोचना, विचारना, विवेचना करना, तुलना करना, कल्पना, तर्क तथा निर्णय आदि करना है । हाजिर जवाबी, बुद्धिमत्ता, चतुरता, अनुभव, स्थिति का परीक्षण यह सब प्रबुद्ध मन द्वारा होते हैं । याद रखो जैसे प्रवृत्त मानस 'अहम्' नहीं है उसी प्रकार प्रबुद्ध मानस भी वह नहीं है । कुछ देर विचार करके तुम इसे आसानी के साथ 'अहम्' से अलग कर सकते

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हो । इस छोटी-सी पुस्तक में बुद्धि के गुणों धर्मों का विवेचन नहीं हो सकता, जिन्हें इस विषय का अधिक ज्ञान प्राप्त करना हो वे मनोविज्ञान को उत्तमोत्तम ग्रन्थों का मनन करें । इस समय इतना काफी है कि तुम अनुभव करलो कि प्रबुद्ध मन भी एक अच्छादान है न कि 'अहम्' ।

तीसरे सर्वोच्च मन का नाम 'आध्यात्म मानस' है । इसका विकास अधिकांश लोगों में नहीं होता । मेरा विचार है कि तुम में कुछ-कुछ विकसने लगा है क्योंकि इस पुस्तक को मन लगाकर पढ़ रहे हो और इसमें वर्णित विषय की ओर आकर्षित हो रहे हो । मन के इस विभाग को हम लोग उच्चतम विभाग मानते हैं और आध्यात्मिकता, आत्म-प्रेरणा, ईश्वरीय सन्देश, प्रतिभा आदि जानते हैं । उच्च भावनाऐं मन के इसी भाग में उत्पन्न होकर चेतना में गति करती है । प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, न्याय, निष्ठा, उदारता, धर्म प्रवृत्ति, सत्य, पवित्रता, आत्मीयता आदि सब भावनाऐं इसी मन से आती हैं । ईश्वरीय भक्ति इसी मन में उदय होती है । गूढ़ तत्वों का रहस्य इसी के द्वारा जाना जाता है ? इस पाठ में जिस विशुद्ध 'अहम्' की अनुभूति के शिक्षण का हम प्रयत्न कर रहे हैं वह इसी 'अध्यात्म मानस' के चेतना क्षेत्र से प्राप्त हो सकेगी । परन्तु भूलिए मत, मन का यह सर्वोच्च भाग भी केवल उपकरण ही है । 'अहम्' यह भी नहीं है ।

तुम्हें यह भ्रम नहीं करना चाहिये कि हम किसी मन की निन्दा और किसी की स्तुति करते हैं और भार या बाधक सिद्ध करते हैं । बात ऐसी नहीं है । सब सोचते तो यह हैं कि मन की सहायता से तुम अपनी वास्तविक सत्ता और आत्म-ज्ञान के निकट पहुँचे हो और आगे भी बहुत दूर तक उसकी सहायता से अपना मानसिक विकास कर सकोगे इसलिये मन का प्रत्येक विभाग अपने स्थान पर बहुत अच्छा है बशर्ते कि उसका ठीक उपयोग किया जाये ।

साधारण लोग अब तक मन के नीच भागों को ही उपयोग में लाते हैं, उनके मानस-लोक में अभी ऐसे असंख्य गुप्त प्रकट स्थान हैं जिसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकी है, अतएव मन को कोसने के स्थान पर आचार्य लोग दीक्षितों को सदैव यह उपदेश देते हैं कि उस गुप्त शक्ति को त्याज्य न ठहराकर ठीक प्रकार से क्रियाशील बनाओ ।

यह शिक्षा जो तुम्हें दी जा रही है मन के द्वारा ही किया रूप में आ सकती है और उसी के द्वारा समझने, धारण करने एवं सफल होने का कार्य हो सकता है, इसलिये हम सीधे तुम्हारे मन से बात कर रहे हैं, उसी से निवेदन कर रहे हैं कि महोदय ! अपनी उच्च कक्षा से आने वाले ज्ञान को ग्रहण कीजिये और उसके लिये अपना द्वार खोल दीजिये । हम आपकी बुद्धि से प्रार्थना करते हैं-भगवती ! अपना ध्यान उस महातत्व की ओर लगाइये और सत्य के अनुभवी, अपने आध्यात्मिक मन द्वारा आने वाली दैवी चेतनाओं में कम बाधा दीजिये ।

## अभ्यास

सुख और शान्ति पूर्वक स्थित होकर आदर के साथ उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए बैठो जो उच्च मन की उच्च कक्षा द्वारा तुम्हें प्राप्त होने को है ।

पिछले सूत्र में तुमने समझा था कि 'मैं' शरीर से परे कोई मानसिक चीज है, जिसमें विचार, भावना और वृत्तियाँ भरी हुई हैं । अब इससे आगे बढ़ना होगा और अनुभव करना होगा कि यह विचारणीय वस्तुऐं आत्मा से भिन्न हैं ।

विचार करो कि द्वेष, क्रोध, ममता, ईर्षा, घृणा, उन्नति आदि की असंख्य भावनाऐं मस्तिष्क में आती रहती है । उनमें से हरएक को तुम अलग कर सकते हो, जाँच कर सकते हों, विचार कर सकते हो, खण्डित कर सकते हो, उनके उदय, वेग और अन्त को भी जान सकते हो । कुछ दिन के अभ्यास से अपने विचारों की परीक्षा करने का ऐसा अभ्यास प्राप्त कर लोगे मानो अपने किसी दूसरे मित्र की भावनाओं के उदय, वेग, और अन्त का परीक्षण कर रहे हो । यह सब भावनाऐं तुम्हारे चिन्तन केन्द्र में मिलेंगी । उनके स्वरूप का अनुभव कर सकते हो और उन्हें टटोल तथा हिला डुलाकर देख सकते हो । अनुभव करो कि यह भावनाऐं तुम नहीं हो । यह केवल ऐसी वस्तुएं हैं जिन्हें स्वरूप की कल्पना करो । ऐसी भावना सरलता पूर्वक कर सकोगे ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन मानसिक वस्तुओं को पृथक करके तुम उन पर विचार कर रहे हो, इसी से सिद्ध होता है कि वह वस्तुऐं तुम से पृथक हैं । पृथकत्व की भावना अभ्यास द्वारा थोड़े समय बाद लगातार बढ़ती जायेगी और शीघ्र ही एक महान आकार में प्रकट होगी ।

यह मत सोचिए कि हम इस शिक्षा द्वारा यह बता रहे हैं कि भावनाऐं कैसे त्याग करें । यदि तुम इसी शिक्षा की सहायता से दुर्वृत्तियों को त्याग सकने की क्षमता प्राप्त कर सको तो बहुत प्रसन्नता की बात है । पर हमारा यह मन्तव्य नहीं है, हम इस समय तो यही सलाह देना चाहते हैं कि अपनी बुरी-भली सब दुर्वृत्तियों को जहाँ की तहाँ रहने दो और ऐसा अनुभव करो-'अहम्' इन सबसे परे एवं स्वतन्त्र है, जब तुम 'अहम्' के महान् स्वरूप का अनुभव कर लो, तब लौट जाओ और उन वृत्तियों का जो अब तक तुम्हें अपनी चाकर बनाए हुए थीं, मालिक की भाँति उचित उपयोग में लाओ अपनी वृत्तियों को अहम् से परे के अनुभव में पटकते समय डरो मत । अभ्यास समाप्त करने के बाद फिर वापिस लौट आओगे और उनमें से अच्छी वृत्तियों को इच्छानुसार काम में ला सकोगे । अमुक वृत्ति ने मुझे बहुत अधिक बाँध लिया है उससे कैसे छूट सकता हूँ, इस प्रकार की चिन्ता मत करो, वह चीजें बाहर की हैं । इसके बन्धन में बँधने से पहले 'अहम्' या और बाद में भी बना रहेगा, जब अपने को पृथक करके उनका परीक्षण कर सकते हो तो क्या कारण है कि एक ही झटके में उठाकर अलग नहीं फेंक सकोगे ? ध्यान देने योग्य बात यह है कि तुम इस बात का अनुभव और विश्वास कर रहे हो कि 'मैं' बुद्धि और इन शक्तियों का उपभोग कर रहा हूँ । यही 'मैं' जो शक्तियों का उपकरण मानता है, मन का स्वामी 'अहम्' है ।

उच्च आध्यात्मिक मन से आई प्रेरणा भी इसी प्रकार अध्ययन की जा सकती है । इसलिये उन्हें भी अहम् से भिन्न माना जायेगा । आप शंका करेंगे कि उच्च आध्यात्मिक प्रेरणा का उपयोग उस प्रकार नहीं किया जा सकता, इसलिये सम्भव है वे प्रेरणाऐं 'अहम्' वस्तुऐं हों ? आज हमें तुमसे इस विषय पर कोई विवाद नहीं करना है क्योंकि तुम आध्यात्मिक मन की थोड़ी बहुत जानकारी को छोड़कर अभी इसके सम्बन्ध में और कुछ नहीं जानते, साधारण मन के मुकाबिले में वह मन ईश्वरीय भूमिका के समान है । जिन तत्त्वदर्शियों ने अहम् ज्योति का साक्षात्कार किया है और जो विकास की उच्च-अत्युच्च सीमा तक पहुँच गये हैं वे योगी बतलाते हैं कि अहम् आध्यात्मिक मन से ऊपर रहता है और उसको अपनी ज्योति से प्रकाशित करता है जैसे पानी पर पड़ता हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य जैसा ही मालूम पड़ता है । परन्तु सिद्धों का अनुभव है कि वह केवल धुँधली तस्वीर मात्र है । चमकता हुआ आध्यात्मिक मन यदि प्रकाश बिम्ब है तो 'अहम्' अखण्ड ज्योति है उस उच्च मन में होता हुआ आत्मिक प्रकाश पाता है इसी से वह इतना प्रकाशमय प्रतीत होता है । ऐसी दशा में उसे ही 'अहम्' मान लेने का भ्रम होजाता है, असल में वह भी 'अहम्' है नहीं । 'अहम्' उस प्रकाश-मणि के समान है, जो स्वयं सदैव समान रूप से प्रकाशित रहती है, किन्तु कपड़ो से ढँकी रहने के कारण अपना प्रकाश बाहर लाने में असमर्थ होती है । यह कपड़े जैसे-जैसे हटते जाते हैं, वैसे ही वैसे प्रकाश अधिक स्पष्ट होता जाता है । फिर भी कपड़ों के हटने या उनके और अधिक मात्रा में पड़ जाने के कारण मणि के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता ।

इस चेतना में ले जाने का इतना ही अभिप्राय है कि 'अहम्' की सर्वोच्च भावना में जागकर तुम एक सस्नात आत्मा बन जाओ और अपने उपकरणों का ठीक उपयोग करने लगो । जो पुराने, अनावश्यक, रद्दी और हानिकारक परिधान हैं, उन्हें उतारकर फेंक सको और नवीन एवं अद्भुत क्रियाशील औजारों को उठाकर उसके द्वारा अपने सामने के कार्यों को सुन्दरता और सुगमता के साथ पूरा कर सको, अपने को सफल एवं विजयी घोषित कर सको ।

इतना अभ्यास और अनुभव कर लेने के बाद तुम पूछोगे कि अब क्या बचा, जिसे 'अहम' से भिन्न न गिनें ? इसके उत्तर में हमें कहना है कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


'विशुद्ध आत्मा ।' इसका प्रमाण यह है कि अपने 'अहम्' को शरीर, मन आदि अपनी सब वस्तुओं से पृथक करने का प्रयत्न करो । छोटी चीजों से लेकर उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म उससे परे से वस्तुओं को छोड़ते-छोड़ते विशुद्ध आत्मा तक पहुँच जाओगे । क्या अब इससे भी परे कुछ हो सकता है ? कुछ नहीं । विचार करने वाला, परीक्षा करने वाला और परीक्षा की वस्तु दोनों एक वस्तु नहीं हो सकते । सूर्य अपनी किरणों द्वारा अपने ही ऊपर नहीं चमक सकता । तुम विचार और जाँच की वस्तु नहीं हो । फिर भी तुम्हारी चेतना कहती है 'मैं हूँ', यही आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है । अपनी कल्पना शक्ति, स्वतन्त्रता शक्ति लेकर इस 'अहम्' को पृथक करने का प्रयत्न कर लीजिये, परन्तु फिर भी हार जाओगे और उससे आगे नहीं बढ़ सकोगे । अपने को मरा हुआ नहीं मान सकते । यही विशुद्ध आत्मा अविनाशी, अविकारी, ईश्वरीय समुद्र की बिन्दु, परमात्मा की किरण है ।

हे साधक ! अपनी आत्मा का अनुभव प्राप्त करने में सफल होओ और समझो कि सोते हुए देवता हो । अपने भीतर प्रकृति की महान् सत्ता धारण किए हुए हो, जो कार्यरूप में परिणित होने के लिए हाथ बाँधकर खड़ी हूई आज्ञा माँग रही है । इस स्थान तक पहुँचने में भी कुछ समय लगेगा। पहली मंजिल तक पहुँचने में भी कुछ देर लगेगी, परन्तु आध्यात्मिक विकास की चेतना में प्रवेश करते ही आँखों खुल जाँयगी । आगे का प्रत्येक कदम साफ होता जायेगा और प्रकाश प्रकट होता जायेगा ।

इस अध्याय के अगले सूत्र में हम बतावेंगे कि आपकी विशुद्ध आत्मा भी स्वतन्त्र नहीं वरन् परमात्मा का ही एक अंश है और उसी में किस प्रकार ओत-प्रोत हो रही है ? परन्तु उस ज्ञान को ग्रहण करने से पूर्व तुम्हें अपने भीतर 'अहम्' की चेतना लगा लेनी पड़ेगी । हमारी इस शिक्षा को शब्द-शब्द और केवल शब्द समझकर उपेक्षित मत करो, इस निर्बल व्याख्या को तुच्छ समझकर तिरस्कृत मत करो, यह एक बहुत सच्ची बात बताई जा रही है । तुम्हारी आत्मा इन पंक्तियों को पढ़ते समय आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने की अभिलाषा कर रही है । उसका नेतृत्व ग्रहण करो और आगे को कदम उठाओ ।

अब तक बताई हुई मानसिक कसरतों का अभ्यास कर लेने के बाद 'अहम्' से भिन्न पदार्थों को तुम्हें पूरा निश्चय हो जायेगा । इस सत्य को ग्रहण कर लेने के बाद अपने को मन और वृत्तियों का स्वामी अनुभव करोगे और तब उन सब चीजों को पूरे बल और प्रभाव के साथ काम में लाने की सामर्थ्य प्राप्त कर लोगे ।

इस महान तत्त्व की व्याख्या में हमारे यह विचार और शब्दावली हीन, शिथिल और सस्ते प्रतीत होंगे । वह विषय अनिर्वचनीय है । वाणी की गति वहाँ तक नहीं है । गुड़ का मिठास जवानी जमा खर्च द्वारा नहीं समझाया जा सकता । हमारा प्रयत्न केवल इतनी ही है कि तुम ध्यान और दिलचस्पी की तरफ झुक पड़ो और इन कुछ मानसिक कसरतों को करने के अभ्यास में लग जाओ । ऐसा करने से मन वास्तविकता का प्रमाण पाता जायेगा और आत्म-स्वरूप में दृढ़ता होती जायेगी । जब तक स्वयं अनुभव न हो जाय. तब तक ज्ञान, ज्ञान नहीं है । एक बार जब तुम्हें उस सत्य के दर्शन हो जाँयेंगे तो वह फिर दृष्टि से ओझल नहीं हो सकेगा और कोई वाद-विवाद उस पर अविश्वास नहीं करा सकेगा ।

अब तुम्हें अपने को दास नहीं, स्वामी मानना पड़ेगा । तुम शासक हो और मन आज्ञा-पालक । मन द्वारा जो अत्याचार अब तक तुम्हारे ऊपर हो रहे थे, उन सबको फड़फड़ाकर फेंक दो और अपने को उनसे मुक्त हुआ समझो । तुम्हें आज राज्य सिंहासन सौंपा जा रहा है, अपने को राजा अनुभव करो । दृढ़तापूर्वक आज्ञा दो कि स्वभाव, विचार, संकल्प, बुद्धि, कामनाएँ समस्त कर्मचारी शासन को स्वीकार करें और नये सन्धि-पत्र पर दस्तखत करें कि हम बफादार नौकर की तरह अपने राजा की आज्ञा मानेंगे और राज्य-प्रबन्ध को सर्वोच्च एवं सुन्दरतम् बनाने में रत्ती भर भी प्रमाद न करेंगे ।

लोग समझते हैं कि मन ने हमें ऐसी स्थिति में डाल दिया है कि हमारी वृत्तियाँ हमें बुरी तरह

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


काँटों में घसीटे फिरती हैं । और तरह-तरह से त्रास देकर दु:खी बनाती हैं । साधक इन दु:खों से छुटकारा पा जावेंगे, क्योंकि वह उन सब उद्‌गमों से परिचित हैं और यहाँ काबू पाने की योग्यता सम्पादन कर चुके हैं । किसी बड़े मिल में सैंकड़ों घोड़ों की ताकत से चलने वाला इंजन और उसके द्वारा संचालित होने वाली सैकड़ों मशीनें तथा उनके असंख्य कल पुर्जे किसी अनाड़ी को डरा देंगे । वह उस घर में घुसते ही हड़बड़ा जायेगा, किसी पुर्जे में धोती फँस गई तो उसे छुटाने में असमर्थ होगा और अज्ञान के कारण बड़ा त्रास पावेगा । किन्तु वह इंजीनियर जो मशीनों के पुर्जे-पुर्जे से परिचित है और इंजन चलाने के सारे सिद्धान्त को भली-भाँति समझा हुआ है, उस कारखाने में घुसते हुए तनिक भी न घबरावेगा और गर्व के साथ उन दैत्याकार यन्त्रों पर शासन करता रहेगा, जैसा एक महावत हाथी पर और सपेरा भयंकर विषधरों पर करता है । उसे इतने बड़े यन्त्रालय का उत्तरदायित्व लेते हुए भय नहीं, अभिमान होगा । वह हर्ष और प्रसन्नतापूर्वक शाम को मिल मालिक को हिसाब देगा, बढ़िया माल की इतनी बड़ी राशि उसने थोड़े समय में ही तैयार कर दी है । उसकी फूली हुई छाती पर से सफलता का गर्व मानों टपक पड़ रहा है । जिसने अपने 'अहम्' और वृत्तियों का ठीक-ठीक स्वरूप और सम्बन्ध जान लिया है, वह ऐसा कुशल इन्जीनियर-यन्त्र संचालक है । अधिक दिनों का अभ्यास और भी अद्भुत शक्ति देता है । जाग्रत मन ही नहीं, उस समय प्रवृत्त मन, गुप्त मानस भी शक्षित होगया होता है और वह जो आज्ञा प्राप्त करता है उसे पूरा करने के लिये चुपचाप तब भी काम किया करता है जब हम दूसरे कामों में लगे होते हैं या सोये होते हैं । गुप्त मन जब उन कार्यों को पूरा करके सामने रखता है, तब नया साधक चौंकता है कि यह अदृष्ट सहायता है, यह आलौकिक करामात है । परन्तु योगी उन्हें समझाता है कि यह तुम्हारी अपनी अपरिचित योग्यता है इससे असंख्य गुनी प्रतिभा तो अभी तुम में सोई पड़ी है ।

सन्तोष और धैर्य धारण करो । कार्य कठिन है, पर इसके द्वारा जो पुरस्कार मिलता है उसका लाभ बड़ा भारी है । यदि वर्षों के कठिन अभ्यास और मनन द्वारा भी तुम अपने पद, सत्ता, महत्त्व, गौरव, शक्ति की चेतना प्राप्त कर सको तब भी वह करना ही चाहिये । यदि तुम इन विचारों में हमसे सहमत हो तो केवल पढ़कर ही सन्तुष्ट मत होजाओ । अध्ययन करो, मनन करो, आशा करो, साहस करो और सावधानी तथा गम्भीरता के साथ इस साधन-पथ की ओर चल पड़ो ।

## इस सूत्र का बीज मन्त्र

-'मैं' सत्ता हूँ । मन मेरे प्रकट होने का उपकरण है ।

-'मैं' मन से भिन्न हूँ । उसके सत्ता पर आश्रित नहीं हूँ ।

-'मैं' मन का सेवक नहीं, शासक हूँ ।

-'मैं' बुद्धि, स्वभाव, इच्छा और अन्य समस्त मानसिक उपकरणों को अपने से अलग कर सकता हूँ । तब जो कुछ शेष रह जाता है, वह 'मैं' हूँ ।

-'मैं' अजर अमर, अविकारी और एक रस हूँ ।

-'मैं हूँ'-

## चौथा सूत्र

**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।**

'संसार में जितना भी कुछ है वह सब ईश्वर से ओत-प्रोत है ।'

पिछले सूत्रों में आत्म-स्वरूप और उसके आवरणों से जिज्ञासुओं को परिचित कराने का प्रयत्न किया गया है । इस सूत्र में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध बताने का प्रयत्न किया जायेगा । अब तक जिज्ञासु 'अहम्' का जो रूप समझ सके हैं वास्तव में वह उससे कहीं अधिक है । विश्वव्यापी आत्मा परमात्मा, महत्तत्व, परमेश्वर का ही वह अंश है । तत्वत: उसमें कोई भिन्नता नहीं है ।

तुम्हें अब इस तरह अनुभव करना चाहिये कि 'मैं' अब तक अपने को जितना समझता हूँ उससे कई गुना बड़ा हूँ । 'अहम्' की सीमा समस्त ब्रह्माण्डों तक पहुँचती है । वह परमात्मा शक्ति की सत्ता में समाया हुआ है और उसी से इस प्रकार पोषण ले रहा है जैसे गर्भस्थ बालक अपनी माता के शरीर से । वह परमात्मा का निज तत्त्व है । तुम्हें

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव करना होगा और क्रमशः अपनी अहन्ता को बढ़ाकर अत्यन्त महान् कर देने को अभ्यास में लाना होगा । तब उस चेतना में जग सकोगे जहाँ पहुँच कर योग के आचार्य कहते हैं 'सोऽहम्' ।

आइये, अब इसी अभ्यास की यात्रा आरम्भ करें । अपने चारों ओर दूर तक नजर फैलाओ और अन्तर नेत्रों से जितनी दूरी तक के पदार्थों को देख सकते हो देखो, प्रतीत होगा कि एक महान् विश्व चारों ओर बहुत दूर, बहुत दूर तक फैला हुआ है । यह विश्व केवल ऐसा ही नहीं है जैसा मोटे तौर पर समझा जाता है वरन् यह एक चेतना का समुद्र है । प्रत्येक परमाणु आकाश एवं ईश्वर तत्त्व में बराबर गति करता हुआ आगे को बह रहा है । शरीर के तत्व हर घड़ी बदल रहे हैं । आज जो रासायनिक पदार्थ एक वनस्पति में है, वह कल भोजन द्वारा हमारे शरीर में पहुँचेगा और परसों मल रूप में निकलकर अन्य जीवों के शरीर का अङ्ग बन जायेगा । डाक्टर बताते हैं कि शारीरिक कोष हर घड़ी बदल रहे हैं, पुराने नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये आजाते हैं । यद्यपि देखने में शरीर ज्यों का त्यों रहता है, पर कुछ ही समय में वह बिल्कुल बदल जाता है और पुराने शरीर का एक कण भी बाकी नहीं बचता । वायु, जल और भोजन द्वारा नवीन पदार्थ शरीर में प्रवेश करते हैं और श्वास-क्रिया तथा मल-त्याग के रूप में बाहर निकल जाते हैं । भौतिक पदार्थ बराबर अपनी धारा में बह रहे हैं । नदी-तल में पड़े हुए कछुए के ऊपर होकर नवीन जलधारा बहती रहती है, तथापि वह केवल इतना ही अनुभव करता है कि पानी मुझे घेरे हुए है और मैं पानी में पड़ा हुआ हूँ । हम लोग भी उस निरन्तर बहने वाली प्रकृति-धारा से भली-भाँति परिचित नहीं होते, तथापि वह पल भर भी ठहरे बिना बराबर गति करती रहती है । यह मनुष्य शरीर तक ही सीमित नहीं वरन् अन्य जीवधारियों, वनस्पतियों और जिन्हें हम जड़ मानते हैं, उन सब पदार्थों में होती हुई आगे बढ़ती रहती है । हर चीज हर घड़ी बदल रही है । कितना ही प्रयत्न क्यों न किया जाय, इस प्रवाह की एक बूँद को क्षण भर भी रोककर नहीं रखा जा सकता, यह भौतिक सत्य, आध्यात्मिक सत्य भी है । फकीर गाते हैं-'यह दुनियाँ आनी-जानी है ।'

भौतिक द्रव्य प्रवाह को तुम समझ गये होंगे । यही बात मानसिक चेतनाओं की है । विचारधाराएँ, शब्दावलियाँ, संकल्प आदि का प्रवाह भी ठीक इसी प्रकार जारी है । जो बातें एक सोचता है, वही बात दूसरे के मन में उठने लगती है । दुराचार के अड्डों का वातावरण ऐसा घृणित होता है कि वहाँ जाते-जाते नये आदमी का दम घुटने लगता है । शब्दधारा अब वैज्ञानिक यन्त्रों के वश में आगई है । रेडियो, बेतार का तार शब्द लहरों का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । मस्तिष्क में आने-जाने वाले विचारों के अब फोटो लिये जाने लगे हैं, जिससे यह पता चल जाता है कि अमुक आदमी किन विचारों को ग्रहण कर रहा है और कैसे विचार छोड़ रहा है ? बादलों की तरह विचार-प्रवाह आकाश में मडराता रहता है और लोगों की आकर्षण शक्ति द्वारा खींचा व फैंका जा सकता है । यह विज्ञान बड़ा महत्त्वपूर्ण और विस्तृत है, इस छोटी पुस्तक में उसका वर्णन कठिन है ।

मन के तीनों अङ्ग-प्रवृत्त मानस, प्रबुद्ध मानस, आध्यात्मिक मानस भी अपने स्वतन्त्र प्रवाह रखते हैं अर्थात् यों समझना चाहिए कि 'नित्यः सर्वगतः स्थाणु रचलोऽयं सनातनः ।' आत्मा को छोड़कर शेष सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक परमाणु गतिशील हैं । यह सब वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थानों को चलती रहती हैं । जिस प्रकार शरीर के पुराने तत्त्व आगे बढ़ते और नये आते रहते हैं, उसी प्रकार मानसिक पदार्थों के बारे में भी समझना चाहिए । उस दिन आपका निश्चय था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा, आज विषय भोगों से नहीं अघाते । उस दिन निश्चय था अमुक व्यक्ति की जान लेकर अपना बदला चुकाऊँगा, आज उनके मित्र बने हुए हैं । उस दिन रो रहे थे कि किसी भी प्रकार धन कमाना चाहिए, आज सब कुछ त्यागकर संयासी होरहे हैं । ऐसे असंख्य परिवर्तन होते रहते हैं । क्यों ? इसलिए कि पुराने विचार चले गये और नये उनके स्थान पर आगये ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


विश्व की दृश्य अदृश्य सभी वस्तुओं की गतिशीलता की धारणा, अनुभूति और निद्रा यह विश्वास करा सकती है कि सम्पूर्ण संसार एक है । एकता के आधार पर उसका निर्माण है । मेरी अपनी वस्तु कुछ नहीं है या सम्पूर्ण वस्तुएँ मेरी हैं । तेज बहती हुई नदी के बीच धार में तुम्हें खड़ा कर दिया जाय और पूछा जाय कि पानी के कितने और कौन से परमाणु तुम्हारे हैं, तब क्या उत्तर दोगे ? विचार करोगे कि पानी की धारा बराबर बह रही है । पानी के जो परमाणु इस समय मेरे शरीर को छू रहे हैं, पलक मारते-मारते बहुत दूर निकल जायेंगे । जल-धारा बराबर मुझसे छूकर चलती जा रही है, तब या तो सम्पूर्ण जल-धारा को अपनी बताऊँ या कहूँ कि मेरा कुछ भी नहीं है, यह विचार कर सकते हो ।

संसार जीवन और शक्ति का समुद्र है । जीव इसमें होकर अपने विकास के लिये आगे को बढ़ता जाता है और अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुएँ लेता और छोड़ता जाता है । प्रकृति मृतक नहीं है । जिसे हम भौतिक पदार्थ कहते हैं, उसके समस्त परमाणु जीवित हैं । वे सब शक्ति से उत्तेजित होकर लहलहा, चल, सोच और जी रहे हैं । इसी जीवित समुद्र की सत्ता के कारण हम सबकी गतिविधियाँ चल रही हैं । एक ही तालाब की हम सब मछलियाँ हैं । विश्वव्यापी शक्ति, चेतना और जीवन के परमाणु विभिन्न अभिमानियों को झंकृत कर रहे हैं ।

उपरोक्त अनुभूति आत्मा के उपकरणों और वस्त्रों के विस्तार के लिये काफी है । हमें सोचना चाहिए कि केवल यह सब शरीर मेरे हैं, जिनमें एक ही चेतना ओत-प्रोत हो रही है । जिन भौतिक वस्तुओं तक तुम अपनापन सीमित रख रहे हो, अब उससे बहुत आगे बढ़ना होगा और सोचना होगा कि 'इस विश्वसागर की इतनी बूँदें ही मेरी हैं, यह मानस भ्रम है । मैं इतना बड़ा वस्त्र पहने हुए हूँ, जिसके अंचल में समस्त संसार ढँका हुआ है ।' यही आत्म-शरीर का विस्तार है । इसका अनुभव उस श्रेणी पर ले पहुँचेगा, जिस पर पहुँचा हुआ मनुष्य योगी कहलाता है । गीता कहती है-

**सर्व भूतस्य चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि ।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः ।।**

अर्थात्-सर्वव्यापी अनन्त चेतना में एकीभाव से स्थित रूप योग से युक्त हुए आत्मा वाला तथा सबमें सम भाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है ।

अपने परिधान का विस्तार सम्पूर्ण जीवों के बाह्य स्वरूपों में आत्मीयता का अनुभव करता है । आत्माओं की आत्माओं में आत्मीयता है ही, ये सब आपस में परमात्म सत्ता द्वारा बँधे हुए हैं । अधिकारी आत्माएँ आपस में एक हैं । इस एकता के ईश्वर बिल्कुल निकट हैं । यहाँ हम परमात्मा के दरबार में प्रवेश पाने योग्य और उनमें घुल-मिल जाने योग्य होते हैं, वह दशा अनिर्वचनीय है । इसी अनिवर्चनीय आनन्द की चेतनी में प्रवेश करना समाधि है और उनका निश्चित परिणाम आजादी, स्वतन्त्रता, स्वराज्य, मुक्ति, मोक्ष होगा ।

## एकता अनुभव करने का अभ्यास

ध्यानावस्थित होकर भौतिक जीवन-प्रवाह पर चित्त जमाओ । अनुभव करो कि समस्त ब्रह्माण्डों में एक ही चेतना शक्ति लहलहा रही है, उसी के विकार भेद से पंचतत्त्व निर्मित हुए हैं । इन्द्रियों द्वारा जो विभिन्न प्रकार के सुख-दुःखमय अनुभव होते हैं, वह तत्वों की विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाएँ हैं, जो इन्द्रियों के तारों से टकराकर विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार की झंकारें उत्पन्न करती हैं और उससे मैं भी उसी प्रकार गति प्राप्त कर रहा हूँ जैसे दूसरे । यह एक साझे का कम्बल है, जिसमें लिपटे हुए हम सब बालक बैठे हैं । इस सच्चाई को अच्छी तरह कल्पना में लाओ, बुद्धि का ठीक-ठीक अनुभव करने, समझने और हृदय को स्पष्टतः अनुभव करने दो ।

स्थूल भौतिक पदार्थों की एकता का अनुभव करने के बाद सूक्ष्म मानसिक तत्त्व की एकता की कल्पना करो । वह भी भौतिक द्रव्य की भांति एक ही तत्त्व है । तुम्हारा मन महामन की एक बूँद है । जो ज्ञान और विचार मस्तिष्क में भरे हुए हो, वह मूलतः सार्वभौम ज्ञान और विचारधारा के कुछ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


परमाणु हैं और उन्हें पुस्तकों द्वारा, गुरु-मुख द्वारा या ईश्वर-आकाश में बहने वाली धाराओं से प्राप्त किया होता है । यह भी एक अखण्ड गतिमान शक्ति है और उसका उपयोग वैसे ही कर रहे हो, जैसे नदी में पड़ा हुआ कछुआ अविचल गति से बहते हुए जल-परमाणुओं में से कुछ को पीता है और फिर उसी में मलमूत्र में त्याग देता है । इस सत्य को भी बराबर हृदयंगम करो और अच्छी तरह मानस-पटल पर अङ्कित करलो ।

अपने शारीरिक और मानसिक वस्त्रों के विस्तार की भावना दृढ़ होते हुए संसार तुम्हारा और तुम संसार के हो जाओगे । कोई वस्तु विरानी मालूम पड़ेगी । यह सब मेरा है या मेरा कुछ भी नहीं, इन दोनों वाक्यों में तब तुम्हें कुछ भी अन्तर न मालूम पड़ेगा । वस्त्रों से ऊपर आत्मा को देखो-यह नित्य, अखंड, अक्षर, अमर, अपरिवर्तनशील और एकरस है । वह जड़, अविकसित, नीच प्राणियों, तारागणों, ग्रहों, समस्त ब्रह्माण्डों को प्रसन्नता और आत्मीयता की दृष्टि से देखता है । विराना, घृणा करने योग्य, सताने के लायक या छाती से चिपटा रखने के लायक कोई पदार्थ वह नहीं देखता । अपने घर और पक्षियों के घोंसले के महत्त्व में उसे तनिक भी अन्तर नहीं दीखता । ऐसी उच्च कक्षा का प्राप्त हो जाना केवल आध्यात्मिक उन्नति और ईश्वर के लिये ही नहीं वरन् सांसारिक लाभ के लिये भी आवश्यक है । इस ऊँचे टीले पर खड़ा होकर आदमी संसार का सच्चा स्वरूप देख सकता है और यह जान सकता है कि किस स्थिति में किससे क्या बर्ताव करना चाहिए ? उसे सद्गुणों का पुञ्ज, उचित क्रिया, कुशलता और सदाचार सीखने नहीं पड़ते वरन् केवल यही चीजें उसके पास शेष रह जाती हैं और वे बुरे स्वभाव न जानें कहाँ विलीन होजाते हैं, जो जीवन को दुःखमय बनाये रहते हैं ?

यहाँ पहुँचा हुआ स्थिति-प्रज्ञ देखता है कि सब अविनासी आत्माएँ यद्यपि इस समय स्वतन्त्र, तेजस्वरूप और गतिमान प्रतीत होती हैं, तथापि उनकी मूलसत्ता एक ही है, विभिन्न घटों में एक ही आकाश भरा हुआ है और अनेक जलपात्रों में एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब झलक रहा है । यद्यपि बालक का शरीर पृथक है, परन्तु उसका सारा भाग माता-पिता के अंश का ही बना है । आत्मा सत्य है, पर उसकी सत्यता परमेश्वर है । विशुद्ध और मुक्त आत्मा-परमात्मा है, अन्त में आकार यहाँ एकता है । वहीं वह स्थित है, जिस पर खड़े होकर जीव कहता है-'सोऽहमस्मि' अर्थात्-वह परमात्मा मैं हूँ और उसे अनुभूति हो जाती है कि संसार के सम्पूर्ण स्वरूपों के नीचे एक जीवन, एक बल, सत्ता, एक असलियत छिपी हुई है ।

दीक्षितों को इस चेतना में जग जाने के लिये हम बार-बार अनुरोध करेंगे, क्योंकि 'मैं क्या हूँ ?' इस सत्यता का ज्ञान प्राप्त करना सच्चा ज्ञान है । जिसने सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसका जीवन प्रेम, दया, सहानुभूति, सत्य और उदारता से परिपूर्ण होना चाहिये । कोरी कल्पना या पोथी-पाठ से क्या लाभ हो सकता है ? सच्ची सहानुभूति ही सच्चा ज्ञान है और सच्चे ज्ञान की कसौटी उसका जीवन व्यवहार में उतारना ही हो सकता है ।

## इस सूत्र के बीज मन्त्र

१-मेरी भौतिक वस्तुएँ महान् भौतिक तत्त्व की एक क्षणिक झाँकी है । २-मेरी मानसिक वस्तुएँ अविच्छिन्न मानस तत्व का एक खण्ड है । ३-भौतिक और मानसिक तत्त्व निर्बाध गति से बह रहे हैं, इसलिये मेरी वस्तुओं का दायरा सीमित नहीं । समस्त ब्रह्माण्डों की वस्तुएँ मेरी हैं । ४-अविनाशी आत्मा-परमात्मा का अंश है और अपने विशुद्ध रूप में वह परमात्मा ही है । ५-मैं विशुद्ध होगया हूँ, परमात्मा और आत्मा की एकता का अनुभव कर रहा हूँ । -'सोऽहमस्मि'-मैं वह हूँ ।

## अमर हो तुम, अमरत्व को पहिचानो,

पिता के वंश, ऐश्वर्य, गुण शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप बालक अपने जीवन स्तर का निर्माण प्रारम्भ करता है । उसके स्वाभिमान, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा में पिता की आत्म-स्थिति का अधिकांश प्रभाव होता है । धनी पिता का पुत्र सुन्दर वस्त्र पहनता है, अच्छा खाना खाता है, चलने, यात्रा करने में भी उसकी शान-शौकत अन्यों से

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


भिन्न होती है । वैसा बाप करता है प्राय: उसी का अनुकरण बेटे किया करते हैं ।

भिखारी के बेटे की स्थिति भिखारी जैसी होती है । फटे कपड़े, अस्त-व्यस्त बाल, रूखा शरीर सब कुछ ठीक भिखारियों जैसा । इससे अधिक शान का जीवन बिताना भला वह भिखारी का बालक क्या जान सकता है जिसने जीवन में न अच्छा भोजन देखा हो, न अच्छे वस्त्र पहने हों और न आलीशान मकान में रहने का सौभाग्य ही मिला हो । शील, गुण और आचरण अधिकांश व्यक्तियों को पैतृक सम्पत्ति के रूप में ही मिला करते हैं ।

यह उत्तराधिकारी मनुष्य को भी ठीक इसी रूप में मिला है । परमात्मा का पुत्र होने के नाते उसे वह सारी निधियाँ मिली हैं । जिनसे वह सांसारिक जीवन सुख, सुविधा और शान के साथ बिता सकता है । परमात्मा की जो गुण और शक्तियाँ बताई जाती हैं वह मनुष्य में-आत्मा में भी ठीक उसी तरह सन्निहित हैं । ऐसे कोई अधिकार शेष नहीं जो ईश्वर ने अपने युवराज को न दिये हों । वह अपने बेटों को निराश्रित, निरीह और निर्बल कैसे देख सकता था । अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का अनुदान उसने अपने बेटे-मनुष्य को दिया ताकि वह इस संसार में उल्लास का जीवन जी सके । स्वयं सुख भोगकर आने वालों को भी वैसा ही उत्तराधिकार सौंपता हुआ जा सके ।

आत्मदर्शी ऋषियों की लेखनी आत्मा की महत्ता प्रतिपादित करते हुये थक गई पर कथानक पूरा न हो पाया । शक्तियों की सीमा को 'नेति-नेति'' कहकर पुकारना पड़ा क्योंकि वे वर्णन भी कब तक करते । १०० वर्षों के जीवन में यही हजार, दो हजार पुस्तकों में आत्म-सत्ता की महत्ता लिख जाते इससे अधिक और हो भी क्या सकता था ? अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा का गुणानुवाद आखिर कब तक गाया जाता ।

किन्तु आज के मनुष्य की दीन-हीन स्थिति देखकर लगता है शास्त्रकार अतिशयोक्ति कर गये हैं, कुछ का कुछ लिख गये हैं । परमात्मा पूर्ण वैभव सम्पन्न है पर मनुष्य के पास पेट भरने और सुख से रहने के साधन नहीं । परमात्मा विश्वदर्शी है पर मनुष्य अपने आपको भी नहीं जानता । परमात्मा असीम शक्तिशाली है पर मनुष्य तो छोटे-छोटे कार्यों के लिये भी औरों का मुँह ताकता है । किसी भी गुण राशि में तो उसका और परमात्मा का मेल नहीं खाता, फिर विश्वास कैसे किया जाय कि मनुष्य परमात्मा का पुत्र है, अमृत-तत्त्व का उत्तराधिकारी युवराज है ।

वस्तुत: आपकी शक्ति अपार है, आपके गुण अनन्त हैं, आपकी क्षमता असीम है पर यह है उत्तराधिकार रूप में ही । परमात्मा सम्पूर्ण विश्व का पालनकर्त्ता, सर्व-रक्षक सबका भरण-पोषण करने वाला है इसलिये उसे भी यह सतर्कता बरतनी पड़ी कि वह अपनी शक्तियाँ योग्य हाथों में सौंपे और उसे भले कार्यों में प्रयुक्त हुआ देखे । जब कोई ऐसा उत्तराधिकारी व्यक्ति उसे दिखाई दे जाता है तो अपनी तिजोरी की चाबी भी उसे सौंप देता है । अयोग्य व्यक्तियों को वह अपनी शक्तियाँ देकर उनका दुरुपयोग होता कैसे देख सकता था ? उत्तराधिकार तो किसी अच्छे व्यक्ति को ही दिया जा सकता है ।

एक पिता की कई सन्तानें होती हैं । कोई कपटी, कोई चोर, कोई लवार । कई उनमें से शील स्वभाव, गुणवान् और आज्ञाकारी भी होते हैं । पिता बड़ी सावधानी से उन सबका निरीक्षण करता रहता है और जिसे योग्य समझता है उसे गृहस्थी का भार सौंपने, सारा धन दे जाने में प्रसन्नता अनुभव करता है । जो उसकी शान, ऐश्वर्य और यश परम्परा से विमुख होकर अकृत्य करता है उसे देता तो कुछ नहीं, उल्टे उसे दण्ड और भुगतना पड़ता है ।

साधारण मनुष्यों की जब यह दशा होती है तो परमात्मा को अधिक कड़ाई, अधिक सावधानी रखनी आवश्यक थी, क्योंकि उसका कार्य क्षेत्र भी तो बहुत बड़ा है सारे संसार में उसी के बेटे तो विचरण कर रहे हैं ।

साधारण मनुष्य का बेटा जब अपने पिता की सम्पत्ति का स्वामित्व पाता है तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता । सब के सामने अकड़ कर, शान के साथ चलता है । न उसे किसी का भय होता है और न कोई अभाव । तो फिर जिसे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


परमात्मा का उत्तराधिकार मिल जाये तो उसकी प्रसन्नता, निर्भयता, वैभव तथा ऐश्वर्य का तो कहना ही क्या ? वह चाहे तो सारे संसार के सामने ऐंठ कर, अकड़कर चल सकता है । उसे भय और अभाव हो भी कहाँ सकता है ?

मनुष्य स्वभावतः अर्धगामी है इस दृष्टि से यह नियन्त्रण रखना जरूरी भी था । पर ईश्वर न्यायकारी भी है उसने आत्म-कल्याण कं मार्ग किसी के लिये भी अवरुद्ध नहीं किया । यह साधन सबको समान रूप से मिले जिनके माध्यम से मनुष्य अपने लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के उद्देश्य पूरे कर लेता ।

वायु, जल, प्रकाश , मेघ आदि का उपभोग सब समान रूप से करते हैं । पापी विचार, अनुभव, स्मृति, दर्शन, श्रवण आदि के साधन भी प्रायः सभी को एक समान ही मिले हैं । इनके द्वारा मनुष्य यदि चाहता तो आत्म-विकास कर सकता था, पर उसने किया कहाँ ? सब कुछ देखते हुये भी मनुष्य अज्ञान बना रहा । घटनायें कई बार घटीं, घटती रहती हैं पर उनसे कभी विचार करना नहीं चाहा । इसी कारण वह अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर उठ भी नहीं सका ।

लोग कहा करते हैं कि जीव जब माता के गर्भ में बन्दी की-सी स्थिति में बड़ा होता है तब परमात्मा से अनेक प्रकार की विनती करता है । वह चाहता है कि इस जन्म-मरण के फन्दे से जितनी जल्दी छुटकारा मिले, बन्धन मुक्ति मिले उतना ही अच्छा है । इसके लिये वह तरह-तरह की प्रार्थनायें करता है किन्तु जन्म लेने के बाद इस संसार की हवा लगते ही वह सब भूल जाता है और फिर वही शिश्नोदर परायण जीवन जीने में लग जाता है ।

लोगों की भूल यह है कि वे अपने आप को ईश्वर का पुत्र होना स्वीकार करना नहीं चाहते । विज्ञान का सहारा लेकर लोग प्रत्यक्षवाद की दुहाई देते हैं किन्तु यह खुला हुआ संसार क्या कम प्रत्यक्ष है । मृत्यु जन्म की घटनायें कम प्रत्यक्ष हैं ? जन्म जरा और यौवन का पाना और खो देना भी किसी को विचार प्रदान नहीं कर सकता क्या ?

ईश्वर का पुत्र होने के नाते मनुष्य असीम आध्यात्मिक शक्तियों और दैवी सम्पदाओं का स्वामी बन सकता है किन्तु वह अपने को इस स्थिति वाला मानता कब है ? अपनी इस दृष्टता के कारण वह मनुष्योचित आचार से भी पतित होकर दुष्कर्म करता है । अपने स्वार्थ के लिए औरों के अधिकारों का अपहरण करता है । खुद का पेट भरे दुसरे चाहें भूख से मर जायें,अपना घर भर जाये दूसरे चाहें कानी कौड़ी के लिये तरसते रहें । इतना ही नहीं वह अपने से गई-गुजरी स्थिति वालों के साथ पैशाचिक उत्पीड़न करता है, दूसरों का खून पीता और अट्टाहस करता है । ऐसे दुष्ट पुत्र को परमात्मा अपनी शक्तियाँ देता कैसे ? उसे तो दण्ड ही मिलना चाहिये था और वही मिलता है ।

स्वार्थ और संकीर्णता की दुष्प्रवृत्तियों के रहते हुए मनुष्य परमात्मा का उत्तराधिकारी कैसे बन सकता है ? उसे चाहिये था कि वह पैतृक गुणों को आधार मानकर चलता और अपने आप को ईश्वर का पुत्र होना स्वीकार कर ईश्वरीय आदेशों का पालन करता । ईश्वर शक्ति का स्रोत है उससे सम्बन्ध स्थापित करता तो मनुष्य का जीवन, शक्ति सम्पन्न हो जाता । परमात्मा की विशेषतायें उसमें भी परिलक्षित होतीं ।

हमारा शाश्वत स्वरूप पीछे पड़ गया है और हम अपने आप को मनुष्य का शरीर मान बैठे हैं, इसीलिये शारीरिक सुखों तक ही सीमित भी हैं । शरीर में इन्द्रियों के सुख हैं सो मनुष्य उन्हें भोगने का हर घड़ी इच्छुक बना रहता है । सुख की इस इच्छा में वह अपने विज्ञानमय स्वरूप को भूल जाता है । जब तक शरीर रूपी साधन अपनी प्रौढ़ अवस्था में रहता है तब तक भोगों की आसक्ति में पड़े रहते हैं और इस बीच अपनी असफलता का दोष औरों के मत्थे मढ़ना सीख जाते हैं और इस तरह सन्तोष करना चाहते हैं पर शाश्वत नियम कभी बदलते नहीं । समय पर वृद्धावस्था आनी ही थी, शरीर दुर्बल पड़ना ही था, मौत को आना ही था, उस समय न किसी का दोष देते बनता है न कुछ किये होता है । दुःख की स्थिति में अज्ञान की स्थिति में वह मर जाता है और बार-बार इसी चक्कर में पड़ा दुःख भोगता रहता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

## ३.२४ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

परमात्मा की सृष्टि में सुख ही सुख है । दु:ख का नाम भी नहीं है पर सारे फिसाद की जड़ यह है कि लोग अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना नहीं चाहते । बेटा अपने धनी बाप से बिछुड़ गया और अपने आप को निर्धन की-सी स्थिति में पड़ा हुआ अनुभव करता है । उसका शरीर, प्राण और मन सब अस्त-व्यस्त है क्योंकि वह जानता भी नहीं कि उसका बाप कितना व्यवस्थित, कितना विकसित और कितना विशाल है । अपने अमर स्वरूप को मनुष्य पहचान जाय तो यह विशेषतायें उसमें भी तत्काल परिलक्षित होने लगें ।

दुधारू गाय की बछिया भी दुधारू होती है । मीठे आम की नस्ल में उत्पन्न किया हुआ आम भी उसी गुण वाला होता है । सन्तरे के पेड़ में नीबू के फल नहीं लगते । अपने अमर स्वरूप में मनुष्य भी ईश्वरीय गुणों से ओत-प्रोत है किन्तु उसकी यह महानता आज्ञानता के अन्धकार में छिपी हुई है । मनुष्य अपने पिता परमात्मा के गुण, ऐश्वर्य और वैभव के अनुरूप अपना जीवन क्रम बनाता तो उसकी शक्तियाँ भी छिपी हुई न रहतीं और वह भी अपने आप को अपने पिता के सदृश ही सत्-चित् और आनन्द रूप में पाता ।

आप अपने आप को रक्त, माँस, अस्थि, मज्जा, मेदे, आदि से बना हुआ क्षुद्र शरीर मत मानिये । आप आत्मा हैं । इस तत्त्व को भली भाँति समझ लें । आत्मा अपने अमरत्व को पहचानने के लिये ही मनुष्य शरीर में अवतरित हुई हैं । उसे इस उद्देश्य को पूरा करना ही चाहिये । अमरत्व का आनन्द लूटना ही चाहिये । इस उद्देश्य के लिये वह अग्रसर हो तो सचमुच उसका यह अलभ्य अवसर पाना भी सार्थक हो ।



# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


# अपूर्णता से पूर्णता की ओर

भावना के आधार पर पत्थर में भगवान प्रकट होते हैं । इस जड़ जगत् में चेतन का साधारण स्वरूप तो वह है जिसके अनुसार जीवन जन्मते मरते, सोते, खाते और अपनी यात्रा पूरी करते हैं, पर विशिष्ट स्वरूप भावना में ही सन्निहित है । बाहर से देखने में मनुष्य, देवता और असुर एक-सी ही शकल सूरत के होते हैं पर उनका भीतरी स्वरूप एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होने के कारण उनका आचरण एवं व्यक्तित्त्व उसी के अनुसार ढल जाता है ।

बाह्य जीवन में मनुष्य जैसा भी कुछ दीखता है वस्तुत: वह उसके आन्तरिक स्वरूप का प्रतिबिम्ब मात्र ही होता है । मोटर किस दिशा में दौड़ रही है । इसमें श्रेय मोटर का नहीं ड्राइवर की इच्छा का है । वह चाहे तो क्षण भर में उसे मोड़ कर विपरीत दिशा में वापिस भी लौट सकता है । इसी प्रकार जीवन का बाहरी ढर्रा आज जिस प्रकार का चल रहा है कल उसमें भारी परिवर्तन भी हो सकता है और वह परिवर्तन इतना बड़ा होना भी सम्भव है कि उसे आश्चर्य जैसा देखा या माना जाये ।

बाल्मीकि और अंगुलिमाल जैसे भंयकर डाकू क्षण भर में परिवर्तित होकर इतिहास प्रसिद्ध सन्त बन गये । गणिका और अम्बपाली जैसी वाराङ्गनाओं को सती साध्वी का प्रात: स्मरणीय स्वरूप ग्रहण करते देर न लगी । विश्वामित्र और भतृहरि जैसे विलासी राजा उच्चकोटि के योगी बन गये । नृशंस अशोक बौद्ध धर्म का महान् प्रचारक बना । तुलसीदास और सूरदास की कामुकता का भक्ति-भावना में परिणत हो जाना प्रसिद्ध है । विशिष्ट लोगों के इस प्रकार के असंख्य चरित्र इतिहास के पृष्ठों पर पढ़े जा सकते हैं । छोटी श्रेणी में छोटे-मोटे आश्चर्यजनक परिवर्तन नित्य ही देखने को मिल सकते हैं । इससे स्पष्ट है कि जीवन का बाहरी ढर्रा जो चिर प्रयत्न से बना हुआ होता है, विचारों में भावनाओं में परिवर्तन आते ही बदल जाता है ।

मित्र को शत्रु बनते, शत्रु को मित्र रूप में परिणित होते, दुष्ट को सन्त बनते, संत को दुष्टता पर उतरते, कंजूस को उदार, उदार को कंजूस, विषयी को तपस्वी, तपस्वी को विषयी बनते देर नहीं लगती । आलसी उद्योगी बनते हैं और उद्योगी आलस्यग्रस्त होकर दिन बिताते हैं । दुर्गुणियों में सद्गुण बढ़ते और सद्गुणी में दुर्गुण उपजते देर नहीं लगती । यह जादू जैसे हेर-फेर आये दिनों मनुष्यों के जीवनों में होते हैं । इसका एकमात्र कारण इतना ही है कि उनकी विचारधारा बदल गई, भावनाओं में परिवर्तन हो गया । भीतरी आस्थाओं, विश्वासों, मान्यताओं एवं आकांक्षाओं में यदि थोड़ा हेर-फेर होता है तो उसकी छाया बाह्य जीवन में तुरन्त दिखाई देने लगती है ।

संसार का जो भी भला-बुरा स्वरूप हमें दृष्टिगोचर हो रहा है, समाज में जो कुछ भी शुभ-अशुभ दिखाई पड़ रहा है, व्यक्ति के जीवन में जो कुछ उत्कृष्ट-निकृष्ट है उसका मूल कारण उसकी अन्त:स्थिति ही होती है । धनी, निर्धन, स्वस्थ, नीरोग, अकाल मृत्यु, दीर्घ जीवन, सन्त-असन्त, मूर्ख-विद्वान्, घृणित प्रतिष्ठित, सफल-असफल का बाहरी अन्तर देखकर उसके व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन किया जाता है । पर लोग यह भूल जाते हैं कि यह बाहरी भली-बुरी परिस्थितियाँ और कुछ नहीं मनुष्य के मनोबल, आस्था और अन्त: प्रेरणाओं की प्रतीक हैं । भाग्य भी यदि कभी कुछ करता होगा तो निश्चय ही उसे पहले मनुष्य की मनोरुचि में ही प्रवेश करना पड़ता होगा । जिसकी अन्त: गतिविधियाँ सही दिशा में चलने लगीं उसके लिए अभीष्ट दिशा में सफलता ही मिलने वाली है किन्तु जिसका मानसिक स्तर चंचलता, अवसाद, अविश्वास, आलस, आवेश, दैन्य आदि दोषों से दूषित हो रहा है, उसके लिए अच्छी परिस्थितियाँ और अच्छे साधन उपलब्ध होने पर भी दुर्गति का ही सामना करना पड़ेगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



सौभाग्य और दुर्भाग्य यों दैवी अनुग्रह एवं कोष का प्रारब्ध भागों का परिणाम दिखाई पड़ता है, पर गम्भीरता से विचार करने पर इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि तत्त्व केवल हमारी आन्तरिक उत्कृष्ट और निकृष्ट परिस्थितियाँ का ही परिणाम है । यदा-कदा अपवाद स्वरूप कभी-कभी इसमें ऐसे विपरीत उदाहरण भी देखे जाते हैं जब सुव्यवस्थित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति भी आपत्तियों में फँसते और अस्त-व्यस्त लोग मौज मारते रहते हैं । इसमें भी उनका कोई गुप्त दोष ही कारण रहता है । अच्छे समझे जाने वाले व्यक्ति अधिकांश अच्छाइयों के होते हुए भी कुछ दोष अपने में छिपाये रहते हैं, वे दोष भी अपनी विकृत्तियाँ तो उत्पन्न करेंगे ही । समझाा यह जाता है कि यह आपत्ति अच्छाइयों के कारण आई, पर वस्तुतः वह उनकी किन्हीं भूलों एवं त्रुटियों का ही परिणाम होता है । इसी प्रकार कई बुरे समझे जाने वाले व्यक्ति भी कुछ लाभ एवं सफलतायें उठाते हैं । वह भी उनकी किन्हीं अच्छाइयों का ही प्रतिफल होता है ।

सत्यवादी और ब्रह्मचारी व्यक्ति यदि क्रोधी स्वभाव का है तो उसके प्रति लोग विरोध एवं द्वेष रख रहे होंगे । सत्यवादिता का इसके लिए दोष नहीं दिया जाना चाहिए । इसी प्रकार कोई डाकू लूट का माल ले आता है तो इसमें उसके साहस को ही श्रेय मिलेगा । सत्यवादिता का शुभ और डकैती का अशुभ फल तो समयानुसार उन्हें मिलेगा ही, पर सज्जन में जो छोटा दोष और दुर्जन में जो थोड़ा गुण था उसका भी तो बुरा-भला फल उन्हें मिलना चाहिए । यह कहना उचित नहीं कि डकैती में धन मिलता है । डकैती तो समाज में घृणा, परलोक में नरक और राज-दण्ड में जेल का ही परिणाम उत्पन्न कर सकती है । जो लाभ मिला वह तो उसके निरोग शरीर, मनोबल, दुस्साहस, सर्तकता, मुस्तैदी, निशानेबाजी चतुरता आदि अनेक गुणों का ही प्रतिफल मात्र था ।

यह कहना उचित नहीं कि इस कलियुग में सज्जन घाटे में और दुर्जन लाभ में रहते हैं सनातन नियमों में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता । सत्य और तथ्य देश-काल पात्र का अन्तर किये बिना सदा सुस्थिर और अक्षुण्ण ही रहते हैं । सन्मार्ग पर चलने वाले की सद्गति और कुमार्ग पर चलने वाले की दुर्गति होने की सचाई में कभी भी किसी प्रकार भी अन्तर नहीं आ सकता । कलियुग-सतयुग की कोई बाधा इन सत्यों को झुठला नहीं सकती है । सूर्य सदा से गर्मी और प्रकाश का केन्द्र रहा है । जल सदा ही प्रवाही और शीतल माना जाता है । परिस्थितिवश थोड़ा अन्तर कभी पड़ जाय यह बात दूसरी है पर उनके मूल स्वरूप में स्थायी अन्तर नहीं आ सकता । इसी प्रकार श्रेष्ठता के सत्परिणाम और दुष्टता के दुष्परिणामों के अतिरिक्त और किसी भिन्नता की कल्पना भी नहीं की जा सकती । यह अटल तथ्य सूर्य और चन्द्रमा की तरह अपने-अपने स्थान पर आदिम बने रहेंगे ।

अध्यात्म का मूल्यांकन किसी कर्मकाण्ड, आवरण, आडम्बर या दृश्य से नहीं किया जा सकता । वह तो विशुद्ध रूप से एक आन्तरिक स्थिति है, जिसकी विचारणा और मान्यता उच्च आदर्शों पर अवलम्बित है । वस्तुतः वही अध्यात्मवादी है जो स्वार्थ, लालच, वासना और विलास को पृथक् रखकर सोचता है । बाह्य परिस्थितियाँ इससे भिन्न प्रकार की भी देखी जाती है । कई ढोंगी धर्म-ध्वजी लोग दूसरों को ठगने के लिये धर्मात्मा का आडम्बर ओढ़े बैठे रहते हैं और उसी प्रदर्शन से भोले लोगों को ठगते, खाते रहते हैं । साधु का भेष धारण किये कितने ही दुरात्मा लोग धन और माल की लूट मचाते हैं । बेचारे सरल स्वभाव वाले व्यक्ति उनके आडम्बर को ही साधुता का प्रमाण मानकर अपनी गाँठ काटते रहते हैं ।

इसी तरह ऐसा भी देखा जाता है कि साधारण गृहस्थ जैसा कार्य क्रम अपनाये हुए सादा और सरल जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति अत्यन्त उच्चकोटि की भूमिका में जाग्रत रहते हुए सन्त, ऋषि, महामानव, देवदूत, जीवन-मुक्त एवं नर-नारायण जैसा व्यक्तित्व बनाये रहने में समर्थ होते हैं । कई व्यक्तियों को छोटी-सी सरल पूजा-विधि उत्कृष्ट भावनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण महान् तपश्चर्या जैसा लाभ देती है और कई

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कष्टसाध्य योगाभ्यास, करने वाले विरक्त वनवासी भी भावना के अभाव में केवल लकीर ही पीटते रहते हैं । भूसा कूटने की तरह उनके हाथ लगता कुछ नहीं । कर्मकाण्ड की उपयोगिता तभी है जब उसके साथ भावना का समुचित सम्मिश्रिण हो, इसके बिना वह सारा क्रिया-कलाप एक विडम्बना मात्र बनकर रह जाता है ।

गुरुजनों के श्रद्धापूर्वक चरण-स्पर्श और लकीर पीटने की तरह पैर छू लेने की क्रिया समान होते हुए भी उसका प्रतिफल आकाश पाताल जैसा भिन्न होता है । गंगा स्नान, देव पूजन, श्रद्धा, दान, पुण्य, व्रत, उपवास, जप, तप हवन, तर्पण, त्यौहार, संस्कार आदि धर्म कृत्यों के साथ जितनी उच्चस्तरीय भावना जुड़ी होगी उसी अनुपात से उनका शुभ संस्कार अन्तःकरण पर जमेगा और आत्मिक विकास में यह क्रियायें उतनी ही सहायक होंगी । यदि बेगार भुगतने की तरह एवं क्रीड़ा कौतुक या चिह्न पूजा की भाँति इन्हें निपटाया जाये तो दूसरों की दृष्टि में धर्मात्मा समझे जाने के मिथ्या दोष का लाभ भले ही मिल जाय वस्तुतः इनसे कोई आध्यात्मिक प्रयोजन सिद्धि न होगी ।

'अध्यात्म' की एक शब्द में यदि व्याख्या की जाय तो उसे 'उत्कृष्ट भावना' कहा जा सकता है । जिसके मस्तिष्क, मन, अन्तःकरण में उच्च आदर्शवादी भावनायें उठती रहती हैं, जो अपना जीवन आदर्श की दिशा में मोड़ रहा है, उसे अध्यात्मवादी कहा जा सकता है । शुभ कर्म इसके लिए एक श्रेष्ठ साधन है । उनके माध्यम से भावनायें कार्यान्वित होने पर संस्कार रूप धारण करती हैं और स्वभाव से सम्मिलित होकर मनोभूमि में परिपक्वता एवं स्थिरता का रूप ग्रहण करती हैं । इसलिए शुभ कर्म अध्यात्म की प्राप्ति के लिए एक आवश्यक अंग माने गये हैं । धर्म कृत्यों की प्रशंसा एवं उपयोगिता इसी दृष्टि से है । पर यदि शुभ कर्म परम्परा की पूर्ति या भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाय तो वह आध्यात्मिक प्रगति में विशेष सहायक न हो सकेगा । यों शुभ कर्मों के सहारे ही आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग खुलता है पर यह स्मरणीय है कि भावनाओं के जागरण की उपेक्षा की गई, उनका अभाव बना रहा तो फिर बड़े-बड़े कर्मकाण्ड भी जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिये कुछ विशेष सहायक न हो सकेंगे ।

# जीवन की श्रेष्ठता और उसका सदुपयोग

मनुष्य निस्सन्देह इस सृष्टि की सबसे बड़ी विभूति है । कल्पना कीजिये यह मानवीय प्रतिभा एवं बुद्धिमत्ता यदि इस धरती पर न रही होती, दूसरे वन्य पशुओं की तरह यदि मनुष्य भी बुद्धिरहित होता तो बन्दरों और वनमानुषों की तरह वह अपना निर्वाह तो किसी प्रकार कर लेता, पर संसार ऐसा ही ऊबड़-खाबड़ पड़ा रहता जैसा कि सृष्टि के आदि में था । सर्वत्र, नदी, नाले, गड्ढे, पर्वत, जंगल, बीहड़ ही दृष्टिगोचर होते । सुनसान, डरावना, निरुद्देश्य और कुरूप वातावरण बना रहता । जिन ग्रह-नक्षत्रों में बुद्धि रहित प्राणी रहते होंगे उनकी नीरस स्थिति के साथ जब मानवीय बुद्धिमत्ता से सुसज्जित इस धरती की तुलना करते हैं तो लगता है कि हम उतनी महत्त्वपूर्ण स्थिति में माने जा सकते हैं जितना कि हम अपने लोक की अपेक्षा स्वर्ग लोक को श्रेष्ठ मानते हैं ।

आज का उपयोग कृषि, पशुपालन, गृह-निर्माण, वस्त्र, वस्तु, विनिमय, धन, विवाह परिवार पद्धति, शासन, समाज रचना, धर्म कर्त्तव्य, नीति सदाचार, ईश्वर, भाषण, लेखन आदि की प्रक्रियाओं का आविष्कार करके मनुष्य ने अपनी स्थिति को दूसरे जीवों की तुलना में अत्यन्त उच्च एवं महत्त्वपूर्ण दर्जे पर पहुँचाया है । विकास द्वारा उन्नति करके तो उसने अपनी जानकारी एवं सुविधाओं को इतना बढ़ा लिया है कि आदिम-युग का मनुष्य यदि उसे आकर देखे तो आश्चर्य से चकित हुए बिना न रहे । सड़कें, सवारी, रेल, मोटर, जहाज आदि द्वारा जल, थल, नभ में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करना उसके लिये सरल हो गया है । द्रुतगामी जलचरों, थलचरों और नभचरों को जो सुविधायें प्राप्त हैं उनसे असंख्य गुनी सुविधायें मनुष्य ने अपने बुद्धिबल से प्राप्त कर ली

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं । ज्योतिष, चिकित्सा, शिल्प, उद्योग, शस्त्रास्त्र, शिक्षा, संगीत, कला, शिल्प, मशीनें, तार, रेडियो, बिजली, मुद्रण, बैंक आदि अगणित प्रकार के आविष्कारों ने उसे इतनी सुविधायें प्रदान की हैं कि आदिम स्थिति की तुलना से आज की स्थिति का अन्तर जमीन-आसमान जैसा दिखाई पड़ता है ।

दूसरे जीव-जन्तुओं की आँखों से यदि मनुष्य की स्थिति का अवलोकन किया जाये तो वैसी ही कल्पना कर सकते हैं । जैसी कि हम देवताओं के बारे में करते हैं । हम अपने जीवन में जिन अभावों का अनुभव करते हैं उनकी पूर्ति कल्पना स्वर्गस्थ देवताओं में करते रहते हैं । अपनी असंख्यों कामनायें अधूरी रहती हैं, प्रयत्न करने पर भी असफलता एवं असन्तोष के अवसर सामने आते ही रहते हैं । यह अभाव खटकते हैं । स्वर्ग के बारे में हम सोचते हैं कि वहाँ हर इच्छा को तत्काल पूरा करने वाला कल्पवृक्ष मौजूद है । उसकी सहायता से जो कुछ इच्छा करें वह तुरन्त पूरी हो सकती है । देवताओं को यह लाभ प्राप्त है ही हमें भी होंगे, यह सोचकर स्वर्ग प्राप्ति के लिए नाना प्रयत्न किये जाते रहते हैं । सृष्टि के दूसरे जीव अपने अभावों और मनुष्य के सुख-साधनों को देखते हुए ऐसी ही आकांक्षा रखते होंगे कि हमें मनुष्य जैसी सुविधा मिल सके तो आनन्द की सीमा न रहे । संसार के अन्य जीव शारीरिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते, उन्हें निर्वाह की समस्या हल करने के लिए सतत प्रयत्न करना पड़ता है । कठिनाई से ही वे शरीर रक्षा जितनी सफलता प्राप्त कर पाते हैं । ऋतुओं का प्रभाव आहार की न्यूनता, अपने से सबलों का आक्रमण उन्हें सदा कष्टमय स्थिति में डाले रहता है । मानसिक सुविधाओं का तो प्रश्न ही नहीं । बुद्धि के अभाव में प्रगति, अन्वेषण, विचारणा, सहयोग, व्यवस्था, उत्पादन जैसी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में तो वे कुछ कर ही नहीं पाते । फलस्वरूप गया-गुजरा जीवन ही उन्हें जीना पड़ता है । मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए दीन-हीन परिस्थिति वाले व्यक्ति को भी जो सुविधायें रहती हैं वे अन्य योनियों में श्रेष्ठ माने जाने वाले सिंह, हाथी आदि को भी प्राप्त नहीं है ।

संसार को बहुत ही सुन्दर, सुसज्जित और व्यवस्थित बनाने में मानव प्राणी की बुद्धिमत्ता को ही सारा श्रेय प्राप्त है । विज्ञान की उन्नति करके उसने सुखोपभोग की प्रचुर सामग्री उत्पन्न की है और विचार-विज्ञान का विकास करके भावना क्षेत्र की एक नई दुनिया का ही सृजन कर लिया है । प्रेम, सेवा, करुणा, मैत्री, त्याग, संयम, धर्म, उपासना जैसा उद्दात्त, आकांक्षा या कल्पना, वासना, विलासिता, मनोरंजन, शृंगार, सुसज्जा, सौंदर्य, संगीत,नृत्य-विनोद, कविता, साहित्य क्रीड़ा जैसा कलात्मक और क्रोध, संघर्ष, चिन्ता, द्वेष, शोक, प्रतिशोध, भय जैसी निकृष्ट मनोवृत्तियों का एक पूरा संसार ही मनुष्य ने रच डाला है । वह उसमें विचरण करते हुए एक नई दुनिया का ही बासी बना रहता है । यह दुनिया पशु-पक्षियों के लिए सर्वथा अविज्ञात है । इस क्षेत्र में उनका प्रवेश नगण्य ही होता है । भावनात्मक सूक्ष्म ज्ञान की रचना मनुष्य की प्रतिभा का अत्यधिक अद्‌भुत चमत्कार है । इस कल्पना जगत् के सुख-दुख इतने संवेदनशील हैं कि स्थूल जगत के भाव-अभाव उनकी तुलना में तुच्छ गिने जा सकते हैं । मनुष्य की रची हुई भाव-सृष्टि कैसी विलक्षण है उस पर विचार करने से यही मानना पड़ता है कि मानव प्राणी निस्सन्देह इस सृष्टि की विभूति है । उनका स्थान इस संसार में सर्वोपरि है ।

सृष्टि की सर्वोपरि सत्ता का अधिपति होने के कारण उससे यही आशा की जानी चाहिये कि वह आनन्द से परिपूर्ण जीवन-यापन करेगा और उसके सम्पर्क में जो भी आयेंगे उन्हें आनन्द लाभ से लाभान्वित करेगा । इतने महत्त्व पूर्ण स्थान और पद पर पहुँचने के बाद निश्चय ही मनुष्य के कन्धे पर कुछ उत्तरदायित्व भी आते हैं । उचित यही है कि उन्हें निबाहा जाये । निम्नस्थिति में पड़े हुए जीव का उत्तरदायित्व उतना ही छोटा होता है । यदि वह न करने योग्य काम करे, न सोचने योग्य सोचे तो उसकी प्रतिक्रिया भी सीमित रहेगी । किन्तु यदि अधिक सशक्त जीव कुमार्ग पर चल पड़े तो उसकी हानि का क्षेत्र बहुत बढ़ जाता है । क्रुद्ध बकरा उतनी हानि नहीं करता जितनी उन्मत्त हाथी कर सकता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सत्य पर चलते हुए, अपने उत्तरदायित्वों को निबाहते हुए, सज्जनता का, विवेकशीलता का जो सुसंयत कार्यक्रम अपनाया जाता है वही श्रेयस्कर होता है । मनुष्य को जो स्थिति और सुविधा प्राप्त है उसका उपयोग यदि वह रचनात्मक विषय में करे तो उसकी प्रतिक्रिया निस्सन्देह बड़ी उपयोगी और आनन्दवर्धक होगी । जिस बुद्धि ने अन्य जीव-जन्तुओं की तुलना में इतना ऐश्वर्य इकट्ठा कर लिया, इतनी प्रगति कर ली, उसके लिए यह क्यों कठिन होना चाहिये कि शान्तिमय जीवन स्वयं जियें और दूसरों को जीने दें । इन बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग करके आज चारों ओर क्लेश और कलह का वातावरण बनाया जा रहा है । उन्मत्त हाथी जिस प्रकार दूर-दूर तक फसल को तोड़मरोड़ डालता है, कितनों ही को कुचल कर रख देता है, आज वैसी स्थिति मनुष्य की हो रही है । पागल कुत्ता और पागल सियार जिस प्रकार कितने ही लोगों को अकारण काट लेते हैं, दूसरों को मारते और स्वयं मरते हैं उसी प्रकार की गतिविधियाँ अपना कर मानव-प्राणी अपनी उच्च स्थिति के अनुरूप उपयोगिता सिद्ध करने की अपेक्षा पागलों जैसा आचरण कर रहा है । सुख-शान्ति के सारे साधन मौजूद रहते हुए भी दु:खदायक और शोक-सन्ताप की परिस्थितियाँ बनाये हुए हैं ।

विचारशीलता ही मनुष्य की एकमात्र निधि है । इसी आधार पर उसने उच्च स्थान प्राप्त किया है । इस शक्ति का यदि दुरुपयोग होने लगे तो जितना उत्थान हुआ है उतना ही पतन भी सम्भव है । जितने सुख-साधन जुटे हैं उतना ही क्लेश, कलह भी इकट्ठा हो सकता है । बुद्धि दुधारी तलवार है, वह सामने वाले को भी मार सकती है और अपने को काटने के लिये भी प्रयुक्त हो सकती है । उच्च स्थिति पर पहुँचा हुआ मनुष्य अपने उत्तरदायित्वों को न पहचाने, अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति आस्थावान् न रहे तो वह अपनी विशेष स्थिति के कारण संसार का भारी अहित करने और भारी अव्यवस्था उत्पन्न करने का कारण बन सकता है । आज यही तो हो रहा है ।

मनुष्य को अपने बड़प्पन का गौरव का अनुभव करना चाहिये । स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान का ध्यान रखना चाहिये । क्या सोचें और क्या करें इस सम्बन्ध में उसे बहुत ही दूरदर्शिता के आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्धारण करना चाहिए । हल्के और ओछे दृष्टिकोण को अपना कर यदि वह निकृष्ट कोटि का जीवन क्रम अपनाता है तो न केवल इस अलभ्य अवसर को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद उपलब्ध हुए नर तन को व्यर्थ गँवा देगा वरन् अपना भविष्य भी अन्धकारमय बना लेगा । जो बुद्धिमत्ता समस्त सृष्टि को चमत्कृत कर रही है वह अपने निज के जीवन का उचित कार्यक्रम निर्धारित करने में असफल रहे तो इसे एक दुर्भाग्य ही कहा जायेगा । विश्व के भाग्य का निर्माता मनुष्य यदि अपनी समस्या का हल करने के अवसर पर मूर्ख एवं अभागा सिद्ध हो तो इसे एक प्रवंचना ही कहा जायेगा ।

आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने बारे में भी सोचें, अपने लक्ष्य की भी चिन्ता करें । समस्त जीवों की तुलना में अधिक ऊँची स्थिति प्राप्त करके भी, अपार सुख-साधनों की उपलब्धियाँ प्रस्तुत रहने पर यदि हम दु:ख दारिद्रय से घिरे हैं, शोक-सन्ताप में डूबे हैं तो इसमें हमारी कोई भारी भूल ही कारण हो सकती है । उस भूल को जितनी जल्दी खोजना और हटाना सम्भव हो सके उतना ही हमारा कल्याण सम्भव होगा ।

## मनुष्य अपनी तुच्छता भी जाने

भगवान् कृष्ण ने मोहित-चित्त अर्जुन को उपदेश देना आरम्भ किया । एक-एक आध्यात्मिक तत्त्व की विशद और गूढ़ विवेचना की । उनके, संसार की नश्वरता, अनाशक्ति, ज्ञान, अज्ञान, श्रद्धा, संकल्प, विचार, विवेक, तप, साधना, राग, वैराग्य, निष्काम, कर्मयोग और आत्मा-परमात्मा की प्रमाणयुक्त विवेचना करने पर भी अर्जुन का मोह-भाव समाप्त न हुआ, आसक्ति न गई, अहंकार न मिटा, तो भगवान् को अपना अन्तिम अस्त्र

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उठाना पड़ा । अपने विराट् रूप का प्रदर्शन किया भगवान् ने । उनके विकराल रूप का दर्शन कर अर्जुन काँपने लगा । उसने आश्चर्य से देखा वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा सब उसी विराट् के नन्हें-नन्हें टुकड़े हैं । सारा संसार उन्हीं में समाया हुआ है । उनके भय से मृत्यु भी काँपती है, ग्रह-नक्षत्र एक स्थान पर रुकने से भय खाते हैं, दिक्पाल उनकी स्तुति करते हैं, उनका काल-उदर सम्पूर्ण प्राणियों के शरीरों को भक्षण करता चला जा रहा है । एक तिनका भी उनकी मर्जी के बिना हिलने-डुलने तक में असमर्थ है ।

परमात्मा के विराट् रूप का प्रदर्शन करने पर अर्जुन को अपनी लघुता का ज्ञान हुआ । उसने समझ लिया यह संसार पंचतत्त्वों के निर्माण और विनाश का खेल मात्र है, बादलों से बनते हुए विविध चित्रों के समान इस संसार का भी रूप परिवर्तित होता रहता है । शरीर, सुख, भोग, वासनायें, तृष्णायें, आकांक्षायें सब तुच्छ और क्षणिक हैं । सत्य तो केवल परमात्मा है । उसकी अभिन्न सत्ता होने के नाते आत्मा भी चिरन्तन, अजर, अमर अक्षर और अविनाशी है । उसे ही जानने का प्रयत्न करना चाहिये । जो बात भगवान् कृष्ण के उपदेश से अर्जुन की समझ में नहीं आई उसे परमात्मा के विश्व-रूप ने उसे समझा दिया । विशाल ब्रह्माण्ड के साथ अपनी तुलना करने पर अपनी लघुता का, शारीरिक नश्वरता का पार्थिव सुखों की अनित्यता का बोध हो जाता है । मनुष्य को अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती है ।

रामायण में भी ऐसा ही एक प्रसंग आता है । वह घटना कागभुशुण्डि के सम्मोह की है । तब भगवान् राम ने अपने विराट् रूप की झांकी दी थी । परमात्मा के उदर में ही अगणित विशालकाय ब्रह्माण्डों को उनमें स्थित नदी, पहाड़, समुद्र आदि को देखकर ही उन्हें अनुमान हुआ था कि मनुष्य कितना असमर्थ, अशक्त और छोटा सा जीव है उसमें यदि कुछ शक्ति विशेषता और अमरता है तो वह उसके प्राण, मन और आत्मा के कारण ही है । उसमें कुछ प्राणियों से भिन्न विशेषतायें न रही होती तो इस विराट् विश्व में उसका अस्तित्त्व कीड़े-मकोड़े, भुनगों, मक्खियों, मच्छरों जैसा ही रहा होता । करोड़ों मन की तुलना में जो स्थान एक रत्ती का हो सकता है, विश्व की तुलना में मनुष्य उससे भी करोड़ों गुना छोटा ही है ।

अर्जुन और कागभुशुण्डि की तरह कौशल्या और यशोदा ने भी भगवान् के उस स्वरूप का दर्शन पाया है ऐसी कथायें रामायण, भागवत आदि में आती हैं । इन कथानकों द्वारा मनुष्य के वास्तविक रूप का दिग्दर्शन कराने का कवियों, शास्त्रकारों ने बड़ा ही कलापूर्ण सच्चा और उद्देश्यपूर्ण विवेचन किया है । इससे उनकी बुद्धि की सूक्ष्म ग्रहणशीलता का ही पता चलता है । पर यह घटना केवल इन्हीं दो-चार व्यक्तियों के साथ घटित हुई हो, अन्यों को ईश्वर के इस विराट् रूप के दर्शन न हुए हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता । इस विराट् ब्रह्माण्ड की झाँकी हर क्षण, प्रत्येक मनुष्य को होती रहती है किन्तु वह बाह्य जगत में, भौतिकता में कामनाओं, तृष्णाओं और भोग-विलासों में इस तरह ग्रस्त है कि अर्जुन, कागभुशुण्डि, नारद, गरुड़ यशोदा और कौशल्या की तरह उनकी विवेक वाली आँख खुलती नहीं । लोग देखकर भी अनदेखी करते हैं । विराट् स्वरूप पर चिन्तन, मनन और उसके प्रभाव आदि पर कुछ भी ध्यान न देकर केवल भोगों की काम-क्रीड़ा में लगे रहते हैं ।

यह धरती इतनी बड़ी है कि यदि कोई इस पर चलना प्रारम्भ करे तो सम्भवत: जीवन समाप्त हो जाय और वह इसका ओर-छोर न पा सके । यह पृथ्वी विराट् सौर-मण्डल का एक अंश मानी गई है । सौर-मण्डल के दो खरब नक्षत्रों में अकेला सूर्य ही पृथ्वी से १३ लाख गुना है, 'अण्टलारि' तारे के सम्बन्ध में कहा जाता है, उसमें २१००० लाख पृथ्वियाँ समा जायँ फिर भी काफी जगह बाकी बची रहे । शुक्र में लोगों ने जीवन होने की कल्पना की है । मंगल ग्रह की यात्रा की तैयारियाँ रूस और अमेरिका में चल रही हैं, इस यात्रा में चन्द्रमा एक स्टेशन के रूप में प्रयुक्त होगा । यह पृथ्वी के आस-पास के ग्रहों का एक छोटा-सा रूप है । इससे भी विशद अन्यत्र विद्यमान है, जिसकी कल्पना भी मनुष्य के वश की बात नहीं है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


मनुष्य की आँखों में जो लेन्स लगा है उसकी शक्ति इतनी बड़ी नहीं है कि आकाश में दिखाई देने वाले प्रत्येक नक्षत्र को उतना ही बड़ा देख सके, जितने बड़े वे हैं । उनका बिल्कुल छोटा-सा रूप इस पृथ्वी पर दिखाई देता है किन्तु बुद्धि, बल और गणित के द्वारा जो आँकड़े प्राप्त होते हैं उनसे इन नक्षत्रों के पूरे परिमाण का पता चलता है । एक-एक ग्रह-नक्षत्र इतना बड़ा है कि इनकी नाप तौल, दूरी, लम्बाई और चौड़ाई जानना तो कठिन ही है । इस दिशा में वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये और ' 'त्रिकोण पद्धति' द्वारा पदार्थों की दूरी निकालना आसान हो गया । पर अमल में यह सिद्धान्त भी कठिन निकला । चन्द्रमा की दूरी निकालना हो तो चार हजार मील की आधार रेखा चाहिए, तारों को दूरी की पड़ताल करने के लिये साढ़े अठारह करोड़ मील की आधार रेखा की जरूरत पड़ेगी जो इस धरती में किसी तरह भी सम्भव न होगी । पृथ्वी जिस कक्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है, उसके आमने-सामने के दो बिन्दुओं की दूरी अठारह करोड़ मील होती है । इन दूरियों के औसत आदि निकाल कर विभिन्न शक्तियों की दूरबीनों और खगोल यन्त्रों द्वारा यह कठिनाई दूर कर ली गई है किन्तु यह दूरियाँ इतनी बड़ी हैं कि उनको अंकित करने के लिए गिनती भी थक जाये । बताया जाता है कि सूर्य के बाद जो दूसरा तारा पृथ्वी के सबसे नजदीक है, उसकी २,५०, ०० ०० ०० ०००० मील दूरी है । इससे आगे के नक्षत्रों की दूरी निकालना हो तो असंख्य शून्य लगते चले जायेंगे पर समस्या फिर भी हल न होगी ।

आकाश गंगा में जितने ग्रह-नक्षत्र और नीहारिकायें अपना स्थान घेरे हुए हैं, वह सिर्फ १ प्रतिशत स्थान में हैं शेष ९९ प्रतिशत स्थान शून्य है और साधारणतया एक तारे से दूसरे की दूरी कम से कम २५० ०० ०० ०० ०० ००० मील होती है । इनमें से कई नक्षत्र जोड़ी बनाकर कई ५-५, ६-६ के गुच्छकों में रहते हैं और सम्मिलित परिभ्रमण करते हैं । एक ऐसे काले तारे की खोज हुई है जिसका व्यास २३० ०० ०० ००० मील बताया जाता है । यह सूर्य से भी २० गुना बड़ा है ।

यह आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों के जीवन पर दृष्टि दौड़ाते हैं तो बुद्धि लड़खड़ाने लगती है । उसकी विशालता का अनुमान तक करने की शक्ति नहीं रह जाती है । भारतीय अध्यात्म ग्रन्थों में जो ब्रह्माण्ड का उल्लेख मिलता है वह और भी अधिक विस्मय पैदा करने वाला है । शास्त्रों के अनुसार सूर्य अपने उपग्रहों को लेकर कृत्तिका की ओर बढ़ रहा है, 'कृत्तिका' इसी तरह 'अभिजित' की ओर, इस तरह यह विशाल ब्रह्मांडव्यापी प्रक्रिया चल रही है, जिसकी कल्पना अर्जुन व कागभुशुण्डि की तरह ही डरा देने वाली है । मनुष्य का मन इन विलक्षणताओं को देखकर विस्मय से भर जाता है । तब उसे ज्ञान होता है कि वह इस विशाल सृष्टि की तुलना में कितना छोटा है, तुच्छ है ?

जितना विलक्षण यह संसार है, मनुष्य उस से कम नहीं है । पर उसकी सारी विशेषता आत्म-तत्त्व के कारण ही है । शरीर की सृष्टि से तो वह बिल्कुल तुच्छ, दीन-हीन और पतित है । शक्ति का स्वरूप उसकी आत्मा है, इसे ही जानने का प्रयत्न करना चाहिए । इसकी सत्यता का अनुमान अपनी तुलना इस विराट् जगत् के साथ करने में सहज ही हो जाती है ।

## सर्वांगीण विकास और उसका आधार

जीवन का विकास सभी दिशाओं में सन्तुलित रूप में होता रहे तो उसकी शोभा, प्रतिष्ठा बनती है । धन का महत्त्व कितना ही अधिक क्यों न हो केवल उसी का उपार्जन आनन्दमय परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं कर सकता । शिक्षा की महत्ता कितनी ही बड़ी क्यों न मानी जाये अन्य दिशा में यदि पिछड़ापन बना रहे तो वह पढ़ाई भी किस काम की ?

स्वास्थ्य की गणना उत्तम सुखों में की जाती है पर सब गुण में शून्य हो, केवल भैंसे की तरह शरीर ही हृष्ट-पुष्ट बना रहे तो भी उससे कितना प्रयोजन सधेगा ? किसी पेड़ को सारी शाखाएँ एक ही ओर झुकी रहें तो उसके टूट गिरने का खतरा रहेगा और कुरूपता भी दीखेगी । सुन्दर वृक्ष वे ही लगते हैं जो

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सब ओर समान रूप से फैले फूटे होते हैं । जीवन विकास के सम्बन्ध में यही बात लागू होती है ।

एक दिशा में विकसित जीवन किसी कला-कौशल के सीखने से, विशेष मनोयोग लगने से, संगति से, दूसरों की सहायता से या अन्य कारणों से भी हो सकता है । चिकित्सा, कला, संगीत, शिल्प जैसे गुण, प्रयत्न और पुरुषार्थ से मिल सकते हैं, पर समग्र विकास के लिए मानवीय सद्गुणों की ही अपेक्षा रहेगी । यदि व्यक्तित्व दोष, दूषणों से भरा हुआ है । सुसंतुलित विकास कभी भी सम्भव न हो सकेगा । एक दिशा में थोड़ा सफल दीखते हुए भी मनुष्य अन्य सभी दिशाओं में असफल बना रहेगा । एकांगी विकास से आनन्द एवं संतोष की परिस्थितियाँ किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकतीं ।

जिस प्रकार अच्छा बीज, उर्वर जमीन और उचित खाद पानी पाकर ठीक तरह बढ़ता और फलता-फूलता है, उसी तरह जीवन के खेत में सद्गुणों के बीज उचित-पुरुषार्थ की अनुकूलता परिस्थितियों का खाद पानी पाकर विभूतियों एवं समृद्धियों से पल्लवित, पुष्पित और फलित होते रहते हैं । दुर्गुणी व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियों के होते हुए भी दीनता एवं हीनता से ऊपर नहीं उठ पाते । दुर्भाग्य उन्हें जीवन सहचर की तरह हर जगह घेरे-घेरे ही फिरता रहता है । इसलिए जीवन विकास की बात सोचने के साथ ही हमें यह भी सोचना चाहिऐ कि व्यक्तित्व का सुसंतुलित निर्माण करने की दिशा में आवश्यक प्रयत्न किये जाते रहें ।

यह सोचना गलत है कि किसी भी तरीके से धन कमा लिया और मनमाना खर्च करने की सुविधा रहे तो बस फिर आनन्द ही आनन्द रहेगा । सच बात यह है कि दुर्गुणी व्यक्तियों के पास यदि धन बढ़े भी तो इससे उनके लिए अगणित समस्याएँ तथा चिन्ताएँ उत्पन्न होंगी । धन का सच्चा लाभ सदुपयोग से मिलता है और ऐसा सदुपयोग केवल सत्प्रकृति के व्यक्तियों से ही सम्भव होता है ।

आये दिन ऐसी घटनाएँ देखने और सुनने में आती रहती हैं कि धन सम्पत्ति की छीन झपट के प्रश्न को लेकर सम्पन्न परिवारों में फौजदारी, मुकदमेबाजी, शत्रुता एवं हत्या, डकैती तक की दुर्घटनाएँ घटित होती हैं लड़के कुपात्र निकल जाते हैं और जुआ, शराब, व्यभिचार एवं अनेक प्रकार के व्यसनों में पूर्वजों की कमाई को उड़ा डालते हैं । अत्यधिक कमाने की तृष्णा में संलग्न व्यक्ति समय-कुसमय का, आराम-विश्राम का ध्यान छोड़कर दिन रात बेतरह जुटे रहते हैं और स्वास्थ्य को खराब कर लेते हैं । लोभवश बेईमानी करके कितने ही व्यक्ति लोक-निन्दा और परलोक में पाप के भागी बनते हैं । इस प्रकार के अनेकों अनर्थ और दु:ख उन लोगों को सहन करने पड़ते हैं, जिनके पास धन तो है पर उसका सदुपयोग कर सकने लायक सद्बुद्धि नहीं है ।

कई व्यक्ति स्वल्प साधनों की सहायता से ही अपने मधुर स्वभाव, श्रम, पुरुषार्थ, उत्साह सूझ-बूझ और अध्यवसाय के द्वारा भारी उन्नति कर लेते हैं, किन्तु कितने ही ऐसे भी हैं जो भरपूर साधन-सुविधाओं के होते हुए भी आलस्य, प्रमाद, दीर्घ सूत्रता, लापरवाही, फिजूल खर्ची जैसे दोषों के कारण निरन्तर हानि उठाते चलते हैं और अन्त में दिवालिया हो जाते हैं । आज साधनों को बहुत महत्त्व दिया जाता है पर भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि साधनों का लाभ केवल उन्हें ही मिलेगा जिनमें आवश्यक मात्रा में सद्गुण रहे होंगे । बुरे लोग भी जो कुछ उन्नति कर पाते हैं उसमें भी अधिकांश श्रेय उन अच्छाइयों का रहता है जो बुरे लोगों में भी एक सीमा तक रही होती है ।

डाकू को जो सफलता मिलती है, उसमें सारा श्रेय उसकी दुष्टता या अनैतिकता को ही नहीं मिल सकता । उसमें जो साहस, धैर्य, तितीक्षा, सतर्कता, नीरोगता, संगठन जैसे थोड़े बहुत गुण रहते हैं, उन्हीं के बलबूते पर उसे लाभ मिलता है । यदि यह गुण न हों, कोई डाकू, डरपोक, अधीर, चिन्तित, आरामतलब व आलसी, लापरवाह, रोगी पृथक्तावादी हो तो वह बहुत जल्दी विपत्ति में फँस जायेगा । केवल अनीति पर उतारू होने से ही किसी को लाभदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती । चाहे सज्जन हो या दुर्जन, भले या बुरे किसी भी कार्य को सम्पन्न करने में हर मनुष्य को सुसंतुलित व्यक्ति की आवश्यकता होती है । जिसने अपने को जितना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


गुणवान् बना लिया होगा वह अपने लक्ष्य की ओर उतना ही अग्रसर बन सका होगा ।

धन, शिक्षा, शिल्प, कला, कौशल, पद, यश आदि विभूतियों का उपार्जन मन को लक्ष्य में तत्परता पूर्वक संलग्न करने, परिश्रम से प्रेम करने, समय फालतू न गँवाने, चित्त को अपने अभीष्ट विषय में लगाये रहने से ही सम्भव होता है । अपने अभीप्सित विषय पर जिसका जितना मन लगेगा, उसके लिए जितना श्रम किया जायेगा उतनी ही सफलता मिलेगी, परोपकार के श्रेष्ठ सत्कर्म कर सकना, यश और पुण्य कमाना भी उन्हीं के लिए सम्भव होता है जिनकी मनोभावनाएँ पूरी तरह उस लक्ष्य में तन्मय रहती हैं ।

ईश्वर प्राप्ति और आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति केवल वे लोग कर पाते हैं जो अपनी मनोभूमि को प्रयत्नपूर्वक दैवी गुणों से सुसज्जित और आसुरी वृत्तियों से रहित करने में प्राणपण से संलग्न होते हैं । जिन्होंने इस प्रकार आत्मनिग्रह की उपेक्षा की, दोष दुर्गुणों के सुधारने की उपेक्षा करके केवल थोड़ा पूजा पाठ करना ही पर्याप्त समझा उनके लिये उस महान लक्ष्य की प्राप्ति कभी सम्भव नहीं होती ।

कोई बड़ा नेतृत्व, पद या उत्तरदायित्व प्राप्त करने के इच्छुक तो सब रहते हैं पर उसे ठीक तरह सँभाल सकने की योग्यता किन्हीं विरलों में ही होती है । संयोगवश यदि कोई बड़ा उत्तरदायित्व मिल भी जाये तो आवश्यक गुण न रहने से ऐसे लोग अव्यवस्था फैलाते, हानि करते तथा आरोग्य सिद्ध होते हैं । जिनमें दूसरों की स्थिति आवश्यकता और रुचि समझने की क्षमता नहीं वे उनसे ठीक प्रकार काम भी नहीं ले सकते । अपने दुर्गुणों के कारण जो साथियों की दृष्टि में घृणास्पद, उपहास योग्य एवं उपेक्षणीय बना हुआ हो वह कैसे तो नियंत्रण रख सकेगा और कैसे काम ले सकेगा ? ऐसी दशा में मिला हुआ नेतृत्व असफल ही सिद्ध होगा ।

नम्रता और अहमन्यता यों देखने में स्वभाव की छोटी-छोटी भिन्नताएँ हैं पर इनके प्रतिफल महान् अन्तर प्रत्यन्तरों से भरे होते हैं । नम्र व्यक्ति किसी को कुछ दिए बिना भी केवल अपनी बाणी की मधुरता और व्यवहार की शिष्टता से ही दूसरों का मन जीत लेता है, परायों को अपना बना लेता है और प्रत्युत्तर में उसका स्नेह सहयोग पाकर सब प्रकार लाभान्वित रहता है किन्तु जिसका स्वभाव अहंकारी एवं कर्कश है वह उनसे मनोमालिन्य ही पाता है जिनके लिए उसने ठोस सहायता की थी ।

एक मन सहायता का महत्त्व एक तौले चुभने वाली बात कहने में नष्ट हो जाता है । कढ़ाई भरे दूध में जरा खटाई पड़ने पर उसका फटना निश्चित है । श्रम, त्याग और प्रयत्नपूर्वक प्राप्त की हुई सद्भावना थोड़े से अप्रिय व्यवहार से नष्ट हो जाती है । जिनके स्वभाव में अहंकार सम्मिलित हो गया है, वे अपने को सँभाल नहीं पाते । कुछ न कुछ चुभने वाला ही कहते रहते हैं । फलतः उनके मित्र घटते और शत्रु बढ़ते हैं ।

शत्रुता, द्वेष, मनोमालिन्य और लड़ाई-झगड़ों में वास्तविक कारण ३० फीसदी और स्वभाव जन्य दुर्बलताओं के कारण उत्पन्न हुई गलतफहमी ७० फीसदी होती हैं । यदि स्वभाव सज्जनता का है तो उनकी फीसदी कारणों का भी परस्पर मिल-जुल कर समाधान खोजा जा सकता है कोई मध्यस्थ भी समझौते का मार्ग ढूँढ सकता है । पर जहाँ स्वभाव सम्बन्धी दुर्बलताएँ भरी पड़ी हों वहाँ अकारण ही उत्तेजना, असहिष्णुता, तुनकमिजाजी और शंका संदेह की दृष्टि रहने से खटपट होती रहेगी । साधारण सी बातें तूल पकड़ती रहेंगी और लड़ाई-झगड़े का वातावरण बना रहेगा । जिन लोगों के साथ रहना और काम करना है उनसे तनाव रहने पर चित्त में खिन्नता ही रहती है । इस स्थिर खिन्नता का प्रभाव शरीर और मन पर बहुत बुरा पड़ता है, प्रगति में भारी अड़चन पैदा होती है । स्वभाव की यह छोटी-छोटी कमजोरियाँ सुविधा सम्पन्न जीवन का भी आनन्द नष्ट कर देती हैं ।

प्रगति के लिए जिस सूझ-बूझ की आवश्यकता पड़ती है उसका विकास तभी होता है जब मन शान्त और प्रसन्न रहे । संतुलित, निश्चित और प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति का मस्तिष्क ही किसी समस्या के हर पहलू को ठीक तरह सोच समझ सकता है और गम्भीर विवेचना के साथ किसी ठीक निष्कर्ष पर पहुँच सकता है । यदि मन क्षुब्ध, खिन्न और

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उत्तेजित रहेगा तो आवेश और अधीरता की स्थिति बनी रहेगी जिसमें किसी प्रश्न पर केवल एकांगी विचार कर सकना ही सम्भव होगा । अधूरे विचार के साथ किये गये निर्णय आमतौर से गलत सिद्ध होते हैं और उनके कार्यान्वित करने से हानि ही होती है । अच्छी सूझ-बूझ सबके लिए सम्भव हो सकती है । केवल इसके लिए अपने स्वभाव को धीर गम्भीर बनाना मात्र पर्याप्त होता है । जो अपने स्वभाव को सुधारने का, उसे सुसंस्कृत बनाने का प्रयत्न नहीं करते उन्हें अच्छी सूझ-बूझ के भी काम से वंचित रहना पड़ता है ।

बुरी आदतों का परिणाम उन बुरी प्रतिक्रियाओं के रूप में प्रस्तुत होता है जो चित्त को खिन्न करती हैं । खिन्न चित्त रहने वाले की तीन चौथाई शक्ति उस मानसिक सन्ताप से ही नष्ट हो जाती है । एक चौथाई से प्रगति के लिए कुछ ठीक से सोच सकना और जम कर कुछ ठोस काम कर सकना सम्भव नहीं होता । उन्नति की आकांक्षा करने मात्र से काम नहीं चल सकता, उसके लिए उचित साधन भी होने चाहिऐ । इन साधनों में सबसे बड़ा सबसे प्रमुख सबसे शक्तिशाली साधन है- ''मानसिक संतुलन और वह केवल उन्हें ही प्राप्त होता है जिनने अपने गुण-कर्म, स्वभाव का निर्माण सज्जनोचित्त रीति से सम्पन्न किया है ।''

प्रगति की दिशायें अनेक हैं, अनेक क्षेत्रों में जीवन बँटा हुआ है, पर उन सबका उचित विकास ऐसे स्वभाव की उपेक्षा रखता है जिसके कारण प्रतिकूलतायें अनुकूलताओं के रूप में परिवर्तित होती रहें । साधन सामग्री की आवश्यकता सभी लोग अनुभव करते हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए जो सम्भव होता है सो करते भी हैं । इस पर तथ्य की उपेक्षा ही होती रहती है कि सत्प्रवृत्तियों के फल-स्वरूप ही स्थायी सुख-शान्ति के साधन उपलब्ध होते हैं । जितना प्रयत्न बाह्य साधनों को जुटाने में किया जाता है उतना ही यदि आत्मनिर्माण के लिए भी किया जाने लगे तो प्रगति की संभावना हजारों गुनी अधिक बढ़ सकती है ।

जो भीतर होता है, वही बाहर प्रस्तुत रहता है । हम अपने अन्तःकरण को दैवी सम्पत्तियों से सुसज्जित करें तो कोई कारण नहीं कि बाह्य जीवन में सुख शान्ति श्री समृद्धि विभूति की प्रचुरता से वंचित रहना पड़े ।

## त्याग से जीवन मुक्त

त्याग संसार का सर्वोपरि धर्म है, जिस पर समस्त सृष्टि क्रम चल रहा है त्याग धरती का अमोघ विधान है । ''जो प्राप्त है उसे छोड़ते रहो और आगे का वरण करो ।'' यह त्याग मन्त्र संसार और यहाँ के पदार्थों को नित्य निरन्तर विकास तथा परिवर्तन की ओर अग्रसर करता आ रहा है । इसी से प्रेरित होकर संसार का प्रत्येक पदार्थ पद-पद पर त्याग का नैवेद्य चढ़ाता हुआ अपने विकास-पथ पर आगे बढ़ रहा है । पेड़-पौधे, पशु पक्षी तक भी किसी न किसी रूप में संसार की यज्ञशाला में अपने त्याग की आहुति देते रहते हैं । नदी, सरोवर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र कोई भी तो स्थिर नहीं है, प्रत्येक क्षण मे प्राप्त स्थिति का त्याग करके नवीन का वरण करते ही रहते हैं ।

संसार का नियम ही प्राप्त का त्याग करना और नवीन का वरण करते रहना है । इस नियम को जीवन का अंग बना कर जीवन पथ पर चलते रहने में ही मनुष्य का कल्याण निहित है । लेने और देने, पाने और छोड़ने के विश्व-नियम को आत्मसात् करने में ही व्यक्ति का विकास निहित है किन्तु जब मनुष्य सृष्टि के इन स्वरों में आवाज मिला कर नहीं गाता तो उसका जीवन गीत बेसुरा हो जाता है । लेने और देने की प्रक्रिया में मनुष्य सन्तुलन एवं सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता तो जीवन में विषम स्थिति पैदा हो जाती है क्योंकि यह सृष्टि के नियम के साथ की जाने वाली असंगतता है ।

जब हम कहते हैं ''नहीं छोड़ेगें'' '' यह हमारा है ।'' ''ऐसे ही रखेंगे ।'' ''ऐसे ही रहेंगे ।'' और संसार का नियम कहता है, ''जो प्राप्त किया है उसका त्याग करो, नवीन का वरण करो'' तो इन विरोधी प्रणालियों से मनुष्य का, जीवन सघर्ष का केन्द्र बन जाता है । एक ओर मनुष्य की सीमित सत्ता दूसरी ओर अमोघ विश्व-नियम, अन्ततः जल्दी ही मनुष्य को परास्त होना पड़ता है । जिसे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वह अपना बनाकर, अपनेपन की सीमा में संजोकर रखना चाहता है, उसे ही छीन लिया जाता है । जिसे मनुष्य छोड़ना नहीं चाहता उसे भी वरवश छोड़ना पड़ता है । धन, दौलत, ऐश्वर्य समृद्धि स्त्री-बेटे, सम्बन्धी जिन्हें मनुष्य अपने समझता है उन्हें छोड़ना पड़ता है और तो और यह देह जिसे वह अपनी मानकर चलता है, वह भी एक दिन विश्व-नियम के मृत्यु करों द्वारा छीन ली जाती है ।

प्राप्त का त्याग, लेकर देने का नियम, त्याग का विधान अपार शक्तिशाली है, यह सब पर लागू होता है । यह बात अलग है कि मनुष्य इसे कैसे अपनाता है ? स्वेच्छा से अथवा बरवश । इतना अवश्य है कि स्वेच्छा से किया जाने वाला त्याग मनुष्य को सन्तोष एवं शान्ति प्रदान करता है, तो बरवश कराये गये त्याग में उसे दुःख क्लान्ति, क्लेश का अनुभव होता है ।

वेद के तत्त्वदर्शी ऋषि ने कहा '' तेन त्यक्तेन भुँजीथा मागृधः ''

अर्थात्- '' हे मनुष्य ? तेरे पास जो कुछ है उनका त्याग करते रहना तथा जो सहज ही प्राप्त है, उसी को लेकर सन्तुष्ट रहना संग्रह मत करना लोभ न करना ।''

हाँ, तो इस विश्व नियम के स्वरों में स्वर मिला कर जीवन गीत गाने पर मनुष्य का जीवन एक मधुर गीत बन जाता है जिसमें मुक्ति, उल्लास, आनन्द, सुख, शान्ति की स्वर लहरियाँ गूँज उठती हैं । जिस तरह सामाजिक नियमों के अनुसार चलते रहने पर व्यक्ति अपने आप में स्वतन्त्र बन्धन रहित जीवन बिता सकता है उसी तरह विश्व नियम के अनुकूल चलने पर भी मनुष्य जीवन स्वाभाविक अधिकारों का पात्र बन जाता है । समाज के नियम का उल्लंघन करने पर मनुष्य जिस तरह दण्ड एवं यन्त्रणाओं का भागी बनता है, उसी तरह विश्व नियम के विरुद्ध चलने पर मनुष्य अपने आप में ही बन्धन, जड़ता, आत्मिक क्लेश, अशान्ति एवं असन्तोष का भागी बनता है ।

त्याग में मुक्ति है, स्वाधीनता है, और त्याग ही अन्य प्रकार की प्राप्ति का आधार है । नीड़ में आबद्ध पक्षी शावक जब उन्मुक्त हो आकाश और धरती के विशाल प्रांगण में निकल पड़ता है तो सीमित से असीमित, क्षुद्र से महान् को प्राप्त करता है तब वह सर्वत्र ही गति कर सकता है उसके पंख नीड़ के संकीर्ण आवरण में बद्ध नहीं रहते, वह जी चाहे जितना उन्मुक्त हो सकता है ।

त्याग ही प्राप्ति का आधार है । एक का त्याग दूसरे की प्राप्ति का वरदान है । जो त्याग नहीं कर सकता उससे प्राप्त करने का अधिकार छिन जाता है । गर्भ आवृत्त शिशु अपनी माँ के प्यार, दुलार, वात्सल्य को सम्पूर्ण भाव से नहीं प्राप्त कर सकता किन्तु ज्यों ही वह आवरण का त्याग कर भूमिष्ठ होता है तो पूर्णतर भाव से माँ को प्राप्त कर लेता है । इस प्राप्ति के साथ-साथ क्षुद्र संकीर्ण नाड़ी तथा गर्भ के बन्धनों से मुक्त हो वह विराट् भूमि की छाया में, विश्व-प्रांगण में प्रवेश करता है ।

त्याग विहीन संग्रह अपनी जड़ता की जंजीरों में मनुष्य को जकड़ कर बन्धन में डालता है, तो संग्रह विहीन त्याग भी मनुष्य को रिक्तता की ओर अग्रसर करता है । जहाँ जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता । हम संग्रह को लें, इसलिए कि त्याग करें, उत्सर्ग करें क्योंकि हमने लिया है और आगे लेने के लिये रिक्त करना है । यह है- हमारे जीवन का मूल मंत्र । बिना संग्रह के त्याग नहीं हो सकता तो बिना त्याग के संग्रह भी निषिद्ध है, अपूर्ण है ।

शास्त्रकार ने भी यज्ञावशिष्ट को मुक्ति का आधार बताया है । त्यागमय भोग में ही जीवन की पूर्णता चरितार्थ होती है । केवल भोग ही भोग हो और त्याग न हो तो वह जीवन के लिए बन्धन बन जायेगा । जब भोग की आसक्ति मनुष्य को जकड़ लेती है तो वह दिनों दिन विपत्ति और पतन की ओर अग्रसर होता जाता है ।

प्राप्ति और त्याग, लेने और देने का सामंजस्य ही एक दूसरे को प्रभावशाली बना कर मनुष्य का मुक्ति-पथ प्रशस्त करते हैं । वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा उपयोगी सामग्री लेता है, उसका उपभोग करता है । पत्तियों द्वारा आकाश में आवश्यक तत्त्वों का संग्रह करता है इसलिए कि फल, फूल, पत्तियाँ, लकड़ी छाया, गन्ध आदि के रूप में संसार को कुछ दे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सके । यदि वह ग्रहण नहीं करेगा तो दे भी नहीं सकेगा । इसी तरह नहीं चारों ओर का पानी, अन्य नदी, नालों को अपने अंग में समेटती हुई नित्य निरन्तर आगे बढ़ती है, मार्ग के प्रदेशों को सरसब्ज, शीतल और तृप्त करती है और अन्त में विराट् समुद्र को अगाध बनाये रखने के लिये विशेष हो जाती है । मेघ बहुत जल समुद्र से अपने अंग में ले उड़ते हैं किन्तु वे ही धरती पर आकर बूँद-बूँद के रूप में झर पड़ते हैं, धरती की प्यास बुझाते हैं । धरती माता मनुष्य से पर्याप्त श्रम, अन्न, जल, खाद आदि लेती है किन्तु अपार अन्न राशि और लहलहाते खेतों का उपहार प्रदान करती है ।

माता-पिता समाज धर्म संस्कृति, जन्मभूमि मानवता से हम बहुत कुछ लेते हैं । हमारा प्रौढ़ व्यक्तित्व, समृद्ध जीवन, प्रतिभा इसी का तो परिणाम है । हम भी इन ऋणों को अनन्त गुने रूप में लौटाने के लिए तत्पर होंगे, उसी दिन से हमारी मुक्ति यात्रा आरम्भ हो जायेगी । शास्त्रकार ने कहा है सौ हाथों से ले, हजारों हाथों से दान कर । हमें भी जीवन में प्राप्त अपनी शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता का पूरा-पूरा उपयोग कर विश्व को निरन्तर देते रहने का पुनीत यज्ञ प्रारम्भ कर देना है, तभी जीवन की सार्थकता हो सकेगी ।

## त्याग करें पर किसका

त्याग जीवन का एक आवश्यक धर्म है । जीवन शोधन का राजमार्ग है । प्राप्ति और प्रगति का नवचरण है-त्याग । यह अशुभ के स्थान पर शुभ की प्रतिष्ठा का नियम है । एक को छोड़ने पर ही दूसरे की प्राप्ति सम्भव होती है । रखा हुआ कदम उठाकर, वर्तमान आधार छोड़कर ही पथ पर आगे नवचरण धरा जा सकता है । पेट में अवशेष तत्त्व का (मल का) त्याग करने पर ही भोजन की रुचि पैदा होती है । शुद्ध वायु ग्रहण करने के लिये फेफड़ों में स्थित अशुद्ध वायु को छोड़ना पड़ता है । नव शरीर धारण करने के लिये एक दिन जर्जर शरीर का भी त्याग कर देना पड़ता है । संग्रह करने से पदार्थों को चिपकाये रहने से जीवन गति में विषमता पैदा हो जाती है । रुका हुआ पानी सड़ने लगता है । पेट यदि खाये हुए पदार्थों को अपने अन्दर ही संग्रह करता रहे तो अनेकों बीमारियाँ पैदा हो कर शरीर में नाश की स्थिति पैदा हो जायेगी । हृदय रक्त की वितरण व्यवस्था में संग्रह बुद्धि से काम ले तो शरीर की चैतन्यता ही नष्ट हो जायेगी ।

इस पर त्याग जीवन का एक आवश्यक ही नहीं अनिवार्य नियम है । त्याग बिना विकास प्रगति उन्नति का पथ प्रशस्त नहीं होता । जब हम किन्हीं पदार्थों, परिस्थितियों यहाँ तक कि विचारों, भावनाओं में बँधें पड़े रहते हैं तब तक अन्य विषयों की ओर हमारी गति ही नहीं होगी । इसलिए किसी वस्तु या विषय विशेष से बँधना उसमें लिप्त रहना तो सर्वथा त्याज्य है । जो कुछ आपके पास है आप जो कुछ भी जानते हैं उसे अपनी उन्नति का आधार बना सकते हैं । जिस सीढ़ी पर आप खड़े हैं उसका सहारा लेकर ऊपर उठ सकते हैं लेकिन अन्ततः सीढ़ी आपको छोड़नी ही पड़ेगी । यह असम्भव है कि आप उस पर खड़े भी रहें और ऊपर भी पहुंच जाये ।

जीवन की पगडण्डी बड़ी लम्बी है । संसार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है । आगे बढ़ने के लिए प्राप्त करने के लिए आपको नित्य त्याग करना पड़ेगा ही । यहाँ कोई भी तो ऐसा धाम नहीं है जहाँ पहुँच कर कह सकें बस हमारी यात्रा पूरी हो गई अब यहाँ से हटना नहीं पड़ेगा । जब तक जीवन है संसार तब तक हमें छोड़ना पड़ेगा, त्याग करते रहना होगा ।

इसलिए त्याग कीजिये '' मैं'' और 'मेरेपन' का ताकि आप 'पर-सत्ता' की अनुभूति कर सकें । जब तक 'मैं' है आप परमात्मा की विराट् सत्ता की अनुभूति प्राप्त न कर सकेंगे । 'मेरेपन' के कारण वस्तुओं, पदार्थों, विषयों की सीमा से बाहर न निकल सकेंगे ऐसी स्थिति में आप विश्व चक्र की गति से पिछड़ जायेंगे । चूँकि सारा संसार ही त्याग धर्म पर चल रहा है अस्तु संग्रह और रोके रखने की वृत्ति आपके जीवन में संघर्ष पैदा कर देगी । यहाँ का धर्म है कि विश्व जीवन को गति देने के लिए कुछ न कुछ त्याग करते रहो ? और जब आप चाहेंगे '' मैं नहीं दूँगा'' '' मैं नहीं छोडूँगा'' ऐसी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


स्थिति में विश्व-प्रकृति के विरोध का सामना करना पड़ेगा और तब आपको विवश होकर छोड़ना पड़ेगा, एक पराजित योद्धा की तरह । फिर क्यों स्वेच्छा से त्याग करके विश्व क्रम में सहयोग न दिया जाये ? इससे दो लाभ होंगे एक स्वधर्म पालन करने का सन्तोष दूसरे हमारा जीवन एकाकी, संकीर्ण न रह कर विश्व जीवन से संयुक्त हो जायेगा । इस जीवन की उच्च भूमिकाओं में प्रवेश पा सकेंगे ।

चूँकि त्याग एक को हटाकर दूसरे की प्रतिष्ठा का अवसर देता है इसलिए मन, कर्म, वचन से उन सभी बातों का त्याग किया जाये जो अशुभ का त्याग करने पर हो शुभ की प्रतिष्ठा सम्भव होगी । जब तक हमारे विचार भावना तथा कर्मों में अशुभ का बोलवाला है तब तक शुभ को स्थान कैसे मिलेगा ? जिस तरह द्वार के किवाड़ों को खोलते ही सूर्य प्रकाश सहज भवन को प्रकाशित कर देता है, उसी तरह जीवन से अशुद्ध तत्त्वों को निकाल देने पर शुभ का उदय अपने आप हो जाता है बुराइयों के छूटते ही अच्छाइयाँ स्वत: पैदा हो जाती हैं । क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, ममता, लोभ आदि बुराइयों के छूटने पर दया, प्रेम, करुणा, श्रद्धा, तितीक्षा, शम, दम, आदि सत्तत्त्वों का उदय होने लगता है ।

हमें उन सभी कार्य, व्यवहार और प्रवृत्तियों का त्याग करना चाहिये जो अशुभ से, असत्य से प्रेरित हैं, जिनका परिणाम सदैव दु:खदाई और पतन की ओर ले जाने वाला होता है और जो असुन्दर है । विषय-वासना और उनसे प्रेरित भोगों का त्याग करना आवश्यक है क्योंकि इनके रहते हुए जीवन में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं होती । मनुष्य की शक्तियाँ अस्तव्यस्त एवं क्षीण हो जाती हैं । इनमें लिप्त रहने से, आध्यात्मिक एवं भौतिक किसी भी क्षेत्र में ऐसी सफलता नहीं मिलती जिससे सन्तोष मिल सके । व्यक्ति की दिनों-दिन विषय-वासनाओं में आसक्ति बढ़ती ही जाती है और वह इनके जञ्जाल से छूट नहीं पाता । इनसे कई मानसिक जटिलतायें भी दिनों-दिन बढ़ती जाती हैं । विषय भोगों का चिन्तन तक तो जीवन में कई तरह की विषमतायें पैदा कर देता है । शास्त्रकार ने लिखा है-

**ध्यायतो विषयान्पुंस: संगस्तेपषूजायते ।**
**संगात्संजायते काम: कामात् क्रोधोऽभिजायते ।।**

"विषयों का चिन्तन करने से उनमें आसक्ति पैदा हो जाती है । विषयों को आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और कामना यदि पूर्ण न हो तो क्रोध की उत्पत्ति होती है ।" इस तरह विषयों के चिन्तन मात्र से ही अनेकानेक मानसिक जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं और मनुष्य अपने श्रेय पथ से विचलित हो जाता है ।

लिप्सा चाहें विषय भोगों की हो या धन-दौलत की या पद-प्रतिष्ठा की उसे मानसिक और व्यावहारिक क्षेत्र से सर्वथा दूर करने का प्रयत्न किया जाये । मन में रहने वाली उस इच्छा एवं रुचि तक का भी त्याग कीजिये जिससे विषय-भोगों की तृष्णा बढ़े, जिनसे लोभ, मोह, अभिमान आदि को पोषण मिलता हो ।

ऐसे भोजन का त्याग करना चाहिये जिससे स्वाद में आसक्ति बढ़ती हो, जिससे आलस्य प्रमाद बढ़ता हो, जो तामसी वासी गन्दा और किसी का जूठा हो, जो बेईमानी की कमाई से प्राप्त हुआ हो । शुद्ध, सात्त्विक, ताजा, हल्का, पौष्टिक और पसीने की कमाई से प्राप्त हुआ भोजन ही शरीर को स्वस्थ ताजा रखता है ।

वाणी से असत्य वचन, चापलूसी, परनिन्दा, कटुभाषण, व्यर्थ वार्तालाप का त्याग करना चाहिये क्योंकि ये अशुभ और अनैतिक हैं । इनसे जीवन में कलह, पश्चात्ताप, लड़ाई-झगड़े, अशान्ति पैदा हो सकते हैं । परस्पर के सम्बन्ध खराब हो जाते हैं । उन सभी दृश्यों तथा प्रसंगों से दूर रहें जिनसे दूषित मनोभावों, वासनाओं को पोषण मिले । मनुष्य जो कुछ भी देखता है उसकी प्रतिक्रिया मन पर होती है । उस दृश्य से सम्बन्धित जो वासना मन में होती है, वह प्रबल हो उठती है और मनुष्य को वैसा ही करने की प्रेरणा देती है ।

किसी भी स्थिति में बुरे काम करना, बुरा सोचना, और बुरा त्याज्य है । इतना ही नहीं बुरा देखने और सुनने से भी दूर रहना अच्छा है । इस तरह जीवन के सभी क्षेत्रों से अशुभ, असुन्दर का त्याग करना चाहिए जिससे शुभ का उदय हो ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कई बार हम लोग किन्हीं गलत प्रेरणा, उत्तेजनाओं से उत्तेजित मनोभावों में वह त्याग का विकृत रूप अपना लेते हैं । साधन-वस्तु अथवा अपनी जिम्मेदारी और कर्त्तव्यों का त्याग करते हैं । कोई घरबार छोड़ देते हैं तो कोई वस्त्र या वस्तु विशेष का त्याग करते हैं । लेकिन इनसे तो त्याग की आवश्यकता पूर्ण नहीं होती, न उसकी परिभाषा ही बनती है । त्याग का मूलाधार मनुष्य की मनोस्थिति है । इच्छा और कामनाओं का त्याग, अहंकार स्पृहा, मोह, मनोभावों का त्याग ही सच्चा त्याग है । जब तक मनुष्य इन दूषित मनोभावों का त्याग नहीं करता तब तक उसे शान्ति और सन्तोष की प्राप्ति नहीं होती, चाहे वह बाहरी त्याग के कितने ही प्रयत्न क्यों न करता रहे । गीताकार ने इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है-

**विहाय कामान्यः सर्वान्पुमान्श्चरतिः निःस्पृहः ।**
**निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।**

'' सभी कामनाओं को छोड़कर, सब ओर से निःस्पृह ममता रहित, अहंकार का त्याग करने वाला शान्ति को प्राप्त करता है ।''

हम सम्पत्ति का त्याग करते हैं किन्तु मन में स्थित लोभवृत्ति को नहीं छोड़ते, घर परिवार का त्याग करते हैं किन्तु ममता, मोह का त्याग नहीं करते, स्थान, पद, अधिकार छोड़ देते है किन्तु अहंकार नहीं छोड़ते, इसी कारण हम सदैव श्रान्त और असन्तुष्ट बने रहते हैं । त्याग यदि सच्चे मन से किया होता है तो उससे शान्ति, आत्म-सुख की प्राप्ति होती है । किन्तु हम आवेश में आकर या दिखावे के लिए बाहरी त्याग करते हैं, आन्तरिक प्रेरक हेतुओं का त्याग नहीं करते और इनके छोड़े बिना कहीं भी एकान्त, वन, गिरि-गुफाओं में ही क्यों न रहा जाये शान्ति नहीं मिलती ।

इस तरह अपनी दूषित कामनाओं, अवांछनीय इच्छाओं, दुष्ट वासनाओं तथा दूषित मनोभावों का त्याग ही सर्वोपरि त्याग है । इन प्रेरक हेतुओं का त्याग न करके जो प्रवृत्तियों का बलात् त्याग करता है, गीताकर ने उसे दम्भी बतलाया है । ऐसे व्यक्ति अपने आदर्श से जल्दी ही विचलित हो जाते हैं, जिन्होंने शरीर क्रिया का त्याग किया और मन से विषयों का चिन्तन करते हैं ऐसे लोग पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं । योग-कष्ट होने वाले साधक इसी श्रेणी में आते हैं ।

## आत्म-भावना से आत्म कल्याण

देश, काल और कार्य कारण भाव से प्रत्येक व्यक्ति में एक तत्त्व सभी की आत्मा है । मनुष्य शरीर नहीं है । वह परमात्मा का अविनाशी अंश जीवात्मा है । देश काल आदि से परे होने के कारण वह सर्वत्र एक ही है । यह तत्त्व बुद्धि से भी परे है । बुद्धि का काम केवल दृश्यमान जगत् तक ही सीमित है, किन्तु आत्म-तत्त्व सम्पूर्ण विश्व में समाविष्ट है । बुद्धि को जब उसी में अन्तर्निहित कर देते हैं तब वह परिलक्षित होता है । यद्यपि वह मन के संकल्प-विकल्प से परे है तो मन को जब उसमें विलय कर देते हैं तो आत्मानुभूति होने लगती है ।

आत्मा किस प्रकार अपने आप में विद्यमान है उसी तरह सम्पूर्ण प्राणियों में भी वही समाया है । एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से प्रेम होना एकत्व का भाव है जो आत्मा की देन है । प्रत्येक व्यक्ति इस तरह दूसरों से प्रेम करता है, वह उसे ही मिलता है । सबके लिए उपकार की, भलाई की भावनायें अपने लिए ही लौट आती है । बाह्य दृष्टि से कोई यह भले ही सोचे कि उपकारकर्त्ता को, श्रेय का दान करने वाले को, घाटा उठाना पड़ता है किन्तु ऐसी बात नहीं है । लोक-सेवा एक प्रकार की आत्म-सेवा ही है, इससे मनुष्य के आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है ।

दूसरों का अनिष्ट करके, उन्हें कष्ट और क्लेश पहुँचा कर अपने सुख-साधन की चेष्टा करना उचित नहीं है । इसमें स्वयं को भी दुःख, कष्ट तो उठाना पड़ता ही है, पापों का एक बना बनाया गठ्ठर सिर पर और सवार हो जाता है । उसके लिये चतुर्विधि, भय और यातनाओं के दिग्दर्शन होंगे । कभी शारीरिक कष्ट, कभी राज-दण्ड का भय । लोक-निन्दा तथा घृणा का पात्र बनकर समाज में रहना कठिन हो जाता है । यह स्थिति

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मनुष्य अपने क्षुद्र-स्वार्थ, अनात्म-भावना से बनाता है और उसका दण्ड भी स्वयं ही भोगता है ।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य स्वार्थवश दुष्कर्म करते हैं इससे उनकी दुर्गति होती है, किन्तु जो सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मदृष्टि से देखते हैं उनके लिए जीव-जन्तु, कीट-पतंग को कोई भाव नहीं आता । सभी प्राणी ईश्वर के बालक हैं । परमात्मा ही उन सब में आत्म-रूप में विराजित है । इसलिए उन सभी का आदर करना चाहिए, सुख पहुँचाना चाहिए । किसी को दु:ख न मिले, किसी को त्रास न दें, सबके साथ मधुरता का व्यवहार हो तो इसे ईश्वर की सच्ची भक्ति मानेंगे और उसके प्रतिफल भी आत्म-कल्याण कारण ही होंगे ।

# पूर्णता की प्रार्थना

महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी समस्त सम्पत्ति को दोनों पत्नियों में बराबर बाँटकर गृह-त्याग के लिए उद्यत हुए । मैत्रेयी को सन्तोष नहीं हुआ और ' 'आखिर वह पूछ ही बैठी'' भगवन ! क्या मैं इन सबको लेकर जीवन-मुक्ति का लाभ प्राप्त कर सकूँगी ?'' महर्षि ने अपने चिन्तन का क्रम तोड़ते हुये कहा- '' नहीं, ऐसा नहीं हो सकेगा । साधन सुविधा-सम्पन्न सुखी जीवन जैसा तुम्हारा अब तक रहा इसी तरह आगे भी चलता रहेगा, अन्य सांसारिक लोगों की तरह ही तुम भी अपना जीवन सुख-सुविधा के साथ बिता सकोगी ।

मैत्रेयी का असन्तोष दूर नहीं हुआ और वे बोली, ''**येनाहं नामृता स्यम् किमहं तेन कुर्याम्**'' । जिससे मुझे अमृतत्व प्राप्त न हो उसे लेकर मैं क्या करूँगी । देव ! मुझे यह साधन सुख-सुविधा सम्पन्न सांसारिक जीवन नहीं चाहिये । '

'' तो फिर तुम्हें क्या चाहिये, मैत्रेयी ?'' महर्षि ने पूछा और मैत्रेयी की आँखों से अश्रुधारा बह निकली । उसका हृदय सम्पूर्ण भाव से उमड़ पड़ा उस दिन । मैत्रेयी ने महर्षि के चरणों में सिर झुकाते हुये कहा -

''असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय । आविरावीर्मा ऐधि रुद्र यत्ते दक्षिण मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ।''

''हे प्रभो तुझे असत्य से सत्य की ओर ले जाओ, अन्धकार से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमृत्यु की ओर गति प्रदान करो देव ! हे प्रकाश ! आप चिर प्रकाश बनकर मेरे जीवन में प्रकाशित हो उठें । रुद्र बनकर मेरे समस्त पापरूपी अन्धकार का नाश कर दें । अपने प्रेम स्वरूप आनन्दमय दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें, जिसकी छाया में मैं चिरकाल तक परित्राण प्राप्त करूँ । ''

मैत्रेयी ने महर्षि के सान्निध्य में सुख, समृद्धि, सम्पन्नता का जीवन बिताया था, किन्तु उसके अन्तर का यह प्रश्न अभी तक अधूरा था । उसका समाधान अभी तक नहीं हो पाया था ।

हम जीवन भर नाना प्रकार की सम्पत्ति, ऐश्वर्य वैभव एकत्रित करते हैं आश्रम, धन, नाना पदार्थ, बहुमूल्य सामग्री जुटाते हैं और अन्तर में स्थित मैत्रेयी को सौंपते हुए कहते हैं -''लो ! इससे तुम्हें प्रसन्नता होगी, आनन्द मिलेगा । अनेकानेक सामग्री हम जुटाते हैं किन्तु अन्तर में बैठी हुई मैत्रेयी कहती रहती है '' **येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम्**'' । इन सब सामग्रियों में जीवन के शाश्वत प्रश्न का समाधान नहीं मिलता और निरन्तर छटपटाती रहती है उस महत्त्वपूर्ण तथ्य की प्राप्ति के लिये उसे सत्य, ज्योतिर्मय अमृतत्व की प्राप्ति करा सकें । सब ओर से उसे परित्राण देकर आनन्दमय बना सके ।

मैत्रेयी चाहती थी उस परम तत्त्व का साक्षात्कार, एकानुभूति, नित्यदर्शन जो सत्य, ज्योतिर्मय स्वरूप है, जो उसके जीवन का चिर-प्रकाश बने रुद्र बन कर उसके समस्त पापतापों को नष्ट कर दे और उसे परित्राण देकर निर्भय बना दे ।

मैत्रेयी ने अपने अनुभव की कसौटी पर जान लिया था संसार और इसके सकल पदार्थ, सम्बद्ध नाते-रिश्ते मरणशील हैं, इनका पर्यवसान अन्धकार और, असत्य में ही होता है । दैहिक, दैविक, भौतिक पाप-तापों की पीड़ा जीव को सदैव ही अशान्त, भयभीत बनाये रखती है ।

मनुष्य नाना पदार्थ, उपकरणादि संग्रह करता है । धन, सम्पत्ति, जुटाता है । बड़े-बड़े महल बनाता है, देह को नाना भाँति सँजोता -सँवारता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । रात-दिन इन्हीं को आधार बना कर जुटे रहने से इनके प्रति मनुष्य में एक तरह की आसक्ति एवं ममता उत्पन्न हो जाती है । धीरे-धीरे यह अभ्यास इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि मनुष्य इन्हीं उपकरणों को सामग्री, सम्पत्ति, सम्बन्धों को सब कुछ मान इन्हीं का अवलम्बन लेकर चलने लगता है । किन्तु संसार के नियम के अनुसार ये मिट्टी के घरौंदे क्षण-क्षण में गिरते-पड़ते रहते हैं । परिवर्तित होते रहते हैं । संसार और इसके पदार्थ बनते-बिगड़ते रहते हैं । कोई भी तो स्थिर नहीं रहता । मनुष्य का शरीर ही वृक्ष के पत्ते की तरह एक दिन झड़ जाता है । वह भी तो स्थिर नहीं रहता । जो कुछ भी दिखाई देता है वह सब ही तो असत्य है, मरण-धर्मा है, अन्धकारमय है ।

मनुष्य इनका अवलम्बन लेकर क्षण-क्षण इनके वियोग, रूपान्तर परिवर्तन के साथ-साथ ही मृत्यु का अनुभव करता है । जिसे सत्य मान लिया गया था वे तो स्वप्न की तरह असत्य सिद्ध होते हैं । कृत्रिम प्रकाश के बुझ जाने पर अन्धकार के सिवा कुछ भी नहीं रहता । इससे मनुष्य क्षण-क्षण मृत्यु, असत्य और अन्धकार में ही भटकता है । भय आशंका, क्लेश, पाप-ताप उसे क्षण भर भी तो स्थिर नहीं रहने देते । यह आवर्तनशील श्रम चलता ही रहता है और इसका कोई अन्त ही नहीं होता ।

इसीलिये मैत्रेयी को इन सब वस्तु, पदार्थ, सम्पत्ति, समृद्धि के परे किसी ऐसी वस्तु की अभिलाषा थी जो इस तरह के मरणधर्मी, प्रत्यावर्तन, स्वप्नवत्, असत्यता परिणाम के अन्धकार से सर्वथा मुक्त हो । जिसे प्राप्त करने के बाद फिर छोड़ने या बदलने का कोई प्रश्न ही उपस्थित न हो, । जो मृत्यु से अतीत सत्य, ज्योतिर्मय दिव्य रूप हो । ऐसा अमृतत्व चाहती थी मैत्रेयी ।

लेकिन हम शक्ति और युक्ति द्वारा संसार के पदार्थों में उसे ढूँढते हैं, नाप-जोख करते हैं । नाना साज-समाज एकत्र करते हैं और अन्तर में विराजमान मैत्रेयी से कहते हैं ''- लो देवि! इन्हे ग्रहण करो और सुखपूर्ण जीवन बिताओ ।'' किन्तु वह हर बार अपना असन्तोष प्रकट करते हुए पूछती है-''क्या इससे मुझे अमृत्तव की प्राप्ति हो सकेगी ?'' '' नहीं ।'' '' तो फिर जो मैं चाहती हूँ वह तो यह नहीं है ।'' **'येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम।'** जिससे मुझे अमृतस्वरूप की उपलब्धि न हो उसे लेकर मैं क्या करूँगी ? और वह नित्य-निरन्तर ही अश्रु भरे नेत्रों और व्याकुल हृदय से प्रार्थना करती है:-

**'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय । आविरावीर्मा एधि यत्ते । दक्षिणमुखम् तेन मां पाहि नित्यम् ।**

' हे चिरन्तन सत्य ! मेरे अन्तर और बाह्य सर्वत्र ही विराजमान सत्य मुझे असत्य की सीमा से निकाल कर अपने में मिला लो । जग के असत्य पर्दो को हटा कर अपने सत्य स्वरूप भवन में ले चलो जहाँ 'आप हैं' आपके सिवा कुछ भी तो नहीं है ।

''**ज्योतिषां यद् ज्योति**'' सर्व लोगों में ज्योतियों की भी पर ज्योति ! कोटि-कोटि सूर्य सम आपकी पर ज्योति व्याप्त है । हे ज्योतिर्मय अपने पावन स्पर्श से मुझे ज्योतिर्मय बना दें, जिससे अन्धकार के समस्त परिवेष्ठनों से मुक्त होकर मैं भी ज्योतिर्मय बनूँ ।

''हे अमृत ! रस ! परमानन्द के धाम ! सर्वत्र आप ही अजर, अमर, अविनाशी बन व्याप्त हैं यह जगत् आप में ही धारण, पोषण, विनाश प्राप्त करता है । किन्तु आप सदा-सदा गम्भीर, स्तब्ध, एकरस बने रहते हैं । आपका कोई रूप, सीमा, आयु नहीं । अपने इस अमृत स्वरूप में मिला कर मुझे भी अमर्त्य बनावें । ''

''हे प्रकाश ! मुझे अपने प्रकाश से जगमग, जगमग कर दो । अपनेपन, अहंकार, राग, आसक्ति के समस्त अन्धकार का उच्छेद करके पूर्णरूपेण प्रकाशमय कर दो ।''

हे रुद्र ! अपने प्रचण्ड ताप से मेरे समस्त पापों को भस्मीभूत कर दो मेरे अन्तर-बाह्य जीवन में जो भी दुश्चेष्टा, दुर्भावना, दुष्कर्म आदि पाप हों उन्हें अपने रुद्र ताप से नष्ट कर दें, तब आपके आलोक प्रकाश की निर्विकारी सत्ता ही मुझमें शेष रहेगी । हे प्रभो ! आप अपने प्रसन्न, मधुर,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आनन्दमय दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें । हे देव ! तब मैं आपका ही निवास बन कर सर्व ओर से परित्राण पा सकूँगी ।

अन्तर में विराजमान मैत्रेयी अन्तरात्मा की इस प्रार्थना को हम एकाग्रता के साथ सुनें । उसके स्वर में स्वर मिला कर गायें प्रबल जिज्ञासा, उत्कट इच्छा, अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ ही हमारी यह प्रार्थना किसी तरह की सौदेबाजी, लेन-देन या सजोकर रखने की बात न हो बीच में । संसार में विचरण करते हुए हम उसी को ग्रहण करें जो हमारी आत्मा की चिर इच्छा को पूर्ण करे । उसे सत्य अमृत-ज्योति की प्राप्ति करावे । जो हमें अमर्त्य प्रदान न करें उसे छोड़ते जायें ।

**''येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम्''**

यह मन्त्र हमारा जीवन-यन्त्र बन जाय ।

## ब्रह्म विद्या के सात सिद्धान्त

हम पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं, सुखी होना चाहते हैं, लाभ कमाना चाहते हैं । हमारा सुख स्थायी एवं मजबूत होना चाहिए । यह तभी हो सकता है कि जब हम मन के प्रकाश को स्थायी और मजबूत वस्तुओं पर फेंके और उनकी जगमगाहट का आनन्द लूटें । आत्मिक तत्त्व शाश्वत एवं स्थायी हैं, वे न तो कभी बदलते हैं और न नष्ट होते हैं, हर अवस्था में उनकी एकसी स्थिति होती रहती है । आत्मा का जो स्वभाव है वही स्वभाव मन का बना देने से दोनों का समन्वय हो जाता है । जैसे सच्चे हृदय से स्त्री और पुरुष अनन्य प्रेम के साथ एक हो जाते हैं तो दाम्पति जीवन के आनन्द की सीमा नहीं रहती । इसी प्रकार आत्मा और मन का स्वभाव एक हो जाने पर हमारे के अन्तःप्रदेश में जो अपार शान्ति उद्भूत होती है उसके सुख की संसार के किसी भी लाभ से तुलना नहीं की जा सकती है ।

''योग विद्या'' मन और आत्मा के स्वभाव का एकीकरण करने की विद्या है । दोनों का स्वभाव एक हो जाने से मन, वचन और काया से एक ही प्रकार के परम सात्त्विक कार्य होने लगते हैं । उन दोनों के परस्पर विरोधी होने के कारण जो संघर्ष चलते थे, उन सबकी समाप्ति हो जाती है, अन्तर्द्वन्द, भीतर संघर्ष, परस्पर विरोधी विचार, नष्ट हो जाने से मनुष्य अपने अन्तरतल के बहुत हलका, शान्त, स्वस्थ, संतुष्ट एवं प्रसन्न अनुभव करता है । इस स्थिति को प्राप्त करने के पश्चात ही सांसारिक सम्पदाओं के भोग का आनन्द आता है । मन पर काबू हो, इन्द्रियाँ संयम में हो, दृष्टिकोण निर्भ्रान्त हो, तो ही मनुष्य प्राप्त वस्तुओं से सुख लाभ हो सकता है अन्यथा वे लाभ उलटे गले का पत्थर बन जाते हैं । चटोरा मनुष्य मिष्टान्न के लिए बुरी तरह लालायित फिरता रहता है और जब उसे मिठाई मिल जाती है तो इतना अधिक खा मरता है कि लेने के देने पड़ जाते हैं । इसी प्रकार अन्य वैभवों तथा लाभों से सुख भोगने की अपेक्षा मनुष्य चिन्ता, तृष्णा, मोह, लालसा, लिप्सा मद, अहंकार, दंभ, पाप, अनाचार, कृपणता आदि के चक्कर में फँस जाता है और सुख के स्थान पर दुख भोगने लगता है । पर जिन्हें आत्म स्थिति प्राप्त हैं, जो योग परायण है वह संयम पूर्वक वस्तुओं का उपभोग करता है, और उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों को उठाता है और हानियों से बच जाता है ।

आन्तरिक आनन्द की निर्मल निर्झरणी में स्नान करने के लिए दुख रहित सुख प्राप्त करने के लिए, योग ही एक मात्र आधार है । उसे अपना लेने पर मन, वचन, कर्म से हम सात्त्विकता की दिशा में चलते हैं फलस्वरूप सब लोगों से प्रेम एवं सद्भाव प्राप्त होता है जिससे जीवन में पग-पग पर प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता के अवसर आते रहते हैं । इस जन्म के समाप्त होने भी पुण्य संचय की प्रचुरता के कारण सद्गति प्राप्ति होती है और प्राणी स्थिति के अनुसार अच्छे घर में जन्म लेता एवं मुक्ति प्राप्त करता है ।

योग साधन से मन का संयम होता है और फलस्वरूप शक्तियों का प्रचुर अपव्यय बच जाता है । क्रिया शक्ति बढ़ती है, जिससे अधिक तेजी के साथ मनुष्य उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है । यह विचार गलत है कि ''अध्यात्म मार्ग पर चलने वाला सांसारिक वैभवों को प्राप्त नहीं कर सकता । सच बात यह है कि आत्मवादी व्यक्ति ही सही अर्थों में बलवान् शक्ति सम्पन्न और श्री

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सम्पन्न हो सकता है । आज भिखमंगे और अनाधिकारी व्यक्तियों के योग मार्ग में अन्धाधुन्ध धंस जाने के डर से उसकी अप्रतिष्ठा अवश्य हो गई है, पर योग स्थिति में कुछ भी अन्तर नहीं आया है । अध्यात्म विद्या एक महाविज्ञान है । उसे जितना ही हम कसौटी पर कसते हैं उतना ही वह हर दृष्टि से जीवन के लिए परम उपयोगी विज्ञान सिद्ध होता है ।

योग, भारतीय मनोविज्ञान है । मन को हानिकारक, अनुपयोगी, निरर्थक मार्ग में भटकने से रोक कर इस प्रकार शिक्षित किया जाता है कि वह उस मार्ग पर चल सके जो हमारे लिए वस्तुतः उपयोगी, लाभदायक एवं मंगलमय है । जैसे सात्त्विक आहार-विहार करने से शरीर का बल, इन्द्रियों की शक्ति अंग प्रत्यंगों की क्षमता, तेज, सौन्दर्य, फुर्ती, सुडौलता, निरोगता आदि की वृद्धि होती है उसी प्रकार मन का संयम एवं सन्मार्ग में नियोजन करने से आत्मिक स्वास्थ्य बढ़ता है और साथ-साथ वे विशेषताऐं भी उद्‌भूत होती है जिन्हें 'अष्ट सिद्धि' के नाम से पुकारते हैं आत्म साधना हर मनुष्य के लिए आवश्यक है, उसमें प्रवेश करने का मनुष्य मात्र को अधिकार है । वह स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, सबके लिए समान रूप से उपयोगी है । बनवासी और गृहस्थ समान रूप से उसे अपना सकते हैं और लाभ उठा सकते हैं । इस विद्या में थोड़ा या बहुत जो जितना प्रवेश करता है उसे उसी अनुपात से आत्मलाभ प्राप्त होता है और वह पूर्णता की ओर अग्रसर होता है । पूर्णता प्राप्ति का सर्वोत्तम एवं सरलम् साधन योग विद्या है । योग का अर्थ ही है- जोड़ना अर्थात् आत्मा को परमात्मा के साथ मिलाना- एकाकार होना ।

हर एक विज्ञान (१) सिद्धान्त (थ्योरी) और (२) प्रयोग (प्रैक्टिकल) दो भागों में विभक्त होता है । इन दोनों अंगों को मिलाकर ही एक पूर्ण विज्ञान बनता है । जितने भी विज्ञान है उनके सिद्धान्तों को पुस्तकों और वाणी द्वारा जाना जाता है और क्रिया को व्यवहारिक प्रयोग द्वारा सीखते हैं । योग के भी दो अंग हैं । सिद्धान्तों पर विश्वास करने और क्रिया को अभ्यास में लाने से योग का प्रयोजन पूरा होता है ।

सिद्धान्तों को बिना समझें और विश्वास में लाये बिना जो लोग केवल अभ्यास में प्रवृत्त रहते हैं वे ऐसा मकान बनाते हैं जिसकी जड़ नीचे जमीन में नहीं है । प्रतीति के बिना प्रीति नहीं हो सकती । शंकाओं को निर्मूल करके, विस्तृत विवेचना के आधार पर जब तक किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा गया है तब तक साधना में पूरा विश्वास होता, भली प्रकार चित्त लगना कठिन है । यदि श्रद्धा के आधार पर किसी प्रकार मन लग भी जाये तो कोई सन्देहास्पद प्रसंग आते ही वह श्रद्धा ढिलमिला जाती है । इसलिए "विचार के बाद काम" वाली नीति के अनुसार पहले उन तथ्यों, मान्यताओं और विश्वासों को भली प्रकार परखना और समझना चाहिए जिनके द्वारा हमें अपनी मनोभूमि का निर्माण करना है । जब तर्क और प्रमाण के वैज्ञानिक आधार पर हम किन्हीं सिद्धान्तों की परीक्षा कर लेते हैं तब उन पर दृढ़ विश्वास हो जाता है और उनके अनुसार आत्म-निर्माण करने के लिए साधन करने में सुगमता पड़ती है । योग की सात भूमिका बताई गई हैं जिनका विवेचन नीचे किया जाता है ।

(१) आस्तिकता- एक उच्च सत्ता पर विश्वास करना आस्तिकता है । हम जिस स्थिति में हैं उससे ऊँची एक स्थिति है जिसमें अनेक गुना अधिक आनन्द है । पाप-तापों से भ्रम जंजालों से छूटकर एक अधिक ऊँची स्थिति पर पहुँच सकते हैं । आत्मा स्वयं उच्च है, जिन दोषों से वह उच्चता दब गई हैं उन्हें हटा देने पर वह उन्नत अवस्था पुनः प्राप्त हो सकती है । उस स्थिति को प्राप्त होना सहज एवं स्वाभाविक है । यह आस्तिक विचार है । उच्च अन्तःकरण पर श्रद्धा करना, उसकी महत्ता स्वीकार करना उसे प्राप्त करना, जीवन लक्ष स्थिर करना, आस्तिकता है ।

योग की यह प्रथम भूमिका है । इस भूमिका के योग्य मनोवृत्ति की रचना करने के लिए ईश्वर परायणता प्रयोग में लाई जाती है । नियम रूप दृष्टिगोचर होने वाली सूक्ष्म चेतना, सत्ता, ईश्वर है । जिस प्रकार बिजली अपने नियमों से आप बंधी हुई है वह अपने नियमों के अनुसार ही अपना काम

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


करती है । इसी प्रकार परमात्मा भी सृष्टिक्रम को अपने नियमानुसार चलाता है । उसके बनाये हुए कर्मफल'' नियम द्वारा सब प्राणी स्वयं ही सुख-दुख प्राप्त करते रहते हैं । वह निन्दा स्तुति से प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होता और न किसी के साथ में कोई रियायत पक्षपात या प्रतिशोध करता है तो भी हमें एक काल्पनिक ईश्वर के बनाने की इसलिए आवश्यकता पड़ती है कि आस्तिकता की प्रथम भूमिका को प्राप्त कर सकें ।

मकान बनाने से पूर्व मस्तिष्क में, कागज पर या खिलौने के रूप में एक नक्शा बनाना पड़ता है । हम उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए उसका आदर्श एक ढांचा मन में तैयार करने और उसका ध्यान, पूजन एवं आराधना करते हैं । राम कृष्ण आदि की ध्यान मूर्तियाँ यद्यपि कल्पित होती हैं तो भी वे एक आदर्श की ध्येय मूर्ति के समान हमारे सामने उपस्थित रहती हैं । उनका ध्यान करते समय हम उनमें अपरचित सौन्दर्य अटूट बल अनन्त शक्तियाँ और सात्त्विक सद्गुणों का महान भंडार अनुभव करते है और साथ ही ऐसी भावना करते हैं कि हम इन्हीं में लीन हो जावें इन भगवान को प्राप्त कर लें । जैसे भृङ्ग का ध्यान करने से झींगुर भी भृंग बन जाता है वैसे ही ध्यान की अद्भुत शक्ति के अनुसार हमारी अन्तः चेतना भी गीली मिट्टी की भाँति उन ध्यान के भगवान के सांचे में ढल कर वैसी ही बनने लगती है ।

''जो कुछ है सांसारिक उन्नति में ही है, आध्यात्मिक उन्नति से कोई लाभ नहीं'' ऐसी मान्यता रखने वाले व्यक्ति नास्तिक हैं । जिनके सामने कोई ध्येय या आदर्श नहीं जो अपने आत्मिक गुणों को बढ़ाना नहीं चाहते उन्हें बढ़ने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते वे नास्तिक हैं इसके विपरीत जो आदर्श जीवन बनाने और बिताने के लिए जितना इच्छुक आतुर एवं प्रयत्नशील है वह उतने ही अंशों में आस्तिक है । सादा जीवन होते हुए भी जो आदर्श बातें सोचता आदर्श विचारों को ग्रहण करता है, भीतर और बाहर से आदर्श बनना चाहता है उसका वह आदर्शवाद ही आस्तिकता है । यही ईश्वर परायणता का मन्तव्य है इस स्थिति को प्राप्त करने का ही दूसरा नाम ईश्वर प्राप्ति है ।

आत्मा ईश्वर का अंश है, वह अन्तःकरण में स्थित है । उसकी स्फुरणाएँ सदा आदर्शवाद की ओर संकेत करती हैं । इन स्फुरणाओं को अनुभव करना और उन पर श्रद्धा पूर्वक चलना, सान्निध्य का है । हमारा अन्तःकरण हमारे हर एक विचार और कार्य की वास्तविकता को हर घड़ी हर समय देखता रहता है, यही ईश्वर का सहस्त्र नेत्रों से हर घड़ी हमें देखना है । जो अपनी आत्मा के सामने सच्चा है वह ईश्वर के सामने भी सच्चा ठहरेगा । जिसकी अपनी आत्मा सन्तुष्ट है प्रसन्न है, उसका ईश्वर भी प्रसन्न है । आत्मा के सन्तोष का दूसरा नाम स्वर्ग है ।

इस स्वर्गीय स्थिति को प्राप्त करना अत्यन्त ही, आवश्यक उपयोगी आनन्ददायक, तथा सहज स्वाभाविक और स्वल्पश्रम साध्य है । इस मार्ग पर चलना आध्यात्मिकता का प्रथम चिह्न है । उच्च, आदर्शवादी, पवित्र, महान बनने की अभिलाषा आस्तिकता है । इसे अपनाना हर अध्यात्मवादी का प्रथम कर्त्तव्य है ।

**(२) तत्त्व दर्शन-** आमतौर से सुनकर पढ़कर या देखकर मनुष्य अपने विचारों का निर्माण करता है । स्वतन्त्र तर्क करने की, सत्य असत्य के परीक्षण की शक्ति का लोग बहुत कम प्रयोग करते हैं और समीपवर्ती लोगों में फैले हुए वातावरण के आधार पर अपने विश्वास बना लेते हैं । इस रीति से बनाये हुए विश्वास बहुधा भ्रान्त होते हैं क्योंकि देश काल के अनुसार तथ्यों और उपयोगिताओं में अन्तर पड़ता जाता है । जो नीति, प्रथा एवं विचारधारा आज के लिए उपयोगी है, हो सकता है कि कुछ काल बाद वह हानिकारक सिद्ध हो और उसे बदलने की आवश्यकता पड़े । आज विज्ञान का युग है । भौतिक विज्ञान ने अनेकों पुरानी मान्यताओं को अनुपयोगी तथा भ्रान्त ठहरा कर नवीन मान्यताओं को प्रमाणित और प्रतिष्ठित किया है । इसी आधार विज्ञान भी प्राचीन एवं प्रचलित विचार धाराओं का संशोधन कर रहा है । ऐसे अवसरों पर अध्यात्म वाद को यही शिक्षा कि हमें किसी अन्धविश्वास,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दुराग्रह, रुढ़िवाद या पक्षपात से न चिपक कर सत्य ग्रहण करने के लिए सच्चे जिज्ञासु की भाँति तैयार रहना चाहिए । जो तत्त्व हो, जो सत्य हो, जो कसौटी पर खरा उतरे उसी विचार धारा को अपनाना- यही तत्त्वदर्शी का काम है ।

अपनी अकल और दूसरे की सम्पदा दसगुनी दिखाई पड़ती है । अपनी गलती और भूल अपने को निर्दोष और दूसरों को दोषी देखने के आदत प्राय: मनुष्यों को होती है । कई ऐसे भी दीन-हीन होते हैं जो हर बात में डरते हैं और अपने को अपराधी सा समझते रहते हैं । दूसरों की मनोदशा के बारे में प्राय: लोग अपने दृष्टिकोण से देखने की भूल करते हैं । उनकी मनोभूमि इतनी लचीली नहीं होती कि दूसरों की मनोभूमि को ठीक अनुमान लगा सकें, इस कमजोरी के कारण अनैक्य, कलह, द्वेष एवं घृणा की वृद्धि होती है । दार्शनिक दृष्टि रखकर हमें अपनी और दूसरों की मन:स्थिति समझने परखने और विश्लेषण करने का निरपेक्ष भाव से प्रयत्न करना चाहिए ताकि तत्त्व दर्शन प्राप्त हो सके ।

संसार नाशवान है, इसकी हर एक वस्तु हर घड़ी बदलती रहती है और परिस्थितियों के प्रभाव से एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती है । इसलिए किन्हीं वस्तुओं के प्रति हमें ममता और मालिकी का भाव न रखना चाहिए वरन् उन वस्तुओं का सर्वोत्तम सदुपयोग करने का कर्तव्य धर्म के पालन में उनका सहारा लेने का प्रयत्न करना चाहिए । वस्तुएँ परमात्मा की हैं, उसी के विधान से नष्ट होती और बदलती हैं, इसलिए किसी वस्तु के नष्ट होने, किसी स्वजन के चले जाने के लिए दुखी एवं चिन्तित न होना चाहिए । इसी प्रकार सर्वोत्तम कार्य प्रणाली अपनाने पर भी सफलता का कोई निश्चय नहीं । अतएव सफलता असफलता पर अपना हर्ष शोक निर्भर करने की अपेक्षा कर्त्तव्य पालन पर ही सन्तोष को केन्द्रित करना चाहिए । वही कर्मयोग है । कर्मयोग का अनाशक्ति का भाव धारण करना तत्त्व दर्शन है ।

मन में सदा शक्ति बनाये रहना सांसारिक आपत्तियों को स्वप्नवत् समझना कठिन प्रसंगों में धैर्य और साहस के साथ अविचल रहना, अरुचि कर प्रसंगों में भी हँसते रहना, भय जनक अवस्थाओं में भी निर्भय रहना मानसिक शान्ति को किसी भी स्थिति में न खोना तत्त्वदर्शन है । तत्त्वदर्शी जानता है कि मैं अविनाशी, अशोष्य, अछेद्य आत्मा हूँ । प्रिय अप्रिय परिस्थितियों के झोंके मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते । इस महासत्य को समझ कर वह आत्म शान्ति को किसी भी कारण से नष्ट नहीं होने देता सदा प्रसन्न रहता है ।

विचारों को संशोधन के लिए तैयार रहना सत्य की जिज्ञासा रखना, आत्म निरीक्षण, दूसरों की मनोभूमि का ठीक अन्दाज, नाशवान चीजों में ममता न रखना कर्त्तव्य परायणता अनासक्ति, सदा प्रसन्न रहना संक्षेप में यही तत्त्वदर्शी के लक्षण हैं ।

**(३) आत्मनिष्ठा-** अपने दैवाधीन, परवश, क्षुद्र, तुच्छ, दीन-हीन मायाबद्ध जीवन मान कर, शुद्ध पवित्र, परमात्मा का अंश मानना एवं कर्ता भोक्ता होने का, उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना आत्मनिष्ठा है ।

माना कि हमसे नित्य प्रति भूलें होती हैं । यह हमारे शरीर और मन की भूले हैं, नित्य दंड पाकर वे इन भूलों की क्षतिपूर्ति भी करते रहते हैं । आत्मा जो कि हमारी मूल सत्ता है वह उन नित्य की भूलों से ऊपर है । वह कभी भूल या पाप में प्रवृत्त नहीं होती । हर बुरा काम करते समयावरोध करना और हर अच्छा, काम करते समय सन्तोष अनुभव करना यह उसका निश्चित कार्यक्रम है । अपने इस सनातन स्वभाव को वह कभी नहीं छोड़ सकती, उसकी आवाज को चाहें हम कितनी ही मन्द कर दें कितनी ही कुचल दें कितना ही अनसुना करें तो भी वह कुतुबनुमा की सुई की तरह अपना रुख पवित्रता की ओर ही रखेगी । उसकी स्फुरणा सतोगुणी ही रहेगी इसलिए आत्मा कभी अपवित्र या पापी नहीं हो सकती । चूँकि हम शरीर और मन नहीं वरन् आत्मा हैं, इसलिए हमें अपने को सदैव उच्च, महान, पवित्र निष्पाप परमात्मा का पुत्र मानना चाहिए । अपने प्रति पवित्रता का भाव रखने से ही हमारा शरीर और मन भी पवित्रता एवं महानता की ओर द्रुतगति से अग्रसर होता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हम स्वयं ही कर्ता भोक्ता है । कर्म करने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता हमें प्राप्त है जैसे कर्म करते हैं ईश्वरीय विधान के अनुसार वैसा फल भी तुरन्त या देर में मिल जाता है । इस प्रकार अपने भाग्य के निर्माण करने वाले भी हम स्वयं ही है । परिस्थितियों के जन्मदाता हम स्वयं हैं । जैसे गुण, स्वभाव, विचार एवं कार्य हम अपनाते हैं उसी के अनुसार परिस्थितियाँ भी हमारे सामने आती रहती हैं । ईश्वर अपनी ओर से दण्ड पुरस्कार नहीं देता वरन् हमारे कर्मो के अनुसार फल की व्यवस्था मात्र कर देता है । कभी-कभी कोई बुरे व्यक्ति अकारण हमारे ऊपर आक्रमण करते हैं एवं कोई सामूहिक दैवी विपत्ति, तूफान, वाढ़ आदि आकर हमें दुख देते हैं । या सामूहिक वातावरण के पाप पूर्ण होने का फल है । समाज के हम भी एक अंश हैं । समाज को शुद्ध बनाना हमारा भी कर्त्तव्य है उस कर्त्तव्य की उपेक्षा करने के कारण हम भी अप्रत्यक्ष रूप से दोषी हैं और फल भोगते हैं । धर्म के लिए कष्ट सहना एक प्रकार का तप या बीज बोना है जिसका उत्तम फल भविष्य में मिलेगा । इस प्रकार ग्रह नक्षत्र देवदानव भरा या किसी दूसरे को न मानकर अनुतीर्ण स्थितियों का निर्माता अपने आपको ही मानना चाहिए और उत्तम स्थिति प्राप्त करने के लिए आत्म निर्माण करना चाहिए ।

स्वर्ग नरक बन्ध मोक्ष यह है जिसे हम स्वेच्छा पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं । भले बुरे शरीरों में पूर्वजन्म लेना यह भी हमारे अपने आत्म-निर्माण के ऊपर अवलम्बित है आत्मा की आत्मा के औजार, मन की, मन के औजार, शरीर की शक्तियाँ अद्‌भुत विचित्र आश्चर्य जनक एवं महान हैं । उनके द्वारा हम अपने लिए और दूसरों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण एवं आनन्ददायक अवसर उपस्थित कर सकते हैं, हमारी निर्माण शक्ति और उत्पादन शक्ति का कोई अन्त नहीं ।

आत्मस्वरूप का शोध होने पर मनुष्य बन्धन से मुक्त हो जाता है । उपनिषदों के अनुसार शरीर में दो चेतना हैं एक क्षर दूसरी अक्षर । क्षर नाशवान है यह मन बुद्धि चित्त अहंकार का संतुष्ट सूक्ष्म शरीर है । यह भी स्थूल शरीर को ही भाँति भौतिक पदार्थ है । आमतौर से हम अपने लिए जब ''मैं या हम'' शब्द का प्रयोग करते हैं तो उसका तात्पर्य स्थूल शरीर या सूक्ष्म शरीर से होता है । शरीर और मन के सुख लाभ और आनन्द के ढंग से ही लोग सोचते और काम करते हैं । पर जब अक्षर का आत्मा का अवलम्बन हम ग्रहण कर लेते हैं आत्मा की भूमिका में जाग्रत होकर आत्म-भाव से सोचते हैं तो अन्तराल में सोऽहम् की ध्वनि निकलती है । तब वह आत्मा की दृष्टि से सोचता है । आत्मा के स्वभावानुरूप कार्य करना है । वही आत्मबोध की, आत्मदर्शन की, आत्म प्राप्ति की, आत्म-निष्ठा की, स्थिति है । क्षर को नष्ट करके अक्षर को प्राप्त कर लेना ही जीवन की मुक्ति है ।

अपने को शुद्ध मुक्त अविनाशी आत्मा मानना, कर्म फलों का एवं आत्म निर्माण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना, अपनी महानता से परिचित होना, क्षर भाव को भूलकर अक्षर भाव को जागृत होना, यह आत्मनिष्ठा के लक्षण हैं ।

**(४) शक्ति साधना-** जो कुछ भी मिलता है शक्ति के द्वारा मिलता है अशक्तों का अपने लिए कुछ प्राप्त करना तो दूर आत्म-रक्षा भी कठिन है । शारीरिक निर्बलों को रोग तथा बलवानों के आक्रमण का शिकार होना पड़ता है । आर्थिक निर्बलों को गरीबी, अभाव, भूख आदि घेरे रहती हैं, मानसिक निर्बलों को चालाकों द्वारा ठगा जाता है, उन्हें भौदू, बुद्धू, मूर्ख, बनाया अपमानित किया जाता है । आध्यात्मिक निर्बलों का काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद शोक, चिन्ता भय आदि भीतरी शत्रु हरदम सताते रहते हैं, सामाजिक बौद्धिक व्यावहारिक निर्बलताओं के भी ऐसे ही दुखदायी दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं ।

इसके विपरीत जो जिस इष्ट से बलवान है वह उसी प्रकार के साधन वैभव और आनन्द उपलब्ध करता है । आसक्ति एक पाप है । जिसके कारण दूसरों को अन्याय शोषण एवं आक्रमण करने का प्रलोभन मिलता है । दुर्बल को जालिम का पिता कहा गया है । जिस प्रकार गन्दगी से मक्खियाँ एवं दुर्गन्ध पैदा होती है उसी प्रकार दुर्बलता से पाप पैदा होता है । दुर्बल व्यक्ति की नैतिकता भी गिर ज़ाती

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । कहते हैं खाली बोरा सीधा खड़ा नहीं रह सकता वह गिर ही जाता है । अभाव ग्रस्त ओर दुखी मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से प्रेरित होकर दुष्कर्मों पर आसानी से उतारु हो जाते हैं । इस प्रकार वह स्वयं भी पाप के गर्त में गिरते है और अन्याय करने वालों की संख्या में वृद्धि करके दूसरों को भी पाप कण्ड में गिराता है मानसिक और सामाजिक अशान्त की जननी दुर्बलता ही है । कमजोर मनुष्य न तो स्वयं शान्त रहता है और न दूसरों को शान्त रहने देता है ।

शक्ति का शिव के साथ अन्यन्य सम्बन्ध है । लक्ष्मी नारायण, राधाकृष्ण, सीताराम प्रकृति पुरुष की भाँति शक्ति का प्राण से अगाढ़ सम्बन्ध है । उनकी साधना से ही हम अभीष्ट बलों को प्राप्त करते हैं और लक्ष स्थान तक पहुँचते हैं। स्वर्ग, मुक्ति ओर ब्रह्म प्राप्ति यह सब भिक्षा रूप में किसी की कृपा से नहीं मिलते वरन् पुरुषार्थियों द्वारा अपनी अटूट शक्ति से प्राप्त किये जाते हैं । आन्तरिक और बाह्य, लौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए सुख-शान्ति के लिए शक्ति साधना आवश्यकीय है । हर दृष्टि से बलवान बनना अध्यात्मवादियों का आवश्यक कर्त्तव्य है ।

**(५) संयम-** मनुष्य जो थोड़ी बहुत शक्ति प्राप्त करता है प्रायः उसका दुरुपयोग कर देता है । शारीरिक बल को इन्द्रियों की शक्ति को धन को बुद्धि को मनोबल का सामाजिक आस्था कितने ही लोग फिजूल बेकार निकम्मी निरुद्देश्य बातों में खर्च कर डालते हैं और कितने ही चटोरेपन, तृष्णा लोलुपता एवं अहंकार में डूब कर हानिकर पापपूर्ण अनुचित बातों में खर्च करने लगते हैं । इस मार्ग के अपनाने पर हमें बहुत घाटे में रहना पड़ता है । धन कमाने के लि जितनी बुद्धिमानी की जरूरत है उससे अधिक बुद्धिमानी बन खर्च करने के लिए और सुरक्षित रखने के लिए चाहिए अन्यथा वह पसीनों से कमाया हुआ धन यों ही निरर्थक मार्गों द्वारा बह जाता है और उसे उस लाभ एवं आनन्द से वंचित रहना पड़ता है जो कि धन कमाने से मिलना चाहिए था ।

इन्द्रिय शक्ति को ही लीजिए उसका सदुपयोग किया जाये तो जीवन बड़ा सुखी और समृद्ध हो सकता है पर ऐसा न करके लोग उसका दुरुपयोग करते हैं और दुख उठाते हैं । वीर्य शरीर का सार है, उसकी कुछ बूंदों से एक मनुष्य की उत्पत्ति होती है उसके संचय से हर एक अंग पुष्ट होता है, स्फूर्ति ताजगी, चैतन्यता, प्रफुल्लता, उत्साह एवं तन्दुरुस्ती स्थिर रहती है, दीर्घ जीवन प्राप्त होता है । पर इसी शक्ति को विषय-वासना में दुरुपयोग करने से शरीर अशक्त एवं रुग्ण बन जाता है और असमय मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है । जिह्वा एक कुशल डॉक्टर की भाँति मुख पर पहरेदार की भाँति इसलिए नियुक्त है कि पेट में जाने से पहले परीक्षा करे कि यह वस्तु ग्रहण योग्य है या नहीं । पर इस प्रयोजन की अपेक्षा जब उसे चटोरा बना कर षटरस व्यंजन पेट में अन्धा धुन्ध ठूँसे जाते हैं तो आमाशय, आतें, जिगर आदि पेट के अवयव खराब हो जाते हैं और अस्वस्थता आ घेरती है । इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों की शक्ति को लाभदायक कार्य के लिए संचय न करके, अपव्यय किया जाता है तो वे नष्ट या विकृत हो जाती है और हमें आनन्द के स्थान पर पीड़ा का उपहार देती है ।

धन द्वारा जहाँ, स्वास्थ्य, धर्म, शिक्षा, प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति होती है वहाँ दुरुपयोग से बीमारी, कुसंस्कार पाप, बदनामी, घमंड, वेचैनी आदि भी खरीदी जा सकती हैं । बुद्धि से ही महापुरुष एवं महात्मा भी बन सकते हैं और असुर, पिशाच तथा शैतान भी । इसलिए जहाँ शक्ति का उपार्जन आवश्यक है वहाँ उसको अपव्यय से बचाकर आवश्यकता के लिए संचय तथा उपयोगी कार्यों में व्यय करने की सावधानी भी आवश्यक है । यह सावधानी से ही संयम है ।

संयम का अर्थ स्वाभाविक एवं आवश्यक इच्छाओं, क्षुधाओं आवश्यकता को अकारण कुचल डालना नहीं है । ऐसा करने से तो कुचली हुई मनोवृत्तियों का मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार बड़ा भयानक रूप बन सकता है और उससे शारीरिक एवं मानसिक भयानक रोग उठ खड़े हो सकते हैं । विवेकपूर्वक हमें यह विचारना चाहिए कि किस

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


शक्ति को किस कार्य के लिए किस मात्रा में व्यय करना चाहिए । विवेक जैसा निर्णय करे उसके अनुसार शक्तियों का नियंत्रण भी करना चाहिए और व्यय भी । रोक हमें अपने अपने चटोरेपन पर लगानी है, निग्रह लोलुपता का करना है । तृष्णा और अविवेक के कारण हानि लाभ न सोचकर क्षणिक आनन्द के लिए सर्वनाशी मार्ग पर दौड़ पड़ता है उस कमजोरी पर विजय पानी है । हमें अपनी लोलुपता पर नियन्त्रण करना चाहिए उसे परिष्कृत करना चाहिए और विवेक के आधार पर इन्द्रिय भोगों का तथा जीवन के अन्य आनन्दों का उपभोग करना चाहिए ।

समय का एक-एक क्षण अमूल्य सम्पत्ति है स्वास्थ्य सम्पत्ति है, जीवन सम्पत्ति है, मस्तिष्क सम्पत्ति है, इसके अतिरिक्त धन दौलत योग्यता शिक्षा आदि भी सम्पत्ति है । इन सभी शक्तियों को बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । इनके एक-एक कण को फिजूल खर्ची से बचाना चाहिए और सर्वश्रेष्ठ लाभदायक के उपयोग में उनका खर्च करना चाहिए । यही संयम का तत्त्व है ।

**(६) आत्म विस्तार-** जिसका 'अहम्' जितना छोटा हैं संकीर्ण है वह उतना ही तुच्छ है और जिसका 'अहम्' जितना विस्तृत, जितना विशाल, जितना व्यापक है वह उतना ही महान है । आत्मोन्नति का अर्थ अपनी लघुता को संकीर्णता को महान क्षेत्र में विस्तार करना है । आत्मा को परम आत्मा (परमात्मा) बना देने के लिए ही समस्त अध्यात्मिक साधन हैं । आत्मा एक मनुष्य की आत्मा है, परमात्मा अथवा विश्वात्मा समस्त संसार का व्यापक आत्मा को कहते हैं । अपनी व्यष्टि को विशाल समष्टि से घुला देना यह परमात्मा की प्राप्ति है । यह समस्त विश्व परमात्मा का ही साकार रूप है जैसा कि गीता में विराट् रूप दिखा कर अर्जुन को बताया है, शास्त्र वचनों में भी ऐसा ही कहा गया है । पुरुष एवेद सर्व (ऋग्वेद १०९०।२) आत्मा वा इदंसर्व (छा. ३७।२५।२) नारायण इदं सर्व (कारा० ३०३) ब्रह्म खल्विदं सर्व मैत्री उप ४।६ बासुदेव सर्व (गीता ७।१९) इस सर्व में अपने को घुला देना अध्यात्म का अन्तिम उद्देश्य है ।

समाज के लाभ के लिए, सार्वजनिक हित के लिए अपने तुच्छ स्वार्थ को निछावर कर देना, आत्मविस्तार है । अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज सेवा की दृष्टि से ही अपनी सेवा भी करना ठीक है, पर समाज को तनिक भी क्षति पहुँचा कर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आध्यात्मवादी कोई इच्छा नहीं करता । उसकी विचारने और काम करने की हर क्रिया के पीछे सार्वजनिक हित का ही ध्यान रहता है । वसुधैव कुटुम्बकम् के दृष्टिकोण से वह सबको अपना समझता है और ' आत्मवत् सर्वभूतेषु' के अनुसार दूसरों के दुःख को अपना दुख और दूसरों के सुख को अपना सुख समझता है । समाज की सुख-शान्ति और सुखसंचालन यही उसकी कार्य प्रणाली का मेरुदण्ड होता है । इसी आधार पर वह अपनी जीवन नीति निर्धारित करता है ।

छोटे लड़के केवल अपने खाने पहनने और खेलने की चिन्ता रखते हैं । कुछ बड़े हो जाने पर विवाह होता है तब वह अपने साथ अपनी पत्नी की भी चिन्ता करता है उसे अच्छे भोजन वस्त्र आभूषण देकर उतना ही प्रसन्न होता है जितना कि बालकपन में अपने लिए पाकर प्रसन्न होता था । इसके बाद बच्चे होते हैं उनकी संख्या बढ़ती है अब वह आत्मभाव स्त्री से बढ़कर बच्चों तक फैलता है, बच्चों की चिन्ता उसी प्रकार करनी पड़ती है जैसे अपनी । उनके सुख-दुख में अपने को भी सुख-दुख का अनुभव होता है । इसके बाद कुटुम्ब बढ़ता है फिर सारे कुटुम्ब में अपनापन फैल जाता है, तब खुद खाने की अपेक्षा दूसरों को खिलाने में अधिक आनन्द आता है । एक गृहिणी अपने पति, भ्राता और पुत्र को स्वादिष्ट भोजन कराते समय स्वयं खाने की अपेक्षा अधिक आनन्द करती है । जब यह मनोदशा अधिक परिपक्व और पुष्ट हो जाती है मनुष्य सब में अपने को और अपने को सब में देखने लगता है तो वह सफल आध्यात्मवादी बन जाता है, आत्मोन्नति का यही क्रम है । व्यष्टि को समष्टि पर, खुदी को खुदा पर, बलिदान करना, आत्म-समर्पण करना शरणागत होना यही है । स्वार्थ और परमार्थ को एक कर देना, आत्म विस्तार का व्यवहारिक रूप है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**(७) ब्रह्म परायणता-** अध्यात्मवाद के अनेक रहस्यों, कर्मों, भेद-उपभेदों को जान लेने के बाद भी कितने ही मनुष्य बहुत निम्न श्रेणी के और गिरे दर्जे के रहते हैं । बौद्धिक प्रौढ़ता के कारण वे इस सम्बन्ध में बातें तो बहुत बढ़ी-चढ़ी कर सकते हैं । पर जब तक अन्तकरण तरंगित न हो, उसमें लचक, कोमलता श्रद्धा, आस्था, निष्ठा, विश्वास न हो तब तक आचरण में वे चीजें नहीं आती । कितने ही मनुष्यों की मनोभूमि बड़ी कठोर, ऊबड़, नीरस, शुष्क एवं हठीली होती है । ऐसे व्यक्ति निष्ठुर, नास्तिक, क्रूर, घमंडी, अहंमन्य, खुदगर्ज, तोताचश्म, मतलबी, निर्दयी होते हैं । दूसरों के दुखदर्द से न तो उनकी छाती पसीजती है और न दूसरों की सुख-शान्ति देखकर उन्हें सन्तोष होता है । ऐसे पाषाण हृदयों को एक प्रकार का नास्तिक ही कहना चाहिए ।

ईशोपनिषद् में ईश्वर को ''कवि'' कहा गया है । कवियों की मनोभूमि बड़ी लचीली होती है । वे विश्व को अनुभूतियों को समझते, ग्रहण करते और उनसे प्रभावित होते हैं । संगीत, साहित्य, कला से रहित मनुष्यों को नीतिकारों ने बिना सींग पूछ का पशु कहा है । कारण मानवीय अन्तःकरण की सरसता के द्वारा ही मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है । संगीत, साहित्य एवं कला द्वारा मनुष्य का हृदय लहराता है, तरंगित होता है, लचीला बनता है, सौन्दर्य की अनुभूति करता है । 'कवित्व' ईश्वरीय भाव है । अन्तस्तल की सरसता द्वारा ही भक्ति योग की साधना होती है । पाषण से कठोर, शुष्क, हृदय वाले व्यक्ति, भक्तिरस के दैवी स्वाद का आस्वादन नहीं कर सकते ।

अन्तःकरण को सरस बनाने के लिए आध्यात्मिक कवित्व का आचरण करना होता है । दया, करुणा, सहानुभूति, उदारता, क्षमा, विनय, मधुर भाषण, शिष्टाचार, दान, सेवा, त्याग, पवित्रता, निष्कपटता, सात्त्विक प्रेम, प्रसन्नता सरीखे सद्गुणों को विचार क्षेत्र में स्थान देने से सात्त्विकता की मंद-मंद भीनी सुगन्धि से मनोभूमि आनन्दित हो उठती है । इस प्रकार की भावनाओं का चिन्तन करने से इस प्रकार के व्यवहार की कल्पना करने से अन्तःलोक पुलकित एवं गदगद हो जाता है । आचरण में इस प्रकार के गाँवों को कार्यान्वित करने पर तो मनुष्य का रोम-राम आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है । सात्त्विकता के विचारों और कार्यों में आश्रय देने से उच्चकोटि का आत्म-सन्तोष प्राप्त होता है उसे ही ब्रह्मानन्द या परमानन्द कहते हैं । आत्मा का आशीर्वाद इसी स्थिति में पहुँचने वाले प्रयत्न करते हैं ।

पवित्रता में, पवित्र दृष्टि कोण में सच्चे सौन्दर्य की अजस्त्रधारा बहती हैं । शरीर निर्मलता वस्त्रों की सफाई घर की स्वच्छता प्रयोग में आने वाली वस्तुओं को सुव्यवस्था यह सब आरम्भिक पवित्रताएँ हैं, इन्हें आचरण में लाने के साथ-साथ विचारों की पवित्रता, सात्त्विकता एवं महानता पर ध्यान देना चाहिए । हमारा हृदय प्रेम से सरोवर रहे । पापियों को रोगी समझ कर हम उनकी सेवा करें, भूले भटकों को बाल बुद्धि समझ कर उनके अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करें, दूसरों की कमजोरियों की उदारतापूर्वक निवाहें और अपनी महानता द्वारा सबको आगे बढ़ाने का उपाय करें ।

सृष्टि का प्रकृति का, कण-कण सौन्दर्य से परिपूर्ण है । एक कलाकार की भाँति, एक तत्त्वदर्शी की भाँति सृष्टि में सर्वत्र बिखरे हुए ईश्वरीय सौन्दर्य का निरीक्षण करें । नदी,पर्वत-वन, उपवन वृक्ष पौधें घास आकाश , नक्षत्र ग्रह सब अपार सौन्दर्य के केन्द्र हैं । कलापूर्ण चित्र जैसा प्रातः-सायं का आकाश कला के जीवित उपहार हैं । पुष्प, चिड़ियाँ, निराले-निराले रंग और स्वाभाविक जीव जन्तु पशु-पक्षी, अपनी मनोहरता की सानी नहीं रखते । बालकों का भोलापन, किशोरों की चंचलता तरुणों की उमंग, प्रोढ़ों की जिम्मेदारी तथा वृद्धों का अनुभव अपना अलग-अलग सौन्दर्य रखते हैं । माता, बहिन, पत्नी और पुत्री के नेत्रों में जो अपने-अपने ढंग की सरसताएँ हैं उनकी सुन्दरता का कोई व्यापार नहीं ऐसे प्रभु के सर्वांगीण सुन्दर उपवन में हमें आनन्दित रहना चाहिए । इस नन्दन वन के कांटे बीनते और रोड़े हटाते हुए भी हमें आनन्दित ही रहना चाहिए । अपने चारों ओर प्रभु का सौन्दर्य मयी कला का रूप निरीक्षण करें और हर घड़ी आनन्दित रहें ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अन्त:करण को सरस बनाना, पवित्र रखना, सतोगुणी तत्त्वों से विचार और कर्मों को सरावोर रखना चारों ओर बिखरे हुए दैवी सौन्दर्य को देखकर आनंदित एवं सन्तुष्ट रहना, यह ब्रह्म परायणता है । ब्रह्म परायणता का आनन्द ही ब्रह्मानन्द एवं परमानन्द है । इसका रस सर्वोपरि है । इस रस का आस्वादन करने की तृषा से जीव इधर-उधर भटकता है जब उसे यह रस मिलता है तो उसे आत्मतृप्ति मिलती है । उस तृप्ति में ही ईश्वर की झांकी होती है । श्रुति कहती है रस वै स'' जिस रस को श्रुतियों ने परमात्मा बताया है वह यही ब्रह्म परायणता का रस है ।

यह सत आध्यात्मिक भूमिकाएँ हैं । इन सातों को प्राप्ति के लिए ही नाना प्रकार के अनुष्ठान, योग जप तप, यज्ञ आदि किये जाते हैं ।

## साधना की वैज्ञानिक आधार

पिछले अध्यात्म में उन सात सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जिनके आधार पर कि अध्यात्म की आधार शिला खड़ी हुई है । नाना विधि की साधनाएँ इन सात आधारों को मजबूत करने के लिए ही हैं, मन को समझा देना और उसका निर्माण करना दो अलग बात हैं । पुस्तक पढ़कर, भाषण सुनकर वार्तालाप से, सत्संग विचार विनिमय, चिन्तन आदि के द्वारा मन एक बात को समझ लेता है, उसे ठीक मान लेना है । पर इतने मात्र से ही वह मान्यता व्यवहार रूप में परिणित नहीं हो जाती संस्कार नहीं बन जाती कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो सत्य, दया प्रेम, न्याय, संयम आदि सत् सिद्धान्तों को ठीक मानते हैं, उनकी महत्ता स्वीकार करते हैं और उनका समर्थन करते है फिर भी व्यवहार में उनके कार्य उन मान्यताओं के बिल्कुल विपरीत होते हैं । सत्य का उपदेश करने वाले मिथ्याचारी, साधु का वेश धरे हुए दुराचारी मधुरभाषी बगुलाभगत बाहर के मीठे भीतर के कडुए अनेकों मनुष्य देखे जाते हैं । विचार और कार्यों में भारी अन्तर रखने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं है ।

इस अन्तर का कारण यह है कि बहिमन जिस बात का मानता है, उसकी अन्तर्मन की आदत नहीं होती बहिर्मन का काम सोचना, विचारना समझना और किसी निष्कर्ष पर पहुँचना है । तर्क उपदेश परिस्थिति आदि के कारण विचारों में क्षण भर में परिवर्तन हो सकता है । पर अन्तर्मन की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है । वह विचारों को नहीं, विश्वासों एवं संस्कारों को धारण करता है । वह आदतों का भंडार है, जैसी आदत यह पकड़ लेता है उसे मुश्किल से छोड़ता है । शरीर की क्रियाएँ इस अन्तर्मन के आधार पर ही होती हैं । कई आदमी नशा छोड़ना चाहते हैं । उसकी बुराई करते हैं परेशान है पर नशा छूटता नहीं । आदत उन्हें नशा पीने के लिए मजबूर कर देती है । इसी प्रकार अन्य मामलों में भी जिस ओर मनुष्य अभ्यस्त हो जाता है उसी लकीर पर गाड़ी का पहिया ढुलकता जाता है । इस अभ्यस्ता को ही संस्कार कहते हैं । अन्तर्मन पर संस्कार जमने में बहुत समय लगता है वे धीरे-धीरे कठिनाई से जमते हैं पर जब जम कर पक्के हो जाते हैं तो फिर इतने मजबूत होते हैं कि छुड़ाये नहीं छूटते ।

आध्यात्मिक सिद्धान्तों को समझ लेना बहुत असान है । पिछला लेख पढ़कर मामूली पढ़ा लिखा आदमी उन्हें समझ सकता है । उन सम्बन्ध में जो तर्क वितर्क हों उन्हें विचार चिन्तन या सत्संग से दूर किया जा सकता है । बहिर्मन का काम पूरा हो गया । उसका क्षेत्र समझना सोचना और निर्णय करना इतना ही हैं । इतना कार्य एक दो दिन में भली प्रकार हो सकता है । पर केवल इतने मात्र से ही कोई व्यक्ति आत्मवान् नहीं बन सकता, आत्मलाभ नहीं कर सकता । जब तक अन्तर्मन उन विचारों को विश्वास एवं संस्कारों के रूप में इतनी मजबूती से न पकड़ ले कि जीवन की क्रिया पद्धति उसी के अनुसार अपने आप चलने लगे तब तक आत्म शिक्षा की पूर्णता नहीं कही जा सकती । इसलिए सिद्धान्तों की शिक्षा के साथ-साथ ऐसे साधन अभ्यास भी करने पड़ते हैं जिससे अन्तमन का उस सांचे में ढलना आरम्भ हो जाये । साधना की यही उद्देश्य है, यही प्रयोजन है । साधना द्वारा हम अन्तर्मन का वैसा निर्माण करते हैं जैसा कि अपने भावी जीवन को बनाना या चलाना चाहते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बहिर्मन का क्षेत्र सीमित है । विचार शक्ति का केन्द्र खोपड़ी के मध्य भाग में है । माथे से लेकर आधी खोपड़ी के अग्र भाग तक इस प्रकार के तन्तु और परमाणु हैं जो सोचने समझने और किसी नतीजे पर पहुँचने का कार्य करते हैं । नेत्रों द्वारा जो देखा जाता है, कानों से जो सुना जाता है, बुद्धि से जो सोचा जाता है यह सब प्रवाह बहिर्मन के इन परमाणुओं से टकराता है और उस प्रयोगशाला में हलचल शुरू होती है । विभिन्न मानसिक शक्तियाँ उपस्थित प्रश्न को सुलझाने में जुट पड़ती है और उनके सम्मिलित प्रयत्न से एक निष्कर्ष निकल आता है । पर अन्तर्मन की स्थिति इससे भिन्न है । वह खोपड़ी के पिछले भाग में के एक रूखे, कर्कश, जिद्दी, लड़ाकू स्वार्थी, निरक्षर भट्टाचार्य गँवार की तरह चुपचाप बैठा रहता है और कभी न थकने वाले भूत की तरह यंत्रगति से अपना काम करता रहता है । बहिर्मन रात को सो जाता है पर अन्तर्मन तक भी अपना काम करता रहता है । उसकी खटपट से बेचारे बहिर्मन की नींद उचट जाती है और औंधे सीधे स्वप्न देखने को उसे विवश होना पड़ता है ।

अन्तर्मन का केन्द्र खोपड़ी के पिछले भाग में है, फिर भी उसका शरीर में फँसे हुए ज्ञान तन्तु, स्नायुजाल, रक्त सूत्र, अन्तर्मन के केन्द्र से सम्बद्ध हैं । शरीर के द्वारा जो क्रियाएँ होती हैं उन्हीं के आधार पर आदतें बनती हैं और उन्हीं से स्वभाव एवं संस्कार बन जाते हैं । केवल विचार करने मात्र से अन्तर्मन का परिवर्तन नहीं होता, उसे बदलने के लिए क्रियाओं की, घटनाओं की, समारोहों की, प्रदर्शनों की, परिस्थितियों की आवश्यकता होती है । इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विविध साधनाओं का निर्माण हुआ है । योग साधना का यही उद्देश्य है जिस क्रिया पद्धति से अन्तर्मन को इच्छित ढांचे में ढाला जाता है उसका ही नाम साधना है । अन्तर्मन को इच्छित ढांचे में ढल जाने पर दोनों मन निर्विरोध हो जाते हैं, इससे बड़ी शान्ति मिलती है । इन दोनों के विरोध में अशान्ति एवं बेचैनी है जब इन दोनों का एकीभाव हो जाता है तो अपनी स्थिति पर मनुष्य को बड़ा सन्तोष होता है । विचारों के अनुसार कार्य भी तभी होते हैं जब उस प्रकार का स्वभाव बन जाता है इस प्रकार का स्वभाव या संस्कार बन जाना ही आध्यात्मिक साधना की सफलता है । यह सफलता प्राप्त होते ही समस्त आत्मिक सम्पन्नताऐं करतलगत हो जाती हैं ।

## साधनाओं के उद्देश्य

अन्तर्मन का निर्माण करने के लिए प्रत्यक्ष क्रियाओं को अपनाने की जरूरत है, [illegible] किया जा चुका है व्यवहारिक रूप क्रियाओं का आयोजन करते हैं उनका मन के भीतरी प्रदेश पर पड़ती है । धीरे-धीरे अभिरुचि एवं अभ्यास क्षेत्र में परिपक्व होने लगती है और स्वभाव में ढल जाता है । अध्यात्म विद्या के इसीलिए योग की अनेक साधनाएँ विनिर्मित की हैं और इस मार्ग के पथिकों को साधना में प्रवृत्त होने का आदेश किया है ।

आत्मविद्या के सात साधन पिछले पृष्ठों पर बताये जा चुके हैं । इन सातों को हर कसौटी पर कस कर उनकी महत्ता का परीक्षण किया जा सकता है । इन तथ्यों का विस्तार होने से समाज की सुख-शान्ति, समृद्धि और सद्भावना में बढोत्तरी होती है । व्यक्तियों के चरित्र ऊँचे उठते हैं [illegible] लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टियों से [illegible] लाभ रहता है । व्यक्ति और समाज दोनों का ही जिसमें कल्याण है उस विचारधारा के ढांचे में मनुष्यों को ढालना हर दृष्टि से कल्याणकारी है । हम कल्याण पथ पर आरूढ़ एवं अग्रसर हों इसी में परमात्मा की और आत्मा की प्रसन्नता है और यही सब से बड़ा लाभ है । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए ही योग शास्त्रों में विभिन्न आध्यात्मिक अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता है । पीछे बताये हुए सात तथ्यों के केन्द्र के आस-पास सारी साधनाएँ घूमती है ।

**(१) अस्तिक्य-** ईश्वरीय विश्वास मन के ऊपर जमाने और दृढ़ करने के लिए भगवान की पूजा उपासना की अनेकों विधियों काम में लाई जाती हैं । धातु या पाषाण की भगवत प्रतिमाएँ बनाकर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उनकी पूजा, आराधना की जाती है । स्नान, धूप, दीप, चन्दन, आरती, भोग, शयन आदि क्रियाओं के द्वारा मन्दिरों में पूजन आराधना होते रहते हैं । विशेष अवसरों पर फूल बँगलें बनाये जाते हैं, उनकी विशेष सजावट होती हैं, मथुरा, वृन्दावन में सावन के महीने में झूलों के उत्सव बड़े समारोह पूर्वक होते हैं । रथ यात्रा दीपदान लीला अभिनय आदि के आयोजन होते हैं, रासलीला एवं रामलीला द्वारा भगवत् चरित्रों की स्मृति जागृत की जाती है । परमात्मा के प्रतिनिधियों के अवतारों और देवताओं के चित्र स्थापित किये जाते हैं । नवधा भक्ति के नौ प्रकार श्रवण कीर्तन स्मरण पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदन है । इनको चरितार्थ करने के लिए भक्त लोग विविध प्रकार के आयोजन एवं साधन करते हैं । संगीत नृत्य और गायन के साथ संकीर्तन होते हैं उनकी विमोहित करने वाली ध्वनि लहरों में मनुष्य झूमने लगते हैं । ध्यान, जप, नाम स्मरण में कितने ही साधक प्रवृत्त रहते हैं । इस प्रकार की साधनाएँ 'अस्तिक्य' की भावनाओं की परिपुष्ट करने के लिए हैं । इन क्रियाओं के करने से लगातार ईश्वर विषय में ही चित्त जाता है और शरीर की क्रिया उसी कार्य में होते रहने से तदनुकूल वृत्तियों का निर्माण होता है ।

**(२)तत्त्वदर्शन-** वास्तविकता को जानकर सत्य को प्राप्त करना तथ्य को समझना सद्ज्ञान से, विवेक बुद्धि से सुसज्जित होना तत्त्व दर्शन का तात्पर्य है । इसके लिए सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जाता है । विचार पूर्ण, निष्पक्ष वैज्ञानिक आधार पर लिखे गये पक्षपात रहित सद्ग्रन्थ इस दशा में हमें बहुत आगे तक अग्रसर करते हैं । ऐसे ग्रन्थों का विचार और पाठ चलता है । अपने सम्बन्ध में एकान्त में अन्तमुखी होकर अपने आप विचार करना चिन्तन कहलाता है । मनन और निदध्यासन से प्रज्ञाचक्षु खुलते हैं । सत्संग विचार विनिमय शंकासमाधान प्रवचन आदि के आधार पर ऋतम्भरा बुद्धि को सत्यासत्य निरूपिणी विवेक शक्ति की जागृत किया जाता है ।

निष्पक्ष शुद्ध दृष्टि प्राप्त करने के लिए द्वन्दों से ऊपर उठना पड़ता है । राग-द्वेष, हर्ष शोक लोभ-घृणा, मद-मत्सर, मान-मोह, क्रोध-दीनता आदि द्वन्दों के आवेश से मस्तिष्क में उत्तेजनाएँ उत्पन्न होती हैं । उन उत्तेजनाओं से तत्संबधित ज्ञानतन्तु और परमाणुओं में विशेष रूप से हलचल पैदा हो जाती है, वह उफान अपने निकटवर्ती अन्य अवयवों की शक्ति खींच लेता है और उन्हें निकम्मा बना देता है । फलस्वरूप ऐसे व्यक्तियों का मानसिक विकास, लंगड़ा तथा अधूरा होता है । वे किसी बात को निष्पक्ष रूप से नहीं सोच सकते । अपनी धुनि, सनक मान्यता, हठधर्मी के आधार पर वे एकागी सोचते हैं, जिससे तत्त्व निरूपण नहीं होता । जैसे विश्वास बीज जमे होते हैं, उसी रंग का चश्मा पहन कर मस्तिष्क सोच विचार करता है और उसी आधार पर निर्णय करता है । ऐसी स्थिति में मनुष्य भ्रम, अज्ञान अन्धकार, दुराग्रह एवं सनक का शिकार रटता है उसे सत्य का दर्शन नहीं होता । सत्य के दर्शन के लिए निष्पक्ष, विशुद्ध, विवेक युक्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है । और वह तब प्राप्त होता है जब मनुष्य आवेश रहित हो निराकूल हो । निराकूलता की रक्षा के लिए बैराग्य की, अनाशक्ति की स्थिति की प्रसन्नता की आवश्यकता है । उस स्थिति के व्यक्ति को ही भगवान सत्य नारायण के दर्शन होते हैं । गीता का कर्मयोग इसी स्थिति को प्राप्त करने की साधना है ।

**(३) आत्मनिष्ठा-** अपने आपको शुद्ध बुद्ध चैतन्य सत चित् आनन्द स्वरूप अनुभव करने के लिये कितनी ही साधनाएँ हैं । व्रत तीर्थ यात्रा देवदर्शन हवन, अनुष्ठान, आदि धार्मिक कर्मकाण्डों का विधान जिन शास्त्रों में हैं उनमें इनके बड़े-बड़े लम्बे चौड़े महात्म्य भी लिखे गये हैं । बताया गया है कि इस कर्मकाण्ड को करने से इतने जन्म के पाप नाश हो जाते हैं, मनुष्य निष्पाप हो जाता है । बहुत बड़ा पुण्य फल प्राप्त होता है, भगवान प्रसन्न होते हैं, स्वर्ग मिलता है तथा लौकिक अनेक आनन्दों की उपलब्धि होती है । इसी महात्म्य से प्रेरित होकर लोग धार्मिक कर्मकाण्ड करते हैं । जिससे कई लाभ होते हैं । शारीरिक स्वस्थता, वातावरण की शुद्धि धर्म भावनाओं सद्भावनाओं की वृद्धि इस निमित्त से स्वजनों का समियतन दान आदि कितने ही लाभ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उनसे होते हैं । सबसे बड़ा लाभ है कि उस कर्मकाण्ड को करने के पश्चात् शास्त्रोक्त महात्मा के आधार पर वह कर्ता अपने आपको निष्पाप, पुण्यात्मा तथा धर्मवान् मानता है । पिछले पाप नाश हो जाने की उसकी मान्यता दृढ़ होती है । वह मानवता उसे आत्मिक महानता की ओर अग्रसर करता है । जो अपने को जैसा मान लेता है, उसके अनुसार कार्य भी करता है । इस प्रकार धार्मिक कर्मकाण्डों से आत्मवान् बनने में बड़ी सहायता मिलती है ।

आत्मज्योति का ध्यान सांस के आवागमन के साथ 'सोऽहम्' मंत्र का जप और उस मानना का चिन्तन करने का प्रधान लाभ यही है कि अपनी आत्मा की महानता प्रतिभाषित होती है, पराधीनता छोड़कर मनुष्य आत्मनिर्भर बनता है, आत्म-सम्मान, आत्म विश्वास एवं आत्म गौरवता को अनुभव करता है । वेदान्त विज्ञान की समस्त साधनाएँ सोऽहम् तत्वर्मास सघे शिवल्विंद ब्रह्म, अपमात्मा ब्रह्म के सिद्धान्त पर टिकी हुई है । आत्मा में ही परमात्मा का दर्शन करना हृदय को परमात्मा की क्रीड़ा भूमि शरीर को आत्मा का मन्दिर अपने को राजाओं के राजा परमात्मा को राजकुमार अनुभव करना आत्मनिष्ठा को बढ़ाने वाले विश्वास है । तपश्चर्या की साधनाओं द्वारा मनुष्य आत्मनिष्ठा की ओर बढ़ता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेकों प्रकार की साधनाएँ करते हुए साधक देखे जाते हैं ।

**(४) शक्ति साधना-** संसार में सुख पूर्वक रहने के लिए शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है । स्वर्ग, मुक्ति आत्म साक्षात्कार ईश्वर प्राप्त आदि आध्यात्मिक सम्पदाएँ भी पुरुषार्थी शक्ति सम्पन्न साधकों को ही मिलती हैं । अपना आत्मिक और भौतिक अस्तित्व कायम रखने अपने अधिकारों की रक्षा करने तथा आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए की अनिवार्य आवश्यकता है । साधक शक्ति की उपासना करते हैं और उसे शिव का अभिन्न अंग मानते हैं । दुर्गा, राधा, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती आदि रूपों में साधक भगवती शक्ति की शरण में जाता है । शास्त्र सम्प्रदाय एक आध्यात्मिक सम्प्रदाय है जो शक्ति को ही परमात्मा मानकर उसकी उपासना करता है । ईश्वर के साथ प्रकृति या माया का अनन्त सम्बन्ध है । इसी से परमात्मा को लक्ष्मी नारायण सीताराम, राधेश्याम नामों से पुकारते हैं ।

निरोगता, स्वास्थ्य की शक्ति प्राप्त करने के लिए नेति, धोती, वस्ति, कपालभाति, वज्रोली, आसन, प्राणायाम किये जाते हैं । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ शरीर मन रहता है, उस सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार योगीजन निरोगता और सरलता को सर्वप्रथम महत्त्व देते हैं और इसके लिए अनेक ऐसी साधनाएँ करते हैं जिससे शरीर निरोग एवं सुदृढ़ रहे । जितनी साधनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनमें आधी मन की स्वस्थता के लिए हैं । हठ योग कर्मकाण्ड शरीर के साथ मन को भी सुदृढ़ बनाता है ।

योगीजन बुद्धि बल प्राप्त करने के लिए विद्या पढ़ते और सत्संग करते हैं । विरोधी विघ्नों को काटने के लिए फरसा कुल्हाड़ी, चिमटा, दंड आदि धारण करते हैं । गौ पालन में सबलता प्राप्ति का रहस्य छिपा हुआ है । मन्त्र, तन्त्र, मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्म आदि आत्मिक पुरुषार्थ के आयुद हैं । योग साधना एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम ही तो है, जिसके द्वारा साधन शक्ति सम्पन्न होकर ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करते हैं और अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है । साधनाएँ किसी न किसी शक्ति की प्राप्त करने के लिए ही की जाती है ।

**(५) संयम-** मनुष्य का शरीर और मन असन्तुलित शक्तियों का भंडार है । इस भंडार का अधिकांश भाग अनुपयोगी एवं निरर्थक बातों में खर्च होता रहता है इस प्रवाह को उधर से रोक दिया जाये तो बचत का संचय होने लगता है । इस संचय को उपयोगी दिशा में लगा दिया जाये तो अनेक प्रकार की सफलताएँ सहज ही उपलब्ध हो जाती हैं और उन्नति के शिखर की ओर यात्रा बड़ी तीव्र गति से बढ़ती चली जाती है ।

इन्द्रियों का चटोरापन, शक्तियों का सबसे बड़ा अपव्यय करता है इन्द्रियों में स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय यह दो सब से प्रबल हैं । इनके द्वारा होने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वाले शक्तियों को घोर अपव्यय को रोकने के लिए ब्रह्मचर्य पालन की साधना की जाती है । अस्वाद व्रत लेकर चटोरेपन पर काबू करते हैं । मौन व्रत से वाचलता असत्य भाषण निरर्थक भाषण पर संयम करते हैं । समय-समय पर अन्य प्रतिबन्ध अपने ऊपर लगाकर तितिक्षा, कष्ट, सहिष्णुता का अभ्याय किया जाता है । सर्दी, गर्मी, नींद, भूख, प्यास आदि की सहन शक्ति प्राप्त करने के लिए शीत स्नान धूनी तपना, रात्री जागरण, निराहार, निर्जल व्रत, उपवास किये जाते हैं । शय्या त्याग कर भूमि पर शयन करने से भी कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास होता है ।

मन बड़ा चंचल है । वह क्षण भर में यहाँ से वहाँ पहुँचता है । उसकी दौड़ पर नियंत्रण करने के लिए कई प्रकार की साधनाएँ की जाती हैं । मन्त्रों का जप, इष्ट देव का ध्यान, कानों में रुई या उंगली लगाकर अनहद नाद का श्रवण, किसी वस्तु पर दृष्टि जमाकर देखने का त्राटक प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि, शिथिलीकरण मुद्रा, खेचरी मुद्रा, षट्चक्र भेदन, सहस्रार भेदन आदि कितने ही मन को एकाग्र करने के साधन हैं । इन साधनों से एकाग्रता मिलती है और फिर एकाग्रता को जिस मार्ग पर भी लगा दिया जाये उसी दिशा में आश्चर्य जनक सफलता उपलब्ध होती है । विचारों का संयम, मन को विचार रहित, निर्विकल्प करके किया जाता है । विचार शून्यता की स्थिति में चित्त को बड़ा हल्कापन अनुभव होता है ।

**(६) आत्म विस्तार-** अपने 'अहम्' का दायरा संकीर्ण, संकुचित न रखकर बहुत में, सब में अपने को घुला देना आत्मविस्तार कहा जाता है । सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों में देखने की साधना आत्म-विस्तार के लिये की जाती है । अद्वेत भाव यही है । अपने को अलग सत्ता न मानकर समाज का एक अंग मात्र मानना समाज के हित अनहित में अपना हित अनहित देखना, विश्वात्मा में परमात्मा में अपने को घुला देना, यहाँ आत्म-विस्तार का दृष्टिकोण है ।

ऐसे व्यक्ति अपने कामों को लोक सेवा के साथ जोड़ देते हैं, उनके हर एक काम में लोक-कल्याण की प्राथमिकता रहती है । शरीर यात्रा के लिए वे जीविका उपार्जन करते हैं । पर उसमें इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि समाज का रत्ती भर भी अहित करके वह जीविका न कमाई गई हो । उनकी विचार प्रणाली और कार्यप्रणाली में लोक हित को सर्वोपरि स्थान मिलता है । अपनी शारीरिक मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, आत्मिक शक्तियों का अधिकाधिक भाग वे लोक कल्याण में लगाते हैं । ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' उनकी मान्यता होती है । सबको वे अपना कुटुम्बी मानकर उनसे प्रेम करते हैं, लोगों के हित के लिए, सुख के लिए, सुधार के लिए, कल्याण के लिए, उन्हें सदा इच्छा बनी रहती है दूसरों के लाभ में वे अपना लाभ और दूसरों की हानि में वे अपनी हानि देखते हैं ।

चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, अश्विनीकुमार, आदि जो भी जीवन भर चिकित्सा शास्त्र की शोध में लगे रहे नागार्जुन ने रसायन क्रिया की शोध की, आर्यभट्ट आदि ने खगोल विद्या की शोध की, पाणिनी ने व्याकरण रचा, व्यास जी ने पुराण बनाये । नारद जी संगीत के, द्रोणाचार्य, विश्वामित्र परशुराम आदि शास्त्र विद्या के आचार्य थे, वात्सायन ने काम शास्त्र की शोध की । इसी प्रकार अनेकों योगीजन लोककल्याण के लिए निरन्तर लगे रहते थे, जो वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा तथा अनेक प्रकार से अन्य कार्यों द्वारा जनता जनार्दन के लिए उपयोगी कार्य किया करते थे । नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय उनके द्वारा चलाये जाते थे, जिनमें देश देशान्तरों के छात्र विविध प्रकार की शिक्षायें प्राप्त करने के लिए आया करते थे । इस प्रकार की लोक सेवा को कितने ही योगियों ने अपनी साधना बना लिया था । दधीचि ऋषि ने तो लोक कल्याण के लिए अपनी हड्डियाँ तक दे दीं ।

दान देना, नित्य देना भारतीय संस्कृति की विशेषता है । इस देश में एक से एक बड़े दानी हुए हैं । दान का आधार त्याग, परोपकार, सेवा, लोक कल्याण है । यह आत्मविस्तार ही है । इस साधना में अगणित साधकों को लगे हुए हम देखते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**(७) ब्रह्म परायणता-** आत्मा का प्रधान गुण सत् है । सतोगुण ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है । दया, करुणा, वात्सल्य, स्नेह, सहृदयता, आत्मीयता, उदारता सेवा सहायता आदि सतोगुणी स्वभाव ब्राह्मी स्थिति में जाकर बनते हैं । मूढ़ता एवं अहंकार के तम, रज से ऊपर उठकर प्रेम के, भक्ति क्षेत्र में जब मनुष्य प्रवेश करता है, तो उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होने लगता है । आत्मा की वाणी सुनना और उस ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार अपने विचार और कार्यों को बना लेना, सच्चा ईश्वर आराधन है । ऐसे सच्चे भक्तों को अन्तःकरण में बैठा हुआ परमात्मा अपनी शरण में ले लेता है और उन पर अपार अध्यात्मिक आनन्द की वर्षा करता है । यह परस्पर सन्तोष का प्रत्यक्ष आदान-प्रदान ही ब्रह्म परायणता है । जीव आत्मा को सन्तुष्ट करता है, आत्माजीव को सन्तुष्ट करती है । यही आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है ।

गीता में भगवान ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाते हुए बताया है कि यह समस्त विश्व मेरा ही रूप है । जो व्यक्ति उस विराट रूप दर्शन की भावना को अपना लेता है वह उसी लाभ को प्राप्त करता है, जो भगवान द्वारा विराट् रूप दिखाये जाने पर अर्जुन को प्राप्त हुआ था । यह विश्व भगवान का रूप है, इसलिए भगवान की जिस भाव से पूजा की जानी चाहिए उसी भाव का व्यवहार संसार के प्राणियों के साथ हमारा होना चाहिए । सर्वश्रेष्ठ चित्रों को मात कर देने वाला संसार का सौन्दर्य सच्चे भक्त को हर घड़ी प्रसन्नता प्रदान करता है । अपने चारों ओर भगवान को फैला हुआ सौन्दर्य देखकर वह परम सन्तोष, आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव करता रहता है । यहाँ परमानन्द की प्राप्ति है । इस परमानन्द को अनेकों साधक अनेक साधनाओं द्वारा प्राप्त करते हैं ।

विभिन्न सम्प्रदाओं में असंख्य प्रकार की अगणित साधनाएँ हैं । उन समस्त साधनाओं का उद्देश्य मनुष्य की अन्तर्भूमि में उपरोक्त सात संस्कार जमाना है । जब यह संस्कार जम जाते हैं तब इन साधनाओं की आवश्यकता पूरी हो जाती है ।

# सम्पन्नता के चार आधार

बलों का उपार्जन ही सिद्धि प्राप्ति का राज मार्ग है । जो बलवान है वही सिद्ध है । जिसमें आत्म बल है, उसे ही तो आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । बलवान की सहायता लेकर निर्बल लोग सुख प्राप्ति की आशा लगाते हैं । जो बलवान हैं उन्हें इस प्रकार किसी का पराश्रित नहीं रहना पड़ता । सिद्धि की सहायता के लेने के लिए दूसरों सिद्धों को तलाश करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि स्वयं सिद्धि बनें, स्वयं सिद्धियाँ प्राप्त करें । जिससे दूसरों का सहारा तकने की बजाय अपने ही बाहुबल से अपना कार्य चल सके ।

अमृत, पारस, आकाश में उड़ना, अदृश्य होना, शरीर बदल कर पशुपक्षी बन जाना, भूत भविष्यत जान लेना, जैसी संदिग्ध एवं अनिश्चित सिद्धियों को, बहुत ऊँची श्रेणी की चीजों को प्राप्त करने की एक दम अभिलाषा न करनी चाहिए । सीढ़ी-सीढ़ी ऊपर चढ़ने से पर्वत चढ़ा जा सकता है । कदम-कदम आगे बढ़ाकर लम्बी मंजिल पार कर ली जाती है । हमें पहले उन सीद्धियों को प्राप्त करना चाहिए जो सुविधा पूर्वक, सीधे-साधे तरीकों से प्राप्त की जा सकती है और जिनके द्वारा इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द उपलब्ध किया जा सकता है ।

सुखी, समृद्ध, सम्पन्न बनने के लिए हमें दूसरों के ऊपर निर्भर नहीं रहना चाहिए । दूसरों की दी हुई सहायता एक दो प्रयोजनों को पूरा कर सकती है । बार-बार एवं हर काम के लिए दूसरों का आश्रय कहाँ तक लिया जा सकता है ? और दूसरे भी कहाँ तक उसकी मदद कर सकते हैं ? ओस चाटने से काम नहीं चल सकता, जलाशय की व्यवस्था करके ही नित्य बार-बार लगने वाली प्यास के कष्ट से बचा जा सकता है । अपने बाहुबल से उपार्जित शक्तियाँ ही स्थायी रूप से क्लेश निवारिणी एवं सुखदायिनी हो सकती हैं । इस बलवान बनने शक्ति संचय करने, की ओर हमारी प्रवृत्तियों को अग्रसर होना चाहिए । अब नीचे की पंक्तियों में बलोपार्जन के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जाता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**(१) शारीरिक बल-** शारीरिक व्यवस्थाओं से छुटकारा पाने और स्वस्थता का आनन्द भोगने के लिए हमें शारीरिक बल एकत्रित करना चाहिए सके लिए (१) आहार की सावधानी (२) रहन सहन में विवेक शीलता (३) शक्तियों का उचित मात्रा में खर्च (४) मानसिक सन्तुलन (५) विकृति का परिगर्जन इन पाँच उपायों की आवश्यकता है । इन पाँच उपायों से बिगड़ा स्वास्थ्य सुधर सकता है और सुधरा स्वास्थ्य चिरस्थायी रह सकता है ।

आहार की सावधानी में, खुलकर भूख लगने पर ही भोजन करना, भूख से कम खाना, भोजन को भगवान का प्रसाद समझ कर अमृत भावना के साथ प्रसन्नतापूर्वक खाना, भली प्रकार चबाकर खाना, सात्त्विक आहार ग्रहण करना यह पाँच नियम ध्यान रखने योग्य हैं । क्या वस्तु खानी चाहिए या न खानी चाहिये ? इस सम्बन्ध में बड़े-बड़े ग्रन्थ मौजूद हैं पर उन सार यह है कि ताजे, सजीव, पौष्टिक शुद्ध रुचिर, एवं श्रमोपार्जित पदार्थ स चाहिए । घी तेल मसाले, अग्नि द्वारा जो चीजें बहुत तली जलाई एवं भूनी जाती हैं वे हानिकारक हो जाती है ताजे फल, हरे शाक, मेवे, दूध, दही, दलिया, चावल, दाल, रोटी जैसी सात्त्विक चीजें ठीक हैं । एक साथ बहुत प्रकार के पदार्थ न खाये जांय, थाली में बहुत तरह की चीजों की भरमार न होनी चाहिए अन्याय से लिया हुआ अशुद्ध, घृणित व्यक्तियों द्वारा बताया हुआ भोजन त्याज्य है । सूत्र रूप में बताई हुई इन थोड़ी बातों को पूरी सावधानी के साथ बरता जाय तो वह स्वास्थ्य की समस्या को हल करने में बड़ा सहायक होता है । तन्दुरुस्ती का अधिक आधार भोजन पर निर्भर है पर हम अपनी असावधानी से उसे नष्ट करते रहते हैं ।

**(२) समाज बल-** दूसरे व्यक्तियों के असहयोग विरोध एवं आक्रमण से होने वाले कष्ट तथा सहयोग, सम्मिलित एवं सहायता द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ, यह हमारी सामाजिक स्थिति के ऊपर निर्भर हैं । मनुष्य एकाकी नहीं है वरन् वह सामाजिक प्राणी हैं । दूसरों द्वारा अपने साथ जो व्यवहार किया जाता है, उसकी प्रतिक्रिया मन पर हुए बिना नहीं रहती प्रशंसा, समर्थन एवं सहयोग से कलेजा ढाल हो जाता है । छोटे व्यक्ति भी आगे बढ़ जाते हैं, अल्प साधन होते हुए भी उन्हें सुख-सन्तोष की अनुभूति होती है ।

सामाजिक बल संचय करने के लिए (१) मधु भाषण (२) सेवाभाव (३) उच्च चरित्र (४) पराक्रम (५) व्यवहार कुशलता इन पाँच चीजों की आवश्यकता होती है । विनय नम्रता शिष्टाचार, मधुर भाषण, मधुर व्यवहार से पराये अपने हो जाते हैं । जहाँ मिठास होती है वहाँ चीटियाँ और मक्खियाँ अपने आप जमा हो जाती हैं, जिसे मधुर व्यवहार करना मीठा बोलना आता है उसे दूसरों की सद्भावनाएँ अनायास ही प्राप्त होती हैं । जो दूसरों की सेवा करता है, उसे अपने लिए सेवा भाव प्रस्तुत करने वालों की कमी नहीं रहती । उपकार, भलाई और अहसान करके दूसरों का हृदय जीता जा सकता है । जिसका हृदय जीत लिया गया है वही सच्चा अनुचर है । उच्च चरित्र, सदाचार, व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता, निस्वार्थता, त्याग परायणता एवं खरा व्यक्तित्व मनुष्य की ऐसी विभूतियाँ हैं जिनके सामने विरोधियों के सब हथियार झूठे पड़ जाते हैं । शत्रुओं को भी उनका मान करना पड़ता है, उनके बचनों में ऐसा बल होता है जिसे मानने के लिए दुराग्रहियों को भी विवश होना पड़ता है । पराक्रमी, पुरुषार्थी चेतन्य, उद्योगी, क्रियाशील स्वभाव के मनुष्य पग-पग पर सफलताएँ प्राप्त करते हैं । जिस काम को ऐसे लोग हाथ में लेते हैं, अपनी लगन के कारण तुर्त-फुर्त पूरा कर डालते हैं उनके इस गुण पर मुग्ध होकर सब लोग उनसे आशा रखना चाहते हैं उनका सहारा, अपनी कठिनाइयों का हल करने के लिए तकते हैं । यह क्षमता शत्रुओं को डराने और मित्रों को आकर्षित करने में बड़ी कारगर होती है । व्यवहार कुशलता के द्वारा रूठे को मनाना, भ्रम में पड़े हुए को समझाना, भटके हुए को राह पर लाना, आसान है । दूसरों की मनोवृत्तियों को परख कर जो लोग उचित व्यवहार करते हैं वे बड़े-बड़े संकटों को टाल देते हैं और बड़े-बड़े लाभों को प्राप्त कर लेते हैं, इन पाँच उपायों के द्वारा मनुष्य को सामाजिक बल प्राप्त होता है । सामाजिक कुरीतियाँ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


और राजनैतिक दासता भी इन्हीं उपायों से दूर की जाती है ।

**(३) अर्थ बल-** आज तो अर्थ युग है, पैसे की महिमा इतनी बढ़ गई है कि हर बात में पैसे की ही प्रधानता है । पैसे से दुष्प्राप्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और बड़ी-बड़ी मुश्किलें आसान हो जाती हैं, पैसे की आवश्यकता सब कोई अनुभव करता है, परन्तु प्राप्त वही कर पाते हैं, जिनमें उसे प्राप्त करने की क्षमता है । अर्थोपार्जन पाँच बातों पर निर्भर है: (१) उत्पादक श्रम (२) व्यवस्था कौशल (३) मितव्ययता (४) जागरूकता (५) विश्वासनीयता । व्यापार, नौकरी, कृषि, शिल्प आदि शारीरिक और चिकित्सा, वकालत, उपदेश आदि मानसिक उत्पादक श्रमों के बदले में धन मिलता है । शारीरिक और मानसिक श्रम का एवज ही धन है । शरीर और बुद्धि को इस प्रकार से शिथित करने की आवश्यकता है कि साधारण श्रम से उचित मात्रा में धन कमाया जा सके । बिना इस प्रकार की योग्यता केवल बोझा ढोने के शारीरिक श्रम से तो मनुष्य गधे और बैल की बराबर भी नहीं कमा सकता है । व्यवस्था करने की कुशलता, मैनेजरी की योग्यता, बहुत बड़ी योग्यता है । कम श्रम में अधिक काम होना, शक्ति का एक कण भी अपव्यय न होने देना, आवश्यकताओं को अविलम्ब पूरा कर देना, पूंजी, श्रम, साधन और निकासी का ठीक समन्वय रखना, व्यवस्थापक की कुशलता है । इन चारों में से एक भी कम पड़ जाने पर काम रुक जाता है इसलिए चतुर मैनेजर हर काम में इन चारों को जुटाने में सफलता प्राप्त किये रहता है, विज्ञापन और सजावट भी व्यवस्था का एक अंग है । मितव्यता, कम खर्ची, केवल आवश्यक वस्तुओं के लिए ही पैसा खर्च करना, धनी बनने का प्रमुख नियम है । फिजूल खर्ची से कुबेर के भी खजाने खाली हो सकते हैं । जागरूकता, सावधानी, सर्तकता रखे बिना कोई व्यक्ति धनी नहीं हो सकता । बदलती हुई परिस्थितियों के चढ़ाव उतार को बारीकी और गम्भीरता से देखकर जो अपनी कार्य पद्धति में समयानुसार हेर-फेर करता है वही लाभ उठाता है । निकट भविष्य के अच्छे और बुरे अवसरों की जो ठीक कल्पना कर लेता है और पहले से ही उनके लिए तैयारी करता है वह जीतता है । सजग आदमी आमतौर से धोखा नहीं खाते और न मौका चूकते हैं, । विश्वास व्यापार की जान है । जो व्यापारी अपने सम्बन्ध में और अपने कारोबार के सम्बन्ध में विश्वास यश और प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है उसके ग्राहक बढ़ते रहते हैं, उसके ग्राहक बढ़ते रहते हैं, साथ ही लाभ भी बढ़ता रहता है । अर्थ उपार्जन में यह पाँच साधन प्रमुख हैं ।

**(४) बुद्धि बल-** बुद्धिबल उपरोक्त तीनों बलों से सूक्ष्म होने के कारण सब प्रधान हैं । वे तीनों भी आंशिक रूप में बुद्धिबल पर निर्भर करते हैं । यदि बुद्धिमत्ता में कमी हो तो उन तीनों का उपार्जन कठिन है, यदि किसी प्रकार वे प्राप्त भी हो जावें तो उनका चिरस्थायी रहना कठिन है । इसलिए अपने आपको सुशिक्षित, बुद्धिमान और क्रिया कुशल बनाने का सतत् प्रयत्न करना चाहिए । बुद्धिबल के लिए पाँच बातें आवश्यक हैं-(१) ज्ञान प्राप्त की तीव्र इच्छा (२) तर्क का आश्रय (३) अध्ययन (४) संगति (५) सूक्ष्म निरीक्षण और मनन ।

जिसे जानने की उत्कट अभिलाषा है वे एक दिन अवश्य जानकार बनकर रहेगा, उसकी यह इच्छा ही ऐसे साधन जुटा देगी, जिससे अभीष्ट ज्ञान को प्राप्त करना सुगम हो जाय । हठ, दुराग्रह, भ्रम और अन्ध विश्वास को छोड़कर जो तर्क और प्रमाणों के आधार पर सत्-असत् का निर्णय करता है वह वस्तु स्थिति तक पहुँच जाता है, उसकी बुद्धिमत्ता में बढ़ोत्तरी होती है । इच्छित विषय की पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने से तथा उस विषय की जानकारी को समीपता में रहने से, उस प्रकार के कार्यों में क्रियात्मक हाथ बटाने से ठोस ज्ञान मिलता है । सूक्ष्म दृष्टि से परिस्थितियों को देखने उनकी तह तक पहुँचने की कोशिश करते रहने से नई-नई बातें, नये-लये तथ्य सूझ पड़ते हैं । जो खोज में रहता है वह अभीष्ट स्थल तक पहुँच जाता है ।

''मैं सब जानता हूँ, मेरी अकल सबसे आगे है, मेरी ही बात सबसे ऊपर है, मैं ही सही हूँ और सब गलत हैं'' इस प्रकार का दुराग्रह और अहंकार

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


रखने वालों की बुद्धि विकास के मार्ग को बन्द कर देती है । इसलिए जिन्हें बुद्धि बल के सम्पादन की इच्छा है उन्हें इस प्रकार के अहंकार से पूर्णतया बचा रहना चाहिए । विभिन्न विषयों की गहरी जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी जैसी अभिरुचि रखनी चाहिए और तर्क द्वारा परीक्षा करके हर बात का खरा खोटापन पर वते चलना चाहिए । अधिक जानकारी, अधिक वास्तविक जानकारी अधिक उपयोगी जानकारी इन तीन आधारों पर जो अपने ज्ञान को बढ़ाता रहता है वह एक दिन बुद्धिबल सम्पन्न हो जाता है ।

जिस प्रकार चार पाये लगाने से एक पूर्ण पलंग बनता है, उसी प्रकार चारों प्रकार के बलों से मिल कर पूर्ण बल बनता है । हमें इस सर्वांग पूर्ण बल को प्राप्त करने और उसे बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशीन रहना चाहिए यह बल जैसे-जैसे बढ़ेगा वैसे ही वैसे जीवन अधिक साधन सम्पन्न बनता जायेगा और जिन वस्तुओं के लिए लोग तरसते हैं, वे अनायास ही प्राप्त होने लगेगी । सिद्धों की सहायता इस लिए ढूँढ़नी पड़ती है कि जीवन की आवश्यक वस्तुएँ आवश्यक सुविधाएँ अपने बलबूते पर नहीं मिल पाती । जब शक्ति सम्पन्नता अपने में ही स्थगित हो जायेगी तो परमुखापेक्षी एवं पराश्रित न रहना पड़ेगा, सिद्धों की सहायता से कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा सबलता द्वारा बहुत प्राप्त करने का मार्ग उत्तम है । हमें सबल बनने के मार्ग को ही महत्त्व देना चाहिए और योग्यताएँ एकत्रित करने में जुट जाना चाहिए । यही सुखदायक सिद्धियाँ प्राप्त करने का ठीक रास्ता है ।

## शक्ति से सिद्धि

पिछले पृष्ठों पर छपे हुए लेखों को पढ़कर पाठक यह जान चुके होंगे कि अलौकिक सिद्धियाँ लोक हित की दृष्टि से न तो आवश्यक हैं न उपयोगी । जिनकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊंचे दर्जे की नहीं है वे न तो उन्हें आसानी से पा सकते और यदि किसी प्रकार प्राप्त भी कर लें तो उनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही प्राप्त कर सकते हैं । जिन जीवन मुक्त पुरुषों को वे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं वे उनका उपयोग कर्म व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने के लिए नहीं करते ।

इतना जान लेने के बाद अब हमें यह जानना है कि सिद्धि नाम की कोई वस्तु है या नहीं ? यदि है तो उसकी सीमा और मर्यादा क्या है ? और इन सिद्धियों के प्राप्त होने से क्या लाभ हो सकता है ? इस लेख में इन्हीं प्रश्नों पर विचार करेंगे ।

हम पहले ही बता चुके हैं कि परमात्मा के भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं हैं । उसकी झोली में एक से एक अनोखे रत्न छिपे पड़े हैं । जो आवश्यकता, योग्यता एवं परिश्रम के आधार पर मनुष्य को प्राप्त होते हैं । आत्मा आखिर परमात्मा का ही एक अंश है । परमात्मा की शक्तियाँ सूक्ष्म रूप से उसमें भी मौजूद हैं । सरोवर के जल में जो तत्त्व है वे ही पानी की एक बूँद में भी मौजूद हैं, जो मुख प्रचंड अग्नि ज्वाल का है, वही चिनगारी का भी है । चिनगारी एवं बूँद छोटी हैं सही, अल्पशक्ति वाली हैं- सही, पर उनमें वह क्षमता मौजूद है कि अवसर मिलने पर अपने को महान रूप में प्रकट कर सकती हैं । अग्नि के ऊपर जब राख पड़ी रहती है तो वह निष्प्रभ हो जाती है न तो बाहर से देखने में वह चमकती है और न छूने से जलाती है, इसका कारण वह राख का पर्दा-हट जाये, सख को झाड़ दिया जाये तो प्रज्वलित अंगार दृष्टिगोचर होने लगेगा । वह चमकेगा भी और जलावेगा भी । यही स्थिति आत्मा की है, कषाय कल्मष, पाप, ताप एवं विषय विकारों की राख ने उसके तेज को ढक दिया है । इसी से आत्मा निर्बल, अशक्त, निस्तेज एवं दीन हीन दिखाई पड़ती है । जब इस मायामय आवरण को वह हटा देती है, तो उसका वास्तविक रूप चमकने लगता है । तब उसमें अनेक सिद्धियों का आभास दिखाइ देने लगता है ।

सबलता स्वयं एक चमत्कारी सिद्धि है जिसका शरीर सबल, हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ एवं निरोग होगा उसके शरीर में हम शारीरिक चमत्कारों के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं । भरा हुआ चेहरा, गुलाबी गाल चमकते हुए नेत्र खिला हुआ मुँह मुस्कराते हुए ओठ अपनी आकर्षक छटा दिखाते हैं मुखाकृति पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कमल सा खिला होता हैंसने में मोती झड़ते हैं । तेज उत्साह, प्रसन्नता पुरुषार्थ मस्ती उसमें से छलकी पड़ती है । शिला सी छाती हथोड़ों से गढ़ा हुआ सा शरीर, उमंग और प्रौढ़ता से भरा रहता है । उसे जीवन का सच्चा आनन्द मिलता है । इन्द्रियाँ सबल होने के कारण भोगों का आनन्द भी उसे ही मिलता है । गहरी नींद, पत्थर को पचा देने वाली भूख, दाम्पत्य सम्बन्धों में तृप्ति कारक गौरव तीक्ष्ण दृष्टि, जिसे प्राप्त है सचमुच भाग्यशाली है । उसे शारीरिक ''सिद्ध'' कह सकते हैं । अकेला दस से भिड़कर उन्हें पछाड़ देता है और अपनी विजय का डंका बजाता है यह उसकी सिद्धि है । साधारण कोटि के लोग उसके व्यक्तित्व को देखकर ही सहम जाते हैं और कितनी ही मुश्किलें उसकी उपस्थिति मात्र से हल हो जाती हैं । दीर्घ जीवन निरोगता, उपार्जन शक्ति, प्रसन्नता आत्म-विश्वास आदि शारीरिक सबलता की सिद्धियाँ हैं ।

अर्थिक सबलता की सिद्धियाँ आज सर्वत्र सर्वविदित हैं, सब जगह पैसे का बोल वाला है । पैसे के द्वारा मन चाही चीजें खरीदी जा सकती है महल, मकान, मोटर, हाथी, जहाज, नौकर, जेवर जवाहरात, ऐश आराम की एक से एक बढ़िया चीजें खरीदी जा सकती हैं । ऊंचे से ऊंचे दिमागों को खरीदा जा सकता है । बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक कलाकार, डाक्टर विद्वान, विचारक, लेखक, साहित्यिक, धन के द्वारा अपनी मुट्ठी में हो जाते हैं, उनके दिमागों से अपनी मन मर्जी का काम कराया जा सकता है । आज तो यश धर्म और स्वर्ग भी धन द्वारा खरीदे जाने की योजनाऐं चल रही हैं ज बल, असंख्य मनुष्यों का सहयोग, यहाँ तक कि प्राण देने वाले सैनिक तक मोल लिये जाते हैं, खून खरीदा बेचा जाता है । सौन्दर्य, रूप और सतीत्व को खरीद फरोख्त होती है । संसार के बड़े-बड़े सुख आर्थिक सबलता द्वारा प्राप्त किये जाते हैं । यह आर्थिक सबलता की सिद्धि है ।

सामाजिक सबलता, अपने ढंग की अनोखी सिद्धि है । उत्तम अनुकूल एवं सहायक लोगों का साथ होना एक बहुत ही ऊंचे दर्जे का सुख है । स्त्री, पुत्र भाई-बहिन माता-पिता आदि घर के सब बाल-वृद्ध कमत, सन्तुष्ट परस्पर मैत्री सहयोग एवं सद्भाव के साथ रहें तो वह घर ही स्वर्ग के समान आनन्ददायक बन जाते हैं । जिन स्त्री, पुरुषों में, पिता पुत्र में, भाई-भाई में सच्चा प्रेम मौजूद है उनके लिए निर्धनता भी विपुल सम्पन्नता से अधिक सुखदायी है । जिसको समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त है, आदर है, पूछ है, जिसकी सलाह दस आदमी लेते हैं, जिसकी आज्ञा में अनेकों चलते हैं उसे सुखी एवं सन्तुष्ट जीवन का अनुभव होता है । जो समाज कुरीतियों, हानिकारक प्रतिबन्धों, फिजूल खर्चियों एवं अशुद्ध दृष्टि कोण से मुक्त हैं, उसमें रहते हुए पग-पग पर उन्नति एवं सुविधा की व्यवस्था रहती है । इसी प्रकार राजनैतिक दासता से जो समाज मुक्त है, वह दिन-दिन सुखी एवं समृद्ध होता जाता है । जो समाज बलवान है उसके सदस्यों को अनायास ही अनेकों सुख सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं । अंग्रेजों का समाज बलवान है, उस सबलता के कारण किन्हीं कमजोर और पिछड़े हुए अंग्रेजों को भी अनेकों ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जो अन्य समाज में जन्म लेने पर उन्हें नहीं हो सकती थी । हम देखते है कि अच्छे मित्रों की सहायता द्वारा, संगठन के बल से, अनेकों ने आश्चर्य जनक सफलताएँ पाईं । यह सब जन सहयोग सामाजिक सबलता का प्रताप है । सामाजिक बलिष्ठता होने से अनेकों प्रकार के आनन्द मिलते हैं उन्हें सामाजिक सबलता की सिद्धियाँ कहना चाहिए ।

बौद्धिक सबलता के द्वारा अनेकों प्रकार की सम्पत्तियाँ मिलती हैं । विचारवान् बुद्धिवान् मनुष्य सदा ही सब कामों में अगणी रहते हैं । बुद्धिबल से वे अनोखे मार्ग ढूँढ निकालते हैं । व्यापारी, शासक, न्यायाधीश, वकील, डाक्टर, दार्शनिक, विचारक, लेखक, वैज्ञानिक, अन्वेषक यह सब बुद्दि जीवी ही हैं । अपने बुद्धिबल से धन, धरा, पद एवं परमार्थ सभी उपार्जन करते हें और उस उपार्जन से आनन्द का आस्वादन करते हैं बुद्धिमान मनुष्य मन चाही चीज बुद्धिबल के आधार पर प्राप्त करते हैं । धन की, यश की, सुख की, प्रतिष्ठा की, इन्हें कोई कमी नहीं रहती । बुद्धिबल से घर बैठे-बैठे ऐसे कार्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कर डालते हैं जिससे असंख्य जनता का भारी हित हो सकता है । विवेक शक्ति से मनुष्य अपनी निजी उलझनों को सुलझा लेता है । जब कि मूर्ख मनुष्य विपुल वैभव के होते हुए भी दुख और चिन्ता के समुद्र में गोते लगाते रहते हैं, तब विवेकवान मनुष्य स्वल्प साधनों से भी अपने को सुखी, सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने की व्यवस्था कर लेता है । विवेक से, ज्ञान से, सद्भाव से, स्वर्ग तथा मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तुएँ भी मनुष्य को प्राप्त हो जाती हैं । ज्ञान से पवित्र हुआ आत्मा सद्गुणों का पुञ्ज बन जाता है, जिन गुणों के कारण मनुष्य, महात्मा, तपस्वी, महापुरुष धर्मात्मा, परमार्थी, बनता है वे गुण बौद्धिक प्रेरणा से हो आती हैं । बुद्धि आत्मा को परमात्मा बना देती है । ज्ञान द्वारा विष को अमृत बना दिया जाता है । बुद्धि जीवी अपने बुद्धिबल से जिन महत्ताओं को प्राप्त करते हैं वह बौद्धिक सिद्धियों की ही महिमा तो है ।

सबलता को अनेकों भागों में बाँटा जा सकता है और उनके शक्ति खंडों द्वारा प्राप्त होने वाले लौकिक और पारलौकिक सुखों का सविस्तार वर्णन किया जा सकता है । स्थान संकोच से उस विस्तार में न जाकर हमें पाठकों को यह बताना है कि बल ही सुखों का जनक है । बल और सुख आपस में एक दूसरे से पूर्णतया सम्बन्ध है । जिसमें जिस प्रकार का बल होगा वह उस प्रकार के सुखों को अनायास ही प्राप्त कर लेगा । जिसके पास शारीरिक बल है वह शारीरिक सुखों को, जिसके पास सामाजिक बल है वह सामाजिक सुखों का, जिसके पास मानसिक बल है वह मानसिक सुखों को उपलब्ध करेगा जिसके पास तीनों प्रकार के बल हैं वह विविधि सुखों का रसास्वादन करेगा । वह सर्व सुखी रहेगा । बलवान मनुष्य प्रत्यक्ष 'सिद्ध' है । बलिष्ठता का ही दूसरा नाम सिद्धि है ।

आज अनेकों व्यक्ति जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सिद्धों की तलाश में फिरते हैं यदि वे सिद्धों की बजाय बलों की तलाश में फिरें तो उसका अभीष्ट आसानी से पूरा हो सकता है । हम देखते हैं कि साधारणतः लोग दड़ा, सट्टा, फीचर, तेजी-मंदी, भाग्योदय आदि की बात मालूम करने के लिए वे पीर मुरीदों के पास फिरा करते हैं । इन बातों के पूछने का उनका अभिप्राय धनी बना होता है, इस उपाय से वे धन प्राप्त करने की इच्छा प्राप्त करते हैं । पर हम देखते हैं कि इस दुनिया में असंख्यों धनवान भरे पड़े हैं । उन्होंने अपनी योग्यता द्वारा, धन उपार्जन के साधारण मार्ग पर चलकर विपुल सम्पत्तियाँ कमाई हैं, वे नित्य इतना धन कमाते हैं जितना कि पीर मुरीदों की कृपा से मिलने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, जब धनी बनने के राज मार्ग मौजूद है, व्यापारिक योग्यता द्वारा सीधे-साधे तरीके से धन प्राप्त किया जा सकता है तो एक अनिश्चित उलझन में क्या पड़ा जाय ? जब कुएँ से खींच कर जल प्राप्त किया जा सकता है, प्यास बुझाई जा सकती है तो आकाश से बादल बरसने पर जल पीने की अनिश्चित आशा में क्यों उलझा जाये ?

बीमारी दूर करने के लिए झाड़ फूंक करने वाले सयाने दिवाने तलाश किये जाते हैं, सन्तान न होने, होकर मर जाने आदि शारीरिक कष्टों के लिए सिद्धों की शरण जाते हैं इन कष्टों को हम स्वास्थ्य के नियमों पर चलकर, उत्तम चिकित्सा द्वारा दूर कर सकते हैं । असंख्यों स्वस्थ्य एवं हट्टे कट्ठे ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिनको शारीरिक व्यथा से छुट्टी रहती है । जब अगणित मनुष्य स्वस्थता के राजमार्ग पर चल कर शारीरिक सुख भोग रहे हैं तो हम वैसा क्यों नहीं कर सकते इसी प्रकार सामाजिक अप्रिय परिस्थितियों को जीतने के लिए, मरण, मोहन ,वशीकरण, शत्रु विजय, मुकदमा जीत आदि के लिए तन्त्र-मन्त्र, अनुष्ठान आदि किये जाते हैं पर हम देखते हैं कि कितने ही लोग अपनी कुशलता और योग्यता से इस प्रकार की परिस्थितियों से मुक्त रहते हैं । कोई कभी झंझट आ भी पड़ता है तो उसे अपनी प्रतिभा द्वारा सुलझा लेते हैं । वशीकरण के दस तावीज जिस काम को नहीं कर सकते उसे वे एक मुस्कान, एक भेंट में पूरा कर लेते हैं । जब अनेकों अपनी प्रतिभा द्वारा सामाजिक कठिनाइयों से छुटकारा पाकर आनन्द लाभ कर रहे हैं तो हमें उस राजमार्ग को छोड़कर इधर-उधर भटकने की क्या जरूरत है ? यही बात

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मानसिक सुखों के बारे में हैं अतुल सम्पदा से जो सुख मिलता है, उससे अधिक सुख निर्धनता की दशा होते हुए भी 'सन्तोष' द्वारा प्राप्त हो सकता है । मायाग्रस्त, दिमागी उलझनों में उलझे हुए लोग निरर्थक बातों के लिए बड़े चिन्तित, उद्विग्न व्याकुल और बैचेन फिरते हैं, पर जिनका दृष्टिकोण सुलझा हुआ है जो तत्त्वदर्शी और विज्ञानी है, उन्हें बड़ी-बड़ी बाधाएँ आने पर भी कुछ बेचैनी नहीं होती । कायर लोग अंधेरी कोठरी में चूहों की खड़बड़ सुनकर भय से सुन्न हो जाते हैं दूसरी ओर रणस्थली में सनसनाती गोलियों के बीच, तलवारों की छाया में हँसने वाले मस्त रहने वाले, और गाढ़ी निन्द्रा लेने वाले वीर भी हैं । बुद्धि का अन्तर है । इसी बुद्धि भेद से मनुष्य मान अपमान प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा लघुता महत्ता, सुख-दुख और भाव-अभाव प्राप्त करते हैं । जिन भावों और चिन्ताओं से छूटने के लिए लोग सिद्धों की तलाश करते हैं उन्हें अनेकों ही व्यक्ति अपने विवेक बल से ही ठीक कर लेते हैं, क्या हम अपने बुद्धि बल को जाग्रत करके सुविधा-पूर्वक अनेकों मानसिक क्लेशों से मुक्त नहीं हो सकते ? यदि हो सकते हैं तो वह सर्व अनुमोदित मार्ग हमें ग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए ?

बहुधा ऐसे लोग सिद्धियों की तलाश में फिरते हैं जो उन योग्यताओं सबलताओं और शक्तियों से रहित होते हैं जिनके द्वारा सम्पदाएँ प्राप्त हो सकती है । आलस्य, अनुत्साह, प्रयत्न में अरुचि, भ्रम अन्ध-विश्वास आदि के कारण वे 'श्रम' द्वारा प्राप्ति के वीरोचित मार्ग पर चल कर अभिलाषा पूर्ति का साहस नहीं कर पाते । कोई ऐसा मार्ग ढूँढना चाहते हैं कि जिससे योग्यता सम्पादन करने का भ्रम न करना पड़े और कोई दूसरा किसी दैवी उपाय से उन वस्तुओं को प्राप्त करा दे, जिनकी वे इच्छा करते हैं । यह कल्पना व्यर्थ की कल्पना है । यह अस्वाभाविक और ईश्वरीय नियमों की विरुद्ध इच्छा है । हमें वही मिलेगा जो हमारी योग्यता और मेहनत के अनुसार हमें मिलना चाहिए । इस विश्व में कर्म का नियम बड़ा अटूट है सन्त कबीर ने स्पष्ट कर दिया है-

**ईश्वर के दरबार में, वस्तु कछु न नाहिं ।**
**कर्म हीन कलपत फिरत चू चाकरी मांहि ।।**

हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं । जिन वस्तुओं को मानव जाति के लिए सुखकर और हित कर समझा है उनके लिए परमात्मा ने सबको सुविधा दी है । पर योग्यतानुसार सबको मिलता है । हमें योग्यताऐं सम्पादन करनी चाहिये, अपनी शक्तियाँ बढ़ानी चाहिए । जब बेटा बालिग हो जाता है तो पिता के कारोबार पर उसका अधिकार अपने आप हो जाता हैं । इसी प्रकार जैसे-जैसे हम बालिगी का प्रमाण पेश करते जायेंगे वैसे-वैसे वे सम्पदाएँ हमें प्राप्त होती जायेंगी जो अधिकारी पात्रों को प्राप्त होता रहता है । सबलता ही सिद्धि है हमें अपने को सब दृष्टियों से सबल बताने का प्रयत्न करना चाहिए । सबल व्यक्ति स्वयं सिद्ध है । उसे नाना प्रकार का सुखदायक सिद्धियाँ स्वयंमेव प्राप्त हो जाती हैं ।

## योग शक्तियों का उद्‌गम

मनुष्य शक्तियों का पुञ्ज है । अज्ञान एवं माया के बन्धनों ने उसकी महानता को छिपा रखा है । इन कशाय-कल्मषों से मनुष्य जैसे-जैसे छुटकारा प्राप्त करता जाता है वैसे ही उसकी दिव्य शक्तियाँ निखरती चली जाती हैं । एकाग्रता एवं अभ्यास द्वारा मानसिक शक्तियों को बढ़ाया जा सका है उनके द्वारा चमत्कारिक कार्य सम्पादित किये जा सकते हैं ।

श्रद्धा और विश्वास अध्यात्म जगत के दो अचूक उपादान हैं । जैसा लोहा और अग्नि इन दो वस्तुओं के द्वारा अनेकों प्रकार के हथियार, औजार, बर्तन बनाये जा सकते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा और विश्वास के आधार पर अनेकों आध्यात्मिक चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । अंधेरी रात के समय सुनसान जंगल में मामूली झाड़ी भूत बन जाती हैं और उससे डर कर मनुष्य बीमार पड़ जाते हैं और कई बार मर तक जाते हैं । अपना विश्वास ही अपने लिए भूत का रूप धारण कर सामने आ उपस्थित होता है उसकी शक्ति इतनी प्रचंड होती है कि बीमार कर देना, मार डालना, उसके लिए बायें हाथ की बात है ।

चूहे के काटने पर एक आदमी यह विश्वास करके मर गया कि उसे सांप ने काट खाया है । एक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


व्यक्ति साधारण दबा पीकर मर गया, कारण यह था कि दवा की बोतल पर गलती से जहर का लेविल किसी ने चिपका दिया था । रोगी ने समझा कि मैंने जहर पी लिया है, इसी भ्रम में उसकी मृत्यु हो गई । एक बार योरोप के नगर में एक अपराधी को मृत्यु की सजा दी गई । डाक्टरों ने इस अपराधी को अपनी क्रिया द्वारा मार डालने की सरकार से स्वीकृति ले ली । अपराधी को एक मेज पर लिटा कर उसकी आँखों से पट्टी बाँध दी गई और गले के पास एक छोटी पिन चुभो दी गई जिससे एक दो बूँद खून बहाया गया, उसी जगह पर ऊपर से एक पतली नली द्वारा पानी बहाया गया जो उसकी गरदन पर होता हुआ मेज के नीचे टपकने लगा । अपराधी को विश्वास कराया गया कि उसकी नस काट दी गई है जिसमें होकर खून बह रहा है उसने डॉक्टरों की बात पर विश्वास कर लिया और केवल दस पांच बूँद खून निकलने पर ही अपने विश्वास के कारण कुछ ही देर में मर गया ।

बहुत से रोगी साधारण रोग होने पर भी भय घबराहट और आशंका से उद्विग्न होकर अपने रोग को बढ़ा लेते हैं और उसका दुष्परिणाम भोगते हैं । जहाँ विश्वास से अनिष्ट कर स्थिति आती हैं, वहाँ दुखों का नाश भी हो जाता है । लोकमान्य तिलक के अंगूठे का एक बार गहरा आपरेशन होना था । डाक्टरों ने कष्ट अधिक होने की सम्भावना के कारण क्लोरोफार्म सुंघाने की व्यवस्था की । लोकमान्य तिलक ने डाक्टर से कहा आप इतना झंझट न कीजिए मैं अपनी रुचि की किसी पुस्तक को पढ़ने में व्यस्त हो जाऊँगा आप आपरेशन कर लेना । तिलक पुस्तक पढ़ते रहे डाक्टर अंगूठा काटता रहा उन्हें कष्ट का भान न हुआ, अविचल भाव से हाथ ढीला छोड़े हुए वे अध्ययन में लगे रहे । मन:शक्ति की महिमा अपार है, उसके द्वारा बहुत सी अद्‌भुत बातें प्रत्यक्ष हो जाती हैं ।

मन:शक्ति उत्पादक शक्ति है । कल्पना के आधार पर पहले योजनाएँ बनाई जाती हैं फिर वे प्रत्यक्ष रूप से सामने आ जाती हैं । कोई मकान या कारखाना पहले किसी के दिमाग में बनता है । उसका नक्शा, ढांचा, आकार-प्रकार, जिस ढंग का मन में बनाया जाता है, हूबहू वैसा ही बनकर कुछ समय में आँखों के आगे आ खड़ा होता है । मनुष्य जिस प्रकार की बातों को सोचता रहता है वैसी ही परिस्थितियाँ उसके जीवन में सामने आती रही हैं । मन की उत्पादन शक्ति आश्चर्य जनक है, जो बीज मन: क्षेत्र में बोए जाते हैं वे नेत्रों के सामने मूर्त रूप फलित होते हैं । मनुष्य अपने विचारों द्वारा अपने को साधु संयासी, महात्मा, विद्वान, और सुसम्पन्न बनाता है और अपने ही विचारों द्वारा पागल, मूर्ख, सनकी, विक्षिप्त, कुकर्मी, तथा दीन-हीन बनता है । अपने को उठाना और गिराना अपने हाथ की बात है । इतना ही नहीं संसार में महायुद्ध द्वेष, कलह, अशान्ति, अभाव, उपद्रव तथा सुख-शान्ति सद्‌भाव उत्पन्न करना मनुष्य के हाथ की बात है । स्वर्ग या नरक प्राप्त करना, ईश्वर और मुक्ति को उपलब्ध कराना, केवल मात्र मन:शक्ति का खेल है, मन जिधर भी ढुलक पड़ता है उधर ही तूफानी गति से आगे बढ़ता जाता है ।

हम अपनी ''मानवीय विद्युत के चमत्कार'' पुस्तक में सविस्तार बता चुके हैं कि मनुष्य शरीर के परमाणु किस प्रकार अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेते हैं । हमारे एक परम सात्त्विक प्रकृति के मित्र ने ऐसा मकान किराये पर लिया जिसमें पहले एक वेश्या रहा करती थी । उस मकान के पहुँचने पर उनको रात भर कामुकता एवं वासनापूर्ण सपने आते और प्राय नित्य ही स्वप्न दोष हो जाता । उन्होंने अपना हाल हमें बताया विचार के पश्चात् यही निष्कर्ष निकला कि उस मकान में रहने वाली वेश्या के परमाणुओं द्वारा कोई अदृश्य मूर्तियाँ बन गई होंगी और वे अपनी जननी वेश्या की भाँति उस मकान में रहने वाले पर प्रभाव डालती होंगी, उन सज्जन को वह वेश्या दिखाई गई जो पहले उस मकान में रहा करती थी तो उन्होंने बताया कि हूबहू ऐसी ही स्त्री मुझे स्वपन में दिखाई पड़ती है । वह मकान छोड़ देने पर उनका स्वप्नदोष दूर हो गया । जिन स्थानों में जैसे स्वभाव के मनुष्य रहते हैं उनमें उस तरह का वातावरण छा जाता है । उनके परमाणु अपनी स्वतंत्र सत्ता बना लेते हैं और वहाँ आने वालों पर अपना प्रभाव डालते हैं इसीलिए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


व्यभिचार, जुआ, नशेबाजी, आदि के अड्डों पर आने जाने से कितने ही मनुष्य उस प्रभाव में आ जाते हैं । जिन घरों में हत्या, यंत्रणा या अन्य भयंकर काम होते हैं या हुए हैं वहाँ जाने पर स्वभावत: भय लगता है और वहाँ से भागने की इच्छा होती है । कितने ही घर ऐसे होते हैं जिन्हें अशुभ कहा जाता है उनके पीछे कोई ऐसा ही दु:खदायी इतिहास जुड़ा होता है ।

कई बार किन्हीं प्रबल इच्छा शक्ति वाले व्यक्तियों के परमाणु अनुकूल अवसर पाकर स्वतन्त्र सत्ता बना लेते हैं और जहाँ वह आदमी रहता था वहीं एक अदृश्य मूतियों की भाँति रहने लगते हैं । वह व्यक्ति चाहे जीवित हो, चाहे मर गया हो, चाहे मर कर एक या अनेक जन्म ले चुका हो पर उसके परमाणु अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रह सकते हैं । भूत प्रेतों के रूप में ऐसी ही ''परमाणु प्रति मूर्तियाँ'' कभी-कभी हमें दिखाई पड़ती हैं । जहाँ मनुष्य का अधिक आना-जाना नहीं होता जहाँ अग्नि नहीं जलती या जहाँ सुनसान रहता है, उन स्थानों पर ऐसी प्रतिमूर्तियाँ बहुत समय तक जीवित रहती हैं । सुनसान खंडहर पड़े रहने वाले राजमहलों, मरघटों तथा ऐसे ही स्थानों पर कभी-कभी भूत प्रेतों का अस्तित्त्व अनुभव में आता है, यह सम्बन्धित व्यक्तियों को परमाणुमयी प्रति मूतियाँ हैं ।

शरीर में उत्पादक शक्ति है । रज वीर्य से सन्तान उत्पन्न होती है । जख्म सड़ने पर माँस में कीड़े पड़ जाते हैं । कब्ज होने पर टट्टी में सफेद कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं । पसीने से जुऐं पैदा होते हैं । नारू रोग में फेफड़े के भीतर सफेद लम्बा कीड़ा निकलता है । प्राण निकल जाने पर देह सड़ने लगती है और कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं । डाक्टर लोग विभिन्न बीमारियों का कारण विभिन्न प्रकार के कीड़ों का शरीर में पैदा हो जाना बताते हैं । रक्त में कीड़ों की उत्पत्ति और विनाश का क्रम बराबर चलता रहता है । शरीर की ही भाँति मन में भी उत्पादन शक्ति हैं, वस्तुओं को पहले मन बनाता है फिर उसी ढांचे के अनुसार वे प्रत्यक्ष रूप से बनती हैं । कार्य का बीज विचार है । विचारों के द्वारा ही हम परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं । इसके आगे चल कर परमाणुमयी प्रति मूतियाँ उत्पन्न होती है जिनकी चर्चा ऊपर की पंक्तियों में की जा चुकी है ।

इन्हीं तत्त्वों के आधार पर कुछ विशेष शक्ति युक्त अदृश्य शक्तियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं । इस उत्पादन का एक स्वतन्त्र विज्ञान है जिसे तंत्र विद्या कहते हैं । विश्वास श्रद्धा और मन:शक्ति के संयोग से वे प्रतिमूतियाँ पैदा होती हैं । छाया-पुरुष, बेताल, कर्ण पिशाचिनी, भवानी, गायत्री आदि देवी-देवताओं का कई व्यक्ति सिद्ध करते हैं और उनके द्वारा कुछ अनोखे काम करते देखे जाते हैं । यह सिद्धि देवी-देवता अपनी ही एक मानसिक सन्तान होते हैं । इनकी शक्ति भी उत्पादक की मन:स्थिति और श्रद्धा के अनुसार होती है । किन्हीं साधकों की ये मानसिक सन्तान निर्बल होती है वे अपना दर्शन दे सकती हैं और थोड़ी हलचल कर सकती हैं । किन्हीं की प्रतिमूतियाँ बड़ी प्रबल होती हैं और वे अदृश्य होते हुए भी एक जीवित मनुष्य जैसी क्रिया करती हैं । दुर्वाषा ऋषि ने अपनी जटाओं से एक ऐसी ही भयंकर प्रतिमूर्ति पैदा करके अम्बरीष के पीछे लगा दी थी इस प्रकार के और भी कितने ही वर्णन प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं । इन मानसिक संतानों का आकार-प्रकार, वेशभूषा, लिंग, स्वभाव, शक्ति उसी के अनुसार होती है जैसी के साधक संकल्प करता हे । जैसी आकृति ध्यान में रखकर वह साधना करता है वैसी ही आकृति की प्रतिमूर्ति उत्पन्न हो जाती है ।

प्रतिमूर्तियों की तान्त्रिक साधनाएँ अलग-अलग प्रकार की होती हैं । यह गुरु परम्परा से चलती हैं और गुप्त रखी जाती हैं, इन साधनाओं का मेरु-दंड सुदृढ़ विश्वास है । मरघटों में, जल में, रात्रि के सुनसान अंधकार में, कष्ट साध्य प्रक्रियाओं द्वारा मन्त्र सिद्ध किये जाते हैं । इन अद्‌भुत, भयंकर दु:स्साहस पूर्ण कष्ट साधना प्राणालियों को प्रयोग में लाने वाला व्यक्ति ऐसा अनुभन करता है कि मैंने कोई भारी दुर्गम पथ पार किया है । मृत्यु तुल्य कठिनाई से लड़कर सफल हुआ है । आत्म विश्वास, सफलता का गर्व, गुरु वचनों पर श्रद्धा, मन्त्र विज्ञान पर विश्वास, यह सब मिलकर साधक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


के अन्त:करण में एक सुदृढ़ ग्रन्थि उत्पन्न करते हैं । इस ग्रन्थि परिपक्वता के साथ-साथ मंत्र बल एवं सिद्ध देवता का कर्तृत्व सबल होता है और उस शक्ति से कुछ अद्‌भुत कार्य पूरे होते हैं । अनेकों अनुष्ठान अपने नियत विधि-विधान द्वारा पूरे होने के उपरान्त कृत-कार्य होते देखे गये हैं । इन कार्यों का मेरुदण्ड विश्वास है । जितना ही विश्वास दृढ़ एवं अविचल होगा उतना ही लाभ होगा । संदेह अविश्वास, तर्क-वितर्क की मन स्थिति रहने पर इन क्रिया पद्धतियों का लाभ नष्ट हो जाता है । तन्त्र साधना एक मनोवैज्ञानिक अभिचार है । इसमें सफल वे ही हो पाते हैं जो एक निष्ठ हैं । बिना पढ़े, एकान्त प्रिय, गुरु भक्त, धुन के पक्के, दुस्साहसी, प्रकृति के मनुष्य इसमें सफल होते हैं । विचारशील, तर्कवान्, बुद्धिवादी साधारण जीवन बिताने वाले प्राय: इस दिशा में बहुत कम सफल होते देखे गये हैं । क्योंकि वे मन्त्र शक्ति और देवी-देवताओं के अस्तित्त्व के विषय में संदिग्ध रहते हैं: । असल में उनका स्वतन्त्र कोई अस्तित्त्व नहीं है, केवल अपनी मन: शक्ति का एक चमत्कार है । परन्तु जो इस तथ्य को जान लेते हैं उनका विश्वास ढीला पड़ जाता है, देवभक्तों, साधकों की भाँति उनमें अटूट श्रद्धा नहीं रहती, फलस्वरूप वे तन्त्र साधना में सफल भी नहीं हो पाते ।

कई बार ऐसा भी होता है कि अपने में कुछ विशेष शक्ति न होते हुए भी दूसरे के विश्वास को उसी के ऊपर अभिप्रेत करके कुछ आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये जाते हैं । कोई बड़ी रन्ज की, खुशी की या आश्चर्य की खबर सुना देने या रस्सी का सांप बनाकर अचानक डरा देने से हिचकी बन्द हो जाती हैं । कारण यह है कि चित्त हिचकी को भूलकर दूसरी तरफ लग जाता है । भूत प्रेतों को दूर करने के लिए ओझा या सयाने लोग झाड़ फूंक उतारा आदि करते हैं, उससे रोगी को विश्वास हो जाता है कि भूत को मेरे ऊपर से हटा दिया गया । थाली बजाकर साँप की आत्मा को आह्वान करते हैं, कटे हुए मनुष्य पर साँप की आत्मा उतरे इसके लिए एक ओझा उस काटे हुए मनुष्य को चुनौती (सजेशन) देता रहता है । अन्त में साँप सर चढ़कर बोलता है । इस प्रकार के तान्त्रिक कार्यों का आधार मन: शक्ति की स्फुरणग्राही है । चित्त को एक ओर से हटाकर दूसरी ओर लगा देने से पहली बात को मनुष्य भूल जाता है और हिचकी बन्द हो जाती है । थाली बजने, सर्प का आह्वान होने के क्रिया-कलाप को देखकर साँप का काटा हुआ व्यक्ति प्रभावित होता है, उसके मन में संकल्प उत्पन्न होते हैं । आवेश और संकल्प में सम्मिश्रण के साथ स्वसंमोहन क्रिया होती है और उस स्थिति में सर्प की भावना एवं भाषा में रोगी बात करने लगता है । मुझे यह चाहिए, यह कारण मैंने इसे काटा, आदि बातें वह कहता है और घर वालों के यह आश्वासन देने पर कि सर्प देवता की इच्छा पूर्ण कर दी जायेगी रोगी को विश्वास, सन्तोष एवं समाधान हो जाता है । इस समाधान की प्रबलता के कारण विष का घातक प्रभाव नष्ट हो जाता है और रोगी के प्राण बच जाते हैं परन्तु यदि किसी कारणवश रोगी इन बातों पर विश्वास न करता हो उस अनुष्ठान से प्रभावित या उत्तेजित न हो तो विष का प्रभाव नष्ट न होगा ।

पीर, मसान आदि की चौकी रख कर किन्हीं मनुष्यों को मार डालने का उपचार किया जाता है और कई बार ऐसे प्रयोग सफल भी होते हैं । ज्योतिषी लोग किन्हीं को बता देते हैं कि तुम अमुक दिन मरोगे तो कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है, कि वह उसी दिन मर भी जाता है । कोई वैद्य, डॉक्टर किसी साधारण रोगी को डरा कर अधिक पैसा लेने के लिए भयंकर रोग बता देते हें और अपने काबू से बाहर के रोग को असाध्य कह देते हैं, उनके कथन के आधार पर कई बार मृत्यु हो भी जाती हैं । यह विश्वास शक्ति का चमत्कार है । जो व्यक्ति समझता है कि मेरे ऊपर पीर की चौकी चलाई गई है, वह अपने संकल्प से स्वयं ही डर कर मृत्यु के मुँह में घुस जाता है । ज्योतिषी या वैद्य के वचनों पर विश्वास करके भी कितने लोग अकाल मृत्यु से मर जाते हैं ।

किन्हीं व्यक्तियों को ध्यानावस्था में, स्वप्न में, अर्धनिद्रित अवस्था में या आवेश में देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं । यह संकल्प की मूर्तिमान प्रक्रिया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है । जब विश्वास दृढ़ हो जाता है और उस सम्बन्ध में तर्क-वितर्क नहीं उठते तो भावनाएँ इन्द्रियों की अनुभव शक्ति के ऊपर कब्जा करने लगती हैं । हम देखते हैं हिप्नोटिज्म से विमोहित किये हुए व्यक्ति कुछ का कुछ देखते और कुछ का कुछ अनुभव करते हैं । कड़वी चीज खिलाते हुए उन्हें कहा जाय कि इसका स्वाद मीठा है तो वे उसे मीठा ही अनुभव करने लगते हैं । जल को थल और थल को जल समझने लगते हैं । हिप्नोटिज्म जैसे-जैसे आदेश देता जाता है, विमोहित व्यक्ति वैसे ही वैसे अनुभव करता है । हिप्नोटिज्म की इस क्रिया पद्धति को एक मनुष्य दूसरे पर प्रयोग करे यह आवश्यक नहीं । कोई व्यक्ति ख़ुद अपने संकल्प बल से अपने आपको भी स्वसंमोहन कर सकता है और संमोहन से पूर्व जो संकल्प किये थे उनको मूर्त्त रूप में इन्द्रियों से अनुभव कर सकता है । इस तरह वह स्वसंमोहित अवस्था में इष्ट देव को या अन्य अभीष्ट पदार्थों को देख सकता है, उसकी वाणी सुन सकता है, उसका स्पर्श कर सकता है, सूंघ और चख सकता है ।

योग विद्या का बहुत बड़ा भाग स्वसंमोहन विज्ञान के ऊपर निर्धारित है । मेस्मरेज्म द्वारा दूसरों को बेहोश किया जाता है, पर स्वसंमोहन से मनुष्य अपने आपको योग निद्रा में ले जा सकता है, इसे समाधि अवस्था भी कहते हैं । देवी देवताओं के दर्शन उनसे वार्तालाप, इस दशा में भली प्रकार हो सकता है । स्वर्ग, नरक, लोक-लोकान्तरों के दृश्य देख सकता है । जैसे चाहे वैसे शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का अनुभव कर सकता है । नादयोग वालों को तरह-तरह के मधुर शब्द, संगीत, ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं । ध्यान योग वाले तरह-तरह के रूप देखते हैं । लय योगी तरह-तरह के रसों का, ब्रह्मानन्द या परमानन्द का अनुभव करते हैं । विधु योगी स्पर्श जन्य आनन्दों का रसास्वादन करते हैं । हैय योगी दिव्य सुगन्धियों की अनुभूति लेते हैं । साधन से पूर्व जिस प्रकार के विचार और विश्वास होते हैं । उसी के अनुसार यह अनुभूतियाँ आती हैं । मुसलमान साधक को अपने विचार और विश्वास के अनुसार और बौद्ध साधक को अपनी मान्यता के अनुसार साधन में अनुभूतियाँ होंगी । जैनी, हिन्दू, ईसाई, लामा आदि के योगों की मान्यताएँ अलग-अलग हैं । उन मान्यताओं के अनुसार ही उनके साधक साक्षात्कार होते हैं । स्वसम्मोहन विज्ञान के आधार पर साधक अपनी मान्यताओं को थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ अपनी इन्द्रियाँ द्वारा भी मूर्तमान अवस्था में अनुभव कर सकता है ।

यौगिक शक्तियों का उद्‌गम बाहर नहीं है । कहीं बाहर से, किसी देवी-देवता की कृपा से वे प्राप्त नहीं होती । अपने अन्दर शक्तियों का प्रचुर भण्डार भरा पड़ा है । आत्म विद्या द्वारा अपनी मानसिक शक्तियों को सार्थक लोग अपने ही ऊपर नियोजित करते हैं और अभीष्ट लाभ प्राप्त करते हैं । अपना भगवान रचकर उसमें अपनी भक्ति द्वारा आप ही प्रवेश करके आत्मा-परमात्मा बन जाता है । इस महा सत्य को जानकर वेदान्त शास्त्र ने " सोहमस्मि सोऽहं तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, सर्वखिल्विदं ब्रह्म," का प्रकाश संसार को दिया है । अद्वैतवाद की पृष्ठभूमि आत्मा की महाशक्ति की जानकारी पर आधारित है । दूसरे जीवजन्तु परमात्मा को नहीं जानते, मनुष्य की ज्ञानशक्ति ने परमात्मा का आविष्कार किया है । विश्व का कण-कण शक्ति से परिपूर्ण है एक-एक परमाणु में प्रलय उपस्थिति करने की शक्ति भरी हुई है । फिर मनुष्य का शरीर तो असंख्य परमाणुओं का बना हुआ है । मानसिक परमाणु उससे भी शक्तिशाली हैं, फिर आत्मिक सूक्ष्म परमाणुओं शक्ति की महानता की तो कुछ तुलना ही नहीं । ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म सत्ता पिण्ड में मौजूद है, वृक्ष का सम्पूर्ण अस्तित्त्व बीज में मौजूद है, केवल प्रस्फुटन की आवश्यकता है । आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा हम अपनी उन्हीं विभिन्न शक्तियों को जगाते हैं और योग के चमत्कारों को उपलब्ध करते हैं ।

प्रचंड संकल्प शक्ति द्वारा अपने आपको प्रभावित करके यथेच्छ आत्मनिर्माण किया जा सकता है । सांसारिक वस्तुओं द्वारा जो सुख मिलते हैं वेसे ही उससे भी अधिक सुखानुभूति संकल्प के आवेश द्वारा प्राप्त की जा सकती है, दूसरों को प्रभावित करके उनको उपयोगी मार्ग पर लगाया जा सकता है । अपने या दूसरों के मानसिक दोष दूर

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


करके शारीरिक एवं बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ बनाया जा सकता है । इच्छित पुनर्जन्म, परलोक या मुक्त अवस्था प्राप्त करने योग्य मनोभूमि बनाई जा सकती है । मानसिक सन्तुलन ठीक रहने तथा तत्त्व दर्शी सूक्ष्म दृष्टिकोण अपनाने से सांसारिक प्रिय-अप्रिय घटना प्रवाह के कारण आने वाले दुख-शोक से बचा जा सकता है । इसके अतिरिक्त किन्हीं विशेष अनुष्ठानों साधनों के आधार पर कुछ आश्चर्य जनक सिद्धियाँ भी मिलती है ।

आत्म-साधना में, योग साधना से, अपना सम्बन्ध करके अपनी शक्तियों को प्रस्फुटित करने से, उपयोगी तत्त्वों का अविर्भाव होता है । योग एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके अनुसार अपने शरीर और मन की प्रयोगशाला में अन्वेषण, परीक्षण प्रयोग के आधार पर महत्त्वपूर्ण तथ्यों का आविष्कार किया जाता है । इस विज्ञान द्वारा हमारे पूर्वज योग की चमत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं । अब डॉक्टर फ्रायड, डॉक्टर मस्मर, डाक्टर ली, प्रभृति मनोविज्ञान शास्त्रियों ने आधुनिक तरीके से वैज्ञानिक खोज आरम्भ की हैं । यह विज्ञान जितना ही जितना स्पष्ट और परमार्जित होता जा रहा है उतनी-उतनी मनः शक्तियों की महत्ता प्रकट होती जा रही है । वह शुभ दिन शीघ्र ही आने वाला है जब विज्ञान मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को सर्वोपरि और महान लाभ स्वीकार करेगा । तब वेदान्त और मनोविज्ञान दोनों एक स्वर से आत्म विद्या का जय घोष करेंगे ।

## प्रत्यक्ष अष्ट सिद्धियाँ ।

पिछले पृष्ठों पर वैज्ञानिक अध्यात्म वाद के जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया है । उनको अपने विचार क्षेत्र में, विश्वास भूमि में स्थापित कर लेने तथा व्यावहारिक जीवन में कार्य रूप से प्रयोग में लाने पर मनुष्य की आन्तरिक स्थिति बहुत ही मजबूत हो जाती है । उस स्थिति पर पहुँचने से आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं जो काल्पनिक सिद्धियाँ की अपेक्षा अनेक गुनी आनन्ददायक कल्याणकारी और मंगलमयी सिद्ध होती है । इन अष्ट सिद्धियों का वर्णन नीचे किया जाता है ।

**(१) निराकुलता-** छोटी-छोटी बातों से मनुष्य बड़ा उद्विग्न ,उत्तेजित एवं दुखी होता रहता है । मृत्यु, विछोह, हानि ,आक्रमण आदि की अप्रिय अनिच्छत परिस्थितियाँ आ जाने पर क्रोध, शोक, द्वेष, दुःख, चिन्ता एवं भय से व्याकुल हो जाता है । इस व्याकुलता को शान्त करने के लिए वह अपनी शक्तियाँ बहुत बड़ी मात्रा में खर्च कर डालता है और कभी-कभी तो आत्मघात तथा अन्यान्य भयंकर दुष्कर्म करने को तैयार हो जाता है । यह व्याकुलता मानसिक उद्‌भिग्नता जीवन में विक्षेप उत्पन्न करने वाला, एक भयंकर उत्पात है । आत्मवान् इस उत्पात से बच जाता है । वह जानता है कि संसार के पदार्थों में नष्ट या परिवर्तित होने का स्वभाविक गुण है, इसमें शोक की कोई बात नहीं । दूसरों की दुष्टता को वह उनका पागल पन मानसिक रोग एवं उन्माद समझता है और जैसे सन्निपात के रोगों द्वारा किये हुए अनुचित व्यवहार पर उसके आत्मीय जन कुपित नहीं होते, वरन् उसकी कडुई-मीठी चिकित्सा कराते हैं उसी प्रकार वह दुष्टों से रुष्ट नहीं होता वरन् उनकी कडुई मीठी चिकित्सा की सद्‌भाव पूर्वक व्यवस्था करता है । ''मैं आत्मा हूँ, मेरा धर्म कर्त्तव्य करना है, इस विश्वास के साथ व कर्त्तव्य-कर्त्तव्यों में प्रवृत्त होता है, सफलता असफलता का सुख-दुख उसे उद्विग्न नहीं करता । इस संसार में जितनी दुख दृष्टिगोचर होता है, उसमें तीन-चौथाई मानसिक और एक-चौथाई रोग एवं अभाव जन्य है । आत्मवान का बौद्धिक दृष्टिकोण आध्यात्मवादी होता है इसलिए उसके मानसिक दुःख नष्ट हो जाते हैं और दुःखों के एक बड़े भारी भाग से सहज में ही छुटकारा मिल जाता है ।

आकुलता की अग्नि में आत्मिक रस जलते हैं और मनुष्य की मनोभूमि मरघट के समान ऊजड़ हो जाती है, इसके विपरीत आत्मवान् होने के कारण जिसे निराकुलता प्राप्त है वह हर घड़ी एक सात्विक शान्ति, सन्तोष एवं प्रसन्नता का लाभ प्राप्त करता है । यह आत्म बल की प्रथम सिद्धि है ।

**(२) सहायता-** आत्मबल की दूसरी सिद्धि है- दूसरों द्वारा अधिक सहायता प्राप्त होना । उदार स्वभाव, सेवाभावी नम एवं मधुर भाषी होने के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कारण आत्मवान् व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहरी छाप उन लोगों के ऊपर पड़ती है जो उसके निकट सम्पर्क में आते हैं । थोड़ा बहुत भी जिससे संबन्ध होता है वे उसके गुणों पर मुग्ध हो जाते हैं मधुर भाषण को वशीकरण कहा गया है, पर जिस मधुर भाषण के साथ सच्चाई, सेवा, प्रेम और आत्मीयता भी मौजूद हो वह तो बहुत बड़ा वशीकरण बन जाता है उसके द्वारा तो उनको भी वश में किया जा सकता है, जो अन्य किसी उपाय से वश में नहीं आते इस प्रकार जो व्यक्ति दूसरों के मन में अपने लिए स्थान बना लेता है, उनके हृदयों को जीत लेता है वह उनकी सहायता का अधिकारी भी बन जाता है । ऐसे व्यक्तियों के लिए किसी वस्तु की कमी नहीं रहती । तन, मन, धन से लोग उसकी सहायता करते रहते हैं या करने को तत्पर रहते हैं । जन समाज की सहायता से अनेकों कठिनाइयाँ दूर होती हैं, अनेकों उत्कर्ष के अवसर मिलते हैं, अनेकों आपत्तियाँ टल जाती हैं । इसके अतिरिक्त सद्भावनाओं से आनन्द-सन्तोष और साहस मिलता है । प्रशंसकों, मित्रों और अनुभवियों के बीच रहते हुए मनुष्य को स्वर्गीय सुख का अनुभव होता है । अपनी सद्वृत्तियों के कारण आत्मवान मनुष्य सहज ही संसार की प्रचुर सहायता प्राप्त कर लेते हैं ।

**(३) आरोग्यता-** चूँकि आत्मवान मनुष्य संयमी होता है । उसके आहार-विहार सात्त्विक होते हैं, चटोरेपन को वह प्राप्त नहीं फटकने देता । नियमित दिनचर्या रखता है और शक्तियों का अनावश्यक खर्च नहीं करता । ब्रह्मचर्य और तपश्चर्या को उसके जीवन में प्रधानता मिली होती है । शरीर और मन में पवित्रता के अंश पर्याप्त मात्रा में रहने के कारण बीमारियाँ उत्पन्न होने एवं पनपने का मार्ग बन्द हो जाते हैं । ऐसे व्यक्ति प्राय: बीमार नहीं पड़ते यदि कभी कोई अवसर आ भी गया तो बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं । उनकी आयु बढ़ती है विषय सेवन एवं मानसिक उत्तेजनाओं के कारण जीवनी शक्ति का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जाता है और लोग अपनी पूरी आयु भोग नहीं पाते परन्तु आत्मवान् व्यक्तियों को ऐसी कठिनाई नहीं आती । वे अपनी पूरी आयु भोगते हैं दीर्घजीवी होते हैं और सदा स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं । वह आत्मबल की तीसरी सिद्धि है ।

**(४) सफलता -** सफलता की, लाभ की, इच्छा से आरम्भ किये हुए कामों में अनेकों व्यक्ति अनेकों बार असफल रहते हैं कई बार उन्हें विफलता का मुँह ताकना पड़ता है । इसका कारण कई बार तो परिस्थितियों की प्रतिकूलता भी होती है पर अधिकांश ऐसा देखा जाता है कि कार्य करने वाले व्यक्ति की मानसिक व्यवस्था ठीक न रहने के कारण असफलता मिलती है । अस्थिरता अन्य मानसिकता, असावधानी, अरुचि, उत्तेजना, निराशा, घबराहट आदि मानसिक त्रुटियों के कारण बड़े-बड़े काम बिगड़ जाते हैं । वह त्रुटियाँ पग-पग पर कठिनाई उत्पन्न करती और धीरे-धीरे काम बिगाड़ती रहती हैं, अन्तत: एक दिन समूचा काम नष्ट होने का अवसर आ जाता है । आत्मवान् मनुष्य इस स्थिति से बच जाता है । उसका मन स्थिर होता है, चित्त एक ओर रहता है स्वभाव में गम्भीरता, और सावधानी होती है, निश्चित दृष्टिकोण, निश्चित कार्यक्रम, निश्चित कर्त्तव्य होने के कारण क्षण-क्षण में आशा निराशा के झूले में नहीं झूलना पड़ता और न आवेशों की उत्तेजना रहती है ऐसी स्थिति प्राप्त होने के कारण आत्मवान् व्यक्ति हाथी के समान निश्चित गति से सावधानीपूर्वक कदम धरता चला जाता है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है । आत्मवान् का मानसिक सन्तुलन ठीक रहता है उसका विवेक यथार्थवादी और निर्णय सूक्ष्म होता जिससे वह अपनी सामर्थ्य, परिस्थिति और वस्तुस्थिति को देखकर कार्य आरम्भ करता है और जितने श्रम, समय तथा साधन की आवश्यकता होती है उसे धैर्य पूर्वक जुटाता है रास्ते में जो कठिनाईयाँ आती हैं उनसे बिना घबराये लड़ता है, और उलझी हुई समस्याओं को सुलझाता है । इस प्रकार उसे आमतौर से सफलताएँ ही उपलब्ध होती हैं असफलता के बहुत ही कम अवसर उनके सामने आते हैं । वह जो कार्य आरम्भ करता है वह पूरे ही हो जाते हैं । जिससे उसका साहस और आनन्द दिन-दिन बढ़ता जाता है । यह आत्मबल की चौथी सिद्धि है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**(५) सम्पन्नता -** लोग कहते हैं कि ''बेईमानी से धन कमाया जाता है ।'' पर यह उनकी भूल है । बेईमान लोग भी ईमानदारी की आड़ में ही कमाई करते हैं । यदि कोई व्यक्ति अपने बारे में यह सार्वजनिक घोषणा करे और एक साइनबोर्ड अपने गले में लटका ले कि ''मैं चोर, ठग या बेईमान हूँ मेरे काम बेईमानी और ठगी से भरे रहते हैं ।'' इस घोषणा के बाद भी कोई व्यक्ति बेईमानी के आधार पर कुछ कमा के दिखावे तो यह समझा जा सकता है कि बेईमानी में भी कमाने की शक्ति है । वास्तव में विशुद्ध बेईमानी से एक पाई भी नहीं कमाई जा सकती । बेईमानी की बहिन तो दरिद्रता है । कोई आदमी ईमानदारी की आड़ में बेईमानी कर ले तो इससे ईमानदारी की ही उत्पादन शक्ति सिद्ध होती है बेईमानी की नहीं ।

सच्चाई और ईमानदारी के आधार पर स्थित कारोगार ही चलते और फलते-फूलते हैं । विश्वास प्रति निश्चित एवं प्रामाणिकता का आधार मिल जाने पर ग्राहक उसी दुकानदार को पकड़ लेता है और सदा के लिए उसका एक लाभ पहुँचाने वाला सहायक बन जाता है । इसके विपरीत बेईमान दुकानदार से एक बार ठगे जाने के उपरान्त स्वयं तो उसे सदा के लिए छोड़ ही देता है, जहाँ तक उसका बस चलता है दूसरों को भी उसके पास जाने से रोकता है । निश्चय ही ईमानदारी की धर्म नीति पर अवलम्बिल कारोबार द्वारा मनुष्य को सम्पन्नता प्राप्त होती है । भले ही वह धीरे-धीरे अधिक काल में और क्रमशः आगे बढ़ने वाली हो पर होती वह सुनिश्चित है । बरगद का पेड़ देर में बढ़ता है पर ठहरता बहुत समय तक है । ईमानदारी के साथ किये जाने वाले कारोबार भी ऐसे ही होते हैं उस कमाई से मनुष्य फलता-फूलता और सुखी रहता है । बेईमान करोड़पति की अपेक्षा, ईमानदार मध्यवृत्ति का मनुष्य अधिक आनन्द में रहता है । उसी की सम्पन्नता सच्ची सम्पन्नता है । आत्मवान् व्यक्ति को अपने आत्मबल द्वारा पाँचवी सिद्धि सम्पन्नता प्राप्त होती है ।

**(६) लोकप्रियता-** चरित्रवान् सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्य परायण, उदार, लोकसेवी, मनुष्य जनता में देवता के समान पूजे जाते हैं । उनकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, ख्याति, प्रतिष्ठा, श्रद्धा एवं सम्मान की उनके लिए कमी नहीं रहती । शरीर मर जाने पर भी उनका यश शरीर हरिश्चन्द्र, दधीचि, प्रह्लाद प्रताप, शिवाजी, हकीकतराम आदि की तरह अमर रहता है । उसके प्रकाश में युगयुगान्तरों तक जनता अपना पथ निर्माण करती है । ऐसे पुरूष बेताज के बादशाह कहे जाते हैं कीर्तियुक्त, प्रतिष्ठित जीवन ही वास्तविक जीवन है । ऐसा जीवन यदि किसी प्रकार अभाव और कठिनाइयों से ग्रसित हो तो भी उसमें आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है । आत्मवान् का आत्मा अपनी प्रतिष्ठा आप करता है, वह अपनी दृष्टि में आप ऊँचा हो जाता है । ऐसा उच्च पद संसार के सब प्रतिष्ठा युक्त पदों से ऊंचा है । आत्मवान् को यह उच्च पदवी छठी सिद्धि के रूप में मिलती है ।

**(७) प्रसन्नता-** शुभ कर्मों का फल भी शुभ होता है । सद्भावों से शान्ति की उत्पत्ति होती है । सत्कर्म करने वालों को परमात्मा आनन्ददायक परिणाम प्रदान करता है । आत्मवान् व्यक्ति सत्कर्म करते हैं इसलिये उनके आस-पास सुखदायक परिस्थितियाँ घिरी रहती हैं । कर्त्तव्य परायणता की खुशी उनके चेहरे पर हर घड़ी छाई रहती है आत्मसन्तोष की मधुरिमा उनके नेत्रों में भरी रहती है ,सतोगुण की छाया उनके ओठों पर मुस्कराहट के रूप में नाचती रहती है ।

कषाय, कल्मष, पाप-ताप, दुर्भाव, दुष्कर्म, एवं भ्रम अज्ञान के कारण ही मनुष्य मुँह फुलाये आँख चढ़ाये तिरछा-तिरछा इठला कर चलता है । चिन्ता, भय, शोक, एवं क्रोध भी इन्हीं कारणों से होता है । अप्रसन्नता एक आध्यात्मिक रोग है । जो आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ है उसके लिए परमात्मा के इस पुनीत उपवन संसार में अप्रसन्नता का कोई कारण नहीं दीखता ।

संसार की हर वस्तु तीन गुणों से बनी है । उसके जिस पहलू को हम देखते हैं, वह वैसी ही दिखाई पड़ती है । द्वेष बुद्धि से देखने पर वस्तुएँ बुरी लगती हैं, उपेक्षा वृत्ति रखने से वे व्यर्थ मालूम पड़ती हैं और सद्बुद्धि से देखने पर सृष्टि के कण-

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कण में से पवित्रता, सुन्दरता, सरलता एवं सरसता का निर्झर झरता हुआ दृष्टिगोचर होता है । आध्यात्मवादी इसी दृष्टिकोण को अपनाये रहते हैं, तद्नुसार उन्हें चहुँ और आनन्दमय वातावरण दृष्टिगोचर होता है । अप्रिय बातों को अंपने लिए सुधार की ईश्वरीय चुनौती समझ कर ये उन्हें भी आनन्द की दृष्टि से देखते हैं और सदा प्रसन्नत रहते हैं । यह अविच्छन्न प्रसन्नता आत्मबल की सातवीं सिद्धि है ।

**(८) स्वतन्त्रता-** प्राणी स्वतन्त्रता प्रिय है । पशु-पक्षी भी बंधन से मुक्त होकर स्वतन्त्र रहना पसन्द करते हैं, फिर मनुष्य की इच्छा तो और भी प्रबल है । आज राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, गुलामी से छूटने के लिए प्रचण्ड आन्दोलन हो रहे हैं । क्योंकि पराधीनता में सुख है । सबसे बड़ी मानसिक पराधीनता होती है, इससे छुटकारा पाना परम पुरुषार्थ माना गया है । विषय, विकार, अज्ञान, कुसंस्कार और कुविचारों से छूटना सब से बड़ी स्वतन्त्रता है, इसे ही आध्यात्मिक भाषा में ''मुक्ति'' कहा गया है । मुक्ति में परमानन्द माना गया है । यही जीवन का परमलक्ष्य है । योगीजन सदा मुक्ति के प्रयत्न में लगे रहते हैं ।

इन्द्रियों के विकल्प, भोग, तृष्णा, काम-क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर आदि की प्रबलता आत्मा की शक्ति को कुंठित कर देती है । इन कुसंस्कारों का जोर इतना बढ़ जाता है कि उन्हीं की प्रेरणा प्रधान रहती है उन्हीं की तृप्ति के लिए मनुष्य कार्य करता रहता है । आत्मा की पुकार इस चक्कर खाने में तूती की आवाज की तरह दब जाती है । गृहस्वामी को कोई टके सेर नहीं पूछता । नौकर चाकरों की हुकूमत चलती है । वे लगाम घोड़े जैसे रथवान की परवाह न करके चाहे जिधर दौड़ पड़ते हैं और रथवान अपनी विवशता अनुभव करता हुआ चुपचाप बैठा रहता है, यही स्थिति आत्मा की होती है । कुसंस्कारों के अनुसार जीवन क्रम चलता रहता है, आत्मा उसमें परिवर्तन करना चाहती है, पर उसे बार-बार असफलता मिलती है । इस पराधीनता को ही माया, बन्धन, भवसागर कहा है, इससे छुटकारा पाकर जब आत्मा अपने राज्य की बागडोर अपने हाथ में सम्भाल लेती है, तो वह मुक्त या जीवन मुक्त कहा जाता है । ऐसी दशा में पुनर्जन्म लेना न लेना या जहाँ चाहे वहाँ लेना उसके अपने हाथ में होता है, अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है । आत्मा सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है । अपार आनन्द का यह केन्द्र है । आत्म-स्थित होने पर हर घड़ी वह स्वाभाविक सात्विक आनन्द अनुभव में आता है । मुक्त पुरुष परमानन्द में ब्रह्मानन्द में लीन रहते हैं । पूर्ण स्वतन्त्रता में पूर्ण आनन्द है । यह आनन्ददायक स्थिति आत्मबल की आठवीं सिद्धि है, जिसे आत्मवान पुरुष सहज ही प्राप्त कर लेते हैं ।

उपरोक्त आठों सिद्धियों का महत्त्व इतना अधिक है, कि उसकी तुलना में आकाश में उड़ना, अदृश्य होना, जल पर चलना आदि के आश्चर्य चमत्कार बहुत ही छोटे दर्जे के बालकों के मनोविनोद के समान ठहरते हैं । चमत्कारों के आधार पर शरीर को कुछ सुगमता और मन को प्रसन्नता मिल सकती है, लेकिन उपरोक्त अष्ट सिद्धियों का लाभ और आनन्द तो उसकी अपेक्षा हजारों गुना अधिक है । यही सिद्धियाँ हैं, सच्ची हैं, स्थायी हैं, सुगम, लोक हितकारिणी और जीवन को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने वाली हैं । इनको प्राप्त करना ही जीवन की सच्ची सफलता है । सिद्धि के इस राज मार्ग पर चलने का, आत्मबल प्राप्त करने का, हमें पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करना चाहिए ।

✸ ✸ ✸

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# प्रधानता आत्मा को दें मन को नहीं

## दो में से एक का चुनाव

अध्यात्मवाद को व्यावहारिक जीवन में धारण करने के लिए हमें अपने दैनिक जीवन में कुछ समय इस कार्य के लिए भी लगाने को तत्पर होना पड़ेगा । आमतौर से हमारे दिन-रात के २४ घण्टे शरीर तथा उससे सम्बन्धित भौतिक समस्याओं को सुलझाने तथा उसकी आवश्यकता को पूरा करने में लगते हैं । कुछ समय सोने, नहाने, मलमूत्र त्यागने में लगता है, कुछ रोजी-रोटी कमाने में बीतता है, कुछ आराम, मनोरंजन, गपशप में, कुछ उलझनों को सुलझाने में लग जाता है । यह कार्य इतने अधिक और इतने उलझे हुए होते हैं कि २४ घण्टे का समय भी इनके लिए कम पड़ता है । यदि यह २४ घण्टे २-४ की मात्रा में और भी बढ़ गये होते-एक दिन २४ घण्टे की अपेक्षा २६ या २८ घण्टे का होता तो भी कम ही सिद्ध होते । इन्द्रियों की वासनाएँ, तृप्त करने के समय बड़ी प्रिय लगती हैं, पर उस भोग के जो दूरवर्ती परिणाम होते हैं वे इतनी उलझनें पैदा करते हैं कि मनुष्य के लिए वह एक भारी बन्धन बन जाता है ।

जिह्वा इन्द्रिय विविध विधि स्वादिष्ट भोजन, जल्दी-जल्दी अधिक मात्रा में खाने को लालायित रहती है । उसकी तृप्ति लोग करते भी हैं । पर इस असंयम के कारण जब पेट खराब होता है रक्त दूषित बनता है, नाना प्रकार के रोग, शारीरिक कष्ट ही नहीं, आर्थिक कठिनाई, कार्यों में असफलता आदि की अगणित समस्याएँ पैदा कर देती हैं । जिह्वा इन्द्रिय पर काबू प्राप्त करके जिसने अपने स्वास्थ्य को सम्भाल कर रखा है उसकी तुलना में असंयमी की समस्याओं में जमीन आसमान का अन्तर होता है । इसी प्रकार कामेन्द्रिय की वासना से प्रेरित होकर लोग अपने जीवन रस को इतना निचोड़ डालते हैं कि जवानी में ही बुढ़ापा आ घेरता है और मृत्यु का दिन-काल मृत्यु बनकर छलाँग मारकर सामने आ खड़ा होता है । जितने बच्चों का उत्तरदायित्व नहीं उठ सकता उतने बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं । फिर उनकी रोटी, बीमारी, पढ़ाई, शादी की समस्याएँ सामने आती हैं । कोई बच्चा अयोग्य और कुपात्र निकला तो और नई उलझनें सामने आती हैं । पत्नी यदि सहचरी न हुई, दुर्गुणी निकली तो वह भी रोज एक नई समस्या उत्पन्न कर देती है । शरीर की वासनाएँ यों अपने योग्य समय पर बड़ी प्रिय लगती हैं, पर उनका परिपाक इतना विषम होता है कि सँभाले नहीं सँभलता ।

तृष्णाओं से उत्पन्न समस्याओं का परिवार इससे भी बड़ा है । धन को ही लीजिए उसकी आवश्यकता इसलिए है कि अपनी तथा अपने आश्रित परिवार की गुजर-बसर ठीक तरह होती चले । जिसे इतना प्राप्त होता रहता हो उसे सन्तोष करके उतने से काम चलाना चाहिए और शेष बची हुई शक्तियों को आत्म-कल्याण में, परमार्थ कार्यों में, लगाना चाहिए । पर ऐसा करता कौन है ? हर किसी की हविश हजार से लाख की ओर, लाख से करोड़ की ओर दौड़ती है । जमा करना, जोड़ना और फूँकना-उड़ाना इतना प्रिय एवं स्वाभाविक लगता है कि इसकी पूर्ति के लिए निरन्तर बेचैनी बनी रहती है । उसे बेचैनी की पूर्ति के लिए नाना प्रकार के व्यापार आरम्भ किए जाते हैं और फिर उनका जंजाल इतना बढ़ जाता है कि सोने और खाने की भी फुरसत नहीं मिलती । वाहवाही और नामबरी की भी एक ऐसी ही हविश है जो आदमी को ऐसे ही उड़ाये फिरती है जैसे आँधी के झोंके पत्तों को उड़ाये फिरते हैं । चुनावों में खड़े उम्मीदवारों में से अधिकांश इसी तृष्णा के बीमार होते हैं । विवाह शादियों में पैसे की होली फूँकी जाती है, इसमें बात बड़ी होने की तृष्णा काम करती रहती है । फैशन और ठाट-बाट पर लोग कितना अधिक खर्च करते हैं । यह वाहवाही की तृष्णा का ही परिणाम है । जिनके सन्तान नहीं है, पुत्र नहीं है वे कितने बिलखते हैं । यह देखकर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आश्चर्य होता है । आज जनसंख्या वृद्धि की समस्या जितनी विषम है उसे देखते हुए सन्तान न उत्पन्न करना एक बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य है पर कितने ही व्यक्ति सन्तान न होने की चिन्ता में ही डूबे रहते हैं । इस प्रकार अगणित तृष्णाएँ मनुष्य के प्राण खाती रहती हैं और उनकी पूर्ति के लिए इतने विशाल ताने-बाने बुनने पड़ते हैं कि जाले में फँसी हुई मक्खी की तरह, जाल में जकड़े हुए पक्षी की तरह अपने को हम सब प्रकार विवश पाते हैं ।

आवश्यक वासनाओं और तृष्णाओं से भी पहले शारीरिक स्वाभाविक आवश्यकताएँ नित्यकर्म, आहार-विहार, रोजी-रोटी, परिवार-पोषण जैसे आवश्यक कार्यों की पूर्ति इस जमाने में इतनी विषम हो रही है कि उनकी पूर्ति में भी बहुत समय लगता है । फिर शत्रुओं द्वारा, मित्रों द्वारा कोई न कोई परेशानी भी समय-समय पर उत्पन्न की जाती रहती है । सामाजिक रीति-रिवाजों का बोझा रहता है और यदा-कदा आकस्मिक अप्रत्याशित आपत्तियाँ भी सामने आ खड़ी होती हैं । इसमें समय लगाना पड़ता है । अधिकांश लोग सचमुच ही बहुत व्यस्त रहते हैं उनके पास समय का वास्तव में ही अभाव रहता है । आत्म-कल्याण कार्यों के लिए जब वे यह कहते हैं कि ''क्या करें फुरसत नहीं मिलती'' तो उनकी सच्चाई का अविश्वास नहीं होता । वस्तुतः हमारी आज की समस्याओं का जो रूप बन गया है वह ऐसा ही पेचीदा है कि उससे किसी मनुष्य का आध्यात्मिक कार्यों के लिए समय निकाल सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है ।

इतना होते हुए भी एक बात अत्यन्त गम्भीरता के साथ विचार करने की है कि यदि आज ही हमारा जीवन समाप्त हो जाय और मृत्यु सामने आ खड़ी हो तो फिर वे समस्याएँ, आकांक्षाएँ और चिन्ताएँ किस प्रकार सुलझेंगी जो अब हमें निरन्तर परेशान करती रहती हैं । जीवन को पानी के बुलबुले की तरह क्षणिक कहा गया है सो असत्य नहीं है । भरी जवानी में, उठती उम्र के नौजवानों की लाशें रोज ही आँखों के आगे से गुजरती हैं, फूल से कोमल बच्चे देखते-देखते मुरझा जाते हैं, फिर हमारे ही बारे में क्या निश्चय है कि सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहने का अवसर मिलेगा ही । दिन जिस तेजी से गुजरते हैं उसे देखते हुए सौ वर्ष भी कुछ ही दिनों में बीत सकते हैं । हम लोग इतनी आयु पूरी कर चुके, लगता है अभी कल-परसों तक बचपन के खेल खेलते थे पर आज अधेड़ हो चले । यही क्रम कुछ दिन चलते रहने पर बुढ़ापा भी सामने आ पहुँचा और मृत्यु भी दूर नहीं है । जिस दिन इस शरीर को त्यागकर हमारा प्राण आकाश में विचरण कर रहा होगा वह दिन अब बहुत दूर नहीं है । सोचने की बात है कि यदि वह दुःखद घड़ी कल ही सामने उपस्थित हो जाय तो जिन व्यस्तताओं में से घड़ी भर भी हमें परमार्थ के लिए समय नहीं मिलता वे सुलझ जावेंगी या उलझी ही पड़ी रहेंगी ?

जीवन का वास्तविक स्वरूप न समझने के कारण ही हम इतनी परेशानियों में फँसते और समस्याओं में उलझते हैं । यह शरीर हमें एक औजार की तरह एक वाहन की तरह उपयोग करने के लिए मिला हुआ है । घोड़ा जिनके पास होता है वह मालिक अपने उस वाहन की आवश्यक देखभाल और व्यवस्था तो करता है, पर उस घोड़े को सजाने-सम्भालने में ही चौबीस घण्टे नहीं लगा रहता । उसे उस मंजिल का भी ध्यान रखना होता है जिनके लिए यह घोड़ा खरीदा गया है । यदि कोई व्यक्ति अपनी मंजिल की बात भूल जाय और घोड़ा किस काम के लिए खरीदा गया है यह सोचना छोड़कर दिन-रात उस जानवर की साज-सम्भाल में ही लगा रहे तो उसे उपहास का पात्र बनना पड़ेगा, मूर्ख कहलाना पड़ेगा और घोड़ा खरीदने की उसकी मूल योजना का उद्देश्य ही खटाई में पड़ जायगा । हम सब आज ऐसे ही मूर्ख घुड़सवार का अभिनय कर रहे हैं । क्या हमारे लिए यही उचित है ?

शरीर की उचित आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो सकती हैं । पेट भरने को रोटी, तन ढकने को कपड़ा तथा परिवार के उचित पोषण की सीमा तक जिसकी महत्वाकांक्षाएँ सीमित हो जायें उसे परमार्थ साधना के लिए पर्याप्त समय मिल सकता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वासनाओं और तृष्णाओं पर यदि नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाय तो मस्तिष्क को काफी अवकाश आत्म-चिन्तन के लिए मिल सकता है । वासनाओं की, तृष्णाओं की महत्वाकांक्षाएँ ही मनुष्य का सारा समय, सारा मस्तिष्क, सारा ओज जोंकों की तरह चूसती रहती हैं । यदि इन नागिनों से छुटकारा पाया जा सके तो फिर हर आदमी के पास आत्म-कल्याण के लिए कुछ सोचने और कुछ करने को इतनी बड़ी मात्रा में समय बच सकता है कि वह अपना लक्ष्य पूर्ण कर ले । ८० लाख योनियों में लाखों वर्षों तक भ्रमण कराने वाली पीड़ाओं से छूट जाय और इस सुर दुर्लभ मानव शरीर का सदुपयोग करके भावी पीढ़ी के लिए प्रकाश दीप की तरह युग-युगान्तर तक यशस्वी बने रहने के लिए अमरता प्राप्त कर ले ।

यदि शरीर की अमिट वासनाओं और मन की अनन्त तृष्णाओं को एक स्वल्प मात्रा में एक लघु क्षण के लिए तृप्त करने में सारा जीवन लगा दिया जाय और फिर भी आग में घी डालते रहने पर न बुझने वाली ज्वाला की तरह अशान्ति ही हाथ लगी तो इस गोरख धन्धे में उलझा रहने वाला बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य माना जायगा ? इसके स्थान पर यदि जीवन यात्रा के आवश्यक और उचित साधन जुटाने में सामान्य श्रम, समय और मनोबल लगाया गया होता और बचे हुए पुरुषार्थ को आत्म-कल्याण एवं परमार्थ में लगाया गया होता तो उससे अनन्त काल तक मिलने वाला आनन्द प्राप्त हुआ होता और इस धरती पर असंख्य प्राणियों ने उस जीवन से लाभ उठाया होता ।

जीवन में यह दो ही उपयोग हो सकते हैं । एक तृष्णा और वासनाओं के जंजाल में जकड़ा हुआ इतना व्यस्त जीवन जिसमें आत्म-कल्याण की साधना के लिए न इच्छा जगे और न अवकाश मिले । दूसरा वह जिसमें सीमित आकांक्षाओं के साथ सन्तोषपूर्वक समय गुजारते हुए कर्मयोगी की तरह संसार के प्रस्तुत उत्तरदायित्वों को शान्तिपूर्वक निवाहते हुए परमार्थ का भी सम्पादन कर लिया जाय । निश्चित रूप से दूसरा जीवन-क्रम अधिक दूरदर्शितापूर्ण एवं अधिक लाभदायक है । किन्तु आश्चर्य और खेद की बात है कि आज हम सब उस जीवन-क्रम को अपनाए हुए हैं जिससे अशान्ति, बरबादी और पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ मिलने वाला नहीं है । तुलनात्मक दृष्टि से इन दोनों प्रकार के जीवन-क्रमों पर विचार किया जाना चाहिए और सोचा जाना चाहिए कि लाखों करोड़ों वर्ष बाद मिले हुए मानव जीवन का सदुपयोग करने की समस्या का हल करना आवश्यक है या नहीं ? अन्य अनेक साधारण समस्याओं को हल करने में कितना सोच-विचार किया जाता है और उसका कारगर हल ढूँढ़ निकाला जाता है । कितने खेद की बात है कि करोड़ों-करोड़ रुपयों से अधिक मूल्यवान इस सुर दुर्लभ मानव-जीवन के सदुपयोग का प्रश्न हम उपेक्षा के कूड़े में ही पटके रहते हैं । यह उपेक्षा एक दिन कितनी कष्टकारक, कितनी पश्चाताप भरी वेदना उत्पन्न करती है, इसका अनुमान यदि आज लगाया जाना सम्भव हो सके तो निश्चय ही इस भूल को आज ही सुधार लिया जाय ।

आवश्यक कार्यों से सदा फुरसत मिल जाती है । जो काम महत्व के होते हैं उन्हें पीछे के लिए छोड़कर मनुष्य आवश्यक कार्यों को हाथ में लिया करता है । यदि स्त्री या बच्चे सख्त बीमार हों तो कितने ही लोभ के काम को छोड़कर उनकी चिकित्सा तथा परिचर्या में लगना पड़ता है । व्यस्त आदमियों को भी अपने स्वजनों की जीवन रक्षा के लिए बहुत समय लगाने में कुछ कठिनाई नहीं होती । जिस कार्य को मनुष्य आवश्यक और उपयोगी समझता है उसके लिए व्यस्तता के अगणित कामों को पीछे के लिए धकेल कर उस महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले कार्य के लिए समय निकालता है । आत्म-कल्याण के लिए यदि फुरसत नहीं मिलती तो इसका अर्थ केवल इतना ही है कि इस कार्य को सबसे व्यर्थ, सबसे कम उपयोगी माना गया है और उपेक्षा के बड़े खाने में पटक दिया गया है । महत्वपूर्ण समझे जाने वाले कार्य सदा प्राथमिकता प्राप्त करते हैं, उनके लिए तुरन्त समय निकलता है । समय का अभाव आमतौर से उन्हीं बातों के लिए रहता है जिन्हें हम महत्त्वहीन,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अनुपयोगी, बेकार की बात समझते हैं ।

आत्म-कल्याण को इतना उपेक्षणीय मानना, फुरसत न रहना और शरीर मन को प्रसन्न करने के लिए चौबीस घण्टे लगे रहना क्या यही नीति हमारे लिए उचित है ? क्या इसी से हमारा जीवन लक्ष्य सफल हो सकेगा ? यह विचारणीय प्रश्न है । इसको सुलझाने में हम जितनी शीघ्रता करें जितना सही निष्कर्ष निकाल लें उतनी ही हमारी भलाई है ।

## हम एक मार्ग चुन लें

इस संसार में उत्थान और पतन के दो मार्ग हैं जो परस्पर विरोधी दिशाओं में चलते हैं । इनमें से एक को परमार्थ, दूसरे को स्वार्थ कहते हैं । इन्हें ही पुण्य, पाप, श्रेय, प्रेय आदि नामों से पुकारते हैं प्रशंसा और निंदा के, स्वर्ग और नरक के, शान्ति और अशान्ति के मार्ग भी यही हैं । इनमें से मनुष्य स्वेच्छापूर्वक अपने लिए किसी को भी चुन सकता है और अपना भविष्य सुख-शान्तिमय या क्लेश-कलहमय बना सकता है । श्रेय मार्ग पर चलते हुए मनुष्य मानवता की महानता को अपनाकर अन्त में देवत्व तक जा पहुँचता है और स्वर्गीय आनन्द की परिस्थितियों का रसास्वादन करता है । इसके विपरीत प्रेय मार्ग पर चलते हुए मनुष्य अपने पद से च्युत होकर पशुता का वरण करता है और अन्त में असुरता की स्थिति में पहुँचकर नरक जैसी अशान्त एवं क्षुब्ध मनोदशा के उद्वेगों में झुलसने लगता है ।

यह जानते हुए भी कि स्वार्थ का परिणाम दुःख और परमार्थ का परिणाम सुख होता है, लोग आमतौर पर वही गलती दुहराते रहते हैं-परमार्थ का मार्ग छोड़कर स्वार्थ के मार्ग पर चलते हैं । श्रेय को अपनाने की इच्छा रहते हुए भी प्रेय की ओर ही मन लगता है और मन में संकोच अति लज्जा एवं आशंका रहते हुए भी पैर उसी दिशा में बढ़ने लगते हैं । सुख का मार्ग छोड़कर दुःख की ओर, स्वर्ग का मार्ग छोड़कर नरक की ओर चलने के लिए जो शक्ति विवश कर देती है उसी का नाम माया या अविद्या है । धर्म ग्रन्थों में माया एवं अविद्या की भी निन्दा की गई है और इनके चंगुल में फँसे हुए जीव को भर्त्सना की दृष्टि से देखा गया है । यह विचारणीय बात है कि सत्पुरुषों से, सद्ग्रन्थों से तथा अपने अनुभव से व्यक्ति पुण्य की महत्ता और पाप की हानियों को जानता हुआ भी जिस माया या अविद्या की प्रेरणा से कुपथगामी बनता है वस्तुतः वह है क्या वस्तु ? और उसकी इतनी प्रबल प्रचण्डता का कारण क्या है ?

अनीति की विशेषता यह है कि उससे तुरन्त लाभ होता है, किन्तु पीछे कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । इसके विपरीत नीति का मार्ग ऐसा है जिस पर चलने वाले को आरम्भ में तप, त्याग करना पड़ता है और पीछे देर से उसके लाभ दृष्टिगोचर होते हैं । अदूरदर्शी लोगों को तुरन्त लाभ दिखाई पड़ता है और देर के लाभ तक ठहर सकने योग्य धैर्य एवं साहस नहीं होता । प्रलोभनों पर वे फिसल पड़ते हैं और उसी कुचक्र में अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेते हैं । आज के, अभी के क्षणिक लाभ की ओर उतना अधिक आकर्षित हो जाना कि भविष्य में उसके दुष्परिणामों का ध्यान ही न रहे, उसी का नाम माया या अविद्या है । दूसरे शब्दों में इस मूर्खता को-अदूरदर्शिता, अविवेक, अधीरता या विचारहीनता भी कह सकते हैं ।

इस दुनिया को आध्यात्मिक भाषा में 'भवसागर' कहते हैं । मायानगरी या जादूनगरी भी इसे कहा जाता है । भवसागर इसलिए कहा गया है कि वह घड़ियालों और मगरमच्छों से भरा पड़ा है, जो दाव लगते ही शिकार को निगल जाते हैं । मायानगरी इसलिए कहा गया है कि यहाँ कदम-कदम पर मनुष्यों को पहेलियाँ बूझनी पड़ती हैं । भूल-भुलैया के महल में फँसे हुए मनुष्य को बाहर निकलने के लिए सही रास्ता ढूँढ़ने में अपनी पूरी बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है तब उसे कहीं रास्ता मिलता है, यदि थोड़ा भी असावधान रहे, उपेक्षा करे तो उसी में भटकते फिरना पड़ता है और बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलता । घड़ियालों और मगरमच्छों से भरे तालाब में स्नान करने वाले को हर घड़ी सतर्क रहना पड़ा है, जरा सी असावधानी उसके लिए प्राणघातक दुष्परिणाम उत्पन्न कर सकती है । जादू की नगरी इसलिए कहा जाता है

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कि यहाँ हर चीज के दो रूप हैं-बाहर कुछ और भीतर कुछ । इसमें वास्तविकता क्या है, यह जाने बिना धोखा होने का बड़ा डर रहता है । बाजीगर मिट्टी का टुकड़ा लेकर उसे जादू से मिठाई बना देता है, किसी वस्तु को किसी रूप में दिखा देता है इसमें वह 'नजर बाँध देने का जादू' करता है, आँखें वास्तविकता को समझने में धोखा खाती रहती हैं और कुछ का कुछ दिखाई देता रहता है । जादूगर दर्शकों की मूर्खता पर मन ही मन मुस्कराता रहता है ।

पाण्डवों का एक ऐसा महल था जिसमें जल के स्थान पर थल तथा थल के स्थान पर जल दिखाई पड़ता था । कौरव एक दिन वहाँ गये तो वह भी धोखा खा गये । द्रोपदी इस पर हँस पड़ी और यही हँसी अन्त में महाभारत का कारण बनी । इस मायानगरी दुनिया का सारा महल ही जल को थल और थल को जल दिखा देने वाला बना खड़ा है, जिसमें पग-पग पर भ्रमित होने वाले हम कौरवों का उपहास हो रहा है । रूप और सौन्दर्य जिनके ऊपर लोग मरे-कटे जा रहे हैं, चमड़ी की चमक मात्र है । यह चमकती पन्नी को मल-मूत्र के, हाड़-माँस के दुर्गन्ध भरे घड़े के ऊपर चिपकाकर लोगों को कितने बड़े भ्रम में डाल रखा है, बाजीगर की इस चतुराई को देखकर हैरत में पड़ना पड़ता है ।

धन चाँदी, ताँबे और कागज के टुकड़े (नोटों) की अपनी एक निराली दुनिया है । वे एक हाथ से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में मस्ती के साथ घूमते रहते हैं देर तक वे कहीं भी नहीं ठहर सकते । फिर भी लोग सोचते रहते हैं कि हमारे पास इतना धन जमा है इतने धन के स्वामी हैं । तिजोरी में बैंक में, धन रखा हो या सरकारी खजाने में जमा हो या अपने बाद उस पर किसी और का कब्जा हो जाय, इसमें अपना क्या बनता बिगड़ता है ? सिक्के हमारे मरने-जीने की परवाह किए बिना अपनी व्यवस्था के अनुसार घूमते-फिरते रहते हैं पर लोग उनके साथ न जाने क्या-क्या अरमान संजोये बैठे रहते हैं । जमीन-जायदाद, सोना-चाँदी, तथा अत्यावश्यक वस्तुएँ एक की मालिकी में से दूसरे के हाथ जाती रहती हैं, वे वस्तुएँ ज्यों की त्यों रहती हैं, स्वामित्व जताने वाले एक के बाद दूसरे, तीसरे आते हैं और मरते-खपते चले जाते हैं । जाने वालों में से हर एक खाली हाथ प्रयाण करता है, फिर भी जिसे मरने वाले का उत्तराधिकार मिला है वह सोचता है कि मुझे दौलत मिल गई । दौलत हँसती है कि बेवकूफ, तू जितना सदुपयोग कर ले उतना तेरा लाभ है, जमा हुई सम्पदा तो तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठवें को उसी क्रम से हस्तान्तरित होती रहेगी जैसी तुझे हुई है । दौलत मुस्कराती है पर बेचारा भोला दर्शक यह सब समझ नहीं पाता और अपने धनी होने के अभिमान में इतराता फिरता है । जादू की नगरी में लोग व्यर्थ ही बावले बने फिरते हैं । काम और लोभ के वशीभूत होकर वासना और तृष्णा से ग्रसित होकर हम क्या-क्या अनर्थ नहीं करते ?

होली के दिनों में रास्तागीरों का मजाक बनाने के लिए कई मनचले लोग ऐसा करते हैं कि सड़क पर रुपया, अठन्नी आदि कोई सिक्का मजबूत मसाले से चिपका देते हैं । रास्तागीर उसे देखता है और ललचाता है । लोगों की आँख बचाकर उस पड़े हुए सिक्के को उठा ले जाने का उपक्रम करता है । उठाने की कोशिश करता है तो वह चिपका हुआ सिक्का उखड़ता नहीं । इस लालच पर व्यंग करते हुए वे मनचले लोग हँस पड़ते हैं जिन्होंने यह चालाकी कर रखी थी । बेचारा रास्तागीर अपना उपहास सहता हुआ सिटपिटाता मुँह लेकर खीझता हुआ चला जाता है । ऐसा ही मजाक हम सबके साथ यह जादू की दुनिया करती रहती है । रूप और सौन्दर्य पर मोहित होकर मनुष्य विकार ग्रस्त होता है, इस विकार में उसे मिलता कुछ नहीं, नष्ट बहुत होता है । मानसिक शान्ति, स्वास्थ्य, पौरुष एवं भविष्य सभी कुछ दाव पर लगाकर वह इस रूप, सौन्दर्य को हड़पना चाहता है पर वह अपनी जगह पर ही बना रहता है हड़पने से कुछ नहीं आता । केवल अपना जीवन इस पर निचुड़ जाने की हानि उठाकर भोला दर्शक हाथ मलकर पछताता रह जाता है । धन की भी यही बात है । जमीन, तिजोरी, बैंक और कारखाने में अपनी समझी जाने वाली दौलत को छोड़कर लोग खाली हाथ चले जाते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

## ५.६ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

यह माया जिसमें भ्रमित होकर मनुष्य तुरन्त के छोटे लाभ के लिए भविष्य को अन्धकारमय बना लेता है, कोई बाहरी शक्ति या देवी-दानवी नहीं है, मनुष्य की अदूरदर्शिता ही है । दूरगामी परिणामों की चिन्ता न करते हुए तुरन्त लाभ सोचने से मनुष्य दुष्कर्म करने पर उतारू होता है किन्तु यदि उसका सोचना इस ढंग से हो कि मुझे स्थायी शान्ति किस प्रकार से मिलेगी तो उसका दृष्टिकोण बिल्कुल ही दूसरे ढंग का हो जायगा, तब यह उस तरह सोचेगा जैसे बुद्धिमान सोचते हैं और वैसा करेगा जैसे भले मानस करते हैं । चरित्र का आधार यह दूरदर्शितापूर्ण दृष्टिकोण ही है । संसार की सुख-शान्ति इसी बुद्धिमत्ता के विकास पर निर्भर है । युग-निर्माण योजना के अन्तर्गत सभ्य समाज की रचना का जो हमारा लक्ष्य है उसकी पूर्ति का प्रधान अवलम्बन यह है कि मनुष्य दूरदर्शी बने, आज का कार्य करने से पूर्व काल की सम्भावनाओं का ध्यान रखे । विवेक से काम ले । वह करे जो करने योग्य हो । वह सोचे जो सोचने योग्य हो । जो उचित जँचे उसे अपनावे और जो अनुचित दिखाई देता है उससे अलग हो जावे ।

अनीति के मार्ग पर दिखाई देने वाले प्रलोभनों की ओर दौड़ने वाले मन को कड़ी लगाम लगाकर रोक सकने लायक वीरता जिसमें होगी वही योद्धा जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करेगा । लक्ष्य की पूर्णता का श्रेयाधिकारी वही बन सकेगा, जो भविष्य के सुन्दर स्वप्नों का संसार बनाने के लिए आज कष्ट उठाने को तैयार है । वही तपस्वी अपनी साधना का वरदान कल उपलब्ध करेगा, जिसने आज नीरस दीखने वाले कार्यक्रम को भी कठिन दीखने वाले मार्ग को भी भविष्य की उज्ज्वल आशाओं को ध्यान में रखते हुए अपनाने का साहस दिखाया, वही वस्तुतः इस संसार में धीरवान् महापुरुष कहलाने का अधिकारी बन सकता है । ऐसे धीर-वीर लोगों के द्वारा ही यह धरती शोभा को प्राप्त करती है, उन्हीं के प्रताप से यह लोक स्वर्गलोक बनता है । वे ही अपने पराक्रम से युग का परिवर्तन एवं निर्माण किया करते हैं । समाज की रचना के ईंट-चूने का काम यह धीरे-धीरे ही पूरा किया करते हैं । आज उन्हीं को ढूँढ़ा जाना और उन्हीं का निर्माण किया जाना आवश्यक प्रतीत हो रहा है ।

ओछी बुद्धि होने के कारण ही किसी व्यक्ति को ओछा कहा जाता है । यों लम्बाई-ऊँचाई में तो बहुत थोड़ा-थोड़ा अन्तर लोगों में देखा जाता है पर विवेक की दृष्टि से उनमें आकाश-पाताल का अन्तर रहता है । कोई वामन अंगुल के बौने जैसे होते हैं तो कोई भूधराकार हनुमान जैसे लगते हैं । यह अन्तर शारीरिक नहीं मानसिक ही होता है । ओछे मनुष्य अपना आज का संकुचित लाभ ही सदा ध्यान में रखते हैं और इसके लिए दूसरों का कितना ही बड़ा अहित होता हो तो उसकी परवाह नहीं करते । जिन्हें दूरदर्शिता प्राप्त है, जिनका विवेक जाग्रत हो गया वे महान् कहलाते हैं, उनकी दृष्टि सुविस्तृत दूरी तक देख सकने में समर्थ होती है । वे सबके हित में अपना हित समझते हैं । सबके सुख में अपना सुख अनुभव करते हैं और स्वार्थ साधन करके अपनी तोंद बढ़ाने में वे जोंक का उदाहरण नहीं बनते वरन् खिलते हुए पुष्प की तरह अपना सारा सौरभ दूसरों की सुख-शान्ति के लिए बिखेरते हुए अपना यश शरीर अमर छोड़कर इस संसार में से हँसते-हँसाते हुए विदा होते हैं । जीवन की यही सार्थकता है और इसे प्राप्त वे ही कर पाते हैं, जो महान हैं-जिनका दृष्टिकोण विशाल एवं महान् है । माया से विरत, विवेकशील और ज्ञानी-विज्ञानी वे ही हैं जिन्होंने ओछेपन को ठुकरा देने और महानता को छाती पर धारण करने का साहस दिखाया । वीरों की पूजा सर्वदा सर्वत्र होती है । भगवान् राम और कृष्ण इसी वीरता के कारण पूजे जाते हैं । भगवान् के दरबार से पग-पग पर फिसलने वाले लुँज-पुँज लोगों के लिए नहीं, केवल उनके लिए सम्मान का स्थान मिल सकता है जो अंगद की तरह पैर जमाकर अपनी महानता, वीरता, एवं उत्कृष्टता का प्रमाण प्रस्तुत कर सके । मुक्ति तो उनके लिए एक तुच्छ उपहार मात्र है, स्वर्ग तो उन्हें अनायास ही मिलने वाला है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


काँटे की नोंक में लगे हुए जरा से आटे का लोभ मछली संवरण नहीं कर पाती और अपनी जान से हाथ धो बैठती है । जाल में बिखरे हुए जरा से दानों की उपेक्षा यदि भोली चिड़िया कर सकी होती तो फड़फड़ा-फड़फड़ा कर मरने की आपत्ति से वह बच सकती थी । दीपक के रूप पर मुग्ध होकर आगा-पीछा न सोचने वाला पतंगा आखिर पाता क्या है ? खुद भी जल मरता है और दीपक को भी बुझा देता है । रस का लोभी भौंरा कमल की पंखुरियों में बन्द होकर हाथी का कलेवा बन जाता है । ठग आरम्भ में थोड़ा लालच दिखा कर अन्त में किसी भोले आदमी को बुरी तरह मूँड़ लेते हैं । यदि इनमें आरम्भिक प्रलोभन से बच निकलने के लायक धैर्य रहा होता तो बेचारों की इस प्रकार दुर्गति क्यों होती ? जेलखानों में निन्दा, घृणा और यातना का जीवन व्यतीत करने वाले लोगों में अधिकांश वे हैं जो अपने तात्कालिक लोभ एवं आवेश का संवरण न कर सके और आज जन-समाज से बहिष्कृत स्थिति में दयनीय जीवन-यापन कर रहे हैं । नरक की बड़ी जेल में ले जाने वाला भी यह एक ही कारण है, प्रलोभनों में फिसलने से बच सकने लायक धैर्य का अभाव । यदि यह एक कमी लोगों के मन:क्षेत्र से निकल सके तो निस्सन्देह हममें से हर कोई महापुरुष बन सकता है और अपने को आनन्दमय स्थिति में रख सकता है । इतना ही नहीं वरन् सर्वत्र सुख-शान्ति का वातावरण उत्पन्न करने में महान् योग दे सकता है ।

भगवान् के भण्डार में बहुत विभूतियाँ भरी पड़ी हैं, पर वे सबको उसी प्रकार नहीं मिलतीं जिस प्रकार बन्दूक का लाइसेंस सरकार हर किसी को नहीं देती । परीक्षा के बाद ही विद्यार्थी को उत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र मिलता है । आग में तपाये जाने के बाद ही स्वर्ण को खरा घोषित किया जाता है । किसान साल भर तक अपने शरीर और धन को मिट्टी में मिलाये रखने के बाद ही फसल की अन्नराशि का अधिकारी बनता है । माली को कितने दिन तक कितने धैर्यपूर्वक पौधों की सेवा करनी पड़ती है तब वे फल देने वाले विशाल वृक्ष बनते हैं । कागज का महल एक दिन में खड़ा हो सकता है पर विशाल बाँध बनाने का निर्माण कार्य तो वर्षों में पूरा हो पाता है । चोरी, बेईमानी में अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा बेच कर कुछ छोटा-सा लाभ कभी भी प्राप्त किया जा सकता है, पर महापुरुष नर-रत्न और सफल जीवन सत्पुरुष कहलाने की महान् सफलता तो पग-पग पर अपनी महानता को सुरक्षित रखने के लिए तप, त्याग करने पर ही प्राप्त हो सकनी सम्भव होती है ।

यहाँ हर श्रेष्ठ व्यक्ति को कठिनाइयों की, असुविधाओं की अग्नि-परीक्षाओं में होकर गुजरना पड़ा है । जो विवेक को अपनाये रहता है, प्रलोभनों में स्खलित नहीं होता और सन्मार्ग से किसी भी कारण कदम पीछे नहीं हटाता, वस्तुत: वही इस भवसागर को पार करता है, वही माया के जादू से अछूता बचा रहता है और उसी का मानव शरीर धारण करना सार्थक होता है । श्रेय का मार्ग महान् है । पुण्य परमार्थ के, श्रेष्ठता और महानता के, धार्मिकता और आस्तिकता के पुण्य-पथ पर चलना कुछ कठिन नहीं है और इस दिशा में चलते हुए निरन्तर प्राप्त होती रहने वाली शान्ति को उपलब्ध करना भी कुछ कष्टसाध्य नहीं है । आवश्यकता केवल इतनी ही है कि मनुष्य तुरन्त के लोभ को त्याग कर दूरवर्ती परिणामों पर विचार करे और उसी के आधार पर अपनी गतिविधियाँ विनिर्मित करने के लिए कृतसंकल्प एवं कटिबद्ध हो जावे । दोनों मार्ग सामने खुले पड़े हैं यह अपनी इच्छा के ऊपर पूर्णतया निर्भर है कि दोनों में से किसी को भी चुन लें । सभ्य समाज की रचना का होना या वर्तमान असभ्यता का और भी दिन-दिन अधिक बढ़ते जाना हमारे इसी चुनाव पर निर्भर है । राजनैतिक वोट तो बार-बार पड़ते रहते हैं, हमें जीवन लक्ष्य के चुनाव में एक ही बार वोट डालनी पड़ती है । एक श्रेय, दूसरा प्रेय, यह दोनों ही उम्मीदवार खड़े हैं । यह हमारे पसन्दगी की बात है कि इनमें से किसी एक को वोट देकर उसे विजयी बना दें ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# मन से छीनकर प्रधानता आत्मा को दीजिये

मनुष्य सामान्यत: जो बाह्य में देखता, सुनता और समझता है वह यथार्थ ज्ञान नहीं होता । किन्तु वह भ्रमवश उसी को यथार्थ ज्ञान मान लेता है । अवास्तविक ज्ञान को ही ज्ञान समझकर और उसके अनुसार ही अपने कार्यों को करने के कारण ही मनुष्य अपने मूल उद्देश्य सुख-शान्ति की दिशा में अग्रसर न होकर विपरीत दिशा में चल पड़ता है ।

यथार्थ ज्ञान की अनुभावक मनुष्य की अन्तरात्मा ही है । शुद्ध, बुद्ध एवं स्वयं चेतन होने से उसको अज्ञान का अन्धकार कभी नहीं व्याप सकता । परमात्मा का अंश होने से वह उसी तरह सत्, चित् एवं आनन्द है, जिस प्रकार परमात्मा के समीप असत्य की उपस्थिति असम्भव है उसी प्रकार उसके अंश आत्मा में भी असत्य का प्रवेश सम्भव नहीं ।

मनुष्य की अन्तरात्मा जो कुछ देखती, सुनती और समझती है वही सत्य है वही यथार्थ ज्ञान है । अन्तरात्मा से अनुशासित मनुष्य ही सत्य के दर्शन तथा यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि कर सकता है । यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर मनुष्य के सारे शोक-सन्तापों एवं दु:ख-द्वन्दों का स्वत: समाधान हो जाता है । जहाँ प्रकाश होगा वहाँ अन्धकार और जहाँ ज्ञान होगा वहाँ दु:ख रह ही नहीं सकता । प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है और ज्ञान की अनुपस्थिति ही दु:ख है । वस्तुत: दु:ख का कोई अन्य मौलिक अस्तित्व नहीं है ।

अन्तरात्मा की बात सुनना और मानना ही उसका अनुशासन है । शंका हो सकती है कि क्या मनुष्य की अन्तरात्मा बोलती भी है ? हाँ मनुष्य की अन्तरात्मा बोलती है । किन्तु उसकी वाणी स्थूल ध्वनिपूर्ण नहीं होती । वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है जिसे बाह्य एवं स्थूल श्रवणों से नहीं सुना जा सकता । मनुष्य की अन्तरात्मा बोलती है किन्तु मौन विचार स्फुरण की भाषा में, जिसे मनुष्य अपनी कोलाहलपूर्ण मानसिक स्थिति में नहीं सुन सकता । अन्तरात्मा की वाणी सुनने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का मानसिक कोलाहल बन्द हो ।

अन्तरात्मा का सान्निध्य मनुष्य हो उसकी आवाज सुनने योग्य बना देता है । यों तो मनुष्य की अन्तरात्मा उसमें ओत-प्रोत है किन्तु वह तब तक उसका सच्चा सान्निध्य नहीं पा सकता, तब तक वह उससे परिचय नहीं पा सकता, जब तक वह उससे परिचय नहीं करता उसे जान नहीं पाता । परिचयहीन निकटता भी एक दूरी ही होती है । रेल-यात्रा में कन्धे से कन्धा मिलाये बैठे दो आदमी अपरिचित होने के कारण समीप होने पर भी एक दूसरे से दूर ही होते हैं । अजनबी को छोड़ दीजिये जिन्दगी भर एक दूसरे के पास रहने पर भी आन्तरिक परिचय के अभाव में एक-दूसरे से दूर ही रहते हैं । वे कभी भी एक दूसरे को ठीक से नहीं समझ पाते ।

अन्तरात्मा को जानने का एक ही उपाय है कि उसके विषय में सदा जिज्ञासु एवं सचेत रहा जाय । जो जिसके विषय में जितना अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहता है वह उसके विषय में उतनी ही गहरी खोज करता है और निश्चय ही एक दिन उसे पा लेता है । आप अपनी आत्मा के विषय में अधिक से अधिक जिज्ञासु एवं सचेत रहिये । आप अपनी आत्मा से परिचित होंगे, उसकी वाणी सुनेंगे, सच्चा मार्ग निर्देशन पायेंगे तो अज्ञान से मुक्त होंगे और जीवन में यथार्थ सुख-शान्ति के अधिकारी बनेंगे ।

मनुष्य जो काम करता है वह अधिकतर करता अन्त:प्रेरणा से ही है । किन्तु वह अन्त:प्रेरणा अन्तरात्मा की नहीं होती । वह होती है मन की, जो कि स्वभावत: पतन पथगामी, चंचल, निरंकुश एवं अनुशासनहीन ही होता है । चंचल एवं उच्छृंङ्खल मन मनुष्य के लिए यातना का महामूल है । वह इन्द्रियों के द्वारा कार्य रूप में स्फुरित होकर मनुष्य को अन्धकार की ओर ही खींच ले जाता है ।

अन्तरात्मा के जिज्ञासु को चाहिए कि वह मन के कोलाहल की ओर से कान मूँदकर अन्तरात्मा की आवाज सुनने का अभ्यास करे । जिस दिन वह अन्तरात्मा का निर्देश सुनने और पालन करने लगेगा, निश्चय ही उस दिन से यथार्थ सुख-शान्ति का अधिकारी बन जायेगा । जिज्ञासा की प्रबलता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


से मनुष्य का कान उस तन्मयता को सरलता से सिद्ध कर सकता है जो अन्तरात्मा की आवाज सुनने में सफलतापूर्वक सहायक हो सकती है । आत्मा मनुष्य की सच्ची मित्र है । वह सदैव ही मनुष्य को सत्पथ पर चलने और कुमार्ग से सावधान रहने की चेतावनी देती रहती है । किन्तु खेद है कि मनुष्य मन के कोलाहल में खोकर उसकी आवाज नहीं सुन पाता, किन्तु यदि मनुष्य वास्तव में उसकी आवाज सुनना चाहे तो ध्यान देने से उसी प्रकार सुन सकता है जिस प्रकार बहुत-सी आवाजों के बीच भी उत्सुक शिशु अपनी माँ की आवाज सुनकर पहचान लेता है ।

अन्तरात्मा मनुष्य की मित्र है और सदैव ही उसका हित चाहती रहती है तो फिर वह उसके लिए प्रत्यक्ष क्यों नहीं होती, लुकी छिपी क्यों रहती है ? यह प्रश्न किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क में उठ सकता है । इसका सीधा-सा उत्तर यही है कि आत्मा सदा सर्वत्र प्रत्यक्ष ही रहती है । किन्तु यह मनुष्य का ही दृष्टिदोष है कि वह उसे देख नहीं पाता । सूर्य सदैव प्रत्यक्ष है अब उसके तथा दृष्टि के बीच में कोई व्यवधान आ जाये तो सूर्य उसके लिए अप्रत्यक्ष ही है । मनुष्य तथा उसके आत्मा के बीच मन की प्रधानता का परदा पड़ा हुआ है जिसके कारण प्रत्यक्ष आत्मा भी मनुष्य के लिए अप्रत्यक्ष ही रहती है । यदि मनुष्य इस मन की प्रधानता की उपेक्षा कर सके तो निश्चय ही उसकी अन्तरात्मा उसके लिए प्रकाश के समान ही प्रत्यक्ष हो जाय ।

मन को प्रधानता देने वाले सदैव ही अपनी आत्मा से वंचित रहा करते हैं और उससे मिलने के लिए उत्सुक होने पर भी प्राप्त नहीं कर पाते । मन को प्रधानता देने वाले उसके निर्देश एवं संकेत से ही संचालित हुआ करते हैं । बहुत बार बहुत से मनीषी-जन अपने मन को साधना द्वारा शुद्ध एवं प्रबुद्ध भी कर लिया करते हैं । किन्तु तब तक भी वह शुद्ध एवं प्रबुद्ध मन विश्वस्त नहीं माना जा सकता जब तक उसकी सत्ता आत्मा में अन्तर्निहित नहीं हो जाती बहुत बार तो संस्कृत एवं सुशिक्षित होकर मन और अधिक प्रबल हो जाता है उसकी सत्ता इतनी बढ़ जाती है कि वह आत्मा को अनुशासित करने का प्रयत्न ही नहीं करता बल्कि अपने को मनुष्य की अन्तरात्मा ही घोषित करने लगता है । किन्तु आत्मा के प्रति उत्सुक मनीषी-जन उसकी इस दुरभिसन्धि को अच्छी तरह जानते हैं और कभी भी उसके छल में नहीं आते ।

मनुष्य का मन तब तक विश्वस्त नहीं हो सकता जब तक जन्म-जन्म के संस्कारों का जमा मल उस पर से पूर्ण रूपेण धुल नहीं जाता । निर्मल हो जाने पर मन की विक्षिप्तता नष्ट हो जाती है और वह शान्त एवं सुस्थिर हो जाता है । मन की स्तब्धता की स्थिति में अन्तरात्मा की आवाज वैसी ही सुनाई देने लगती है जैसे मेघों का गर्जन बन्द हो जाने पर पपीहे की आवाज सुनाई देने लगती है । मनुष्य के मन का वांछित संस्कार तभी सम्भव है जब उसको प्रधानता देकर उसके प्रति अधिकाधिक सजग, सचेत एवं समुत्सुक बना जाये ।

मनुष्य के वैचारिक द्वन्द्व का कारण यही होता है कि अन्तरात्मा एवं मन की विरोधी सत्ताएँ बनी रहती हैं । निश्चय ही स्वाभाविक विरोध होने से अपने धर्मानुसार मन मनुष्य को गलत रास्ते पर प्रेरित करेगा और आत्मा अवश्य ही उसका विरोध करेगी । आत्मा मनुष्य को सत्पथ पर चलने के लिए कहेगी । मन उसमें वितर्क करेगा । ''किया जाये अथवा न किया जाये ?'' का विरोध द्वन्द्व आत्मा के साथ मन की सत्ता बनाये रखने के कारण ही उत्पन्न होता है ।

आत्मा अमर है, शाश्वत है, सत्य है इसलिए उसका विनाश नहीं हो सकता और न उसकी स्थिति ही बदल सकती है । मन भौतिक है, अनक्षर है उसी को मारना अथवा आत्मा के वशवर्ती होकर उसी में अपने को विसर्जित करना होगा । आत्मा की आवाज सुनने को और उसका साक्षात्कार करने के लिए मन की प्रधानता का अपहरण करके आत्मा को दे । आत्मा के प्रति सजग, सचेत व उत्सुक बनकर अपना भविष्य बनायेगा और शाश्वत सुख का अधिकारी बनेगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# अध्यात्म ही प्रधान है

सृष्टि में अनेकों प्रकार के आनन्ददायक पदार्थ हैं, पर वे जड़ होने के कारण स्वयं किसी को किसी प्रकार का सुख-दुःख नहीं दे सकते । आत्मा की चेतना ही उन पदार्थों के साथ जब घुलती है तब पदार्थ में रस उत्पन्न होता है और तभी वे सुखदायक लगने लगते हैं । यदि आत्मा की अनुभूति उनके प्रतिकूल हुई तो वे ही दुःखदायक बन जाते हैं । इस संसार में पदार्थ कोई भी ऐसा नहीं है जो अपने आप किसी को सुख या दुःख दे सके ।

संसार में अनेक सुन्दर दृश्य, पदार्थ मौजूद हैं पर यदि अपनी आँखें जाती रहें दिखाई न पड़े तो सृष्टि के सभी पदार्थ अदृश्य हो जायेंगे सर्वत्र अन्धकार ही छाया दीखेगा । दृश्य पदार्थों की सारी सुन्दरता नष्ट हो जायेगी । संसार में बहुत-बहुत मधुर शब्दों की ध्वनि होती है । पक्षियों का कलरव, मेघ गर्जन, मधुर-भाषण, प्रेमालाप, बालकों की तोतली बोली, गायन, वाद्य, प्रवचन आदि बहुत कुछ सुनने योग्य इस संसार में मौजूद है, पर यह सब हैं तभी तक जब तक अपने कानों में चैतन्यतत्त्व जाग्रत है । यदि कानों की सजीवता जाती रहे तो यह सारी शब्द धारा समाप्त हो जायेगी तब सर्वत्र नीरवता का साम्राज्य ही दीखेगा ।

जिह्वा में कोई रोग हो जाय, मुँह में छाले भर जायँ या स्वाद अनुभूति की इन्द्रिय में कोई विकार आ जाय तो फिर संसार के सुखस्वादु पदार्थों में क्या विशेषता रह जायगी ? उत्तम से उत्तम भोजन भी मिट्टी जैसे स्वादहीन लगेंगे । नपुंसकता या कोई और मूत्रेन्द्रिय का रोग हो जाय तो काम-सेवन की सुविधाएँ रहते हुए भी उस सम्बन्ध में कोई आनन्द शेष न रहेगा । पेट की पाचन-क्रिया काम न करे तो पौष्टिक पदार्थों का सेवन भी भला शरीर का क्या पोषण कर सकेगा ? यदि मस्तिष्क की सजीवता कुण्ठित हो जाय, मूढ़ता स्मरण शक्ति का लोप, उन्माद आदि कोई रोग घेर ले तो फिर ज्ञान-सम्पादन के अगणित साधन होते हुए भी अपना क्या लाभ होगा ? विद्यालयों, ग्रन्थों, शिक्षकों एवं अन्यान्य ज्ञानवर्धक सुविधाओं से भी क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?

आत्मा की सूक्ष्म चेतना सारे शरीर का नियन्त्रण और संचालन करती है । उस व्यवस्था में रत्ती भर भी अन्तर आ जाय तो यह सुन्दर, सुगठित, स्वस्थ और सक्षम लगने वाला शरीर भी भार रूप हो जाता है । साधारण-सा रोग उठ खड़ा होने पर पीड़ा और परेशानी का ठिकाना नहीं रहता । फिर कोढ़, क्षय, उपदंश, हैजा, प्लेग जैसा कोई संक्रामक रोग हो जाय तब तो दूसरे लोगों का सहयोग भी कठिनाई से मिलता है । लोग छूत से बचने के लिए दूर-दूर रहते हैं और स्वजन सम्बन्धी भी परिचर्या से कतराते हैं । इस प्रकार का कोई भी विकार खड़ा होने पर पहले जो लोग अपने ऊपर जान देते थे वे ही दूर रहने और अपना पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं ।

अपनी निज की विशेषताओं के कारण जो लोग प्रियपात्र थे वे ही उन विशेषताओं के समाप्त हो जाने पर उपेक्षा करने लगते हैं, शत्रु बन जाते हैं । जिस वेश्या पर यौवनकाल में प्रेमीजन चील-कौओं की तरह मँडराते रहते थे वृद्धा होने पर उसके पास कोई दुःख-दर्द की भी सुधि लेने नहीं आता । माता से जब तक बालक दूध तथा जीवन धारण करने की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए उस पर निर्भर रहता है तब तक उससे अत्यधिक प्रेम करता है । माता जरा-सी देर के लिए भी बच्चे को छोड़कर कहीं चली जाय तो वह रोने लगता है, उसी की गोदी में चिपके रहने की इच्छा करता है । पर जब वही माता बूढ़ी हो जाती है; जवान बच्चे के लिए कुछ लाभदायक नहीं रहती तब बेटे का व्यवहार बदल जाता है । वह उपेक्षा ही नहीं करता तिरष्कृत भी करने लगता है ।

यह परिस्थितियाँ बताती हैं कि आत्मा की सजीवता, सूक्ष्मता और सुदृढ़ स्थिति ही एक मात्र वह तथ्य है जिसके कारण पदार्थों और व्यक्तियों को सहयोग, सुख और स्नेह प्राप्त होता है । इसमें कमी आने पर व्यवहार ही बदल जाता है । अपने पराये हो जाते हैं, मित्र शत्रु में बदल जाते हैं । अपने पास धन बहुत हो पर उसकी रखवाली के लायक शक्ति शेष न रहे तो धन ही प्राणों का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ग्राहक बन जाता है । स्वजन सम्बन्धी भी मरने की प्रतीक्षा देखते हैं और चोर-डाकुओं का लालच बढ़ जाता है । वे किसी बलवान् और सुरक्षा सम्पन्न के ऊपर आक्रमण करने की अपेक्षा दुर्बलों को ही अपना शिकार बनाते हैं । अशक्त व्यक्ति के लिए धन उसकी जान का ग्राहक है । रूपवती स्त्री भी उसके लिए विपत्ति ही है । कारोबार व्यापार आदि में अनेक प्रतिद्वन्द्वी खड़े हो जाते हैं । अपनी मनमानी करने में जिसको भी वह कमजोर व्यक्ति कुछ बाधक लगता है वही उसे काँटा समझकर रास्ते में से हटाने की कोशिश करता है । दुर्बल काया पर अगणित रोगों का आक्रमण होता है । बीमारियाँ उसे अपना घर बना लेती हैं । मरने पर तो इस देह को जल्दी से जल्दी घर से निकाल बाहर करने और उसे नष्ट करने की व्यवस्था करनी पड़ती है ।

यह सब बातें अचरज की नहीं, स्वाभाविक हैं । रोज ही आँखों के सामने इस प्रकार की घटनाएँ घटित होती रहती हैं । संस्कृत में एक उक्ति है जिसका अर्थ है ''दैव भी दुर्बल के लिए घातक सिद्ध होता है ।'' जितना बल है, जीवन है, प्राण है उसके उतने ही सहायक और प्रशंसक रहते हैं । जब इनमें कमी आरम्भ हुई कि अपने विराने बनने लगते हैं और मित्र, शत्रु का रूप धारण करने लगते हैं । दुर्बलता को देखकर अकिंचन जीव भी आक्रमण करने और आधिपत्य जमाने की चेष्टा करते हैं । युद्ध क्षेत्र में घायल और अर्धमृत हुए सैनिकों की आँखें कौए निकाल ले जाते हैं और सियार उनका पेट चीरकर आँतें खींचते फिरते हैं । यदि वह सैनिक इस दशा में न होता, स्वस्थ और जीवित होता तो इन कौए और सियारों की हिम्मत पास आने को भी न पड़ती, उससे डर कर प्राण बचाने के लिए भागते फिरते । जीवित मनुष्य जिन चींटियों को पैरों से कुचलता रहता है मृत होने पर वे ही चीटियाँ शरीर को नोंच-नोंच कर खाने लगती हैं । गुलाब-सा सुन्दर शरीर वृद्ध या रोगी होने पर कुरूप एवं घृणास्पद बन जाता है ।

यह सब बातें बताती हैं कि जब तक जीवन तत्व की प्रचुरता है तभी तक इस संसार के पदार्थ उपयोगी अनुकूल एवं सहायक सिद्ध होते हैं । जब प्राण घटा तभी स्थिति बदलने लगती है और शक्ति के क्षीण होते ही सब कुछ प्रतिकूल हो जाता है । जो अग्नि मनुष्य की जीवन भर सेवा सहायता करती रही, भोजन पकाने, सर्दी मिटाने, प्रकाश देने आदि कितने ही प्रयोजनों से जीवन-संगिनी की तरह सहायक रही वह अग्नि शरीर के मृतक हो जाने पर जला डालने के लिए चिता की ज्वालाओं के रूप में धू-धू करती है । नौकर के बूढ़े होते ही नौकरी से हटा दिया जाता है, बूढ़ा बैल कसाई के यहाँ अपनी गर्दन कटाने को विवश होता है, रूप और यौवन के लोभी भौंरे जवानी ढलते ही पुष्प पर मँडराना छोड़ देते हैं । निर्धन का कौन मित्र बनता है ? दुर्बल की कौन प्रशंसा करता है ? अशक्त को किसका आश्रय मिलता है ?

जितना ही गम्भीरतापूर्वक सोचा जाय उतना ही तथ्य स्पष्ट होता है कि अपनी आन्तरिक जीवनी शक्ति ही विभिन्न पदार्थों के ऊपर प्रभाव डाल कर उन्हें चमकीला बनाती है अन्यथा वे सब स्वभावतः कुरूप हैं । कोयला काला कुरूप और निस्तेज है पर जब अग्नि के सम्पर्क में आता है वह भी तेज और ऊष्णता से भरपूर अग्नि जैसा दीखने लगता है । आत्मा ही अग्नि है । वह जिस पदार्थ के साथ जितने अंशों में घुली-मिली रहती है वह उतना ही प्रिय पात्र एवं हितकारी बन जाता है । आत्मा का सम्बन्ध जिस पदार्थ में जितना ही शिथिल होता जायगा वह उतना ही व्यर्थ, अप्रिय एवं अनुपयोगी लगने लगेगा ।

जिस मकान, जायदाद, कोठी, मोटर, धन, जेवर, घोड़ा. गाय के प्रति अपनी ममता है मोह है, स्वामित्व की अनुभूति है, वह बहुत ही प्रिय लगते हैं उनकी सुरक्षा एवं सुन्दरता के लिए निरन्तर ध्यान रहता है । उन पर गर्व भी होता है । पर यदि यह वस्तुएँ बिक जायें, पराई हो जायें तो उनकी ओर से उपेक्षा हो जाती है । किसी दूसरे के अधिकार में जाने के बाद वे भले ही आँखों के सामने बनी रहें, जहाँ पहले थीं भले ही वहीं रहती रहें पर उनके प्रति कुछ भी आकर्षण न रहेगा । ऐसा क्यों हुआ ? यदि वस्तुओं से प्रेम रहा तो वे पराई होने पर भी पहले की भाँति प्रिय लगती रही होतीं । इस प्रेम

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


और उपेक्षा में केवल आत्मभाव का ही अन्तर होता है । आत्मा अपने आपको प्यार करती है, जिस चीज में आत्मा का प्रकाश झलकता है, अपनापन अनुभव होता है केवल वही प्रिय लगती है ।

इस संसार में वस्तुत: कोई भी वस्तु न तो आकर्षक है और न सुन्दर । यहाँ सब कुछ जड़, पञ्च तत्वों का परायण है जो सर्वथा निर्जीव, निष्ठुर, और निस्सार है । प्रिय केवल आत्मा है । आत्मा की आभा ही अपना विस्तार जहाँ-जहाँ करती है, वहीं प्रियता, मधुरता, सुन्दरता, सरसता का अनुभव होता है । आत्मा जितनी बलवान है उसी अनुपात से दूसरे पदार्थ या प्राणी अपने लिए उपयोगी एवं सहायक रहते हैं । यह तथ्य सत्य से नितान्त परिपूर्ण है । मोटे रूप से हर कोई इसे जानता भी है किन्तु कैसा आश्चर्य है कि जानते हुए भी हम सब अनजान बने हुए हैं । आत्मा के महत्त्व को भुलाये बैठे हैं और पदार्थों के पीछे पागल बने फिरते हैं ।

वस्तुओं की, व्यक्तियों की, साधनों की परिस्थितियों को अपने सुख-दु:ख का कारण माना जाता है । उन्हें ही बदलने व सुधारने के लिए प्रयत्न किया जाता है । पर क्या कभी यह भी सोचा है कि अपनी आन्तरिक स्थिति में हेर-फेर किये बिना बाह्य परिवर्तन हमारे लिए कैसे अभीष्ट परिणाम उपस्थित कर सकेंगे ?

इस कुरूप संसार में सुन्दरता कहाँ है ? यदि सौन्दर्य का अजस्र दर्शन करना हो तो अपनी अन्तरात्मा में सौन्दर्यानुभूति का विकास करना होगा, इस परिवर्तन के साथ ही हर वस्तु सुन्दर दीखने लगेगी । इस निर्जीव निष्प्राण, निष्ठुर दुनिया में प्रेम कहाँ ? यदि प्रेम की प्यास है तो अपनी आत्मा में भरे हुए प्रेम के अमृत को चारों ओर बिखेरना पड़ेगा ? उसके छींटे जहाँ कहीं भी पड़ेंगे वहाँ सब कुछ प्रेमास्पद ही दीखने लगेगा । इस दु:ख रूप जगत में भोगने योग्य क्या है ! सब कुछ स्वाद रहित है । स्वाद तो अपनी इन्द्रियों में बसी हुई रसना में है । रसना नष्ट होने पर यहाँ स्वादिष्ट रह ही क्या जायगा ? यदि स्वाद की लालसा हो तो अपनी शुद्ध रसना को जाग्रत करें हर पदार्थ रसमय लगने लगेगा ।

हम निर्धन क्यों रहें । अपने सीमित धन को ही अपना मानने की अपेक्षा इस धरती की सारी सम्पदा को अपने बाप (परमात्मा) की ही जायदाद क्यों न मानें । हम मित्रों का, पुत्रों का, स्वजनों का अभाव क्यों अनुभव करें । इस सारी वसुधा को ही कुटुम्ब क्यों न मानें । हम असहाय एवं दुर्बल क्यों रहें । अपने आत्मा में भरे हुए अनन्त बल को ही विस्तृत एवं विकसित क्यों न करें । यह विकास जितना ही अग्रगामी होगा उतने अनुपात से संसार हमारे लिए सहायक एवं उपयोगी प्रतीत होने लगेगा ।

अपने अन्दर बहुत कुछ है । बहुत ही नहीं सब कुछ भी है । बाहर तो केवल भीतर की छाया मात्र है । इस अन्दर के बहुत कुछ को-सब कुछ को ढूँढ़ना, समझना, सुधारना, बनाना और बढ़ाना यही अध्यात्म है । अध्यात्म का महत्त्व अनन्त है । जो कुछ इस संसार में सुख, सौन्दर्य, सहयोग प्रिय, मधुर, लाभ, सन्तोष, आनन्द एवं उल्लास दिखाई देता है, वह सब अपने भीतरी तत्व का ही छाया दर्शन है । छाया के पीछे न भागकर हम उद्गम का आश्रय ग्रहण करें, यही अध्यात्म का सन्देश है ।

## आत्मा की अनन्त सामर्थ्य

किन्हीं आध्यात्मिक व्यक्तियों में कुछ अलौकिक चमत्कारी शक्ति देखी जाती है । वे कई बार ऐसे आश्चर्यजनक कार्य करते हैं जिन्हें देखकर उनकी विशेषता स्वीकार करनी पड़ती है । कई आध्यात्मिक व्यक्तियों के आशीर्वाद से दूसरों का भला और शाप से अहित होता देखा जाता है । पुराण, इतिहासों में ऋषि तपस्वियों के जीवन के अगणित, अलौकिक कार्यों का विवरण मिलता है । योग की सिद्धियाँ और विभूतियाँ प्रसिद्ध हैं । योगशास्त्र के दक्षिणमार्गी और वाममार्गी ग्रन्थों में इस प्रकार की विभूतियों के कारण और विधानों को विस्तारपूर्वक बताया गया है । जिन लोगों ने उस मार्ग पर चलते हुए जितनी मञ्जिल पार की है उनमें उस साधारण-विज्ञान से संलग्न अनेक साधक अपने में कुछ विशेष प्रकार की सूक्ष्म शक्ति संग्रह करने में समर्थ होते हैं और उसका लाभ स्वयं उठाते अथवा दूसरों को देते रहते हैं । यह प्रत्यक्ष तथ्य है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्राचीनकाल में ऐसे अगणित साधक सर्वत्र दृष्टिगोचर होते थे । यह ऋषियों का देश ही था । इस अध्यात्म विद्या का गौरव सभी को विदित था और सभी उनके साथ अपने को किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रखने का प्रयत्न करते थे । प्रात: और सायं सन्ध्या-वन्दन की साधना तो सभी के लिए अनिवार्य थी जो उसकी उपेक्षा करता था उसे पतित माना जाता था । इसी अपराध के अपराधी समाज बहिष्कार का दण्ड पाते थे और शूद्र, अन्त्यज, चाण्डाल आदि नामों से पुकारे जाते थे ।

आज तो दुर्भाग्य से इन नामों की जातियाँ ही बन गई हैं । कैदियों की कालान्तर में कोई जाति ही बन जाय तो इसे उचित नहीं कहा जायगा । इसी प्रकार आज अन्त्यज चाण्डाल आदि जो जातियाँ देखी जाती हैं, वस्तुत: उनका आरम्भ साधना की उपेक्षा करने के दण्ड स्वरूप हुआ था । यह कभी नहीं सोचा गया था कि आगे चलकर यह वंश परम्परा ही चल पड़ेगी । आज तो आत्म-कल्याण की आध्यात्मिक साधनाओं से विमुख हममें से लोग चाण्डाल, अन्त्यज कहे जाने के ही अधिकारी हैं ।

हमारे पूर्वज जानते थे कि मनुष्य बड़ा आलसी और स्वार्थी है । उसकी दृष्टि चिरस्थायी किन्तु दूरवर्ती लाभों को देखने में चूक करती है और तुरन्त के छोटे से सुख के लिए वह भविष्य को अन्धकारमय बना लेने का प्रमाद बहुधा करता रहता है । इसी की रोकथाम के लिए इस प्रकार के बन्धन लगाये गये थे, दण्ड विधान बने थे ताकि आत्म-साधना की उपेक्षा करके कोई व्यक्ति उन लाभों से वञ्चित न रहे जो मानव जीवन की सफलता के लिए नितान्त आवश्यक है ।

ऋषि-मुनि प्रचण्ड साधनाएँ करके असाधारण और अलौकिक आत्म-बल सम्पादन करते थे और अपने लोक-परलोक को शानदार बनाते थे । पर इतना आत्म-बल तो सभी के लिए आवश्यक समझा जाता था जिससे वह सुखी, सन्तुष्ट और शान्तिपूर्ण जीवनयापन कर सके । साधना और स्वाध्याय की अनिवार्यता पर धर्म-शास्त्रों में अत्यधिक जोर दिया गया है क्योंकि आन्तरिक स्थिति की स्वस्थता के लिए यह दोनों ही बातें आवश्यक हैं । आन्तरिक स्वास्थ्य के बिना बाह्य जीवन नितान्त असफल एवं सन्तापयुक्त ही रहता है चाहे उसमें भौतिक सम्पदाएँ कितनी ही अधिक क्यों न हों ।

अध्यात्म के सत्परिणाम प्रसिद्ध हैं । उनके आधार पर लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार की सुख-शान्ति उपलब्ध होती है । शान्ति सन्तोष, प्रसन्नता, निर्भयता और स्वतन्त्रता के पाँच प्रतिफल इस सम्बन्ध में अन्यत्र बताये जा चुके हैं, जब यह लाभ प्राप्त होते हैं तो उनके स्थूल साधन भी साथ ही जुड़े रहेंगे । सन्तोषजनक धन स्त्री, पुत्र, परिवार, स्वास्थ्य, पद यश, विद्या, चतुरता, मैत्री आदि जो साधन इस लोक की सुख सम्पत्ति के रूप में पुकारे जाते हैं, ये आत्म परिष्कार के साथ सम्बन्धित हैं । आत्मिक स्थिति जितनी ही विकसित होती चलेगी उतनी ही यह साधन सामग्री भी अपने आस-पास एकत्रित होती चली जायगी ।

आत्मिक सिद्धियों से सम्पन्न जो तपस्वी एवं सिद्ध पुरुष देखे जाते हैं उनका अपने अस्थिर शरीर और मन पर नियन्त्रण होते ही प्रकृति पर भी एक सीमा तक अधिकार हो जाता है । सूक्ष्म जगत में जो कुछ हो रहा है या होने जा रहा है, उसे वे वैसा ही देख सकने में समर्थ होते हैं जैसे हम चर्म चक्षुओं से साधारण दृश्यों को देखते हैं । प्रकृति के साधारण नियमों का उल्लङ्घन करना भी उनके लिए कठिन नहीं होता है । वस्तुत: प्रकृति का उल्लङ्घन कोई बड़ी बात नहीं है, जीव की कुछ अपूर्णताएँ ही उसे सीमित रखती हैं । पक्षी आकाश में उड़ सकते हैं, मछली दिन-रात पानी में डूबी रह सकती है, अनेकों सूक्ष्म कीड़े हवा और पानी में घूमते रहते हैं । पर हमें वे दीखते नहीं । यही बातें यदि मनुष्य करने लगें तो वे बातें सिद्धियाँ लगती हैं । आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति अपनी अपूर्णताएँ दूर कर सकता है और अन्य अनेक प्राणियों की तरह विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है । यह लाभ यों सामान्य ही हैं पर उनसे जीवन को और भी सर्वांगपूर्ण बनाने में सहायता मिलती है ।

वैज्ञानिक जानते हैं कि एक विशाल ग्रह में जो शक्तियाँ और क्षमताएँ होती हैं वे सभी बीज रूप से एक परमाणु में मौजूद रहती हैं । इसी प्रकार

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ब्रह्माण्ड का ढाँचा पिण्ड के अन्दर मौजूद है । आत्मा आखिर परमात्मा का ही अंश तो है, जीव में ईश्वर के सभी गुण विद्यमान हैं । परन्तु वे सभी प्रसुप्त अवस्था में पड़े हैं । साधना द्वारा उनका जागरण किया जाता है । वैज्ञानिक एक छोटे से अणु की छिपी शक्ति का जब ठीक उपयोग कर लेने में समर्थ हो जाते हैं तो विनाशकारी एटम बम बनकर तैयार हो जाता है । मनुष्य यों एक परमाणु के समान ही तुच्छ प्रतीत होता है पर साधना के द्वारा जब उसकी प्रसुप्त शक्तियों का जागरण किया जाता है तो वह अत्यन्त शक्तिशाली और महान बन जाता है । स्वयं ही वह सुसम्पन्न नहीं होता वरन् और भी अनेकों को सुसम्पन्न बना देने की क्षमता उसमें प्रस्फुटित हो जाती है । कुण्डलिनी जागरण, ब्रह्म समाधि आदि ऐसी ही अवस्थाएँ हैं जिनमें सामान्य शरीर रहते हुए भी जीव वस्तुतः अत्यन्त उच्च भूमिका में जा पहुँचता है प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों का इसी प्रकार साक्षात्कार करता है जैसे हम सामान्य वस्तुओं को चर्म चक्षुओं से देखते हैं । ऐसे सिद्ध पुरुष अपने आत्मिक प्रभाव का उपयोग करके किन्हीं परिस्थितियों को बदल भी सकते हैं । व्यक्तियों और वस्तुओं में भी उनके द्वारा परिवर्तन होता देखा जाता है । ईश्वर की कार्य प्रणाली में वे भी एक तरह से भागीदार बन जाते हैं और एक नियत सीमा तक वे ईश्वरीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यवस्था का संचालन भी कर सकते हैं ।

आत्मिक क्षेत्र का विस्तार और महत्त्व अत्यन्त विशाल है । उसकी सफलताएँ इतनी महान हैं कि विवेकवान व्यक्ति भौतिक जीवन में बड़े से बड़े कष्ट सहकर भी बड़े से बड़े त्याग करके भी उस क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । ऋषि-मुनि, त्यागी, तपस्वी मूर्ख नहीं थे । वे सच्चे व्यवहारवादी थे । बड़े लाभ के लिए छोटे लाभ का त्याग करने की व्यावहारिक नीति का ही उन्होंने पालन किया था । मिट्टी में बीज बिखेरते समय किसान भी तो यही करता है । साधना की प्रक्रिया देखने में घाटे का काम, समय की बर्बादी भले ही लगे पर वस्तुतः वह वैसी बात नहीं है । उसमें बहुत कुछ सार है ।

देवी-देवताओं के अनुग्रह और उनके सत्परिणामों पर आमतौर से धार्मिक लोग विश्वास करते हैं । उनकी पूजा-उपासना के अनेकों विधि-विधान, भजन-पूजन होते रहते हैं और भक्ति भावना से उनके लाभ भी मिलते हैं । पुराणों में देवताओं की शक्ति और कृपा के अनेक उपाख्यान मौजूद हैं । वे असत्य नहीं हैं । यदि असत्य होते तो अतीत काल से अब तक वह श्रद्धा, भक्ति और पुण्य परम्परा यथावत् चलती न आती । असत्य कमजोर होता है इसलिए वह कम समय तक ठहरता है । केवल सत्य में ही वह क्षमता है कि देर तक ठहरे और बराबर बढ़ता एवं फलता-फूलता रहे ।

साधना किन्हीं देवी-देवताओं की भी की जाती है । कुछ यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र भी ऐसे होते हैं जो किन्हीं कर्मकाण्डों एवं अनुष्ठानों के साथ सिद्ध किये जाते हैं । इस प्रकार यह सभी साधनाएँ साधक को आत्मिक स्थिति के अनुसार ही सफल होती हैं । श्रद्धा और विश्वास, साहस और धैर्य, एकाग्रता और स्थिरता, दृढ़ता और संकल्प ही वे तत्व हैं जिनके आधार पर यह साधनाएँ सफल होती हैं । यदि साधक का संकल्प दुर्बल हो, श्रद्धा और विश्वास ढीले हों, चित्त अस्थिर एवं अधीर रहे तो विधि-विधान सही होते हुए भी वैसा परिणाम न मिलेगा जैसा मिलना चाहिए । अदृश्य जगत में जो महान देव-शक्तियाँ अवस्थित हैं उनको अपनी ओर आकर्षित कर सकना निश्चित रूप से अपनी आत्मिक स्थिति पर निर्भर है । जो लोग साधनारत रहते हैं पर अपनी मनोदशा को परिष्कृत नहीं करते वे उन लाभों से वञ्चित रह जाते हैं जो दूसरे अन्य साधक उसी मार्ग पर चलते हुए बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं ।

आत्मा के अन्तरंग प्रदेश में ही उन अदृश्य देव-शक्तियों का निवास होता है जो हमें कहीं बाहर रहती दीखती हैं । साधना के द्वारा हमारे गुप्त चक्रों, संस्थानों, आन्तरिक ग्रन्थियों का जागरण होता है और वे ही हमारे विश्वास के अनुरूप देवता का रूप धारण करके सामने आ उपस्थित होती हैं । जैसे चतुर माली अपने परिश्रम से किसी पौधे को भली प्रकार विकसित कर लेता है उसी प्रकार श्रद्धावान साधक भी अपने अन्तःप्रदेश में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


रहने वाली किन्हीं देव-शक्तियों को अपनी श्रद्धा और साधना की सुनिश्चितता के आधार पर सफल एवं सत्परिणामदायिनी बना लेता है । आलसी और अनाड़ी माली वैसा ही खेत, वैसा ही पौधा, वैसे ही उपकरण होते हुए भी अपने पौधों को निष्प्राण बना देता है । देवताओं के लिए सभी समान हैं । सभी प्रिय हैं, पर वे किसी पर कृपा, किसी पर उपेक्षा करते देखे जाते हैं तो इसके मूल में साधक की आत्मिक स्थिति ही काम करती है । किन्हीं की उत्कृष्ट भावनाएँ स्वल्प काल में ही देव-शक्तियों को द्रवित कर लेने में सफल होती हैं पर किन्हीं की अश्रद्धा उन्हें कुछ भी प्राप्त न होने की स्थिति में रखे रहती है । किसी भौतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए सकाम उपासना करने वाले लोगों की मनोभूमि सांसारिक स्तर पर निम्न श्रेणी की ही होती है, इसलिए वे मन्त्र-शक्ति से अपना कोई प्रयोजन भले ही सफल कर लें पर सच्ची देव-कृपा से वञ्चित ही रहते हैं । इसके विपरीत जिनकी आत्मा में सच्ची श्रद्धा भक्ति होती है जिनका मन निःस्वार्थ और निष्काम होता है उन्हें उच्च कोटि के दैवी अनुग्रह प्राप्त होते हैं । उनके लोक और परलोक दोनों ही सार्थक होते हैं ।

आत्मा ही ज्ञान विज्ञान का केन्द्र है । सुख-शान्ति का मूल आधार वही है उन्नति और समृद्धि के बीज उसी में छिपे हैं । स्वर्ग और मुक्ति का आधार वही है । कल्प वृक्ष बाहर नहीं अपने भीतर ही है । अगणित कामनाओं की तृप्ति आत्मज्ञान रूपी कल्पवृक्ष से ही सम्भव हो सकती है । आत्मा ही पारस मणि है जिसे छूकर लोहे जैसा काला कलूटा मानव-जीवन खरे सोने-देवत्व में परिणित होता है । यही वह अमृत है जिसे पीकर युग-युग की अतृप्त तृष्णा का समाधान होता है । आत्मा अपने आप में पूर्ण है, जिसने उसे देख लिया वही सच्चा द्रष्टा है जिसने उसे प्राप्त कर लिया उसके लिए और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता ।

संसार की रचना छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर हुई है । जड़ और चेतन परमाणुओं के विचित्र संयोग से ही यह संसार गतिमान हो रहा है । जड़ परमाणुओं की शोध बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की सबसे बड़ी देन है । कहते हैं जब इस परमाणु शक्ति का पूर्णरूपेण उपयोग होने लगेगा तब मनुष्य के लिए इस संसार में कुछ भी असम्भव न रहेगा । वह स्वेच्छापूर्वक ग्रह-नक्षत्रों में ऐसे ही विचरण कर सकेगा जैसे इस पृथ्वी में एक गाँव से दूसरे गाँव को चले जाते हैं । यह शक्ति कितनी बड़ी होगी इसका अनुमान लगाना भी कठिन है ।

जिस परमाणु की शक्ति और महत्ता इतनी बढ़-चढ़कर है वह इतनी सूक्ष्म वस्तु है कि उसे बड़ी से बड़ी खुर्दबीन लगाकर भी देख पाना सम्भव न हुआ । केवल उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका नामांकन हुआ है । पदार्थ का सबसे छोटे से छोटा टुकड़ा जिसके और अधिक अंश न हो सकें वह 'अणु' कहलाता है । इस अणु में भी 'न्यूक्लियस' या केन्द्र पिण्ड और इसके किनारे अण्डाकार कक्षा में गति करता हुआ ''इलेक्ट्रोन'', स्थिर ''न्यूट्रान'' और ''प्रोट्रान'' से मिलाकर बना हुआ परमाणु होता है, जिसको हम देख भी नहीं सकते । उस एक परमाणु का जब विस्फोट होता है तो आइन्स्टाइन के ''मासवर्जन'' सिद्धान्त के अनुसार ३३ लाख कैलोरी ताप पैदा होता है । यह शक्ति एक विशाल भू-भाग को जलाकर खाक कर देने में पूर्णतया समर्थ है । अभी तो उस पर अनेकों खोजें और भी होनी शेष हैं ।

प्रत्येक पदार्थ इन छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बना है । मिट्टी के छोटे-छोटे कणों का वृहत्स्वरूप यह पृथ्वी है, समुद्र का आधार पानी की एक छोटी-सी बूँद है । विशाल वट वृक्ष का निर्माण उसके बीज के एक बहुत छोटे अंश से होता है । परमाणु एक प्रकार से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नक्शा है, जो कुछ शक्तियाँ इस सृष्टि में दिखाई देती हैं वे सब बीज रूप में एक परमाणु में विद्यमान हैं । इस शक्ति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते ।

जड़ परमाणु की इतनी सामर्थ्य देखकर आश्चर्य होता है पर चेतन-अणु की शक्ति उससे भी अधिक है । जड़-पदार्थ स्वाधीन नहीं होते । उनकी अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं होती । किन्तु चेतना शक्ति स्वच्छन्द है वह पदार्थ पर शासन करती है शासित से शासक की शक्ति अधिक होना चाहिए ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आत्मा को विश्व चेतना का परमाणु ही समझना चाहिए । पदार्थ के परमाणु की शक्ति का हिसाब लगा चुके हैं उससे आत्म-शक्ति की तुलना कर सकते हैं । हमें अपने को पहचानना चाहिए और शक्ति का स्वस्थ सम्बन्ध करना चाहिए ।

## आन्तरिक अशान्ति की समस्या और समाधान

एक मनुष्य के पास पर्याप्त साधन, सम्पत्ति, जीवन निर्वाह की वस्तुएँ हैं फिर भी वह अशान्त, परेशान-सा दिखाई देता है । दूसरा उच्च शिक्षा सम्पन्न अच्छे पद पर प्रतिष्ठित होकर भी भूला-भटका-सा दिखाई देता है । व्यापारी, विद्वान, नेता, पण्डित उच्च पद पर आसीन लोग इसी एक प्रश्न के समाधान के लिए परेशान मालूम पड़ते हैं । अधिकांश लोगों की एक ही शिकायत-संघर्ष, अशान्ति, क्लेश, परेशानी । नीचे से लेकर ऊपर तक अधिकांश व्यक्ति इसी प्रश्न के पीछे परेशान हैं और तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं, फिर भी इसका कोई समाधान नहीं होता ।

वस्तुतः जीवन के इस प्रश्न का समाधान बाहरी सफलताओं या संसार में नहीं है । इसका समाधान मनुष्य के अपने अन्दर है । वह है-जीवन व्यवहार में हृदय को महत्त्व देना । हमारी बुद्धि बढ़ी है, किन्तु हमारा हृदय अभी तक जड़ ही बना हुआ है । बुद्धि के बल पर व्यापार, शिक्षा, पाण्डित्य विद्वत्ता, उच्च पद एवं जीवन की अन्य सभी तरह की सफलताएँ मिल जाती हैं, किन्तु हृदय की व्यापकता विशालता के अभाव में ये सफलताओं के बड़े-बड़े महल, उसी तरह डरावने और अटपटे लगते हैं जैसे सुनसान अन्धेरे भवन और किले । हृदय की जीवन-शक्ति के अभाव में मनुष्य की समस्त समृद्धि, विद्वता, बड़प्पन उच्च पद के भयावने भूत उसे ही खाने लगते हैं ।

उस समय महात्मा बुद्ध को भी इसी स्थिति का सामना करना पड़ा था । वे राजपुत्र थे, अतुल सम्पत्ति थी, सुन्दर और भव्य भवन थे, मन बहलाने के बड़े-बड़े साधन थे, और सभी कुछ थे, किन्तु बुद्ध को ये सब अटपटे लगे । आत्म प्रसाद, शान्ति, आनन्द का समाधान बुद्ध को इस समृद्धि और राजमहल में नहीं मिला । वे इन सब अलंकारों को छोड़कर नीचे उतरे, अपनी इन दीवारों को तोड़ बुद्ध व्यापक बने, जन-मन के साथ एकता प्राप्त की और वे फिर राजमहल के राजकुमार न रहकर असीम के साथ- मानवता के साथ एकाकार हुए, तभी उन्हें जीवन के उस प्रश्न का समाधान मिला ।

भगवान राम ने इसी पथ का वरण किया । समृद्ध सुसम्पन्न अयोध्या नगरी को त्याग कर वल्कल वस्त्र धारण कर अनन्त पथ के पथिक बने और जंगल में कृतिमता से दूर प्रकृति के फैले विशाल आँचल में पशु पक्षी, वनस्पति, नदी, नालों, पहाड़ तक से अपने हृदय को जोड़ा । शबरी, गिद्ध, केवट के हृदय से हृदय जोड़ने वाले दशरथ सुत राम जन मानस के राम बन गये ।

महात्मा गाँधी ने उच्च शिक्षा का अभिमान छोड़ा, जनता-जनार्दन के समकक्ष उतरे, वैसा ही पहना, वैसा ही खाया । अपने जीवन को, अपनी विद्वत्ता को निजी समृद्धि का आधार न बना कर पीड़ित मानवता के कल्याण, उन्नति, प्रगति का आधार बनाया ।

इसी तरह स्वामी रामकृष्ण, विवेकानन्द, दयानन्द, रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, मालवीय जी आदि ने अपनी समृद्धि, विद्वत्ता, पाण्डित्य, उच्च पद आदि से नीचे उतर मानवता के हृदय से अपना हृदय जोड़ा । मानवता के कष्ट-दुःख अपने कष्ट दुःख समझे, जनता जनार्दन की पीड़ा अपनी पीड़ा समझी और उसके लिए अपने जीवन को लगाया । एक घोर लोकसंग्रही से भी अधिक श्रम किया, कष्ट झेले, परेशानी उठाई, पीड़ित, दुःखी क्लान्त मानवता के लिए, जनता जनार्दन के लिए ।

समृद्धि, रूप, पाण्डित्य, विद्वत्ता, पद आदि का अभिमान ही वह चहार-दीवारी है जो हमें जीवन के यथार्थ स्वरूप से दूर किये हुए है । अभिमान, अहंकार चाहे वह किसी भी गुण, रूप, वस्तु, का क्यों न हो, मनुष्य के वास्तविक सुख और आत्म-प्रसाद से उसको दूर रखता है । जिसके दिल और

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दिमाग इस दम्भ की घेर बन्दी में जकड़े हुए हैं वह कैसे सन्तुष्ट रह सकता है ।

जब धनवान अपने धन का, दानवृत्ति का अभिमान छोड़कर दरिद्रता के प्रति अपने हृदय को जोड़ लेगा, शिक्षाशास्त्री पण्डित जब मानवता की पंक्ति में आकर बैठेंगे, उच्च पद सम्पन्न लोग जब जनता जनार्दन की अर्चना में लगेंगे, तो उनका अहंभाव सहज ही तिरोहित हो जायगा और उन्हें जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्न का समाधान मिल सकेगा । जीवन का सच्चा सुख आत्म-प्रसाद, आत्म-शान्ति, सन्तोष हृदय को मुक्त और व्यापक बनाने से ही सम्भव है ।

राजा भर्तृहरि ने कहा था-'न राजा बड़ा है न तपस्वी, न विद्वान, जो अपने जीवन और कार्यों से सन्तुष्ट है वही सबसे बड़ा है ।'

**स च भवति दरिद्री, यस्य तृष्णा विशाला ।**
**मनसि च परितुष्टे, कोऽर्थवान को दरिद्रः ।।**

'जिसको तृष्णा अधिक है वही दरिद्री है । जिसका चित्त सन्तुष्ट है, उसके सामने न कोई धनी है न दरिद्री ।'

मानव-मानव के बीच इस संघर्ष-लड़ाई का कारण गरीबी, अभाव आदि नहीं वरन् तेरे-मेरे का प्रश्न है । अपने लाभ, अपनी समृद्धि, अपने की सार-सँभाल सभी को प्रिय लगती है, किन्तु दूसरों के साथ वह भाव नहीं । उसकी हानि, अपमान, मृत्यु तक में भी कोई दिलचस्पी नहीं । उल्टा दूसरे से अपना जितना लाभ बन सके इसके लिए सभी को प्रयत्नशील देखा जाता है ।

इस व्यापक समस्या का भी एक समाधान है वह यह है कि अपने हृदय को तेरे-मेरे के संकीर्ण घेरे से निकाल कर 'समग्र' के साथ जोड़ा जाय । इसके व्यावहारिक मार्ग का प्रथम सूत्र है-सहअस्तित्व का मन्त्र । स्वयं जियें और दूसरों को जीने दें । अपनी-अपनी थाली में से सब बैठ कर खावें । इसके बाद ही दूसरा सूत्र है-दूसरों के जीने के लिए मुझे सहयोग करना होगा । जिसकी पराकाष्ठा अपने आपको मिटा देने तक रहती है । दूसरों के जीने के लिए अपने आपको मिटाने की भावना एक दूसरे के दिल और दिमाग को जोड़ती है, एकाकार करती है । यही व्यक्ति से लेकर विश्व-समस्या का मूल समाधान है ।

हम भी अपने हृदय को दूसरों के लिए इसी तरह संवेदनशील बनाकर अपनी और विश्व की समस्याओं के समाधान में योग दे सकते हैं । जब परिवार में हम अपने लिए अच्छी माँग न रखकर दूसरों का ध्यान रखेंगे तो क्यों नहीं हमारा परिवार स्वर्गीय बनेगा ? इसी तरह पड़ोस, देश, समाज, जाति की यही आवश्यकता है जिसे अनुभव किये बिना मानव और विश्व की समस्या का समाधान न हो सकेगा ।

## आध्यात्मिक जीवन

आध्यात्मिक प्रगति का मूलाधार अन्तःकरण को निर्मल एवं शुद्ध करना होगा । ऊपर से दिखाई देने वाले सत्कर्म भी अन्तःकरण की शुद्धता के अभाव में निष्फल चले जाते हैं । दान देते समय यदि यह विचार रहता है कि मैं कोई एक विशेष कार्य कर रहा हूँ और इसके उपलक्ष में हमको सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए तो निश्चय ही वह दान-पुण्य के फल से वञ्चित रह जायेगा । किसी की कुछ भलाई करते समय यदि यह विचार रहता है कि मैं किसी पर आभार कर रहा हूँ तो वह उपकार कार्य परमार्थ की परिधि में नहीं आ सकता । किसी परमार्थ कार्य में निरहंकारिता का समावेश तभी सम्भव हो सकता है जबकि मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल एवं शुद्ध होगा । अशुद्ध अन्तःकरण की स्थिति में लोभ, मोह, स्वार्थ एवं अहंकार आदि विकारों का आना स्वाभाविक है ।

वह मनुष्य निश्चय ही सौभाग्यवान है जिसने अपने अन्तःकरण को निर्मल बना लिया है और जिसका जीवन आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख हो रहा है । अध्यात्म जीवन का वह तत्वज्ञान है, जिसके आधार पर मनुष्य विश्व ही नहीं अखण्ड ब्रह्माण्ड के सारे ऐश्वर्य को उपलब्ध कर सकता है । अध्यात्म ज्ञान के बिना सारा वैभव-सारा ऐश्वर्य और सारी उपलब्धियाँ व्यर्थ हैं । जो भाग्यवान अपने परिश्रम, पुरुषार्थ एवं परमार्थ से थोड़ा-बहुत भी अध्यात्म लाभ कर लेता है वह एक शाश्वत सुख

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


का अधिकारी बन जाता है । व्यवहार जगत में अनेक सीखने योग्य ज्ञानों की कमी नहीं है । लोग इन्हें सीखते हैं, उन्नति करते हैं, सुख-सुविधा के अनेक साधन जुटा लेते हैं । किन्तु इस पर भी जब तक वे अध्यात्म की ओर उन्मुख नहीं होते वास्तविक सुख-शान्ति नहीं पा सकते ।

संसार में पग-पग पर दु:ख, क्षोभ और कलह, क्लेश की परिस्थितियों में आना पड़ता है । इस प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियाँ, सुख-सुविधा के अनन्त साधन होने पर भी दु:खी किये रहती हैं । मनुष्य के उपार्जित साधन उसकी कोई सहायता नहीं कर पाते । संसार में जिससे सामान्य प्रतिकूलताओं की यातना से तो सहज ही बचा जा सकता है, वह है आध्यात्मिक दृष्टिकोण एवं आचरण । आध्यात्मिकता के अभाव में सुख-शान्ति सम्भव नहीं और उसके सभाव में दु:ख अथवा अशान्ति असम्भव है ।

मनुष्य के अन्त:करण का निर्माण चार वृत्तियों से मिल कर हुआ है । मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार । मन संकल्प-विकल्प करता है, बुद्धि निर्णय देती है, चित्त स्मृति तथा संस्कारों को ग्रहण करता और बनाये रखता है, अहंकार मनुष्य को आत्मिक न बनने देकर शरीर भाव बनाये रहता है । इन वृत्तियों के अशुद्ध रहने पर अन्त:करण अशुद्ध हो जाता है । इन वृत्तियों को सात्विक बनाना ही अन्त:करण को शुद्ध करना माना जायगा ।

वृत्तियों को शुद्ध करने का प्रयत्न करने से पूर्व उनकी अशुद्धता के लक्षण जान लेना आवश्यक है-"**अशुद्धं काम संकल्पं-शुद्धं काम विवर्जितम्** " मन में जब तमोगुण पूर्ण स्वार्थ एवं कामपूर्ण संकल्प विकल्प होते रहें तो समझना चाहिए कि मनोवृत्ति अशुद्ध है । इसका मोटा-सा एक लक्षण यह भी है कि जब मन निराश, निरुत्साह अथवा क्षुब्ध रहे समझना चाहिए कि वह अशुद्ध है । मन की शुद्धता का प्रमुख लक्षण है निष्कामता एवं प्रसाद । कर्मों की सफलता-असफलता पर मन का समान रूप से प्रसन्न बना रहना उसकी शुद्धता का प्रमुख लक्षण है । अधिक असंगत अथवा असात्विक कामनाएँ करने से मन निर्बल एवं मलीन हो जाता है । सन्तोष न रहने से सदा क्षुब्ध, चंचल और दु:खी रहता है । मन की प्रसन्नता अपनी स्थिति के अनुसार शुभ संकल्प एवं निष्काम भाव से कर्म करने में ही सुरक्षित रह सकती है ।

बुद्धि जब किसी विषय में स्पष्ट निर्णय देने में असमर्थ रहे, कोई भी प्रसंग उपस्थित होने पर असमंजस अथवा ऊहापोह में पड़ जाए तब समझना चाहिए कि वह प्रबुद्ध अथवा शुद्ध नहीं है । करने अथवा न करने योग्य कर्मों का शीघ्र एवं समीचीन निर्णय दे सकने में समर्थ बुद्धि ही सात्विकी अथवा शुद्ध कही जायेगी । देखने में भयप्रद लगने वाले ठीक कर्त्तव्य के प्रति स्वीकृति दे देने वाली साहस की बुद्धि ही शुद्ध हो सकती है । सन्देह अथवा संशयशील बुद्धि अशुद्ध है ।

चित्त की शुद्धता का मुख्य लक्षण है उन स्मृतियों तथा संस्कारों का रहना जो शुभ एवं शिव हों । मलीन, दु:खद अथवा ग्लानिपूर्ण स्मृतियों तथा संस्कारों का प्रदर्शन करने वाला चित्त अशुद्ध ही माना जायेगा । स्मृतियों के सद् और संस्कारों के शुद्ध होने से मनुष्य का चिन्तन एवं आचरण कल्याणकारी दिशा में ही चला करता है । जिसे शुभम् का ज्ञान ही नहीं, शिवत्व की पहचान नहीं वह न तो सत्कर्मों की ओर बढ़ सकता है और न चिन्तन में मांगलिक अनुभूतियों का दर्शन कर सकता है । शुभ संस्कार और मांगलिक संस्थान ही चित्त की शुद्धता के लक्षण हैं ।

शरीर तथा संसार के प्रति अहंकार अशुद्ध है और यही अहंकार तब शुद्ध ही कहा जायगा जब यह आत्मा अथवा परमात्मा के प्रति हो । अपने को शरीर समझना और क्षणभंगुर सांसारिक भोगों का भोक्ता भर समझना अशुद्ध अहंकार है । अपने को शुद्ध-बुद्ध चेतना, आत्मा और परमात्मा का प्रतिनिधि मान कर सांसारिक भोगों के प्रति मोक्ष की भावना न रख कर कर्त्तव्यवान की भावना रखना अहंकार की शुद्धता की द्योतक है ।

इस प्रकार इन वृत्तियों की शुद्धता-अशुद्धता के लक्षण समझ कर निर्णय कर लेना चाहिए कि उसका अन्त:करण किस सीमा तक शुद्ध तथा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अशुद्ध है और फिर उसी अनुपात से चिन्तन, मनन तथा सत्कर्मों के द्वारा उसे अधिकाधिक शुद्ध बनाने में लग जाना चाहिए । स्वार्थ रहित सात्विक आहार-विहार तथा आचार-विचार का अभ्यास अपना लेने से मनुष्य की चारों वृत्तियाँ आप से आप शुद्ध होने लगती हैं । मन को प्रसन्न रखिए, बुद्धि को विकृतियों से बचाइये, चित्त पर शिव संस्कारों की छाप डालिये और अहंकार को शरीर से आत्मा अथवा परमात्मा की ओर उन्मुख करिये, आपका अन्त:करण शुद्ध हो जायेगा । इस प्रकार का सकर्मक अभ्यास ही आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने का प्रयास है, जिसे पाकर मनुष्य जीवन शाश्वत सुख का अधिकारी बन कर सफल एवं सार्थक हो जाता है । यह आध्यात्मिक उपलब्धि संसार की सारी उपलब्धियों का मूल तथा सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जिस प्रयत्न से प्राप्त कर मनुष्य को अपने नश्वर जीवन को अनश्वर बनाना चाहिए ।

## वैराग्य भावना से मनोविकारों का शमन

वैराग्य भावना में नि:सन्देह बड़ी शक्ति है । बुरे से बुरे संस्कार वैराग्य के बादलों से घुलते देखे गये हैं । कामासक्त तुलसीदास, दुष्ट, दुराचारी वाल्मीकि, हिंसक व्याध और अंगुलिमाल जैसे व्यक्तियों के हृदय में जब वैराग्य भावना का प्रवाह उमड़ा तो उनके जीवन की धारायें ही बदल गईं । सारे के सारे सन्त, महात्मा और महान पण्डित बन गये ।

विचार, भाव तथा क्रिया में अत्यन्त सूक्ष्म ग्रहणशीलता रखते हुए सांसारिक विषयों के प्रति निरपेक्ष बने रहने का नाम वैराग्य है । संक्षेप में राग द्वेष के बन्धनों से मुक्त होना ही वैराग्य है । यह भी कह सकते हैं कि वैराग्य उस अवस्था या स्थिति का नाम है जब मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ विभिन्न भावों से हटकर चिर सत्य की ओर जाग्रत हों । इन भावनाओं की शक्ति और सामर्थ्य की थाह पाना निश्चय ही कठिन बात है क्योंकि जिस किसी के जीवन में भी इन भावनाओं का उदय हुआ उनका तीव्र विरोध, उपहास और सांसारिक विषय विकार कुछ कर नहीं पाये । षट्-विकारों के शमन का भी श्रेष्ठ उपाय वैराग्य भावनाओं को ही मान सकते हैं । वैराग्य द्वारा ही सात्विक कार्य सम्पन्न होते हैं । वैराग्य का अर्थ है त्याग, समर्पण, विवेक और सत्य के प्रति श्रद्धा की अनन्य भावना । इस प्रकार वैराग्य में वह सम्पूर्ण शक्तियाँ सन्निहित हैं जिनसे मनुष्य अपने जीवन में सन्तुलन बनाये रख सकता है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन विकारों को काबू में रखने का सरल और प्रभावशाली मार्ग यही है कि जब कभी ऐसे आवेश आयें तब उन्हें दूर हटाने के लिए वैराग्यपूर्ण चिन्तन करने लग जायें । तभी शरीर, मन और वाणी आत्मग्लानि और शक्ति-विनाश से बच सकते हैं और तभी तत्परता पूर्वक अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ते रह सकते हैं ।

षट्-विकारों में वासना का प्रहार सबसे अधिक तीव्र और मन को हिला देने वाला है । जब यह भाव मनुष्य के अन्तर्मन में प्रविष्ट हो जाता है तब उसकी शक्ति और भी बड़ा रूप ले लेती है । यह विकार प्रस्फुटित होकर मनुष्य के आचरण को दूषित करता है इसलिए उससे बचने के लिए आध्यात्मिक चिन्तन, मनन, पूजन, कथा-कीर्तन, प्राकृतिक दृश्यों से अनुराग, भ्रमण आदि अनेकों साधन काम में लाये जा सकते हैं । पर इतने से यह आशा नहीं की जाती कि आप का आवेश रुक गया था आगे फिर कभी न उठेगा । अन्तर्मन में प्रसुप्त कामुक चेष्टाएँ संयोग पाते ही उठ खड़ी होंगी और इच्छा न होते हुए भी आपको विभ्रामित करने लगेंगी ।

जब कभी ऐसी अवस्था आये तो आप वैराग्य भावना का सहारा लीजिये । आप कल्पना कीजिए कि जिस स्त्री के हाव-भाव और अंग-प्रत्यंगों को देखने से आपकी कामुकता जागृत हो रही है, वह इस समय मर चुकी है । यह उसकी लाश है जो आपके सामने पड़ी है । अभी चील, कौवे और सियार आते हैं और इस शरीर को वे अपना भोजन मानकर उसे चीरने-फाड़ने का काम शुरू कर देते हैं । छि: यह क्या, माँस, हड्डियाँ, आँतों में जमा हुआ मल, मूत्र-क्या इसी सबके लिए मेरी वासना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जाग्रत हुई है । क्या इन हाड़-माँस के ऊपर चढ़ी हुई सुनहली पत्री के ऊपर हम अपनी शक्ति और ओज समाप्त कर देंगे ।

आप जितना भावनात्मक गहराई तक उतर सकें, उतरें आप को यथार्थ ज्ञान मिलेगा, शक्ति मिलेगी और इस दूषित विकार के आघात से बड़ी आसानी के साथ बच जायेंगे । शरीर की नश्वरता और आत्म-ज्ञान की प्रबल जिज्ञासा का भाव जितनी शक्ति और क्षमता के साथ आप उठायेंगे उतना ही वैराग्य भाव उमड़ता हुआ चला आयेगा । ''मैं अपने जीवन को इन तुच्छ बातों में नहीं गँवाऊँगा, न जाने कब विनष्ट हो जाने वाले शरीर के प्रति मैं भला क्यों आसक्त होऊँ, मैं आत्मा हूँ, अपने मूल स्वरूप को जानना ही मेरा लक्ष्य है ।'' इस प्रकार के अनेकों विचार आप तर्क और प्रमाण के साथ उठाते चले आइये, निश्चय ही आपकी कामुकता का आवेश छोड़कर भाग जायेगा । आपके जी में ''मातृवत् परदारेषु'' का सुन्दर भाव उमड़ता हुआ चला आयेगा, आप आन्तरिक दृष्टि से आनन्दित हो उठेंगे और जो विचार अभी थोड़ी देर पहले आपको आक्रान्त कर रहा था वह न जाने कहाँ विलुप्त हो जायेगा ।

वासना का प्रभाव मनुष्य के जीवन में आँधी-तूफान की तरह होता है, इससे बचने के लिए सिनेमा, नाटक, अभद्र प्रदर्शनों से तो बचें ही, बुद्धि विवेक और सद्विचार भी ठीक रखें और इसे वैराग्यपूर्ण भावनाओं के द्वारा भी निवारण करें ।

क्रोध की अवस्था भी ठीक ऐसी ही होती है । संसार में ऐसा कोई भी पाप नहीं जो क्रोधी व्यक्ति न कर सकता हो । क्रोध को पाप का मूल कहकर पुकारा जाता है । यह भी एक आवेश में आता है और अनेकों अनर्थ उत्पन्न करके ही समाप्त होता है, पीछे उन पर भारी दुःख तथा पश्चात्ताप होता है । इससे बचने के पूर्व अभ्यास के रूप में प्रेम, स्नेह, आत्मीयता, सौजन्य सहिष्णुता और उदारता आदि भावों को विकसित करें तो ठीक है किन्तु यदि फिर भी कदाचित् ऐसा अवसर आ जाये तो आप पुनः वैराग्यपूर्ण भावनाओं का स्मरण कीजिए । आप विचार कीजिए आप जिसे दण्ड देना चाहते हैं, जिस पर आपको क्रोध आ रहा है वह यदि आप होते तो आप पर कैसी बीतती । मान लीजिए आपने ही वह गलती कर डाली होती और कोई उसका दण्ड आपको दिया जा रहा होता तो आपके शरीर में कितनी पीड़ा छटपटाहट हो रही होती । यह भाव उठते ही आपके हृदय में करुणा का भाव उत्पन्न होगा । आप सोचेंगे कि दण्ड देना अनुचित है, दूसरों को पीड़ा न देना ही मानव धर्म है । आपका क्रोध पराभूत हो जायगा और आप उसके विषैले प्रभाव से बच जायेंगे । कोई भी प्रतिशोध-जनक प्रतिक्रिया उठने से बच जायेगी ।

क्रोध के प्रतिरोध में उत्पन्न वैराग्य भावनाओं से ईर्ष्या, दुश्चिन्ता और संघर्षपूर्ण विकार समाप्त होते हैं और प्रेम, दया, मैत्रीभाव जाग्रत होते हैं । इन भावनाओं से क्रोध की उत्तेजना समाप्त हो जाती है ।

धन की तृष्णा भी मनुष्य के जीवन में वैसी ही जड़ता उत्पन्न करती है जैसी काम और क्रोध । पराया माल छीनने, हड़पने और चोरी कर लेने तथा दूसरों की कमाई का उचित पारिश्रमिक न देने की बात किसी भी प्रकार मानवीय नहीं कही जा सकती । इससे मनुष्य का घोर आन्तरिक पतन होता है । आप विचार कीजिए कि आप जब श्रम-पूर्वक धन कमाते हैं और उसका कुछ हिस्सा कहीं गिर जाता है या कोई उठा ले जाता है तो आपको कितना दुःख होता है । फिर इस धन से मनुष्य का जीवन लक्ष्य भी तो पूरा नहीं होता । क्या यह पाप की कमाई अपने बाल-बच्चों के लिए छोड़कर उन्हें भी आलसी और अकर्मण्य बनाना चाहते हैं । जो धन आपकी लाश के साथ आपके साथ जाने वाला नहीं है उसको आप अनाधिकार पूर्वक क्यों प्राप्त करना चाहते हैं ? आप उससे बँधे क्यों जा रहे हैं ? इस धन के लोभ में पड़कर आप अपनी आत्मा, अपने जीवन लक्ष्य की बात ही भूल जायँगे फिर ऐसे धन से लाभ कैसा ? प्रीति कैसी ? छोड़िये इसे । जो कुछ परिश्रम से कमाया है उतने में ही बड़ा आनन्द है । धन का बखेड़ा बढ़ाने की अपेक्षा निर्धन होना, आत्मधन प्राप्त करना कहीं अधिक श्रेष्ठ व श्रेयस्कर है । हम कभी इस परम आदर्श से विचलित नहीं होंगे । इस प्रकार आप अधर्म की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कमाई और अनावश्यक लोभ वृत्ति से निकल सकेंगे ।

मनुष्य की सबसे अधिक दीन-हीन अवस्था उस समय दिखाई देती है जब वह छोटी-छोटी बातों के लिए अनुचित आसक्ति या मोह भाव प्रदर्शित करता । छोटी-सी चीज के टूट-फूट जाने से आप कितने परेशान हो उठते हैं । टूटे-फूटे बर्तन, कपड़ों और अनेकों आवश्यक वस्तुओं से आपका इतना अधिक लगाव आखिर क्यों है । संसार की सभी सम्पत्तियों में शरीर का महत्त्व ही सर्वाधिक है इसी से उपभोग करते हैं और स्वामित्व प्रकट करते हैं इसका भी तो एक दिन विनाश हो जाता है । जिसके उपभोग और स्वामित्व के लिए आप यह मोह कर रहे हैं जब उसी को नहीं पहना तो क्या करेंगे आप इन नाचीज वस्तुओं का संग्रह करके ? इनके टूट-फूट जाने, सड़ने-गलने से आप इतना दुःखी क्यों हो जाते हैं ? दुःख करना ही है तो सोचिए आपने अभी तक मानव सुलभ साधनों का आत्मविकास में कितना उपयोग किया ? अपने जीवन लक्ष्य की ओर आप कितना बढ़ सके हैं ? क्या आप अपने आपको पहचान सके हैं ? नकारात्मक उत्तर मिलने से आपका जी दुःखी होगा । जिस प्रकार अब तक हजारों आदमी इस संसार में मर-खप गये उसी प्रकार हमारा भी शरीर-साधन व्यर्थ गया तो कहाँ रही इसमें अपनी बुद्धिमत्ता ? आपकी सफलता इसी में सन्निहित है कि आप अनुचित और छोटी-छोटी वस्तुओं के प्रति मोह का भाव त्यागिये ताकि आपकी शक्तियाँ आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख हो सकें ।

मनुष्य के विनाश का सबसे प्रबल कारण है उसका ''अहंकार ।'' ''मैं ही सब कुछ हूँ'', ''मेरा विचार ही सबसे अच्छा है'', मैं ही सबसे अधिक सुन्दर हूँ, मैं धनी हूँ, मैं पण्डित हूँ आदि अहंकारिक भावनाओं के कारण संसार में कलह, झंझट युद्ध और महायुद्ध की विभीषिकाएँ उठ खड़ी होती हैं । क्या यह अभिमान सार्थक हो सकता है ? नहीं । रावण, दुर्योधन, कंस, हिरण्यकश्यप, नैपोलियन, सिकन्दर आदि अहंकारी पुरुषों आखिर क्या लाभ उठाया ? उन्हें भी हाथ मल ही इस संसार से विदा होना पड़ा, फिर आपकी भला क्या विसात ! आपसे अधिक तो इसी भारत में अनेकों रूपवान, शक्ति और सामर्थ्यवान विद्यमान हैं फिर यह अहंकार आपका क्या प्रयोजन हल कर सकता है । आध्यात्मिक विकास की सबसे बड़ी बाधा मनुष्य के अहंकारपूर्ण विचार ही होते हैं । संसार की क्षणभंगुरता को हमेशा ध्यान में रखने से ही यह सम्भव है कि मनुष्य इस दुष्प्रवृत्ति से बचा रह सके ।

इसी प्रकार मत्सर अर्थात् ईर्ष्या और डाह का भाव भी मनुष्य के अधपतन का कारण होता है मनुष्य की उन्नति उसकी शक्ति और परिस्थितियों के अनुसार कम ज्यादा होती ही है । अपनी शक्तियों का विकास मानवोचित ढंग से करें तो इसमें किसी का अहित नहीं होता पर जब दूसरों की समृद्धि देखकर लोग ईर्ष्या-द्वेष रखने लगते हैं तो वहीं वैयक्तिक और सामूहिक आत्मिक पतन प्रारम्भ हो जाता है । मनुष्य का जीवन इसलिए नहीं मिला । हमें सेवा, सत्कार, प्रेम, दया, न्याय आदि के विकास के लिए साधन स्वरूप यह शरीर उपलब्ध होता है । इसे प्राप्त कर होड़ करें चारित्रिक श्रेष्ठता की, ताकि अपना जीवन उद्देश्य भी पूरा हो, लोगों को प्रसन्नता मिले और सामाजिक जीवन में खुशहाली लाने में अपना भी कुछ उपयोग हो । यदि यह न कर सके तो मनुष्य शरीर और पशुओं के शरीर में अन्तर ही क्या रहा ।

विवेक से मन पराकाष्ठा को पहुँचता है और इसी अवस्था में वैराग्य द्वारा उसका सन्तुलन होता है । इसलिए षट्-विकारों के शमन और आध्यात्मिक आस्था प्रखर करने के लिए वैराग्य पूर्ण भावनाएँ बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं । वैराग्य से मनुष्य का जीवन उन्नत होता है और अनेकों आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# देवासुर संग्राम में हम निरपेक्ष न रहें

पुराणों में देवासुर संग्राम का वर्णन पग-पग पर किया गया है । प्रत्येक पुराण में किसी न किसी बहाने किन्हीं देवताओं और किन्हीं असुरों की लड़ाई के प्रसंग बार-बार वर्णित किए गये हैं । सच तो यह है कि देवासुर संग्राम अनादि काल से चल रहा है और अनन्त तक चलता रहेगा । गीता में जिस धर्म-क्षेत्र कुरुक्षेत्र का वर्णन है और जिस महाभारत में धर्म और अधर्म का पक्ष प्रतिपादन करने वाली कौरव-पांडव सेनाओं का वर्णन हुआ है वह भी केवल उस शस्त्र युद्ध तक सीमित नहीं है वरन् हमारे अन्त:करण में निरन्तर होते रहने वाले देवासुर संग्राम का ही चित्रण है । रीछ बानर की राम सेना और रावण, कुम्भकरण, मेघनाद जैसे समर्थ योद्धाओं का युद्ध भी एक प्रकार की हमारी भीतरी स्थिति का ही बाह्य चित्रण है । अध्यात्म रामायण में इसका निरूपण अधिक स्पष्ट रूप से हुआ है । प्रत्येक अवतार पाप को नाश करने और पुण्य की स्थापना के लिए-देवताओं की रक्षा और असुरों के संहार के लिए अवतरित होता है । ऐसा अवतार समय-समय पर हममें से अनेकों के अन्त: करण में अवतरित होते हुए देखा भी जाता है ।

मनुष्य के भीतर पाप और पुण्य के दोनों प्रकार के प्रबल संस्कार मौजूद हैं । दोनों की शक्ति प्रचण्ड है, दोनों ही उद्‌भट योद्धाओं के समान हैं । दोनों एक दूसरे से प्रतिकूल प्रकृति के होने से परस्पर लड़ते भी रहते हैं और एक दूसरे को परास्त करने का प्रयत्न भी करते हैं । यही देवासुर संग्राम है । हर मनुष्य के भीतर पाप और पतन की असुरता के कुसंस्कार पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं । चौरासी लाख निम्न योनियों में लाखों वर्षों तक भ्रमण करने की अवधि में इसने इन्हें जमा किया होता है । पाशविक वृत्तियाँ उन पतित योनियों में उपयुक्त भले ही कही जायँ, पर मनुष्य के महान गौरव को देखते हुए वे हेय एवं त्याज्य ही होती हैं । सुर-दुर्लभ मानव शरीर में देवत्व की छाया रहती है क्योंकि यह योनि ईश्वर के सबसे निकट है । इस शरीर में आये हुए जीव के लिये ईश्वर तक पहुँचने में छोटी छलाँग लगानी मात्र शेष रह जाती है । इसलिए उसका महत्त्व एवं उत्तरदायित्व भी अधिक है । देवत्व मनुष्य को अपनी तरह ऊँचा उठाने के लिए खींचता है और असुरता की पाशविक वृत्तियाँ अपनी ओर आकृष्ट किए रहना चाहती हैं । इसी खींचतान में हवा के सहारे उड़ने वाले तिनकों की तरह आमतौर से मनुष्य कभी इधर कभी उधर उड़ते रहते हैं । कोई व्यक्ति एक समय बुरे काम करता है तो दूसरे समय में अच्छे काम करता हुआ दिखाई देता है और कोई उसके प्रतिकूल अच्छे कामों को छोड़कर बुराई में धँसते देखा जाता है । ऐसे उदाहरणों में मनुष्य की मानसिक दुर्बलता और शुभ-अशुभ प्रवृत्तियों की प्रबलता का प्रमाण उपलब्ध होता है ।

अन्त:करण में रहने वाली शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों में से जिसे भी अपने अनुकूल वातावरण मिल जाता है वही पनपने और बढ़ने लगती है । जिसे पोषण नहीं मिलता वह सूख जाती है । जो व्यक्ति आज बहुत बुरा दीखता है यह उत्तम परिस्थितियाँ एवं विचारधारा के सान्निध्य में आने से कल बहुत ही उत्तम प्रकृति का बन सकता है और जिसे आज अच्छा समझा जाता है, वही कल बुरे वातावरण में फँसकर बुरा बन सकता है । इसलिए विचारक सदा से यह कहते आये हैं कि इस संसार में बुरा कोई मनुष्य नहीं, केवल परिस्थितियाँ और भावनाएँ ही बुरी हैं, जिन्हें बदला जा सकता है । लोहे या पत्थर की तरह नहीं, मनुष्य का अन्त:करण गीली मिट्‌टी और मोम की तरह है जिसे पिघलाया जा सकता है, बदला जा सकता है ।

अध्यात्म विद्या का उद्देश्य मानव प्राणी की अन्त:चेतना को पिघला कर श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालना है । माना कि पाशविक वृत्तियाँ प्रबल हैं, उनमें आकर्षण और प्रलोभन बहुत हैं जिससे दुर्बल प्रकृति का जीव अनायास ही उनकी ओर खिंच जाता है पर उसका अर्थ यह नहीं कि सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाया या परिपुष्ट नहीं किया जा सकता । कार्य थोड़ा कठिन अवश्य है पर असम्भव

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


किसी भी प्रकार नहीं है । पानी को फैला देने से वह निचाई की ओर आसानी से बहने लगेगा पर यदि उसे ऊँचा उठाना हो तो अनेक उपकरण इकट्ठे करके और बल प्रयोग करने से ही वह ऊपर चढ़ेगा । इसी प्रकार मनोवृत्तियों के निम्नगामी प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनाने में श्रम तो पड़ता है और समय भी लगता है । अध्यात्म विद्या में श्रम और समय लगना इस प्रकार स्वाभाविक ही है । पानी ऊपर खींचना हो तो साधन और शक्ति के अनुरूप मात्रा में ही चढ़ेगा पर गिराने और नीचे बहाने में न समय की आवश्यकता है न शक्ति की, चाहे जितनी मात्रा में उसे क्षण भर में नीचे गिराया जा सकता है । पर ऊँचा उठाने की प्रक्रिया इस प्रकार नहीं हो सकती । इसलिए अध्यात्म का मार्ग श्रमसाध्य, समस्यासाध्य और क्रमिक सफलताओं के साथ पूरा हो सकने वाला माना जाता है ।

देवासुर संग्राम में आमतौर से असुर पहली बाजी जीतते हैं पर देवता जब अपनी बेखबरी और लापरवाही छोड़कर कटिबद्ध होते हैं तो अन्तिम विजय उन्हीं की होती है । पुराणों में वर्णित देवासुर संग्राम की किसी भी कथा को लेवें, एक ही कथानक मिलेगा–असुर बहुत ही प्रबल हैं, वे मरते दम तक दुस्साहसपूर्ण युद्ध करते हैं पर चूंकि उनकी सत्ता मूलतः पाप और अज्ञान पर खड़ी होती है इसलिए वह दुर्बलता ही उन्हें ले बैठती है और देवपक्ष का जैसे ही सुव्यवस्थित आक्रमण शुरू होता है वैसे ही असुर लड़खड़ा जाते हैं । देवताओं में लापरवाही की, विसंगठित रहने की जो कमी है वही उन्हें असुरों से हराती रहती है जब वे अपनी इस भूल को समझ जाते हैं और छोड़ देने को तत्पर होते हैं तो उनकी विजय निश्चित हो जाती है ।

ऋषि-मुनियों को तभी तक लंका के निशिचर मारते-खाते रहे जब तक कि वे अलग-अलग अपनी-अपनी कुटियों में जप-तप करते रहे, पर जब संगठित प्रतिरोध का अभियान आरम्भ हुआ तो रीछ-बन्दरों की सेना ने लंका को तहस-नहस कर दिया । देवताओं को शुंभ-निशुंभ असुरों की सेना से परास्त होते देखकर ब्रह्माजी ने उनके शरीरों से थोड़ी-थोड़ी शक्ति निकाल कर उस संघ-शक्ति से "दुर्गा" नामक एक स्वतन्त्र शक्ति की रचना कर दी और उस दुर्गा ने देखते-देखते उन भयंकर असुरों को मार गिराया । इसी प्रकार का एक प्रयोग त्रेता में भी हुआ था । रावण का नाश का कोई उपाय न देखकर ऋषियों ने अपना-अपना रक्त एक घड़े में इकट्ठा किया और उसे जमीन में गाड़ दिया । वही रक्त कालान्तर में सीता जी के रूप में प्रकट हुआ राजा जनक को हल जोतते समय उसी घड़े के टूटने से प्रकट हुई जो बालिका प्राप्त हुई वह सीता ही आगे चलकर रावण के वंश नष्ट करने का कारण बनी ।

देवत्व हर व्यक्ति के अन्तःकरण में पर्याप्त मात्रा में मौजूद है पर वह प्रसुप्त और बिखरा हुआ पड़ा रहता है, उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता । लंका लाँघने से पहले हनुमान को अपने ऊपर विश्वास नहीं हो रहा था तब जामवंत ने प्रोत्साहन देकर उन्हें छलाँग लगाने के लिए उकसाया और वे समुद्र लाँघने में पूर्णतया सफल रहे । अर्जुन भी दोनों सेनाओं के बीच खड़ा हुआ काँप रहा था, धनुष उसके हाथों से छूटा पड़ रहा था और कुछ सूझ न पड़ता था । कृष्ण ने उसे आवश्यक ज्ञान और प्रोत्साहन दिया तो पार्थ की भुजाएँ फड़कने लगीं । गांडीव उठा कर उसने ऐसा घनघोर युद्ध किया कि कौरवों की समुद्र सी उमड़ती सेना अस्त-व्यस्त हो गई । अहंकारी असुर उच्छृङ्खलता में अभ्यस्त होने के कारण पहली बाजी जीतते हैं और प्रतीत होता है कि इनका हराना कठिन है पर यह निश्चित है कि पाप अत्यन्त दुर्बल होता है । वह घास की ढेर की तरह कितना ही बड़ा क्यों न हो व्यवस्थित रूप से लगाई हुई एक ही छोटी चिनगारी उसे नष्ट कर देने के लिए पर्याप्त होती है देवत्व के पीछे सत्य है, धर्म है, स्थायित्व है, इसलिए इनके पास स्वल्प साधन होते हुए भी अन्त में जीत उन्हीं की निश्चित रहती है । असफलता तो उन्हें तभी तक मिलती है जब तक वे असंगठित और अव्यवस्थित रहते हैं । यह दो दुर्गुण ही उन्हें संकटों में फँसाते हैं । भूल और बुराई का दण्ड तो सभी को भोगना पड़ता है । देवता भी उससे कैसे बच सकते हैं ? लापरवाही, आलस, प्रसाद, ढील-ढाल और उपेक्षा जहाँ कहीं होगी वहाँ देर-सबेर में विपत्ति अवश्य आवेगी । देवता हो या मनुष्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कोई भी यह भूल करेगा तो दण्ड पावेगा । इसी प्रकार विसंगठन, फूट पृथकता एवं स्वार्थपरता का भाव भी मानव-जाति के लिए एक अभिशाप है । संघ शक्ति का अवलम्बन किए बिना मनुष्य अपनी आत्म-रक्षा तक कर सकने में समर्थ नहीं हो सकता ।

व्यक्तिगत क्षेत्र हो चाहे सामाजिक क्षेत्र, दोनों में ही एक ही सिद्धान्त काम करता है । यदि हमारी पाशविक वृत्तियाँ प्रबल हो रही होंगी और देवत्व बिखरा प्रसुप्त स्थिति में पड़ा होगा तो फिर असुर-बुद्धि और असुर-प्रवृत्ति ही बलवती रहने से जीव निम्न कोटि का, पतन और पाप से भरा हुआ दीख पड़ेगा । इसके विपरीत यदि देवत्व सजग, संघबद्ध और सक्रिय रह रहा होगा तो असुरता परास्त हुए बिना न रहेगी । मनुष्य के शरीर में न अच्छाई है न बुराई । उसकी भीतरी स्थिति ही बाह्य जीवन में फूटती रहती है । इस आन्तरिक स्तर को सुधारने और सँभालने का कार्य जिस प्रक्रिया द्वारा होना सम्भव है उसे ही अध्यात्म नाम से पुकारा जाता है ।

अध्यात्म का उद्देश्य मनुष्य को पाप और कुविचारों की असुरता से छुड़ाकर सत्य और धर्म की सुख-शान्तिमयी गोदी में पहुँचा देने का है । यह सोचना गलती है कि धर्म को अपनाने से हम घाटे में रहेंगे । जिस धर्म को अपनाने से मनुष्य घाटे में रहे वह सच्चा धर्म नहीं कहा जा सकता । आज कल धर्म के नाम पर जो अस्वाभाविक आडम्बर पुज रहा है उसके बारे में यह सोचना तो ठीक है पर असली धर्म तो पारलौकिक और इहलौकिक दोनों ही सुखों का साधन जुटाता है । प्राचीनकाल में जब घर-घर धर्म की प्रतिष्ठा रहती थी तो भारत में घर-घर धन वैभव, बल पुरुषार्थ, विद्या, बुद्धि, स्नेह, सौजन्य, आनन्द, उल्लास का वातावरण बिखरा पड़ता है । आज जब कि अधर्ममूलक विचारधारा और कार्यप्रणाली को अपना लिया है घर-घर नरक के दृश्य दीख पड़ते हैं । अभाव दरिद्र, रोगशोक, क्लेश-कलह, अज्ञान अविवेक, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, अभाव जहाँ भी रहेंगे वहाँ नरक की अग्नि ही जलेगी ।

मानव जीवन हमें इसलिए प्राप्त नहीं हुआ कि इस जन्म में नरक जैसी कष्टदायक परिस्थितियों में पड़े रहकर तिल-तिल जलने जैसा कष्ट उठाते हुए मौत के दिन पूरे करें और परलोक के लिए अनन्तकाल तक दुर्गति का साधन इकट्ठा करें । जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या यह है कि जिस प्रकार का लक्ष्यविहीन जीवन हम व्यतीत कर रहे हैं क्या वही उचित है ? क्या यही मनुष्य जन्म जैसे सुरदुर्लभ सौभाग्य का सदुपयोग है ? हम अनेकों महत्वपूर्ण समस्याओं को उपेक्षा में डाले रहते हैं और निरर्थक बातों को बहुत आवश्यक समझकर उनके लिए माथा-फोड़ी करते रहते हैं । यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यही प्रतीत होगा कि हमारे सामने सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या एक ही है और वह है- ''जीवन का लक्ष्य एवं कार्यक्रम निश्चित करना ।'' यदि इस समस्या को हल कर लिया गया तो अन्य सारी समस्याएँ हल हो जाती हैं । यदि यह उलझी पड़ी है तो चारों ओर उलझनें ही उलझनें बनी रहेंगी ।

आज हमारे भीतर और बाहर सर्वत्र असुरता का बोलबाला है । वैयक्तिक जीवन में हमारी अन्तःचेतना असुरता की अन्धकारपूर्ण पाशविक प्रवृत्तियों से भरी हुई है फलस्वरूप मनुष्य शरीर पाकर भी हम घृणित श्रेणी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं । इसी प्रकार सामाजिक जीवन में भी अनाचार का वातावरण प्रबल होता जाता है जिसके फलस्वरूप, स्वास्थ्य, अर्थ व्यवस्था, समाज, राजनीति, पारस्परिक सम्बन्ध, नैतिकता और कर्तव्यपालन, उत्पादन और उद्योग प्रत्येक क्षेत्र में संकट उत्पन्न हो रहे हैं और चारों ओर अशान्ति की काली घटाएँ घुमड़ती हुई दिखाई पड़ती हैं । असुरता की प्रबलता जहाँ कहीं भी होगी वहाँ आपत्तियाँ ही बढ़ेंगी । सुख-शान्ति तो देवत्व के साथ ही अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । यदि हमें अपना व्यक्तिगत जीवन सुखी और सामाजिक जीवन शान्तिमय देखना हो तो उसका एक ही उपाय रह जाता है-असुरता को परास्त करके देवत्व की अभिवृद्धि करना । असुरता जब तक हारेगी नहीं, तब तक अशान्ति का मिट सकना और किस प्रकार सम्भव होगा ?

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



देवासुर संग्राम पूर्व पौराणिक काल में भी चलता था । व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के दोनों मोर्चों पर यह लड़ाई प्रचंड गति से चल रही है । इसी का नाम–विश्व संकट है । यदि यह विश्व संकट हमें सचमुच भी अप्रिय लगता है, इस कष्टमय स्थिति से सचमुच ही बचना चाहते हैं तो फिर उस असुरता को परास्त करने के लिए क्यों तत्पर नहीं होते जो मानव-जाति के ऊपर आई हुई विश्व व्यापी आपत्तियों का एक मात्र कारण है ?

## तप और त्याग की आवश्यकता

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है– ''मानव जीवन का ध्येय आत्मतोष प्राप्त करना है, और आत्मतोष प्राप्ति का उपाय मानवीय सामर्थ्य का विकास करना है । सामर्थ्य का विकास साधना से होता है और साधना तप के बिना पूरी नहीं होती ।

जीवन के अपने ध्येय की पूर्ति के लिए तप की–कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है । निरन्तर की साधना और परिश्रम ही तप के पुण्य-नाम से पुकारे जाते हैं । किन्तु तप के साथ ही त्याग का शब्द जुड़ा हुआ है । जो तप त्याग के लिए किया जाता है वही तप है । तप के लिए तप करना, तप नहीं कहा जा सकता । उससे शरीर और मानसिक विकारों का प्रादुर्भाव होता है । उससे आत्मपरितोष का उद्देश्य भी प्राप्त नहीं हो सकता । तप के साथ संग्रह को कोई स्थान नहीं है । दीपक तपता जलता है, दूसरों को प्रकाश देने के लिए । प्रकृति स्वयं ग्रीष्म में तपती है, धरती पर पावस के आगमन के लिए । सूर्य तपता है लोकों में जीवन फूँकने के लिए । गाय जंगल-जंगल घूमती है लोगों को दूध देने के लिए । प्रकृति ने यह तप उसे सहज ही बता रखा है ।

यही नियम मानव जीवन में भी लागू होता है । जीवन की तपस्या ''सर्व लोक हितार्थ'' ''सर्व जन सुखाय'' हो तभी वह तप की श्रेणी में आती है । एक व्यापारी अपनी श्रीवृद्धि के लिए दिन-रात कितनी दौड़ धूप करता है, एक मजदूर सुबह से शाम तक पसीना बहाता है, किन्तु उनकी अपेक्षा निःस्वार्थ भाव से संसार के कल्याण की कामना का चिन्तन करने वाले, सबको सन्मार्ग दिखाने वाले ''लोकसेवी'' अधिक पूजनीय माने गये हैं । क्योंकि त्याग की व्यापक भावना रखकर श्रम करना, साधना करना ही तप कहलाता है । दूसरे लोगों के हितार्थ, दूसरों की सेवा के लिए अपने शरीर पर कष्ट सहना, समष्टि के लाभ की चिन्ता रखकर कोई भी दृढ़ प्रयत्न करना तप है । किन्तु शरीर को व्यर्थ कष्ट देकर आत्म-कल्याण और दूसरों का हित चाहने वाले इस अमूल्य साधन को क्षीण करते हैं और वह तप नहीं कहला सकता । केवल शरीर के भरण-पोषण, आराम सुख के लिए ही सदैव प्रयत्न करना भी तप नहीं । मजदूर, व्यापारी, अन्य पेशेवर लोग क्या कम श्रम करते हैं ? किन्तु उन्हें तपस्वी नहीं कहा गया ।

स्वार्थ के लिए अथवा तप को ही लक्ष्य बना कर किया गया तप आत्म तुष्टि नहीं कर सकता, उससे जीवन में सन्तोष नहीं मिलता । इससे तो अभिमान की वृद्धि होकर मनुष्य विकारग्रस्त हो जाता है । उस तपस्वी की कथा प्रसिद्ध है जिसके देखने पर चिड़ियाँ जल कर भस्म हो गई थीं, किन्तु गृहस्थ स्त्री, तुलाधार वैश्य, और माँस विक्रेता के यहाँ जाकर उसके तप का अभिमान नष्ट हुआ । विश्वामित्र को तप का अभिमान हुआ, जिससे उनका पतन हो गया । रावण के तप से उसकी श्री समृद्धि बढ़ी किन्तु स्वार्थ भाव के कारण उसका पतन हुआ ।

महात्मा बुद्ध ने अपने राजभवनों के सुखोपभोग छोड़े । जंगल में जाकर तप किया । कई वर्षों तक कठोरता के साथ तप साधना की, सारा शरीर कृश हो गया किन्तु उन्हें आत्म-शक्ति नहीं मिली । किन्तु जब उन्होंने ग्रामीण लड़की से खीर खाई, और फिर मध्यम मार्ग का अनुसरण किया, लोक-कल्याण के लिए उन्होंने अपने तपस्वी, एकाकी जीवन का त्याग किया तब उन्हें आत्मतोष प्राप्त हुआ । उन्होंने तप और त्याग दोनों को ही लोक-कल्याण के लिए किया । जब तक उन्हें अपने तप और त्याग का अभिमान रहा उन्हें आत्म-शान्ति नहीं मिली ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


महाराजा शिखिध्वज ने अपना राजपाट छोड़कर तप के लिए जंगल की शरण ली और कष्टों का वरण किया फिर भी उन्हें शान्ति नहीं मिली । जब उनकी स्त्री चूड़ाला ने ब्रह्मचारी के वेष में उन्हें उपदेश देकर सब प्रकार के अभिमान का त्याग कर लोक-हित के लिए तप करने का आदेश दिया तो उनकी ग्रन्थियाँ सुलझ गईं और वे राजकाज करने लगे । तप का शुद्ध स्वरूप वह है जिसमें वह त्याग के लिए किया गया हो ।

विश्व विधान की माँग है प्रत्येक पदार्थ, वस्तु, विश्व की विकास यात्रा में अपना योग दे । विकास के कार्यक्रम में अपने आपको खपा दे । बीज अपने आपको मिटा देता है विशाल वृक्ष निर्माण में । वृक्ष अपनी जीवनी शक्ति असंख्य बीजों में छोड़कर विकास की मंजिल में खप जाता है । सृष्टि का सौन्दर्य बढ़ाये रखने तक ही पुण्य का जीवन है । प्रकृति का एक-एक पुर्जा चाहे वह छोटा हो या बड़ा सृष्टि यंत्र को विकास, सत्य, सौन्दर्य उन्नति की राह पर आगे बढ़ाने में अपना पूरा-पूरा योगदान दे रहा है । इसी में उसका महत्त्व और शक्ति निहित है ।

जड़ अथवा जीव जगत के सभी पदार्थ विश्व की विकास यात्रा में अपना योगदान दे रहे हैं, उत्सर्ग कर रहे हैं । यही बात मनुष्य पर लागू होती है । सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने से मनुष्य की और भी अधिक जिम्मेदारी है । जो मनुष्य इसे जीवन में स्थान देकर समष्टि के लिए अपना उत्सर्ग करते हैं, उनके विकार स्वत: ही धुलने लगते हैं और उन्हें नवजीवन शक्ति स्फूर्ति सामर्थ्य प्राप्त होती है । उन्हें जीवन में अहर्निशि सन्तोष शान्ति प्रसन्नता का अनुभव होने लगता है ।

व्यक्तिगत दृष्टिकोण का त्याग कर सार्वजनिक समष्टिगत भाव बनाकर तब श्रम किया जाय । अपने लिए नहीं वरन् विश्व यज्ञ में जीवन शक्ति की आहुति देकर आत्मतोष के रूप में यज्ञ का महान पुण्य अर्जित किया जा सकता है ।

दूसरों की सेवा, सहायता, समाज के उत्थान, मातृभूमि की सेवा, मानव जाति के कल्याण और विकास के लिए साहित्य, कला आदि की साधना से धरती पर परम सत्य, सौन्दर्य शिव के सन्देश सुनाना आदि सभी माध्यमों में लग कर मनुष्य त्याग आत्मोत्सर्ग की भूमिका प्रस्तुत कर सकता है । छोटे से लेकर बड़े से बड़ा कार्य सभी सृष्टि के लिए अपना-अपना महत्त्व रखते हैं । मेहतर का सफाई करना, किसान, मजदूर का श्रम, पूँजीपति का औद्योगिक कार्य, बुद्धिजीवी विचार साधना, सरकारी नौकरों का कर्तव्य पालन सभी अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं यदि इन्हें समष्टि की भावना से पूरे-पूरे प्रयत्न के साथ अनन्य भाव से किया जाय । इन सभी कार्यों से आत्मपरितोष के उद्देश्य की पूर्ति होती है ।

लौकिक जीवन को छोड़ना, धन सामग्री को छोड़ना त्याग नहीं है । दरिद्रों की सेवा के लिए स्वयं दरिद्र बनना मूर्खता है । क्योंकि दरिद्रता और मूर्खता जुड़वाँ बहिनें हैं । इसी तरह शरीर को कष्ट देना, सुखाना, क्षीण करना तप नहीं कहलाता । सब प्रकार के अभिमान का त्याग कर अपनी शक्ति सामर्थ्य उपलब्धियों को उत्सर्ग करते रहना ही सच्चा त्याग है । दूसरों के हित कल्याण के लिए, स्वयं कष्ट सहना, शरीर और मन का उपयोग करना, दूसरों की सेवा में लगना, अपने सुख, भोग, स्वार्थ आदि में मन न जाने देना ही तप है । महाराजा जनक, अशोक, बुद्ध, और इस युग में महात्मा गाँधी, तिलक, मालवीयजी आदि अनेकों महापुरुष इसी श्रेणी में आते हैं । भगवान राम का जीवन तप और त्याग की सजीव व्याख्या है । जन कल्याण के चिन्तक ऋषियों का आदर्श तप और त्याग के लिए प्रसिद्ध है ।

## हम निष्पाप बनें

अध्यात्म-विज्ञान विशारदों ने जीवन लक्ष्य की सिद्धि के लिए जो उपाय बताए हैं वे दो बातों पर निर्भर करते हैं । एक है स्वार्थपूर्ण, संकीर्ण, तुच्छ, स्वकीय मर्यादाओं से अपने आपको मुक्त करना । दूसरा आधार है अपनी भावनाओं को विकसित कर असीम के प्रति अनुराग, प्राणीमात्र के प्रति दया, प्रेम, आत्मीयता, विराट् की अनुभूति का विस्तार करना । एक निषेधात्मक है तो दूसरा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


रचनात्मक । दोनों को मिलाकर ही सिद्धि का पूर्णांक बनता है । दूसरे शब्दों में एक क्रियात्मक है तो दूसरा भावनात्मक । भाव और क्रिया के समन्वय से ही जीवन में किसी उद्देश्य की सफलता प्राप्त की जा सकती है ।

धार्मिकों ने जीवन साधना के प्रथम निषेधात्मक पहलू को पापों, दुष्कर्मों से मुक्त होना कहा है । सभी धर्मों, समाज व्यवस्थाओं में लक्ष्य सिद्धि के लिए पापमुक्त होना प्राथमिक आवश्यकता के रूप में माना है । पाप की निवृत्ति ही जीवन सिद्धि का आधार है । उपनिषदकार ने भी प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहा है–

''**विश्वानि दुरितानि परासुव**''–समस्त पापों से हमें मुक्त कर । निष्पाप होकर ही ''**शुद्धं अपापबिद्धं**'' प्रभु का साक्षात्कार किया जा सकता है ।

जीवन की चरम परिणति, उसका उद्देश्य, लक्ष्य है ईश्वर या असीम आत्मा, परमात्मा, विराट् की उपलब्धि करना । विराट् की उपलब्धि के मार्ग का अवरोध बन्धन, बाधाएँ ही पाप है । पाप की सीमा, मर्यादाओं, षड्यन्त्रों से निकल कर ही ईश्वर से तादात्म्य सम्भव है । पाप ही हमें अपने चरम लक्ष्य से दूर रखता है । विराट् के दर्शन से हमें रोकता है ।

स्वकीयता, स्वार्थपरता, निजी हितों के संकीर्ण तुच्छ घेरे में आबद्ध हो जाना ही पाप है । अपने जीवन और उद्देश्य को स्थूल मानकर उनकी सफलता के लिए अपनाए जाने वाले क्रिया-कलाप ही पाप हैं । अमर्यादित इच्छा, आकांक्षाएँ, अपरिमित वासनाएँ, राग-द्वेष, घृणा और इनसे रहित दुष्कर्म ही पाप का स्वरूप है ।

पाप अनेकों प्रकार से, दृश्य-अदृश्य रूप में अपनी गतिविधि चालू रखता है और हमारे जीवन की अपनी कर्मशाला बनाये रखता है । मनुष्य जाने-अनजाने रोजाना ही अगणित पाप करता रहता है । मुख्यतया पाप दो तरह से काम करता है–पाप की सत्ता दो भागों में बाँटी जा सकती है । एक मानसिक दूसरी क्रियात्मक ।

मानसिक पापों से स्वार्थपरता, लोभ, परद्रोह, अहंकार और तज्जन्य अन्य मानसिक विकृतियाँ आती हैं । इन मानसिक दोषों से प्रेरित होकर किए जाने वाले दुष्कृत्य, दुराचार, दुर्भाषण आदि क्रियात्मक पाप हैं । मानसिक संस्थान की प्रेरणानुसार ही मनुष्य बोलता है, वैसा ही करता है । पाप की जड़ें अदृश्य रूप में मनुष्य के मनः संस्थान में रहती हैं तो उसकी शाखा-प्रशाखाएँ जीवन के बाह्य पटल पर क्रियात्मक क्षेत्र में । वस्तुतः पाप की सत्ता तो एक ही होती है उसके कार्य करने के दो तरीके हैं ।

स्वार्थपरता, स्वकेन्द्रित वृत्ति अर्थात् मैं, मेरा, मेरे लिए का दृष्टिकोण सर्वप्रथम पाप है । इसे भी शास्त्रों में लोभ कहा गया है । लोभ की प्रेरणा से मनुष्य में नाना कामना, अमर्यादित आकांक्षाओं का उदय होता है और उससे मनुष्य की बुद्धि, विवेक नष्ट हो जाते हैं । अपनी कामना और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह जो भी आवश्यक समझता है, करता है । लोग अपने लाभ और स्वार्थ की पूर्ति के लिए झूठ बोलते हैं, धोखा देते हैं, चोरी करते हैं । दुष्कृत्य, दुराचरण का आश्रय लेते हैं । होने वाली धोखा देही, चोरी मिलावट शोषण आदि बुराइयाँ मनुष्य की उक्त पाप वृत्ति का ही परिणाम है । कदाचित् स्वार्थपरता, स्वकीयता, अपने लाभ की बात मनुष्य में न हो तो उक्त दुष्कृत्य दुराचार समाप्त हो जायें । इसलिए लोभ की वृत्ति को नीतिकार ने पाप का कारण बताते हुए लिखा है ।

''**लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात्कामः प्रजायते ।**
**लोभात्मोहश्च शोकश्च लोभः पापस्य कारणम् ।।**''

''लोभ से क्रोध पैदा होता है, लोभ से कामनायें बढ़ती हैं । लोभ से मोह और शोक पैदा होते हैं, लोभ समस्त पापों का कारण है ।''

वस्तुतः लोभ से मनुष्य में विभिन्न कामनाएँ, इच्छाएँ जाग्रत होती हैं । कामनाओं में विक्षेप पड़ने पर मनुष्य क्रोध करता है । लोभ की प्रेरणा से संग्रहीत वस्तुओं में मनुष्य की आसक्ति, मोह बढ़ जाता है और उन वस्तुओं के नष्ट होने, खो जाने पर मनुष्य दुःखी होता है, शोक करता है ।

लोभ स्वार्थपरता से प्रेरित कामनाएँ मनुष्य का किस तरह विनाश कर देती हैं इसे बताते हुए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


गीताकार ने लिखा है–

**''क्रामात् क्रोधोभिजायते,.....**
**क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः ।**
**स्मृति भृंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति ।''**
**ध्यायतो विषयान् पुंसः.....**

''कामना में विक्षेप पड़ने से मनुष्य में क्रोध का आवेग पैदा होता है । क्रोध एक तरह का सम्मोहन है जो स्मृति को नष्ट कर देता है । स्मृति के नष्ट होने पर बुद्धि विवेक नहीं रहते और बुद्धि का नाश हो जाने पर मनुष्य उल्टे-सीधे काम करता है और उसी से उनका विनाश हो जाता है ।''

जीवन के भौतिक पहलू संसार और इसके पदार्थों को ही जीवन मान कर चलने वाला व्यक्ति असुर कहा गया है । असुरों का दम्भ, मान, मद अहंकार सुप्रसिद्ध है । लोभ, स्वार्थपरता के संकीर्ण दृष्टिकोण की तरह ही अहंभाव मनुष्य का सबसे बड़ा पाप है । अहंकारी व्यक्ति की विचार प्रणाली होती है **''ईश्वरोऽहं अहं भोगी, सिद्धेऽहं बलवान्सुखी ।''** मैं ऐश्वर्य सम्पन्न हूँ, मैं भोगों को भोगने वाला हूँ, मैं सर्व समर्थ, सुखी शक्तिशाली हूँ । अहंकारग्रस्त व्यक्ति संसार स्वयं को ही देखता है । उसके जीवन में ''मैं'' की सत्ता ही बलवान होती है । अपने ''मैं'' को तुम रखने के लिए वह दूसरों पर अत्याचार करने में नहीं चूकता । अहंकार स्वेच्छा का ही पर्यायवाची है । अहं रावण है, हिरण्यकशिपु है–यह कंस है–जो नाना अत्याचार दुराचार करने में नहीं चूकता और अन्त में स्वयं भी नष्ट हो जाता है । स्वार्थ और अहंकार दोनों अपनी समझ से किसी को फलता-फूलता नहीं देखना चाहते । इस तरह के लोग अनायास ही दूसरों से बैर, विरोध, द्रोह कर बैठते हैं । दूसरों के प्रति दुर्भावना विरोध बैर हो जाने पर अहंकारी व्यक्ति पूरी तरह उसे नष्ट होता देखना चाहता है । ऐसी स्थिति में मनुष्य कोई भी कुकर्म, अन्याय, जुल्म करने में नहीं चूकता ।

लेकिन मनुष्य जहाँ दूसरे से द्रोह बैर, विरोध करता है वहाँ उसका स्वयं का व्यक्तित्व भी सदोष बन जाता है । उसका 'अहं' दूषित हो जाता है । जल्दबाजी, उद्विग्नता बढ़ जाती है । स्वभाव चिड़चिड़ा और कठोर बन जाता है । परद्रोह की भावना, ईर्ष्या, द्वेष के रूप में पल्लवित होकर मनुष्य के अन्तर बाह्य जीवन को दूषित बना देती है । उसके व्यवहार, बोलचाल आदि में वही विष टपकने लगता है, जिसके कारण मनुष्य अपने निकटस्थ व्यक्तियों से भी दुर्व्यवहार कर बैठता है । इस तरह द्रोह की भावना अनेक पापों को जन्म देती है ।

लोभ, स्वार्थपरता, अहंकार आदि से ग्रस्त होकर मनुष्य के विचारों और क्रिया पद्धति में दोष उत्पन्न हो जाते हैं । वह गलत सोचता है, दुर्वचन बोलता है और दुष्कृत्य करता है, जिससे दूसरे प्राणियों को दुःख, कष्ट भी पहुँचता है । कायिक, वाचिक, मानसिक दृष्टि से दूसरों को तनिक भी कष्ट पहुँचाना शास्त्रकारों ने पाप माना है ।

अक्सर लोग क्रुद्ध होने पर अथवा अपने भोग स्वार्थ के लिए या मनोरंजन के लिए दूसरे प्राणियों को पीड़ा पहुँचाते हैं, उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं या उन्हें नष्ट करते हैं । दूसरे प्राणियों को किसी भी रूप में पहुँचाई जाने वाली पीड़ा कष्ट उनका अहित भयंकर पाप माना गया है । नीतिकारों ने इसे हिंसा नाम दिया है । हिंसक कृत्यों को करने वाले, कराने वाले, उनका समर्थन करने वाले तीनों ही पाप के भागी माने हैं शास्त्रकारों ने ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । मानव समुदाय में ही उसका धारण, पोषण, अभिवर्द्धन होता है । अतः जिन कृत्यों आचरणों से समाज व्यवस्था को हानि पहुँचे वे सभी पाप माने गये हैं । खासतौर से स्वेच्छाचार, मनमानी करना पाप है । समाज के नियमानुसार मनुष्य की वासना सम्बन्धी वृत्तियों की तुष्टि के लिए विवाह परम्पराएँ, पत्नीव्रत आदि का विधान है । किन्तु मनुष्य जब इस मर्यादा का उल्लंघन कर मनमाने ढंग से व्यभिचार का आश्रय लेता है तो वह पाप बन जाता है । सामाजिक व्यवस्था को पोषण देने वाले सर्वजन हिताय नियमों की अवहेलना ही पाप है जिसे व्यभिचार, स्वेच्छाचार कहा जाता है । रहन-सहन का फूहड़पन, निर्लज्जता, अश्लीलता आदि का आचरण पाप है ।

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन सिद्धि के लिए, विराट् की अनुभूति और विश्वात्मा के दर्शनों के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लिए हमें निष्पाप होना पड़ेगा तभी उस "शुद्धं अपाप विद्धं" को पा सकेंगे । जीवन शोधन की यह शर्त पूरी किए बिना हमें लक्ष्य की प्राप्ति न होगी । अपने आन्तरिक और बाह्य जीवन को पापमुक्त बनाना पड़ेगा । निष्पाप होना होगा तभी जीवन की सिद्धि का लक्ष्य मिल सकेगा ।

## अपने को परिष्कृत होने दीजिये

अवन्तिका की विशाल जन-सभा समाप्त हो गई थी, थोड़े से बौद्ध भिक्षु और श्रेष्ठि, सामन्त जन शेष रहे थे । यह विचारवान वर्ग था । सब अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान तथागत से करा रहे थे । एक बालक जो अति जिज्ञासु दिखाई देता था, वही समीप ही खड़ा था । अवसर मिलते ही उसने पूछा-'भगवन् ! संसार में सबसे छोटा कौन है ?' बालक की प्रतिभा देखकर भगवान बुद्ध कुछ गम्भीर हुए और बोले-

"जो केवल अपनी बात सोचता है, अपने स्वार्थ को सर्वोपरि मानता है ।" इन शब्दों में भिक्षुराज ने व्यावहारिक अध्यात्म की रूपरेखा थोड़े और सरल शब्दों में समझा दी है । आत्मनिर्माण का उद्देश्य यह है कि मनुष्य की इच्छाएँ, लालसाएँ और मनोवृत्तियाँ उनके निजी सुख और उपभोग तक ही सीमित न रहें वरन् उनका विस्तार हो । लेने-लेने में ही सब आनन्द नहीं है । जब तक केवल पाने की अभिलाषा रहती है तब तक मनुष्य बिल्कुल छोटा, दीन, असहाय अकाम और बेकार सा लगता है । किन्तु जैसे ही उसके शरीर, मन, बुद्धि और सम्पूर्ण साधनों की दिशा चतुर्मुखी होने लगती है, चारों ओर फैलने लगती है वैसे ही उसकी महानता भी निखरने लगती है और वह अपने जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगता है ।

मनुष्य में यह एक बहुत बड़ी कमजोरी है कि वह भाषा, प्रान्त, वर्ण और राष्ट्रीयता के भेद-भाव के साथ अपने आपको शेष समाज से अलग रखने का प्रयत्न करता है । जहाँ पाने की बात आती है वहाँ नीति, धर्म, आदर्श और सदाचार की बात रखने में सभी बल देते हैं किन्तु देने के नाम पर हाथ सिकोड़ते हुए न लज्जा आती है न संकोच । अपने बच्चों की चोंच में दाना डालने का कार्य तो साधारण पक्षी भी कर लेते हैं, अपनी ही भूख को हर पशु मिटा लेता है । ऐसी ही धारणाएँ मनुष्य में भी रहें तो अन्य प्राणियों के सामने उसकी विशेषता कहाँ रही ? एक जाति के पक्षी जिस डाल पर बैठे होते हैं उस पर कोई दूसरी जाति वाला बैठ जाय तो उसकी खैर नहीं होती । कुत्ते अपने सजातीय को खाते हुए फूटी आँखों नहीं देख सकता और उस पर झपटकर बलपूर्वक उसके मुख का टुकड़ा छीनकर खुद खा जाता है । ऐसी ही क्षुद्रतम प्रवृत्तियाँ, बुद्धिधारी मनुष्य की भी हों तो उसे इन पशुओं की कोटि का ही समझना चाहिए ।

मनुष्य का जीवन काल बहुत थोड़ा होता है किन्तु कामनाओं की कोई सीमा नहीं । इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होतीं । भोगों से आज तक कभी आत्म-सन्तुष्टि नहीं मिली फिर इन्हीं तक अपने जीवन को संकुचित कर डालना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है । मनुष्य जीवन मिलता है, देश के लिए, धर्म जाति और संस्कृति के लिए । बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह शरीर मिला है । हमें यह बात खूब देर तक विचारनी चाहिए और उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए तपने की, गलने की, विस्तृत होने की परम्परा डालनी चाहिए । आत्म-विस्तार के द्वारा ही मनुष्य वह स्थिति प्राप्त कर सकता है जिसके लिए मनुष्य जीवन जैसा अलभ्य अवसर मिलता है ।

## विभूतियाँ अर्जित करें, सम्पदा नहीं

जीवन में धन सम्पत्ति की कमाई का भी महत्त्व है पर उतना ही जिससे शरीर यात्रा का आवश्यक निर्वाह होता रहे-अथवा पारिवारिक उत्तरदायित्वों को उस स्तर पर पूरा किया जा सके जिसमें अपने देश के औसत निवासी को गुजर करनी पड़ती है । भौतिक कमाई के लिए इस सीमा के अन्तर्गत जो चेष्टाएँ की जाती हैं उनका औचित्य है । जिस शरीर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के उपकरण से जीवन यात्रा चलनी है उसे पोषण देना ही चाहिए और जिस परिवार के साथ हमारे कर्त्तव्य उत्तरदायित्व जुड़े हैं उसका निर्वाह भी चलना ही चाहिए ।

शरीर जब तक है तब तक ही भौतिक कमाई का उपयोग है । शरीर ही इस उपार्जन का उपभोग करता है । किन्तु जीवन इतने में ही समाप्त नहीं हो जाता, वह तो अनन्त है, आगे भी चलने वाला है । हमें यह भी विचार करना चाहिए कि जिस प्रकार कल-परसों की शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए आज से ही कुछ कमाने और बचाने की चिन्ता की जाती है, वैसी ही चेष्टा जीवन की लम्बी अवधि में काम आने वाली कुछ सामग्री संचित करने की की जानी चाहिए । यदि आत्मा की यात्रा का महत्त्व ही न समझें, और उसे शान्तिपूर्वक गतिशील रहने के लिए आवश्यक साधन जुटाने की उपेक्षा करें तो यह भयंकर भूल ही होगी । शरीर सुविधा के साधन जुटाने में अहर्निशि जुटे रहें । जो काया कल-परसों नष्ट होने वाली है उसकी तात्कालिक सुविधाओं का संचय हमें आवश्यक प्रतीत हो और आत्मा की लम्बी यात्रा के साधन जुटाने में उपेक्षा बरती जाय तो अदूरदर्शितापूर्ण ही कहा जायगा ।

मृत्यु के उपरान्त जीवन समाप्त नहीं हो जाता यह सुनिश्चित है । उसके बाद भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं । शरीर त्यागने के बाद आत्मा खाली हाथ नहीं जाती । वरन् उसके साथ भी बहुत सी वस्तुएँ जाती हैं । धन, परिवार, पद, वैभव जैसी भौतिक वस्तुएँ , जहाँ की तहाँ रह जाती हैं, वे आत्मा के साथ नहीं जातीं । शरीर भी गल या जल कर ऐसे ही समाप्त हो जाता है । मस्तिष्क भी शरीर का ही एक अंग है । सरकस के नट जिस प्रकार हाथ पैरों को कई तरह की कलाबाजी दिखाने के लिए प्रशिक्षित कर लेते हैं उसी प्रकार मस्तिष्क को भी शिक्षा-शिल्प अथवा कला-कौशल में प्रवीण बना लिया जाता है । जिस प्रकार मरने के बाद शरीर के अन्य अंग यहीं नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मस्तिष्क और उसका शिक्षा कौशल भी जीवन लीला समाप्त होने के साथ ही नष्ट हो जाता है ।

अनन्त जीवन के साथ रहने वाली वस्तुओं में 'संस्कार' ही मुख्य है । संस्कार अर्थात् अन्तःकरण में जमी हुई प्रगाढ़ आस्थाएँ और परिपक्व आदतें । जीव की चेतन सत्ता के साथ में यह संस्कार सघन रूप से इतने घुले-मिले रहते हैं कि उन्हें अस्तित्व का एक अंग ही कहा जा सके । यह संस्कार ही आगामी जन्म के आधार होते हैं । इसी परिपक्व प्रकृति की दिशा में आत्मा की लालसा भटकती है तदनुरूप उसका प्रचण्ड चुम्बकत्व लगभग उसी स्तर की परिस्थितियों में-उसी स्तर को काया में जन्म ग्रहण कर लेता है । आत्मा स्वसंचालित यन्त्र की तरह है । उसके भीतर ही वह व्यवस्था मौजूद है जो अपने भाग्य एवं भविष्य का निर्धारण निर्माण स्वयं कर सके । इसके लिए किसी अन्य दण्ड द्वारा पुरस्कार देने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

कहा जाता है कि मरने के बाद चित्रगुप्त के दरबार में जीव को उपस्थित होना पड़ता है । वहाँ उसके कर्मफल का लेखा-जोखा लेकर तदनुसार स्वर्ग-नरक की-पुनर्जन्म की व्यवस्था की जाती है । यह चित्रगुप्त का दरबार कहीं अन्यत्र नहीं अपने अन्तःकरण में विद्यमान है । हमारी आस्थाएँ-आकांक्षाएँ एवं गतिविधियाँ जिस दिशा में चलती हैं जो सोचती हैं और करती हैं उनका सार तत्व अन्तःकरण की भीतरी पर्त पर जमा होता रहता है । इन्हीं को कर्मबीज कहते हैं, इन्हीं को संस्कार कहा जाता है । वे स्थान पर सुरक्षित भण्डार की तरह जमा होते रहते हैं । मरण के उपरान्त अनुकूल अवसर पाते ही वे संस्कार उभर आते हैं और उनकी प्रतिक्रिया सहज ही सामने आती चली जाती है ।

जीवित अवस्था में चिन्तनशील जाग्रत मस्तिष्क अपने विचार प्रवाह में बहता रहता है । शरीरगत क्रिया-कलापों की स्नायविक उत्तेजना भी चेतना पर छाई रहती है । इस दबाव से मूल संस्कार अचेतन मनःक्षेत्र में दबे पड़े रहते हैं । तब उन्हें उतना अधिक उभरने का अवसर नहीं मिलता, थोड़ा-बहुत जो मिलता है, उसके अनुसार तत्काल कर्मफल भी मिलने लगते हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों से कितने ही शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं, यह वैज्ञानिक तथ्य अब भली प्रकार स्पष्ट हो गया है । आधे से अधिक बीमारियाँ ऐसी होती हैं, जिनकी चिकित्सा दवा-दारू के द्वारा भी सम्भव नहीं होती । उनका निवारण केवल आन्तरिक कुसंस्कारों के निराकरण से ही सम्भव होता है । असाध्य समझे जाने वाले शारीरिक और मानसिक रोगों की सूची अब दिन-दिन लम्बी होती जाती है । इनका निवारण कर सकने में चिकित्सा विज्ञानी अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं, क्योंकि अन्त:करण के गहन स्तर में जमे हुए उन कुसंस्कारों को पकड़ना-उखाड़ना उनके साधनों में नहीं आता, जो उन असाध्य रोगों के कारण बने होते हैं ।

इसी प्रकार जीवन में अन्यान्य कष्टकर परिस्थितियाँ इन्हीं कुसंस्कारों के कारण उपस्थित होती रहती हैं । चोरी की आदत के कारण लोक-सम्मान चला जाना, जेल भुगतना और सहयोग से वंचित हो जाना कितना कष्टकारक और कितना प्रगति बाधक होता है ? इसे भुक्तभोगी भली प्रकार जानते हैं । सामान्य कामों में पग-पग पर असफलता मिलना अस्थिर चित्त का ही प्रतिफल होता है यह अस्थिरता अनायास ही पीछे नहीं पड़ जाती वरन् संचित कुसंस्कारों की एक व्यवस्थित प्रतिक्रिया ही होती है । ऐसे-ऐसे कितने ही अवरोध और संकट जीवन-क्रम में आये दिन उपस्थित होते रहते हैं जिन्हें अपने ही अन्त:करण में संचित कुसंस्कारों की प्रतिक्रिया कह सकते हैं ।

चेहरे में आकर्षण, वाणी में प्रभाव, आँखों में चमक, कार्यों में स्फूर्ति जैसी कितनी ही विशेषताओं का यदि विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह सारी विशेषता संचित कुसंस्कारों का ही फल है, वे ही हमें निकृष्ट परिस्थितियों में धकेलती हैं वे ही प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचा देने वाले साधन जुटाती हैं ।

यह तो जीवित अवस्था की बात हुई । संस्कारों का प्रभाव व्यक्तित्व के उत्कृष्ट एवं निकृष्ट स्तर में देखा जा सकता है और उनके आधार पर उत्थान-पतन का आधार बनता हुआ अनुभव किया जा सकता है । मरणोत्तर जीवन में यही संस्कार-सम्पदा के साथ रहती है । शरीर और मस्तिष्क का तनाव दबाव हल्का पड़ते ही यह संस्कार उभरते हैं और प्राणी को स्वर्ग एवं नरक जैसे दृश्य दिखाते हैं-अनुभव कराते हैं । अपना स्वर्ग नरक हम स्वयं ही बनाते हैं । हमारे संचित संस्कारों को बीजरूप से विकसित होकर अंकुर एवं पौधों की स्थिति प्राप्त होती है तो मृतात्मा अनुभव करती है कि उसे कुसंस्कारों का दण्ड और सुसंस्कारों का पुरस्कार मिल रहा है । नरक और स्वर्ग की अनुभूतियों का आधार यही होता है ।

पुनर्जन्म कहाँ मिले किस प्रकार के परिवार में अथवा कैसे वातावरण में जन्म मिले ? इसकी व्यवस्था भी अपना ही स्वसंचालित चेतना संस्थान स्वयं ही कर लेता है । इसके लिए अन्य किसी बाहरी न्यायाधीश या नियन्त्रण कर्त्ता की आवश्यकता नहीं पड़ती । इतने अधिक प्राणियों के-इतने अधिक कर्मों का लेखा-जोखा रखना और उनके लिए दण्ड, पुरस्कार, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि की व्यवस्था करना अन्य किसी बाहरी व्यवस्थापक के लिए सम्भव नहीं है । यह सारा कार्य अपनी ही अन्त:चेतना निपटाती है । मरने के बाद तर्क-बुद्धि समाप्त हो जाती है । भीतर कुछ बाहर कुछ का झंझट नहीं रहता । भले या बुरे जैसे भी कुछ संस्कार जमे होते हैं उन्हीं के अनुरूप आकाँक्षाएँ उभरती हैं और उसी उभार का आकर्षण अभीष्ट परिस्थितियों के साथ पुनर्जन्म का तालमेल बिठा देता है । जीवित मनुष्य में दुहरा अस्तित्व रहता है । उसकी आकाँक्षा और रहे और व्यक्ति कुछ और करे यह सम्भव है पर मरणोत्तर काल में वह स्थिति नहीं रहती । इसलिए यदि निकृष्ट संस्कार जमे होंगे तो निकृष्ट व्यक्तियों अथवा निकृष्ट परिस्थितियों की ओर ही खिंचाव रहेगा और जीव उसी वातावरण में उसी स्तर के शरीर में जन्म ग्रहण कर लेगा । तर्क-बुद्धि रहती तो शायद वह निकृष्ट संस्कारों के कारण मिलने वाली निकृष्ट परिस्थितियों की हानि भी सोचता और अपने स्वाभाविक स्तर से भिन्न प्रकार की परिस्थिति में काम लेने की चेष्टा करता, पर उस स्थिति में वैसा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्भव नहीं रहता । एक ही व्यक्तित्व, एक ही रुचि, एक ही चेष्टा का वर्चस्व इन दिनों रहता है । भौंरा फूल पर जा बैठता है और गुबरीला कीड़ा गोबर तलाश करता है । इसके लिए उसे न किसी की सलाह लेनी पड़ती है और न कोई जोर-जबरदस्ती करता है । वे कीड़े अपनी प्रकृति के अनुरूप ही परिस्थिति ढूँढ़ लेते हैं और वहाँ जाकर सन्तोष करते हैं । ठीक इसी प्रकार अन्त:चेतना अपने संचित संस्कारों के अनुरूप जन्म ग्रहण कर लेती है । इसमें रहने से सुख मिला या दु:ख यह तो तब पता चलता है जब जिस योनि में जन्म लिया गया है उसमें रहने के बाद दूसरे प्राणियों के साथ अपनी तुलना कर सकने में बुद्धि विकसित होती हो ।

अगले जन्म का स्थान शरीर, वातावरण बनाकर ही वे संस्कार समाप्त नहीं हो जाते वरन् उस जन्म की अनेकानेक प्रेरणाओं, आकाँक्षाओं एवं प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन भी वे ही करते हैं । यदि वह संचालन हेय स्तर का ही रहा होगा तो उस प्राणी को उसकी प्रतिक्रिया नाना प्रकार के कष्ट संकटों के रूप में भुगतनी पड़ेगी यदि वह सूक्ष्म संचालन श्रेष्ठ स्तर का हो रहा होगा तो उस जीव को सुखद एवं सुसम्पन्न परिस्थितियों का लाभ मिल रहा होगा । पतित एवं उत्कृष्ट निन्दित एवं सम्मानास्पद-दरिद्र एवं समुन्नत-दु:खी एवं प्रसन्न रखने वाली परिस्थितियों का कारण यही आन्तरिक सूत्र संचालन ही होता है । जिसे दूसरे शब्दों में ''संस्कार समुच्चय'' भी कह सकते हैं ।

असल में यह संस्कार ही व्यक्तित्व का मूलभूत आधार होते हैं । उन्हीं को प्रारब्ध विधि का विधान, ईश्वर-इच्छा, कर्मफल आदि की गहन पृष्ठभूमि कह सकते हैं । हमारे ऊपर कोई बाहरी शक्ति थोपती नहीं है । इस सम्बन्ध में ईश्वर ही निस्पृह है । उसे दृष्टा अथवा साक्षी इसीलिए कहा गया है कि वह किसी की प्रगति, अवनति में सहायक अथवा बाधक नहीं होता । एक व्यवस्था उनकी बना दी । स्वसंचालित चेतना यन्त्र फिट कर दिया अब उसका उत्तरदायित्व समाप्त हो गया । प्राणी अपने स्वतन्त्र कर्तृत्व के आधार पर उठते-गिरते हैं और सुख-दु:ख सहन करते हैं । कुछ भी कर गुजरने की छूट मनुष्य को पूरी तरह दी गई है, पर साथ ही प्रतिफल एवं प्रतिक्रिया भुगतने के लिए उसे बाध्य, विवश कर दिया गया है । ईश्वरीय न्याय, कर्मफल, स्वर्ग नरक, पुनर्जन्म, विधि-विधान, प्रारब्ध योग आदि अदृश्य जगत के प्रतिपादनों का यदि रहस्योद्घाटन करना हो तो उसका समाधान इस संस्कार संचय के केन्द्र बिन्दु में ही सन्निहित दृष्टिगोचर होगा ।

भविष्य को उज्ज्वल एवं अन्धकार मय बनाने वाले अन सुसंस्कारों एवं कुसंस्कारों का संचय पूर्णतया अपने हाथ की बात है । इनका संचय अपनी आज की आस्थाओं, आकांक्षाओं एवं क्रिया पद्धति में सुधार करके सहज ही किया जा सकता है । यह भली प्रकार समझ लिया जाना चाहिए कि धोखा बाहर वालों को दिया जा सकता है अपने आपको नहीं । दुहरी चाल अन्य लोगों से चली जा सकती है अपने आपे को भुलाया नहीं जा सकता । मूल अन्त:चेतना का स्तर जैसा होगा ठीक उसी के अनुरूप संस्कारों का फोटोग्राफ खिंचेगा । दुष्प्रवृत्तियों में निरत रहकर अन्तत: चेतना में सुसंस्कारों के पर्त जमाये जा सकें यह किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता, वहाँ सत्य का ही निर्वाह होता है । चालाकी और किसी के भी साथ की जा सकती है अपने आपको ठग सकना और उसे उल्टी पट्टी पढ़ा सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है । सत्य रूपी नारायण का अन्त:करण अविच्छिन्न आधिपत्य है । वहाँ यथार्थता के अतिरिक्त और किसी भी नीति का प्रवेश नहीं हो सकता । सुखदायी संस्कारों को संचय करना हो तो अपने आस्था केन्द्र को उच्चस्तरीय आदर्शों से ओत-प्रोत करना होगा । उसी स्तर की आस्थाएँ, भावनाएँ, नये सिरे से जमानी पड़ेंगी । इसके लिए पुराने संस्कारों को उखाड़ना पड़ेगा । उन्हें हटाकर रिक्त हुए स्थान पर ही तो सुसंस्कारों का बीजारोपण किया जा सकेगा ।

प्राय: यह देखा भी जाता है कि सामने प्रस्तुत कठिनाइयों, दु:खों का कारण दूसरों के मत्थे मढ़कर अधिकांश व्यक्ति छुट्टी पा लेते हैं पर वे गम्भीरता से विचार भी नहीं करते कि उनका मूल कारण अपने ही अन्तस में विद्यमान है । उपलब्ध

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जो भली-बुरी परिस्थितियाँ हैं उनका वास्तविक निर्माता मनुष्य स्वयं है । संस्कारों की प्रतिक्रियाएँ इस जीवन तक ही सीमित नहीं रहतीं बल्कि जन्म-जन्मान्तरों तक चलती हैं । इस तथ्य को समझ लिया जाय तो कभी भी असमंजस की स्थिति नहीं आ सकती ।

शरीर की सामयिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली सम्पदा का उपार्जन उचित तो है पर सुसंस्कारों की विभूतियों की उपेक्षा करना भी अदूरदर्शिता पूर्ण है । वर्तमान काया तो कुछ ही समय ठहरने वाली है, अन्ततः जीवन तो जीवात्मा को ही जीना पड़ेगा । उसमें केवल सुसंस्कारों की पूँजी ही काम देगी । धन वैभव के खोटे सिक्के उस यात्रा में किसी भी प्रकार सहायक सिद्ध न हो सकेंगे ।

सुसंस्कार किसी पूजा पाठ या कर्मकाण्ड से नहीं जम सकते । कथा-कीर्तन से लेकर तीर्थ यात्रा तक के क्रिया-कृत्यों से भी वह प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । योगाभ्यास और तप साधना की शारीरिक, मानसिक कसरतें भी उस आवश्यकता की पूर्ति नहीं करतीं । इन समस्त आचरणों का मूल उद्देश्य एक ही है उच्चस्तरीय आस्थाओं, आकाँक्षाओं, आदर्शों की अन्तःकरण में इतनी सघन स्थापना जिसकी प्रेरणा से अपनी गतिविधियाँ केवल श्रेष्ठ सत्कर्मों की दिशा में ही गतिशील रह सकें । इस प्रयोजन को जीवन साधना से ही पूरा किया जा सकता है । निरन्तर सत् चिन्तन और श्रेष्ठ कर्मों के साथ अपने को बाँधे रहकर ही हम सुसंस्कारों की सम्पत्ति उपार्जित कर सकते हैं और उस आधार पर अपने उज्ज्वल भविष्य का सुखद निर्माण कर सकने में सफल हो सकते हैं ।

## आत्मनिर्माण–जीवन का प्रथम सोपान

निर्माण आन्दोलन का प्रथम चरण आत्म-निर्माण है । उसे दिशा में कदम बढ़ाने के लिए किसी भी स्थिति के व्यक्ति को कुछ भी कठिनाई अनुभव नहीं होनी चाहिए । पर्दे में जकड़ी स्त्रियाँ, जेल में बन्द कैदी, चारपाई पर पड़े रोगी और अपंग असमर्थ व्यक्ति भी आज जिस स्थिति में हैं उससे ऊँचे उठने, आगे बढ़ने में उन्हें कुछ भी कठिनाई अनुभव नहीं होनी चाहिए । मनोविकारों को ढूँढ निकालने और उनके विरुद्ध मोर्चा खड़ा कर देने में सांसारिक कोई विघ्न-बाधा अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकती । दैनिक जीवन में निरन्तर काम आने वाली आदतों को परिष्कृत बनाने का प्रयास भी ऐसा है जिनके न बन पड़ने का कोई कारण नहीं । आलस्य में समय न गँवाना–हर काम नियत समय पर–नियमित रूप से–उत्साह और मनोयोग पूर्वक करने की आदत डाली जाय तो प्रतीत होगा अपना क्रिया-कलाप कितना उत्तम, कितना व्यवस्थित, कितना अधिक सम्पन्न हो रहा है । प्रातःकाल अपनी दिनचर्या का निर्धारण कर लेना और पूरी मुस्तैदी से उसे पूरा करना–आलस्य प्रमाद को आड़े हाथों लेना–व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है । जल्दी सोने, जल्दी उठने की एक छोटी -सी ही आदत को लें तो प्रतीत होगा कि प्रातःकाल का कितना बहुमूल्य समय मुफ्त ही हाथ लग जाता है और उसका जिस भी कार्य में उपयोग किया जाय उसमें सफलता का कैसा स्वर्ण अवसर मिलता है । क्या व्यायाम, क्या अध्ययन, क्या भजन, कुछ भी कार्य प्रातःकाल किया जाय चौगुना प्रतिफल उत्पन्न करेगा । जो लोग देर में सोते और देर में उठते हैं वे यह नहीं जानते कि प्रातःकाल का ब्राह्म मुहूर्त इतना बहुमूल्य है जिसे हीरे-मोतियों से भी नहीं तोला जा सकता, नियमित दिनचर्या का निर्धारण और उस पर हर दिन पूरी मुस्तैदी के साथ आचरण, देखने में यह बहुत छोटी बात मालूम पड़ती है पर यदि उसका परिणाम देखा जाय तो प्रतीत होगा कि हमने एक चौथाई जिन्दगी को बर्बादी से बचाकर कहने लायक उपलब्धियों में नियोजित कर लिया । अस्तव्यस्त और अनियमित व्यक्ति यों साधारण ढील-पोल के दोषी ठहराए जाते हैं पर बारीकी से देखने पर स्पष्ट हो जाता है–कि वे लगभग आधी जिन्दगी जितना बहुमूल्य समय नष्ट कर देते हैं जिसका यदि क्रमबद्ध उपयोग हो सका होता तो प्रगति की कितनी ही कहने लायक उपलब्धियाँ सामने आतीं । यदि एक घण्टा रोज

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कोई व्यक्ति उपयोगी अध्ययन में लगाता रहे तो कुछ ही समय में वह ऐसा ज्ञानवान बन सकता है जिसकी विद्या बुद्धि पर स्पर्द्धा की जा सके ।

स्वच्छता और व्यवस्था ऐसा गुण है जिसमें किसी की कुरुचि का सहज ही परिचय प्राप्त किया जा सकता है । गन्दगी से घृणा और स्वच्छता से प्रेम रखा जाय तो वह उत्साह सहज ही बना रहेगा जिसके आधार पर शरीर, वस्त्र, फर्नीचर, पुस्तकें, स्टेशनरी, बर्तन, फर्श, चित्र, साइकिल आदि सम्बन्धित सामान को स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित रखा जा सके । सफाई की यह आदत हिसाब-किताब पर, लेन-देन पर भी लागू होती है । घर, दफ्तर को-बच्चों को-वस्तुओं को साफ-सुथरा रखकर न केवल आगुन्तकों को अपनी सुरुचि का परिचय देते हैं वरन् अपने स्वभाव में अनोखी विशेषता उत्पन्न करते हैं ।

जिसे ईमानदारी का जीवन जीना हो उसे पूर्व तैयारी मितव्ययी रहने की-सादा जीवन जीने की करनी चाहिए जो कम में गुजारा करना जानता है उसी के लिए यह सम्भव है कि कम आमदनी से सन्तोष पूर्वक निर्वाह कर ले । ईमानदारी से आय सीमित रहती है-उतनी नहीं हो सकती जितनी बेईमानी अपनाने से । ऐसी दशा में यदि श्रेष्ठ जीवन जीना हो तो अपने खर्च जहाँ तक सम्भव हो घटाने चाहिए । जिसने खर्च बढ़ा रखे हैं उन्हें उनकी पूर्ति के लिए बेईमानी का रास्ता ही अपनाना पड़ेगा । फिजूल-खर्ची यों निर्दोष भी मालूम पड़ सकती है । अपना कमाना और उड़ाना इसमें किसी को क्या ऐतराज होना चाहिए । परन्तु बात इतनी सरल नहीं है । प्रकारान्तर से फिजूल खर्ची बेईमानी अपनाने के लिए बाध्य करती है । अनियन्त्रित खर्च करने की आदत बढ़ती ही जाती है और वह देखते-देखते उस सीमा को छूती है जहाँ न्यायोचित आमदनी कम पड़े और घटोत्तरी की पूर्ति के लिए बेईमानी पर उतारू होना पड़े । जिसने आमदनी और खर्चे का तालमेल बिठाना सीखा है वही कुछ सत्कर्मों के लिए भी बचा सकता है । अन्यथा सदुद्देश्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य भी आर्थिक तंगी के कारण रुके पड़े रहेंगे । सादगी की जीवनचर्या सस्ती पड़ती है, कम समय लेती है । अस्तु मितव्ययी व्यक्ति के लिए ही यह सम्भव होगा कि वह आदर्शवादी जीवन जी सके और परमार्थ की दिशा में कुछ कहने लायक योगदान दे सके ।

दूसरों का आदर करना-सद्व्यवहार का अभ्यस्त होना-सज्जनोचित शिष्टाचार बरतना-मधुर वचन बोलना यह व्यक्तित्व की गरिमा बढ़ाने वाली साधना है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसे दूसरों के साथ मिल-जुलकर रहना पड़ता है । स्नेह सौहार्द्र का वातावरण तभी बना रह सकता है जब दूसरों के साथ शालीनता का व्यवहार किया जाय । अहंकारी व्यक्ति दूसरों को तुच्छ समझते हैं और कटुवचन एवं दुर्व्यवहार पर उतारू रहते हैं । उद्धत आतंकवादी, उच्छृङ्खल आचरण करके कोई अपने अहंकार की पूर्ति होने की बात सोच सकता है पर वस्तुतः वह हर किसी की दृष्टि में अपना सम्मान खोता है, स्तर गिराता है और घृणास्पद बनता है । उद्धत आचरण से सम्भव है सामने वाला चुप हो रहे परन्तु उसका स्नेह-सहयोग तो चला ही जाता है । इस प्रकार क्रोधी, अशिष्ट, उच्छृङ्खल व्यक्ति अपना नाम बढ़ाने की बात सोचता है पर वस्तुतः उसे निरन्तर खोता चला जाता है । कुसमय में अपने को एकाकी अनुभव करता है । स्नेह-सहयोग से वंचित होकर वह भूत-बेताल की अशान्त अतृप्त मनःस्थिति में जा फँसता है ।

ईर्ष्या, द्वेष, झूठ, छल, प्रपंच, दुरुभिसन्धि, षड्यन्त्र, शोषण, अपहरण, आक्रमणों की आसुरी मनोवृत्ति अपना कर मनुष्य अपराधी आचरण ही करता है उसकी गतिविधियाँ ऐसी हो जाती हैं जिससे मनुष्य सबकी आँखों में गिरता है यहाँ तक कि अपनी आँखों में भी । धन या पद पाने की अपेक्षा लोकश्रद्धा प्राप्त करना अधिक मूल्यवान है । दुष्ट-दुराचारी बनकर कोई यदि साधन सम्पन्न बन जाय तो यही कहा जाना चाहिए कि उसने खोया बहुत पाया कम । व्यसनी, व्यभिचारी, आलसी और प्रमादी-आतंकवादी, अत्याचारी-उस सुखद उपलब्धि से वंचित ही रहते हैं जिसे पाने के लिए यह कुमार्ग अपनाया । दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों का आश्रय लेकर मनुष्य दूसरों की जितनी हानि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


करता है उसकी तुलना में अपनी असंख्य गुनी हानि कर लेता है ।

समय को नियमितता के बन्धनों में बाँधा जाना चाहिए । चौबीसों घण्टे की निर्धारित दिनचर्या बनानी चाहिए और उस पर तत्परतापूर्वक चलते जाना चाहिए । समय ही सबसे बड़ी सम्पदा है, उसका एक क्षण भी बर्बाद नहीं होना चाहिए । शरीर की क्षमता के अनुरूप श्रम किया जाय-काम का स्तर और सिलसिला बदलते ही रहा जाय तो थकान नहीं चढ़ेगी । हर काम में दिलचस्पी पैदा की जाय-उसे खेल समझते हुए पूरे मनोयोग के साथ करना चाहिए । यह आदत पड़ जाय तो दुर्बल शरीर वाला व्यक्ति भी बिना थके बहुत काम करता रह सकता है । आहार-विहार विवेकपूर्ण और क्रमबद्ध होना चाहिए । समयानुसार काम बदलने से विश्राम और विनोद का उद्देश्य पूरा हो सकता है । सामने प्रस्तुत कामों को दिलचस्पी और मनोयोग के साथ करने का अभ्यास करना मनोनिग्रह का सर्वोत्तम योगाभ्यास है । उस साधना में निष्णात व्यक्ति हाथों-हाथ क्रिया-कुशलता के अभिवर्धन और सफलताओं के वरण का उत्साहवर्द्धक लाभ प्राप्त करता है ।

मन को मस्तिष्क को अस्तव्यस्त उड़ानें उड़ने की छूट नहीं देनी चाहिए । शरीर की तरह उसे भी क्रमबद्ध और उपयोगी चिन्तन के लिए सधाया जाना चाहिए । कुसंस्कारी मन बनैले सुअर की तरह कहीं भी किधर भी दौड़ लगाता रहता है शरीर भले ही विश्राम करे पर मन तो कुछ सोचेगा ही । यह सोचना भी शारीरिक श्रम की तरह ही उत्पादक होता है । समय की बर्बादी की तरह ही अनुपयोगी और निरर्थक चिन्तन भी हमारी बहुमूल्य शक्ति को नष्ट करता है । दुष्ट चिन्तन तो आग से खेलने की तरह है । आज परिस्थितियों में जो सम्भव नहीं वैसी आकाश-पाताल जैसी कल्पनाएँ करते रहने-योजनाएँ बनाते रहने से मनुष्य अव्यावहारिक बनता जाता है । व्यभिचार, आक्रमण, षड्यन्त्र जैसी कल्पनाएँ करते रहने से मन निरन्तर कलुषित होता चला जाता है और उपयोगी योजनाएँ बनाने के लिए गहराई तक प्रवेश कर सकना उसके लिए सम्भव नहीं रहता । उद्धत आचरण शरीर को नष्ट करते हैं और उद्धत विचार मन मस्तिष्क का सत्यानाश करके रख देते हैं, मनोनिग्रह का योगाभ्यास में बहुत माहात्म्य गाया गया है । इस चित्त निरोध का व्यावहारिक स्वरूप यही है कि जिस दिशा को हम उपयोगी मानते हैं और जिस सन्दर्भ में सोचना आवश्यक समझते हैं उसी निर्देश पर हमारी विचारणा गतिशील रहे । वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों और योगाभ्यासियों में यही विशेषता होती है कि वे अपने मस्तिष्क को निर्धारित प्रयोजन पर ही लगाये रहते हैं । अस्त-व्यस्त उड़ानों में उसे तनिक भी नहीं भटकने देते । यह आदत हमें डालनी चाहिए कि चिन्तन का क्षेत्र निर्धारित करके-उस पर मन को केन्द्रित करने की आदत डाली जा सके तो मस्तिष्कीय प्रखरता का-मनोबल सम्पादन का द्वार खुल जायगा और मन्दबुद्धि जैसी मस्तिष्कीय बनावट रहते हुए भी अपने चिन्तन क्षेत्र में निष्णात बन जायेंगे । समय की दिनचर्या में बाँधकर शरीर का श्रेष्ठतम उपयोग किया जा सकता है । मन का महत्त्व शरीर से कम नहीं अधिक है । उसका भटकाव रोककर उसे उपयोगी-निर्दिष्ट चिन्तन में यदि सधाया जाना सम्भव हो सके तो मस्तिष्क की विचार-शक्ति से बहुमूल्य लाभ उठाया जा सकता है । समुन्नत जीवन विकास में यह शरीर और मन पर बन्धन लगाने की साधना सही रूप से तप तितीक्षा का-व्रत-संयम का उच्चस्तरीय लाभ दे सकती है ।

ऊपर की पंक्तियों में कुछ मोटे सुझाव संकेत भर हैं । विचार करने पर अनेकों प्रसंग ऐसे सामने आते हैं जिनमें विधि निषेध की आवश्यकता पड़ती है । क्या छोड़ना क्या अपनाना इसका महत्त्वपूर्ण निर्णय करना पड़ता है । यह हर दिन प्रस्तुत परिस्थितियों और आवश्यकताओं को देखते हुए किया जाना चाहिए । यह मान्यता हृदयंगम की जानी चाहिए कि आत्म-निर्माण का महान लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अवांछनीयताओं का क्रमशः परित्याग करना ही पड़ेगा और उपयोगी गुण कर्म स्वभाव को व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट करने का साहसपूर्ण प्रयास करना ही होगा । विधि और

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


निषेध के दो कदम क्रमबद्ध रूप से निरन्तर उठाते चलने की व्रतशीलता ही हमें आत्मिक प्रगति के उच्च लक्ष्य तक पहुँचा सकने में समर्थ हो सकती है ।

आत्म-निर्माण के मूलभूत चार दार्शनिक सिद्धान्तों पर हर दिन बहुत गम्भीरता के साथ बहुत देर तक मनन-चिन्तन करना चाहिए । जब भी समय मिले चार तथ्यों को चार वेदों का सार तत्व मानकर समझना और हृदयंगम करना चाहिए । यह तथ्य जितनी गहराई तक अन्तःकरण में प्रवेश कर सकेंगे, प्रतिष्ठित हो सकेंगे, उसी अनुपात से आत्म-निर्माण के लिए आवश्यक वातावरण बनता चला जायगा ।

आत्म-दर्शन का प्रथम तथ्य है आत्मा को परमात्मा का परम पवित्र अंश मानना और शरीर एवं मन को उससे सर्वथा भिन्न मात्र वाहन अथवा औजार भर समझना । शरीर और आत्मा के स्वार्थों का स्पष्ट वर्गीकरण करना । काया के लिए उससे सम्बन्धित पदार्थों एवं शक्तियों के लिए हम किस सीमा तक क्या करते हैं इसकी लक्ष्मण रेखा निर्धारित करना और आत्मा के स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपनी क्षमताओं का एक बड़ा अंश बचाना-उसे आत्म-कल्याण के प्रयोजनों में लगाना ।

दूसरा आध्यात्मिक तथ्य है-मानव जीवन को ईश्वर का सर्वोपरि आहार मानना । इसे लोकमंगल के लिए दी हुई परम पवित्र अमानत स्वीकार करना । स्पष्ट है कि प्राणिमात्र को ईश्वर की सन्तान मानना । निष्पक्ष न्यायकारी पिता समान रूप से ही अपने सब बालकों को अनुदान देता है । मनुष्य को इतने सुविधा-साधन वह विलासिता और अहन्ता की पूर्ति के लिए देकर पक्षपाती और अन्यायी नहीं बन सकता । जो मिला वह खजांची के पास रहने वाली बैंक अमानत की तरह है । संसार को सुखी समुन्नत बनाने के लिए ही मनुष्य को विभिन्न सुविधाएँ मिली हैं । उनमें से निर्वाह के लिए न्यूनतम भाग अपने लिए रखकर शेष को लोकमंगल के लिए ईश्वर के इस सुरम्य उद्यान को अधिक सुरम्य सुविकसित बनाने के लिए खर्च किया जाना चाहिए ।

तीसरा महासत्य है-अपूर्णता को पूर्णता तक पहुँचाने का जीवन लक्ष्य प्राप्त करना । दोष-दुर्गुणों का निराकरण करते चलने और गुण कर्म स्वभाव की उत्कृष्टता बढ़ाते चलने से ही ईश्वर और जीव के बीच की खाई पट सकती है । इन्हीं दो कदमों को साहस और श्रद्धा के साथ अनवरत रूप से उठाते रहने पर जीवन लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो सकता है । उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व की नीति अपना कर ही आत्मा को परमात्मा बनने और नर को नारायण स्तर तक पहुँचने का अवसर मिल सकता है । स्वर्ग, मुक्ति, आत्मदर्शन, ईश्वरप्राप्ति आदि इसी अपूर्णता के निराकरण का काम है ।

चौथा महासत्य है-इस विश्व ब्रह्माण्ड को ईश्वर की साकार प्रतिमा मानना । श्रम सीकरों और श्रद्धा सद्भावना के अमृत जल से उसका अभिषेक करने की तप साधना करना । दूसरों के दुःख बंटाने और अपने सुख बाँटने की सहृदयता विकसित करना । आत्मीयता का अधिकाधिक विस्तार करना । अपनेपन को शरीर परिवार तक सीमित न रहने देकर उसे विश्व सम्पदा मानना और अपने कर्त्तव्यों को छोटे दायरे में थोड़े लोगों तक सीमित न रख कर अधिकाधिक व्यापक बनाना ।

यह चार सत्य-चार तथ्य ही समस्त अध्यात्म विज्ञान के-साधना विधान के केन्द्रबिन्दु हैं । चार वेदों का सार तत्व यही है । इन्हीं महासत्यों को हृदयंगम करने और उन्हें व्यवहार में उतारने से परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है । जीवनोद्देश्य पूर्ण होता है । इन महासत्यों को जितनी श्रद्धा और जागरूकता के साथ अपनाया जायगा आत्म-निर्माण उतना ही सरल और सफल होता चला जायगा । युग निर्माण की दिशा में बढ़ते हुए हमें सर्वप्रथम आत्म-निर्माण पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए ।

## आत्मिक प्रगति की दिशाधारा

शरीर से कोई महत्त्वपूर्ण काम लेना हो तो उसके लिए उसे प्रयत्न पूर्वक साधना पड़ता है । कृषि, व्यवसाय, शिल्प, कला आदि के जो भी कार्य शरीर से कराने हैं उनके लिए उसे अभ्यस्त एवं

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


क्रिया-कुशल बनाने के लिए आवश्यक ट्रेनिंग देनी पड़ती है । लुहार, सुनार, दर्जी, बुनकर, मूर्तिकार आदि काम करने वाले अपने शिल्पों को बहुत समय तक सीखते हैं, तब उनके हाथ उपयुक्त प्रयोजन के लिए ठीक प्रकार सधते हैं । गायक, चित्रकार, अभिनेता, पहलवान आदि को अपने-अपने कार्यों को ठीक तरह कर सकने की देर तक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है । अस्तु शरीर को अभीष्ट कार्यों के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता सर्वत्र समझी जाती है और उसके लिए साधन भी जुटाये जाते हैं ।

शिक्षा का दूसरा क्षेत्र है मस्तिष्क । मस्तिष्क का ही शरीर पर नियन्त्रण है । जीवन की समस्त दिशा धाराओं को प्रवाह देना मस्तिष्क का ही काम है । **''बुद्धिर्यस्य बलं निबुर्द्धिस्य कुतोबलम्''** सूक्ति में सच ही कहा गया है जिसमें बुद्धि है, उसी में बल है । बुद्धिहीन तो सदा दुर्बल ही रहता है । प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? हाथी को गधे जैसा लदते और सिंह तथा बन्दर को समान रूप से नाचते देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दुर्बल काय मनुष्य अपने बुद्धिबल से किस प्रकार सृष्टि के समस्त प्राणियों पर शासन कर रहे हैं । इस प्रशासन के अन्तर्गत वे जीव भी आते हैं जो शारीरिक प्रतियोगिता में मनुष्य को हजार बार पछाड़ सकते हैं ।

मस्तिष्कीय शिक्षण के लिए ज्ञान और अनुभव सम्पादित करना पड़ता है । जानकारी और अभ्यास की इसके लिए आवश्यकता होती है । इसका बहुत कुछ प्रयोजन स्कूली शिक्षा, साहित्य, सत्संग, मनन, चिन्तन आदि के सहारे पूरा होता है । मस्तिष्कीय क्षमता विकास की उपयोगिता भी सर्वविदित है । इसलिए अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार स्कूली अथवा दूसरी प्रकार की शिक्षापद्धति अपनाई जाती है और जानकारी, समझदारी बढ़ाने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किया जाता है । शिक्षा का दूसरा चरण जानकारी की कमी को पूरा करना है । इससे विचार शक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है और व्यवहार कुशलता आती है । बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा परक जो भी उपाय किए जाते हैं, वे सभी सराहनीय हैं । शारीरिक कुशलता की ही तरह मस्तिष्कीय विकास भी आवश्यक है । अस्तु शिक्षा के इन दोनों क्षेत्रों में अधिकाधिक समावेश करने के प्रयत्नों की प्रशंसा ही की जायगी ।

शिक्षा का प्रवेश प्राय: शरीर एवं मस्तिष्क तक ही सीमित रहता है, अन्त:करण का स्तर बदलने में तथाकथित ज्ञान सम्पादन की कोई विशेष उपयोगिता सिद्ध नहीं होती । यदि मस्तिष्कीय शिक्षण से आस्थाएँ बदली जा सकतीं तो हर राजनेता सच्चे अर्थों में देशभक्त होता—हर सरकारी कर्मचारी लोक-सेवा में उसी निष्ठापूर्वक संलग्न रहता जैसा कि उसे ट्रेनिंग की पाठ्य पुस्तकों में पढ़ाया गया था । तब धर्मोपदेशक नीति और सदाचार का ही आदर्श प्रस्तुत करते दिखाई पड़ते ।

तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्यक्तित्व को सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत और समुन्नत बनाने के लिए क्या किया जाय ? इसके उत्तर में एक ही तथ्य सामने आता है कि आस्थाओं के सहारे आस्थाओं को उभारा जाय । जंगली हाथी पकड़ने में प्रशिक्षित हाथियों का उपयोग होता है । काँटे से काँटा निकालने और विष से विष मारने की कहावत प्रसिद्ध है । लोहे को लोहे से काटा जाता है । डूबे को पानी में से निकालने के लिए स्वयं डुबकी लगानी पड़ती है । अन्त:करण के आस्था क्षेत्र को कुसंस्कारों से मुक्त करने के लिए सदुद्देश्यपूर्ण आस्थाओं की नये सिरे से प्रतिष्ठापना करनी पड़ती है ।

जीवन के मध्य केन्द्र-नाभिक को अन्त:करण कहते हैं । उसी की स्थिति व्यक्ति को महान बनाती है और उसी के आधार पर निकृष्टता के गर्त में गिरना पड़ता है । समुन्नत और पतित व्यक्तियों में एक जैसे साधन रहते हुए भी अन्तर क्यों आया ? इसका कारण ढूँढ़ना हो तो उनकी आस्थाओं में अन्तर रहना ही प्रधान निमित्त परिलक्षित होगा । धन-वैभव की दृष्टि से व्यवहार, कुशलता, अवसर, साधन, सहयोग, आदि का महत्त्व हो सकता है, पर व्यक्तित्व के उत्थान पतन की बात तो पूरी तरह व्यक्ति के अन्त:करण की स्थिति पर ही टिकी हुई है । गीताकार ने व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ठीक ही कहा है-"**श्रद्धामयोऽयं पुरुष योगच्छ्रधः स एव स**" अर्थात् वह मनुष्य श्रद्धामय है, जिसकी जैसी श्रद्धा है वस्तुतः वह ठीक वही है । तात्पर्य स्पष्ट है । मनुष्य का स्वास्थ्य, ज्ञान, धन, पद उसका मूलस्वरूप नहीं है, वह तो आवरण शृंगार मात्र है जिनकी कभी भी उलट-पुलट हो सकती है । स्थायित्व तो अन्तःकरण में भावास्थित आस्थाओं-विश्वासों, आकाँक्षाओं पर निर्भर है । वे जिस स्तर की होंगी, मनुष्य उन्हीं के अनुरूप ढलेगा और अन्ततः उन्हीं के अनुरूप उठने, गिरने का आधार बनेगा ।

यहाँ समझने योग्य तथ्य इतना ही है कि आवरणों को सब कुछ न मानकर व्यक्ति की मूलसत्ता प्राण चेतना को ऊँचा उठाने की बात सामने हो तो फिर अन्तःकरण को परिष्कृत करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं । अब प्रश्न यह उठता है कि यह किया किस प्रकार जाय ? इसके दो ही उपाय हैं-(१) आत्म-विश्लेषण के द्वारा स्व-सत्ता की स्थिति तथा दशा का सही बोध कराने वाली आस्थाओं की गहन अन्तराल में प्राण-प्रतिष्ठा की जाय । (२) साधनाओं के क्रिया-कलाप द्वारा संचित कुसंस्कारों को उखाड़ कर उत्कृष्ट आस्थाओं को जमा सकने में समर्थ प्राणशक्ति को प्रखर बनाया जाय ।

प्रथम उपाय के लिए ब्रह्मविद्या का-तत्वदर्शन का-अवगाहन करना होता है । अध्यात्म विज्ञान का ज्ञान-भाग इसी के लिए विनिर्मित हुआ है । आत्मबोध के लिए उच्चस्तरीय स्वाध्याय-सत्संग, मनन-चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है । आत्म-चिन्तन और आत्म-मंथन पर विचार-शक्ति को केन्द्रित करना होता है । भगवान बुद्ध आदि आत्मज्ञानियों को अपनी साधना का केन्द्र बिन्दु इसी को मानकर चलना पड़ा था । अध्यात्म की भाषा में इसे योग कहते हैं । योग का अर्थ है जोड़ना । यह चिन्तन परक प्रक्रिया है । आत्मा को परमात्मा से-जीव को ब्रह्म से-सामान्य को असामान्य से सम्बद्ध करने के लिए चिन्तन का उपयोग भी करना पड़ता है और भावनाओं का भी । ब्रह्मविद्या का विशालकाय-कलेवर इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है । योग क्रियापरक नहीं विचारपरक है । उसकी परिधि में आत्मा और परमात्मा के बीच जुड़े हुए असंख्य सूत्रों का विविध आधारों पर गहन चिन्तन करना पड़ता है । दर्शन शास्त्र की रचना इसीलिए हुई है । इस परिधि में भावनाओं को उच्चस्तरीय प्रगति की दिशा में उभारना भी आता है । इसे भक्ति कहते हैं । प्रेम का निकृष्ट स्वरूप तो मोह और वासना के स्वरूप जैसा घटिया और घिनौना हो जाता है, पर उसकी ऊँची स्थिति आत्मीयता की संवेदनाओं को अधिकाधिक व्यापक बनाने के रूप में होती है । 'रसो वै स' सूत्र में सत्य ही कहा गया है कि-'प्रेम ही परमेश्वर है ।' इससे बढ़कर सरसता अन्यत्र कहीं है ही नहीं । जिस पदार्थ या प्राणी पर आत्मीयता बखेर दी जाती है उसी में सुन्दरता एवं सरसता की अनुभूति होने लगती है । त्याग, बलिदान, सेवा, उदारता जैसी सत्प्रवृत्तियों का तभी उभार आता है जब उच्चस्तरीय 'प्रेम' का अन्तराल में उदय होने लगे । प्रेम तत्व की सम्वेदनाएँ जाग्रत करने के लिए 'ईश्वर भक्ति' के रूप में भावनाएँ उभारनी पड़ती हैं । इसके लिए पूजा, अर्चना, कीर्तन, ध्यान, लीलाओं का श्रवण, दर्शन आदि उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है । अर्जुन को विराट् ब्रह्म के रूप में ईश्वर की झाँकी जिस दिव्य दृष्टि से हुई थी उसी को अपनाने से 'सियाराम मय सब जग जानी' की श्रद्धा उभरती है और स्वार्थ संकीर्णता से ऊँचे उठकर लोकमंगल की दिशा में चल पड़ने की उमंग क्रियान्वित होती है ।

तप आत्मोत्कर्ष का दूसरा चरण है । चेतना के साथ जो तीन कलेवर लिपटे हैं, वे सामान्यतया जीवन निर्वाह के आवश्यक क्रिया-कलाप पूरे करने भर के लिए मालूम पड़ते हैं, पर वस्तुतः उनके अन्तराल में शक्तियों और सिद्धियों के अजस्र भाण्डागार छिपे पड़े हैं । इस रत्न राशि को खोज निकालने और उखाड़-उभारकर ऊपर ले आने की वैज्ञानिक पद्धति का नाम तप है । स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की मोटी गतिविधियाँ सर्वविदित हैं । स्थूल शरीर रक्त माँस का बना-क्रिया-कलाप के उपयुक्त और जीवन धारण

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की आवश्यक कार्यपद्धति पूरी करने के लिए बना है । सूक्ष्म शरीर से मन और बुद्धि के विविध कार्य सम्पन्न होते हैं । कारण शरीर भावनाओं का केन्द्र है–इच्छाएँ, प्रेरणाएँ, उमंगें, संवेदनाएँ इसी में भरी रहती हैं । सन्तोष-असन्तोष, आनन्द-अवसाद का अनुभव इसी में होता है । इन तीनों शरीरों की मिली-गतिविधियों को जीवन का स्वरूप कहते हैं । वह सामान्य बात हुई । असामान्य को खोजा जाय तो प्रतीत होगा कि शरीर की ओजस्विता–मस्तिष्क की मनस्विता और अन्तःकरण की तेजस्विता की सामर्थ्यें कितनी महान हैं । यह चेतनात्मक ऊर्जाएँ जिसमें जितनी मात्रा में बढ़ी-चढ़ी होती हैं वह उतना ही प्रभावी, पराक्रमी, समुन्नत एवं अभिवन्दनीय बनता चला जाता है ।

यह वैयक्तिक चुम्बक हर व्यक्ति के भीतर न्यूनाधिक मात्रा में मौजूद है । वह आत्मा का गुण है । आत्मा की अविच्छिन्न ऊर्जा तीनों शरीरों में तेजस्, मनस् एवं ओजस् के रूप में झाँकती और काम करती देखी जा सकती है । जन्मजात रूप से हर व्यक्ति इस क्षमता को अपने साथ लेकर आता है पर वह प्रसुप्त स्थिति में रहता है । जिनके पास पूर्व संग्रह है उनमें आरम्भ से ही इनकी अधिकता रहती है । जिनके पास ऐसा संचय नहीं है वे प्रयत्नपूर्वक उसे उभार सकते हैं ।

तप का स्वरूप है तपाना, गरम करना । आग पर गरम करने से सामान्य वस्तुओं की भी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है फिर व्यक्तित्व की प्रखरता उससे क्यों न बढ़ेगी ? कच्चे अन्न को चूल्हे पर पकाकर मिष्ठान्न पकवान बनाते हैं । ईंटों को भट्टे में लगाने से वे टिकाऊ बन जाती हैं । धातुओं को शुद्ध और सुदृढ़ बनाने के लिए उन्हें भट्टी में डाला जाता है । पानी को गरम करने पर जो भाप बनती है उसकी सामर्थ्य से रेलगाड़ियाँ दौड़ती हैं । भस्में और रसायनें अग्नि संस्कारों से बनती हैं । बारूद में ताप पहुँचते ही भयंकर विस्फोट होता है । गर्मी से अण्डे पकते हैं । कृमि-कीटकों को मारने के लिए आग जलाई जाती है । प्रकाश और शक्ति का वैभव प्रकारान्तर से ताप की ही प्रतिक्रिया है । बिजली क्या है ? ताप का ही एक रूप है । शरीर में तभी तक जीवन है जब तक उसका तापमान नियत मात्रा में बना रहे, उसके गिरने पर निष्क्रियता बढ़ती जायगी और प्राणान्त होकर रहेगा । जितनी मशीनें चलती हैं वे सभी अपने-अपने स्तर के ईंधन माँगती हैं । तेल, कोयला, भाप, गैस आदि तरह-तरह के ईंधन ही अग्नि संयोग से वह शक्ति उत्पन्न करते हैं जिससे मशीनें काम कर सकें । शरीरों को यही ईंधन आहार के माध्यम से मिलता है । गतिशील बनाये रहने के लिए गर्मी आवश्यक है । पृथ्वी से पदार्थ और प्राणी अपनी हलचलें जारी रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा सूर्य से प्राप्त करते हैं ।

मान्यता है कि देवी-देवताओं की मनुहार मन्त्र-तन्त्रों के आधार पर करने से वे प्रसन्न हो जाते हैं और साधनारत व्यक्ति को मनोवांछित वरदान प्रदान करते हैं । इस मान्यता का एक अन्धा पक्ष है दूसरा उजाला । अन्धा यह है कि देवी-देवताओं के पास और कुछ काम धन्धा न हो–पूजा-प्रार्थना के लिए उनके मुँह में लार टपकती रही हो और प्रशंसा सुनने एवं सस्ते भेंट-उपहार पाने भर से वे किसी पर लट्टू होकर ऐसे वरदान देते हों जो भारी उच्चस्तरीय पात्रता सम्पन्न व्यक्तियों को ही मिल सकते हैं । यदि यह मान्यता सही हो, तो फिर देवी-देवताओं को रिझाना ही लाटरी लगाने की तरह अत्यन्त लाभप्रद व्यवसाय है । साधना विज्ञान में छाई हुई इस मूढ़ मान्यता का कोई आधार नहीं है । न इसके पीछे कोई तर्क है और न आधार ।

उजला पहलू यह है कि मानवी अन्तराल में एक से एक अद्भुत क्षमता केन्द्र प्रसुप्त स्थिति में पड़े हैं । यही देवी-देवता हैं । इन्हें साधना पुरुषार्थ से उसी प्रकार बलिष्ठ बनाया जा सकता है जैसे व्यायाम से माँस-पेशियों को और अध्ययन से मस्तिष्कीय ज्ञानकोषों को । कारण शरीर का व्यायाम भी तप साधन है । इससे देव संस्थानों को जाग्रत होने का अवसर मिलता है । तप से अपने ही अन्तस् के प्रसुप्त को जाग्रत किया जाता है और उसके फलस्वरूप दिव्य अनुदानों-वरदानों का प्रतिफल मिलता है । यही देवाराधना का उजला पक्ष है । इस मान्यता के पीछे तर्क भी हैं और तथ्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


भी । साधना से सिद्धि मिलने वाली मान्यता इस आधार पर पूर्णतया प्रामाणिक मानी जा सकती है ।

संक्षेप में चेतना के भावपक्ष को उच्चस्तरीय उत्कृष्टता के साथ एकात्म कर देने को 'योग' कहते हैं । यह आस्थाओं एवं आकाँक्षाओं का परिष्कार है । योगी की मनोभूमि इसी प्रकार की होती है । वह शरीरगत तथा मनोगत वासनाओं, तृष्णाओं की उपेक्षा करता है उन्हें तुच्छ नगण्य मानता है । तीनों ऐषणाओं से उसे सहज विरक्ति हो जाती है । उसे कण-कण में परमेश्वर दिखाई पड़ता है । हर किसी से प्रेम करने को जी करता है । इस प्रेम दुलार और सुधार का सन्तुलित और समुचित समन्वय दूरदर्शी विवेक के आधार पर किया गया है । योगी की स्वार्थपरता मिट जाती है । विश्व नागरिक अपने को मानता है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की दृष्टि रहती है और प्राणिमात्र के साथ आत्मीयता का सूत्र जुड़ जाता है । विचारणा में उत्कृष्टता और क्रिया पद्धति में आदर्शवादिता का अधिकाधिक समन्वय होता चलता है । व्यष्टि समष्टि और प्रकृति के गतिचक्र को समझ लेने के कारण उसे किसी भी प्रिय-अप्रिय स्थिति में असन्तुलन ग्रसित नहीं होना पड़ता है । कमलपत्रवत् स्थिति बनी रहती है । खिलाड़ी की तरह-रंगमंच पर अभिनय करने वाले नट की तरह वह अपने प्रयास तो पूरे करता है, पर हार-जीत का मान-अपमान का बोझ नहीं ओढ़ता । जब खेल ही खेलना है तो हर स्थिति में विनोद ही विनोद की मन:स्थिति क्यों न रखी जाय ? योगी की प्रकृति इसी तरह की होती है ।






# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# विचार करने की कला का विकास

## चेतन सत्ता की अनन्त सामर्थ्यवान् शक्ति-विचार

विद्युत, प्रकाश, ऊष्मा यह शक्तियाँ हैं । ध्वनि और चुम्बकत्व भी शक्तियों की श्रेणी में आते हैं । पदार्थ जगत में इन शक्तियों को चमत्कार के रूप में देखा जा रहा है । बड़े-बड़े कारखाने, जहाज, अन्तरिक्ष यान, रेल, मोटरें, ट्रामें आदि सब इन शक्तियों से ही संचालित होते हैं, यह थोड़े समय में उतना कार्य कर सकते हैं, जितना १ लाख आदमी मिलकर भी एक घण्टे में नहीं कर सकते । इनकी शक्ति करोड़ों मनुष्यों की शक्ति से भी बढ़कर—घोड़ों की शक्ति (हार्स पावर) मैं मापी जाती है ।

विचार भी इन्हीं की तरह एक प्रबल शक्ति है । विचारों की शक्ति का अनुमान करने में विज्ञान समर्थ नहीं हो पा रहा । क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म है और मशीनी शक्ति की पकड़ से परे है । किसी यन्त्र द्वारा उन्हें पकड़ा और प्रयोग में नहीं लाया जा सकता । क्योंकि इनका सम्बन्ध मानवीय चेतना से है, पदार्थ से नहीं ।

प्राण-शक्ति (वाइटल फोर्स) की स्फुरणा (डिस्चार्ज) का नाम ही विचार है । हमारी प्राण-शक्ति जिससे कम या अधिक बलयुक्त गति (वेलासिटी आफ वाइटल फोर्स) से स्फुरित होती है, उसी अनुपात में विचारों की सत्ता कम या अधिक शक्तिशाली रूप में प्रकाश में आती है ।

विचार की गति (वेलामिटी) प्रकाश की गति से भी अधिक तेज होती है । सेकेण्ड के करोड़वें हिस्से से भी कम समय में हम संसार के किसी भी बिन्दु पर विचार शक्ति द्वारा होकर लौट आते हैं । महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त (थ्योरी आफ रिलेटिविटी) में बताया कि यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति से भी तेज चले तो समय पीछे रह जाता है और क्रिया आगे निकल जाती है, अर्थात् क्रिया ऋण-समय (निगेटिव टाइम) में पूरी हो जाती है । आइन्स्टीन का यह भी कहना है कि कोई भी वस्तु प्रकाश की गति से तीव्र नहीं चल सकती (प्रकाश) एक सेकेण्ड में एक लाख ८६ हजार मील की गति से चलता है । क्योंकि जैसे-जैसे वेग (वेलासिटी) बढ़ेगा, भार कम हो जायेगा । प्रकाश की गति से अधिक तेज चलने का अर्थ है कि उसका भार प्रकाश के भार से भी कम होना चाहिए । प्रकाश स्वयं शक्ति है, उसका कोई भार नहीं, इसलिए जो वस्तु प्रकाश की गति से भी तीव्र चलेगी, उसका भी भार शून्य हो जायगा । इस विश्लेषण से पता चलता है कि विचार एक सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् सत्ता है । वह चेतन शक्ति है, इसलिए उसका मूल्य और महत्त्व भौतिक शक्तियों की तुलना में करोड़ों गुना अधिक है ।

हम ऐसा अनुभव (रिलाइज) क्यों नहीं करते ? ऐसी अदम्य शक्ति हमारे मस्तिष्क में अन्तर्निहित है, फिर हम उसका लाभ क्यों नहीं उठा पाते ? यह प्रश्न हमारे सामने आ सकते हैं । वास्तविकता ही ऐसी ही है । आज संसार के कितने लोग हैं, जो सामान्य जीवन से उठे हैं या असामान्य सफलताएँ पाई हैं, इसकी खोज करें तो उनकी संख्या अंगुलियों में गिनने जितनी ही मिलेगी । अधिक से अधिक राम, कृष्ण, गौतम, गाँधी, बिनोवा, ईसा, मूसा, वाशिंगटन, अब्राहिम लिंकन, रुजवेल्ट, मार्टिन लूथर किंग, रौम्यां रोला, सुकरात, अरस्तू, लाओब्जे, कान्फ्यूशियस, स्पिनोज, आइन्स्टीन न्यूटन, गैलीलियो जैसे थोड़े से नाम ही स्मरण किये जा सकते हैं और याददाश्त पर दबाव डालें तो अधिक से अधिक ५ पेज समा सकने योग्य वह नाम ढूँढ़े जा सकते हैं, जिन्होंने मनुष्य जीवन को सामान्य से असामान्य स्थिति का सौभाग्य सिद्ध किया होगा । ९९.५ प्रतिशत से भी अधिक लोग तो कीड़े-मकोड़ों, पशु-पक्षियों जैसा निकृष्ट जीवन जीकर ही मौत के घाट उतर जाते हैं ।

एक ही दुर्भाग्य मनुष्य का है कि वह अपनी विचार-शक्ति का उपयोग नहीं करता । मस्तिष्क में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


यदाकदा विचार और भावनाएँ उठती भी हैं तो वह इतनी कमजोर और विशृंखलित कि साधारण-सी इच्छाओं की पूर्ति के अतिरिक्त वे कोई और बड़ा प्रभाव व्यक्त न कर सकें । साधारण लोगों का जीवन तुच्छ भोग वासनाओं तक ही सीमित बना रहता है । उनके विचार जड़ पदार्थों में ही सुख ढूँढ़ने की भटक में भूल जाते हैं और एक महान् उपयोगिता और लक्ष्य प्राप्ति का जीवन निरर्थक चला जाता है ।

भारतीय आचार्यों ने विचार शक्ति का गहराई तक अध्ययन करके ही ध्यान प्रणाली का आविर्भाव किया था । ध्यान से चित्त एकाग्र किया जाता है । एकाग्र चित्त से निक्षेपित विचारों में इतनी सामर्थ्य आ जाती है कि उनसे असाधारण शक्ति व्यय होकर किये जाने वाले कार्य क्षण भर में सम्पन्न किये जा सकते हैं । संतुलित विचार शक्ति से किसी भी दूरस्थ देश में रहने वाले व्यक्ति की सहायता कर सकते हैं, दुःख भी दे सकते हैं, आराम भी पहुँचा सकते हैं । विचार एक शक्ति है, उसका अच्छे कार्यों में भी प्रयोग किया जा सकता है और मानवता को कलंकित करने वाले कार्यों में भी नष्ट किया जा सकता है ।

भारतवर्ष में महामानवों की संख्या शेष विश्व के महापुरुषों की सम्मिलित संख्या से भी बहुत अधिक है, उसका एक ही कारण है कि यहाँ विचार-शक्ति का नियन्त्रित उपयोग किया गया । विश्व के इतिहास में ऐसा कोई भी देश नहीं है, जिसने विचार-बल की इतनी तत्परतापूर्वक शोध की हो और उसका उपयोग जन-कल्याण में किया हो । हमारे यहाँ इस महा महिमामय शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत उत्थान, शिक्षा, सम्पत्ति, शोध कार्य आदि में भी किया गया और लोकोत्तर जीवन के रहस्य जानने के लिए भी उसे काम में लाया गया ।

तीव्रता (इन्टेन्सिटी) के आधार पर इस शक्ति को तीन भागों में विभक्त करते हैं—(१) मन्द, (२) मध्यम, (३) गहन । जब कोई व्यक्ति कम विचार करता है या विचार टूटे-टूटे अनियमित होते हैं, तब उनका बल मन्द होता है । इस तरह के विचारों से किसी को प्रभावित भी नहीं किया जा सकता, मन्द बल से स्फुरित (डिस्चार्ज्ड) विचार को बहुत थोड़ी दूर तक ही प्रेषित किया जा सकता है ।

जन-साधारण मध्यम बल के विचारों वाले होते हैं । इससे उनका दैनिक कार्यक्रम भलीभाँति चलता रहता है । ऐसे लोग शिक्षा और सम्पत्ति अर्जित करने में यथेष्ट सफलता पाते हैं । यही विचार और इच्छाएँ यदि मस्तिष्क में काफी समय तक बनी रहती हैं तो उनसे संवेग (मूमेन्टम) इकट्ठा होता रहता है और धीरे-धीरे वे शक्तिशाली होने लगते हैं । गहनता से सोचने और उस इच्छित फल के लिए अपनी सम्पूर्ण ध्यान शक्ति समर्पित कर देने से विचार बलवान् हो उठते हैं । उनसे अधिक प्राण-शक्ति स्फुरित होती है, उसमें मस्तिष्क और हृदय (माइन्ड एण्ड हर्ट) दोनों का बल काम करने लगता है । पूर्व विकसित इच्छा शक्ति को विचारों में लीन कर देते हैं तो वह विचार तीव्र और गहन हो जाते हैं । वह बहुत शक्तिशाली और तुरन्त फल देने वाले होते हैं । कोई भी ध्वंसात्मक अथवा रचनात्मक कार्य क्षण भर में सम्पन्न करने की शक्ति ऐसे ही विचारों में होती है । किन्हीं योगी व्यक्तियों में दूरदर्शन, दूर श्रवण और दूर-संवाद प्रेषण (टेलेपैथी) के चमत्कार देखने को मिलते हैं, वह इस नियोजित विचार-शक्ति की ही सिद्धियाँ हैं और वह सिद्धान्त सत्य हैं, उनमें अविश्वास का कोई कारण नहीं है ।

शक्तियाँ आपस में परिवर्तनीय (म्युचुअली कनवर्टेबल) होती हैं, प्रकाश को अग्नि, विद्युत में बदला जा सकता है, ध्वनि से उत्पन्न ताप और विद्युत शक्ति से अब बड़ी-बड़ी इस्पात चादरें काटने से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म घड़ियों के पुर्जे ठीक करने का काम लिया जाने लगा । केलीफोर्निया के प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री हर्बट हूबर ने करोड़ों वर्ष प्राचीन खस्ता हड्डियों की सफाई के लिए ध्वनि शक्ति का आश्चर्यजनक उपयोग किया तब से इस शक्ति से बड़े उपयोगी काम लिये जाने लगे ।

चुम्बक को ताप, ताप को विद्युत, विद्युत को प्रकाश और प्रकाश को ध्वनि तरंगों में बदला जा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सकता है । अब चूँकि विचार भी एक शक्ति (इनर्जी) है, इसलिए कोई सन्देह नहीं कि उसे भी और शक्तियों में बदला जा सकता है । विचार-बल से अग्नि, विद्युत, प्रकाश ही नहीं ध्वनि और आकर्षण भी उत्पन्न किया जा सकता है । तन्त्र साधनाओं में मारण, मोहन, उच्चाटन, अभिसार आदि अनेक विधानों का वर्णन मिलता है, वह सब विचार-शक्ति के नियन्त्रित प्रयोग से ही होता है ।

यह प्रयोग असाधारण स्थिति के हैं, हमें यह देखना चाहिए कि क्या इस महान् शक्ति का उपयोग सुख, शान्ति, व्यवस्था और आत्म-कल्याण में किया जा सकता है । उत्तर मिलेगा—किया ही नहीं जा सकता, किया जाना आवश्यक भी है । हमारे जीवन के सभी क्षेत्र विचारों से ही प्रभावित हैं पर भौतिक सुख और इच्छाओं की ओर अधिक ध्यान बना रहने के कारण हमारी मानसिक स्थिति साधारण अवस्था से ऊपर उठ ही नहीं पाती । ईश्वर, आत्मा जैसी कोई चेतन-शक्तियाँ भी हैं । हमारा जीवन इसी संसार तक सीमित नहीं वरन् मरणोत्तर अवस्था का भी अस्तित्व है ? यह सारे प्रश्न विचार बल द्वारा ही अनुभव में हैं हम आत्मकेन्द्रित होते हैं तो बाह्य सफलता के द्वार तो अनायास ही खुल जाते हैं, महत्त्व उन रहस्यों और अनुभूतियों का है, जो विचारों को विकेन्द्रित करने से संसार की वस्तुस्थिति की यथार्थता का ज्ञान होने पर प्रत्यक्ष होते हैं ।

विचार की शक्ति या बल अपना वास्तविक प्रभाव तब दिखाता है, जब उसे आधार देने वाले आवेशों की तीव्रता बढ़ जाती है । सूर अधिक पढ़े-लिखे नहीं, तुलसी की शैक्षणिक योग्यता बहुत कम थी, मीरा का साहित्यिक अध्ययन नगण्य जैसा था, कबीर तो बेचारे पढ़े भी नहीं थे पर भावनाओं की शक्ति ने उनके विचारों को प्रौढ़ और परिष्कृत होने का अवसर दिया उससे इनकी बौद्धिक क्षमताएँ कुछ से कुछ हो गई । आज उनकी आन्तरिक अनुभूतियों को अच्छी शैक्षणिक योग्यता के लोग ही कठिनाई से पकड़ पाते हैं ।

इच्छा-शक्ति के अभ्यास (एक्सरसाइज) के द्वारा हम अपने विचार-बल को बढ़ा सकते हैं, सन्तुलित विचार जो कि एकाग्रता और इच्छा-शक्ति लिए होते हैं, बहुत बड़ी शक्ति को प्रदर्शित करते हैं । चेतन तत्त्वों को खोज-खबर भी उन्हीं से सम्भव है । वे कभी असफल नहीं होते । इस प्रकार का बहुत-सा तेज, विचार-बल बिना किसी समय के गमन कर सकता है, इसीलिये उससे आध्यात्मिक रहस्यों का प्रतिपादन तेजी से किया जा सकता है । विचारों का भौतिक अस्तित्व न होने से उनका लाभ नहीं उठा पाते पर उनके आध्यात्मिक मूल्य को समझ लेने के बाद एक बहुत बड़ा जीवन-लाभ प्राप्त किया जाना सम्भव हो जाता है ।

## हमारी इच्छा शक्ति प्रबल एवं प्रखर हो

नदी जब समुद्र में मिलने की प्रबल आकांक्षा से अभियान करती है तो उसकी गति रोकने वाले अवरोधों को परास्त ही होना पड़ता है । समुद्र से मिलने की प्रबल आकांक्षा, आवश्यकतानुसार उसे विरोधी चट्टानों को कभी काटने पर विवश करती है तो कभी इधर-उधर घूमकर रास्ता निकाल लेने की प्रेरणा देती है । उसकी प्रबल इच्छा उसे अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए कभी टक्कर लेने, कभी निम्न होने, कभी रास्ता बदलने और कभी मन्द-मंथर हो जाने का ज्ञान देती है । उसका वांछित लक्ष्य सागर से मिलन होता है और वह उसे किसी न किसी प्रकार संघर्ष अथवा सामंजस्य पूर्ण नीति से प्राप्त ही कर लेती है । वह किन्हीं कारणों से हार कर निराश अथवा निरुत्साह होकर गतिहीन नहीं होती । इसलिए कि उसकी इच्छा-शक्ति में सच्चाई और प्रबलता होती है ।

नदी की तरह ही वह मनुष्य भी अपनी सफलता के लिए मार्ग निकाल ही लेता है जिसकी इच्छा-शक्ति दृढ़ और बलवती होती है । उसकी इच्छा स्वयं उसका मार्ग प्रदर्शन करती चलती है । सफलता का मूल मनुष्य की इच्छा शक्ति में सन्निहित रहता है । मानवीय शक्तियों में उसकी इच्छा शक्ति सबसे प्रबल और प्रमुख होती है । जिन मनुष्यों की इच्छा शक्ति निर्बल होती है, वे साधन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्पन्न होने पर भी कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं पा पाते । निर्बल इच्छा शक्ति वाले लोग मार्ग में आई एक साधारण सी कठिनाई अथवा सामान्य विरोध को देखकर हिम्मत खो बैठते हैं ।

मनुष्य की शारीरिक शक्ति का अपना महत्त्व है । लेकिन उसकी संचालिका शक्ति ही होती है । यदि इच्छा शक्ति का अभाव हो जाय तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति भी कुण्ठित हो जायगी । शरीर पर इच्छा शक्ति का ही शासन होता है । शरीर क्या है ? इन्द्रियों का संगठित समूह । इन्द्रियों का कार्य ही शरीर का कार्य होता है । इन्द्रियाँ इच्छा शक्ति से ही कार्य की प्रेरणा पाती हैं । कोई कितना ही आवश्यक काम क्यों न हो, इन्द्रियाँ सक्षम और प्रस्तुत क्यों न हों, किन्तु जब तक इच्छा शक्ति की प्रेरणा न होगी वे बँधी बैठी रहेंगी, किसी काम में हाथ न लगायेंगी । जब इच्छा का स्फुरण होगा, उसकी प्रेरणा होगी तभी इन्द्रियाँ कार्यरत हो जायेंगी । शरीर इन्द्रियों के और इन्द्रियाँ शक्ति के अधीन होती हैं । इच्छा शक्ति की जागरूकता के बिना मनुष्य कोई भी कार्य करने में सक्षम नहीं हो सकता ।

संसार के छोटे-बड़े सभी कार्य शक्ति द्वारा ही पूरे होते हैं । शक्ति के बिना मनुष्य एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता । श्वास लेने की सामान्य प्रक्रिया से लेकर पहाड़ काटने तक के कठिन काम शक्ति द्वारा ही सम्पादित किये जाते हैं । जब तक शक्ति है, तब तक कर्म है जब तक कर्म है तब तक जीवन है । शक्ति के समाप्त होते ही क्रिया स्थगित हो जाती है और क्रिया के स्थगित होते ही जीवन समाप्त हो जाता है । अपाहिज, असाध्य, अकर्मण्य आदि सब, जिनकी क्रियायें स्थगित हो गई होती हैं, जो किसी मतलब और मसरफ के नहीं रहते वे एक बार प्राण भले ढो रहे हों पर होते मृतक समान ही हैं ।

किन्तु मनुष्य की वह वास्तविक शक्ति है क्या ? वह वास्तविक शक्ति मनुष्य की इच्छा शक्ति ही है । क्योंकि यही जीवन के चिन्ह-कर्म की विधायिका तथा प्रेरिका होती है । जहाँ इच्छा नहीं वहाँ कर्म नहीं और जहाँ इच्छा है वहाँ कर्मों का होना अनिवार्य है । इच्छा की प्रेरणा से ही मनुष्य कर्मों में प्रवर्त होता है । यदि उसमें इच्छा की स्फुरणा नहीं उसकी प्रेरणा न हो तो मनुष्य भी जड़ बनकर पड़ा रहे । आदि काल से मनुष्य अब तक जो विकास और उन्नति करता आया है वह सब इच्छा शक्ति का ही चमत्कार है । मनुष्य में यदि इच्छा शक्ति की विशेषता न होती तो वह अब तक भी दो हाथ-पैरों वाला वनमानुष बना, अन्य पशुओं की तरह ही जीवन बिताता, गुफा-कन्दराओं में पड़ा होता । इस प्रकार आश्चर्यजनक साधनों के साथ शान से देवताओं से एक पद पूर्व न रहा होता तथापि जिनमें इच्छा शक्ति का प्राबल्य होता है वे अब भी अपनी साधना और तपश्चर्या के बल पर देवताओं के समकक्ष होना तो क्या परमात्मा के समकक्ष हो जाते हैं । जीवन की समग्र उन्नतियाँ और सारी असफलतायें इच्छा शक्ति के ही अधीन होती हैं ।

नव सृजन, नव चेतना, नव निर्माण की जो भी क्रांतियाँ संसार में हुई हैं अथवा होती हैं उनका आधार मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति ही होती है । संसार में अब तक जो भी महान और उल्लेखनीय काम हुए हैं उनको उन्हीं महा मानवों ने सम्पादित किया है, जिनकी इच्छा शक्ति प्रबल और प्रखर रही है । निर्बल इच्छा शक्ति वाले लोग संसार में अब तक न कोई उल्लेखनीय कार्य कर सके हैं और न आगे ही कर सकेंगे । निर्बल इच्छा शक्ति वाले व्यक्तियों के मन में, महानता, सफलता और उन्नति के विरोधी भाव, जैसे सन्देह, आशंका, भय और अविश्वास आदि भरे रहते हैं । उसे अपने कुविचारों, कुकल्पनाओं और कुप्रवृत्तियों के जाल से निकलने का अवसर ही नहीं मिलता जिससे वह श्रेय-पथ पर अग्रसर हो सके । वह स्वभावत: अस्थिर विचार, अस्थिर उद्देश्य और अस्थिर निश्चय वाला होता है । एक काम को तब तक करते रहने का धैर्य उसमें नहीं होता जब तक कि उसका अन्तिम निष्कर्ष न निकल आये । वह जल्दी ही एक काम को छोड़कर दूसरा और दूसरे को छोड़कर तीसरा पकड़ता रहता है । अपनी इच्छा शक्ति की अदृढ़ता के कारण वे एक छोटी सी कठिनाई से ही भयभीत तथा उद्विग्न हो जाते हैं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


और जल्दी ही कर्तव्य से हट जाते हैं । इच्छा शक्ति की निर्बलता मनुष्य के समग्र जीवन की निर्बलता है ।

सबल इच्छा शक्ति जहाँ एक प्रकार की अमोघ औषधि है वहाँ निर्बल इच्छा शक्ति विविध प्रकार के रोगों की जननी होती है । जिसकी इच्छाशक्ति निर्बल होती है वह एक छोटे से रोग में ही अपनी मृत्यु की कल्पना करने लगता है । उसके विचार प्रतिगामी होते हैं । वह रोगों का उपचार भी करता है तो भी सोचता रहता है कि औषधि उसे लाभ नहीं कर रही है । बहुत बार तो वह काल्पनिक रोगों के भय से ही त्रस्त बना रहता है और देर सवेर उस प्रकार का रोग उत्पन्न ही कर लेता है । मानस चिकित्सा शास्त्रियों ने अपने अनुभव के आधार पर बतलाया है कि वास्तविक रोगियों की अपेक्षा ऐसे रोगियों की संख्या अधिक होती है जो अपनी प्रतिगामी कल्पना के कारण अपने को रुग्ण तथा अस्वस्थ समझते रहते हैं । यह अनेक प्रयोगों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है कि यदि मनुष्य की इच्छा शक्ति प्रबल हो तो वह बिना किसी उपचार के रोगों पर विजय प्राप्त कर सकता है ।

निर्बल इच्छा शक्ति की हानियाँ केवल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहतीं । वे समाज पर भी अपना प्रभाव डालती हैं । मनुष्य की इच्छा शक्ति में एक प्रकार की अदृश तरंगें होती हैं । जो मानसिक गतिविधियों से निकल कर वातावरण में फैल जाती हैं और दूसरों को प्रभावित करती हैं । उनके मानसिक भावों को अपने प्रकार का बनाने का प्रयत्न करती हैं । यही तो कारण है कि जिस स्थान पर कमजोर और कायर मन वाले लोग रहते हैं वहाँ प्रायः भय और आशंका का वातावरण बना रहता है । किसी संगठन में दुर्बल इच्छा शक्ति वाले अपनी गतिविधियों से औरों को भी निर्बल और हतोत्साह बना देते हैं । युद्ध में यह कायर सैनिक भागकर और भी अनेक सैनिकों को भागने की प्रेरणा देता है । जिस देश, सम्माज अथवा राष्ट्र के नेता निर्बल इच्छा शक्ति वाले होते हैं वह देश, समाज अथवा राष्ट्र बहुधा अवनति और पराभव के ही अधिकरी बनते हैं । नेता का प्रभाव विस्तृत होता है, उसमें जनगण का विश्वास होता है । इसी कारण नेता यदि निर्बल इच्छा शक्ति वाला होता है तो उसकी संक्रामकता निर्बलता जनता का भी हृदय दुर्बल बना देती है । सारे राष्ट्र में भय आशंका और कायरता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है । जहाँ इस तरह के पाप अभिशाप जनगण को दबाये होते हैं वहाँ उन्नति, प्रगति अथवा विजयश्री का पदार्पण नहीं होता ।

इसके विपरीत जिस समाज अथवा राष्ट्र के नेता प्रबल इच्छा शक्ति वाले होते हैं, वह समाज और राष्ट्र भी प्रबल तथा शक्तिशाली बना रहता है, फिर चाहे वह विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से छोटा ही क्यों न हो । जापान, इंगलैण्ड और जर्मनी आदि देश इस बात के ज्वलंत प्रमाण हैं । भारत में भी राणा प्रताप, शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह, हम्मीर देव आदि के ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जो साधन और सैन्य शक्ति की दृष्टि से नगण्य होने पर भी सर्वसम्पन्न मुगल बादशाहों के अत्याचारों से टक्कर लेते रहे । महात्मा गाँधी तो प्रबल इच्छा शक्ति के एक जीत-जागते आदर्श थे । उनके पास एक प्रबल, दृढ़ तथा प्रखर इच्छा शक्ति को छोड़कर और क्या साधन थे ? न सेना न शस्त्र और न साम्राज्य । तथापि उन्होंने अपनी एक उस अमोघ इच्छा शक्ति के आधार पर उदयास्त पर्यन्त फैले अँग्रेजी साम्राज्य से जम कर टक्कर ली और अपनी शान्ति अहिंसा की नीति से ही उनकी तोपों, बन्दूकों, गनमशीनों और सेनाओं की शक्ति को पराभूत कर दिया । महात्मा गाँधी की प्रबल इच्छा शक्ति का ही तो यह चमत्कार था कि उनके नेतृत्व का भारत आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुषों के साथ साधनहीन होने पर भी अजेय बन गया था । इच्छा शक्ति की महिमा अपार और अपूर्व है ।

यदि हमें अपने जीवन को उन्नति और प्रगति के द्वारा सार्थक बनाना है तो अपनी इच्छा शक्ति को बढ़ाना और प्रबल बनाना होगा । तभी हममें दृढ़ता, साहस और कार्य क्षमता का विकास होगा । हम उत्साही, वीर और संकल्पवान बनेंगे । हममें वह कर्मठता आयेगी जो जीवन पथ की बाधाओं तथा विपत्तियों से भी कुण्ठित न हो सकेगी ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सफलता का पथ निश्चय ही बड़ा कठिन और दुर्गम होता है । उसको सरल और प्रशस्त बनाने में मनुष्य की इच्छा शक्ति का बड़ा उपयोग है । इच्छा शक्ति की दृढ़ता और प्रबलता मनुष्य को पराक्रमी, पुरुषार्थी और धीर-गम्भीर बना देती है । प्रबल इच्छा शक्ति वाला जिस काम में हाथ डालता है, उसे तब तक नहीं छोड़ता जब तक पूरा नहीं कर लेता । वह बाधाओं, विरोधों से साहसपूर्वक लड़ता हुआ बढ़ता रहता है । उन्नति और सफलता का इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है ।

संसार की सारी सफलताओं का मूल मन्त्र है प्रबल इच्छा शक्ति—इसी के बल पर विद्या, सम्पत्ति और साधनों का उपार्जन होता है । यही वह आधार है जिस पर आध्यात्मिक तपस्यायें और साधनायें निर्भर रहती हैं । यही वह दिव्य सम्बल है जिसे पाकर संसार में खाली हाथ आया मनुष्य वैभव और एश्वर्यवान बनकर संसार को चकित कर देता है । यही वह मोहन और वशीकरण मन्त्र है जिसके बल पर एक अकेला पुरुष कोटि-कोटि जनगण को अपना अनुयायी बना लेता है । जीवन में उन्नति और सफलता की आकांक्षा करने से पहले अपनी इच्छा-शक्ति को प्रबल तथा प्रखर बना लेने वालों को न कभी असफल होना पड़ता है और न निराश । वे अपनी मनोवांछित विजय-माल पहन कर ही मानते हैं ।

## विचारों की शक्ति अपरिमित है

हम संसार में जो कुछ देखते हैं, हमें जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है वह सब विचारों का ही मूर्त रूप है । यह समस्त सृष्टि विचारों का ही चमत्कार है । जड़ चेतनमय जो कुछ चराचर जगत है उसकी ऋषियों ने परमात्मा के विचारों का स्फुरण बतलाया है ।

हमने आज तक जो कुछ किया है, जो कुछ कर रहे है और आगे भी जो कुछ करेंगे वह सब विचारों की ही परिणित होगी । प्रत्येक क्रिया के संचालक विचार ही होते हैं । बिना विचार के कोई भी कार्य सम्भव नहीं है ।

इतने-इतने बड़े भवन, कल-कारखाने, पुल-बाँध आदि जो देखते ही मनुष्य को चकित कर देते हैं, सब मनुष्य के विचारों के ही फल हैं । कोई भी रचना करने से पूर्व रचनाकार के मस्तिष्क में तत्सम्बन्धी विचारों का ही जन्म होता है । विचार परिपक्व हो जाने पर ही वह सृजन की दिशा में अग्रसर होता है । विचार शून्यता मनुष्य को अकर्मण्य और निकम्मा बना देती है । जो कुछ कला कौशल और साहित्य शिल्प दिखाई दे रहा है वह सब विचार-वृक्ष की ही उपज है ।

किसी भी कार्य के प्रेरक होने से कार्य की सफलता-असफलता, अच्छाई-बुराई और उच्चता-निम्नता के हेतु भी मनुष्य के अपने विचार ही हैं । जिस प्रकार के विचार होंगे सृजन भी उसी प्रकार का होगा ।

नित्य प्रति देखने में आता है कि एक ही प्रकार का काम दो आदमी करते हैं । उनमें से एक कार्य सुन्दर सफल और सुघार होता है और दूसरे का नहीं । एक से हाथ पैर, उपादान और साधनों के होते हुए भी दो मनुष्यों के एक ही कार्य में विषमता क्यों होती है ? इसका एकमात्र कारण उनकी अपनी-अपनी विचार प्रेरणा है । जिसके कार्य सम्बन्धी विचार जितने सुन्दर, सुघर और सुलझे हुए होंगे उसका कार्य भी उसी अनुसार उद्दात्त होगा ।

जितने भी शिल्पों, शास्त्रों तथा साहित्य का सृजन हुआ है वह सब विचारों की ही विभूति है । चित्रकार नित्य नये-नये चित्र बनाता है, कवि नित्य नये काव्य रचता है, शिल्पकार नित्य नये मॉडल और नमूने तैयार करता है । यह सब विचारों का ही निर्माण है । कोई भी रचनाकार जो नया निर्माण करता है, वह कहीं से उतार कर नहीं लाता और न कोई अदृश्य देव ही उसकी सहायता करता है । वह यह सब नवीन रचनाएँ अपने विचारों के ही बल पर करता है । विचार ही वह अद्‌भुत शक्ति है जो मनुष्य को नित्य नवीन प्रेरणा दिया करती है । भूत, भविष्यत और वर्तमान में जो कुछ दिखलाई दिया, दिखलाई देगा और दिखलाई दे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


रहा है वह सब विचारों में वर्तमान रहेगा और वर्तमान है । तात्पर्य यह कि समग्र त्रयकालिक कर्तृत्व मनुष्य के विचार पटल पर अंकित रहता है । विचारों के प्रतिबिम्ब को ही मनुष्य बाहर के संसार में उतारा करता है । जिसकी विचार स्फुरणा जितनी शक्तिमती होगी उसकी रचना भी उतनी ही सबल एवं सफल होगी । विचार-शक्ति जितनी उज्ज्वल होगी, बाह्य प्रतिबिम्ब भी उतने ही स्पष्ट और सुबोध होंगे ।

मनुष्य की विचार पुटी में संसार के सारे श्रेय एवं प्रेय सन्निहित रहते हैं । यही कारण है कि मनुष्य ने न केवल एक अपितु असंख्यों क्षेत्रों में चमत्कार कर दिखाये हैं । जिन विचारों के बल पर मनुष्य साहित्य का सृजन करता है उन्हीं विचारों के बल पर कल-कारखाने चलाता है । जिन विचारों के बल पर वह आत्मा और परमात्मा की खोज कर लेता है, उन्हीं विचारों के बल पर खेती करता और विविध प्रकार के धन-धान्य उत्पन्न करता है, व्यापार और व्यवसाय करता है । यही नहीं, जिन विचारों की प्रेरणा से वह सन्त, सज्जन और महात्मा बनता है उन्हीं विचारों की प्रेरणा से वह निर्दय अपराधी भी बन जाता है । इस प्रकार सहज ही समझा जा सकता है कि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा कृर्तृत्व में उसकी विचारशक्ति ही काम कर रही है ।

एक दिन पशुओं की भाँति सारी क्रियाओं में पूर्ण पशु मनुष्य आज इस सभ्यता के उन्नति शिखर पर किस प्रकार पहुँच गया ? अपनी विचार-शक्ति की सहायता से । विचार-शक्ति की अद्‌भुत उपलब्धि इस सृष्टि में केवल मानव प्राणी को ही प्राप्त हुई है । यही कारण है कि किसी दिन पशुओं के समकक्ष मनुष्य आज महान उन्नत दशा में पहुँच गया है और अन्य सारे पशु-पक्षी आज भी अपनी आदि स्थिति में उसी प्रकार रह रहे हैं । पशु-पक्षी नीड़ों और निविड़ों में पूर्ववत ही निवास कर रहे हैं किन्तु मनुष्य बड़े-बड़े नगर बनाकर सुविधाओं के साथ रह रहा है । यह सब विचार-कला का ही विस्मय है ।

विचारों के बल पर मनुष्य न केवल पशु से मनुष्य बना है बल्कि वह मनुष्य से देवता भी बन सकता है और विचार-प्रधान ऋषि, मुनि, महात्मा और संत मनुष्य से देवकोटि में पहुँचे हैं और पहुँचते रहेंगे ।

मनुष्य आज जिस उन्नत अवस्था में पहुँचा है वह एक साथ एक दिन की घटना नहीं है । वह धीरे-धीरे क्रमानुसार विचारों के परिष्कार के साथ आज इस स्थिति में पहुँच सका है । ज्यों-ज्यों उसके विचार परिष्कृत, पवित्र तथा उन्नत होते गये उसी प्रकार अपने साधनों के साथ उसका जीवन परिष्कृत तथा पुरस्कृत होता गया । व्यक्ति-व्यक्ति के रूप में भी हम देख सकते हैं कि एक मनुष्य जितना सभ्य, सुशील और सुसंस्कृत है अपेक्षाकृत दूसरा उतना नहीं । समाज में जहाँ आज भी सन्तों और सज्जनों की कमी नहीं है वहाँ चोर, उचक्के भी पाये जाते हैं । जहाँ बड़े-बड़े शिल्पकार और साहित्यकार मौजूद हैं वहाँ गोबर गणेशों की भी कमी नहीं है । मनुष्यों की यह वैयक्तिक विषमता भी विचारों, संस्कारों के अनुपात पर ही निर्भर करती है । जिसके विचार जिस अनुपात से परिमार्जित हो रहे हैं वह उसी अनुपात से पशु से मनुष्य और मनुष्य से देवता बनता जा रहा है ।

विचार-शक्ति के समान कोई भी शक्ति संसार में नहीं है । अरबों का उत्पादन करने वाले दैत्याकार कारखानों का संचालन, उद्वेलित जन-समुदाय का नियन्त्रण, दुर्धर्ष सेनाओं का अनुशासन और बड़े-बड़े साम्राज्यों का शासन और असंख्यों जनता का नेतृत्व एक विचार बल पर ही किया जाता है, अन्यथा एक मनुष्य में एक मनुष्य के योग्य ही सीमित शक्ति रहती है, वह असंख्यों का अनुशासन किस प्रकार कर सकता है ? बड़े-बड़े आततायी हुकुमराओं और सुदृढ़ साम्राज्यों को विचार बल से ही उलट दिया गया । बड़े-बड़े हिंस्र पशुओं और अत्याचारियों को विचार बल से प्रभावित कर सुशील बना लिया जाता है । विचार-शक्ति से बढ़कर कोई भी शक्ति संसार में नहीं है । विचारों की शक्ति अपरिमित तथा अपराजेय है ।

विचार एक शक्ति है, विशुद्ध विद्युत शक्ति । जो इस पर समुचित नियन्त्रण कर ठीक दिशा में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


संचालन कर सकता है वह बिजली की भाँति इससे बड़े-बड़े काम ले सकता है । किन्तु जो इसको ठीक से अनुशासित नहीं कर सकता वह उल्टा इसका शिकार बन जाता है । अपनी ही शक्ति से स्वयं नष्ट हो जाता है । अपनी ही आग में जलकर भस्म हो जाता है । इसीलिये मनीषियों ने नियन्त्रित विचारों को मनुष्य का मित्र और अनियन्त्रित विचारों को उसका शत्रु बतलाया है ।

समस्त शुभ और अशुभ सुख और दुःख की परिस्थितियों के हेतु तथा उत्थान पतन के मुख्य कारण विचारों को वश में रखना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है । विचारों को उन्नत कीजिये उनको मंगल मूलक बनाइये, उनका परिष्कार एवं परिमार्जन कीजिये और वे आपको स्वर्ग की सुखद परिस्थितियों में पहुँचा देगें । इसके विपरीत यदि आप ने विचारों को स्वतन्त्र छोड़ दिया, उन्हें कलुषित एवं कलंकित होने दिया तो आपको हर समय नरक की ज्वाला में जलने के लिए तैयार रहना चाहिए । विचारों की चपेट से आपको संसार की कोई शक्ति नहीं बचा सकती ।

विचारों का तेज ही आपको ओजस्वी बनाता है और जीवन संग्राम में एक कुशल योद्धा की भाँति विजय भी दिलाता है । इसके विपरीत आपके मुर्दा विचार आपको जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पराजित करके जीवित मृत्यु के अभिशाप के हवाले कर देंगे । जिसके विचार प्रबुद्ध हैं उसकी आत्मा प्रबुद्ध हैं और जिसकी आत्मा प्रबुद्ध है उससे परमात्मा दूर नहीं है ।

विचारों को जाग्रत कीजिये, उन्हें परिष्कृत कीजिए और जीवन के हर क्षेत्र में पुरस्कृत होकर देवताओं के तुल्य ही जीवन व्यतीत करिये । विचारों की पवित्रता से ही मनुष्य का जीवन उज्ज्वल एवं उन्नत बनता है इसके अतिरिक्त जीवन को सफल बनाने का कोई उपाय मनुष्य के पास नहीं है ।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जावे तो मालूम पड़ता है कि मनुष्य की साधना का प्रारम्भ विचार से ही होता है । संसार अनन्त है । उसमें अनेकों प्रकार की विचार करने की सामग्री विद्यमान है । किसी भी एक विषय को ले लीजिये यदि हम उस पर विचार करना प्रारम्भ करेंगे तो हमें उसमें नित्य ही कोई न कोई नवीन बात मिलती ही रहेगी । इसी से तो संसार को उपमा दिये जाने के लिए तत्वज्ञों को समुद्र से अधिक उपयुक्त कोई दूसरी वस्तु दिखाई ही नहीं पड़ी । संसार में स्थान-स्थान पर हमारी चित्तवृत्ति को लक्ष्य से भटकने वाली सामग्री विद्यमान है । यदि मनुष्य थोड़ी भी असावधानी में रह जावे, तथा विचार से काम न ले तो वह देखेगा कि वह अपने लक्ष्य से कहाँ का कहाँ पिछड़ गया है ।

साधना का मूल मन्त्र ही विचार है । भगवान ने हमारे मस्तिष्क को ऐसा बनाया है कि हम उससे विचार की तरंगे उत्पन्न करने के साथ ही साथ दूसरों के द्वारा भेजी गई विचार की तरंगो को भी ग्रहण कर सकते हैं । प्रत्येक मनुष्य साधारणतया विचार की तरंगे क्षण-क्षण में अपने मस्तिष्क से दौड़ाता रहता है, लेकिन दूसरों के द्वारा भेजी हुई विचार तरंगों को हर एक व्यक्ति साधारणतया ग्रहण नहीं कर सकता । कारण कि साधारण मनुष्यों का मस्तिष्क उच्चकोटि तक विकसित नहीं रहता । मस्तिष्क को इस सीमा तक विकसित करना एकमात्र अभ्यास से ही सम्भव हो सकता है । जिस व्यक्ति का मस्तिष्क काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य आदि विकारों से जितना ही रहित होगा, वह व्यक्ति उतना ही इस शक्ति को ग्रहण कर सकेगा । योगियों को लीजिये । वह सहस्त्रों मीलों की दूरी पर रहते हुए भी दूसरों को लाभान्वित कर सकते हैं । 'थौट रीडिंग' तथा 'टेलीपैथी' आदि शक्तियाँ तो इसी विचार संयम के द्वारा प्राप्त योग की छोटी-छोटी सिद्धियाँ हैं । इन्हें थोड़ा अभ्यास करके हर व्यक्ति प्राप्त कर सकता है ।

जिस व्यक्ति का मस्तिष्क जितना ही शक्तिशाली होता है, उसके विचार में उतनी ही क्रियात्मक शक्ति विद्यमान रहती है । यह शक्ति दोनों प्रकार की होती है—अच्छी तथा बुरी । संसार के इतिहास में जिन दुर्दमनीय नारकी तथा नराधमों की दुष्टता का वर्णन मिलता है, उन्होंने सारे अवगुण एकाएक ही प्राप्त नहीं कर लिये थे । बुरे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कर्मों में उनकी चित्त की वृत्ति धीरे-धीरे रंगती गई तथा एक दिन उसकी परिपक्वावस्था आने पर वे ठीक वैसे ही बन गये ।

मनुष्य का चित्त बड़ा कोमल है । वास्तव में हम चित्त को द्रव धातु की भाँति मान लें तो ठीक होगा । एक बार चित्त में जिन संस्कारों की छाया पड़ जाती है बार-बार वे ही भावनायें उदय होकर उन्हीं कर्मों को करने की प्रेरणा देती रहती हैं । यदि ये कर्म शुभ हुए तो मनुष्य निरन्तर शुभ-कर्मों की ओर बढ़ता रहता है; और यदि ये कर्म अशुभ हुए तो एक बार इन कर्मों को चित्त के लिपट जाने पर उधर से वृत्ति को निकाल लेना कोई आसान कार्य नहीं । अनुभव से स्मरण तथा स्मरण की दृढ़ता से पुनः कर्म यह चक्र निरन्तर चलता रहता है । शुभ कर्मों के विषय में भी यही नियम है । शुभ कर्म करते-करते जब शुभ संस्कार दृढ़ हो जाते हैं तब बुरे संस्कार अपना कुप्रभाव डालने में सर्वथा असफल रहते हैं । जिस परिमाण में ये शुभ विचार बढ़ते जावेंगे, उसी परिणाम में मनुष्य भी बढ़ता जावेगा । उसके मस्तिष्क से निकली हुई विचार की वे प्रबल तरंगें उसके आस-पास वैसा ही वातावरण उत्पन्न करेंगी । धीरे-धीरे उस व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले लोगों पर भी उसके विचारों का स्थायी प्रभाव पड़ने लगेगा । वे उसके अनुयायी बनने लगेंगे तथा उसके विचारों की प्रधानता उन लोगों के बीच स्थापित हो जावेगी ।

प्रभावशाली पुरुषों के प्रभाव का कारण उनके आचरण तथा विचार की दृढ़ता ही होती है । ये लोग विचार दृढ़ता से चाहे जिस व्यक्ति पर अभीप्सित प्रभाव डाल सकते हैं । बड़े-बड़े समुदायों को अपने प्रभाव से दबाये रहकर जिस दिशा में चाहे उनकी प्रगति बदल सकते हैं । संसार में जितने भी धर्माचार्य, राजनीतिज्ञ, शूरवीर या अन्य युग परिवर्तनकारी महापुरुष हुए हैं, उनमें यह शक्ति विद्यमान थी । यही कारण था कि उनका एक-एक शब्द संसार में हलचल मचा देता था । वे जिस दिशा में मुड़ते थे सारा संसार मन्त्र-मुग्ध की भाँति उनके पद चिन्हों पर चल देता था ।

वास्तव में विचार की शक्ति अपरिमेय है इसकी शक्ति को जान लेंगे तब हमारा आधा मार्ग बिना परिश्रम के ही समाप्त हो जावेगा वस्तुतः विचार में बड़ी शक्ति है । सद्विचारों का प्रभाव तो मन में सदा ही चलता रहना चाहिए । विचार जब परिपक्व होकर परिपक्वावस्था पर पहुँच जावेगा तो वह आचरण का रूप धारण करेगा । कहा गया है:-

**यन्मनसाध्यायति तद्वाचा वदति ।**
**यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति ।**
**यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ।**

जैसा यह मनुष्य मन से चिन्तन करता है वैसी ही वाणी बोलता है । जैसी वाणी बोलता है वैसा ही कर्म करता है तथा जैसा कर्म करता है अन्त में वैसा ही फल प्राप्त करता है ।

क्या कारण है कि हमारी शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है ? तनिक विचार कर देखा जावे तो मालूम होगा कि हम ही हैं जिन्होंने अपनी अनन्त शक्तियों को सीमित कर रखा है । वास्तव में हमने बुरे विचारों द्वारा अपनी महान शक्तियों का नाश कर दिया है । वास्तव में हम स्वयं अपने वातावरण के निर्माता हैं । प्रत्येक विचार का विश्लेषण करके देखा जावे तो हमें मालूम पड़ेगा कि उसमें गहरी रचनात्मक तथा विनाशात्मक शक्तियाँ मौजूद हैं । यदि तुम दूसरे को दुःखी देखना चाहते हो तो तुम्हारे चिन्तन-मात्र से दुःख पहले तुम्हें ही आकर प्राप्त होगा ।

जो मनुष्य जैसा विचार करता है वह ठीक वैसा ही बन जाता है । जिन-जिन वस्तुओं का विचार तथा चिन्तन किया जावेगा वे वस्तुएँ निश्चित रूप से हमारे समीप चली आवेंगी । अतः जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं सदा उसी का विचार करें । इन्हीं विचारों में निर्मलता लाने के लिए दो महान गुणों की प्रशंसा हमारे शास्त्रों में भरी पड़ी है । वे हैं दया तथा क्षमा । दया के विचारों से निर्मलता आती है तथा क्षमा से निर्मलता को स्थिरता प्राप्त होती है । बिना दया तथा क्षमा का भाव रखे किसी को कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती ।सद्विचार तथा सद्भाव ही हमारी सम्पत्ति है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जिस दिन तुम्हें विचारों की शक्ति का ठीक-ठीक ज्ञान हो जावेगा उसी दिन अनेक शंकाएँ तथा समस्याएँ स्वतः हल हो जावेंगी । अच्छे कार्य करने से भी अच्छे विचारों की संस्कारवर्धक शक्ति अधिक तीव्र होती है । जैसी बातें मनुष्य विचारेगा कुछ समय के पश्चात् वह स्वयं देखेगा कि उसके विचारों के अनुकूल ही उसका वातावरण बनता जा रहा है । जिन-जिन परिस्थितियों व वस्तुओं का उसने चिन्तन किया है वे उसके अधिकाधिक समीप आ पहुँचती हैं । मनुष्य अपने विचारों से ही उच्च तथा नीच बनता है । वैसे स्थूल शरीर तो सबका लगभग एक सा होता ही है । महान पुरुषों की महानता का एक यही कारण है कि वे कठिन से कठिन परिस्थितियों में अपने सद्विचारों का क्षण मात्र के लिए भी परित्याग नहीं करते ।

विचार ही कार्य की प्रेरक शक्ति है । मनुष्य जैसा बनना चाहता है वह वैसे विचार करना प्रारम्भ करे । धीरे-धीरे वह देखेगा कि उसके विचार ही कार्य रूप धारण करते हुए जा रहे हैं । अध्यात्म शास्त्र तो यह बतलाता ही है कि सूक्ष्म से स्थूल बनता है । प्रारम्भ में जो वस्तु सूक्ष्म थी वही आज स्थूल रूप धारण करके स्थूल बनी हुई है । सारा चराचर जगत इसी विचार शक्ति के आधार पर चल रहा है । घड़े का निर्माण करने के पूर्व उस कुम्हार के मानस पटल में घड़े का पूरा पूरा स्वरूप आ जाता है । जब उसका विचार दृढ़ हो जाता है तभी वह घड़ा सूक्ष्म से स्थूल रूप धारण करके संसार के समक्ष आ जाता है ।

संसार के महान पुरुषों ने अपने-अपने जीवन में जिन-जिन महान कार्यों को सम्पादन किया है । वे पहले स्वप्न के रूप में ही उनके ध्यान में आये थे । धीरे-धीरे वे साधारण सा विचार संकल्प का रूप धारण करता गया तथा एक दिन स्थूल होकर उसने संसार को आश्चर्य में डाल दिया । जिसका जैसा भाव होगा, संसार उसी भाव के अनुरूप ही उसे दिखलाई देगा । एक सन्त की अमूल्य वाणी मुझे इस समय याद आ रही है ।

**आपने भाव ते भूलि परयो भ्रम**
**देहस्वरूप भयो अभिमानी ।**
**अपने भाव ते चञ्चलता अति,**
**आपने भाव ते बुद्धि बिरानी ।**
**आपने भाव ते आप बिसारत,**
**आपने भाव आतम ज्ञानी ।**
**''सुन्दर'' जैसो ही भाव है आपनो,**
**तैसो ही होइ गयो यह प्राणी ।**

विचार तथा कर्म का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है । जहाँ विचार काम करेगा वहाँ वह बलात् शरीर को भी अवश्य ले जावेगा । अतः विचारों पर संयम रखने का अर्थ है पूर्ण रूप से नियमित आचरण । केवल इन्द्रियों पर संयम करना ही काफी नहीं है संयमी वह है जो विचारों पर संयम करना जानता है । विचार शक्ति का महत्त्व समझ लेना और उस शान्ति का समुचित सदुपयोग करने के लिए प्रयत्नशील रहना यही तो मनुष्य जीवन की सफलता का रहस्य है । उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिए विचार शक्ति के साथ ही दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संकल्प बल का होना भी नितान्त आवश्यक है । कारण इसके अभाव में विचार भी पंगु बन जाते हैं ।

## कार्यों के मूल स्त्रोत–विचार

विश्व के समस्त परिवर्तनों के मूल कारण विचार ही हैं, प्रत्येक विचार उस नन्हे बीज के समान हैं जिसमें एक महान वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति छुपी है । यदि उस बीज को उचित वातावरण मिले तो निश्चय ही वह हमें सामर्थ्यशाली बना सकता है । विश्व का उत्पादक मूल स्त्रोत या केन्द्र हमारे विचारों को ऊँचा खींचने का प्रयत्न करता रहता है । यदि हम विचारों को उनकी स्वाभाविक गति के अनुसार चलने दें तो निश्चय ही हमारा जीवन परिवर्तित होकर कल्पनातीत उत्कृष्ट स्थिति में आ जावेगा ।

अध्यात्मशास्त्र का अटल एवं अनुभव सिद्ध सिद्धान्त है कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, जैसा वह नित्यप्रति के जीवन में सोचता विचारता, ध्यान करता है वैसा ही उसका भाग्य तथा फल निर्माण होता है । हमारा प्रत्येक विचार हमारे पथ में काँटे या पुष्प बिखेरता है । हम जैसा चाहें, अपने विचारों की शक्ति द्वारा बन सकते हैं । कोई भी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


विस्फोटक पदार्थ मनुष्य के प्रचण्ड विचारों से बढ़ कर शक्ति नहीं रखता । कोई भी सम्बन्धी देवी, देवता हमारी इतनी सहायता नहीं कर सकता जितने हमारे विचार । विचारों द्वारा ही हम शक्ति का केन्द्र मन से निकालते हैं और अपने सबसे बड़े मित्र बन सकते हैं । वह शक्ति विचार है जो सारे संसार को चला रही है । अत: जब तक हम अपने विचारों में परिवर्तन नहीं करते, जब तक हम उन्हें निम्न, निकृष्ट, खोटी वस्तुओं से हटा कर ऊँचे विषयों में नहीं लगाते तब तक हमारे विचार परमात्मा की निस्सीम शक्ति में सामंजस्य प्राप्त नहीं करते ।

मनुष्य अपने विचारों से सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है, अक्षय युवावस्था प्राप्त कर सकता है, सुख, समृद्धि, प्रसन्नता पा सकता है । इसके विपरीत बुरे और गन्दे विचारों से, चाहे वे आचरण में न भी लाये जावें, क्षण भर में मानव शरीर की मशीन बिगड़ जाती है । प्रोफेसर एल्मर गेट्स ने ४० प्रकार के ऐसे विष्टों का पता लगाया है जो मनुष्य के विचारों से शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं और हमें मृत्यु का ग्रास बना देते हैं । मनुष्य के श्वास, रुधिर धड़कन, पसीना उसकी आकृति, प्रकृति, स्वभाव, स्वास्थ्य फेफड़े उसके विचारों का प्रमाण और साक्षी देने वाले हैं । तनिक सा अच्छा या बुरा विचार अपना प्रभाव शरीर पर छोड़ देते हैं । मनुष्य के शरीर में अशुद्ध विचार रहते हैं । सात्विक हृदय से पवित्र रुधिर आता है तथा पूर्ण जीवन के लिए शुद्ध शरीर का निर्माण होता है । विचार हमारी रचना करते हैं, बनाते हैं, समृद्ध करते हैं, किन्तु अपवित्र विचार हमारा पतन करते हैं और हमें दीन दुनियाँ कहीं का भी नहीं छोड़ते ।

## विचार की रचना

विचार की रचना परमाणुमयी है । ये आकाश में व्याप्त ईथर तत्व के सूक्ष्म कण समूह हैं जिनकी रचना मन के अदृश्य अस्तर में होती है । ईथर पदार्थ समग्र विश्व में प्रचुरता से व्याप्त है । इसी माध्यम के अनुसार विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजे जा सकते हैं । हम दृढ़ इच्छा शक्ति एवं मनोबल द्वारा अपने विचार दूसरे मस्तिष्कों से फेंक सकते हैं ।

ईथर का अदृश्य माध्यम विचार-संचालन क्रिया में सब से बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है । प्रकाश की सूक्ष्म लहरों की तरह, विचारों की लहरें भी संचरित होती हैं । प्रत्येक परिमाणु दूसरे परिमाणु को गति प्रदान करता है । दूसरा तीसरे को तीसरा चौथे को । इस प्रकार विचार की तरंगें ईथर माध्यम में अमित वेग से चलती हैं । संसार की कोई रुकावट इनका वेग अवरुद्ध नहीं कर सकती ।

जिस यन्त्र द्वारा मन से विचारों को निकाला जाता है, वह मस्तिष्क एक प्रकार का बड़ा शक्तिशाली डाइनुमा है । अत: इसके केन्द्र स्थान में विचार की गति अत्यन्त तीव्र होती है । यह प्रबल वेग से विचारों की लहरें ईथर के वायु मण्डल में फेंकता है । वहाँ से होकर वह अन्य मस्तिष्कों में पहुँचाता है । सुख-दु:ख की प्रतीति, बुद्धि का ज्ञान, चित्त की प्रेरणा, हमें इसी के द्वारा होती है । मन स्वयं तो जड़ पदार्थ है । उसकी प्रवर्त्तक सत्ता आत्मा है जो उसके गर्भ भाग में निवास करती है उसे विविध व्यापारों में प्रेरित करती है

## मन तथा शरीर की समस्वरता

हमारे जीवन में शरीर प्रधान है अथवा मन, यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद रहा है कुछ व्यक्ति मन की चैतन्य शक्ति को गौण स्थान प्रदान करते हैं उनका कथन है कि जिस प्रकार पत्थर तथा लोहे के संघर्ष से अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मस्तिष्क के तन्तुओं के विकारों से मन की चैतन्यता पैदा हो जाती है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, प्रोफेसर हागसन महोदय का मत है कि चेतना फर्श में जड़े रंगों के समान है । शारीरिक क्रियाओं के संचालन में विचारों का कोई हाथ है । हक्सले साहब की राय है कि प्राणी मात्र की चेतना शारीरिक क्रियाओं का एक विकार मात्र है । आज भी वाटसन साहब ने उक्त मतों में थोड़ा सा परिवर्तन करके उन्हीं का प्रचार प्रारम्भ किया है । योरोपीय विचारक विज्ञान के आविष्कारों से इतने प्रभावित हुए हैं कि वह मन की चेतना को स्वतन्त्र सत्ता प्रदान न कर सके ।

हमारे पूर्वज ऋषियों एवं मनीषियों ने सदैव मन को प्रधानता दी है । गीता माता ने चैतन्यता को ही मनुष्यों के जीवन का प्रधान पदार्थ माना है । शरीर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की समस्त क्रियाएँ मन की आशाओं से संचालित होती हैं । वाटसन साहब की राय में मनुष्य की विविध चेष्टाएँ, क्रियाएँ पुरातन युग की जड़ प्रतिक्रियाएँ हैं । कालान्तर से उन्हीं का संग्रह अव्यक्त मन में होता आ रहा है । विलियम जेम्स के अनुसार मानव की चेतना उसके व्यवहारों तथा क्रियाओं को निर्धारित करती रहती है । मन ही इन क्रियाओं के भले-बुरे का ज्ञाता है । वह सदैव उन प्रवृत्तियों, वासनाओं, प्रेरणाओं का दमन करता है जिनसे उसका स्वार्थ सिद्धि नहीं होती । वर्तमान मनोवैज्ञानिक अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मन ही मुख्य तत्व है । तमाम रोगों की उत्पत्ति यहीं से होती है । जो विचार दृढ़ता से इसमें बैठ जाते हैं वे ही इन रोगों के कीटाणु हैं । ये विचार ही मानव शरीर को निर्मित-विनिर्मित करते हैं । जैसे-जैसे विचारों में परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे शरीर में परिवर्तन होता है । जब तक मन स्वस्थ एवं पवित्र है, ठीक कार्य कर रहा है, तब तक शरीर की क्रियाओं में कोई दोष नहीं आता । शरीर पूर्ण स्वस्थ, निरोग रहता है ।

शारीरिक स्नान से आप पवित्र नहीं बन सकते, उसके लिए मानसिक स्नान चाहिए । सन्त महात्मा सद्विचारों से पवित्र बने । जिस व्यक्ति ने अपने विचारों को शुद्ध एवं पवित्र बना लिया है उसे विषैले रोगों से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं रहती मन शुद्धि के साथ शरीर की शुद्धि होती है । जब मन में विकार आता है तो शरीर में दोष एवं रोग प्रकट होने लगते हैं ।

## विचार के मन्त्र का उपयोग

विचार हमारे मस्तिष्क की उपज हैं । अतएव मनुष्य की उन्नति या सफलता का आधार उसके मस्तिष्क के विकास पर निर्भर है । यदि उचित प्रयास न किया तो मस्तिष्क अविकसित अवस्था में रह जाता है तथा सदैव दूसरों का दास बना रहता है । यदि हम जरा-जरा सी बातों पर दूसरों की राय के भिखारी बने रहें, नित्यप्रति की बातों पर शंकाशील रहें, दूसरों की आलोचना, टीका टिप्पणी से मनः शान्ति को भंग कर दें, मस्तिष्क में निरर्थक व निकम्मे विचारों को भर लें तो हमारा मस्तिष्क अपनी दृढ़ता तथा महत्ता से हाथ धो बैठेगा । जो व्यक्ति तनिक सी कठिनाई से चिंतित, अस्तव्यस्त एवं विक्षुब्ध हो उठेगा, वह क्यों कर एक स्पष्ट आदर्श निर्माण कर सकेगा ? उसका मन पंख विहीन पक्षी की भाँति छटपटा कर गिर जायगा ।

## मस्तिष्क को विकसित करने के साधन

हमारी मानसिक शक्तियाँ इच्छा शक्ति पर निर्भर हैं । प्रत्येक समय मस्तिष्क पर कड़ी दृष्टि रखो और देखो वह क्या-क्या करता है । मस्तिष्कों में परिपुष्ट होने की स्वाभाविक शक्ति वर्तमान है । शरीर की इस सामर्थ्य को हम अपने मनोवेगों (क्रोध, शोक, चिन्ता इत्यादि विकारों से) द्वारा क्षीण कर देते हैं ।

अतः अनिष्टकारी वृत्तियों को मन में प्रवेश ही न करने दीजिये । उन्हें ठहरने का मौका मत दीजिये । रात्रि में सोते समय शुद्ध उन्नति की भावना अन्तर प्रवेश में दृढ़ कीजिये । ऐसा सोचिए कि आपका अंग-अंग पुष्ट हो रहा है, सामर्थ्य उच्च व परम शक्तिशाली बन रहा है, आप निरन्तर शक्तिशाली बन रहे हैं, और काम क्रोधादि मनोविकारों पर शासन कर रहे हैं । रात्रि में हमारा अन्तर्मन नये संस्कारों को शीघ्रता से ग्रहण करता है । अतः जिन विचारों को लेकर निद्रा में प्रवेश करके वे उच्च एवं शक्तिशाली हों, उनके शब्द-शब्द में प्रबल शक्ति भरी हो तथा वे मनःशक्ति को उत्तेजित करने वाले हों ।

शरीर के जिस भाग को पुष्ट या अविकसित करना चाहो वहीं मन को दृढ़ता पूर्वक जमा दो, बिल्कुल एकाग्र कर दो । रुधिर का संचालन प्रचुर वेग से होगा तथा वह अंग विकसित होने लगेगा । मस्तिष्क का मध्य बिन्दु दोनों कानों के बीच के मध्य भाग के स्थान पर है, यही स्थान है, मन को एकाग्र करना चाहिए । एकाग्रता के साथ-साथ यह भी सोचना चाहिए कि मेरे मस्तिष्क के अणुओं की वृद्धि हो रही है । ज्यों-ज्यों आपकी भावना तीव्र होगी, त्यों-त्यों मस्तिष्क विकसित होगा ।

कभी निठल्ले न बैठें । मन को किसी कार्य में व्यस्त रखें । विकारों के प्रभाव में मन के सूक्ष्म विचार केन्द्र सूखते हैं । अतः समय चिन्ता के विचार, बीते हुए कटु अनुभव, आने वाले कल की परेशानी विस्मृत कर दो । कल्पित दुःख तुम्हारी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सामर्थ्य एवं इच्छा शक्ति को क्षय करते हैं । नवीन रचनात्मक विचारों का सहर्ष स्वागत करो और उन्हें हृदय पटल पर दृढ़ता से अंकित कर लो ।

यह मत समझो कि हम अमुक कार्य या विषय नहीं ग्रहण कर सकते । मस्तिष्क समस्त शक्तियों का केन्द्र स्थान है । दोष हमारा ही है कि हम उसके एक भाग को तो विकसित करते हैं, तथा दूसरी शक्तियों को काम न लेकर पंगु कर डालते हैं । यदि हम एक-एक कर इस सब का अभ्यास करें, तो सरलता से निपुणता प्राप्त कर सकते हैं ।

## विचार द्वारा उपचार

जब तक मन किसी विचार को पूरी तरह नहीं ग्रहण कर लेता, जब तक उसके अन्तर की अचेतन वृत्ति स्वीकार नहीं कर लेती जब तक वह हमारे मस्तिष्क का एक अंश नहीं बन जाता या जब तक वह हृदय पटल पर दृढ़ता से अंकित नहीं हो जाता, तब तक वह विचार वास्तविक स्थूल स्वरूप धारण नहीं कर सकता । उस विचार को सत्वस्थ होकर हमारे मन की एक स्थायी वृत्ति बन जाना चाहिए । ''स्वेच्छित आत्मसंकेत'' इसी रीति का नाम है । जो उत्तम विचार हम मन में अंकित करते हैं उन्हीं को आत्मसंकेत कहते हैं ।

रोग के निवारणार्थ हमें चाहिए कि स्वस्थ संकेतों द्वारा चेतन मन को स्वस्थ करें । उसमें सुख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, बल आदि के विचारों को भर दें अन्तर की अचेतन वृत्ति द्वारा ग्रहण करा दें । जब मन इनको पी लेगा, तो ये विचार सत्य स्वरूप ग्रहण कर लेंगे और रोगी मन पुनः अपनी स्वस्थ दशा में आ जावेगा । मुख्य बात मन की आन्तरिक वृत्ति में नवीन स्वस्थ विचार जमाना ही है क्योंकि जब मन की क्रियाओं में दोष आता है, तो अनेक रोग प्रकट होते हैं । मन में आरोग्य स्वरूप होने के संकेत दो, मन में सामर्थ्य स्वरूप और बल स्वरूप होने का प्रबल प्रयत्न करो । प्रतिभाशाली तथा असाधारण बल की भावना प्रचुरता से आने दो । बलवान्, सबल, शुद्ध हितकर विचारों को ही स्वीकार करो । शुभ चित्रों से ही अपने मन मन्दिर को भव्य चित्रों, आशामय तस्वीरों से सजाना सीख लोगे, तो कदापि रोगी न होगे । मन की पवित्रता से आनन्दमय जीवन बन जायगा ।

## हृदय पर शक्ति का प्रभाव

भय के अनिष्ट विचारों से हृदय तथा फेफड़ों पर घातक प्रभाव पड़ता है । भय का विचार आते ही मनुष्य सीना दबा कर निश्चेष्ट बैठ जाता है । श्वास क्रिया में रुकावट पैदा होती है ।

आनन्द और उत्साह के विचारों से सीना फूल उठता है । हृदय में मस्ती आती है । श्वास लेने में सरलता अनुभव होती है । अंग-अंग फड़क उठता है । कभी-कभी तो क्षण भर में आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई पड़ता है ।

हमारे शरीरस्थ अन्तःप्रवाह की उष्णता कम या अधिक करने, गति तीव्र या न्यून करना हमारे अपने हाथ की बात है । सद्विचार की वाणी लगाकर हम है इच्छानुसार इस गति में परिवर्तन कर सकते हैं ।

इच्छाशक्ति ही विचार उत्पन्न करने की शक्ति है और विचारों से ही इस शक्ति का निर्माण होता है । इसलिए इच्छाशक्ति कम होने पर एच्छिक विचार निर्माण करना कठिन हो जाता है क्योंकि भय के विचार से हमारी भावोत्पादक शक्ति निर्बल हो जाती है ।

सदा सर्वदा स्वास्थ्य, आनन्द एवं शक्ति के विचार मन में आने दीजिये । अनन्त शक्ति के केन्द्र परमात्मा से अपना सम्बन्ध जोड़िये जब हम आध्यात्मिक जीवन का अनुभव करने लगते हैं जब हम पूरी तरह यह निश्चय कर लेते हैं कि देवी तत्व से हमारी एकता है, तब हमारी सब विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं । हमारे पाप और बीमारियाँ शान्त होने लगती हैं । मनुष्य उतना ही महान होगा जितना वह अपनी आत्मा में सत्य, दया और प्रेम का विकास करेगा और इन सब के मूल परमात्मा से सम्बन्ध स्थिर करेगी ।

एक्य हमारी आत्मा का गुण है । प्रेम, न्याय, सौन्दर्य के हम तत्व हैं । इस बात को अन्तर्मन में दृढ़ कर लेने से हमें अपूर्व शान्ति का अनुभव होने लगता है । निर्मलता के दर्शन होने लगते हैं तथा आत्मा आध्यात्मिक भवन पर बहुत ऊँची चढ़ जाती है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


## हमारे कल्पित भय

हम देखते हैं कि अनेक व्यक्ति काल्पनिक शत्रुओं के विचारों से उद्विग्न हो उठते हैं, उसके मन में व्यर्थ की शंका प्रस्तुत रहती है । असत् चिन्तन से उनका जीवन भार स्वरूप हो उठता है वे कहते हैं–"भाई अब थक गये जिन्दगी से बाज आये हमें मौत उठा ले तो श्रेष्ठ है हमारा दुनियाँ में कौन है ।" इस प्रकार चित्त विक्षिप्त हो जाता है और उसकी स्थिरता विलुप्त हो जाती है । अशान्ति और भय के विचार आत्मा पर आधिपत्य नहीं करने देते ऐसे निष्प्रयोजन चिन्तन से कितने ही व्यक्ति मस्तिष्क का दुरुपयोग कर रहे हैं ।

हमारे दु:ख, हमारी तकलीफें, हमारा वातावरण नब्बे फीसदी हमारे अपने उत्पन्न किए हुए हैं । अनेक विकट प्रसंग हमारी मिथ्या कल्पना के सहारे विनिर्मित हैं । जो व्यक्ति संक्षय भावना लेकर कार्य में प्रविष्ट होकर चूहे मक्खी तक से भयभीत होता रहे और नर्क की यन्त्रणा भोगा करे, उसकी कायरता, निराशा विकृत मन की प्रतिक्रिया ही है ।

## बुरे विचारों से प्राणशक्ति का क्षय

अपने आपको छोटा, कमनसीब और दीन हीन मानने वाला, अन्धकार, भयविचार रखने वाला नास्तिक है । निराशा जनक विचार रखने से कमनसीबी का रोना रोने से मनुष्य अपने मनोवांछित पदार्थ से दूर-दूर हटता जाता है । आत्महीनता, कायरता या अप्रासंगिक दुर्बलता मनुष्य का जन्मजात गुण नहीं है । निरन्तर वैसे विचारों के सम्पर्क में रहने से अशुभ संस्कार अन्तर्मन में दृढ़ होते हैं और हमारा आत्मविकास रुक जाता है ।

अतएव जो व्यक्ति निरन्तर यह विचार करता है कि मैं पापी हूँ, दोषी हूँ, अज्ञानी हूँ, अधम हूँ, मन्दमति हूँ, दरिद्र हूँ, बूढ़ा हूँ तो वह विचार द्वारा अपने चारों ओर रेशम के कीड़े की तरह वैसा ही वातावरण बनाता है, वायुमण्डल से वैसे ही तत्व खींचता है और अन्त में पापरूप, दोषरूप एवं रोगरूप बनता है ।

बुरे विचार अन्धकार की वस्तु है । चिन्ता, व्यग्रता, क्रोध, चिड़चिड़ापन उसी अन्धकार के फलस्वरूप हैं । ये ही मानव जीवन को संकुचित एवं संकीर्ण बना रहे हैं । ये ही हमारे मनोवेगों को प्रदीप्त करते हैं । दुर्बल चित्त और अज्ञानी ही इन मनोविकारों के चंगुल में फँसते हैं ।

## पुनः शिक्षा की योजना

पाश्चात्य मनोविश्लेषण के आचार्य फ्रायड ने मन की गुप्त चेष्टाओं का अध्ययन करने के लिए एक नवीन विधि निकाली है, उनका प्रधान कार्य प्रसुप्त वासनाओं को, जो रोग का कारण होती हैं, चेतना के समक्ष लाना था । रोगी को संकेत दे देकर उसके मन के गुप्त प्रदेश से ये छिपी हुई वासनाएँ निकाली जाती थीं । जब चेतन मन इन प्रसुप्त वासनाओं को स्वीकार कर लेता है तो रोग का अन्त हो जाता है । फ्रायड इस मनोविश्लेषण की पद्धति को सेंथेसिस कहते थे ।

केथासिस मानसिक शान्ति प्राप्त करने का उत्तम उपाय है किन्तु यह स्थायी नहीं । स्थायी मानसिक शान्ति के लिये मन से पुराने दुष्ट संस्कार निकालना ही काफी नहीं है । खाली मन शैतान का घर है । अत: दबी हुई कुत्सित वासनाओं को निकालकर उनके स्थान पर मन में पवित्र स्वास्थ्य वर्द्धक और नवीन विचारों के बीज जमाना है । जैसे कटीली झाड़ियों को साफ कर देने पर भी यह डर रहता है कि वे पुन: न उग आयें, इसी प्रकार प्रसुप्त वासनाओं की जगह नवीन संस्कारों को जमाना अति आवश्यक है । निरन्तर उन्हें दृढ़ करके स्थायी मानसिक शान्ति प्राप्त की जा सकती है ।

स्मरण रखिये, बुरे, कलुषित, अनिष्ट संस्कारों का प्रतिकार शुभ, पवित्र, कल्याणकारी शुभ संस्कारों से हो सकता है । अनिष्ट संस्कार कुटिल और असत्य शिक्षा के प्रतीक हैं । ऐसी शिक्षा सर्वनाश कारिणी है ।

## अपने हितैषी बनो

अपने को उत्तम अवस्था में रखने तथा अपनी शक्तियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए मनुष्य को उचित है कि वह मानसिक दृष्टि से अपना हितैषी बने अर्थात् अपने विषय में सदा सर्वदा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उत्कृष्ट विचार ही रक्खे । निज जीवन के प्रति जैसी हमारी व्यक्तिगत भावना, दृष्टिकोण तथा कल्पना होगी, उसी के अनुसार हमारी जीवन यात्रा मृदु अथवा कर्कश होगी । यदि एक व्यक्ति सुखी एवं समृद्ध है तो उसका प्रधान कारण यह है कि वह सदा सर्वदा शुभ भावना में निवास करता है । यदि कोई व्यक्ति क्लान्त है, दु:खी है, विक्षुब्ध है तो इसका विशिष्ट कारण यह है कि वह मन की क्रिया को चिन्ता, सन्देह, कृशता के कुत्सित चिन्तन में ही समाप्त कर देता है ।

सुख तथा दु:ख समृद्धि तथा गरीबी, उदारता एवं संकीर्णता, मानव समाज की उत्कृष्ट एवं निकृष्ट दो भूमिकाएँ हैं । ये दोनों मनुष्य के स्वभाव तथा अभ्यास के परिणाम हैं । दृढ़ इच्छा अभ्यास से मनुष्य निम्न स्थिति से उच्च स्थिति में प्रवेश कर सकता है । जब कभी हम लोग अपने विषय में विचार करें तो सदा अपने को सुन्दर और स्वस्थ समझें । जिस बात से हमारा गौरव मान या महत्त्व घटता हो, उसे न तो कभी देखो और न कभी सुनो ।

## निराशावाद तथा आशावाद

एक व्यक्ति आशावाद के स्फूर्तिदायक वातावरण में जन्म लेता है, जीवन की प्रकाशमय बाजू ही देखने का अभ्यासी है । उत्कृष्ट विचारधारा में तन्मय रहता है और श्रद्धापूर्वक अपने उज्ज्वल भविष्य पर दृढ़ विश्वास रखता है । श्रीकृष्ण नाम के स्मरण मात्र से प्रायश्चित, पाप-ताप समस्त नरक की यन्त्रणाएँ निर्मूल करता है, अपने समस्त कार्य भगवान की सेवा समझकर करता है । मन को असत् के प्रपंच से हटा कर सत् चित् आनन्द पर मन:क्रिया केन्द्रित करता है । वह अपनी आदत के कारण सुखी है । कलिकाल रूपी तीखी दाढ़ों वाले कराल सर्प का उसे कुछ भय नहीं है ।

दूसरा व्यक्ति वह सन्देहान्वित और शंकाशील मन से अपना जीवन-नाटक प्रारम्भ करता है । वह असत चिन्तन में प्रतिकूल प्रसंगों में लिप्त रहता है, उसका मिथ्या गौरव जरा-जरा दूर पर घायल होता है, उसका जीवन-पुरुष अर्द्धविकसित अवस्था में ही मुरझाने लगता है । अयोग्य एवं अभद्र वृत्तियों तथा असत् चिन्तन से वह सदैव खिन्न एवं क्षुब्ध बना रहता है । निराशावादिता के कारण उसकी आत्मा मलीन संकीर्ण एवं अनुदार हो जाती है । किसी ने कुछ तनिक सा भी विपरीत कहा कि आकाश पाताल एक कर देता है । दु:ख, क्लेश, खेद और पश्चाताप से उसका चित्त छटपटाता रहता है । यह व्यक्ति स्वयं अपनी उद्विग्नता के लिए जिम्मेदार है ।

अपने मानसिक प्रवाह से अनन्त शक्ति के महासागर परमात्मा की ओर प्रवाहित करने या न करने पर मनुष्य की आत्मिक पूर्णता, उसका सौभाग्य, सच्ची समृद्धि और आत्मिक वैभव निर्भर है । संसार की विद्याओं में वही विद्या सर्वोपरि है, जो हमें पोषक-शक्ति संचय करना सिखाती है तथा जीवन को स्थायी सफलता से विभूषित करती है ।

आन्तरिक प्रदेश में नैसर्गिक रीति से चलने वाली आध्यात्मिक क्रिया की ओर मानस नेत्र में एकाग्र रखने से विचारों में यथार्थता उत्पन्न होती है । बलात्कार से अथवा अत्यन्त आग्रह से या केवल ऊपर से की हुई क्रियाएँ मन को बलवान नहीं बना सकतीं । शक्तिशाली मन आप में एक शक्ति एवं सामर्थ्य है क्योंकि आन्तरिक मन में जो कुछ भी अमर्यादित है, उसे बाहर प्रकाशित करता है ।

विश्व में सबसे अधिक महान कार्य अपने दृष्टिकोण को बदलना है । आशावादी दृष्टिकोण लेकर मनुष्य को प्रतीत होता है कि यद्यपि शरीर लघु है किन्तु मनुष्य मन विश्व का एक महान आश्चर्य ही है ।

मनीषियों के अनुसार मनुष्य अल्पज्ञ जीव नहीं है । एक नि:सत्व परिमाणु नहीं या हाड़-माँस का शरीर नहीं वरन् आत्मा-महान आत्मा-परमात्मा है, हम में उच्च दैवी सम्पदा दैवी तत्व, अंश विद्यमान है, पूर्णता भरी हुई है । हम दैवी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हों । हमारी अद्‌भुतता और विशालता सर्वोच्च है । हम में ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट विभूति है । इसी का विचार करें । इन्हीं विचारों को मन के गुप्त प्रदेश में सजायें । इन्हीं में साँस लें । इन्हीं की चर्चा करें । इन्हीं की कामना करें । इन्हीं को बाह्य जीवन में प्रकट करें । इन्हीं पवित्र भावनाओं को अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित करें ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


## व्यर्थ दोषारोपण न कीजिए

तुम व्यर्थ दूसरों को दोष देते हो, व्यर्थ में बड़बड़ाते, चिढ़ाते उद्विग्न होते हो, बेफायदा उद्विग्न होते हो । अपने दूषित विचारों के कारण तुम व्यर्थ अपने पांव में कुल्हाड़ी मार रहे हो । तुम्हें चाहिए कि अपनी भावना में परिवर्तन करो, आत्मा में रमण करो, आदर्श पर दृढ़ रहो और अपनी पूर्णता का साक्षात् नमूना रक्खो, सुख स्वप्न देखने की आदत बनाओ । मन के रोग, क्लेश, चिन्ता, न्यूनता, पराजय का विचार, वहिष्कृत कर दो । मन में यौवन के सुखद विचारों के आनन्दाब्धि में हिलोरें उठाते रहो । आप मन में अपने प्रति उन्नति, सफलता एवं सिद्धि के शुभ मानस चित्र देखने की आदत बना लीजिये । मानस-चित्रों में विलक्षण शक्ति है ।

सर्वप्रथम अन्तःकरण में जमी हुई मन का मैल (निंद्य एवं छुद्र वस्तुओं का चिन्तन) धो डालो, फिर आत्म विश्वास द्वारा तुम जितना भी उच्च सोच सकते हो, जितना भी उच्च सोच सकते हो, जितना उत्कृष्ट आदर्श समुपस्थित कर सकते हो, जितना निर्मल हितकारक प्रकाश उद्भाषित कर सकते हो उतना सुस्पष्ट आदर्श हृदय पर अंकित करो । तुम्हारे आदर्श के मूर्तिमान होने के लिए एक सुनिश्चित रूप मानसिक चक्षुओं के समक्ष होना अनिवार्य है । जैसे-जैसे तुम हित की भावना पर चित्त एकाग्र करोगे, वैसे-वैसे तुम मन की गूढ़ सामर्थ्यों को प्रकट करोगे और विशेष रूप से महान बनते जाओगे ।

हितैषी विचारों पर आरूढ़ रहने से उनका आविष्करण करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है तथा कार्य प्रणाली शक्तिमती होती है । इसके विपरीत दुष्ट विचारों से संघर्ष करने से वे अधिकाधिक प्रबल होते हैं । अतः उधर से विमुख होकर रचनात्मक विचारों में संलग्न होना श्रेयस्कर है । तुम चाहे संसार में किसी भी स्थिति में क्यों न हो, हितैषिता सदैव कल्याणकारी है जब तुम अपने अन्तस्तम प्रदेश में पूर्ण रूप से शुभ भावना जाग्रत कर लोगे, विद्युत वेग से प्रवाहित होने वाली मन की क्रिया को हितैषिता की दिव्य ज्योति से दैदीप्य मानकर चल सकोगे तब तुम्हें पूर्ण ज्ञान तथा अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा । हितैषिता की भावना द्वारा जितने अंशों में हम अपने आन्तरिक जीवन का विकास कर सकेंगे, उतने ही अंशों में उसका यथार्थ उपयोग भी कर पायेंगे ।

जो व्यक्ति अपने अन्तःकरण की निकृष्ट वासनाओं को तिलांजलि दे कर सब आत्म प्रदेश में प्रविष्ट हो जाता है, वह निराशा-निशा में नहीं भटकता, मुहर्रमी सूरत बनाये व्यर्थ की आहें नहीं भरता । उठो, जाग्रत हो जाओ । शक्ति का संचय करो, तेज को धारण करो । अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करो । दृढ़ निश्चय और आत्म विश्वास को हृदय में धारण करो और अग्रसर होओ । जो आगे बढ़ेगा, वही विजयी होगा । जो निष्क्रिय बैठा रहेगा वह पतन के पंक में धस मरेगा । स्मरण रहे, तुम लघु नहीं हो । लघुता, कमजोरी, हीनता में विषैले कीटाणु अपने विचार क्षेत्र से निकाल फेंको । तुम शुद्ध हो । तुम प्रकाश-स्वरूप हो । तो क्या जैसे तुम हो, जैसा तुम्हारा स्वरूप है, वैसा आचरण न करोगे ?

तीव्र प्रवाह में प्रवाहित क्षुद्र तिनके की तरह बहाव में यों ही बह जाने के लिए तुम नहीं बने हो । तुम महान पिता के अमृत पुत्र हो । तुम्हें पुष्ट हाथ, पांव प्रदान किये हैं जिनके द्वारा तुम मार्ग का कठिनाइयों को सरलता से हटाकर निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ सकते हो । स्व-पथ का निर्माण कर सकते हो । तुम्हें ऊंची मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ उपलब्ध हैं, जिनसे तुम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकते हो । तुम स्वयं अपने काम की रचना करते हो । तुम जो बोते हो वही काटते हो । तुम स्वयं ही, मन की चंचल दशाओं के दास बन कर भटकते हो ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# विचार शक्ति द्वारा समृद्धि प्राप्ति

यों तो संसार में अनेक निंद्य वस्तुएँ मनुष्य का पतन करती हैं किन्तु शायद दुनियाँ की सब से निकृष्ट वस्तु है विचार दारिद्र । विचार दारिद्र ने आज अनेक व्यक्तियों की दरिद्र कठोर शृंखलाओं में जकड़ रखा है, उनमें कुत्सित संकीर्णता, सीमाबन्धन तथा संकुचितता की क्षुद्र वृत्तियाँ उत्पन्न कर दी हैं, मानव जीवन में एक विषम अन्धकार फैला दिया है । विचार दारिद्र ने मानव-समाज का बड़ा अपकार किया है और मनुष्यों की आत्मा को संकुचित पराधीन एवं दीन हीन बनाया है ।

## विचार की दरिद्रता

यह एक निश्चित, अकाट्य, निर्विवाद सत्य है कि विचार की दरिद्रता के कारण मनुष्य दरिद्री बनता है, अपने अन्त:करण में न्यूनता, गरीबी, असमर्थता की वृद्धि करता है । दरिद्रता की दास वृत्ति बहुत कुछ मनुष्यों के विचारों के परिणाम स्वरूप है । हर्ष का विषय है कि धीरे-धीरे मनुष्यों को विचार की अद्‌भुत शक्ति का ज्ञान होता जा रहा है और इस तथ्य पर पूर्ण विश्वास हो गया है कि मनुष्यों को संकुचित, पराधीन, पंगु एवं निकृष्ट बनाने वाले उसके विचार ही हैं ।

अनेक व्यक्ति इस बात का रोना रोया करते हैं कि हाय हमारे पास अमुक वस्तु नहीं है । हम स्वादिष्ट भोजन नहीं कर पाते । उत्तम वस्त्र नहीं पहन पाते । वैसा उत्कृष्ट एवं शान शौकत का जीवन व्यतीत नहीं कर पाते जैसा समाज में अन्य उच्च श्रेणी के व्यक्ति कर रहे हैं ।

ऐसी भयपूर्ण एवं थोथी विचारधारा के कारण अनेक व्यक्ति वायुमण्डल से दरिद्रता की लहरें अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं । लूला, लंगड़ा, नेत्रविहीन, बधिर व्यक्ति यदि दरिद्र रह जाय तो वह इतना तिरस्कार का पात्र नहीं जितना वह भाग्य हीन पुरुष जो अपने मिथ्या विचारों द्वारा संसार की दरिद्रता को खींचा करता है, जो अपने हृदय पटल पर सभी स्थानों में दरिद्रता ही दरिद्रता की कलुषित परछाहीं सदैव बनी रहती है । मैं जिस दरिद्रता का निर्देश कर रहा हूँ वह मनुष्य की स्वयं उत्पन्न की हुई संकीर्णता है ।

## दरिद्रता के कीटाणु क्यों कर फैलते हैं ?

दरिद्रता के अंकुर सर्वप्रथम मनुष्य के अन्त: करण में उत्पन्न होते हैं और तत्पश्चात् इधर-उधर विस्तीर्ण होते हैं । पहले मनुष्य के विचार दरिद्री बनने प्रारम्भ होते हैं । वह दरिद्रता के विचारों में रमण करना प्रारम्भ करता है । अपने को भाग्यहीन, गिरा हुआ, दीनहीन मानकर दरिद्रता और भय के विचार जीवन प्रदेश में दृढ़ता से जमा देता है और उसका प्रभाव एक ऐसा चुम्बक बन जाता है कि जो गरीबी, लाचारी, क्षुद्रता को अधिकाधिक परिमाण में हमारी ओर आकर्षित करके लाता, वह दरिद्र व्यक्तियों की गिरी हुई दशा की ओर आकर्षित होता है । उनके दुखड़े सुनने में दिलचस्पी लेने लगता है, क्रमश: उन्हीं जैसी टूटी-फूटी विचार प्रणाली, उन्हीं जैसी दीन हीन परिस्थिति, उन्हीं जैसी लाचारी तथा असमर्थता की कुप्रवृत्ति से सानिध्य कर लेता है ।

अन्धकार, पतन, भिखमंगे, निकृष्ट विचार उससे दीनता की दुर्भावना उत्पन्न कर देते हैं जिसका भूत सदैव उनके पीछे पड़ा रहता है । अन्तर की दरिद्रता फिर वाह्यांयों पर प्रकट होने लगते हैं । मुख पर क्षुद्रता, असमर्थता, संकीर्णता के कुत्सित चिन्ह प्रकट होने लगते हैं । फिर तो उसकी वस्त्रभूषा, रहन-सहन व वार्तालाप सब ही में दरिद्रता के कीटाणु प्रवेश करने लगते हैं जो उसके निश्चय, संकल्प, श्रद्धा तथा इच्छा की महान शक्तियों एवं सामर्थ्यों का क्षय कर डालते हैं ।

## विचार दरिद्र से ग्रस्त व्यक्ति की विचार प्रणाली

विचार दरिद्र से ग्रसित व्यक्ति यही सोचा करता है कि मेरे भाग्य में विधाता ने दरिद्र ही लिखा है । मैं दरिद्र हूँ तथा सदैव दरिद्र रहूँगा । मेरें लिए संसार

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


के सुख, ऐश्वर्य, समृद्धि नहीं है । मैंने पूर्व जन्म में न जाने कौन ऐसे पाप किये हैं जिनके दण्ड स्वरूप भगवान ने मुझे टूटा छप्पर दिया है । मैं दूसरों की अधीनता, कृपा, इंगित पर ही निर्भर रह सकता हूँ ।

इस प्रकार के संकीर्ण विचारों के कारण मनुष्य की शक्तियाँ पंगु होती हैं । उसे निकट भविष्य में अपनी दुर्गति होती हुई दृष्टिगोचर होती है । अन्तः करण में कभी शान्त न होने वाला अन्तर्द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है । विचार दारिद्र बढ़ जाने पर मनुष्य भिखारी बन जाता है । वह अपनी शक्तियों के प्रति शंकित हो उठता है, उसका आत्म विश्वास उठ जाता है और वह असमर्थ बन जाता है ।

## हमारी गुरुतम त्रुटि

जगत पिता परमात्मा ने सृष्टि में संकीर्णता, सीमाबन्धन या दरिद्रता का स्थान नहीं रखा है । ये कुत्सित वस्तुएँ संसार में नहीं, प्रत्युत हमारे अन्तर में घास फूंस की तरह उग आई हैं । अन्तःकरण में उत्पन्न होकर उन्होंने हमारे आत्म बल तथा गुप्त सामर्थ्य को भक्षण कर लिया है । यही कारण है, कि अनेक व्यक्तियों में शरीर का परिवर्तन तो स्पष्ट दीखता है, किन्तु मन, बुद्धि, अन्तःकरण एवं समृद्धि का विकास किंचित मात्र भी नहीं दिखाई देता ।

इस जगत में दुःख देने वाली एक ही सत्ता है और वह मनुष्य का कर्म है । विचार और कर्म में कोई भेदभाव नहीं है । विचार बीज है और कर्म उसी बीज से उत्पन्न वृक्ष । सुख दुःख उसी के कडुवे मीठे फल हैं । परम शोक का विषय है कि समृद्धि के भण्डार उस जगत में रहते हुए भी हम अपनी आत्मा को संकुचित कर डालते हैं, उसमें दुर्दैव के निरुत्साही विचार भर लेते हैं, भयपूर्ण दरिद्रता व गरीबी टूटे-फूटे विकारों में लिप्त रहते हैं । जितना ही अधिक हम दरिद्र संस्कारों से चिपटते हैं, उतने ही अधिक दुःखी बनते हैं । यह हमारी सबसे बड़ी गलती है । विचार की यह परवशता ही हमें समृद्धि के भव्य मार्ग पर अग्रसर नहीं होने देती है ।

# समृद्धिशाली जीवन प्राप्त करने के उपाय

मन में जिस भावना या विचार का प्रबल संस्कार होता है, मस्तिष्क में उसी प्रकार के जीवाणुओं की रचना होती है । आप चाहे कैसी भी निर्धन अवस्था में हों, मस्तिष्क में यह विचार मत आने दो कि दरिद्रता तुम्हें परास्त कर सकती है ।

यदि हम अपने जीवन के आदेशों को नीचे न आने दें, मन के आन्तरिक प्रदेश में गरीबी के विचार प्रवेश न होने दें, ''बुद्धि मन्द है, भाग्य फिर गया है, गरीबी ही लिखी है ।'' ऐसे विचारों को मस्तिष्क में संग्रह न होने दें, तो निश्चय ही हमारा जीवन परिपूर्ण एवं ऐश्वर्यशाली बन जायगा ।

सम्पत्ति के विचार सम्पत्ति को खींच कर हमारे पास लाते हैं, लक्ष्मी का ध्यान अर्थात् लक्ष्मी का विचार लक्ष्मी को आकर्षित करता है । अतएव यदि आप धन की आकांक्षा करते हैं, तो आपको उन शक्तियों को आकर्षित करना पड़ेगा जिनसे धनोपार्जन में आपकी सहायता हो । दूरदर्शिता, अग्र सोचने की शक्ति, सुबुद्धि, दृढ़ता, निश्चित ध्येय पर ही व्यापार अवलम्बित है । आपके विचार समान विचारों और उसी प्रकार की वस्तुओं को आकर्षित करते हैं । यदि आप दरिद्रता के विचारों को अपने अन्तःकरण में रखेंगे तो दरिद्रता आपकी ओर आकर्षित होकर आयेगी । इसके विपरीत यदि आप मन में संकल्प करें कि आप धनवान होते जा रहे हैं तो यह विचार आपकी शक्तियों को धन खींचने में सहायता प्रदान करेगा । अतः धन चाहो तो उसके ऊपर चित्त को एकाग्र करो ।

## विचारों का स्वभाव

विचारों का स्वभाव है कि उनका अतिथि सत्कार करो तो वे पुष्ट होते हैं, बढ़ते हैं, विकसित होकर नव जीवन निर्माण करते हैं । यदि उन्हें दुत्कार दो, या उनको बेइज्जत कर दो और उचित परवाह न करो, तो वे चले जाते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं । ऐसे विचारों की कब्रें मन में पड़ी रहती हैं । अतः तुम जिन विचारों को अपना मित्र

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


समझो, जिससे अच्छी आदत बनती हो, उत्तम स्वभाव को निर्माण होता हो, उन्हीं का बार-बार चिन्तन करो । अतिथि सत्कार करो । इन भव्य विचारों का तुम्हारे जीवन की प्रत्येक घटना पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा । मनुष्य का जीवन घटनाओं का समूह है और ये घटनाएँ हमारे विचारों के परिणाम हैं । तुम्हारे अन्दर जो विचार शक्ति है, तुम चाहो तो उसके उचित उपयोग से देवता बन सकते हो और यदि चाहो तो पशु भी बन सकते हो ।

## विचार शक्ति का भला और बुरा उपयोग

खेद का विषय है कि हम नित्य प्रति के जीवन में विचार शक्ति का बड़ा अपव्यय करते हैं । जितनी शक्ति फिजूल बरबाद होती है उसके थोड़े से भाग को यदि उचित रीति से इस्तेमाल करें तो स्वभाव तथा आदतें आसानी से बदली जा सकती हैं । जिस समय विचार धारा नीचे से ऊपर को चढ़ती है, तो मनुष्य स्वयं अपना मित्र बन जाता है जब विचार धारा ऊपर से नीचे को गिरती है तो वह अपने आप ही अपना शत्रु बन जाता है । जो अनुपयोगी विचारों को हृदय प्रदेश में आने देता है वह स्वयं अपना शत्रु है । मनुष्य के हृदय मन्दिर में उस दैवी आत्मा का पवित्र अंश प्रस्तुत है । अतएव, उसमें भव्य विचारों को ही प्रविष्ट होने देना चाहिए ।

विचार की गति इतनी तीव्र है कि यह क्षण भर में कहीं से कहीं पहुँचती है । इस तत्व से परिचित होते हुए भी हम ऐसी बातों या वस्तुओं की ओर अपने विचार फेंका करते हैं जिनको हम अपने वास्तविक जीवन में नहीं पा सकते, या जिनको हम अपने वास्तविक जीवन में नहीं चाहते ।

अधिकतर मनुष्यों के मन इतने आलसी बन गये हैं कि विचार करने से उनके सर में चक्कर आने लगता है । जरा मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करने से ही, वे बड़े तकलीफ में पड़ जाते हैं । संकल्प पूर्वक दीर्घ काल तक विचार करने में जितना परिश्रम अनुभव होता है उतना अन्य किसी कार्य में प्रतीत नहीं होता । जिन पुस्तकों, विषयों, बातों, तत्वों को समझने में मस्तिष्क पर किंचित भी परिश्रम न पड़े, ऐसी कहानियाँ तथा लेख पढ़ना ही उन्हें अच्छा लगता है, ऐसा साहित्य ही अधिक खपता है । लोग जब अखबार पढ़ने बैठते हैं तो गम्भीर चीजों को छोड़कर सिनेमा के विज्ञापनों में अधिक आनन्द लेते हैं । ऐसे मनुष्यों की विचार शक्ति अपरिपक्व रह जाती है ।

गम्भीर विचार, चिन्तन, मनन तथा गहरा अध्ययन किये बिना कोई मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता । इधर-उधर की सैंकड़ों बातों से मन को भर डालना और उन पर मन को बन्दर की तरह कुदाने की तरह विचार करना, विचार करने की कला से अनभिज्ञ होने का सूचक है । ऐसी अस्थायी मनोवृत्ति से कोई विचार स्थिर नहीं हो सकता ।

इस प्रकार की लापरवाही करने से विचार शक्ति का क्षय होता है । ऐसे आदमी अपना अवकाश का समय या तो मित्रों के साथ गपोड़े लड़ाने या व्यर्थ की बातें बनाने में व्यय करते हैं या ताश, शतरंज, चाय, कॉफी, बीड़ी इत्यादि पीने में नष्ट कर देते हैं । विचार का कार्य उनके लिए कठिन समस्या हो जाती है । फलतः वे जहाँ होते हैं वहीं पड़े रह जाते हैं । आयु बढ़ती है किन्तु विचार शक्ति एक-एक सूत भी आगे नहीं बढ़ पाती ।

मनुष्य को इस संशय के बन्धन से मुक्त करने वाला 'विचार' के समान अन्य कुछ भी नहीं है । यदि आप उत्तम जीवन के आकांक्षी हैं तो आपको विचार करने का कष्ट करना चाहिए । विचारों के उचित उपयोग से मनुष्य विश्व विजयी बन सकता है । सहस्त्रों आविष्कार, जो आज हमारे जीवन का भाग बने हुए हैं इन्हीं विचारों के परिणाम हैं । अपने विचारों के बल से ही मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों पर प्रभुत्व पाया है ।

## विचारों में बल क्यों कर आता है ?

सूर्य की किरणें आतिशी शीशे द्वारा एक ही केन्द्र पर डाली जाती हैं तो अग्नि उत्पन्न हो उठती है । इसी प्रकार विचार एक केन्द्र पर एकाग्र होने से

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बलवान बनते हैं । हमारी विचार शक्ति की ताकत हमारे मन की एकाग्रता पर निर्भर है । बिना एकाग्रता के मन में बल नहीं आ सकता । जिस मनुष्य ने थोड़ी या अधिक महत्ता संसार में प्राप्त की है, उनका मन्त्र विचारों की एकाग्रता ही रहा है । केवल परमार्थ के क्षेत्र में ही नहीं, संसार के व्यवहारिक कार्यों में भी एकाग्रता की बड़ी आवश्यकता पड़ती है ।

परमार्थ में जिस प्रकार वशिष्ठ, बाल्मीक, व्यास आदि ऋषियों ने सर्वोत्तम पद प्राप्त किए, उसी प्रकार दिलीप, नल, मान्धाता, अशोक आदि राजाओं ने भी सार्वभौम पद प्राप्त किया । ल्यूथर इसी के बल पर धर्मोपदेशक बना, क्रोमबेल को इंगलैण्ड का राज्य मिला, विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी बनी । यह हैं विचार की एकाग्रता के चमत्कार ।

## विचार एकाग्र करने की विधि

प्रत्येक तुच्छ से तुच्छ कार्य सर्वोत्तम रीति से करने और चाहे जैसे हल्के से हल्के काम को अत्यन्त सावधानी से करने पर ही एकाग्रता सिद्ध हो सकती है । कितने ही व्यक्ति कागज की पुड़िया ठीक तरह नहीं बांधते, चिट्ठी पर टिकट अच्छी तरह नहीं चिपकाते । अनेक व्यक्ति उत्तमता से कोई चीज भी खाना नहीं जानते, पानी पीते हुए उड़ेल देते हैं, वस्त्रों को ऊट पटांग फेंक देते हैं, किताबों के पृष्ठ मोड़ देते हैं, अपना जन्म दिन याद नहीं रखते,—ये सब सावधानी के लक्षण हैं । एकाग्रता सिद्धि के लिए प्रत्येक कार्य जितनी अच्छी तरह हो सके किया जावे, पूरी-पूरी सावधानी बरती जाय, उत्तमता प्राप्त की जाय । प्रत्येक कार्य संभाल कर उत्तमता से करने की आदत पड़ जानी चाहिए । एकाग्रता संपादन करने का यह एक सरल उपाय है ।

जिस विषय अथवा चिन्तन योग्य उच्च विचार या पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा हो, उस पर मन की वृत्तियों को गढ़ा दो, उसी पर चिन्तन करो, सोचो, प्रत्येक पहलू से विचारो, अन्य सब विचारों को मन से निकाल दो । उस समय एक ही विचार पर समस्त मानसिक क्रिया उड़ेल दो ।

एकाग्रता के लिए एक विद्वान ने निम्न युक्ति बतलाईं हैं । प्रत्येक बार तीन-तीन जोड़ते हुए दो अंक से प्रारम्भ करो । जैसे-२+३=५, ५+३=८ इसी प्रकार ११ और १४ इत्यादि । या दो से आरम्भ करके प्रत्येक बार ६, ७, ९, १३ या जोड़ते हुए चले जाओ । दूसरी रीति १०० से आरम्भ करके प्रत्येक बार ३, ५, ७, ९, या १७ घटाते जाओ । तुमको यह उपाय खेल मालूम होगा किन्तु एकाग्रता की साधारण शक्ति भी न होने से ऐसा करना असम्भव है ।

जो कुछ पढ़ो, सुनो, समझो, देखो उसको बार-बार स्मरण करो । चित्त को उन पर एकाग्र करो । मन को अत्यन्त एकाग्र करने से ही उसका बल पोषण प्राप्त करता है ।

## प्रत्येक विचार मस्तिष्क का एक मार्ग है

मनोवेत्ताओं का अनुभव है कि हमारे प्रत्येक विचार मस्तिष्क में एक मार्ग बनाता है तथा उस निर्दिष्ट मार्ग पर वैसे ही अन्य विचार आकर उठते रहते हैं । पहले एक छोटी सी पगडन्डी बनती है फिर वही बढ़ कर वृहताकार की हो जाती है । पहले जब कुविचार मन में प्रवेश करता है तो एक मामूली सी लकीर बनाता है, फिर, वैसे ही मिथ्याविचार आलस्य, निरुद्यमता आदि तमोगुणी भाव प्रकट कर उस मानसिक मार्ग को और भी बड़ा बनाते हैं । बार-बार वैसे ही विचार आने से वे स्वभाव के सगे बन जाते हैं । सुख तथा दुःख हमारे इन मानसिक मार्गों की ही प्रतिक्रियाएँ हैं । एक ही प्रकार के सैकड़ों विचारों द्वारा ये आन्तरिक प्रदेश में दृढ़ता से जम गए हैं ।

दुष्ट विचार तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु है । पाप का विचार चोरी, कपट, ईर्ष्या, निराशा का विचार तुम्हारा सर्वनाश कर सकता है । ईश्वर का एक मानसिक चित्र अन्तःकरण में तैयार कर लो और सत्य, प्रेम, न्याय से अपना हृदय नित्य विकसित करते रहो । स्वतन्त्रता, स्वछन्दता और शान्ति के विचार तुम्हारे दोस्त हैं । ये तुम्हें सिखाएंगे कि जीवन पूर्ण सुखमय है तथा उसके अनुभवों से झगड़ना मूर्खता में शामिल है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


## दुष्ट विचारों से मुक्ति का उपाय

स्वेट मार्डन साहब ने अपनी पुस्तक शुद्ध विचारों के चमत्कार में दुष्ट विचारों से मुक्ति का रहस्य समझाया है । दुष्ट विचारों के आने का अर्थ है कि आत्मविश्वास तथा इच्छा शक्ति की न्यूनता । जब आपको मालूम हो कि दुष्ट विचारों का आक्रमण हो रहा है नीच विचार मन में उत्पात मचा रहे हैं तो निम्न लिखे अनुसार किया कीजिये ।

आप फौरन कार्य करना बन्द कर दीजिये और अपने गृह से बाहर निकल कर किसी शान्त स्थान में चले जाइये । आपकी शान्ति भंग करने वाला अन्य कोई साथ न हो । सम्भव हो तो किसी प्राकृतिक सौन्दर्य से विभूषित स्थान पर चले जाइये वहाँ शान्त चित्त बैठ जाइये । भय, चिन्ता, शोक, मोह, काम, संसार के अन्य विषयों से चित्त को हटा लीजिये । हटाने की विधि यह है कि मन में यह सोचो कि मैं अपने अन्त:करण से उन कुविचारों को बाहर फेंकता हूँ जो मेरी मानसिक एकाग्रता में विघ्न डालते हैं और मेरे मन को ठीक नहीं रहने देते । मैं परमात्मा के साथ एक हूँ मुझमें तो उन्हीं का भव्य प्रकाश हो रहा है । प्रत्येक अंश उसी दिव्य अंश से ओत-प्रोत है । मेरे सामर्थ्य के सन्मुख कोई विचार मुझे व्यक्त नहीं कर सकता । मुझमें बुरे विचार ठहर नहीं सकते ।

विचार करते समय आप केवल उन तत्वों, दृश्यों, वस्तुओं पदार्थों का ही चिन्तन कीजिए, जो सुन्दर तथा आनन्द पूर्ण हों । आप ऐसा निश्चय कीजिए, कि अब हमारे मन में आनन्द पूर्ण विचारों ही का प्रवाह बहेगा । उदासीनता के विचार मेरे पास फटकने तक न पावेंगे । इस तरह के विचारों में दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेते रहिये और विजयी की तरह अपने आसन से उठिये । आप में दिव्य शक्ति तथा नवजीवन का संचार होता हुआ दिखाई देगा ।

आप स्मरण रखिये कि नीच विचार रखना खतरे से खाली नहीं है । एक विद्वान का कथन है कि बेईमानी, धोकेबाजी, खुदगर्जी के विचार लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत हानिकारक हैं । इस प्रकार के विचारों वाले व्यक्ति को पग-पग पर घृणा, बदनामी, अपमान, उपहास, अविश्वास का सामना करना पड़ता है । ओछी मनोवृत्ति एक प्रकार की अग्नि है जो मस्तिष्क की सारी शान्ति और प्रसन्नता को जला कर खाक कर देती है । जो कमीने विचारों को मन में स्थान देता है उसका अन्त:करण मरघट की तरह सुलगता रहता है ।

जिसने मन की उच्च भूमिका में प्रवेश कर लिया है, जो कर्तव्य धर्म को प्रधानता देते हुए कार्य करते हैं वे दिन पे दिन आत्मिक और सांसारिक उन्नति के मार्ग पर बढ़ते जाते हैं । नीच विचारों को स्थान देना जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर डालने वाला एक खतरा है जिससे हर किसी को सावधान रहने और बचने का प्रयत्न करना चाहिए ।

## आत्म निरीक्षण कीजिए

अत: आप दुष्ट विचारों से बचना चाहते हैं तो निद्रा से पूर्व आत्म निरीक्षण किया कीजिए । सोचिए कि आज आपने क्या बुराई की ? कौन-कौन से दुष्ट विचार आपके मन:क्षेत्र में प्रविष्ट हुए ? आज आपसे कौन पाप हुआ ? किस-किस की निन्दा की ? किससे ईर्ष्या की ? किसकी चुगली खाई ? किस का जी दुखाया ? अपने प्रत्येक कार्य को याद कीजिए तथा उन पर बार-बार विचार कीजिए । जो जो पाप हुए हों उनके लिए हार्दिक पश्चाताप कीजिए तथा भविष्य में कभी न करने का संकल्प कीजिए ।

प्रतिमास पुन: अपनी परीक्षा करो । देखो तुम अपनी विद्या, बुद्धि, योग्यता तथा सामर्थ्यों में कहाँ तक बढ़े हो ? कौन-कौन निर्बलताओं ने तुम्हें अस्त-व्यस्त किया है ? कितना मार्ग और तय करना शेष रह गया है ? तुमने कहाँ से, किस उद्देश्य से, जीवन यात्रा आरम्भ की थी ? कहाँ तक तुम सफलता प्राप्त कर सके हो ।

हम यहाँ आत्म परीक्षा के निमित्त कुछ चार्ट प्रस्तुत कर रहे हैं । इन सभी प्रश्नों के नम्बर देना चाहिए । इन प्रश्नों को पृथक् एक नोट बुक में लिख लीजिए और प्रत्येक मास की पहली तारीख को सच्चाई के साथ नम्बर दीजिए । आपकी बड़ी ईमानदारी के साथ नम्बर देने चाहिए । इस प्रकार चलने से वर्ष के उपरान्त देखिये कि उन्नति की दौड़ में आप कितने आगे बढ़ गये हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


## स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न समूह

क्या मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ ? क्या मुझे भूख खुलकर लगती है ? क्या मुझे शौच कर्म ठीक-ठीक होता है ? क्या मैं नियमित रूप से ब्रह्म मुहूर्त में शय्या त्याग करता हूँ ? क्या मेरे शरीर में स्फूर्ति रहती है ? दिन भर में मेरा कितना व्यायाम हो जाता है ? मुझे अश, शोथ, संग्रहणी, ज्वर, कब्ज, कृमि, खांसी, बहुमूत्र, रक्त पित्त, कानों का रोग, नेत्र रोग इत्यादि में से जो कोई रोग तो नहीं है ? मैंने इस मास कितनी बार स्त्री प्रसंग किया ? क्या मुझे स्वप्न दोष होता है ? मैं किन-किन मादक द्रव्यों को छोड़ चुका हूँ ? मेरे भोजन में विटामिन दूध, दही, शहद, फल व तरकारियों की मात्रा कितनी बढ़ रही है ? क्या मैं शक्ति संचय के पथ पर हूँ ?

## बुद्धि सम्बन्धी प्रश्न समूह

क्या मैं अपने साथियों की दृष्टि में बुद्धिमान हूँ ? क्या मेरे मन में उच्च विचार आते हैं ? क्या मैं भूत, भविष्य की बातें सोचा करता हूँ ? क्या मैं बुरे विचारों को रोकने में समर्थ हूँ ? क्या मैं दृढ़ निश्चय करता हूँ ? क्या मुझे प्रलोभन विचलित कर देते हैं ? क्या मैं सदा न्याय का पक्ष लेता हूँ ? क्या मैं अपनी उत्तम प्रेरणाओं को जीवन में प्रकट कर रहा हूँ ? क्या मैं अपनी बुद्धि की वृद्धि कर रहा हूँ ? इस मास में मैने कितना ठोस साहित्य पढ़ा तथा नित्य प्रति के जीवन में इस्तेमाल किया ?

## आध्यात्मिक उन्नति सम्बन्धी प्रश्न समूह

क्या मुझे आत्मा ईश्वर तथा अपने सामर्थ्यों में विश्वास है ? क्या मैं अशान्त, विक्षुब्ध तथा चंचल रहता हूँ ? क्या मैं अपना अधिकांश समय शृंगार, प्रमोद, क्रीड़ा में ही व्यर्थ बरबाद कर देता हूँ ? क्या मैं इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार रखता हूँ ? मेरा मन किन-किन भावनाओं से भरा रहता है । मैं कितना समय जप, योग, नियम, प्रार्थना, सन्ध्या पूजन में व्यतीत करता हूँ ? क्या मैं अनासक्त होकर संसार के समस्त कार्य करता हूँ ? क्या मेरे अन्तःकरण में सद्बुद्धि का राज्य है ? मैं अपनी आत्मा में कितनी देर लीन हो सकता हूँ ? क्या संसार की हलचलें मेरी मनःशान्ति को भंग कर देती हैं ? मैं अब कितनी देर चित्त संयम कर लेता हूँ ?

## समाज सम्बन्धी प्रश्न समूह

क्या मैं बिना हिचकिचाहट के समाज के सामने अपने भाव रख लेता हूँ ? क्या मेरे रहने का ढंग, वस्त्राभूषण, व्यवहार, आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं ? क्या मेरा विचार समाज की कुरीतियों, रूढ़ियों मिथ्यावादों को उखाड़ने का है ? क्या मैं अपनी आवश्यकता की वृद्धि कर रहा हूँ ? इस बार मैंने कितना धन दान में दिया है ? क्या लोग मेरा आदर करते हैं ? क्या बात करने को उत्सुक रहते हैं ? मेरे मित्र कौन-कौन हैं ? उनके चरित्रों में कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं ? क्या परदोष दर्शन में बिरत रहता हूँ ? क्या मैं दूसरों के दृष्टिकोणों को सहानुभूति पूर्वक देखता हूँ ? मैं कौन से कार्य समाज सेवा की दृष्टि से कर रहा हूँ ?

## विविध विषयक प्रश्न समूह

क्या मुझे ईश्वर में अखण्ड विश्वास है ? इस मास मुझे कौन-कौन से विचित्र अनुभव हुए हैं ? क्या मैं खरा हूँ ? चापलूस हूँ ? खुद गर्ज हूँ ? व्यभिचार की ओर आकर्षित तो नहीं हो रहा हूँ ? क्या मैं अपने जीवन को निरर्थक, अनुचित, तथा अनुपयोगी कार्यों में व्यय कर रहा हूँ ? क्या मेरे जीवन में सुख शान्ति, समृद्धि है ? क्या मैं सच्चे हृदय से मन्दिर, गिरजे तथा मस्जिद में जाता हूँ ? क्या मेरा जीवन प्रेम के सिद्धान्त पर अवलम्बित है ? क्या मैं प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का दर्शन करता हूँ ? अभी तक मैंने कौन-कौन से अच्छे कार्य किये है ?

बस आज से ही उत्तम प्रश्नों को डायरी में लिख लीजिए और प्रतिमास ईमानदारी और विशुद्ध भावना से नम्बर देना प्रारम्भ कीजिए फिर देखिये आपकी उन्नति किस द्रुतगति से होती है । किसी दिन आवेश में आकर उन्नति के हेतु एक दम प्रयत्न करने के लिए कमर कस कर जुट जाना बड़ा आसान है, परन्तु नित्य ही बिना रोक टोक के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आगे बढ़ना आत्म परीक्षक के लिए ही सम्भव है । तुम कितने आगे बढ़े हो, यह तुम्हारी डायरी ही बता सकती है ।

## तुम्हें विचार तथा संकल्प का सहयोग चाहिए–

विचार शक्ति का संकल्प अनेक रूप से हमारे सारे जीवन में विश्व की समस्त क्रिया में व्याप्त हैं । संकल्प विचार का स्थिर स्वरूप है । वह विजय तथा क्रिया के मध्य की स्थिति है । अत: विचार तथा संकल्प एक दूसरे के विरोधी नहीं पूरक हैं । एक की उन्नति के ऊपर दूसरे की उन्नति निर्भर है । यदि विचार शक्ति, संकल्प शक्ति के सहयोग में कार्य नहीं करती तो यह केवल मिथ्या कल्पना बन कर रह जाती है, वस्तु जगत में स्थूल स्वरूप ग्रहण करने की क्षमता उसमें नहीं आती । संकल्प दृढ़ हों, वे जीवित हों ।

संसार में अनेक व्यक्ति हैं जिनके पास जीवन को परिपुष्ट बनाने वाले संकल्पों, विचारों की कमी नहीं है, हृदय सरोबर में नित्य, नवीन आशापूर्ण तरंगे उद्वेलित हुआ करती हैं, मन में अनेक दिव्य भावनाओं का उदय होता रहता है किन्तु इन समृद्ध विचारों तथा संकल्पों के होते हुए भी, वे अनेक अर्थों से जहाँ थे वहीं है: तिल भर भी आगे नहीं बढ़े । सफलता प्राप्त नहीं हुई । ज्यों के त्यों किंकर्तव्य विमूढ़ दीन अवस्था में पड़े दिनों को धक्के दे रहे हैं । वे जीवन में उन्नति करना चाहते हैं, अपने चमत्कार दिखाना चाहते हैं किन्तु उन्नति की सच्ची अभिलाषा होने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ । जंग लगी हुई मशीन के पुर्जे की भाँति एक ही स्थान पर पूर्ववत् स्थिर हैं । इसका क्या कारण है ?

## विचारों को क्रियात्मक रूप दीजिए

विचार संसार की सबसे महान शक्ति है किन्तु असंगठित, अव्यवस्थित और कोरे काल्पनिक किताबी विचार केवल दिल बहलाव मनोरंजन की सामग्री है । जिस प्रकार आप कुछ देर के लिए उपन्यास अथवा दिल बहलाने वाली कोई पुस्तक लेकर अपना मनोरंजन कर लेते हैं, उसी प्रकार इन शुभ विचारों में रमण कर कुछ देर के लिए हम उनकी शक्तियों पर चमत्कृत हो लेते हैं ।

हमारी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि हम उन विचारों को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान नहीं करते । उनको जीवन व्यतीत करने का मौका नहीं देते । पुस्तकों में वर्णित स्वर्ण सूत्रों को कार्य रूप में परिवर्तन करने के लिए प्रयत्नशील नहीं होते । उनके अनुसार जीवन को नहीं मोड़ते । शिक्षाओं पर दत्तचित्त, एकाग्र, दृढ़ता पूर्वक अमल नहीं करते । शास्त्रीय विधियों का पूर्ण दिल लगा कर अभ्यास नहीं करते, अपने आचरण को उनके अनुसार नहीं बनाते । केवल पढ़ कर या जान कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं । यही बुजदिली, आलस्य, कर्महीनता हमें अग्रसर नहीं होने देती । आजकल अधिकांश जिज्ञासु तथा विचारक क्रियात्मक विचार की न्यूनता के कारण वांछनीय परिस्थिति उत्पन्न नहीं कर पाते ।

## हमें शरीर के कार्यों द्वारा प्रत्यक्ष कीजिए–

विचार आपसे कहते हैं–''हमें मन के जेलखाने में ही घुट कर मत मारिये, वरन् शरीर के कार्यों द्वारा जगत में आने दीजिए । मनुष्य उत्तम लेखक, योग्य वक्ता, उच्च कलाविद् एवं वह जो भी चाहें सरलता पूर्वक बन सकता है, पूर्ण पारंगत हो सकता है लेकिन एक शर्त पर । वह शर्त है कि वह अपने शुभ संकल्पों को क्रियाशील कर दे । उन्हें दैनिक जीवन में कर दिखावे । जो कुछ सोचता विचारता है उसे परिश्रम द्वारा, प्रयत्न द्वारा अपने सामर्थ्यों द्वारा सक्ष्य का रूप प्रदान करे । शुद्ध विचारों की उपयोगिता तभी प्रकट होगी जब अन्त: करण के चित्रों को शरीर के कार्यों द्वारा प्रयत्न करने का प्रयत्न किया जायगा ।

## विचार की दो अवस्थाएँ

विचार के दो रूप हैं–एक काल्पनिक तथा द्वितीय क्रियात्मक । तुम किसी वस्तु विशेष की हार्दिक कामना करते हो, उसकी सिद्धि के लिए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अन्त:करण पूर्वक अभिलाषा भी करते हो, तुमने अपना आदर्श भी सच्चे संकल्प से निर्मित किया है किन्तु खेद का विषय है कि तुम्हारी ये आशा पूर्ण तरंगें पानी बुलबुलों के समान मन ही मन में शान्त हो जाती हैं । शोक ! महाशोक ! वह है कि जीवन के काल्पनिक बालू पर तो अपना विशेष ध्यान रखते हो, किन्तु अपने भव्य विचारों के क्रियात्मक स्वरूप पर यथोचित ध्यान नहीं देते । इसी कारण तुम्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती । तुम विजय से अन्त:करण को गद्‌गद् नहीं कर सकते, फतह के डंके बजाकर संसार को महान आश्चर्य में नहीं डाल सकते । तुम्हारे मुख मण्डल पर आध्यात्मिक सौन्दर्य का दिव्य प्रकाश नहीं झलकता और तुम सन्तोष के मधुर सरोबर में अपनी आत्मा को सुख स्नान कराकर शान्त नहीं कर पाते ।

जब तुम किसी विशेष के ध्यान में निमग्न होते हो, तो किंचित काल के लिए उस वस्तु से तुम्हारा सम्बन्ध स्थिर हो जाता है किन्तु केवल अभिलाषा मात्र रहने से, सिर्फ सोचते ही सोचते रहने से, उस आकर्षण के सूत्र अत्यन्त निर्बल रहते हैं । वे तब तक मजबूत नहीं बनते जब तक उनकी सिद्धि के लिए पर्याप्त, परिश्रम, प्रयत्न एवं क्रिया न की जाय ।

काल्पनिक तथा क्रियात्मक स्वरूपों के उत्तम सामंजस्य से ही समूचा विचार बनता है तथा उसमें पूर्ण उत्पादक शक्ति का संचार होता है । अभिलाषा, विचार, योजनाएँ तब तक उत्पादक नहीं बन सकतीं जब तक वह मनुष्य की क्रिया के रूप में पूर्ण रूप से न बदल दी जायें । अभिलाषा का क्रिया के साथ सम्मेलन होने पर उत्पादक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तथा शीघ्र ही फल की प्राप्ति हो जाती है । यह क्रियात्मक विचार प्रणाली कहलाती है ।

## कार्यक्षेत्र में उतर आइये–

हमने ऐसे अनेक अस्थिर एवं चंचल प्रकृति के व्यक्तियों को देखा है, जो बड़े उत्कृष्ट आदर्शों को लेकर निकले, जिन्हें मनोवांछित पदार्थ में श्रद्धा थी और जो बहुत कुछ करने के इच्छुक थे किन्तु वे सम्पूर्ण मन, वचन और काया के साथ विचारों के कार्य रूप में परिणत न कर सके, सिद्धि के लिए कर्म में प्रविष्ट नहीं हुए । जिस मूल्य द्वारा किसी कार्य में सफलता प्राप्त होती है, उस मूल्य–अर्थात् ठोस कर्म, परिश्रम, उद्योग, क्रियाशीलता को दिये बिना ही उन्होंने अपनी उत्सुकता केवल विचारों मात्र तक ही परिमित रखी । वे यह विस्मृत कर बैठे कि आत्मिक भावनाओं का जितना दृढ़ सम्बन्ध कर्मों से होगा मनोवांछित पदार्थ उतनी शीघ्रता से प्राप्त होगा ।

यह संसार तो साधना भूमि है । इसे कर्मक्षेत्र कहना अधिक उपयुक्त होगा । जिस-जिस व्यक्ति ने जैसे-जैसे कर्म किए वैसे ही फल उसे प्राप्त हुए । महत्त्व उनके कर्म का है । बिना कर्म के फल कदापि न मिला । बिना कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुए केवल सोचने विचारने मात्र से आज तक न तो किसी को कुछ प्राप्त हुआ है, न भविष्य में कुछ प्राप्त होने की सम्भावना ही है ।

जो कर्मक्षेत्र में उतर आता है, वही आगे बढ़ता है । जो अपने अन्तर की शुभ प्रेरणाओं को क्रियात्मक रूप देता है, वही अन्त में पूर्ण विजयी होता है । प्रत्येक मनुष्य का कार्य संलग्न होना ही राष्ट्र की उन्नति का मूल मन्त्र है ।

जरा सोचिये, यदि मनुष्य ढपोरशंख की तरह इधर-उधर की अनेक बातें सोचता विचारता रहे, मन में मंसूवे और हवाई किले तैयार करता रहे, किन्तु अभ्यास तथा परिश्रम से दूर भागे, तो उसे क्या लाभ हो सकता है । संसार तो कर्म की कसौटी है । यहाँ मनुष्य की पहचान उसके कर्मों से होती है ।

## कर्मयोगी बनिए

यदि तुम जीवन में सफल होना चाहते हो तो कर्म योगी बनो, फल पाने की इच्छा मत करो । संसार की कर्मस्थली में कर्मयोग द्वारा ही विजय प्राप्त होती है । गीता में कहा है "**योग: कर्मसु कौशलम्**" अर्थात् कर्मयोगी कार्य कुशल होता है । कर्मयोग ही संसार में ऊँचा चढ़ने का श्रेष्ठ साधन है । वेद कहता है–

"**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा:**"

अर्थात् कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहो । वास्तव में कर्म द्वारा ही मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति कर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सकता है । अकर्मण्यता और आलस्य जीवन के लिए विष तुल्य है ।

भगवान श्रीकृष्ण ने उपदेश दिया है–

**कर्मण्ये वाधिकारस्ते, माफलेषुकदाचन ।**
**माकर्मफलहेतुर्भू मास्तेसंगोस्त्वकर्मणि ।।**

अर्थात् मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, फल पाने का हक नहीं । अत: उसे फल की कामना न करनी चाहिए । अपने कर्मों को फल का हेतु मत समझो । अच्छे या बुरे कर्मों की पहिचान ईश्वर को ही है । वही न्याय की तुला में तोलकर फल देगा । फिर अकर्मण्य भी मत बनो बल्कि आलस्य रहित कर्तव्य बुद्धि से कर्म में प्रविष्ट होओ ।

पुन:-पुन: विचार करो, सोचो कि कहीं तुम भी तो इस अकर्मण्यता की चट्टान पर अपनी जीवन नौका नहीं टकर रहे हो । पुस्तकें पढ़ने मात्र से अथवा केवल उच्च विचारों की तलाश करने से या दूसरों का मुँह ताकने और सहारे की आशा में व्यर्थ समय व्यतीत करने से कदापि उन्नति नहीं हो सकती वास्तविक उन्नति का रहस्य तो स्वयं तुम्हारे पास है । वह है कार्य में संलग्न होना । फौरन एक मन हो कार्य में प्रवृत्त हो जाना और भयंकर विपत्तियों में भी मन:शान्ति को भंग न होने देना । तुम जो कुछ करो, ठोस, सच्चा पूरा काम करो । विचारों को कार्य रूप में बदल दो । जब तक तुम एक विचार को क्रियात्मक रूप न दे लो तब तक दूसरा विचार हाथ में न लो और न शान्ति से ही बैठो । न और जानने की इच्छा करो । कार्य रूप में बदल कर विचार को पूर्णता प्रदान करो ।

क्या तुम एक कर्मवीर के विचारों को जानते हो ? उसके पुष्ट विचार केवल मस्तिष्क की कन्दरा में नहीं रहना चाहते । वे सदैव प्रकाश चाहते हैं । क्रिया का परिधान पहनकर अथवा क्रिया के रूप में मूर्तिमान हो कर वे इस कर्म स्थल में प्रविष्ट होते हैं और सक्रिय होकर समाज की रूपरेखा बदलते हैं । क्रिया द्वारा ही विचार सदैव के लिए अमरत्व प्राप्त करते हैं । संसार में इधर-उधर तुम जो वस्तुएँ देखते हो, सक्रिय विचारधारा के परिणाम है ।

## हम कोरे वक्की झक्की तो नहीं हैं

कहीं हम आलसी, बातूनी, और कोरे वक्की झक्की, अकर्मण्य न बन जायें इस बात पर तीव्र दृष्टि रखने की परम आवश्यकता है । चंचलता व्यग्रता एवं वकवासीपन हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर सकते हैं, और इस कर्मभूमि में हमें पग-पग पर ठुकरा सकती हैं । वासनाएँ, चिन्ताएँ, काल्पनिक भय हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर सकते हैं, हमारे अध्यवसायों को शिथिल बना सकते हैं । जीवन में दु:ख तकलीफें तो आती ही रहेंगी किन्तु इनसे हमारी आत्मा की शान्ति भंग नहीं होनी चाहिए ।

संसार में ऐसा कोई कर्म नहीं, जिसे तुम सम्पादित न कर सको । जिस बुद्धि, जिस सामर्थ्य, जिस प्रतिभा को देखकर तुम चकित हो उठते हो, वे सब तुम में भी बीज रूप से मौजूद हैं । तुम अपनी शक्तियों से जिसकी याचना करोगे, वही मिलेगा । यदि तुम सुख समृद्धि की याचना करोगे, तो तुम्हें सुख और समृद्धि मिलेगी । यदि तुम मुक्ति की आकांक्षा करोगे, तो मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी ।

संसार तो कल्पवृक्ष है, उससे तुम जो चाहोगे, वही प्रदान करेगा । तुम विभूति के लिए हाथ पसारोगे, तो वही तुम्हारे लिए रत्नाकर, वन्सुधरा और हिमालय के मुक्तामणि खोल देगा । तुम आनन्द प्राप्त के लिए अनुरोध करोगे तो वही तुम्हारे लिए स्वर्ग बन जायगा । जो उसे हरा-भरा क्रीड़ास्थल देखने के आदी हैं, उनके लिए नित्य शाश्वत तथा आनन्द धर्म बन जायगा । केवल एकाग्र चित्त होकर उत्तम विचारों को कार्य रूप में प्रकट करना सीख लो । यह तुम्हारी सर्वोत्कृष्ट कृति है । इसे इष्ट कार्य में लगाने से अभूतपूर्व सफलता प्राप्त होती है ।

विचार तथा कर्म के उचित सामंजस्य द्वारा ही मनुष्य को परम ध्येय की प्राप्ति होती है, एक कवि का कथन है–

''कर्म करो, कर्म में लग जाओ । अपने इस वर्तमान काल में कर्म में प्रवृत्त हो जाओ । अपनी क्रियाओं में भावनाओं का समावेश करो । ईश्वर तुम्हारा सहायक है । जो कर्म साधन में प्रवृत्त होगा वह कार्य सिद्धि के लिए आकाश और पाताल एक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कर डालेगा, सिन्धु मथ डालेगा, आसमान के सितारे तोड़ लायगा और किंचित् भी डांवाडोल न होगा ।''

आप आज से ही संकल्प कीजिये कि मैं थोथी विचारधारा में पड़ा नहीं रहूँगा, मुझे पूर्ण अनुभव हो गया है कि जो विचारों को क्रियात्मक स्वरूप देता है, क्रिया करता है, आलस्य में व्यर्थ नहीं बैठता, उसी को फल प्राप्त होता है । उत्तम कार्य, उचित उद्योग और निरन्तर साधनायुक्त हो सक्रियात्मक विचार ही उत्तम जीवन का निर्माण करते हैं वे कर्म ही मनुष्य को ऊपर उठाते हैं । मैं अब सिर्फ सोचता ही सोचता नहीं, वरन् कार्य भी करता हूँ । मैं अपने सबल विचारों को कर्म में प्रकट करता हूँ ।

कर्म की भावना पर मन की समस्त वृत्तियाँ केन्द्रित करने से तुम में कार्यशक्ति अवश्य जाग्रत होगी । तुम्हारे विचार बलवान बनेंगे । वे कर्म में प्रकट होकर जगत को चकित कर देंगे । अब तुम्हें यह जानना है कि नव जीवन निर्माण के लिए किन विचारों की आवश्यकता है ?

## जीवन निर्माण के लिए किन विचारों की आवश्यकता है ?

मन:शास्त्र का विषय है कि जिन विचारों पर हम विश्वास करते हैं, पुन: पुन: चिन्तन करते हैं, बार-बार हृदय पटल पर लाते हैं, चबाते हैं, सांस लेते हैं, जिन्हें हम मन के अव्यक्त प्रदेश में ग्रहण प्रवेश कर देते हैं, वे ही हमारे अन्त:करण की नींव हो जाते हैं । कुटिल एवं असत्य विचार से मुक्ति का सरल उपाय सुविचार की भावना को दृढ़ कराना है । दुर्विचार से लड़ झगड़ कर हम उसे नहीं निकाल सकते । शान्तिदायक सुविचार की गंगा प्रवाहित करने पर ही हम मानसिक दुर्बलता से मुक्त हो सकते हैं ।

प्रत्येक विचार अन्त:करण में एक मानसिक मार्ग का निर्माण करता है । हमारी समस्त आदतें ऐसे ही मानसिक मार्ग हैं जो बार-बार एक ही प्रकार के चिन्तन मनन से विनिर्मित हुए हैं । बार-बार ये विचार प्रबलता से अन्त:स्थल पर लाये गये और वे वस्तु स्वभाव का एक विशिष्ट अंग बन गये ।

तुम मन: प्रदेश में उत्तम रचनात्मक विचार ही प्रवेश करने दो । पवित्र विचारों का ही स्वागत करो । उत्कृष्ट विचारों को ही मस्तिष्क पर अंकित करो । उन्हीं में आत्मा को स्नान कराओ जो प्रेम के, ईश्वर के, नीति के विरोधी विचार हों उन्हें देश निकला दे दो । अपनी भ्रमित बुद्धि को ईश्वरीय विचार धारा में परिवर्तित कर दो । जब तुम्हारे विचारों का केन्द्र भगवान होंगे तो सुनिश्चित दिशाओं में ही हृदय का विकास होगा ।

संसार के अन्य उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न महापुरुषों ने जो अद्‌भुत कार्य किये हैं, विचार कला मर्मज्ञ के लिए उन कार्यों का सम्पादन करना कदापि दुष्कर नहीं है । विचार करो । सोचो तुम किस तत्व में, किस बात में, किस दशा में पिछड़ रहे हो ? पीछे रह जाने का क्या कारण है ? तुम उसे कितने अंशों में पूर्ण कर सकते हो ? तुम्हारे मार्ग में कौन-कौन बाधाएँ उपस्थित हैं ?

तुम गीली मिट्‌टी के नष्ट हो जाने वाले पुतले नहीं हो, कागज की नाव नहीं हो, रक्त के थैले नहीं हो, निर्जीव मुर्दे सदृश नहीं हो, केवल देह नहीं हो, आकार, प्रकार बाह्य चमक दमक नहीं हो, तुम तो अमर आत्मा हो । शक्ति के महासागर हो । तुम सत्य हो, स्वतन्त्र हो, शिव हो, कल्याण हो, बलवान हो, तुम आनन्दमय हो, पूर्ण निर्दोष हो, स्वच्छ और पवित्र हो ।

तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि शक्ति ही जीवन है, शक्ति ही धर्म है । परमेश्वर इस शक्ति का पुंज है । तुम परमेश्वर के राजकुमार हो । अतएव तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति शक्ति ही है । शक्ति तुम्हारे अन्तर तथा बाह्य अंगों में पूर्णत: व्याप्त है । शक्ति तुम्हारे रोम-रोम में संचार कर रही है । तुम्हारे नेत्रों में उसी शक्ति का प्रकाश है । अनन्त शक्ति का विशाल समुद्र तुम्हारे पीछे है । निर्बलता, निराशा, भय तथा चिन्ता के सब संक्षयदायक विचार हृदय मन्दिर से निकाल दो और शक्ति के विचारों में लव लीन हो जाओ ।

परमेश्वर ने सबको समान शक्तियाँ प्रदान की हैं । ऐसा नहीं कि किसी में अधिक किसी में न्यून हो । किसी के साथ खास रियासत की गई हो ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


परमेश्वर के यहाँ अन्याय नहीं है । समस्त अद्‌भुत शक्तियाँ तुम्हारे शरीर में विद्यमान हैं । तुम उन्हें जाग्रत करने का कष्ट नहीं करते । कितनी ही शक्तियों से कार्य न लेकर तुम उन्हें कुण्ठित कर डालते हो । अन्य व्यक्ति उसी शक्ति को किसी विशेष दिशा में मोड़ कर उसे अधिक परिपुष्ट एवं विकसित कर लेते हैं ।

अपनी शक्तियों को जाग्रत तथा विकसित कर लेना अथवा उन्हें शिथिल पंगु निश्चेष्ट बना डालना स्वयं तुम्हारे हाथ में है । स्मरण रखिए, संसार की प्रत्येक उत्तम वस्तु पर तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है । यदि तुम अपने मन की गुप्त महान् सामर्थ्यों को जाग्रत कर लो और लक्ष्य की ओर प्रयत्न, उद्योग और उत्साह पूर्वक अग्रसर होना सीख लो तो जैसा चाहो आत्मनिर्माण कर सकते हो । मनुष्य जिस वस्तु की आकांक्षा करता है उसके मन में जिन महत्त्वाकांक्षाओं का उदय होता है और जो जो आशा पूर्ण तरंगें उदित होती हैं वे अवश्य पूर्ण हो सकती है यदि वह दृढ़ निश्चय द्वारा अपनी प्रतिभा का जाग्रत कर ले ।

अतएव प्रतिज्ञा कर लीजिए कि आप चाहे जो कुछ हों चाहे जिस स्थिति वातावरण में हों आप एक कार्य अवश्य करेंगे । वह यह कि अपनी शक्तियों को ऊँची बनायेंगे, प्रत्येक दिन अपनी योग्यता, अपनी शक्ति, अपनी विलक्षणता में अभिवृद्धि करते रहेंगे । आत्मा में जो ईश्वरीय तत्व हैं, उन पर से अविद्या का आवरण उठाते रहेंगे और इस प्रकार अपने यथार्थ रूप से परिचित हो जायेंगे ।

## नया कदम उठाओ

अज्ञानांधकार दूर कर अन्तर्जगत में हितैषिता की सृष्टि कर लेना ही आत्म प्रतीत के मार्ग में नया कदम उठाना है । आप अपने अन्तःकरण की स्थायी वृत्ति को बदल दीजिए । अभी तक आपने जिन संकीर्णता, मोह या सीमान्त धन जोड़ने की संकुचित भावनाओं में अपना जीवन व्यतीत किया है, उनके स्थान पर सत्य की, प्रेम की, न्याय की, समृद्धि की नव भावनाओं को सुदृढ़ कीजिए ।

नये विचार, शुभ भावनाएँ, नवीन दृष्टिकोण हमें कहाँ प्राप्त हो सकेगा ? इसके लिए सर्वप्रथम अपने मन को टटोलो । आत्म परीक्षा करो । गम्भीरता पूर्वक विचार करो, चिन्तन करो । हमारी हार्दिक अभिलाषाएँ हमारे उत्पादक अन्तर्बल को उत्तेजित करती हैं । वे हमारी शक्तियों को परिपुष्ट करती हैं । अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को स्पन्दन देने से वे स्वयं ही हमें प्रशस्त मार्ग दिखा देती हैं । उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन कीजिए, उनमें अपने प्रश्नों के उत्तर खोजिये । सत्संग कीजिए । तुम चाहो तो नये विचारों से चित्त को नया बना सकते हो और जीवन में परिवर्तन कर सकते हो ।

शरीर की विभिन्न व्याधियों को दूर करने के लिए सुन्दर और मनोहर विचारों के अतिरिक्त अमृतोपम अन्य औषधि नहीं है । मन के विचारों ने हमें बनाया है । जो कुछ हम हैं अपने विचारों के फल हैं । जिस प्रकार प्रकाश तथा शुद्ध वायु के आदान-प्रदान से गृह निवास योग्य बनता है उसी भाँति सात्विक विचारों के मुक्त प्रवाह से मन की मत्सरता, द्वेष, निराशा इत्यादि कल्मष दूर होते हैं तथा मुखाकृति सुन्दर, आनन्द प्रद और शान्त बनती है ।

अपने हृदय मन्दिर से भय के विनाशकारी विचारों का मूलोच्छेद कर दो । ज्ञान-विकास के लिए प्रत्येक परिस्थिति में अपने हित की पवित्र भावना को ही स्थान दो । अपने शरीर को, आत्मा को, मन को, उन्हीं विचारों में परिपुष्ट होने दो, उनमें दिव्यता लाते रहो, अनन्त उत्साह और तेज की वर्षा करते रहो । यही विचार करने की सर्व शिरोमणि कला है ।

## विचारों को सुदृढ़ करने की विधि

जिन विचारों का प्रभाव जितना ही शीघ्र गुप्त मन पर पहुँचाया जा सकता है उतना ही शीघ्रता से लाभ होता है । विचारों की नींव गहरी रखते समय मन की अवस्था बिल्कुल शान्त तथा अचल रहनी चाहिए । निश्चेष्ट एवं निर्विकार रहने से, एकाग्रता होने से, विचारों का प्रवाह सीधा गुप्त मन में प्रवेश कर जाता है । बारम्बार वैसा ही प्रवाह फेंकने से ये विचार अधिकाधिक दृढ़ बनते हैं । शुभ विचारों को पूरे विश्वास से धीरे-धीरे दुहराना चाहिए । सपाटे से उच्चारण कर देने से कुछ लाभ नहीं होगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


इन विचारों को रात्रि में शयन से पूर्व या प्रातःकाल शान्त चित्त हो धीरे-धीरे दुहराना चाहिए ।

## चिन्तन के लिए हित प्रेरित संकल्प

शरीर को निष्क्रियता और एकान्त स्थान में मन से समग्र विचार हटा कर निम्न संकल्पों पर चित्त एकाग्रता करो ।

**निःशंक भाव से कहो–** ''मैं अब अनुभव करने लगा हूँ कि असत् चिन्तन मेरा कितना भयानक शत्रु है । मैंने अपने विषय में तुच्छ विचार रख कर अपने साथ बड़ा अत्याचार किया । अब मैं अपने आप पर अत्याचार नहीं करूँगा ।''

''मैं परमात्मा का पुत्र हूँ । मुझे संसार में किसी का भय नहीं है । परमात्मा की सत्ता सदैव मेरी रक्षा करती है । परमात्मा सदैव मेरा कल्याण और हित करते हैं । परमात्मा सर्व शक्तिमान है, वही मेरे जीवन हैं, वही मेरे बल हैं, वही मेरे स्वास्थ्य हैं । मैं उनका प्यारा बालक हूँ और वह मेरे पूज्य पिता हैं । सम्पूर्ण आधि-व्याधियों का नाश करने वाले ईश्वर ही हैं ।

मेरी आत्मा ईश्वर सर्वत्र वर्तमान है । साक्षात आनन्द स्वरूप, सच्चिदानन्द रूप ईश्वर मेरे अन्तर में वर्तमान हैं । मेरा हृदय सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप ॐ का परम पवित्र मन्दिर है । अतः उसमें भय, चिन्ता एवं दुष्ट मनोविकार क्यों कर प्रलय मचा सकते हैं ?

ईश्वर तो पूर्ण निर्भय, निःशंक एवं सर्वथा निष्पाप हैं मैं उनका बालक हूँ, अतः मैं भी पूर्ण निर्भय हूँ और निष्पाप हूँ । मेरे अन्दर सम्पूर्ण जगत के प्रेरक तथा प्राण विश्व व्यापी ॐकार विराज रहे हैं । मैं आज अपनी मोह निद्रा से जाग गया हूँ । आज मुझे अपने ईश्वरत्व का वास्तविक बोध हुआ है ।

''मैं जान गया हूँ कि ईश्वर परम वीर्यमान हैं, पूर्ण भाग्यवान हैं तथा असीम सामर्थ्यवान हैं । मैं उनका अपना हूँ । अतः मैं भी परम वीर्यवान हूँ, उसी प्रकार सामर्थ्यवान हूँ । आज से मैंने अपनी निकृष्ट भावनाओं को वहिष्कृत कर दिया है । अब मैं भयभीत नहीं होता, हानि से अस्तव्यस्त नहीं हो जाता, संसार का तंग दिल मुझे अशान्त कदापि नहीं कर सकता ।

''ईश्वर पूर्ण निष्काम तथा निर्विकार हैं । मेरी आत्मा में वही दिव्य प्रवाह प्रवाहित हो रहा है, वही तत्व मुझे जीवन प्रदान कर रहा है । मैं भी पूर्ण निष्काम, निर्विषय एवं निर्विकार हूँ ।

''संसार की कोई आसुरी शक्ति मुझे आत्मविकास के सत्य मार्ग से विचलित नहीं कर सकती । मेरी शक्ति अनन्त है । मुझमें वह बल है कि जो चाहूँ कर सकता हूँ, जिस वस्तु की इच्छा करूँ, वह मुझे अनायास ही प्राप्त हो सकती है । संसार को मेरी आज्ञा अक्षरशः माननी होगी । अब मैं खूब संभल गया हूँ । मन तथ इन्द्रियों की शक्तियों से पूर्ण परिचित हो गया हूँ । आज मेरे जीवन का नवीन पृष्ठ खुल रहा है ।''

स्मरण रखिए, प्रत्येक भावना जो हमारे मन में आती है, उसको यदि अन्तर की अचेतन वृत्ति ग्रहण कर लेती है, जो बात हमारे गुप्त मन में प्रवेश कर जाती है, वह सत्वस्थ होकर हमारे स्वभाव की स्थायी वृत्ति बन जाती है । अतः यदि हम चेतन मन को शान्त व स्थिर कर्म, सुख, समृद्धि, सौन्दर्य, बल की भावनाओं से भर दें और अन्तर की वृत्ति इनको ग्रहण करने में समर्थ हो तो ये ही भावनाएँ सत्य हो कर हमारे जीवन को उच्च बना सकती है ।

**पराशक्ति से तदाकार–**आपके विचारों का स्थायी केन्द्र क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में आप संसार के अनेक तथ्यों के नाम गिनायेंगे, दुनियाँ के रंग विरंगे पदार्थों पर आश्रित रहने वाले अनेक पदार्थों की ओर आकर्षित होंगे ।

स्मरण कीजिए कि विचारों का आधार जब तक इस नश्वर संसार की क्षणिक वस्तुएँ रहेंगी तब तक थोड़ी बहुत मात्रा में दुःख अवश्य मिश्रित रहेगा । अन्तःकरण पूर्ण निर्लेप, निर्विकार तथा निष्कंटक न बन सकेगा । इसके विपरीत यदि हमारे विचार विश्व की गुप्त शक्ति-पराशक्ति से सामंजस्य स्थापित करेंगे, तो शाश्वत प्राण की धारा हमारे चित्त में प्रवाहित होने लगेगी, हमारा सम्पूर्ण जीवन उत्कृष्ट स्थिति की ओर अग्रसर हो जावेगा और हम परिवर्तित होकर स्वप्नातीत या कल्पनातीत उच्च भूमिका में प्रवेश कर जायँगे ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


परमात्मा की दिव्य शक्ति से तदाकार कराने वाले विचारों में अद्‌भुत् शक्ति विद्यमान है । जहाँ मानवी संकल्प कुछ नहीं कर पाते, वहाँ पराशक्ति से युक्त विचार निसीम शक्ति का प्रवाह खोल देते हैं । मानव की पहुँच तो परिमित है किन्तु जब उसके विचारों का सामंजस्य दैवी तत्व से हो जाता है तब उसके विचारों की क्षमता में बड़ा बल उत्पन्न होता है । पराशक्ति की सत्ता से संचित विचारों के प्रताप से हमारा कायाकल्प हो सकता है । जितना ही हम उस परम तत्व में तन्मय रहेंगे, उतनी ही आत्मा आध्यात्मिक भवन पर ऊँची चढ़ेगी । हमारा संकल्प तो अपर्याप्त है किन्तु दैवी तत्व के विराट संकल्प से तदाकार हो कर हम भयंकर विरोध का प्रतिकार करने में सफल हो सकेंगे ।

**''मैं महान तत्व का एक अंश हूँ ।''**—मनुष्य अपनी अपरिमित शक्तियों का अक्षय भण्डार तब तक नहीं खोल सकता जब तक इस महासत्य को मन, वचन और कर्म से यह न समझ ले कि ''मैं निखिल विश्व में व्याप्त विराट संकल्प का एक अंश हूँ ।'' दैवी तत्व से एक्य हमारा जन्म सिद्ध गुण है । प्रेम, न्याय, सत्य एवं दैवी सौन्दर्य के हम तत्व हैं । इस संकेत को अव्यक्त मन में जमाने से हमें अपूर्व बल, शान्ति एवं अलौकिक सामर्थ्य का अनुभव होता है, निर्मलता का हमें दर्शन होने लगता है और यौवन के जोशीले रक्त का प्रवाह तीव्र गति से बहने लगता है । अपने अन्तःकरण के कोने-कोने को टटोलिये । आपका अधिकतर समय किन विचारों के सम्पर्क में व्यतीत होता है ? क्या आप सिर्फ सांसारिक पचड़ों में ही पूरा दिन व्यर्थ निकाल देते हैं ? भौतिक शरीर की तृप्ति के लिए तुम कितने उपक्रम किया करते हो ? शृंगार व टीपटाप करने के कितने उथले विचार तुम्हारे मन सागर को उद्वेलित किया करते हैं ? संसार की क्षुद्र वस्तुओं के विचार ही तुम्हारे अन्तः करण के बल को क्षय कर रहे हैं । इसी कारण हमारे इष्ट को साधने में असमर्थ हैं और हमारा संकल्प भी पंगु हो रहा है ।

## आत्मा को आध्यात्मिक आहार दीजिए

अपनी इन्द्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में, क्षुद्र वासनाओं की तृप्ति में तो तुम कितने प्रयत्न करते हो किन्तु अपनी आत्मा को आध्यात्मिक आहार देने में कितना समय देते हो ?

यदि तुम अक्षय शान्ति चाहते हो, अविनाश चाहते हो, पूर्णरूपेण चाहते हो, मन को, बुद्धि को इन्द्रियों को समस्त सांसारिक पदार्थों से हटाकर हृदय स्थित परमात्मा में लीन कर दो । उस विशुद्ध ज्योति से अपनी आत्मा की ज्योति तदाकार कर दो । ''काया, वाचा, मन इन्द्रिय, बुद्धि, आत्मा अथवा प्रकृति से मैं जो-जो कहता हूँ, वह सब अन्तर स्थित देवाधिदेव के ही अर्पण करता हूँ । वास्तविक सुख का भण्डार तो परमात्मा ही है । वह परमात्म देव मेरे अन्तर में अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित विद्यमान हैं । उस करुणा वरुणालय की दिव्य ज्योति का प्रकाश मेरी आत्मा से बाहर निकल रहा है''—इस प्रकार की भावना मन में आरूढ़ करो । इसी में निवास करते रहो । इस प्रकार की उत्कृष्ट मानसिक भूमि की आत्मस्थिति हो जाने पर निर्बलता दुःख विपत्तियाँ स्वतः विनष्ट हो जायेंगी ।

हर्ष का विषय है, मानव जाति अब क्रमशः दैवी तत्व की एकता का महात्म्य पूर्ण रूप से समझने लगी है । उन्हें प्रतीत होने लगा है कि उनकी शक्ति, उनकी विजय, उनके सामर्थ्यों का परिमाण वही होगा जिस परिमाण में कि वह अखिल सामर्थ्यों के भण्डार से अपना तादात्म्य स्थापित करेंगे ।

जब परमात्मा का प्रकाश हमारी आत्मा में प्रवेश कर जाता है तो हमें परम आध्यात्मिक सुख का भान होता है । दशों दिशाओं में स्थायी सुख दृष्टि गोचर होने लगता है । यही, आध्यात्मिक सुख है । परमात्मा के विचार, दैवी तत्व की एकता के विचार, सर्वशक्तिमान परमात्मा से नाता जोड़ना ही आध्यात्मिक भजन है । इसी को पाकर हमारी आत्मा एक नवीन जगत का निर्माण करती है ।

## प्रार्थना भी विचार करने की एक प्रणाली है

बार-बार विचारने से विचार स्वभाव का अंग बनता है, जैसा ही वायु मण्डल अपने चहुँ ओर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


निर्मित करता है । यदि विचार निम्न है तो यह वायु मण्डल भी बुरा होगा, यदि विचार ऊँचे हैं तो यह मण्डल ऊँचा रहेगा । एक ही विचार पर ध्यान केन्द्रित करना उस विचार के वायु मण्डल को सघन कर देगा ।

प्रार्थना हमारे विचारों का परिवर्तित रूप है । हमारी सामर्थ्य तथा बुद्धि की पहुँच सीमित है, संकल्प भी अपर्याप्त है । जहाँ हमारा विचार काम न दे वहाँ उस दैवी शक्ति के सन्मुख हाथ फैलाया जा सकता है । उन्नति का पथ पूछा जा सकता है तुम परमात्मा से प्रार्थना करके उस विराट संकल्प का एक हिस्सा हासिल कर लेते हो । सच्ची निष्कपट मन से की हुई पवित्र संकल्प वाली प्रार्थना अवश्य पूर्ण होती है । पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना की सुनाई बहुत शीघ्रता से होती है । अत: तुम उससे अपनी अवस्था सुधारने की प्रार्थना कर बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हो ।

नित्य विचारने के लिए प्रार्थना के लिए एक समय निर्धारित कर लो । प्रार्थना के शब्दों पर विशेष दृष्टि रखो और शब्दों का ऐसा चुनाव करो कि वह साहस, स्फूर्ति, तथा उत्साह भर सके । नियमपूर्वक प्रार्थना करने से तुम देखोगे कि तुम्हारा प्रत्येक कार्य कितना सुचारु और शान्त ढंग से होता चला जा रहा है ।

अपने मन को, गृह को अथवा अपनी दुकान को नियमपूर्वक चलाना कोई सरल कार्य नहीं है । इन्द्रियों, आकांक्षाओं, मनोवृत्तियों पर शासन करना उन्हें एक केन्द्र पर जमाना, एकाग्र करना आसान बात नहीं है । इसके लिए दीर्घ अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है किन्तु जिसने मनोजय कर लिया और मनोवृत्तियों को नियमपूर्वक चलाना सीख लिया उसने संसार में एक बहुत बड़ी बात प्राप्त कर ली ।

नियमबद्ध की हुई प्रार्थना में भारी शक्ति है । परमेश्वर ऐसी समस्त प्रार्थनाओं को सुनता है और पूर्ण करता है । ईश्वर की देन, उसकी महत कृपा, सहायता को ग्रहण करो । ईश्वरीय देन ईश्वर पर भरोसा करने से ही प्राप्त होती है ।

## प्रात:काल की प्रार्थना–

अहह ! क्या ही मनोरम प्रभात है । सूर्य प्रभा को देखकर पुष्प मत होकर हंस रहे हैं । पक्षी वृन्द कल-कल निनाद से आनन्दित हो रहे हैं और साधक ध्यान में तन्मय हैं । प्रात:काल सूर्योदय के एक घण्टा पूर्व उठ कर उसने स्नान किया है, अपने अन्त:करण को ईश्वरीय ज्योति के प्रखर विचारों द्वारा साफ कर लिया है—और परम श्रद्धा से वह उच्चारण करता है—"हे लोकेश ! चैतन्यमय आदि देव ! हे श्रीकान्त । हे विष्णो ! आपकी आज्ञा से प्रात:काल उठकर आपकी प्रसन्नता के लिए संसार यात्रा प्रारम्भ करूँगा ।"

"मैं धर्म को जानता हूँ, किन्तु उसके नियमों के अनुसार कार्य करने में अपने को अशक्त पाता हूँ । मैं अधर्म को जानता हूँ किन्तु उससे निकल रहा हूँ । ऊँचा उठ रहा हूँ । हे हृषीकेश ! आप हृदय में स्थित होकर जैसा मुझे चलाते हैं, वैसा ही मैं चलता हूँ ।"

"मैंने अपने हृदय से परदोष दर्शन की प्रवृत्ति को निकाल दिया है । काम, क्रोधादि स्वार्थ मय वासनाएँ मेरे मस्तिष्क की शान्ति को भंग करने वाली हैं इसलिए इन कलुषित विचारों को मैं अपने हृदय पक्ष में कदापि प्रविष्ट नहीं होने देता । अपवित्र और कुत्सित वासनाएँ मुझे अब अपने पंजे में नहीं फसा सकतीं । मैं अपने आपको प्रत्येक द्वेष, भय, ध्यान से मुक्त रखता हूँ ।"

इस प्रार्थना के पश्चात् अपने स्वरूप का ध्यान कीजिए "मैं देव हूँ और कुछ नहीं हूँ । मैं ब्रह्म हूँ, शोक रहित हूँ । सच्चिदानन्द हूँ । नित्य मुक्त स्वभाव वाला हूँ । मैं असंग हूँ । अव्यय हूँ, मैं अविनाशी आत्मा हूँ ।"

अपनी समस्त वृत्तियों को सब ओर से हटा कर केवल उक्त प्रार्थना पर केन्द्रीभूत कीजिए, फिर आपके समस्त क्लेश, शोक, दु:ख, प्रतिद्वन्द्वी दूर हो जायेंगे । जब आत्मज्योति दैदीप्यमान हो जाती है तो समस्त दुर्बलता, लालच, पश्चाताप, चिन्ता, संक्षय एक दम दूर हट जाते हैं ।

अधिकांश व्यक्तियों का मन नाना प्रकार के झमेलों में उलझा होता है, उसे सुलझाने का एक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मात्र अबलम्ब प्रार्थना ही है । सच्ची पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना से तुम देखोगे कि तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गईं और तुम्हारा जीवन शक्ति सम्पन्न है ।

मन मनुष्य जीवन का आधार है । मन में अद्‌भुत विचारों से ही भिन्न-भिन्न दशाएँ उत्पन्न होती एवं बनती हैं और उन सब का फल भी मन ही भोगता है । ज्ञान और समृद्धि के मार्ग को जाना चाहो तो अपने मन को संभालो, उस पर तीव्र दृष्टि रखो । मनोव्यापार के दृष्टा बनो । नीच और गन्दे विचारों को पास न आने दो । यदि अज्ञान और दु:ख के मार्ग पर जाना है तो भले ही विचारों को नियन्त्रित रखो और बिना किसी नियम के जीवन व्यतीत करो ।

## आध्यात्मिक शाश्वत तरंगें

यदि हम विजयी होना चाहते हैं तो हमें उचित है कि हम यह मान लें कि हमारी शक्तियाँ अत्यन्त महान हैं और पराशक्ति की सत्ता से हमारा अकाट्य सम्बन्ध है । बाधाओं को दमन करने की शक्ति अपने विचारों को पराशक्ति के इस उच्च स्तर पर लाने से प्राप्त होती है । ऐसा करते ही निस्सीम जीवन तथा शक्ति की धारा हम में प्रवाहित होने लगती है । जब-जब हम अपने विचारों को उच्चतर भूमि पर ले आते हैं, तब-तब अपने अन्त:करण प्रदेश में एक प्रकार की आध्यात्मिक, शाश्वत तरंगें चलने लगती हैं । विचारों के दैवी क्षेत्र में प्रविष्ट कराने से अक्षय शक्ति मुक्त हो जाती है । जब निजी शक्तियाँ थक कर बेकाम हो जाती हैं तो ये ही शक्तियाँ नवीन शक्ति को आकर्षित कर हमें समर्थ बनाती हैं । आध्यात्मिक तरंगें विघ्न बाधाओं को जड़ मूल से नष्ट करती हैं । ये हमारे प्रत्येक प्रयत्न को दृढ़ तर बनाती हैं । अत: तुम संकल्प द्वारा निसीम शक्ति में प्रवेश करो ।

''मैं अपने विचार को उठा कर उच्चतर पटल पर ले जाता हूँ और निस्सीम शक्ति से प्लावित हो रहा हूँ ।'' इस भावना का उच्चारण करो इसी में आत्म-विभोर हो जाओ । शान्त हो कर विचारते-विचारते सुषुप्ति अवस्था में प्रवेश कर जाओ ।

आत्मा के आदेश को सुनो और अपने विचारों को उसके नियन्त्रण में चलाओ । अपने अन्तर के प्रकाश के सहारे चलने से मनुष्य के विचारों में अमित बल आता है और अन्त:करण में विराजमान परमात्मा की सत्ता का बोध होता है । उच्च सत्ता अन्तरात्मा की शरण देने से सात्विक ज्ञान की अभिवृद्धि होती है ।

प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का थोड़ा बहुत अनुभव है कि शंका, दु:ख, व्यग्रता, चिन्ता, भय के कुटिल प्रसंगों में हमें भीतरी आध्यात्मिक तरंगें ही शान्ति देती हैं । कुछ व्यक्ति मान बैठते हैं कि यह अदृश्य शक्ति कहीं बाहर है किन्तु वस्तुत: हमारे अन्त:करण में ही स्थित है यह है हमारी अन्तरात्मा । यही विपत्ति या कष्ट के समय शीतलता प्रदान करती है ।

## अन्तरात्मा का अनुशासन

अन्तरात्मा में हमारे जैसे-जैसे विचार दृढ़ होंगे, वैसे-वैसे उसके स्वरूप का अधिकाधिक प्रकाश होगा । अपने विचारों को अन्तरात्मा के अनुशासन में चलने दीजिए । अन्तरात्मा की स्फुरणा को ध्यानपूर्वक सुनो एवं पूर्ण श्रद्धा पूर्वक उसका अनुसरण करो । जब विचार अन्तरात्मा की पवित्र गोद में पल कर वस्तु जगत में प्रकट होते हैं तो मनुष्य की अभूतपूर्व उन्नति होती है । तभी उसकी अन्तर्दृष्टि एवं अन्तर्ज्ञान का पूर्ण विकास होता है । अन्तस्थित उच्च दैवी भूमिका हृदय के अज्ञान तिमिर को दूर भगा देती है । यही मनुष्य की सर्वोच्च निधि है । इसी के अन्दर अखण्ड शान्ति का पुण्य निवास स्थान है । अपने प्रत्येक विचार को, प्रत्येक कामना को, प्रत्येक मनोवेग को इस अन्तरात्मा की दैवी शक्ति का पूर्ण आज्ञाकारी बना दो । अन्तरात्मा का आज्ञाकारी बन कर विचार करना विचार विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है ।

जिस प्रकार सूर्य के विमल प्रकाश से समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार अन्तरात्मा के अनुशासन में चलने से विचार दुर्बल एवं अनिश्चित दिशाओं से हट कर यथार्थ एवं वास्तविक रचना प्रारम्भ करते हैं । हमारा संसार वैसा ही है जैसा कि अपनी विचार शक्ति द्वारा हमने अपने अन्तर्मन में स्थापित किया है । अन्तरात्मा के अनुशासन से विचार निर्मल हो जाते हैं । निराशा, निरुत्साह,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उद्विग्नता, खिन्नता, व्याकुलता, व्याधि की कालिमा उनसे धुल जाती है । वे पूर्ण संस्कृत होकर अन्तर्मन में अंकित हो जाते हैं । हृदय के अन्तरतम कोने में उनका दिव्य प्रकाश छा जाता है । जीवन सौन्दर्य एवं स्वास्थ्यपूर्ण हो उठता है ।

शोक और हर्ष, दु:ख एवं सुख, आशा और भय, राग एवं द्वेष, ज्ञान एवं अज्ञानता सब हमारे विचारों के आधीन ही हैं । ये सब हमारे भीतर अन्तर्जगत में वर्तमान हैं । ये केवल मन की उच्च या निकृष्ट अवस्थाएँ हैं । अन्तरात्मा इनका निर्णायक है । उसी पथ प्रदर्शक ने सैकड़ों को विचार करने की कला सिखा कर विभ्रान्त एवं पथ भ्रष्ट प्राणियों का महान उपकार किया है ।

## अपने विचारों पर नियन्त्रण रखिए

मनुष्य के विचार ही मनुष्य को सुखी और दु:खी बनाते हैं । जिस मनुष्य के विचार उसके नियन्त्रण में हैं, वह सुखी है और जिसके विचार उसके नियन्त्रण में नहीं रहते, वह सदा दु:खी रहता है । दु:खी मनुष्य अपने दु:ख का कारण अपने आप को न मानकर किसी बाह्य पदार्थ को मान लेता है । इस प्रकार की क्रिया को आधुनिक मनोविज्ञान में 'आरोपण की क्रिया' कहते हैं । इस प्रकार कुछ लोग अपने मित्रों को, शत्रुओं को और सम्बन्धियों को कोसा करते हैं और कुछ भाग्य को ही । वे अपनी ओर नहीं देखते । आत्म-निरीक्षण करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही इस निष्कर्ष पर आ जाता है कि हमारे विचार ही हमारे शत्रु मित्र, सम्बन्धी अथवा भाग्य हैं । जिस मनुष्य के विचार उसके अनुकूल हैं, वह सभी प्रकार के लोगों,परिस्थितियों और भाग्य को अपने अनुकूल पाता है । इसके विपरीत जिस व्यक्ति के विचार प्रतिकूल होते हैं, वह चारों ओर शत्रु ही शत्रु देखता है । विचारों के दूषित होने से वातावरण दूषित हो जाता है और मित्र भी शत्रु बन जाते हैं तथा सफलता भी विफलता में परिणत हो जाती है ।

विचारों के अनुकूल बनाना ही पुरुषार्थ है । विचार अभ्यास से अनुकूल अथवा प्रतिकूल होते हैं । जो मनुष्य जिस प्रकार के विचारों का अभ्यासी हो जाता है उसके मन में उसी प्रकार के विचार बार-बार आते हैं । सांसारिक विषयों का चिन्तन करने वाले व्यक्ति के मन में सांसारिक विचार आते हैं । उसे इसी प्रकार के विचारों में रस मिलता है । यदि कहीं ज्ञान चर्चा होती है तो वह उसे रसहीन समझता है । सांसारिक लोगों को ज्ञान-चर्चा के समय जल्दी नींद आ जाती है । ज्ञान-चर्चा मनुष्य की इच्छाओं के ऊपर नियन्त्रण करती है । वह उनकी तृप्ति नहीं करती । अत: इस प्रकार की ज्ञान-चर्चा में आनन्द की अनुभूति करना उसके लिये एक अस्वाभाविक सी बात होती है ।

विचारों पर नियन्त्रण धीरे-धीरे आता है । प्रत्येक आवेशात्मक विचार मन को निर्बल बनाता है, निर्बल मन बुरे विचारों के नियन्त्रण में असमर्थ रहता है । जब मनुष्य का मन निर्बल हो जाता है तब किसी भी प्रकार के दु:खदायी विचार मन में उठ जाने पर सब प्रकार के प्रयत्न करने पर भी वे मन से नहीं निकलते । कितने ही लोग अपने विचारों से ही पेरशान रहते हैं । वे अपने अभद्र विचार मन से निकालना चाहते हैं, पर जैसे-जैसे अभद्र विचार को मन से निकालने की चेष्टा की जाती है, वह और भी प्रबल हो जाता है । ऐसी अवस्था में कभी-कभी मनुष्य को निर्बलता आ जाती है ।

इस प्रकार की स्थिति मानसिक निर्बलता का परिणाम होती है । यह मानसिक निर्बलता बार-बार आवेशात्मक विचारों को मन में आने देने से उत्पन्न होती है । सब समय विचारों का नियन्त्रण करने की चेष्टा से मनुष्य की इच्छा-शक्ति इतनी बलवती हो जाती है कि कोई भी बुरा विचार इच्छा-शक्ति के बिना मन में देर तक नहीं ठहर पाता । जो मनुष्य आवेशात्मक विचार पर जितना ही अधिक नियन्त्रण रखता है वह अपनी इच्छा-शक्ति को उतनी ही बलवती बना लेता है । एडवर्ड कारपैन्टर का कथन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है–''किसी भी विचार को पहले ही क्षण मार डालो तो फिर उससे जो तुम करना चाहते हो कर सकते हो ।'' जिस मनुष्य को आवेशों को रोकने की आदत पड़ जाती है उसे किसी प्रकार के बुरे विचार नहीं सताते ।

मनुष्य का अभ्यास प्रायः पाशविक प्रवृत्तियों में रमण करने का हो गया है । जिस समय हम कोई समाजोपयोगी काम नहीं करते, पाशविक प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि में लग जाते हैं, तब प्रवृत्तियों के उत्तेजित होने पर अनेक प्रकार के प्रबल बुरे विचार मन में आने लगते हैं । इसलिए सदैव किसी न किसी भलाई के काम में अपने को लगाये रखना बुरे विचारों पर नियन्त्रण के लिए परम आवश्यक है । जब भी मन स्वच्छन्द या निकम्मा होता है वह स्वभावतः या तो किसी समय काम्य वस्तु की प्राप्ति की योजना बनाने लगता है अथवा वह किसी व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या और प्रतिकार की बातें सोचने लगता है ।

अवांछनीय विचारों के नियन्त्रण का बहुत सुन्दर उपाय बुद्ध भगवान ने बताया है । यह उपाय 'उदान' नामक बौद्ध ग्रन्थ में पाया जाता है । यह उपाय यौगिक और मनोवैज्ञानिक है । अतः इस प्रसंग में उल्लेखनीय है ।

बुद्ध भगवान एक बार अपने एक शिष्य के साथ ठहरे हुए थे । उस शिष्य के मन में इधर-उधर भ्रमण करने का विचार उठा । उसने भगवान बुद्ध से आज्ञा माँगी । बुद्ध भगवान ने पहले तो आज्ञा न दी, पर उसके बार-बार आग्रह करने पर दे दी । उसने आस-पास जाकर अनेक स्थान देखे । उन स्थानों में उसे एक बड़ा सुन्दर बगीचा दिखाई दिया । उस बगीचे को देख कर उसके मन में आया कि यहाँ बैठकर योगाभ्यास करूँ । सो उसने बुद्ध भगवान से उसकी आज्ञा माँगी । विशेष आग्रह देखकर बुद्ध भगवान ने अनुमति दे दी । अब वह शिष्य उक्त स्थान पर योगाभ्यास करने लगा । पर ज्यों ही उसने कार्य आरम्भ किया, उसके मन में अनेक वितर्क उठने लगे ।

अन्त में वह भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया और उसने कहा, ''महाराज, मैंने ज्यों ही योगाभ्यास प्रारम्भ किया, मेरे मन में काम वितर्क, व्यापाय-वितर्क और विहिंसा-वितर्क आने लगे । मैं इन वितर्कों को रोक नहीं सका । कृपा कर मुझे इनसे छूटने का उपाय बताइये । भगवान ने कहा कि जिस मनुष्य का मन वैराग्य में दृढ़ नहीं हो चुका है उसे अकेले रहना उचित नहीं है । उसे सदा संघ में रहना चाहिए । संघ में रहने से मनुष्य के विचार विकृत नहीं हो पाते । फिर प्रत्येक साधक को निम्नलिखित चार धर्मों का सदा पालन करते रहना चाहिए–(१) शुभ भावना का अभ्यास, (२) मैत्री भावना का अभ्यास, (३) 'अनापान-सति' का अभ्यास, (४) संसार की अनित्यता के विचार का अभ्यास ।

मनुष्य का मन सदा राग और द्वेष के बीच घड़ी के पेंडुलम की भाँति इधर से उधर डोलता है । इसी कारण मनुष्य को साम्यावस्था प्राप्त नहीं होती । मन में सदा अस्थिर रहने से वह कोई भी काम लगन से नहीं कर पाता । राग मनुष्य के मन में ऐसे अनेक संस्कार पैदा कर देता है जिनसे मानसिक ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती है । रागात्मक मनोवृत्ति की पूरक द्वेषात्मक मनोवृत्ति है । जब एक व्यक्ति के प्रति राग होता है तब उसके विरोधी से प्रति हमारे मन में द्वेष-भावना उत्पन्न हो जाती है । जो हमारे स्वार्थ के साधक होते हैं, उनके प्रति हमारा प्रेम हो जाता है और जो हमारे स्वार्थ में बाधक होते हैं उनके प्रति द्वेष भावना होती है ।

राग की विनाशक अशुभ-भावना है और द्वेष विनाशक मैत्री-भावना । प्रत्येक पुरुष को सुन्दर स्त्री के प्रति अनुराग होता है । यह अनुराग उसके अचेतन मन में बैठा रहता है । जब वह बाहरी मन से साधु भी बन जाता है तब भी यह अनुराग उसके मन से नहीं जाता है । सुन्दर रूपवती स्त्री के प्रति सभी पुरुषों की शुभभावना होती है । पर रूप के दुर्गुण कामातुर पुरुष को दिखाई नहीं देते एवं रूप का बार-बार चिन्तन करने से कामभावना और भी प्रबल हो जाती है । इस रागात्मक मनोवृत्ति के विनाश के लिये रूप के दुर्गुण पर विचार करना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है । शरीर की गन्दगी पर विचार करने से उसके प्रति अनुराग चला जाता है । मुर्दे की कल्पना कर उस पर चिन्तन करने से शरीर के प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार धन, मान आदि के दुर्गुणों पर नित्य विचार करने से इनके प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है । यही अशुभ भावना है ।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि राग और द्वेष किसी बात के सोचने मात्र से नष्ट नहीं हो जाते । इसके लिए प्रतिदिन निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है । प्रतिदिन का निरन्तर अभ्यास आत्म-निर्देश का रूप धारण कर लेता है । जब तक हमारा कोई विचार चेतन मन के नीचे अचेतन मन को प्रभावित नहीं करता वह हमारे चरित्र का सुधार नहीं करता । विचार-मात्र से इच्छा-शक्ति दृढ़ नहीं होती, इच्छा-शक्ति अभ्यास से दृढ़ होती है । कितने ही पंडित अनेक प्रकार का ज्ञान-उपदेश दूसरों को करते हैं पर वे स्वयं अपने मन को नियन्त्रण में नहीं रख पाते । वे स्वयं उन वासनाओं से मुक्त नहीं होते, जिनसे वे दूसरों को मुक्त करने की चेष्टा करते हैं । मनुष्य में सामर्थ्य बुद्धि नहीं, वरन् अभ्यास लाता है । अभ्यास से मनुष्य का स्वभाव ही परिवर्तित हो जाता है ।

मैत्री-भावना क्रोध की विनाशक है । जिस प्रकार 'अशुभ भावना' से काम-वासना का निराकरण होता है, उसी प्रकार मैत्री भावना से क्रोध का निराकरण होता है । जिस व्यक्ति में अपने क्रोध को रोकने की जितनी अधिक योग्यता होती है, उसका मन उतना ही अधिक शान्त होता है और सामर्थ्य उतनी ही अधिक होती है । जो व्यक्ति सबके प्रति मैत्री भावना का अभ्यास करता है, वह दूसरों से निर्भीक रहता है । उसकी मानसिक शक्ति व्यर्थ के विचारों में खर्च नहीं होती । अमैत्री भावना का अभ्यास करने वाला व्यक्ति सदा भय के वातावरण में रहता है । वह सदा अनेक प्रकार के शत्रुओं की कल्पना किया करता है और उनसे बचने के लिए अनेक प्रकार की योजनाएँ बनाता रहता है । इस प्रकार उसकी अधिकांश मानसिक शक्ति कल्पित शत्रुओं से लड़ने में नष्ट हो जाती है फिर वह निर्बल मन हो जाता है । यदि किसी अवस्था में उसके मन में कोई अशुभ विचार आ जाये तो वह उस विचार को अपने मन से नहीं निकाल सकता । अमैत्री भावना और कायरता एक दूसरे के पूरक हैं । मैत्री भावना शान्ति और पौरुष की वर्द्धक है ।

संसार की अनित्यता का अभ्यास अहंकार का विनाशक है । जिस व्यक्ति का अहंकार जितना अधिक होता है उसके दु:ख भी उतने ही अधिक होते हैं । अहंकार की वृद्धि एक प्रकार का पागलपन है । अहंकारी मनुष्य दुराग्रही होता है । वह जिस बात को सच मान बैठता है उसके प्रतिकूल किसी की कुछ भी सुनने को तैयार नहीं रहता और जो उसका विरोध करता है वह उसका घोर शत्रु हो जाता है ।

अहंकार का आधार संसार के अनित्य पदार्थों से अपना एकत्व स्थापित करना है । कोई व्यक्ति अपने आप को धन में, कोई पद में, कोई मान और कोई कीर्ति में खोये हुए है । इनकी अनित्यता पर विचार करने पर मनुष्य अपने आपको समझने की चेष्टा करता है । वह फिर अपने शत्रुओं की संख्या घटा देता है । जिस व्यक्ति का अहंकार जितना अधिक होता है, उसके शत्रु भी उतने अधिक होते हैं । अपने अहंकार के कारण ही वह इन शत्रुओं को पैदा करता है और फिर वह इन शत्रुओं के विनाश की इच्छा करता रहता है । आगे चलकर ये विचार उसके आत्म-विनाश के विचारों के रूप धारण कर लेते हैं ।

मनोविज्ञान का यह अटल सिद्धान्त है कि दूसरे के विनाश के विचार ही आत्म-विनाश के विचारों में परिणत हो जाते हैं । परघात और आत्मघात की भावनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं । जब हमारे चेतन मन में एक प्रकार की भावनाएँ प्रबल होती है तब हमारे अचेतन मन में दूसरे प्रकार की भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं । इस प्रकार दूसरों का विनाश करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति अपना ही विनाश कर डालता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



# अपनी इच्छाओं को नियन्त्रण में रखिए

हमारा मस्तिष्क ही संसार का समस्त ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है । वास्तव में यह मस्तिष्क एक बड़ी पेचीदा मशीन है, जिसके एक-एक कलपुर्जे का ज्ञान हुए बिना हम उसकी कार्य प्रणाली को नहीं समझ सकते ।

मस्तिष्क के दो भाग होते हैं—एक चेतन और दूसरे अचेतन । मनुष्य के चेतन मन में सामान्य विचार होते हैं, सांसारिक व्यवहार इसी के द्वारा होते हैं । अचेतन मन पुराने अनुभवों के संस्कारों का खजाना होता है । जीवन की अधिकतर महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हमें याद नहीं रहती लेकिन उनके संस्कार अचेतन मस्तिष्क पर बने रहते हैं । हमारी निद्रा के समय भी अचेतन मस्तिष्क जागता रहता है और एक विशेष ढंग से क्रिया करता रहता है । मस्तिष्क अथवा मन के इन दोनों भागों में पूर्ण सामंजस्य रहने पर ही मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक रहना सम्भव है ।

इच्छाएँ असीमित हैं, उन सबकी पूर्ति हो सकना सम्भव नहीं । अत: अनेक इच्छाओं का दमन किया जाता है । यह दमन की हुई तथा अतृप्त इच्छाएँ अचेतन मन में अपना घर बनाती हैं तथा मानसिक ग्रन्थि के रूप में कार्य करती हैं । हमारा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व हमारी इन ग्रन्थियों के होने का प्रमाण है । दबी हुई मानसिक ग्रन्थियाँ स्वप्न में और जाग्रत अवस्था में भी मनुष्य के विवेक को नष्ट करके अपनी मनमानी करती हैं । इसी कारण अनेक मनुष्यों का मस्तिष्क विकृत होकर वे पागल हो जाते हैं । जिस मनुष्य के मन में मानसिक ग्रन्थियों का जितना अधिक दमन होता है उसके स्वप्न भी उतने ही जटिल होते हैं तथा उसके व्यवहारों में भी उतनी ही विलक्षणता पाई जाती है ।

आइये अब हम विचार करें कि मानसिक ग्रन्थियाँ किस प्रकार बनती हैं और कैसे कार्य करती हैं तथा उनके क्या परिणाम होते हैं ? ऐसा होने से ही हम उनका निर्माण रोक सकते हैं तथा उनके दुष्परिणामों से बच सकते हैं ।

शोक व भय की मानसिक ग्रन्थियाँ प्राय: सबमें पाई जाती हैं । घर की स्त्रियाँ बचपन से ही तरह-तरह से बालक को भयभीत करके उसमें भय की ग्रन्थियाँ उत्पन्न कर देती हैं । बालक रात में सोते-सोते एकाएक चिल्ला उठता है वह भय की ग्रन्थि के कारण ही । जब हम बड़ी आयु में भी भय की ग्रन्थि को निकाल नहीं सकते उस समय असाधारण साहस दिखाकर भय को दबाने की चेष्टा करते हैं । जिस व्यक्ति के आन्तरिक मन में जितना अधिक डर होता है वह उतना ही अधिक निर्भीक और बहादुर दिखलाई पड़ने की चेष्टा करता है ।

घृणा की मानसिक ग्रन्थि में मनुष्य दूसरों से प्रेम करता है । जब किसी युवती का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से हो जाता है तो घृणा की ग्रन्थि बन जाती है । इससे उसे अनेक प्रकार की शारीरिक बीमारियाँ हो जाती हैं । अपमान व निराशा की घटनाएँ भी मानसिक ग्रन्थि उत्पन्न करती हैं । यदि आप बालक के व्यक्तित्व को न समझ कर उसके व्यक्तित्व का अपमान व निरादर करते हैं तो याद रखिए कि बालक भी आपका सम्मान कभी न करेगा तथा उसमें आपके प्रति घृणा की ग्रन्थि बन जायेगी । अपमान की एक सच्ची घटना मुझे स्मरण होती है । एक बार एक सज्जन प्रथम बार जनता के सम्मुख व्याख्यान देने को उपस्थित हुए । व्याख्यान असन्तोषजनक होने के कारण जनता ने तालियाँ बजानी आरम्भ कीं तथा कुछ समय बाद सब उठ कर चले गये । इस व्यवहार से उक्त बोलने वाले सज्जन में अपमान की भावना घर कर गई । इस ग्रन्थि के विरुद्ध लड़ने की उन्होंने हृदय से कोशिश की । बहुत प्रयत्न व अभ्यास के पश्चात् उन्होंने फिर भाषण दिया । अब की बार वे सफल वक्ता सिद्ध हुए । जनता ने प्रभावित होकर खुशी की तालियाँ बजाकर उनका सम्मान किया । तब उनकी अपमान की ग्रन्थि दूर हो सकी ।

आत्मग्लानि की ग्रन्थि की क्रिया भी बड़ी प्रबल होती है । जब मनुष्य आवेग में आकर अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


नैतिक भावना के प्रतिकूल काम कर बैठता है तब यह ग्रन्थि उत्पन्न होती है । यहाँ महात्मा गाँधी की आत्मग्लानि का अनुभव लिखना असंगत न होगा । जब महात्मा गाँधी के पिता मृत्यु शैया पर थे उस समय गाँधी जी अपनी काम वासना को न रोक सके और अपनी स्त्री के पास जा सोये । उसी समय उनके पिता का देहान्त हो गया । उन्हें इसके कारण भारी आत्मग्लानि हुई । इसके कारण उनकी जीवन धारा ही एक विशेष दिशा में प्रवाहित हो गई और वे कामवासना के कट्टर शत्रु हो गये । आत्मग्लानि की ग्रन्थि के कारण मनुष्य प्राय: ऐसा काम करने का प्रयत्न करता है जिससे वह समाज के समक्ष अपने आपको विशेष व्यक्ति सिद्ध कर सके ।

जिस प्रकार नदी का बाँध पक्का होता है तो बाँधा हुआ पानी शीघ्र नहीं निकल पाता । पर जब बाँध कच्चा होता है तो एकत्रित पानी उसे तोड़कर बाहर निकल जाता है, इसी प्रकार जब मनुष्य की चेतना शक्ति प्रबल होती है तो वह दबाये गये भावों और मानसिक ग्रन्थियों को रोकने में समर्थ होती है । पर जब चेतना की शक्ति कमजोर पड़ जाती है तो मानसिक ग्रन्थियाँ विकृत रूप से अपना काम करने लगती हैं । अत: हमको अपनी इच्छाओं को इस प्रकार नियन्त्रण में रखना चाहिए जिससे वे उचित रूप से तृप्त होती रहें और मानसिक ग्रन्थियाँ न बनने पायें क्योंकि इससे शारीरिक और मानसिक विकास में बाधा पड़ती है ।

## विचार शक्ति का प्रभाव क्षमता के वैज्ञानिक प्रमाण

यह निर्विवाद रूप से सत्य सिद्ध हो चुका है कि विचार सिर्फ चेतना को ही नहीं, वरन् पदार्थ को भी समान रूप से प्रभावित करते हैं । उसे एक से दूसरे रूप में परिवर्तित कर देना—यह विचार शक्ति की ही सामर्थ्य है । उसकी इस अद्‌भुत क्षमता को ध्यान में रखते हुए हमें उसके अधिकाधिक सदुपयोग की बात सोचनी चाहिए ।

मानव शरीर विचारों से प्रभावित होता है, अब यह कोई नया तथ्य नहीं रहा । सर्वविदित है कि अच्छे विचारों का शरीर पर अच्छा और बुरे का बुरा असर पड़ता है । इस आधार पर व्यक्ति का स्वस्थ-निरोग रहना अथवा रोगाक्रान्त हो जाना यह बहुत हद तक उत्कृष्ट निकृष्ट चिन्तन पर अवलम्बित होता है । चिकित्सा विज्ञान में मन:कायिक रोगों का आधार ही यही है । इसके विपरीत बीमार व्यक्ति को उदात्त चिन्तन द्वारा स्वस्थता प्रदान की जा सकती है । इसके अतिरिक्त अनेकानेक प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण एवं विकास भी सम्भव है । यह सब आटोसजेशन और हेट्रोसजेशन की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है ।

पेड़-पौधे भी इससे सर्वथा अप्रभावित नहीं रहते—यह भी भलीभाँति ज्ञात हो चुका है । इसी तथ्य के आधार पर अब ऊसर और अनुपजाऊ जमीन में भी खेती करने की बात सोची जा रही है । इसका प्रथम प्रयोग अमेरिका के फाइण्डहोर्न नामक एक ऐसे स्थान पर किया गया जहाँ की भूमि बिल्कुल बलुआही थी । कृषि विशेषज्ञों का इसके सम्बन्ध में विचार था कि यहाँ मात्र जंगली खरपतवारों के कोई अनाज नहीं उपजाया जा सकता । विशेषज्ञों की इस मान्यता को विचार शक्ति पर विश्वास रखने वाले कैडीज एवं उनके मित्रों ने तब झुठला दिया जब कुछ वर्ष पूर्व वहाँ उन्होंने विचार शक्ति के माध्यम से असाधारण आकार-प्रकार की सब्जियाँ उपजायीं । वहाँ की कुछ बन्दगोभियाँ बजन में चालीस पौण्ड के आस-पास थी । जो स्थान ऊसर-बंजर के कारण कभी उपेक्षित पड़ा था, आज उसे विचारों की अद्‌भुत क्षमता द्वारा उपजाऊ भूमि में परिवर्तित कर दिया गया है ।

यह विचारों की भूमि और उसकी प्रकृति पर प्रभाव हुआ । इसके अतिरिक्त इसके द्वारा पेड़-पौधों के बाह्य आकार-प्रकार और उसकी फलोत्पादक क्षमता को भी प्रभावित किया जा सकता है । किसी सामान्य नस्ल के पौधे में असामान्य प्रजाति के फल प्राप्त किये जा सकते हैं । बीमार पौधों को स्वस्थ और स्वस्थ को असाधारण आकृति-प्रकृति वाले रूपों में परिवर्तित किया जाना सम्भव है । इसी आशय का एक प्रयोग कैलिफोर्निया के एक कृषि विज्ञानी एलन फोर्ड द्वारा पिछले दिनों किया गया ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उन्होंने अपने बाग में विभिन्न प्रकार के फल-फूल के अनेक पौधे लगा रखे थे एवं उनमें तरह-तरह के प्रयोग-परीक्षण किया करते थे । इसी बीच उन्हें विचारों की विलक्षण सामर्थ्य की जानकारी मिली । इसकी पुष्टि के लिए अपनी बगिया के पौधों पर कुछ प्रयोग करने का उन्होंने निश्चय किया । इस सन्दर्भ में वे अपनी पुस्तक ''मिरैकल्स ऑफ थॉट'' में लिखते हैं कि जब उन्हें इसका पता चला, तो सबसे प्रथम प्रयोग उन्होंने एक काँटेदार सफेद गुलाब पर किया । वे हर दिन उस पौधे के पास पन्द्रह मिनट बैठकर किसी पालतू जन्तु की तरह स्नेह करते और उससे मीठी-मीठी बातें करते हुए सर्वथा कंटकविहीन प्रजाति में बदल जाने का आग्रह करते । इस उपक्रम में तीन महीने बीत गए । चौथा महीना आरम्भ होते ही उन्होंने देखा कि उसकी शाखाओं के काँटे स्वतः झड़ने लगे हैं । दो सप्ताह बीतते-बीतते पौधे के समस्त काँटे गिर गये । अब वह पौधा बिल्कुल शूलरहित हो गया था । इससे एलन का उत्साह बढ़ा उन्होंने इसी प्रकार के और भी अनेक प्रयोग दूसरों पौधों पर किए । मिर्च पर किया, तो उसमें बीज रहित मिर्च फलने लगी । उसका आकार भी सामान्य से अनेक गुना बड़ा था नापने पर लम्बाई लगभग छः इंच पायी गई । इसी प्रकार मटर, बैगन, टमाटर आदि सब्जियों पर प्रयोग किए । प्रत्येक के साथ परिणाम आश्चर्यजनक पाये गये ।

इस लम्बे अनुभव व अध्ययन के उपरान्त ही उन्होंने उक्त पुस्तक लिखी । इस मध्य अपने प्रयोग में विविध परिवर्तन भी किए और अलग-अलग परिवर्तनों के आधार पर प्राप्त परिणामों का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन किया, यथा जब विचार उथले होते हैं, तो उन्होंने देखा कि या तो परिवर्तन सम्भव नहीं होते अथवा यदि होते भी हैं, तो प्रतिफल आशा के अनुरूप नहीं मिलते । इसके विपरीत विचारों में जब प्यार-प्रेम का अधिकाधिक पुट होता है, तो नतीजा अप्रत्याशित प्राप्त होता है । इस प्रकार अपनी पुस्तक के अन्त में उन्होंने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि यदि इस क्षेत्र में किसी को विफलता मिलती हो, जो कदाचित अप्रत्याशित भी नहीं है, तो इसे प्रयोगकर्ता की अपनी त्रुटि और विचारों की अशक्तता की परिणति भर माना जाना चाहिए, न कि उस सच्चाई पर सन्देह करना चाहिए, जो सौ टंच सोने की भाँति खरी साबित हो चुकी है ।

एक ऐसे ही प्रयोग का वर्णन रूथ मोण्टगोमरी ने अपनी पुस्तक ''स्ट्रैंजर्स एमोंग अस'' में किया है । वे लिखती हैं कि उनकी एक मित्र लॉरा ने जब विचारणा की सामर्थ्य के बारे में सुना, तो सच्चाई जानने के लिए प्रयोग किया । एक दिन तीसरे प्रहर वह अपने लॉन में बैठ गई । निरभ्र और नीले आकाश में सामने ही एक बादल का एक श्वेत टुकड़ा था । उसने विचारणा शक्ति का प्रभाव उसी पर आजमाना शरू किया । चार मिनट तक उस बादल के अदृश्य हो जाने की भावधारा के साथ विचार-संप्रेषण उसे लक्ष्य कर वह लगातार करती रही । उसने देखा कि धीरे-धीरे बादल की सघनता समाप्त होती जा रही है और चार मिनट पश्चात् वह आँखों से ओझल हो गया । उसने इस प्रयोग को कई बार दोहराया, तब इसकी सत्यता पर से विश्वास हो सका । मोंटगोमरी लिखती हैं कि इस प्रयोग को प्रख्यात प्रोफेसर एवं वैज्ञानिक पुस्तकों के लेखक एच. हैपगुड, जिनकी अनेक पुस्तकों की भूमिका आइंस्टीन ने लिखी है, ने भी कई बार दोहराया एवं सत्य पाया ।

अभी दो वर्ष पूर्व कीव यूनिवर्सिटी के मनोवैज्ञानिकों ने एक बड़ा विलक्षण प्रयोग किया । उन्होंने यह जानना चाहा कि क्या समान चिन्तन का चेहरे-मोहरे पर भी असर पड़ता है ? यदि हाँ तो कैसा ? इसके लिए मनोवैज्ञानिक दल ने समान विचारधारा वाले २० विवाहित जोड़ों का चयन किया । उनके विवाह से पूर्व के और शादी के दस वर्ष पश्चात् के चित्र इकट्ठे किये गये । इसके बाद निर्धारित लोगों को दोनों प्रकार की तस्वीरें बारी-बारी से दिखायी गईं । शादी से पहले के चित्र को इकट्ठे रख कर उनमें से उनकी सही जोड़ियाँ तैयार करने को कहा गया । इसमें सफलता नगण्य जितनी ही मिली । सही चयन एक प्रतिशत ही किया जा सका । इसके बाद विवाह के पश्चात् के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चित्र उनके सामने रखे गये और पुनः उसी क्रिया को दोहराने को कहा गया । आश्चर्य इस बात का है कि इस बार जोड़ी मिलाने में नब्बे प्रतिशत सफलता हाथ लगी । भिन्न लोगों और जोड़ियों के साथ उक्त प्रयोग को कई बार किया गया । थोड़े बहुत अन्तर के साथ परिणाम लगभग एक ही जैसे प्राप्त हुए । इसके आधार प मनोविज्ञानियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि एक ही प्रकार की विचारधारा शरीर-आकृति पर भी असर डाले बिना नहीं रहती और उसे समान आकार-प्रकार प्रदान करने लगती है ।

इसके पीछे तथ्य चाहे जो भी हो, इस बात से सर्वथा इनकार नहीं किया जा सकता कि विचारणा में इतनी प्रचण्ड शक्ति है उसे जड़ एवं चेतन पदार्थों को भी समान रूप से प्रभावित किया जा सकता है । यदि उसका सुनियोजन कर आतिशी शीशे की भाँति किसी एक दिशा एक लक्ष्य पर संधान किया जा सके, तो निश्चय ही उसका चमत्कारी परिणाम उपलब्ध होकर रहेगा । इसकी दुर्धर्ष सामर्थ्य को उन्नतिशील-प्रगतिशील बनाने की बात सोचनी चाहिए । ध्यान में यही तो किया जाता है । वस्तुतः सार्थकता भी अध्यात्म अनुशासनों की इसी प्रक्रिया के अपनाने में है ।

## शारीरिक शक्ति से वृहत्तर-इच्छा शक्ति

कह नहीं सकता किस जीवन के कौन से संस्कार थे कि शरीर तो दुबला-पतला ही था किन्तु बाल्यावस्था से ही मन किया करता कि कोई शेर या चीता मिले तो उससे कुश्ती लड़ूँ ? यह कमजोर शरीर ही था जो निराश करता था वरना राजकुमार भरत की तरह छोटे में ही कई बार बाघ के दाँत तोड़ चुका होता ।

जो इच्छा-शक्ति कुछ दिन पहले जंगली जानवरों से लड़ने की ओर मुड़ी थी अब वह अन्तर्मुखी हो उठी । मैं दिन रात यही सोचा करता कि मैं बहुत शक्तिशाली हो जाऊँ, मेरा शरीर बलवान हो जाये, मेरे रग-पुट्ठे सुदृढ़ और सुडौल हो जायें, मुट्ठी भीचूँ तो गदेलियों से पसीना छूट जाये । मुझे तब पता नहीं था कि इच्छा शक्ति में भी कुछ जादू होता है, पर मैंने उसे अपने आप में सचमुच जादू पाया । मेरा स्वास्थ्य दिनोंदिन अच्छा होता गया और मैं एक हट्टा-कट्टा युवक बन गया ।

अब मनचीती करने का समय आ गया तो मेरी प्रसन्नता का बारापार नहीं रहा । मैं विचार करता कि जंगल के यह बड़े जन्तु छोटे जीव-जन्तुओं को पकड़कर खा जाते हैं, तो गुस्से से मेरी आँखें लाल हो जाती थीं । बड़े जीवों द्वारा छोटों को सताया जाना मुझे कतई पसन्द नहीं था इसलिए मैंने निश्चय किया जंगल के इन हिंसक जन्तुओं को सबक सिखाना चाहिए । इसी निश्चय के साथ मैं जंगल जाने लगा ।

अब तक मेरी इच्छा शक्ति पूर्ण प्रौढ़ और प्रखर हो चुकी थी । भय नाम की भी कोई वस्तु होती है, यह मैंने पूरी तरह भुला दिया । एक बार जब जंगल में प्रविष्ट हो जाता तो वहाँ के हिंसक से हिंसक-बाघ, शेर, चीते भी मुझे मूषकों और भेड़-बकरियों की तरह लगते । एक बार जब निश्चित कर लिया तो यह मेरे प्रतिदिन के जीवन का अंग बन गया । मैं प्रतिदिन जंगल जाता, हिंसक जीव मुझे साक्षात् काल के समान देखते और दूर से ही भाग जाते । वह बड़ा दुर्भाग्यशाली होता जो एक बार मेरी दृष्टि में पड़ जाता । आँख से आँख मिलाते ही मेरी प्रखर इच्छा शक्ति उसके मन पर आघात करती और वह जन्तु भले ही शेर ही क्यों न रहा हो । शरीर से कितना पुष्ट क्यों न रहा हो बिल्ली बन जाता, पूँछ दबाकर दया की भीख माँगता, पर मुझ निष्ठुर 'सोहंग स्वामी' से बचकर जाना उसके लिए कठिन होता । जी भर पीटता पटकता और जिस पर दया न आती मार कर ही छोड़ता । स्मरण नहीं ऐसे कितने बाघ, चीते लकड़बग्घे मारे होंगे । मेरी इन वारदातों का ही परिणाम था कि लोग मेरा 'सोहंग स्वामी' नाम तो भूल गये पर मैं एक नये 'टाइगर-योगी' के नाम से सारे बंगाल प्रान्त में विख्यात हो गया । मेरे पास इससे सम्बन्धित जानकारी के लिए प्रतिदिन देश-

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



विदेश से सैकड़ों पत्र आते पर मुझे इस व्यवसाय से ही फुरसत कहाँ थी ? जो उनके उत्तर देता ।

एक दिन की बात है एक साधु मेरे घर आये । मैं जब जंगल में ही था । उन्होंने मेरे पिताजी को बुलाकर कहा—आपका लड़का जंगली जीवों को सताता है, यह अच्छी बात नहीं है । उसे तुम रोको अन्यथा कभी कोई भयंकर परिणाम भी निकल सकते हैं ।

पिताजी ने साधु को प्रणाम करते हुए कहा—महात्मन् ! मेरा लड़का छोटे कमजोर जीवों को नहीं सताता । वह तो हिंसक जीवों को मारता है, वह भी निहत्थे तब फिर इसमें दोष क्या है ?

दोष ! साधु बोले-किसको कब दण्ड देना है कैसे देना है ? यह ईश्वर का काम है, मनुष्य का नहीं । तुच्छ जीवों की उत्पत्ति सम्भवतः इच्छा शक्ति का निम्नगामी रूप है । परमात्मा नहीं चाहता कि मेरी सृष्टि में कायर, कमजोर और अमंगल इच्छाएँ रहें । निर्बलता तो प्रकृति को भी कतई पसन्द नहीं । तभी तो शेरनी अपने चोट खाये या उस जख्मी बच्चे को भी खा जाती है और दौड़ने चलने फिरने में उसका साथ नहीं दे सकता । ''जीव जीवस्य भक्षण'' छोटा जीव बड़े जीव का आहार प्रकृति के किसी उपयोगी सिद्धान्त के आधार पर ही करता है यह काम पूर्णतया प्रकृति का है । मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग बनाना और उस पर चलना ही कौन-सा कम कठिन है जो वह उस प्रकृति के सिद्धान्तों से व्यर्थ टक्कर ले ।

साधु की सारी बातें पिताजी ने ध्यान से सुनी और फिर जब मैं जंगल से लौटा तो मुझसे भी कहीं । एक बार तो मुझे उन बातों में कुछ सार सा प्रतीत हुआ किन्तु मैंने दूसरे ही क्षण उस उपदेश की भी उपेक्षा कर दी । अब मुझे हिंसक जन्तुओं से भिड़ने और उन्हें मारने में आनन्द आने लगा था । उसे छोड़ना कठिन बात थी, तो भी मुझे ऐसा लगा कि मेरे सामने कोई ईश्वरीय सत्ता भी अवश्य है और उसके क्रिया-कलापों में हस्तक्षेप का पाप मुझे नहीं करना चाहिए । इसलिए अब कई बार मैं अपने आप को कुछ कमजोर और भयभीत भी अनुभव करता । मुझे इसके लिए उस साधु पर कभी-कभी गुस्सा आ जाया करता ।

संकल्प-विकल्प के इन दिनों में मेरी ख्याति कम से कम बंगाल में तो घर-घर थी ही । कूच बिहार के राज्याध्यक्ष ने भी यह खबर सुनी । उन्हें जंगली जानवर पालने का बड़ा शौक था । इसलिए वे जंगली जन्तुओं के हिंसक स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित थे । मेरे करतब उन्हें अद्‌भुत आश्चर्यजनक और तान्त्रिक से लगे । फलतः उन्होंने अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए मुझे कूँच बिहार आने और उक्त प्रदर्शन करने का निमन्त्रण दिया । वहाँ की प्रजा भी मेरी बाघ से कुश्ती देखने को बहुत लालायित थी । कई चुनौती भरे पत्र मेरे पास आते थे । इसलिए न चाहते हुए भी मुझे यह निमन्त्रण स्वीकार करना ही पड़ा ।

ईश्वर के विधान बड़े विलक्षण हैं, उन्हें मानवीय बुद्धि समझ सके ऐसा सम्भव नहीं है । जिन दिनों यह पत्राचार चल रहा था उन दिनों कूँच बिहार में कहीं से एक बहुत खूँख्वार बाघिनी आ गई । उसका इतना आतंक होने पर भी पता नहीं कैसे वह जीवित कैद में आ गई, वह भी स्वयं वहाँ के राजकुमार द्वारा । शाही कटघरे में रहने वाली इस बाघिन का नाम ''राज बेगम'' था और मुझे उसी से लड़ाये जाने का वहाँ के राजा साहब ने निश्चय कर लिया था ।

उन्होंने कुछ छल किया हो सो बात नहीं थी । उन्होंने तो सारी बातें पहुँचने पर मुझे स्पष्ट बता दी थीं । पर यदि मैं अपने वचन से हटता तो यह मेरे आत्माभिमान पर आघात होता, अतएव मैंने राजबेगम से लड़ने का निश्चय कर लिया । पर न जाने क्यों उस दिन मुझे साधु के वह शब्द जो उन्होनें पिताजी से कहे थे, एक चेतावनी की तरह बार-बार याद आते थे, तो भी मैं यों ही एकाएक भयभीत होने वाला न था । मेरा निश्चय आखिर तक अटल रहा ।

यह दृश्य देखने के लिए अखबारों में पहले से ही समाचार छापे गये । भीड़ बरसात के पानी की तरह उमड़ पड़ी । जिस मैदान में यह प्रदर्शन होना था कँटीले तारों से सुरक्षित कर पिंजड़ा जिसमें बाघिन बन्द थी मैदान में रख दिया गया । हजारों

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लोगों के सामने मैं लँगोट पहनकर निहत्था ही पिंजड़े की ओर बढ़ा ।

बाघिन मुझे देखकर गुर्राई किन्तु मुझे उससे कुछ भी भय न लगा । पिंजड़ा खोलकर उसमें प्रविष्ट हो गया । चाभी मैंने वहीं फेंक दी, केवल एक चैन मेरे हाथ में थी, जिससे बाघिन को बाँध के लिये कहा गया था ।

मेरे पिंजड़े में प्रवेश करते ही बाघिन टूटकर मेरे ऊपर आ झपटी और मेरी पीठ के दाहिने पुट्ठे पर घाव करती हुई मुट्ठी भर माँस नोंच ले गई । मैं हक्का-बक्का रह गया । एक बार दर्द से सारा शरीर ही काँप गया । खून दाढ़ में लग जाने से बाघिन और भी उत्तेजित हो उठी उसने देर किए बिना दूसरा झपट्टा लगाया पर अब मैं सँभल चुका था मैंने अपनी वही इच्छा शक्ति वाला दाँव लगाया । बाघिन की आँखों में आँखें डालकर मैंने उसके मन में दुर्दान्त प्रहार किया और ऐसा करता भर था कि बाघिन कटे वृक्ष की तरह अपने आप धराशायी हो गई । अब पूरे गुस्से के साथ मैं उस पर टूटा और लात घूँसों की बौछार से उसे बेदम कर दिया । मेरी इच्छा शक्ति बराबर काम कर रही थी इतनी खूँख्वार बाघिन उसी का परिणाम था कि बिल्ली की तरह मरी सी सिमटी सी पड़ी थी अब उसमें आक्रमण करने की शक्ति नहीं थी । तथापि यह गुर्राकर अपना क्रोध अवश्य प्रकट कर रही थी । ऐसे में ही आगे बढ़कर मैंने उसको चैन बाँध दी और विजयी योद्धा की भाँति चारों ओर खड़ी भीड़ की ओर देखा । सब लोग आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से उछल पड़े । मेरा हार्दिक स्वागत किया गया । उपस्थित लोगों ने मुझे फूल और हीरों से लाद दिया बहुत सा पुरस्कार भी मुझे मिला ।

किन्तु घर लौटा तब पता चला कि साधु का कथन असत्य नहीं था । घाव होने के कारण शरीर में विष हो गया और उसे ठीक होने में लगभग ६ महीने लगे ।

इसी बीच एक दिन वह साधु फिर प्रकट हुए, उन्होंने मुझे समझाया—"बेटा अब ऐसा नहीं करना ।" उन्होंने योगाभ्यास की कुछ क्रियायें भी बतलाईं और कहा इच्छा शक्ति का बल तुम्हारे पास है । चाहते तो आत्म-कल्याण और ईश्वर दर्शन जैसी महान उपलब्धि प्राप्त करते पर व्यर्थ ही खेल खिलौनों में लगे रहे । योगी लोग ईश्वर-प्राप्ति और आत्म-दर्शन का पुरुषार्थ साधते हैं, चमत्कारों के चक्कर में नहीं पड़ते । उन्होंने मुझे दवा भी दी उसी से मेरा घाव ठीक हुआ । साथ ही उनकी बात भी अच्छी तरह समझ में आ गई और मैंने आत्म-कल्याण के लिए उच्च स्तरीय योग साधनाएँ करने का निश्चय कर लिया ।"

अपने जीवन में इच्छा शक्ति के प्रयोग का यह महत्व पूर्ण वर्णन सुनाने वाले यह शोहंग स्वामी कलकत्ता में जन्मे एक महान योगी हो गये हैं उन्हें बंगाल में टाइगर स्वामी के नाम से आज भी लोग याद करते हैं । एक बार उनकी ख्याति सुनकर श्री स्वामी योगानन्द जी उनसे मिलने गये, उन्होंने पूछा—आप खूँख्वार जानवरों से कैसे लड़ते हैं ? तो उन्होंने उत्तर दिया—"शारीरिक शक्ति से मानसिक शक्ति कहीं अधिक प्रखर होती है । यदि हम दृढ़ विश्वास कर लें कि बाघ नहीं बिल्ली है तो वह बिल्ली ही हो जायगा । जरूरत पड़े तो मैं अभी भी चीतों के दाँत—यह कहते हुए वे उठे और सामने सीमेन्ट लगी दीवाल में धँसे साबित ईंट को पकड़ कर निकालते हुए बोले—इस तरह पकड़ कर निकाल सकता हूँ । स्वामी जी को उनकी क्षमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ ।

किन्तु बताया—इसमें आश्चर्य जैसी कुछ भी बात नहीं है । अब तो विज्ञान सिद्ध करता है कि मस्तिष्क ही है जो माँसपेशियों का नियन्त्रित करता है । मस्तिष्क जितना बलवान होगा उतना ही सूक्ष्म शरीर का काम करेगा । जितनी शक्ति से हथौड़े का प्रहार किया जाता है उतनी ही गहरी चोट लगती है । उसी प्रकार शरीर हथौड़ा है उसे शक्ति देने वाली मशीन तो मन या इच्छा शक्ति है । शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन इस बात पर है कि इच्छाशक्ति में कितना बल है । शरीर एक यन्त्र है । उसका उपयोग चाहे जैसे कर सकते हैं । इसके विपरीत यदि मन, शरीर और इन्द्रियों का दास होगा तो वह कुछ भी नहीं कर सकेगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


श्री योगानन्द ने प्रश्न किया—क्या मैं भी बाघ से लड़ सकता हूँ—इस पर उन्होंने हँसते हुए कहा—भाई बाघ से कोई भी लड़ सकता है । पर अपनी लालसाओं, कामनाओं, वासनाओं से लड़ कर उन पर विजय पाना अति दुस्तर कार्य है । जो वह कर ले, समझ लो वह सैकड़ों बाघों को जीत चुका । अब मैं भी उसी दिशा में आ रहा हूँ, जो मुझे पहले ही करना चाहिए था, वह अब कर रहा हूँ, शक्ति प्रदर्शन में तो मैंने व्यर्थ ही इतना जीवन बिता दिया ।

## दृढ़ इच्छा-शक्ति के चमत्कार

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए, जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है—''दृढ़ इच्छा शक्ति । अन्य गुण, जैसे ईमानदारी, साहस, परिश्रम और लगन आदि, दृढ़ इच्छा-शक्ति के अभाव में व्यर्थ हो जाते हैं । प्रायः ऐसा देखा गया है कि एक व्यक्ति के पास धन है, बल है और विद्या है परन्तु वह अपने जीवन काल में कुछ भी नहीं कर पाता । यदि ऐसे व्यक्तियों के मानसिक जीवन का विश्लेषण किया जाय, तो स्पष्ट पता चल जायगा कि उनमें इसी दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव था । इसके विपरीत ऐसे अनेक व्यक्ति इतिहास प्रसिद्ध हो गये हैं जो साधनविहीन थे परन्तु अपने मनोबल के कारण, वे कुछ का कुछ बन गये ।

श्री रामचन्द्र जी प्रवासी बने रहे और उनके पास केवल धनुष बाण ही था परन्तु अपनी दृढ़ता के बल पर उन्होंने तमाम साधन और अनुयायी जुटा लिये । उन्होंने रावण को पराजित किया और अपनी कीर्ति को अमर बना गये । इसीलिए कहा गया है—''क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ।'' यह सत्व और कुछ नहीं दृढ़ इच्छा शक्ति ही है । यह सत्व जितनी अधिक मात्रा में मनुष्य में वर्तमान होगा, उतना ही वह जीवन में सफल होगा । सिकन्दर, नेपोलियन, महमूद गजनवी और चन्द्रगुप्त मौर्य आदि विजेता अपने निश्चय पर हिमालय की भाँति अटल रहे । लोग उनके लक्ष्य को असम्भव बता कर उनकी हँसी उड़ाते रहे परन्तु उन्होंने अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति का कभी भी तिरस्कार नहीं किया । कोलम्बस के मन में बड़ी तीव्र इच्छा थी कि वह अटलांटिक को पार करके नया संसार खोज निकाले । उसके नाविकों ने हिम्मत हार दी और उसका भरसक विरोध किया परन्तु उसने जो कुछ करना था कर दिखाया । बँगला के प्रसिद्ध कवि माहकेल मधुसूदन दत्त को अंग्रेजी का सफल कवि बनने और इंगलैण्ड का भ्रमण करने की तीव्र इच्छा थी । वह अल्पायु में सफल कवि बने । महात्मा गाँधी तो दृढ़ इच्छा शक्ति के मानो अवतार ही थे । उन्होंने अकेले ही संसार के सबसे बड़े साम्राज्य को हिलाकर झकझोर डाला । कहने का तात्पर्य यह है कि दृढ़ इच्छा शक्ति जीवन में सफलता प्राप्त करने की कुँजी है ।

यह दृढ़ इच्छा-शक्ति क्या है ? इसका अर्थ है— ''मैं यह काम करूँगा और करके ही रहूँगा चाहे जो कुछ हो ।'' ऐसी बलवती इच्छा को जिसकी ज्योति अहर्निश कभी मंद न हो, दृढ़ इच्छा-शक्ति कहते हैं । यह 'ढुलमुलयकीनी' की विरोधी प्रवृत्ति है । बहुत से लोग ठीक से निश्चय नहीं कर पाते कि वे क्या करें । उनका मन हजार दिशाओं में दौड़ता है । वे दृढ़ इच्छा शक्ति के चमत्कार को क्या समझ सकते हैं ? इस शक्ति के अन्तर्गत दृढ़ निश्चय, आत्मविश्वास कार्य करने की अनवरत चेष्टा और अध्यवसाय आदि गुण आ जाते हैं । यह शक्ति मनुष्य के मुख मण्डल पर अपूर्व तेज उत्पन्न करती है और आँखों में सम्मोहन का जादू लाती है । यही कारण है कि दृढ़ इच्छा-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के सम्पर्क में आते ही निर्बल चित्त वाले मनुष्य उसी प्रकार उसकी ओर आकर्षित होते हैं जैसे चुम्बक की शिला की ओर लौह कण । उसके मस्तिष्क में मानसिक तरंगे निकल कर वायुमण्डल में लहराती हैं और आस-पास के व्यक्तियों को अज्ञात रूप से प्रभावित करती हैं । रूप-रंग, धन-यौवन में उतना आकर्षण नहीं होता जितना दृढ़ इच्छा-शक्ति में होता है ।

यह प्रश्न है कि ऐसी सम्मोहक दृढ़ इच्छा-शक्ति को उत्पन्न कैसे किया जाय ? उत्तर है—अभ्यास के द्वारा । अब से एक शताब्दी पूर्व तक मनोवैज्ञानिकों का विचार था, दृढ़ इच्छा-शक्ति

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एक सहज अर्थात् प्रकृति-प्रदत्त गुण है । आज यह विश्वास बदल रहा है । वह गुण मस्तिष्क के किसी अंग की सबलता या निर्बलता से सम्बन्धित नही हैं । वास्तव में यह मनुष्य की परिस्थितियों, आदतों और अभ्यास के अनुसार बनता अथवा बिगड़ता है । इस गुण का बीजारोपण जन्म से लेकर लालन-पालन के काल में ही हो जाता है । ऐसे परिवार में जो साधन सम्पन्न है, जिसमें बालक की प्रत्येक इच्छा पूरी की जाती है या जिसमें बालक माता-पिता की एक मात्र सन्तान होने के कारण प्रेम का भाजन होता है, पलने पर एक बालक में दृढ़ इच्छा-शक्ति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, परन्तु हर दशा में ऐसा ही होता हो, यह नहीं कहा जा सकता । इच्छा शक्ति में दृढ़ता लाने के लिए यह आवश्यक है कि बालक कुछ अवरोधों का अनुभव करता रहे । साथ ही यह अवरोध ऐसे भी न हो जिन्हें बालक पार न कर सके और हतोत्साह हो जाय । अस्तु, बालक के लालन-पालन में माता-पिता को बहुत जागरूक रहना चाहिए । अज्ञानतावश या दुलार के कारण बालक की प्रत्येक इच्छा पूरी करने पर उसमें 'जिद' करने का अवगुण पैदा हो जाता है । यह ठीक है कि बालक हर प्रकार से अपनी बात मनवाने का प्रयत्न करता है परन्तु 'जिद' के साथ अविवेक और स्वार्थ का अंश मिल जाने के कारण उसे दृढ़ इच्छाशक्ति कहना अनुचित है । दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ विवेक सद्प्रयत्न और न्याय का संभोग होना चाहिए । दृढ़ इच्छाशक्ति के विकास में सबसे बड़ी बाधा भय और दुश्चिंता से उत्पन्न होती है । इसलिए बचपन से ही बच्चों को इन कुभावों से बचाना चाहिए । इच्छा की दृढ़ता से मनुष्य की 'स्वतन्त्र सत्ता' का बोध होता है, भय पराधीनता का सूचक है । जब बच्चों को हर प्रकार से भयग्रस्त रखा जाता है, तो उनमें दबने की आदत पैदा हो जाती है । वे दूसरों की इच्छा के आगे झुकने लगते हैं और उनकी स्वयं की इच्छा-शक्ति निर्बल हो जाती है । इसी प्रकार चिन्ता भी एक दूषित मनोभाव है । यह चित्त में अनिस्थिरता और विभ्रम पैदा करती है । चिन्ता से मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर किसी भी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ हो जाता है । बच्चों के लालन-पालन में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्हें यथासम्भव दुश्चिंता से दूर रखा जाय । दुश्चिंता का मूल कारण है बालक की शक्ति और उसकी सफलता के बीच समन्वय का न होना । जब बालक किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहता है परन्तु इस कार्य में उसकी शक्ति अपर्याप्त होती है, तो वह चिन्ता से पीड़ित हो उठता है । यह बात मनोरंजन, पढ़ाई और घरेलू कामों के विषय में भी लागू होती है । जहाँ तक सम्भव हो, बालक को कोई भी ऐसा कठिन काम न देना चाहिए, जिसे पूरा करने में वह सर्वथा असमर्थ हो । इसके अतिरिक्त घर का वातावरण भी शुद्ध और पवित्र होना चाहिए । अभाव, गृह-कलह और अनैतिकता भी बालकों के मन में भीषण अन्तर्द्वन्द्व पैदा करते हैं और बालकों की इच्छा-शक्ति को निर्बल बनाते हैं । बालकों को इनसे दूर रखना उचित है ।

वयस्क होने पर हम स्वयं अपनी आदतों के लिये जिम्मेदार होते हैं । दृढ़ इच्छा-शक्ति को बनाये रखना हमारे अपने हाथ में है । सर्वप्रथम हमें तुरन्त निश्चय करने तथा लक्ष्य चुनने की आदत डालनी चाहिए । जब हमारे सामने दो या दो से अधिक प्रबल आकर्षण हों, तो हमें उनके बीच में लटके नहीं रहना चाहिए या तो स्वयं या अपने किसी अन्तरंग मित्र से सलाह लेकर यह निश्चय कर लेना चाहिए कि हमें कौन-सा मार्ग अपनाना है । दो घोड़ों पर एक साथ सवार होकर चलना असम्भव है । हमें एक हमारे परम आत्मीयजन ने इस प्रकार की दुविधापूर्ण स्थिति से निकलने का एक बड़ा ही व्यावहारिक उपाय बताया । वे स्वयं एक ऐसी ही स्थिति में पड़ गये जिसमें उनके सामने दो प्रबल आकर्षण थे । उनका मन कभी एक ओर दौड़ता, कभी दूसरी ओर । उनका स्वास्थ्य गिरने लगा और वह बड़े संकट में फँस गये । अन्त में वह कागज-कलम लेकर बैठ गये । उन्होंने दोनों आकर्षणों के पक्ष और विपक्ष में सारे तर्क लिख डाले । बाद में दोनों की तुलना करने पर जो आकर्षण उन्हें न्यायोचित और उपयोगी जान पड़ा, उसी को मानकर वे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चलने लगे । बस उनके मन में जो संघर्षण था, शान्त हो गया और वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो गये ।

किसी भी पक्ष को ग्रहण करने के पूर्व यह अवश्य सोचना चाहिए कि इस काम को करने में मेरी अधिक से अधिक कितनी हानि हो सकती है । फिर उस हानि को सहन करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए और कार्य आरम्भ कर देना चाहिए । इससे मन में दृढ़ता उत्पन्न होती है और मनुष्य प्रलोभनों से बचा रहता है । प्राय: ऐसा भी होता है कि एक निश्चय पर पहुँचने के बाद कार्य आरम्भ किया गया, परन्तु कुछ समय बाद ही कोई अन्य प्रलोभन सामने आ जाता है । फिर वही पहले वाली अनिश्चय की स्थिति उत्पन्न हो गई । यदि मनुष्य इस नये प्रलोभन का शिकार हो गया तो उसकी इच्छाशक्ति निर्बल पड़ जाती है । अत: अपने प्रथम निश्चय से कभी भी डिगना नहीं चाहिए । प्रलोभनों के अतिरिक्त अपने निश्चय पर अटल रहने में दूसरे प्रकार की बाधाएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं । वे हैं अप्रत्याशित कठिनाइयाँ । मनुष्य कितना ही दूरदर्शी एवं कल्पनाशील हो परन्तु किसी कार्य में सामने आने वाली कठिनाइयों का शतप्रतिशत अनुमान लगा लेना असम्भव है । किसी निश्चय पर पहुँचने के बाद जब हम कार्य आरम्भ करते हैं, तो अनेक ऐसी कठिनाइयाँ सामने आ जाती हैं, जिनकी हमने कल्पना भी न की थी । बस हमारा मन डाँवाडोल होने लगता है । हमें ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए । कार्य सिद्धि के मार्ग में न जाने कौन बाधा कहाँ से आ जाय, अस्तु उसका सामना धैर्यपूर्वक करना चाहिए तभी दृढ़ इच्छा-शक्ति बनी रह सकती है ।

## विचार शक्ति सन्मार्गगामी हो

अनगढ़ मनुष्य को सुगढ़ एवं नर पशु को नर-नारायण बना देने की क्षमता अगर किसी में है तो वह मन में है । उत्थान और पतन इसी पर निर्भर करता है । वह शक्तियों का पुञ्ज है । महामानवों के गढ़ने एवं नर-पिशाचों को पैदा करने की सामर्थ्य मन में है । उसी ने ईसा, बुद्ध, कंस, सिकन्दर, नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी पैदा किए । इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ मन के ही उत्थान-पतन की कहानियाँ हैं ।

विचारणा उसकी अभिव्यक्ति है । यों तो उथले-अस्त-व्यस्त विचार मन में उठते, रहते और कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर पाते । सूर्य की बिखरी किरणों के समान पीने-खाने के सामान्य प्रयोजन ही पूरे कर पाते हैं । पर वे भी निगृहित दिशा विशेष में नियोजित होकर असाधारण सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं । आतशी शीशे पर केन्द्रित सूर्य की किरणों की ध्वंशकारी सामर्थ्य के समान चमत्कारी प्रभाव दिखाते हैं । बिखराव कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं करने देता और उससे मन की शक्तियाँ ही नष्ट होती रहती हैं । एकाग्रता के अभाव में प्रचण्ड शक्ति का स्रोत होते हुए भी उसकी क्षमताओं का लाभ नहीं मिल पाता । वैज्ञानिक, कवि, कलाकार, साहित्यकार, विचारक, मनीषी मन की एकाग्रता की ही परिणति है । मन जब ऊर्ध्वगामी बनता है तो मनुष्य महात्मा, सन्त, देवात्मा बनता है । निम्नगामी होने पर नर से नरपशु और नर-पिशाच बन जाता है ।

संकल्प-विकल्प पर ही उत्थान-पतन का क्रम निर्भर करता है । संकल्प की असीम सामर्थ्य को जानते हुए ही शास्त्रों में अनेकों स्थान पर उसकी स्तुति की गई है । शिवत्व से युक्त संकल्प की कामना की गई है । ऋषियों ने प्रार्थना की है मन का संकल्प शिव हो, रौद्र न हो-विधायक ही विनाशक न हो । कल्याण का सृष्टा हो-विनाश की रचयिता नहीं । रचनात्मक श्रेष्ठ कार्यों की सत्प्रेरणाएँ शिवत्व से भरे-पूरे संकल्प ही जागरूक रहते ।

शास्त्रों में मन की दो प्रकार की शक्तियों का उल्लेख मिलता है । एक नयन और नियमन । एक मन्त्र में वर्णन है ।

'सुषारधिर खानिव यन्मनुष्यान,
नेनीयतेऽभीर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मेमन:,
शिव संकल्प मस्तु ।।'

मन्त्र में सारथी की उपमा मन से तथा इन्द्रियों की घोड़े से दी गई है । 'अश्व' तथा 'बागी' शब्द

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


घोड़े के लिए प्रयुक्त होता है । किन्तु इन दोनों में भी अन्तर है । अश्व उस घोड़े को कहते हैं जो धीरे-धीरे दौड़ता है । 'बागी' तीव्र गति से चलने वाले घोड़े को कहते हैं । यदि उसे रोका न जाय तो दुर्घटना कर बैठेगा । सुयोग्य सारथी प्रथम प्रकार के घोड़े को चाबुक मारकर सही मार्ग पर आगे बढ़ने को बाध्य करता है । किन्तु 'बागी' को सदा लगाम खींचकर गलत मार्ग पर जाने से रोकता है । एक का 'नयन' करता दूसरे का 'नियमन' । मन में भी दोनों प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं । शिथिलता को सक्रियता में बदलना तथा उद्धत आचरण से बचाये रखने से ही मन समर्थ बनता है ।

शरीर एवं इन्द्रियाँ तो आयु के साथ क्षीण हो जाते हैं । पर मन आयु के बन्धनों से परे होता तथा सदा युवा बना रहता है । वह कभी बूढ़ा नहीं होता । उसकी गति से तीव्र चलने वाली किसी भी वस्तु का अब तक पता नहीं लग सका है । उसकी शक्ति जिस भी दिशा में बढ़ जाय क्रान्ति ला सकती है । 'गीता' कहती है 'योमच्छ्रद्धः स एव सः' मनुष्य श्रद्धा का पुञ्ज है । संकल्प का खजाना है । संकल्पों में शिवत्व का समावेश है । इसकी प्रार्थना बार-बार की गई है ।

इच्छा शक्ति के अनेकानेक चमत्कार देखने को मिलते हैं । यह मानसिक शुद्धि, पवित्रता एवं एकाग्रता पर आधारित है । जिसका मन जितना पवित्र और शुद्ध होगा उसके संकल्प उतने ही बलवान एवं प्रभावशाली होंगे । सन्त महात्माओं के शाप, वरदान की चमत्कारी घटनाएँ उसकी मन की पवित्रता एवं एकाग्रता के ही परिणाम हैं । इस तथ्य के सारे विश्व के सभी धर्म शास्त्रों ने मन को पवित्र बनाने पर जोर दिया है ।

बिखराव से कमजोरी आती है । मन की अधिकांश शक्ति लोभ, मोह के भौतिक आकर्षणों में यों ही नष्ट होती रहती है और क्रमशः क्षीण पड़ती जाती है । मन के बिखराव से चंचलता को रोकने के लिए दृढ़ अवलम्बन की आवश्यकता पड़ती है । उसकी चंचलता तो विषयों के साथ जुड़कर और भी बढ़ जाती है । एकाग्रता का लक्ष्य पूरा हो सकना तो दूर की बात है ।

ऋषियों ने इस तथ्य को समझा । मन को नियन्त्रित, दृढ़ एवं एकाग्र बनाने पर जोर दिया । साधनात्मक उपचारों का प्रतिपादन किया । उपासना को सर्वश्रेष्ठ अवलम्बन माना । जो एकाग्रता का एकाकी लक्ष्य नहीं सही दिशा में नियोजन का उद्देश्य भी पूरा करता है । मन उस परम सत्ता से जुड़कर ही टिका रह सकता तथा दृढ़ बन सकता है । एकाग्रता प्राप्ति के अन्यान्य माध्यम भी हो सकते हैं । सतत् अभ्यास से संकल्प शक्ति भी विकसित हो सकती है । पर उसका नियोजन श्रेष्ठ उद्देश्यों के सृजन के लिए होगा यह आवश्यक नहीं । संकल्प के मनोबल के धनी नेपोलियन, हिटलर भी थे । पर वे इस शक्ति का सदुपयोग न कर सके । ध्वंस पर उतारू हुए और इतिहास में अपने कुकृत्यों का काला पन्ना जोड़ कर गये । इसलिए मनोबल की वृद्धि ही नहीं सही दिशा में उसका नियोजन भी उतना ही आवश्यक है ।

सृजनात्मक प्रयत्न तो आदर्शवादी सिद्धान्तों के अवलम्बन से ही बन पड़ते हैं । इसी कारण उपनिषद के ऋषि मन की एकाग्रता मनोबल की अभिवृद्धि ही नहीं उसके शिवत्व से युक्त होने की भी कामना-प्रार्थना करते हैं । वे इस तथ्य से अवगत थे कि एकाग्रता का लक्ष्य पूरा हो गया तो भी यदि सृजन में उसका सदुपयोग न हुआ-ध्वंस पर उतारू हुआ तो संकट खड़ा हो जायगा ।

महत्त्वपूर्ण पक्ष विचारों का भी है । जो मन में ही उठते रहते हैं और अपने अनुरूप प्रभाव डालते हैं । उन पर नियन्त्रण-नियोजन भी उतना ही आवश्यक है जितना कि एकाग्रता के लिए प्रयत्न । स्वतन्त्र-अनियन्त्रित छोड़ देने पर तरह-तरह की विकृतियाँ खड़े करते और मन को कमजोर बनाते हैं । प्रसिद्ध सन्त 'इमर्सन' ने कहा है—'विचारों को स्वतन्त्रता दीजिए, वे कामनाओं का रूप धारण कर लेंगे, कामनाओं को स्वतन्त्र मार्ग दीजिए, कार्य में परिणित हो जायेंगे । यदि वे निष्कृष्ट हुए तो पतन के कारण होंगे ।' मन में उठने वाले अनेकानेक विचारों में से अनुपयोगी की काट-छाँट एवं बहिष्कार की व्यवस्था भी बनानी चाहिए । अन्यथा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वे घास-पात के समान उगेंगे और मन की उर्वरा शक्ति का अवशोषण करके फलेंगे, फूलेंगे तथा मनुष्य के अध:पतन के कारण बनेंगे । उनकी निरन्तर काट-छाँट करते रहना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि सद्विचारणा का बीजारोपण एवं उन्हें परिपक्व बनाने के लिए प्रयास ।

'मन असीम सामर्थ्यों का स्रोत है' । संकल्प शक्ति विचार शक्ति की अनेकानेक सम्पदाएँ उसके अन्दर छिपी पड़ी हैं । इन्हें जवान-सही दिशा में नियोजित करने का प्रयास किया जा सके तो मनुष्य असीम शक्ति का स्वामी बन सकता है । विचारक, सन्त, ऋषि, देवात्मा हो सकता है । भौतिक समृद्धियाँ भी इसी पर अवलम्बित हैं ।

* * *




# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

# सफलता के तीन साधन

सफलता के तीन कारण होते हैं (१) परिस्थिति (२) प्रयत्न (३) भाग्य । बहुत सी वस्तु ऐसी परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं जिनके कारण स्वल्प योग्यता वाले मनुष्य बिना अधिक प्रयत्न के बड़े-बड़े लाभ प्राप्त करते हैं । बहुत बार अपने बाहुबल से कठिन परिस्थितियों को चीरता हुआ मनुष्य आगे बढ़ता है और लघु से महान बन जाता है । कई बार ऐसा भी देखा गया है कि न तो कोई उत्तम परिस्थिति ही सामने है, न कोई योजना, न कोई योग्यता, न प्रयत्न, पर अनायास ही कोई आकस्मिक अवसर आया जिससे मनुष्य का कुछ का कुछ बन गया । इन तीनों कारणों से ही लोगों को सफलताएँ मिलती हैं ।

पर इन तीन में से दो को, कारण तो कह सकते हैं साधन नहीं । जन्मजात कारणों से या किसी विशेष अवसर पर जो विशेष परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं, उनका तथा भाग्य के कारण अकस्मात् टूट पड़ने वाली सफलताओं के बारे में कोई मार्ग मनुष्य के हाथ नहीं है ।

हम प्रयत्न को अपनाकर ही अपने बाहुबल से सफलता प्राप्त करते हैं । यही एक साधन हमारे हाथ में है । इस साधन को तीन भागों में बाँट दिया है- (१) आकांक्षा (२) कष्ट-सहिष्णुता (३) परिश्रम-शीतलता । इन तीन साधनों को अपनाकर भुजबल से बड़ी-बड़ी सफलताएँ लोगों ने प्राप्त की हैं । जो इन तीन साधनों को अपना लेंगे, वे अपने अभीष्ट उद्देश्य की ओर दिन-दिन आगे बढ़ेंगे ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास है ।

## आकांक्षा

मनुष्य और मनुष्य के बीच में आश्चर्यजनक अन्तर है । एक मनुष्य उद्भट विद्वान है तो दूसरा फूटा अक्षर भी नहीं जानता । एक राजा है तो दूसरा रंक है । एक धनकुबेर है तो दूसरा दाने को मुहताज है । एक महात्मा है तो दूसरा नरक का कीड़ा है । एक संसार का उज्ज्वलरत्न समझा जाने वाला महापुरुष है तो दूसरे के लिए जीवन यात्रा चलाना भी भार हो रहा है । एक ऐश-आराम के साथ स्वर्ग का सुख लूट रहा है तो दूसरा कष्ट और अभावों की चक्की में पिसा जा रहा है । एक के ओठों पर आठों पहर हँसी नाचती रहती है तो दूसरे को वेदना और पीड़ा से छुटकारा नहीं । एक निरन्तर आनन्द उल्लास और उन्नति की ओर बढ़ता चला जा रहा है तो दूसरे का प्रत्येक कदम दुख, अन्धकार, पतन और अवनति की ओर बढ़ रहा है । ऐसी आश्चर्यजनक विषमता मनुष्य-मनुष्य के बीच में चारों ओर फैली हुई हम देखते हैं ।

साधारणतः हर जाति के जीवों को करीब-करीब एक-सी स्थिति परमात्मा ने प्रदान की है । रीछ, सिंह, व्याघ्र आदि शिकारी पशु, घोड़े, हाथी, गधे, खच्चर, ऊँट आदि वाहन-पशु, गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि दूध देने वाले पशु, हिरन शृगाल, लोमड़ी, बन्दर, लंगूर, सूअर आदि वनों में विचरण करने वाले पशु आपस में करीब-करीब एक-सी स्थिति के होते हैं । यों थोड़ा बहुत रंग रूप का, सबलता निर्बलता का अन्तर तो सब में पाया जाता है पर इतना अन्तर नहीं होता जितना मनुष्य-मनुष्य के बीच में है । एक रीछ दूसरे रीछ से इतना ऊँचा नीचा नहीं होता, जितना मनुष्य आपस में होता है । बकरी-बकरी में, हाथी-हाथी में, गधे-गधे में, ऊँट-ऊँट में इतना अन्तर नहीं है जितना कि मनुष्यों में होता है । पक्षियों को लीजिए, कबूतर, मोर, तोता, मैना, कोयल, कौआ, चील, बतख, अपनी जाति में करीब एक सी ही स्थिति के हैं । मेढक, मछली, चूहा, न्यौला, सर्प, छिपकली, तथा मक्खी, मच्छर, तितली, कीट-पतंग आदि भी अपनी-अपनी जाति में बैठ कर बहुत अधिक नीचे-ऊँचे नहीं ठहरते । प्राकृतिक सौन्दर्य को कायम रखने के लिए जितनी भिन्नता की आवश्यकता है उसके सिवाय किसी जाति के जीव-जन्तुओं में परमात्मा ने अधिक विषमता नहीं रखी है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


इस दृष्टि से मनुष्य-मनुष्य के बीच में भी बहुत अधिक अन्तर नहीं है । हर एक मनुष्य शरीर में प्राय: एक से अवयव है । यदि बाहर के चमड़े को उधेड़ कर हजारों मनुष्यों को देखा जाय तो कोई विशेष अन्तर न मिलेगा । दूसरे प्रकार से भी देखिये आहार में, निद्रा के घंटों में, काम करने की श्रम शक्ति में, इन्द्रियों की अभिरुचि में, करीब-करीब सभी मनुष्य समान हैं । समान इसलिए हैं कि न्यायकारी परमपिता परमात्मा ने लगभग एक समान स्थिति सब को दी है । ठीक भी है वह किसी को कम किसी को अधिक उपकरण देकर स्वयं पक्षपाती एवं अन्यायी क्यों बने ? वस्तुत: मनुष्य को ईश्वर के यहाँ से एक समान शारीरिक और मानसिक समस्याएँ प्राप्त हुई हैं । माता के गर्भ से उत्पन्न होने के उपरान्त एक शिशु की शारीरिक और मानसिक स्थिति दूसरे शिशुओं के समान ही होती है । तोल में, लम्बाई चौड़ाई में, ज्ञान में, चेष्टा में, रुचि में, सामर्थ्य में, प्राय: सभी बालक एक समान होते हैं । फिर जो आश्चर्यजनक असमानता मनुष्य जाति में दिखाई पड़ती है वह कहाँ से आती है ? किस प्रकार उत्पन्न होती है ? कौन उसे पैदा करता है ? यह प्रश्न विचारणीय है ।

इस प्रश्न पर आध्यात्म तत्त्व के, आचार्यों ने बहुत गम्भीर मनन और चिन्तन किया है । बहुत खोज के पश्चात् वे एक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं । उन्होंने बताया है कि ''आकांक्षा'' ही वह तत्त्व है जिसके द्वारा इस संसार में नाना प्रकार की सम्पदा, विभूतियाँ, सामर्थ्य और योग्यताएँ प्राप्त होती हैं । ''**अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**'' सूत्र में सिद्धि प्राप्ति का सर्व प्रथम आधार 'जिज्ञासा' को माना है । यदि जिज्ञासा न हो तो आगे को तनिक भी प्रगति नहीं हो सकती । इस संसार में जिस किसी ने जो कुछ प्राप्त किया है वह इच्छा शक्ति के, जिज्ञासा के, आकांक्षा के, आधार पर प्राप्त किया है । रामायण कहती है-

**जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू ।**
**सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ।।**

यह सच्चा स्नेह ही वह तत्त्व है जिसके कारण किसी भी वस्तु के प्राप्त होने में सन्देह नहीं रहता । गीता में कई स्थलों पर भगवान ने कहा है कि 'अनन्य भाव से चिन्तन करने वाले को मैं उसके अभीष्ट विषय में सफलता प्रदान किया करता हूँ ।'

मनुष्य जिस प्रकार की इच्छा करता है, वैसी ही परिस्थितियाँ उसके निकट एकत्रत होने लगती हैं । इच्छा एक प्रकार की चुम्बक शक्ति है जिसके आकर्षण से अनुकूल परिस्थितियाँ खिंची चली आती हैं । जहाँ गड्ढा होता है वहाँ चारों ओर से वर्षा का पानी सिमट आता है और वह गड्ढा भर जाता है, किन्तु जहाँ ऊँचा टीला है वहाँ भारी वर्षा होने पर भी पानी नहीं ठहरता । इच्छा एक प्रकार का गड्ढा है जहाँ सब ओर से अनुकूल स्थितियाँ खिंच-खिंच कर एकत्रित होने लगती हैं, जहाँ इच्छा नहीं वहाँ कितने ही अनुकूल साधन मौजूद हों पर कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती ।

देखा गया है कि अमीरों के लड़के अक्सर नालायक निकलते हैं और गरीबों के लड़के बड़ी-बड़ी उन्नतियाँ कर जाते हैं । संसार के इतिहास को पलट जाइये अधिकांश महापुरुष गरीबों के घर में पैदा हुए व्यक्ति ही मिलेंगे । कारण यह है कि ऐश आराम की काफी सामिग्री सुगमतापूर्वक मिल जाने के कारण उनकी रुचि सुखोपभोग में लग जाती है किसी दिशा में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा उन्हें नहीं होती । अभिलाषा के बिना पौरुष जागृत नहीं होता और पुरुषार्थ के बिना कोई महत्त्वपूर्ण सफलता कठिन है । गरीबों के लड़के अभावग्रस्त स्थिति में पैदा होते हैं, अपनी हीनता और दूसरों की उन्नति देखकर उनके अन्त: करण में एक आघात लगता है, इस आघात के कारण उनमें एक हलचल, बेचैनी, उत्पन्न होती है, उस बैचेनी को शान्त करने के लिए वे उन्नत अवस्था में पहुँचने की आकांक्षा करते हैं । यह आकांक्षा ही उन्हें उस मार्ग पर ले दौड़ती है जिस पर चलते हुए महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त हुआ करती हैं ।

साधन, सुविधा और सम्पन्नता की दृष्टि से अमीरों के लड़के अच्छी स्थिति में होते हैं । पैसा एवं जानकार व्यक्तियों का सहयोग उनके सामने प्रचुर मात्रा में मौजूद रहता है, जिसके द्वारा यदि वे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चाहें तो बहुत शीघ्र बड़ी आसानी से किसी भी दिशा में अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं । उनके लिए उन्नति का मार्ग बहुत ही सरल एवं प्रशस्त है, फिर भी अधिकांश अमीरों के लड़के फिसड्डी और नालायक निकलते हैं इसका कारण यह है कि लाड-प्यार और ऐश-आराम के वातावरण में उन्हें कोई अभाव अनुभव नहीं होता, और न कोई आकांक्षा जाग्रत होती है । जिस कमी के कारण अमीरों के लड़के उन्नति से वंचित रह जाते हैं वह ''आकांक्षा की कमी'' है । यह कमी गरीबों के घर में नहीं होती इसीलिए साधन और सुविधाओं का पूर्ण अभाव रहते हुए भी निर्धनों के घर में उत्पन्न हुए बालक विभिन्न दिशाओं में आशातीत उन्नति कर जाते हैं और महापुरुषों के बीच अपना स्थान बनाते हैं ।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमारा अभिप्राय गरीबी या अमीरी के साथ उन्नति या जीवन की असफलता का सम्बन्ध जोड़ने का नहीं है । हमारा अभिप्राय केवल यह बताने का है कि जहाँ जिस वातावरण में इच्छा की, आकांक्षा की कमी रहेगी वहाँ विभूतियाँ प्राप्त न हो सकेंगी । जहाँ इच्छा होगी, अभिरुचि होगी, वहाँ पैसे का, साधनों का, सहयोग का अभाव भले ही हो पर धीरे-धीरे अनुकूल वातावरण एकत्रित हो जायगा और गौरवास्पद सिद्धि मिलकर रहेगी । यदि सम्पन्न घर के व्यक्ति को किसी बात की उत्कट अभिलाषा हो तब तो सोना और सुगन्ध का संयोग ही समझिए । गरीबों को उन्नति के लिए जिन साधनों को जुटाने में पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है वे तो उन्हें अनायास ही प्राप्त हुए होते हैं । इसलिए उनके लिए तो आगे बढ़ने में और भी अधिक आसानी होनी चाहिए ।

मन में जो इच्छा प्रधान रूप से काम करती है उसे पूरा करने के लिए शरीर की समस्त शक्तियाँ काम करने लगती हैं । निर्णय-शक्ति, निरीक्षण-शक्ति, अन्वेषण-शक्ति, आकर्षण-शक्ति, चिन्तनशक्ति, कल्पनाशक्ति, आदि मस्तिष्क की अनेकों शक्तियाँ उसी दिशा में अपना प्रयत्न आरम्भ कर देती हैं । यह शक्तियाँ जब सुप्त अवस्था में पड़ी होती हैं या विभिन्न दिशाओं में बिखरी रहती हैं मनुष्य की स्थिति अस्त-व्यस्त एवं नगण्य होती है परन्तु जब वे सब शक्तियाँ एक ही दिशा में कार्य करना आरम्भ कर देती हैं तो एक जीवित चुम्बकत्व तैयार हो जाता है । जैसे चुम्बक पत्थर को कूड़े-कचरे में भी फिराया जाय तो धातुओं के जो टुकड़े इधर-उधर बिखर रहे होंगे वे सब उससे चिपक जावेंगे । इसी प्रकार विशिष्ट आकांक्षाएँ मन में धारण किये हुए व्यक्ति अपनी आकर्षण शक्ति से उन सब तत्त्वों को ढूँढता और प्राप्त करना रहता है जो लघुकणों के रूप में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े होते हैं ।

आपको अपने पड़ोसी के घर की बातों की बहुत कम जानकारी है परन्तु उस घर में कितनी सम्पत्ति कहाँ धरी हुई है इसका पूरा विवरण कई मील दूर रहने वाले चोर को लग जाता है । कारण यह है कि चोर सदा इस तलाश में रहता है कि लोगों की सम्पत्तियों के स्थान, परिमाण और मूल्य की उसे जानकारी हो । यह तलाश की इच्छा ही उसे ऐसे सूत्र उपलब्ध करा देती है जिनसे उसे बड़े-बड़े गहरे भेद मालूम हो जाते हैं और एक दिन वह उस घर में जाकर बड़ी सफल चोरी कर भी लेता है । जुआरी लोग जुआरियों को, शराबी शराबियों को, आसानी से प्राप्त कर लेते हैं । नशेबाजों की चौकड़ी जमा होने में देर नहीं लगती । साधु को साधु से, विद्वानों को विद्वानों से, भेंट होती रहती है । लम्पट, दुराचारी, ठग, जेबकट, अपनी रुचि के वातावरण में आसानी से प्रवेश पा जाते हैं, हर अभिरुचि के लोग इस दुनिया में मौजूद हैं, और अपने समान विचार वालों को सहयोग करना मनुष्य का स्वभाव है । मांसाहारी और मांस विक्रेता का आपसी सहयोग आसानी से चलने लगता है, भिक्षुक दानी को ढूँढ लेते हैं या दानी, भिक्षुकों के पास पहुँच जाता है । निगेटिव और पोजेटिव, आकर्षण और विकर्षण एक दूसरे की अभाव पूर्ति के लिए आसानी से मिल जाते हैं । इस प्रकार अमुक प्रकार की इच्छा रखने वाले मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुकूल वातावरण, परिस्थिति, साहचर्य, सहानुभूति पथप्रदर्शन तथा सहयोग मिल ही जाता है । किन्हीं व्यक्तियों का सहयोग उसे उसके कार्य में सहायक रूप में प्राप्त होता ही है । श्रीरामचन्द्र जी जब

अकेले घोर विपत्ति में पड़े हुए सुनसान वनों में भटक रहे थे तब भी उन्हें गिद्ध, रीछ, बन्दर आदि का सहयोग प्राप्त हो गया ।

कहते हैं कि एक कौआ प्यास का मारा चारों ओर फिर रहा था । बहुत तलाश के बाद उसे एक घड़े में थोड़ा सा पानी दिखाई दिया । कौआ घड़े पर पानी पीने के लिए बैठा, पर चोंच पानी तक न पहुँची तब कौए को एक उपाय सूझा वह कंकड़ चोंच से बीन-बीन कर लाया और उन्हें घड़े में डाला । कंकड़ पड़ने से पानी ऊपर उठ आया और कौए ने अपनी प्यास बुझाई । जब किसी बात की तीव्र इच्छा होती है तो उसे पूर्ण करने के लिए साधनों की तलाश आरम्भ होती है, निदान के लिये कोई न कोई उपाय निकल ही आते हैं । आवश्यकता आविष्कार की जननी हैं । जहाँ चाह होती है वहाँ राह निकलती है । अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए लोग आकाश पर राह बना लेते हैं अर्थात् समद्र में डुबकी लगाकर उसकी तली में रखे हुए मोती, लोग ढूँढ लाते हैं । रेत के जर्रों को ढूँढ कर सोने-चाँदी की खानें मालूम करते हैं, कोयले के पर्वतों को तोड़ कर हीरों का पता लगाते हैं । तलाश वास्तव में बड़ी प्रेरक शक्ति है, मनुष्य ने एवरेस्ट की चोटी, समुद्र की तली, ध्रुव प्रदेशों की भूमि और आकाश की सुगमता पार कर ली है । प्रकृति के गर्भ में छिपे हुए अनेकों रहस्यों को ढूँढ कर जब मनुष्य अभीष्ट सिद्धि के पथ पर दृढ़ता पूर्वक अग्रसर होता है तब वह एक शक्तिशाली भीमकाय युद्ध टैंक का रूप धारण कर लेता है । खाई खन्दकों को पार करता हुआ, रास्ते के पेड़-पौधों की बाधाओं को तोड़ता मरोड़ता हुआ अभीष्ट लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बढ़ता जाता है ।

इस निखिल विश्व में जो कुछ हलचल हो रही है वह ईक्षण-शक्ति, इच्छा-शक्ति का ही खेल है । परमात्मा ने इच्छा की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ फलस्वरूप इस विश्व की रचना हो गई । निखिल प्राणधारियों की व्यष्टि और समष्टि की इच्छा शक्ति के स्फुरण से ऋतुओं का आवागमन होता है । जलाशय गति करते हैं, तथा सृष्टि की अनेकानेक घटनाएँ घटित होती हैं । यदि सजीव प्राणी न रहें तो विश्व में होने वाली नाना विधि हलचलें भी समाप्त हो जायेंगी । प्राणिशास्त्र के आचार्य जानते हैं कि वनस्पति वर्ग उद्भिज-पशु पक्षी तथा अन्य सजीव पदार्थों को रंग रूप में, आकार-प्रकार में जो परिवर्तन हुआ है या हो रहा है उसका एक मात्र कारण उन जीवों की इच्छा है । वनमानुष के शरीर से आगे बढ कर मनुष्य ने अपने शरीर में इतना विकास कर लिया है यह उसकी इच्छा-शक्ति का ही चमत्कार है ।

इन सब बातों पर विचार करने से उस रहस्य का पता चल जाता है कि शारीरिक दृष्टि से समानता होते हुए भी मनुष्य, मनुष्य के बीच में इतनी आश्चर्य-जनक असमानता क्यों है ? इच्छा-शक्ति के महान अस्त्र को जो व्यक्ति समुचित उपयोग में लाते हैं, उन्हें उन्नति के अनेकों साधन उपलब्ध होते जाते हैं और थोड़े ही समय में समृद्ध एवं सम्पन्न बन जाते हैं किन्तु जो लोग इस अस्त्र का उपयोग नहीं करते इनका मनः संस्थान अर्धमूर्च्छित अवस्था में पड़ा रहता है, वे जीवन के भार को किसी प्रकार ढोते रहते हैं, जिन्दगी के दिन काटते रहते हैं । रोटी खाते, मेहनत करते और रात को सो जाते हैं । मिनट, घंटे, दिन, मास, वर्ष, बीतते जाते हैं, जीवन की धुरी तेजी से घूमती है, आयु समाप्त होती जाती है पर वे वैसे ही रहते हैं जैसे कि आरम्भ में थे । माता के गर्भ से निकलकर मृत्यु के मुँह में जाने तक वे सिर्फ इतना सीख पाते हैं जिसके द्वारा किसी प्रकार जिन्दगी के दिन काटे जा सकें ।

इस दुनिया में बहुत से व्यक्ति, सचमुच बड़े अभागे हैं । वे जन्म भर यह नहीं जान पाते कि जीवन जैसे बहुमूल्य पदार्थ में कितना आनन्द ओत-प्रोत है । सदा ही उन्हें दूसरों के मुँह की तरफ ताकना पड़ता है, परिस्थितियाँ जिधर ले दौड़ती हैं उधर जाने को मजबूर होना पड़ता है, बेचारे नौन, तेल, लकड़ी की चिन्ता में रात-दिन कुड़कुड़ाते रहते हैं । एक ऊँट या एक बैल के कार्यक्रम से तुलना की जाय तो उनके और उन पशुओं के जीवन-पालन में कोई विशेष अन्तर नहीं होता । कितने ही व्यक्ति तो और भी गई-बीती अवस्था में दिन बिताते हैं । जीवन की आवश्यक वस्तुएँ तक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नसीब नहीं होतीं, समाज में आदर का स्थान नहीं मिलता, यश, प्रशंसा और प्रतिष्ठा की एक बूँद उनके तृषित अन्त:करण को कभी प्राप्त नहीं होती । अनादर, झिड़की, फटकार, अपमान, अभाव, चिन्ता, कुढ़न, पीड़ा, भय, आशंका, सदा ही उन्हें भूत-चुडैलों की तरह घेरे रहते हैं । ऐसा जीवन भी भला कोई जीवन है ? फिर भी असंख्यों मनुष्यों को इसी तरह जीना पड़ रहा है ।

आइए, विचार करें कि किसने उन्हें इस प्रकार की दुखदायी स्थिति में पड़े रहने के लिए विवश किया है ? क्या ईश्वर की, भाग्य की, विधाता की, भूल या नाराजी से ऐसा हुआ है? क्या कोई ग्रह, नक्षत्र, देव, दानव ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं ? नहीं, कदापि नहीं, मनुष्य के दुर्भाग्य का इनमें से एक भी कारण नहीं है । परम दयालु, न्यायकारी परमात्मा अपने परम प्रिय पुत्र को ऐसी दुखदायी परिस्थिति में जकड़ने की भूल नहीं कर सकता । विधाता तो बड़ा दयालु है वह किसी के भाग्य को अकारण बुरा क्यों लिखेगा ? देवता लोग जो सदा सब पर दया करते हैं, अकारण किसी को कष्ट क्यों देंगे ? कोई भी दूसरा किसी दूसरे को कष्ट नहीं देता मनुष्य स्वयं ही अपने लिए परिस्थितियाँ तैयार करता है, वह स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है, रामायण कहती है-

**काहु न कोउ सुख दु:ख कर दाता ।**
**निज निज कर्म भोग सब भ्राता ।।**

गीता का भी यही मत है । भगवान कहते हैं- "**आत्मैवहात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:**" आत्मा स्वयं ही अपना बन्धु और स्वयं ही अपना शत्रु है ।

सुख और दु:ख, उन्नति और अवनति, उत्थान और पतन इनका एक-मात्र कारण मनुष्य का कर्म है और कर्म रूपी वृक्ष का आधार विचार रूपी बीज है । इच्छा से प्रेरणा की और प्रेरणा से कर्म की उत्पत्ति होती है, इसलिए कर्म का मूल ' 'इच्छायुक्त विचार' ही प्रधान ठहराया जाता है । अपनी आकांक्षा के अनुरूप मनुष्य सोचता है, जैसा सोचता है वैसा साधन उपलब्ध करता है । जैसे साधन एकत्रित होते हैं वैसा कर्म होने लगता है । जैसा कर्म किया जाता है वैसी परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती हैं, वैसा फल उपलब्ध होने लगता है । एक समय का बीज किसी समय फला-फूला विशाल वृक्ष बन कर सामने आता है, उसी प्रकार एक समय का विचार किसी समय कर्म और उससे उत्पन्न होने वाले भले-बुरे फल के रूप में आगे आ जाता है ।

प्रारब्ध, तकदीर, भाग्य, विधि का विधान, माथे के अक्षर, कर्म रेख यह सब किसी अदृश्य सत्ता द्वारा अविवेक पूर्वक नियोजित नहीं होता । अपने किये हुए कर्मों का समयानुसार परिपाक होकर जब परिणाम सामने आता है तो वह भाग्य या तकदीर कहलाता है । आटे का चूल्हे में परिपाक होकर उसकी रोटी बन जाती है । यद्यपि आटा और रोटी दो प्रथक वस्तु हैं, दोनों की शक्ल सूरत आपस में नहीं मिलती तो भी यह मानना पड़ता है कि रोटी और कुछ नहीं आटे का रूपान्तर मात्र है । जल और बरफ दो प्रथक चीज हैं तो भी यह निश्चित है कि बरफ की स्वतन्त्र सत्ता कुछ नहीं वह जल का बदला हुआ रूप है । इसी प्रकार तकदीर भी कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं । वर्तमान के कर्मों का जब परिपाक हो जायगा तो वह भविष्य में भाग्य कहलायेंगे, मनुष्य की तकदीर को दूसरा कोई नहीं लिखता । प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता और लेखक आप है । वेशक कर्म के फल का परिणाम रोकने की सामर्थ्य मनुष्य में नहीं है, तो भी वह कर्म को इच्छानुसार करने में स्वतन्त्र है । धनुष पर से तीर छोड़ दिया गया है वह अपना परिणाम जरूर उपस्थित करेगा जहाँ उसे लगना है वहाँ जरूर लगेगा । तीर चलाने वाला चाहे तो भी धनुष से छूटे हुए तीर के परिणाम को नहीं रोक सकता; इसी प्रकार कर्म कर दिये जाने के उपरान्त उसके परिणाम से बचना मुश्किल है । किन्तु तीर चलाने न चलाने में पूरी स्वतन्त्रता है । यह ठीक है कि जो कर्म किये जा चुके हैं उनका दु:ख-सुख कभी-कभी आकस्मिक रूप से सामने आ जाया करेगा पर यह भी बिल्कुल ठीक है कि अपने भविष्य को अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा बनाने में पूर्णतया स्वतन्त्र है ।

पूर्व जन्म के प्रारब्ध कर्मों के बारे में एक बात और जान लेने की है कि वे कभी भी, किसी भी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्रकार जीवन विकास के मार्ग में बाधा नहीं पहुँचाते । हाँ, उनके कारण आकस्मिक दुख आ जाते हैं । यकायक कोई विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है, ऐसी दुर्घटनाएँ घटित हो जाती हैं जो मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर की बात होती हैं । जैसे (१) जन्म से अन्धे अपाहिज या अंगभंग पैदा होना, (२) उत्तम चिकित्सा कराते हुए भी किसी स्वजन का विछोह हो जाना, (३) किसी पैतृक असाध्य रोग में जन्म से ही ग्रसित होना, (४) महामारी, युद्ध, तूफान भूकम्प, बिजली गिरना आदि दैवी प्रकोप का शिकार हो जाना (५) किसी अच्छी-भली चीज का अचानक आश्चर्यजनक ढंग से टूट जाना या नष्ट हो जाना (६) किसी सिंह, सर्प आदि का असम्भावित आक्रमण या स्वयं सावधान होते हुए भी दूसरे की गलती से दुर्घटना हो जाना । इस प्रकार के कार्य जिनमें अपनी लापरवाही या असावधानी नहीं होती वरन् आकस्मिक विपत्ति आ टूटती हैं ऐसे कार्य भाग्य का परिणाम या तकदीर कहे जा सकते हैं । जो कार्य मनुष्य की शक्ति, सामर्थ्य एवं सावधानी की पहुँच से बाहर के हैं, इन्हें प्रारब्ध कहा जाता है । किसी ऊँचे सम्पन्न कुल में उत्पन्न होकर बड़ी सम्पत्ति का अनायास ही उत्तराधिकारी बन जाना या कहीं कदाचित खजाना मिल जाना आदि कहे जा सकते हैं ।

जो कार्य मनुष्य के प्रयत्न, योग्यता एवं सावधानी से सम्बन्ध रखते हैं वे सब अभी के, इसी जन्म के कार्यों के फल होते हैं । साधारण व्यवहारिक कार्यों का परिपाक बहुत ही शीघ्र हो जाता है । केवल घोर, गहन, बहुत ऊँचे या बहुत उग्र कर्मों का फल ही अगले जन्म के लिए या बहुत काल पीछे प्रारब्ध रूप में प्रकट होने के लिए रुकते हैं । आरोग्य बीमारी, व्यापारिक हानि-लाभ पारिवारिक राग-द्वेष, सम्पन्नता-दरिद्रता, विद्वता-मूर्खता, यश-अपयश, घृणा, प्रतिष्ठा, सुसंग-कुसंग, प्रेम द्वेष-प्रसन्नता बेचैनी आदि दैनिक जीवन में आते रहने वाले द्वन्द्व मनुष्य की वर्तमान कार्य प्रणाली एवं विचारधारा पर निर्भर रहते हैं । इन द्वन्द्वों में से जिस भी भले या बुरे पक्ष को पसन्द करे मनुष्य उसे चुन सकता है, और स्वेच्छा-पूर्वक बड़ी आसानी से उसे प्राप्त कर सकता है । बीमारी, घाटा, कलह, दरिद्रता, मूर्खता, अपयश, घृणा, द्वेष, चिन्ता, पीड़ा एवं बेचैनी आदि बुरा पक्ष चुनना और उसे जीवन में भर लेना मनुष्य के अपने हाथ की बात है इसी प्रकार आरोग्यता, लाभ, एकता, विद्वता, चतुरता, यश, प्रतिष्ठा, प्रेम, सहयोग, प्रसन्नता तथा सुख-शान्ति भी पूर्णतया अपने हाथ की बात है ।

एक अनुभवी दार्शनिक का कथन है कि स्वर्ग और नरक मनुष्य के आगे पीछे रहते हैं और सदा साथ-साथ चलते हैं । आगे स्वर्ग है, पीछे नरक है । जब मनुष्य आगे की ओर उच्चता, महानता और श्रेष्ठता के प्रकाश-पूर्ण सत्पथ पर चलता है तो उसका हर एक कदम स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करता हुआ पड़ता है । इसके विपरीत जब मनुष्य पीठ पीछे की ओर नीचता के, पाप के, मलीनता के निकृष्ट एवं अन्धकार के गर्त में खिसलता है तो उसका हर एक कदम भयंकर नरक में धँसता जाता है । हर व्यक्ति स्वतन्त्र है कि चाहे जिस ओर कदम बढ़ाये । स्वर्ग या नरक के दोनों फाटक खुले पड़े हैं जो चाहें जिसमें बिना रोक-टोक प्रवेश कर सकता है । अन्धकार और प्रकाश का पथ हर एक के सामने मौजूद है जिसका जी जिधर चाहे उधर जा सकता है । स्वेच्छानुसार अपने लिए भली या बुरी परिस्थिति चुन सकता है ।

कई मनुष्य कहते हैं कि हम सुख चाहते हैं पर दुःख मिलता है । हमें आनन्द मय स्थिति की इच्छा है पर क्या करें सदा बुरे ही बुरे अवसर सामने आते हैं । सुखी और समृद्धों जैसा वैभव चाहते हैं पर वह मिलता ही नहीं । ईश्वर नाराज है, दिन खराब हैं, दुर्दैव ने घेर रखा है ग्रहों का फेर है । भाग्य साथ नहीं देता, कोई इच्छा पूरी नहीं होती । कोई-कोई व्यक्ति अदृश्य शक्तियों पर दोषारोपण करके चुप हो जाते हैं पर कोई-कोई इसके आगे बढ़ते हैं और दृश्य शक्तियों पर दोष लगाते हैं- जमाना बड़ा खराब है, दुनिया स्वार्थी हो गई है, जिधर देखो उधर बदमाशी छाई हुई है, सच्चे के सब दुश्मन हैं, भले का जमाना नहीं है, कोई चैन से नहीं बैठने देता हमसे सब जलते हैं, सब दुश्मनी रखते हैं, कोई साथ नहीं देता, जिसे देखो वही ठगने को फिरता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है, सच्चे मित्र इस दुनिया में रहे ही नहीं, ईमानदारी उठ गई, घोर कलियुग आ गया है । आदि-आदि अनेकों बातें कहकर वे किसी प्रकार अपने मन को सन्तोष कराया करते हैं । आम तौर से मनुष्य स्वभाव अपने सम्बन्ध में बड़ा ही पक्षपाती होता है, अपनी कर्मों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता, यदि जाता है तो उन्हें उतना महत्त्व नहीं देता । दूसरों को दोष देकर अपने आप को निर्दोष देखने की भूल मनुष्य की सब से बड़ी कमजोरी है । दृश्य या अदृश्य शक्तियों पर दोषारोपण करके अपने आपको निर्दोष, बेचारा, साबित करने का प्रयास करना एक मनोवैज्ञानिक बालकपन है । इस थोथे प्रयास में रत्ती भर भी सार नहीं है । इस निस्सार बकवास के द्वारा मनुष्य अपने आपको भूलावे में ढाल सकता है । इसके अतिरिक्त और कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । सब देव-दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी कीट, पतंग अपनी-अपनी धुरी पर घूम रहे हैं, अपने निश्चित कार्य में व्यस्त हैं । अपने कार्य को पूरा करना सबको अभीष्ट है । चतुर व्यक्ति उनसे लाभ उठा लेते हैं, उनका सहयोग प्राप्त कर लेते हैं और मूर्ख उनसे टकरा जाते हैं और उनके अन्दर काम करने वाले तामतत्त्व का स्पर्श करके हानि उठाते हैं ।

जो यह कहते हैं कि 'हम सुख चाहते हैं पर हमें मिलता नहीं ।' वे एक मनोवैज्ञानिक भूल करते हैं । वे 'कल्पना' और 'चाहना' को एक ही बात समझ बैठते हैं । कल्पना एक ख्याली उड़ान मात्र है । भूतकाल की किन्हीं घटनाओं की स्मृति जिस प्रकार मनुष्य किया करता है वैसे ही भविष्य के लिए भी कल्पना किया करता था, मन के लड्डू बनाया करता है । बालकों में यह बात विशेष रूप से देखी जाती है वे बड़ी-बड़ी विचित्र कल्पनाएँ करके मन ही मन आनन्दित हुआ करते हैं । जैसे भूतकाल की स्मृति से एक मनोरंजन होता है वैसे ही भविष्य की कल्पना में भी एक मनोविनोद जैसी वस्तु होती है । ऐसी थोथी कल्पनाएँ निष्प्राण होने के कारण उसी प्रकार फलित नहीं होती जैसे बिना पका, सड़ा-घुना, बीज नहीं उगता । चाहना या इच्छा इससे बलवान होती है, उसमें प्राण रहता है । जब मनुष्य अपने में किसी अभाव को अनुभव करता है, उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता को समझता है और प्राप्त वस्तु द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द की कल्पना करता है तो मन में एक बैचेनी एवं छटपटाहट उत्पन्न होती है यही 'इच्छा' या चाहना है । इच्छा एक प्रकार की प्यास है जो हर घड़ी मनुष्य को टोंचती है और इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है ।

इच्छा से प्रेरित होकर मनुष्य अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने के सम्बन्ध में विचारों को दौड़ाता है, सोचता और विचारता है, इस चीज को प्राप्त करने की सामर्थ्य मुझमें है या नहीं ? जिन क्षेत्रों से उसको प्राप्त करने के साधन मिलेंगे वहाँ तक मैं पहुँच सकूँगा या नहीं ? दूसरे लोगों ने ऐसी प्राप्तियाँ की हैं या नहीं ? आदि प्रश्नों पर बुद्धि ध्यान देती है और पक्ष-विपक्ष के तर्कों पर विचार करके यह निर्णय देती है कि इस कार्य को पूरा किया जा सकता है या नहीं । जब यह निश्चय हो जाता है कि इस वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है तब वह (१) निश्चयात्मक विश्वास और (२) अभाव, आवश्यकता तथा प्राप्ति सुख का आनन्द प्राप्त करने की बैचेनी, यह दोनों भावनायें मिलकर ''आकांक्षा'' बनती है । आकांक्षा ही वह सजीव बीज है जो उगता है, बड़ा होता है और फले-फूले वृक्ष के रूप में सामने आ उपस्थित होता है ।

कल्पना एक मनोविनोद मात्र है । इच्छा मस्तिष्क को एक दिशा में लगाये रखने वाली वस्तु है और आकांक्षा कार्य में प्रवृत्ति कराने की समझ से युक्त है । कल्पना के सपने अनेकों मनुष्य देखा करते हैं, कल्पना को एक जाग्रत स्वप्न कहा जा सकता है । जो मन को तो बहला देती है पर प्रेरणा नहीं देता । रंगीन बादलों की तरह यह स्वप्न क्षणिक होते हैं, आते हैं और चले जाते हैं । चले जाने के बाद मन पर उनका कोई असर नहीं रहता । परन्तु इच्छा इससे आगे बढ़ी हुई है । यह वस्तु मैं प्राप्त कर ही सकूँगा इस निश्चय के अभाव में इच्छा की भावना मनः क्षेत्र तक ही सीमित रहती है, मस्तिष्क में ही घुमड़ती रहती है । अनेकों कच्ची उम्र के लड़के जब सिनेमा देखकर आते हैं तो उसमें देखी हुई स्त्री अभिनेत्रियों का कामुकता

पूर्ण भावभंगिमा उनके मन में घुस जाती है फिर वे वैसी ही किसी परी को, प्राप्त करने की इच्छा करने लगते हैं, दिमाग में वही धुआँ घुमड़ता रहता है, रात को निद्रित स्वप्न में और दिन को जाग्रत स्वप्न में उन्हें वही परियाँ दीखती हैं, सिनेमा के अखबार पढ़ते हैं, अभिनेत्रियों के फोटो खरीद कर देखा करते हैं, उसके सम्बन्ध में चर्चा छेड़ते हुए बड़े सुख का अनुभव करते हैं, परन्तु साथ ही यह भी जानते हैं कि मेरी बाप तम्बाकू की दुकान करता है, इसलिए ऐसी परी नसीब होना मेरे लिए मुश्किल है । परी प्राप्त होने की इच्छा निश्चय के अभाव में प्रेरक नहीं हो पाती । परियों को प्राप्त करने का उन लड़कों का प्रयत्न नहीं चलता केवल वह इच्छा मस्तिष्क में कुलबलाती भर रहती हैं ।

सुख की कल्पना करते रहने वाले मनुष्य इस संसार में बहुत हैं । इसके बाद इच्छा करने वालों का नम्बर है । लौकिक और पारलौकिक सुखों की नानाविधि इच्छाएँ लोग किया करते हैं परन्तु इच्छाओं की जड़ में प्रेरणा और दृढ़ता नहीं होती । फलस्वरूप या तो वे अभीष्ट सिद्धि के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं कर पाते, यदि करते हैं, तो वह प्रयास इतने निर्बल होते हैं, कि सफलता में विलम्ब की आशंका होने पर या मार्ग में कुछ कठिनाई आती दिखाई देते ही वे टूट जाते हैं । जो काम अधूरे मन से, आधी शक्ति से, किया जाता है वह पूरा नहीं पड़ता । एक कार्य आरम्भ किया और कुछ ही चल कर वह बन्द हो गया ऐसे व्यवधानों की इच्छा की कमी एवं निर्बलता ही है । इस प्रकार काम आरम्भ करने और उसके बीच में टूट जाने के दोष की सफाई लोग यह कहकर दिया करते हैं कि क्या करें जी, फुरसत नहीं मिलती, बीच में झंझट आ जाते हैं, मन नहीं लगता, सफलता दिखाई नहीं देती । यह सभी उत्तर बनावटी हैं, असली कारण होता है दिलचस्पी की कमी, इच्छा की निर्बलता । कल्पना या अधूरी इच्छा इष्ट सिद्धि तक ले पहुँचने की क्षमता नहीं रखती । ऐसी दशा में जो लोग यह कहते हैं कि ''हम सुख चाहते तो हैं पर वह मिलता नहीं, ऊँचा उठना चाहते पर उठ नहीं पाते'' वे यह भूल जाते हैं वे उनकी चाहना बहुत निर्बल है वह कल्पना या हीनवीर्य इच्छा मात्र है । उसके आधार पर कोई कहने लायक महत्त्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकती, जीवन में कोई महान् विभूति सम्पादित नहीं की जा सकती ।

इन पंक्तियों में जिस ''आकांक्षा'' की महत्ता बताई जा रही है वह सजीव, प्राणयुक्त, प्रेरक शक्ति से परिपूर्ण और दृढ़ निश्चय से भरी हुई इच्छा है । इसी को आकांक्षा कहते हैं । इच्छा केवल मस्तिष्क में हलचल मचाती है पर आकांक्षा मस्तिष्क और कर्म दोनों को अपने मार्ग पर नियोजित कर देती है । यह आकांक्षा ही वह तत्त्व है जिसके द्वारा कोई मनुष्य ऊँचा उठता है, आगे बढ़ता है, प्रतिष्ठा, विद्वत्ता, सम्पत्ति तथा समृद्धि प्राप्त करता है और महापुरुष बनता है । इन्द्रिय भोगों से लेकर ईश्वर प्राप्ति तक सम्पूर्ण आनन्ददायक तत्त्व इस आकांक्षा द्वारा ही प्राप्त होते हैं । जिसकी आकांक्षा जितनी ही प्रबल होती है वह उतनी ही शीघ्रता से, अधिक परिमाण में सफलता प्राप्त कर लेता है, जिसमें यह आकांक्षा जितनी ही मन्द होगी इसी अनुपात से उसकी उन्नति का मार्ग रुका रहेगा, मनुष्य जीवन में सबसे बहुमूल्य तत्त्व यह आकांक्षा ही है । मधु मक्खियों के छत्ते में एक ''रानी मक्खी'' होती है, यह रानी मक्खी जहाँ जाती है छत्ते की अन्य सारी मक्खियाँ भी उसी के साथ चल देती हैं । यदि वह वर्तमान छत्ते को छोड़कर चल दे और कहीं नया छत्ता बनाये तो अन्य सारी मक्खियाँ भी उसी का अनुकरण करेंगी । आकांक्षा रानी, मधु मक्खी के समान है वह जिधर चलती है उधर ही अन्य शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ काम करने लगती हैं । सम्पूर्ण शक्तियों का एकीकरण होकर जब एक दिशा में प्रगति होती है तो बड़ा उत्साह वर्धक परिणाम निकलता है । बारूद को जमीन पर बखेर कर उसमें आग लगा दी जाये तो वह भक्क से जल जायेगी एवं थोड़ा सा धुँआ छोड़ कर समाप्त हो जावेगी किन्तु उसे यदि बन्दूक की नली में भर कर एक ही दिशा की ओर छोड़ा जाय तो सब जानते हैं कि वह जरा सी बारूद क्या गजब ढाती है । आकांक्षा की बन्दूक में

भरकर शारीरिक और मानसिक शक्तियों की गोलीबारूद जिस निशान पर चलाई जायेगी वह लक्ष्य अवश्य विध जायेगा ।

मनुष्य-मनुष्य में शारीरिक समानता होते हुए भी जो आश्चर्य जनक असमानता है उसका मूल कारण यह आकांक्षा है । जिनमें आकांक्षा तीव्र होती है वे तीर की तरह अपने अभीष्ट पथ पर तेजी से आगे बढ़ते चले जाते हैं और थोड़े ही समय में इतनी सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं कि दूसरे लोगों को उनकी उन्नति में कोई जादू, दैवी वरदान या विलक्षणता दिखाई पड़ने लगती है । परन्तु सच बात यह है कि इसमें विलक्षणता की कोई बात नहीं है । निरन्तर के प्रयास से चाहे वह थोड़ा-थोड़ा ही क्यों न होता रहे बहुत बड़ी सफलता सम्पादित हो जाती है । दूसरे व्यक्ति जो इस आकांक्षा शक्ति का उपयोग नहीं करते जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं । न तो उनके मन में कोई उत्कट प्रेरणा उठती है, और न सुदृढ़ प्रयास आरम्भ किया जाता है फलस्वरूप वे ज्यों-त्यों करके जीवन का भार ढोने के अतिरिक्त किसी विशेष सफलता को प्राप्त करने की दिशा में प्रगति नहीं कर पाते ।

कछुए और खरगोश की दौड़ में बाजी बढ़ने पर कछुए की जीत हो जाने और खरगोश के हारने की कहानी सर्व विदित है । खरगोश अपनी सामर्थ्य के अहंकार में एक जगह सोता रहा था और कछुआ एक निष्ठा से लक्ष्य की ओर निर्बाध गति से बढ़ता चला गया था, फलस्वरूप उसने बाजी जीत ली थी । जो व्यक्ति सफल जीवन कहे जाते हैं उनमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती, कई बार तो वे साधारण मनुष्यों से भी कई बातो में पिछड़े हुए होते हैं पर कछुए की जैसी उत्कट आकांक्षा से प्रेरित होकर वे अध्यवसाय करते हैं और उन टूटी-फूटी शक्तियों द्वारा ही बड़े-बड़े काम कर डालते हैं । काम करने के निरन्तर अभ्यास से वे पिछड़ी हुई शक्तियाँ भी सतेज हो जाती हैं । कई लड़के जो स्कूल में बड़े भौंदू, मूर्ख, निकम्मे, कमजोर और गिरे दर्जे के मालूम पड़ते हैं, आगामी जीवन में अपने अध्यवसाय द्वारा बड़े प्रतिभाशाली और प्रतापी बन जाते हैं, और कई लड़के जो छोटेपन में बहुत ही कुशाग्र बुद्धि होते हैं, सब बातों में अच्छे नम्बर लाते हैं, आगामी जीवन में अपनी इच्छा-शक्ति की कमी के कारण अपनी उन जन्मजात सामर्थ्यों को भी खो बैठते हैं और जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं । कछुए बाजी जीत लाते हैं और खरगोश शर्मिन्दगी से मुँह छिपाते फिरते हैं ।

बाइबिल का एक वचन है कि 'जो (द्वार) खटखटायेगा उसके लिए खोला जायेगा । महात्मा कबीर अपने शिष्यों से कहा करते थे:-

**जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ ।**
**हों बौरी बूढन डरी, रही किनारे बैठ ।।**

जिनने खोज की है उनने पाया है । जो किनारे पर बैठ रहे हैं, बौरे बावले, पागल मूर्ख कहलाये । इतिहास साक्षी है कि जिसने द्वार खटखटाया है उसके लिए खोला गया है । यह ठीक है कि कभी-कभी बड़े प्रयत्न भी असफल हो जाते हैं, पर ऐसा सदा नहीं होता ऐसे कुछ अपवाद ही कभी-कभी घटित होते हैं और अपवादों को सार्वजनिक नियम या प्रमाण नहीं माना जाता । कई व्यक्ति प्रयत्न करते हुए भी प्रतियोगिता में सफल नहीं हो पाते, पर इससे प्रयत्न या आकांक्षा की महानता नहीं घटती । कई महत्वाकांक्षियों में जिनकी तैयारी अधिक होती है वह सफल रहता है । जिसके निर्बल प्रयास थे वह पीछे रहा, पर जिसने अधिक सामर्थ्य सम्पादित कर ली थी वह सफल रहा । जो प्रतियोगी सफल रहा वह अपने प्रयास की उत्कृष्टता को ही तो पराजितों के सामने प्रकट करता है । जिसकी आकांक्षा जितनी फलितार्थ हो गई है वह उतना ही सफल रहता है । बेशक, विजय साधनों से मिलती है, पर उन साधनों की अधिकता, उत्कृष्टता, सुव्यवस्था और सदुपयोग यह सब आकांक्षा द्वारा ही संकल्पित होते हैं ।

अमुक व्यक्ति अपनी आकांक्षा के कारण इस प्रकार ऊँचा उठने में इस प्रकार सफल हुए, ऐसी घटनाओं का वर्णन करके इस पुस्तक का कलेबर बढ़ाने का हमारी इच्छा नहीं है । पर एक उन्नतिशील मनुष्य इस बात का जीता जागता गवाह है कि जिसके मन में कुछ प्राप्त करने की लगन होती है वही उन्नति कर जाता है । आप अपने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


निकटवर्ती किसी ऐसे व्यक्ति को देखिए जिसने अपने जीवन में आश्चर्य जनक उन्नति की हो । उस व्यक्ति को मनोभावनाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए आप पायेंगे कि उसके मन में इच्छित वस्तु को प्राप्त करने की बड़ी तीव्र अभिलाषा रहा करती थी । वह सदा ही इस बात के लिए तड़फता रहता था कि किस प्रकार अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करूँ । इस इच्छा के कारण उसमें शोधन शक्ति उत्पन्न हुई । तलाश करना, खोजना, अनुसन्धान करना उसने आरम्भ किया, कठिनाइयों से लड़ा, असफलताओं से निराश न हुआ, हर पराजय के बाद उसने नया प्रयत्न शुरू किया, आखिर उसे साधन मिले रास्ता दिखाई पड़ा, सहयोग मिले और अन्त में उन्नतशील परिस्थिति में आ गया । हर एक सफल मनोरथ पुरुष का यह एक ही इतिहास है । छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी सफलता का यह एक ही कार्यक्रम है, यह एक ही पद्धति है । अलग-अलग लोगों को अलग-अलग प्रकार के अवसर आते हैं पर उन सबका तारतम्य एक ही रहता है । जैसे हर एक ग्रह अपनी धुरी पर घूमता है, अपने वृत्त की परिक्रमा करता है, अपनी आकर्षण शक्ति से दूसरे ग्रहों को खिंचता है और दूसरों की आकर्षण शक्ति से खुद खिंचा रहता है । इस एक ही पद्धति से सम्पूर्ण ग्रहों का जीवन क्रम चलता है, भले ही वे उन ग्रहों का क्षेत्र, स्थान, आकार, रंग, गुण, मार्ग भिन्न-भिन्न हो । इसी प्रकार हर एक सम्पन्न एवं समृद्ध व्यक्ति आकांक्षा, खोज, प्रयत्न, विपत्ति में दृढ़ता कठिनाई से युद्ध, निरन्तर प्रयत्न, अटूट साहस, दृढ़, निश्चय, लगन और परिश्रम की क्रिया पद्धति को अपनाता हुआ सफलता को प्राप्त करता है, भले ही उनके क्षेत्र पृथक-पृथक हों । शारीरिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक कलात्मक, आदि नाना प्रकार की सफलताएँ देश, काल, पात्र की स्थिति के अनुसार विभिन्न घटनाक्रमों को पार करती हुई मिलती है, पर उनके मूल क्रियाप्रवाह में एकता ही रहती है । बिना आकांक्षा के, बिना खोज के, बिना प्रयत्न के, कठिनाईयों से लड़े बिना आशा, दृढ़ता, और श्रमशीलता को कायम रखे, किसी ने कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त कर ली हो ऐसा एक भी उदाहरण प्राप्त नहीं हो सकता । इसीलिए विभिन्न मनुष्यों के ऐसे उदाहरण उपस्थित करके कि उन्होंने किस-किस प्रकार सफलताएँ प्राप्त कीं, हम पाठकों का बहुमूल्य समय नहीं लेना चाहते । संसार के समस्त उन्नतिशील मनुष्यों ने एक ही तरीके से उन्नति की है और संसार के समस्त अवनति का दु:ख भोगने वाले एक ही तरीके से नीचे पड़े हुए हैं । उपरोक्त सद्गुणों का अभाव ही मनुष्य को दुर्दशा में पड़े रहने के लिए बाध्य करता है और उस गुणों का होना ही उन्नति के शिखिर पर खड़ा हो जाता है । विभिन्न क्षेत्रों में एक ही नियम के अनुसार उन्नति और अवनति का सूत्र संचालन होता है ।

जीवन को ऊँचा उठाने के इच्छुकों के लिए सब से प्रथम मार्ग यह है कि अपनी आकांक्षा को जाग्रत करें । अन्य मन्यस्कता, उदासीनता, और मुर्दादिली को छोड़कर अपने मन:क्षेत्र को सतेज करें । आप विचार कीजिए कि-(१) आपके जीवन में किन वस्तुओं का अभाव है ? (२) उस अभाव के कारण आपको क्या-क्या कष्ट सहने पड़ते हैं ? (३) आपको किन वस्तुओं की आवश्यकता है ? (४) उन वस्तुओं के उपलब्ध हो जाने पर आप कितने सन्तोष, सुख और आनन्द का रसास्वादन कर सकते हैं ? इन चारों प्रश्नों पर बार-बार विचार कीजिए और जिन पदार्थों की आवश्यकता अनुभव करें उन्हें प्राप्त करने के लिए तीव्र इच्छा कीजिए ।

आपकी इच्छा प्रेरक इच्छा होनी चाहिए । उसकी भूख भीतर से उठनी चाहिए । उसके पीछे प्राण और जीवन होना चाहिए । ''इस वस्तु को प्राप्त करके रहूँगा, चाहे कितनी ही बाधा मार्ग में क्यों न आवें । अपने प्रयत्न निरन्तर जारी रखूँगा चाहे कितने ही निराश करने वाले अवसर क्यों न आवें ।'' इस प्रकार के संकल्प की मन में गहरी सुदृढ़ स्थापना होनी चाहिए ।

जिस वस्तु को आप प्राप्त करना चाहते हैं । पहले उसके सम्बन्ध में गम्भीर विचार कर लीजिए, उसे प्राप्त करना किस प्रकार कैसे सम्भव है, उसकी सम्भावनाओं पर काफी तर्क-वितर्क कीजिए,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कल्पना की स्वप्निल उड़ान से नीचे उतर कर व्यवहारिक क्षेत्र में दृष्टिपात कीजिए कि कहीं आप कोई चन्द्र खिलौना तो नहीं चाह रहे हैं । आरम्भ में छोटी-छोटी सफलताएँ प्राप्त करने के छोटे-छोटे कार्य हाथ में लीजिए बहुत बड़े, मुद्दतों में पूरे होने वाले कार्यों को आरम्भिक लक्ष्य बना लेना ठीक नहीं है । अन्तिम लक्ष्य बहुत बड़ा हो सकता है, पर आरम्भिक सफलता के लिए छोटे-छोटे विराम रखने चाहिए । जैसे आप धुरन्धर विद्वान् बनना चाहते हैं तो पहले अमुक छोटी परीक्षा पास करने को, लक्ष्य स्थिर करिए । उसमें सफल होने के बाद आगे की मञ्जिलें नियत करते चलिये और उन्हें तय करते जाइए । इस प्रकार एक-एक करके छोटी मंजिलों को पार करते चलने से मनुष्य का साहस एक आत्मविश्वास और अनुभव बढ़ता चलता है और वह धीरे-धीरे अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाता है ।

जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहते हैं, उसके सबन्ध में पहले ही खूब सोच विचार लीजिए । सम्पूर्ण बाधा, सुविधा और हानि-लाभों पर विचार कर लीजिए । उसके पश्चात् जब निश्चय कर लें कि हमें अमुक सफलता प्राप्त करनी है तो फिर सब प्रकार के संकल्प, विकल्प, भय और आशंकाओं को छोड़ कर अपने मार्ग पर आरूढ़ हो जाइए । अभीष्ट वस्तु के अभाव में होने वाले कष्टों और उसके प्राप्त होने पर मिलने वाले आनन्दों का बार-बार चिन्तन करते रहना चाहिए । इससे आकांक्षा सतेज होती है । जब भी मन ढीला पड़ने लगे, तब इन अभावों के कष्टों और सफलता के सुखों, का विस्तृत चित्र कल्पना क्षेत्र में खींच कर सबके सामने उपस्थित करना चाहिए । इस चित्र को देखकर मन में नवीन प्रेरणा और स्फूर्ति पैदा होती है और वह नियत दिशा में पुनः उत्साह पूर्व संलग्न हो जाता है ।

सदा आशान्वित रहिए, आकांक्षा को जाग्रत रखिए । आकांक्षा स्वयं एक आनन्द है । सच्चे भक्त मुक्ति को नहीं चाहते वरन् यह चाहते हैं कि जन्म जन्मान्तरों में ''भक्ति'' का रसास्वादन करते रहें । सचमुच मुक्ति से भक्ति में अधिक रस है । सहवास की अपेक्षा विरह की कसक में अधिक मिठास है । इस मिठास का रस भुक्त भोगी ही जानते हैं । धनाधिप होकर वही मसदों पर पड़े रहने के सुख की अपेक्षा गरीबी से बढ़कर धनवान बनने तक के प्रपन्नों में अधिक रस है । इसी प्रकार सफलता से आकांक्षा का आनन्द भी किसी प्रकार कम नहीं है । अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिए जो बौद्धिक और शारीरिक श्रम किया जाता है, वह श्रम ही अन्तःकरण को नित्य एक तृप्तिदायक स्वर्गीय सोम रस पान कराता रहता है, जिस दिन से आकांक्षा अपना प्रयत्न आरम्भ करती है उसी दिन से मनुष्य की एक सन्तोष मिश्रित-कर्त्तव्य पालन का सुख मिलने लगता है ।

स्मरण रखिए जिसकी आकांक्षाएँ जीवित हैं वह जीवित मनुष्य है, जिसकी आकांक्षाएँ मर गई वह ''जीवित मृतक'' हो जायेगा । जीवन का उद्देश्य विकास करना है, अणु से विभु, लघु से महान्, आत्मा से परमात्मा बनना है । उन्नति करना आगे बढ़ना, पुरुषार्थ परायण होना, मनुष्य के लिए दैदी आदेश है, आप इस मार्ग पर बढ़ते चलिए । जीवन जैसी अमूल्य निधि को व्यर्थ मत जाने दीजिए । गौरव प्राप्त कीजिए, महान् बनिए, अपने को समृद्धि और सम्पदाओं से परिपूर्ण बनाइये । अपनी आकांक्षाओं को जाग्रत रखिए, जीवित रखिए । भूलिए मत, आकांक्षा ही समृद्धि की माता है । केवल वही व्यक्ति इस संसार में ऊँचे उठ सकते हैं आगे बढ़ सकते हैं जिनकी आकांक्षाएँ बलवती होती हैं ।

## (२) कष्ट सहिष्णुता

सफलता का मार्ग सुलभ नहीं है । उसमें पग-पग पर कांटे बिछे हुए हैं । शहद मधुमक्खियों के जहरीले डंकों की बाड़ के भीतर रहता है । जो उन पैने डंकों का सामना कर सकता है वही शहद को पा सकता है । सुन्दर व्याघ्रचर्म पानी की इच्छा रखने वालों को काल सी कराल डाढ़ों वाले व्याघ्र से युद्ध करना होता है । गुलाब के सुन्दर फूल को डंठल कांटों से भरी होती है, इन कांटों के खतरे को उठाकर ही कोई उस फूल को तोड़ सकता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मोती ढूँढने वाले को मगरमच्छों से भरे हुए समुद्र की तली तक दौड़ लगानी पड़ती है । भगवान् को प्राप्त करने वाले साधकों को पहले कठोर साधना के कष्टों को सहना पड़ता है । संतति सुख को प्राप्त करने में माता-पिता को अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं । कष्ट और कठिनाई का व्यवधान उन्नति की हर दिशा में मौजूद रहता है । ऐसी एक भी सफलता नहीं है जो कठिनाईयों से संघर्ष किये बिना ही प्राप्त हो जाती हो । जीवन के महत्त्वपूर्ण मार्ग विघ्न बाधाओं से सदा ही भरे रहते हैं । यदि परमात्मा ने सफलता का कठिनाई के साथ गठबन्धन न किया होता उसे सर्व सुलभ बना दिया होता तो मनुष्य जाति का वह सबसे बड़ा दुर्भाग्य होता । तब सरलता से मिली हुई सफलता बिलकुल नीरस एवं उपेक्षणीय हो जाती । जो वस्तु जितनी कठिनता से, जितना खर्च करके मिलती है वह उतनी ही आनन्ददायक होती है । कोई शाक या फल जिन दिनों सस्ता और काफी संख्या में मिलता है उन दिनों उसकी कोई पूछ नहीं होती पर जिन दिनों वह दुर्लभ होता है उन दिनों अमीर लोग उसकी खोज कराके महँगे दाम पर खरीदते हैं । मिठाई का आनन्द हलवाई नहीं जानता उसका मजा तो उन्हीं को मिलता है जिन्हें वह कभी-कभी ही प्राप्त होती है । अमीर के लिए एक रुपया ठीकरी की बराबर है पर गरीब को वह चन्द्रमा की तरह बड़ा मालूम पड़ता है। स्वास्थ्य का महत्त्व यही जान सकता है जो बीमारी में पड़ा हुआ है । स्वर्ण की महत्ता इसलिए है कि वह कम मिलता है पर यदि गेरू की तरह सोने की खानें निकल पड़ें तो उसे भी लोग वैसी ही लापरवाही से देखेंगे जैसे आज लौह आदि सस्ती धातुओं को देखा जाता है । जब लकड़ियाँ घिसकर आग पैदा की जाती थी तब अग्नि का बड़ा भारी महत्त्व था, देवता की तरह उसकी पूजा होती थी पर अब जब कि दियासलाई के बॉक्स दुकानों में पटे पड़े हैं तब अग्नि की कौन परवाह करता है । जिनके संतति नहीं है उनके लिए एक बालक का होना- किसी देवता के अवतार लेने के बराबर महत्त्वपूर्ण है, पर जिनके यहाँ हर दूसरे वर्ष उनके बच्चे आ टपकते हैं उनके लिए नये बालक का जन्म, चिन्ता, झुंझलाहट दुर्भाग्य सूचक और कष्टदायक होता है ।

दुर्लभता और दुष्प्राप्यता से आनन्द का घनिष्ट सम्बन्ध है । जब प्रेमी और प्रेमिका दूर-दूर रहते हैं एक दूसरे की चन्द्र चकोर की भाँति याद किया करते हैं परन्तु सदा ही एक जगह रहना होता है तो दाल में नमक कम पड़ने या सिन्दूर की बिन्दी लाने में भूल हो जाने जैसी छोटी बातों पर कलह होने लगते हैं । जो वस्तुएँ दुर्लभ हैं, सर्व साधारण को आसानी से नहीं मिलती उन्हें ही सफलता कहते हैं । जिन कार्यों की सफलता सर्व सुलभ है वैसे कार्य तो सब लोग सदा करते ही रहते हैं उनके लिए न कोई पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है और न लेखक को लिखने की । यदि महत्त्वपूर्ण सफलताओं की प्राप्ति करने में कुछ बाधा न होती तो वे महत्त्वपूर्ण न रहतीं और न कुछ रस आता । कोई रस और कोई विशेषता, न रहने पर यह संसार बड़ा ही नीरस एवं कुरूप हो जाता । लोगों को जीवन काटना एक भार ढोने की भाँति अप्रिय कार्य प्रतीत होने लगता ।

कठिनाईयों के न रहने पर एक और हानि होती कि मनुष्य की क्रियाशीलता, कुशलता एवं चैतन्यता नष्ट हो जाती । ठोकरें खा-खाकर अनुभव एकत्रित किया जाता है । घिसने और पिसने से योग्यता बढ़ती है । कष्ट की चोट सहकर मनुष्य दृढ़, बलवान और साहसी बनता है । मुसीबत की अग्नि में तपाये जाने पर बहुत सी कमजोरियाँ जल जाती हैं और मनुष्य खरे सोने की तरह चमकने लगता है । हथियार की धार पत्थर पर रगड़ने से तेज होती है खराद पर चढ़ाने से हीरे में चमक आती है । घात-प्रतिघातों को ठोकर खाकर रबड़ की गेंद की तरह अन्तःचेतना में उछाल आता है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने की गतिविधि आरम्भ कर देती है । बिना चोट लगे गेंद नहीं उछलती, बिना थपकी लगे मृदंग नहीं बजता, बिना एड़ लगाये घोड़े की चाल में तीव्रता नहीं आती मनुष्य भी ऐसे ही तत्त्वों से बना हुआ है कि यदि उसे ठोकर न लगे, कठिनाई के संघर्ष में न रहना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पड़े तो उसकी सुप्त शक्तियाँ जाग्रत न हो सकेंगी और जहाँ का तहाँ पड़ा दिन काटता रहेगा ।

सफलता में आनन्द कायम रखने और शक्तियों के चैतन्य होकर विकास के मार्ग पर प्रवृत्त होने के लिए जीवन में कष्ट और कठिनाईयों का रहना बड़ा ही आवश्यक है । इतिहास में जिन महापुरुषों का वर्णन है उनमें से हर एक के पीछे कष्टों का, दुर्दम कठिनाईयों में पड़ने का विस्तृत वृतान्त है । उसी के कारण वे महापुरुष बने हुए हैं । यदि ईसा मसीह के जीवन में से उनकी तपश्चर्या और क्रूस पर चढ़ाना, इन दो बातों को निकाल दिया जाय तो वह एक साधारण धर्मोपदेशक मात्र रह जायेंगे । राणा प्रताप, शिवाजी, बन्दा वैरागी, हकीकतराय, शिव, दधीच, हरिश्चन्द्र प्रह्लाद, लैनिन, गान्धी, जवाहर आदि को परम आदरणीय महापुरुष बनाने का महत्त्व उनकी कष्ट सहिष्णुता को है, यदि उन्होंने पग-पग पर कष्ट सहना स्वीकार न किया होता यदि उन्होंने कठिनाईयों और दुखों को अपनाया न होता तो वे साधारण श्रेणी के भले मनुष्य मात्र रह जाते, महापुरुष का पद उन्हें प्राप्त न हुआ होता ।

आकांक्षा, जागरूकता और परिश्रमशीलता से बड़े-बड़े कष्ट साध्य कार्य पूरे हो जाते हैं तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे शीघ्र ही स्वल्पकाल में और बिना कोई खतरा उठाये सफल हो जाते हैं । परमेश्वर बार-बार परीक्षा लेकर मनुष्य के अधिकारी होने न होने की जाँच किया करता है । स्कूलों में तिमाही, छमाही, नौमाही परीक्षाएँ होती हैं इसके बाद बड़ी वार्षिक परीक्षा होती है जो उस वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है उसे दर्जा चढ़ाया जाता है । ऐसे करीब डेढ़ दर्जन दर्जे पास करने पर ग्रेजुएट की पदवी मिलती है, सफलता की पदवी मिलती है । सफलता की ग्रेजुएटी लेने के लिए भी मनुष्य को अनेकों खतरों, कष्टों, और निराशा जनक अवसरों की परीक्षाऐं देनी होती हैं । जो उत्तीर्ण होते हैं वे ही आगे बढ़ते हैं, मनोवांछित सफलता का रसास्वादन करते हैं । जो इन परीक्षाओं से डर जाते हैं, उन्हें पार करने का प्रयत्न नहीं करते वे उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सकते, अभीष्ट सिद्धि की महत्ता को प्राप्त नहीं कर सकते ।

सफलता की मञ्जिल क्रमशः और धीरे-धीरे पार की जाती है, कठिनाईयों से लड़ता, मरता, चोटें और ठोकरें खाता हुआ ही कोई मनुष्य सफल मनोरथ होता है । साइकिल की सवारी करने वाले जानते हैं कि चढ़ना, सीखते समय कई बार उन्हें पटक खानी पड़ती है, तैरने वाले जानते हैं कि पानी में पैर देते ही वे तैराक नहीं बन जाते । कई बार तो दूसरों के द्वारा विघ्न डाले जाते हैं, कई बार दैवी प्रकोप के कारण अनायास ही कुछ अड़चनें आ जाती हैं, कई बार मनुष्य स्वयं भूल कर बैठता है । अपनी असावधानी या भूल के कारण असफल होना पड़ता है । अपनी भूलों को सुधारने के लिए प्रयत्न किया जाता है पर पुराने अभ्यास के कारण वे दोष फिर उमड़ पड़ते हैं और बना बनाया काम बिगाड़ देते हैं । कई बार प्रयत्न करते हुए भी जब अपने स्वभाव या अभ्यास को सुधारने में सफलता नहीं मिलती तो बड़ी निराशा होती है और खिन्न होकर मनुष्य अपने प्रयास को ही बन्द कर देता है ।

अपने स्वभाव को बदलने का पूरी शक्ति से प्रयत्न तो करना चाहिए, पर यह आशा न करनी चाहिए कि इस दिशा में दो -चार दिन में ही पूर्ण सुधार हो जायेगा । स्वभाव का अभ्यास धीरे-धीरे बहुत दिन में पड़ता है । किसी दुस्वभाव से पूर्णतया छुटकारा पाते या किसी अच्छी आदत के डालने में बहुत समय तक प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है । यह प्रयत्न धैर्य दृढ़ता के साथ, उत्साहित एवं आशान्वित होकर करना चाहिए और जब भूलें हो तो अपने को अधिक सावधान एवं जागरूक करते हुए आगे से अधिक सावधानी बरतने का निश्चय करना चाहिए । रस्सी की रगड़ से जब पत्थर जैसा कठोर पदार्थ घिस सकता है तो कोई कारण नहीं कि हम अपने दोषों और दुःस्वभाव को परिवर्तित या नष्ट न कर सकें ।

क्या कोई विद्यार्थी यह सोचकर पढ़ना छोड़ देता है कि मुझसे नित्य भूलें होती हैं, नित्य अध्यापक के सम्मुख मुझे दोषी बनना पड़ता है । भूले करते हुए भी विद्यार्थी निरन्तर अपना अध्ययन जारी रखता है । भूलों को भुला देता है और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सफलताओं को स्मरण रखता है । परीक्षा में किसी विद्यार्थी को जब ८० प्रतिशत नम्बर प्राप्त होते हैं तो वह फूला नहीं समाता । सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं । इस छात्र ने यद्यपि भूल भी की हैं, २० प्रतिशत प्रश्न उसने बिलकुल गलत किये हैं । जितने सवाल उसने गलत हल किये हैं उतने अंशों में वह मूर्ख, वेबकूफ, लापरवाह, नालायक, दोषी, तथा असफल है । फिर भी इन दोषों की मात्रा के होते हुए भी न तो वह विद्यार्थी स्वयं निराश होता है और न कोई उसकी निन्दा करता है । क्योंकि उसने भूल की अपेक्षा सावधानी का परिचय अधिक दिया, असफलता से सफलता का पलड़ा भारी रखा है । इतना होना ऐसा होना-सर्वथा प्रशंसनीय है । इसलिए आधे से अधिक नम्बर लाने वाला, पास समझा जाता है उसकी पीठ ठोंकी जाती है और प्रशंसा की जाती है । हमें इन विद्यार्थियों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये । छोटे बालक असफलताओं से नहीं डरते, उनको देखकर पस्त हिम्मत । परास्त, निराश, भयभीत, अस्थिर नहीं होते , वरन् इन छोटी असफलताओं की परवाह न करते हुए अपना कार्यक्रम बराबर जारी रखते हैं और अन्त में शिक्षा के उच्च शिखर तक पहुँच जाते हैं ।

स्वभाव न तो एक दिन में बनता है और न एक दिन में बदलता है । बहुत दिन तक जो विचारधारा, जो कार्य प्रणाली मनुष्य अपनाये रहता है वह कुछ दिनों में आदत का रूप धारण कर लेती है । आदत की जड़ गहरी होती हैं । वह गुप्त मन में भीतर तक प्रवेश कर जाती हैं । जब तक मनुष्य जागरूक रहता है तब तक तो वह आदत दबी रहती है, पर जैसे ही ढीलापन आया वैसे ही वह पुरानी आदत अपना प्रभाव दिखाती है और फिर वही गलती हो जाती है जिसे कि आत्म सुधार करने वाला मनुष्य नहीं करना चाहिए था । स्वभाव परिवर्तन में सफलता मिलती न दीखकर कई व्यक्ति आत्मसुधार को असम्भव मान बैठते हैं और प्रयत्न करना छोड़ बैठते हैं । पाठकों को ऐसी भूल न करनी चाहिए । हर भूल के बाद अधिक उत्साह और अधिक साहस के साथ प्रयत्न करना चाहिए । स्वभाव बदलता है, आदतें बदलती हैं, पर इस कार्य में देर लगती है, इस कठिनाई से घबराने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ।

जो वस्तु जितनी अधिक टिकाऊ और मजबूत होती है उसके तैयार होने में उतनी ही देर लगती है, बाजीगर हथेली पर सरसों उगा कर तमाशा दिखाता है पर उस सरसों का तेल किसी ने नहीं निकलवाया है । वह हथेली पर उगी हुई सरसों कुछ ही देर बाद नष्ट हो जाती है । जो पौधे एक दो महीने में ही बहुत बड़े हो जाते हैं वे कुछ ही महीने जीकर नष्ट हो जाते हैं । मक्खी अपने जन्म से ६० घंटे बाद युवा हो सकती हैऔर अंडे देने लगती है । परन्तु तीन सप्ताह में वह बुढ़ढी होकर मर भी जाती है । इसके विपरीत आम, बरगद जैसे जो पौधे धीरे-धीरे बढ़ते हैं वे बहुत दिन तक जीते हैं । मनुष्य का बचपन एक दर्जन से भी अधिक वर्ष रहता है । फलस्वरूप उसकी आयु भी लम्बी होती है । फूँस की झोपड़ी दो दिन में खड़ी हो जाती है, पर वे मकान जो ईट-चूने से बहुत दिन में बन पाते हैं मुद्दतों खड़े रहते हैं । धीरज, दृढ़ता और मजबूती के साथ जो कार्य सँभाल-सँभाल कर किये जाते हैं उनमें देर तो जरूर लगती है पर स्थायित्व अधिक होता है वे जल्दी नष्ट नहीं होते । इसलिए यदि कोई कार्य जल्दी ही पूरा न होता हो, प्रगति धीरे-धीरे होती हो, तो अधीर न होना चाहिए, निरन्तर प्रयत्न करते रहने वाले को एक न एक दिन सफलता मिल कर रहती है ।

कई बार आकस्मिक परिस्थितियाँ आड़े आ जाती हैं और बने काम को बिगाड़ देती हैं । सफलता की मञ्जिल पूरी हो चुकने के नजदीक होती है कि यकायक कोई ऐसा वज्र प्रहार हो जाता है कि सारे मनसूवे धूल में मिल जाते हैं । पूरा प्रयत्न करने, पूरी सावधानी बरतने, पर भी इस प्रकार के संकट सामने आ जाते हैं जो बिलकुल ही आकस्मिक होते हैं पहले से उनकी कल्पना भी नहीं रहती । मृत्यु, विद्रोह, चोरी, अग्निकाण्ड, रोग, युद्ध-तूफान, वर्षा शत्रु प्रहार, षडयंत्र, राजदंड, घाटा वस्तुओं की टूट-फूट, विश्वासघात, अपमान, ठगजाना, दुर्घटना, भूल आदि कारणों से ऐसी भयंकर परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती हैं,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जिनकी पहले से कोई सम्भावना ही न थी । ऐसी विषम स्थिति में होकर गुजरने का साहस, अनुभव या अभ्यास नहीं होता, वे यकायक घबरा जाते हैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें क्या न करें । ऐसे अवसरों पर कई व्यक्ति पागल हो जाते हैं, कई आत्महत्या कर बैठते हैं, कई बार निराशावादी होकर कपड़े रंग लेते हैं या अन्य किसी प्रकार से भविष्य को अन्धकार के गर्त में पटक कर अर्ध-विक्षिप्त अवस्था में दिन काटते रहते हैं ।

यह स्थिति मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी के गौरव को गिराने वाली है । विपरीत परिस्थितियाँ मनसूवों को धूल में मिला देने की क्षमता रखती हैं यह ठीक है, पर यह भी ठीक है कि सदा ही हर बार किन्हीं प्रयत्नों को कोई भी प्रकृति का प्रकोप नहीं रोक सकता । हरी घास को ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप जला डालती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि घास की धूप से सर्वथा परास्त कर दिया, परन्तु यह स्थिति सदा नहीं रहती क्योंकि विध्वंसक तत्त्वों की सत्ता बहुत ही क्षणिक एवं स्वल्प जीवी हुआ करती है । ग्रीष्म समाप्त होते ही वर्षा आती है और जली-भुनी घास फिर सजीव एवं हरी-भरी हो जाती है । ग्रीष्म चला गया, घास को एक बार उसने परास्त कर दिया परन्तु इतने मात्र से ही यह नहीं समझना चाहिए कि धूप में घास को नष्ट कर डालने की, उसके सुरम्य जीवन को नष्ट कर डालने की शक्ति है । ईश्वर ने जिसे जीवन दिया है, ईश्वर ने जिसे आनन्दमय बनाया है, उसके जीवन और आनन्द को कोई भी विक्षेप छीन नहीं सकता, नष्ट नहीं कर सकता ।

प्रकृति के नियमों में एक रहस्य बड़ा ही विचित्र, अद्‌भुत एवं रहस्यपूर्ण है । वह यह कि हर एक विपत्ति के बाद, उसकी विरोधी सुविधा प्राप्त होती है । जब मनुष्य बीमारी से उठता है तो बड़े जोरों की भूख लगती है, निरोगता-शक्ति बड़ी तीव्रता से जाग्रत होती है और जितनी थकान बीमारी के दिनों में आई थी वह थोड़े ही दिनों में बड़ी तेजी के साथ पूरी हो जाती है । ग्रीष्म की जलन को चुनौती देती हुई वर्षा की मेघ मालाएँ आती हैं और धरती को शीतल शान्तिमय हरियाली से ढक लेती हैं । हाथ-पैरों को अकड़ा देने वाली ठंड जब उग्र रूप से अपना जौहर दिखा चुकती हैं तो उसकी प्रतिक्रिया से एक ऐसा मौसम आता है, जिसके द्वारा यह शीत सर्वथा नष्ट हो जाता है । रात्रि के बाद दिन का आना सुनिश्चित है । अन्धकार के बाद प्रकाश के दर्शन भी अवश्य ही होता है । मृत्यु के बाद जन्म होता ही है । रोग, घाटा, शोक, आदि की विपत्तियाँ चिरस्थायी नहीं हैं, वे आँधी की तरह आती हैं और तूफान की तरह चली जाती हैं उनके चले जाने के पश्चात् एक दैवी प्रतिक्रिया होती है । जिसके द्वारा उस क्षति की पूर्ति के लिए कोई ऐसा विचित्र मार्ग निकल आता है, जिससे बड़ी तेजी से उस क्षति की किसी न किसी प्रकार पूर्ति हो जाती है जो आपत्ति के कारण हुई थी ।

एक बार नष्ट हुई वस्तु फिर ज्यों की त्यों उसी रूप में नहीं आ सकती यह सत्य है, परन्तु यह भी सत्य है कि मनुष्य को सुसम्पन्न, सुखी बनाने वाले और भी कितने ही साधन हैं और उन नये साधनों में से कई एक उस क्षतिग्रस्त व्यक्ति को प्राप्त होते हैं, हो सकते हैं । जब घास को हर बार-बार हरी होते हुए देखते हैं, जब अन्धकार को हम बार-बार नष्ट होते देखते हैं, जब रोगियों को पुनः आरोग्य लाभ करते देखते हैं, तो कोई कारण नहीं कि विपत्ति के बाद पुनः सम्पत्ति प्राप्त होने की आशा न की जाय । जो उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं करता, जिसे यह विश्वास नहीं कि मुझे पुनः अच्छी स्थिति प्राप्त होगी, वह नास्तिक है । जिसे ईश्वर की दयालुता पर विश्वास न होगा वही ऐसा सोच सकता है, कि मेरा भविष्य सदा के लिए अन्धकार में पड़ गया । जो पर्वत को राई कर सकता है, उसकी शक्ति पर यह भी भरोसा करना चाहिए कि वह राई को पर्वत भी कर सकता है । जो आज हो रहा है, उसे यह न सोचना चाहिए कि उसे सदा ही रोता रहना पड़ेगा । ऐसी निराशा परमात्मा के परम प्रिय पुत्र को किसी प्रकार शोभा नहीं देती ।

जब किसी की एक टाँग टूट जाती है तो उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि एक टाँग से चलना तो

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दूर खड़ा रहना भी मुश्किल है, अब उससे किसी प्रकार चला-फिरा न जा सकेगा । पर जब अधीरता छोड़ कर विवेक से काम लिया जाता है तो काम चलाऊ तरकीब निकल आती है । लकड़ी का पैर लगाकर वह लँगड़ा आदमी अपना काम करने लगता है, इसी प्रकार अन्य कोई अंग-भंग हो जाने पर भी उसकी क्षति-पूर्ति किसी अन्य प्रकार हो जाती है और फिर कुछ दिन उस अभाव का खटकना बन्द हो जाता है ।

''मैं पहले इतनी अच्छी दशा में था, अब इतनी खराब दशा में आ गया '' यह सोच-सोच कर रोते रहना और अपनी चित्त को क्लेशान्वित बनाये रखना कोई लाभदायक तरीका नहीं है । इससे लाभ कुछ नहीं होता हानि अधिक होती है । दुर्भाग्य का रोना रोने से, अपने भाग्य को कोसने से मन में एक प्रकार की आत्महीनता का भाव उत्पन्न होता है । मेरे ऊपर ईश्वर का कोप है, देवता रूठ गये हैं, भाग्य फूट गया है, इस प्रकार का भाव मन में आने से मस्तिष्क की शिराऐं शिथिल हो जाती हैं, शरीर की नाड़ियाँ ढीली पड़ जाती हैं, रक्त की उष्णता एवं तेजी कम हो जाती है, आशा और प्रसन्नता की कमी के कारण नेत्रों की चमक मन्द पड़ जाती है । निराश व्यक्ति चाहे किसी भी आयु का क्यों न हो उसमें बूढ़ों के से लक्षण प्रकट होने लगते हैं, मुँह लटक जाता है, चेहरे पर रूखापन और उदासी छाई रहती है, निराशा और नीरसता उसकी हर चेष्टा से टपकती है । उससे आदमी अपने शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य को खो बैठता है । मन्दाग्नि दस्त साफ न होना, दाँत का दर्द, मुँह के छाले या सोते समय मुँह से लार बहना, सिर दर्द, जुकाम, बाल पकना, नींद कम आना, डरावने स्वप्न दीखना, पेशाब में पीलापन व गँदलापन, मुँह या बगलों से अधिक बदबू आना, हाथ-पैरों में हटफूटन दृष्टि कम हो जाना, कान में सनसन होना, जैसे रोगों के उपद्रव आये दिन खड़े रहते हैं । निराशा के कारण शरीर की अग्नि मन्द हो जाती है अग्नि की मन्दता से उपरोक्त प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं । शनैः-शनैः स्वास्थ्य को घुलाता हुआ वह व्यक्ति अल्पायु में ही मृत्यु के मुख में चला जाता है ।

जो व्यक्ति अपने आपको दुर्भाग्य ग्रस्त मान लेते हैं, उनमें मानसिक शिथिलता भी आ जाती है । कपाल की भूरी मज्जा (ग्रे मैटर) कुम्हला जाती है उसमें से चिकनाई कम हो जाती है, विचार शक्तियों का संचालन करने वाले नाड़ी तन्तु कठोर और शुष्क हो जाते हैं उनमें जो विद्युत धारा बहा करती है, उसका प्रवाह नाम मात्र का रह जाता है ।, स्फुरण, कम्पन्न, संकुचन, प्रसारण सरीखी वे क्रियाएँ जिनके द्वारा मानसिक शक्तियों में स्थिरता एवं वृद्धि होती है बहुत ही धीभी पड़ जाती है, फल यह होता है कि अच्छा भला मस्तिष्क कुछ ही दिन में अपना काम छोड़ बैठता है । उसकी क्रियाशक्ति लुप्त हो जाती है । ऐसे आदमी बड़े भुलक्कड़ हो जाते हैं याददाश्त में भारी कमी आ जाती हैं, पिछली बातें याद नहीं रहती, लोगों के नाम भूलना चीजों को कहीं छोड़ना और कहीं तलाश करना, आवश्यक बातों और कार्यक्रमों का याद न रहना आदि की गड़बड़ी नित्य होने लगती है । किसी बात को मौके पर तो जबाव नहीं बन पड़ता, पर समय निकल जाने पर सूझती है कि यह कहते तो बड़ा अच्छा होता । निर्णय शक्ति, कल्पना शक्ति, परीक्षण शक्ति, आदि अनेक महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं । चिड़चिड़ापन, झुंझलाहट, बड़बड़ाते रहना, सब पर अविश्वास करना, सूखे और निष्ठुर जबाब देना, जैसी बुरी बातें स्वभाव में आकर शामिल हो जाती है । इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य भी चौपट हो जाता है ।

कहते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती । वह अपने साथ और भी अनेक विपत्तियों का जंजाल लाती हैं । एक के बाद दूसरी आपत्ति सिर पर चढ़ती है । यह बात असत्य नहीं है । निस्संदेह एक कष्ट के बाद दूसरे कष्टों का भी लोगों को सामना करना पड़ता है । इसका कारण यह है कि विपत्ति के कारण निराश, दुखी और शिथिल हो जाता है । भूतकाल का स्मरण करने, रोने-धोने और भविष्य का अन्धकार मय कल्पना चित्र तैयार करने में ही उसका मस्तिष्क लगा रहता है, समय और शक्ति का अधिकांश भाग इसी कार्य में नष्ट होता रहता है । जिससे पुनः सुस्थिति प्राप्त करने की दिशा में सोचने और साहस पूर्ण मजबूत कदम उठाने की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था नहीं बनती । उधर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट होने लगता है । एक ओर स्वभाव के बिगड़ जाने के कारण विरोधी बढ़ जाते हैं और मित्रों मे कमी हो जाती है । सब ओर भूल पर भूल और असावधानी पर असावधानी होने लगती है । दुष्टता की सत्ता का ऐसे ही अवसरों पर दाव लगता है, मौका देखकर उनके बाण भी चलने लगते हैं । निर्बल एवं अव्यवस्थित मनोस्थित का होना मानों विपत्तियों को खुला निमंत्रण देना है, मरे हुए पशु की लाश पड़ी देख कर दूर आकाश में उड़ते हुए चील कौवे उसके ऊपर टूट पड़ते हैं । इस प्रकार निराशा से शिथिल और चतुर्मुखी अव्यवस्था से ग्रस्त उस अर्ध मृत मनुष्य पर आपत्ति और कष्टों के चील कौए टूट पड़ते हैं और इस उक्ति को चरितार्थ करते हैं कि 'विपत्ति अकेली नहीं आती '' ।

आकस्मिक विपत्ति का सिर पर आ पड़ना मनुष्य के लिए सचमुच बड़ा दु:खदायी है । इससे उसकी बड़ी हानि होती है । किन्तु उस विपत्ति की हानि से अनेकों गुनी हानि करने वाला एक और कारण है वह है ''विपत्ति की घबराहट'' । विपत्ति कही जाने वाली मूल घटना चाहे वह कैसी ही बड़ी क्यों न हो किसी का अत्यधिक अभीष्ट नहीं कर सकती, वह अधिक समय ठहरती भी नहीं, अपना एक प्रहार करके चली जाती है । परन्तु 'विपत्ति की घबराहट '' ऐसी दुष्टा पिशाचिनी है कि वह जिसके पीछे पड़ती है उसके गले से खून की प्यासी जोंक की तरह चिपक जाती है और जब तक उस मनुष्य को पूर्णतया नि:सत्व नहीं कर देती तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ती । विपत्ति के पश्चात् आने वाले अनेकानेक जंजाल इस घबराहट के कारण ही आते हैं । शारीरिक मानसिक और सामाजिक सुस्थिति का सत्यानाश करके वह मनुष्य की जीवनी शक्ति को चूसे ही जाती है ।

आकस्मिक विपत्तियों से मनुष्य नहीं बच सकता । राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डव, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसी आत्माओं को विपत्ति ने नहीं छोड़ा तो अन्य कोई उसकी चपेटों से बच जायेगा ऐसी आशा न करनी चाहिए । इस सृष्टि का विधि-विधान कुछ ऐसा ही है कि सम्पत्ति और विपत्ति का, लाभ और हानि का चक्र हर एक के ऊपर चलता रहता है । प्रारब्ध कर्मों का भोग भुगतने के लिए ठोकर देकर चेताने के लिए, क्रियाशक्ति, मजबूती दृढ़ता और अनुभवशीलता की वृद्धि के लिए, या किसी अन्य प्रयोजन के लिए विपत्तियाँ आती हैं, इसका ठीक-ठीक कारण तो परमात्मा ही जानता है पर इतना सुनिश्चित है कि विपत्तियों का प्रकोप विभिन्न मार्गों से समय-समय पर हर एक के ऊपर होता रहता है । अप्रिय, अरुचिकर एवं असन्तुष्ट करने वाली परिस्थितियाँ न्यूनाधिक मात्रा में हर किसी के सामने आती हैं । इनसे कोई भी पूर्णतया सुरक्षित नहीं रह सकता, पूरी तरह नहीं बच सकता ।

परन्तु यह बात अवश्य है कि यदि हम चाहें तो उन विपत्तियों के पीछे आने वाले बड़े भयंकर और सत्यानाशी आपत्ति जंजालों से आसानी के साथ बचे रह सकते हैं और आसानी से उस आकस्मिक विपत्ति की थोड़े ही समय में क्षति पूर्ति कर सकते हैं । कठिनाई से लड़ने और उसे परास्त करके अपने पुरुषार्थ को परिचय देना, यह मनोवृत्ति ही सच्चे वीर पुरूषों की शोभा देती है । योद्धा, पुरुष उस तलवार को चुनौती देते रहते हैं जिसके एक ही झटके में सिर धड़ से जुदा हो सकता है । बहादुरों को किसी का डर नहीं होता, उन्हें अपना भविष्य सदा ही सुनहरा दिखाई पड़ता है । ''हतो वा प्राप्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष से महीम्'' की भावना उनके मन में सदा ही उत्साह एवं आशा का ज्योति प्रदीप्त रखती है । बुरे समय के सच्चे तीन साथी होते है धैर्य, साहस और प्रयत्न जो इन तीनों को साथ रखता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । जिसने कठिन समय में अपने मानसिक सन्तुलन को कायम रखने का महत्त्व समझ लिया है, जो बुरी घड़ी में भी दृढ़ रहता है, अन्धकार में रहकर भी जो प्रकाश पूर्ण प्रभात की आशा लगाये रहता है वह वीर पुरुष सहज में ही दुर्गमता को पार कर जाता है । मानसिक सन्तुलन के कायम रहने से न शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट होता है और न मानसिक गड़बड़ी पड़ती है न तो उससे मित्र

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उदासीन होते हैं और न शत्रु उबलते हैं इस प्रकार स्वनिर्मित दुर्घटनाओं से यह बच जाता है । अब केवल आकस्मिक विपत्ति की क्षति पूर्ति का प्रश्न रह जाता है । अत्याधिक उग्र आकांक्षा और पूर्व अनुभव के आधार पर वह अपनी विवेक बुद्धि से ऐसे साधक जुटा लेता है, ऐसे मार्ग तलाश कर लेता है कि पहले जैसी या उसके समतुल्य अन्य किसी प्रकार की सुखदायक परिस्थिति प्राप्त कर ले । जो बुरे समय में अपने साहस और धैर्य को कायम रखता है वह भाग्यशाली वीर योद्धा जीवन भर कभी दुर्भाग्य की शिकायत नहीं कर सकता । कष्ट की घड़ी उसे ईश्वरीय कोप नहीं वरन् धैर्य साहस और पुरुषाथी की परीक्षा करने वाली चुनौती दिखाई पड़ती है । यह इस चुनौती को स्वीकार करने का गौरव लेने को सदा तैयार रहता है ।

दार्शनिक चुनिंग तो हाङ्ग कहा करते थे कि कठिनाई एक विशालकाय, भयंकर आकृति के, किन्तु कागज के बने हुए सिंह के समान है, जिसे दूर से देखने पर बड़ा डर लगता है, पर एक बार जो साहस करके उसके पास पहुँच जाता है उसे प्रतीत होता है कि वह केवल एक कागज का खिलौना मात्र था । '' बहुत से लोग चूहों को लड़ते देखकर डर जाते हैं पर ऐसे भी करोड़ो योद्धा है जो दिन-रात आग उगलने वाली तोपों की छाया में सोते हैं । एक व्यक्ति को जो घटना वज्रपात के समान असह्य अनुभव होती है परन्तु दूसरे आदमी पर जब वही घटना घटित होती है जो वह लापरवाही से ही कहता है ''ऊँह, क्या चिन्ता है, जो होगा सो देखा जायेगा,'' ऐसे लोगों के लिए वह दुर्घटना 'स्वाद परिवर्तन ' को एक सामान्य बात होती है । विपत्ति अपना काम करती रहती है । वे अपना काम करते रहते हैं । बादलों की छाया की भाँति बुरी घड़ी आती है और समयानुसार टल जाती है । बहादुर आदमी हर नई परिस्थिति के लिए तैयार रहता है । पिछले दिनों यदि ऐसा आराम के साधनों के उपभोग भी वही करता था और अब मुश्किल से भरे, अभावग्रस्त दिन बिताने पड़ेंगे तो इसके लिए भी वह तैयार है । इस प्रकार का साहस रखने वाले वीर पुरुष ही इस संसार में सुखी जीवन का उपयोग करने के अधिकारी हैं । जो भविष्य के अन्धकार की दुखद कल्पनाएँ कर करके अभी से सिर फोड़ रहे हैं वे एक प्रकार के नास्तिक हैं, ऐसे लोगों के लिए यह संसार दुखमय नरक रूप रहा है और आगे भी वैसा ही बना रहेगा ।

किसी निश्चित कार्यक्रम पर चलते हुए उस योजना को विफल कर देने वाले कारण कभी-कभी उपस्थित हो जाते हैं । किसी प्रमुख सम्बन्धी को मृत्यु, रोग, लड़ाई झगड़ा, आर्थिक हानि, विश्वासघात, दुर्घटना बनाये हुए कार्य का बिगड़ जाना, जैसे किसी कारण से निश्चित कार्यक्रम बदलना पड़ सकता है, भविष्य में अधिक परिश्रम करने और अभाव ग्रस्त दशा में रहने के लिए विवश होना पड़ सकता है, विद्रोह और वियोग की पीड़ा में जलना पड़ सकता है ऐसी गिरी हुई स्थिति आगे आने पर घबराना न चाहिए बल्कि अपने आपको बदल लेना चाहिए । पहले जैसी स्थिति थी, तब वैसी स्थिति के अनुकूल अपने कार्य होते थे । अब दूसरी स्थिति है तो उसी अनुपात से दूसरे ढंग से काम होना चाहिए ।

पहले सम्पन्न अवस्था में रहकर पीछे जो विपन्न अवस्था में पहुँचते हैं वे सोचते हैं लोग हमारा उपहास करेंगे । इस उपहास की शर्म से लोग बड़े दुखी रहते हैं । वास्तव में यह अपने मन की कमजोरी मात्र है । दुनिया में सब लोग अपने - अपने काम से लगे हुए हैं, किसी को इतनी फुरसत नहीं है कि बहुत गम्भीरता से दूसरों का उपहास या प्रशंसा करें । टेड़ी टोपी लगाकर बाजार में निकलने वाला मनुष्य सोचता है, सड़क पर निकलने वाले सब लोग मेरी टेड़ी टोपी को देखेंगे, ओार उसकी आलोचना करेंगे, परन्तु यह उसका मानसिक बालकपन मात्र है । सड़क पर चलने वाले अपने काम के लिए चल रहे हैं टोपी की आलोचना करने के लिए नहीं । सैंकड़ों व्यक्ति ऊँची, नीची, टेड़ी, तिरछी, काली, पीली, टोपियां पहने निकलते हैं, कोई किसी की तरफ अधिक ध्यान नहीं देता यदि देता भी है तो एक हलकी व्यंग भरी दृष्टि एक क्षण के लिए डालकर दूसरे ही क्षण उसे भूल जाता है । लोगों की इतनी मात्र आलोचना या उपहास के भय

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


से अपने आपको ऐसी लज्जा में डुबोये रहना, मानों कोई भारी अपराध किया हो, मनुष्य की भारी भूल है ।

चोरी करने में, बुराई, दुष्टता, नीच कर्म, पाप या अधर्म करने में लज्जा होनी चाहिए । यह कोई लज्जा की बात नहीं कि कल दस पैसे थे आज दो रह गये, कल सम्पन्न अवस्था थी आज विपन्न हो गई । पाण्डव एक दिन राजगद्दी पर भी शोभित थे, एक दिन उन्हें मेहनत मजदूरी करके अज्ञातवास में पेट भरने और दिन काटने के लिए विवश होना पड़ा । राणाप्रताप और महाराज नल का चरित्र जिन्होंने पढ़ा है, वो जानते हैं कि ये प्रतापी पुरुष समय के कुचक्र से एक बार बड़ी दीन-हीन दशा में भी रह चुके हैं । पर इसके लिए कोई विज्ञ पुरुषा उनका उपहास नहीं करता । मूर्ख और बुद्धिहीनों के उपहास को कोई मूल्य नहीं उनका मुँह तो कोई बन्द नहीं कर सकता वे तो हर हालत में उपहास करते हैं । इसलिए हँसी होने के झूठे भय को कल्पना में से निकाल देना चाहिए और जब विपन्न अवस्था में रहने की स्थिति आ जाये तो उसे हँसते हुए, बिना किसी संकोच झिझक एवं ग्लानि के उसे स्वीकार कर लेना चाहिए ।

कोई योजना निर्धारित करने के साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि निश्चित कार्यक्रम में विघ्न भी पड़ सकते हैं, बाधा भी आ सकती है, कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है । सफलता का मार्ग खतरों का मार्ग है । जिसमें खतरों से लड़ने का साहस और संघर्ष में पड़ने का चाव हो उसे ही सिद्धि के पथ पर कदम बढ़ाना चाहिए । जो खतरों से डरते हैं, जिन्हें कष्ट सहने से भय लगता है, कठोर परिश्रम करना जिन्हें नहीं आता उन्हें अपने जीवन को उन्नतिशील बनाने की कल्पना न करनी चाहिए । अदम्य उत्साह, अटूट साहस, अविचल धैर्य, निरन्तर परिश्रम और खतरों से लड़ने वाला पुरुषार्थ ही किसी का सफल जीवन बना सकता है । इन्हीं तत्त्वों की सहायता से लोग उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ते हैं और महापुरुष कहलाते हैं । जैसे परदेश जाने के लिए कुछ सामान की एक पेटी साथ ले जाना आवश्यक होता है उसी प्रकार सफलता के शिखर पर चढ़ने वालों को भी उपरोक्त गुणों वाली मानसिक दृढ़ता को साथ रखना जरूरी है ।

सफलता के इच्छुकों ! अपने में वीरोचित्त दृढ़ता एवं पुरुषोचित पुरूषार्थ पैदा करो, कठिनाईयों से डरो मत वरन् लड़कर उन्हें परास्त करने का हौसला रखो । सोने को अग्नि में तपाने पर उसकी चमक दूनी हो जाती है, कष्ट में पड़ने पर आपकी वीरता और प्रयत्नशीलता दूने वेग से प्रकट होनी चाहिए ।

## (३) परिश्रम शीलता

एक पौराणिक कथा के अनुसार जब समुद्र मथा गया तो उसमें से चौदह अमूल्य रत्न निकले । वह समुद्र न जाने कितने अतीत काल से उन रत्नों को अपने गर्भ में छिपाये पड़ा था, परन्तु कभी वे प्रकट नहीं हुए । उन्हें तभी प्राप्त किया जा सका जब समुद्र मंथन हुआ । यदि यह मंथन कार्य न हुआ होता तो रत्न अनन्तकाल तक समुद्र के गर्भ में ही पड़े रहते और उनके द्वारा देवताओं को जो लाभ प्राप्त हुआ, वह न होता । उस महान् समुद्र का भंडार चौदह ही रत्नों तक ही सीमित नहीं है । ऐसे अनन्त कोटि रत्न उसके गर्भ में छिपे पड़े हैं, जो अब तक अनेक प्रयत्नों द्वारा निकाले जाते रहे हैं और अब भी निकाले जा रहे हैं, मोती और मूँगों की पर्वत सदृश्य राशियाँ समुद्र मनुष्य जाति को दे चुका है और जितनी दे चुका है उसने असंख्य गुनी राशि उसके गर्भ में छिपी पड़ी हैं । ढूँढने वालों मे जब तक शक्ति रहेगी तब तक समुद्र का अक्षय भंडार बराबर रत्नों का उपहार देता ही रहेगा ।

यह संसार भी एक सागर है । पानी के समुद्र में कुछ थोड़े व्यक्तियों को रत्न जहाँ-तहाँ बड़ी कठिनाई से उपलब्ध होते हैं, परन्तु इस संसार सागर में असंख्य जातियों के अत्यन्त अमूल्य रतन, इंच-इंच भूमि में प्रचुर परिमाण में भरे पड़े हैं । यह रत्न राशि परमात्मा ने इसलिए बिछा रखी है कि उसका राजकुमार- मनुष्य- उनके द्वारा अपनो श्री वृद्धि करे । परन्तु यह रत्न एक शर्त पर मिलते हैं वह शर्त यह है कि जो उन्हें प्राप्त करने की योग्यता साबित करे उसे ही वे दिये जाते हैं । जैसे छोटे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बच्चों को, या बुद्धि हीनों के साथ में बन्दूक नहीं सौंपी जा सकती, वैसे ही अयोग्य व्यक्तियों को यह रत्न उपलब्ध नहीं होते । नाबालिगों को राज्य दरबार में अप्रामाणिक कहा जाता है, उन्हें वैसे अधिकार नहीं मिलते जो एक साधारण नागरिक को मिलने चाहिए । किन्तु जैसे ही वह नाबालिग अपनी वयष्कता के प्रमाण प्रस्तुत कर देता है, वैसे ही उसे राज्य दरबार में प्रामाणिकता प्राप्त हो जाती है । मनुष्य की नाबालिगी उसकी अपरिश्रम शीलता है । जब तक कठोर परिश्रम करने की रुचि धारण नहीं कर ली जाती, तब तक वह नाबालिगी दूर नहीं होती और न तब तक उन्हें संसार की बहुमूल्य सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं । किन्तु जब अपनी उद्योग-शीलता, परिश्रम प्रियता प्रकट कर दी जाती है तो परमात्मा द्वारा सृष्टि में पग-पग पर बिछाये हुए रत्नों की राशि प्राप्त होने लगती है ।

इस संसार में इतनी असंख्य विभूतियाँ भरी पड़ी हैं जिनका कोई बारापार नहीं । प्राचीन समय में योग के तत्त्व वेत्ताओं को अष्ट सिद्धि नव सिद्धि की एक झाँकी मिली थी । परन्तु अब तो इन ऋद्धि-सिद्धियों के इतने भेद मालूम हो गये हैं जिनकी कुछ गणना नहीं । जड़ प्रकृति के क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिकों ने इन दो तीन शताब्दियों में एक से एक आश्चर्यजनक अनुसंधान कर डाले हैं । हजारों मनुष्य को अपनी पीठ पर बिठाकर द्रुतगामी दैत्य की तरह दौड़ने वाली रेलगाड़ी, हजारों घोड़ों की ताकत का निचोड़ धारण करके अदृश्य रूप से तारों में दौड़ने वाली दुर्गा की अवतार बिजली, पल भर में पृथ्वी के एक छोर पर बैठे हुए मनुष्य से दूसरे छोर पर बैठे हुए मनुष्य से बातचीत कराने वाले रेडियो, पक्षियों की तरह हवा में उड़ाने फिरने वाले जहाज, मछली की तरह मनुष्यों को समुद्र के गर्भ में सैर कराने वाली पनडुब्बियां कहाँ तक गिनावें । एक से एक अद्‌भुत आश्चर्यजनक, भौतिक विज्ञान के आविष्कार हो चुके हैं । जब यह आविष्कार नहीं हुए थे, तब भी यह रत्न संसार सागर में मौजूद थे पर मंथन के अभाव में पकट नहीं हो सकते थे, जैसे ही इस दिशा में मंथन आरम्भ हुआ, वैसे ही यह विभूतियाँ आविर्भूत होना शुरू हो गई । जितना ही और अधिक प्रयत्न होगा प्रकृति माता अपनी रत्नों की तिजोरी के कोठे मनुष्य के सामने खोलती चली जायेगी ।

सुखी और समृद्ध बनाने वाले साधन-रत्न-हर दिशा में पर्याप्त संख्या में मौजूद हैं । मनुष्य का मनुष्य से सहयोग होने पर एक से एक बढ़िया आनन्ददायक अवसर उपलब्ध होते हैं, मित्रता, प्रेम, प्रतिष्ठा, आदर, सेवा सहायता, दान, उदारता, मधुरता आदि के द्वारा आपसी सहयोग होने पर सामाजिक जीवन में ऐसे-ऐसे आनन्दमय अवसर उपस्थित होते हैं जिन्हें 'रत्न' से किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता । विद्या की दिशा में लीजिये अध्ययन, ज्ञान, विशेषज्ञता के कारण मनुष्य जितना सूक्ष्म एवं समर्थ हो जाता है वह महत्ता भी जवाहरात के थैले की महत्ता से कम नहीं है । उत्तम स्वास्थ्य का, निरोगता का प्राप्त होना एक वेश कीमती हीरा है । आर्थिक स्थिति का अच्छा होना, अच्छा व्यवसाय मिल जाना, एक ऋद्धि समझी जाती है । सद्‌गुण, मीठा स्वभाव भले विचार, सुन्दर चरित्र, बहुमूल्य हीरक हारों की भाँति विदूषित करने वाले आभूषण हैं । आत्मिक आनन्द, प्रसन्नता, सन्तोष, निराकुलता एवं जीवन-मुक्ति सृष्टि का सर्वोच्च सम्पदा है । इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में विभिन्न प्रकार के अनमोल जवाहर पग-पग पर बिखरे पड़े हैं । इनमें से अपनी योग्यता की प्रामाणिकता के आधार पर हर मनुष्य मन चाही मात्रा में प्राप्त कर सकता है । यह योग्यता की प्रामाणिकता जिसकी वजह से जीवन को आनन्दमय बनाने के साधन प्राप्त होते हैं-केवल परिश्रमशीलता ही है ।

कहते हैं कि सिंहनी का दूध स्वर्ण के पात्र में दुहा जाता है । उद्योगी पुरुष सिहों के यहाँ लक्ष्मी का निवास होता है । पुरुषार्थियों के गले में विजय की वरमाला पहनाई जाती है । प्रतियोगिता में जो जीतते हैं वे पुरस्कार पाते हैं । परीक्षा में उत्तीर्ण हुए छात्र ही प्रमाणपत्र प्राप्त करते हैं । प्राचीन समय में स्वयम्बरों की प्रथा थी, युवतियाँ उन्हीं वरों को चुनती थी जो उनकी दृष्टि में अधिकारी ठहरते थे । सफलता की देवी भी स्वयंम्वर प्रथा की अनुगामिनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है, अधिक पुरुषार्थी ही उसके चुनाव में आते हैं । पात्रता का दूसरा नाम परिश्रम है । कहते हैं 'पैसा हाथ का मैल है ।' अर्थात् हाथ को घिसने से पैसा होता है । 'पसीना की कमाई' यह शब्द नित्य की बोलचाल में प्रयुक्त होता है । इसका भावार्थ है कि कमाई पसीना बहाने से हुआ करती है ।

परिश्रम एक उत्पादक शक्ति है, जिससे वस्तुएँ पैदा होती हैं । संघर्ष में से जीवन की उत्पत्ति होती है । नाड़ियों में खून दौड़ रहा हो और फेफड़ों में वायु का आवागमन जारी हो तो समझना चाहिए कि जीवन मौजूद है, अगर खून ने दौड़ना बन्द कर दिया हो तो सांस का चलना रुक गया हो तो कहा जा सकता है कि इसकी मृत्यु हो गई । यदि यह जीवन कायम रखने वाले गति मन्द या शिथिल दिखाई पड़ रही हो तो चतुर वैद्य कह देते हैं कि अब इसका जीवन दीप बुझना ही चाहता है । जो लोग परिश्रमी हैं, सदा काम में जुटे रहते हैं वे जीवित हैं उनका जीवन जाग्रत है, पर जिनको कम देखकर डर लगता है, परिश्रम देखकर जिनका हंस रोता है वे मरे हुए हैं, उनकी उन्नति की आशा नहीं की जा सकती । वे जीवित मृतकों की भाँति केवल प्राण धारण किये रह सकते हैं ।

चाकू की धार जब तेजी पर आती है, जब वह पत्थर पर घिसा जाता है, जो औजार नित्य काम में आते रहते हैं वे चमकते रहते हैं । यदि उन्हें पड़ा रहने दिया जाय तो जंग लग जायेगी और गल कर नष्ट हो जायेंगे काम में लगा हुआ औजार घिस-घिस कर नष्ट होता है उसके द्वारा बड़ा काम हो चुकता है और अन्त में घिसते जो भाग रह जाता है वह भी चमकता रहता है । परन्तु जंग लगे हुए औजार को दोनों में से एक भी प्रकार का गौरव प्राप्त नहीं होता अपितु घिसने वाले की अपेक्षा वह जल्दी नष्ट हो जाता है । जिन घोड़ों को नित्य काम लिया जाता रहता है उनकी चाल ठीक रहती है किन्तु यदि उन्हें बँधा रखा जाये तो वे निकम्मे हो जाते हैं । पहलवान वही बन सकता है जो कड़ी कसरत द्वारा शरीर से खूब मेहनत लेता है । बिना संघर्ष के, बिना रगड़ के, किसी वस्तु की वास्तविकता प्रकट नहीं होती । दो वस्तुओं के घिसने में आग प्रकट होती है, मालिश करने से अंग-प्रत्यंग पुष्ट होते हैं, बार-बार याद करने से विद्यार्थी अपना पाठ स्मरण करने में सफल होते हैं । मेंहदी के पत्ते जब पीसे जाते हैं तो वे सुर्खरू हो जाते हैं ।

कुएँ के मुँह पर पड़े हुए पत्थरों पर रस्सी की रगड़ से निशान पड़ जाता है और परिश्रम की रगड़ से कठिन से कठिन काम पूरे हो जाते हैं, निरन्तर यदि थोड़ा-थोड़ा भी परिश्रम होता रहे तो कुछ ही समय में भारी सफलता एकत्रित हो जाती है । कन-कन जोड़ने से मन इकट्ठा हो जाता है ।

महात्मा गान्धी का समय बहुत ही कार्य व्यस्त रहता है, वे सदा ही कामों में डूबे रहते हैं, उन्हें जरा भी फुरसत नहीं मिलती, तो भी उन्होंने एक-एक घंटा नित्य का समय निकाल कर कुछ ही दिनों वे भारत की करीब एक दर्जन प्रान्तीय भाषाएँ इस वृद्धावस्था में भली प्रकार सीख ली हैं । फुरसत न मिलने का बहाना बहुत ही झूठा बहाना है । जिस विषय में मनुष्य की दिलचस्पी हो उसके लिए वह जरूर ही थोड़ा बहुत समय निकाल सकता है । चौबीस घंटे में से आराम के आठ घंटें छोड़कर सोलह घंटे समय बचता है इसमें से इच्छित विषय का अभ्यास करने के लिए थोड़ा समय निकाल ही जा सकता है । जो लोग फुरसत का बहाना करते हैं उनका भावार्थ वास्तव में परिश्रम से जी चुराना होता है । जो श्रम नहीं करना चाहता उसके लिए कभी फुरसत नहीं, जरा-जरा से काम जो हँसते-खेलते, चलते-फिरते, हो सकते हैं, उसे पहाड़ की तरह भारी मालूम पड़ते हैं और एक ऐसा ही छोटा काम कर लेने पर वह इतनी थकान महसूस करता है मानों कोई बड़ा भारी किला फतह करके चुका हो । ऐसे लोग थोड़ा सा काम करने के बाद झुझला जाते हैं, कराहते हैं, लम्बे उसास भरते हैं, बैचेनी अनुभव करते हैं, और बुड्ढों की तरह उल्टा मुँह करके पड़ रहते हैं ।

कभी-कभी शारीरिक कमजोरी के कारण मनुष्य की क्रिया शक्ति कुंठित हो जाती है और थोड़े से परिश्रम से थकान आ जाती है । उसकी चिकित्सा करनी उचित है । परन्तु अधिकांश व्यक्ति शारीरिक निर्बलता से नहीं, वरन् मानसिक निर्बलता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


से ग्रसित होते हैं, शारीरिक कमजोरी की अपेक्षा मन की कमजोरी के कारण शक्तियाँ अधिक कुंठित होती हैं । जिनका मन परिश्रम में रस लेता है उन्हें फुरसत न मिलने की शिकायत नहीं करनी पड़ती । वे अनेक झंझटों और कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी अपने प्रिय विषय की साधना करने के लिए कोई न कोई समय ढूँढ ही निकालते हैं और थोड़ा सा भी नियमित समय किसी कार्य के लिए निरन्तर दिया जाता रहे तो स्वल्पकाल में ही आश्चर्यजनक प्रगति दिखाई देने लगती है । यदि एक घंटा नित्य व्यायाम या तेल मालिश के लिए नियत कर लिया जाय तो एक वर्ष में शरीर की दशा कुछ से कुछ हो सकती है । यदि एक घंटा रोज किसी दूसरी भाषा का अभ्यास किया जाय तो एक वर्ष में उस भाषा का काम चलाऊ ज्ञान भली प्रकार हो सकता है, ज्योतिष, स्वास्थ्य, गणित, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, धर्म आदि किसी विषय का ठीक साहित्य एक घंटा रोज एक वर्ष तक पढ़ा जाय तो उस विषय में पाण्डित्य प्राप्त किया जा सकता है । एक घंटे जितना तुच्छ समय साधारणत: जीवन में कुछ विशेश्ज्ञ महत्त्व नहीं रखता । इससे दूना चौगुना समय यों ही आलस्य में या निरर्थक बातों में नष्ट हो जाता है । ध्यान देने पर, सतर्क दृष्टि से परीक्षण करने पर बहुत सा समय ऐसा निकल सकता है जिसका यदि सदुपयोग किया जा सके तो बहुत अधिक काम हो सकता है । जहाँ परिश्रम में रुचि होती है वहाँ बहुत सा समय निकल आता है जहाँ मेहनत को देखते ही कलेजा कांपता है वहाँ फुरसत ढूँढे नहीं मिलती निठल्ले या जरा सा हलका काम करने वाले भी अपने को जब बहुत व्यस्त समझे तो उसे ''कामचोरी'' का एक बहाना ही कहा जा सकता है ।

चाहे कोई आदमी कितना ही बड़ा या अमीर क्यों न हो पर उसको भी परिश्रम करना आवश्यक है । बड़े-बड़े करोड़पति धन कुबेर निठल्ले नहीं पड़े रहते वरन् साधारण मजूरों की अपेक्षा अधिक काम करते हैं । यदि वे इतना काम न करें तो उनकी सम्पत्ति का दिन-दिन बढ़ते जाना रुक ही न जाये वरन् उलटी घटोत्तरी होने लगे । लक्ष्मी उनके यहाँ निवास करती है जो उद्योगी पुरुष सिंह हैं । जो पुरुष अपनी उद्योग परायणता और परिश्रमशीलता को खो बैठता है वह लक्ष्मी का प्रिय पात्र नहीं बन सकता, सम्पदाएँ उसके यहाँ ठहर नहीं सकती । अकर्मण्यता दरिद्रता की सहेली है । जहाँ अकर्मण्यता रहेगी वहाँ किसी न किसी प्रकार दरिद्रता जरूर पहुँच जायेगी ।

प्राचीन समय में हमारे पूज्नीय पूर्वज श्रम परायणता का महत्त्व भली प्रकार समझते थे, इसलिए उन्होंने इसे पुनीत धार्मिक कृत्यों में बहुत ऊँचा स्थान दिया है । आध्यात्मिक साधना में उसकी प्रमुख स्थापना की है । ''तपश्चर्या'' यह शब्द धार्मिक जगत में बड़े आदर के साथ उच्चारण किया जाता है । 'तपस्या' शब्द हमारे हृदयों में आदर एवं श्रद्धा का संचार करता है । तपस्वी व्यक्ति के लिए हमारा मत सहज ही श्रद्धा से नत हो जाता है । यह तपस्या क्या है ? श्रेष्ठ उचित एवम् उन्नतिशील कार्यों के लिए परिश्रम करना और उस मार्ग में जो कष्ट आते हों उन्हें सहन करना तपस्या की परिभाषा है। ऋषि-मुनियों का जीवन तपस्यामय होते थे, वे तपश्चर्या की साधना में पर्याप्त समय लगाते थे । विद्या से भी अधिक ज्ञान से भी अधिक, तपस्या को महत्त्व दिया जाता था । क्योंकि विद्या और ज्ञान से मस्तिष्क का विकास तो होता है पर वह चेतना उत्पन्न नहीं होती जिसके द्वारा उस मस्तिष्क के विकास को कार्यरूप में परिणित किया जा सके, जीवन व्यवहार में लाया जा सके । जिसे कठोर परिश्रम का अभ्यास है वह ही अपने उन्नतिशील विचारों के अनुसार आचरण कर सकता है ।

स्वभावत: ऊपर चढ़ने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है । सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर की मंजिल पर पहुँचने वाले एवं पर्वतों के शिखर की ऊँची यात्रा करने वाले जानते हैं कि उनके पैरों को समतल भूमि पर चढ़ने की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता है । जिनके पैर इस 'अधिक कार्य' का बोझ उठाने को तैयार न हों वे ऊँचे स्थान पर पहुँचने का आनन्द नहीं लूट सकते । ऊपर से नीचे खिसल पड़ना सुगम है, दौ सौ फीट ऊँची दीवार पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से कोई व्यक्ति गिरे तो दो-चार सैकिण्ड में ही बिना हाथ पैर हिलाये उस रास्ते को पार करके जमीन पर आ गिरेगा परन्तु इतनी ऊँचाई तक चढ़ने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ेगी । जीवन को अवनति के गढ़े में पटक देने वाले कुविचार आसानी से क्रिया रूप में आते हैं पर ऊँचे उठाने वाले, उन्नति की ओर ले जाने वाले, मार्ग पर चलने में काफी प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ता है, बाधाओं से काफी संघर्ष लेना पड़ता है, तब कहीं जाकर सफलता मिलती है । इसलिए ऊँचा चढ़ने की साधना का तपश्चर्या से अनन्य सम्बन्ध है । जिसमें तप करने की वृत्ति नहीं उसके लिए आत्मिक या भौतिक भीतरी या बाहरी किसी प्रकार का विकास करना कठिन है ।

पुराने समय में आज की तरह बालकों को अनावश्यक लाड़-दुलार में रखकर बर्बाद नहीं किया जाता था वरन् थोड़ा सा वयस्क होते ही गुरुओं की संरक्षता में तपस्या का कठोर जीवन बिताते हुए विद्याध्ययन करने के लिए भेज दिया जाता था । आज तो थोड़ा पैसा जिसकी अन्टी में है वह अपने लड़कों को स्कूल पहुँचाने और वहाँ से वापिस लाने के लिए घोड़ागाड़ी भेजता है, किताबों का बस्ता लाने और पहुँचाने के लिए नौकर भेजा जाता है । इस प्रकार अपने धनीपन के अहंकार की पूत्ति करने के लिए बालकों को आरम्भ से ही काहिल, परिश्रम से जी चुराने वाला बनाया जाता है, अन्त में वे लड़के बापदादों की कमाई को फूँकते हुए काहिली की जिन्दगी बिताते रहते हैं, परन्तु पहले ऐसा नहीं होता था । महाराज दशरथ के पास घोड़ागाड़ी जरूर रही होगी न रही होगी तो बनवाने लायक जैसा जरूर रहा होगा तो भी उन्होंने अपने राजकुमारों को विश्वामित्र के आश्रम में तपस्वियों की तरह जीवन बिताते हुए शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा । करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति रखने वाले नन्दजी ने अपने बालक श्रीकृष्ण को चार सौ मील दूर उज्जैन में संदीपन ऋषि के आश्रम में विद्याध्ययन के लिए भेजा । उस समय की यह आम रिवाज थी, गरीबों से लेकर महाराजों तक के बालक तपस्वी जीवन की आदत डालने के लिए गुरुकुलों में जाते थे, फलस्वरूप हनुमान, जामवन्त, भीम, अर्जुन, धृतराष्ट्र, भीष्म, कर्ण जैसे योद्धाओं से भारत भूमि पटी पड़ी थी । आज घोड़ागाड़ी में बैठकर स्कूल को जाने वाले बेटे जिनके माँ बाप सत्यानाशी दुलार की अति दिखाकर लुंज-पुंज बना देते हैं बड़े होकर जुल्फें काढ़ने, फैशन बनाने, या सिनेमा थियेटरों के चक्कर काटने के अतिरिक्त कोई पुरुषार्थ पूर्ण प्रगति नहीं कर पाते । प्राचीन समय से ट्यूटर नौकर रख कर बच्चों को, घर पर पढ़वाने लायक पैसे वाले लोग भी थे परन्तु वे जानते थे वह विद्या जो इतने नाजुक पन से सीखी गई हो सिवाय क्लर्क की नौकरी के और किसी काम नहीं आ सकती । इसलिए बालकों को भावी जीवन में कठोर, कर्मठ, पुरुषार्थी बनाने के लिए आरम्भ से ही विद्याध्ययन की भाँति तपश्चर्या भी पढ़ाई जाती थी । जिन बालकों का तपस्यामय वातावरण में विकास होता है, वे ही बड़े होकर महापुरुषों के रूप में, नर रत्नों के रूप में संसार के समक्ष आकर जगमगाते हैं ।

पौराणिक कथाओं में ऐसे उपाख्यान भरे पड़े हैं जिनमें इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं कि अमुक व्यक्ति ने तपस्या की, तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं ने उनको मनोवांछित वरदान दिये । भागीरथ जी तपस्या करके गंगा जी को लाये । प्रह्लाद ने तप करके राज्य पाया । पार्वती जी ने तप करके शिवजी को विवाहा । केवल दैवी प्रकृति के लोगों ने ही वरदान पाये हैं सो नहीं आसुरी प्रकृति के लोगों ने भी अपनी आसुरी तपस्या द्वारा वैसे ही वरदान पाये थे । रावण ने अपने शीश, शंकर जी को समर्पण करके वरदान पाये थे, कुम्भकर्ण, मेघनाद, अहिरावण, भस्मासुर, हिरण्यकश्यपु आदि असुरों ने अपनी आसुरी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले वरदान भी प्राप्त किये थे । तपस्या एक कल्पवृक्ष के समान है । कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर जिस वस्तु की इच्छा की जाय वह प्राप्त हो जाती है, वह बुरी-भली का भेद नहीं करता । अमृत माँगने और अमृत और विष माँगने पर विष उसके द्वारा मिल जाता है । तपस्या भी ऐसा ही कल्पवृक्ष है उसके द्वारा मनुष्य अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त कर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सकता है तप एक शक्ति है, जैसे पैसे की शक्ति से यश भी प्राप्त किया जा सकता है, और पाप भी कमाया जा सकता है, जैसे बिजली की शक्ति से एक बड़ा भारी कारखाना भी चलाया जा सकता है, और किसी का प्राण भी लिया जा सकता है, उसी प्रकार तप द्वारा भले-बुरे, उचित-अनुचित सभी प्रकार के अभीष्ट सिद्ध होते हैं । शक्ति ही सफलता का स्त्रोत है । बल द्वारा ही उपार्जन होता है । वह बल जो सिद्धि का पिता है परिश्रम का ही दूसरा रूप है । जो परिश्रमी हैं वे ही बलशाली हैं । जिनमें बल है वे ही सिद्धियों का उपभोग करते हैं । उसी तथ्य को आध्यात्मिक भाषाम में यों कहा जाता है कि तप द्वारा वरदान प्राप्त होते हैं ।

तप की शक्ति से पूर्व काल में लोगों ने इन्द्र का इन्द्रासन छीना है और नारायण का आसन डुला दिया है । विश्व का कोई कठिनतम कार्य ऐसा नहीं जिसे तपश्चर्या द्वारा प्राप्त न किया जा सकता हो । प्रचण्ड भक्ति द्वारा भक्त लोक तीन लोक के नाथ नारायण को अपने वश में कर लेते हैं, देवता और भूत पिशाचों पर काबू कर लेते हैं, अदृश्य अन्तरिक्ष में से अनौखे तत्त्वों को आकर्षित कर ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं । तप में मूक को वाचाल बना देने की और पंगु को गिरिवर पर चढ़ा देने की शक्ति है । निर्जीव वस्तुओं के संघर्षण से अग्नि की चिनगारी उत्पन्न होती हैं जो अवसर पाकर बाज्वल्य मान दावानल का रूप धारण कर लेती हैं । चैतन्य आत्मा का सजीव पिण्ड-शरीर जब घिसा जाता है, परिश्रम के पाषाण पर रगड़ा जाता है तो उसमें से निर्जीव विद्युत से असंख्य गुनी शक्ति वाली प्राण-विद्युत उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा कठिन से कठिन कार्य पूरे हो जाते हैं । भौतिक विज्ञान के जानकारों को मालूम है कि प्रकृति का एक क्षुद्र परमाणु जब फटता है तो वह अपनी गर्मी से इस्पात की भारी गुम्बदों को गला कर पानी कर सकता है । इसी प्रकार अध्यात्म विज्ञान के वेत्ता जानते हैं कि चैतन्य आत्मा का सतेज परमाणु मनुष्य अब अपने पूरे साहस के साथ प्रस्फुटित होता है तो वज्र से दुर्भेद्य कठिनाईयों को पीस कर चूर-चूर कर देता है ।

परिश्रम यदि विवेक और व्यवस्था के साथ उचित दिशा में किया जाये तो उसका परिणाम आश्चर्यजनक होता है । संसार में जो भी महानतम कार्य हुए हैं वे मनुष्य के परिश्रम की अद्‌भुत शक्ति की गवाही दे रहे हैं । शारीरिक और बौद्धिक परिश्रम दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं । दोनों के सम्मिलन से एक पूर्ण परिश्रम का निर्माण होता है । जैसे दो पहियों के बिना रथ अपूर्ण है, जैसे स्त्री-पुरुष बिना गृहस्थ अपूर्ण है, वैसे ही अकेला शारीरिक या अकेला मानसिक श्रम अपूर्ण है । दोनों हाथों के सहयोग से काम करने की क्रियाऐं होती हैं, दोनों पैरों से चलने का कार्य ठीक प्रकार होता है उसी प्रकार शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम दोनों प्रकार के श्रमों की क्षमता ही जीवन विकास में समुचित सहायता प्रदान करती है । जिन्हें केवल मानसिक श्रम में रुचि है और शारीरिक श्रम की तुच्छता की दृष्टि से देखते हैं वे भूल करते हैं । इसी प्रकार जो शरीर की मेहनत से ही सन्तुष्ट हैं मानसिक श्रम पर ध्यान नहीं देते, वे भी गलत रास्ते पर हैं । दिमागी काम तक ही अपनी रुचित सीमित रखने वाले स्वास्थ्य को खो बैठते हैं, देह में कमजोरी और बीमारी का प्रवेश हो जाने पर संसार की सुखानुभूतियों से हाथ धोना पड़ता है । इसी प्रकार जिनका क्षेत्र देह की मेहनत मजूरी तक ही सीमित है, वे बौद्धिक विकास से वंचित रह जाते हैं, उन्हें अज्ञान का, मूर्खता का, अविवेक का, दुःख उठाना पड़ता है, जो शारीरिक कमजोरी या बीमारी से कम दुःखदायी नहीं है ।

श्रम करने में वैसी ही रुचि होनी चाहिए जैसी खेल खेलने में होती है । मेहनत को भार समझना थकान का प्रमुख कारण है । विवाह शादी की खुशी के दिनों में लोग दिन-रात काम में लगे रहते हैं पर ऐसा कुछ नहीं मालूम पड़ता कि उनके सिर पर पहाड़ रखा हुआ है । गेंद खेलने में खिलाड़ियों को काफी भाग दौड़ करनी पड़ती है पर उसकी थकान नहीं आती । कारण यह है कि खेलने में, शादी-ब्याह की धूम-धाम में, मन एक प्रकार का रस लेता रहता है । इसी प्रकार अन्य कामों में भी यदि अपनी रुचि का ऐसा ही समावेश कर दिया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जाय तो थकान न आवेगी और न जी ऊवेगा । काम को कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिए । काम करना स्वयं एक आनन्द है, उस आनन्द के रसास्वादन की अपनी आदत डालनी चाहिए । इच्छित परिणाम की आशा-निराशा में जो लोग उत्साहित-अनुत्साहित होते रहते हैं उनकी क्रिया पद्धति बिगड़ जाती है । कई बार वे निराशा के कारण नियत काम को छोड़ बैठते हैं और कई बार सफलता की खुशी के मारे हाथ पाँव फूल जाते हैं । अध्यात्म शास्त्र के गीता आदि ग्रन्थों में आसक्ति छोड़कर कर्त्तव्य भाव से कार्य करने के जिस कर्मयोग का उपदेश दिया है वह कर्म को कर्त्तव्य समझ कर परिश्रम में ही रस लेने की ही शिक्षा है । इस पद्धति से काम करने वाले का आनन्द और उत्साह कभी मन्द नहीं पड़ता । न कभी थकान आती है और न जी ऊबता है । काम को खेल समझते हुए उसे अपने अभ्यास बढ़ाने की एक शिक्षा माध्यम मानते हुए करने की आदत बहुत ही उपयोगी है । जैसे चित्र कला का विद्यार्थी अपनी सुरुचि को एकत्रित करके अपने चित्र को अधिकाधिक सुन्दर बनाने के लिए एकाग्रता पूर्वक प्रयत्न करता है और अच्छा चित्र न बनने पर भी अपने प्रयत्न काल के 'अभ्यास-रस' से बहुत आनन्द उपलब्ध करता है और बार-बार नये-नये चित्र बनाते-बनाते अपनी योग्यता बढ़ाता हुआ एक दिन कुशल चित्रकार बन जाता है, उसी प्रकार हमें हर एक काम को एक चित्र समझ कर अपने आत्मानन्द के लिए उसे अधिक से अधिक सुन्दर बनाने का रुचि पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए । जब यह साधना आदत के रूप में आ जाती है तो मनुष्य सच्चा कर्मयोगी बन जाता है और प्रतिक्षण उस आनन्द में सराबोर रहता है जो कर्मयोगी को प्राप्त हुआ करता है उस कर्त्तव्य परायणता के आनन्द के सामने, परिश्रम शीलता के समय में मिलने वाले रस के सामने, सफलता का सुख बहुत ही तुच्छ और नीचे दर्जे की चीज है । परिश्रमी व्यक्ति हर घड़ी सफलता के आनन्द से ऊँचे दर्जे के रस का आस्वादन करता रहता है ।

परिश्रम में अनेक लाभों का भण्डार भरा हुआ है । निरोगता, बलिष्ठता, दीर्घजीवन, प्रफुल्लता, गाढ़-निद्रा, चैतन्यता, स्फूर्ति, उत्साह, साहस, उत्पादन, वृद्धि, आत्मविश्वास आदि अनेको आनन्द दायक तत्त्वों की बढ़ोत्तरी होती है । कठिनाइयाँ सरल हो जाती हैं और दुर्लभता सुलभ बन जाती हैं । परिश्रम की सीढ़ियों पर पैर धरने वाला मनुष्य लगातार आगे ही बढ़ता जाता है और एक दिन वह अभिवृद्धि इतनी अधिक हो जाती है कि उसमें और उसके निठल्ले साथियों में जमीन आसमान का अन्तर पड़ जाता है । बड़ों का बड़प्पन, महान पुरुषों की महानता, विद्वानों की विद्वता एवं सम्पत्ति शालियों की सम्पदा और कुछ नहीं केवल उनके परिश्रम का ही दूसरा रूप है । श्रम स्वर्ण का एक डेला है उसे जिस सांचे में ढाल दीजिए वैसा ही आभूषण बन जायेगा । जिस भी दिशा में मनुष्य मेहनत करता है उसी दिशा में वह समृद्ध हो जाता है ।

इसलिए मेहनत के महत्त्व पर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिए उसे सच्ची जीवन सहचरी की भाँति प्यार करना चाहिए । यह वह देवी है जो अपने भक्तों को निहाल कर देती है । जीवन के क्षणों का सच्चा लाभ उसे ही मिल सकता है, जो अपने समय को काम में जुटे रह कर खर्च करता है । समय एक ईश्वरीय चक्र है जिसे परिश्रम की बैंक में भुनाने से नकद सम्पत्ति मिल जाती है । कर्म परायणता सौभाग्य की कुञ्जी है । जिसके हाथ में यह कुञ्जी होगी वह अपने आपको सौभाग्यशाली बना लेगा । परमात्मा के भण्डार में सब कुछ भरा हुआ है पर व्यक्ति के प्रयत्न के आधार पर ही उस भण्डार में से दिया जाता है । अपनी पात्रता से अधिक कोई एक रत्ती भर भी अधिक नहीं पा सकता कहा है-

**राम झरोखे बैठि कर, सबको मुजरा लेंय ।**
**जैसी जाकी चाकरी, तैसो ताको देंय ।।**

रामजी झरोखे में बैठे हुए अदृश्य स्थान पर निवास करते हुए सब का मुजरा लेते हैं, सब की खोज-खबर रखते हैं और जिसकी जितनी मेहनत है उसको उतनी मजूरी गिन देते हैं ।

जिन्हें अपने जीवन को उन्नत बनाना हो उन्हें परिश्रम से प्यार करना चाहिए । अपने को मेहनती बनाना मानो उन्नति के द्वार में पदार्पण करना है । इसलिए हे आनन्द मय जीवन के अभिलाषियों ? परिश्रम का महत्त्व समझो, उसे अपनाओं, मेहनत करने को तैयार हो जाओ और अपने समय को श्रम द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द में ओत-प्रोत कर लो तभी आत्म विकास की समृद्धि को प्राप्त कर सकोगे ।



# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# आगे बढ़ने की तैयारी

## आगे बढ़िए, उन्नति कीजिए, विकसित हूजिए

ब्रह्म विद्या की अन्तरात्मा पुकार-पुकार कर कहती है कि उठो, जागो और उन्नति के लिये आगे बढ़ो । प्रकृति का हर एक परमाणु आगे बढ़ने के लिए हलचल कर रहा है । सूर्य को देखिए चन्द्रमा को देखिए, नक्षत्रों को देखिए सभी तो चल रहे हैं यात्रा का क्रम जारी रख रहे हैं । एक क्षण के लिए भी विश्राम करने की उन्हें फुरसत नहीं । नदियां दौड़ रही हैं, वायु बह रही है, पौदे ऊपर उठ रहे हैं, वृक्ष नवीन फल उपजा रहे हैं जो पदार्थ स्थिर मालूम पड़ते हैं वे भी अदृश्य रूप से चल रहे हैं । भूमि में रहने वाले रसायनिक पदार्थ चुपके-चुपके एक जगह से दूसरी जगह को चलते जाते हैं, शरीर के जीवन घटक नित नया रूप धारण करते हैं, अन्न से आटा, आटे से रोटी बनी, रोटी का मल, मल का खाद, खाद से वनस्पति, इस प्रकार उन परमाणुओं की यात्रा जारी रहती है । प्रकृति के परिमाणुओं का अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रत्येक विद्युत घटक (इलेक्ट्रोन) प्रति सेकिन्ड सैकड़ों मील की चाल से अपनी धुरी पर घूमता हुआ आगे बढ़ रहा है । इस विश्व का एक कण आगे बढ़ रहा है ।

हम अपनी ''जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश'' पुस्तक में सविस्तार यह बता चुके हैं कि जीव आगे बढ़ रहा है । प्रत्येक जन्म में वह आगे बढ़ता जाता है । उन्नति क्रम पर निरंतर आगे बढ़ने की उसकी भूख ईश्वर प्रदत्त है । उन्नति से संतुष्ट होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, मनुष्य की अपनी सम्पूर्ण अपूर्णताएँ हटाकर उतना उन्नत बनना है जितना उसका पिता-ईश्वर है । जब तक जीवन मुक्त ब्रह्मस्थित नहीं हो जाता तब तक यात्रा में विराम कैसा ? मंजिल में रुकना कैसा ? मालूमी सी उन्नति कर जाने पर लोग कहने लगते हैं, अब इतना मिल गया सन्तोष करना चाहिए । अधिक के लिए हाय, हाय क्यों करें ? जो कुछ उपलब्ध हो गया है उतना ही बहुत है । यह अनात्मवादी विचार धारा है, ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध है, प्रकृति के नियमों के विपरीत है । भोजन करके मनुष्य संतुष्ट होजाता है । उसकी भूख बुझ जाती है, फिर उससे एक लड्डू और खाने को कहा जाय तो न खा सकेगा. इससे यह प्रकट होता है कि इस दशा में प्राकृतिक नियम और अधिक खाने का विरोध करते हैं परंतु उन्नति से कोई संतुष्ट नहीं होता, हर व्यक्ति यही चाहता रहता है कि मैं और अधिक आगे बढूँ और उन्नति करूँ ।

नाक से जो हवा हम खींचते हैं वह शरीर में अन्दर जाती है उसका आक्सीजन तत्त्व रक्त की लालिमा प्रदान करता है । तदुपरान्त वह वायु निष्प्रयोजन होजाती है, उसे शरीर निकाल कर बाहर फेंक देता है । जब साँस खींची गई तब भी वही वायु बहुत उपयोगी थी, पर वह उपयोगी पूरा होते ही उस वायु की उपयोगिता नष्ट होगई । अब नई वायु चाहिए । नया साँस लेना पड़ेगा । यदि पुराने साँस पर ही संतुष्ट रहा जाय और यह सोचा जाय कि हमें लिए तो इतनी ही वायु पर्याप्त है ज्यादा लेकर क्या करेंगे तो यह विचार हानिकारक सिद्ध होगा जीवन की प्रगति रुक जायगी । ठीक यही बात उन्नति के सम्बन्ध में लागू होती है । आपने जो शक्ति पहले संपादित की थी उसने एक हद तक आत्मा को बल दिया, ऊँचा उठाया. अब उसकी शक्ति समाप्त होगई । एक बार भोजन किया था, उसकी उपयोगिता पूरी हो गई, वह पच गया तो नया भोजन चाहिए । एक बार साँस ली थी वह अपना काम कर चुकी तो नई साँस चाहिए । एक समय जो उन्नति की थी उससे उस समय उत्थान मिला । अब आगे और शक्ति प्राप्त करने के लिए, और ऊँचा चढ़ने के लिए, नवीन प्रोत्साहन के लिए नई उन्नति चाहिए । एक गैलन पैट्रोल लेकर मोटर दस मील चल आई अब उसे और आगे चलना है तो और पैट्रोल दीजिए, वरना वह जहाँ की तहाँ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पड़ी रहेगी आगे चलने का काम बन्द हो जायगा ।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिए, बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना आवश्यक है । आपकी उन्नति का क्रम कभी भी रुकना न चाहिए । सन्तोष का तात्पर्य दूसरा है जिसे 'दार्शनिक भूल भुलैया' पुस्तक में आप पढेंगे । यहाँ तो आपको इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि आगे बढ़ने से कभी भी रुकना नहीं है । निरंतर कदम आगे बढ़ाये चलना है और महानता को बूँद-बूँद इकट्ठी करके अपनी लघुता का खाली घड़ा पूर्ण करना है । उस कर्महीन मनुष्य का अनुकरण करने से आपका काम नहीं चलेगा जो पेट भरते ही हाथ पैर फैलाकर सो जाता है और जब भूख बैचेन करती है तब करवट बदलता और कुड़ कुड़ाता है । छोटी चींटी को देखिये वह भविष्य की चिन्ता करती है, आगे के लिए अपने बिल में दाने जमा करती है जिससे जीवन संघर्ष में अधिक दृढ़ता पूर्वक खड़ी रहे, दस दिन पानी बरसने के कारण बिल से बाहर निकलने का अवसर न मिले तो भी जीवित रह सके, छोटी मधु मक्खी भविष्य की चिन्ता के साथ आज का कार्यक्रम निर्धारित करती है । आज की जरूरत पूरी करके चुप बैठ रहना उचित नहीं, इस जन्म और अगले जन्म में आपको लगातार उन्नति पथ पर चलना है, तो यह अत्यंत आवश्यक है कि यात्रा में बल देते रहने योग्य भोजन की व्यवस्था का ध्यान रखा जाय । इस समय आप जितना बल संचय कर रहे हैं वह आगे चलकर बहुत लाभदायक सिद्ध होगा, उसकी क्षमता से भविष्य का यात्रा क्रम अधिक तेजी से और सरलता से चलता रहेगा ।

योग साधना के फलस्वरूप सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, अष्ट सिद्धि, नव निद्धि के लिए लालायित होकर साधना कठोर साधनाएँ करते हैं, विजयी बनने के लिए मृत्यु की छाया में रण क्षेत्र की ओर कदम बढ़ाते हैं स्वर्ग लाभ के लिए दुर्गम बन पर्वतों की यात्रा करते हैं, धनी बनने के लिए एड़ी से चोटी तक पसीना बहाते हैं, बलवान बनने के लिए थका कर चूर करने वाले व्यायाम में प्रवृत्त होते है, विद्वान बनने के लिए रात-रात भर जागकर अध्ययन करते हैं यह उदाहरण बताते हैं कि उन्नत बनने की आवश्यकता को हमारी अन्तः चेतना विशेष महत्व देती है और उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए हम बड़ी से बड़ी जोखिम उठाने को, कठिन से कठिन प्रयत्न करने को तत्पर हो जाते हैं । नकली आवश्यकता और असली आवश्यकता की पहचान यह है कि नकल के लिए, संदिग्ध बात के लिए त्याग करने की तत्परता नहीं होती, असली आवश्यकता के लिए मनुष्य कष्ट सहने और कुर्बानी करने को तैयार रहता है । एक आदमी सिनेमा का शौकीन है उसे कहा जाय कि एक खेल देखने के बदले में तुम्हें अपनी उंगली कटानी पड़ेगी तो वह ऐसा खेल देखने से मना कर देगा क्योंकि खेल देखने की आवश्यकता नकली है, उसके लिए इतना कष्ट सहन नहीं किया जा सकता । परन्तु यदि स्त्री, पुत्र आदि कोई प्रियजन अग्निकाण्ड में फँस गये हों तो उन्हें बचाने के लिए जलती हुई अग्नि शिखाओं में कूदा जा सकता है फिर चाहे भले ही उसमें झुलस कर अपना भी शरीर चला जावे । सिनेमा का खेल देखने की आवश्यकता का और प्रियजनों की जीवन रक्षा करने की आवश्यकता में कौन असली है कौन नकली उसकी पहचान उसके लिए त्याग करने की मात्रा के अनुसार जानी जा सकती है । हम देखते हैं कि उन्नति करने की लालसा मानव स्वभाव में इतनी तीव्र है कि वह उसके लिए कष्ट सहता है और जोखिम उठाता । यह भूख असली है । असली आवश्यकता में इतना आकर्षण होता है कि उसके तीव्र शक्ति से प्रयत्न करने को बाध्य होना पड़ता है । मौज में पड़े रहना किसी को बुरा नहीं लगता पर उन्नति की ईश्वरदत्त आकांक्षा इतनी तीव्र है कि उसके लिए मौज छोड़कर कष्ट सहने को तत्पर हो जाते हैं ।

संतोष रखने का तात्पर्य यह है कि जब प्रयत्न करते हुए भी किसी कारण वश सफलता न मिले या अल्प मात्रा में मिले तो उस समय मानसिक विक्षेप के ऊपर काबू रखा जाय, निराशा और दुखसे बचने के लिए ईश्वरेच्छा समझ कर संतोष किया जाय । उन्नति करना ईश्वरीय आज्ञा है जिसका पालन करना हर विवेक शील व्यक्ति को अपना कर्तव्य समझना चाहिए । यह संसार कर्म

भूमि है, कर्तव्य करने के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं, अपने इच्छित उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करके विजयी और वैभव शाली बनने की इच्छा कीजिए और उस इच्छा कीजिए और उस इच्छा को पूर्ण करने में उत्साह के साथ प्रवृत्त हो जाइए ।

पिता अपने उस बच्चे को अधिक प्यार करता है जो अधिक उद्योगी होता है । कमाऊ पूत का घर में स्वागत सत्कार किया जाता है । पिता को उसकी कमाई नहीं चाहिये पर उन्नति देखकर उसे संतोष होता है । एक लड़का कलक्टर हो जाय और दूसरा भीख माँगे तो पिता जगह-जगह अपने उस लड़के की प्रशंसा करेगा जो कलक्टर हो गया है । भले ही उस उच्च पद का भौतिक लाभ, उस लड़के को ही मिलता है तो भी पिता इसमें गर्व करता है कि मेरी एक रचना प्रशंसा के योग्य सिद्ध हुई भिखारी लड़के के बारे में पिता मन ही मन खिन्न रहता है, उसके कार्यों से स्वयं भी लज्जित होता है, किसी से उसके बारे में चर्चा नहीं करता और अपरिचितों में यह प्रकट नहीं करता कि मेरा ही लड़का है । निरुद्योगी संतान पर भला कौन अभिभावक गर्व कर सकता है ? किसे उस पर प्यार हो सकता है ?

जब बालक खेल में जीत कर आता है, परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आता है, प्रतियोगिता में पुरस्कार लेकर आता है तो पिता के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ जोड़ जाती हैं वह बच्चे को उठाकर छाती से लगा लेता है । दूसरा मरियल लड़का जो घर बैठा-बैठा मक्खी मारा करता है उतना प्यार नहीं हो सकता भले ही वह सारे दिन पिता के पैर दबाया करे या पंखा झला करे । अपने ऊपर पंखा झला जाने की अपेक्षा पिता यह पसन्द करता है कि बालक चाहे उसके कुछ भी काम न आवे पर स्वयं उन्नति करें, आगे बढ़ें, विजय प्राप्त करें । ईश्वर भी हमसे ऐसी ही आशा करता है, वह आपको पराक्रमी, पुरुषार्थी, उन्नतशील, विजयी, महान, वैभव युक्त, विद्वान, गुणवान देखकर बहुत प्रसन्न होता है और अनायास ही उठाकर छाती से लगा लेता है । उसे इस बात की इच्छा नहीं कि आप तिलक लगाते हैं या नहीं, पूजा पत्री करते हैं या नहीं, भोग आरती करते हैं या नहीं, क्योंकि उस सर्वशक्तिमान प्रभु का कुछ भी काम इन सबके बिना रुका हुआ नहीं है । वह इन बातों से प्रसन्न नहीं होता, उसकी प्रसन्नता तब प्रस्फुटित होती है जब अपने पुत्रों को ऊँचा चढ़ते, उन्नति करते देखता है, अपनी रचना की सार्थकता अनुभव करता है ।

देखा जाता है कि जो लोग उन्नति शील स्वभाव के होते हैं उन्हें कहीं से न सहीं से आगे बढ़ाने वाली सहायताएँ प्राप्त होती रहती है कभी तो अचानक ऐसी मदद मिल जाती है जिसकी पहले कुछ भी आशा नहीं की थी । छोटे-छोटे आदमी बड़े-बड़े काम कर डालते हैं उन्हें अनायास ऐसे अवसर मिल जाते हैं जिससे बहुत बड़ी उन्नति का रास्ता खुल जाता है । साधारण बुद्धि के लोग उन्हें देखकर ऐसा कहा करते हैं कि-अमुक व्यक्ति का भाग्योदय हुआ, उसके भाग्य ने अचानक ऐसे कारण उपस्थित कर दिये जिनसे वह तरक्की की ओर बढ़ गया । हम इसे ईश्वर की कृपा कहते हैं । पिता अपने बालकों की आदतों और इच्छाओं को परखता है जो लड़का पढ़ने के लिए बैचेन है उसे स्कूल भेजता है, जो व्यापार चाहता है उसे दुकान खुलवाता है, जो ठल्ल है उसे पशु चराने का सौंप देता है । व्यापार में पैसे की जरूरत समझता है तो पिता उसके लिए व्यवस्था करता है, पढ़ने वाले की पढ़ाई का खर्च जुटाता है । पढ़ाई खर्च के लिये अचानक पहुँचा हुआ मनीआर्डर देखकर कोई नादान लड़का यह ख्याल कर सकता है कि यह पैसा अकस्मात कहीं से आ जुटा है पर असल में इस व्यवस्थित विश्व में अकस्मात् कुछ नहीं है, सब कार्य व्यवस्था पूर्वक चल रहे हैं । पढ़ने की उत्कट रखने वाला बालक पिताजी का ध्यान बलात् अपनी ओर खींचता है और उस पढ़ाई में मदद करने के लिए बाध्य करता है । ठल्ल स्वभाव के लड़के को चरवाह बनाकर पिता निश्चिन्त है पर उद्योगी बालक को तो वह निरालम्ब नहीं छोड़ सकता ।

जो मनुष्य आगे बढ़ने की तीव्र इच्छा करते हैं, उन्नति के लिए सच्चे हृदय से जो फिसानी के साथ प्रयत्न शील है, उसके प्रशंसनीय उद्योग को देखकर ईश्वर प्रसन्न होता है,अपना सच्चा आज्ञापालक समझता है और उसे प्यार करता है । जिस पर उस

परम पिता का विशेष स्नेह है उसे यदि वह कुछ विशेष सहायता दे देता है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । एक प्रसिद्ध कहावत है कि–''ईश्वर उसकी मदद करता है-जो अपनी मदद आप करते हैं ।'' उन्नतशील स्वभाव के लोगों को-उनकी उचित प्रवृत्ति में सहायता करने के लिए परमपिता परमात्मा ऐसे साधन उपस्थित कर देता है जिनसे उसकी यात्रा सरल हो जाती है । अचानक, अनिश्चित एवं अज्ञात सहायताओं को मिल जाना इसी प्रकार संभव होता है । बाइविल का वचन है कि–''जो माँगता है उसे दिया जाता है, जो द्वार खड़ा खड़ाता है उसके लिए खोला जाता है ।'' रामायण कहती है कि–''जिहि कर जिहि पर सत्य सनेहु । सो तेहि मिलत न कछु संदेहु ।'' यह विश्व प्रभु की सर्वांग पूर्ण कृति है, यहाँ किसी वस्तु का आव नहीं है । सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है वशर्ते कि पाने की उत्कष्ट लालसा के साथ तीव्र प्रयत्न भी हो । छोटा बच्चा जब घुटनों चलता है तो माता उसे खड़ा होकर चलना सिखाती है । वह मिठाई की टुकड़ा जरा ऊँचा रखकर दिखाती है ताकि बालक उसे लेने के लिए पैरों के बल खड़ा हो । जब खड़ा होना सीख जाता है तो फल, मिठाई, खिलौना, आदि का लालच देकर पैरों के बल चलना सिखाती है माता बार-बार लालच देती है और बच्चे को प्रोत्साहित करती है इसमें उसका यह उद्देश्य छिपा रहता है कि बच्चा घुटनों चलना छोड़कर खड़ा होना पैरों के बल चलना सीखें, उन्नति करने की यात्रा को जारी रखे । परमात्मा ने हमें धन, सम्पत्ति, विद्वता, बल, पदवी आदि के लालच इस लिए उपस्थित किये हैं कि उनको पाने के लिए हम घोर प्रयत्न करें और उस प्रयत्न के साथ-साथ अपनी मनोभूमि को उन्नत करें और उस प्रयत्न के साथ-साथ अपनी मनोभूमि को उन्नत, बलवान-विकसित बनावें ।

हम लोग उन छोटे बालकों की भाँति कार्य कर रहे हैं जो मिठाई के लालच में खड़े होकर चलना सीखने का प्रयत्न करते हैं । भौतिक ऐश्वर्य नाशवान है, थोड़ी देर ठहरते हैं, जल्दी नष्ट हो जाते हैं यह ठीक है, वे सदा किसी के पास नहीं रहते, यह भी ठीक है, पर इसी कारण उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं छोड़ा जा सकता । मिठाई का टुकड़ा बच्चे की जन्म भर की भूख नहीं बुझा सकता, यह हमेशा रक्खा भी नहीं रहेगा, उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं करता यह ठीक है । तो भी यदि बालक उसे लेने का प्रयत्न करता है तो उसे हानि ही नहीं वरन् लाभ ही है । छोटा टुकड़ा मिला-सही-पर कुछ न कुछ मिला तो । थोड़ी जिह्वा ने मधुरता का आनन्द चखा-सही-पर चखा तो । टुकड़ों को प्राप्त करने पर थोड़ी देर प्रसन्नता हुई-सही पर-हुई तों । कुछ न कुछ उसने पाया ही, गवाया तो नहीं । अप्रत्यक्ष रूप से देखा जाय तो टुकड़े की उपेक्षा बहुत मूल्यवान वस्तु पाई, उस की शक्ति बढ़ी, खड़े होने की आदत पड़ी, उन्नति करने का प्रोत्साहन मिला, आत्म विश्वास बढ़ा, मनमें मजूबती आई, यह सब क्या कम लाभ है ?

यदि वह बालक आज कलके निराशावादियों की तरह कहता-'यह टुकड़ा तो जरासा है, झट पेट में चला जायगा, इसे लेकर क्या करूँगा, मैं इसे नहीं लेता इसके लिए खड़ा होने का महनत नहीं करता ।' क्या ऐसे उत्तर से माता प्रसन्न होती ? क्या ऐसे विचार से उसे खुद कुछ लाभ होता ? इस तरह का सोचना सब दृष्टियों से उसी के लिए हानि कर सिद्ध होता ।

भौतक सम्पदा त्याज्य, घृणित या छून योग्य नहीं है । इन्द्रियों के द्वारा जो भोग भोगे जाते हैं वे पातक नहीं हैं पेट में भूख उत्पन्न करके परमात्मा ने मनुष्य को निरन्तर काम में लगे रहने का एक चक्र बना दिया है जिससे उसका निरन्तर कार्य करने का, आगे बढ़ने का क्रम, बन्द न होने पावे । इसी प्रकार इन्द्रिय जन्य अन्य भूखों की रचना हुई है, काम वासना बुरा नहीं है, मानव तत्व के गम्भीर अन्वेषकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि साधारण श्रेणी के मनुष्यों के लिए काम सेवन आवश्यक है, इसके अभाव में कुछ शारीरिक और अनेक मानसिक रोग उपज खड़े होते हैं । संसार भर की मृत्यु गणना से यह स्पष्ट हो गया है कि विवाहितों की अपेक्षा विधवा एवं विधुर अल्पायु होते हैं और अधिक संख्या में मरते हैं । इससे प्रकट होता है कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्राकृतिक भूख को दबाने का क्या परिणाम निकलता है । नासिका स्वच्छ वायु पसन्द करती है यदि उसकी भूख को दबा कर बदबूदार स्थान में रहेंगे तो घाटा उठाना पड़ेगा । नेत्र मनोहर दृश्य देखना पसन्द करते हैं यदि उनकी भूख को कुचल कर घृणित, अरूचि कर दृश्य देखेंगे तो उसका बूरा फल भोगेंगे । प्राकृतिक भूखों की एक ऐसी कसौटी मनुष्य के पास मौजूद है किसकी सहायता से वह आसानी से जान सकता है मेरे लिए क्या ईश्वरीय आज्ञा है क्या नहीं ? कभी-कभी मनुष्य मध्यम मार्ग को छोड़कर अति की ओर भटक जाता है यह अति ही पाप है, इसी को रोकने के लिए धर्म शास्त्रों का अंकुश है अन्यथा स्वाभाविक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में कुछ बुरा नहीं है छोटे मोटे आकर्षण जो सामने आते हैं उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से उद्योग करें तो इसमें हानि कुछ नहीं, लाभ शारीरिक भी है और आत्मिक भी ।

आप 'उन्नति करना' अपना जीवन का मूल मन्त्र बना लीजिए, ज्ञान को अधिक बढ़ाइए, शरीर को स्वस्थ बलवान और सुन्दर बनाने की दिशा में अधिक प्रगति करते जाइए, प्रतिष्ठावान हूजिए, ऊँचे पद पर चढ़ने का उद्योग कीजिए, मित्र और स्नेहियों की संख्या बढ़ाइए, पुरुष संचय करिए, सद्गुणों से परिपूर्ण हूजिए, आत्म बल बढ़ाइए, बुद्धि को तीव्र करिए, अनुभव बढ़ाइए, विवेक को जागृत होने दीजिए । बढ़ना आगे बढ़ना-और आगे बढ़ना-यात्री का यही क्रम होना चाहिए ।

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिए, ऐसे विचारों का परित्याग कर दीजिए कि साधनों के अभाव में हम किस प्रकार आगे बढ़ सकेंगे । स्मरण रखिए-शक्ति का स्रोत साधनों में नहीं, भावना में है । यदि आपकी आकाक्षांएँ आगे बढ़ने के लिए व्यग्र हो रही हैं, उन्नति करने की तीव्र इच्छाएँ बलवती हो रही हैं तो विश्वास रखिए साधन आपको प्राप्त होकर रहेंगे, ईश्वर उन लोगों की पीठ पर अपना वरद हस्त रखता है जो हिम्मत के साथ आगे कदम बढ़ाते हैं । पिता आपकी प्रयत्न शीलता को, बहादुरी को आकांक्षा को पसन्द करता है और वह चाहे तामसी ही क्यों न हो बढ़ने में मदद करता है ।

प्रकृति विज्ञान के महापंडित डाक्टर ई.वी. जेम्स ने अनेक तर्क और प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि 'योग्य तम चुनाव' प्रकृति का नियम है । जो बलवान है उसकी रक्षा के लिये अनेक कमजोरों को वह नष्ट हो जाने देती है उसकी रक्षा के लिये अनेक कमजोरों को व नष्ट हो जाने देती है । आंधी, ओले, तूफान, कमजोर पेड़ों को उखाड़ फेंकते हैं किन्तु बलवान वृक्ष जहाँ क तहाँ दृढ़ता पूर्वक खड़े रहते हैं । बीमारी, गरीबी, लड़ाई के संघर्ष में कमजोर पिस जाते हैं किन्तु बलवान उन आघातों को सह जाते हैं । बड़ी मछली की जीवन रक्षा के लिए हजारों छोटी मछलियों को प्राण देने पड़ते हैं, बड़े पेड़ को खुराक देने के लिए छोटे पौदों को भूखा मर जाना पड़ता है, एक पशु का पेट भरने के लिए घास पात की असंख्य वनस्पति नष्ट हो जाती हैं, सिंह की जीवन रक्षा के लिए अनेक पशु अपने जीवन से हाथ धोते हैं । यह कडुई सचाई निष्ठुर स्वर में घोषणा करती है कि जीवन एक संघर्ष है इसमें वे ही लोग स्थिर रहेंगे जो अपने को सब दृष्टियों से बलवान बनावेंगे । यह वीर भोग्या वसुन्धरा निर्बलों के लिए नहीं है यह तो पराक्रमियों की क्रीड़ा भूमि है । यहाँ पुरुषार्थियों को विजय माला पहनाई जाती है और निर्बलों को निष्ठुरता पूर्वक निकाल बाहर किया जाता है ।

सावधान हूजिए, गफलत को त्याग दीजिए, कहीं ऐसा न हो कि आप शक्ति संपादन की ओर से उपेक्षा करके ''चैन करने'' में रस लेने लगें और प्रकृति के निष्ठर नियम आपको निर्बल पाकर दबोच दें । कहीं ऐसी स्थिति में न पड़ जावें कि निर्बलता के दंड स्वरुप असह्य वेदनाओं की चक्की में पिसने को विवश होना पड़े । इसलिए पहले से ही सजग रहिए । आत्म रक्षा के लिए सावधान हूजिए, जीवन संग्राम में अपने को बरबाद होने से बचने के लिए शक्ति का संपादन कीजिए, बलवान बनिए । सुदृढ़ आधारों पर अपने को खड़ा कीजिए ।

अध्यात्मवाद कहता है कि-ईश्वर की आज्ञा का पालन यह है कि आप आगे चलें, ऊँचे उठें । आत्म रक्षा के लिए दृढ़ता चाहिए, विपत्ति से बचने के लिए मजबूती चाहिए, भोग ऐश्वर्यों का सुख भोगने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


के लिए शक्ति चाहिए, परमार्थ प्राप्ति के लिए तेज चाहिए । दशों दिशाओं को एक ही पुकार है-आगे बढ़िये, अधिक इकट्ठा कीजिए । हम कहते हैं कि-आत्मोन्नति कीजिए । ईश्वर को प्राप्त करने की साधना को जारी रखिए, उस महान पथ को पूरा करने की योग्यता बनाये रखने के लिए सांसारिक उन्नतियों को एकत्रित कीजिए, उच्च, प्रतिष्ठित, शक्तिशाली और वैभववान बनने की दिशा से सदैव प्रगति करते रहिए ।

# दूसरा पाठ

## सफलताओं की जननी-आरोग्यता-की रक्षा कीजिए ।

सब कोई यह चाहते हैं कि हम स्वस्थ एवं निरोग रहें । स्वास्थ्य प्राप्ति के नाम पर शक्ति भर धन किया जाता है, बहुमूल्य खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं, वैद्य डाक्टरों की जेबें भरी जाती हैं, मांस आदि दुर्गन्धित और अभक्ष वस्तुओं को गले से नीचे उतारा जाता है, वस्त्रों द्वारा ऋतु प्रभाव से बचने का, सवारी द्वारा श्रम बचाने का, प्रयत्न किया जाता है । रहने के कमरों को जाड़े में गरम और गर्मी में ठण्डा रखने की व्यवस्था की जाती है । तन्दुरुस्ती को कायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति इच्छुक है, इसके लिए वह पैसा और समय खर्च करता है या करना चाहता है । ऐसा एक भी व्यक्ति न मिलेगा जो यह चाहता हो कि मैं दुर्बल या रोगी रहूँ ।

यह सचाई सर्व विदित है कि निरोग रहकर ही उन्नति की किसी दिशा में प्रगति की जा सकती है, जो आदमी तन्दुरुस्त है वही सम्पदाओं को एकत्रित कर सकता है और उनका सुख भोग सकता है । करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति पास में हो पर तन्दुरुस्ती नहीं तो वह किस काम की । स्वादिष्ट भोजनों का थाल सामने रखा हो पर पेट में उन्हें स्वीकार करने की शक्ति न हो तो वह भोजन किस काम का ? भाँति-भाँति के रुचिकर भोग ऐश्वर्य मौजूद हैं पर उन्हें भोगने की शक्ति ही नहीं तो उनकी मौजूदगी से क्या लाभ हुआ गन्जा आदमी बहुमूल्य कन्धे का क्या उपयोग करेगा ? लूले मनुष्य के लिए सुन्दर जूते क्या सन्तोष दे सकते हैं ? संसार बड़ा आनन्दमय है, इसमें सर्वत्र प्रफुल्लता, और प्रसन्नता के परमाणु बिखरे पड़े हैं, हर जगह खुशी के फब्बारे छूट रहे हैं, सिनेमा की निर्जीव प्रतिमाएँ दो घड़ी तक मन को प्रसन्नता से आन्दोलित रखती हैं, संसार जीता जागता सिनेमा है, इसमें सजीव तस्वीरें हँसाती है, कोई रुलाती है, कोई क्रोध उत्पन्न करती है, कोई शान्ति प्रदान करती है । नाना प्रकार के भावों को थोड़े ही समय में उभारने की क्षमता रखने वाला सिनेमा सब मिलाकर रोचक और मनोरंजक ही ठहराया जाता है । यह संसार भी सब मिलाकर आनन्ददायी, हर्षोत्पादक एवं शान्तिदायक ही ठहरता है । जवान से कोई कुछ भी कहे पर अन्तःचेतना इस तथ्य को भली भाँति पहचानती है यही कारण है कि जब किसी से पूछा जाय कि-'तुम्हें स्वर्ग मिल जायगा आओं तुम्हारी गरदन काट डालें' तो वह इसके लिए तैयार न होगा । क्योंकि इस सचाई को वह जानता है कि संसार में कुछ अप्रिय तत्त्व मौजूद हैं तो भी सब मिलाकर उसमें प्रसन्नता अधिक है, ऐसी प्रसन्नता की जगह को वह क्यों छोड़े ।

बेशक इस संसार में आनन्ददायी, रुचिकर तत्त्वों की मात्रा अधिक है । इसीलिए शुद्ध बुद्ध, निर्लिप्त निरंजन, आत्मा इसमें प्रकट होने के लिए बार-बार प्रयत्न करता है, हर बार जन्म धारण करता है, मरता है, मरकर फिर इसी में लौट आता है । ऐसे आकर्षण और मनोरंजन स्थान में भी अनेक अभागे ऐसे हैं जो उसका रसास्वादन करने से वंचित रह जाते हैं । कारण यह है कि प्रसन्नता और आनन्द, ऐसे तरल पदार्थ हैं जैसे दूध एवं जल । इनको लेने के लिये पात्र की आवश्यकता है यदि आपके पास पात्र न हो तो जल को ले न सकेंगे । इसी प्रकार यदि बल रूपी पात्र अपने पास न हो तो सांसारिक आनन्दों को प्राप्त कर सकना कठिन है । जिन्हें दुर्भाग्य का रोना रोते रहने में दिलचस्पी नहीं है वरन् हँसते हुए संसार के साथ में खुद भी हँसना चाहते हैं-उन्हें चाहिए कि शक्ति की उपासना करें, बल का संचय करें ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आरम्भिक बल ''स्वास्थ्य'' है । इसकी महत्ता इतनी अधिक है कि सब प्रकार को उन्नति का मूल इसे कहा गया है । शास्त्र का मत है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल साधन आरोग्य है । जो निरोग नहीं, वह न तो धर्म कर सकता है, न धन कमा सकता है, काम में सफल न हो सकता है न उसे मोक्ष ही प्राप्त हो सकता है । इन चारों बातों के लिए स्वस्थ्य शरीर और निरोग मन की आवश्यकता है, यदि तन्दुरुस्ती नहीं तो संसार में आनन्द कहीं नहीं । अपनी पीड़ा और व्यथा से ही कराहते रहने वाले को बेचैनी एवं व्याकुलता से ही छुटकारा नहीं मिलता बेचारा आनन्द का स्पर्श किस प्रकार करे ? स्वास्थ्य की उपयोगिता इतनी स्पष्ट है कि उसके सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते । इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने और प्राप्त करके उपभोग करने के लिए जिन शक्तियों की आवश्यकता है उनमें स्वास्थ्य सर्वोपरि है, इसके अभाव में जीवन आनन्द रहित नीरस, अप्रिय, भार स्वरूप हो जाता है ।

स्वास्थ्य-एक ऐसी प्रकृतिदत्त स्वाभाविक अवस्था है जो कुछ अपवादों को छोड़कर सबको आमतौर से प्राप्त होती है । वन्य पशु पक्षियों को देखिए, क्या उनमें से एक भी बीमार दिखाई पड़ता है । हिरनों के झुण्ड, बन गौओं के समूह, गेंद से उछलते फिरते हैं, सुअर, हाथी, घोड़े में से रीछ बाघ सभी कोई पशु पूर्ण निरोगता उपलब्ध करते हैं, कबूतर, मोर, बतक, तोता, कौआ, कोयल, मैना, बुलबुल, तीतर, बाज जैसे फुदकते फिरते हैं, मगरमच्छ, कछुआ, मेंढ़क जल में कैसी किलोल करते हैं, कभी किसी का न तो सिर दुखता है, न बुखार आता है, न गठिया होती है न तिल्ली बढ़ती है । जब तक वे जीते हैं पूर्ण निरोगता के साथ जीते हैं जब आयु पूर्ण हो जाती है तो आसानी से शरीर त्याग देते हैं । डाक्टर वैद्यों की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती, दवाओं की बोतलें भी वे बिचारे नहीं, पीते कोई आरोग्य शास्त्र श्रवण करने का सौभाग्य भी नहीं मिलता, स्वास्थ्य वर्धक, स्थानों की यात्रा, एवं सेनेटीरियमों का उपचार भी नसीब नहीं होता तो भी वे सदैव स्वस्थ रहते हैं । जिन पशु पक्षियों को मनुष्य के बन्धन में बँध जाने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है वे बेचारे अपने मालिकों की हरकतों के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य खो बैठे हैं तो भी वे बहुत अंशों में अपने मालिकों की अपेक्षा बहुत अंशों में अच्छे हैं, वे कम अस्वस्थ होते हैं और कम ही बीमार पड़ते हैं

विचार करने योग्य बात है कि पशु-पक्षी निरोग क्यों रहते हैं और मनुष्य बीमार क्यों रहा आता है ? पूर्ण स्वस्थ मनुष्य दस प्रतिशत भी अस्वस्थ न मिलेंगे । मनुष्य स्वास्थ्य की रट लगाये रहता है, बहुत दौड़ धूप करता है, सारी बुद्धि लड़ाता है, काफी पैसा बर्बाद करता है, नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ, वस्त्र, सवारी, सुविधा जुटाता है, नित नई खोजें करता है फिर भी दिन-दिन सफलता से पीछे हटता जाता दिन-दिन स्वास्थ्य में अवनति होती जाती है । पशु-पक्षी बेचारे सर्दी-गर्मी से बचने के लिए कपड़े नहीं पहनते तो भी न उन्हें लू सताती है और न निमोनिया होता है । जो कुछ घास-पात मिल जाताता है उसी को खाकर हट्टे खट्टे रहते हैं, सुअर को न तो घी खाने को लिता है न दूध, मामूली भोजन करके भी वह पंसेरियें चर्बी अपने में जमा कर लेता है ।

बल और सुन्दरता का स्रोत आरोग्य के अन्दर निहित है । यदि स्वास्थ्य ठीक है तो वह मनुष्य बलवान भी होगा और सुन्दर भी दीख पड़ेगा । इसलिए ताकत बढ़ाने की दवाएँ खाने या गोरे बनने का पाउडर मलने की अपेक्षा यह अच्छा है कि अपने को निरोग, स्वस्थ दशा में रखने का प्रयत्न किया जाय । स्वास्थ्य विज्ञान के आचार्य बरनर मेकफेडन का कथन है कि- स्वस्थ रहने के नियम बहुत ही थोड़े हैं और बहुत ही आसान हैं, उनको सीखने के लिए न कोई शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता है और न किसी प्रयोगशाला में जाने की । जरूरत केवल इस बात की है कि हद से ज्यादा जो अक्ल बढ़ गई है उसको प्रकृति पर न आजमाया जाय । अपने साथ जुल्म ज्यादती करने से बाज आया जाय ।

यदि आप प्रकृति को अपनी बुद्धिमती माता मान लें और उसके आदेशों पर चलना स्वीकार करें तो विश्वास पूर्वक यह कहा जा सकता है कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आप भी सभी प्रकार स्वस्थ रह सकते हैं जैसे सृष्टि के अन्य जीव जन्तु निरोग शरीर लेकर किलकारियाँ मारते फिरते हैं । आप स्वास्थ्य चाहते हैं तो उसकी तलाश भीतर कीजिए, अन्तरदृष्टि से इस बात का पता लगाइए कि प्रकृति माता की किन-किन आज्ञाओं की अवहेलना कर रहे हैं और अपने साथ क्या-क्या ज्यादतियाँ हो रही हैं । जिनका पता चलता जाय उन्हें बिना एक पलकी देर किये तुरन्त ही छोड़ दीजिए । उलटे मार्ग पर चल रहे हैं जिस क्षण इस बात का पता चले उसी क्षण खड़े हो जाइए और वहाँ से वापिस लौटकर फिर सीधे मार्ग पर चलना आरम्भ कर दीजिए ।

आहार और विहार स्वास्थ्य के इन दो स्तम्भों का गम्भीरता पूर्वक निरीक्षण करके पता लगाइए कि इसके सम्बन्ध में हम कहाँ तक लापरवाही कर रहे हैं । आहार के बारे में प्रकृति के आदेश बहुत ही स्पष्ट होते हैं उन्हें सुनने और समझने में कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती । भोजन कब करना चाहिए ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि 'जब पेट माँगे, जोर की भूख लगे ।' बिना भूख लगे न खाना, एक ऐसा स्वर्ण सिद्धान्त है जो निरोगता का जीवन भर रक्षा कर सकता है । जब तक कड़ाके की भूख न लगे कुछ मत खाइए । पेट जब तक पिछले काम की समाप्त न कर ले तब तक उस पर नया बोझ मत डालिए । आपका नौकर बताये हुए काम को कर रहा है, वह काम तो पूरा हुआ नहीं, तब तक नया काम और दे दिया, पिछले दो काम पूरे न हो तब तक नया काम और दे दिया, पिछले दो काम पूरे न हो पाये थे कि तीसरा काम फिर पटक दिया । फल यह होता है कि नौकर एक भी काम को अच्छी तरह नहीं कर पाता, सब काम अधूरे पड़े रहते हैं । काम की भरमार से करने वाले की शक्ति बहुत अधिक खर्च हो जाती है जिससे वह और कामों को भी जल्दी और ठीक समय पर करने में असमर्थ हो जाता है । भूख न लगने पर भी खाना पेट के साथ बेइन्साफी करना है, चटोरे आदमी यह नहीं देखते कि पचाने वाले नये काम की जरूरत है या नहीं; वे अन्धाधुन्ध ठूँसते चलते हैं । एक पतीली में चावल पकाने रखा जाय उसमें बीस-बीस मिनट बाद दो-दो मुट्ठी नये चावल डालते जावें तो परिणाम यह होगा कि कुछ चावल तो जरूरत से ज्यादा पककर घुल जावेंगे कुछ अधपके रहेंगे कुछ बिल्कुल कच्चे, इस प्रकार पकाया हुआ भात किसी को पसन्द न आवेगा, पेट में आधा कच्चा आधा पक्का जमा करते जाना बहुत ही अनुचित है । नियत समय पर भोजन कर लीजिए और फिर तब तक एक दाना भी मुँह में मत जाने दीजिए जब तक कि पेट को नये भोजन की जरूरत न हो । पुराना काम समाप्त कर लेने पर नया काम दीजिए ।

कितना खायें ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पेट को आधा अन्न से भरिए, एक चौथाई पानी के लिये और एक चौथाई हवा आने-जाने के लिए खाली रहने दीजिए । यह बहुत ही गलत विचार है जो अधिक खावेगा वह अधिक बलवान बनेगा । सच बात यह है कि आमतौर से जितना आहार लोग करते हैं उससे आधे को पचाने की शक्ति उनमें होती हैं, लेकिन 'अधिकस्य अधिकं फलम्' की नीति के अनुसार जितना अधिक खा सकते हैं उतना खाते जाते हैं । यदि दो मन बोझ उठाने वाले के ऊपर पाँच मन लाद दिया जाय तो उसका बुरा हाल हो जायगा । यदि उससे ठीक तरह काम लेना है तो दो मन के स्थान पर डेढ़ मन ही वजन रखना चाहिए । अधिक खाने से बल बढ़ता नहीं वरन् घटता है, बल वर्धक वही भोजन हो सकता है जो आसानी से पच कर शरीर में धुल जाय । जो बिना पचे पेट की बहुत ही सी शक्तियों को नष्ट करके कच्चा ही मल रूप में निकल जाय वह कितना ही उत्तम भोज्य पदार्थ क्यों न हो कुछ भी लाभकर सिद्ध न होगा । भोजन द्वारा अच्छा रक्त तब बनता है, जब वह भली प्रकार पच जाय । इसलिए आप बढ़िया भोजनों की तलाश में व्याकुल मत फिरिए । यदि जौ चना की रोटी मिलती है तो उसे प्रेम पूर्वक खाइए, वह हलुआ और रबड़ी से अधिक उपयोगी सिद्ध होगी वर्शे कि उसे पेट को खाली रखकर खावें । यदि कोई गरिष्ठ, भारी, भोजन सामने आता है और उसे खाये बिना गुजर नहीं तो प्रसन्नता पूर्वक खाइए, परन्तु ध्यान रखिए, आधे पेट तक ही उसे स्थान दिया जाय । भोजन के बाद पेट में इतनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जगह रखनी चाहिए कि यदि भागने का अवसर आवे तो उससे विघ्न उपस्थित न हो ।

क्या खाएँ ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ' 'अपने असली रूप में जो वस्तुएँ जिह्वा को रुचिकर हों '' इस दृष्टि से फल उत्तम भोजन है । गरीब आदमी भी सस्ते ऋतु फलों को भोजन में प्रमुख स्थान देकर स्वस्थ रह सकता है । इसके बाद रसीली सजीव वस्तुओं का नम्बर है । दूध बहुत उत्तम भोजन है । शाक सब्जी मामूली अग्नि संस्कार द्वारा काम चलाने योग्य बना लेने चाहिए । स्मरण रखिए जो भोजन जितना ही अग्नि पर अधिक पकाया जाता है वह उतना ही निरर्थक हो जाता है । उसके उपयोगी तत्त्व अग्नि में जल या झुलस जाते हैं और छूँछ बचे रहती है । जहाँ तक सम्भव हो प्राकृतिक दशा में प्राप्त होने वाला सजीव, रसीला भोजन करना चाहिए । न मिलने पर सूखी वस्तुओं से काम चलाया जा सकता है । फिर भी जहाँ तक हो उनके पोषक तत्त्वों को कम से कम मात्रा में नष्ट करने का अवसर आने देना चाहिए । छिलके सहित अन्न और दालों का प्रयोग करना चाहिए ।

मिर्च मसाले, चाट पकौड़ी, पान, तम्बाकू अफीम भंग, माँस, मदिरा आदि ऐसी अप्राकृतिक चीज हैं जिन्हें खाने से शरीर का अहित छोड़कर और कुछ हो ही नहीं सकता । हानिकारक वस्तुएँ वे हैं जो पकाने में बहुत जला दी जाती हैं, जिससे घी बहुत अधिक हो, तेल में तली हुई, बासी, मिर्च मसालों से भरी हुई तथा ऐसी सूखी जो खाने में कड़कड़ चबाई जाँय । कौन भोजन हमारे लिए हितकर है, इसकी सबसे उत्तम कसौटी जिह्वा है । परमात्मा ने यह डॉक्टर मुँह के दरवाजे पर नियुक्त कर दिया है । जो हर चीज की जाँच करता है कि यह वस्तु हमारे लिए खाद्य है या अखाद्य । जो चीजें अपने प्राकृतिक रूप में बिना किसी रूपान्तर के हमारी जिह्वा को रुचिकर हो वही सर्वोत्तम भोजन है ।

कैसे खाए ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि दाँतों से खूब कुचल-कुचल कर खाइए । ग्रास को मुँह में इतना पीसिये कि बिल्कुल पीस जाय और लार का पर्याप्त समावेश हो जाय, निगलने में जरा भी जोर न पड़े । बड़े-बड़े ग्रास निगल जाने से दाँतों का काम आँतों को करना पड़ता है जिससे पाचन क्रिया में बड़ी बाधा पड़ती है । यदि दूध, पानी जैसी पतली चीजें उदरस्थ करना हों तो भी उनमें लार का मिश्रण करने के लिए हर घूँट को तीन चार बार मुँह के भीतर घुमाइए तब पेट में जाने दीजिए । एक गिलास दूध पीने में कम से कम दस पन्द्रह मिनट लगने चाहिए ।

''भोजन में अमृत की भावना करना'' यह एक बड़ा ही महत्त्व पूर्ण नियम है । जो वस्तु आपके सामने आवे उसे ईश्वर का भेजा हुआ अमृतमय प्रसाद समझकर खाइए । हर ग्रास में 'अमृत मिदं' की भावना करते जाइए । सामने आये हुए अन्न को मन ही मन प्रणाम करो, प्रभु प्रसाद की तरह आदरणीय दृष्टि से देखो और विश्वास कर लो कि यह अन्न मेरे शरीर को जीवनी शक्ति प्रदान करेगा, बल और दीर्घायु देगा, इन भावनाओं के साथ जो अन्न खाया जायगा वह रुखा-सूखा होने पर बड़ा मधुर लगेगा और सेरों विटामिन से अधिक उपयोगी होगा ।

कब खाएँ ? कितना खाएँ ? क्या खाएँ ? कैसे खाएँ ? इन चार प्रश्नों का उत्तर हृदयंगम कर लेने के उपरान्त तदनुसार किया हुआ भोजन चाहे वह कितना ही घटिया दर्जे का क्यों न हो, अनिश्चित ढंग से खाये हुए बढ़िया भोजन की अपेक्षा कहीं अधिक लाभप्रद होगा । अपने देश की गरीबी दो आना प्रतिदिन की औसत आमदनी को देखते हुए कीमती भोजनों की विटामिन सूची प्रकाशित करना निरर्थक है । औसत दर्जे के ९० प्रतिशत लोग जिनके लिये यह पुस्तक लिखी जा रही हैं, मंहगे मूल्य पर मिलने वाला भोजन नहीं प्राप्त कर सकते । जो कुछ भी रुखा सूखा आज की स्थिति में मौजूद है उसे ही यदि ढंग से खाया जाय तो निस्सन्देह स्वस्थता को कायम रखा जा सकता है । गरीब किसान और मजदूर पेट पर अन्याय न करने की विशेषता के कारण मजबूत बने रहते हैं ।

भोजन के बाद व्यायाम का नम्बर आता है । शरीर के हर एक कल पुर्जे को इतनी मेहनत जरूर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


करनी चाहिए जिससे वहाँ का रक्त संचार ठीक बना रहे । किसी मशीन को निकम्मा पड़ा रहने दिया जाय तो उसके कल पुर्जों में धूल जमने लगती है, जंग लगना शुरू हो जाता है । शरीर को यदि निकम्मा पड़ा रहने दिया जाय तो उसकी क्रिया-शक्ति घट जाती है । इसी प्रकार यदि कोई खास अंग मेहनत से बचे रहें तो उनकी शक्ति में भी कमी आ जाती है । धूलि की तरह बीमारियों के विष जमा हो जाते हैं । जंग लगने से लोहा जैसे गलने लगता है वैसे ही वे अंगक्षीण होने लगते हैं । इसलिये यह आवश्यक है कि हर एक कल पुर्जे को दुरुस्त रखने के लिये नित्य व्यायाम किया जाय । जो लोग हाथ-पाँवों की कड़ी मेहनत करते हैं उन्हें भी पेट, फेफड़े, नेत्र आदि का व्यायाम करना चाहिये । इस छोटी पुस्तक में व्यायाम की विस्तृत पद्धतियों का उल्लेख नहीं हो सकता, इसके लिये कोई स्वतन्त्र पुस्तक लिखेंगे । यहाँ तो इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि व्यायाम ऐसा होना चाहिये जिससे कम काम करने वाले अवयवों पर भी प्रभाव पड़े । आसनों के व्यायाम इस दृष्टि में बहुत ही उपयोगी है । सर्वांगासन, शीर्षासन, हलासन, पश्चिमोत्तासन और धनुरासन साधारणतः बहुत ही उपयोगी साबित हुये हैं । इसके अतिरिक्त जिन्हें जिस प्रकार के व्यायाम में सुविधा हो, कर सकते हैं । व्यायाम का समय प्रातः काल सूर्योदय के आस-पास होना चहिये । मनोभावनाओं का समावेश किये बिना यह क्रियाएँ अधूरी रह जाती हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि कसरत के साथ आप यह भावना करते जावें-''इस क्रिया से मैं शक्ति प्राप्त कर रहा हूँ, बल की वृद्धि हो रही है, अंग सुदृढ़ हो रहे हैं ।'' हलका व्यायाम भी यदि उपरोक्त भावनाओं की दृढ़ता के साथ किया जाय तो आशातीत लाभ होता है । दुर्बल वृद्ध, गर्भिणी, स्त्रियाँ हलके व्यायाम करते हुए भी यदि ''शक्ति लाभ हो रहा है'' इस विश्वास को दृढ़ रखें तो कठोर व्यायामों से जितना ही फल प्राप्त हो सकता है ।

शरीर का ढाँचा जिस ढंग का बन चुका है, उसमें रद्दी बदल होना कठिन है । बालकपन में ढाँचें, का निर्माण होता है इसके बाद उसमें बहुत अधिक अन्तर नहीं किया जा सकता । इकहरे बदन में व्यक्ति चाहे कितनी ही कीमती चीजें खावें, रहेंगे इकहरे ही । इसलिए मोटे बनने की मृग तृष्णा में न भटक कर स्वस्थ और निरोग रहने का ही प्रयत्न करना चाहिये । यदि ढाँचा बदल नहीं सकता तो कोई चिन्ता की बात नहीं, साधारण स्वस्थता पर ही सन्तुष्ट रहिए और आरोग्यता की रक्षा का प्रयत्न करते रहिए । यदि तन्दुरुस्ती ठीक तरह कायम रहे तो अंगों की मजबूती और सुडौलता में अपने आप तरक्की होती है ।

तीसरा नम्बर सफाई का है । आपका शरीर साफ रहना चाहिए । नित्य स्वच्छ जल से शरीर को खूब रगड़ कर स्नान करना आवश्यक है । रोम कूपों से पसीने द्वारा शरीर के भीतरी विष निकलते रहते हैं । पसीना सूखने से उन विषों की एक पतली सी तरह शरीर पर जमने लगती है । यह तह जब कुछ मोटी हो जाती है तो रोम कूपों का मुँह बन्द कर देती है जिससे भीतरी विषों का बाहर निकलना रुक जाता है । इसलिए यह आवश्यक है मोटे खुरदरे तौलिए से शरीर के हर एक हिस्से को इतना रगड़ा जाय कि त्वचा लाल हो जाय, मैल बिल्कुल छूट जाय, रोम कूप अच्छी तरह खुल जाँय । जंघाओं के आस-पास के स्थान भी रगड़ने से छूटने न पावें । चार लोटा पानी लुढ़का कर नहाने की लकीन पीटना बेकार है इससे तो जमा हुआ मैल फूलकर सड़न एवं बदबू बढ़ाता है । शरीर के सभी छिद्र द्वारों से भीतर के गन्दे पदार्थ बाहर निकलते रहते हैं, इस लिए उस गन्दगी को साफ करने का विशेष रूप से ध्यान रखना उचित है । दाँत और जीभ पर जो मैल जमता है उसे दाँतौन करके भली प्रकार साफ करना चाहिए । कान, नाक, आँख, मूत्रेन्द्रिय के छिद्रों पर जो कीट जमता है उसकी सफाई के सम्बन्ध में भी सतर्क रहना चाहिए ।

वस्त्र बिल्कुल साफ रहने चाहिए । घर की लिपाई, पुताई, झाड़ू लगाना, मकड़ी के जाले जमा न होने देना, सामान तरतीब से रखना, सोने के कमरों को गन्धदार सामान से रहित एवं हवा रोशनी के लिए खुला रखना आवश्यक है । बर्तन मँजे धुले रहें, पानी छना हुआ हो, तात्पर्य यह है

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कि शरीर को स्पर्श करने वाली, उससे सम्बन्धित रहने वाली, हर एक वस्तु साफ स्वच्छ और निर्मल रहनी चाहिए इस निर्मलता से मन की प्रसन्नता बढ़ेगी और गन्दगी में उत्पन्न होने वाले रोग कीटों के घातक आक्रमण से बचे रहेंगे ।

रात्रि को जल्दी सोना, प्रात:काल जल्दी उठना, परिश्रम उतना करना जितना कि शरीर में करने की शक्ति हो । जिस प्रकार काम न करने से शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं वैसे ही अति परिश्रम करने से वे क्षीण भी होती हैं जिन्हें ताकत से बाहर काम करना पड़ता है वे अल्पायु में ही काल के ग्रास बन जाते हैं । पेट को महीने में कम से कम दो दिन की छुट्टी भी देनी चाहिए । किसी नियत तिथि को पन्द्रह दिन पीछे एक उपवास करने का क्रम बनाना चाहिए । उस दिन बिलकुल निराहार रहना चाहिए । हाँ, पानी खूब पीना चाहिए जिससे भीतरी मैलों को धुलकर बाहर निकालने में सहायता मिले । सर्दी-गर्मी की अधिकता से बचाव कीजिए पर जितनी सह सकते हैं उतनी सहन कीजिए । इससे शारीरिक सहनशक्ति और रोग निवारिणी शक्ति में वृद्धि होती है ।

यह उँगलियों पर गिनने लायक नियम बिलकुल सादा और सुगम हैं । इनके लिए न तो कुछ खर्च करने की जरूरत है और न कष्ट उठाने की । सिर्फ चटोरेपन पर संयम रखना है और जरूरत से ज्यादा बढ़ी हुई अक्ल को प्रकृति के विरुद्ध काम में लाने से बाज आना है । प्रकृति माता की बुद्धिमत्ता और दयाशीलता पर विश्वास करते हुए उसकी आज्ञाओं का पालन करना अपने लिए कल्याणकारी समझना चाहिए । आज्ञाकारी पुत्र को माता का स्नेह प्राप्त होता है, प्रकृति माता का अनुगमन करके आप उत्तम स्वास्थ्य का आनन्ददायक प्रसाद पा सकते हैं ।

प्रकृति राज्य में सभी जीव-जन्तु मादा की इच्छा होने पर उसे गर्भ धारण कराने के निमित्त काम सेवन करते हैं अन्यथा अपनी ओर से नर की कोई कुचेष्टा नहीं होती । वीर्य शरीर का सार भाग है उसके तेज से बल आरोग्य कायम रहता है, इस सार भाग को यदि कुचेष्टाओं से अनुचित मात्रा में व्यय किया जायगा तो यह कैसे सम्भव होगा कि स्वास्थ्य में स्थिरता बनी रहे । जिस पेड़ की जड़ों को नित्य काटा जायगा वह भला कितने दिन तक खड़ा रह सकेगा ? बहुत शीघ्र उसे गिरने के लिए विवश होना पड़ेगा । इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए आप जहाँ तक सम्भव हो, अधिक से अधिक वीर्य रक्षा का प्रयत्न करें, शरीर के बहुमूल्य सार भाग को नष्ट होने से बचाते हुए उसे स्वास्थ्य की जड़े मजबूत करने में लगा रहने दें ।

जब तक आप स्वास्थ्य के बारे में लापरवाही करते हैं, जब तक आधे मन से उसे चाहते हैं, तब तक कमजोरी और बीमारी से छुटकारा न पा सकेंगे । जिस दिन आप दृढ़ता पूर्वक प्रतिज्ञा कर लेंगे कि-''मुझे उन्नति और आनन्द की प्रथम सीढ़ी आरोग्यता पर चढ़ना है ।'' उस दिन से आप में एक नवीन शक्ति का संचार होगा । सच्ची और सुदृढ़ आकांक्षा में अकूत शक्ति भरी हुई है । आप निरोग बनने की और स्वस्थ रहने की तीव्र इच्छा कीजिए ओर उसे पूर्ण करने के लिए कमर कसकर खड़े हो जाइए । लापरवाही, ढीलढाल, चटोरेपन और कृत्रिमता को छोड़कर असली तत्त्व को प्राप्त करने, प्रकृति की आज्ञा पर चलने के लिए तत्पर हो जाइए । सर्वोपरि आवश्यकीय कार्य की तरह स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का ध्यान रखिए और उनको बिना रत्ती भर उपेक्षा के दृढ़ता पूर्वक पालन करिए । आप देखेंगे कि जो कार्य बोतलें, भरी दवाओं से न हो सका, वैद्य डाक्टरों की खुशामद करते-करते थक जाने पर भी पूरा न हुआ, बड़े-बड़े स्वास्थ्य शास्त्र घोट डालने पर भी सफल न हुआ वह कार्य आपकी तीव्र आकांक्षा और प्रकृति सेवन से कितनी शीघ्रता और आसानी से पूरा हो गया । स्वस्थ रहना आपका जन्म सिद्ध अधिकार है । उठिए, खड़े हो जाइए, अपने ईश्वर दत्त अधिकार को प्राप्त कीजिए और उसका आनन्द उठाइए ।

जब तक आप अपनी उन्नति के लिए समृद्धि के लिए सुख शान्ति के लिए बाहर तलाश करते हैं, तब तक आप को बार-बार निराश होना पड़ता है और नाम मात्र की सफलता हाथ लगती है । पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जब आप इसके लिए अपनी अन्तरंग शक्तियों को टटोलना आरम्भ करते हैं तब समझना चाहिए कि अब ठीक रास्ता मिल गया ।

## आद्य शक्ति की उपासना से जीवन को सुखी बनाइए

विभिन्न प्रकार की महत्ताओं की जननी तीन शक्तियाँ ठहराई गई हैं । उन तीनों को जो जिस मात्रा में उपार्जित कर लेता है वह उतना ही उन्नतिशील कहलाता है । भगवती आद्य शक्ति की तीन रूपों में पूजा की जाती है -(१) महा सरस्वती, (२) महा लक्ष्मी (३) महाकाली । शिव के साथ में शक्ति का संयोग हैं । भगवान् शंकराचार्य ने यह कहा है कि शक्ति के बिना शिव का स्पन्दन नहीं होता । जीव की उन्नति देह की सहायता से होती है, वैसे ही शिवतत्त्व का स्पन्दन, शक्ति द्वारा होता है भक्ति के बिना ईश्वर नहीं मिलता, शक्ति के बिना शिव नहीं मिलता-कल्याण का मार्ग प्राप्त नहीं होता । ब्रह्म प्राप्ति में आत्मिक उन्नति में, भगवती आद्य शक्ति की सहायता आवश्यक है । अशक्त मनुष्य बातूनी छप्पर बाँध सकते हैं पर वस्तुतः प्राप्त कुछ नहीं कर सकते । सांसारिक आनन्द से लेकर ब्रह्मानन्द तक मातेश्वरी शक्ति का ही प्रसाद है ।

भारतीय अध्यात्म शास्त्र में महा सरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली इन तीन महाशक्तियों की उपासना का बड़ा महात्म्य गाया गया है, इनकी कृपा से अनेकानेक सिद्धि सम्पदाए प्राप्त होने का फल बताया गया है । सविस्तार इनकी आराधना का वर्णन है । महासरस्वती का अर्थ है-विद्या बुद्धि, तर्क, विवेचना, जानकारी चतुराई । महालक्ष्मी का अर्थ है-धन, सम्पत्ति, जमीन, जायदाद । महाकाली का अर्थ-शत्रु को दमन करने वाली शक्ति, तलवार, कूटनीति, दल्बन्दी । इन तीन शक्तियों की महत्ता हमारे आध्यात्मिक आचार्यों ने हुत प्राचीनकाल में जान ली थी और समझ लिया था कि जिस व्यक्ति को, जिस जाति को, जिस राष्ट्र को, जीवि हना है, किसी भी दशा में उन्नति करनी है ये इन तत्वों का अवलम्बन अवश्य ग्रहण करना पड़ेगा । यही कारण है कि त्रिशूल धारिणी भगवती शक्ति की आराधना की जाती है । जो ठीक तरह से उनकी उपासना करते हैं उन्हें मातेश्वरी का प्रसाद प्राप्त होता है ।

हिन्दू धर्म वास्तव में कवियों का, चित्रकारों का, कलाकारों का धर्म है । इसमें हर बात को अलंकारिक चित्र में वर्णन किया गया है । देवी देवताओं के कथा उपाख्यानों का बड़े-बड़े रोचक वर्णन जो पुराणों में भरे पड़े हैं मोटी दृष्टि वालों को वे गपोड़े दिखाई पड़ते हैं परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है, हमारी प्राचीन शैली यह रही है कि किसी तथ्य को एक चित्र रूप में चित्रित करके अलंकारिक भाषा में उसका वर्णन किया जाय और उसमें एक महत्त्वपूर्ण रहस्य छिपा दिय. जाय उस उपाख्यान में से, शब्द चित्र में स, उस रहस्य को ढूँढने का प्रयत्न श्रोता लोग करें और बुद्धि पर जोर देकर यह पता लगावें कि इस कलापूर्ण रचना म क्या महत्त्व सन्निहित है । ी शिक्षा वाले कलाकार रचयिता ा आ और अपने वृद्धि व्यर्च करके ने ढूँढ निक. वाले श्रोता को भी अपनी खोज-सफलता पर हर्ष होता था । हर्ष वृद्धि के साथ-साथ इस पद्धति से दी हुई शिक्षा अन्तस्तल में गहरी उतर ज ी । उसे भुला देना इतना आसान न होता । कि आजकल की बाजारू शब्दावली क कान से सुनकर उस न से निकाल द रक्ति के ३ तीन पों को देवियों दर चित्र की ट क ा ऐ ही कलामय प्रयास है ।

ं स्तु स्थिति को समझने की योग्यता का स्थान अ ध त्रास ने ग्रहण कर लिया है ल्प बुद्धि के ते हैं कि सरस्वत ी, काली क ा ियाँ हैं जिनके हाथ ें पर अदश्य , भक्तों को दर्शन देती हैं जपने ु ने, गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, द्य चढ़ाने, न प्रसन्न ो जाती है और भक्त के घर में चुटकी बजाने भर के अन्दर एक क्षण में मनमान सम्पदाएँ ा जाती हैं । इसी अन्ध विश्वास के आध लोग प्रतिमा की पूजा तक ही अपना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


कर्त्तव्य समाप्त हुआ समझते हैं और जब मन्त्र की शक्ति से देवी को प्रसन्न होने पर अनायास सब सम्पदाएँ घर में भर जाने की आशा करते हैं । यह शेखचिल्ली की स्वप्न पूरे नहीं हो सकते । वास्तविकता को जानकर उचित मार्ग से प्रयत्न करने पर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है । उपरोक्त महाशक्तियों का प्रचण्ड वरदान आप प्राप्त करते हैं बशर्ते कि अन्धविश्वास की अपेक्षा विवेक द्वारा उन्हें प्राप्त करने और प्रसन्न करने का प्रयत्न करें ।

भगवती सरस्वती एक हाथ में वीणा दूसरे में पुस्तक लिये हुए चित्रित की गई हैं । पुस्तक का तात्पर्य है, अच्छे साहित्य का अध्ययन किये बिना विचार श्रृंखला का परिमार्जित होना कठिन है । संसार के उच्च कोटि के विचारक और तत्वदर्शी अपने गम्भीर ज्ञान को पुस्तकों में छोड़ गये हैं या छोड़ रहे हैं, उनके विचारों का अध्ययन करना एक प्रकार से उनकी समीपता प्राप्त करना, सत्संग का लाभ उठाना है । ज्ञान कोष को भरने के लिये अन्य लोगों के अनुभव और अन्वेषण का निरीक्षण आवश्यक है, यह कार्य पुस्तकों की सहायता से ही हो सकता है । ज्ञानी बनने लिए अध्ययन प्रेमी होना अनिवार्य है । दूसरे हाथ में वीणा का होना प्रकट करता है कि आपके भावना तन्तु झंकृत होते रहने चाहिए विद्या शुष्क पांडित्य के लिए नहीं है उसका सदुपयोग यह है कि वह अपने सात्त्विक प्रभावों से आपके अन्त:करण के तारों को झनझना दे । अध्ययन, मनन, निदिध्यासन द्वारा आप जिस निष्कर्ष पर पहुँचे, उस पर विश्वास करें श्रद्धा करें और तदनुसार जीवन को ढालने का प्रयत्न करें, विश्वास और आचरणों में एकता रखें, ज्ञान का वास्तविक लाभ उठावें । हंसवाहिनी शारदा की वीणा पुस्तक प्रियता प्रकट करती है कि विद्या चाहने वाले, विद्वान बनने की इच्छा करने वाले लोगों को चाहिए कि पुस्तकों का अध्ययन करना अपना दैनिक कार्यक्रम बनावें, नित्य पढ़ने की आदत डालें जो ज्ञान प्रापत करें उससे अपनी हृदय वीणा के तारों को झंकृत करते हुए ज्ञान का श्रद्धा और आचरण के साथ सम्बन्ध जोड़े । यही सरस्वती पूजा का सरल सा किन्तु अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विधान है जिसे कलाकार ने चित्र रूप में हमारे सामने उपस्थित किया है ।

हंसवाहिनी महासरस्वती का उपासक हंस जैसा नीर-क्षीर विवेकी होना चाहिए । दूध में पानी को निकाल देने की वृत्ति अपने अन्दर धारण करने से सत्-असत् का विवेक होता है । संसार में सब माल बेतरतीब भरा पड़ा है, इस कटपीस की गठरी में अच्छे टुकड़े भी हैं और खराब भी, यह लेने वाले की समझ के ऊपर है कि वह काम लायक बढ़िया चीज पसन्द करता है या निकम्मी बेमतलब की उठा लाता है । सभी मजहबों में अच्छे बुरे विचार मौजूद हैं, समयानुसार हर प्रकार के तत्त्वों का प्रवेश हुआ है । आज की स्थिति के योग्य जिस धर्म में जो अच्छी बात प्राप्त होती है उसे ग्रहण कर लीजिए और जो बातें समय से पीछे की होने के कारण निरुपयोगी हो गई हैं उन्हें निकाल दीजिए । कुछ घण्टे पहले का दूध अब जमकर दही हो गया है । हलवाई इस दही में से जो पानी छँटता है उसे निकाल कर फेंकता जाता है और जमा हुआ भाग ग्राहकों को बेचता है । कुछ देर पहले जब यही दही दूध की शक्ल में था तब उसमें से पानी छाँटकर फेंकने की जरूरत न थी पर अब समय बदल जाने के कारण स्थिति दूसरी हो गई । पानी मिला दूध तो उस समय बिक सकता था पर अब दही के साथ छटा हुआ पानी नहीं बेचा जा सकता । प्राचीन धर्मग्रन्थ, उपदेश, विचार, रीति-रिवाज, अपने समय के लिए बहुत उपयोगी, लाभदायक और आवश्यक थे पर यदि आज परिस्थितियाँ बदल गई है तो उन्हीं बातों को स्वीकार कीजिए जो आज की स्थिति में उपयोगी हैं । इस प्रकार यदि आप अपनी वृत्ति को हंस के समान नीर-क्षीर विवेक करने वाली रखेंगे, अन्धविश्वास से अपने को सावधानी के साथ बचावेंगे तो बुद्धिमान बनते जाँयगें भगवती सरस्वती की कृपा पात्र वाहन-हंस का पद प्राप्त करते जायेंगे ।

बुद्धि वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक ही बात पर दुराग्रह न किया जाय, अपनी ही बात को सब से ऊँची रखने का हठ न

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


किया जाय, वरन् खुले हृदय जिज्ञासु की तरह निष्पक्ष सत्य शोधक की तरह-बुद्धि संगत बात को स्वीकार करने एवं भूल को सुधारने के लिए तैयार रहेंगे तो अपने ज्ञान में दिन-दिन वृद्धि करते जायेंगे । ''हमारी बात ठीक और सबकी झूठी'' यह विचार पद्धति जिन्होंने अपना रखी है वे अपने ज्ञान और विवेक में कमी भी उन्नति न कर सकेंगे ।

जो लोग अपना विवेक-और अनुभव बढ़ाना चाहते हैं उन्हें चुनाव करने की और शिक्षा ग्रहण करने की पद्धति को अपनाना चाहिए । किसी वस्तु की उपयोगिता-अनुपयोगिता जानने का तरीका यह है कि उसके समतुल्य अन्य वस्तुएँ विचारार्थ सामने रखिए और उनमें से हर एक के गुण अवगुणों पर विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए तब उनमें से जो वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध हो उसे चुन लीजिए । बिना विचारे भावावेश में किसी बात के अन्ध अनुयायी हो जाना उचित नहीं, इससे मस्तिष्क की तेजस्विता जाग्रत नहीं होती और न सर्वोत्तम वस्तु के प्राप्त होने की ही सम्भावना रहती है । जो काम आपको करना है केवल उसके लाभों को ही मत गिनिये ऐसा करेंगे तो धोखा खावेंगे, लाभ के साथ हानियों को भी सोचना समझना है, कठिनाइयों पर दृष्टिपात करना है, सब पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त जो निर्णय करत हैं-जो चुनाव करते हैं वह मजबूत होगा और ऐसा होगा जिसके लिए शायद ही पश्चाताप करना पड़े ।

जो घटनाएँ आपके चारों ओर घट रही है, जो घटनाएँ, भूतकाल में घट चुकी हैं उनको उपेक्षा की दृष्टि से मत देखिए वरन् जहाँ तक हो सके हर एक पर एक पैनी नजर फेंकते चलिए और यह विचार करते चलिए कि किन कारणों से ऐसे अवसर उपस्थित हुए या होते हैं । उन कारणों का सामयिक परिस्थितियाँ से कितना सांमजस्य हैं ? इस गम्भीर अवलोकन से आप कुछ निष्कर्ष निकाल सकेंगे, कुछ अनुभव प्राप्त कर सकेंगे । वह निष्कर्ष और अनुभव धीरे-धीरे इतने अधिक एवं दृढ़ हो जावेंगे कि उनके आधार पर भावी जीवन का बहुत कुछ निर्माण हो सकेगा । आप बीती के आधार पर अधिक अनुभव इकट्ठे नहीं हो सकते, अनुभवी और विशेषज्ञ बनता है तो दूसरों पर बीती हुई बातों का विश्लेषण करने पर जो शिक्षा मिलती है उसे ग्रहण करके अपनी योग्यता में वृद्धि करनी चाहिए ।

वस्तु स्थिति को समझने की गलती तथा दोष पूर्ण विचार धारा के कारण अधिकाँश दुःखों का आविर्भाव होता है । कोई सगा सम्बन्धी मर जाने पर आप सिर धुन-धुनकर रोते हैं, भोजन त्याग देते हैं, सूख-सूखकर काँटा हो जाते हैं यह विपत्ति आपकी अपनी उत्पन्न की हुई है । हर प्राणी का मरण निश्चित है इसी प्रकार आप के सम्बन्धी का भी मरण अनिवार्य था । सूर्य को डूबना ही है यदि उसे अस्त होता देखकर रोवें पीटें तो भी वह अपना क्रम न रोकेगा । आप भ्रमवश मान लेते हैं कि सूरज सदा चमकता ही रहेगा और उससे ऐसी ही आशा करते हैं, जब आशा के अनुकूल फल नहीं निकलता तो रोते चिल्लाते हैं । इसके शोक में मरने वाला व्यक्ति कारण नहीं है क्योंकि वह तो उसी स्वाभाविक राजपथ से गया जिससे सभी को जाना पड़ता है । दोष उस दृष्टिकोण का है जिसने मरणशील प्राणी को अमर समझकर नाना प्रकार की आशाएँ बाँध रखी थी । जिसकी अपनी आशाओं के महल अधिक टूटते दीखते हैं वह अपनी असफलता पर अधिक रोता है । जिसका मृत व्यक्ति से जितना अधिक स्वार्थ था वह उतना ही अधिक दुःखी होता है । जिसने उससे कुछ आशाएँ नहीं बाँध रखी थीं, कुछ स्वार्थ नहीं जोड़ रखे थे उसे दुःख क्यों होगा ? रोजाना अनेक मुर्दे निकलते ओर जलते हम देखते हें पर एक बूँद भी आँसू नहीं निकलती, पर जब अपना स्वार्थ सम्बन्धित मनुष्य मरता है तो रो-रोकर व्याकुल हो जाते हैं ।

यदि अध्यात्म ज्ञान की उचित शिक्षा प्राप्त करके अपने हर एक प्रियजन को मृत्यु के मुँह में लटका हुआ समझे और उसके ऊपर आशाओं के महल खड़े न करके कर्त्तव्य भावना से उसके साथ अपना धर्म निवाहने का दृष्टिकोण रखें तो विश्वास रखिए उसकी मृत्यु के समय कुछ भी कष्ट न होगा । जिस पर ममत्व नहीं है वह वस्तु नष्ट हो जाने पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कौन दु:ख मानता है ? यदि भौतिक वस्तुओं पर आपका ममत्व न हो, अपने को उनका मालिक न समझा करें सेवक संरक्षक मानें तो प्रियजनों के बिछोह, चोरी, हानि आदि के कारण उत्पन्न होने वाले दु:ख शोकों से सरलता पूर्वक बच सकते हैं । ''संसार की हर वस्तु नाशवान है, उनका किसी भी क्षण नाश हो सकता है, मेरा कर्त्तव्य यह है कि प्राप्त वस्तुओं के प्रति निर्लिप्त भाव से अपनी जिम्मेदारी पूरी करता रहूँ । '' यह ज्ञान यदि दृढ़ता पूर्वक हृदय में बैठ जाय तो मानसिक क्लेशों का अन्त हुआ ही समझिए ।

शारीरिक स्वास्थ्य की अवनति या बीमारियों की चढ़ाई अपने आप नहीं होती वरन् उसका कारण भी अपनी भूल है । आहार में असावधानी, प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा, शक्तियों का अधिक खर्च स्वास्थ्य नाश के यह प्रधान हेतु हैं । जो लोग तन्दुरुस्ती पर अधिक ध्यान देते हैं, स्वास्थ्य के नियमों का ठीक तरह पालन करते हैं वे मजबूत और निरोग बने रहते हैं । योरोप अमेरिका के निवासियों के शरीर कितने स्वस्थ एवं सुदृढ़ होते हैं । हमारी तरह वे भाग्य का रोना नहीं रोते वरन् आहार बिहार के नियमों का सख्ती के साथ पालन करते हैं बुद्धि और विवेक का उपयोग निरोगता के लिए करते हैं, जिससे वे न तो बहुत जल्दी बीमार पड़ते हैं, न दुर्बल होते हैं और न अल्पायु में मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं । हमारे देश में ही देखिए उच्च वर्ण वालों की उपेक्षा नीच वर्ण के लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक गिरे हुए होते हैं, इसका कारण ईश्वर की अकृपा नहीं वरन् अज्ञानता और उपेक्षा है । अपने प्रयत्नों से आप पुन: अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और लापरवाही पर ही आरूढ़ रहें तो शरीर को इससे भी बुरी हालत में ले जा सकते हैं । कुंजी अपने भीतर है, स्वास्थ्य के आप खुद मुख्तार हैं । कोई दूसरा इसमें क्या हस्तक्षेप कर सकता है ? वैद्य डाक्टर सलाह दे सकते हैं, दवा दे सकते हैं, परन्तु निरोगता की चाबी उन बेचारों के पास थोड़े ही है । वह तो अपने अन्दर से ही ढूँढ निकालनी पड़ेगी ।

धन उपार्जन, विद्याध्ययन और बुद्धि-वृद्धि यह तीनों सम्पदाएँ घोर परिश्रम, निरन्तर प्रयत्न, सच्ची लगन और साहस पूर्ण उत्साह द्वारा प्राप्त होती हैं । जो लोग आज आपको अमीर दिखाई पड़ते हैं वे यों ही अनायास नहीं बन गये हैं, उन्होंने जाँ फिसानी से मेहनत की है, दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा है । जिन्हें आप विद्वान देख रहे हैं उन्होंने वर्षों सर खपाया है, मुद्दतों पुस्तकें रटी हैं, खेल तमाशों से, यात्रा विहार से, मनोरंजनों से अपने को बचाकर पढ़ने की धुनि में लगे रहे हैं । जिन्हें आप बुद्धिमान देख रहे हैं उन्होंने बुद्धिमानों की संगतियाँ की हैं, ठोकरें खाई हैं, बुद्धि को घोड़े की तरह चारो ओर दौड़ाया है, समस्याओं को सुलझाने में गम्भीर मनन किया है, ज्ञान लाभ के लिए कष्टकर प्रोग्रामों को अपनाया है । यदि वे लोग ऐसा न करते तो उनका धनवान, विद्वान, बुद्धिवान बनना सम्भव न था । उद्योगी पुरुष सिंह लक्ष्मी को पाते हैं और कायर पुरुष दैव, दैव पुकारते रहते हैं । यदि आप सम्पदाएँ प्राप्त करना चाहते हैं तो वे उपहार की तरह किसी बाहर के आदमी से न मिलेंगी वरन् अपनी योग्यता और क्रियाशीलता द्वारा उन्हें प्राप्त करना पड़ेगा ।

मित्रता , प्रतिष्ठा, प्रशंसा से लदा हुआ जिन्हें आप देखते हैं, जिनके बहुत से मित्र, भक्त, प्रशंसक पाते हैं, उनकी मानसिक दशा का निरीक्षण कीजिए । आप पावेंगे कि उनमें बहुत से ऐसे गुण हैं जिनके कारण लोगों का मन उनकी ओर आकर्षित होता है, उनमें बहुत सी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे लोग लाभ उठाते हैं उन्हें मुफ्त के माल की तरह प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा नहीं मिलती वरन् उसके अनुरूप अपने आपको अनाने के पश्चात् उसके अधिकारी हुए हैं । गन्ध रहित पुष्प के पास भौंरें नहीं आते । अपने चारों ओर भ्रमरों को मधुर स्वर के साथ गूँजते फिरते देखने का सौभाग्य उन्हीं पुरुषों को प्राप्त होता है जो अपने अन्दर मन मोहनी सुगन्ध छिपाये बैठे हैं. । कमल के फूल पर यदि भौरों के झुण्ड मंडराते रहते हैं तो यह भौंरों की कृपा नहीं, कमल की विशेषता है । बिना विशेषता वाला कनेर पुष्प बेचारा अकेला एक कोने में ही पड़ा रहता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हम मानते हैं कि कभी-कभी किसी को अनायास भी बहुत सी सुविधा सम्पदा प्राप्त हो जाती हैं, जिन्हें भाग्य की देन कहा जाता है । यह अपवाद हैं । रास्ते में चलते हुए किन्हीं को रुपये पैसे पड़े मिल जाते हैं यह अपवाद है । इससे यह सिद्धान्त निश्चित नहीं किया जा सकता कि हर एक को रास्ते में पड़े पैसे जरूर ही मिलेंगे । अनायास मिलने के भी दो कारण होते हैं या तो पूर्व जन्म का संचित कर्म फल शेष होगा जो अब प्राप्त हुआ है या अब कर्ज लिया जा रहा है जो आगे चुकाना पड़ेगा । मुफ्त का माल तो एक रत्ती भर भी यहाँ नहीं मिल सकता । यदि पुराना संचित मिला है-बैंक में जमा पूँजी निकाल ली है-तो यह भी अपने उद्योग का फल हुआ । फिर बासी रोटी के ऊपर या कर्ज लेकर शान बनाने का गर्व करना व्यर्थ है । इसमें कोई गौरव की बात थोड़े ही है ।

भाग्य एक आकस्मिक घटना है जो अदृश्य कारणों से किन्हीं-किन्हीं के साथ कभी-कभी घटित हो जाती है । ऐसे एक दो प्रतिशत होने वाले अपवाद निश्चित नियम नहीं बन सकते, सिद्धान्त रूप में वही बात स्वीकार की जायगी जो निन्यानवे, अठानवे, प्रतिशत ठीक उतरती है । आत्म-निर्भरता का सिद्धान्त सच्चा है । मनोवांछित सफलता प्राप्त करने की कुंजी अपने अन्दर है । यह सिद्धान्त सच्चा है । क्योंकि सर्वत्र यही बात फलित होती दृष्टिगोचर हो जाती है कि-''जो जिसका पात्र है वह उस वस्तु को प्राप्त करता है ।

आप अपने ऊपर विश्वास कीजिए अपने ऊपर निर्भर रहिए । अध्यात्मवाद का सिद्धान्त है कि अपने दु:खदायी परिस्थितियों को टालने के लिये और सुखदायक अवसर उत्पन्न करने के लिये अपने भीतर दृष्टि डालिए, जड़ को तलाश कीजिए । सारे प्रसंगों का उत्पादन और परिवर्तन न करने वाला केन्द्र बिन्दु अपने अन्दर है, इसलिए दूसरों का आसरा रोकने की अपेक्षा अपने निरीक्षण, संशोधन, और सम्पादन आरम्भ कर दीजिए । आन्तरिक योग्यताएँ कैसी हैं ? एक मनुष्य को सब लोग आदर करते हैं, उस पर विश्वास करते हैं उसको सहायता देते हैं पर दूसरे मनुष्य को इससे ठीक उलटा व्यवहार प्राप्त होता है । ''संसार के लोग पक्षपाती हैं'' यह कह देने मात्र से काम नहीं चलेगा । हमें दोनों व्यक्तियों के गुण, स्वभाव, चातुर्य और आचरण का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करना होगा । आप देखेंगे कि दोनों व्यक्तियों की आकृति एक सी होते हुए भी मानसिक स्थिति में जमीन आसमान का अन्तर है । इस आधार पर ही जीवन की सफलता असफलताएँ निर्भर रहती हैं । यदि हमें आगे बढ़ना है तो इसी मूल केन्द्र के सुधार और परिवर्तन पर ध्यान देना होगा ।

# चौथा पाठ

## अपने विश्वास और सिद्धान्तों पर श्रद्धा कीजिए

अध्यात्मवाद की तीसरी आधार भित्ति का नाम है ''श्रद्धा'' । पाँव टिकाने के लिए स्थान होने पर सी ठीक तरह खड़ा रहा जा सकता है । जिसका कोई स्थान नहीं, कोई निर्भरता नहीं, कोई उद्देश्य नहीं ऐसा व्यक्ति अपने लिए और दूसरों के लिए खतरनाक है । भारतीय दण्ड विधान की धारा १०९ ऐसे लोगों के ऊपर लागू होती है जो निरुद्देश्य फिरते हैं, कार्यक्रम और आधार के बिना विचरण करते हैं । उन कानून के निर्माता विद्वान विचारकों का मत है कि ऐसे व्यक्ति अपराधों की ओर ही प्रवृत्त हो सकते हैं और समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं इसलिए उनकी निरुद्देश्यता पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है । उपरोक्त कानून के अनुसार पुलिस किसी आवारा आदमी को गिरफ्तार करके एक साल के लिए जेल भिजवा सकती है ।

जिस प्रकार शरीर की आवारागर्दी अपराध है वैसे ही विश्वास की अस्थिरता मानसिक जुर्म है । जिस आदमी का अपना कोई सिद्धान्त नहीं, उद्देश्य नहीं, कार्यक्रम नहीं, आधार नहीं, वह निश्चय ही शैतानी चमक-दमक की ओर आकर्षित होगा और कुमार्ग पर चलने लगेगा । स्थिरता के अभाव में हवा के झोकों के साथ टूटे पत्ते की तरह इधर-उधर उड़ता फिरेगा । कब कहाँ जा पहुँचे-यह अनिश्चितता पत्ते के बारे में सहन की जा सकती है

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर डाँवाडोल मनुष्य असह्य है । आज आपका विश्वास है कि देशभक्ति कर्त्तव्य है कल ही देश द्रोह पर उतर आवें । आज हिन्दू हैं, कल मुसलमान हो जावें, परसों ईसाई । आज टोपी लगाते हैं, कल टोप पहनें परसों साफा बाँधें, तरसों पगड़ी लपेटें । आज विवाह करके दुलहिन लाये हैं कल तलाक दे दें । आज दान दिया है कल वापिस छीन लें । इस तरह विचार और विश्वासों की अस्थिरता मनुष्य को इस प्रकार का मानसिक अपराधी ठहरा देती है उसका विश्वास उठ जाता है, लोग संदिग्ध और संशकित दृष्टि से उसे देखते हैं, विश्वास के अभाव में वह दूसरों के सहयोग से वंचित हो जाता है । ऐसा मनुष्य न तो स्वयं अपने लिए ही अच्छा रहता है और न दूसरों को कुछ सहयोग दे सकता है ।

अस्थिर विचारों और डाँवाडोल सिद्धान्तों के मनुष्य इस संसार में कम नहीं है । चोरी न करने का उपदेश करने वाले, अस्तेय की महिमा गाते-गाते थकने वाले, लोगों में से कितने ही ऐसे मिलते हैं जो मौका पाते हैं तो चोरी करने में नहीं चूकते । ब्रह्मचर्य के समर्थक होते हुए भी व्यभिचार रत, ईश्वर की सर्व व्यापकता का बखान करते-करते न थकने वाले मन्दिरों मैं बैठकर गजब ढाते हमने देखे हैं । धर्म का महत्त्व मानने वालों को झूठी गवाही देते हुए, अपहरण करते हुए, अनीति में प्रवृत्त होते हुए हमने देखा है । गीता का पाठ करके आत्मा की अमरता सौ-सौ बार दुहराने वाले जब मौका पड़ता है तो मरने की जोखिम उठाने तो दूर मामूली चोट खाने से भी बुरी तरह डरते हैं । हमारे परिचित एक पंडित जी १७ वर्ष से गीता की कथा कहने का पेशा करते हैं, कथा से उन्हें काफी धन मिलता है । अच्छी खासी पूँजी उनके पास जमा हो गई है । एक बार उनके घर पर डाकू चढ़ आये-रुपया लूटने के साथ ही उन्होंने पण्डितजी की धर्म पत्नी और सयानी लड़की के साथ बलात्कार भी किया । पण्डित जी डाकुओं की आँख बचाकर एक चारपाई की आड़ में छिपे बैठे थे और यह सब दृश्य देख रहे थे । शारीरिक कष्ट के भय से डाकुओं का विरोध करने की हिम्मत न पड़ी, और उन खून खौला देने वाले दृश्यों को चुप-चाप देखते रहे ।

यदि सचमुच पण्डितजी को गीता की शिक्षा का ज्ञान होता और आत्मा की अमरता पर सच्चे हृदय से विश्वास करते होते तो कर्त्तव्य की पुकार को इस प्रकार न दबा देते । मृत्यु से इतना न डरते । हम यह नहीं कहते कि वे गीता को झूठा मानते हैं या अमरता की बात किसी छल से कहते हैं, जहाँ तक विचारों का ताल्लुक है वे अपने विचारों के प्रति सच्चे हैं परन्तु विचारों के साथ वह दृढ़ विश्वास नहीं था, जिसको 'श्रद्धा' कहा जाता है । विचार तो ऐसा तत्त्व है जो जरा सा दवाब पड़ने पर आसानी से बदल जाता है । कोई विद्वान या बुद्धिमान मनुष्य तर्क प्रमाण और बहस के आधार पर हरा सकते हैं, उनकी युक्तियाँ और प्रमाण शैली ऐसी जोरदार हो सकती है कि आप निरुत्तर हो जावें, हार मान लें, और ऐसा अनुभव करने लगें कि शायद मैं गलती पर हूँ । तब यह बहुत सरल है कि अपने विचार बदल दें, यदि दुर्भाग्य से परस्पर विरोधी विचार वाले बहुत से विद्वानों के बीच में रहने का प्रसंग आपने और परस्पर विरोधी तर्कों को सुने तो आपको रोज विचार बदलने के लिए विवश होना पड़ सकता है । उस स्थिति में किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचना कठिन होगा, बुद्धि भ्रम की अस्थिरता बढ़ जायगी । इसी प्रकार यदि कोई भारी कष्ट, पीड़ा, आघात, व्यथा, वेदना सामने आवे तो उनके दवाब से विचारों को पलट सकते हैं । चोरों का विचार होता है कि पकड़े जाने पर हम अपने साथियों का नाम प्रकट न करेंगे पर राजदण्ड की यन्त्रणा से घबराकर कइयों को अपना विचार बदलना पड़ता है और वे अपने साथियों का नाम प्रकट कर देते हैं । लोभ का दवाब भी कुछ ऐसा ही है, रुपये का लालच, रूप सौन्दर्य का लालच, ख्याति का लालच, मनोरंजन का लालच, बड़े-बड़े विचारवानों को डिगा देता है । अपनी पत्नी और पुत्रों का अपमान देखते हुए भी-शरीर कष्ट के भय से यदि पण्डित जी के अमरता के विचार क्षणभर में विलीन हो गये हों तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ।

किसी प्रकार के विचार रखना ही इसके लिए पर्याप्त नहीं है कि यह व्यक्ति इस प्रकार के कार्य भी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


करेगा । बहुत से मनुष्य एक प्रकार के काम में लगे हुए हैं पर विचार उसके विपरीत दूसरे प्रकार के रखते हैं बाहर से आचरण कुछ और करते हैं भीतर से विचार कुछ रखते हैं । कार्य और विचारों को एक न होना इस बात का प्रमाण है कि विचार बहुत ही उथले, निर्बल एवं अपूर्ण हैं, दिमाग तक ही उनकी प्रगति है अन्त:करण तक वे प्रवेश नहीं पा सके हैं । ऐसे ही लँगड़े, लूले, अन्धे, अधकचरे विचार विश्वासों को लोग मन में भरे फिरते हैं जब मौका पड़ता है, परीक्षा का अवसर आता है तो झट फिसल जाते हैं, जैसी हवा चलती है वैसी ही पीठ कर लेते हैं । अभी यह कहते हैं अभी यह कहने लगते हैं । यह अस्थिरता मनुष्य की मानसिक आवारागर्दी प्रकट करती हैं, ठीक वैसी ही जैसी शारीरिक स्थिति के कारण दफा १०९ ताजीरात हिन्द के अनुसार जेलखाने की हवा खानी पड़ती है ।

यदि मनुष्य का अपना कोई निजी विश्वास न हो, निजी आधार न हो तो हवा के रुख के साथ इधर-उधर उड़ता फिरेगा और जीवन में कोई कहने लायक उन्नति न कर सकेगा । एक मील पूरब को चले फिर लौट पड़े आध मील पच्छिम को आये, फिर विचार बदला तो दो मील उत्तर को बढ़े, फिर समझ में आया कि पच्छिम को चलें । डेढ़ मील चलकर वहाँ से भी रुक गये फिर किसी और तरफ चलने की सोचने लगे । इस पद्धति से महीनों चलते रहने वाला कोई निश्चित मंजिल तय न कर सकेगा किन्तु जो लगातार एक ही दिशा में चलता रहता है वह एक ही महीने में काफी मन्जिल पार कर लेगा । जिसके सुदृढ़ विश्वास हैं परिपक्व निश्चय हैं, अपने स्थिर सिद्धान्तों पर आरूढ़ रहता है वह समाज में अपना एक नियत स्थान बना लेता है । मजबूती का आदर होता है, जो जिन विश्वासों पर मजबूती के साथ डटा हुआ है उन्हें उनके द्वारा ही पर्याप्त लाभ हो सकता है । दृढ़ता में शक्ति है-और शक्तिशाली पुरुष वीरों की तरह सम्मानित होता है ।

महापुरुषों में एक सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे अपने विचारों पर पूरी निष्ठा के साथ दृढ़ रहते हैं, अपने उद्देश्यों के प्रति उन्हें पूरी श्रद्धा होती हैं । उस श्रद्धा से निष्ठा से प्रेरित होकर कार्य करते हैं और कितना ही बड़े कष्ट एवं प्रलोभन सामने आने पर भी विचलित नहीं होते । अपने निष्ठा के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं, प्राणी की भेंट चढ़ा देते हैं, परन्तु निश्चय से जरा भी नहीं डिगते । यह दृढ़ता ही किसी मनुष्य की सबसे बड़ी प्रामाणिकता है । इस प्रामाणिकता के कारण लोग उस पर विश्वास करते हैं, जिसके ऊपर विश्वास किया जाता है वह सचमुच महान् है, उसकी महानता चिरकाल तक स्थिर रहेगी, कद्रदानी का संसार में से लोप नहीं हो गया है । दृढ़ता का बहुमूल्य रत्न सदैव उपेक्षित नहीं पड़ा रहता उसे पहचानने वाले, कदर करने वाले, जौहरी मिल ही जाते हैं । कई महापुरुषों के विचार कुछ त्रुटिपूर्ण थे तो भी उनकी निष्ठा, श्रद्धा और दृढ़ता ने उन्हें प्रातस्मरणीय और पूज्यनीय बना दिया ।

महाराणा प्रताप का जंगलों में रहते फिरना, भामाशाह का दान, हकीकत राय की दीवार में चुना जाना, बन्दा बैरागी का खौलते तेल के कढ़ाव से उबलना, राम का बनवास, हरिश्चन्द्र का स्त्री पुत्रों को बेचना, दधीच का अस्थिदान, मोरध्वज का पुत्र बलिदान, रानी पद्मिनी का अग्नि दाह, सुकरात का विष पान, ईसा का क्रुसारोहण, यह सब गाथाएँ निष्ठा के ऊपर अवलम्बित हैं । अपने विश्वासों की रक्षा करने के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देना श्रद्धालु आत्माओं का ही काम है । आज के अस्थिर विश्वास वाले लोगों के सामने ऐसे अवसर आवें तो वे चट बदल जावें । बालक हकीकतराय ने दीवान में चिना जाना पसन्द किया पर हिन्दू धर्म छोड़ने पर तैयार न हुआ, आज का कोई चालाक लड़का होता तो सोचता जान गँवाने की बजाय तो मुसलमान हो जाना ठीक है-वह चट मुसलमान हो जाता । प्राचीन समय में लोग अपने वचन का पालन के लिए, धर्म रक्षा के लिए, सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए बड़ी से बड़ी कुर्वानी करने को तैयार रहते थे, आज कूटनीति का, चालबाजी का, अधिक लाभ का, व्यापार है । फैशन की तरह विचारों को धारण करते हैं और हजामत की तरह जब तक रुचता है उन्हें पाले रहते हैं और जब चाहते हैं सफाचट करा देते हैं । बड़े-बड़े जोरदान व्याख्यान देकर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


साम्यवाद का महत्त्व समझाने वाले स्वयं पूँजीवाद के केन्द्र बने हुए हैं, धर्म-धर्म पुकारने वाले स्वयं अधर्म के संचालक हैं, यह उदाहरण बताते हैं कि लोगों ने विचारों को फैशन से अधिक महत्त्व नहीं दिया है ।

आज वे शंकराचार्य कहाँ हैं ? जो वैदिक धर्म की रक्षा के लिए प्राण हथेली पर धर कर निकल पड़े और नन्ही सी जान को विरोधी अपार जन संख्या के सामने खड़ा करें ? आज वे दयानन्द कहाँ हैं ? जो मोड़ की रत्न जटित महन्ती को अस्वीकार करके दर-दर अपमान सहते फिरें और अन्त में विष पान करके प्राण त्यागें ? आज का प्रोफेसर मोटी तनख्वाह के बदले कुछ घण्टे देकर छुट्टी पाता है, उस दिन ऋषि लोग रूखा सूखा अन्न खाकर अपनी असाधारण विद्या शिष्यों को घोट घाटकर पिलाते थे । यदि चाहते तो वे ऋषि लोग भी अपनी विद्या के बदले में पैसा कमा सकते थे परन्तु उनके सामने अपने कर्त्तव्य धर्म का सिद्धान्त था जिसे पालन करने के लिए गरीबी का जीवन स्वीकार करना मामूली सी बात थी ।

अध्यात्मवाद के आचार्यों ने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य श्रद्धालु बने । काफी सोच समझ कर, पर्याप्त छान-बीनकर, किन्हीं सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाय और स्वीकार करने के बाद उसका दृढ़ता के साथ पालन किया जाय । वह विश्वास इतने दृढ़ होने चाहिए कि परीक्षा और कठिनाई समय भी ठहर सकें, उनके लिए कुछ त्याग और बलिदान भी किया जा सके ।

तर्क अच्छी वस्तु है, सचाई जानने में उससे सहायता मिलती है, अन्ध विश्वास और भ्रम पाखंडो की सफाई उससे की जाती है और एक हद तक पथ प्रदर्शन भी होता है किन्तु उसकी कुछ नियत मर्यादा है । जीवन के मूल स्रोत में उत्साह तक से नहीं श्रद्धा से पैदा होता है । दृढ़ता, त्याग, भावना, परायणता, स्थिरता श्रद्धा से आती है, लोभ और कष्टों को ठुकराकर जब मनुष्य लोह स्तम्भ की तरह अडिग खड़ा होता है तब समझना चाहिये कि श्रद्धा की सुदृढ़ शिला में इसकी जड़ें पहुँच गई हैं । केवल तर्क जन्य विचार तो बहुत कमजोर होते हैं, बालू के महल की तरह वे जरा से धक्के में तितर-बितर हो जाते हैं ।

गुरु का बड़ा भारी महात्म्य वर्णन किया गया है । कहीं-कहीं तो गोविन्द से भी गुरू को बड़ा बताया गया है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर से उसकी उपमा दी गई है, गुरू भक्ति को ईश्वर भक्ति से ऊँचा कहा गया है । इसमें एक व्यक्ति को माध्यम बनाकर श्रद्धा का बीज बोने का प्रयास है । सिद्धान्तों, उद्देश्यों पर श्रद्धा जानने की साधना का आरम्भ बालकों को गुरु के विरुद्ध यह एक स्वेच्छा स्वीकृत, मानसिक नियंत्रण है जिसके द्वारा बड़े-बड़े मानसिक लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं । शिष्य की मान्यता के अनुसार गुरु का दर्जा सचमुच गोविन्द का बड़ा न हो जायगा । वह अपूर्ण प्राणी ही रहेगा पर अपनी भावना को दृढ़ता द्वारा शिष्य उससे इतना लाभ उठा लेगा जितना गोविन्द से उठाया जा सकता है, द्रोणाचार्य ने अपनी सारी योग्यता खर्च करके पाण्डवों को बाण विद्या सिखाई थी, पर उनकी मिट्टी की मूर्ति को गुरु बनाकर उसकी शिष्यता में वाण विद्या सीखने वाला भील पुत्र 'एकलव्य' पाण्डवों से अधिक प्रवीण हो गया, यहाँ तक कि स्वयं द्रोणाचार्य भी उससे पीछे रह गये । यह भी श्रद्धा का चमत्कार है । भील-पुत्र ने मिट्टी के पुतले पर श्रद्धा जमाई और उसके आधार पर अपने अन्दर छिपे अनन्त विद्याओं के भण्डार को जाग्रत कर लिया । गुरु शिष्य का प्रकरण इसी एक महान् सत्य को अपने गर्भ में छिपाये हुए हैं । आज भले ही 'गुरुडम्' के विकृत रूप में दृष्टिगोचर होता हो पर मूलतः गुरु महात्म्य का तत्त्वज्ञान श्रद्धा का प्रारम्भिक बीजारोपण करने के निमित्त हुआ है ।

विभिन्न आचार्यों विभिन्न आध्यात्मिक साधनाएँ श्रद्धा को उपजाने अपने-अपने ढंग के स्वतन्त्र प्रयत्न हैं । वे देखने में पृथक हैं तो भी अन्ततः एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हैं । इन साधनों द्वारा जो फल प्राप्त होते हैं उनका कारण यह है कि श्रद्धा अत्यन्त ही एक सबल आध्यात्मिक शक्ति है उसकी प्रचण्ड प्रेरणा के कारण छिपी हुई अन्तरंग योग्यताएँ प्रस्फुटित हो उठती हैं । साधक उनका चमत्कार देखता है । उसे आम खाने से मतलब न कि पेड़

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


गिनने से । आध्यात्मवाद शक्तिशाली बनाने की विद्या है, इस विज्ञान का प्रधान कार्य यह है कि अपूर्णता को दूर करके पूर्णता का, निर्बलता को दूर करके बल का, अस्थिरता को दूर करके स्थिरता का, आविर्भाव करे । समस्त साधनाएँ ''श्रद्धा द्वारा शक्ति उत्पादन'' के केन्द्र बिन्दु की परिक्रमा कर रही हैं । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन सब का आस्तित्त्व कायम रह रहा है ।

आप आज की परिस्थितियों में देवी-देवताओं की उपासना में, तन्त्र-मन्त्रों की साधना में, गुरु, शिष्य परम्परा में, दिलचस्पी नहीं रखते । हमारा उसके लिए कुछ भी आग्रह नहीं है । जब दूसरे रास्ते मौजूद हैं तो अपनी सुविधा और रुचि का मार्ग पसन्द करने की आजादी होनी चाहिए । मूल मन्तव्य श्रद्धा से है आप श्रद्धा को अपने अन्दर स्थान देते रहिए । अपनी महानता में श्रद्धा रखिए, अपनी पत्नी के प्रेम में विश्वास कीजिए, बालकों की निष्कपटता पर भरोसा रखिए, माता-पिता और गुरुजनों के वात्सल्य पर यकीन कीजिए । इस दुनिया में पाप की अपेक्षा पुण्य अधिक है । अधर्म से धर्म ज्यादा है । भलाई से बुराई कम है, प्रकाश से अन्धकार न्यून है, ऐसी मान्यता बनाइए । अविश्वास और आशंका को कम कीजिए, प्रियजनों की सचाई पर भरोसा बढ़ाइए ।

यह ठीक है कि ठगी, कपट, धोखा-धड़ी और बनावट बहुत है पर इतनी नहीं जो त्याग, स्नेह, सरलता और सचाई से अधिक हो । यह विश्व ईश्वर की पुण्य कृति है, इसमें उपयोगी और आनन्ददायक उत्सव हैं ऐसी मान्यता को बढ़ाते जाइए । अपने बारे में इसी दृष्टिकोण से विचार कीजिए, आप समर्थ हैं, दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, वचन का पालन करते हैं, सच्चे हैं, ईमानदारी का आचरण करते हैं । भले ही दूसरे दोष मौजूद हैं पर निस्संदेह आप में अच्छे गुण भी विद्यमान हैं और उनकी मात्रा दोषों की अपेक्षा कहीं अधिक है । अपने सात्त्विक अंशों को प्रसन्नता पूर्वक बार-बार निरीक्षण कीजिए और अपनी उच्चता पर, महानता पर विश्वास करिए, श्रद्धा करिए ।

'परमार्थ' आपका लक्ष्य होना चाहिए । क्योंकि स्वाथ्य का सबसे सुन्दर वैज्ञानिक विधान परमार्थ है । दूसरों का लाभ सोचने से बढ़कर अपना लाभ और किसी बात में नहीं है । इसलिए परमार्थ पर श्रद्धा रखिए । अपनी पवित्रता पर श्रद्धा रखिए । ऐसे विश्वास और सिद्धान्तों को अपनाइए जिनसे लोक कल्याण की दिशा में प्रगति होती हो । उन विश्वासों और सिद्धान्तों को हृदय के भीतरी कोने में गहराई तक विचार लीजिए । इतनी दृढ़ता जमा लीजिए कि कष्ट और प्रलोभन सामने उपस्थित होने पर भी आप उन पर दृढ़ रहें, परीक्षा देने एवं त्याग करने का अवसर आवे तब भी विचलित न हों । वे विश्वास, श्रद्धास्पद होने चाहिए, प्राणों से अधिक प्यारे होने चाहिए । प्राणरक्षा के लिए हर सम्भव उपाय को काम में लाया जाता है आप अपनी श्रद्धायुक्त मान्यताओं की रक्षा के निमित्त बड़े से बड़ा जोखिम उठाने के लिए तत्पर हो जाइए ।

अध्यात्मवाद कहता है कि आप अपनी मनोभूमि की रचना ऐसी कीजिए जिसमें कोई विश्वास बोये जाँय तो दृढ़ता पूर्वक खड़े रहें । तर्क द्वारा भले बुरे की पहचान किया कीजिए, असत्य के अँधेरे में सत्य को ढूँढ निकालने का प्रयत्न किया कीजिए परन्तु मानव तत्त्व के मूल-भूत सिद्धान्तों पर तर्क का कुल्हाड़ा मत चलाया कीजिए । बूढ़े माता-पिता की सेवा में पैसा खर्च करने से क्या लाभ ? स्त्री को जेवर क्यों न बनवा दूँ जिससे वह मेरी अधिक सेवा करें ? तर्क की दृष्टि से यही मानना पड़ेगा कि बूढ़े माता-पिता को एक कोने में पड़े रहने दिया जाय और स्त्री को जेवर बनवाये जाँय । क्योंकि आज का प्रत्यक्ष लाभ इसी में है । यदि अपने जीवन निर्माण में भी इसी तर्क पर अवलम्बन किया तो सारी सात्त्विकता और महानता नष्ट हो जायगी, मानव में पशुता से अधिक और कुछ शेष न रहेगा अन्त:करण के उच्च दैवी गुण भले ही तर्क की तराजू में हलके बैठते हो पर आप उन्हें छोड़िए मत । श्रद्धा द्वारा उनकी रक्षा कीजिए और आग्रह पूर्वक उन पर दृढ़ रहिए ।

यदि आप अध्यात्मवादी बनना चाहते हैं तो उसके तीन प्रमुख सिद्धान्तों को भली प्रकार हृदयंगम कर लीजिए (१) अपने को अविनाशी मानिए (२)

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आत्म निर्भर रहिए (३) अपने विश्वासों और सिद्धान्तों पर श्रद्धा कीजिए । यही वह त्रिवेणी है जिसमें स्नान करके सत्पुरुष, शाश्वत, शान्ति का रसास्वादन किया करते हैं ।

आप शक्तिवान है ! सर्व शक्तिवान् पिता अविनाशी पुत्र है । अपनी उन्नति के लिए बाहर मत तकिये वरन् अपने अन्तःप्रदेश को तलाश कीजिए । उसमें अनन्त शक्तियों का भण्डार छिपा हुआ है । अन्तर्मुख होकर जब आप अपने भीतर तलाश करेंगे तो आपको वह भण्डार प्राप्त होगा जिसमें आनन्द और उल्लास प्रदान करने वाले अनेकों साधन भरे पड़े हैं । आत्मनिर्भर हूजिए, अपने ऊपर विश्वास कीजिए, आत्म ज्योति से आप का जीवन प्रकाशवान हो जायगा ।

# पाँचवा पाठ

## इन परिस्थितियों में ही आगे बढ़िए

''अगर मुझे अमुक सुविधाएँ मिलती तो मैं ऐसा करता'' इस प्रकार की बातें करने वाले एक झूठी आत्म प्रवंचना किया करते हैं । अपनी नालायकी को भाग्य के ऊपर, ईश्वर के ऊपर, थोप कर खुद निर्दोष बनना चाहते हैं । यह एक असम्भव माँग है कि यदि मुझे अमुक परिस्थिति मिलती तो ऐसा करता । जैसी परिस्थिति की कल्पना की जा रही है यदि वैसी मिल जाय तो वे भी अपूर्ण मालूम पड़ेगी और फिर उससे अच्छी स्थिति का अभाव प्रतीत होगा । जिन लोगों के पास धन, विद्या, मित्र, पद आदि पर्याप्त मात्रा में मिले हुए हैं, हम देखते हैं कि उनमें से भी अनेकों का जीवन बहुत अस्त-व्यस्त और असन्तोष जनक स्थिति में पड़ा हुआ है । धन आदि का होना उनके आनन्द की वृद्धि न कर सका वरन् जी का जंजाल बन गया । जो सर्प विद्या नहीं जानता उसके पास बहुत साँप होना भी खतरनाक है । जिसे जीवन कला का ज्ञान नहीं, उसे गरीबी में, अभावग्रस्त अवस्था में, थोड़ा-बहुत आनन्द तब भी है यदि वह सम्पन्न होता तो उन सम्पत्तियों का दुरुपयोग करके अपने को और भी अधिक विपत्ति ग्रस्त बना लेता ।

यदि आपके पास आज मनचाही वस्तुएँ नहीं है तो निराश होने की कुछ आवश्यकता नहीं है । टूटी-फूटी चीजें हैं उन्हीं की सहायता से अपनी कला को प्रदर्शित करना आरम्भ कर दीजिए । जब चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ होता है तो वह दीपक जिसमें छदाम का दिया, आधे पैसे का तेल और दमड़ी की बत्ती है-कुल मिलाकर एक पैसे की भी पूँजी नहीं है-चमकता है, और अपने प्रकाश से लोगों के रुके हुए कामों को चालू कर देता है । जब कि हजारों पैसे के मूल्य वाली वस्तुएँ चुपचाप पड़ी होती हैं, यह एक पैसे की पूँजी वाला दीपक प्रकाशवान होता है, अपनी महत्ता प्रकट करता है, लोगों का प्यारा बनता है, प्रशंसित होता है और अपने आस्तित्त्व को धन्य बनाता है । क्या दीपक ने कभी ऐसा रोना रोया कि मेरे पास इतने मन तेल होता, इतनी रुई होती, इतना बड़ा मेरा आकार होता तो ऐसा बड़ा प्रकाश करता ? दीपक को कर्महीन नालायकों की भाँति बेकार-शेखचिल्लियों के से मनसूवे बाँधने की फुरसत नहीं है, वह अपनी आज की परिस्थिति, हैसियत, औकात को देखता है, उसका आदर करता है और अपनी केवल मात्र एक पैसे की पूँजी से कार्य आरम्भ कर देता है । उसका कार्य छोटा है, बेशक, पर उस छोटेपन में भी सफलता का उतना ही अंश है जितना कि सूर्य और चन्द्र के चमकने की सफलता है । यदि आन्तरिक सन्तोष धर्म, और परोपकार की दृष्टि से तुलना की जाय तो अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार दोनों का ही कार्य एक-सा है । दोनों का ही महत्त्व समान है, दोनों की सफलता एक-सी है ।

सच बात तो यह है कि अभावग्रस्त, कठिनाइयों में पले हुए, साधन हीन व्यक्ति ही संसार के नेता, महात्मा, महापुरुष, सफल जीवन, मुक्ति पथगामी हुए हैं । कारण यह है कि विपरीत परिस्थितियों से टकराने पर मनुष्य की अन्तः प्रतिभा जागृत होती है, सुप्त शक्तियों का विकास होता है । पत्थर पर रगड़ खाने वाला चाकू तेज होता है ओर वह अपने काम में अधिक कारगर साबित होता है उसका स्वभाव, अनुभव और दिमाग मँजकर साफ हो जाता है जिससे आगे बढ़ने में उसे बहुत

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सफलता मिलती है । इसके विपरीत जो लोग अमीर और साधन सम्पन्न घरों में पैदा होते हैं उन्हें जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त कराने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता, लाड़, दुलार, ऐश, आराम के कारण उनकी प्रतिभा निरखती नहीं, वरन् बन्द पानी की तरह सड़ जाती है या निष्क्रिय चाकू की तरह जंग लगकर निकम्मी हो जाती है । आमतौर पर आज कल ऐसा देखा जाता है कि अमीरों के लड़के अपने जीवन में असफल रहते हैं और गरीबों के लड़के आगे चल कर चमक जाते हैं । पुराने जमाने में राजा रईस लोग अपने लड़कों को ऋषियों के आश्रम में इसलिए भेज देते थे कि वहाँ रहकर अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करें और अपनी प्रतिभा को तीव्र बनावें ।

हमारा उद्देश्य यह कहने का नहीं है कि अमीरी कोई बुरी चीज है अमीरों के घर में पैदा होने वाले उन्नत जीवन नहीं बिता सकते । जहाँ साधन है वहाँ तो और भी जल्दी उन्नति होनी चाहिए । बढ़ई के पास बढ़िया लकड़ी और अच्छे औजार हों तब तो वह बहुत ही सुन्दर फर्नीचर तैयार करेगा यह तो निश्चित है । हमारा तात्पर्य केवल यह कहने का है कि यदि ''जिन्दगी जीने की कला'' आती हो तो अभाव, कठिनाई या विपरीत परिस्थिति भी कुछ बाधा नहीं डाल सकती, गरीबी या कठिनाई में साधनों की कमी का दोष है तो प्रतिमा को चमकाने का गुण भी है । अमीरी में साधनों की बाहुल्यता है तो लाड़ दुलार और ऐश आराम के कारण प्रतिमा के कुन्द हो जाने का दोष भी है । दोनों ही गुण दोष युक्त है । किन्तु जो जीवन जीना जानता है वह चाहे अमीर हो या गरीब, अच्छी परिस्थितियों में हो या कठिनाइयों में पड़ा हो कुछ भी क्यों न हो, हर एक स्थिति में अनुकूलता पैदा कर सकता है हर अवस्था में उन्नति, सफलता और आनन्द प्राप्त कर सकता है ।

आनन्दमय जीवन बिताने के लिए धन विद्या, अच्छा सहयोग, स्वास्थ्य आदि की आवश्यकता है परन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के होने से ही जीवन आनन्दमय बन सकता है । अच्छी पुस्तक के लिये कागज, दवात, कलम की आवश्यकता है परन्तु इन तीनों के इकट्ठे हो जाने से ही पुस्तक तैयार नहीं हो सकती । बुद्धिमान लेखक ही उत्तम पुस्तक के निर्माण में प्रमुख है, दवात कलम कागज तो एक गौण और छोटी वस्तु हैं । जिसे पुस्तक लिखने की योग्यता है उसका काम रुका न रहेगा, इन वस्तुओं को वह बहुत ही आसानी से इकट्ठी कर लेगा । आज तक भी घटना किसी ने ऐसी न सुनी होगी कि अमुक लेखक इसलिए रचनाएँ न कर सका कि उसकी दवात में स्याही न थी । अगर कोई लेखक यों कहे कि-' 'क्या करूँ साहब मेरे पास कलम ही न थी, यदि कलम होती तो बहुत बढ़िया ग्रन्थ लिख देता ।'' तो उसकी इस बात पर कोई विश्वास न करेगा । भला कलम भी कोई ऐसी दुष्प्राप्य वस्तु है जिसे लेखक प्राप्त न कर सके । एक कहावत है कि ''नाच न जाने आँगन टेढ़ा'' जिसे नाचना नही आता वह अपनी अयोग्यता को यह कहकर छिपाता है कि- क्या करूँ आँगन टेढ़ा है । टेढ़ा ही सही, जिसे नाचना आता है इसके लिए टेढ़ेपन के कारण कुछ विशेष अड़चन पड़ने की कोई बात नहीं है । इसी प्रकार जो जीवन की विद्या जानता है उसे साधनों का अभाव और विपरीत परिस्थितियों की शिकायत करने की कोई बात नहीं है । साधनों की आवश्कयता है, बेशक ? परन्तु इतनी नहीं कि उनके बिना प्रगति ही न हो सके ।

चतुर पुरुष विपरीतता में अनुकूलता पैदा कर लेते हैं । विष को अमृत बना लेते हैं । संखिया, कुचला, धतूरा, पारा, सींगिया, हरताल आदि प्राणघातक विषों से लोग रोगनाशक, आयुवर्धक, रसायनें बनाते हैं । बालू में से चाँदी, कोयले में से हीरा निकालते हैं । सर्पों की विष थैली में से मणि प्राप्त करते हैं, धरती की शुष्क और कठोर तह को खोदकर शीतल जल निकालते हैं, गरजते समुद्र के पेट में घुसकर मोती लाते हैं । दृष्टि पसार कर देखिये, आप को चारों ओर ऐसे कलाकार बिखरें हुए दिखाई पड़ेंगे जो तुच्छ चीजों की सहायता से बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, ऐसे वीर पुरुषों की कमी नहीं है जो वस्त्र जैसी निष्ठुर परिस्थिति में प्रवेश करके विजय लक्ष्मी का वरण करते हैं । यदि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आप की इच्छा शक्ति जरा वजनदार हो तो आप भी इन्हीं कलाकारों और वीरपुरुषों की श्रेणी में सम्मिलित होकर अपनी आज की सारी विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बना सकते हैं । अपनी सारी शिकायतें, चिन्ताएँ आसानी के साथ सन्तोष आशा और समर्थता में बदल सकते हैं ।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है । जहाँ चाह होती है वहाँ राह निकल आती है । सब लोग अपने कर्मों का फल पाते हैं । शास्त्र में एक महावाक्य है कि 'भला या बुरा जैसा भी कुछ तू है वैसा अपने आप तूने अपने को बनाया है । मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति द्वारा अपने आप को बनाता है । जिसकी आकाँक्षा उन्नति के पथ पर चलने की, गौरवान्वित होने की, सौभाग्यशाली बनने की और सिद्धि समृद्धि प्राप्त करने की है उसे कोई भी उसके मार्ग से विचलित नहीं कर सकता ।

यों तो बहुत से आदमी तरह-तरह के मन के लड्डू बनाते हैं, सुखी, समृद्ध होने के बड़े-बड़े मनसूवे बाँधते हैं परन्तु उनमें से सफल बहुत ही थोड़े मनुष्य हो पाते हैं । शेखचिल्ली के से सपने यदि सफल हो जाया करते तो पुरुष और पौरुष का कोई महत्त्व ही इस संसार में न रहता । कोरी इच्छा, जिसके साथ प्रयत्न, पौरुष, लगन और दृढ़ता न हो निष्फल है । सफलता के देवी ऐसे लोगों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती । सिद्धि उन्हें मिलती है जो अपनी अभीष्ट वस्तु के लिए जी जान से प्रयत्न करते हैं ।

अनुभवियों का कथन है कि-''**उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मी, दैवेनदेव मिति का पुरुषों वदन्ति ।**'' लक्ष्मी उद्योगी पुरुषों को ही प्राप्त होती है और कायर लोग दैव-दैव पुकारा करते हैं । एक अन्य वचन है कि-'**कायरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति**'' कायर लोग ऐसी वकबास करते रहते हैं कि जो होना होगा ।''**न प्रसुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगाः**'' सोते हुए सिंह के मुख में हिरन खुद प्रवेश नहीं करते, वरन् सिंह को ही उन मृगों को पकड़ना और खाना पड़ता है । रामायण का कहना है- ''दैव-दैव आलसी पुकारा ।'' भाग्य के भरोसे बैठे रहने से, तरह-तरह की कल्पना और जल्पना करते रहने से कुछ प्राप्त नहीं होता । इच्छा को पूर्ण करने के लिए जो निरन्तर उत्साहपूर्वक प्रयत्न करते हैं वे ही सफलता के भागी होते हैं । संत कबीर ने कैसा अच्छा कहा है-

**जिन खोजा तिन पाया, गहरे पानी पैठ ।**
**हौं बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ ।।**

सिद्धि के-सफलता के इच्छुकों को बाइबिल का यह वचन ध्यान रखना चाहिये कि ' जो सचाई से माँगता है उसे दिया जाता है' सचाई से मांगने का अर्थ है पूरे परिश्रम उत्साह और समय के साथ इच्छित वस्तु की प्राप्ति में जाँफिसानी के साथ जुट पाना । आप यदि सफल मनोरथ होना चाहते हैं, सिद्धि की सीढ़ी पर चढ़ना चाहते हैं तो घोर प्रयत्न और दृढ़ इच्छा को अपना साथी बना लीजिए । आगे बढ़ने और भौतिक एवं आत्मिक दिशा में प्रगति करने के लिए संजीवनी विद्या का आश्रम लेना पड़ेगा ।

## संजीवनी विद्या क्या है ?

जैसे चित्रकारी, स्वर्णकारी, जुहारी, बढ़ईगिरी, आदि कलाएँ हैं, उसी प्रकार जिन्दगी भी एक कला है । जिसे चित्र कला आती है वह केवल पेन्सिल लेकर मामूली कागज पर बहुत भाव पूर्ण चित्र बना सकता है परन्तु जिसे चित्र कला का ज्ञान नहीं है वह बहुत बढ़िया रंग कूचा, कागज आदि लेकर भी अच्छा चित्र नहीं बना सकता । बहुत हुआ तो उलटी सीधी लाइन खींच कर कोई ऐसी भोंड़ी शकल बना दे जो न तो खुद उसे पसन्द आवेगी और न कोई दूसरा ही उसे देखकर प्रसन्न होगा । यही बात जीवन के सम्बन्ध में है । एक आदमी बहुत मामूली परिस्थिति में भी अपना जीवन इस प्रकार बिता सकता है कि उसे खुद पूरा-पूरा सन्तोष हो और दूसरे भी उसकी प्रशंसा करें ।

दूसरा आदमी बहुत अच्छी, ऊँचे दर्जे की सम्पत्ति और सुविधाओं के होते हुए भी अपने जीवन को असफल बना सकता है । स्वयं असन्तोष और पश्चात्ताप की आग में जलना और दूसरों की नजर में हलका, मूर्ख तथा तिरस्कृत बनना यही उनके हाथ रहता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जिसे स्वर्णकारी नहीं आती वह सोना चाँदी होते हुए भी सुन्दर आभूषण नहीं बना सकता, जिसे बढ़ईगीरी नहीं आती वह बढ़िया लकड़ी और अच्छे औजार लेकर भी सुन्दर फर्नीचर नहीं बना सकता, किन्तु जिसे यह कलाएँ आती हैं वे घटिया सामान से भी बढ़िया चीजें बना सकता है, मिट्टी का कुछ महत्त्व नहीं वह इस दुनिया में ढेरों इधर-उधर प्रचुर परिमाण में बिखरी पड़ी है, उस मिट्टी का एक साधारण सा ढेला जब किसी चतुर कुम्हार हाथों द्वारा संस्कारित हो जाता है तो ऐसा अच्छा खिलौना बनकर तैयार होता है जिस पर छोटे बड़े सभी का मन ललचाने लगे । कहते हैं अच्छी परिस्थितियाँ मिल जाने से आदमी का जीवन सुखमय हो जाता है परन्तु परिस्थितियों की इस दुनिया में कुछ कमी नहीं है । मिट्टी की तरह वह संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक बिखरी पड़ी हैं, इतनी अधिक मात्रा में जिसका कोई ठिकाना नहीं । ईश्वर बड़ा उदार है, उसने मनुष्य के लिए सुख-सुविधाओं के साधन पर्याप्त मात्रा में इस भूतल पर बिखेर रखे हैं । जरूरत इस बात की है कि कोई उन साधनों को पहचानना पकड़ना और काम में लाना जानता हो । जिसे कुम्हार की कला आती है, आसानी से अच्छी मिट्टी ढूँढ सकता है, उसे घर ला सकता है और बढ़िया खिलौने बना सकता है, परन्तु जिसे यह सब नहीं आता उसके लिए मिट्टी ढूँढ़ने से लेकर खिलौना तैयार करने तक के सारे कार्य बड़े कठिन, दुस्साध्य, भारी और असम्भव जैसे हैं । जीवन को सुन्दर खिलौने के रूप में बनाने के लिए कुम्हार की कला जीवन कला को जानना आवश्यक है । अनुकूल साधन और परिस्थितियाँ तो मिल ही जाती हैं यदि न मिलें तो घटिया सामान से भी बढ़िया सामान बना सकता है ।

"अगर मुझे अमुक सुविधाएँ मिलती तो मैं ऐसा करता" इस प्रकार की बातें करने वाले एक झूठी आत्मप्रवंचना किया करते हैं । अपनी नालायकी को भाग्य के ऊपर, ईश्वर के ऊपर, थोप कर खुद निर्दोष बनना चाहते हैं । यह एक असम्भव माँग है, कि यदि मुझे अमुक परिस्थिति मिलती तो ऐसा करता । जैसी परिस्थिति की कल्पना की जा रही है यदि वैसी मिल जाँय तो वे भी अपूर्ण मालूम पड़ेगी और फिर उससे अच्छी स्थिति का अभाव प्रतीत होगा । जिन लोगों के पास धन, विद्या, मित्र, पद आदि पर्याप्त मात्रा में मिले हुए हैं हम देखते हैं कि उनमें से भी अनेकों का जीवन बहुत अस्त-व्यस्त और असन्तोष जनक स्थिति में पड़ा हुआ है । धन आदि का होना उनके आनन्द की वृद्धि में सहायक न हो सका वरन् जी का जंजाल बन गया । जो सर्प विद्या नहीं जानता उसके पास बहुत साँप होना भी खतरनाक है । जिसे जीवन कला का ज्ञान नहीं, उसे गरीबी में अभावग्रस्त अवस्था में थोड़ा बहुत आनन्द तब भी है यदि यह सम्पन्न होता तो उन सम्पत्तियों का दुरुपयोग करके अपने को और भी अधिक विपत्ति ग्रस्त बना लेता है ।

यदि आपके पास आज मनचाही वस्तुएँ नहीं है तो निराश होने की कुछ आवश्यकता नहीं हैं । टूटी-फूटी चीजें हैं उन्हीं की सहायता से अपनी कला को प्रदर्शित करना आरम्भ कर दीजिये । जब चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ होता है तो वह दीपक जिसमे छदाम का दिया, आधे पैसे का तेल और दमड़ी की बत्ती है-कुल मिलाकर एक पैसे की भी पूँजी नहीं है-चमकता है, और अपने प्रकाश से लोगों के रुके हुए कामों को चालू कर देता है । जब कि हजारों पैसे के मूल्य वाली वस्तुएँ चुपचाप पड़ी होती हैं यह एक पैसे की पूँजी वाला दीपक प्रकाशवान होता है, अपनी महत्ता प्रकट करता है, लोगों का प्यारा बनता है प्रशंसित होता है और अपने आस्तित्व को धन्य बनाता है, क्या दीपक ने कभी ऐसा रोना रोया कि मेरे पास इतने मन तेल होता, इतनी रुई होती, इतना बड़ा मेरा आकार होता तो ऐसा बड़ा प्रकाश करता ? दीपक को कर्म-हीन नालायकों की भाँति, बेकार-शेखचिल्लियों के मनसुवे बाँधने की फुरसत नहीं है, वह अपनी आज की परिस्थिति, हैसियत औकात को देखता है, उसका आदर करता है और अपनी केवल मात्रा एक पैसे की पूँजी से कार्य आरम्भ कर देता है । उसका कार्य छोटा है, बेशक, पर उस छोटेपन में भी सफलता का उतना ही अंश है, जितना कि सूर्य और चन्द्र के चमकने की सफलता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । यदि आन्तरिक सन्तोष, धर्म और परोपकार की दृष्टि से तुलना की जाय तो अपनी-अपनी मर्यादा अनुसार दोनों का ही कार्य एक सा है । दोनों का महत्त्व स है दोनों की सफलता एक सी है ।

सच बात तो यह है कि अभाव ग्रस्त, कठिनाइयों में पले हुए, साधनहीन व्यक्ति ही संसार के नेता, महात्मा, महापुरुष, सफल जीवन मुक्त पथ गामी हुए हैं । कारण यह है कि विपरीत परिस्थितियों से टकराने पर मनुष्य की अन्तःप्रतिभा जाग्रत होती है, सुप्त शक्तियों का विकास होता है पत्थर पर रगड़ खाने से चाकू तेज हो जाता और वह अपने अधिक कारगर साबित होता है उसका स्वभाव, अनुभव और दिमाग मँज कर साफ जाता जिससे आगे बढ़ने में उसे बहुत सफलता मिलती है । इसके विपरीत जो लोग अमीर और साधन सम्पन्न घरों में पैदा होते हैं उन्हें जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त करने के लिये संघर्ष नहीं करना पड़ता, लाड़-दुलार, ऐश आराम के कारण उनकी प्रतिभा निरखती नहीं, वरन् बन्द पानी की तरह सड़ जाती है या निष्क्रिय चाकू की तरह जंग लगकर निकम्मी हो जाती है । आमतौर पर आज कल यह देखा जाता है कि अमीरों के लड़के अपने जीवन में असफल रहते हैं और गरीबों के लड़के आगे चलकर चमक जाते हैं । पुराने जमाने में राजा रईस लोग अपने लड़कों को ऋषियों के आश्रय में इसलिये भेज देते थे कि वहाँ पर रह कर अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करें और अपनी प्रतिभा को बनावें ।

हमारा उद्देश्य कहने का नहीं है कि अमीरी कोई बुरी चीज है और अमीरों के घर में पैदा होने वाले उन्नत जीवन नहीं बिता सकते । जहाँ साधन हैं वहाँ तो और भी जल्दी उन्नति होनी चाहिये । बढ़ई के पास बढ़िया लकड़ी और अच्छे औजार हों तब तो उसे बहुत ही सुन्दर फर्नीचर तैयार करेगा यह तो निश्चित है । हमारा तात्पर्य केवल यह कहने का है कि यदि ''जिन्दगी जीने की कला'' आती हो तो अभाव कठिनाई या विपरीत परिस्थिति भी कुछ बाधा नहीं डाल सकती, गरीबी या कठिनाई साधनों की कमी का दोष है तो प्रतिभा को चमकाने का गुण भी है । अमीरी में साधनों की बाहुल्यता है तो लाड़-दुलार और ऐश आराम के कारण प्रतिभा के कुन्द हो जाने का दोष भी है । दोनों ही गुण दोष युक्त हैं, किन्तु जो जीवन जीना जानता है वह चाहे अमीर हो या गरीब, अच्छी परिस्थिति में हो या कठिनाई में पड़ा हो, कुछ भी क्यों न हो, हर एक स्थिति में अनुकूलता पैदा कर सकता है, हर अवस्था में उन्नति, सफलता और आनन्द प्राप्त कर सकता है ।

आनन्दमय जीवन बिताने के लिये धन, विद्या, अच्छा सहयोग, स्वास्थ्य आदि की आवश्यकता है परन्तु ऐसा न समझना चाहिये कि इन वस्तुओं के होने से ही जीवन आनन्दमय बन सकता है । एक अच्छी पुस्तक लिखने के लिये कागज दवात, कलम की आवश्यकता है, परन्तु इन तीनों के इकट्ठे हो जाने से ही पुस्तक तैयार नहीं हो सकती । बुद्धिमान लेखक जानता है कि पुस्तक के निर्माण में प्रमुख है, दवात, कलम, कागज तो एक गौण और छोटी वस्तु है । जिसे पुस्तक लिखने की योग्यता है उसका काम रुका न रहेगा, इन वस्तुओं को वह बहुत ही आसानी से इकट्ठी कर लेगा । आज तक एक भी बार किसी ने ऐसी न सुनी होगी कि अमुक लेखक इसलिए रचनाएँ न कर सका कि उसकी दवात में स्याही न थी । अगर कोई लेखक यों कहें कि- ''क्या करूँ साहब, मेरे पास कलम ही न थी, यदि कलम होती तो बहुत बढ़िया ग्रन्थ लिख देता ।'' तो उसकी इस बात पर कोई विश्वास न करेगा । भला कलम भी कोई ऐसी दुष्प्राप्य वस्तु है जिसे लेखक प्राप्त न कर सके । एक कहावत है कि-''नाच न जाने आँगन टेढ़ा'' जिसे नाचना नहीं आता वह अपनी अयोग्यता को यह कह कर छिपाती है कि-क्या करूँ आँगन टेढ़ा है । टेढ़ा ही सही, जिसे नाचना आता है उसके लिए टेढ़ेपन के कारण कुछ विशेष अड़चन पड़ने का कोई बात नहीं है इसी प्रकार जो जीवन की विद्या जानता है उसे साधनों का अभाव और विपरीत परिस्थितियों की शिकायत करने की कोई बात नहीं है । साधनों की आवश्यकता है, बेशक, परन्तु इतनी नहीं कि उनके बिना प्रगति ही न हो सके ।

चतुर पुरुष विपरीतता में अनुकूलता पैदा कर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लेते हैं । विष को अमृत बना लेते हैं । संखिया, कुचला, धतूरा, पारा, सोंगिया, हरताल आदि प्राण घातक विषों से लोग रोगनाशक आयुवर्द्धक, रसायनें बनाते हैं । बालू में से चाँदी, कोयले में से हीरा निकालते हैं । सर्पों की विष थैली में से मणि प्राप्त करते हैं धरती की शुष्क और कठोर तह को खोदकर शीतल जल निकालते हैं, गरजते समुद्र के पेट में घुसकर मोती लाते हैं। दृष्टि पसार कर देखिये, आपको चारो ओर ऐसे कलाकार बिखरे हुए दिखाई पड़ेंगे जो तुच्छ चीजों की सहायता से बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, ऐसे वीर पुरुषों की कमी नहीं है जो वज्र जैसी निष्ठुर परिस्थिति में प्रवेश करके विजय लक्ष्मी का वरण करते हैं । यदि आपकी इच्छा शक्ति जरा वजनदार हो तो आप भी इन्हीं कलाकारों और वीर पुरुषों की श्रेणी में सम्मिलित होकर अपनी आज की सारी विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बना सकते हैं । अपनी सारी शिकायतें, चिन्ताएँ विवशताएँ आसानी से सन्तोष, आशा और समर्थता में बदल सकते हैं ।

यह कोई नई और अनहोनी बात आपसे नहीं कही जा रही है । यह सचाई है जो सृष्टि के आदि से लेकर अब तक हर एक उन्नति-शील व्यक्ति द्वारा पग-पग पर आजमाई गई है और सोलहों आने सच उतरी है, दुनिया सदा से ऐसी ही थी और आगे भी ऐसी रहेगी । इसमें हर एक को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है । कठिनाइयों की आग में तपे बिना कोई बर्तन पक्का नहीं हुआ है । राम-कृष्ण, हरिश्चन्द्र, अर्जुन, युधिष्ठिर जैसे सामर्थ्यवान को भी कठिनाइयों से छुटकारा नहीं मिला । जो लोग हमें धनी या सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं, उनमें से बहुत ही कम ऐसे होंगे जिन्हें अक्षय सुख-शान्ति प्राप्त हुई हों । इन बड़े आदमियों के समीप जाकर उनकी निजी स्थिति का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि एक मामूली आदमी को जितना संघर्ष करना पड़ता है, इन्हें उससे भी अधिक करना पड़ा है तब यह बड़प्पन उन्हें प्राप्त हुआ है । आज भी इस बड़प्पन की रक्षा के लिए अपने क्षेत्र में उन्हें भारी प्रयत्न करना पड़ता है । हम उनके महल, तिजोरी, मोटर, ठाट-बाट को देखते हैं इसलिए समझते हैं कि यह बहुत मौज में है, इन्हें कुछ कष्ट न होगा, परन्तु बात ऐसी नहीं हैं उन्हें अपने ढंग की, अपने क्षेत्र में, अपनी अलग कठिनाइयाँ हैं । जो जब तक इस कठिनाइयों से लड़ रहा है तभी तक वह सम्पन्न है, जब जिसकी कठिनाइयों का हल करने की योग्यता शिथिल हुई तभी यह पदच्युत होने लगता है, नीचे गिरने लगता है ।

आनन्द मय जीवन एक प्रकार की रसायन क्रिया है । रसायन बनाने वाले वैद्य लोग जानते हैं कि उन्हें पारा, संखिया, वच्छनाग, तेलिया आदि विषों का शुद्ध करने और सोना, चाँदी, लोहा, अभ्रक आदि धातुओं तथा हीरा आदि रत्नों की भस्म करने में कितनी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, कितनी आँचें लगानी पड़ती हैं, कितना समय और श्रम लगाना होता है, तब कहीं वे विपरीत चीजें अनुकूल हो पाती हैं । अनुपयोगी हानिकर विषों की उपयोगी, लाभदायक बनाने की कला को रसायन विद्या कहते हैं । इसी प्रकार विपरीत परिस्थितियों में, अभाव की दशा में, बुरे स्वभाव के लोगों के बीच रहते हुए भी जिस कला द्वारा जीवन को आनन्दमय, उन्नत और सन्तोष जनक बनाया जा सकता है उसे संजीवनी विद्या कहते हैं । जिस आदमी को मुनीमी करनी है, उसे हिसाब-किताब जानना आवश्यक है, जो चिकित्सिक बनना चाहता है उसे निदान और भेषज्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, इसी प्रकार जो जीवन को सन्तोषजनक रीति से सफलता पूर्वक जीना चाहता है उसे संजीवनी विद्या अनिवार्यत: जाननी चाहिए । अपने विवेक बल से अथवा दूसरों की सहायता से जो जितनी संजीवनी विद्या सीख चुका है वह उतने अंशों में अपना जीवन सफल बना सकता है । अयोग्यों को भी भाग्य से कभी-कभी कुछ सुविधाएँ मिलती रहती हैं, परन्तु वह इतनी कम मात्रा में होती हैं कि उन्हें अपवाद ही कह सकते हैं । स्थिर सिद्धान्त यही है कि सफल जीवन वही बना सकता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है जो जीनें की कला-संजीवनी विद्या जानता है ।

## सब सुखों की कुंजी अपने अन्दर है

आपको जो बड़ी-बड़ी चीजें दुनिया में दिखाई पड़ती हैं, उनके मूल कारण पर विचार किया जाय तो मालूम होगा छोटी चीज से बड़ी चीज बनती है, सूक्ष्म से स्थूल का निर्माण होता है । मनुष्य का पाँच फीट छह इन्च लम्बा और करीब १।। मन भारी शरीर रज वीर्य की दो बूँदों का बढ़ा हुआ रूप है । बड़े-बड़े विशाल वृक्ष राई रत्ती जैसे छोटी बीजों से उत्पन्न हुए हैं । आँख से दिखाई भी न पड़ने वाले परमाणुओं के द्वारा विशालकाय स्थूल पदार्थ बनते हैं । भयानक दावानल का कारण जरा ही चिनगारी होती है । प्राणघातक रोगों के उत्पन्न करने वाले बहुत सी छोटे रोग कीटाणु होते हैं । एक बालू का कण सीप के पेट में घुसता है और उसके ऊपर पर्त जमते-जमते मोती बन जाता है । मनुष्य को जो विशाल वैभव ओर सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं उनकी तह में भी कुछ ऐसे ही छोटे कारण होते हैं । वे देखने में बहुत ही हलके, तुच्छ और नगण्य दिखाई पड़ते हैं, उनमें कुछ खास महत्त्व मालूम नहीं पड़ता, परन्तु सचाई यही है कि वे छोटी-छोटी बातें ही बड़ी-बड़ी परिस्थितियों का निर्माण करती हैं । मिट्टी धूल में धातुओं के बारीक-बारीक परमाणु मिले पड़े रहते हैं । आपसी आकर्षण शक्ति से खिंच-खिंच कर वे एक दूसरे के समीप खिसकते आते हैं और कालान्तर में सोना चाँदी आदि की बड़ी-बड़ी बहुमूल्य खानें बन जाती हैं । इन खानों को देखकर मोटी बुद्धि को यह अनुमान लगाने में कठिनाई होगी कि उन अदृश्य परमाणुओं के द्वारा यह खान बनी है तो भी हर एक समझदार आदमी स्वीकार करेगा कि बाल की नोंक के सौवाँ भाग के समान छोटे हलके, तुच्छ परमाणु ही उन अरबों खरबों के मूल्य वाली खानों के पिता हैं । मनुष्य जीवन की जो बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ, विभूतियाँ, सफलताएँ और महानताएँ हैं वे उसकी बहुत ही छोटी आदतों और मनोवृत्तियों के कारण ही हैं ।

हम देखते हैं कि मारवाड़ी, अग्रवाल, माहेश्वरी आदि वैश्य जातियों के लोग अधिकांश में धनी पाये जायेंगे । कुछ खास खानदानों में धनी, वीर, विद्वान, चोर, कायर, मन्दे साफ आदि होने के गुण बहुत गहराई के साथ अपनी जड़ जमाये होते हैं । इसका कारण यह है कि उन समूहों में, परिवारों में एक खास प्रकार की मनोभावनाएँ बनी रहती हैं और वे भावनाएँ ही तदनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करती रहती हैं । जिन खानदानों में व्यापार का स्वभाव पड़ा हुआ है उसके आदमी व्यापार ही करेंगे, व्यापारी ही दिखाई देंगे । विचार बीज है, कार्य उसका फला-फूला वृक्ष-रूप है । जिसकी जैसी विचारधारा होगी वह देर-सवेर में वैसी ही परिस्थितियाँ प्राप्त करके रहेगा । एक बार एक व्यापारी के गोदाम में आग लगी और सारी धन सम्पत्ति जलकर स्वाहा हो गई । इन दुर्घटना की खबर जब मुनीम ने उस व्यापारी को जाकर सुनाई तो उसने धैर्य पूर्वक सारी बात सुनी और जरा भी विचलित न हुआ । व्यापारी की स्त्री ने पूछा कि हमारा सब कुछ नष्ट हो गया, धनी से कंगाल बन गये तो भी इस दुर्घटना का समाचार सुनकर कुछ रंज न हुआ इसका क्या कारण है ? व्यापारी ने मधुर स्वर में उत्तर दिया-"प्रिये ! हमारी सम्पत्ति बिल्कुल नष्ट नहीं हुई है, वह पूर्ण रूप में सुरक्षित है । मेरा स्वभाव ज्ञान और मेरा कार्यक्रम ही असली सम्पत्ति है, उसी के द्वारा इतना पैसा इकट्ठा हुआ था, वह अब भी मौजूद है, इस लिए कुछ ही दिनों पैसा हमारे पास अपने आप ही फिर जमा हो जायगा । जब तक मेरा स्वभाव नष्ट नहीं होता, सम्पत्ति भी नष्ट नहीं हो सकती ।" व्यापारी की बात सच निकली । गोदाम जल जाने के बाद बचे खुचे ध्वंशावशेषों के द्वारा उसने अपना कारोबार फिर शुरू किया और फिर पहले जैसा धनी बन गया ।

बाह्य वातावरण की आधारशिला आन्तरिक वातावरण है । जो जैसा है उसकी दुनिया भी वैसी ही है । आपको शायद पता भी नहीं होगा कि आपके नगर में कौन-कौन जुआ खेलता है किन्तु जो जुआरी है उसे अपने स्वभाव के अनेक लोगों से

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


परिचय हो जायगा । एक स्थान को छोड़कर वह दूसरे नये स्थान में चला जाय तो भी उसे वैसे ही आदमी मिल जावेंगे । इसी प्रकार विद्वानों को विद्वान, चोरों को चोर, गवैयों को गवैये, नशेबाजों को नशेबाज, साधुओं को साधु, हर जगह मिल जाते हैं और उन्हें अपने स्वभाव के अनुकूल व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होने में कुछ कठिनाई नहीं होती, आसानी से उनका इच्छित समाज, परिवार, वातावरण प्राप्त हो जाता है । कारण यही है कि अपने स्वभाव का मानसिक आकर्षण वैसे ही तत्त्वों को अपनी आकर्षण शक्ति की सहायता से ढूँढ़ निकालता है, इकट्ठा कर लेता है । जैसे कि धातुओं के परमणु अपनी जाति की धातु की विशाल खानें जमा कर लेते हैं ।

दुनिया भी सभी तरह की चीजें हैं, जो जैसा है अपनी रुचि के अनुकूल वस्तुएँ अनायास ही प्राप्त कर लेता है । एक क्रोधी व्यक्ति को सारी दुनिया झगड़ालु दिखाई पड़ती है । एक झूठा व्यक्ति समझता है कि सब लोग अविश्वासी है । एक नीच स्वभाव का आदमी समझता है कि दुनिया में सब लोग धूर्त और खुदगर्ज हैं, एक निकम्मा आदमी दुनिया में कोई उद्योग धन्धा रहा ही नहीं, एक बीमार आदमी समझता है कि दुनिया कि सारे भोजन अस्वादिष्ट और हानिकर हैं । जिसे पीलिया रोग हो रहा है उसकी दुनिया पीले रंग की है, जो हरे रंग का चश्मा लगाये हुए हैं उसका संसार हरा ही हरा है । इसी प्रकार विभिन्न स्वभाव और मनोवृत्तियों के मनुष्यों के लिए उनकी दुनिया अपने दृष्टिकोण के अनुसार अपने-अपने ढंग की है । जिसका मन जहाँ घूमता है वैसी ही चीजें भी यह जुटा लेता है । परमात्मा ने इस संसार की रचना ऐसे सुन्दर ढंग से की है, बाजार ऐसे बढ़िया ढंग से लगाये हैं कि हर आदमी अपनी मनमर्जी की चीजें ले सके ।

हर एक वस्तु तीन गुणों से मिलकर बनी है वे उसें न्यूनाधिक मात्रा में भी सभी गुण मौजूद हैं । जो वस्तु बहुत अच्छी है उसमें भी कुछ न कुछ बुराई मौजूद है, जो वस्तु खराब कही जाती है वह भी अच्छाई से बिल्कुल ही रहित नहीं है । उदाहरणार्थ एक मनुष्य की लीजिए, यह किसी का मित्र, किसी का शत्रु, किसी का गुरू और किसी का शिष्य किसी का चोर किसी का दानी, किसी का मालिक, किसी का नौकर है । इससे प्रकट हैं कि उसमें प्रेम, द्वेष, उपदेशकत्व, जिज्ञासा, पाप, पुण्य, दासता सभी गुण मौजूद हैं । सूर्य की किरणों में सातो रंग होते हैं, यन्त्रों द्वारा डाक्टर लोग उन किरणों में से निश्चित रंग को ही ग्रहण कर लेते हैं । जो आदमी जिससे प्रेम करता है समझता है कि उसके हृदय में प्रेम ही प्रेम भरा है, दूसरा आदमी जो उसका शत्रु है समझता है कि यह द्वेष भावों से भरा हुआ है । एक ही व्यक्ति माता की दृष्टि में लाड़ला, छौना पत्नी की दृष्टि में कामदेव का अवतार, बहिन की दृष्टि में पवित्र भाई, पुत्र की दृष्टि में पूजनीय पिता, शिष्य की दृष्टि में विद्या का भण्डार, गुरु की दृष्टि में जिज्ञासा और विनय की मूर्ति है । इन दृष्टिकोणों में आपस में जमीन-आसमान का अन्तर है । एक व्यक्ति ही की पत्नी जैसा समझते और माता जैसा समझती है उन दोनों दृष्टिकोणों की आपस में बिलकुल समानता नहीं है । आदमी एक ही है पर उसके लिए अलग-अलग विचार के लोगों के मन में पृथक्-पृथक् भाव पैदा होते हैं ।

क्या कारण हैं कि इस कदर भिन्नता एक ही व्यक्ति के बारे में पाई जाती है ? कारण यह है उस मनुष्य में सभी प्रकार के गुण मौजूद हैं और जिस भावना से उसे देखा जाय उसके वे ही गुण दिखाई पड़ते हैं । गंगा एक ही है पर नहर महकमें के अधिकारी, धार्मिक हिन्दू, मच्छीमार, नाव चलाने वाले, जल-जीव, चौपाये आदि के लिए वह एक ही वस्तु अलग गुणवाली दिखाई देती है । ठीक इसी प्रकार हर एक मनुष्य विभिन्न दृष्टि कोणों से देखने पर विभिन्न प्रकार का दिखाई पड़ता है । हर एक में हर प्रकार के तीन तत्त्व मौजूद हैं जिसकी जैसी भावना है वह दूसरे के अन्दर समाये हुए तत्त्वों में से अपनी आवश्यकता का ही तत्त्व देख लेता है । रामायण की चौपाई है कि-जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन तैसी । यही बात दुनिया के बारे में लागू होती है । जिसके अपने निज के जैसे विचार हैं संसार भी उसके लिए वैसा ही

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । इस त्रिगुणमयी प्रकृति में अपनी मनमर्जी की काफी वस्तुएँ मौजूद हैं । यदि आप सतोगुणी स्वभाव के हैं तो तीन चौथाई दुनिया सत् से भरी हुई दिखाई देगी, यदि आप में तम की अधिकता है तो दुनिया के तीन चौथाई कार्य तामसिकता पूर्ण दीखेंगे । यथार्थ में संसार में बुराई भलाई समान है । यदि आप अच्छे हैं तो आपके लिए अच्छे-अच्छे तत्त्व ही सामने आवेंगे, बुरी वस्तु को काम में लावेंगे तो उसमें से भी अच्छे तत्त्व ही ग्रहण करेंगे ।

दार्शनिक इमरसन कहा करते थे कि-"यदि मुझे नरक में रहना पड़े तो मैं अपने उत्तम स्वभाव के कारण वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा ।" जिसकी मनोभावनाएँ विचार धाराएँ मान्यताएँ उच्चकोटि की सात्त्विक हैं उसके लिये सर्वत्र स्वर्ग ही स्वर्ग हैं, आनन्द, प्रेम, सद्व्यवहार ही उसे चारों ओर उमड़ा पड़ता हुआ दीखता है, उसके लिए लोक में या परलोक में कहीं भी नरक नहीं है, किन्तु जिसका दृष्टिकोण निकृष्ट है, नीति अच्छी है, भावनाएँ संकुचित हैं, उसके लिए नरक का दावालन ही चारो ओर जल रहा है, न तो उसे इस लोक में सन्तोष है और न परलोक में ही रहेगा । नरक उसके हृदय में भरा हुआ है इसलिए जहाँ कहीं भी यह जायगा छाया की तरह नरक उसके पीछे-पीछे लगा फिरेगा । उसे धोखेबाज दुष्ट, सताने वाले और स्वार्थी दिखाई देंगे, मनुष्य भी ऐसे ही और स्वर्ग के देवता भी ऐसे ही ।

उपरोक्त पंक्तियों में हमारा तात्पर्य यह बताने का है कि अपनी विचारधारा और मानसिक अव्यवस्था के ऊपर संसार का प्रिय और अप्रिय होना निर्भर है । इसलिये हम अपने जीवन को जैसा बनाना चाहते हैं स्वेच्छा पूर्वक बना सकते हैं । जिन परिस्थितियों में हम रहना चाहते हैं, जो वस्तुएँ प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें निस्सन्देह प्राप्त किया जा सकता है । इस प्राप्ति का सर्वप्रधान उपाय यह है कि अपने आपको अनुकूल बनावें, अपने अन्दर वह बल, योग्यता और आकर्षण पैदा करें जिसके द्वारा इच्छित वस्तुओं को प्राप्त किया जा सके । किसी वस्तु को प्रचुर मात्रा में प्राप्त करने और उसे अधिक समय तक टिकाये रखने के लिये व्यक्तिगत विशेषताओं की आवश्यकता है । किसी की कृपा से कुछ सुख-सुविधा प्राप्त भी हो जाय तो वह न तो अधिक समय ठहरती है और न वह उसकी उन्नति में सहायक होती है, वरन् उलटा विपत्ति में फँसा देती है । दुर्गुणी मनुष्य को यदि कहीं से एक लाख रुपया अनायास ही मिल जाय तो वह फैशन परस्ती आदि दुष्कर्मों में थोड़े ही समय में उसे फूँककर बराबर कर देगा । उसके हाथ बीमारी, बदनामी, दुश्मनी, शोक, पश्चात्ताप ही रहेंगे । उस रुपये से जितना सुख उठाया था उसकी अपेक्षा अनेकों गुना दु:ख शोक उसके पल्ले बँध जायगा, इस प्रकार अन्तत: वह एक लाख रुपया उस दुर्गुणी मनुष्य की भीतरी और बाहरी अशान्ति का ही कारण बनेगा । उसका लोक और परलोक उससे बनेगा नहीं, उलटा बिगड़ेगा ।

एक उत्तम प्रकृति का, भले स्वभाव का आदमी मामूली घर में पैदा होकर भी अपने सद्गुणों के कारण लोगों के हृदयों में अपने लिये स्थान प्राप्त करता है । रुपया कमाता है, बड़ा बनता है, यशस्वी होता है, प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, चारों ओर से उस पर सहायता बरसती है, सच्चे मित्र उसके स्वभाव सुगन्ध के कारण उसके आस-पास सदा ही मँडराते रहते हैं । ऐसी प्रकृति के मनुष्य के लिये उसकी गरीबी भी अमीरी से बढ़ कर है । जो आनन्द और उल्लास बदमिजाज अमीरों को कभी स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता उसे वह अपनी मामूली दशा में भी प्राप्त करता है ।

सुखों की कुँजी लोग बाहर तलाश करते हैं । अमुक देवी देवता, ग्रह-नक्षत्र, भूत-पलीत जन्त्र-तन्त्र, राजा-रईस, सन्त-महन्त, की कृपा से जो लोग अपने को सुखी बनाने की आशा करते हैं वे भारी भूल में हैं । दुनिया में केवल एक ही शक्ति है जो मनुष्य का उत्थान पतन करती है वह है-"अपनी मानसिक स्थिति" जो कोई महत्त्व को प्राप्त हुआ है इसी महा शक्ति की कृपा से हुआ है, जिसका नाश हुआ है, इसी के शाप से हुआ है । दूसरों की सहायता से हम अपनी इस शक्ति को उत्तम बना सकते हैं और फिर उस उत्तमता के द्वारा स्थायी महत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि हमारी अयोग्यताएँ जहाँ की तहाँ बनी रहें और अनायास ही सुख सौभाग्य प्राप्त हो जाय ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चोरी, जुआ, बेईमानी आदि के द्वारा कोई व्यक्ति थोड़े समय में अयोग्यताएँ होते हुए भी धनी बन सकता है, परन्तु स्मरण रहे यह धन उसे आन्तरिक सुख जरा भी न दे सकेगा, उलटी उसे अशान्ति और क्लेश की जलती ज्वाला में धकेल देगा । ऐसी सम्पत्ति का होना, न होने से भी बुरा है ।

हम अपने पाठकों को सुसम्पन्न देखना चाहते हैं । हमारी इच्छा है कि इस पुस्तक के पाठकों के पास धन हो पैसे के अभाव में उन्हें अपनी प्रतिष्ठा और उन्नति से वंचित न रहना पड़े । हम चाहते हैं कि समाज में आपका आदर हो, हर जगह आपकी बात पूछी जाय, सदैव आपकी प्रशंसा हो, सब लोग आपके ऊपर स्नेह रखें, सच्चे मित्रों और सहायकों की वृद्धि हो, स्वास्थ्य उत्तम रहे, किसी वियोग का विपत्ति का सामना न करना पड़े, घर वाले सिर आँखों पर रखें, बड़े-बूढे आशीर्वाद दिया करें, छोटे आज्ञा पालन में खड़े रहें, पत्नी प्राण के समान प्रिय समझे, बराबर वालों की भुजा समझे जावें समाज आपको अपना नेता मानें, आपके चेहरे पर प्रसन्नता नाचती रहे अन्तःकरण आनन्द में डूबा रहे, व्यापार आपका खूब चमकें, मजबूर दूसरी जगह की अपेक्षा आपके यहाँ काम करना पसन्द करें, ग्राहक आपको छोड़ना न चाहें, यह सब बातें आपको प्राप्त हो सकती हैं, निश्चय हो सकती हैं । हम शपथ पूर्वक कहते हैं कि उपरोक्त सिद्धियों को प्राप्त करना मनुष्य के लिये बिलकुल आसान है । यह तीव्र इच्छा और दृढ़ साधना किसी में मौजूद है तो उसके लिए उपरोक्त स्थिति को प्राप्त करना एक हँसी खेल के समान है ।

संजीवन विद्या का लाभ यह है कि वह जिस मनुष्य को आती है उसे उपरोक्त सभी सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं । इस विद्या में जो जितना पारंगत होता जाता है उसे उसी मात्रा में सफलता प्राप्त होती जाती है । अपनी विचार धाराएँ योग्यतायें, आदतें, भावनाएँ, सतोगुणी बना लेना यही संजीवन विद्या का सार है । शास्त्र कहता है सत्वं सुखं संजयति'' सत् से सुख उपजता है । यदि आप अपने को सुखी बनाना चाहते हैं तो अपने अन्दर दृष्टि डालिये, अपनी बुराइयों का सुधार कीजिए, अपने में सद्गुण उत्पन्न कीजिए । 'स्व' को सँभालते ही पर सँभल जाता है । दुनिया दर्पण है, इसमें अपनी ही शकल दिखाई पड़ती है । पक्के मकान में आवाज गूँजकर प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है, इसी प्रकार अपने गुण, कर्म, स्वभावों के अनुरूप प्रत्युत्तर संसार में मिलता है । हम जिधर चलेंगे छाया भी पीछे-पीछे उधर ही चलेगी । इसलिए उचित है कि सुख प्राप्त करने का अपने का अपने को अधिकारी बनावें, अपने आचरण और विचारों में समुचित संशोधन करें यही सफलता का मार्ग है । इस मार्ग पर चलना ही संजीवन विद्या का साधन है ।

## अपने सच्चे स्वरूप को पहचानों

कहा जा चुका है कि जो पशुओं सी जिन्दगी से ऊँची मनुष्योचित्त जिन्दगी जीना चाहते हैं उन्हें उचित है कि जीवन कला-संजीवन विद्या सीखें । दूसरे अध्याय में बताया है कि परिस्थितियों का मनुष्य स्वयं निर्माण करता है, सुख और दुख अपने ही अन्दर हैं इनमें से जिसे चाहें इच्छानुसार बढ़ाया जा सकता है । स्वेच्छापूर्वक जीवन को आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण बनाया जा सकता है । इस तीसरे अध्याय में हम यह बतायेंगे कि उन्नतिशील, सुखी और प्रतिष्ठायुक्त जीवन बनाने के लिये किस सिद्धान्त का अवलम्बन करना चाहिये । किसी आधारशिला पर खड़ा होना चाहिये ।

संसार में जितने भी ज्ञान हैं उन सब में ''आमज्ञान'' बड़ा है । यों तो हर एक सम्पत्ति ज्ञान का ही परिणाम है परन्तु आत्मज्ञान सारे सुखों का पिता है-हर एक इच्छा को पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष है, इस लिये उसे सब से बड़ा सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है । 'आत्मज्ञान' मूल मन्त्र यह है कि ''मैं शरीर नहीं, महान् आत्मा हूँ ।'' यह मन्त्र जिसकी अन्तःचेतना में जितना गहरा घुस जाता है उसका जीवन उतना ही सरस सरल और सुन्दर हो जाता है ।

जब आप अपने को ''अविनाशी आत्मा'' मानते हैं, जब अपने-अपने अन्तःकरण मैं यह भावनाएँ दृढ़ कर लेते हैं कि मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ-तो आपको शरीर और शरीर से सम्बन्धित वस्तुओं का मोह ममत्व उतना ही रहता है, जितना कि आवश्यक है । अनावश्यक मोह ममता मानसिक दुःखों की जननी है । हर एक अनावश्यक वस्तु दुःखदायी होती है पेट भरा हुआ हो, भोजन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की आवश्यकता न हो तो भी आप पेट में ठूँसना बन्द न करें तो वह अनावश्यक भोजन विष तुल्य होकर उलटी, दस्त, पेट का दर्द आदि तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा करता है । डॉक्टर लोग कहते हैं कि शरीर के किसी भाग में फॉरेनमैटर विजातीय द्रव्य एकत्रित होने के कारण ही बीमारी पैदा होती है । जब उस जहर को बाहर निकाल दिया जाता है तो बीमारी अच्छी हो जाती है, जलन, पीड़ा, बैचेनी मिट जाती है । ठीक यही बात मानसिक पीड़ाओं के सम्बन्ध में हैं, अनावश्यक मोह ममता रूपी विजातीय पदार्थ जब मन में भर जाता है तो अशान्ति, शोक, क्रोध, चिन्ता आदि की कोई सीमा नहीं रहती । पग-पग पर वेदनाओं के पर्वत सामने खड़े दिखाई देते हैं ।

मनुष्य जीवन में दु:ख हैं उसमें तीन चौथाई भाग मानसिक दु:खों का और एक चौथाई भाग शारीरिक दु:खों का है । फोड़ा, ज्वर, दर्द आदि तकलीफ देने वाली बीमारियाँ कभी-कभी और थोड़े समय के लिये होती हैं । अस्वभाविकता पूर्ण जीवन बिताने पर भी दयालु प्रकृति माता हलका-हलका दण्ड देती है । बीमारियों में बहुत आदमी ग्रसित हैं तो भी अधिकांश बीमारों की अधिकांश बीमारियाँ ऐसी हैं जो सह्य हैं, अधिक कष्टदायक नहीं हैं । कब्ज, प्रदर, प्रमेह, दाह, खुजली, कम दिखाई देना, तिल्ली, जिगर, स्वेत, कुष्ठ आदि अनेक रोग ऐसे हैं जो लम्बी मुद्दतों साथ रहे आते हैं और उनसे विशेष कष्ट नहीं होता । दर्द करने वाले रोग किसी को कभी-कभी थोड़े समय के लिये होते हैं । जीवन को भार बना देने वाले रोग शारीरिक नहीं, मानसिक होते हैं । किसी का पुत्र मित्र या सम्बन्धी मर जाय तो उसे इतना अधिक शोक होता है, इतनी पीड़ा होती है, इतना खून सूखता है, जितना कि बहुत कठिन कष्टकारक शारीरिक रोग में भी शायद न होता । रुपये पैसे का कोई बड़ा नुकसान हो जाने से मनुष्य तिलमिला जाता है । चिन्ता की उपमा चिता से दी गई है । चिन्ता मृत शरीर को जलाती है, परन्तु चिन्ता जीवित को ही जला डालती है । तृष्णा में व्याकुल होकर मनुष्य प्यासे पक्षी की तरह तड़फड़ाता फिरता है । लोभ के वशीभूत होकर बड़े रोमहर्षक शिंकजों में अपनी गर्दन फँसा देता है और फिर असह्य वेदना सहता है, क्या इस प्रकार के कष्ट किसी शारीरिक रोग में होते हैं ? मानसिक कष्ट से व्याकुल होकर लोग आत्म-हत्या करते हैं परन्तु ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे कि शरीर कष्ट से पीड़ित होकर किसी ने आत्महत्या की हो । इन सब बातों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने से पता चलता है कि बड़े से बड़ा शारीरिक कष्ट भी मानसिक कष्ट की तुलना में छोटा है । निस्सन्देह मनुष्य के जीवन में जो कष्ट है उनमें तीन चौथाई भाग मानसिक कष्टों का है ।

शोक, चिन्ता, क्रोध, तृष्णा, लोभ, भय, निराशा आदि कोई दृश्य पदार्थ नहीं है जिनकी चोट लाठी, तलवार, छुरी आदि की तरह लगती हों, न इनका कोई विष है जो फोड़े की तरह दर्द या ज्वर की तरह बैचेनी पैदा करता है फिर भी मनुष्य इनके द्वारा लाठी या बीमारी की चोट से भी अधिक कष्ट पाता है । फिर क्या कारण है कि मानसिक वेदनाओं से मनुष्य इस कदर पीड़ित पाये जाते हैं ? कारण स्पष्ट है-मोह ममता ही इन समस्त दुखों को उत्पन्न करने वाले हैं । उन्हीं की प्रेरणा से पाप दुराचार और दुष्कर्मों की उत्पत्ति होती है । अब विचार करना है कि सारे दु:खों के उत्पादक यह अनावश्यक मोह कहाँ से उत्पन्न होता है इसकी उत्पत्ति का स्थान है-"अपने को शरीर मानने वाला दृष्टिकोण ।" जब मनुष्य अपने को साढ़े तीन हाथ वाला लम्बा, हाड़-माँस वाला शरीर मानता है तो शरीर के भोगों और उससे सम्बन्धित रखने वाले पदार्थों को अपना समझता है, उन्हें प्राप्त करने और अपने अधिकार में रखने की अत्यधिक इच्छा करता है, परन्तु यह इच्छा अस्वाभाविक अनावश्यक और ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है इसलिये हमेशा पूरी नहीं हो सकती, जब इस इच्छा की पूर्ति में विघ्न उपस्थित होता है, इच्छित वस्तु हाथ से निकल जाती है या प्राप्त नहीं होती तभी मनुष्य मानसिक कष्टों का अनुभव करता है ।

भाई चाहता है कि मेरा भाई मर न जाय, धनी चाहता है कि मेरी लक्ष्मी चली न जाय, निर्धन चाहता है कि कल ही मैं अमीर बन जाऊँ परन्तु क्या यह सच इच्छाएँ पूरी होना सम्भव है । यदि यह इच्छाएँ पूरी हो जाँय तो संसार का कार्यक्रम ही बन्द हो जाँय । मृत्यु को कौन पसन्द करता है ? परन्तु यदि सब लोग सदा जीवित रहें तो यह पृथ्वी थोड़े ही दिनों में मनुष्यों से पट जायगी, फिर खाने-पीने की चीजें पैदा होना तो दूर सोने और खड़े होने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को भी जगह न मिलेगी । यदि धन एक ही स्थान पर अचल रहे तो अमीर सदा के लिये अमीर और गरीब सदा के लिये गरीब हो जायेंगे । यदि बिना आवश्यक योग्यता और परिश्रम के हर एक की इच्छा आसानी से बहुत जल्द पूरी हो जाया करे तो भी मानव जाति की सारी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता कुछ ही समय में शिथिल और नष्ट हो जायगी । विश्व का संचालन ठीक रीति से होता रहे, पुरानी चीजें बिगड़ती और नई बनती रहें, इसलिये ईश्वर ने संसार की हर वस्तु को परिवर्तनशील बनाया है, वीर और सुयोग्यों के लिये उपहार रखे हैं और कुपात्रों को विजयश्री से वंचित रखा है । विघ्न बाधाओं से लड़कर मजबूत होवे, प्रतिभा का विकास होने देने के लिये आकस्मिक आपत्तियाँ बनाई गई हैं । यह सब सृष्टि के साधारण और स्वाभाविक नियम हैं । यह बातें न होती तो यह संसार इतना सुन्दर और चहल-पहल भरा हुआ न होता । हर एक की इच्छा आसानी से पूर्ण होती रहती तो जीवन और चैतन्यता के सारे चिह्न नष्ट होकर सब लोग अर्द्ध मूर्च्छित और अर्द्ध मृतक अवस्था में जीवनयापन करते होते ।

नष्ट होना, नया बनना, विघ्न, विपत्ति, परिवर्तन, संघर्ष, यह सब विश्व के बिल्कुल ही साधारण नियम हैं । यह इतने प्रबल हैं कि किसी की इच्छा और अनिच्छा की परवाह न करते हुए सृष्टि के आदि से चले आ रहे हैं और अन्त तक चलते जायेंगे । इन सब बातों को आम तौर से प्राय: सभी लोग जानते हैं, फिर भी वे उपरोक्त तथ्यों के विरुद्ध बड़ी-बड़ी ऊँची आशाएँ बाँध लेते हैं और जब संयोगवश प्रकृति के नियमों से वे इच्छाएँ टकराती हैं तो रोते चिल्लाते हैं । प्रियजन की मृत्यु, धन का नाश, आकस्मिक आपत्ति, असफलता आदि के अप्रिय अवसर उपस्थित होने पर मानसिक शोक, सन्तापें में डूब जाते हैं और जीवन को दु:ख पूर्ण भार रूप एवं अशान्त बना लेते हैं । अनावश्यक मोह ममता की कैसी विचित्र माया है, कैसा दु:ख जनक परिणाम है ।

जब तक मनुष्य अपने को शरीर मानता है, तब तक उपरोक्त मोह ममता का बन्धन भी बँधा ही रहेगा । दोनों एक दूसरों से सम्बन्धित हैं । शरीर की भूख भोग है, इसलिये शरीरधारी के लिये शरीर की प्रिय वस्तुएँ, धन, सम्पदा पदवी, स्त्री, पुत्र, सेवक, भोग, ऐश-आराम, मनोरंजन, मालिनी आदि की जरूरत है ही । उनके प्राप्त होने पर प्रसन्न होना और न प्राप्त होने पर रोना चिल्लाना भी मामूली बात है । परन्तु सृष्टि के नियम ऐसे हैं कि उपरोक्त इच्छाएँ सदा के लिये पूर्ण नहीं रह सकती, जब और शाखाएँ इतनी विस्तृत हैं कि आये दिन कोई न कोई विघ्न उपस्थित होता रहेगा, अतएव मानसिक कष्ट भी रोज होता ही रहेगा । इस प्रकार मानसिक वेदनाएँ जिन पर तीन चौथाई दु:ख निर्भर बना ही रहेगा और मानव जीवन सदा दु:खी एवं नीरस ही बना रहेगा ।

अपने आपको अविनाशी आत्मा मानने से शरीर का महत्त्व एक औजार या कपड़े की तरह रह जाता है । उससे सम्बन्ध रखने वाले पदार्थ या शरीरों से भी उतनी ही ममता रहती है । जितनी कि स्वाभाविक और आवश्यक है । यदि कोई परिवर्तन उपस्थित होता है तो उसे धैर्य पूर्वक सहन कर लिया जाता है । कारण यह है कि अपने को आत्मा मानने वाला व्यक्ति शरीर में अधिक लिप्त नहीं होता, शरीर से सम्बन्ध रखने वाली हानियाँ भी उसे कोई बड़ी भारी हानि प्रतीत नहीं होती । किसी पदार्थ का नाश, परिवर्तन का अभाव अधिक दु:ख नहीं पहुँचाता, शरीर के विषय में जब पृथकता का, क्षण भंगुरता का, भाव मन में जमा तो स्वार्थ की परिभाषा भी बदल जाती है । शरीर भाव में जगाने वाला मनुष्य धन, भोग और पदवी में अपना स्वार्थ समझता था, परन्तु जिसने अपने आपको आत्मा अनुभव कर लिया है, आत्म ज्ञान प्राप्त कर लिया है उसका स्वार्थ इस मर्यादा से ऊँचा उठ जाता है और वह सुख-दुख की अनुभूति वस्तुओं में न करके भावों में करने लगता है । सत् विचारों, सत्कर्मों, सतगुण, सत् स्वभाव, यह उसके सुख के विषय बन जाते हैं । यह चार्रो ही पदार्थ अपने हाथ में हैं, इसमें किसी प्रकार से किसी की रूकावट नहीं, इसलिए सुख और सन्तोष की सारी कुंजी अपने हाथ में आ जाती है । अपने को शरीर मानने वाले

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


का सुख दूसरों के हाथ में है । सुन्दर स्त्री, पर्याप्त धन, तरह-तरह के भोग, आपत्तियों से बचाव, हानि और बिछोह का न होना, यह सब बातें कोई मनुष्य क्षण भर में स्वेच्छा पूर्वक प्राप्त नहीं कर सकता । चाहे उसकी कितनी तीव्र इच्छा और लालसा क्यों न हो तो भी इन इच्छाओं का पूर्ण रूप से अल्पकाल में पूरा हो जाना सम्भव नहीं है, दूसरों के सहयोग के द्वारा और दैवी कृपाओं के आधार पर किसी हद तक यह वस्तुएँ समयानुसार प्राप्त होती हैं, अतएव सुख और सन्तोष के लिए उसे पराधीन रहना पड़ता है; भला पराधीनता में सुख कहाँ ? सुख की इच्छा करते हुए भी वह प्रायः उससे बहुत अंशों में वंचित ही रहता है । इसके विपरीत अपने को आत्मा मानने में पूर्णतः स्वाधीनता मिलती है, सुख और सन्तोष के खजाने पर अपना पूरा-पूरा अधिकार हो जाता है । सत् विचार करना, सत् भावनायें रखना, सत् कर्म करना यह पूरी तरह अपने हाथ में है, कोई भी इसमें विघ्न पैदा नहीं कर सकता, दूसरे किसी के सहयोग की भी इसमें आवश्यकता नहीं है । कोई व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो सत के मार्ग पर प्रसन्नता पूर्वक चलता है । असुर व्यक्ति के तामसी, निष्कृष्ट, नाशवान, वस्तुओं को सम्पत्ति मानते हैं, किन्तु देवी वृत्ति के लोगों के लिए सत् भावनायें और सत् कर्म ही सम्पत्ति है । असुर लोगों को जितना सुख इन्द्रिय सुख, पैसा और अहंकार की पूर्ति में मिलता है उससे असंख्य गुना सुख देवों को सत्कर्म रूपी दैवी सम्पत्ति में प्राप्त होता है । अपने को शरीर मानने वालों के कार्य भोग और लोभ प्रधान होने के कारण प्रायः पतन की ओर ले जाने और अधर्म पूर्ण होते हैं, किन्तु अपने को आत्मा मानने वाले लोग शरीर की सुख की अपेक्षा आत्म सुख, परलोक सुधार, भविष्य निर्माण, जीवन शक्ति में स्वार्थ समझते हैं इसलिये उनके कार्य सत् तत्त्व से सने हुए होने के कारण ऊँचा उठाने वाले और धर्ममय होते हैं । अधर्म में दुःख और धर्म में सुख है । भोग में दुख और त्याग में सुख है । असत् में दुःख और सत् में सुख है, इस लिये जो मनुष्य अपने को शरीर मानकर शरीर सुख की दृष्टि से तुच्छ कार्य करता है वह सदा दुःखी रहेगा और जिसका स्वार्थ आध्यात्मिक है उसका मार्ग सत् युक्त होगा; उसके लिये हर घड़ी सुख ही सुख है । दुःख का कहीं एक तिल भी उसके लिए नहीं है ।

आप अपने को आत्मा माना कीजिए । ''मैं '' या ''हम'' शब्द का अर्थ आत्मा है । यह बात अन्तःकरण में बहुत गहराई तक उतार लीजिए, उसे भली प्रकार हृदयंगम कर लीजिए । आपके मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं, आपके मन में जो विश्वास जमे हुए हैं उनका सावधानी से निरीक्षण कीजिए और देखिए कि वे ''आत्मा'' जैसे महान तत्त्व के गौरव के अनुरूप हैं या नहीं ? आप जो काम करते हैं या करना चाहते हैं, विचार कीजिए कि वे परमात्मा के राजकुमार के करने योग्य हैं या नहीं ? यदि आपका विवेक स्वीकार करे कि हाँ, यह विचार और कर्म आत्मा के महान गौरव के अनुरूप हैं, योग्य हैं, उचित है, तब तो उन्हें प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किये रहिए । यदि आपका अन्तःकरण कहे कि यह विचार और कार्य तुच्छ हैं, निष्कृट हैं, ओछे हैं, आत्म सम्मान के विरुद्ध हैं तो उन्हें साहस पूर्वक परित्याग कर दीजिए, दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर दूर फेंक दीजिए । जिस विचार या कार्य को करने से आपको भय, झिझक, लज्जा, अधर्म, असन्तोष, पश्चाताप का अनुभव होता हो, उसे एक क्षण के लिए भी मत अपनाइये भले ही उसके द्वारा सांसारिक बड़े से बड़ा लाभ होने वाला हो । जिस विचार पर कार्य को करने से आपको प्रसन्नता, आनन्द, उल्लास, सन्तोष, गर्व, महत्त्व, सम्मान, उन्नति, पुण्य का अनुभव होता है उसे अपनाने में एक क्षण के लिए भी विलम्ब मत कीजिए, भले ही उसके द्वारा कोई सांसारिक घाटा या हानि दिखाई देती हो । यही आत्मज्ञान का मार्ग है । केवल आत्मज्ञान, आत्मज्ञान बकने या अमुक पोथी पत्रों को रटने या अमुक कर्मकाण्ड करने से आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता । अपने रोज-रोज को व्यावहारिक कार्यक्रम में से असत् का त्यागने और सत् को ग्रहण करने की तीव्र निरीक्षक बुद्धि जब निरन्तर काम किया करती है तब तक कुछ समय में जाकर शारीरिक स्वार्थों की अपेक्षा आत्मिक स्वार्थों को महत्त्व देने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की आदत पड़ती है । इस आदत को डालने के लिए जो भी प्रयत्न किये जाते हैं वे सब 'आत्मज्ञान के साधन' कहे जा सकते हैं ।

जीवन में से तीन चौथाई दु:खों का अन्त कर डालने के लिए, शोक, अभाव, क्रोध, निराशा, एवं पाप जन्म अशान्तियों का मूलोच्छेदन करने के लिए, आत्मज्ञान की आवश्यकता है । इसके बिना कोई भी मनुष्य मानसिक सुख प्राप्त नहीं कर सकता । यह हो नहीं सकता कि वस्तुओं का नाश या परिवर्तन न हो, या आकस्मिक आपत्तियाँ न आवें यह हो नहीं सकता कि सब अभाव पूर्ण हो जाय, सब इच्छाएँ पूरी हो जावें, अतएव यह भी नहीं हो सकता कि वस्तुओं के द्वारा सुख की इच्छा रखने वाले को वास्तविक सुख मिल सकें । वस्तुओं में सुख है भी नहीं-सुख है-स्वार्थ भावना में । अपना बेटा, प्रिय लगता है दूसरे का नहीं, अपना घर अच्छा लगता है दूसरे के घर से कुछ मतलब नहीं । अपने बेटे और पराये बेटे के शरीरों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, अपने घर और दूसरे के घर की ईंट, चूने में भी कोई विशेष फर्क नहीं है, परन्तु एक प्यारा लगता है, दूसरे से कुछ मतलब नहीं, कारण यही है कि जिसमें स्वार्थ है, उसी में प्रियता है । यह स्वार्थ भावना जहाँ भी जिस वस्तु पर भी जम जायगी वही प्यारी लगने लगेगी, इसमें रस, आनन्द आने लगेगा । अपना दृष्टिकोण आध्यात्मिक रखकर, आत्मा के लाभ, हित और सुख पर विचार करते हुए यदि सत् विचार और सत् कार्यों में स्वार्थ भावना का समावेश कर दिया जाय तो इसमें धन, भोग, पदवी आदि से भी अधिक आनन्द आने लगता है । साथ ही तीन चौथाई दु:खों का भी अन्त हो जाता है, यही आत्मज्ञान का महात्म्य है ।

'संजीवनी विद्या' का उद्देश्य मनुष्य के दु:खों का अन्त करना और सुखों को बढ़ाना है । इस दिशा में उसका आरम्भिक आदेश यह है कि आत्म ज्ञान प्राप्त करो, अपने को शरीर नहीं आत्मा समझो, आत्मा के लाभ हित और सुख को अधिक महत्त्व दो । जितना-जितना इस तत्व को ग्रहण करते जाओगे उतना ही मानसिक क्लेशों का अन्त होता जावेगा, तुच्छ और ओछे विचार एवं कार्यों से छुटकारा मिलता जावेगा, सत् विचार और सत् कर्मों में रुचि बढ़ती जावेगी, फलस्वरूप अन्त: करण में से विशुद्ध आनन्द का झरना झरने लगेगा और ऐसे ऊँचे सुख की अनुभूति होने लगेगी जिसकी तुलना में संसार के सारे सुख तुच्छ है । इस मार्ग पर चलते हुए उस वस्तु की प्राप्ति हो जावेगी जिसे प्राप्त करके और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता, जहाँ जाकर फिर पीछ लौटना नहीं होता । कहा भी गया है-

**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धात परमं मम ।**

## उद्देश्यों को ऊँचा रखिए

पिछलें पृष्ठों में बताया गया है कि ''अपने वास्तविक रूप को पहिचानिए'' सदैव आत्मभाव में तल्लीन रहिए, अपने में से शरीर भावना हटाकर आत्म भावना स्थापित कीजिए । यह भावना जब कुछ गहराई में उतरने लगती हैं तो आत्म गौरव के अनुरूप ही विचार और कार्य करने की इच्छा होती है । जब कोई व्यक्ति ऊँचे पर पहुँचता है तो वह अपने स्थिति के अनुरूप ही बाह्य रूप रेखा का निर्माण करता है, वैसा ही ठाठ बाट बनाता है । बड़े आदमियों को अपनी इज्जत अपनी पोजिशन, और शान का सदा ध्यान रहता है, वे अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही कोठी, बँगला, मोटर, फर्नीचर, कपड़े, नौकर, आदि की व्यवस्था करते हैं । पण्डित लोग अपनी फैशन की पोशाक पहनते हैं । साधु लोग अपने सम्प्रदाय के अनुरूप रंगीन कपड़े, कमण्डल, चीमटा, मृगछाला, आदि धारण करते हैं हर जगह देखिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी अपने खास तरह के विचार विश्वास रीति रिवाज, पहनाव उढ़ाव रखते हैं । शीशी में जिस वस्तु का इत्र रखा होता है उसकी ही महक बाहर फैलती है । गन्ध से इत्र का अटूट सम्बन्ध है । बड़े आदमी अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही अपनी बाह्य रूप रेखा करते हैं, आत्मज्ञानी भी अपने गौरव के अनुरूप ही विचार और कार्यों को ग्रहण करता है ।

लाखों रुपये का कारोबार करने वाला सेठ अपने बड़े-बड़े व्यापारों के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी बातें सोचता है वैसे ही कार्य करता है । किन्तु

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दूसरा भिक्षुक एक पाई माँगकर किसी प्रकार पेट भर लेने की चिन्ता में डूबा रहता है । लखपति सेठ चाहे वैसी ही भली बुरी अवस्था में क्यों न हो, उस पाई माँगने वाले भिक्षुक जैसे विचारों को अपने मन में कभी भी स्थान न देगा । इसी प्रकार आत्म-ज्ञानी मनुष्य तुच्छ, छोटे, कमीने, गन्दे विचारों को मन में न आने देगा, वह जब भी सोचेगा अपनी उच्च स्थिति के अनुरूप ही विचार करेगा, वैसे ही सिद्धान्त और विश्वास स्थिर करेगा, किसी भी छोटे-बड़े प्रश्न पर विचार करेगा तो उच्च दृष्टिकोण से ही करेगा क्योंकि उसके लिये यही उचित, उपयुक्त एवं स्वाभाविक है । कोई बड़ा अफसर सड़क पर दाने बीनता न देखा जायगा, ऐसे छोटे काम करने की इच्छा उसे स्वप्न में भी नहीं होती इसी प्रकार कोई आत्मज्ञानी घृणित, कमीने, ओछे और पतित कार्यों में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं ले सकता ।

आप अपने जीवन का दृष्टिकोण ऊँचा बना लीजिये, आत्मचेतना में जाग्रत हुए व्यक्ति के लिये यही उचित है कि वह सब छोटी बड़ी बातों के ऊपर आध्यात्मिक प्रकाश डाले और हर छोटी बड़ी समस्या को ऊँची विचार धारा के अनुसार हल करे । जब आप अपनी विचारधारा इस प्रकार की बना लेंगे तो जो भी कार्य करेंगे वे सब यज्ञ स्वस्थ धर्म मय होंगे । एक आदमी अपनी गृहस्थी का पालन करने के लिये दिन भर मेहनत मजूरी करता है, जो कुछ कमाता है उसे घर गृहस्थी के लिये खर्च कर देता है, किन्तु उसकी भावनाएँ ओछी हैं, स्त्री को वह अपने योग्य सामग्री समझता है, लड़के को एक व्यापार समझता है जो जिसके ऊपर इस वक्त जो खर्च किया जा रहा है वह बाद में ब्याज समेत वसूल कर लिया जायगा, लड़कियों को वह एक ईश्वरीय कोप या पुराने पापों का फल समझता है, जो अपना कर्ज वसूल करने के लिये उसके यहाँ पैदा हुई हैं । विधवा बहन को वह काम काज उठाकर भोजन पानी वाली दासी समझता है, मन में ऐसी-ऐसी ओछी भावनाएँ रखकर वह कुटुम्ब का पालन करता है । अब एक दूसरे आदमी का उदाहरण लीजिए, वह अपनी गृहस्थी को ईश्वर की सुरम्य वाटिका समझता है और अपने को उसका विनम्र माली समझता है । कर्त्तव्य पालन, ईश्वरीय आज्ञा की दृष्टि से वह मजूरी करता है और कुछ पाता है उसे खुशी-खुशी घर कामों में लगा देता है ।

दोनों ही व्यक्ति बाह्य दृष्टि से देखने पर एक ही प्रकार का काम करते दिखाई देते हैं परन्तु दोनों की दृष्टिकोण में अन्तर होने के कारण उन कार्यों के फल में जमीन आसमान का अन्तर होगा । पहला आदमी गृहस्थी का पालन करते हुए भी ओछी स्वार्थपरता में तल्लीन है । फल कार्य के रूप से नहीं वरन् भावनाओं के अनुसार मिलता है । उसकी भावना मालिकी की है । गृहस्थी को अपनी सम्पत्ति समझता है । सम्पत्ति की रखवाली करना एक लोक व्यवहार है, इस में पुण्य फल की कोई बात नहीं है, किन्तु दूसरा आदमी जो अपने को मालिक नहीं समझता वरन् सेवक, माली समझकर निस्वार्थ भाव से उनके पालन के लिये मजूरी करता है वह एक प्रकार का यज्ञ करता है । आन्तरिक भावनाओं से ही ईश्वर के दरबार में पाप-पुण्य परखा जाता है भले ही दोनों मजूरों का बाहरी काम एक समान है परन्तु ईश्वर के दरबार में दोनों का लेखा अलग-अलग तरह से लिखा जायगा । जिसने स्वार्थ की ओछी भावनाओं से गृहस्थ का पालन किया वह अपना बदला साथ के साथ पा चुका । स्त्री ने उसकी काम तृप्ति कर दी, बेटी ने उसके इन्द्रिय विकार के साथ आने वाली जिम्मेदारी को वसूल किया, बेटे ने उसका नाम चला दिया, बहन ने उसका नाम चला दिया, बहन ने रोटी खाकर मजूरी कर दी । हिसाब किताब बराबर हुआ । परन्तु जो आदमी कर्त्तव्य भावना से गृहस्थ का संचालन कर रहा है उसके लिए उसकी पवित्र भावनाएँ पुण्य रूप होकर भविष्य में श्रेष्ठ फल देने वाली है, कुटुम्बी में प्रत्युपकार में जो थोड़ा बहुत बदला चुका दिया सो अलग रहा, इस प्रकार वह दूने नफे से रहा ।

उच्च विचार धारा से प्रेरित होकर काम करना दूने नफे का ही सौदा नहीं है, वरन् इसमें असंख्य गुने लाभ है । बदला चाहने वाले, मालिकी जताने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाले व्यक्ति के घर के कई आदमी यदि पूर्णरूप से उसकी इच्छा को पूर्ण नहीं करता, उसके अनुशासन में नहीं रहता तो उसे बड़ा दु:ख होता है, क्रोध आता है और कलह खड़ा होता है, उसकी गृहस्थी उसके लिए नरक बन जाती है । इसके विपरीत दूसरे आदमी को लीजिए वह अपनी खुदगर्जी के लिए कोई बात किसी घर वाले से नहीं चाहता, हाँ न्याय, औचित्य और हित की दृष्टि से उन्हें सम्मतियाँ अवश्य देता है । यदि घर का कोई आदमी उसकी बात को नहीं मानता, विरुद्ध आचरण करता है तो भी उसे क्रोध करने का, दु:खी होने का, कलह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अपने कर्त्तव्य को उसने ईमानदारी से पूरा कर दिया, वह सुधारने का या उचित मार्ग पर चलाने का ठेकेदार नहीं है । माली बगीची को सींचता है परन्तु यदि कोई पेड़ खराब जमीन, खराब बीज या देशकाल के कारण इच्छित उन्नति न करे तो माली को दोषी नहीं ठहराया जा सकेगा यह स्वयं भी दु:खी न होगा । सफलता और असफलता दोनों ही हालत में उसे प्रसन्नता है । इस प्रकार भी उच्च विचारों वाला मजदूर नफे में रहा ।

छोटे अबोध बालकों में भी प्रेम, हित और पवित्रता को परखने की शक्ति होती है, बड़े मनुष्यों में तो यह और भी अधिक होती है । मालिकी की भाषा में कुटुम्ब का पालन करने वाले और सेवा एवं कर्त्तव्य की दृष्टि से पालन करने वाले के रंग-ढंग में, विचार व्यवहार में, बड़ा भारी अन्तर होता है, इस अन्तर को घर का हर एक आदमी बड़ी आसानी से समझ जाता है । भले के साथ भला बुरे के साथ बुरा व्यवहार करने की इच्छा हर एक नुष्य में होती है । घर का हर एक सदस्य अपने संरक्षक के भावों को ताड़ता है और जैसा कुछ प्रभाव उस पर पड़ता है उसी के अनुसार प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है । दर्पण में वैसी ही शकल दीखेगी जैसी वास्तव में अपनी होगी, पक्के मकानों में जो शब्द कहे जाते हैं उन्हीं की प्रतिध्वनि गूँजती है । जैसा व्यवहार-भाव-उद्देश्य दूसरे का पाया जाता है वैसा ही प्रत्युत्तर देने की हर एक की इच्छा होती है । प्रत्यक्ष या परोक्ष में, सामने या पीठ पीछे, मुँह पर या पेट में स्वार्थी के लिए स्वार्थ पूर्ण और परमार्थी के लिए परमार्थ पूर्ण भाव हर एक के मन में उठते हैं । घर वालों का भी यही व्यवहार होता है । स्वार्थी से, मालिकी गाँठने वाले से । वे मन ही मन कुढ़ते हैं और अधूरे मन से उसका सहयोग करते हैं इसके विपरीत निस्वार्थ, सेवक के लिए सच्चा प्रेम करते हैं, प्राण तक देने को हाजिर रहते हैं । इस प्रकार भी स्वार्थी की अपेक्षा परामार्थी अच्छा रहा ।

यहाँ उच्च विचारों की महत्ता सम्बन्धी मोटी-मोटी बातों पर ही थोड़ा प्रकाश डाला जाना सम्भव है । इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक जितना ही विचार किया जाय उतना ही यह विदित होता हैं कि विचारों को ऊँचा रखने में लौकिक और पारलौकिक इतने अधिक लाभ हैं जिनकी गणना नहीं की जा सकती । उद्देश्य को ऊँचा रखते हुए जो कार्य किया जाता है उसमें एक कलापूर्ण सौन्दर्य दिखाई देता है, वह कार्य ऐसा बढ़िया सफलता युक्त होता है जिस पर हर किसी को मुग्ध होकर मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ती है । उदाहरण लीजिए-एक मोची ओछे स्वार्थ को लेकर जूते बनाता है, तली में बसली भर देता है, खराब चमड़े के ऊपर, चमकीली पालिश करके उसे खूबसूरत बनाता है, दाम भी कुछ सस्ते रखता है ताकि उसकी चीज जल्दी बिक जावें । पहले-पहले उसे कुछ सफलता भी मिलती है, कुछ दिनों खूब बिक्री होती है, परन्तु जैसे ही उसकी चालाकी खुलती है, उसके ग्राहक नाराज हो जाते हैं, फिर कभी उसके यहाँ से माल नहीं खरीदते निन्दा करते हैं और अपने मित्रों को भी उसके यहाँ जाने से सचेत करते हैं । फल यह होता है कि वह मोची बदनामी का, घृणा का, पात्र बन जाता है, कोई उसका सम्मान एवं विश्वास नहीं करता, जूतों का, पात्र बन जाता है, जूतों के अलावा उसकी और बातें भी झूठी, नकली समझी जाती हैं, थोड़े दिनों में उसका व्यापार गिर जाता है । बदनामी के साथ-साथ दरिद्रता भी उसके पल्ले बँधती है, ओछे विचारों के साथ काम करने का यही नतीजा है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अब आप एक उच्च विचारों वाले मोची का उदाहरण लीजिए, उसका दृष्टिकोण जल्द से जल्द किसी प्रकार अपना घर भर लेना नहीं है वरन् लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अच्छे जूते तैयार करना है । वह बढ़िया चमड़े से, मजबूत, मुलायम और बहुत अच्छे जूते पूरी दिलचस्पी, मेहनत और बुद्धिमत्ता के साथ बनाता है । कीमत भी बाजिब रखता है । उसकी दुकान आरम्भ होती है, जो ग्राहक एक बार चीज खरीद लेता है, सदा के लिए उसका ग्राहक बन जाता है, अपने सम्बन्धियों से प्रशंसा करके उसके लिये नये ग्राहक जुटाता है । मोची की बिक्री बढ़ती है । अच्छे जूते के लिए उसकी कीर्ति फैलती, ईमानदारी के लिए वह प्रसिद्ध हो जाता है । जीवन के दूसरे कार्यों में भी लोग उसे ईमानदार और विश्वसनीय समझते हैं । परिणाम यह होता है कि वह प्रतिष्ठा और पैसा दोनों ही दृष्टि से काफी उन्नति कर जाता है ।

जो चीज उच्च विचारों की प्रेरणा से तैयार की जायगी, उस में बनाने वाले का पूरा मन लगेगा अधिक दिलचस्पी होगी अतएव यह चीज बढ़िया बनेगी । बढ़िया चीजें बनाने की उसकी योग्यता बढ़ती जायगी, धीरे-धीरे वह अपने क्षेत्र में बहुत होशियार और ऊँचे दर्जे का कारीगर गिना जाने लगेगा । इसके विपरीत जो आदमी लालच में लिप्त होकर जल्दी से उलटी सीधी चीज बनाकर ज्यादा से ज्यादा लालच बटोरने में लगा है उसकी दिलचस्पी पैसे में है, चीज में नहीं । अधूरे मन और आधी दिलचस्पी से तैयार की हुई चीज खराब बनेगी । खराब चीजें बनाते-बनाते उसकी योग्यता घटने लगेगी, हाथ बिगड़ने लगेगा और अपने क्षेत्र में वह नालायक, फूहड़ और हेटा कारीगर गिना जायगा । उसकी बनी हुई खराब चीजें जहाँ भी जायेगी बनाने वाले को गालियाँ दिलवायेंगी । आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुसार यह गालियाँ व्यर्थ नहीं जाती वरन् अदृश्य भूतपलीत की तरह उसके पीछे लगी रहती हैं और समय-समय पर उसे बीमारी, चोट, घाटा, शोक आदि दिया करती है । किन्तु जिस आदमी ने उत्तम वस्तु बनाई थी उसकी प्रशंसा के साथ जो आशीर्वाद प्राप्त होते हैं वे गुप्त रीति से अनेक प्रकार सहायताएँ पहुँचाते रहते हैं कोई आदमी मुँह से प्रशंसा न करे तो भी उसकी सन्तुष्टता एक प्रकार का मौन आशीर्वाद ही है । ऐसे मौन आशीर्वाद मनुष्य के सुखों में असंख्य गुनी वृद्धि करते हैं । अनपेक्षित सहायताएँ इस प्रकार उपस्थित करते हैं मानों किसी देवता ने प्रसन्न होकर उपहार दिया हो ।

नीचता पूर्ण ओछे विचार रखना, बेईमानी, धोखेबाजी, खुदगर्जी की नीति का अवलम्बन करना, लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से एक बहुत ही हानिकारक, दुःखदायी कार्य है इस मार्ग पर चलने वाले को पग-पग पर घृणा, बदनामी, तिरस्कार, अपमान, उपहास और अविश्वास का सामना करना पड़ता है । उसको सच्चे मित्र और सच्चे सहयोगियों का मिलना प्रायः असम्भव हो जाता है । ऐसे व्यक्ति के लिए उसके जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण उन्नति या सफलता प्राप्त करना कठिन है । उसे सदा कुढ़न द्वेष, विरोध, निन्दा, क्रोध, ईर्ष्या और अशान्ति में ही अलग रहना पड़ेगा । ओछी मनोवृत्ति एक प्रकार की अग्नि है जो मस्तिष्क की सारी शान्ति और प्रसन्नता को जलाकर खाक कर देती है । जो आदमी कमीने विचार और स्वभावों को अपने मन में स्थान देते हैं उसका चित्त सदा मरघट की तरह सुलगता रहता है । किन्तु जिनने उच्चविचारों को अपना लिया है, कर्त्तव्य धर्म को प्रधानता देते हुए कार्य करते है वे दिन-दिन आत्मिक और सांसारिक उन्नति के आनन्द के मार्ग पर बढ़ते जाते हैं ।,

आप प्रातःकाल उठने से लेकर रात को सोने तक तक के सारे कार्यों को उच्च विचारों के साथ कर्त्तव्य भावना के साथ किया कीजिए । शौच, स्नान, भोजन आदि के समय शरीर को ईश्वर की पवित्र, धरोहर, लोक सेवा का साधन, धर्म साधना का पथ समझ कर उसकी रक्षा के लिए यह सब कार्य किया कीजिए । व्यापार व्यवसाय को लोक हित की प्रधानता देते हुए करिए । आश्रितों का भरण-पोषण अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने की दृष्टि से किया कीजिए । बालकों को शिक्षा देते समय, समाज में सुशिक्षित व्यक्तियों की बुद्धि का भाव

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कीजिए । मस्तिष्क द्वारा कोई भी विचार आरम्भ करें या शरीर द्वारा कोई भी कार्य आरम्भ करें पहले उसमें उच्च उद्देश्य समन्वित कर लीजिए ईमानदारी, सेवा और पवित्रता की कसौटी पर अपने को हर घड़ी कसते रहिए । क्षण-क्षण में अपने कार्य और विचारों की समीक्षा करते रहिए कि यह हमारे आत्म गौरव के अनुरूप है या नहीं । ईश्वर के अविनाशी राजकुमार को, सत्यं, शिवं, सुन्दरं आत्मा का जो नीति ग्रहण करनी चाहिए वही नीति अपनी है या नहीं ? यह निरीक्षण बार-बार कीजिए और बार-बार गलतियों को सुधारने का प्रयत्न करिए । उच्चता की ओर अग्रसर होने के लिए नीचता से बराबर लड़ते रहिए, इस संग्राम को निरन्तर जारी रखिए । कभी अपनी हार होती दीखे, पिछड़ जाय, फिसल जाय, तो भी हताश या निराश मत हूजिए, पर हर पराजय के बाद अधिक सावधानी और साहस के साथ सम्भल-सम्भल कर आगे बढ़िए । इस प्रकार प्रयत्न जारी रखने से कुछ समय में आप उच्च विचारों के आदी हो जावेंगे और फिर नीचता से, ओछेपन से, उसी प्रकार घृणा होने लगेगी जैसे कि एक सात्त्विक भोजन करने वाले को माँस से घृणा होती है ।

संजीवन विद्या का निष्कर्ष यह है कि अपने आत्मा के, गौरव के ही अनुरूप विचारों को मस्तिष्क में और कार्यों को शरीर में स्थान दीजिए । अपने दृष्टिकोण को ऊँचा रखिए, उच्चताई, ईमानदारी, सेवा और कर्त्तव्य की भावना से अपनी हर एक गतिविधि को परिपूर्ण कर लीजिए, ऐसा करने से आप की प्रसन्नता और सफलता में अनेक-अनेक गुनी वृद्धि हो जायगी ।

## सुनिये सबकी-करिये मन की

एक बात को लेकर आप कई आदमियों के पास जावे और उसके ऊपर उनकी सलाह ले तो आप को मालूम होगा कि उनकी सम्मति एक दूसरे से बहुत भिन्न है । लोगों में आपस में बहुत मतभेद होता है जितने आदमी उतने ही दिमाग, जितने दिमाग उतने ही विश्वास देखे जाते हैं । खासतौर से हमारे देश में तो अभिन्नता और भी अधिक देखी जाती है क्यों कि यहाँ विद्या, गम्भीर अध्ययन विवेक और विचार विमर्श की कमी रहती है और अन्ध विश्वास जन श्रुति, किम्वदन्ती तथा किसी प्रभावशाली व्यक्ति के कहने को लोग वेदवाक्य मानकर उसी के आधार पर अपने विश्वासों का निर्माण करते हैं । ऐसी दशा में उन से उचित सम्मति का प्राप्त होना कठिन ही होता है । अन्य देशों में जहाँ विद्या और विचारशीलता की अधिकता है वहाँ भी आम लोगों की मोटी सम्मतियाँ अधूरी और परम्पराओं से बुद्धि प्रभावित होती है । विवेक और विचार का अधिक अंश उनमें नहीं होता है । फिर हमारे देश में तो ज्ञान विवेक की बहुत ही कमी है । इसलिए मध्यम श्रेणी के आम लोगों की सम्मति को सुनकर उसे उचित मान बैठना ठीक न होगा ।

आप सत्य के मार्ग पर चलना चाहते हैं, उचित विचारों को ग्रहण करना चाहते हैं, वास्तविकता को अपनाना चाहते हैं, तो आपको भेड़चाल में फँसने से, अल्प ज्ञान वाले अविवेकी पुरुषों की सम्मति के ऊपर निर्भर न रहना होगा, वरन् स्वतन्त्र रूप से अपना रास्ता बनाना पड़ेगा । देखा जाता है कि एक समय जिस प्रकार के विचार और कार्यों की जरूरत होती है दूसरे समय में परिस्थिति बदल जाने के कारण दूसरे प्रकार के विचार और कार्यों को अपनाने की आवश्यकता पड़ती है । परन्तु इस आवश्यकता को विचारशील और तत्त्वदर्शी लोग ही अनुभव करते हैं, वे अनुभव को प्रकट करते हैं, लोगों को समझाते हैं, बुद्धिमत्ता और जाग्रत चेतना वाले लोग उनकी बातों को सुनते और मानते हैं । तो भी अधिकांश लोग वे होते हैं, जिनको विवेक की अपेक्षा पूर्व परम्पराओं पर ही निर्भर रहना अधिक पसन्द होता है । जैसे कई गर्मी के दिनों में रुई की जाकिट और ऊनी ओबरकोट पहने या जाड़े के दिनों में खसकी टट्टियों में पतला कुर्ता पहनकर बैठे और पंखा झलवायें तो उसके मूर्खता पूर्ण कार्यों का सब लोग उपहास करेंगे, बुरा समझेंगे, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि मानव जीवन की सुख शान्ति मय बनाने के प्रश्न पर लोग दूसरा ही रवैया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ग्रहण कर रहे हैं । मुद्दतों पुरानी, आज के समय से बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों की परम्पराओं को जो लोग आज भी पकड़े बैठे हैं और उन्हें ही दूसरों पर भी थोपना चाहते हैं वे लोग समाज में अगुआ, पंच और प्रतिष्ठित समझे जो हैं, उनका कोई विरोध नहीं करता । उनको आयु, जाति सम्पत्ति के कारण जो बड़प्पन प्राप्त होता है उसके साथ ही उनके विचारों को भी बड़प्पन प्राप्त हो जाता है और उस बड़प्पन के भार को उठाने में हमें अपनी आत्मा की पुकार को, ईश्वर की प्रेरणा को कुचलना पड़ता है ।

एक सच्चा आध्यामिक पुरुष, एक संजीवन विद्या का निष्ठावान् साधक, इस असत्य और आत्म वंचना के मार्ग पर एक कदम भी नहीं चल सकता । ''लोग क्या कहते हैं ?'' यह देखने की अपेक्षा वह यह देखता है कि ''उचित क्या है'' ? जो उचित है वही सच्चे मनुष्य का कर्त्तव्य है । सो अविवेकी व्यक्ति क्या कहते हैं, यह जानने की अपेक्षा यह जानना उत्तम है कि एक विवेकवान् की सम्मति क्या है ? जो आदमी लोक बड़ाई के आधार पर चलना चाहता है वह संजीवन विद्या का लाभ नहीं उठा सकता । कारण यह है कि संजीवन विद्या आज के योग्य कार्यों को ही आज करने की प्रेरणा करती-है, किन्तु लोग बाग विवेक को तिलांजलि देकर लकीर के फकीर होना पसन्द करते हैं । आज की सामाजिक प्रथाएँ ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हैं कि उसका पालन करने में मध्यम श्रेणी के मनुष्य को अपनी शारीरिक और मानसिक व्यवस्था का अधिकाँश भाग नष्ट कर देना पड़ता है । घर के किसी वृद्ध पुरुष का स्वर्गवास होता है लोग चाहते हैं कि खूब बढ़ा-चढ़ा भोज दिया जाय । लड़के का विवाह होता है लोग चाहते हैं कि खूब रौनक की जाय, हजारों रुपया खर्च किये जाँय । लड़की का विवाह होता है लम्बे-चौड़े दहेज की ठान ठनती है । विवाह के बाद चलन, दस्तूरों का सिलसिला बँधता है, कई साल तक हर तीज-त्यौहार पर दस्तूर भेजे जाते हैं और लम्बे रकमे खर्च की जाती हैं । घर में लड़का पैदा होता है प्रीति-भोज की ठान ठनती है कहाँ तक कहा जाय शैतान की आँत की तरह वे नेग दस्तूर, कारज त्यौहार इतने बड़े हैं कि एक अच्छा गृहस्थ हर साल काफी रुपया खर्च करने के बाद ही लोगों का मुँह सीधा रख सकता है, वरना जहाँ देखों वहीं नाक भौं सिकोड़े जाते दिखाई देंगे । दस कारज व्यौहार अच्छे हुए थे और एक जरा हलका हो गया तो बस समझ लीजिये कि नाक कटी कटाई रखी है । फिर उसका जुड़ना मुश्किल है ।

हमारा समाज ऐसे कमीने आदमियों से भरा हुआ है, कि खुद एक दिन दावत खाने के तुच्छ स्वार्थ से प्रेरित होकर या किसी भीतरी दुश्मनी का बदला निकालने की गरज से या अपनी मूढ़ता के कारण इस नेग दस्तूरों में खूब पैसा खर्च करने पर जोर लगाते हैं, दबाब देते हैं, ताने कसते हैं और ऐसी मजबूरी पैदा कर देते हैं कि फुसलाहट में आकर या दवाब से लाचार होकर उसे अपनी हैसियत से अधिक खर्च करना पड़ता है । हमारा देश गरीब देश है, यहाँ ९५-९६ फीसदी लोग गरीब हैं । इनकी आमदनी इतनी नहीं होती कि निरोग रहने के लिए जितना दूध, घी, फल आदि घर के सब लोग खा सकें, साफ मकानों में रह सकें, धुले हुए साफ कपड़े पहन सकें, बच्चों को उचित शिक्षा दिला सकें, ज्ञान वृद्धि के लिए पुस्तकें खरीद सकें, बीमारी के समय अच्छा इलाज करा सकें, अनुभव प्राप्ति के लिये यात्राएँ कर सकें, आमदनी बढ़ाने के लिए कुछ पूँजी लगाकर व्यापार आदि कर सकें, मनोरंजन के छोटे-मोटे साधन जुटा सकें, यह सब जीवन की प्राथमिक आवश्यकतायें हैं, किन्तु कितने लोग हैं जो इनको पूरा कर पाते हैं । इनके अभाव में बीमारी, गरीबी, बेवसी, लाचारी, जहालत, अकाल-मृत्यु, कमजोरी आदि से ग्रसित बने रहते हैं । इस पर भी जब इन औसर मौसरों का, देन दहेज का, नेग दस्तूरों का, दबाव पड़ता है तो परिवार की आर्थिक कमर टूट जाती है । कर्ज लेकर या एक-एक ग्रास बचाकर जमा हुआ सारा पैसा जब इन ऊतपने के कामों में नष्ट हो जाता है तो परिवार के कमजोर सदस्यों के प्राणों पर ही आ बनती है । नन्हें-नन्हें बालक, प्रसूता स्त्रियाँ, बीमार या दुर्बल उन अभावों की चक्की में पूर्णत: पिस जाते हैं या अधपिसे हो जाते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


क्या ऐसी स्थिति वांछनीय है ? क्या ऐसे दबाव या फुसलाव को स्वीकार करने वाला सत्य से विमुख नहीं है ? इन असह्य, अनुचित, असत्य दबावों को मानने से सत् पथ के पथिक को इन्कार करना होगा । यदि इनकार नहीं करता है तो अभाव, जन्म दुख, असत्य जन्म दु:ख और आत्मा की पुकार को कुचलने का दु:ख उसे सहन करना पड़ेगा । यह दु:ख मूर्खों द्वारा बाह-वाही न मिलने के दु:ख से अधिक गम्भीर है, अधिक हानिकारक है । यदि ऐसे अनुचित दवाबों से मनुष्य दबता चला जाय तो उसके आत्मा दिन-दिन कमजोर होती चली जाती है ।

केवल विवाह, शादी, मृत-भोज, नेग दस्तूर ही नहीं वरन् हमारी समाज में और भी ऐसी अनेक मान्याएँ और विचार धाराएँ हैं जो अनुचित, अनावश्यक, असामयिक और ढोंग से भरी हुई हैं । किसी समय में वे प्रथाएँ आवश्यक रही होंगी, उन विचारधाराओं का महत्त्व रहा होगा पर आज तो वह सब निरर्थक हैं । प्राचीनता के नाम पर भी अनावश्यक वस्तुएँ हमारे ऊपर लदी हुई हैं । यदि दब्बूपन और दुल मिल नीति से काम लिया ज़ाय, लोक बड़ाई के झूठे लालच को न छोड़ा जाय तो वह कमर को तोड़ देने वाला भार ऊपर ही लदा रहेगा । जीवन के सारे रस को सुखा देगा और नाड़ियों में से सारा रक्त निकाल लेगा ।

दो बिल्कुल स्पष्ट मार्ग अपने सामने हैं या तो पंच-बड़ाई के गुलाम बनकर अपनी जीवनोपयोगी आवश्यकताओं को धूलि में मिला दीजिए या फिर साहस, आत्म-विश्वास एवं विवेक को अपनाकर इन बेहूदगियों को धता बता दीजिए और अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा तथा बहुमूल्य समय आवश्यक कार्यों में खर्च कीजिए । कैसे अचम्भे की बात है कि जो लोग अपने को बुद्धिमान समझते हैं और कहते हैं कि ऐसे भोंदू नहीं हैं कि चाहे कोई हमें ठग लें, बहकाले या गलत रास्ते पर धकेल दे, वे लोग भी निरर्थक रीति रिवाजों में इच्छा न होते हुए भी, दूसरों के बहकावे या दबाव के कारण अपनी शक्ति का बहुमूल्य अंश बरबाद कर देते हैं । कोई प्रिय सम्बन्धी हम से कहें कि अपने घर में से दो हजार रुपये का सामान लाकर उसे सड़क पर जला दो तो उसकी बात को स्वीकार न किया जायगा, परन्तु देखते हैं कि ठीक इसी बात को ब्याह-शादी, कारज, व्यौहार आदि के अवसरों पर स्वीकार कर लिया जाता है । वह बहुत ही सत्यानाशी आर्थिक नीति है जिसके कारण हिन्दू जाति के घरों मे दरिद्रता, अभाव, क्लेश, और दु:खों का ताण्डव नृत्य होता रहता है । धन की होली की तरह स्वाहा करने वाली रीति रिवाजों को जब तक पूतना, सुरसा और ताड़का की तरह नष्ट न किया जायगा तब तक शारीरिक और मानसिक विकास में पग-पग पर विघ्न उपस्थित होते रहेंगे और सदा दु:ख, दुर्भाग्य का ही दर्शन होता रहेगा ।

आप अपने जीवन को आनन्दमय बनाना चाहते हैं तो उसे सड़े, गले, झाड़-झटकों में मत उलझा रहने दीजिए, वरन् उसका स्वतन्त्र रीति से निर्माण कीजिए । अपना सिद्धान्त बना लीजिये 'सुनेंगे सबकी, करेंगे मन की ।' लोग क्या कहते हैं इसे कानों में से सुनते रहिये, परन्तु उसका महत्त्व इतना ही समझिए, जितना कि मेले-ठेलों में होने वाले शोर गुल का महत्त्व होता है किसी देहाती मेले में आप जावें तो वहाँ तमाशबीनों के मुँह से अपने-अपने ढंग के असंख्य शब्द प्रति-क्षण निकल रहे होंगे, ध्वनियाँ एक दूसरे से टकराकर एक प्रकार के गुल-गपाड़े में बदल रहे होंगे, शोर और चें-चें, मैं-मैं, के अलावा और कुछ सुनाई न पड़ रहा होगा । आप उस मेले में जाते हैं तो उस शोर गुल के कौतूहल, आश्चर्य और मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं आपकी दृष्टि में उन ध्वनियों का इतना ही अर्थ और मूल्य है । दुनिया को आप ऐसा मेला समझिए, जिसमें विभिन्न प्रकार की चिड़िया अपनी-अपनी बोली में बोलती हैं । इनको कौतूहल की दृष्टि से देखिए पर इनसे प्रभावित मत हूजिए । सबकी सुनिए, उनमें जो सार हो, सत्य हो, उचित हो, उसे अपने पास रख लीजिए और बाकी कूड़े-कचरे को इस कान सुनिए, उस कान निकाल दीजिए । बिना सोचे विचारे केवल किसी परम्परा के आधार पर आप की शक्तियों को गलत मार्ग में खर्च करना चाहते हैं, उन ओंधी खोपड़ी के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बेलगाम लोगों को बकने झकने दीजिए, उनकी तरफ से अपने कान बन्द कर लीजिए, मुँह फेर लीजिए और वही कीजिए जो उचित है, आवश्यक है, सत्य है ।

आप के प्रियजन आप से तरह-तरह की आशाएँ करते हैं । हर एक के प्रोग्राम अलग-अलग हैं । जल्दी धनी बन जाने की हर एक की प्रेरणा है, आप किसी भी प्रकार अन्धाधुन्ध कमावें वे लोग मनमाना खर्च करें आमतौर से यही आशा एक नौजवान से उसके घर वाले करते हैं । यदि उनकी इच्छाओं के आगे कोई व्यक्ति अधिक से पूर्ण रूप से आम-समर्पण कर देता है तो उसे जल्दी से जल्दी, अधिक से अधिक, धन कमाने की फिक्र पड़ती है । यह सब ईमानदारी से नहीं हो सकता, सब फिर मस्तिष्क की समस्त शक्ति खर्च करके किसी भी प्रकार पैसा कमाने के लिए तत्पर होना पड़ता है । ऐसा करने से प्रियजन खूब प्रसन्न होते हैं, प्रशंसा भी करते हैं, सपूत बताते हैं, परन्तु निश्चय ही कमाई में समस्त विवेक और कर्त्तव्य झोंक देने वाला मनुष्य स्वयं बहुत ही खिन्न और अशान्त हो जाता है । उसका बहुमूल्य जीवन तुच्छ से गोरखधन्धे में निरर्थक चला जाता है । कुछ आदमियों को किसी हद तक प्रसन्न रखने में उसने सफलता प्राप्त की, परन्तु जीवन रूपी अमूल्य रत्न को इस तुच्छ सी कंकड़ी के बदले बेच दिया ।

अपना उद्देश्य किसी को प्रसन्न करना किसी की आज्ञा का पालन करना, किसी के इशारे पर नाचना, किसी का अन्ध-भक्त बनना नहीं होना चाहिए । वरन् यह होना चाहिए कि उचित, आवश्यक, लाभदायक, धर्मसंगत, विवेकयुक्त कार्य को करेंगे । इस नीति को अपनाने के पश्चात् आम तौर से लोगों की नाराजी, निन्दा, भर्त्सना, बुराई तथा विरोध का सामना करना पड़ता है । आनन्दमय जीवन के मार्ग में प्रधान बाधा यही है । जिसने इस बाधा को तुच्छ समझकर ठुकरा दिया वह आगे बढ़ जाता है, जो इस कागज के हाथी से डर गया उसको पश्चात्ताप और शोक में डूबना पड़ता है । आप किसी बात को इसलिए स्वीकार मत कीजिए कि उसे बहुत लोग, बूढ़े लोग, धनी लोग ही कहते हों । सत्य हमेशा उचित, आवश्यक, न्याय युक्त तथ्यों से एवं ईमानदारी से भरा हुआ होता है, थोड़ी संख्या में कम उम्र के, गरीब आदमी भी यदि ऐसी बात को कहते हैं तो वह मान्य हैं । अकेला आपका आत्मा ही यदि सत्य की पुकार करता है तो वह पुकार लाखों मूर्खों की बक-बक से अधिक मूल्यवान है । जो उचित है वह ग्रहण करने योग्य है । आप किसी बात का निर्णय करने के लिए बाहर की ओर मत ताकिए, अपने अन्तरात्मा से पूछिए, अन्तराल में बैठा हुआ परमेश्वर जो बात उचित बतावें, उसको केवल उसी को आप ग्रहण करिए । भले ही उसे स्वीकार करने से आपको निरर्थक लोक बड़ाई से वंचित रहना या बेहूदे लोगों का विरोध सहन करना पड़े ।

धर्म-अधर्म की, सुर-असुर की, पाप-पुण्य की, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की, स्वर्ग-नरक की, हमारे अन्दर और बाहर हर घड़ी होती है । ऐसे अवसर पग-पग पर आते हैं, जब दुनियादारी एक तरफ घसीटती है और सत्य दूसरी ओर खींचता है । दुनिया की आवाज में बहुत शोरगुल होता है किन्तु सत्य धीरे से, चुपके से बोलता है । इस खींच तान में आपको सत्व की ओर झुकना पड़ता है । धर्म का, सुर का, पुण्य का, कर्त्तव्य का, सत्य का पक्ष लेना है और शैतान के तूफानी आडम्बर का कष्ट सहकर भी विरोध करना है । तभी तो आप जीवन को आनन्दमय बना सकेंगे, सुख शान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ा सकेंगे ।

सत्य ही सुख का पिता है, किन्तु यह सत्य अनेक प्रवंचनाओं ने ढक रखा है, इन अविवेक के अँधेरे पर्दों को हटाकर आप सत्य को स्वीकार कीजिए, उसे ही ग्रहण कीजिए । संजीवन विद्या का तीसरा पाठ यह है कि ''सुनिये सब की, और करिये मन की ।'' लोग क्या कहते हैं यह देखना छोड़ दीजिए और यह सोचिए कि मैं जो करता हूँ वह उचित है या अनुचित । उचित ही सत्य है और सत्य ही सुख का पिता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# बलवान बनिये, जागरूक रहिये !

जीवन एक प्रकार का संग्राम है । इसमें घड़ी-घड़ी में विपरीत परिस्थितियों से, कठिनाइयों से, लड़ना पड़ता है । मनुष्य को अपरिमित विरोधी तत्त्वों को पार करते हुए अपनी यात्रा जारी रखनी होती है । दृष्टि उठाकर जिधर भी देखिये उधर ही शत्रुओं से जीवन घिरा हुआ प्रतीत होगा । ''दुर्बल सबलों का आहार है ।'' यह एक ऐसा कड़ुआ सत्य है जिसे लाचार होकर स्वीकार करना ही पड़ता है । छोटी मछली को बड़ी मछली खाती है । बड़े वृक्ष अपना पेट भरने के लिये आस-पास के असंख्य छोटे पौधों की खुराक झपट लेतता है और वे बिचारे छोटे पौधे मृत्यु के मुख में चले जाते हैं । छोटे कीड़ों को चिड़िया खा जाती हैं और उन चिड़ियों को बाज आदि चिड़ियाँ मार खाती हैं । गरीब लोग, अमीरों द्वारा दुर्बल बलवानों द्वारा सताये जाते हैं । पुरुष ने स्त्रियों के साथ और सवर्णों ने अछूतों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया है । इन सब बातों पर विचार करते हुए हमें इस निर्णय पर पहुँचना होता है कि यदि सबलों का शिकार होने से, उनके द्वारा नष्ट किये जाने से, अपने को बचाना है तो अपनी दुर्बलता को हटाकर इतनी शक्ति तो कम से कम अवश्य ही संचय करनी चाहिये कि चाहे कोई यों ही चट कर जावें ।

रोगों के कीटाणु जो इतने छोटे हैं कि आँखों से दिखाई भी नहीं पड़ते हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर डालने और मार डालने के लिये चुपके ही चुपके प्रयत्न करते रहते हैं हमारे शरीर में उन्हें थोड़ी भी जगह मिल जाय तो बड़ी तीव्र गति से वे हमें बीमारी और मृत्यु की ओर खींच ले जाते हैं । जरा सा मच्छर मलेरिया का उपहार लिये हुए पीछे फिरा करता है, मक्खियाँ हैजा की भेंट लिये तैयार खड़ी है । बिल्ली घर में से पीने की चीजें चट करने के लिए, चूहा कपड़े काट डालने के लिए, बन्दर बर्तन उठा ले जाने के लिये तैयार बैठा है । बाजार में निकलिये-दुकानदार खराब माल देने, कम तोलने, दूने पैसे वसूल करने, की घात लगाये बैठा है, गठकटे, ठग, चोर, उचक्के अपना-अपना दाव देख रहे हैं, ढोंगी, मुफ़्त खार अपना जाल अलग ही बिछा रहे हैं । चोर, गुण्डे, दुष्ट, अकारण ही जलते, दुश्मनी बाँधे और नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं । हित सम्बन्धी भी अपने-अपने स्वार्थ साधना की प्रधानता से ही आप से हित या अनहित बढ़ाते घटाते रहते हैं ।

चारो ओर मोर्चे बन्दियाँ बँधी हुई हैं, यदि आप सावधान न रहें, जागरूकता से काम न लें, अपने को बलवान् साबित न करें तो निस्सन्देह इतने प्रहार चारों ओर से होने लगेंगे कि उनकी चोटों से अपने को बचाना कठिन हो जायगा । ऐसी दशा में उन्नति करना, आनन्द प्राप्त करना तो दूर शोषण, अपहरण, चोट और मृत्यु से बचना मुश्किल होगा । अतएव सांसारिक जीवन में प्रवेश करते हुए इस बात को भली प्रकार समझ लेना चाहिए और समझ कर गाँठ बाँध लेनी चाहिये कि केवल जागरूक और बलवान व्यक्ति ही इस दुनिया में आनन्दमय जीवन के अधिकारी हैं । जो निर्बल अकर्मण्य और लापरवाह स्वभाव के हैं वे किसी न किसी प्रकार दूसरों द्वारा चूसे जायेंगे और आनन्द वंचित कर दिये जायेंगे । जिन्हें अपने स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा करते हुए प्रतिष्ठा के साथ जीने की इच्छा है उन्हें अपने दुश्मनों से सजग रहना होगा, उनसे बचने के लिये बल एकत्रित करना होगा ।

दुनिया तीन तत्त्वों की बनी हुई है । आत्म ज्ञान से आप सात्त्विक तत्त्वों के साथ व्यवहार कर सकते हैं । प्रेम, ईमानदारी और भलमनसाहत से मध्यम श्रेणी के सहृदय तत्त्वों को ठीक रख सकते हैं । किन्तु तमोगुणी, आसुरी तत्त्वों के साथ उपरोक्त दोनों ही प्रकार के व्यवहारों से काम नहीं चलता । उसके लिए शक्ति और जागरूकता की ही आवश्यकता है । दुष्ट, अन्यायी और बदमाशों को झुकाने के लिये शक्ति प्रधान वस्तु है । पशु वृत्ति के लोग केवल लाभ और भय को समझते हैं । ढोर से आप विनय करें कि-महाशय जी अमुक रास्ते से चलिये, अमुक प्रकार कार्य किया कीजिए-तो यह प्रार्थनाएँ, सद्भावनाएँ उस पर कुछ विशेष प्रभाव न डालेंगी उसे ठीक रास्ते पर चलाने के लिए लाठी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चाहिए जिसे भय से वह सीधा चले, या फिर चारे दाने का लोभ चाहिए जिसके आकर्षण से उसके कदम नियत मार्ग पर उठते चलें । शक्ति में दोनों ही गुण हैं-भय का भी, लालच का भी । बलवान से लोग डरते हैं कि नाराज होकर कहीं हमें कुछ नुकसान न पहुँचा देते हैं, बलवान की ओर लोभ के कारण लोग आकर्षित भी होते हैं कि इसकी कृपा से हमें सहायता मिलेगी, लाभ होगा, विपत्ति से बचाव होगा । हम देखते हैं कि शक्ति सम्पन्नों के साथ अकारण ही अनेक छुट भैये चिपके रहते हैं, उनकी खुशामद के लिए उचित और अनुचित सहयोग देते हैं, इसका मूल कारण वही पशु मनोवृत्ति है जो लोभ और भय को भी समझती है, स्वीकार करती है ।

संजीवन-विद्या का चौथा पाठ यह है कि आप बलवान बनिए, शक्ति संचय कीजिए । जब तक आप अपनी योग्यता नहीं प्रकट करते तब तक लोग अकारण ही आपके रास्ते में रोड़े अटकावेंगे, किन्तु जब उन्हें यह मालूम हो जायगा कि आप शक्ति सम्पन्न हैं तो वे जैसे अकारण दुश्मनी ठानते थे वैसे ही अकारण मित्रता करेंगे । बीमारी के लिये भोजन विष तुल्य हो जाता है किन्तु स्वस्थ मनुष्य को बल प्रदान करता है । जो सिंह रास्ता चलते सीधे-साधे आदमियों को मार कर खा जाता है वही सिंह सरकस मास्टर के आगे दुम हिलाता है और उसकी आज्ञा का पालन करता हुआ, बहुत बड़ी आमदनी कराने का साधन बन जाता है । यह बात हर क्षेत्र में लागू होती है, हिन्दू लोग अछूतों के लिए और स्त्रियों के लिए बड़े तीसमारखाँ हैं, उनके ऊपर जुल्म करने के लिए एक से एक बढ़कर हथियार निकालते हैं, किन्तु जिन लोगों के द्वारा खुद सताये जाते हैं, खुद अछूत समझे जाते हैं, उनके आगे सारी शेखी भूलकर डरते, काँपते और हाँ में हाँ मिलाते हैं । यह पशु स्वभाव दुनिया से कम नहीं है इसकी शैतानी चोटों से बचने के लिये, आत्म-रक्षा के लिए आपको बलवान बनना, शक्ति सम्पन्न होना आवश्यक है ।

अच्छे स्वभाव वाले को बलवान कहते हैं, परन्तु आज के युग में यह परिभाषा अधूरी है । इस समय शरीर बल, पैसे का बल, बुद्धि का बल, प्रष्ठिता का बल, साथियों का बल, साहस का बल, यह सब मिलकर एक पूर्ण बल बनता है । आज के युग में बलवान वह है जिसके पास उपरोक्त छह बलों में से कई बल हों । आप अपने शरीर को बलवान बनाइये परन्तु साथ-साथ अन्य पाँच बलों को भी एकत्रित कीजिए । किसी के साथ बेइन्साफी करने में इन बलों का उपयोग करें, ऐसा हमारा कथन नहीं है, परन्तु जब आपको अकारण सताया जा रहा हो तो आत्म-रक्षा के लिए यथोचित रीति से इनका प्रयोग भी कीजिए, जिससे पशुओं का दुस्साहस न करने की शिक्षा मिले । बलवान बनना पुण्य है, क्योंकि इससे दुष्ट लोगों की कुप्रवृत्ति पर अकुंश लगता है और दूसरे कई दुर्बलों की रक्षा हो जाती है ।

आनन्द पुरुषार्थी को प्राप्त होता है । विजयलक्ष्मी की बरमाला, बलवानों के गले में पड़ती है, यह वसुन्धरा वीर भोग्या है, उद्योगी पुरुष-सिंहों को भी लक्ष्मी प्राप्त होती है । आनन्द और उल्लास का जीवन भी वीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं । निर्बल दुर्बलों को तो इस लोक और परलोक में रोना-झीखना, पिसना, पिटना ही हाथ रहता है । इसलिए वास्तविक जीवन, आनन्दमय जीवन जीने की इच्छा रखने वाले हर एक व्यक्ति को शक्तिशाली बलवान बनना चाहिए ।

आगे बढ़ने आत्मोन्नति करने के लिए अपरोक्त सूत्रों को अपनाना और तदनुरूप आचरण करना अनिवार्य है । जो ऐसा कर सकेंगे वे इसी जीवन में स्वर्ग के समान आनन्द प्राप्त करेंगे ।



# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

## परिस्थितियों को सन्तुलन पर हावी न होने दें

मस्तिष्क मानवी सत्ता का ध्रुव केन्द्र है । उसकी शक्ति असीम है । इस शक्ति का सही उपयोग कर सकना यदि सम्भव हो सके तो मनुष्य अभीष्ट प्रगति पथ पर बढ़ता ही चला जाता है । मस्तिष्क के उत्पादक इतने चमत्कारी हैं कि इनके सहारे भौतिक ऋद्धियों में से बहुत कुछ उपलब्ध हो सकती हैं ।

मस्तिष्क जितना शक्तिशाली है, उतना ही कोमल भी है । उसकी सुरक्षा और सक्रियता बनाये रहने के लिए यह आवश्यक है कि अनावश्यक गर्मी से बचाये रखा जाय । पेन्सलीन आदि कुछ औषधियों ऐसी हैं जिन्हें कैमिस्टों के यहाँ ठण्डे वातावरण में रेफ्रीजरेटरों में-सम्भालकर रखा जाता है गर्मी लगने पर वे बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं । औषधियाँ ही क्यों अन्य सीले खाद्य पदार्थ कच्चे या पक्की स्थिति में गरम वातावरण में जल्दी बिगड़ने लगते हैं । उन्हें देर तक सही स्थिति में रखना हो तो ठण्डक की स्थिति में रखना पड़ता है । मस्तिष्क की सुरक्षा के मोटे नियमों में एक यह भी है कि उस पर गरम पानी न डाला जाय- गरम धूप से बचाया जाय । बाल रखाने और टोपी पहनने का रिवाज इसी प्रयोजन के लिए चला है कि उस बहुमूल्य भण्डार को यथा सम्भव गर्मी से बचाकर रखा जाय । सिर में ठण्डी प्रकृति के तेल या धोने के पदार्थ ही काम में लाये जाते हैं । इससे स्पष्ट है कि मस्तिष्क को अनावश्यक उष्णता से बचाये रहने की सुरक्षात्मक प्रक्रिया को बहुत समय से समझा और अपनाया जाता रहा है ।

यह बाह्योपचार हुआ । वस्तुतः मस्तिष्कीय सम्पदा खोपड़ी के भीतर है । बाहरी गर्मी के ऋतु प्रभाव से तो हड्डी से ऊपर का भाग ही बचाया जा सकता है । भीतरी क्षेत्र में अनावश्यक गर्मी न बढ़ने देने की बात मुख्य है । बाह्य सुरक्षा के लिए तो प्रकृति ने भी मजबूत तिजोरी जैसी खोपड़ी पहले से ही रच दी है । सृष्टा को पता था कि जो भीतर अवयव जितने अधिक महत्त्व पूर्ण है । उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध उतनी ही अधिक अच्छी तरह किया जाना है । हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, जिगर जैसे अति महत्त्वपूर्ण अवयवों को हड्डियों के मजबूत खोखले में बन्द करके रखा गया है । इन सब में मस्तिष्क की उपयोगिता और कोमलता सर्वोपरि है । इसलिए उसे खोपड़ी की मजबूत डिब्बी में इस तरह सम्भालकर रखा गया है जिसे खजाने की तिजोरी या मोती की सीप, राजा की किलेबन्दी की उपमा दी जा सकती है ।

मस्तिष्क का बहुमूल्य यन्त्र तभी ठीक तरह काम कर सकता है जब उसे शान्तिमय वातावरण में-एयर कण्डीशन कमरों जितने तापमान में काम करने दिया जाय । मर्यादा से अधिक गरम रहने पर इन्जन, मोटर या अन्य मशीनें अपना काम करना बन्द कर देती हैं ठीक यही स्थिति मस्तिष्क की है । उससे ठीक काम लेना हो तो सन्तुलन परिस्थितियाँ बनाये रहना आवश्यक है । फोटो फिल्में अनावश्यक गर्मी सहन नहीं कर पातीं । इसी प्रकार मस्तिष्क अब भी उत्तेजना एवं आवेश की स्थिति उत्पन्न होने पर एक प्रकार से अपना काम करना ही बन्द कर देते हैं । यदि कुछ करते भी हैं तो वह उलटा होता है । वह उलटापन लाभ के स्थान पर हानि ही उत्पन्न करने लगता है ।

मस्तिष्क को बाहरी गर्मी, तेज धूप, गरम पानी किन्हीं रसायनों से मिलती है किन्तु भीतरी गर्मी उत्पन्न होने का कारण उत्तेजनायें होती हैं । उनकी मात्रा जितनी बढ़ेगी उतनी ही मानसिक संरचना को स्थायी रूप से हानि पहुँचेगी और सामने पड़े कामों को ठीक तरह कर सकना उनके लिए सम्भव न रहेगा । देखा जाता है कि कोई आवेश चढ़ने पर आदमी अर्धविक्षिप्त जैसी स्थिति में जा पहुँचता है । उसकी कल्पना, निर्णय, वचन, हरकतें सब कुछ विचित्र हो जाती हैं । क्रोध का आवेश जिस पर चढ़ रहा हो उसकी गतिविधियों पर ध्यानपूर्वक दृष्टि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


डाली जाय तो पता चलेगा कि पागलपन में अब बहुत थोड़ी कमी रह गई है । अधिक क्रोध आने पर मस्तिष्कीय द्रव एक प्रकार से उबलने लगता है और यदि उसे ठण्डा न किया जाय तो मानसिक रोगों से लेकर हत्या आत्महत्या जैसे क्रूर कर बैठने जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

क्रोध का आवेश शरीर पर क्या असर डालता है और बुद्धि को कैसा भ्रष्ट कर देता है उसके उदाहरण हम सब आये दिन अपने आस-पास ही देखते रहते हैं । गुस्से से तमतमाया चेहरा राक्षसों जैसा बन जाता है । आँखें, होंठ, नाक आदि पर आवेशों के उभार प्रत्यक्ष दीखते हैं । मुँह से अशिष्ट शब्दों का उच्चारण चल पड़ता है । रक्त प्रवाह की तेजी से शरीर जलने लगता है । हाथ पैर काँपते और रोंये खड़े होते देखे जाते हैं । ऐसा व्यक्ति स्वयं एक समस्या बन जाता है । ऐसी दशा होने पर हितैषी लोग सबसे पहला काम यह करते हैं कि आवेशग्रस्त को येन-केन प्रकारेण शान्त करते हैं । जिस कारण उत्तेजना आई थी उसका निवारण करने पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना कि आवेग ठण्डा करने पर, किसी भी प्रतिकूलता में उतनी हानि नहीं होती जितनी कि आवेशग्रस्तता से । इस मोटी जानकारी से हर कोई परिचित रहता है इसलिए हितैषियों का प्रथम कार्य गुस्सा ठण्डा करना होता है । वैज्ञानिक तथ्य यह है कि एक घण्टे का क्रोध एक दिन के तेज बुखार से भी अधिक जीवनी शक्ति का विनाश करता है ।

रक्तचाप में व्यतिरेक दो प्रकार के होते हैं - एक ऊँचा दूसरा नीचा । उच्च रक्तचाप- हाई ब्लड प्रेशर- में बैचेनी बढ़ने के कारण कष्ट होता है । निम्न रक्तचाप-लोब्लड प्रेशर-के लक्षण तो भिन्न होते हैं, पर कष्ट उससे भी उतना ही होता है । लो ब्लड प्रेशर का मरीज भारी कमजोरी अनुभव करता है और अपने को अपंग असहाय जैसी स्थिति में पाता है । इन दो ही प्रकार के व्यतिरेकों में रोगी की कार्य क्षमता एवं मन:स्थिति पर हानिकारक प्रभाव लगभग एक जैसा ही होता है ।

क्रोध की उच्चरक्तचाप से और खिन्नता की निम्न रक्तचाप से तुलना की जा सकती है । क्रोध वर्ग के द्वेष, घृणा, आक्रमण, विनाश जैसे क्रूर प्रकृति के विचार एवं कृत्य गिने जा सकते हैं । खिन्नता वर्ग में निराशा, चिन्ता, शोक, भय, संकोच जैसी निष्क्रियता उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों की गणना होती है । इन्हें ज्वार भाटा के समतुल्य और अस्थिरता अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला कहा जा सकता है । उफनते समुद्र में तैरना, कितना कठिन होता है इसे सभी जानते हैं ।

शोक ग्रस्त, भयभीत, निराश व्यक्ति की मनोदशा उसके अच्छे खासे स्वास्थ्य को देखते-देखते तोड़-मरोड़कर रख देती है । चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है । सही आवाज तक नहीं निकलती । लगता है शरीर को काठ मार गया, कुछ करते-धरते नहीं बनता है । भूख-प्यास गायब हो जाती है । नींद आने में भारी कठिनाई पड़ती है । क्रोध में भी लगभग ऐसा ही होता है अन्तर इतना भर रहता है कि खिन्नता में बर्फ में जमने और गलने जैसी स्थिति होती है तो उत्तेजना में आग से जलने उबलने जैसी । सामान्य स्थिति तो दोनों ही दशाओं में नष्ट होती है और न केवल मस्तिष्क वरन् साथ-साथ शरीर भी अपनी साधारण गतिविधियाँ जारी रख सकने में असमर्थ बन जाता है ।

मस्तिष्कीय क्षमता एवं कुशलता बढ़ाने का महत्त्व सभी जानते हैं और इसके लिए अध्ययन, परामर्श सम्पर्क अनुभव सम्पादन, अभ्यास जैसे कितने ही साधन जुटाते हैं । प्रसन्नता से मानसिक उर्वरता बढ़ने की बात को ध्यान में रखते हुए मनोरंजन के लिए कई ऐसे कार्य करते हैं जिनमें समय और पैसा काफी लग जाता है । इन रचनात्मक प्रयोजनों से परिचित होते हुए भी न जाने इस तथ्य को क्यों भुला दिया जाता है कि आवेश एवं अवसाद जैसी अव्यवस्था फैलाने वाली मन: स्थिति उत्पन्न न होने दी जाय । लाभ उपार्जन करने की बात का जितना महत्त्व है उतना ही हानि न होने देने का भी । एक ओर लाभ कमाया जाय, दूसरी ओर हानि बढ़ती जाय तो फिर अन्तत: व्यवसाय घाटे में फँसता चला जायगा और दिवालिया बनने की नौबत आ जायगी ।

आवेशों का शरीर पर क्या असर होता है इसका पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सामान्य कार्य-क्षमता को उनके कारण भारी आघात पहुँचता है । आँख, कान, नाक, जीभ, अपना काम मुश्किल से ही आधा-अधूरा कर पाती हैं । जीभ का स्वाद चला जाता है । पेट की भूख उड़ जाती है । कान कुछ का कुछ सुनते हैं । आँखों के सामने गुजरने वाली घटनाओं में से बहुत कम की स्मृति रहती है । तापमान बढ़ता है । रोमांच खड़े होते हैं । साँस तेज चलती है । हृदय की धड़कन और रक्त प्रवाह की तेजी बढ़ती है । यह सारे लक्षण मिलकर जीवनी शक्ति का बड़ी मात्रा में विनाश करते हैं । यह तो यदा-कदा की बात हुई । यदि यह असन्तुलन आदत बन जाय- स्वभाव में सम्मिलित हो जाय तो समझना चाहिए कि व्यक्तित्व की स्थिरता और सुखद सम्भावना समाप्त ही हो चली । ऐसे असन्तुलन-ग्रस्त मनुष्य प्राय: अर्ध विक्षिप्तों जैसी स्थिति में जिन्दगी गुजारते हैं । पग-पग पर उपहासास्पद बनते, तिरस्कृत होते और असफल रहते देखे जाते हैं ।

मानसिक असन्तुलन को परिस्थितिजन्य माना जाता है और कहा जाता है-अपना क्या कसूर है, घटनाक्रम ही ऐसा बन गया कि उत्तेजना या खिन्नता का शिकार बनना पड़ा । तर्क सीधा सा है और सही भी प्रतीत होता है किन्तु वास्तविकता वैसी है नहीं । एक ही परिस्थिति की भिन्न व्यक्तियों पर प्रतिक्रिया देखी जाती है । तनिक सी प्रतिकूलता आने पर एक व्यक्ति बेहतर घबराता और उत्तेजित होते देखा जाता है । जबकि दूसरा व्यक्ति ठीक वैसी ही अथवा उससे भी अधिक प्रतिकूलता में अपना सन्तुलन यथावत् बनाये रखता है । उसे जीवन क्रम का साधारण-सा उतार-चढ़ाव मानता है और घबराने की तनिक भी आवश्यकता अनुभव नहीं करता । उसकी प्रतिक्रिया गड़बड़ी को सुधारने के लिए उपाय सोचने, काम करने और साधन जुटाने में संलग्न होने की होती है । घबराहट उत्पन्न करके असन्तुलन की नई विपत्ति को न्योंत बुलाना उसे मूर्खतापूर्ण लगता है । अस्तु स्वयं परेशान होने और दूसरों को परेशान करने वाली अस्त-व्यस्तता पर वह अपने सहज विवेक से नियन्त्रण कर लेता है । इन घबराने और बिना घबराने वाले दोनों व्यक्तियों के सामने परिस्थिति एक जैसी होते हुए भी मन:-स्थिति में जमीन आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है । यह आत्म-नियन्त्रण का- दृष्टिकोण के परिमार्जन का-प्रतिफल है । एक उससे आतंकित रहता और दु:ख पाता है । दूसरा उसका सामना करके हँसता मुस्कराता रहता है और आये दिन उत्पन्न होती रहने वाली प्रतिकूलताओं को ऐसे ही मजाक मसखरी में उपेक्षापूर्वक उतार ही नहीं देता । दूरदर्शी विवेक को अक्षुण्ण बनाये रहकर उनका समाधान भी सरलतापूर्वक कर लेता है ।

मस्तिष्क को ठण्डा बनाये रहना, उस पर आवेशों का आक्रमण न होने देना एक महत्त्वपूर्ण साज सँभाल है । घड़ी साइकिल आदि छोटी मशीनों की साज-सँभाल रखी जाती है तो मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त होने से क्यों नहीं बचाया जाता है । जबकि दवाओं और खाद्य पदार्थों को ठण्डा रखा जाता है । ठण्डी छाया में बैठकर विश्राम करने का प्रबन्ध किया जाता है तो मस्तिष्क में शान्ति बनाये रखने की आवश्यकता क्यों न समझी जाय । सन्तुलन बनाये रहना एक अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय है जिसमें सुखी रहने और सफल होने के दोनों उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं ।

## न खीजें- न उद्विग्न हों !

सामान्यत: मनोरोग दिखाई नहीं पड़ते । उनकी हानि प्रत्यक्ष नहीं है । ध्यान देने पर समझ आती है । साधारणतया तो ऐसा लगता है कि मानसिक रोगी ढीठता दिखाता आर उच्छृंखलता भर बरतता है । यह प्रतीत ही नहीं होता कि यह किसी विकृति से ग्रसित होने के कारण अपनी भौतिक क्षमता गँवाता और विकृतियों के दलदल में फँसता चला जा रहा है । जब रोग का आभास ही नहीं तो उसका इलाज कौन करे । कई बार महिलाओं की बीमारियों की बहानेबाजी कहकर टाल दिया जाता है । मानसिक रोगों की बात तो इसीलिये भी उपेक्षा में पड़ी रहती है कि उनकी उपस्थिति की कोई जानकारी तक सर्व साधारण को नहीं है । फिर भी यह एक तथ्य है कि मानसिक रोगों से मनुष्य समा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


का अहित होता है वह शारीरिक बीमारियों से होने वाली हानि की तुलना में किसी भी प्रकार कम भयंकर नहीं है । शरीर के पीड़ित या अपंग रहते संसार के असंख्य व्यक्तियों ने अति महत्त्वपूर्ण काम करने में सफलतायें पाई हैं, पर ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं हुआ जो मानसिक दृष्टि से अपंग होने पर कुछ कहने लायक सफलता प्राप्त कर सका हो । सच तो यह है कि ऐसे लोग अपनी-अपनी जीवन यात्रा तक शान्ति और सम्मानपूर्वक पूरी नहीं कर पाते ।

महर्षि अष्टावक्र आठ जगह से कुबड़े थे, चाणक्य को अति कुरूप कहा जाता है । सुकरात की कुरूपता भी प्रख्यात है । आद्य शंकराचार्य भगन्दर के फोड़े से ग्रसित थे । सूरदास अन्धे थे । ारी केलर गूँगी बहरी और अन्धी होते हुये भी ८ भाषाओं और विषयों की स्नातक थीं । ऐसे ा प्रसंग हैं जिनमें अस्पतालों के बिस्तरों पर ड़ लोगों ने महान कृतियाँ तैयार की हैं । शरीर ी उपकरण है, पर मस्तिष्क की स्थिति सूत्र-संचालक की है । मस्तिष्क लड़खड़ा जाने पर तो मनुष्य अपने और साथियों के लिये भार बन जाता है जबकि अन्धे और अपंग भी अपने उपस्थिति से परिवार को कई तरह लाभान्वित करते रहते हैं ।

पूर्ण पागलों की संख्या तो संसार में इस अनुपात में बढ़ रही है जिसे देखते हुए संसार की सभी बीमारियों की दौड़ उनसे पीछे रह गयी हैं । खुले फिरने वाले पागलों की संख्या और उनके द्वारा जनसाधारण को होने वाली असुविधा ऐसी है, जिसे दूर करने के लिए पागलखानों की बड़ी संख्या में आवश्यकता अनुभव की जा रही है । जेलखानों से भी अधिक पागलखानों के लिए स्थान बने तब उपद्रवी पागलों के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले संकटों से बचा जा सकता है । अध पंगले-सनकी, असन्तुलित, अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित अदूरदर्शी लोगों की संख्या तो इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सही मनुष्यों की संख्या सामान्य आबादी का एक छोटा अंश ही मिल सकेगा । शारीरिक दृष्टि से जितने लोग रुग्ण हैं मानसिक विकृतियों से ग्रसितों की संख्या उससे कम नहीं अधिक ही मिलेगी । यह अधूरे और अस्त-व्यस्त मनुष्य मानव समाज की प्रगति एवं सुव्यवस्था में अवरोध ही कहे जा सकते हैं । खेद इस बात का है गरीबी, बीमारी, अशिक्षा अपराधी उद्दण्डता से भी अधिक कष्टदायक और भयानक बढ़ती हुई विक्षिप्तता की हानि को समझने और उसकी रोकथाम करने के लिए प्रयत्न नहीं किया जा रहा है ।

अपराध भी वस्तुतः एक प्रकार का आवेश है । जिन्हें मनुष्य एक प्रकार से उन्माद ग्रसित स्थिति में करता है । चोर, उचक्के, अपने कुकृत्यों की हानियाँ समझते हैं, उन पर पछताते भी हैं, भलमन साहत के रास्ते पर चलने पर लोग कितनी उन्नति कर गये और कितने सम्मानित हुए यह तथ्य वे आँखों से देखते और कानों से सुनते हैं । दूसरे उन्हें समझाते और वे बात को समझते भी हैं कुछ समय उनका विवेक जाग्रत भी रहता है और भले आदमियों की तरह रहते भी हैं, फिर कभी ऐसे उचंग उठती है कि रोके नहीं रुकती यहाँ तक कि व्यक्ति उस छोड़े हुए कार्य को करने के लिये एक प्रकार से विवश हो ही जाता है और फिर उसे कर ही गुजरता है । नशेबाजी की हालत भी प्रायः ऐसी ही होती है । बीड़ी-सिगरेट तो शौक-मौज के लिए भी चलती है, पर शराब, गाँजा, चरस, अफीम की लत पड़ जाने से पैसे की, शरीर की, सम्मान की कितनी क्षति होती है, उसे वे प्रत्यक्ष देखते हैं, भली प्रकार समझते हैं । छोड़ने के संकल्प-विकल्प रोज ही मन में उठते रहते हैं । समझाने पर लज्जित भी होते हैं , और दुःखी भी पर अपने आपको विवश पाते हैं । कोई अन्धड़ भीतर से ऐसा उठता है कि ज्ञान-विवेक को एक ओर पटक-कर वह करा लेता है, जिसे करने की कुछ भी आवश्यकता न थी । समाज शास्त्री इसे धृष्टता, दुष्टता आदि का नाम दे सकते हैं, पर मनःरोग शास्त्र की दृष्टि से यह उस व्यक्ति की असहाय स्थिति है । ठीक वैसी ही जैसी ज्वर या सिर-दर्द से आक्रान्त मनुष्य की होती है । अपराध करने की दिशा में जिनके मन मचलते रहते हैं । उन्हें मनःशास्त्र की भाषा में ''सादू को पैथ'' कहा जाता है । विश्लेषण करने पर उनकी मनःस्थिति सामान्य लोगों जैसी नहीं होती वरन् असामान्य और असन्तुलित पाई जाती है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



मानसिक दृष्टि से सन्तुलन और सामंजस्य ही स्वस्थता का चिह्न है । मस्तिष्क के भीतर अगणित घटक है और वे एक दूसरे के साथ सुसम्बद्ध रहकर ही संयुक्त सहयोग से उत्पन्न क्षमता द्वारा अपने हिस्से के कार्य ठीक तरह पूरे कर पाते हैं । यदि उनकी सुसम्बद्धता कहीं लड़खड़ाती है और तालमेल बिगड़ता है तो फिर चित्र-विचित्र प्रकार के छोटे-बड़े मानसिक रोग, आरम्भ हो जाते हैं । सन्तुलन के चार पक्ष हैं-(१) एफैक्ट- सर्तकता, सजगत (२) थाट- विचार प्रवाह, कल्पना, (३) विहेवियर- व्यवहार, अभ्यास, (४) मूड- रुझान, उत्साह । इनमें से किसका सन्तुलन किसके सम्मिश्रण क्षेत्र में कितनी मात्रा में गड़बड़ाता इसी आधार पर मन:-रोगी के अनेक स्वरूप बनते और लक्षण प्रतीत होते हैं । इसके लक्षण इस प्रकार देखे जाते हैं-

(१) सर्तकता के अभाव में मनुष्य यह निर्णय नहीं कर पाता कि लोग उसकी क्रिया के बारे में क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे । किस कार्य का परिणाम उसके लिए क्या होगा । अपनी मर्जी ही उसे सब कुछ लगती है । लोगों की प्रतिक्रिया एवं क्रिया के परिणाम उसे सूझते ही नहीं । कल्पना की दौड़ दूर तक नहीं जाती । वर्तमान समय और अपना मन इन दो में ही वह उलझ कर रह जाता है । फलत: ऐसे कृत्य करता है जो उपहासास्पद भी होते हैं, बेतुके और हानिकारक भी । इनके करने से आर्थिक हानि भले ही उतनी न होती हो पर दूसरे उसके अटपटेपन को देखकर उसे मन्दमति या बाल बुद्धि मान लेते हैं और उसके द्वारा किसी उत्तरदायित्व के निवाहे जाने की आशा छोड़ देते हैं । शिष्टाचार का निर्वाह वह नहीं कर पाते । अटपटेपन से लोगों के लिए व्यंग्य विनोद के माध्यम मात्र बने रहते हैं । उन्हें कुछ उल्लू बनाने में, चिढ़ाने में रस लेकर अपना और दूसरों का मनोरंजन करते रहते हैं । सतर्कता विहीन व्यक्ति इस बात से भी अपरिचित ही बने रहते हैं कि उनके बारे में क्यों सोचेगा और क्या माना जाता है ।

(२) विचार प्रवाह में गड़बड़ी पड़ जाने से कल्पनायें अनियन्त्रित हो जाती है । क्या सोचना उपयुक्त है क्या नहीं ? क्या सम्भव है, क्या असम्भव ? साधनों और परिस्थितियों का ज्ञान न रहने से वे अपनी हर कल्पना को सरलतापूर्वक सम्भव हो सकने योग्य मान बैठे रहते हैं । यह भी अनुमान नहीं लगा पाते कि इन कल्पनाओं को पूरा करने के लिए कितना समय लगेगा और क्या साधन जुटाने होंगे । कल्पना और सफलता के बीच में वे किसी अन्तर अवरोध का अनुमान नहीं लगा पाते फलत: परी लोक में विचरण करने वाले बालकों जैसी उनकी मन:स्थिति रहती है । बहुचर्चित शेखचिल्ली सम्भवत: इसी प्रकार के मनोरोगों से ग्रसित रहे होंगे । ऐसे लोग उलटा सोचने लगे तो सामान्य दैनिक कृत्यों तक के लिए अपने को असमर्थ पाते हैं, और दूसरों की सहायता बिना कुछ भी करने की हिम्मत गँवा देते हैं । नैतिक और अनैतिक, सामाजिक और असामाजिक चिन्तन का अन्तर झीना पड़ जाने से वे ऐसा सोचते और कहते पाये जाते हैं जिससे सुनने वालों को भी लज्जा आती है ।

(३) व्यवहार अनुमान तन्त्र में गड़बड़ी होने से मनुष्य के लिए यह अनुमान लगाना कठिन पड़ता है कि दूसरे लोगों का व्यवहार उनके साथ कैसा और किस उद्देश्य से प्रेरित है । शत्रुओं को मित्रवत् मानने का पागलपन भी कई बार पाया जाता है । विशेषतया उठती हुई आयु की लड़कियाँ प्रेम-प्रसंगों में इस प्रकार की मान्यतायें गढ़ लेती हैं जिनमें कि हर दृष्टि से उनका अहित करने पर उतारू तथाकथित प्रेमी उन्हें अपना सर्वस्व दीखता है और उनसे विरत होने की सीख किसी परम हितैषी की भी नहीं मानती, पर यह भूल प्राय: निषेधात्मक ही होती है । अमुक व्यक्ति अपने शत्रु बने हुए हैं, जादू टोना कर रहे हैं । मारने, जहर देने मिटा देने, जैसे षडयन्त्र रचे हुए हैं, जैसी मान्यता बना लेते हैं और निरन्तर भयभीत रहते हैं, कितनों को ही दुर्घटना, मृत्यु, आक्रमण हानि, बिछोह, जेल आदि का भय सताता रहता है, ऐसे लोग यह भी निर्णय नहीं कर पाते कि किस कठिनाई का निराकरण किस प्रकार करना चाहिए । किन समस्याओं का समाधान किससे पूछना चाहिए, वे प्रधानमन्त्री से छोटे अधिकारी तक अपनी फरियाद नहीं पहुँचाना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चाहते हैं और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना आये दिन उन्हें पत्र लिखते रहते हैं । दूसरे को स्थिति और क्षमता का भी उन्हें ठीक अन्दाजा नहीं रहता और उनके सम्बन्ध कुछ से कुछ मान्यता बना लेते हैं । इसी प्रकार अपने को भी कई बार कोई सिद्ध पुरुष, नेता, विद्वान राजा, आदि मान बैठते हैं । इस वस्तुस्थिति का सही अनुमान न लगा पाने की मन: स्थिति वाले रोगियों को पैरेनोइया या मेंग्लोमोनिया से ग्रसित कहा जाता है । ऐसे लोग अपने सम्बन्ध में तथा समाज संसार के सम्बन्ध में तरह-तरह के गलत अनुमान लगाते रहते हैं ।

(४) मूड़ गड़बड़ाने से व्यक्ति नशेबाजों की स्थिति में चला जाता है, कभी तो पूरे उत्साह में, प्रसन्नता में उन्हें पाया जाता है, और अनावश्यक रूप से हँसते, जोश दिखाते, बड़ी-बड़ी आशायें प्रकट करते हैं और कभी चिन्ताओं और निराशाओं में इस कदर डूबते हैं मानो आसमान इन्हीं के ऊपर टूट पड़ा या टूटने वाला है । कइयों को कोई भयंकर रोग शरीर में प्रवेश कर चुकने की या निकट भविष्य में होने की आशंका बन जाती है । मन: चिकित्सक इस स्थिति का मेनियक डिप्रेसिव कहते हैं, इस स्तर के लोग कई बार चुनाव जीतने, लाटरी पाने, गढ़ा खजाना खोदने, सोना बनाने की ऐसी मान्यतायें अपने साथ लिए फिरते हैं, मानो यह सफलतायें उन्हें जल्दी ही मिलने वाली हैं, देवी-देवताओं को वश में कर लेने की बात भी उनके मन पर ऐसी छाई रहती है, मानो अब उस बात में सन्देह की कोई गुन्जाइश नहीं रही ।

मस्तिष्क यन्त्र को प्रकृति ने जितना उपयोगी बनाया है उतना ही उत्तम उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध भी किया है, खोपड़ी की हड्डी को मजबूत डिब्बी में उसे संभाल कर रखा गया है । उसके भीतर ही ऐसी व्यवस्था है जहाँ छोटी-मोटी गड़बड़ी की पहुँच न हो सके, आमतौर से मस्तिष्क को सही सोचने का सही तरीका न मालूम होने से उत्पन्न होते हैं । अनाढ़ी ड्राइवर के हाथ में सौंपी हुई मोटर की अनभिज्ञ प्रयोक्ता के कारण कीमती कम्प्यूटर की बरबादी ही होती है । वे उनसे सही काम तो ले नहीं पाते, यही बात मस्तिष्क के यन्त्र में भी है, वह जितना बहुमूल्य है, उतना ही प्रयोक्ता की कुशलता भी चाहता है । जीवन में भली-बुरी घटनाओं को प्रिय-अप्रिय प्रसंगों को ताना-बाना चलता ही रहता है । बात का बतंगड़ बनाकर यदि सन्तुलन गंवा दिया जाय तो उससे आवेशपूर्ण स्थिति का दुष्परिणाम ही होगा । आवेशों और उत्तेजनाओं का मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है । कई बार न करने लायक कल्पनायें करने और साधनों के अभाव में उनकी पूर्ति न हो सकने के कारण असफल रहने पर कई लोग बौखला जाते हैं और उस उत्तेजना की गर्मी से मस्तिष्क की कोमलता को जला देते हैं, अनैतिक विचार अपनी प्रकृति के अनुसार स्वत: ही घातक होते हैं ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, भय आदि का प्रभाव भी मन:संस्थान पर बुरा पड़ता है । यह विकृतियाँ इसलिए उत्पन्न होती हैं कि मनुष्य को सही दृष्टिकोण अपनाकर समस्याओं परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठाने का अनुभव नहीं होता । मन: तन्त्र का सुसंचालन कर सकने वाले चिन्तन क्रम धर्म और अध्यात्म के तत्त्वज्ञान से जुड़ा हुआ है । यदि उसे अपनाया जा सके तो संसार में फैले हुए पागलपन और असन्तुलन से छुटकारा मिल सकता है ।

## हमारा सबसे निकटवर्ती शत्रु-क्रोध

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कई व्यक्तियों के नित्य सम्पर्क में आना पड़ता है और विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है । इनमें से कुछ व्यक्तियों का व्यवहार या कुछ परिस्थितियाँ मन को अनुकूल प्रतीत होती हैं और कुछ प्रतिकूल । अनुकूल व्यवहार अथवा परिस्थितियाँ पाकर सुखी होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार प्रतिकूल व्यवहार या परिस्थितियाँ पाकर क्षोभ भी होता है । बहुधा यह क्षोभ इतनी उत्तेजना उत्पन्न करता है कि व्यक्ति अपने पूरे आवेग से उन परिस्थितियों को नष्ट कर देने के लिये चढ़ दौड़ता है । यह आवेग कई बार इतना तीव्र होता है कि व्यक्ति अपनी समझ बूझ और विवेक को ताक पर रखकर अपनी शक्तियों

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


को नष्ट-भ्रष्ट करने लगता है । इस प्रकार की आवेगपूर्ण स्थिति को क्रोध भी कह सकते हैं ।

क्रोध के समय व्यक्ति यह भूल जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित । इस स्थिति में क्रुद्ध व्यक्ति अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को बड़ी बुरी तरह नष्ट कर डालता है । जब किसी व्यक्ति पर क्रुद्ध हुआ जाता है, कोई व्यक्ति दूसरे पर या परिस्थितियों पर क्रोध करता है तो वह दूसरे व्यक्ति में भी संचरित हो जाता है और ऐसी दशा में लड़ाई से लेकर आत्मघात जैसी स्थितियाँ बन जाती हैं ।

क्रोध के सम्बन्ध में अब तक किये गये अध्ययनों के अनुसार एक स्वस्थ, शान्त व्यक्ति की तुलना में कमजोर, दुर्बल और तनावग्रस्त व्यक्ति ज्यादा क्रोधित होता है । कहावत प्रसिद्ध भी है कि 'कम कुब्बत गुस्सा बहुत' । वैसे नीति शास्त्रियों के अनुसार क्रोध करना आवश्यकता भी है । किन्तु नीतिकारों ने जिस क्रोध को आवश्यक बताया है उसके सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि वह विवेकपूर्ण होना चाहिए । यदि क्रोध को पूरी त्याग दिया जाय तो अनीति, अन्याय का विरोध, दुष्ट तत्त्वों का दमन और असुरता का प्रतिकार किस प्रकार सम्भव होगा ? मनीषियों ने अनीति, अन्याय, दुष्टता और असुरता का प्रतिरोध करने के लिए सात्त्विक क्रोध का उपदेश किया है । पर मनोविकार के रूप में जिस क्रोध की यहाँ चर्चा की जा रही है वह निश्चित ही अमंगलकारी और हानिप्रद है । कवि बाणभट्ट ने इस मनोविकार के सम्बन्ध में कहा है, 'अति क्रोधी मनुष्य आँख वाला होते हुए भी अन्धा ही होता है । बाल्मीकि रामायण में कहा गया है-' 'क्रोध प्राणों को लेने वाला शत्रु है । वह अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली तलवार के समान है और सर्वनाश की ओर ले जाने वाली राह है । '

क्रोध का मन की दूसरी दुःखकारी भावनाओं से गहरा सम्बन्ध है । यदि क्रोध शीघ्र ही समाप्त हो जाए तो उससे होने वाली शक्ति का क्षरण तत्काल रुक जाता है, पर यदि क्रोध मन की गहराइयों में पहुँच कर जम जाए तो वह बैर की भावनाएँ बन जाती हैं और दूसरे के गुण, प्रेम, भावना, उच्च संस्कार सब भूलकर प्रतिपक्षी का नुकसान करने दूसरे को हानि पहुँचाने की बुरी भावना निरन्तर सताती रहती है । चिकित्सा विज्ञानियों के अनुसार जब क्रोध आता है तो शरीर की आन्तरिक तथा बाह्य क्रियाएँ सभी प्रभावित होती हैं । इस स्थिति में कुछ रसायनों की उत्पत्ति अधिक होने लगती है और कुछ की कम । फलतः शरीर स्वास्थ्य को बुरी तरह क्षति पहुँचती है ।

क्रोध आते ही शरीर की मांस-पेशियाँ खिंचने लगती हैं । हाथ और पैर की मांसपेशियों में तो विशेष रूप से खिंचाव आता है क्योंकि लड़ाई की स्थिति में इन्हीं अंगों को सबसे ज्यादा जोखिम उठाना पड़ता है । चेहरे पर भी खिंचाव आने लगता है । मांसपेशियों के खिचाव का परिणाम पूरे शरीर पर पड़ता है और हाथ-पैर तथा चेहरे के अतिरिक्त अन्य अंग भी खिचने सिकुड़ने लगते हैं । इसके अतिरिक्त क्रोध की अवस्था में श्वसन संस्थान भी बहुत प्रभावित होता है । वैज्ञानिक के अनुसार यह सब इस कारण होता है कि क्रोध की अवस्था में शरीर ऊर्जा का तेजी से क्षरण होने लगता है । इस क्षरित ऊर्जा की पूर्ति के लिए श्वसन क्रिया तीव्र हो जाती है । फेंफड़े पहले की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होने लगते हैं और साँस की गति बढ़ जाती है । साँस की गति बढ़ जाने से, तेजी से साँस लेने और तेजी से साँस छोड़ने के कारण शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक पहुँचने लगती है जो जहाँ उपस्थित भोजन से अतिरिक्त ऊर्जा का अवशोषण करती है ।

क्रोध की स्थिति में शरीर अपनी सुरक्षा-व्यवस्था के अनुसार विभिन्न परिवर्तन करता है । उस समय यकृत भी अधिक मात्रा में ग्लाइकोजिन निकालने लगता है । इस प्रकार जो अतिरिक्त ऊर्जा का क्षरण होता है उसकी पूर्ति यदि न की जाय तो शरीर में कई विकार और रोग पनपने लगते हैं । उदाहरण के लिये ज्यादा क्रोध करने वालों को रक्तचाप तथा हृदय सम्बन्धी रोग होने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है । यह तो सभी जानते हैं कि जब क्रोध आता है तो हृदय की धड़कन आम स्थिति की अपेक्षा कई गुना अधिक बढ़ जाती है और हृदय

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर पूर्वापेक्षा अधिक दबाव पड़ता है । इस स्थिति में हृदय की धड़कन बढ़ जाने के कारण शरीर में रक्त का परिभ्रमण भी पहले की अपेक्षा ज्यादा होने लगता है ।

क्रोध की स्थिति में पाचन क्रिया भी विशेष रूप से प्रभावित होती है । एक प्रकार से उस समय तो पाचन संस्थान अपना काम करना ही बन्द कर देते हैं । इस सम्बन्ध में किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष सामने आए हैं कि अगर गुस्से की स्थिति में कुछ भी खाया जाय तो उसका पाचन नहीं होता है बल्कि उस समय पेट में जो भोजन रहता है उसका पचना बन्द हो जाता है । कई लोगों को इसी कारण अत्यन्त क्रोध की अवस्था में उल्टियाँ होने लगती हैं । जी मिचलाने, उबकाई आने और पेट में भारीपन अनुभव होने की शिकायत तो बहुतों को होती है ।

क्रोध की अवस्था में यह भी देखा गया है कि मुँह एकदम सूख जाता हे । उस समय मुँह के भीतर लार बनने की प्रक्रिया एकदम मन्द पड़ जाती है यही कारण है कि गुस्सा उतर जाने के बाद बहुतों को जोर की प्यास लगती है । कई लोग तो क्रोध की स्थिति में ही पानी पीते हैं । 'पानी पी-पीकर कोसने' की उक्ति सर्वविदित है । इस अवस्था में ठीक से बोलते भी नहीं बनता, क्योंकि मुँह की वे ग्रन्थियाँ जो बोलने में विशेष रूप से सहायक होती हैं, अकड़ने-जकड़ने लगती हैं और उसी कारण शब्दों का उच्चारण ठीक से नहीं हो पाता । 'त' के स्थान पर 'ट' या 'प' के स्थान पर 'फ' जैसे शब्दों का उच्चारण न चाहते हुए भी हो ही जाता है ।

आँखों पर भी क्रोध का प्रभाव पड़ता है । उस समय आँख की दृष्टि सीमा में फैलाव आ जाता है । यही कारण है कि बहुत अधिक क्रोध करने वालों को कई नेत्र रोग उत्पन्न हो जाते हैं । शरीर के विशेष अंगों पर क्रोध के प्रभाव की ही यहाँ चर्चा की गई है । वस्तुतः तो पूरा शरीर ही क्रोध से प्रभावित होता है और उस स्थिति का हजारों नसों पर दबाव पड़ता है । तन्त्रिका तन्त्र भी इससे प्रभावित होता है ।

इन सर्वनाशकारी क्रोध पर कैसे नियन्त्रण किया जाय ? बहुधा देखा गया है क्रोध न करने का संकल्प लेने के बावजूद भी कई बार ऐसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं जब सारे संकल्प-विकल्पों को तोड़कर क्रोध का आवेश उमड़ आता है । शान्त मनः स्थिति में ही यह अनुभव होता है कि क्रोध आया था ।

क्रोधी व्यक्ति जब किसी पर क्रुद्ध होकर उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाता तो अपने पर क्रोध करने लगता है, अपने को दण्ड देने और अपनी हानि करने लगता है । क्रोध मनुष्य को पागल की स्थिति में पहुँचा देता है । बुद्धिमान और मनीषी व्यक्ति क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध का आक्रमण अपने पर नहीं होने देते । वे विवेक का सहारा लेकर उस अनिष्ट कर आवेग पर नियन्त्रण कर लेते हैं और इस प्रकार हानि से बच जाते हैं ।

प्रचेता एक ऋषि के पुत्र थे । स्वयं भी साधक थे, वेदवेदांग के ज्ञाता थे । संयम और नियम से रहते थे । दिन अनुदिन तप संचय कर रहे थे । किन्तु उनका स्वभाव बड़ा क्रोधी था । उन्होंने क्रोध को एक व्यसन बना लिया था और जब-तब उससे हानि उठाते रहते थे । किन्तु न जाने वे अपनी इस दुर्बलता को दूर क्यों नहीं करते थे । इस दुरभिसन्धि की उपेक्षा करने से होता यह था कि एक लम्बी साधना से प्रचेता जो आध्यात्मिक-शक्ति संचय करते थे वह किसी कारण से क्रोध करके नष्ट कर लेते थे । इसलिये साधना में रत रहते हुए भी वे उन्नति के नाम पर यथा स्थान ही रहते थे । होना तो यह चाहिए था कि अपनी इस अप्रगति का कारण खोजते और उसको दूर करते, लेकिन वे स्वयम् पर ही इस अप्रगति से क्रुद्ध रहा करते थे । अस्तु एक मानसिक तनाव बना रहने से उनका स्वभाव खराब होता गया था और वे जरा-जरा सी बात पर उत्तेजित हो उठते थे ।

एक बार वे एक वीथिका से गुजर रहे थे । उसी समय दूसरी ओर से कल्याणपाद नाम का एक और व्यक्ति आ गया । दोनों एक दूसरे के सामने आ गये । पथ बहुत सकरा था । एक के राह छोड़े बिना, दूसरा जा नहीं सकता था, लेकिन कोई भी रास्ता छोड़ने को तैयार न हुआ और हठ पूर्वक आमने-सामने खड़े रहे । थोड़ी देर खड़े रहने पर उन दोनों ने हटना न हटना प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया । अजीब स्थिति पैदा हो गई ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


यहाँ पर समस्या का हल यही था कि जो व्यक्ति अपने को दूसरे से अधिक सभ्य, शिष्ट और समझदार, समझता होता वह हट कर रास्ता दे देता और यही उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण होता । निश्चित था कि प्रचेता कल्याण पाद से श्रेष्ठ थे । एक साधक थे और आध्यात्मिक उन्नति में लगे थे । कल्याणपाद एक धृष्ट और ढीठ व्यक्ति था यदि ऐसा न होता तो एक महात्मा को रास्ता तो देता ही साथ ही नमन भी करता । प्रचेता को यह बात समझ लेनी चाहिए थी । किन्तु कुस्वभाव के कारण उन्होंने वैसा नहीं किया बल्कि उसी के स्तर पर उतर कर अड़ गये । कुछ देर दोनों खड़े रहे । पर फिर प्रचेता को क्रोध हो आया । उन्होंने उसे श्राप दे दिया, कि राक्षस हो जाए । तप के प्रभाव से कल्याणपाद राक्षस बन गया और प्रचेता को ही खा गया । क्रोध से विनष्ट प्रभाव हुए प्रचेता अपनी रक्षा न कर सके ।

क्रोध अपने आप तो पैदा नहीं होता । वह अपनी मानव सन्तान के समान अपने से ही पैदा होता और अपना ही नाश करता है । ऐसी सन्तान से दूर रहने में ही भलाई है । क्रोध एक प्रकार की आवेशजन्य स्थिति है जो व्यक्ति को रुग्ण बनाती, उसका सम्मान गिराती है । क्रोध अनीति के प्रति तो आना ही चाहिए किन्तु वह विवेक से जुड़ा हो सोद्देश्य हो । क्रोधी व्यक्ति बिना अपनी शालीनता खोए भी अपना आक्रोश व्यक्त कर सकता है । इससे अपनी सम्मान रक्षा तो है ही, अनीति के प्रतिकार का दायित्त्व भी पूरा नहीं होता है । यही एक सज्जन के जीवन की रीति-नीति होनी भी चाहिए ।

## असन्तुलन के दुष्परिणामों एवं निवारण के उपाय

जीवन में प्राय: रोज ही इस तरह की घटनायें घटित होती हैं जिनमें से कुछ के कारण प्रफुल्लता और आह्लाद फूट पड़ने लगता है तथा कुछ को देखकर क्षोभ होने लगता है । जो घटनायें स्वयं से सम्बन्ध रखती हैं उनमें से कई घटनाओं के कारण खेद, क्षोभ, क्रोध, उत्तेजना, दु:ख, विषाद और रोष जैसे भाव उत्पन्न होने लगते हैं । इन भावनाओं को जिनके कारण शरीर तन्त्र उत्तेजित हो उठता है संवेग कहते हैं और इनकी प्रतिक्रिया का केन्द्र-मस्तिष्क होता है ।

मस्तिष्क चूँकि सारे शरीर का नियन्त्रणकर्त्ता और संचालक है अत: वहाँ होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भी निश्चित रूप से शरीर पर पड़ता है । इन मानसिक संवेगों का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ? मनोवैज्ञानिकों के लिए यह सदा से ही अनुसंधान का विषय रहा है और इस दिशा में तो खोजें की गयीं उनमें विभिन्न शारीरिक समस्याओं को सुलझने में भी सहायता मिली ।

सम्वेदना और भावनाओं में आने वाली उत्तेजना के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले तनाव में पिट्यूटरी तथा ऐड्रेनल ग्रन्थियों द्वारा सोमोटाट्रोफिक हार्मोन तथा डेसोक्साइकोटि कोस्टेरौन नामक हार्मोन उत्सरित होते हैं । फलत: तनाव के क़ारण सरदर्द, उच्च रक्तचाप, रुमेटिक अर्थराइट्स, गेस्ट्रिअल्सर, हृदयरोग तथा अन्य कितने ही विकार रोग उत्पन्न होते हैं ।

क्रोध, घृणा, कुण्ठा अथवा निराशा के रूप में मानसिक तनाव या दबाव के कारण न केवल भोजन देर में पचता है; वरन् उससे पेट की अन्य गड़बड़ियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं यहाँ तक कि अल्सर भी और आदमी में वृद्धावस्था के लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

शरीर संस्थान पर मनोविकारों के ऐसे कितने ही दुष्प्रभाव पड़ते हैं और उन सभी मनोविकारों में क्रोध सर्वाधिक विषैला तथा तुरन्त प्रभाव डालने वाला मनोविकार है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० कैनन ने सम्वेगों के मनुष्य शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए अनेकों प्रयोग किये और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पाचन रस और अन्त्रस्राव पर संवेगों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । जब संवेग तीव्र होता है तो अन्त:स्राव कम होने लगता है और पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है । जब सम्वेग ठीक रहते हैं तो पाचन क्रिया भी ठीकठाक चलने लगती है । अन्त:स्राव किस परिमाण में होता है यह संवेगों के स्वभाव पर ही निर्भर करता है । भय का सम्वेग तीव्र होने पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


इसका प्रभाव कम परिमाण में होता है और क्रोध का संवेग तीव्र होने पर अधिक ।

क्रोध चूँकि एक उत्तेजनात्मक आवेग है अत: कुछ प्रभाव तो तुरन्त ही देखा जा सकता है, जैसे आँखों में लाल डोरे तन जाते हैं शरीर काँपने लगता है, हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं आदि । क्रोध के कारण होने वाली शारीरिक शक्ति ह्रास को जानने के लिए डॉक्टर अरोल और डा० केनन ने अनेक परीक्षण किये और इस परिणाम पर पहुँचे कि क्रोध के कारण उत्पन्न होने वाली विषाक्त शर्करा पाचन शक्ति के लिए सबसे खतरनाक है । यह रक्त को विकृत कर शरीर में पीलापन, नसों में तनाव, कटिशूल आदि पैदा कर देती है । क्रोधाभिभूत माँ का दूध पिलाने पर बच्चे के पेट में मरोड़ होने लगती है और हमेशा चिड़चिड़ी रहने वाली माँ का दूध कभी-कभी तो इतना विषाक्त हो जाता है कि बच्चे को जीर्णरोग तक हो जाते हैं ।

क्रोध से शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है तो मानसिक शक्ति भी क्षरित होती है । अमेरिका के प्रसिद्ध मनोचिकित्सक डा० जे० एस्टर ने क्रोध के कारण होने वाली मानसिक शक्ति के ह्रास के सम्बन्ध में कहा है- "पन्द्रह मिनट क्रोध के रहने से मनुष्य की जितनी शक्ति नष्ट होती है उससे यह साधारण अवस्था में नौ घन्टे कड़ी मेहनत कर सकता है । शक्ति का नाश करने के साथ क्रोध शरीर और चेहरे पर अपना प्रभाव छोड़कर उसके स्वास्थ्य सौन्दर्य को भी नष्ट कर देता है । ऐसे व्यक्ति में से जवानी में ही बुढ़ापे के चिह्न प्रकट हो जाते हैं ।

क्रोध का कारण बताते हुए गीता में कहा गया है- "**कामात् क्रोधोऽभि जायते ।**" कामनाओं में विक्षेप उपस्थित होने पर उस विक्षेप के कारण क्रोध उत्पन्न होता है । तीन-चार महीने के बच्चे को कोई थप्पड़ मार दे तो उस थप्पड़ की पीड़ा से वह रो तो उठेगा, किन्तु उठे हुए हाथ और स्वयं की पीड़ा का अन्तर सम्बन्ध उसे ज्ञात नहीं रहता, इस हाथ से थप्पड़ मारे जाने के कारण मुझे पीड़ा हो रही है यह जानकारी उसे नहीं रहती, इसलिए उसके रुदन में क्रोध का आवेग नहीं रहता । इस प्रकार क्रोध दु:ख कष्ट के कारण के बोध से उत्पन्न होता है । अपनी हानि या दु:ख का कोई कारण उपस्थित होने पर क्रोध का आवेग पैदा हो जाता है । अपने मनोरथ को विफल कर सकने वाले, अभीष्ट-प्राप्ति के मार्ग में बाधक का स्पष्ट परिचय पाकर क्रोध उदित होता है । यह क्रोध का सामान्य स्वरूप हुआ ।

किन्तु मनुष्य की भी प्रतिक्रिया सरल यन्त्रवत् नहीं होनी । इसीलिए क्रोध के स्वरूप और उसकी अभिव्यक्ति के ढंग, दोनों में बहुतेरी भिन्नताएँ होती हैं ।

क्रोध मस्तिष्क में उभर वाला एक आवेग विशेष है । मस्तिष्कीय संरचना कुछ ऐसी है कि जिस भी आवेग का उसमें बार-बार उदय हो, उसके संस्कार गहरे होते जाते हैं और फिर वह आवेग स्वभाव का अंग बनता जाता है । एक ही बाधक विषय-वस्तु के प्रति दो लोगों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है-एक क्रोध से लाल-पीला होकर मरने-मारने पर उतारू हो जायेगा दूसरा उस बाधा के निवारण का गम्भीर प्रयास प्रारम्भ कर देगा । यह भिन्नता मस्तिष्क में पड़ गये संस्कारों की ही है । असफलता प्राप्त होने पर जब क्रुद्ध होने की ही प्रवृत्ति दृढ़ हो जाती है, तो फिर यह क्रोध उस बाधकतत्व के प्रति ही सीमाबद्ध नहीं रहता, अपितु सम्पर्क में आने वाले लोगों से अकारण क्रुद्ध व्यवहार का प्रेरक बन बैठता है ।

मन की जटिलताएँ भी मनुष्य के क्रोधी स्वभाव का कारण होती हैं । मनुष्य अपनी मानसिक जटिलताओं में उलझा उद्विग्न रहा आता है और यह उद्वेग जिस-तिस पर क्रोध बनकर बरस पड़ता है ।

इस प्रकार मोटे तौर पर क्रोध के तीन वर्ग गिनाए जा सकते हैं-(१) कामना पूर्ति में अवरोधक-बाधक विषय के प्रति क्रोध, जो बाधक को हानि पहुँचाने की भावना से जुड़ा रहता है ।

(२) असफलता से क्रुद्ध मन:स्थिति में सम्पर्क में आए अन्य व्यक्तियों पर कारणवश या अकारण ही व्यक्त होने वाला क्रोध ।

(३) लम्बे अभ्यास से व्यसन सा बन चुका क्रोध, जो स्वभाव का स्थायी अंग बन जाता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पहले प्रकार का क्रोध लोक-व्यवहार में सर्वाधिक स्वाभाविक माना जाता है । सामाजिक जीवन में उसे एक तरह की स्वीकृति प्राप्त है । किन्तु क्रोध एक विचार मात्र नहीं है, वह एक भावावेग है । उसका सम्पूर्ण शरीर संस्थान और मन:संस्थान पर प्रभाव पड़ता है । प्रथम तो बाधक को हानि पहुँचाने की जो भावना है वह भी परिणाम में अपने पक्ष में कभी-कभार ही जा पाती है । सम्भव है जिसे हानि पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है, वही कल भिन्न अवसर पर अपने लिए उपयोगी सिद्ध हो । हमारी कामना-पूर्ति में वह में वह बाधक बनता दीख रहा है, किन्तु कल को वही कामना हमें महत्त्वहीन लग सकती है और किसी अधिक महत्त्वपूर्ण कामना में आज का बाधक सहायक के रूप में सामने आ सकता है ।

इससे भी बड़ी बात यह है कि क्रोध में दु:ख या हानि के कारण को नष्ट कर देने की या क्षतिग्रस्त कर देने की भावना इतनी तेजी से उमड़ती है कि अपनी भूल या दोष की ओर तो ध्यान नहीं ही जाता, जो करने जा रहे हैं, उसके परिणाम का विचार नहीं आ पाता । ऐसी स्थिति में कई बार पूर्व में हो गई हानि के साथ ही क्रोध में किये कामों से और बड़ी हानि हो जाती है । जैसे कोई व्यक्ति सुने कि उसका शत्रु १०-१२ लठैतों के साथ उसे मारने आ रहा है और वह चट क्रुद्ध होकर उस शत्रु को मारने अकेला दौड़ पड़े बिना शत्रु की शक्ति का विचार एवं अपनी सुरक्षा की व्यवस्था किए, तो परिणाम में उसे ही प्राण गँवाने पड़ सकते हैं । बाधक को हानि पहुंचाने की इस भावना में जब अपनी मर्यादाओं को भुलाकर कुछ कर गुजरने को तैयार हो जाता है, तो प्राय: अपनी हानि ही उसे सहनी उठानी पड़ती है ।

क्रोध मन को उत्तेजित और खिंची हुई अवस्था में रख देता है इससे शरीर में भी तनाव आ जाता है, रक्त-संचालन तीव्र हो उठता है और अनावश्यक गर्मी शरीर में आ जाती है । विचार-शक्ति शिथिल हो जाती है । तीव्र रक्त-संचालन से चेहरा तमतमा उठता है, ओंठ फड़कने लगते हैं, आँखें लाल हो उठती हैं । भीतरी अवयवों पर भी ऐसा ही अनिष्ट और दूषित प्रभाव पड़ता है । हृदय-स्पन्दन तेज हो जाता है, आँतों का पानी गर्मी से सूखने लगता है । पाचन क्रिया शिथिल पड़ जाती है, रक्त में एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है जो जीवनी शक्ति को क्षीण कर देता है । एड्रीनल ग्रन्थियों से क्रोध की स्थिति में जो हारमोन्स स्रावित होते हैं वे रक्त के साथ मिलकर जिगर में पहुँचते हैं और वहाँ जमे ग्लाइकोजन को शर्करा में बदल देते हैं । यह अतिरिक्त शक्कर शरीर पर विधातक प्रभाव डालती है । इस प्रकार क्रोध से बाधक-तत्त्व की हानि हो या नहीं अपनी हानि अवश्य होती है । क्रोध के कारण की तो कोई क्षति कभी-कभार ही होती है, क्रोधी व्यक्ति की स्वयं की क्षति हर बार होती है ।

फिर कामनाएँ भी बहुरंगी होती हैं । किसी भी प्रत्येक कामना की पूर्ति असम्भव तो है ही, अनुचित भी है, क्योंकि उनमें से कई दूसरों की कामनाओं के विरुद्ध होती है । किसी एक की सब कामनाएँ पूरी हो जाने का वरदान यदि मिल जाए, तो उसमें अनेकों को अनेक कामनाएँ विफल होने का शाप भी सम्मिलित होना चाहिए । इसलिए अपनी प्रत्येक कामना की पूर्ति को आवश्यक मानने और उस में बाधा उत्पन्न होते ही क्रोध से भड़क उठने की मन:स्थिति को अपरिपक्व और क्षुद्र ही कहा जायगा । फिर उस क्रोध की प्रतिक्रिया में औरों का भी क्रोध भड़क उठने की सम्भावना और उस सम्भावना के परिणामों का सामना करने को भी तैयार रहना चाहिए ।

क्रोध के अधिकांश कारण तो अत्यन्त सामान्य व छोटे होते हैं। कई बार तो वे सर्वथा आधारहीन ही दिखाई पड़ते हैं । ऐसे भी समाचार सुनने में आते रहते हैं कि किसी छोटे फल वाले से उधार फल माँगे या रिक्शे वाले से मुफ्त में बैठाकर घुमाने को कहा और पहले के पैसे बाकी होने से फल वाले ने अथवा आजीविका में व्यस्त रिक्शे वाले ने नाहीं करवा दी तो क्रोध में उनकी ऐसी पिटाई की गई कि वे मर ही गये । यह अविवेकी क्रोध और उन्मत्त अहंकार के स्वाभाविक किन्तु भयंकर परिणाम हैं । अपने इस क्षुद्र और क्षणिक क्रोधोन्माद पर फाँसी या आजीवन कारावास की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सजा भुगतते हुए पछताने- रोने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं रहता । ऐसे घातक परिणामों को लक्ष्य कर ही यह कहा गया है कि क्रोधी 'अन्धा' होता है । यह केवल उस ओर देखता है, जिसे वह दु:ख का कारण या अपनी कामनाओं का बाधक समझता है । उसका नाश हो, उसे हानि, दु:ख, कष्ट पहुँचे यही क्रोधी का लक्ष्य होता है । वह लक्ष्य भी पूरा नहीं हो पाता, क्योंकि क्रोध एक अति वेगवान मनोविकार है । सोचने-विचारने का समय वह मस्तिष्क को देता ही कब है । यह तो आँधी-तूफान की तरह पूरे मनोजगत पर सहसा छा जाता है और अनर्थकारी कार्य सम्पन्न कराने के बाद ही हटता है । इसलिए तो ऋषि ने कहा है-

**''संचितस्यापि महती स क्लेशेन मानवैः ।**
**यशसस्तपसश्चेव क्रोधो नाशकरः परः ।**

अर्थात्- मनुष्य द्वारा बहुत प्रयत्नों से अर्जित यश और तप को भी क्रोध नष्ट कर डालता है । महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में कहा है-

**''क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोऽमित्रमुखो रिपुः ।**
**क्रोधोऽसि महातीक्ष्णः सर्वक्रोधोऽपकर्षति ।।**
**तपते यतते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।**
**क्रोधेन सर्व हरतितस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ।।''**

*-उत्तरकाण्ड ७१*

अर्थात्- क्रोध प्राणहारी शत्रु है, अमित्र-मुखधारी बैरी है, एक तीक्ष्ण तलवार है, यह क्रोध सब प्रकार से गिरता ही है । मनुष्य जो तप, संयम, दान आदि करता है उस सबका क्रोध हरण कर लेता है, इसलिए क्रोध का परित्याग कर देना चाहिए ।''

यह तो बाधक तत्त्व को हानि पहुँचाने की उत्तेजना उत्पन्न करने वाले क्रोध के दुष्परिणाम हैं । जब क्रुद्ध मन:स्थिति के सम्पर्क में आए अन्य व्यक्तियों के प्रति रोषपूर्ण व्यवहार किया जाता है, तब वह तो सर्वथा अनुचित एवं अन्यायपूर्ण होता है । उसका परिणाम भी अधिक हानिकारक होता है । जिसे यों अकारण अपमानित किया गया है, उसके मन में अपमान का यह शूल निरन्तर चुभता रहता है और उसका परिणाम हर प्रकार से अशुभ ही होता है । दफ्तर से बिगड़कर आया बाबू पत्नी को पीटकर दाम्पत्य-सुख में आग लगाता है, बाहर का क्रोध घर के नौकर पर उतारने वाले क्षुब्ध नौकर द्वारा छिपकर, की जाने वाले चोरी, लापरवाही व क्षति को भोगते हैं । क्रुद्ध मन:स्थिति में मित्रों-परिचितों से दुर्व्यवहार करने वालों को मैत्री-सुख और परिचितों की सहानुभूति से वंचित रहना पड़ता है । साथ ही निन्दा व तिरस्कार भी सहना पड़ता है ।

क्रोधी मनुष्य दूसरे के समर्थ-शक्तिशाली होने पर जब अपने मन्तव्य में सफल नहीं हो पाता, तो वह स्वयं अपने ऊपर वैसी ही क्रिया करने लगता है, जो वह दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए करने की सोच रहा था । अपना सिर फोड़ने लगना, बाल नोंचने लगना, अंग-भंग और आत्महत्या तक कर बैठना ऐसी ही मन:स्थिति के परिणाम होते हैं ।

हर प्रकार क्रोध सदैव हानिकारक ही सिद्ध होता है । यदि क्रोध आवेग के रूप में न हो, तब तो उससे कुछ प्रयोजन भी सिद्ध हो सकता है, किन्तु प्रचण्ड भावावेग के रूप में वह सर्वनाशी ही सिद्ध होता है ।

अनौचित्य को देखकर उत्पन्न होने वाले विवेक नियन्त्रित क्रोध की बात भिन्न है । भारतीय मनीषियों ने उसे ''मन्यु'' की संज्ञा दी है तथा दिव्यता का अंश बताया है । सामाजिक जीवन में वैसे क्रोध की जरूरत बराबर पड़ती है । दुष्टता जिनमें गहराई तक पैठ गई है, उनमें दया, विवेक आदि उत्पन्न करने में बहुत समय लगता है और तब तक वे अत्यधिक अनर्थ कर चुकते हैं । एक व्यक्ति के इस हृदय परिवर्तन की चिर प्रतीक्षा में अनेकों के हृदय को पीड़ा पहुँचाने का क्रम सहा नहीं जा सकता । अत: उस पर क्रोध आवश्यक हो जाता है । वैसे लोक कल्याणकारी क्रोध, की मृत्यु की बात भिन्न है । उस क्रोध का जन्म उद्वेग उत्तेजना से नहीं, विवेक विचार से होता है । जन-सामान्य के क्रोध में प्रतिकार और प्रतीड़न की ही उग्रता होती है । यह क्रोध उत्तेजना और आवेश के रूप में ही उत्पन्न होती है । इससे सत्य असत्य की विवेक-शक्ति दब जाती है और लड़ाई-झगड़ा कटुता, मार-पीट के रूप में ही उनकी अभिव्यक्ति होती है । क्रोध का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मन के दूसरे विकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं । अस्थिरता, क्षणिकता, कुंठा, उद्वेग, अहंकार, असहिष्णुता आदि उसके सहचर हैं । चिड़चिड़ापन कमजोर व्यक्तियों में उत्पन्न होने वाला क्रोध-आवेश ही है ।

क्रोध के कारणों पर विचार किया जाय तो गलत जीवन-दृष्टि मन का विकृत अभ्यास तथा असात्त्विक आहार मुख्य कारण सिद्ध होते हैं । अत: क्रोधी प्रवृत्ति से मुक्ति के इच्छुक व्यक्तियों को आहार की सात्त्विकता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए । साथ ही मन को यदि ऐसा अभ्यास पड़ गया है, तो उसके दुष्परिणामों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और सही जीवन-दृष्टि अपनाने का यत्न एवं उद्योग करना चाहिए ।

क्रोध की बाह्य अभिव्यक्ति दबाकर मन ही मन लम्बे समय तक सुलगते रहना ही 'बैर' है । यह बैर क्रोध से भी भयंकर हानियाँ उत्पन्न करता है ।

क्रोध सदैव जल्दबाजी का परिणाम होता है । जब कोई गलत कार्य होता दिखे या कोई हानि हो जाए, तो उसके कारण का निश्चय करने में जल्दबाजी न करें । स्मरण करें कि पहले विचार-क्रम में बहुधा कारण खोजने में चूक हो जाती है । अत: अनुचित या हानिप्रद कार्य के घटना-स्थल से इधर-उधर हट जाऐं । किसी सुरम्य उद्यान में टहलें या किसी प्रियजन के पास पहुँच जाऐं । उससे स्नेह पूर्ण बात करें । कुछ न हो सके, तो एक गिलास ठण्डा पानी पीऐं और क्रोध को शान्त करें । इस आवेग को भड़कने देने में घाटा ही घाटा है । शमित करने में लाभ ही लाभ है । इसीलिए विश्व के समस्त धर्म शास्त्रों और नीति ग्रन्थों में क्रोध को विनाशकारी अत: त्याज्य ही ठहराया गया है ।

कई बार लगता है कि क्रोध उत्पन्न होने के लिए हम उतने जिम्मेदार नहीं हैं जितनी कि परिस्थितियाँ । वैसी स्थिति में क्रोध पर नियन्त्रण करने और उसके कारण उत्पन्न होने वाले तनाव से अपने आपको बचाये रखने के लिए क्या करना चाहिए ? इस तरह की समस्याओं के मनोवैज्ञानिक समाधान सुझाते हुए अमेरिका के प्रसिद्ध मनोरोग चिकित्सक डा० जार्ज स्टीवेन्सन और डा० विन्सेण्ड पील ने स्नायविक तनाव दूर करने के उपायों पर एक पुस्तक लिखी है 'लाइफ, टेन्शन एण्ड रिलेक्स ।' इस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर सिद्धान्त रूप में तीन वाक्य लिखे हैं- ''क्रोध आये तो किसी भी प्रकार के शारीरिक श्रम में लग जाओ । किसी काम का विपरीत परिणाम निकले तो स्वाध्याय या मनोरंजन में लग जाओ तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम को अनिवार्य समझो' ।

क्रोध के समान ही चिन्ता, दु:ख, व्यथा और अन्यान्य संवेगों को नियन्त्रित करना भी सीखना चाहिए । जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाने वाले व्यक्ति ही मानसिक सम्वेगों को तटस्थ या सन्तुलित भाव से ग्रहण कर सकते हैं । फिर भी किन्हीं अवसरों पर जब अनियन्त्रित सम्वेग उत्पन्न होने लगें तो वैसी स्थिति में शरीर पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को जबरदस्ती दबाना नहीं चाहिए । इस प्रभावों को भी सम्वेगों के भार से मुक्त करने का एक अचूक उपाय बताया गया है । न्यूयार्क के एक विश्वविख्यात मनोरोग चिकित्सक डा० विलियम ब्रियान ने यह मत व्यक्त किया है कि- 'आँसू, दु:ख, चिन्ता, क्लेश व मानसिक आघातों से मुक्ति दिलाने तथा मन को हल्का-फुल्का बनाकर आकस्मिक हुई मन: व्यथाओं को सहने में सहायता पहुँचाते हैं ।' अमेरिकी औरतों का उदाहरण देते हुए डा० ब्रियान ने कहा है कि- मर्दों की अपेक्षा औरतों की लम्बी आयु का रहस्य यह है कि वे खूब रोती हैं । वे ऐसी फिल्में देखने की शौकीन हैं जिनमें बार-बार रोना आता है । इस तरह आँसू लाने से जीवन लम्बा हो जाता है । क्योंकि रोने के कारण व्यक्ति की दबी हुई भावनाओं को बड़ी राहत मिलती है । रोने के कारण दमित भावनाओं के निष्कासन से हृदय के रोगों में भी लाभ पहुँचता है ।

उत्तेजना निवारण का सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि किसी भी माध्यम से उसे मन: संस्थान से निष्कासित कर दिया जाय । इसका माध्यम अशालीन व्यवहार, आक्रोश के रूप में तो न हो परन्तु संवेगात्मक दबाव अपने तक सीमित न रख उसे किसी मित्र हितैषी के साथ अपना आत्म-प्रतिवेदन के रूप में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लिखकर मिटाया जा सकता है । मनः सन्तुलन एक योगाभ्यास है जो व्यक्ति को सफल बनाता है, समाज में सम्मान दिलाता है । स्वास्थ्य रूपी वरदान तो साथ मिलता ही है ।

## विचार संस्थान की सुव्यवस्था अत्यन्त अनिवार्य

काया के विभिन्न अवयवों को सुन्दर, सुडौल, सुसज्जित बनाने के लिए हम पूरा ध्यान रखते हैं और उस कायिक सौन्दर्य सम्बर्द्धन के लिए वस्त्र आभूषण, शृंगार, प्रसाधन, पुष्प आदि जो कुछ सूझता है उसे जुटाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । इससे विदित होता है कि काया और उसके विभिन्न अवयवों को अच्छी स्थिति में रखने के सम्बन्ध में हमारी सर्तकता और सुरुचि कितनी बढ़ी-चढ़ी हो, पर यह देखते हैं कि यह ध्यान, मात्र देखने दिखाने तक सीमित है । जो दृष्टि से ओझल है उपेक्षा ही होती रहती है । फिर चाहें वे अवयव कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों हों । पेट, आँतें, जिगर, गुर्दे, फेफड़े, हृदय जैसे अवयव होंठ, गाल, भौं, नाक आदि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । उनकी सुसज्जा तो पीछे की बात है सुरक्षा तक पर ध्यान नहीं जाता और वे अस्त-व्यस्त स्थिति में पड़े रहने के कारण रुग्ण बने रहते हैं । फलतः जीवन का आनन्द ही चला जाता है, एक प्रकार से जिन्दगी की लाश ही किसी प्रकार ढोनी पड़ती है ।

मस्तिष्क की- उसके चेतना प्रवाह मन की गरिमा पर जब विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि जीवन का अस्तित्त्व, स्वरूप स्तर और भविष्य भी उसी केन्द्र बिन्दु के साथ जुड़ा हुआ है । देखने में जो कुछ किया, कमाया और भोगा जाता है उसमें शरीर की ही भूमिका दृष्टिगोचर होती है, पर वास्तविकता दूसरी ही है । मन ही पूरी तरह शरीर पर छाया हुआ है, उसके भीतर भी वही रमा है । विपन्नता और सम्पन्नता का सम्बन्ध परिस्थितियों और व्यक्तियों के साथ जोड़ा तो जाता है, पर थोड़ी गहराई में उतरने पर स्पष्ट हो जाता है कि काया की कठपुतली जो तरह-तरह की हरकतें करती और सम्वेदनायें प्रकट करती है उसमें पर्दे के पीछे बैठे बाजीगर मन की उँगलियाँ ही अपनी करामात दिखा रही होती हैं ।

स्वास्थ्य-अर्थ, व्यवस्था, परिवार-प्रबन्ध, श्रेय-सम्मान के लिए प्रयत्न करने में ही हमारी गतिविधियाँ संलग्न रहती हैं । उन्हीं प्रयासों में एक कड़ी मनःसंस्थान को सुव्यवस्थित रखने को भी जोड़ी जानी चाहिए । बालों को सुसज्जित रखने का जितना ध्यान रखा जाता है यदि उतना ही मानसिक सन्तुलन बनाये रहने का ध्यान रखा जा सके तो प्रतीत होगा कि सर्वोपरि बुद्धिमत्ता और सर्वोच्च सफलतायें प्राप्त करने का द्वार खुल गया । शरीर की जो भी स्थिति है उसके लिए वस्तुतः मन ही उत्तरदायी है । मन के हारे हार और मन के जीते जीत वाली उक्ति की यथार्थता में रत्ती भर भी सन्देह की ''गुंजायश'' नहीं है ।

मस्तिष्क की तुलना एक अच्छे खासे बिजलीघर से की जा सकती है उसकी उत्पादित शक्ति का वितरण तन्त्रिका तन्त्र-नर्वस सिस्टम- समस्त शरीर में होता है और उसी की शक्ति से समस्त अवयव अपना काम ठीक प्रकार कर पाते हैं । मस्तिष्कीय विद्युत उत्पादन का जितना भाग समस्त शरीर को गतिशील रखने में खर्च होता है, उससे कुछ ही कम अपनी निज की मशीनरी को चलाने और खुराक जुटाने एवं टूट-फूट ठीक करने में खप जाता है । चिन्तन अथवा हलचलों के लिए हम जान-बूझकर कुछ भी नहीं करें तो भी मस्तिष्क तन्त्र स्वयमेव चालू रहेगा । उसे सोते जागते विश्राम कभी नहीं, सोचने-विचारने वाला भाग कुछ समय तक नींद में विश्राम भी पा लेता है, पर अवयवों को गतिशील एवं जीवित रखने वाला अचेतन भाग तो जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त अनवरत रूप से कार्य संलग्न रहता है ।

सोचने या काम करने में मस्तिष्कीय शक्ति का सीमित, सन्तुलित एवं व्यवस्थित व्यय होता है किन्तु मानसिक उत्तेजनाओं की स्थिति में शक्ति व्यय का अनुपात अत्यधिक बढ़ जाता है । चूल्हे में ईंधन सीमित जलता है, पर ईंधन के ढेर में आग लग जाने पर तो ऊँची लपटें उठने लगती हैं, और देखते-

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देखते उतना ईंधन जलकर खाक हो जाता है, जिससे महीनों चूल्हा जलता रहता । घबराहट, चिन्ता, भय, शोक, उदासी जैसी मन:स्थिति होने पर गिरावट स्तर की खिन्नता होती है और क्रोध, आवेश, कामुकता, आतुरता जैसे प्रसंगों में उत्तेजित प्रतिक्रिया उभरती है । दोनों ही परिस्थितियों मानसिक सन्तुलन बिगड़ता है, ज्वार हो या भाटा दोनों ही परिस्थितियों में समुद्र के समान उथल-पुथल होती है । खिन्नता एवं प्रसन्नता की अति से जो आवेश मन:क्षेत्र में उत्पन्न होता है उसके कारण सही चिन्तन कर सकना और निष्कर्ष निकाल सकना सम्भव नहीं रहता । थका हुआ आदमी असफलताओं की निराशाजनक बातें सोचता है और नशे में धुत्त व्यक्ति दून की हाँकता है । जिसे कुछ विशेष उपलब्धियाँ मिल गई हैं वह फूला नहीं समाता और धरती जोतने जैसे मनसूबे बांधता हैं । लो ब्लड़ प्रेशर और हाई ब्लड-प्रेशर के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं, पर कष्ट दोनों ही व्याधियों के रोगी समान रूप से भुगतते हैं ।

शरीर और मन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । मन प्रसन्न हो तो शरीर में सक्रियता रहेगी और यदि खिन्नता छाई तो क्रियाशीलता में ही कमी नहीं आयेगी वरन् उसके साथ अस्त-व्यस्तता जुड़ जाने से थोड़ा-बहुत काम किया गया था वह भी गलत-सलत हो जायगा और नुकसान न करने से भी अधिक मँहगा पड़ेगा ।

मन:स्थिति का नाम ही ''मूड'' है । मूड अनुकूल हो तो आदमी काम पर सवार रहेगा और यदि वह प्रतिकूल हो तो काम आदमी पर सवार रहेगा । दोनों परिस्थितियों में कितना अन्तर है इसका परिचय प्राप्त करना ही तो एक उस आदमी को देखा जाय जो घोड़े पर सवार तेजी से सफर कर रहा है । दूसरा वह आदमी देखा जाय । जिसके जिम्मे मरा घोड़ा ढोकर या घसीटकर ले जाने का काम सौंपा गया है । दोनों अपनी प्रसन्नता के अनुरूप ही वे सौभाग्य दुर्भाग्य का अनुमान लगा रहे हों । उसी अनुपात से उनके उत्साह एवं बल में भी घट-बढ़ का कुछ अन्तर पड़ रहा होगा ।

मन कुछ काम तो अपने आप ही कर लेता है, उसे इन्द्रियों की सहायता से कराने पड़ते हैं । चिन्तन, मनन, ध्यान, कल्पना, योजना, निष्कर्ष, निश्चय आदि क्रियायें वह अपने आप ही कर लेता है । चलना-फिरना, खाना-पीना, देखना-सुनना, बोलना जैसे कार्य उसे इन्द्रियों की सहायता से कराने पड़ते हैं ।

इन्द्रियाँ देखने भर में स्वतन्त्र हैं उनका स्थान मस्तिष्क से दूर है तथा बनावट भी भिन्न है इसमें उनकी भिन्नता अनुभव की जाती है, परतथ्य यह है कि वे सभी मन के बाजीगर द्वारा उँगली के इशारों पर चलाई जाने वाली कठपुतलियाँ भर हैं । अधिक से अधिक इतना कह सकते हैं मन वे महाराज की रखैल नर्तकी हैं जिन्हें अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिएं तरह-तरह के खेल और स्वांग रचने पड़ते हैं । इन्द्रियों की बुरी आदतों से कई प्रकार की हानियाँ होती हैं । चटोरापन, कामुकता, आलस, दुर्व्यसन जैसे कृत्यों के लिए इन्द्रियों को दोष दिया जाता है और उनका नियन्त्रण निग्रह करने की बात सोची जाती है । यह जड़ का ध्यान रखकर पत्ते को सींचने के समान है । इन्द्रिय निग्रह के स्थानीय अभ्यास प्राय: असफल रहते हैं । कामुकता की प्रवृत्ति को लंगोट बांधने के प्रतिबन्ध से नहीं रोका जा सकता है । प्रतिबन्ध से प्रत्यक्ष रुक सकते हैं, पर भीतर से उनकी लिप्सा ललकती रहे तो अन्त: शक्तियों का क्षरण इन्द्रिय भोग जितना ही होता रहेगा । पानी का सोता रोका जाना चाहिए मेड़ बाँधने पर तो वह एक जगह रुकते ही दूसरी जगह फूट पड़ेगा । इन्द्रिय निग्रह की आवश्यकता अनुभव हो तो स्थानीय रोकथाम की बात सोचने के साथ लिप्साओं के उद्‌गम मन पर नियन्त्रण करना चाहिए । इन्द्रिय निग्रह की सफलता मनोनिग्रह पर निर्भर है ।

कुसंस्कारी मन कच्चे पारे की तरह है । वही सुसंस्कारी बना लिए जाने पर मकरध्वज जैसे पारद रसायनों के रूप में विकसित होता है, तो गुण कारी रसायन का काम करता है । कच्चा पारा तो भयंकर शरीर विस्फोट एवं मरण का निमित्त ही बन सकता है । मन की गुलामी बुरे किस्म की पराधीनता है । गुलाम सोने खाने जैसे समय तो अवकाश प्राप्त कर लेते हैं, पर मन के गुलाम को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दिन-रात में कभी भी चेन नहीं । स्वतन्त्रतापूर्वक वह कुछ भी कर सकना तो दूर, सोच तक नहीं सकता ।

बन्ध मोक्ष- का पतन उत्थान का आधार-भूत कारण मन है । परिस्थितियों को बहुधा श्रेय या दोष दिया जाता है, पर वह लांछन-मात्र है । यदि परिस्थितियाँ कारण रही होतीं तो उन परिस्थितियों में रहने वाले सभी न सही अधिकांश को तो एक जैसा मार्ग अपनाना चाहिए था । पर वैसा होता कहाँ हैं । अच्छी से अच्छी परिस्थितियों के लोग समस्त सुविधा साधन होते हुए भी बुरे-से बुरे कर्म करते हैं । इसके विपरीत भारी विपत्ति में फंसे हुए और घोर अभावग्रस्त स्थिति में रहते हुए भी कितने ही अपने नैतिकता और सदाशयता बनाये रहते हैं । वास्तविक कारण मन का स्तर है वह अपनी निष्कृष्टता एवं उत्कृष्टता के अनुरूप मनुष्य की गतिविधियाँ को इच्छित दिशा में घसीटता चला जाता है ।

मन को अवांछित चिन्तन से बचाना तथा सदैव परिस्थिति से ताल-मेल बिठाने जैसी स्थिति में बनाये रखना भी एक कला है । मानवी गरिमा इसी में है कि मानव योनि के उपयुक्त श्रेष्ठ चिन्तन एवं सत्कार्यों भरा जीवन जिया जाय । यह एक विडम्बना ही है कि इन विभूति का समुचित उपयोग नहीं बन पाता ।

प्रसिद्ध विचारक और चिन्तन डॉक्टर वाल्टर टौपेल ने लिखा है कि ''केवल मनुष्य ही रोता हुआ पैदा होता है, शिकायत करता हुआ जीता है और मरता है ।'' अन्य प्राणियों को जीवन में न तो कोई परेशानी होती है न समस्यायें । पर मनुष्य विचारशील और भाव-प्रवण होने के कारण छोटी-छोटी घटनाओं से भी प्रभावित होता है तथा उन अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है । ये प्रतिक्रियायें अनुकूल कम होती हैं और प्रतिकूल अधिक ।''

समाज के प्रत्येक वर्ग में प्रत्येक स्थिति में व्यक्ति का यदि विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि हर कोई कहीं न कहीं, किसी न किसी कष्ट या समस्या से पीड़ित है । निर्धन व्यक्ति अपनी गरीबी से पीड़ित है तो समृद्ध और किन्हीं कारणों से । कोई भौतिक सुख-सुविधाओं से परेशान है तो कोई मानसिक शान्ति न मिलने से । आज के समय में तो ये समस्यायें और भी अधिक जटिल हो गई हैं । सभ्यता के विकास के साथ-साथ और भी नई-नई समस्यायें उत्पन्न होने लगी हैं । आज की मशीनी सभ्यता ने मनुष्य के लिए जो नई समस्यायें उत्पन्न की हैं उनमें प्रमुख हैं मानसिक तनाव । यों चिन्तायें विक्षोभ, मानसिक दबाव और असफलताओं का दुःख मनुष्य को सदा से परेशान करते हैं, पर विगत कुछ शताब्दियों में मानसिक तनाव के कारण कई ऐसे रोग फैलने लगे हैं, जिनका कारण शरीर में खोजे भी नहीं मिल पाता है । ऐसे रोगों को अँग्रेजी में ''साइकोसौमैटिक'' रोग कहा जाता है ।

चिकित्सा विज्ञान की नई-नई शोधों और उपचार पद्धतियों के बल पर कुछ दशकों में जहाँ कई पुरानी बीमारियों पर पूरी तरह नियन्त्रण प्राप्त कर लिया गया था, वहीं अब कुछ ऐसे रोग बड़ी तेजी से फैल रहे हैं, जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना गया था । विशेषज्ञों के अनुसार उन रोगों को सभ्यता के राजरोग कहा जाता है । उनका कहना है कि मन पर पड़ने वाले दवाबों और मानसिक तनाव के कारण ही ये रोग उत्पन्न होते हैं ।

विज्ञान की भाषा में मन शरीर का कोई अवयव नहीं है । वैज्ञानिकों के अनुसार जिसे मन कहा जाता है वह मस्तिक की शक्तियों का ही विशिष्ट प्रकार से होने वाला प्रक्षेपण है । मनुष्य शरीर के द्वारा सम्पन्न होने वाली सभी गतिविधियों, क्रिया-कलापों का संचालन मन द्वारा होता है- यह तो सर्वविदित है । शरीर के द्वारा कुछ कार्य तो मनुष्य अपनी इच्छानुसार करता है जैसे चलना, उठना, बैठना, लिखना, पढ़ना आदि । इनके अतिरिक्त शरीर में कई ऐसी प्रक्रियायें भी चलती रहती हैं जिन पर मनुष्य अपनी इच्छानुसार नियमन नहीं कर सकता । जैसे पाचन-क्रिया रक्त परिभ्रमण, हृदय स्पन्दन नाड़ी चलना आदि । इन प्रक्रियाओं का नियन्त्रण मस्तिष्क के जिस भाग द्वारा होता है उसे हाईपैथोल्मष कहते हैं । इस केन्द्र से चलकर स्नायु

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पथ के द्वारा अनैच्छिक गतिविधियाँ चलती हैं । इसके भी वे दो भाग हैं एक को पैरासिन्थेटिक कहा जाता है तथा दूसरे को सियेथैटिक । पहला पाचन शोषण और शुद्धिकरण जैसे कार्य करता है तथा दूसरा भाग प्राणी को विशिष्ट परिस्थितियों से निपटने की क्षमता प्रदान करता है । तनाव या दवाब के समय मस्तिष्क का यह हिस्सा सक्रिय हो उठता है । जैसे खतरा प्रस्तुत होने पर इसके कारण रक्तचाप बढ़ जाता है, दिल की धड़कन तेज हो जाती है, हृदय से अत्यधिक रक्त प्रवाहित होने लगता है, भीतरी अवयवों से हटकर रक्त-मांसपेशियों क़ी ओर आने लगता है, रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है और शरीर में एड्रिनेलिन नामक रसायन भी प्रवाहित होने लगता है । यह सब परिवर्तन अन्य संकटों से जूझने के लिए होते हैं, किन्तु जब साधारण सी बातों को लेकर भी चिन्तित हुआ जाने लगता है तो भी यही परिवर्तन होते हैं ।

भावनाओं की शरीर पर क्या प्रतिक्रिया होती हैं ? इसका यह एक छोटा सा उदाहरण है । प्रकृति ने भावनाओं का शरीर से यह सम्बन्ध विशिष्ट उद्देश्य से जोड़ा है । वह उद्देश्य यह है कि प्राणी का शरीर परिस्थिति के अनुरूप ढल सके । कुछ घटनाओं और भावनाओं की शरीर पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को समझा जा सकता है । डर के कारण पेशाब छूट जाना, घबराहट से पसीना छूटना, चिन्ता के कारण भूख न लगना, गुस्से में होने पर चेहरा तमतमा उठना, परेशानी से नींद न आना और लज्जा के मारे लाल हो जाना, चेहरा झुका लेना, आदि स्थितियाँ दर्शाती हैं कि भावनाओं का प्रभाव मनुष्य शरीर के रक्त प्रवाह और अन्दरूनी हलचलों पर अनिवार्य रूप से पड़ता है ।

पसीना छूटने से पता चलता है कि भावनायें शरीर की उन ग्रन्थियों को प्रभावित करती हैं जो पसीना छोड़ने का काम करती हैं । बहुत बुरी खबर सुनने या मानसिक आघात पहुँचने पर घबड़ा उठने के साथ मूर्च्छित तक हो जाने की स्थिति दर्शाती है कि मस्तिष्क का क्रिया-कलाप भी भावनाओं से प्रभावित है । यह सब स्थितियाँ इस बात की द्योतक हैं कि परिस्थितियाँ भावनाओं को जन्म देती हैं और भावनायें शारीरिक प्रक्रियाओं को । परिस्थिति विशेष से निपटने के लिए शरीर में होने वाले ये परिवर्तन प्रकृति की बहुत ही उपयोगी व्यवस्था होती है ।

परन्तु कई बार अकारण ही व्यर्थ चिन्तायें होती हैं और उन स्थितियों में भी यही परिवर्तन होने लगते हैं । लम्बे समय तक यही स्थिति बनी रहे तो मनुष्य शरीर कई रोगों से आक्रान्त हो जाता है । आधुनिक सभ्यता में जीवन-क्रम की तेज गतिशीलता और कदम-कदम पर प्रतिस्पर्धा की आपाधापी भी मस्तिष्क में मिथ्या आशंकाओं भय और गुत्थियों को जन्म देती है । वैसी दशा में मस्तिष्क के आदेश से शरीर में वैसी प्रक्रिया होने लगती है जैसी कि वास्तविक संकट के समय होती है । मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस तरह की प्रक्रियायें अपेक्षाकृत कम तीव्र होती हैं, परन्तु वे लम्बे समय तक चलती हैं । जब वास्तविक संकट सामने होता है तब तो ये प्रतिक्रियायें जितनी तेजी से शुरू होती हैं उतनी ही तेजी से संकट दूर हो जाने पर अपने आप समाप्त हो जाती हैं । लेकिन वास्तविक और अमूर्त संकट से उत्पन्न प्रक्रिया भले ही तीव्र न हो पर धीमे-धीमे शरीर में चलती जाती हैं तथा उससे शरीर को नुकसान पहुँचता है । उदाहरण के लिए वास्तविक संकट उत्पन्न होने के कारण हृदय की गति बढ़ जाती है और संकट समाप्त होते ही पुनः स्वाभाविक स्थति में आ जाती है । किन्तु मनोकल्पित आशंका से हृदयगति कुछ तेजी से ही धड़कती है । ऐसी आशंकाओं का कोई आधार तो होता नहीं अतः ये आशंकायें भी लम्बे समय तक चलती रहती हैं और हृदयगति भी निरन्तर बढ़ी हुई रहने लगती है जो शारीरिक व्याधिका रूप धारण कर लेती है उपरोक्त ढंग से बढ़ी हुई हृदय की गति के रोग को ''टैकी काडिया'' कहा जाता है ।

इसी प्रकार संकट के समय मस्तिष्क रक्त-प्रवाह को आमाशय से हटा कर ऊपरी मांसपेशियों की ओर मोड़ देता है । ऐसे क्षणों में घबराहट से जी मिचलाने लगता और उबकाई आने लगती है । यह प्रक्रिया मिथ्या भय के कारण भी होती है और अवास्तविक भय के कारण भी यह प्रक्रिया

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


निरन्तर चलती रहती है । ऐसी स्थिति में यह खट्टी डकारें आने, जी मिचलाना जैसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

यह सब लक्षण रोग के प्रतीत होते हैं और लगता है कि शरीर स्वास्थ्य में कोई खराबी आ गई है । परन्तु वास्तव में इनकी जड़ मन के भीतर होती हैं । व्यक्ति इस बात को नहीं समझता और मानसिक कारणों को यथावत् रखते हुए रोग की भी चिन्ता करने लगता है । जितना ही वह रोग के बारे में सोचता जाता है, उतना ही रोग बढ़ता नजर आने लगता है और दोहरी समस्या बन जाती है ।

इस तरह मानसजन्य रोगों की एक लम्बी सूची है और विज्ञान भी यह मानने लगा है कि ६५ प्रतिशत रोगों का कारण इस तरह की मानसिक अपरिपक्वता ही है । व्यक्तित्व में प्रौढ़ता का अभाव ही मानस जन्य शारीरिक रोगों का कारण बनती है । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो निरन्तर किन्हीं बातों को लेकर चिन्तित रहना, गलत-सलत शंका, कुशंकायें करते रहना और व्यर्थ के बहम पालना मानवीय मस्तिष्क को अत्यान्तिक तनावग्रस्त कर देते हैं । तनाव का बहुत अधिक बढ़ जाना ही इस तरह के रोगों का कारण बनता है ।

मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि तनाव जीवन का एक अनिवार्य अंग है परन्तु वह सीमा से अधिक हो जाता है तो मस्तिष्क और शरीर पर बुरा प्रभाव डालने लगता है । सिएटल के वाशिंगटन विश्वविद्यालय में चिकित्सा विभाग के प्रधान डॉ० टॉमस होम्स ने हाल ही में लम्बे समय तक शोध और अनुसन्धान के बाद यह प्रतिपादित किया है सक्रिय जीवन व्यतीत करते हुए कोई भी व्यक्ति तनाव से पूर्णत: मुक्त नहीं हो सकता । उनका कहना है कि एक ही तरह की घटनायें अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग अनुपात से तनाव का कारण बनती हैं । उन्होंने ऐसे विभिन्न घटनाओं की तथा घटकों की एक लम्बी सूची बनाई जिसके कारण मानसिक तनाव उत्पन्न होता है तथा इन घटनाओं के लिए अंक निर्धारित किए और कहा कि वर्ष में २०० अंकों से अधिक तनावपूर्ण स्थितियों में स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है ।

डॉ० होम्स ने जीवन साथी की मृत्यु से लेकर रहन-सहन में परिवर्तन और यहाँ तक कि सोने की आदतों में बदलाव तक भी तनाव का कारण बताया है । यहाँ बात अलग है कि कौन व्यक्ति इन घटनाओं से कितना तनाव अनुभव करता है । इन तनाव से पूर्णतया छुटकारा नहीं पाया जा सकता और न ही इसके लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता है । परमात्मा ने मनुष्य शरीर और मन को इस योग्य बनाया है कि वह दैनन्दिन जीवन में आने वाले तनाव को झेल सके । समस्या उत्पन्न तब होती है जब मनुष्य साधारण घटनाओं को भी आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने लगता है । इस स्थिति से बचने का एक ही उपाय है कि मनुष्य अपनी सीमाओं और सामर्थ्यों को सही ढंग से पहचाने तथा उनके अनुसार अपना जीवन क्रम बनायें । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक और डॉ० सोलिए के अनुसार अपनी सामर्थ्य के अनुसार तनाव झेलना स्वास्थ्य के लिए अच्छा ही है ।

लेकिन सामर्थ्य से अधिक तनाव बढ़ता प्रतीत हो तो डॉ० सोलिए ने उसके लिए श्रम को सबसे बड़ा उपचार बताया है । अपने आपको व्यस्त रखना अनेक प्रकार की समस्याओं के साथ मानसिक तनाव से मुक्त होने का भी अचूक उपाय है । महत्त्वाकांक्षाओं और क्षमताओं में सांमजस्य भी तनाव की सम्भावना को बहुत कम कर देता है । अपनी स्थिति से ऊँची उठने और उन्नति के चरम शिखर को छूने की इच्छा हर किसी में रहती है । निश्चिन्तता ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए पर उसके लिए अधैर्य या व्यग्रता से काम नहीं लेना चाहिए । सीढ़ी दर सीढ़ी ही लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । डॉ० सोलिए का यह भी कहना है कि तनाव से उत्पन्न शारीरिक व्याधियों से बचने के लिए व्यक्ति का आस्थावान होना भी आवश्यक है । ईश्वर के अस्तित्व को मानने में किसी को आपत्ति भी हो सकती है, पर कम से कम अपने प्रति आस्था तो रखी ही जा सकती है । अपने प्रति आस्थावान रहने के लिए आवश्यक है कि अपना सही-सही मूल्याँकन किया जाय ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# हिम्मत बटोरें-आत्महीनता छोड़ें

कहते हैं कि हाथी को अन्य प्राणी ढील-डौल में उनके वास्तविक आकार-प्रकार से कहीं बड़े दिखाई देते हैं । उसकी आँख की बनावट ऐसी होती है कि वह अन्य प्राणियों का आकार कई गुना बढ़ा-चढ़ा कर देखती है, इसी कारण हाथी दूसरे प्राणियों से भयभीत होता है और सामान्यत: यकायक किसी पर आक्रमण नहीं करता । यह कहावत गलत भी हो सकती है, पर सत्य है कि आत्महीनता की ग्रन्थि से ग्रस्त व्यक्ति परिस्थितियों को उसी रूप में नहीं देखता जो वास्तव में होती हैं । अपने प्रति हीनता या अविश्वास का भाव रखने वाले लोग परिस्थितियों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर देखते हैं और उनसे भयभीत, आतंकित, चिन्तित होते रहते हैं । इस मनोविकृत के कारण अधिकांश लोग अपने आप स्वयं ही अपना तिरस्कार करते रहते हैं और उसके अभ्यस्त बन जाते हैं ।

आत्महीनता की भावना से ग्रस्त व्यक्तियों का स्वभाव दब्बूपन का बन जाता है । वे सही और उचित सामान्य बात भी किसी से नहीं कह पाते । मुँह खोलने में उन्हें डर लगा रहता है कि जिससे जो कुछ वह कहने जा रहे हैं, वह पता नहीं क्या समझ बैठे, रुष्ट न हो जाएँ कहीं झिड़क न दे । वस्तुत: यदि ऐसा हो भी जाता है तो सामान्यत: कोई बड़ी हानि नहीं होती पर आत्माहीनता की व्यधि से ग्रस्त व्यक्ति इस सीमा तक डरे.दबे रहते हैं कि भले ही कोई हानि हो जाए वे किसी भी स्थिति में अपनी बात को सरल सीधे ढंग से कहने का साहस नहीं जुटा पाते । आवश्यक होने पर भी कुछ न कह पाने का संकोच बरतने से इस बात की सम्भावना तो बनी रहती है कि गलत फहमियाँ पैदा हो जाएँ, व्यवहार में भ्रान्तियाँ जन्म लेने लगें और इस कारण सामने वाला कुछ का कुछ समझकर अप्रत्याशित, अस्वाभाविक, हानिकारक व्यवहार कर बैठे । यह स्थिति मनुष्य को निश्चिन्त ही दयनीय स्थिति में डाल देती है और इसके लिए कोई अन्य कारण दोषी नहीं है, व्यक्ति का आत्महीनता ग्रस्त स्वभाव स्वयं ही दोषी है ।

विचारणीय है कि लोगों में आत्महीनता की यह भावना क्यों उत्पन्न होती है । मन:शास्त्री उसके कई कारण बताते हैं । उनके अनुसार बचपन में आवश्यक स्नेह सम्मान न मिल पाना, माता-पिता या अभिभावकों की ओर से उपेक्षा मिलना, उपहास का कारण बनते रहना या अभावग्रस्त स्थिति में समय गुजारने रहना आदि ऐसे कारण हैं जो बचपन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं जिनके कारण बच्चे बड़े होकर भी आत्महीनता की महाव्याधि के शिकार बनते हैं । बीमार, अपंग और मन्दबुद्धि, कमजोर, बच्चे भी बार-बार डाँट-डपट सुनते हैं । फलत: उनका मन यह मान बैठता है कि उनकी स्थिति दूसरों की अपेक्षा गई गुजरी ही है; भाग्य ही कुछ ऐसा है । पिछड़ी समझी जाने वाली जातियों के स्त्री पुरुष आमतौर पर अपने को दूसरों की तुलना में घटिया अनुभव करते हैं और अपने सोचने-विचारने का ढंग उसी स्तर का बना लेते हैं मानों उनको बनाते समय विधाता ने घटिया मिट्टी का ही प्रयोग किया हो ।

ऐसी बात नहीं है कि आत्महीनता की यह व्याधि केवल पिछड़े और बचपन में उपेक्षित रहने वाले लोगों में ही पाई जाती है सभ्य और शिक्षित कहे जाने वाले लोगों में भी इस व्याधि के लक्षण रूप दब्बूपन की प्रवृत्ति पाई जाती है और वे अपने इस स्वभाव के कारण स्वयं को हेय स्थिति में डाल लेते हैं । ऐसे व्यक्तियों को सहज ही पहचाना जा सकता है । आत्महीनता की ग्रन्थि अकारण ही मनुष्य को आलसी, असन्तुष्ट, दब्बू, चापलूस तथा बात-बात पर खिन्न और क्षुब्ध होने वाले स्वभाव का बना देती है । उससे कोई भी बेगार ले सकता है, ठग सकता है । मन में वैसा न करने की बात रहते हुए भी इन्कार करने की हिम्मत नहीं होती तो सामने वाले का आग्रह टालते नहीं बनता है ।

इस प्रकार के दब्बूपन के अतिरिक्त आत्महीनता की विकृति उद्धत बनकर भी उभरती है और वह ऐसे कृत्य करने को उकसाती है, जिससे कि लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया जा सके, विधिवत् साधारण बनने के लिए तो आवश्यक है कि व्यक्तित्त्व का समग्र निर्माण किया जाय और उसे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मविश्वास से सम्पन्न बनाया जाय । कहना नहीं होगा कि व्यक्तित्व का समग्र निर्माण करने की आदर्शवादी गतिविधियाँ अपनाने का साहस जुटाना पड़ता है तथा उस मार्ग पर चलते हुए श्रेष्ठ परिणामों को प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर सकें, इस स्तर का धैर्य जुटाना पड़ता है । आत्मविश्वास से रहित, आत्महीनता की व्याधि से ग्रस्त लोगों में ऐसा साहस और धैर्य जुटाने की सामर्थ्य कहाँ होती है । सो वह उद्धत आचरण करके ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की रीति-नीति अपना लेता है और कई बार आपराधिक गतिविधियां भी अपना लेता है । यों इस तरह की गतिविधियाँ अपनाने और अपराध करने में भी हिम्मत की आवश्यकता पड़ती है सो इस रास्ते से जल्दी सफलता मिलते देखकर हीनताग्रस्त व्यक्ति ऐसे लोगों का साथ ढूँढता और संग करता है जो इन्हीं कुकृत्यों में संलग्न है । ऐसे आवारा लोगों के साथ पा लेने के बाद उसमें अपराध कृत्यों को करने का दुस्साहस भी उत्पन्न हो जाता है और इस अभ्यास से वह भी गुण्डागर्दी में संलग्न होकर स्वयं को आत्म गौरव सम्पन्न अनुभव करने लगते हैं । यही कारण है कि उच्छृंखल गतिविधियाँ अपनाने वाले अवांछनीय तत्त्व निजी जीवन में थोड़ी सी विपत्ति आते ही बुरी तरह रोने-कलपने लगते हैं यह बात अलग है कि अवांछनीय गतिविधियाँ अपनाने के कारण वे सस्ती तरकीब से दुहरा लाभ उठाने की गतिविधियों को पेशे के रूप में अपना लेते हैं और बड़े-चढ़े अपराध करने लगते हैं पर मूलत: वे होते आत्महीनता की भावना के शिकार हैं ।

आत्महीनता ही वह कारण है जो स्वयं को उपेक्षित, तिरस्कृत और हेय स्तर का आभास देती है साथ ही उस आभास को अधिक बन-ठन कर, साज–शृंगार के द्वारा दूसरे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति अपनाने के लिए प्रेरित करती है ताकि बहुत से लोगों को अपनी ओर आकर्षित हुआ देखकर हेय आभास की व्यथा पर आकर्षित होने का मरहम लगाया जा सके । अधिक बन-ठन कर रहने, साजशृंगार करने वाले व्यक्ति में निश्चित रूप से अधिकांश ऐसे ही होते हैं जो अपने आपको तिरस्कृत उपेक्षित एवं हेय स्तर का मानते हैं । भले ही वे अपने बारे में बढ़-चढ़ कर बातें करते हों । आत्म संस्तुति से अघाते नहीं पर मन में बहुत गहराई में यह भावना छिपी दबी रहती है । दूसरों के सामने अधिक आकर्षक दिखने, अमीरी का ढोंग रचने और शान-शौकत के लिए अपव्यय करने वाले लोग मूलत: ओरों पर अपने बढ़े होने की छाप ही छोड़ना चाहते हैं ऐसे व्यक्ति कम कीमत की मजबूत चीजें खरीदने के स्थान पर मँहगी दुकानों से अधिक मूल्य वाली साधारण वस्तुएँ खरीदना ज्यादा पसन्द करते हैं इसके पीछे दूसरों पर अपने बड़प्पन का आतंक जमाने के सिवा दूसरा कोई कारण नहीं होता । पर अपने बड़प्पन की छाप छोड़ने के लिए आमदनी से अधिक खर्च भी उन्हें करना पड़ता है और परिणाम: ऋणी बनना पड़ता है अथवा आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है ।

यह तो हुई आत्महीनता की भावना को दबाने, ढकने और उसके लिए अस्वाभाविक आचरण करने वालों की स्थिति । इस मनोव्याधि से ग्रस्त व्यक्तियों में एक दूसरे प्रकार का लक्षण भी पाया जाता है जो आत्मघात, नशे-बाजी और मनोवेगों के रूप में देखने को मिलता है । पिछले दिनों अमेरिका में एक मन:शास्त्री प्रो० हाइन्ज हाफनट ने अपने एक अध्ययन सर्वेक्षण में यह पाया कि आत्महत्याओं, नशीले पदार्थों के सेवन और आत्महीनता के कारण उत्पन्न रोगों में गहन सम्बन्ध है ये रोग या प्रवृत्तियाँ छूत के रोग की तरह हैं और परस्पर इस ढंग से सम्बद्ध है कि एक व्यक्ति यदि उनमें से किसी एक प्रवृत्ति का शिकार है तो उसमें दूसरी प्रवृत्ति बढ़ने की बहुत सम्भाबना रहती है ।

प्रो० हाफनट का कहना है कि २५ वर्ष की आयु तक के युवक-युवतियाँ सबसे अधिक आत्महत्या का प्रयत्न करते हैं । इसी आयु वर्ग में स्त्रियाँ पुरुषों से दुगनी संख्या में आत्महत्या करती हैं । २५ वर्ष तक की आयु से ऊपर और ५० वर्ष तक की आयु वाले स्त्री पुरुष में यह अनुपात लगभग बराबर है । प्रो० हाफनट और उनके सहयोगियों ने देखा कि जो लोग आत्महत्या करते

हैं । उनमें से अधिकांश किसी न किसी नशीले पदार्थ का सेवन करते रहे हैं । आत्महत्याओं के पारिवारिक और सामाजिक परिवेश का अध्ययन करने के बाद पाया गया कि इन परिस्थितियों में आत्महत्या करने वाले लोग अपने आपको एकाकी उपेक्षित और अकेला अनुभव करते थे और उन्हीं परिस्थियों में ऐसे लोगों की ओर आकर्षित हो जाते थे, जो किसी मादक पदार्थ का सेवन करते थे ।

अमेरिका और ब्रिटिश वैज्ञानिक सम्मिलित रूप से अपने एक शोध सर्वेक्षण में इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मादक द्रव्यों का आदी शीघ्र ही अपने सम्पर्क में आने वाले नये व्यक्ति को अपने जैसा ही बना लेता है । मजे की बात तो यह है कि स्वयं को एकाकी, उपेक्षित और अकेला अनुभव करने वाला व्यक्ति ही ऐसे नशेबाज की ओर जल्दी आकर्षित होता है तथा उस परिवेश में अपने को सुरक्षित अनुभव करने लगता अथवा आत्म-विस्मरण के गहन अन्धकार में डूब जाता है । यह भी देखा गया है कि मादक पदार्थों की ओर प्राय: ऐसे युवक-युवतियाँ ही अधिक प्रभावित होते हैं, जिन्हें माता-पिता से भरपूर स्नेह नहीं मिला है अथवा जो प्राय: उपेक्षित रहे हैं । बचपन में इस प्रकार उपेक्षित रहने वाले व्यक्तियों में चिन्ताजनक रूप में आत्महीनता की भावना पाई जाती है और प्राय: यही लोग जीवन में पथ भ्रष्ट होते हैं ।

अपने सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर प्रो० हाफनट ने प्रतिपादन किया है कि जितने लोग दरिद्रता, बेकारी, पारिवारिक कलह, असफल प्रेम, निराशा, हताशा, और असाध्य बीमारी आदि कारणों से आत्मघात करते हैं उससे भी अधिक आत्मघात वे लोग करते हैं जो आत्महीनता की महाव्याधि से ग्रस्त रहते हैं । यही वह कारण है जिसकी प्रतिक्रिया मानसिक असन्तुलन के रूप में परिलक्षित होती है और लोग छोटी-छोटी कठिनाईयों या असफलताओं को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर देखते हैं । ऐसे लोग ही आत्मघाती कदम उठाते हैं ।

मन:शास्त्रियों के अनुसार आत्महीनता की भावना और भी न जाने कितने ही, आधि व्याधियों की जननी है । अत: उससे छुटकारा पाना ही श्रेयस्कर है । परिस्थितियों को बढ़ा-चढ़ा कर देखने की आदत और अपने आपको दूसरों के सामने छोटा, हेय-हीन समझने का स्वभाव आत्महीनता की व्याधि का प्रमुख लक्षण है । इस व्याधि को जड़मूल से मिटाने का उपचार सुझाते हुए मन: शास्त्री कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को उचित और अनुचित का अन्तर करना आने से लोग अपने आप में इतना साहस सँजोऐं कि जो सही है उसी को अपनायें और जो गलत है उससे स्पष्ट इन्कार कर सकें । सहमत होना और हाँ कहना अच्छी बात है पर वह इतनी अच्छी बात नहीं है कि यदि कोई बात अनुचित लग रही है और अनुचित लगने के पर्याप्त कारण हैं तो भी हाँ किया ही जाय और सहमत हुआ ही जाय । स्पष्ट रूप से, नि:संकोच भाव से अस्वीकार करने की हिम्मत भी रखनी चाहिए । सोच-विचार करने में यह बात भी सम्मिलित रखनी चाहिए कि हर सही गलत बात में हाँ-हाँ करते रहने से दूसरों की दृष्टि में अपने व्यक्तित्व का बजन घट जाता है और आत्मगौरव को ठेस पहुँचती है वह तो अलग ही ।

विकसित और परिष्कृत व्यक्तित्व का अर्थ है अपनी मान्यता को स्पष्ट किन्तु नम्र और सन्तुलित शब्दों में व्यक्त कर पाना । जो ऐसा कर पाते हैं वह अपना मूल्य बढ़ाते व उन्नति के पथ पर बढ़ते चले जाते हैं ।

## विवेक से जुड़ी भावुकता ही श्रेयस्कर

मस्तिष्क यों हर श्रेणी में शरीर में होता है परन्तु सभी प्राणियों की है अपेक्षा मनुष्य का मस्तिष्क सर्वाधिक विकसित है । उसके बल पर ही वह संसार के सभी प्राणियों से श्रेष्ठ सिद्ध हो सका है और उन पर अपना आधिपत्य जमा सका है । मोटे तौर पर मस्तिष्क के क्रिया-कलापों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- स्मृति, चिन्तन, और भावनायें । ये तीनों क्रियायें क्रमश: प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण और जटिल होती हैं । आलोच्य विषय का सम्बन्ध भावनाओं से है जो सभी मनुष्यों के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मस्तिष्क में जन्मती । स्मृति और विचार शक्ति की दृष्टि से कोई व्यक्ति कमजोर और बलवान होते हुए भी भावना क्षेत्र में कम ज्यादा नहीं होता । वे सभी व्यक्तियों के मस्तिष्क में जन्म लेती और बढ़ती, प्रभाव उत्पन्न करती हैं ।

वस्तुत: मनुष्य का सारा जीवन भावनाओं से ही संचालित होता है । दु:ख और आनन्द, घृणा और प्रेम क्रोध और सहिष्णुता, कृपणता और उदारता स्नेह और विश्वास आदि भावनायें मस्तिष्क से ही उपजती हैं तथा मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों को संचालित, प्रेरित करती हैं । भावनाओं के क्रीड़ा केन्द्र वाला मस्तिष्क का रूप अन्त:करण भी कहा जाता है । इन भावनाओं का मनुष्य जीवन भर, उसके शरीर स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है यही मनोविज्ञान का विषय है ।

शरीर और मन:स्थिति पर भावनाओं के प्रभाव को मुख्यत: दो भागों में समझा जा सकता है । पहले प्रकार की भावनायें वे हैं जिनके कारण शरीर के विभिन्न भाग अतिरिक्त रूप से उत्तेजित हो उठते हैं तथा दु:ख क्षोभ से लेकर रोग बीमारियों जैसे विकार उत्पन्न होने लगते हैं । दूसरी श्रेणी में उन भावनाओं को रखा जा सकता है जिनका प्रभाव मन:संस्थान और शरीर संस्थान पर अच्छा पड़ता है । पहली श्रेणी की भावनाओं में क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष को रखा जा सकता है तथा दूसरी श्रेणी में आशा, उत्साह, विश्वास, प्रेम, साहस, प्रफुल्लता आदि भावनाओं को रखा जा सकता है ।

पहले प्रकार की भावनायें शरीर में रोग और मन में 'बुझावट' के लक्षण पैदा कर देती हैं जबकि वास्तव में शरीर में रोग का कोई कारण नहीं होता लम्बे समय तक अध्ययन, परीक्षण करने के बाद मन:शास्त्री और जीवशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वे स्नायुओं तथा नलिका विहीन ग्रन्थियों द्वारा शरीर को प्रभावित करती हैं । हमारे शरीर में दो प्रकार के स्नायु (नर्व्स) होते हैं जिन्हें ऐच्छिक और अनैच्छिक स्नायु कहा जाता है । शरीर में भीतरी और बाहरी सभी क्रियाओं का संचालन स्नायु द्वारा ही होता है । ऐच्छिक स्नायु से हम अपनी इच्छानुसार काम लेते हैं जैसे उठना, बैठना, किसी चीज को पकड़ना ।

अनैच्छिक स्नायुओं द्वारा होने वाले कार्यों पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं होता । हृदय की धड़कन, फेंफड़ों द्वारा श्वसन, पाचन, स्वेदन, गुर्दे की क्रिया आदि कार्य अनैच्छिक स्नायुओं द्वारा ही सम्पादित होते हैं । भावनाओं का प्रभाव इन्हीं स्नायुओं पर होता है । इन स्नायुओं का नियन्त्रण निर्देशन, मस्तिष्क में स्थित 'हाइपोथैल्मस'' केन्द्र द्वारा होता है ।

प्रसिद्ध शरीर शास्त्री डा० बर्नहोटे का कहना है कि ''हाइपोथैल्मस'' केन्द्र भावनाओं के प्रति बहुत सम्वेदनशील है । फलत: भावनाओं का प्राथमिक प्रभाव शरीर के किसी भी भाग में होने वाली पीड़ा के रूप में होता है । उदाहरण के लिए अत्याधिक चिन्ता के समय सिर दर्द होने लगता है दु:खद घटना देखकर या समाचार सुनने पर चक्कर से आने लगते हैं । कोई भयानक दृश्य देखकर या अप्रत्याशित समाचार सुनकर हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं । डा० बर्नहार्ट का कहना है कि सिर दर्द के साथ-साथ बदन का दर्द, छाती का दर्द, पेट, बांहों, छातियों पिण्डलियों आदि शरीर के किसी भी स्थान में होने वाले दर्द का अस्सी प्रतिशत कारण भावनाओं द्वारा ''हाइपोथैल्मस'' नामक केन्द्र को प्रभावित होना है ।

पेशियों में उत्पन्न होने वाली पीड़ा के अतिरिक्त भावनायें कई प्रकार रक्तवाहिनी नलिकाओं को भी प्रभावित करती हैं । फलस्वरूप कई तरह के रक्त विकार उत्पन्न हो जाते हैं । पित्ती उछलना, खुजली लगना और यहाँ तक कि चिन्ता और परेशानी के कारण एग्जिमा जैसा चर्म रोग होने के तथ्य भी प्रकाश में आये हैं ।

यह आवश्यक नहीं है कि भावनाओं के प्रभाव से कोई एक प्रकार का लक्षण ही उत्पन्न हो । कई बार भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षण भी देखे जाते हैं । डा० जे० रेमण्ड ने अपनी पुस्तक 'डिसीज एण्ड रीजन' में लिखा है- मेरे पास कई बार ऐसे रोगी आते हैं जो तरह-तरह की शिकायतें करते हैं । कोई कहता है मुझे भूख नहीं लगती, किसी की तबीयत गिरी पड़ी रहती है, कोई लगातार थकावट

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


महसूस करता है, किसी का काम में मन नहीं लगता । मैं सभी लोगों की जाँच करता हूँ । अधिकांशों के शरीर में रोग का कोई कारण नहीं होता । फिर मैं उनके रोजमर्रा के जीवन पारिवारिक स्थिति आदि के बारे में पूछने लगता हूँ । इससे वे कुछ आत्मीयता अनुभव करते हैं और अपनी समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ मुझे बताने लगते हैं, वहीं मैं उनके रोग का कारण पकड़ लेता हूँ । प्राय: ऐसे व्यक्ति चिन्ताओं, परेशानियों, समस्याओं, शंकाओं, सन्देहों, और कितने ही भयों से लदे रहते हैं । उनका यह भावना-क्षोभ ही उनके रोग का वास्तविक कारण होता है ।

भावनायें स्नायुओं के अलावा शरीर को एक दूसरे ढंग से भी प्रभावित करती हैं । शरीर के रक्त में कई तत्त्व विभिन्न नलिका विहीन ग्रन्थियों के द्वारा मिलते रहते हैं । इन ग्रन्थियों का पता डा० स्टीनाक ने सर्वप्रथम १९२० में लगाया और अपने शोध परिणाम प्रकाशित किये । इन नलिका विहीन ग्रन्थियाँ जिन्हें 'एण्डोक्राइमग्लैडस्'' भी कहा जाता है- की खोज से मानव शरीर के अध्ययन में एक नया अध्यय खुला । पूरे शरीर में से ये ग्रन्थियाँ सात प्रकार की हैं जिन्हें- 'पिट्टयूरी,' 'थायरायड' 'पेराथायरायड' 'पेन्क्रियाज' 'गोनाड्स' 'थायमस' और 'एड्रेनल्स ग्लैण्डस्' कहा जाता है ।

ये ग्रन्थियाँ शरीर के विकास, यौवन और शक्ति को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं । इनके द्वारा शरीर के सात महत्त्वपूर्ण केन्द्रों पर एक विशेष लाभ (हारमोन्स) रक्त में मिलाया जाता है जो शरीर के अंग-प्रत्यंग में पहुँच कर उन्हें प्रभावित करता है । इस ग्रन्थियों द्वारा स्त्रवित होने वाले हारमोन्स बारह प्रकार के होते हैं । इस विश्लेषण में अधिक जानने की आवश्यकता नहीं है । इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि मनुष्य का पूरा शरीर और व्यक्तित्व (हारमोन्स) द्वारा प्रभावित होता है । शरीर जब किसी रोग के या कीटाणु के संक्रमण का शिकार होता है तो उन ग्रन्थियों से कुछ ऐसे हारमोन्स निकलते हैं जो रक्त कणों में उनसे लड़ने की शक्ति पैदा करते हैं और स्वयं भी कीटाणुओं से संघर्ष करते हैं, फलत: रोग की अवस्था में शरीर एक युद्ध भूमि बन जाता है । इसी कारण बैचेनी, क्षोभ और अशान्ति का अनुभव होने लगता है । चिन्ता, भय, और परेशानियों के समय 'एण्डोक्राइम-ग्लैण्डस उन्हीं हारमोन्स को स्त्रवित करने लगती है । संघर्ष उनका स्वभाव है इसलिए कोई कीटाणु न मिलने पर वे रक्त में विद्यमान रक्षक तत्त्वों को ही चट करने लगते हैं । फलत: इन भावनाओं के कारण बैचेनी, परेशानी और कष्ट तो होता ही है, शरीर में रोगों को आमन्त्रण भी मिलता है क्योंकि शरीर की रक्षा पंक्ति दुर्बल पड़ जाती हैं । परिणामस्वरूप शरीर कभी भी रोग का शिकार हो जाता है ।

इस प्रकार की भावनाओं से कुसंस्कारी मन और विकृत धारणाओं की ही उपज होती है । किसी भी वस्तु या घटना को उसके सही परिप्रेक्ष्य में न दीखने, जरा-सी अप्रिय घटना को भी अपने लिए बहुत बड़ा संकट मान लेने अत्याधिक आत्म-केन्द्रित और स्वार्थ परायण जीवन व्यतीत करने के कारण इस प्रकार की दु:खद भावनायें व्यक्ति के मस्तिष्क में घर कर जाती हैं और वहाँ अपना अड्डा बना लेती हैं ।

इसके विपरीत वस्तुओं तथा घटनाओं को उनके यथार्थ सन्दर्भ में देखने और सही ढंग से सोचने समझने की आदत व्यक्ति में मंगलमय और सुखद भावनाओं को जन्म देती हैं । इसी रीति-नीति को अपनाने, चिन्तन पद्धति का अभ्यास होने के बाद स्वभाव में सम्मिलित सुखद भावनायें सब ओर से सुख-शान्ति की वर्षा करती हैं । आशा, उत्साह, प्रफुल्लता और प्रेम के समय ये अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ कुछ दूसरे ही प्रकार के हारमोन्स निकालती हैं परिणामस्वरूप उन क्षणों में शरीर को एक विशेष सुखद आभास की अनुभूति होती है । दु:खद भावनाओं के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखना हो तो एक क्रोधित मनुष्य के चेहरे और हावभाव से देखा जा सकता है । मनुष्य जब क्रुद्ध होता है तो उसका चेहरा लाल हो जाता है, आँखों के पलक चौड़े पड़ जाते हैं नेत्रों की सफेदी, पुतलियाँ सुर्ख हो उठती हैं, होंठ भिच जाते हैं, जबड़ा जकड़ जाता है, हाथों, की मुटिठ्या भिच जाती हैं और शरीर काँपने लगता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । किसी हद तक उसकी आवाज भी अस्वाभाविक होने और लड़खड़ाने लगती है ।

शरीर की स्वाभाविक स्थिति में होने वाले ये परिवर्तन तो बाहरी हैं । इनके कारण तो भीतर होने वाले परिवर्तनों में विद्यमान रहते हैं जो इनसे अधिक गम्भीर और घातक होते हैं । आवेश के समय शरीर के भीतरी अंगों में कई परिवर्तन होने लगते हैं । शरीर के खून में जमने की शक्ति बढ़ जाती है । प्रकृति इस प्रकार जीवन रक्षा की पूर्व व्यवस्था करने लगती है । प्रकृति किन उपायों द्वारा जीवन की रक्षा के प्रयत्न करती है यह जानकर विस्मय विमुग्ध हो जाना पड़ता है । खून जमने की क्रिया प्रकृति का एक रक्षात्मक उपाय है । क्रोध के समय लड़ाई होने और चोट लगने की बहुत सम्भावना रहती है । स्वाभाविक है कि चोट में खून भी बहेगा ही । प्रकृति खून में पहले से ही जमाव लाने लगती है ताकि चोट लगने पर कम से कम खून बहे ।

इसी प्रकार रक्त परिभ्रमण क्रिया में एक परिवर्तन यह भी आता है कि उस समय 'श्वेत रक्त कण' करोड़ों की संख्या में बढ़ जाते हैं जो घाव को भरने और विजातीय तत्त्वों को शरीर में प्रवेश न होने देने का काम करते हैं । क्रोध के समय पेट की पेशियाँ इतनी सख्ती से ऐंठने लगती हैं कि उसमें कोई चीज आगे न बढ़ने पाये । कुछ परिवर्तन इनसे भी गम्भीर होते हैं जैसे हृदय की गति तेज हो जाना और रक्त का दबाव बढ़ जाना । प्रकृति के ये सारे उपाय क्रोध के समय बाहरी अथवा भीतरी कारणों से होने वाली क्षति को रोकने के लिए रक्षात्मक उपाय ही हैं । परन्तु यही उपाय कई बार घातक सिद्ध हो जाते हैं । रक्त चाप व हृदय की गति बढ़ जाने के कारण कई बार क्रोधित व्यक्ति तुरन्त काल के ग्रास बन जाते हैं । रक्त में होने वाले परिवर्तन के कारण मस्तिष्क की रक्त वाहिनी नस फट जाती है ।

भावनाएँ हर दृष्टि से जरूरी हैं । बिना सरस भाव संवेदनाओं के मानव जीवन कैसा ? परन्तु अतिभावुक व्यक्ति को एक प्रकार का मन:रोगी ही होता है । मनुष्य का सारा जीवन भावनाओं का ही खेल है । इस तन्त्र का सदैव विवेक युक्त सुनियोजन हो विकृति न आने पाये, यह ध्यान रखा जाना भी उतना ही अनिवार्य है ।

## आस्था तन्त्र की विकृति भी मानस रोगों के लिए उत्तरदायी

चिकित्सा-विज्ञान की आधुनिक खोजें, मानव-शरीर की छानबीन करती हुई मन और अन्त:करण के छोर तक जा पहुँची हैं । आज मनोविज्ञान भी चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थियों का एक अध्ययन विषय होता है । आज वैज्ञानिक- चिकित्सक एक स्वर से यह मान रहे हैं कि शारीरिक रोगों में अच्छा खासा हिस्सा मानस जन्म रोगों का होता है । इसलिए आज कई असाध्य रोगों में डाक्टर किसी रोगी के साथियों शुभ चिन्तकों को आस्था चिकित्सा यानी ''फेथ-हीलिंग-'' की अनुमति सहर्ष दे देते हैं । जबकि कुछ वर्षों पूर्व तक इसे घोर अन्ध-विश्वास मानकर इसके नाम पर ही शिक्षित वर्ग में उपहास और तिरस्कार का भाव तैर जाता था । इसका कारण मात्र यही है कि मनुष्य की आस्था को उसे प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति अब पुन: माना जाने लगा है । रोगी की आस्था यदि किसी स्थान या व्यक्ति अथवा क्रिया-विशेष के प्रति गहरी हुई तो उस पर उसका लाभदायक प्रभाव अवश्य भावी है ।

आस्था-चिकित्सा (फेंथ-हीलिंग) और चमत्कारी से उपचारी (मिरेकिलहीलिग) की पद्धतियाँ विश्व के हर समाज तथा काल-खण्ड में किसी न किसी रूप में प्रचलित रही हैं । प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय में पूजा व आस्था के कुछ प्रतीक होते हैं । प्रतीक-पूजा और आस्था-पूजा के तत्त्व भारत समेत सम्पूर्ण एशिया, योरुप, अफ्रीका, अमरीका, आस्ट्रेलिया हर कहीं पाये जाते हैं । विज्ञान और प्रौद्योगिकी की आज की सर्वाधिक विकसित स्थिति वाले देश अमरीका में इन दिनों पुन: 'फेथ-हीलिंग' अधिकाधिक लोकप्रिय हो गई है । मनोविज्ञान द्वारा व्यक्ति के अवचेतन मन की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


शक्ति का प्रतिपादन और वहाँ जमी आस्थाओं के आश्चर्यजनक परिणामों के विश्लेषण ने इस प्रक्रिया को तेज किया है ।

दक्षिणी पश्चिमी फ्रांस में एक शहर है लुर्द । यह रोमन कैथालिकों का एक प्रमुख तीर्थ स्थान है यहाँ एक गरीब किसान परिवार में एक कन्या जन्मी । नाम रखा गया-बिर्नोदे सुविरोस । १४ वर्ष की आयु से इस लड़की को भावनात्मक अनुभूतियाँ होने लगीं ।

ईसामसीह की मां जो कुमारी थीं और ''वर्जिन मेरी'' के रूप में जानी जाती हैं, उनके दर्शन सुविरोस को होने लगे । वे इस लड़की को सन्देश देतीं । यह बात चारों तरफ फैली । ईसाई पुरोहितों ने इसका उग्र विरोध किया । १६ अप्रैल १८७९ को ३६ वर्ष की उम्र में यह लड़की मर गई । पर मरकर भी अमर हो गई । उसकी स्मृति में वहाँ जो समाधि स्थान बनाया गया, वह तीर्थ बन गया । लाखों लोग वहाँ आस्था पूर्वक आते । उनका कथन था कि वहाँ आने तथा रुकने से असाध्य रोग अच्छे हो जाते हैं ।

फ्राँस सरकार ने इस बात की जाँच के लिए एक जाँच-आयोग गठित कर दिया जो यह पता लगाये कि वहाँ आने वाले रोगियों की वास्तविक लाभ होता है या नहीं । आयोग के चिकित्सक मनोवैज्ञानिक व समाजशास्त्री भी थे । अनेक मामलों की विस्तृत छानबीन के बाद आयोग ने पाया कि यह बात पूर्णतः सत्य थी कि कई असाध्य रोगी लुर्द पहुँचने पर ठीक हो जाते थे । १९, २० शताब्दी में सरकारी तौर पर इस प्रकार की जाँच का यह एक मात्र मामला है, जिनमें आस्था के चमत्कारी परिणामों की ही पुष्टि हुई, यों सामान्यतः सरकारें जीवित व्यक्तियों की प्रसिद्धि की असलियत की तो छान-बीन करती हैं, किन्तु तीर्थ स्थानों या विशेष स्थलों को लेकर कोई खोज पड़ताल नहीं करती ।

रोगों के दो वर्ग है । शारीरिक और मानसिक । पहले को 'व्याधि' और दूसरे को 'आधि' कहते हैं । खाँसी, सर्दी, दमा, कब्ज, मधुमेह जैसे रोग स्पष्टतः शारीरिक होते हैं । जबकि सनक, विस्मृति, विसंगतियों, उलझनें, कुंठाएँ, मूढ़ता, उन्माद आदि मानसिक रोग हैं । शारीरिक रोग भी प्रायः मानसिक अस्त-व्यस्तता के ही परिणाम होते हैं । यदि ऐसा न भी हुआ, बाहरी कारण से रोग हो गया तो भी उसकी पीड़ा-व्यथा सहनी मन को ही पड़ती है । चिकित्सा क्रम में यदि मन ही हार मान बैठे, हिम्मत टूट जाये, तो शारीरिक शक्ति ढीली पड़ जाती है और प्रकृति भीतर ही भीतर रोग को दूर करने का काम कर रही होती है और प्रकृति भीतर ही भीतर रोग को दूर करने का काम कर रही होती है, उसकी प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है । आस्था चिकित्सा से व्यक्ति के मन में नयी आस्था, नये विश्वास का संचार हो जाता है । तब उपचार से शीघ्र आराम मिलता है । यदि रोग मानसिक ही हुआ, तब तो आस्था का संचार उसकी रामबाण औषधि सिद्ध होने वाला ही है ।

इस तथ्य को समझने पर स्पष्ट हो जाएगा कि आस्था चिकित्सा वस्तुतः कोई बाहरी चमत्कार नहीं है । वह आत्म-शक्ति का ही स्वाभाविक चमत्कार है । जन सामान्य अधिक अन्तर्मुखी नहीं होता । अतः वह अपनी ही आस्था के इन चमत्कारों को बाहरी आरोपित कर देता है ।

आस्था मस्तिष्क की ऊपरी परत से नहीं, चेतना की मूल प्रवृत्ति के मर्म स्थल अन्तःकरण से सम्बन्धित होती है । इसीलिए बौद्धिक रूप में बाहरी आस्था-केन्द्रों में विश्वास न करने वाले तथा इन्हें अन्धविश्वास मानने वाले प्रबुद्ध लोग भी किन्हीं विशेष संकटो के अवसरों पर इन आस्था केन्द्रों से लाभ उठाते देखे जाते हैं । उनके अन्तर्मन में जमी आस्था की गहरी परतें ऐसे मौकों पर प्रभावी सिद्ध होती है ।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल स्रोत आस्थानों में सन्निहित रहता है । इसी आस्था केन्द्र से उमंगों और इच्छाओं का उद्‌भव होता है । ये इच्छाएँ उमंगें ही विचारणा और क्रिया को जन्म देती हैं । इस प्रकार मनुष्य के कार्यों का ही नहीं विचारों और इच्छाओं तक का उद्‌भव आस्था-मान्यता के चेतन-केन्द्र से होता है । इस केन्द्र से जैसी लहरें स्फुरणाएँ उठेंगी, वैसा ही चिन्तन और

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कर्म होगा । उसी के अनुसार व्यक्तित्त्व समुन्नत अथवा पतित बनता चला जायेगा ।

उन्माद, विस्मृति जैसे असामान्य लक्षणों की ओर तत्काल ध्यान चला जाता है । किन्तु अनैतिकता, छल, प्रपंच बेईमानी, अश्लीलता, अनाचार की प्रेरणाएँ भी मानसिक विकृतियों का ही परिणाम हैं । विकृतियाँ आस्था केन्द्र में घुसी विकृति का ही परिणाम होती हैं । इसीलिए आस्था-केन्द्रों, प्रतीकों, पूजा स्थलों से मिलने वाला वह लाभ बहुचर्चित रोगों के उपचारों से कई गुना अधिक है जो मनुष्य के भीतर सद्विचारों, सद्भावनाओं को जाग्रत करता और बढ़ाता है । अच्छे पवित्र तथा उत्कृष्ट भाव सम्वेदनाओं को प्रवाहित करने की आस्था-केन्द्रों की सामर्थ्य ही उनकी वास्तविक विशेषता है ।

आस्थाओं के भले और बुरे, दोनों ही रूप होते हैं । वे विधेयात्मक भी होती हैं, निषेधात्मक भी । विधेयात्मक आस्था व्यक्ति में उत्कृष्ट विचारों पुण्य-प्रवृत्तियों और श्रेष्ठ उदात्त भावनाओं को जगाती बढ़ाती हैं । निषेधात्मक आस्थाएँ आदमी में निष्क्रियता, निरुत्साह, परावलम्बन, मिथ्या, भय, अविवेक और संकीर्णता को बढ़ाती पोसती है तथा क्रुरता तक को प्रोत्साहन देती हैं । क्योंकि संकीर्णता का अनिवार्य परिणाम क्रूरता होता है । विधेयात्मक श्रद्धा उत्कर्ष के नित नये आधार प्रस्तुत करती है, निषेधात्मक श्रद्धा पतन की ओर तेजी से धकेलती है ।

शकुन-विचारों, प्रेत-चर्चा, ग्रहदशा-विचार पहले उत्साह और प्रेरणा प्रदान करने के लिए फैलाये गये थे । यह उनकी उस समय की चर्चाओं के ढंग से पता चलता है । अब इन्हीं का उपयोग मूढ़ता, निकम्मापन, अन्धकार, आलस्य और प्रमाद पर निर्भरता फैलाने के लिए किया जाता है । अनेक ज्योतिषी और तान्त्रिक इन दोनों मनुष्य की इसी श्रद्धा का दोहन कर उसमें निषेधात्मकता बढ़ाते हैं । यह आस्था की प्रभाव-क्षमता का दुरुपयोग है । जबकि सन्त, महात्मा, साधु, ब्राह्मण, महामानव, व्यक्ति की विधेयात्मक आस्था को, उसके प्रसुप्त देवत्व को जगाकर उस शक्ति का सदुपयोग करते हैं और डाकू को महाकवि, वेश्या को विदुषी, धर्म नेता तथा युद्ध लोलुप सम्राट को शन्ति सद्भाव का अग्रदूत बना देते हैं । वाल्मीकि, अम्बपाली, अशोक जैसों के जीवन की घटनाएँ विधेयात्मक आस्था के चमत्कार का परिणाम है । जबकि जाति उपजाति के भेदों में पिसते रहने अपने और समाज के वास्तविक उत्कर्ष के लिए कुछ करने के स्थान पर ठगों-चालबाजों, के पीछे दौड़ते फिरने तथा पशु बलि, पर पीड़न आदि से भाग्योदय की आशा करने निठल्ले बैठे रहने वाले लाखों-करोड़ों लोग निषेधात्मक श्रद्धा के भयंकर चमत्कारों की जीती जागती मिसाल है ।

यह सब विचार करने पर यही तथ्य स्पष्ट होता है कि आस्था, जो अन्तःकरण की मूल प्रवृत्ति है तभी लाभकारी होती है, जब वह विधेयात्मक हो किसी न किसी प्रकार की आस्था तो हर व्यक्ति में होती है । वह निषेधात्मक हुई तो विघटन और विनाश का कारण बनेगी । उत्कर्ष-प्रगति की प्रेरक वही आस्था बन सकती है जो विधेयात्मक हो । वे ही आस्था केन्द्र मानवता की वास्तविक सेवा कर सकते हैं, जो मनुष्य में विधेयात्मक श्रद्धा जगायें ।

## तनाव के कारण और उपचार के उपाय

जीवन-यापन की विकृत शैली अपना कर ही इन दिनों की ऐसी व्यथाओं से घिरते जा रहे हैं जो न अभाव जन्य हैं और न विषाणुओं का आक्रमण पिछले दिनों वैज्ञानिक, बौद्धिक और आर्थिक प्रगति उतनी नहीं थी जितनी इन दिनों हैं । इतने पर भी ये पूर्वज हलकी-फुलकी जिन्दगी जीने के अभ्यस्त थे और चिन्ताओं, भ्रान्तियों से कुत्साओं-कुण्ठाओं से उतने नहीं घिरे रहते थे, जितने कि आज के तथाकथित 'सभ्य' मनुष्य । विकास की एक सीढ़ी यह भी मानी जा सकती है कि मनुष्य अनुदारता और उच्छ्रखंलता की दिशा में तेजी से बढ़ता, भागता चला जा रहा है । नई परिस्थितियों में नये किस्म के ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं जिनका प्रस्तुत चिकित्सा ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता और

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चिकित्सकों को अनुमान के आधार पर इलाज का तीर-तुक्का बिठाना पड़ता है ।

इस परिस्थितियों में तनाव जन्य रोगों से निपटने के लिए योगाभ्यास की प्रक्रिया अधिक कारगर सिद्ध हो रही है । जो कार्य औषधि उपचार से नहीं बन पड़ रहा था । वह इन प्रयोगों से सरलता पूर्वक होते देखा गया है । मानसपोचार की दृष्टि से ध्यान, धारणा और प्रत्याहार की त्रिविधि प्रक्रिया बहुत ही कारगर सिद्ध हो रही है । यदि उस ओर अधिक ध्यान दिया जा सके और इस क्षेत्र में शोध प्रयासों को बढ़ाया जा सके तो ऐसे सूत्र हाथ लगने की पूरी सम्भावना है जो मानसिक तनाव का सामयिक उपचार ही न करे, वरन् उत्पन्न होने से पहले ही रोकथाम करने से कारगर सिद्ध हो सके । मानसिक तनाव को ध्यान द्वारा और शारीरिक तनाव को शवासन, प्राणाकर्षण जैसे कृत्य अभ्यासों से नियन्त्रित किया जा सकता है ।

वर्तमान समय में ५० प्रतिशत से अधिक रोगों तनाव की प्रतिक्रिया स्वरूप रोग ग्रस्त पाये गये हैं । चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि लगातार सिर-दर्द चक्कर आना, आँखों में सुर्खी आना, काम में मन न लगना और लकवा आदि जैसे रोगों का आक्रमण हो जाना ये सभी अत्यधिक तनाव के ही दुष्परिणाम हैं । ऐसे लोग प्राय: रोगों की उत्पत्ति के लिए कभी मौसम को, कभी आहार को, कभी दूसरों को कभी परिस्थितियों आदि को दोष देते हें । अधिक तनाव शरीर व मन दोनों के लिए हानिकारक है ।

स्नायुविक तनाव-विशेषज्ञ डा० एडमण्ड जैकवसन का कहना है कि हृदय रोग, रक्तचाप की अधिकता अल्सर, कोलाइटिस आदि सामान्यत: दिखाई देने वाले रोग प्रकारान्तर से तनाव के ही कारण उत्पन्न होते हैं । स्नायु दौर्वल्य, अनिद्रा, चिन्ता, खिन्नता आदि अनेक रोग तनाव के फलस्वरूप ही पैदा होते हैं ।

न्यूयार्क के एक हृदय-रोग विशेषज्ञ ने बताया है कि दूसरों पर दोषारोपण करने वाले, अत्यधिक भावुक एवं जल्दबाजी करने वाले लोग तनाव के अधिक शिकार होते हैं । मनोवैज्ञानिकों एवं अध्यात्मवेत्ताओं का कहना है कि तनाव की अधिकता मनुष्य की विचारधारा के कारण होती है । निषेधात्मक, निराशावादी संशयात्मक चिन्तन दृष्टिकोण आदमी में तनाव की सृष्टि करते हैं और तनाव से मुक्ति व्यक्ति स्वयं ही पा सकता है ।

'लाइफ एक्सटेंशन फाउण्टेशन' नामक संस्था के संचालकों ने पता लगाया है कि व्यक्तियों में निराशा असफलता, हार की भावना, निर्णय करने में द्विधा की स्थिति एवं चिन्ता आदि ही तनाव को जन्म देती है, एक कम्पनी के मेडीकल डायरेक्टर ने एक बार देखा कि उच्च पद आसीन लोग उत्तेजना की स्थिति में हैं । एक दिन कम्पनी के प्रेसीडेन्ट ने आकर उसको थका-थका सा तनावग्रस्त देखा तो मेडीकल डायरेक्टर के सुझावानुसार उन्हें तनाव कम करने के लिए छुट्टियाँ लेकर विश्राम करने हेतु कहा गया । कुछ दिनों बाद जब वे लोग विश्राम करके आये तो परीक्षण करने पर पहले से अधिक शान्त प्रसन्न पाये गये । खूब मन लगाकर काम करने लगे । कम समय में अधिक काम किया जाने लगा । अधिक जिम्मेदारी पूर्ण कार्य सरलता पूर्वक करने में सक्षम हो गये ।

सामान्यत: घरों में तनाव का कारण पति-पत्नी का आपसी न बैठ पाना होता है । पत्नियाँ,पतियों को उकसाती उत्तेजित करती हैं और पति-पत्नियों को रसोई आदि के कार्यों के लिए तंग करते हैं । परस्पर सन्तुलन न हो पाने से दोनों तनाव से ग्रसित हो जाते हैं । इसका दुष्परिणाम यह होता है कि माता-पिता के बीच अनबन कलह देखकर बच्चे भी तनाव से आक्रान्त हो जाते हैं फलत: पूरा घर ही नरक बन जाता है । इस नरक से त्राण पानी का रास्ता एक ही है कि परस्पर में सामंजस्य बैठाया जाय । प्रेम-आत्मीयता, सद्भावना, सहयोग आदि से वही परिवार स्वर्गीय आनन्द का उपवन बन सकता है जो जरा से मतभेद एवं नासमझी के कारण नरक बन गया था । रहन-सहन में नियमितता लाने से, परस्पर स्नेह सद्भाव से तनाव की बीमारी से मुक्ति मिल सकती है ।

तनाव से मुक्त रहने के लिए सूक्ष्मदर्शियों ने यही कहा है-कि अपनी क्षमता भर अच्छे से अच्छा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


काम करें । इसमें बाहरी सहायता या मार्ग दर्शन कुछ विशेष कारगर सिद्ध नहीं होता । अपने द्वारा उत्पन्न किए तनाव को कोई दूसरा दूर कैसे कर सकता है ? तनाव को व्यक्ति स्वयं ही नियन्त्रित एवं दूर कर सकता है । दूसरों का मार्गदर्शन थोड़ा बहुत उपयोगी हो सकता है । स्वाध्याय के द्वारा यह सहज ही पता चल जाता है कि निरर्थक एवं महत्त्वहीन बातों को अधिक तूल दे दिया गया और अकारण ही तनाव को आमन्त्रित कर लिया गया । वस्तुः वह झाड़ी के भूत की कल्पना मात्र थी । अपने को तनावग्रस्त न होने देने के लिए दृढ़ निश्चय लगन एवं सतत् निष्ठा पूर्वक सद्कार्यों में नियोजित किए रहना ही सर्वोत्तम उपाय है । सदा सहनशीलता से काम लिया जाय भविष्य के भय से भयभीत न हुआ जाय, वास्तविकता को दृष्टिगत रखा जाय, काल्पनिक बाधा या आशंका को स्थान न दिया जाय । वर्तमान में सामने आये काम को पूरी तत्परता से सम्पन्न किया जाय । उसी के सम्बन्ध में सोचा जाय, आशावान रहा जाय । ऐसा करने से स्वयं ही अपने भीतर इस प्रकार की शक्ति का अनुभव होगा जो समस्याओं को सुलझाने में सहायक होंगी ।

ब्लड प्रेशर (हृदय रोग) दिल का दौरा अब मध्यम वर्ग के लोगों में भी पनप रहा है । इसका मूल कारण है कि लोग आराम का जीवन जीना चाहते हैं । परिश्रम से बचना चाहते हैं । आमदनी से अधिक खर्च बढ़ा कर अधिक से अधिक चिन्ताओं का घेरा मकड़ी के जाल की तरह बुन लेते हैं ।

मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि हृदय रोग का कारण अज्ञात, भय चिन्ता जो अर्न्तमन में व्याप्त हो जाती है । नतीजा यह होता है कि मनुष्य की स्वाभाविक खुशी प्रफुल्लता छिन जाती है ।

इससे रक्तवाहिनी नसें थक जाती हैं । कभी-कभी फट भी जाती हैं, फलतः मस्तिष्क में लकवा भी हो जाता है । अधिक दुःख में रक्त का दौरा बढ़ भी जाता है और शक्कर देने वाली क्लोम ग्रन्थियाँ भी खाली हो जाती हैं और क्लोम रस मिलना बन्द हो जाता है । यह ग्रन्थि प्रसन्नता के अभाव में कार्य करना बन्द कर देती है और क्लोम रस देना भी बन्द कर देती है । क्लोम रस न मिलने से शर्करा स्वतन्त्र हो जाती है, और मूत्र के साथ बहने लगती है । इसी को मधुमेह कहते हैं । मधुमेह रोने, पछताने, शौक करने से भी हो जाता है ।

कैन्सर रोग पर हुए अनुसन्धानों से यह प्रकाश में आया है कि जब व्यक्ति का आहार, आचरण एवं व्यवहार दूषित तत्त्वों से भर जाता है, उसका जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, वह तम्बाकू, शराब आदि विषैली चीजों के चंगुल में अपने को फँसा लेता है तो इस रोग का आरम्भ हो जाता है ।

अमेरिका के 'मार्थ वेस्ट रिसर्चफाउण्डेशन' के प्रमुख अनुसन्धानकर्त्ता, बेर्नानरिले ने अपने प्रयोगों से पता लगाया है कि मनुष्य के जीवन में भय, तनाव व अत्यधिक चिन्ता इस रोग के प्रमुख कारण हैं ।

अमेरिका के ही एक अन्य रिसर्च केन्द्र, 'हीलिंग आर्टस् सेन्टर' ने कैन्सर रोग का प्रमुख कारण मन माना है । असफलता, पराजय, निराशा, भय, परेशानी, चिन्ता, असन्तोष, वासना आदि से ग्रसित व्यक्ति बहुत जल्दी ही इस रोग से आक्रान्त हो जाता है ।

सन् १९५० में प्रसिद्ध मनोचिकित्सक श्री लारेन्स ली शान ने कैन्सर से पीड़ित व्यक्तियों के सामान्य लक्षणों को बताया है । उन्होंने इसके कारण भावनात्मक असन्तोष निराशा, असफलता हार, अशान्ति आदि बताये हैं ।

कैरोलीन बीड थॉम्स ने १९४६ से १९६४ तक १८ वर्षों में इस सन्दर्भ में किये गये प्रयोगों से निष्कर्ष निकाला है कि जो लोग चिन्ता, क्रोध, भय और तनाव से त्रस्त रहते हैं एवं जीवन में भावनाओं एवं वासनाओं की सन्तुष्टि नहीं कर पाते, अधिकांश वे ही लोग इस रोग से ग्रस्त होते देखे गये हैं ।

'टेक्साज हेल्थ साइन्स सेन्टर' की यूनिवर्सिटी के डा० जैनी एक्टर वर्ग ने भी कैन्सर का मुख्य कारण मानसिक तनावों को ही बताया है । उन्होंने इस रोग से त्राण पाने के लिए सर्वोत्तम उपाय रोगी की आत्म-शक्ति का सम्बर्द्धन बताया है ।

मेक्सिको के डाक्टर अरनेस्टो कन्ट्रैराख ने बताया है कि इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आहार-विहार सम्बन्धी सुधार किया जाय, बुरी आदतों को ठीक किया जाय, प्रेम, सुख व शान्ति की वृद्धि की जाय तो कैन्सर से मुक्ति पायी जा सकती है । उन्होंने इस चिकित्सा पद्धति को 'लेट्राइल चिकित्सा-प्रणाली का नाम दिया ।

'सभ्य कहलाने वाले पश्चिमी राष्ट्रों में लोग हाइपरटेंशन, कैंसर, कारोनरी अथेरोस्कलेरौसिस आदि ऐसे रोगों की संख्या में दिन दूनी व रात चौगुनी की दर से हो रही वृद्धि चिन्ता का मुख्य विषय है । मोटापा, मधुमेह, पेप्टिस, अल्सर, कोलाइटिस, आर्थराइटिस दमा आदि ऐसे रोग हैं जिनका मूल कारण विकृत मानसिक स्थिति और उसका स्वरूप ही है । विश्व के सभी बड़े-बड़े चिकित्साशास्त्री व मनोरोग विशेषज्ञ इस बात को मानने लगे हैं कि ७५ प्रतिशत रोगों का मूल कारण उद्वेगजन्य मन:स्थिति ही है ।

'इन्स्टीट्यूट आफ मेडीकल साइन्स' वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा० के एन० उडुपा ने उद्वेगजन्य रोगों के कारणों व उनके निदान पर गहरा अध्ययन के पश्चात् इस प्रकार के रोगों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है ।

(१) शारीरिक अवस्था- जब किसी व्यक्ति को मनोरोग होता है तो उस दशा में उनके किसी अंग विशेष पर विशेष प्रकार की क्रियाशीलता देखी जा सकती है । इस दशा के लिए उसके वातावरण एवं उसकी पैतृक रूप से विरासत में प्राप्त जिम्मेदार होते हैं किसी में अक्ल की वृद्धि तो किसी के हृदय की धड़कन में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है । इस दशा का निर्धारण रक्त में कासकालायाइन्स एड्रेनलिन और नारएड्रेनलिन वृद्धि की जाँच कर किया जा सकता है ।

(२) मनोदशा- इस स्थिति में व्यक्ति के मन में एक तीव्र आघात होता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के स्वभाव में उद्विग्नता व चिड़चिड़ापन आ जाता है । किसी भी प्रकार की बात उसके लिए उद्विग्नता का कारण बन जाती है । बार-बार नींद का टूटना व शिहरन व कँपकपी आदि प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं । इस स्थित की जानकारी रक्त में न्यूरोट्रांसमीटर एसेटिलक्लोरीन के स्तर की नाप कर लगायी जा सकती है ।

(३) शारीरिक अंगों की दशा- इस स्थिति में आते-आते रोगी के शारीरिक व मानसिक लक्षणों की सक्रियता तो कम होती है किन्तु धीरे-धीरे सम्बन्धित अंगों में स्थायी रूप से उसका प्रभाव पड़ने लगता है जैसे दाह, कमजोरी आदि के साथ-साथ पेप्टिक अल्सर, कारोनरी इन्सफिसिशेनर्स, ब्रांकियल अस्थमा आदि रोगों के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगते हैं ।

डा० उडुपा ने इस सम्बन्ध में गहन अध्ययन के बाद निष्कर्ष निकाला है कि आसन प्राणायाम के साथ-साथ ध्यान धारणा व शिथिलीकरण के अभ्यास विशेष लाभकारी हुए हैं । जप और ध्यान का मनोरोगों को दूर करने में विशेष महत्त्व सिद्ध करते हुए पाश्चात्य वैज्ञानिक बुजत्ती और राइडर ने अपने संयुक्त शोध प्रयासों से स्नायु प्रणाली के स्राव व न्यूरोट्रांसमीटर की जाँच के बाद यह सिद्ध कर दिया है कि दो वर्ष से जप कर रहे ११ व्यक्तियों में मानसिक तनाव व तनाव जनित रोग लगभग न्यून हो गए , जबकि १३ बिना जप कर रहे व्यक्तियों पर जब प्रयोग कर के देखा गया तो पाया कि उनमें मानसिक तनाव व उससे उत्पन्न होने वाले रोगों में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थीं ।

तनाव निवारण औषधियों अथवा कृत्रिम उपकरणों से सम्भव नहीं । इसके लिये मानव जाति को अध्यात्म की शरण लेनी ही होगी ।



# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# हम बदलें तो दुनिया बदले

## दृष्टिकोण का परिवर्तन

**नजरें तेरी बदलीं तो, नजारे बदल गये ।**
**किश्ती ने बदला रुख तो, किनारे बदल गये ।।**

कविता की इन पंक्तियों में एक सनातन सत्य छिपा हुआ है । जब अपनी नजरें बदलती हैं तो नजारे अर्थात् दृश्य बदल जाते हैं । नाव जब अपना मुँह दूसरी तरफ मोड़ लेती है तो इधर का किनारा उधर और उधर का किनारा इधर दीखने लगता है । एक जंकशन पर पास-पास खड़ी हुई दो गाड़ियों में से आरम्भ में एक छोटे-सी मोड़ पर दिशाओं में थोड़ा सा अन्तर बनता है । धीरे-धीरे यह अन्तर इतना बढ़ जाता है कि एक दिल्ली से चलकर कलकत्ता जा पहुँची है और दूसरी बम्बई । दिल्ली में इन दोनों के बीच थोड़ा-सा अन्तर था पर अन्त में दोनों के बीच सैंकड़ों मील का अन्तर पड़ जाता है । मानव-जीवन में भी यही तथ्य काम करता है । व्यक्तियों के दृष्टिकोण में थोड़ा-सा ही अन्तर जीवन की परिस्थितियों में भारी भिन्नता प्रस्तुत कर देता है ।

बच्चा आरम्भ में एक पैसा चुराने की आदत सीखता है, बड़ा होने पर वह कुछ बढ़ी-चढ़ी गड़बड़ी करने लगता है, समयानुसार बड़े हाथ मारने की क्षमता प्राप्त करता है और परिस्थितियाँ अनुकूल रहें तो एक दिन नामी चोर होकर जेलखाने पहुँचता है । सभी उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं । कोई अपना नहीं रह जाता सर्वत्र निन्दा, असहयोग, घृणा ही उसे प्राप्त होती है और कठिनाइयों से पार निकलने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता । एक दूसरा बच्चा उसी का साथी ईमानदारी पर दृढ़ आस्था जमाता है । माँ-बाप उस पर भरोसा करते हैं, अध्यापक उस पर प्रेम और गर्व करते हैं, बड़ा होने पर जहाँ कारोवार करता है वहाँ उसका सम्मान देवता की तरह होता है और अपने कृपालुओं की सहायता से वह बहुत ऊँची स्थिति तक जा पहुँचता है । आरम्भ में इन दोनों बालकों के स्वभाव में थोड़ा-सा अन्तर था । एक दो पैसा चुराने न चुराने या उससे खरीदी जा सकने वाली वस्तु के मिलने न मिलने का कोई बड़ा महत्व न था, पर इसी भिन्नता ने जब अपनी परिपक्वता प्राप्त की तो दोनों में इतना अन्तर आ गया कि जिसका कोई अन्दाजा नहीं ।

बुराई और भलाई की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ आरम्भ में बहुत छोटे रूप में होती हैं पर उनका परिपोषण होते रहने से धीरे-धीरे बड़ा विशाल रूप बन जाता है । व्यभिचार का आरम्भ हँसी-दिल्लगी या छोटी उच्छृंखलता से होता है, इस मार्ग पर बढ़ते हुए कदम किसी नारी को वेश्या बना सकते हैं । इसके विपरीत यदि सदाचार के प्रति थोड़ी दृढ़ता रहे तो वही वृत्ति उसे आदर्श पतिव्रता के रूप में अजर-अमर बना सकती है । काम चोरी और आलस की वृत्ति आरम्भ में छोटी-छोटी उपेक्षा या टालटूल के रूप में दिखाई पड़ती है पर अन्त में वही व्यक्ति आलस, प्रमाद और लापरवाही में अपना सब कुछ गँवा कर दर-दर ठोकरें खाते फिरने की स्थिति में पहुँच जाता है । एक दूसरा व्यक्ति जिसे परिश्रम में अपना गौरव और चमकता भविष्य दीखता है निरन्तर हँसी-खुशी के साथ परिश्रम करता रहता है और इसी पुरुषार्थ के बल पर वह उन्नति के उच्च शिखर पर जा पहुँचता है ।

हर किसी पर अविश्वास करने वाले, सब को सन्देह और तुच्छता की दृष्टि से देखने वाले व्यक्ति अपने मन में सोचते हैं कि हम बहुत बुद्धिमान हैं किसी की बातों में नहीं आते और चौकस रहकर अपनी जरा भी हानि नहीं होने देते । पर वस्तुतः यह उनकी भारी भूल है । अविश्वासी को किसी का सच्च प्यार नहीं मिल सकता भावना छिपती नहीं, जब दूसरे को यह मालूम पड़ता है कि यह हमारे प्रति अविश्वास करता है तो वह भी सच्चा प्रेम नहीं कर सकता और न सहानुभूति रखता है । ऐसी प्रकृति वाले आमतौर से मित्रहीन देखे गये हैं । माना कि विश्वास में खतरा है । यदि खरे-खोटे की परख न करके हर किसी पर विश्वास किया जाय

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तो उसमें ठगे जाने का खतरा भी है । पर साथ ही यह भी निश्चित है कि किसी ने कभी दूसरों को अपना बनाया है तो उसे उस पर पूरा विश्वास अवश्य करना पड़ा है । एक व्यक्ति दूसरे का गुलाम तभी बनता है जब उसमें अपने लिए सच्ची सहानुभूति एवं आस्था अनुभव करता है । दाम्पत्य जीवन में भाई-भाइयों में जहाँ भी सच्ची आत्मीयता पाई जायगी वहाँ उसके मूल में विश्वास, वफादारी और गहरा आत्म-भाव अवश्य होगा । अविश्वास के वातावरण में एक ऐसी घुटन रहती है कि मनुष्य वहाँ से अलग हट कर ही सन्तोष की साँस ले पाता है । परायों को अपना बनाने और अपनों को पराया बनाने में यह विश्वास एवं अविश्वास ही प्रमुख कारण रहा होता है ।

छिद्रान्वेषण की वृत्ति अपने अन्दर हो तो संसार के सभी मनुष्य दुष्ट-दुराचारी दिखाई देंगे । ढूँढ़ने पर दोष तो भगवान में भी मिल सकते हैं, न हो तो थोपे जा सकते हैं । कोई हानि होने या आपत्ति आने पर लोग ऐसा करते भी हैं । कई तो अपने ऊपर आई हुई आपत्ति का कारण तक ईश्वर को मान लेते हैं और उसी पर सारा दोष थोपकर छोड़-छाड़कर अलग हो जाते हैं । मनुष्यों में दोष ढूँढ़ते रहने पर तो उनमें असंख्य दोष निकाले या सोचे जा सकते हैं । ऐसी छिद्रान्वेषी प्रकृति के लोगों को सारी दुनिया बुराइयों से भरी हुई, दुष्ट-दुराचारी और अपने प्रति शत्रुता रखने वाली दिखाई देती है । उन्हें अपने चारों ओर नारकीय वातावरण दृष्टिगोचर होता है । निन्दा और आलोचना के अतिरिक्त कभी किसी के प्रति अच्छे भाव वे प्रकट ही नहीं कर पाते, किसी की प्रशंसा उनके मुख से निकलती ही नहीं । ऐसे लोग अपनी इस क्षुद्रता के कारण ही सबके बुरे बने रहते हैं । पीठ पीछे की हुई निन्दा नमक मिर्च मिलकर उस आदमी के पास जा पहुँचती है जिसके बारे में बुरा अभिमत प्रकट किया गया था । आमतौर पर सुनने वाले लोग अपनी विशेषता प्रकट करने के लिए उस सुनी हुई बुराई को उस तक पहुँचा देते हैं जिसके सम्बन्ध में कटु अभिमत प्रकट किया गया था । ऐसी दशा में वह भी प्रतिशोध की भावना से शत्रुता का ही रुख-धारण करता है और धीरे-धीरे उसके विरोधी एवं शत्रुओं की संख्या बढ़ती जाती है । रूठे बैठे रहने वाले, मुँह फुलाकर बातें करने वाले, भौंहें चढ़ाये रहने वाले, कर्कश स्वर में वक्ता व्यक्ति किसी के मन में अपने लिये आदर भाव प्राप्त नहीं कर सकते । उन्हें बदले में द्वेष, घृणा विरोध ही उपलब्ध होते हैं । अपना मन हर घड़ी खिन्न क्षुभित रहता है, उसकी जलन से होने वाले शारीरिक एवं मानसिक दुष्परिणामों की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

जिनको दूसरे के गुण देखने की आदत है वे बुरे लोगों में भी चतुरता मुस्तैदी, पुरुषार्थ, साहस आदि गुण को देखते हैं और उनकी उन विशेषताओं की प्रशंसा करते हैं । यह ठीक है कि बुराइयों का प्रतिरोध किया जाना चाहिए, उन्हें रोका जाना चाहिए । पर यह भी ठीक है कि किसी की निन्दा करके या चिढ़ाने से नहीं सुधारा जा सकता । उन परिस्थितियों, समस्याओं और मनोवृत्तियों को सुधारने के लिए प्रयत्न करना होगा जिसके कारण बुराई उत्पन्न होती है । आमतौर से मनुष्य उससे प्रभावित रहता है जो उसकी किसी न किसी अंश में प्रशंसा करता है और उसमें जो थोड़ी बहुत अच्छाई है उसका आदर करता है । मनुष्य अपनी विरोधी की नहीं, प्रशंसक की बात मान सकता है और यदि सुधार सम्भव है तो उसी के द्वारा सम्भव है जिसके प्रति उसके मन में सद्भावना जमी हुई है । ऐसी सद्भावना जमाये रहने में वे ही सफल हो सकते हैं, जो सद्भावनायुक्त, गुणग्राही एवं प्रशंसक हैं । इस विशेषता के कारण मनुष्य अजात शत्रु हो जाता है और जो अपने बुरे स्वभाव के कारण शत्रुता करना चाहते हैं वे भी देर तक नहीं कर पाते । सज्जनता के सामने उन्हें एक दिन परास्त ही होना पड़ता है । ऐसे अगणित उदाहरण आये दिन आँखों के सामने उपस्थित होते रहते हैं जिनमें सज्जनता के हथियार से दुर्जनों को परास्त ही नहीं किया गया वरन् उनका हृदय परिवर्तन करके सज्जनता का अनुयायी भी बना लिया गया । शत्रुओं की संख्या घटाने और मित्रों की संख्या बढ़ाने का सबसे उत्तम तरीका यह है कि हम दूसरों की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अच्छाइयाँ ढूँढ़ना और उनकी प्रशंसा करना सीखें । इससे दूसरों पर तो अच्छा प्रभाव पड़ता ही है, अपना मन भी प्रसन्नता का अनुभव करता है ।

गुबरीले कीड़े का और भौंरे का उदाहरण स्पष्ट है । गन्दा कीड़ा केवल गन्दगी, गोबर और विष्टा की तलाश में बगीचा ढूँढ़ डालता है और अपनी अभीष्ट वस्तु ढूँढ़कर ही चैन लेता है । इसके विपरीत भौंरा फूलों पर ही दृष्टि रखता है । उन्हीं पर बैठता है और सुगन्धि का आनन्द लाभ करता है । उसे पता भी नहीं चलता कि इस बाग में गोबर पड़ा हुआ है भी या नहीं ? बगीचे में गोबर भी पड़ा रहता है और फूल भी होते हैं पर गन्दा कीड़ा अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप चीज ढूँढ़कर अपने आपको उस गन्दगी से गन्दा करता है और दूसरों की दृष्टि में घृणित भी बनता है । भौंरे की मनोवृत्ति उस गन्दे कीड़े से भिन्न होती है इसलिए उसे गुलाब के सुगन्धित पुष्पों का रस भी मिलता है और कवियों द्वारा प्रशंसा का अधिकारी भी बनता है । हममें से कुछ लोग गन्दे गुबरीले कीड़े का उदाहरण बनते हैं और कुछ भौंरे के पद-चिन्हों पर चलते हैं । इन दोनों मार्गों में से हम भी अपने लिए कोई एक मार्ग चुन सकते हैं और उसी के अनुरूप घृणित एवं उत्कृष्ट परिस्थितियाँ प्राप्त कर सकते हैं । छिद्रान्वेषण गन्दे गुबरीले कीड़े की मनोवृत्ति है और गुण ग्राहकता सुरुचि पूर्ण भौंरे की, जो अपने को पसन्द लगे उसे आसानी से स्वभाव का अंग बना सकते हैं ।

जरा सी प्रतिकूलता को सहन न कर सकने वाले आवेशग्रस्त, उत्तेजित, अधीर और उतावले मनुष्य सदा गलत सोचते और गलत काम करते हैं । उत्तेजना एक प्रकार का दिमागी बुखार है । जिस प्रकार बुखार आने पर देह का सारा कार्यक्रम लड़खड़ा जाता है उसी प्रकार आवेश आने पर मस्तिष्क की विचारणा एवं निर्णय प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है उस स्थिति में कोई व्यक्ति सही निर्णय नहीं कर सकता । आवेशग्रस्त मनुष्य प्राय: न करने योग्य ऐसे काम कर डालते हैं जिनके लिए पीछे सदा पश्चाताप ही करते रहना पड़ता है । आत्म-हत्याएँ प्राय: इन्हीं परिस्थितियों में होती हैं । कहनी-अनकहनी कह बैठते हैं । मारपीट, गाली-गलौज, लड़ाई-झगड़े, कत्ल आदि के दु:खद कार्य भी उत्तेजना के वातावरण में ही बन पड़ते हैं । अधीरता भी एक प्रकार का आवेश ही है । बहुत जल्दी मनमानी सफलता अत्यन्त सरलता पूर्वक मिल जाने के सपने बाल-बुद्धि के लोग देखा करते हैं । वे यह नहीं सोचते कि महत्त्वपूर्ण सफलताएँ तब मिला करती हैं जब कि व्यक्ति श्रमशीलता, पुरुषार्थ, साहस, धैर्य एवं सद्गुणों की अग्नि-परीक्षा में गुजर कर अपने आपको उसके उपयुक्त सिद्ध कर देता है । जल्दबाजी में बनता कुछ नहीं, बिगड़ता बहुत कुछ है । इसलिए धैर्य को, सन्तुलन और शान्ति को एक श्रेष्ठ मानवीय गुण माना गया है । कठिनाइयों से हर किसी को पाला पड़ता है, विघ्नों से रहित कोई काम नहीं । तुर्त-फुर्त सफलता किसे मिली है ? किसके सब साथी सज्जन और सद्गुणी होते हैं ?

हर समझदार आदमी को सहनशील, धैर्य और समझौते का मार्ग अपनाना पड़ता है । जो प्राप्त है उसमें प्रसन्नता अनुभव करते हुए अधिक के लिए प्रयत्नशील रहना बुद्धिमानी की बात है, पर यह परले सिरे की मूर्खता है कि अपनी कल्पना के अनुरूप सब कुछ न मिल जाने पर मनुष्य खिन्न, दु:खी और असन्तुष्ट ही बना रहे । सबकी सब इच्छाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं । अधूरे में भी जो सन्तोष कर सकता है उसी को इस संसार में थोड़ी सी प्रसन्नता उपलब्ध हो सकती है । अन्यथा सन्तोष और तृष्णा की आग में जल मरने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है । अधीर, असन्तोषी और महत्वाकांक्षी मनुष्य जितने दु:खी देखे जाते हैं उतनी जलन, दर्द और पीड़ा घायल और बीमारों को भी नहीं होती । सन्तोष का मरहम लगाकर कोई भी व्यक्ति इस जलन से छुटकारा प्राप्त कर सकता है ।

कुढ़न एक ऐसी बीमारी है जिसका कोई इलाज नहीं । अपनी स्थिति को दूसरों की तुलना से हीन मानकर कितने ही व्यक्ति असन्तोष में कुढ़ते रहते हैं । पुरुषार्थ के अभाव में प्रयत्नपूर्वक वे उस ऊँची स्थिति तक पहुँचने का साहस तो करते नहीं, उलटे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो आगे बढ़े हुए हैं उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं । उन्हें लगता है कि यदि आगे बढ़े हुए की टाँग पकड़ कर पीछे घसीट लिया जाय या आगे बढ़ने से रोक दिया जाय तो विषमता की स्थिति दूर हो सकती है । ईर्ष्या में यही भाव छिपा रहता है । दूसरा प्रशंसा या बुराई सहन न कर सकने में ईर्ष्यालु की महत्वाकांक्षा छिपी रहती है । वह अपने से बड़े समझे जाने वालों की तुलना में अपने को हीन समझा जाना पसन्द नहीं करता । इस कमी को प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा स्वयं उन्नति करके पूरा किया जा सकता है, पर इस कठिन मार्ग पर चलने की अपेक्षा लोग यही ठीक समझते हैं कि आगे बढ़े हुओं के पीछे घसीटा जाय, उनकी निन्दा की जाय या हानि पहुँचाई जाय । ईर्ष्यालु लोग ऐसा कुछ किया करते हैं । कुछ आगे बढ़े हुए लोग अपने से छोटों को बढ़ते नहीं देखना चाहते । वे सोचते हैं यदि बढ़कर मेरी बराबर आ जावेंगे तो फिर मेरी क्या विशेषता रहेगी ? इसलिए बढ़ते हुओं को ऊपर उठने से पहले ही दबा देना चाहिए ।

आज इसी प्रकार की क्षुद्र मनोवृत्तियों का साम्राज्य है । कुढ़न और ईर्ष्या की आग में झुलसते रहने वाले व्यक्ति अपना मानसिक अहित तो करते ही है अपनी जलन बुझाने के लिए जो षडयन्त्र रचते हैं उसमें उनकी इतनी शक्ति खर्च होती रहती है, जिसकी बचत करके उपयोगी मार्ग में लगाया गया होता तो अपनी बहुत उन्नति हुई होती । लोगों का जितना समय और मनोयोग इन दुष्प्रवृत्तियों में लगता है यदि उतना आत्म-कल्याण अथवा दूसरों की सेवा सहायता में लगता तो कितना बड़ा हित साधन हो सकता था ? ईर्ष्या और कुढ़न की मूर्खता पर जितना ही गम्भीरता से विचार किया जाता है उतनी ही उसकी व्यर्थता और हानि स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगती है ।

इन द्वेष वृत्तियों का परित्याग करके यदि मनुष्य अपने अन्दर सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने में लग जाय तो उनकी दुनिया आज की अपेक्षा कल दूसरी हो सकती है । दृष्टिकोण के बदलने से दृश्य बदलते हैं । नाव के मुड़ने से किनारे पलट जाते हैं । हमें इस प्रकार का सुधार अपने आप में निरन्तर करते चलना चाहिए । सुधार के लिए हर दिन शुभ है उसके लिए कोई आयु अधिक नहीं । बूढ़े और मौत के मुँह में खड़े हुए व्यक्ति भी यदि अपने में सुधार आरम्भ करें तो उन्हें भी आशाजनक सफलता प्राप्त हो सकती है । फिर जिनके सामने अभी लम्बा जीवन पड़ा है वे तो इस आत्म-सुधार की प्रक्रिया को धीरे-धीरे चलाते रहें तो भी अपने जीवन क्रम का कायाकल्प ही कर सकते हैं ।

## मानसिक स्वच्छता का महत्व

मन की चाल दुमुँही है । जिस प्रकार दुमुँही साँप कभी आगे चलता है, कभी पीछे उसी प्रकार मन में दो परस्पर विरोधी वृत्तियाँ काम करती रहती हैं । उनमें से किसे प्रोत्साहन दिया जाय और किसे रोका जाय यह कार्य विवेक बुद्धि का है । हमें बारीकी के साथ यह देखना होगा कि इस समय हमारे मन की गति किस दिशा में है ? यदि सही दिशा में प्रगति हो रही है तो उसे प्रोत्साहन दिया जाय और यदि दिशा गलत है तो उसे पूरी शक्ति के साथ रोका जाय इसी में बुद्धिमत्ता है । क्योंकि सही दिशा में चलता हुआ मन जहाँ हमारे लिए श्रेयस्कर परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है वहाँ कुमार्ग पर चलते रहने से एक दिन दुःखदायी दुर्दिन का सामना भी करना पड़ सकता है । इसलिए समय रहते चेत जाना ही उचित है ।

उचित दिशा में चलता हुआ मन आशावादी, दूरदर्शी, पुरुषार्थी, गुणग्राही और सुधारवादी होता है । इसके विपरीत पतनोन्मुख मन सदा निराश रहने वाला, तुरन्त की बात सोचने वाला, भाग्यवादी, कठिनाइयों की बात सोच-सोचकर खिन्न रहने वाला और अपने आपका पक्षपात करने वाला होता है । वह परिस्थितियों के निर्माण में अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं करता । मन पत्थर या काँच का बना नहीं होता जो बदला न जा सके । प्रयत्न करने पर मन को सुधारा और बदला जा सकता है । यह सुधार ही जीवन का वास्तविक सुधार है । युग निर्माण का प्रमुख सुधार यह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मानसिक परिवर्तन ही है । दुमुँही साँप की उल्टी चाल को यदि सीधी कर दिया जाय तो वह पीछे लौटने की अपेक्षा स्वभावतः आगे बढ़ने लगेगा । हमारा मन यदि अग्रगामी पथ पर बढ़ने की दिशा पकड़ ले तो जीवन के सुख-शान्ति और भविष्य के उज्ज्वल बनने में कोई सन्देह नहीं रह जाता ।

जिनने आशा और उत्साह का स्वभाव बना लिया है वे उज्ज्वल भविष्य के उदीयमान सूर्य पर विश्वास करते हैं । ठीक है, कभी-कभी कोई बदली भी आ जाती है और धूप कुछ देर के लिए रुक भी जाती है । पर बादलों के कारण क्या सूर्य सदा के लिए अस्त हो सकता है ? असफलताएँ और बाधाएँ आते रहना स्वाभाविक है उनका जीवन में आते रहना वैसा ही है जैसा आकाश में धूप-छाँह की आँख मिचौनी होते रहना । कठिनाइयाँ मनुष्य के पुरुषार्थ को जगाने और अधिक सावधानी के साथ आगे बढ़ने की चेतावनी देने आती हैं । उनसे डरने की कोई बात नहीं । आज सफलता मिली है, आज प्रतिकूलता उपस्थित है, आज संकट का सामना करना पड़ रहा है, तो कल भी वैसी ही स्थिति बनी रहेगी, ऐसा क्यों सोचा जाय ? आशावादी व्यक्ति छोटी-मोटी असफलताओं की परवाह नहीं करते । वे रास्ता खोजते हैं और धैर्य, साहस, विवेक एवं पुरुषार्थ को मजबूती के साथ पकड़े रहते हैं क्योंकि आपत्ति के समय में यही चार सच्चे मित्र बताये गये हैं ।

निराशा एक प्रकार की कायरता है । बुजदिल आदमी ही हिम्मत हारते हैं । जिसमें वीरता और शूरता का, पुरुषार्थ और पराक्रम का एक कण भी शेष होगा वह यह ही अनुभव करेगा कि मनुष्य महान है, उसकी शक्तियाँ महान हैं, वह दृढ़ निश्चय और सतत परिश्रम के द्वारा असम्भव को सम्भव बना सकता है । यह जरूरी नहीं कि पहला प्रयत्न ही सफल होना चाहिए । असफलताओं का मन पर जो प्रभाव नहीं पड़ने देते और आगामी कल के लिए आशान्वित रहते हैं वस्तुतः वे ही शूरवीर हैं । वीरता शरीर में नहीं मन में निवास करती है । जो मरते दम तक आशा को नहीं छोड़ते और जीवन संग्राम को एक खेल समझते हुए हँसते, खेलते, लड़ते रहते हैं उन्हीं वीर पुरुषार्थी महामानवों के गले में अनन्त विजय वैजयन्ती पहनाई जाती है । बार-बार अग्नि परीक्षा में से गुजरने के बाद ही सोना कुन्दन कहलाता है । कठिनाइयों और असफलताओं से हताश न होना वीरता का यह एक ही चिह्न है । जिन्होंने अपने को इस कसौटी पर खरा सिद्ध किया है उन्हीं की जीवन साधना सफल हुई है और उन्हीं के नाम इतिहास के पृष्ठों पर अमर रहे हैं ।

जो आज का, अभी का, तुरन्त का लाभ सोचता है और इसके लिए कल की बड़ी हानि की भी परवाह नहीं करता वह उतावला मन विपत्तियों को आमन्त्रण देता रहता है । प्रत्येक महान कार्य समयसाध्य और श्रमसाध्य होता है । उसकी पूर्ति के लिए आरम्भ में बहुत कष्ट सहना पड़ता है, प्रतीक्षा करनी होती है और धैर्य रखना होता है । जिसमें इतना धैर्य नहीं वह तत्काल के छोटे लाभ पर ही फिसल पड़ता है । और कई बार तो यह भी सोचता कि कल इसका क्या परिणाम होगा ? चोर, ठग, बेईमान, उचक्के लोग तुरन्त कुछ फायदा उठा लेते हैं पर जिन व्यक्तियों को एक बार दुःख दिया उनसे सदा के लिए सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं । फिर नया शिकार ढूँढ़ना पड़ता है ऐसे लोग अपने ही परिचितों की नजर को बचाते हुए अतृप्त और आत्म-ग्लानि से ग्रसित प्रेत-पिशाच की तरह जहाँ-जहाँ मारे-मारे फिरते हैं और अन्त में उनका कोई सच्चा सहायक नहीं रह जाता । वासना के वशीभूत होकर लोग ब्रह्मचर्य की मर्यादा का उल्लंघन करते रहते हैं तत्काल तो उन्हें कुछ प्रसन्नता होती है पर पीछे उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ही चौपट हो जाता है । आवेश में लोग गाली गलौज कर जाते हैं पर पीछे विरोध एवं शत्रुता का सामना करना पड़ता है तो उस क्षणिक आवेश पर पछताने की बात ही हाथ में शेष रह जाती है । स्कूल पढ़ने जाना छोड़कर फीस के पैसे सिनेमा में खर्च कर देने वाले विद्यार्थी को उस समय अपनी करतूत पर दुख नहीं वरन् गर्व ही होता है पर पीछे जब अशिक्षित रह जाता है और जीवन को कष्टमय प्रक्रियाओं के साथ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यतीत करता है तब उसे अपनी भूल का पता चलता है । दूरदर्शिता और अदूरदर्शिता का अन्तर स्पष्ट है । उसके परिणाम भी साफ हैं । मन की अदूरदर्शिता एक विपत्ति है । जिसमें तुरन्त का लाभ कुछ भले ही दिखाई पड़े पर अन्त बड़ा दु:खदायी होता है । मन में इतनी विवेकशीलता ही होनी चाहिए कि वह आज की, अभी की ही बात न सोचकर, कल की, भविष्य की और अन्तिम परिणाम की बात सोचे । जिसने अपने विचारों में दूरदर्शिता के लिए स्थान रखा है उसे ही बुद्धिमान कहा जा सकता है ।

अपने सुधार के बिना परिस्थितयाँ नहीं सुधर सकती । अपना दृष्टिकोण बदले बिना जीवन की गतिविधियाँ नहीं बदली जा सकतीं । इस तथ्य को मनुष्य जितनी जल्दी समझ ले उतना ही अच्छा है । हम दूसरों को सुधारना चाहते हैं पर इसके लिए समर्थ वहीं हो सकता है जो पहले इस सुधार के प्रयोग को अपने ऊपर आजमा कर अपनी योग्यता की परीक्षा दे दे । दूसरे लोग अपना कहना न मानें यह हो सकता है पर हम अपनी बात स्वयं ही न माने इसका क्या कारण है ? अपनी मान्यताओं को यदि हम स्वयं ही कार्य रूप में परिणित न करेंगे कि वे अपनी बुरी आदतों को छोड़कर उस उत्तम मार्ग पर चलने लगें जिसकी आप शिक्षा देते हैं ।

अपना मन अपना है उसे समझाना और सुधारना तो अपने वश की बात हो सकती है । बाहरी अस्वच्छता साफ करने में कुछ अड़चनें आवें यह बात समझ में आती है पर अपना घर, अपना मन भी साफ सुथरा न बनाया जा सकने में कौन बहाने बाजी ठीक चलेगी ? यह कार्य कोई देवता या गुरु कर देगा यह सोचना व्यर्थ है । हर आदमी अपने को स्वयं ही सुधार या बिगाड़ सकता है, दूसरे लोग इस कार्य में सहायता कर सकते हैं पर रोटी खाने, दही जमने, विद्या पढ़ने की तरह मन को सुधारने का काम भी स्वयं करना पड़ेगा । हमारे बदले की कोई दूसरा रोटी खा लिया करे, कोई दूसरा टट्टी हो आया करे यह नहीं हो सकता । इसी प्रकार यह भी नहीं हो सकता कि किसी दूसरे के आशीर्वाद या वरदान से हमारी मानसिक अस्वच्छता दूर हो जाय । यह कार्य स्वयं ही करना होगा, हमें स्वयं ही करना पड़ेगा । संसार के सुधार का आन्दोलन, समाज को बदल देने का अभियान हमें आरम्भ करना चाहिए पर संसार में, समाज में सबसे पहला वह व्यक्ति कौन हो सकता है जिससे सुधार आरम्भ किया जाय ? हम वह स्वयं ही हो सकते हैं । अपने प्रयत्न से अपने को सुधार कर ही हम संसार और समाज की सेवा कर सकने के अधिकारी सिद्ध हो सकते हैं ।

## विचार ही जीवन का निर्माण करते हैं

मनुष्य का जीवन उसके विचारों का प्रतिबिम्ब है । सफलता-असफलता, उन्नति-अवनति, तुच्छता-महानता, सुख-दु:ख, शान्ति-अशान्ति आदि सभी पहलू मनुष्य के विचारों पर निर्भर करते हैं । किसी भी व्यक्ति के विचार जानकर उसके जीवन का नक्शा सहज ही मालूम किया जा सकता है । मनुष्य को कायर-वीर, स्वस्थ-अस्वस्थ, प्रसन्न-अप्रसन्न बनाने में उसके विचारों का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है । जीवन बनता बिगड़ता है । अच्छे विचार उसे उन्नत बनायेंगे तो हीन विचार मनुष्य को गिरायेंगे ।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा है ''मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही उसका जीवन बनता है, स्वामी विवेकानन्द ने कहा था 'स्वर्ग और नर्क कहीं अन्यत्र नहीं इनका निवास हमारे विचारों में ही है ।'' भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपेदश देते हुए कहा था ''भिक्षुओ ! वर्तमान में हम जो कुछ हैं अपने विचारों के कारण और भविष्य में कुछ भी बनेंगे वह भी अपने विचारों के ही कारण ।'' शेक्सपीयर ने लिखा है-''कोई वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है । अच्छाई-बुराई का आधार हमारे विचार ही हैं ।'' ईसा मसीह ने कहा था ''मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही बन जाता है ।'' प्रसिद्ध रोमन दार्शनिक मार्क्स आरीलियस ने कहा है ''हमारा जीवन जो कुछ भी है हमारे अपने ही विचारों के फलस्वरूप है ।'' प्रसिद्ध

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अमरीकी लेखक डेल कार्नेगी ने अपने अनुभवों पर आधारित तथ्य प्रकट करते हुए लिखा है ''जीवन में मैंने सबसे महत्वपूर्ण कोई बात सीखी है तो वह है विचारों की अपूर्व-शक्ति और महत्ता, विचारों की शक्ति सर्वोच्च तथा अपार है ।''

संसार के समस्त विचारकों ने एक स्वर से विचारों की शक्ति और उसके असाधारण महत्व को स्वीकार किया है । संक्षेप में जीवन की गतिविधियों का संचालन करने में हमारे विचारों का ही प्रमुख हाथ रहता है । हम जो कुछ भी करते हैं विचारों की प्रेरणा से ही करते हैं ।

संसार में दिखाई देने वाली विभिन्नतायें, विचित्रतायें भी हमारे विचारों के प्रतिबिम्ब ही हैं । संसार मनुष्य के विचारों की ही छाया है । किसी के लिए संसार स्वर्ग है तो किसी के लिए नर्क । किसी के लिए संसार अशान्ति, क्लेश, पीड़ा आदि का आगार है तो किसी के लिए सुख सुविधा सम्पन्न उपवन । एक-सी परिस्थितियों में एक-सी सुख सुविधा समृद्धि से युक्त दो व्यक्तियों में भी अपने विचारों की भिन्नता के कारण असाधारण अन्तर पड़ जाता है । एक जीवन में प्रतिक्षण सुख सुविधा प्रसन्नता, खुशी, शान्ति, सन्तोष का अनुभव करता है तो दूसरा पीड़ा, शोक, क्लेशमय जीवन बिताता है । इतना ही नहीं कई व्यक्ति कठिनाई का अभावग्रस्त जीवन बिताते हुए भी प्रसन्न रहते हैं तो कई समृद्ध होकर भी जीवन को नारकीय यन्त्रणा समझते हैं । एक व्यक्ति अपनी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहकर जीवन के लिए भगवान को धन्यवाद देता है तो दूसरा अनेक सुख-सुविधाएँ पाकर भी असन्तुष्ट रहता है, दूसरों को कोसता है, महज अपने विचारों के कारण ।

विचारों में अपार शक्ति है । शक्ति सदैव कर्म की प्रेरणा देती है । वह अच्छे कार्यों में लग जाय तो अच्छे और बुरे मार्ग की ओर प्रवृत्त हो जाय तो परिणाम प्राप्त होते हैं । विचारों में एक प्रकार की चेतना शक्ति होती है । किसी भी प्रकार के विचारों के एक स्थान पर केन्द्रित होते रहने पर उनकी सूक्ष्म चेतन शक्ति घनीभूत होती है । प्रत्येक विचार आत्मा और बुद्धि के संसर्ग से पैदा होता है । बुद्धि उसका आकार-प्रकार निर्धारित करती है, तो आत्मा उसमें चेतना फूँकती है । इस तरह विचार अपने आप में एक सजीव किन्तु सूक्ष्म तत्व है । मनुष्य के विचार एक तरह की सजीव तरंगें हैं जो जीवन संसार और यहाँ के पदार्थों को प्रेरणा देती रहती हैं । इन संजीव विचारों का जब केन्द्रीकरण हो जाता है तो एक प्रचण्ड शक्ति का उद्‌भव होता है । स्वामी विवेकानन्द ने विचारों की इस शक्ति का उल्लेख करते हुए बताया है ''कोई व्यक्ति भले ही किसी गुफा में जाकर विचार करे और विचार करते करते ही वह मर जाय, तो भी वे विचार कुछ समय उपरान्त गुफा की दीवारों का विच्छेद कर बाहर निकल पड़ेंगे, और सर्वत्र फैल जायेंगे । वे विचार तब सबको प्रभावित करेंगे ।

मनुष्य जैसे विचार करता है उनकी सूक्ष्म तरंगे विश्वाकाश में फैल जाती हैं । सम-स्वभाव के पदार्थ एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, इस नियम के अनुसार उन विचारों के अनुकूल दूसरे विचार आकर्षित होते हैं और व्यक्ति को वैसी ही प्रेरणा देते हैं । एक ही तरह के विचार घनीभूत होते रहने पर प्रचण्ड-शक्ति धारण कर लेते हैं और मनुष्य के जीवन में जादू की तरह प्रभाव डालते हैं ।

विचारों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है । अपने सुख-दुःख, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, सफलता-असफलता सभी कुछ हमारे अपने विचारों पर निर्भर करते हैं । जैसे विचार होते हैं वैसा ही हमारा जीवन बनता है । संसार कल्पवृक्ष है, इसी छाया तले बैठकर हम जो विचार करेंगे वैसे ही परिणाम प्राप्त होंगे । जो अपने आपको सद्‌विचारों से भरे रखते हैं वे पद-पद पर जीवन के महान वरदानों से विभूषित होते हैं, सफलता, महानता, सुख-शान्ति एवं प्रसन्नता के परितोष उन्हें मिलते हैं । इसके विपरीत जो अपने आपको हीन, अभागा, बदनसीब समझते हैं उनका जीवन भी दीन-हीन बन जाता है । विचारों से गिरे हुए व्यक्ति को फिर परमात्मा भी नहीं उठा सकता । जो अन्धकारमय, निराशावादी विचार रखते हैं उनका जीवन कभी उन्नत और उत्कृष्ट नहीं बन सकता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मनुष्य को वही मिलता है जैसे उसके विचार होते हैं ।

कुए में मुँह करके आवाज देने पर वैसी ही प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है । संसार भी इस कुए की आवाज की तरह ही है । मनुष्य जैसा सोचता है विचारता है वैसी ही प्रतिक्रिया वातावरण में होती है । मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही उसके आस-पास वातावरण बन जाता है । मनुष्य के विचार शक्तिशाली चुम्बक की तरह हैं जो अपने समान धर्मी विचारों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । एक ही तरह के विचारों के घनीभूत होने पर वैसी ही क्रिया होती है और वैसे ही स्थूल परिणाम प्राप्त होते हैं ।

विचार एक प्रचण्ड शक्ति है और वह भी असीम, अमर्यादित, अणु शक्ति से भी प्रबल । विचार जब घनीभूत होकर संकल्प का रूप धारण कर लेता है तो प्रकृति स्वयं अपने नियमों का व्यतिरेक करके भी उसको मार्ग दे देती है । इतना ही नहीं उसके अनुकूल बन जाती है । मनुष्य जिस तरह के विचारों को प्रश्रय देता है, उसके वैसे ही आदर्श, हावभाव, रहन-सहन ही नहीं शरीर में तेज, मुद्रा आदि भी वैसे ही बन जाते हैं । जहाँ सद्विचार की प्रचुरता होगी वहाँ वैसा ही वातावरण बन जायगा । ऋषियों के अहिंसा, सत्य, प्रेम, न्याय, के विचारों से प्रभावित क्षेत्र में हिंसक पशु अपनी हिंसा छोड़कर अहिंसक पशुओं के साथ विचरण करते थे ।

जहाँ घृणा, द्वेष, क्रोध आदि से सम्बन्धित विचारों का निवास होगा वहाँ नारकीय परिस्थितियों का निर्माण होना स्वाभाविक है । मनुष्य में यदि इस तरह के विचार घर कर जायँ कि मैं अभागा हूँ, दुःखी हूँ, दीन-हीन हूँ तो उसका उत्कर्ष कोई भी शक्ति साध नहीं सकेगी । वह सदैव दीन-हीन परिस्थितियों में पड़ा रहेगा । इसके विपरीत मनुष्य में सामर्थ्य, उत्साह आत्म-विश्वास के गौरवयुक्त विचार होंगे तो प्रगति-उन्नति स्वयं ही अपना द्वार खोल देगी ।

किसी भी शक्ति का उपयोग रचनात्मक एवं ध्वंसात्मक दोनों ही रास्तों से होता है । विज्ञान की शक्ति से मनुष्य के जीवन में असाधारण परिवर्तन हुआ । असम्भव को भी सम्भव बनाया विज्ञान ने किन्तु आज विज्ञान के विनाशकारी स्वरूप में मानवता का भविष्य ही अन्धकारमय दिखाई देता है । जन-मानस में बहुत बड़ा भय व्याप्त है । ठीक इसी तरह विचारों की शक्ति पुरोगामी होने से मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का द्वार खुल जाता है और प्रतिगामी होने पर वही शक्ति उसके विनाश का कारण बन जाती है । गीताकार ने सत्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है ''आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः'' विचारों का केन्द्र मन ही मनुष्य का बन्धु है और वही शत्रु भी है ।

आवश्यकता इस बात की है कि विचारों को निम्नभूमि से हटाकर उन्हें ऊर्ध्वगामी बनाया जाय, जिससे मनुष्य की उन्नति और उसका कल्याण सध सके । दीन-हीन, क्लेश एवं दुःखों से भरे नारकीय जीवन से छुटकारा पाकर, मनुष्य इसी धरती पर स्वर्गीय जीवन की उपलब्धि कर सके । वस्तुतः सद्विचार ही स्वर्ग और कुविचार ही नरक की एक परिभाषा हैं । अधोगामी विचार मन को चंचल, क्षुब्ध, असन्तुलित बनाते हैं । उन्हीं के अनुसार दुष्कर्म होने लगते हैं और इन्हीं में फँसा हुआ व्यक्ति नारकीय यन्त्रणाओं का अनुभव करता है । सद्विचारों में डूबे हुए मनुष्य को धरती स्वर्ग जैसी लगती है । विपरीतताओं में भी वह सनातन सत्य का दर्शन कर आनन्द का अनुभव करता है । साधन सम्पत्ति के अभाव, जीवन के कटु क्षणों में वह स्थिर और शान्त रहता है । शुद्ध विचारों के अवलम्बन से ही मनुष्य को सच्चा सुख मिलता है ।

विचारों के ऊर्ध्वगामी बन जाने पर नित्य जीवन के सम्पर्क में आने वाले पशु, पक्षी, लता-वृक्ष-पुष्पों में अथाह आत्मीयता, प्रेम एकता सहयोग के दर्शन होंगे । अपने कर्तव्य धर्म से एक क्षण भी मनुष्य असावधान नहीं हो सकता । सद्विचारों के होने पर स्वार्थ को पोषण नहीं मिलता तब धन सम्पत्ति पाकर भी मनुष्य मदमस्त नहीं होगा । बुराइयाँ पास भी न फटकेंगी । विचारों में विमलता उत्कृष्टता आने पर प्रसाद, प्रसन्नता, सुख, शान्ति, सन्तोष सब मिल जाते हैं । विचारों

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की विमलता से समस्त दु:ख द्वन्द्वों का नाश हो जाता है ।

विचार-तप ही सच्ची तपस्या है । अन्य पशु पक्षी भी भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि परिस्थितियों में रहते हैं, इन्हें सहन करते हैं । दीनता, गरीबी अभावग्रस्तता में भी अनेकों लोग भूखे, नंगे, बेघर रहते हैं । कई वेदनाओं को सहन करते हैं किन्तु इनसे इनके मानसिक अथवा आन्तरिक जीवन में कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उनका पशुत्व, अमानवीयता, अज्ञान दूर नहीं होता । विचार-हीन शारीरिक तप भी मनुष्य को सार्थक सिद्ध नहीं होता । इस तर तपस्या भी मूलत: विचारों की ही होती है । विचारों की तपस्या से ही ज्ञान उदय होता है । जीवन के प्रत्येक कार्य, उठने, सोने, खाने, व्यवहार करने आदि बातों में विचारशीलता का अवलम्बन लेना ही सच्ची तपस्या है । प्रबुद्ध विचारों के होने से अन्य बुराइयाँ भी स्वत: दूर हट जाती हैं । जीवन पवित्र बन जाता है । विचार ही केन्द्रित और एकाग्र होते हुए आगे चलकर ध्यान, धारणा, समाधि के स्तरों पर पहुँचकर मनुष्य को जीवनमुक्त बना देते हैं ।

## मन को सुधारा जाय

मनुष्य के अस्तित्व पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उसकी एक मात्र विशेषता उसका मनोबल ही दृष्टिगोचर होता है । शरीर की दृष्टि से वह अन्य प्राणियों की तुलना बहुत गया-बीता है । मनोबल की विशेषता के कारण ही वह सृष्टि का मुकटमणि प्राणी बना हुआ है । मन वस्तुत: एक बड़ी शक्ति है । अनन्त चेतना के केन्द्र परमात्मा का प्रकाश इस जड़ प्रकृति में जो पड़ता तो उसका प्रतिबिम्ब मन के रूप में ही सामने आता है । जड़ पदार्थ कितने ही उत्कृष्ट क्यों न हों चेतना के बिना वे निरर्थक हैं । इस पृथ्वी के गर्भ में रत्नों की खान, स्वर्ण-भण्डार और न जाने क्या-क्या बहुमूल्य सम्पदाएँ भरी पड़ी हें । पर वे तब तक प्रकाश में नहीं आतीं, जब तक कोई चेतना सम्पन्न मनुष्य उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं करता है । स्वर्ण और रत्न का मूल्य चेतन प्राणी की चेतना के कारण ही है अन्यथा वे मिट्टी कंकड़ के समान ही पड़े रहते हैं । इस देह को ही लीजिए । कितनी बहुमूल्य, प्रिय एवं उपयोगी लगती है पर यदि चेतना नष्ट हो जाय-मूर्छा उन्माद या मृत्यु की स्थिति आ जाय तो यह देह किसी काम की नहीं रह जाती । मानव-जीवन में जो कुछ श्रेष्ठता एवं महत्ता है, वह केवल उसकी मानसिक स्थिति-मनोभूमि के कारण ही है ।

आलसी और उत्साही, कायर और वीर, दीन और समृद्ध, दुर्गुणी और सद्गुणी, पापी और पुण्यात्मा, अशिक्षित और विद्वान, तुच्छ और महान, तिरस्कृत और प्रतिष्ठित का जो आकाश पाताल जैसा अन्तर मनुष्यों के बीच में दीख पड़ता है उसका प्रधान कारण उस व्यक्ति की मानसिक स्थिति ही है । परिस्थितियाँ भी एक सीमा तक इन भिन्नताओं में सहायक होती हैं पर उनका प्रभाव पाँच प्रतिशत ही होता है पचानवे प्रतिशत कारण मानसिक । बुरी से बुरी परिस्थितियों में पड़ा हुआ मनुष्य भी अपनी कुशलता और मानसिक विशेषताओं के द्वारा उन पर बाधाओं को पार करता हुआ, देर-सबेर में अच्छी स्थिति प्राप्त कर लेगा । अपने सद्गुणों, सद्विचारों एवं सत्प्रयत्नों द्वारा कोई भी मनुष्य बुरी से बुरी परिस्थिति को पार करके ऊँचा उठ सकता है, मानवोचित सम्मान और सुविधायें प्राप्त कर सकता है । पर जिसकी मनोभूमि निम्न श्रेणी की है जो दुर्बुद्धि से, दुर्गुणों से, दुष्प्रवृत्तियों से ग्रसित है उसके पास यदि कुबेर जैसी सम्पदा और इन्द्र जैसी सुविधा हो तो भी वह अधिक दिन ठहर न सकेगी, कुछ ही दिन में नष्ट हो जायगी ।

कर्म जो आँखों से दिखाई देता है वह अदृश्य विचारों का ही दृश्य रूप है । मनुष्य जैसा सोचता है वैसा करता है । चोरी, बेईमानी, दगाबाजी, शैतानी, बदमाशी कोई आदमी यकायक कभी नहीं कर सकता । उसके मन में उस प्रकार के विचार बहुत दिनों से झूमते रहते हैं । अवसर न मिलने से वे दबे हुए थे, समय पाते ही वे कार्यरूप में परिणित हो गये । बाहर के लोगों को किसी के द्वारा यकायक कोई दुष्कर्म होने की बात सुनकर इसलिए आश्चर्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होता है कि वे उसकी भीतरी स्थिति को नहीं जानते थे । इसी प्रकार कोई अधिक उच्चकोटि का सत्कर्म करने का भी आकस्मिक समाचार भले ही सुनने को मिले पर वस्तुतः उसकी तैयारी वह मनुष्य भीतर ही भीतर बहुत दिनों से कर रहा होता है । इसी प्रकार जो व्यक्ति आज उन्नतिशील एवं सफलता सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं वे अचानक ही वैसे नहीं बन गये होते वरन् चिरकाल से उनका प्रयत्न उसके लिए चल रहा होता है । भीतरी पुरुषार्थ को उन्होंने बहुत पहले जगा लिया होता है । उन्होंने अपने मनःक्षेत्र में भीतर ही भीतर वह अच्छाइयाँ जमा कर ली होती हैं जिनके द्वारा बाह्य जगत में दूसरों का सहयोग एवं उन्नति का आधार निर्भर रहता है । बाह्य जीवन हमारे भीतरी जीवन का प्रतिबिम्ब मात्र है । पर्दे के पीछे दीपक जल रहा है तो कुछ प्रकाश बाहर भी परिलक्षित होता है । इसी प्रकार भीतरी पर्दे में जिनमें कुछ अच्छाइयाँ हैं वे ही इनकी कीमत पर बाह्य जगत में सुख-साधनों को खरीद लेते हैं ।

तात्पर्य केवल इतना है कि नीति और अनीति के आधार पर प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा, प्रेम, द्वेष, शान्ति-अशान्ति, दण्ड-पुरस्कार, स्वर्ग-नरक मिलते हैं, पर लौकिक सफलताओं का आधार जागरूकता, पुरुषार्थ, लगन, साहस आदि गुण ही हैं । यह भी गुण शरीर के नहीं, मन के हैं । मन को उपयोगी अनुकूल उचित आदतों का विचार पद्धति का अभ्यस्त बना लेने से ही नाना प्रकार के उन गुणों का आविर्भाव होता है जो लौकिक एवं पारलौकिक सफलताओं के मूल आधार हैं ।

शरीर को आलस्य, असंयम, उपेक्षा एवं दुर्व्यसनों में पड़ा रहने दिया जाय तो उसकी सारी विशेषताएँ नष्ट हो जायेंगी । इसी प्रकार मन को अव्यवस्थित पड़ा रहने दिया जाय, उसे कुसंस्कारग्रस्त होने से संभाला न जाय तो निश्चय ही वह हीन स्थिति को पकड़ लेगा । पानी का स्वभाव नीचे की तरफ बहना है, ऊपर उठाने के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं तब सफलता मिलती है । मन का भी यही हाल है यदि उसे रोका, सँभाला, समझाया, बाँधा और उठाया न जाय तो उसका कुसंस्कारी दुर्गुणी, पतनोन्मुखी, आलसी एवं दीन-दरिद्र प्रकृति का बन जाना ही निश्चित है । आज इसी प्रकार का मानसिक अवसाद चारों ओर फैल रहा है । शरीर की दुर्बलता और बीमारी जिस प्रकार व्यापक रूप से फैली दिखाई देती है वैसे ही हमारी मानसिक दुर्बलता एवं रुग्णता भी कम शोचनीय नहीं है । कलहप्रिय, क्रोधी, तुनक-मिजाज, असहिष्णु, ईर्ष्यालु, छिद्रान्वेषी, अहंकारी, उद्दण्ड प्रकृति के लोगों से हमारा समाज भरा पड़ा है । इन दुर्गुणों के कारण पारस्परिक प्रेम-भावना, आत्मीयता एवं घनिष्टता दिन-दिन नष्ट होती जाती है और एक आदमी दूसरे से दिन-दिन दूर पड़ता जाता है । प्रेम, सहयोग, प्रसन्नता, मुस्कान, नम्रता, उदारता, सहिष्णुता, शिष्टता, कृतज्ञता के गुणों से यदि मनोभूमि परिष्कृत हो तो परस्पर का प्रेमभाव कितना बढ़े, कितना सुदृढ़ रहे और फलस्वरूप कितनी प्रगति एवं प्रसन्नता का वातावरण बन जाय ?

नैतिक आदर्शों के पालन शरीर के प्रतिबन्धों पर नहीं मन की उच्च स्थिति पर निर्भर है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रूपी षडरिपु जो मन में छिपे बैठे रहते हैं समय-समय पर हिंसा, झूँठ, पाखण्ड, स्वार्थ, बेईमानी, रिश्वतखोरी, दहेज, कन्या-विक्रय, वर-विक्रय, मांसाहार, जुआ, चोरी आदि सामाजिक बुराइयों के रूप में फूट पड़ते हैं । नाना प्रकार के दुष्कर्म यद्यपि अलग-अलग प्रकार के दीख पड़ते हैं पर उनका मूल एक ही है 'मन की मलीनता' । जिस प्रकार पेट खराब होने से नाना प्रकार के शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार मन मलीन होने पर हमारे वैयक्तिक और आन्तरिक जीवन में नाना प्रकार के कुकर्म बन पड़ते हैं । जिस प्रकार रोगों के कारण शरीर को पीड़ा-उठानी पड़ती है उसी प्रकार मन की मलीनता से हमारा सारा बौद्धिक संस्थान-विचार क्षेत्र औंधा हो जाता है और कार्य-शैली ऐसी ओछी बन पड़ती है कि पग पग पर असफलता, चिन्ता, त्रास, शोक, विक्षोभ के अवसर उपस्थित होने लगते हैं । अव्यवस्थित मनोभूमि को लेकर इस संसार में न तो कोई महान बना है और न किसी ने अपने जीवन को सफल बनाया है । उसके लिए क्लेश और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कलह, शोक और सन्ताप-दैन्य और दरिद्रता ही सुनिश्चित हैं, न्यूनाधिक मात्रा में वे ही उसे मिलने हैं, वे ही मिलते भी रहते हैं ।

हमारे आध्यात्मिक लक्ष्य की आधारशिला मन की स्वच्छता है । जप, तप, भजन, ध्यान, व्रत, उपवास, तीर्थ, हवन, दान, पुण्य, कथा, कीर्तन सभी का महत्व है, पर उनका पूरा लाभ उन्हीं को मिलता है जिन्होंने मन की स्वच्छता के लिए भी समुचित श्रम किया है । मन मलीन हो, दुष्टता एवं नीचता की दुष्प्रवृत्तियों से मन गन्दी कीचड़ की तरह सड़ रहा हो तो भजन, पूजन का भी कितना लाभ मिलने वाला है ? अन्तरात्मा की निर्मलता अपने आप में एक साधन है जिसमें किलोल करने के लिए भगवान स्वयं दौड़े आते हैं । थोड़ी साधना से भी उन्हें आत्म-दर्शन का, मुक्ति एवं साक्षात्कार का लक्ष्य सहज ही प्राप्त हो जाता है । स्वल्प साधना भी उनके लिए सिद्धदायिनी बन जाती है ।

'सुमनस्'' शब्द संस्कृत भाषा में एक बहुत ही प्रतिष्ठा और श्रेष्ठता का प्रतीक है । जिसका मन स्वच्छ होता है उसे 'सुमनस्' कहकर सम्मानित किया जाता है । ऋषि लोग प्रसन्न होकर किसी को 'सौमनस्' अर्थात् सुन्दर मन वाला होने का आशीर्वाद दिया करते थे । वस्तुतः इस निकम्मे प्राणी मनुष्य में यदि कोई विशेषता हो सकती है तो वह उसकी मानसिक स्वच्छता ही है । जिसे यह सम्पदा प्राप्त हुई उसका जीवन सच्चे अर्थों में सफल हो गया । स्वच्छ मन वाले महामानवों का देव-समाज जहाँ बढ़ता है वहीं स्वर्ग बन जाता है स्थान चाहे पृथ्वी हो या कोई और लोक, स्वर्ग वहीं रहेगा जहाँ ऊँचे मन वाले मनुष्य रहेंगे । किसी राष्ट्र की दौलत सोना, चाँदी नहीं वरन् वहाँ की उच्च मन वाली जनता ही है । श्रेष्ठ मनुष्य का मूल्य सोने और चाँदी के पहाड़ से अधिक है । गाँधी और बुद्ध की कीमत रुपयों में नहीं आँकी जा सकती ।

वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही दृष्टियों से जन-मानस की स्वच्छता एवं उत्कृष्टता नितान्त आवश्यक है । इसके बिना न तो मनुष्य व्यक्तिगत रूप से सुखी रह सकेगा और न समाज ही समुन्नत हो सकेगा । आमदनी और सुविधाएँ बढ़ाने वाली योजनाएँ भी तब तक कुछ अधिक उपयोगी सिद्ध न होंगी जब तक अन्तःकरण का स्तर ऊँचा न उठे । धन, बल और साधन बढ़ जाने से दुष्ट मनुष्य की दुष्टता और अधिक बढ़ जाती है ।

दूध पीने से साँप का विष ही और बढ़ता है । इसलिए राजकीय योजनाएँ जो भी हों, हमारी आध्यात्मिक योजनाएँ यही होनी चाहिए कि मनुष्य का मन ऊँचा उठे, शुद्ध हो, उत्कृष्टताओं एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हो, उन्नति करे, यही योजना सच्ची योजना हो सकती है और इसी में सफलता मिलने पर ही सुख साधन बढ़ाने वाली योजनाएँ उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं । जब हमारे सामने अनेक समस्याएँ, विभिन्न प्रकार के विचार होते हैं, तब यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि इनमें कौन हितकारी है और कौन हित के विपरीत, कौन सही है और कौन गलत है । ऐसी अवस्था में विवेक ही हमारा मार्ग-प्रदर्शन कर सकता है । जिसमें विवेक की कमी होती है वे नाजुक क्षणों में अपना सही मार्ग निश्चित नहीं कर पाते और गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं, जिसके कारण उन्हें पतन और असफलता के गर्त में गिरकर लाञ्छित और अपमानित होना पड़ता है । जिनमें विवेक शक्ति का प्राधान्य होता है वे दूरदर्शी होते हैं, काम के परिणाम को समझते हैं, अपने विचारों के महत्व को जानते हैं और इसलिए उपयुक्त मार्ग को अपनाते हैं । यही शक्ति साधारण व्यक्ति को नेता, महात्मा और युग-पुरुष बनाती है ।

विवेक प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात रूप से वर्तमान रहता है । इस पर हमारे संचित और क्रियामाण कर्मों की छाया का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण वह किसी में अधिक दिखाई देता है । दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि हम अपने संचित एवं क्रियमाण कर्मों से इतने अधिक प्रभावित रहते हैं कि विवेक की पुकार हमें ठीक से सुनाई नहीं पड़ती । यही विवेक हमारी वास्तविक मानवता का प्रतीक और सद्बुद्धि का द्योतक है । इसके अभाव में मनुष्य पशु या उससे भी गया बीता बन जाता है और वह स्वयं के लिए, राष्ट्र के लिए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अन्ततः सृष्टि के लिए एक भार एवं अभिशाप हो जाता है ।

मानव होने के नाते हमारा यह प्राथमिक कर्त्तव्य है कि हम इस विवेक को जाग्रत करें और उसकी आवाज को सुनना सीखें । संसार के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सभी मनुष्य इसकी कृपा के लिए लालायित रहते हैं ।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य के लिए अपने विवेक की सदैव रक्षा करना परमावश्यक है । किसी स्वार्थ के लिए भी विवेक की हत्या करने से उसका कुफल भोगना पड़ता है । चाहे वैयक्तिक विषय हो और चाहे सामाजिक, चाहे राजनीतिक समस्या हो अथवा धार्मिक, हमको विवेक युक्त निर्णय का सदैव ध्यान रखना चाहिए । लकीर के फकीर बन जाने या ''बाबा वाक्य प्रमाण'' मान लेने से मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और वह गलत मार्ग पर चलने लग जाता है । इसलिए प्राचीन या नवीन कोई भी विषय हो हमको उनका निर्णय उचित-अनुचित, सत्य-असत्य का पूर्ण विचार करके ही करना चाहिए ।

## हमारा आन्तरिक महाभारत

मनुष्य के अन्तःकरण में दो प्रवृत्तियाँ रहती हैं जिन्हें आसुरी एवं दैवी प्रवृत्ति कहते हैं । इन दोनों में सदा परस्पर संघर्ष चलता रहता है । गीता में जिस महाभारत का वर्णन है और अर्जुन को जिसमें लड़ाया गया है वह वस्तुतः आध्यात्मिक युद्ध ही है । आसुरी प्रवृत्तियाँ बड़ी प्रबल हैं । कौरवों के रूप में उनकी बहुत बड़ी संख्या है, सेना भी उनकी बड़ी है । पाण्डव पाँच ही हैं उनके सहायक एवं सैनिक भी थोड़े ही हैं । फिर भी भगवान ने युद्ध की आवश्यकता समझी और अर्जुन से कहा-लड़ने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । तामसिक आसुरी प्रकृति का दमन किए बिना सतोगुणी दैवी प्रकृति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा । इसलिए लड़ना जरूरी है । अर्जुन पहले तो झंझट में पड़ने से कतराया पर भगवान ने जब युद्ध को अनिवार्य बताया तो उसे लड़ने के लिए कटिबद्ध होना पड़ा । इस लड़ाई को इतिहासकार 'महाभारत' के नाम से पुकारते हैं । अध्यात्म की भाषा में इसे 'साधन-समर' कहते हैं ।

हमारा अन्तःप्रदेश ही वह धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र है जिसमें महाभारत होता रहता है । असुर मायावी हैं । तमोगुण का असर हमें माया में फँसाये रहता है । इन्द्रिय सुखों का लालच देकर वह अपना जाल फेंकता है और अपने माया पाश में जीव को बाँध लेता है । उस असुर के और भी कितने ही अस्त्र-शस्त्र हैं जिनसे जीवन को अपने वशवर्ती करके पददलित करने में वह सफल होता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर यह ६ ऐसे ही सम्मोहन अस्त्र हैं, जिनमें मूर्छित होकर जीव बँध जाता है और वह मूर्छा ऐसी होती है कि उसे निकलने की इच्छा भी नहीं होती है । वरन् उसी स्थिति में पड़े रहने को जी चाहता रहता है ।

आत्मा का कल्याण उस प्रवृत्ति में पड़े रहने से नहीं हो सकता जिसमें माया मोहित अगणित जीव पाशबद्ध स्थिति में पड़े रहते हैं । इन बन्धनों को काटे बिना कल्याण का और कोई मार्ग नहीं । इस तमसाछन्न स्थिति को यदि रोका, हटाया या सुधारा न जाय तो उसकी भयंकरता एवं विभीषिका में दिन-दिन वृद्धि ही होती जायगी और नारकीय यन्त्रणाओं एवं यातनाओं के अवसर ही बढ़ते जायेंगे । संसार के अधिकांश प्राणी इसी स्थिति में पड़े पड़े नाना प्रकार के त्रास सहते रहते हैं । भव-बन्धनों में बँधे हुए बिलबिलाते और बिलखते रहते हैं । इस मार्ग से यदि विरत न हुआ तो पाप, पतन एवं पीड़ा चक्र में गला फँसाकर झूलते रहना पड़ता है ।

आत्मा की पुकार 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की है । वह अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना चाहता है । तम अन्धकार और सत प्रकाश है, उसको धारण करने का प्रयत्न ही साधना है । साधना को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता माना गया है । तम की दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा केवल इस एक ही उपाय से हो सकता है । सच्ची शान्ति और प्रगति का मार्ग भी यही है ।

अन्तरात्मा में निरन्तर चलने वाले देवासुर संग्राम में तामसिकता का पक्ष भौतिक सुख साधन इकट्ठे करते रहने और सात्विकता का पक्ष आत्म-

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कल्याण की दिशा में अग्रसर होने का है । जब दोनों में से कोई एक पक्ष प्रबल हो उठता है तो संग्राम में तेजी दिखाई देने लगती है । यदि असुरता प्रबल हुई तो दुष्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि होकर पतन का नारकीय परिपाक सामने आ जाता है और यदि सुर-पक्ष प्रबल हुआ तो सत्प्रवृत्तियों का उभार आता है और मनुष्य, सत्पुरुष, महामानव, ऋषि एवं देवदूत बनकर पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए द्रुतगति से आगे बढ़ता है ।

एक बीच की स्थिति ही, रजोगुण ही अवसाद भूमिका कहलाती है । इसमें तम और सब दोनों मिले रहते हैं । लड़ाई बन्द हो जाती है और काम चलाऊ समझौता-सा करके दैवी और आसुरी तत्व एक ही घर में रहने लगते हैं । भले और बुरे दोनों ही तरह के काम मनुष्य करता रहता है । पाप के प्रति घृणा न रहने से, आत्मिक प्रगति की ओर कोई विशेष उत्साह न रहने से दिन काटने की वैसी ही स्थिति बन जाती है, जैसी मन्द विष पीकर मूर्छित हुए, अर्धमृत प्राणी की होती है । मानव-जीवन जैसा अलभ्य अवसर प्राप्त होने पर इस का अवसाद चिन्ताजनक ही है ।

भगवान कृष्ण ने बार-बार उकसा कर, अर्जुन को युद्ध के मैदान में खड़ा कर दिया था । गाण्डीव उठाकर शत्रुओं पर शर-सन्धान करने के लिए उसे तत्पर ही होना पड़ा था । हमारा भगवान-अन्तरात्मा-भी हम से यही कराना चाहता है । उसकी गीता निरन्तर हमारे अन्तःकरण कुरुक्षेत्र में कही जाती रहती है । पर उसे हम सुनते नहीं, मूर्छा छोड़ते नहीं, गाण्डीव को छूते नहीं, हमारा कृष्ण हमें झकझोरते-झकझोरते हार चला, पर हम चेतनाशून्य ही बने बैठे हैं ।

इस अवसाद की स्थिति का अन्त करना ही उचित है । देवासुर-संग्राम में अपने देवपक्ष को विजयी बनाना ही श्रेयस्कर है । तम को छोड़ें और सत का प्रकाश ग्रहण करें इसी में हमारा हित है । साधना में ही मनुष्य का सच्चा स्वार्थ सन्निहित है ।

पुराणों में देवासुर संग्राम का वर्णन पग-पग पर किया गया है । प्रत्येक पुराण में किसी न किसी बहाने किन्हीं देवताओं और किन्हीं असुरों की लड़ाई के प्रसंग बार-बार वर्णन किये गये हैं । सच तो यह है कि देवासुर संग्राम अनादि काल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा । गीता में जिस धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र का वर्णन है और जिस महाभारत में धर्म और अधर्म का पक्ष प्रतिपादित करने वाली कौरव-पाण्डव सेनाओं का वर्णन हुआ है वह भी केवल उस शस्त्र युद्ध तक सीमित नहीं है वरन् हमारे अन्तःकरण में निरन्तर होते रहने वाले देवासुर संग्राम का ही चित्रण है । रीछ बानर की राम सेना और रावण, कुम्भकरण, मेघनाद जैसे समर्थ योद्धाओं का युद्ध भी एक प्रकार की हमारी भीतरी स्थिति का ही बाह्य-चित्रण है । अध्यात्म रामायण में इसका निरूपण अधिक स्पष्ट रूप से हुआ है । प्रत्येक अवतार पाप को नाश करने और पुण्य की स्थापना के लिए-देवताओं की रक्षा और असुरों के संहार के लिए अवतरित होता है । ऐसा अवतार समय-समय पर हम में से अनेकों के अन्तः करण में अवतरित होते हुए देखा भी जाता है ।

मनुष्य के भीतर पाप और पुण्य-दोनों प्रकार के प्रबल संस्कार मौजूद हैं । दोनों की शक्ति प्रचण्ड दोनों ही उद्भट योद्धाओं के समान है । दोनों एक दूसरे से प्रतिकूल प्रकृति के होने से परस्पर लड़ते भी रहते हैं और एक दूसरे को परास्त करने का प्रयत्न भी करते हैं । यही देवासुर संग्राम है । हर मनुष्य के भीतर पाप और पतन के, असुरता के कुसंस्कार पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं । चौरासी लाख निम्न योनियों के लाखों वर्षों तक भ्रमण करने की अवधि में इसने इन्हें जमा किया होता है । पाशविक वृत्तियाँ उन पतित योनियों में उपयुक्त भले कही जाँय पर मनुष्य के महान गौरव को देखते हुए वे हेय एवं त्याज्य ही होती है । सुरदुर्लभ मानव शरीर में देवत्व की छाया रहती है क्योंकि यह योनि ईश्वर के सबसे निकट है । इस शरीर में आये हुए जीव के लिए ईश्वर तक पहुँचने में छोटी छलाँग लगानी मात्र शेष रह जाती है । इसलिए उसका महत्व एवं उत्तरदायित्त्व भी अधिक है । देवत्व मनुष्य को अपनी तरह ऊँचा उठाने के लिए खींचता है और असुरता की पाशविक वृत्तियाँ अपनी ओर आकृष्ट किये रहना चाहती है । इसी खींचातान में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हवा के सहारे उड़ने वाले तिनकों की तरह आमतौर से मनष्य कभी इधर कभी उधर उड़ते हैं । कोई व्यक्ति एक समय बुरे काम करता है तो दूसरे समय में अच्छे काम करता हुआ दिखाई देता है और कोई इसके प्रतिकूल अच्छे कामों को छोड़कर बुराई में धँसता देखा जाता है । ऐसे उदाहरणों से मनुष्य की मानसिक दुर्बलता और शुभ-अशुभ प्रवृत्तियों की प्रबलता का प्रमाण उपलब्ध होता है ।

अन्त:करण में रहने वाली शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों में से जिसे भी अपने अनुकूल वातावरण मिल जाता है वही पनपने और बढ़ने लगती है । जिसे पोषण नहीं मिलता सूख जाती है । जो व्यक्ति आज बहुत बुरा दीखता है वह उत्तम परिस्थिति एवं विचारधारा के सान्निध्य में आने से कल बहुत ही उत्तम प्रकृति का बन सकता है और जिसे आज अच्छा समझा जाता है वही कल बुरे वातावरण में फँसकर बुरा बन सकता है । इसलिए विचारक सदा से यह कहते आये हैं कि इस संसार में बुरा कोई मनुष्य नहीं, केवल स्थितियाँ और भावनाएँ ही बुरी हैं, जिन्हें बदला जा सकता है । लोहे या पत्थर की तरह नहीं मनुष्य का अन्त:करण गीली मिट्टी और मोम की तरह है जिसे पिघलाया जा सकता है बदला जा सकता है ।

अध्यात्म विद्या का उद्देश्य मानव प्राणी की अन्त:चेतना को पिघला कर श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालना है । माना कि पाशविक वृत्तियाँ प्रबल हैं, उनमें आकर्षण और प्रलोभन बहुत हैं जिससे दुर्बल प्रकृति का जीव अनायास ही उनकी ओर खिंच जाता है पर इसका अर्थ यह नहीं कि सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाया या परिपुष्ट नहीं किया जा सकता । कार्य थोड़ा कठिन अवश्य है पर असम्भव किसी भी प्रकार नहीं है । पानी को फैला देने से वह निचाई की ओर आसानी से बहने लगेगा पर यदि उसे ऊँचा उठाना हो तो अनेक उपकरण इकट्ठे करने और बल प्रयोग करने से ही वह ऊपर चढ़ेगा । इसी प्रकार मनोवृत्तियों के निम्नगामी प्रवाह को उर्ध्वगामी बनाने में श्रम पड़ता है और समय भी लगता है । अध्यात्म विद्याा में श्रम और समय लगना इस प्रकार स्वाभाविक ही है । पानी ऊपर खींचना हो तो साधन और शक्ति के अनुरूप मात्रा से ही चढ़ेगा पर गिराने और नीचे बहाने में न समय की आवश्यकता है न शक्ति की चाहे जितनी मात्रा में उसे क्षण भर में नीचे गिराया जा सकता है । पर ऊँचा उठाने की प्रक्रिया इस प्रकार नहीं हो सकती । इसलिए अध्यात्म का मार्ग श्रमसाध्य, समयसाध्य और क्रमिक सफलताओं के साथ पूरा हो सकने वाला माना जाता है ।

देवासुर संग्राम में आमतौर से असुर पहली बाजी जीतते हैं पर देवता जब अपनी बेखबरी और लापरवाही छोड़कर कटिबद्ध होते हैं तो अन्तिम विजय उन्हीं की होती है । पुराणों में वर्णित देवासुर संग्राम की किसी भी कथा को लें, एक ही कथानक मिलेगा-असुर बहुत ही प्रबल हैं वे मरते दम तक दुस्साहसपूर्ण युद्ध करते हैं पर चूँकि उनकी सत्ता मलत: पाप और अज्ञान पर खड़ी होती है इसलिए वह दुर्बलता ही उन्हें ले बैठती है और देवपक्ष का जैसे ही सुव्यवस्थित आक्रमण शुरू होता है वैसे ही असुर लड़खड़ा जाते हैं । देवताओं में लापरवाही की, विसंगठित रहने की जो कमी है वही उन्हें असुरों से हराती रहती है जब वे अपनी इस भूल को जान जाते हैं और छोड़ देने को तत्पर होते हैं तो उनकी विजय निश्चित हो जाती है ।

ऋषि-मुनियों को तभी तक लंका के निश्चर मारते खाते रहे जब तक कि वे अलग-अलग अपनी-अपनी कुटियों में जप-तप करते रहे, पर जब संगठित प्रतिरोध का अभियान आरम्भ हुआ तो रीछ, बन्दरों की सेना ने लंका को तहस-नहस कर दिया । देवताओं को शुम्भ-निशुम्भ असुरों की सेना से परास्त होते देखकर ब्रह्माजी ने उनके शरीरों से थोड़ी-थोड़ी शक्ति निकाल कर उस संघ-शक्ति से 'दुर्गा' नामक एक स्वतन्त्र शक्ति की रचना कर दी और उस दुर्गा ने देखते-देखते उन भयंकर असुरों को मार दिया । इसी प्रकार का एक प्रयोग त्रेता में भी हुआ था । रावण के नाश का कोई उपाय न देखकर ऋषियों ने अपना-अपना रक्त एक घड़े में इकट्ठा किया और उसे जमीन में गाढ़ दिया । वही रक्त कालान्तर में सीताजी के रूप में प्रकट हुआ । राजा जनक को हल जोतते समय उसी घड़े के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


टूटने से प्रकट हुई जो बालिका प्राप्त हुई वह सीता ही आगे चलकर रावण का वंश नष्ट करने का कारण बनी ।

देवत्व हर व्यक्ति के अन्त:करण में पर्याप्त मात्रा में मौजूद है पर वह प्रसुप्त और बिखरा पड़ा है, उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता । लंका लाँघने से पहले हनुमान को अपने ऊपर विश्वास नहीं हो रहा था तब जामवन्त ने प्रोत्साहन देकर उन्हें छलांग लगाने के लिए उकसाया और वे समुद्र लाँघने में पूर्णतया सफल रहे । अर्जुन भी दोनों सेनाओं के बीच खड़ा हुआ काँप रहा था, धनुष उसके हाथों से छूटा पड़ रहा था और कुछ सूझ न पड़ता था । कृष्ण ने उसे आवश्यक ज्ञान की ओर प्रोत्साहन दिया तो पार्थ की भुजाएँ फड़कने लगीं । गाण्डीव उठाकर उसने ऐसा घनघोर युद्ध किया कि कौरवों की समुद्र-सी उमड़ती सेना अस्त-व्यस्त हो गई । अहंकारी असुर, उच्छृंखलता में अभ्यस्त होने के कारण पहली बाजी जीतते हैं और प्रतीत होता है कि इनका हराना कठिन है पर यह निश्चित है कि पाप अत्यन्त दुर्बल होता है । वह घास के ढेर की तरह कितना ही बड़ा क्यों न हो व्यवस्थित रूप से लगाई हुई एक ही मोटी चिनगारी उसे नष्ट कर देने के लिए पर्याप्त होती है । देवत्व के पीछे सत्य है, धर्म है, स्थायित्व है, इसलिए इनके पास स्वल्प सामान होते हुए भी अन्त में जीत उन्हीं की निश्चित रहती है । असफलता तो उन्हें तभी तक मिलती है जब तक वे असंगठित और अव्यवस्थित रहते हैं । यह दो दुर्गुण ही उन्हें संकटों में फँसाते हैं । भूल और बुराई का दण्ड तो सभी को भोगना पड़ता है । देवता भी उससे कैसे बच सकते हैं ? लापरवाही, आलस, प्रमाद, ढील-ढाल और उपेक्षा जहाँ कहीं होगी वहाँ देर-सबेर में विपत्ति अवश्य आवेगी । देवता हो या मनुष्य कोई भी यह भूल करेगा तो दण्ड पावेगा । इसी प्रकार विसंगठन, फूट, पृथकता एवं स्वार्थपरता का भाव भी मानव जाति के लिए एक अभिशाप है । संघ-शक्ति का अवलम्बन किये बिना मनुष्य अपनी आत्म-रक्षा तक कर सकने में समर्थ नहीं हो सकता ।

व्यक्तिगत क्षेत्र हो चाहे सामाजिक क्षेत्र, दोनों में यह एक ही सिद्धान्त काम करता है । यदि हमारी पाशविक वृत्तियाँ प्रबल हो रही होंगी और देवत्व बिखरा प्रसुप्त स्थिति में पड़ा होगा तो फिर असुर बुद्धि और असुर प्रवृत्ति ही बलवती रहने से जीवन निम्न कोटि का, पतन और पाप से भरा हुआ दीख पड़ेगा । इसके विपरीत यदि देवत्व सजग, संघबद्ध और सक्रिय रह रहा होगा तो असुरता परास्त हुए बिना न रहेगी । मनुष्य के शरीर में न कुछ अच्छाई है न बुराई । उसकी भीतरी स्थिति ही बाह्य जीवन में फूटती रहती है । इस आन्तरिक स्तर को सुधारने और सँभालने का कार्य जिस प्रक्रिया द्वारा होना सम्भव है उसे ही अध्यात्म के नाम से पुकारा जाता है ।

अध्यात्म का उद्देश्य मनुष्य को पाप और कुविचारों की असुरता से छुड़ाकर सत्य और धर्म की सुख-शान्तिमयी गोदी में पहुँचा देने का है । यह सोचना गलती है कि धर्म को अपनाने से हम घाटे में रहेंगे । जिस धर्म को अपनाने से मनुष्य घाटे में रहे वह सच्चा धर्म नहीं हो सकता । आजकल धर्म के नाम पर जो अस्वाभाविक आडम्बर पुज रहा है उसके बारे में यह सोचना तो ठीक है पर असली धर्म तो पारलौकिक और इहलौकिक दोनों ही सुखों का साधन जुटाता है । प्राचीन काल में जब घर-घर धर्म की प्रतिष्ठा रहती थी तो भारत में घर-घर, धन, वैभव, बल, पुरुषार्थ, विद्या, बुद्धि, स्नेह, सौजन्य, आनन्द, उल्लास का वातावरण बिखरा रहता था । आज जब हमने अधर्ममूलक विचारधारा और कार्य प्रणाली को अपना लिया है तो घर-घर नरक के दृश्य दीख पड़ते हैं । अभाव दरिद्र, रोग-शोक, क्लेश-कलह, अज्ञान, अविवेक, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि जहाँ भी रहेंगे वहाँ नरक की अग्नि ही जलेगी ।

मानवीय जीवन हमें इसलिए प्राप्त नहीं हुआ कि इस जन्म में नरक जैसी कष्टदायक परिस्थितियों में पड़े रहकर तिल-तिल जलने जैसा कष्ट उठाते हुए मौत के दिन पूरे करें और परलोक के लिए अनन्तकाल तक दुर्गति का साधन इकट्ठा करें । जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं में सबसे बड़ी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


समस्या यह है कि जिस प्रकार का लक्ष्यविहीन जीवन हम व्यतीत कर रहे हैं क्या वही उचित है ? क्या यही मनुष्य का जन्म जैसे सुरदुर्लभ सौभाग्य का सदुपयोग है ? हम अनेकों महत्वपूर्ण समस्याओं को उपेक्षा में डाले रहते हैं और निरर्थक बातों को बहुत आवश्यक समझकर उनके लिए माथाफोड़ी करते रहते हैं । यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यही प्रतीत होगा कि हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण समस्या एक ही है और वह है–''जीवन का लक्ष्य एवं कार्यक्रम निश्चित करना ।'' यदि इस समस्या को हल कर लिया गया तो अन्य सारी समस्याएँ हल हो जाती हैं । यदि यह उलझी पड़ी हैं तो चारों ओर उलझनें ही उलझनें बनी रहेंगी ।

आज हमारे भीतर और बाहर सर्वत्र असुरता का बोलवाला है । वैयक्तिक जीवन में हमारी अन्तः चेतना असुरता की अन्धकारपूर्ण पाशविक प्रवृत्तियों से भरी हुई है, फलस्वरूप मनुष्य शरीर को पाकर भी हम घृणित श्रेणी का जीवन भी व्यतीत कर रहे हैं । इस प्रकार सामाजिक जीवन में भी अनाचार का वातावरण प्रबल होता जाता है जिसके फलस्वरूप, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति, पारस्परिक सम्बन्ध, नैतिकता और कर्तव्य पालन, उत्पादन और उद्योग प्रत्येक क्षेत्र में संकट उत्पन्न हो रहे हैं और चारों ओर अशान्ति की काली घटायें घुमड़ती हुई दिखाई पड़ती हैं । असुरता की प्रबलता जहाँ कहीं भी होगी वहाँ आपत्तियाँ ही बढ़ेंगी । सुख-शान्ति तो देवत्व के साथ ही अविच्छन्न रूप से जुड़ा हुआ है । यदि हमें अपना व्यक्तिगत जीवन सुखी और सामाजिक जीवन शान्तिमय देखना हो तो उसका एक ही उपाय रह जाता है, असुरता को परास्त करके देवत्व की अभिवृद्धि करना । असुरता जब तक हारेगी नहीं, तब तक अशान्ति का मिट सकना और किस प्रकार सम्भव होगा ?

देवासुर संग्राम पूर्व पौराणिक काल में भी चलता था । व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के दोनों मोर्चों पर यह लड़ाई प्रचंड गति से चल रही है । इसी का नाम विश्व-संकट है । यदि यह विश्व संकट हमें सचमुच ही अप्रिय लगता है और इस कष्टमय स्थिति से सचमुच ही बचना चाहते हैं तो फिर उस असुरता को परास्त करने के लिए पहले स्वयं क्यों तत्पर नहीं होते जो मानव जाति के ऊपर आई हुई आपत्तियों का एकमात्र कारण है ?

वस्तुतः यह संसार सत और तम से मिलकर बना है । तम अर्थात् जड़, चेतन अर्थात् सत । जड़ यों निर्जीव दीखता भर है, पर उसका आकर्षण कम नहीं । यदि वह अनाकर्षक असुन्दर, अनुपयोगी रहा होता तो चेतन की उसके प्रति रुचि ही क्यों होती ? सत और तम का संयोग यथावत् रहे । इसी दृष्टि से नियति ने दोनों को परस्पर जोड़ दिया है । प्राणी का शरीर जड़ पंच तत्वों से बना है और उसमें प्राण सत्ता चेतना रूप में विद्यमान है । यह जड़ चेतन का संयोग ही तो है जिसके कारण दोनों परस्पर मिल-जुलकर रहते और जीवन रथ को आगे चलाते हैं । दोनों को दोनों के प्रति आकर्षण और दोनों का दोनों से सहयोग, यह सहयोग की सौम्य अवस्था हुई ।

प्रकृति की सुन्दरता और उपयोगिता सर्वविदित है । तारों से जगमगाता नील आकाश, सूर्य-चन्द्र का उदय-अस्त, शीतल वायु-ऋतु परिवर्तन प्रातः सायंकाल की रंग बिरंगी झाँकी, बादल, वर्षा, बिजली आदि के कारण अपना ऊर्ध्वलोक कितना सुन्दर प्रतीत होता है । धरती पर पर्वत, वन, नदी, सरोवर, समुद्र हरितमा, पुष्प, उद्यान आदि कितने सुन्दर लगते हैं । यदि यहाँ कुछ भी आकर्षण न होता तो सम्भवतः जीवधारी को जीवन से कुछ भी प्यार न रहा होता ।

नियति की इच्छा है कि जड़-चेतन, परस्पर सहयोग पूर्वक रहें और एक दूसरे के लिए उपयोगी सिद्ध हों । नर और मादा के बीच काम आकर्षण की एक ऐसी सरल शृंखला जुड़ी हुई है जिसके कारण वे निकट आते और घनिष्ठता के सूत्र में बँधते हैं । यदि यह सरसता सूत्र न रहा होता तो ना और मादा के बीच न तो आकर्षण रहता और न सन्तानोत्पादन का अतीव झंझट भरा उत्तदायित्त्व वहन करने के लिए तैयार होता । जड़ और चेतन के बीच में सुन्दरता, उपयोगिता एवं स्पर्श जन्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सरसता के ऐसे ही सूत्र जुड़े हुए हैं जैसे नर और मादा के बीच ।

सृष्टि की इस औचित्य प्रक्रिया से किसी को कोई शिकायत नहीं हो सकती । यदि सन्तुलन बना रहे तो गड़बड़ी का कोई कारण नहीं । अव्यवस्था तो असन्तुलन से फैलती है । प्राणी के दृष्टिकोण में जब विकृति आती है तो औचित्य एवं उपयोग का तथ्य भूल जाता है और अतिवाद की नीति अपनाने लगता है । संग्रह आधिपत्य और उपभोग को मर्यादा के अन्तर्गत रखा जाय तो जड़ चेतन का पारस्परिक संयोग हर दृष्टि से हर किसी के लिए सुखद हो सकता है । अमर्यादित मात्रा में चाहने से साम्य वितरण में गड़बड़ी फैलती है । एक जगह अधिक संग्रह दूसरी जगह अभाव की स्थिति उत्पन्न करेगा । यह प्रक्रिया अवांछनीय है । प्रकृति इसको सन्तुलित करने की प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है । इसी का नाम देवासुर-संग्राम है ।

अनगढ़ मनुष्य प्रकृति के साधनों पर व्यक्तिगत रूप से अनावश्यक मात्रा में आधिपत्य जमाता है । परिग्रही, संग्रही, अमीर बनकर अपने अहंकार एवं बड़प्पन का आतंक दूसरों पर छोड़ना चाहता है । इस ललक का नाम तृष्णा है ।

दूसरा आकर्षण शरीरगत है । शरीर में कुछ सम्वेदनशील अवयव ऐसे बने हैं जिन्हें प्रकृति की अमुक स्थिति के साथ सम्पर्क बनाने में विचित्र प्रकार की सरस सम्वेदना अनुभव होती है । जीभ को खट्टे, मीठे, नमकीन, चरपरे पदार्थ विशेष रूप से सुहाते हैं । जननेन्द्रिय को रति कर्म में असाधारण रस आता है अनगढ़ मनुष्य इनकी असीम मात्रा चाहता है और मर्यादाएँ तोड़कर शहद पर टूट पड़ने वाली मक्खी की तरह उसी में लिपट कर संकट ग्रस्त होता है ।

सीमित, सन्तुलित और विवेकपूर्ण स्थिति में औचित्य का ध्यान रखते हुए इन्द्रिय सुखों का सन्तुलित उपभोग लाभदायक सिद्ध होता है और उत्साह बढ़ाता है । शरीर से बाहर की वस्तुओं का सम्पर्क भी अमुक प्रयोजन के लिए अमुक मात्रा में उत्पादन एवं उपभोग किया जा सकता है । किन्तु जब सन्तुलन बिगड़ता है और अतिवाद अपनाया जाता है तो उसकी हानिकारक प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए विज्ञ-पुरुष उस असन्तुलन की भर्त्सना करते हैं । वस्तुओं के अनावश्यक संग्रह को-तृष्णा और इन्द्रिय भोगों की लिप्सा को-वासना कहते हैं । इन दोनों से ही व्यक्ति और समाज की हानि होती है इसलिए इस अतिवाद को दूरदर्शियों ने हेय एवं निन्दनीय, अवांछनीय एवं त्याज्य ठहराया है । इसी को असुरता भी कहा गया है । दैत्य दानव इसी दुष्प्रवृत्ति के प्रतीक प्रतिनिधि होते हैं ।

असुरता आक्रमणकारी और आतंकवादी होती है । वह अपने विस्तार के लिए प्रयत्न करती है और आग की तरह जो भी उसकी पकड़ में आता है उसे आकार विस्तार के लिए जकड़ लेती है । असुरता के अतिरिक्त जो बचता है-वह देव है । सत और तम के-जड़ और चेतन के समन्वय से ही यह संसार बना है । रजोगुण तो इन दोनों का वैसा ही समन्वय है, जैसे रात्रि और दिन के समन्वय से बना संध्याकाल ।

असुरता का आक्रमण देवत्व पर ही होता है । असुरता की वृद्धि के लिए देवत्व की ईंधन हो सकता है । रात-दिन को खाकर विकसित होती है और दिन-रात को परास्त करके अपना वर्चस्व जमाता है । असुरता की वृद्धि देवत्व को उदरस्थ करने से ही सम्भव हो सकती है । यही असुरों को देवताओं पर आक्रमण करने, पुराण वर्णित अलंकारिता कथा-गाथाओं की पृष्ठभूमि है ।

देवता आत्मा-रक्षा के लिए लड़ते तो हैं, पर वे उपयुक्त पोषण प्राप्त न कर सकने के कारण दुर्बल बने रहते हैं । प्राथमिक आक्रमण में वे हारते हैं स्वभावतः देवत्व दुर्बल नहीं है । पर वह असुरता की तुलना में बहुधा दुर्बल पड़ता है । इसके दो कारण है असुरता के संस्कार जीव के साथ निम्न योनियों से जुड़े आते हैं और वर्तमान वातावरण में भी उन्हीं का बाहुल्य छाया होता है । दैनिक अभ्यास में भी वे ही प्रवृत्तियाँ काम आती हैं । अस्तु पर्याप्त खाद, पानी पाकर वे परिपुष्ट होती रहती हैं और अपनी क्षुधा बुझाने के लिए देवत्व पर मानवी मर्यादाओं पर ही हमला बोलती हैं । आग को बढ़ाने के लिए ईंधन तो चाहिए ही । इसके लिए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उस दावानल को वन प्रदेश में उगी हुई सूखी गीली वनस्पति को ही अपनी लपेट में लेना पड़ता है ।

देवत्व भी चुपचाप उदरस्थ नहीं हो जाता आत्म रक्षा की लड़ाई उसे भी लड़नी पड़ती है । आदर्शवाद भी जीवित रहना चाहता है । अस्तु विरोध, विद्रोह तो वह भी करता है । कम से कम मनुष्य की अन्त:भूमिका में अन्तर्द्वन्द्व के रूप में तो उसका रोष-आक्रोश एवं संघर्ष दृष्टिगोचर होता ही है । असुरता के सम्मुख नितान्त निष्क्रिय आत्म-समर्पण नहीं हो सकता । देवत्व हारता तो है, पर उसका प्रतिरोध किसी न किसी रूप में बना ही रहता है । आत्म चेतना के साथ जुड़े हुए मानवी आदर्श सर्वथा नष्ट नहीं हो सकते ।

देवत्व का तात्त्विक स्वरूप है व्यापकता । एक को बहुत में देखने की सद्भाव भरी सत्प्रवृत्ति । वासनात्मक अतिवाद के कारण वाले शारीरिक और मानसिक विनाश की अपरिमित क्षति देव चक्षुओं से स्पष्ट दीख पड़ती है । देव-मानस सोचता है कि अपने श्रम, समय, मनोयोग, प्रभाव, वर्चस्व एवं धन का लाभ यदि संकीर्ण स्वार्थपरता के क्षेत्र से बाहर तक जाने दिया जाये तो उससे कितने बड़े परिमाण में प्रयोजन पूरे हो सकते हैं । यह तुलनात्मक विचार करते ही देव-मानव को यही सूझ सूझती है कि जीवन के साथ जुड़ी हुई उपलब्धियों का उपयोग, जीवनक्रम को आदर्श एवं अनुकरणीय बनाने में किया जाय ।

असुरत्व और देवत्व में निरन्तर संघर्ष इसलिए होता रहा है कि जीवन सम्पदा पर अधिकार जमाने के लिए दोनों की ही प्रबल चेष्टा रहती है । देवत्व की माँग यह है कि दिव्य जीवन जिया जाय । अपने आचरण अनुकरणीय रहें । असुरता तात्कालिक वासना और तृष्णा की तृप्ति चाहती है । अधिकाधिक इन्द्रिय उपभोग की वासना लिप्सा हर घड़ी छाई रहती है । उसी की उधेड़-बुन का ताना-बाना सतत चलता रहता है ।

देवत्व ऐसी क्षुद्रता की बालक्रीड़ा में सीमावद्ध नहीं रहना चाहता, उसे बड़े प्रयोजन पूरे करने की आकांक्षा बेचैन किये रहती है । यही अन्तर्द्वन्द्व का देवासुर संग्राम है, जो प्रत्येक विचार और प्रत्येक कार्य में अपने-अपने पक्ष समर्थन में निरत रहते हैं । भोजन करते समय यह खींचतान देखी जा सकती है । एक ओर स्वादिष्ट किन्तु गरिष्ठ हानिकारक पदार्थ और दूसरी ओर कम स्वाद के किन्तु सात्विक पदार्थ सामने होते हैं । दोनों ही थाली में सामने रखे हैं किसे ग्रहण किया जाय ? किसे छोड़ा जाय ? इसमें भीतर ही भीतर सतत अन्तर्द्वन्द्व चलता है ।

धन उपार्जन में नीति-अनीति के-कर्म में श्रमशीलता और आलस्य प्रमाद के, चिन्तन में विकारी एवं आदर्शवादी विचारों की, उपभोग में संयम-असंयम की, आचरण में आदर्शवादिता एवं भ्रष्टता की, दर्शन में आस्तिकता एवं नास्तिकता की आकांक्षाएँ हर क्षण मल्ल-युद्ध करती हैं । यही देवासुर संग्राम है । परस्पर विरोधी दिशा में चल रही खींचतान में से कब किसकी विजय हुई, यह आत्म-निरीक्षण यदि सतर्कता पूर्वक जारी रखा जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि अन्तर्द्वन्द्व के महाभारत में किस पक्ष की सेना हारती ओर किसकी जीतती है ?

व्यक्तिगत जीवन की विचारणा एवं क्रियाशीलता के क्षेत्र से आगे बढ़कर परिवार, समाज, राष्ट्र विश्व के व्यापक क्षेत्र में भी यह देवासुर संग्राम चलता है । गरम युद्ध और शीत युद्ध के मोर्चे हर क्षेत्र में गड़े होते हैं । इन्हें मूक-दर्शक की तरह तो कोई जीवित मृतक ही देखते रह सकते हैं । जीवन्त चेतना को किसी का पक्षधर बनना पड़ता है । जो नीति का पोषण नहीं करता वह परोक्ष रूप से अनीति का समर्थक है । सत्प्रवृत्तियों का समर्थन एवं सहयोग करना प्रत्यक्षत: देव-पक्ष को विजयी बनाने का योगदान है । इसी प्रकार असुरता को सहन करने, उसके विरोध में मुँह तक न खोलने से भी प्रकारान्तर से असुर-पक्ष का समर्थन बन जाता है ।

लोक-प्रवाह में आसुरी तत्वों को बाहुल्य रहने से बहुत मोर्चों पर दैत्य ही जीतता है । देवत्व दुर्बल पड़ता और हारता है, पर यह जीत हार अस्वाभाविक है । आत्म चेतना का ईश्वरीय अंश-मूलत: अति समर्थ है । सत में हजार हाथियों के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बराबर बल बताया जाता रहा है । सामान्य विवेक सहज ही देवत्व का पक्षधर होता है । चोरों के झुण्ड से पूछा जाय कि चोरी अच्छी होती है या ईमानदारी तो उनमें से प्रत्येक ईमानदारी के पक्ष में ही अपना मत देगा । वह ईमानदार दुकान से सौदा खरीदता, ईमानदार नौकर तलाश करता है और ईमानदारी से ही व्यवहार करने का इच्छुक रहता है । चोर होते हुए भी ईमानदारी का यह सरल समर्थन बताता है । कि देव पक्ष कितना प्रबल है जो विपक्षी के मुँह से भी अपना समर्थन करा लेता है । व्यभिचारी भी अपनी पत्नी या बेटी को उस मार्ग पर नहीं चलने देना चाहता । अपने घर में सदाचारियों को ही प्रवेश देते हैं । इससे स्पष्ट है कि किसकी शक्ति प्रबल है ।

व्यक्ति के जीवन में जब देवत्व के पक्ष समर्थन की अदम्य अभिलाषा जग पड़े और वह अवांछनीयताओं से लड़ पड़ने का आक्रोश बनकर सत्प्रवृत्तियों को मूर्त रूप देने में जुट पड़े तो समझना चाहिए कि यह मन:स्थिति प्रत्यक्ष ही ईश्वरीय अवतरण और देव वरदान है । यही बात किसी सत्समर्थन में उभरे हुए प्रचण्ड आन्दोलन के सम्बन्ध में कही जा सकती है । अपने-अपने समय की विकृतियों का निराकरण करने का नेतृत्व श्रेय किन्हीं विशेष व्यक्तियों को ही मिलता है पर यथार्थता यह है कि लोक-मानस में उठती हुई सन्तुलन की वृत्ति के रूप में अवतार सत्ता का दिव्य अवतरण होता है । उसमें नीति के प्रति आग्रह होता है । किस समय, कहाँ, किस प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हुई और उनके निवारण करने के लिए किस प्रकार की प्रतिक्रिया उभरी यह घटना क्रम प्राय: नवीनता युक्त होता है । अधर्म का-अवांछनीयता का निराकरण और धर्म का-औचित्य का-संस्थापन । रामायण काल और महाभारत काल की अनीति का स्वरूप और उसके निवारण का उपक्रम एक जैसा नहीं था, घटनाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से घटीं तो भी तथ्य यथास्थान रहे भगवान के अवतरण का स्वरूप सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप होता है । लोक-मानस में अभीष्ट परिवर्तन के लिए भारी आवेश भरा होता है, उसी आधार पर नेतृत्व प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति तथा घटनाक्रम दृश्यमान होते हैं । इन्हीं को अवतार की लीला कहा जा सकता है । श्रेय किन्हें मिला किन्हें नहीं इससे कुछ अन्तर नहीं आता है । नियति के उभार किसी को भी अपना वाहन बना सकते हैं । ईश्वर व्यक्ति उभार की शक्ति नहीं है । वह दिव्य चेतना का उभार बनकर व्यक्ति अथवा समष्टि में अवतरित होता है । समय की विकृतियों का समाधान और सुकृतियों को अभिवर्धन करके सन्तुलन सही करना ही उसका लक्ष्य होता है । भगवान की अवतार लीलाएँ इसी प्रयोजन के लिए उभरती, और लीला करती दिखाई पड़ती हैं ।

देवताओं के ईश्वर के शरीर में जाने का तात्पर्य अन्तर्जगत की दिव्य चेतना को आवेशपूर्वक अपनाया जाना है । ईश्वर की शरण में जाने एवं उसका विशेष अनुग्रह पाने के लिए उसकी शरण में जाना आवश्यक माना गया है । शरण का तात्पर्य यहाँ रोना-गाना नहीं है परन्तु प्रचण्ड उत्कण्ठा उभारना है । जीव चेतना का आन्तरिक चुम्बकत्व ही सूक्ष्म जगत की सत्ताओं को अपने भीतर धारण करता है । आन्तरिक आकर्षण से आसुरी तत्व भी अपने भीतर भरते हैं और जब देवत्व की आवश्यकता होती है तो वह भी उसी प्रकार भीतर भरता आता है । ईश्वर साक्षी और दृष्टा है वह विश्व जीवन का क्रम ही चलाता है ।

आसुरी और दैवी शक्तियों के संघर्ष में हमें किसका पक्षधर बनना है इसका निर्णय स्वयं ही करना पड़ता है । अदूरदर्शिता तात्कालिक लाभ भर देखती है और असुरता के आवेश में फँसकर नरक को आमन्त्रित करती है और सर्वनाश के गर्त में फँसती हैं । विवेकशीलता उज्ज्वल भविष्य को देख सकती है और उस फसल को उगाने के लिए धैर्यबद्ध किसान की तरह कष्ट साध्य श्रम करने में उत्साह बनाये रहती है । फलस्वरूप स्वर्ग सामने आ खड़ा होता है और जीवात्मा को-महात्मा-देवात्मा एवं परमात्मा बनने का अवसर मिलता है । देवत्व और असुरत्व तो रस्साकसी में हर किसी के पक्षधर बन सकते हैं । अनवरत चल रहे देवासुर संग्राम के हम मूक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दर्शक नहीं रह सकते । इच्छा या अनिच्छा से किसी का समर्थन सहकार तो करना ही होता है । फैसला गम्भीरता और सजगता पूर्वक किया जाय इसी में बुद्धिमानी है ।

देवासुर संग्राम के पुराण वर्णित कथा क्रम ऐतिहासिक हैं या नहीं इस में माथा-पच्ची करना व्यर्थ है । इनमें यह शाश्वत तथ्य सुनिश्चित रूप से भरा पड़ा है कि दैवी और आसुरी प्रकृति के आकर्षण प्राणी को खींचते हैं । इनमें से देवत्व का पक्षधर बनने और ईश्वर की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है ।

## युग धर्म का परिपालन अनिवार्य

छोटे बच्चों के कपड़े किशोरों के लिए फिट नहीं बैठते और किशोरों के लिए सिलवाये गये कपड़ों से प्रौढ़ों का काम नहीं चलता । आयु वृद्धि के साथ-साथ परिवर्तन आवश्यक हो जाता है । भोजन ताजा बनाने से ही काम चलता है । विद्यार्थी जैसे-जैसे कक्षा चढ़ते जाते हैं, वैसे ही वैसे उन्हें अगले पाठ्यक्रम की पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं । सर्दी और गर्मी के कपड़े अलग तरह के होते हैं । परिवर्तन होते चलने के साथ, तदनुकूल व्यवस्था बनाते रहना भी एक प्रकार से अनिवार्य है ।

समय सदा एक जैसा नहीं रहता । वह बदलता एवं आगे बढ़ता जाता है, तो उसके अनुसार नये नियम-निर्धारण भी करने पड़ते हैं । आदिम काल में मनुष्य बिना वस्त्रों के ही रहता था । मध्यकाल में धोती और दुपट्टा दो ही, बिना सिले वस्त्र काम आने लगे थे । प्रारम्भ में अनगढ़ औजारों-हथियारों से ही काम चल जाता था । मध्यकाल में भी धनुष वाण और ढाल-तलवार ही युद्ध के प्रमुख उपकरण थे; पर इन दिनों वे दोनों ही एक प्रकार से बेकार हो गये, अब आग्नेयास्त्रों के बिना काम चल ही नहीं सकता । समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती हैं और फिर उनके समाधान भी ढूँढ़ने पड़ते हैं ।

प्राचीनकाल के वर्णाश्रम पर आधारित प्रायः सभी विभाजन बदल गए । अब उसका स्थान नयी व्यवस्था ने ले लिया है । दो सौ वर्ष पुराने समय में काम आने वाली पोशाकों का अब कहीं-कहीं प्रदर्शनियों के रूप में ही अस्तित्व दीख पड़ता है । जब साइकिलें चली थीं तब अगला पहिया बहुत बड़ा और पिछला बहुत छोटा होता था । अब उनका दर्शन किसी पुरातन प्रदर्शनियों में ही दीख पड़ता है । कुदाली से जमीन खोदकर खेती करना किसी समय कृषि का प्रमुख आधार रहा होगा, पर अब तो सुधरे हुए हल ही काम आते हैं । उन्हें जानवरों या मशीनों द्वारा चलाया जाता है । लकड़ियाँ घिस कर आग पैदा करने की प्रथा मध्यकाल में थी, पर अब तो माचिस का प्रचलन हो जाने पर कोई भी उस कष्टसाध्य प्रक्रिया को अपनाने के लिए तैयार न होगा ।

विकास क्रम में ऐसे बदलाव अनायास ही प्रस्तुत कर दिये गये हैं । इस परिवर्तन क्रम को रोका नहीं जा सकता । जो पुरानी प्रथाओं पर ही अड़ा रहेगा, उसे न केवल घाटा ही घाटा उठाना पड़ेगा, वरन् उपहासास्पद भी बनना पड़ेगा ।

मान्यताएँ, विचारणाएँ, निर्धारण और क्रिया-कलाप आदि भी समय के परिवर्तन से प्रभावित हुए बिना रहते नहीं । उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं की जा सकती । धर्मशास्त्र भी समय की मर्यादाओं में बँधे रहे हैं और उनमें प्रस्तुत बदलाव के आधार पर परिवर्तन होते रहे हैं और उनमें प्रस्तुत बदलाव के आधार पर परिवर्तन होते रहे हैं । स्मृतियाँ और सूत्र ग्रन्थ भी भिन्न-भिन्न ऋषियों ने अपने अपने समय के अनुसार, नये सिरे से लिखने की आवश्यकता समझी और वह सुधार ही जनजीवन में मान्यता प्राप्त करता रहा । इसका कारण उन निर्माताओं परस्पर विवाद या विग्रह होना नहीं है; वरन् यह है कि बदलती परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए धर्म-प्रचलन के स्वरूप में भी भारी हेर-फेर किया गया ।

प्राचीनकाल में जमीन में गड्ढा खोदकर गुफाएँ विनिर्मित कर ली जाती थीं । बाद में कुटियाँ बनाना अधिक सरल और सुविधाजनक लगा । इसके बाद अब तो भूमि सम्बन्धी कठिनाई को देखते हुए, कई-कई मंजिले मकान बनने लगे हैं और उनमें ईंट-चूने से भी आगे बढ़कर सीमेन्ट और लोहे के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहारे भवन निर्माण का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है । लकड़ी और गोबर से ईंधन की आवश्यकता पूरी करने की प्रथा पिछले दिनों रही है, पर उनका पर्याप्त मात्रा में न मिलना, इस प्रयास को तेजी से कार्यान्वित कर रहा है कि गोबर गैस या खनिज गैस से काम लिया जाय । जहाँ इफरात है, वहाँ बिजली से भी ईंधन का काम लिया जा रहा है । खनिज तेल भी किसी प्रकार उस आवश्यकता की पूर्ति कर रहे हैं । अब तो सूर्य की धूप भी ईंधन की जगह प्रयुक्त होने लगी है । इन परिवर्तनों में आवश्यकता के अनुरूप आविष्कार होते चलने की उक्ति ही सार्थक सिद्ध होती है ।

समय पीछे नहीं लौटता, वह निरन्तर आगे ही बढ़ता है । उसके साथ ही मान्यताओं में, प्रचलनों में भी परिवर्तन होता चलता है । ऐसा आग्रह कोई कदाचित ही करता हो, कि जो पहले दिनों माना या किया जाता रहा है, वही पत्थर की तरह सदा-सर्वदा जारी रहना चाहिए ? ऐसे दुराग्राही तो शायद बिजली का प्रयोग करने और नल का पानी पीने से भी ऐतराज कर सकते हैं ? उन्हें शायद गुफा बनाकर रहने का भी आग्रह हो, क्योंकि पूर्व-पुरुषों ने निवास के लिए उसी प्रक्रिया को सरल समझा था ।

कभी मिट्टी के खपरों पर लेखन का काम किया जाता था । बाद में चमड़े, भोजपत्र, ताड़पत्र आदि पर लेखन कार्य चलने लगा । कुछ दिनों हाथ का बना कागज भी चला । पर अब तो सर्वत्र मिलों का बना कागज ही काम में आता है । हाथ से ग्रन्थों की नकल करने का उपक्रम लम्बे समय तक चलता रहा है । पर अब तो छपाई की सरल और सस्ती सुविधाएँ छोड़ने के लिए कोई तैयार नहीं । तब रेल मोटर आदि की आवश्यकता न थी, पर अब तो उसके बिना परिवहन और यातायात का काम नहीं चलता । डाक से पत्र व्यवहार करने की अपेक्षा घोड़ों पर लम्बी दूरी पर सन्देश भेजने की प्रथा अब एक प्रकार से समाप्त ही हो गयी है ।

परिवर्तन के साथ जुड़े हुए नये आयाम विकसित करने की आवश्यकता अब इतनी अनिवार्य हो गयी है, कि उसे अपनाने से कदाचित ही कोई इनकार करता हो ? घड़ी का उपयोग करने से अब कदाचित ही कहीं ऐतराज किया जाता हो ? समय हर किसी को बाधित करता है कि युग धर्म पहचाना जाय और उसे अपनाने में आना-कानी न की जाय । सनातन धर्म नीति-निष्ठा एवं समाज-निष्ठा के सम्बन्ध में शाश्वत हो सकता है; पर रीति-रिवाजों, क्रिया-कलापों, उपकरणों आदि प्रचलित नियम अनुशासन के सम्बन्ध में पुरातन की दुहाई देकर दुराग्रह अपनाने से कुछ काम चलता नहीं । ऐसे हठवादी दुराग्रही पुरातन परिपाटी के भक्त तो कहे जा सकते हैं, पर अपने अतिरिक्त और किसी को इसके लिए सहमत नहीं कर सकते कि लकीर के फकीर बने रहने में ही धर्म का पालन सन्निहित है; जो पुरातन काल में चलता रहा है, उसमें हेर-फेर करने की बात किसी को सोचनी नहीं चाहिए, ऐसा करने को अधर्म कहा जायेगा और उसे करने वाले पर पाप चढ़ेगा।

किसी भी भली-बुरी प्रथा को अपनी और पूर्वजों की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर उस पर अड़ा और डटा तो रहा जा सकता है, पर उसमें बुद्धिमानी का समावेश तनिक भी नहीं है । मनुष्य प्रगतिशील रहा है और रहेगा । वह सृष्टि के आदि से लेकर अनेक परिवर्तनों के बीच से गुजरता हुआ आज की स्थिति तक पहुँचा है । यह क्रम आगे भी चलता ही रहने वाला है । पुरातन के लिए हठवादी बने रहना किसी भी प्रकार, किसी के लिए भी हितकारी नहीं हो सकता । युग धर्म का निर्धारण और परिपालन ही प्रगतिशीलता का प्रधान चिह्न है । युग धर्म को अपनाकर ही मनुष्य आगे बढ़ा है और आगे भी उसके लिए तैयार रहेगा । समय का यह ऐसा तकाजा है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता ।

## गरीबों द्वारा अमीरी का आडम्बर

रोम के एक दार्शनिक के मन में भारत की महत्ता देखने की ललक उठी । समय और धन

खर्च करके आये, घूमे, रहे । लौटे तो उदास थे । साथियों ने पूछा तो केवल इतना कहा ''भारत में जहाँ गरीब अधिकांश रहते हैं, वहाँ भी अमीरों जैसा स्वाँग बनाया जाता है ।'' ऐसा ही कथन एक जापानी शिष्ट मण्डल का भी है । उन्होंने भ्रमण के बाद कहा था, यहाँ अमीरी का माहौल है, परन्तु उसकी छाया में पिछड़े, गये-गुजरे लोग रहते हैं ।

प्रश्न उठता है कि ऐसी विडम्बना क्यों कर बन पड़ी ? अमीरों में जो दुर्गुण पाये जाते हैं, वे यहाँ जन-जन में विद्यमान हैं; किन्तु प्रगतिशीलों में जो सद्गुण पाये जाने चाहिए, उनका बुरी तरह अभाव है । इस कमी के रहते गरीबी ही नहीं, अशिक्षा, गन्दगी, कामचोरी जैसी अनेकों पिछड़ेपन की निशानियाँ बनी ही रहेंगी । वे किसी बाहरी सम्पत्ति के बलबूते दूर न हो सकेंगी । भूमि की अपनी उर्वरता न रहे, तो बीज बोने वाला, सिंचाई, रखवाली करने वाला भी उपयुक्त परिणाम प्राप्त न कर सकेगा ।

मनुष्य की वास्तविक सम्पदा उसका निजी व्यक्तित्व है । वह जीवन्त स्तर का हो, तो उसमें वह खेत-उद्यानों की तरह अपने को निहाल करने वाली और दूसरों का मन हुलसाने वाली सम्पदाएँ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हो सकती है; पर चट्टान पर हरियाली कैसे उगे ? व्यक्तित्व अनायास ही नहीं बन जाता । वह इर्द-गिर्द के वातावरण से अपने लिए प्राण-वायु खींचता है । जहाँ विषाक्तता छाई हुई हो, वहाँ साँस लेना तक कठिन हो जायेगा । लम्बे समय तक जीवित रहने की बात तो वहाँ बन ही कैसे पड़ेगी ?

लम्बे समय तक दुर्बलता के शिकार रहने वालों को धीरे-धीरे कई प्रकार की बीमारियाँ घेरती और दबोचती रहती हैं । छूत की बीमारियाँ एक से दूसरे को लगती और भले-चंगो को चपेट में लेती चली जाती हैं । लम्बे समय की गुलामी और अवांछनीयता स्तर की मूढ़-मान्यताओं, दुष्प्रवृत्तियों ने अपना जाल ''जलकुंभी'' की तरह फैला दिया है । प्रतिगामिताओं-दुष्प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी यही बात है । वे यदि निर्बाध गति से बढ़ती रहें, तो किसी भी समुदाय को खोखला किये बिना नहीं रहतीं ।

देश की दरिद्रता पख्यात है । अशिक्षा, गन्दगी और कुटेवों की बात छिपी हुई नहीं है । पर इस बात को समझने में जरा अधिक जोर लगाना पड़ेगा कि भारत अमीरी का प्रदर्शन क्यों होता है ? यहाँ अमीरों के साथ जुड़े हुए, प्रमुख दीख पड़ने वाले काले पक्ष को विशेष रूप से देखना होगा । यों इसके अपवाद भी देखे जाते हैं । अमीरी सदा अवांछनीयताएँ ही उत्पन्न नहीं करतीं । सदुपयोग कर सकने वाले, उसका अपने तथा दूसरों के लिए समुचित लाभ भी उठा लेते हैं; पर आमतौर से वैसा कुछ नहीं बन पड़ता ।

अपने देश में बडप्पन का अर्थ आलस्य और अपव्यय है । दुर्व्यसनों की एक पूरी बटालियन भी साथ लग जाती है । देखा गया है कि अपने देश में परिश्रम करना पड़े, तो उसे दुर्भाग्य का चिह्न माना जायगा । राजा, सामन्त, जमींदार, अमीर-उमराव, सन्त, महन्त स्तर के आदमी मेहनत करने में अपना अपमान समझते हैं । वे अपनी शारीरिक सेवाओं के लिए भी समीपवर्ती लोगों पर आश्रित रहते हैं । लड़की की शादी उस घर में करना चाहते हैं, जहाँ वह पालने पर बैठी राज करे । जिसे दिन भर काम करना पड़े, उसे नीचा समझा जाता है । नेक-भले व्यक्तियों को भी छोटा इसलिए ही माना जाता है कि वे दिन भर कड़े परिश्रम में लगे रहते हैं । अमीर या मालदार तो उन्हें ही समझा जाता है, जिन्हें कुछ न करने के लिए सुविधा हो । यह कामचोरी, हरामखोरी की आदत जहाँ भी जड़ जमाने लगेगी, वहाँ से बेशरम बेल की तरह हटने का नाम ही न लेगी ।

अमीरों के साथ जुड़ा-अपव्यय एक भारी रोग है । इसी के सहारे तो किसी को अमीर होने के भ्रम में डाला जा सकता है । फैशन, जेवर, ठाटबाट, नशेबाजी जैसे दुर्व्यसन तो अमीरी के प्रतीक बन गये हैं । विवाह-शादियों के अवसर पर तो यह अमीरी सिर पर चढ़ बैठती है और आवश्यक साधनों को भी बेच कर उन्हें उसकी फुलझड़ी जलाने के लिए आकुल-व्याकुल कर देती है । दूल्हे और दुल्हन को इस तरह सजाया जाता है, मानो वे राजकुमार और राजकुमारी से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कम न हों । बारातों और दावतों को देखकर यह कोई अनुमान नहीं लगा सकता कि यह लोग दैनिक जीवन में रोटी का जुगाड़ भी मुश्किल से जुटा पाते होंगे । ऐसा लगता है मानों इन्हें कहीं से मुफ्त का खजाना मिल गया हो ?

औसत भारतीय को दिन भर में कुछ घण्टे का ही काम मिलता है । शेष तो वे ज्यों-त्यों मटरगश्ती, आवारागर्दी, ठिल्लेबाजी में ही बिताते रहते हैं । यदि इस समय को कठोर श्रम के साथ नियोजित किया जा सके, तो कोई कारण नहीं कि उसके बदले वे साधन मिल सकें, जिनके सहारे खुशहाली की परिस्थितियों में रहा जा सकता है । कृषि कार्य में निरत व्यक्ति यदि चाहे, तो अपने प्रायः आधे समय के खालीपन को कुटीर उद्योगों में लगा सकता है और अतिरिक्त आजीविका का कोई सुयोग बिठा सकता है ।

जिन्हें पैसे की आवश्यकता या तंगी नहीं, वे बचत वाले समय को शिक्षा-संवर्धन में, गन्दगी के स्थान पर स्वच्छता नियोजित करने में लगा सकते हैं । परिवार के साथ मिल जुलकर उस परिकर को सभ्यजनों जैसा बना सकते हैं । स्वास्थ्य रक्षा, आजीविका-अभिवृद्धि, कला-कौशल, शिक्षा-विस्तार जैसे अनेकों कार्य हैं, जिनके लिए यदि उत्साह उभरे, तो कोई कारण नहीं कि आज की अपेक्षा कल अधिक सम्पन्न, शिक्षित, सभ्य एवं प्रतिभाशाली न बना जा सके ।

अपव्ययों को रोकने पर, पेंदे में छेद वाले घड़े का सूराख बन्द कर देने की तरह पानी भरा रह सकता है और प्यासे मरने की शिकायत से बचा जा सकता है । किन्तु उस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय, जो समय के साथ श्रम को जुड़ने ही नहीं देता ? अमीरी प्रदर्शन के प्रेत-पिशाच का उन्माद सिर से उतरने ही नहीं देता ? इस मूर्छना के रहते उठने, आगे बढ़ने और उपलब्ध क्षमताओं के सदुपयोग का उत्साह उभर ही नहीं पाता । इस मानसिकता के रहते न दरिद्रता से पीछा छूटने वाला है, न अशिक्षा से । प्रगति के दूसरे भी अनेकानेक आधार हैं, पर वे हस्तगत कैसे हों, जबकि पिछड़ापन अपने गुण, कर्म, स्वभाव का अविच्छिन्न अंग बन गया हो ?

अच्छा होता, हमें ऐसे उत्साहवर्धक प्रगतिशील वातावरण में रहने का अवसर मिला होता, अथवा जहाँ ऐसी प्रेरणाएँ विद्यमान हैं उनके साथ घनिष्ठता का सम्बन्ध स्थापित किया गया होता । इर्द-गिर्द उत्साह उभरता दीख नहीं पड़ता, तो अन्यत्र अथवा भूतकाल में सम्पन्न हुए उन पुरुषार्थों से अवगत, प्रभावित होने का प्रयत्न किया ही जा सकता है, जो अभी भी प्रगतिशीलों की यशगाथा के रूप में कहीं-कहीं तो विद्यमान हैं ही । ऐसी साक्षियाँ, इतिहास के पृष्ठों पर कम परिमाण में नहीं हैं ।

जिसे विपन्नता से उबर कर, प्रगतिशील सम्पन्नता की दिशा में अग्रसर होना है, उसे उस अभ्यस्त मानसिकता को निरस्त करना पड़ेगा, जो हमें अमीरी के मुखौटा पहन कर वस्तुतः गई-गुजरी परिस्थितियों में रहने के लिए बाधित किये हुए हैं ।

## तीनों उद्यान फलेंगे और निहाल करेंगे

शरीर के कण-कण में सम्पन्नता भरी पड़ी है । आमतौर से उसे खोद निकालने के लिए श्रम ओर समय का सुनियोजन भर बन पड़ता है । अभिरुचि, उत्कण्ठा, मनोयोग एवं उत्साह को भी यदि साथ में नियोजन हो, तो फिर समझना चाहिए कि श्रम का स्तर अनेक गुना ऊँचा उठ गया । आलस्य और उपेक्षापूर्वक जैसे-तैसे बेगार भुगतने की तरह काम करना तो ऐसा ही है, जिसे ''न कुछ'' की तुलना में ''कुछ'' कहा जा सके ।

सुव्यवस्थित और सर्वांगपूर्ण काम करने से श्रम का मूल्य भी बढता है और स्तर भी । मस्तिष्क में इससे सूझ-बूझ की क्षमता बढ़ती है, जिसके सहारे अभ्यस्त ढर्रे से आगे बढ़कर, कुछ अधिक उपयुक्त सोचा, किया और पाया जा सकता है । सुव्यवस्था एक उच्चस्तरीय कला-कौशल है, जो किसी भी काम को सर्वांगपूर्ण सुन्दर, सुसज्जित और कलात्मक बनाती है । संसार भर के प्रगतिशीलों को इसी आधार पर आश्चर्यजनक उन्नति करते देखा गया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है ।

छप्पर फाड़कर कदाचित् ही किसी के घर में स्वर्ण वर्षा हुई हो ? दूसरों के सहारे, पराश्रित रहकर कदाचित् ही किसी ने गौरव भरा जीवन जिया हो ? उत्तराधिकार में भी किसी को वैभव मिल तो सकता है, पर हराम का माल हजम नहीं होता । जिसने परिश्रमपूर्वक कमाया नहीं है, वह उसका सदुपयोग भी कदाचित ही कर सकेगा । उठाईगीर, लुच्चे-लफंगे, छल के सहारे आये दिन बहुत कुछ कमाते रहते हैं, पर मुफ्त के माल का सदुपयोग कर सकना कदाचित् ही किसी से बन पड़ा हो ? भोजन तभी हजम होता है, जब पचाने के लिए कड़ी मेहनत की जाय । मेहनत की, ईमानदारी की कमाई ही फलती-फूलती देखी गयी है । यदि शरीर को व्यस्त एवं उत्साह भरी श्रमशीलता के सहारे साध लिया जाय, तो न दरिद्रता से पाला पड़ेगा और न किसी का मुँह ताकने की अनीति पर उतारू होने की आवश्यकता पड़ेगी ।

सम्पन्नता के अतिरिक्त दूसरा उद्यान शिक्षा का है, जिसे बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, एकाग्रता आदि के नाम से भी जाना जाता है । वकील, इंजीनियर, कलाकार, विद्वान, मनीषी आदि को देखकर अपना भी मन चलता है कि काश ! हमें भी ऐसा संयोग मिला होता, तो अधिक कमाने और अधिक सम्मान पाने की परिस्थिति हाथ लगी होती ? पर इस स्थिति से वंचित रहने का दोष परिस्थितियों या अमुक व्यक्तियों पर देना भी व्यर्थ है । यदि शिक्षा का महत्व समझा और उत्साह उभारा जा सके, तो बौद्धिक दृष्टि से समुन्नत बनने के लिए आवश्यक सुविधाएँ अनायास ही खिंचती चली आती हैं । संसार के अधिकांश मनीषी, प्रतिकूलताओं से जूझते हुए अपने लिए अनुकूलता उत्पन्न करते रहे हैं ।

इस लेखक को एक ऐसे साथी के सम्बन्ध में जानकारी है, जो एक वर्ष की जेल काटने के साथ-साथ लोहे के तसले पर कंकड़ को कलम बनाकर अंग्रेजी पढ़ता रहा । एक पुराने अखबार ने ही पुस्तकों की आवश्यकता पूरी कर दी । साथियों में ही ऐसे मिल गये, जो पढ़ने में प्रसन्नतापूर्वक सहायता करते रहे । एक वर्ष में ही इतनी सफलता अर्जित कर ली, जिसे देखकर लोगों को आश्चर्यचकित रहना पड़ा था । इसमें न जादू है न चमत्कार । भीतर का प्रसुप्त अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हो, और कुछ कर गुजरने की उमंगों से अपने को अनुप्राणित कर ले, तो समझना चाहिए कि सरस्वती उसके आँगन में नृत्य करने के लिए सहमत हो गईं । अन्य विभूतियों की तरह विद्या भी मनुष्य के आन्तरिक आकर्षण से अनायास ही खिंचती चली आती हैं । संसार के प्रगतिशील मनीषियों का इतिहास इस सन्दर्भ में पग-पग पर साक्षी देने के लिए विद्यमान है ।

तीसरा उद्यान है-अन्तःकरण क्षेत्र का, जिसमें भाव सम्वेदनाएँ मान सरोवर की तरह लहराती और गंगा भागीरथी की तरह उत्ताल तरंगों के साथ बहती हैं । मात्र निष्ठुरता ही एक ऐसी चट्टान है, जो इन उद्गमों का द्वार बन्द किये रहती है । यही है वह उल्लास उद्गम, जिसमें देवता रहते, महामानव विकसते और ऋषि-मनीषियों की चेतना निवास करती है । संकीर्ण स्वार्थपरता ही एक ऐसी बाधा है, जो मनुष्य को उदारमना बनकर उच्चस्तरीय सेवा-साधना के लिए अजस्र-अवसर उपलब्ध नहीं होने देती है ।

मनुष्य भटका हुआ देवता है । यदि वह अपने इस भटकाव से छुटकारा पा सके और महानता के राजमार्ग पर चलते रहने की विवेकशीलता अपना सके, तो उतने भर से ही स्वयं पार उतरने और अनेकों को पार उतारने की स्थिति अनायास ही बन सकती है । इसके लिए विद्वान या पहलवान होना आवश्यक नहीं । कबीर, दादू, रैदास, मीरा, शबरी आदि ने विद्वत्ता या सम्पन्नता के आधार पर वह श्रेय प्राप्त नहीं किया था, जिससे अब भी असंख्यकों को उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ उपलब्ध करते देखा जाता है ।

मनुष्य के पास शरीर, मन और अन्तःकरण यह तीन ऐसी खदानें हैं, जिनमें से इच्छानुसार मणि-मुक्तक खोद निकाले जा सकते हैं । बाहरी सहयोग भी सत्पात्रों को अनायास ही मिल जाता है । अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को सहज छात्रवृत्तियाँ मिल जाती है । मात्र कुपात्र भी कभी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


भाग्य पर, कभी ग्रह-नक्षत्रों पर और कभी जो भी सामने दीख पड़ते हैं, उसी पर दोष मढ़ते रहते हैं । गतिवानों को किसी ने रोका नहीं है । गंगा का प्रवाहमान संकल्प, उसे महासागर के मिलन तक पहुँचाये बिना बीच में कहीं रुका नहीं है ।

जिस-तिस से सहारा पाने की भी समय-कुसमय आवश्यकता पड़ सकती है । पर उसकी उपयोगिता उतनी ही स्वल्प है, जितनी संकट-ग्रस्तों को कठिनाई से उबारने में कभी-कभी उदार-चेताओं की सहानुभूति काम दे जाती है, उसी के सहारे जिन्दगी की लम्बी, किन्तु मंजिल को पार करना और बढ़ी-चढ़ी सफलताओं के अनुदान-वरदान प्रस्तुत कर सकना सम्भव नहीं होता ।

आज की अदृश्य; किन्तु दो महती समस्याओं में से एक यह है कि लोग परावलम्बन के अभ्यस्त हो चले हैं । दूसरों का, ऊटपटांग अनुकरण करते ही उनसे बन पड़ता है । निजी विवेक इतना तक नहीं जागता कि स्वतन्त्र-चिन्तन के सहारे जो उपयुक्त है, उसे अपनाने और जो अनुपयुक्त है, उसे बाहर फेंकने तक का साहस जुटा सकें । यह परावलम्बन यदि छोड़ते बन पड़े, तो मनुष्य की उपयुक्तता को अपनाने का साहस भीतर से ही उठ सकता है और ''एकला चलो रे'' का गीत गुनगुनाते हुए उपरोक्त तीनों क्षेत्रों में निहाल कर सकने वाली सम्पदा उपार्जित कर सकता है ।

आज की सबसे बड़ी, सबसे भयावह समस्या एक ही है-मानवी चेतना का परावलम्बन, अन्तः स्फुरणा का मूर्छाग्रस्त होना, औचित्य को समझ न पाना और कँटीली झाड़ियों में भटक जाना । अगले दिन इस स्थिति से उबरने के हैं । उज्ज्वल भविष्य की समस्त सम्भावनाएँ इसी आधार पर विनिर्मित होंगी । अगले दिनों लोग दीन-हीन, मनो-मलीन, उद्विग्न-विक्षिप्त स्थिति में रहना स्वीकार न करेंगे । सभी आत्मावलम्बी होंगे और किसी एक पुरुषार्थ को अपनाकर ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी बन सकने में पूरी तरह सफल होंगे । वातावरण मनुष्य को बनाता है, यह उक्ति गये-गुजरे लोगों पर ही लागू होती है । वास्तविकता यह है कि आत्मबल के धनी, अपनी संकल्प-शक्ति और प्रतिभा के सहारे अभीष्ट वातावरण बना सकने में पूरी तरह सफल होते हैं ।

## दुरुपयोग के रहते अभाव कैसे मिटे

विभूतियों को सही गलत तरीके से अर्जित कर लेना एक बात है और उनका सदुपयोग कर सकना सर्वथा दूसरी । सम्पदाओं के संग्रहकर्ता इस संसार में असंख्यों भरे पड़े हैं, पर जो उनका सही सदुपयोग कर पाये, वे ढूँढ़ने पर भी उँगलियों पर गिनने जितने ही मिलेंगे । इसे एक विडम्बना ही कह सकते हैं कि सफलताएँ अर्जित करने वाले को सदुपयोग नहीं आता और जो उसे सही प्रयोजनों में प्रयुक्त कर सकते हैं, वे पुरुषार्थ को अर्जन के स्तर तक पहुँचा सकने में समर्थ नहीं हो पाते । काश, प्रतिभा और सदाशयता का एक ही केन्द्र पर केन्द्रीकरण बन पड़ा होता, तो यह संसार कितना सुखी और समुन्नत दृष्टिगोचर होता ?

सदुपयोग न बन पड़े, तो इसमें भी किसी प्रकार सन्तोष किया जा सकता है, कि जो कमाया गया था, वह निरर्थक गुम गया । पर कष्ट तब होता है कि जिसके सदुपयोग से व्यक्ति और समाज का बहुत कुछ हित साधन हो सकता था, उसका ठीक उल्टा प्रयोग बन पड़ा और अनर्थ का वह सरंजाम जुटा, जिससे कम से कम बचा तो जा सकता था ।

समर्थ व्यक्ति ही उद्दण्डता अपनाते और अनाचार पर उतारू होते हैं । सम्पन्न लोग ही अपने वैभव को ऐसे प्रयोजनों में नियोजित करते हैं, जिनसे शोषण, उत्पीडन और पतन-पराभव का माहौल बने । संसार में छल और प्रपंच के जाल बिछाने वालों में प्रधानतया वही लोग रहे हैं, जिन्हें विद्वान समझा और बुद्धिमान कहा जाता है । युद्धोन्माद भड़काने और असंख्यों पर अगणित विपत्तियाँ ढाने वालों में सत्ताधारी ही अग्रणी रहे हैं । अच्छा होता यह मूर्धन्य कहे जाने वाले सफल न होते । उस सफलता को क्या कहा जाय, जो विभूतियों के रूप में जब किसी पर विषम ज्वर की तरह चढ़-दौड़ती है, तो उसे एक प्रकार का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उन्मादी बनाये बिना नहीं रहती । बदहवासी में लोग अध-पगलों जैसी उद्दण्डता अपनाने के लिए उतारू हो उठते हैं ।

गये-गुजरे लोग किसी का बहुत भला नहीं कर सकते । उनके लिए अपनी गाड़ी घसीटना ही भारी पड़ता है । वे सब तो दरिद्रता, दुर्बलता और अशिक्षा के दल-दल में धँसे रहने के कारण किसी की कुछ भलाई भी नहीं कर सकते । सेवा-सहायता का सुयोग उनसे बन ही नहीं पड़ता । इतने पर भी यह सन्तोष की बात है कि तथाकथित समर्थों की तरह वे अपनी चिनगारी को दावानल बनाकर, सुविस्तृत वन-प्रदेशों को जला डालने की दुष्टता तो नहीं कर पाते ।

लोग चिन्तन को दिग्भ्रान्त करने में जितना साहित्यकारों, कलाकारों, धर्मोपदेशकों, नेतृत्व करने वालों ने सर्वसाधारण को भड़काया है, उतना कदाचित् ही संसार के समस्त अशिक्षित कर सके हों । सम्पत्ति वालों ने, कलाकारों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों को अपने पैसे के बल पर खरीदा और कठपुतली की तरह नचाया है । कभी वैज्ञानिकों की स्वतन्त्र सत्ता रही होगी और वे लोकोपयोगी आविष्कार करते रहे होंगे, पर अब तो साधनों के सम्मुख उन्हें भी आत्मसमर्पण कर देना पड़ा है । वे वही सोचते-खोजते हैं जो उनके अन्नदाता उनसे चाहते हैं । किसी की बुद्धिमत्ता नहीं नहीं, ईमान खरीद लेने तक का दावा तथाकथित सुसम्पन्न करने लगे हैं । उन्हें देवताओं और भगवानों को भी अपने साधनों के बल पर कुछ भी करने के लिए विवश करने की जुर्रत होने लगी है ।

साधनों की कमी पड़ने से कठिनाई बढ़ने की बात समझ में आती है । पर यह तथ्य और भी अधिक गम्भीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए, कि उनका बाहुल्य होने पर भी यदि दुरुपयोग चल पड़े, तो विपत्तियाँ और भी अधिक बढ़ेंगी । चाकू न होने पर शाक तरकारी काटने का काम अन्य किसी उपकरण से भी लिया जा सकता है, पर कोई चमकीला, धारदार तथा कीमती चाकू पेट में घुस पड़े तो समझना चाहिए अभाव की तुलना में वह उपलब्धि और भी अधिक भारी पड़ी ।

पुरातन काल में साधन आज की अपेक्षा निश्चित ही बहुत कम थे । वैज्ञानिक आविष्कारों का तो तब सिलसिला तक नहीं चला था । इतने पर भी उन दिनों इतनी अधिक प्रसन्नता एवं सहकारिता का अनुभव होता था, जिसे देखते हुए वह समय सतयुग कहलाता था । मिल बाँट कर खाने की नीति अपनाये जाने पर, जो था उसी में भली प्रकार काम चल जाता था । न कहीं विग्रह था, न संकट । ऐसे वातावरण में अभावों की अनुभूति तो हो ही कैसे सकती है ? मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ अत्यन्त स्वल्प हैं । उन्हें कुछ ही घण्टे के साधारण श्रम से सुविधापूर्वक उपलब्ध किया जा सकता है । हैरान तो वह तृष्णा करती है, जिसके पीछे दुरुपयोग की ललक-लालसा जुड़ी होती है । यदि उस बौद्धिक विभ्रम से निपटा जा सके, तो गुजारे में कमी पड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, मनुष्य सहज ही इतना अधिक धन उपार्जन करता रह सकता है कि दूसरों की सहायता करने का भी सुयोग बनता रहे ।

अनाचार की अभिवृद्धि का एक ही कारण है-अनावश्यक एवं अतिशय मात्रा में सज्जा सजाना, विलासिता के साधन जुटाना एवं संग्रह की लिप्सा से लालायित रहना । आग में ईंधन पड़ने की तरह हविश बढ़ती ही जाती है । विलासिता और अहंता के व्यामोह में, जो कमाया गया था, वह कम पड़ता ही रहता है, साथ ही यह उत्सुकता चल पड़ती है कि किसी प्रकार अपनों या दूसरों के हक का जितना भी कुछ छीना-झपटा जा सके, उसमें कोताही न की जाय । इस प्रकार की ललक, संचय तो बहुत कर लेती है, पर उसका सदुपयोग सूझ नहीं पड़ता । भाव-सम्वेदना एवं चिन्तन में उत्कृष्टता न होने पर मात्र अनियन्त्रित उपयोग ही एक मात्र मार्ग रह जाता है, जिसकी गहरी खाई कुबेर जैसी सम्पदा और इन्द्र जैसी प्रभु ता पाकर भी पटती नहीं है । इस मनःस्थिति में सन्तोष कहाँ ? चैन कहाँ ? प्रसन्नता और प्रफुल्लता का अनुभव कर सकना तो कोसों पीछे रह जाता है ।

बीमारी का निदान बन पड़ने के उपरान्त ही सही उपचार का सुयोग बनता है । प्रस्तुत

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


समस्याओं का स्वरूप भले ही अनेक प्रकार का दीख पड़ता है, पर उसका मूल कारण एक ही है- बटोरना और बिखेरना । इस नीति को अपनाने वालों को खपते-पिसते तो निरन्तर रहना पड़ता है, पर ऐसा सुयोग नहीं बन पड़ता कि चल रहे पुरुषार्थ के सहारे अपना हित-साधन करते बन पड़े और दूसरों की सेवा-सहायता करने का, पुण्य-परमार्थ, यश-सम्मान भी हाथ लगता चले ।

अपव्ययी प्रकारान्तर से दुर्गुणी हुए बिना नहीं रहता । निजी आवश्यकताओं की पूर्ति तो थोड़े में ही सरलतापूर्वक सम्भव हो जाती है, फिर अतिरिक्त उत्पादन का क्या हो ? उदारता के अभाव में उसे अभावग्रस्तों के लिए लगा सकने का तो साहस ही नहीं उभरता, फिर निजी आवश्यकताओं के उपरान्त जो बचे, उसका आखिर हो क्या ? मात्र एक ही मार्ग रह जाता है दुरुपयोग । इस प्रकार निकृष्ट स्तर की स्वार्थ संकीर्णता में फँसे और अधिक उपार्जन करते रहने में सफल समझे जाने वाले, बड़े कहे जाने वाले लोगों की रीति-नीति साधारण जनों को भी प्रभावित करती है । वे ही वैसा ही अनुकरण करने के लिए लालायित रहने लगते हैं । योग्यता कम, परिश्रम कम, अपव्यय की अभिलाषा गगनचुम्बी, इसी माहौल में अनाचारों का टिड्डी दल दौड़ पड़ता है ओर संसार की हरीतिमा को सफाचट करके रख देता है ।

## साधनों से भी अधिक सद्गुणों की आवश्यकता

जहाँ भी आवश्यकताओं और अभावों की चर्चा होती है, वहाँ साधन-सम्वर्धन के लिए प्रयत्नरत होने का सुझाव दिया जाता हैं । इसमें कुछ अनुचित भी नहीं है । बढ़े हुए साधनों के सहारे अनेकों उपयोगी कार्य किये जा सकते हैं । इसलिए आम्रजन सौ हाथों से कमाने का उत्साह उभारते रहे हैं, पर उनके साथ ही हजार हाथों से खर्च करने का निर्देश भी देते रहे हैं । यहाँ दुरुपयोग कर गुजरने के लिए नहीं, वरन् सदाशयता भरे प्रगतिशील प्रयोजनों के लिए, उस उपार्जन को नियोजित करने के लिए, प्रोत्साहन दिया गया है । वैसा अनावश्यक संचय न किया जाय, जिसकी परिणति आमतौर से दुर्व्यसनों के लिए ही होती है, जो ईर्ष्या उभरती है और दूसरों को भी उसी अवांछनीय मार्ग पर चल पड़ने के लिए बरगलाती है ।

पारा पचता नहीं । वह शरीर के विभिन्न अंगों में से फूट-फूट कर निकलता है । इसी प्रकार अनावश्यक और बिना परिश्रम का कमाया हुआ अथवा निष्ठुरता की मानसिकता से विलासिता, जैसे दुष्प्रयोजनों में उड़ाया गया धन हर हालत में अनर्थ ही उत्पन्न करेगा । इसके दुष्परिणाम ही सामने आयेंगे । खुले तेजाब को, जलती आग को कोई कपड़ों में लपेट कर नहीं रखता । इसी प्रकार उत्पादन में लगी हुई पूँजी के अतिरिक्त, निजी खर्च के लिए, मौज-मजे उड़ाने के लिए कुछ भी संचय जमा नहीं किया जाना चाहिए, अन्यथा उससे मात्र गलत परम्पराएँ ही जन्म लेंगी । अमीरों की सन्तानें, आमतौर से आरामतलब, निकम्मी और दुर्गुणी ही देखी गयी हैं । जो कुछ परिश्रमपूर्वक ईमानदारी से नहीं कमाया गया है, जिसे उपयोगी प्रयोजन में लगाने से रोक कर अनियन्त्रित संकीर्ण स्वार्थपरता के लिए जमा कर रखा गया है, उसकी अवांछनीय प्रतिक्रिया न केवल संचयकर्ता को वरन् उससे किसी भी रूप से प्रभावित होने वाले को भी पतनोन्मुख प्रवृत्तियों में धकेले बिना न रहेंगी ।

दुरुपयोग की तरह निष्क्रियता-निरुत्साह भी अनिष्टकारक है । आलसी-प्रमादी ही आमतौर से दरिद्र पाये जाते हैं । उत्साह का अभाव ही उन्हें शिक्षा से वंचित रखता है । सभ्यता के अनुशासन को अभ्यास में न उतार पाने के कारण ही लोग अनगढ़ और पिछड़ी स्थिति में पड़े रहते हैं । यदि उनके इन दोष-दुर्गुणों को हटाया-घटाया जा सके, तो इतने भर से निजी प्रतिभा में नया उभार आ सकता है और उस दरिद्रता से छुटकारा मिल सकता है, जिसके कारण कि आये दिन अभावों, असन्तोषों और अपमानों का दबाव सहना पड़ता है ।

कहने को तो यों भी कहा जाता है कि अभावग्रस्त परिस्थितियों के कारण मनुष्य को त्रास

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहने पड़ते हैं पर गम्भीरता के साथ निरीक्षण-परीक्षण करने पर तो दूसरी बात सामने आती है । व्यक्तित्व की गहराई में घुसी हुई अवांछनीयताओं के कारण ही मनुष्य गयी-गुजरी परिस्थितियों में पड़ा रहता है । श्रमिकों में कितने ही अच्छी कमाई करते हुए भी देखे जाते हैं, पर उनकी आदत में नशेबाज, जुआ, आवारागर्दी जैसी कितनी ही बुरी आदतें जुड़ जाती हैं । जो कमाते हैं, उसे गवाँ देते हैं और अभावों की शिकायत करते हुए ही जिन्दगी गुजारते हैं । उनका परिवार भी इसी अनौचित्य की चक्की में पिसता और बरवाद होता रहता है । बात श्रमिकों तक ही सीमित नहीं है, वह धनिकों के ऊपर और भी अधिक स्पष्ट रूप से लागू होती है । दुरुपयोग उन्हें भी दुर्गुणी, दुर्व्यसनी बनाता ही है । अपव्यय के रहते किसी के पास खुशहाली रह सकेगी या उसके माध्यम से उपयोगी प्रगति सम्भव हो सकेगी, इसकी आशा- अपेक्षा ही नहीं करनी चाहिए ।

धनिकों की, विद्वानों की, समर्थों की, कलाकारों की अपने देश में कमी नहीं । देश में गरीब और अशिक्षितों का बाहुल्य होते हुए भी, प्रतिभावानों का इतना बड़ा वर्ग मौजूद है जो अपने साधनों को सर्वतोमुखी प्रगतिशीलता के लिए नियोजित कर सके, तो उतने भर से ही उत्थान, उत्कर्ष और अभ्युदय का वातावरण देखते-देखते बन सकता है । महापुरुषों का आँकलन दो ही आधारों पर होता है, एक तो उनने समर्थता अर्जन के लिए कठोर प्रयत्न किया है, दूसरा उन उपलब्धियों को उदारतापूर्वक प्रगतिशीलता के पक्षधर सत्प्रयोजनों के लिए नियोजित कर दिया होता है । यह दो कदम उठाने पर कोई भी महामानवों की पंक्ति में बैठ सकने की स्थिति में पहुँच जाता है । ऐसे लोगों का बाहुल्य जिस भी समुदाय में, क्षेत्र में होगा, वहाँ न सौहार्द्र की कमी रहेगी, न समर्थता की, न प्रगतिशीलता की ।

उदारता, प्रामाणिकता और परमार्थ परायणता, यह तीन ही ऐसे गुण हैं, जिनका उपार्जन-अभिवर्धन करने पर व्यक्ति न केवल अपने को सुखी-समुन्नत बना सकता है, वरन् उसके क्रिया-कलापों से सम्बद्ध समूचा परिकर ऊँचा उठता, आगे बढ़ता चला जाता है ।

अगली शताब्दी में उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ विनिर्मित करने के लिए क्या सम्पदा जुटानी पड़ेगी ? किस स्तर की समृद्धि जुटानी पड़ेगी ? किस प्रकार की योजना और विधि-व्यवस्था बनानी पड़ेगी ? इसका ऊहापोह करना समय रहते उचित भी है और आवश्यक भी । किन्तु इतना तो ध्यान रखना ही पड़ेगा कि लोगों की मानसिकता यदि घटिया रही, उनका दृष्टिकोण, चिन्तन एवं स्वभाव यदि गया-गुजरा रहा, दुरुपयोग का दौर यदि आज की तरह चलता रहा, तो जो इच्छित एवं उपयुक्त है, उसे उपलब्ध कर सकना शताब्दियों-सहस्राब्दियों में भी सम्भव न हो सकेगा ।

साधनों का महत्व तो अवश्य है, पर इतना नहीं कि उन्हें व्यक्तित्व के स्तर पर से ऊँचा माना जा सके । गरीब देशों के लोग सर्वथा निठल्ले-निकम्मे ही रहते हों, ऐसी बात भी नहीं है । इन्हें बहुत कुछ पाने की इच्छा-उत्सुकता न रहती हो, सो बात भी नहीं है । शरीर संरचना भी उनकी एक जैसी ही होती है । कई तो उनमें से शिक्षित और समर्थ भी रहते हैं, इतने पर भी गयी-गुजरी परिस्थितियाँ उनका पीछा नहीं छोड़तीं । अभावों, कष्टों, विद्रोहों और संकटों का माहोल कहीं न कहीं से आ ही धमकता है । व्यक्तित्व को गरिमा सम्पन्न बना सकने में अड़ा रहने वाला अवरोध ही प्रधान इसका कारण होता है, जिसके कारण या तो वे अभीष्ट अर्जन-उत्पादन कर ही नहीं पाते, या फिर से उसे स्वभावगत अस्त-व्यस्तता के कारण ऐसे ही गँवा-उड़ा देते हैं ।

इसके ठीक विपरीत यह भी पाया गया है कि साधु, सज्जन, सद्गुणी, सेवा-भावी लोग, नगण्य साधनों से सदाशयता की रीति-नीति अपनाये हुए हँसता-हँसाता और खिलता-खिलाता जीवन जी लेते हैं । उन्हीं परिस्थितियों में न केवल स्वयं को, वरन् अन्य पिछड़े हुओं को भी ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में समर्थ होते हैं । ऐसे ही आदर्शवादी, शालीनता सम्पन्नों का अपना पुरातन इतिहास जीवन्त स्थिति में रहा है । वह साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ, परिव्राजकों का समुदाय, न केवल अपने देशवासियों का स्तर असाधारण रूप से ऊँचा उठाने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


में समर्थ हुआ था, वरन् उन्हीं मुट्ठी भर लोगों ने देश-देशान्तरों में प्रगतिशीलता का, सर्वतोमुखी सुसम्पन्नता का, सुसंस्कारिता का वातावरण बनाकर रख दिया था । गरीबी किसी के मार्ग में बाधक नहीं होती । मात्र कुपात्रता ही उसकी आड़ में छिपकर सर्वत्र गन्दगी फैलाती है और पतन-पराभव का माहौल बनाती रहती है ।

## उदारता अपनायी ही जाय

शरीर कितना ही सुन्दर, सुसज्जित क्यों न हो, उसकी प्रतिष्ठा-उपयोगिता तभी है, जब उसमें जीव-चेतना विद्यमान हो । निष्प्राण हो जाने की स्थिति में तो, तथाकथित प्रेम प्रकट करने वाले भी उसे हटा देने का जुगाड़ बनाने में लग जाते हैं । सज्जनता की शोभा, उपयोगिता, आवश्यकता कितनी ही क्यों न हो, पर वह श्रेष्ठस्तर की तभी मानी जायेगी, जब उसके साथ शालीनता की प्राणचेतना का सुनिश्चित समावेश हो ।

सम्पत्ति में सुविधा-साधन बढ़ या मिल सकते हैं । किन्तु यदि उनका सदुपयोग न बन पड़े, तो वह दुधारी तलवार बन जाते हैं । वह रक्षा भी कर सकती है और अपनी तथा दूसरों की हत्या करने के काम भी आ सकती है । पिछले दिनों भूल यही होती रही कि एकमात्र सम्पत्ति के ही गुण गाये जाते रहे । यहाँ तक समझा जाता रहा है कि उसके सहारे व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी बढ़ सकती है । यह मान्यता भी आदि से अन्त तक भ्रान्तियों से भरी हुई है । यदि ऐसा ही रहा होता, तो धन-सम्पन्नों के द्वारा लोकमंगल के श्रेष्ठ प्रयास बन पड़े होते और पिछड़ेपन का नाम निशान भी शेष कहीं न रहा होता । यदि सर्वसाधारण को पिछड़ेपन से, अभावग्रस्तता से उबारने से संचित, सम्पदाओं को खर्च किया जा सका होता, तो संसार का नक्शा ही बदल गया होता ।

संसार में इतनी धन सम्पदा है कि उसे मिल बाँटकर खाने पर सभी लोग सुख-शान्ति से रह सके और सन्तोषपूर्वक सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त करते रहें । विलास, संचय और अहंकार के प्रदर्शन में उसका उपयोग होने लगे तो समझना चाहिए कि वह निरर्थक ही नहीं गई वरन् उसने अनर्थ विनिर्मित करने के लिए अवांछनीय वातावरण भी बनाकर रख दिया ।

हाथी पर अंकुश न लगे, तो वह खेत-खलिहानों को रौंदता, पेड़-पौधों को उखाड़ता और झोपड़ों को धराशायी करता चला जायेगा । उसकी चपेट में जो प्राणी आ जायेंगे, उनकी भी खैर नहीं । सम्पदा भी उन्मत्त हाथी की तरह है, जिस पर उदारता का अंकुश आवश्यक है । यदि झरने के पानी का सीधे रास्ते से निकलना रोक दिया गया, तो उसका परिणाम बाढ़ के रूप में भयंकरता दिखाने ही लगेगा ।

प्रस्तुत वातावरण में एक ही सबसे बड़ा अनर्थ दीख पड़ता है, कि हर कोई अपने उपार्जन, वैभव को मात्र अपने लिए ही खर्च करना चाहता है वह अपनापन भी विलासिता और अहंकारी ठाट-बाट प्रदर्शन तक ही सीमित है । यह प्रचलन इसी प्रकार बना रहा, तो इसका दुष्परिणाम अब से भी अधिक भयंकर रूप में अगले दिनों दृष्टिगोचर होगा । एक से एक बढ़कर अनर्थ सँजोये जाते रहेंगे । पेट की एक सीमा है, उसे पूरा कर लेने पर भी अनावश्यक आहार ढूँढ़ते चले जाने पर वह विग्रह उत्पन्न किये बिना रहेगा नहीं । उल्टी, दस्त, उदरशूल जैसी अवांछनीय परिस्थितियाँ ही उत्पन्न होंगी । यह मोटी बात समझी जा सके, तो फिर एक ही नीति-निर्धारण शेष बच जाता है, कि नीतिपूर्वक कमाया कितना ही क्यों न जाय, पर उसका उपयोग सत्प्रवृत्ति के मार्ग में आगे बढ़ने में ही किया जाय

मात्र पैसा ही नहीं, शक्ति-सूत्रों में समर्थता योग्यता, शिक्षा, कुशलता आदि अन्य विभूतियाँ भी आती हैं । उन्हें भी अपरिग्रही नीतिवानों की तरह पतन घटाने और उत्कर्ष को बढ़ाने में उसी प्रकार नियोजित किया जा सकता है ।

भौतिक क्षेत्र की त्रिविधि सम्पदाओं को प्रगति का माध्यम कहा गया है । समृद्धि, समर्थता और कुशलता के आधार पर व्यक्ति या समाज के सौभाग्य को सराहा जाता है । इसमें कोई हर्ज भी नहीं है, व शर्तें कि उन पर नैतिकता, सामाजिकता और सद्भावना का अंकुश ढीला न होने पाये ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति कमाये कुछ भी, पर ध्यान इतना अवश्य रखें कि उसमें अनीति का, मुफ्तखोरी का समावेश तो नहीं हो रहा है ? उस उपार्जन को भी निजी स्वामित्व के अन्तर्गत ही न समझ लिया जाय । ध्यान इस बात का भी रखा जाय कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसकी आद्योपान्त प्रगति जन सहयोग के आधार पर ही सम्भव हुई है । जिससे पाया है, उसे चुकाया भी जाना चाहिए, अन्यथा लुटेरेपन की ही तूती बोलने लगेगी । तब ऋण चुकाने, प्रत्युपकार करने या कृतज्ञता जताने का द्वार ही बन्द हो जायेगा । ऐसी दशा में संसार में दो ही वर्ग शेष रहेंगे–एक शोषक, दूसरा शोषित । तब उन स्थापनाओं और विधाओं के लिए कोई स्थान ही न रह जायेगा, जिनमें सहकारिता, सहभागिता और समानता की संस्थापना पर जोर दिया गया है ।

यदि जीवन में भाव-सम्वेदना एवं वैचारिक उदारता के लिए स्थान न रह गया, तो वह अराजकता ही दीख पड़ने लगेगी, जिसमें समर्थों के लिए पीसना और असमर्थों के लिए पिसना ही नियति है । ऐसा मत्स्य न्याय ही यदि मनुष्यों के लिए भी परम्परा बन जाय, तो फिर उस श्रेष्ठता के लिए कोई गुंजाइश ही न रहेगी, जिसके कारण मनुष्य को देवत्व का उत्तराधिकारी एवं प्राणी जगत की सर्वोच्च महत्ता का अधिकारी माना गया है । ''कमाने वाला ही खाये'' की नीति को यदि मान्यता मिल गयी तो संसार के अबोधों, अविकसितों, अपंगो, असहायों, असमर्थों को जीवित रहने का कोई अधिकार हीन रह जायेगा । उस स्थिति में अर्थशास्त्र के अनुसार मनुष्यों में से प्रायः आधों को अपने जीवन का अन्त करना होगा । तब बूढ़ों को जीवित रहने की हिमायत किस तर्क के आधार पर की जा सकेगी ? तब फिर इस संसार में भेड़ियों को भेड़ियों द्वारा ही फाड़-चीर कर खा जाने जैसे दृश्य सर्वत्र उपस्थित होंगे । तब कैसा वीभत्स होगा संसार ?

घर के समर्थ कमाते हैं और उसी कमाई से परिवार के सभी सदस्य गुजारा करते हैं । यह जिम्मेदारी भी है, परम्परा भी और उदारता भी । सह वितरण यही है । पुण्य-परमार्थ भी इसी को कहते हैं । मानवीय गरिमा की सराहना इससे कम में करते बन ही नहीं पड़ती । सम्पत्ति की सार्थकता भी इसी में है कि उसे मिलजुल कर सभी लोग काम में लायें । गिरों को उठाने और उठों को आगे बढ़ाने में इसी प्रक्रिया को अपनाने से काम चलता है ।

भारतीय धर्म परम्परा में गोग्रास, दैनिक पंच यज्ञ, मुसलमान धर्म में जकात, सिख धर्म में कडा-प्रसाद जैसे माध्यमों से दैनिक अनुदान निकालने की परम्परा है । समय भी सम्पदा है और साधनों को भी सम्पत्ति कहते हैं । दोनों ही वैभव ऐसे हैं, जो हर किसी के पास न्यूनाधिक मात्रा में होते ही हैं । यदि खुशहाली हो तब तो कहना ही क्या, पर यदि तंगी और व्यस्तता के बीच भी रहना पड़ता हो, तो भी आवश्यक सुविधा-साधनों में कटौती करके भी परमार्थ प्रयोजनों के लिए, उनका एक अंश नियमित रूप से निकालते ही रहना चाहिए । इसमें कजूंसी-कृपणता बरतना एक प्रकार से मानवी श्रेष्ठता को ही झुठलाना है ।

दान धर्म भी है और अधर्म भी । हथियार से पुण्य भी बन पड़ता है और पाप भी । दानशीलता को यदि भाव-सम्वेदनाओं और विचार परिष्कार में लगाया जाय, तो ही समझना चाहिए कि युग धर्म के निर्वाह और उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में उस सदाशयता का सही नियोजन हो सका । अन्यथा धूर्तों द्वारा, मूर्ख आये दिन जिस-तिस बहाने ठगे ही जाते रहते हैं और यह बहकाया जाता रहता है कि यह नियोजन पुण्य के लिए किया गया है । स्मरण रहे, उज्ज्वल भविष्य निर्माण की महती योजना, मन-मस्तिष्क में आदर्शवादी भाव-सम्वेदनाओं का उभार उपजाये बिना और किसी प्रकार सफल नहीं ले सकेगी ।

## मनःस्थिति बदलें तो परिस्थिति बदले

संसार में चिरकाल से दो प्रचण्ड धाराओं का संघर्ष होता चला आया है । इसमें से एक की मान्यता है कि अपेक्षित साधनों की बहुलता से ही प्रसन्नता और प्रगति सम्भव है । इसके विपरीत दूसरी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


विचारधारा यह है कि मन:स्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदात्री है । उसके आधार पर ही साधनों का आवश्यक उपार्जन और सत्प्रयोजनों के लिए सदुपयोग बन पड़ता है । वह न हो, तो इच्छित वस्तु पर्याप्त मात्रा में रहने पर भी अभाव और असन्तोष पनपता दीख पड़ता है ।

एक विचारधारा कहती है कि यदि मन को साध-सँभाल लिया जाय, तो निर्वाह के आवश्यक साधनों में कमी-कभी नहीं पड़ सकती । कदाचित् पड़े भी, तो उस अभाव के साथ संयम, सहानुभूति, सन्तोष जैसे सद्गुणों का समावेश कर लेने पर जो है उतने में ही भली प्रकार काम चल सकता है । कोई अभाव नहीं अखरता । दूसरी का कहना है कि जितने अधिक साधन, उतना अधिक सुख । समर्थता और सम्पन्नता होने पर दूसरे दुर्बलों के उपार्जन अधिकार को भी हड़प कर मन चाहा मौज-मजा किया जा सकता है ।

दोनों के अपने-अपने तर्क, आधार और प्रतिपादन हैं । प्रयोग भी दोनों का ही चिरकाल से होता चला आया है, पर अधिकांश लोग अपनी-अपनी पृथक मान्यताएँ बनाये हुए चले आ रहे हैं । ऐसा सुयोग नहीं आया कि सभी लोग कोई सर्वसम्मत मान्यता अपना सकें । अपने-अपने पक्ष के प्रति हठपूर्ण रवैया अपनाने के कारण, उनके बीच विग्रह भी खड़े होते रहते हैं । इसी को देवासुर संग्राम के नाम से जाना जाता है । पदार्थ ही सब कुछ है-यह मान्यता दैत्य पक्ष की है । वह भावनाओं को भ्रान्ति और प्रत्यक्ष को प्रामाणिक मानता है । देव पक्ष, भावनाओं को प्रधान और पदार्थ को गौण मानता है । दर्शन की पृष्ठभूमि पर इसी को भौतिकता और आध्यात्मिकता का नाम दिया जाता है । हठवाद में दोनों ही पक्षों को अपनी ही बात पर अड़े रहने के लिए भड़काया है ।

इस द्वन्द्व के चलते देवता तो किसी प्रकार सन्तुष्ट भी हो सके और परस्पर एक सीमा तक ताल-मेल भी बिठा सके, पर दैत्य सर्वदा विग्रह में ही उलझे रह गये । वे न केवल देव पक्ष से जूझते रहे, वरन् आपा-धापी, छीना-झपटी में उन्हें अपने स्तर के लोगों से भी आये दिन निपटना पड़ा । अनीति के आधार पर हस्तगत हुई उपलब्धियाँ अपनी बिरादरी वालो को भी चैन से नहीं बैठने देती । उनके बीच लूट में अधिक हिस्सा पाने की प्रवृत्ति निरन्तर विग्रह भड़काती रहती है ।

अच्छा होता-कहीं से ऐसी समझ उपज सकी होती, कि आवश्यकता के अनुरूप साधन इस सुविस्तृत प्रकृति कलेवर में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं, तब उन्हें मिल-बाँटकर काम चलाने की समझदारी क्यों न अपनाई जाय ? पर दुर्बुद्धि न जाने क्यों तथाकथित समझदारों के सिर पर ताबड़-तोड़ आक्रमण करती है फलत: अभावग्रस्त समझे जाने वालों की तुलना में समर्थ, सशक्त ही अधिक घाटे में रहते हैं । इतना ही नहीं, जब वे उन्मादी हाथियों की तरह लड़ते हैं, तो अपने क्षेत्र की सुविस्तृत हरियाली को रौंद-दबोच कर तोड़-मरोड़ कर रख देते हैं । स्थिति ऐसी बना देते हैं, जिसमें वे स्वयं अपयश के भागी बनते हैं, आत्म-प्रताड़ना की आग में जलते हैं और साथ ही वातावरण को विपन्न बनाकर रख देते हैं । न चैन से बैठते हैं और न दूसरों को बैठने देते हैं ।

मिल-बाँटकर खाने योग्य सुविधा साधन, प्रकृति सदा से उत्पन्न करती रही है और भविष्य में भी उसकी यही रीति-नीति बनी रहेगी । पर उस हविश को क्यों किया जाय, जो संसार भर का सब कुछ अपने हाथ ही छोटे से टोकरे में बटोर लेने के लिए बेतरह आकुल रहती है, अधिक और अधिक और अधिक की रट ही लगाये रहती है । यद्यपि यह चन्द्रमा, आकाश से उतर कर उसी के घरौंदे में खेलते रहने के लिए न कभी तैयार हुआ और न कभी भविष्य में वैसा करने के लिए सहमत होते दीख पड़ता है । ऐसी दशा में अबोध बालक कभी स्वयं हैरान हो, कभी घरवालों पर खीझे और कभी आसमान तक लातें चलाकर चन्द्रमा को धराशायी बनाने के लिए रौद्र रूप धारण करे, तो क्या किया जाय ?

यह समझने समझाने के अतिरिक्त और किसी प्रकार बात बनती ही नहीं, कि अपनी सोच बदल ली जाय, तो अत्यधिक व्यथित-व्याकुल किये रहने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वाली समस्या चुटकी बजाने की तरह मिनटों में हल हो सकती है । रंगीन चश्मा पहन लेने पर सारा संसार रंगीला दीख पड़े, तो उस गड़बड़ी से एक ही प्रकार निपटा जा सकता है, कि चश्मा उतार दिया जाय और जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में देखकर सन्तोष कर लिया जाय । अपने निजी शरीर से लेकर, संसार भर में बिखरे अनेकानेक प्राणियों और पदार्थों तक प्रकृति का सुविस्तृत वैभव बिखरा पड़ा है, इसमें से अपना अधिकार मात्र उतने पर है, जितने से कि निर्वाह क्रम चलता रहे । इसके अतिरिक्त और जो कुछ बचा रहता है, वह इस सृष्टि के निवासी व अन्यान्य जड़-चेतन घटकों के लिए है । सब अपनी-अपनी भागीदारी बरतें और इतने से ही सन्तुष्ट रहें, तो अच्छे बच्चों की तरह सभी अपने अरमान लेकर ''हँसते-हँसाते, खेलते-खिलाते'' रह सकते हैं । पर जब वे एक दूसरे का हक छीनने के लिए आक्रामक रह उद्दण्डता अपनाते हैं, तो पारस्परिक सद्भावना तो गँवाते ही हैं, साथ उस हुड़दंग के लिए अभिभावकों की भी खाते हैं । ऐसे बुरे बच्चे कम से कम हमें तो नहीं होना चाहिए, जिनके सम्बन्ध में सर्वत्र समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी जैसे व्यवहार की अपेक्षा की जाती है, साथ ही उपलब्धियों के न्यायोचित वितरण, विभाजन एवं सदुपयोग की आशा की जाती है ।

सभ्यता अनुशासन के परिपालन में है । अपने को नीतिमत्ता से अनुबन्धित किये रहें और दूसरों के साथ उदार व्यवहार बरतें, यही है मानवीय गरिमा के साथ जुड़ा हुआ शालीन शिष्टाचार । इसके अन्तर्गत यह लोकाचार भी आता है कि घर के बालकों, वृद्धों, असमर्थों की व्यवस्था पहले बनाई जाय, इसके उपरान्त अपनी ललक-लिप्सा को आगे बढ़ने दिया जाय । जिसे अपना ही पेट सब कुछ दीखता है, वे उदारता बरतना तो दूर, बुरे लोगों की तरह निष्ठुरता बरतने में भी नहीं चूकते । ऐसों को दूसरे का अधिकार हरण करते हुए लज्जा, संकोच, भय जैसा भी कुछ अनुभव नहीं होता । ऐसी जड़ता अपनाने पर तो किसी को मानवी गरिमा के क्षेत्र में भी प्रवेश करने का अवसर कभी नहीं मिलता ।

इन दिनों दैत्य की तूती हर क्षेत्र में बोलती है । हर किसी को खाने की नहीं, कुतरने, बरबाद करने की भी सनक चढ़ी है । साधनों की आपा-धापी में, पौराणिक ''सुन्द-उपसुन्द'' की तरह पारस्परिक मारकाट मची है । यदि यह गर्हित दृष्टिकोण बदला जा सका होता और पिछड़ों को प्रमुखता देते हुए उनका हक उन्हें स्वेच्छापूर्वक लौटा दिया गया होता, तो अपनी इस दुनिया में कितनी प्रसन्नता और सुसम्पन्नता बिखरी पड़ी होती ? आत्मानुशासन रखा गया होता, संयम बरता जाता और अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी करके काम चला लिया जाता, तो इसका प्रभाव सार्वजनीन होता । मनुष्य सत्प्रवृत्ति-सम्वर्धन में अपनी बचत को, विभूतियों को नियोजित करने के निर्णय पर पहुँचता और ऐसे सृजन में जिसे सतयुगी या स्वर्गीय करने में किसी को कोई आपत्ति न होती ।

## परिवर्तन का आधार तो ढूँढ़ें

स्वर्ग और नरक की दीवारें आपस में जुड़ी हुई हैं । घर वही है, पर दरवाजे से घुसने पर गन्दगी से भरी-पुरी नरक वाली कोठरी में पहुँचना पड़ता है, किन्तु यदि दूसरे दरवाजे से होते हुए भीतर जाया जा सके तो स्वच्छता, सज्जा और सुगन्धि से भरा-पूरा वातावरण ही दीख पड़ेगा ।

हम जब झगड़ने, हड़पने, निगलने ओर समेटने-भरने पर उतारू होते हैं, तो हाथों-हाथ अनीतिजन्य आत्म-प्रताड़ना सहनी पड़ती है । बाहर की भर्त्सना और प्रताड़ना को तो सहा भी जा सकता है, पर जब अन्तरात्मा कचोटती है तब उसे सहन करना कठिन पड़ता है । पैर में लगी चोट और हाथ में लगी लाठी उतनी असह्य नहीं होती, जितना कि अपेन्डिसाइटिस, यों हृदय-घात जन्य दर्द से आदमी बेतरह तिलमिला जाता है और प्राणों पर आ बीतती है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मानवी गरिमा को खोकर मनुष्य से ऐसा कुछ बन ही नहीं पड़ता, जिस पर वह सन्तोष या गर्व कर सके, प्रसन्नता व्यक्त कर सके और समुदाय के सम्मुख सिर ऊँचा उठाकर चल सके । बाहर की वर्षा से छाता लगाकर भी बचा जा सकता है, पर जब भीतर से लानत बरसती है तो उससे कैसे बचा जाय ? धरती पर नर-कीटक, नर-पशु और नर-पिशाच भी भ्रमण करते रहते हैं । देखने में उनकी भी आकृति मनुष्य जैसी ही होती है । अन्तर तो आदतों को स्वभाव बन कर जमी हुई प्रकृति को देखकर ही किया जा सकता है ।

हेय स्तर में गिने जाने वाले पशु-पक्षियों को कोई नीति मर्यादा मान्य नहीं होती । गिद्ध, कौए और सियार कुछ भी भक्ष्य अभक्ष्य नि:संकोच भाव से खाते रहते हैं । कुत्ते, गधे जैसे पशुओं को न तो पत्नी और भगिनी, पुत्री के बीच अन्तर करना आता है और न बीच चौराहे पर यौनाचार करने में कुछ अनुपयुक्त लगता है । इन प्राणियों को कहीं मल-मूत्र त्यागने में भी हिचक नहीं लगती । वे किसी का भी खेत खा सकते हैं । छोटे जल-जन्तुओं को बगुले बिना कोई दयाभाव दर्शाये नि:संकोच भाव से निगलते रहते हैं । यह एक निराली दुनिया है और उसकी अपनी सीमाएँ हैं, पर मनुष्य तो कुछ विशेष उपलब्धियाँ लेकर जन्मा है । उसकी गरिमा को सृष्टि में सर्वोच्च ठहराया गया है । ऐसी दशा में उसके कन्धों पर कुछ विशेष जिम्मेदारियाँ भी आती हैं और कड़ी-मर्यादाओं का परिपालन एवं वर्जनाओं का अनुशासन भी आवश्यक हो जाता है ।

किसी के पास तलवार होने का तात्पर्य यह तो नहीं कि वह कहीं भी कत्लेआम कर डाले ? अतिरिक्त बुद्धिमत्ता का तात्पर्य यह तो नहीं हो सकता कि इसके सहारे संसार की सुव्यवस्था को बरवाद करके रख दे ? अनीति बरतने के लिए उसे स्वेच्छाचार का लाइसेंस मिला हुआ नहीं है । इस स्तर की चतुरता अपना लेने का प्रतिफल यह तो नहीं होना चाहिए कि वह आत्मा और परमात्मा की आँखों में धूल झोंककर, अहंकार से उन्मत्त होकर, अपने क्रिया-कलापों से वातावरण को उद्वेगों और अनाचारों से भर दे ?

दृष्टि पसार कर जिस ओर भी देखा जाय, उसी ओर समस्याओं, उलझनों, विडम्बनाओं, विपत्तियों, विग्रहों, विद्रोहों और संकटों के घटाटोप उमड़ते-उभरते दिखाई देते हैं । जिस प्रकृति का पयपान करके, जिसकी गोद में हम सब क्रीड़ा-कल्लोल कर रहे थे, आश्चर्य है कि हम उसी की गर्दन घोंट डालने के लिए उतारू हो गये ? जहाँ से हम अन्न-जल और वनस्पति प्राप्त करके जीवन धारण किये रहा करते थे, वन, सम्पदा जिसके साथ हमारा सम्बन्ध सहोदर भाई जैसा है, यदि उसे इसी प्रकार नष्ट करते चले गये, तो अर्धांग, पक्षाघात पीड़ित की तरह हमारा जीवन भी स्थिर रह न सकेगा । भूगर्भ का असीम उत्खनन उसे बाँझ बनाकर छोड़ेगा । जलाशयों की सम्पदा को मारक तत्वों से भरते कारखाने, पीने योग्य पानी छोड़ेंगे भी या नहीं ? आकाश-वायुमण्डल जिस प्रकार प्रदूषण से, विकिरण से, कोलाहल से, निरन्तर भरता चला जा रहा है, उससे पृथ्वी का रक्षा-कवच फट रहा है और बढ़ा हुआ तापमान हिम क्षेत्रों को पिघलाकर समुद्र में ऐसी बाढ़ लाने का ताना-बाना बुन रहा है, जिससे जितना थल भाग अभी बचा है, उसका अधिकांश भाग उस बाढ़ में समा जायेगा ।

बिच्छू के बारे में सुना जाता है कि उसके बच्चे माँ का पेट खा-पीकर तब बाहर निकलते हैं । लगता है मनुष्य ने कहीं बिच्छू की रीति-नीति तो नहीं अपना ली है, जिससे वह उस प्रकृति का सर्वनाश करके रहे, जो उसके जीवन धारण करने का प्रमुख आधार है । खीझी हुई प्रकृति क्या बदला ले सकती है ? अणु उपकरणों के बदले क्या प्रकृति ही सर्वनाश, महाप्रलय सामने लाकर खड़ी कर सकती है ? यह सब सोचने की मानो किसी को फुरसत नहीं ही है ।

मनुष्य का मनुष्य के प्रति व्यवहार निराशाजनक स्तर तक नीचे गिर गया है । उसने अपनी सत्ता और महत्ता को किस प्रकार फुलझड़ी की तरह जलाने का कौतुक अपना लिया है, उससे प्रतीत होता है कि इस सुहावनी धरती पर रहते हुए भी हम सब प्रेत-पिशाचों की तरह एक दूसरे को काटने, गलाने, जलाने पर उतारू हैं । इसके प्रतिफल स्वरूप परस्पर सहयोग की बात बनना तो दूर, हम

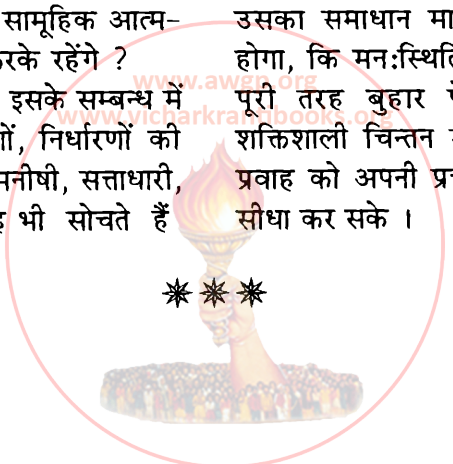
# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अविश्वास के ऐसे वातावरण में रह रहे हैं, जिसमें अपनी छाया तक से डर लगता है । विश्वास और विश्वासघात दोनों परस्पर हमजोली बनकर चल रहे हैं । असंयम के अतिवाद ने शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक दूरदर्शिता को मटिया-मेट करके रख दिया है । धन की इतनी बड़ी भूमिका बतायी है कि उसे पाने के लिए कोई किसी के साथ कितनी ही बढ़ी-चढ़ी दुष्टता कर बैठे, तो उसे कम ही समझना चाहिए । ऐसे अभ्यस्त अनाचार के बीच कोई शरीर, मस्तिष्क, परिवार, समाज स्वयं समुन्नत रह सकेगा, इसकी आशा ही छोड़ देनी चाहिए, छूट भी गई है ।

समय को अत्यन्त दुरूह समझा जा रहा है और मान्यता बनती जा रही है कि यह बढ़ते हुए कदम मानवी महत्ता ही नहीं, सत्ता का भी समापन करके रहेंगे । क्या हम सब अगले दिनों सामूहिक आत्म-हत्या का यह विनाश आयोजित करके रहेंगे ?

स्थिति को कैसे बदला जाय ? इसके सम्बन्ध में तरह-तरह के उत्पादनों, उपकरणों, निर्धारणों की बात सोची जाती है । वैज्ञानिक, मनीषी, सत्ताधारी, शक्तिशाली अपने-अपने ढंग से यह भी सोचते हैं कि प्रस्तुत अनर्थ को यदि सुसंरचना में बदला जा सके, तो इसकी तैयारी के लिए बड़े साधन, बड़े-बड़े आधार खड़े किए जाने चाहिए । ऐसी योजनाएँ भी आये दिन सुनने को मिलती हैं और जतायी-बतायी भी जाती हैं कि अधिक साधन सम्पन्न संसार विनिर्मित करने के लिए, बड़े लोग कुछ बड़े कदम उठाने, बड़े विधान बनाने जा रहे हैं । इतने पर भी निराशा को हटाने में राई-रत्ती भी सफलता मिलती दीख नहीं पड़ती, क्योंकि वस्तुतः मनःस्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदात्री है । यदि मानसिकता को आदर्शवादी उत्कृष्टता के साथ न जोड़ा जा सका, तो स्थिति सुधरेगी, सुलझेगी नहीं, वरन् विपत्तियाँ और भी नजदीक आती, और भी रौद्र रूप धारण करती चली जाँयेंगी । समस्याओं का समाधान भले ही आज हो या आज से हजार वर्ष बाद, पर उसका समाधान मात्र एक ही उपाय से सम्भव होगा, कि मनःस्थिति में संव्याप्त अवांछनीयता को पूरी तरह बुहार फेंका जाय और ऐसा कुछ शक्तिशाली चिन्तन उभारा जाय, जो प्रस्तुत उलटे प्रवाह को अपनी प्रचण्ड शक्ति से सहारे उलटकर सीधा कर सके ।



# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# अपना उद्धार आप करें

## आत्मा को जानिए

महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी समस्त सम्पत्ति को दोनों पत्नियों में बराबर बाँट कर गृह-त्याग के लिए उद्यत हुए । मैत्रेयी को सन्तोष नहीं हुआ और आखिर वह कह ही बैठी ''भगवान ! क्या मैं इस सबको लेकर जीवन-मुक्ति का लाभ प्राप्त कर सकूँगी ?'' ''क्या, मैं अमर बन जाऊँगी ? आत्म सन्तोष प्राप्त कर सकूँगी ?'' महर्षि ने अपने चिन्तन का क्रम तोड़ते हुए कहा- ''नहीं, ऐसा नहीं हो सकेगा । साधन-सुविधा सम्पन्न सुखी जीवन जैसा तुम्हारा अब तक रहा इसी तरह आगे भी चलता रहेगा, अन्य सांसारिक लोगों की तरह ही तुम भी अपना जीवन सुख-सुविधा के साथ बिता सकोगी'' ।

मैत्रेयी का असन्तोष दूर नहीं हुआ और वह बोली ''**येनाह नामृता स्याम किमहं तेन कुर्याम्** ।'' 'जिससे मुझे अमृत्व प्राप्त न हो उसे लेकर मैं क्या करूँगी ? देव ! मुझे यह साधन सुख सुविधा सम्पन्न सांसारिक जीवन नहीं चाहिए ।''

''तो फिर तुम्हें क्या चाहिए, मैत्रेयी ?'' महर्षि ने पूछा । और मैत्रेयी की आँखों से अश्रुधार वह निकली । उसका हृदय सम्पूर्ण भाव से उमड़ पड़ा उस दिन । मैत्रेयी ने महर्षि के चरणों में सिर झुकाते हुए कहा:-

''**असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्त्माऽमृंतगमय आविरावीर्मा एधि रुद्र यत्ते दक्षिण मुखं तेन मां पाहि नित्यम्** ।''

'' हे प्रभो मुझे असत्य से सत्य की ओर ले जाओ, अन्धकार से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमृत्यु की ओर गति प्रदान करो, देव ! हे प्रकाश ! पाप चिर प्रकाश बनकर मेरे जीवन में प्रकाशित हो उठें । रुद्र बनकर मेरे समस्त पापरूपी अन्धकार का नाश कर दें । अपने प्रेम स्वरूप आनन्दमय दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें, जिसकी छाया में मैं चिरकाल तक परित्राण प्राप्त करूँ ।''

मैत्रेयी ने महर्षि के सान्निध्य में सुख समृद्धि सम्पन्नता का जीवन बिताया था किन्तु उसके अन्तर का यह प्रश्न अभी तक अधूरा था । उसका समाधान अभी तक नहीं हो पाया था ।

हम जीवन भर नाना सम्पत्ति, ऐश्वर्य, वैभव एकत्र करते हैं । आश्रम, धन, नाना पदार्थ, बहुमूल्य सामग्री जुटाते हैं और अन्तर में स्थिर मैत्रेयी को सौंपते हुए कहते हैं ''लो ! इससे तुम्हें प्रसन्नता होगी आनन्द मिलेगा ।'' अनेकानेक सामग्री हम जुटाते हैं किन्तु अन्तर में बैठी हुई मैत्रेयी कहती ही रहती है ''**येनाहं नामृता स्याम किमहं तेन कुर्याम** ।'' इन सब सामग्रियों में जीवन के शाश्वत प्रश्न का समाधान नहीं मिलता और निरन्तर छटपटाती रहती है उस महत्त्वपूर्ण तथ्य की प्राप्ति के लिए जो उसे सत्य, ज्योतिर्मय अमृत्व की प्राप्ति करा सके । सब ओर से उसे परित्राण देकर आनन्दमय बना सके ।

मैत्रेयी चाहती थी उस परम तत्त्व का साक्षात्कार, एकानुभूति नित्यदर्शन जो सत्य, ज्योतिर्मय, स्वरूप है, जो उसके जीवन का चिर-प्रकाश बने । रुद्र बनकर उसके समस्त पापतापों को नष्ट कर दे और उसे परित्राण देकर निर्भय बना दे ।

मैत्रेयी ने अनुभव की कसौटी पर जान लिया था कि संसार और इसके सकल पदार्थ, सम्बन्ध, नाते रिश्ते मरणशील हैं, इनका पर्यवसान अन्धकार और असत्य में ही होता है, दैहिक, दैविक भौतिक पापतापों की पीड़ा जीव को सदा ही अशान्त भयभीत बनाये रखती है ।

मनुष्य नाना पदार्थ, उपकरणादि संग्रह करता है । धन सम्पत्ति जुटाता है । बड़े-बड़े महल बनाता, देह को नाना भाँति सँजोता सँवारता है । रात-दिन इन्हीं को आधार बना कर जुटे रहने से इनके प्रति मनुष्य में एक तरह की आसक्ति एवं समता उत्पन्न हो जाती है । धीरे-धीरे यह अभ्यास इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि मनुष्य इन्हीं उपकरणों , सामग्री, सम्पत्ति, सम्बन्धों को सब कुछ मान इन्हीं का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अवलम्बन लेकर चलने लगता है । किन्तु संसार के नियम के अनुसार ये मिट्टी के घरोंदे क्षण-क्षण में गिरते-पड़ते रहते हैं । परिवर्तित होते रहते हैं । संसार और इसके पदार्थ बनते-बिगड़ते रहते हैं । कोई भी तो स्थिर नहीं रहता । मनुष्य का शरीर ही वृक्ष के पत्ते की तरह एक दिन झड़ जाता है । वह भी तो स्थिर नहीं रहता । जो कुछ भी दिखाई देता है वह सब ही तो असत्य है, मरण-धर्मा है, अन्धकारमय है ।

मनुष्य इनका अवलम्बन लेकर क्षण-क्षण इनके वियोग, रूपान्तर, परिवर्तन, के साथ-साथ ही मृत्यु का अनुभव करता है । जिसे सत्य मान लिया गया था वे तो स्वप्न की तरह असत्य सिद्ध होते हैं । कृत्रिम प्रकाश के बुझ जाने पर अन्धकार के सिवा कुछ भी नहीं रहता । इससे मनुष्य क्षण-क्षण मृत्यु, असत्य और अन्धकार में ही भटकता रहता है । भय, आशंका, क्लेश, पाप-ताप उसे क्षण भर भी स्थिर नहीं रहने देते । यह आवर्तनशील क्रम चलता ही रहता है और इनका कोई अन्त ही नहीं होता ।

इसीलिए मैत्रेयी को इन सब वस्तु, पदार्थ, सम्पत्ति, समृद्धि के परे किसी ऐसी वस्तु की अभिलाषा थी जो इस तरह के मरणधर्मा, प्रत्यावर्तन, स्वप्नवत, असत्यता परिणाम में अन्धकार से सर्वथा मुक्त हों । जिसे प्राप्त करने के बाद फिर छोड़ने या बदलने का कोई प्रश्न ही उपस्थित न हो । जो मृत्यु से अतीत, सत्य ज्योतिर्मय, दिव्यरूप हो । ऐसा अमृत्व चाहती थी मैत्रेयी ।

लेकिन हम शक्ति और युक्ति द्वारा संसार के पदार्थों में उसे ढूँढते हैं, नाप-जोख करते हैं । नाना साज-समान एकत्र करते हैं और अन्तर में विराजमान मैत्रेयी से कहते हैं ''लो देवि ! इन्हें ग्रहण करो और सुखपूर्ण जीवन बिताओ ।'' किन्तु वह हर बार अपना असन्तोष प्रकट करते हुए पूछती है ''क्या इससे मुझेअमृतत्व की प्राप्ति हो सकेगी ।'' ''नहीं ?'' ''तो फिर जो मैं चाहती हूँ वह तो यह नहीं है । **'येनाहं नामृता स्याम किमहं तेन कुर्याम् ।'** जिससे मुझे अमृतस्वरूप की उपलब्धि न हो उसे लेकर मैं क्या करूँगी और वह नित्य निरन्तर ही अश्रु भरे नेत्रों और व्याकुल हृदय से प्रार्थना करती है:-

**''असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय । आविरावीर्मा एधि रुद्र यत्ते दक्षिणमुखं तेन मां पाहि नित्यं ।''**

' हे चिरन्तन सत्य ! मेरे अन्तर और बाह्य सर्वत्र ही विराजमान सत्य ! मुझे असत्य की सीमा से निकाल कर अपने में मिला लो । जग के असत्य पर्दों को हटा कर अपने सत्य स्वरूप भवन में ले चलो जहाँ ''आप हैं'' के सिवा कुछ भी तो नहीं है ।

**''ज्योतिषां यद ज्योति''** सर्व लोकों में ज्योतियों की भी ज्योति ! कोटि-कोटि सूर्य सम आप की परम-ज्योति व्याप्त है । हे ज्योतिर्मय अपने पावन स्पर्श से मुझे भी ज्योतिर्मय बना दें, जिससे अन्धकार के समस्त परिवेष्टनों में मुक्त होकर मैं भी ज्योतिर्मय बनूँ ।''

' हे अमृत-रस ! परमानन्द के धाम ! सर्वत्र आप ही अजर अमर अविनाशी बने व्याप्त हैं । यह जगत आप में ही धारण-पोषण विनाश प्राप्त करता है, किन्तु आप सदा-सदा गम्भीर, स्तब्ध, एक रस बने रहते हैं । आपका कोई रूप सीमाबद्ध नहीं । अपने इस अमृत स्वरूप में मिला कर मुझे भी अमर्त्य बनावें ।''

''हे प्रकाश ! मुझे अपने प्रकाश से जगमग, जगमग कर दो । अपनेपन अहंकार राग आसक्ति के समस्त अन्धकार का उच्छेद करके पूर्णरूपेण प्रकाशमय कर दो ।''

''हे रुद्र ! अपने प्रचण्ड ताप से मेरे समस्त पापों को भस्मीभूत कर दो । मेरे अन्तर बाह्य जीवन में जो भी दुष्चेष्टा, दुर्भावना, दुष्कर्म आदि पाप हों उन्हें अपने रुद्र ताप से नष्ट कर दें, तब आपके आलोक प्रकाश की निर्विकारी सत्ता ही मुझमें शेष रहेगी । हे प्रभो ! आप अपने प्रसन्न, मधुर, आनन्दमय दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें । हे देव ! तब मैं आपका ही निवास बनकर सर्व ओर से परित्राण पा सकूँगी ।''

अन्तर में विराजमान मैत्रेयी-अन्तरात्मा की इस प्रार्थना को हम एकाग्रता के साथ सुनें । उसके स्वरों में स्वर मिलाकर गावें । प्रबल जिज्ञासा, उत्कट इच्छा, अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ ही हमारी यह प्रार्थना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


किसी तरह की सौदेबाजी, लेन-देन या संजोकर रखने की बात न हो बीच में । संसार में विचरण करते हुए हम उसी को ग्रहण करें जो हमारी आत्मा की चिर इच्छा को पूर्ण करें । उसे सत्य-अमृत ज्योति की प्राप्ति करावे । जो हमें अमर्त्य प्रदान न करें उसे छोड़ते जायें ।

**''येनाहं नामृता स्याह किमहं तेन कुर्याम''** यह मन्त्र हमारा जीवन-मन्त्र बन जाय ।

जो सुर दुर्लभ मानव जीवन को भार, अभिशाप मानकर जीता है, भय और पाप की कुकल्पनाएँ उसे चैन से नहीं सोने देती न सुखी जीवन बिताने देती हैं । इन सबसे छुटकारा पाकर जीवन को सुखी मधुर बनाने की खोज मनुष्य सदा से ही करता आया है । उपनिषद्कार ने इसी को महत्त्व देते हुए कहा है ।

**''य आत्मा पहतपाप्मा विजरो विमृत्युविंशोको विजिघत्सोऽपिपास; सत्य कामः सत्य संकल्पः सोऽन्वेष्टष्यः स विजिज्ञासितव्य ।''**

''जो निष्पाप, जरा रहित, अमर्त्य शोक रहित, भूख प्यास से मुक्त सत्य काम, सत्य संकल्प है उसे ही ढूँढना चाहिए, उसे ही जानने की इच्छा करनी चाहिए और वह तत्त्व है 'आत्मा' ।

वस्तुतः आत्मा ही जरा मरण, भूख प्यास, समस्त भय, सन्देह, संकल्प-विकल्पों से रहित नित्य मुक्त, अजर-अमर अविनाशी तत्व है । उसे जान लेने पर ही मनुष्य समस्त भय, शोक, चिन्ता क्लेशों से मुक्त हो जाता है ।

आत्मा ही मानव जीवन का मूल सत्य है । आत्मा के प्रकाश में ही बाह्य संसार और मानव जीवन के क्रियाकलापों को अस्तित्त्व है । आत्मा के पटल पर ही संसार और दृश्य जीवन का छाया-नाटक बनता बिगड़ता रहता है । संसार जो कुछ भी है वह आत्मा की अभिव्यक्ति और उसका विस्तार है ।

सर्वव्यापी विराट आत्मसत्ता ही ब्रह्म है । ''अयमात्मा ब्रह्म''

*-वृ० उप०*

यह आत्मा ही ब्रह्म है- ऐसा उपनिषदकार ने अपनी अनुभूति के आधार पर कहा है । आत्मा ही परमात्मा है-ईश्वर है । आत्मतत्त्व जब जगत, देह इन्द्रिय तथा संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है तो अनेक रूपों में दिखाई देता है । जिस तरह जल की बूदें समुद्र पर गिरते समय अलग-अलग दिखाई देती हैं किन्तु गिरने से पूर्व और गिरने पर वह अथाह सिन्धु के रूप में ही होती हैं । आत्मा भी आदि अन्त में हमेशा ही स्थिर रहने वाला नित्य तत्व है ।

मनुष्य सारा जीवन अपने अहंकार के पोषण में ही गँवाता रहता है पर जब मृत्यु उसके सामने उपस्थित होती है तो उसे इस आत्मिक संसार का पता चलता है । तब ज्ञान-विज्ञान की लम्बी-चौड़ी चौकड़ी भूल जाता है । इस समय पछतावा ही हाथ लगता है । जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह जीवन मिला था वह तो तुच्छ बातों में गँवा दिया गया । सारा का सारा जीवन तुच्छ कामनाओं और सांसारिक गोरखधन्धों में बिता दिया तो आखिरी समय क्या बन सकता है । मनुष्य भारी दिल लिये हुए इस संसार से विदा हो जाता है । यहां का सारा वैभव, व्यापार, वस्त्र, स्त्री, पुत्र सब यही रह जाते हैं । साथ में मात्र पश्चाताप जाता है ।

मनुष्य जितना समय अपनी भौतिक उन्नतियों के लिये लगाता है उसका आधा भी यदि अपनी आत्मिक प्रगति के लिये लगाता तो अपने जीवन लक्ष्य को जरूर समझ लेता । आध्यात्मिक जीवन के शुभ परिणाम भी उसे मिलते, आत्मा-परमात्मा की सम्पदाओं से वह वञ्चित न रहता । पीछे भी ऐसा हुआ है और अब भी वह सभी सम्भव है, किन्तु यह सब आत्मा की उपेक्षा करते रहने से नहीं होगा । इसके लिये भी अपनी बौद्धिक क्षमता को लगाना पड़ेगा । अपना पुरुषार्थ अर्पित करना पड़ेगा । आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी उतने ही लगन और तत्परता की आवश्यकता है जितने से आज की आश्चर्यजनक भौतिक सफलतायें मिल सकी हैं ।

मनुष्य ने जितनी प्रगति भौतिक जगत में की है उससे भी अधिक की सम्भावना अध्यात्म में है । उसकी स्वचेतना में वह शक्ति भरी पड़ी है जिसका

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उत्कर्ष-जागरण किया जा सके तो इस संसार के सारे-वैभव विलास तुच्छ से लगेंगे ।

दु:ख और निराशा की परिस्थितियों का निर्माण अपना भौतिकवादी दृष्टि-कोण बनाने में होता है । अपने दृष्टिकोण में यदि परिवर्तन कर सके होते तो आत्मिक जगत को भी ज्ञान अवश्य मिला होता । अपने गुण कर्म स्वभाव में सत्य का अनुशीलन किया होता तो आध्यात्मिक जगत के सत्परिणामों से भी लाभान्वित हुआ जा सकता है । आत्मा की उपेक्षा करते रहने से भौतिक सम्पदायें कभी भी सुख नहीं दे सकती, शाश्वत शान्ति की प्राप्ति अथवा जीवन लक्ष्य की सिद्धि का एक ही मार्ग है- अध्यात्मवाद । इस पर चल पाना देर, तक टिके रहना तभी सम्भव है जब आत्मा के हित की उपेक्षा न करें उसके महत्त्व को समझें और प्राप्ति के लिये आज से, अभी से लग जायें ।

इस संसार में कुछ यदि अमृत है- अविनाशी हैं तो वह आत्मा है । मनुष्य जन्म का उद्देश्य भी यही है कि वह आत्मा के माध्यम से चिन्मय परमात्मा की प्राप्ति करे । इसी को जीवन-लक्ष्य आदि अनेकों नामों से पुकारा जाता है । इसी की प्राप्ति के लिये ऋषियों ने जोर दिया है । गीताकार ने भी इसी की पुष्टि करते हुये लिखा है-

**यं लब्ध्वा च परं लाभं मन्यते नाधिकं तत: ।**
**यस्मिन्स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते ।।**

अर्थात्- ''योगी परमेश्वर की प्राप्ति रूप लाभ से अधिक लाभ कुछ भी नहीं मानता । आत्मा को प्राप्त कर लेने से दु:ख चलायमान नहीं करते ।'' इस परम तत्त्व को धारण करने से जाना जाता है कहने मात्र से नहीं । बाह्य ज्ञान, बौद्धिक क्षमता बढ़ा कर तद्जन्य सुख दिला सकता है पर उससे इन्द्रिय निग्रह का सुख प्राप्त करना सम्भव नहीं । बाह्य ज्ञान मात्र से श्रेय पथ पर नहीं चला जा सकता । अत: विश्व कल्याणार्थ आत्म-ज्ञान सम्पादन अत्यावश्यक है । इसी से मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है, अन्य कोई चारा नहीं ।

# अध्यात्म और उसकी महान उपलब्धि

सतयुग में मनुष्य को अगणित सुख-सुविधाएँ प्राप्त थी, उसकी शक्ति सामर्थ्य प्रत्येक दिशा में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी । इस सुयोग का कारण और कुछ नहीं केवल एक ही था- जीवन का अध्यात्म प्रेरणा से अनुप्राणित एवं प्रेरित होना । उस समय सब लोग अपनी भावनाएँ और क्रियाएँ अध्यात्म मान्यताओं एवं मर्यादाओं के अनुसार ढालते थे, फलस्वरूप उन्हें बाह्य जीवन में किसी प्रकार की असुविधा न रहती थी । जहाँ चन्दन का वृक्ष होगा वहाँ सुगन्ध बहेगी ही, जहाँ अध्यात्म को आश्रय मिलेगा वहाँ शक्ति, समृद्धि, और सुख-शान्ति की परिपूर्णता रहनी ही चाहिए ।

अध्यात्म भारत की महानतम सम्पत्ति है । उसे मानवता का चिर मेरुदण्ड कहा जा सकता है । मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक चिरस्थायी उत्कर्ष का एक मात्र आधार यही है । मनुष्य जाति की अगणित समस्याओं को हल करने और सुख-शान्तिपूर्वक जीने के लिए अध्यात्म ही एक मात्र उपाय है । इस जीवन तत्त्व की उपेक्षा करने से पतन और विनाश का ही मार्ग प्रशस्त होता है । दु:ख और दारिद्र, शोक और सन्ताप इसी उपेक्षा के कारण उत्पन्न होते हैं । मनुष्य के भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाला निमित्त इस उपेक्षा से बढ़ कर और कोई नहीं हो सकता ।

अध्यात्म मानव-जीवन के श्रेष्ठतम सदुपयोग की एक वैज्ञानिक पद्धति है । उसे जीवन जीने की विद्या भी कहा जा सकता है । छोटे-छोटे कार्यों की भी कोई प्रणाली एवं पद्धति होती है । उसे ढंग से चलने पर सफलता मिलती है । अस्त-व्यस्त ढंग से कार्य किया जाय तो लाभ के स्थान पर हानि होगी । मानव-जीवन इस संसार का सर्वोत्कृष्ट वरदान है । भगवान के पास जो कुछ विभूतियाँ हैं वे सभी उसने मनुष्य-शरीर में बीज रूप में भर दी हैं । ऐसे बहुमूल्य सन्यन्त्र का सुसंचालन एवं सदुपयोग यदि ज्ञात न हो तो उसे एक दुर्भाग्य ही कहा जायगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कृषि, रसायन, शिल्प, चिकित्सा, व्यापार, संगीत आदि सामान्य कार्यों के लिए उनकी निर्धारित पद्धति को अपनाना पड़ता है । राज्य व्यवस्था, संविधान एवं कानून पद्धति के अनुसार चलती है । उन व्यवस्थाओं की अज्ञानता एवं उपेक्षा करने वाले व्यक्ति मनमानी करते हुए चलने लगें तो उन्हें असफलता एवं निराशा का ही मुंह देखना पड़ेगा । मानव-जीवन तो एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान प्रक्रिया है उसका विज्ञान एवं विधान जाने बिना या जानकर उस पर चले बिना वह आनन्द एवं श्रेय नहीं मिल सकता, जो मनुष्य जीवन जीने वाले को मिलना चाहिए ।

मानव-जीवन के दो पहलू है एक आत्मा दूसरा शरीर । एक आन्तरिक दूसरा बाह्य । दोनों में एक से एक बढ़कर विभूतियाँ एवं समृद्धियाँ भरी पड़ी हैं । आत्मिक क्षेत्र में मन, बुद्धि चित्त, अहंकार चारों ही क्रमशः एक से एक बढ़ कर शक्ति-संस्थान हैं । पाँच कोश, एवं छः चक्र अपने गर्भ में अगणित ऋद्धि-सिद्धियाँ छिपाये बैठे हैं । मस्तिष्क के मध्य भाग ब्रह्मरंध्र में अवस्थित शत-दल कमल, हृदय संस्थान का सूर्य, चक्र नाभिदेश में प्रतिष्ठित ब्रह्म-ग्रन्थि, मूलाधार वासिनी महासर्पिणी कुण्डलिनी का जो विवेचन योग शास्त्रों में मिलता है उससे स्पष्ट है कि विश्व की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ बीज रूप में इन छोटे से केन्द्रों में भरी पड़ी हैं । योगाभ्यास द्वारा इन्हें जाग्रत करके साधन मार्ग के पथिक अपने को आलौकिक सामर्थ्यो से सुसम्पन्न सिद्ध पुरुषों की श्रेणी में पहुंचा देते हैं । ऋषि-मुनियों ने अध्यात्म विद्या के गूढ़ रहस्यों में अवगाहन कर प्रकृति की उन विस्मयकारी शक्तियों पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था जो भौतिक विद्या के वैज्ञानिकों के लिए अभी भी रहस्यमय बनी हुई हैं ।

खेदपूर्वक यह स्वीकार करना होगा कि हमारे आलस्य और प्रमाद ने योग की उन उच्चस्तरीय विद्याओं को गँवा दिया । वैज्ञानिक शोध जैसी निष्ठा में संलग्न होने वाले साधक आज कहाँ हैं ? योगी का वेष बनाकर पूजा और आजीविका कमाने वाले रंगे सियार बहुत मिलेंगे पर सूक्ष्म प्रदेशों को जाग्रत और परिमार्जित करने के लिए कठोर तपश्चर्या का साहस करने वाले निष्ठावान पुरुषार्थी नहीं के बराबर दिखाई पड़ते हैं । जो हैं उन्हें बहुत कुछ मिलता भी है । जिनके आशीर्वाद प्राप्त करके मनुष्य अपना जीवन धन्य और सफल बना सकें ऐसे ऋषिकल्प सत्पुरुष अभी भी मौजूद हैं ।

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों के संरक्षण में सारा विश्व ही स्वर्गीय सुख-शान्ति का उपभोग कर रहा था । आत्मबल की महत्ता का उच्चस्तरीय प्रकरण रहस्यमय है । कठिन और कष्टसाध्य भी है । उस मार्ग पर कम ही लोग चल पाते हैं फिर भी यह तथ्य सुनिश्चित ही रहेगा कि आत्मा के सूक्ष्म संस्थानों की साधना, रहस्यमयी एवं चमत्कारी प्रतिफल उत्पन्न करती है । उसका अवलम्बन लेकर मनुष्य अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त करने के अतिरिक्त संसार की भी इतनी बड़ी सेवा कर सकता है जितनी बड़ी से बड़ी भौतिक क्षमता सम्पन्न व्यक्तियों की सम्मिलित शक्तियों के द्वारा भी सम्भव नहीं ।

उच्चस्तरीय सूक्ष्म साधना का फल आकर्षक चमत्कारी एवं आश्चर्यजनक तो अवश्य है पर उसकी साधना भी उसी अनुपात से समयसाध्य और कष्टसाध्य है । बाल-बुद्धि के लोग यह आशा किया करते हैं कि कुछ ही दिन छोटा-मोटा कर्मकाण्ड करके उस स्थिति की सफलता प्राप्त कर लेंगे । बरगद का पेड़ बड़ा समृद्धिशाली और चिरस्थायी माना गया है पर उसके उगने बढ़ने और फलने-फूलने की स्थिति तक पहुँचने में भी देर लगती है । उतावली में हथेली पर सरसों जमाने की बालक्रीड़ा उपाहासास्पद ही सिद्ध होती है । योगाभ्यास की साधन विधियाँ भले ही बहुत कठिन न हों, पर उनके फलित होने लायक साधक की पूर्व भूमिका तो शुद्ध हो चुकनी ही चाहिए । यदि साधक का बाह्य जीवन-दूषित, कलुषित, निष्कृष्ट एवं अस्तव्यस्त रहा होगा तो उसे लौकिक-समृद्धि सफलता एवं सुख-शान्ति भी प्राप्त न हो सकेगी, ऐसी दशा में आत्मबल एवं उच्च विभूतियों की उपलब्धि की आशा तो की ही कैसे जा सकती है ?

नियम यह है कि पहले बाह्य जीवन में अध्यात्म तत्त्वज्ञान का समावेश करके उसे सुख-शान्तिमय

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बनाया जाय । इस प्रकरण में जितनी उपासना अभीष्ट है उतनी करते रहा जाय पर अधिक जोर बाह्य जीवन को सुसंगत बनाने के लिए ही दिया जाय । लौकिक-जीवन को सुविकसित एवं सुसंस्कृत बना लेना भी एक आध्यात्मिक साधना ही है । उसका प्रतिफल भी लौकिक सफलताओं एवं सुसम्बद्धताओं के रूप में ही उपलब्ध होता है । इस सफलता के बाद उच्च स्तरीय आध्यात्मिक साधनाएँ सरल हो जाती हैं और उनकी सफलता में भी कठिनाई नहीं आती । जो साधक जप-तप तो बहुत करते हैं, किन्तु लौकिक जीवन निकृष्ट बनाये रहते हैं उनको प्राय: निराश ही रहना पड़ता है ।

कई व्यक्ति अपनी पात्रता बढ़ाने पर ध्यान न देकर समर्थ शक्तियों के उपहार स्वरूप विविध विधि वरदान प्राप्त करने के फेर में पड़े रहते हैं । देवताओं की पूजा वे इसी उद्देश्य से करते हैं कि कम समय, कम श्रम, कम खर्च करके बड़ा लाभ प्राप्त कर लें । लाटरी लगाने वालों एवं जुआ खेलने वालों का भी यही उद्देश्य रहता है । ऐसे लोग थोड़ा खर्च करके बिना श्रम एवं क्षमता के ही विपुल धन, राशि प्राप्त करने के सपने देखते हैं । इनमें से किसी बिरले की ही कामना पूर्ण होती है अधिकांश तो निराश ही रहते हैं । देवताओं का वरदान वस्तुत: इतना सस्ता नहीं है जितना लोगों ने समझ रखा है । वे 'दर्शन' करने मात्र से प्रसन्न हो जायेंगे या अक्षत पुष्प जैसी छोटी चीजें पाकर अपना अनुग्रह हमारे ऊपर उंडेल देंगे ऐसा सोचना उचित नहीं । पूजा का भी अपना महत्त्व है, उसका भी लाभ होता है । पर मूलतथ्य पात्रता है । अनधिकारी की-कुपात्र की-प्रार्थना भी सफल नहीं होती । देवता या भगवान को प्रसन्न करने का, उसका अनुग्रह उपलब्ध करने का, सुनिश्चित मार्ग अपनी पात्रता बढ़ाना ही हो सकता है ।

किन्हीं सिद्ध पुष्पों का समर्थ आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भी यह आवश्यक है कि वे अपना तप या पुण्य दान देकर हमारी सहायता करें, पर उसके लिए हम उपयुक्त अधिकारी भी सिद्ध तो हों । आशीर्वाद वाणी की क्रीड़ा नहीं है । उसके पीछे पुण्य या तप का अनुदान लगाया गया हो तो ही उसका कुछ प्रतिफल दृष्टिगोचर हो सकता है । इस सृष्टि में कोई वस्तु मुफ्त नहीं मिलती । हर वस्तु का मूल्य निर्धारित है । उसे चुकाने पर ही कुछ प्राप्त कर सकना सम्भव हो सकता है । सुख और समृद्धि की प्राप्ति पुण्य-फल की मात्रा पर निर्भर रहती है । दु:ख हमारी त्रुटियों और विकृतियों के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं । सुख प्राप्त करने और दु:ख निवारण के लिए पुण्य एवं तप की अभीष्ट मात्रा चाहिए । वस्तु तो कीमत देने से ही मिलेगी । अपने पास वह कीमत न हो तो दूसरा भी अपनी जेब से उसकी पूर्ति कर सकता है । मूल्य हर हालत में चुकाना पड़ेगा । आशीर्वाद के साथ कोई सिद्ध पुरुष अपना तप भी देने को तैयार हो जायँ तो ही यह आशा की जा सकती है कि उससे कोई लाभ होगा । अन्यथा वाणी से निकले हुए केवल शब्द-भले ही वह आशीर्वाद की भाषा में कहे गये हों-किसी के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते ।

जब सामान्य बुद्धि के लोग पात्र-कुपात्र का ध्यान रखते है, अधिकारी-अनाधिकारी के भेद को समझते हैं और उसी के अनुसार निष्ठुरता एवं उदारता बरतते हैं तो देवता और सिद्ध पुरुषों को इतना नासमझ क्यों माना जाय कि वे पात्रता की परख किये बिना, अन्धाधुन्ध, प्रार्थनाओं की पूर्ति दर्शन-पूजन जैसे बहकाने में आकर करने लगेंगे ? स्कूलों में छात्रवृत्ति उन्हें मिलती है जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं । उन्हीं खिलाड़ियों को पुरस्कार मिलता है जो अपने को अधिक पुरुषार्थी सिद्ध करते हैं ऊंचे पदों पर उनकी नियुक्ति होती है जो अन्य साथी प्रत्यार्शियों की अपेक्षा अपनी विशेषता सिद्ध करते हैं । देवता और सिद्ध पुरुष वरदान तो देते हैं, कृपा तो करते हैं, पर इससे पहले लेने वाले की पात्रता को भी परख लेते हैं । दान का यदि दुरुपयोग होने लगे तो उसका पाप दाता पर पड़ता है, इस तथ्य को वे उच्च शक्तियाँ भी जानती हैं । इसलिए प्रार्थना करने वाले की वरदान या आशीर्वाद माँगने वाले की पात्रता को ही वे सब से पहले परखती हैं । अनाधिकारी के प्रति उनका रुख भी निष्ठुरतापूर्ण ही बना रहता है । यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सहायता आप करते हैं ।'' इस छोटे से वाक्य में ईश्वर की नीति और कार्य पद्धति का मर्म बिलकुल ही स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर दिया गया है ।

ईश्वर की इस सुव्यवस्थित सृष्टि का कण-कण नियम बन्धनों में बन्धा हुआ है । इतना बड़ा शासन तन्त्र बिना नियत व्यवस्था के चल भी नहीं सकता । सूर्य और चन्द्रमा नियत समय पर उदय होते हैं, पृथ्वी नियत मार्ग पर नियत चाल से चलती है । ऋतुएँ समय पर आती हैं । बीज अपने नियम और क्रम से उगते और बढ़ते हैं । जन्म वृद्धि और मृत्यु के चक्र में हर पदार्थ जकड़ा हुआ है । यहाँ अव्यवस्था के लिए तनिक भी गुञ्जाइश नहीं । ईश्वर भी अपना काम तभी कर पा रहा है जब उसने अपने आपको नियम और व्यवस्था के अन्तर्गत बाँध लिया है । प्राणियों को उनके शुभ-अशुभ कर्मों के आधार पर उन्नति और अवनति के प्रतिफल प्रदान करता है । यदि वह इसमें अव्यवस्था उत्पन्न करे तो सृष्टि का सारा क्रम ही बिगड़ जाय । प्रार्थना करने मात्र से मनमाने उपहार देने लगे तो फिर प्रयत्न और पुरुषार्थ करने के लिए किसी को क्या आकर्षण रह जायगा ? फिर कर्मफल का तथ्य तो एक उपहास की बात बन जायगा । कोई न्यायाधीश वस्तु स्थिति पर ध्यान दिये बिना प्रार्थियों की अर्जी-मर्जी के अनुरूप फैसले करने लगे, सुविधायें देने लगे तो उसे पागल ही कहा जायगा । ईश्वर ऐसा पागल नहीं है । देवता या सिद्ध पुरुषों को भी इतना नासमझ नहीं माना जाना चाहिए कि हर किसी की उचित-अनुचित सहायता के लिए घर दौड़े और पात्रता अधिकार एवं कर्मफल के सुनिश्चित तथ्यों को मटियामेट करके सृष्टि में घोर अव्यवस्था फैला देने के दोषी बनें ।

गुरुजन कृपा अवश्य करते हैं और उनके आशीर्वाद से लोगों का भला भी अवश्य होता है, पर वह कृपा विशुद्ध रूप से प्रार्थी की पात्रता पर निर्भर रहती हैं । देवता वरदान देते हैं । ऐसे असंख्य उपाख्यान पुराणों में मिलते हैं पर यह स्मरण रखना चाहिये कि वे वरदान भी अन्धाधुन्ध नहीं, किसी आधार पर ही मिलते हैं । असुरों ने बड़े-बड़े आश्चर्यजनक वरदान पाये थे पर उनका मूल्य उन्होंने घोर तपश्चर्या के रूप में चुकाया भी था । हमारी तरह यदि वे भी दर्शन करके या चन्दन अक्षत चढ़ाकर थोड़ी-सी पूजापत्री से बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये बैठे रहते तो उन्हें भी हमारी ही तरह निराशा के अतिरिक्त और क्या हाथ लग सकता था ?

दैवी अनुग्रह हमारी पात्रता के आधार पर ही उपलब्ध हो सकता है अतएव उसके लिए बहुत चिन्ता या बहुत खोजबीन करने की अपेक्षा, अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । सत्पात्रों की उचित सहायता एवं मार्गदर्शन करने के लिए ईश्वरीय नियम अपने आप काम करता रहता है और उसकी पूर्ति अनायास ही होती रहती है । गुरु ढूँढ़ने नहीं पड़ते, अधिकारी को वे अनायास ही मिल जाते हैं । पुष्प खिलते ही बिना निमन्त्रण के भौंरे उसके आगे गुंजार करने स्वत: ही जा पहुँचते हैं । जहाँ पर जितना गहरा गड्ढा होता है वहाँ उतना जल भर जाता है । कम गहरा गड्ढा बड़े सरोवर की बराबर जल कैसे प्राप्त कर सकेगा ? बादलों पर 'कम देने' का दोष भले ही वह लगाया करे पर वस्तुस्थिति यही है कि गड्ढे के उथलेपन ने ही उसे प्रचुर जल राशि संग्रह करने के लाभ से वंचित रखा । बादलों को सरोवर और गड्ढे में से किसी के साथ पक्षपात नहीं था, उनने समान वर्षा की, पर लाभ उन्हें अपनी पात्रता के अनुरूप ही मिल सका । ईश्वर, देवता या सिद्ध पुरुषों से विविध विधि वरदानों की कामना एवं प्रार्थना करने के साथ-साथ हमें अपनी पात्रता भी देखनी चाहिये और उसे बढ़ाने के लिए प्रयत्न भी करना चाहिये ।

अध्यात्म की महिमा का पारावार नहीं, उसके द्वारा प्राप्त हो सकने वाले लाभों की गणना नहीं हो सकती । मानव-जीवन की सर्वोत्कृष्ट विभूति वही है । अन्त-प्रदेश में सन्निहित रहस्यमयी शक्तियों के जागरण से मनुष्य की परिणति देवत्व में हो सकती है पर उस मार्ग पर चलने वाले को इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि उपासना विधानों की तरह व्यवहारिक जीवन को उत्कृष्ट एवं परिष्कृत बनाना भी आवश्यक है । इसके बिना कठोर साधना भी निरर्थक सिद्ध होती है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# बाह्य जीवन में आदर्शवाद का प्रयोग

औषधि कैसी ही उत्तम क्यों न हो उसका समुचित लाभ तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि रोगी पथ्य परिचर्या एवं आहार-विहार का समुचित ध्यान न रखे । साधना विधि का महत्त्व औषधि के समान माना जाय तो जीवन को सुव्यवसिथत एवं सन्तुलित बनाये रखने की सावधानी को पथ्य कहा जा सकता है । पथ्य से रहने वाला आहार-विहार की सावधानी बरतने वाला बिना औषधि के भी प्राकृकि प्रयत्नों के आधार पर रोगमुक्त हो सकता है । किन्तु बहुमूल्य औषधि लेते रहने पर भी यदि कुपथ्य से रहा जाय तो रोग घटेगा नहीं, औषधि का लाभ निष्फल चला जायगा और कुपथ्य के कारण रोग उलटा बढ़ता चलेगा । इसलिए चिकित्साशास्त्री सदा से यही कहते आये हैं कि पथ्य मुख्य और औषधि गौण है । कोई चमत्कारी औषधि तत्काल कुछ लाभ दिखा भी दे तो भी कुछ समय बाद वह असर समाप्त होते ही फिर रोग घेर लेंगे । कुपथ्य पर चलने वाला स्थायी रूप से रोग-मुक्ति का लाभ न ले सकेगा ।

भव-रोगों की निवृत्ति के लिए असाध्य मार्ग का अवलम्बन लेने वालों पर भी यही नियम काम करता है । व्यवहारिक जीवन की अव्यवस्था एवं अस्त-व्यस्तता अच्छी साधनाओं को ही निष्फल बना देती है । साधना के द्वारा आत्मबल प्राप्त करते हुए जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने की स्थिति तक पहुँच सकना केवल उन्हीं के लिए सम्भव हो सकता है जिन्होंने उसकी प्रारम्भिक भूमिका के रूप में बाह्य जीवन मन को सुसंतुलित बना लेना, सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तियों को जाग्रत करके अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त करने की अपेक्षा कहीं सरल हैं । सरल कार्य में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त ही कठिन कार्यों का बोझ उठा सकना सम्भव होता है । प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं की पढ़ाई बिना कालेज में प्रवेश कैसे मिलेगा ? कोई जबरदस्ती घुस भी पड़े तो उसे एम० ए० की परीक्षा देते समय अपनी अनाधिकार चेष्टा पर पश्चाताप करना पड़ेगा ।

उच्चकोटि की आध्यात्मिक कक्षाओं में क्रमिक विकास करते हुए ही आगे बढ़ा जा सकता है । ऊँची छत पर चढ़ने के लिए नीचे की सीढ़ी पर पैर रखते हुए ऊपर चढ़ना होता हैं कोई उतावला व्यक्ति जमीन से उछल कर तुर्त-फुर्त छत पर पहुँचने का प्रयत्न करेगा तो उसे निराशा ही हाथ लगेगी । रक्त में औषधि पहुंचाने के लिए इंजेक्शन लगाने वाले डॉक्टर की सुई पहले चमड़ी और माँस में छेद करके तब रक्तस्तर तक पहुँचती है । कोई व्यक्ति यह चाहे कि रक्त माँस को छुए बिना सीधी रक्त में सुई पहुँचा दी जाय तो डाक्टर के लिए उस माँग को पूरा कर सकना कठिन होगा । शरीर और मन का क्षेत्र जब तक अध्यात्म-साधन के अनुरूप सुधारा न जाय तब तक ईश्वर-दर्शन, आत्म-साक्षात्कार, समाधि कुण्डलिनी जागरण यदि ऋद्धि-सिद्धियों की बात सोचना असंगत ही माना जायगा ।

पातञ्जलि योग के आठ अंगों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम यह पूर्वार्ध शरीर और मन का शोधन करने के लिए है । तपश्चात प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का उत्तरार्ध योग-साधन सम्भव होता है । हठयोग में भी नीति धोति, वस्ति, न्यौली, बज्रोली, कपालभाति के षटकर्म बाह्य-जीवन की परिशुद्धि के लिये आवश्यक माने गये हैं, उसके उपरान्त ही षटचक्र वेधन और कुण्डलिनी जागरण का प्रकरण खुलता है । चार आश्रमों की व्यवस्था इसी दृष्टि से बनी है । ब्रह्मचर्य में रहते हुए गृहस्थ का भार उठाने की तैयारी, गृहस्थ में रहकर वानप्रस्थ की क्षमता एवं वानप्रस्थ द्वारा सन्यास का अभ्यास करने का प्रयत्न करते हुए ही मनुष्य आगे बढ़ता है और क्रमशः पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचता है । कुछ अपवादों की बात अलग है, पर इस व्यवस्था को बिगाड़ कर जो छलांग मारते हैं वे घाटे में ही रहते हैं । युवा सन्यासियों की अन्तःस्थिति कितनी घुटन भरी होती है उसका अनुभव उनके सम्पर्क में रहते हुए हमें भली प्रकार प्राप्त है । उस घुटन से बचने के लिए कई युवा साधुओं को हमने गृहस्थ धर्म अपनाने और क्रमिक

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


विकास करते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है । व्यतिक्रम करने वाले अति उत्साही व्यक्ति आत्मिक प्रगति करना तो दूर उलटे अनाचार के चंगुल में फँसते देखे गए हैं ।

जिस प्रकार उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रगति के साथ-साथ अलौकिक ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति होती है उसी प्रकार लौकिक जीवन में भी यदि अध्यात्म आदर्शों को प्रतिष्ठापित करने की साधना की जाय तो उससे भी अनेक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति सम्भव हो सकती है, आरम्भ हमें इन्हीं साधनाओं से करना चाहिए । सामाजिक, शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी अध्यात्म का प्रयोग उसी प्रकार हो सकता है जैसे धर्म एवं उपासना के क्षेत्र में । उस प्रयोग की प्रथा आजकल प्रचलित है । प्रकाश जिस चीज पर भी पड़ेगा वही चमकने लगेगी । आग के सम्पर्क में जो भी चीज आवेगी वही गरम हो जायगी । बर्फ का स्पर्श जिससे भी कराया जायगा वही ठण्डा होगा । रंग से जो भी चीज रंगी जायगी उसका वर्ण उसी प्रकार का दीखने लगेगा । ठीक उसी प्रकार अध्यात्म का स्पर्श जीवन के जिस पहलू से भी करेंगे वहीं आनन्द, सौन्दर्य एवं प्रगति का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगेगा । इत्र जहाँ भी लगा देंगे वहीं से सुगन्ध आने लगेगी । आदर्शवाद का स्पर्श करके कोई भी पदार्थ अपने निखरे हुए स्वरूप में ही प्रकट होता है ।

शरीर के आहार-विहार, रहन-सहन, खान-पान, शयन, जागरण, श्रम, संयम, ब्रह्मचर्य आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय, प्रकृति की मर्यादाओं का उल्लंघन न किया जाय, तो निरोगिता एवं दीर्घजीवन की सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो सकती हैं । जब कि सृष्टि का कोई भी प्राणी रोगों की पीड़ा सहते हुए कष्टमय जीवनयापन नहीं करता तो यह अभिशाप मनुष्य को ही क्यों भोगना चाहिए ? अन्धकार कोई वस्तु नहीं, प्रकाश के अभाव का नाम ही अन्धकार है, इसी प्रकार इस संसार में रोग-शोक जैसे कोई तत्त्व नहीं । हमारा असंयम ही फलित होकर रोग का रूप धारण करता है । जब बुद्धिहीन अन्य प्राणी अपना पूर्ण आयुष्य प्राप्त करते हैं, निर्धारित अवधि तक जीते हैं तो मनुष्य को ही अकाल मृत्यु का ग्रास क्यों होना चाहिये ? किसी आकस्मिक दुर्घटना या प्रारब्ध भोग की बात दूसरी है पर साधारणतया हम प्रकृति की मर्यादाओं का उल्लघंन करके ही, स्वेच्छाचारिता, की गतिविधियों को अपना कर ही, अपने आपको भीतर ही भीतर खोखला बनाते रहते हैं और प्रतिकूलता का जरा-सा आघात लगने पर औधें मुँह गिर पड़ते हैं । अकालमृत्यु हमें धर दबोचती है ।

शरीर को भगवान का मन्दिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता का यदि दृढ़तापूर्वक पालन करने के लिए कटिबद्ध हो जाये तो समझना चाहिए कि अकालमृत्यु का खतरा टल गया । प्राचीन काल मे स्वस्थ सुडौल एवं परिपुष्ट शरीर लेकर हमारे पूर्वज दीर्घ जीवन का आनन्द भोगते थे, इसका कारण किन्हीं पौष्टिक खाद्य पदार्थों का बाहुल्य नहीं वरन संयम के कारण लोगों के स्वास्थ्य चौपट पड़े हैं । इन्हें सुधारना निश्चित रूप से सम्भव है । अध्यात्म का दृष्टिकोण अपना कर ही हम अपना शरीर सुन्दर, स्वस्थ, सुडौल, निरोग एवं चिरस्थायी बना सकते हैं । यदि रोगों ने घेर रखा होगा तो भी सुधरा हुआ दृष्टि-कोण अपना कर उससे छुटकारा पाया जा सकता है । यह विभूति क्या कुछ कम आनन्ददायक होगी ?

लोगों की मनोभूतियाँ आज कुचली-मसली पड़ी हैं । आधे से अधिक व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जिन्हें अर्ध-विक्षिप्त कहा जा सकता है । सोचने का तरीका जिन्हें मालूम हो, विचारों पर जो नियन्त्रण कर सकें, आवेशों का परिष्कार करते हुए औचित्य एवं दूरदर्शिता के आधार पर ही, दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाया करें ऐसे व्यक्ति कितने हैं ? तनिक-सा प्रलोभन सामने आते ही आदर्शों से विचलित हो जाने वाले, जरा-सा भय सामने आते ही कर्त्तव्य पथ को छोड़कर भाग खड़े होने वाले, पल-पल में मति बदलने वाले, अस्थिर चित्त लोगों का ही सर्वत्र बाहुल्य दीखता है । जीवन का कोई लक्ष्य बनाकर उस पर अविचल भाव से दृढ़ रहने वाले मनुष्य ढूँढें नहीं मिलते । जिन्हें अपना गौरव, धर्म और कर्त्तव्य प्राणों से प्यारा हो ऐसे लोग कहाँ हैं ? नगण्य-सी प्रतिकूलताएँ, कठिनाईयाँ,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

असफलताएँ सामने आते ही क्षोभ, आदेश, निराशा, शोक में उद्विग्न होकर मानसिक सन्तुलन खो बैठने वाले व्यक्तियों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है । स्वार्थी, ईर्षालु, लालची, कामुक, निष्ठुर, असहिष्णु, आलसी, प्रमादी, व्यसनी एवं अस्त-व्यस्त प्रकृति के लोग न सोचने योग्य सोचते हुए और न करने योग्य करते हुए सर्वत्र फैले पड़े दीखते हैं ।

सिर-दर्द, जुकाम, रक्तचाप, हृदय की धड़कन, स्मरण-शक्ति की कमी, सहनशीलता का अभाव, अदूरदर्शिता, जल्दबाजी, अधीरता, चंचलता जैसे रोगों से अगणित व्यक्ति रुग्ण हो रहे हैं । चिन्ता, भय, निराशा और विक्षोभ की चिन्ता में जीते जी जलते रहने वाले लोग मरघटों में ही नहीं घरों में अपने अस्तित्व का अन्त करते देखे जा सकते हैं । कचहरी, जेल, अस्पताल और पागलखानों में यही वर्ग भरा पड़ा रहता है । जड़ता, मूढ़ता, दुराग्रह, दीनता, आशंका, अविश्वास, अन्धविश्वास जैसे मनोविकारों में ग्रस्त व्यक्ति अपने को बर्बादी की ओर निरन्तर धकेलते ले जाते हैं ।

मानसिक रुग्णता एवं दुर्बलता बाहर से दिखाई नहीं पड़ती पर उनका विधिवत् परीक्षण किया जाय तो विदित होगा कि शारीरिक रोगों से भी अधिक मानसिक रोग फैले हुए हैं और बीमारियों के कारण जितनी क्षति मनुष्य को उठानी पड़ती है उससे अनेक गुनी इन मनोविकारों के कारण उठानी पड़ती है । शारीरिक रोगों से घिरे रह कर भी मनस्वी व्यक्ति जीवन लाभ लेता रह सकता है पर जिसका मानसिक स्तर नष्ट हो गया, वह शरीर से निरोग रहने पर भी पशु से अधिक अच्छी जिन्दगी व्यतीत न कर सकेगा । अन्य बातों में पशुओं से गया गुजरा मानव प्राणी अपनी मानसिक विशेषताओं के कारण ही उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा है । यदि उस महानता को वह खो बैठे और खाने पहनने से अधिक आगे उसकी समझ लड़खड़ाने लगे तो यही कहा जायगा कि उसने मनुष्य जीवन जैसे सौभाग्य का कोई लाभ प्राप्त नहीं किया ।

मन एक अत्यन्त सामर्थ्यवान उपकरण है । शरीर को विधिवत् काम में लाने की तरह मन का ठीक उपयोग भी हमें आना चाहिए । जिसे मोटर चलाना नहीं आता ऐसा अनाड़ी व्यक्ति यदि ड्राइवर बन बैठे तो वह दुर्घटनाएं ही करेगा । हमारे जीवन आज पग-पग पर दुर्घटनाग्रस्त हो रहे हैं । जिस मानव-जीवन को आनन्द और सफलताओं के लिए ही परमात्मा ने बनाया है उसमें पग-पग पर असन्तोष और विक्षोभ ही अनुभव हो तो समझना चाहिए हमें जीवन जीना नहीं आता । शरीर को ठीक तरह काम में लेने की विधि जो जानता होगा उसे बीमार क्यों पड़ना पड़ेगा ? जिसे मन का स्वरूप, उसके संचालन का विज्ञान एवं विधान मालूम है उसे मनोविकारों से ग्रस्त होकर रोते कलपते हुए, पतन का एवं दुर्दशाग्रस्त जीवन क्यों जीना पड़ेगा ।

अपने दोष दूसरों पर थोपने से कुछ काम न चलेगा । हमारी शारीरिक एवं मानसिक दुर्दशाओं के लिए दूसरे उत्तरदायी नहीं, वरन् हम स्वयं ही है । दूसरे व्यक्तियों, परिस्थितियों, एवं प्रारब्ध योगों का भी कुछ प्रभाव होता है पर तीन चौथाई जीवन तो हमारे आज के दृष्टिकोण एवं कर्त्तव्य का ही प्रतिफल होता है । अपने को सुधारने का काम हाथ में लेकर हम अपनी शारीरिक और मानसिक परेशानियों को आसानी से हलकर सकते हैं ।

अध्यात्म के आदर्शों को अपनाकर यदि हम अपना शरीर और मन निरोग बना लेते हैं और उन दोनों यन्त्रों में छिपी हुई शक्तियों का सदुपयोग रचनात्मक दिशा में करने लगते हैं, तो ऐतिहासिक महापुरुषों की तरह अभीष्ट लक्ष्य की ओर निरन्तर प्रगति करते हुए जीवन का सच्चा लाभ प्राप्त कर सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं हो सकता । इन लौकिक विभूतियों को व्यवहारिक जीवन में अध्यात्म का समावेश करते हुए यदि हम प्राप्त कर सकें तो यह एक बड़ी बात होगी । अध्यात्म के प्रति हमारी श्रद्धा बढ़ेगी और इस सफलता से प्राप्त साहस के बल पर उच्चकोटि की आध्यात्मिक सफलताएँ प्राप्त कर सकना भी सम्भव बन सकेगा ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# समृद्धि और सुसम्पन्नता का मार्ग

शायद ही कोई व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति से सन्तुष्ट मिलेगा । कारण एक ही है कि धन के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण अनात्मकारी बना हुआ है । अध्यात्म सिद्धान्तों का यदि इस क्षेत्र में प्रवेश हो सके तो आज ही अर्थ-संकट का हल निकल सकता है और सर्वत्र सुसम्पन्नता एवं समृद्धि का वातावरण उत्पन्न हो सकता है । कौन खर्च जीवनोत्कर्ष के लिए कौन विलासिता के लिए किया जा रहा है इसका उपयोगिता और अनुपयोगिता की कसौटी पर परखते हुए परीक्षण किया जाये तो प्रतीत होगा कि हमारा अधिकांश धन निरर्थक कामों में खर्च होता है । रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, जैसी आवश्यक बातों में जितना व्यय होना चाहिए उसकी उपेक्षा उन्हीं चीजों में विलासिता एवं आडम्बर जुड़ जाने से खर्चे की बहुत अधिक वृद्धि हो जाती हैं । बीड़ी, पान, तम्बाकू, सिनेमा, शृंगार-प्रसाधन कीमती पोशाकें, फैशन के उपकरण, सजावट, मनोरंजन, अन्ध-विश्वास, ढकोसले, मटरगस्ती, विवाह-शादी आदि के जंजालों में कितना खर्च बढ़ता है इसका हिसाब लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि जीवनोपयोगी कार्यों की अपेक्षा इन बेकार बातों में पैसे की बर्बादी कहीं अधिक होती है । आध्यात्म का सिद्धान्त है कि पैसे को लक्ष्मी का प्रतीक मानकर उसे केवल जीवनोत्कर्ष के आवश्यक कामों में ही खर्च किया जाय । अपव्यय के नाम पर एक फूटी-कौड़ी भी बर्बाद न होने दी जाय । यदि इस आदर्श के आधार पर अपव्यय को कठोरतापूर्वक रोका जा सके तो आधे से अधिक अर्थ-संकट देखते-देखते दूर हो सकता है । उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आसानी से कमाया जा सकता है । तंगी तो अपव्यय के कारण ही बढ़ती है । इसकी रोक-थाम तभी सम्भव है जब मनुष्य अपनी अर्थनीति को अध्यात्म तत्त्व-ज्ञान के आदर्शों के अनुरूप निर्धारित करते हुए उस पर चलने का प्रयत्न करे ।

अपव्यय, अपनी हैसियत से अधिक खर्च करना, एक ऐसी घृणित बुराई है जिससे अन्य अनेकों दोष, दुर्गुण पैदा होते हैं । अधिकांश पाप प्रवृत्तियों का जन्म इसी अत्याचार के कारण होता है । जुआ, चोरी, ठगी, बेईमानी, व्यभिचार, अनीति, अपहरण, रिश्वत, लूट-हत्या, आदि के कुकर्म बहुत कुछ अपव्यय को आदत के कारण उत्पन्न हुई तंगी को पूरा करने के लिए ही करने पड़ते हैं । यदि मनुष्य अपने खर्चे को सीमित रखे, अनावश्यक बातों में एक पाई भी नष्ट न होने दे, सादा सात्त्विक एवं सरल जीवन-क्रम बना कर रहे तो वह अर्थ-संकट जिसके कारण सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई है सहज ही दूर हो सकता है ।

आलस्य और उपेक्षा वृत्ति छोड़कर यदि लोग परिपूर्ण श्रम एवं मनोयोगपूर्वक अपना कार्य सर्वोत्तम बनाने की भावना लेकर करें तो निश्चय ही उपार्जन की क्षमता भी बढ़ेगी । खरे काम का सर्वत्र स्वागत किया जाता है और उसका उचित मूल्य भी मिलता है । अपनी योग्यता एवं क्षमता बढ़ाते चलने के लिए जो भी प्रयत्न करेगा । उसकी उपार्जन शक्ति भी निश्चित रूप से बढ़ेगी । उपार्जन बढ़ाने का कभी अवसर ही न आवेगा । ईमानदारी का पैसा फलता-फूलता है । वह चोरी, बीमारी, मुकदमेबाजी, ऐयाशी एवं फिजूल-खर्ची में बर्बाद न होगा, पीसने की कमाई खर्च करते हुए दर्द लगता है । ईश्वर भी ऐसे पेसे में 'बरकत' देता है । यदि हम अपनी नीति को ईमानदारी और सादगी की बनाते हुए आर्थिक अध्यात्म को अपनाने का प्रयत्न करें तो आर्थिक तंगी जैसी कठिनाई का दुःख भुगतने का अवसर ही सामने न आवेगा ।

सामाजिक दृष्टि से देखें तो व्यक्तिगत धन-संग्रह एवं विलास करने की प्रवृत्ति ने समाज में गरीबी, बेकारी, तंगी, अपव्यय की प्रवृत्ति, ईर्ष्या एवं अनाचार को जन्म दिया है । यदि समानता और सदुपयोग का आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखते हुए संचय के स्थान पर वितरण की, संविभाजन की भावना काम करे तो जितनी वस्तुएँ आज संसार में मौजूद हैं उन्हीं से सब का गुजारा आनन्दपूर्वक हो सकता है । संचय, स्वामित्व एवं अपव्यय की बुराईयों ने धन को एक समस्या बना रखा है । अर्थ-तन्त्र की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मिक दृष्टिकोण से जब तक चलाया न जायगा तब तक उसकी उलझन सुलझेगी भी नहीं । कोई थोड़ा अधिक भी कमाने लगा या कुछ आकस्मिक लाभ हो गया तो उससे भी क्या बनने वाला है ? व्यक्ति एवं संसार की निजी तथा सामूहिक समस्या हल अध्यात्म सिद्धान्तों के अनुसार ही होगा । कम आमदनी में भी स्वर्गीय आनन्द जैसा सुख प्राप्त करते हुए जी सकने का प्रयत्क्ष उदाहरण ऋषियों ने अपनी जीवन-चर्या के रूप में प्रस्तुत किया था । वह मार्ग हम सब के लिए आज भी खुला पड़ा है । अध्यात्म हमें आर्थिक तंगी से छुड़ा सकता है और कम आमदनी होते हुए भी धन कुबेरों से बड़ी-चढ़ी प्रसन्नता का रसास्वादन दे सकने में समर्थ हो सकता है ।

स्वजन-परिजनों का सहयोग भी हमारी सज्जनता पर निर्भर है । सद्गुणों के आकर्षण से दूसरों को अपने वशवर्ती बना सकने से बढ़ा-चढ़ा वशीकरण मन्त्र इस संसार में और कोई नहीं है । मिठाई को बच्चों से लेकर बूढे तक सभी पसन्द करते हैं । मधुरता, प्रेम, नम्रता, सज्जनता एवं उदारता का व्यवहार करना जिसे आता है उसे सहयोग देने के लिए अपने-पराये सभी तत्पर रहेंगे । सज्जनता मिठाई से अधिक मीठी होती है और उसकी सुगन्ध प्राप्त करने के लिए हर मनुष्य लालयित फिरता रहता है । यह मिठास यदि हम अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लें तो यह शिकायत करने का कोई कारण न रह जायगा कि दूसरे लोग हमें सहयोग नहीं देते या हमें दूसरों के दुर्व्यवहार का सामने करना पड़ता है । माना कि संसार में बुरे लोग बहुत हैं फिर भी सज्जनता के आगे बुराई को भी नरम बनना पड़ता है । प्रकाश की शक्ति अन्धकार से अधिक है । बुराई को परास्त करने की परिपूर्ण सामर्थ्य भलाई में मौजूद है । यदि अपने गुण कर्म और स्वभाव में अध्यात्म की सज्जनता का-समुचित अंश विद्यमान रहे तो दूसरों का विरोध असहयोग एवं दुर्भाव अपने लिए तो कम हो ही सकता है । प्रेम की प्रतिक्रिया अन्ततः सुखद परिणाम साथ लेकर ही वापिस लौटती है ।

हम अपने आपको सुधारकर अपनी समस्त अस्त-व्यस्ताओं को सुव्यवस्था एवं सुसम्पन्नता में बदल सकते हैं । यह कैसे सम्भव होगा इसकी विस्तृत विवेचना पाठकों को आगामी पृष्ठों में पढ़ने को मिलेगी । पर हमें इतना तो समझ लेना चाहिए कि हमारे सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर में अगणित शुभ सम्भावनाऐं ओत-प्रोत हैं । पर वे प्रसुप्त पड़ी हैं । अध्यात्म का प्रकाश पड़ने से वे जाग्रत हो सकती हैं और हमें नर से नारायण बना सकती हैं ।

## आत्म-निर्माण एक प्रबल पुरुषार्थ

अपना उद्धार करना संसार का उद्धार करने का प्रथम चरण हैं । समाज या संसार कोई अलग वस्तु नहीं, व्यक्तियों का समूह ही समाज या संसार कहलाता है । यदि हम संसार का उद्धार या कल्याण करना चाहते हैं तो वह कार्य अपने आप से आरम्भ करना चाहिए । क्योंकि अपना आपा ही सब से निकट है । अपने को सुधारना सब से अधिक सरल एवं सम्भव हो सकता है । दूसरे लोग कहना मानें या न मानें, बताये हुए रास्ते पर चलें या न चलें यह संदिग्ध हैं, पर अपने ऊपर तो अपना नियन्त्रण है ही । अपने को तो अपनी मर्जी के अनुसार बना या चला सकते हैं । इसीलिए विश्वकल्याण का कार्य सबसे प्रथम आत्मकल्याण का कार्य हाथ लेते हुए ही आरम्भ करना चाहिए ।

संसार का एक अंश हम भी हैं । अपना जितना ही सुधार हम कर लेते हैं उतने ही अंशों में संसार सुधर जाता है । अपनी सेवा भी संसार की ही सेवा है । एक बुरा व्यक्ति अनेकों तक अपनी बुराई का प्रभाव फैलाता है और लोगों के पाप तापों एवं शोक सन्तापों में अभिवृद्धि करता है। इसी प्रकार एक अच्छा व्यक्ति अपनी अच्छाई से स्वयं ही लाभान्वित नहीं होता वरन् दूसरे अनेकों लोगों की सुख-शान्ति बढ़ाने में सहायक होता है । सामाजिक होने के कारण मनुष्य स्वभावतः अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ता है । फिर जो जितना ही मनस्वी होगा वह अपनी अच्छाई या बुराई का भला-बुरा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्रभाव भी उसी अनुपात से संसार में फैलेगा । इस प्रकार मनुष्य अपना सुधार करने में लग जाय तो वह संसार का बहुत भारी सुधार कर सकता है । अपनी सच्ची सेवा ही विश्व-सेवा का ही एक अंग मानी जा सकती है । संकुचित भौतिक स्वार्थों की इसीलिए ऋषियों ने निन्दा की है कि उनमें ग्रस्त होकर मनुष्य अपने धर्म कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने लगता है ।

दूरदर्शिता पूर्ण स्वार्थ भी परमार्थ ही होता है । आत्मा का स्वार्थ जिन विचारों और कार्यों द्वारा सिद्ध होगा उन्हीं के माध्यम से संसार का हित साधन भी बनेगा उत्कृष्ट स्तर का स्वार्थ वस्तुतः परमार्थ ही बन जाता है । अपना आत्म-सन्तोष, आत्म-सुख, आत्म-कल्याण सद्भावनाओं के अपनाने एवं सत्कार्य करने से ही सम्भव होता है । यही प्रक्रिया लोकहित का माध्यम बन जाती है । सत्कर्म स्वतः ही परोपकार होते हैं । आत्म-कल्याण उन्हीं गति-विधियों को अपनाने से सम्भव है जिनसे जन-साधारण का हित साधन होता है ।

मानव-जीवन का सदुपयोग परमार्थ से है । परमार्थ का तात्पर्य है, सच्चे, स्वार्थ की साधना । झूठा स्वार्थ वासनाओं और तृष्णा से ग्रसित होकर अकर्म या कुकर्म करने में माना गया है । ऐसे मार्ग पर चलने वाला क्षणिक लाभ भले ही प्राप्त कर ले अन्ततः उसे लोक-निन्दा, अविश्वास, घृणा, असन्तोष, राजदण्ड, आत्म-प्रतारणा, विक्षोभ, असन्तोष, नरक एवं पतन के रूप में ही फल भोगना पड़ता है । इसलिए मनीषियों ने उसे निन्दित एवं हेय ठहराया है । परमार्थ की प्रशंसा इसलिए की है कि वह प्रारम्भ में थोड़ा कष्ट-साध्य भले ही हो, वासना और तृष्णा की सीमित पूर्ति ही उससे भले होती है पर अन्ततः सब प्रकार की प्रगति के द्वारा उसी से खुलते हैं । परमार्थी व्यक्ति अपनी सच्चरित्रता, कर्त्तव्य परायणता एवं उदारता के कारण दूसरों के हृदय में अपने लिए स्थान बनाता है और उनका सद्भाव, सहयोग पाकर लौकिक दृष्टि से भी लाभ में रहता है, और आध्यात्मिक दृष्टि से तो आत्मसन्तोष का सुख हमें निरन्तर मिलता हो रहता है ।

अपने जीवन की सार्थक बनाने की दृष्टि से भी और विश्वहित साधन का पुण्य परमार्थ करने की दृष्टि से भी हमें सबसे पहले यह प्रयत्न करना चाहिए कि अपना व्यक्तित्त्व निर्दोष, निर्मल एवं निष्पाप हो । दोष, पाप और मल ही हमारी प्रगति में सबसे बड़े बाधक हैं । उन्हें जितना ही हटाया या मिटाया जावेगा उतनी ही अन्तर्ज्योति प्रदीप्त होती चलेगी और उसके प्रकाश में जीवन का प्रत्येक पहलू प्रकाशवान बनता चलेगा । उस प्रकाश में भौतिक एवं आत्मिक प्रगति की सभी समस्याएँ अपने आप ही सुलझती चलेंगी ।

अध्यात्म विद्या का प्रथम सूत्र यह है कि प्रत्येक भली-बुरी परिस्थिति का उत्तरदायी हम अपने आपको मानें । वाह्य समस्याओं का बीज अपने में ढूँढें और जिस प्रकार का सुधार बाहरी घटनाओं, व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में चाहते हैं उसी के अनुरूप अपने गुण कर्म स्वभाव में हेर-फेर प्रारम्भ कर दें । भीतरी सुधार बाहरी समस्याओं को सुधारने में सबसे बड़ा सबसे प्रभावशाली उपाय सिद्ध होता है । माना कि दूसरों की गलतियाँ और बुराइयाँ भी हमें परेशानी करती हैं । और अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी करके प्रगति का द्वार रोकती हैं । संसार में बुरे लोग हैं और उनमें बुराइयाँ भी कम नहीं हैं इस बात से कोई इन्कार नहीं करता, पर साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि कोई वस्तु सजातीय एवं अनुकूल परिस्थितियों में ही बढ़ती एवं पनपती हैं । बुराई को अपना रूप प्रकट करने का अवसर तभी मिलेगा जब वैसी ही बुराई अपने अन्दर भी हो । अपना स्वभाव उत्कृष्ट हो तो बुरे लोगों को भी झक-मारकर निरस्त होना पड़ता है ।

क्रोधी मनुष्य को आक्रमण करने का अवसर उसी पर मिलता है जो स्वयं भी क्रोधी हो । क्रोध से क्रोध बढ़ता है और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया द्वन्द्वयुद्ध का रूप धारण कर लेती है । यदि एक व्यक्ति नम्र, सहनशील, हँसमुख, क्षमाशील और दूरदर्शी हो तो क्रोधी स्वभाव का मनुष्य भी उसे उत्तेजित नहीं कर पाता । वह अपनी नम्रता और सज्जनता से उसे शान्त कर देता है और क्रोध का जो मूल कारण था उसके समाधान का भी उपाय सोच लेता है । इसके विपरीत यदि दोनों ही क्रोधी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हुए तो बड़ा कारण न होते हुए भी केवल शब्दों की उच्छृखंलता लेकर परस्पर लड़ मरते हैं और मित्रता शत्रुता में बदल जाती है ।

दुराचारी की दाल वहीं गलती हैं जहाँ सदाचार का पक्ष दुर्बल हो । ठग हमेशा लोभी पर हाथ साफ करते हैं । दरिद्रता, आलसी के घर आती है, बीमारियाँ असंयमी पर हावी होती हैं, भय डरपोक को सताता है, अदूरदर्शी एवं जल्दबाज को चिन्ताऐं घेरती हैं । यदि अपना व्यक्तित्व सच्चा खरा और मजबूत हो तो इन बाहरी विकृतियों को उलटे पाँवों लौटना पड़ेगा । पत्थर पर तलवार का प्रहार क्या सफल होगा ? ताली दोनों हाथों से बजती हैं । मक्खी गन्दगी पर बैठती है । घाव होगा तो उसमें कीड़े भी पड़ेंगे । यदि अपना पक्ष पहले से ही स्वच्छ रखा जाय तो सारे संसार के दोष मिलकर भी व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ सकते । चन्दन के पेड़ में लिपटे रहने वाले अनेकों सर्प उसे विषैला नहीं बना सकते । दुष्टों की दुष्टता-सज्जनों को खरोच भले ही पहुंचावे पर उन्हें परास्त नहीं कर सकती । इतिहास का पन्ना-पन्ना इस बात का साक्षी है कि सज्जनता और दुर्जनता के युद्ध में सज्जनता को नहीं, दुर्जनता को ही परास्त होना पड़ा है ।

कोई अध्यात्मवादी यह स्वीकार नहीं कर सकता कि उसे ग्रहदशा ने, भाग्य ने, परिस्थितियों ने या दूसरों ने सताया है । वह सदा यही मानेगा कि अपने भीतर कोई कमी रह गई जिसके कारण दुष्टता को सफल होने का अवसर मिल गया । प्रत्येक बाह्य आघात या असफलता का कारण वह अपने अन्दर ढूँढता है और जो त्रुटियाँ सूझ पड़ती हैं उन्हें सुधारने के लिए जुट जाता है । इस तरीके को अपनाने से तीन-चौथाई समस्याऐं हल हो जाती हैं । एक-चौथाई जो अनिवार्यतः बनी रहती हैं उन्हें वह उपेक्षा पूर्वक अपनी सहन-शीलता के बलबूते हँसते खेलते भुगत लेता है । कठिनाई के कारण दूसरे लोग जिस पर उद्विग्न रहते और रोते चिल्लाते हैं वैसी परिस्थिति उसकी गम्भीरता उत्पन्न ही नहीं होने देती । तितिक्षा और सहन-शीलता के बल पर बड़े से बड़े अभाव एवं कष्टों को हँसते हुए भुलाया या भुगता जा सकता है ।

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि बाहर से जो बाधाऐं उपस्थित होती हैं उन्हें हटाने का कोई प्रयत्न न किया जाय । वह तो करना ही चाहिए । संघर्ष में ही जीवन है । प्रत्येक पुरुषार्थी को मार्ग की बाधाएँ हटाकर ही, उनसे छूटकर ही अपना मार्ग बनाना पड़ता है । पर छूटने की शक्ति भी तो आत्मनिर्माण से ही प्राप्त होती है, यदि मनुष्य अस्तव्यस्त मनोभूमि का हुआ तो उसके लिए बाधाओं से लड़कर प्रगति का मार्ग बना सकना तो दूर होगा, उलटे उनकी कल्पना और आशंका से ही भयभीत होकर यह मानसिक सन्तुलन खो देगा और चिन्ता एवं परेशानी से अपना स्वास्थ्य तक गँवा देगा ।

अपने स्वभाव और दृष्टिकोण को सुधारने की ओर जिसका ध्यान है जो अपनी त्रुटियों को ढूँढने और हटाने में सचेष्ट है उसे बुद्धिमान और दूरदर्शी कहना चाहिए । अपनी परिस्थितियाँ जिन्हें सुधारनी हों, अपने भाग्य और भविष्य को जो उज्जवल देखना चाहते हों उनके लिए एक मात्र उपाय यही है कि अपनी दुर्बलता पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाय और यह पता लगाया जाय कि अब की अपेक्षा हम किन श्रेष्ठताओं को और भी बढ़ा सकते हैं और किन त्रुटियों का किस सीमा तक किस प्रकार संशोधन कर सकते हैं । यह आकाँक्षा जितनी ही तीव्र होगी जितना ही इस दिशा में प्रयत्न बढ़ेगा उतना ही उत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा ।

आहार और विहार के असंयम की कठोर समीक्षा करते हुए यदि अपना रहन-सहन सुव्यवस्थित करने पर ध्यान दिया जाय, जिह्वा और कामेन्द्रिय पर काबू रखा जाय, अनियमितता को हटा कर दिनचर्या को सुव्यवस्थित बनाया जाय, आलस्य को छोड़कर समय के एक-एक क्षण को मनोयोग पूर्वक निर्धारित कार्यक्रम में संलग्न रखा जाय तो शरीर का बिगड़ा हुआ ढंग देखते-देखते कुछ ही दिनों में ठीक हो सकता है और बीमारी कमजोरी के कारण जो आये दिन चिकित्सकों के दरवाजे पर नाक रगड़नी पड़ती है उससे सहज ही छुटकारा मिल सकता है । दवाई का खर्च, अस्वस्थता के कारण पीड़ा एवं परेशानी, काम का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हर्ज, सम्बन्धियों का तिरस्कार, कुरूपता, बुढ़ापा एवं अकाल-मृत्यु की छाया इन सब विपत्तियों का तीन-चौथाई निवारण मनुष्य स्वयं कर सकता है । यदि वह असंयम से छुटकारा पा सके तो अस्वस्थता भी उसका पीछा जरूर छोड़ देगी ।

मानसिक दृष्टि से अगणित व्यक्ति चिन्ता, भय, शोक, क्षोभ, आवेश, उत्तेजना, ईर्ष्या, द्वेष निराशा, आशंका,आदि से ग्रस्त होकर उद्विग्न जीवन बिताते हुए नारकीय यन्त्रणायें सहते रहते हैं । इनके कारणों की तालाश करने पर वस्तुस्थिति बहुत ही सामान्य होती है । आत्म-हत्या तक कर बैठने वालों के संक्षोभ का कारण तलाश करने पर बात बहुत ही सामान्य सी निकलती है, कई बार तो इतनी छोटी होती है कि उसे उपेक्षा से गुजारा जा सकता था, या कोईदूसरा उपाय उस क्षोभ से बच निकलने का आसानी से ढूँढा जा सकता था, पर उतावली एवं आवेश में वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपनी विवेकशीलता खो बैठे और न करने लायक कर गुजरे । ऐसे उत्पाती, अधीर और आवेशग्रस्त मनुष्य साधारण घटनाओं को लेकर विक्षुब्ध बने फिरते हैं और अपने लिए तथा अपने सम्बन्धित लोगों के लिये अशान्ति की ज्वाला प्रज्वलित करते रहते हैं । यदि इस स्थिति की भयानकता को मनुष्य समझे और अपने को धैर्यवान, गम्भीर, विचारशील एवं हँस खेलकर कठिनाईयों को काट देने की आदत बना ले तो निश्चय ही उसका मन सदा सन्तुलित और प्रसन्न बना रहे । कुढ़ने की अपेक्षा समस्या का हल वह अधिक आसानी से सोच सके और गई गुजरी परिस्थितियों में भी आशा एवं उत्साह की कोई किरण उपलब्ध कर ले ।

मन को सन्तुलित करने के लिए किया हुआ प्रयत्न जीवन के सारे स्वरूप को ही बदल देता है । नरक को स्वर्ग में परिवर्तित करने की कुन्जी मनुष्य के हाथ में है । सोचने का तरीका यदि बदल डाले, खिलाड़ी की भावना रख कर जिन्दगी का खेल खेले, नाटक के पात्रों की तरह अभिनय का आनन्द लेते हुए दिन गुजारे, बुराई में से भलाई और निराशा में से आशा की किरणें ढूँढने का अभ्यास करे तो कोई कारण नहीं कि रोता रहने वाला मनुष्य हँसते खिलते गुलाब के रूप में परिणित होकर न केवल अपनी ही मानसिक समस्या हल कर ले वरन् पड़ोसियों और सम्बन्धियेां के लिये भी प्रसन्नता, आशा एवं प्रेरणा का केन्द्र बन जाय ।

हमें अपना उद्धार आप करना चाहिए, अपने को सुधारना और सँभालना चाहिए । आज की उपेक्षा कल अधिक निर्मल और अधिक उत्कृष्ट बनने का प्रयत्न करना चाहिए । यदि इस मार्ग को अपना सकना हमारे लिए सम्भव हो सका तो केवल अपना वरन् सारे समाज का, सारे विश्व का भी हित साधन करने का श्रेय प्राप्त करेंगे । युग निर्माण का कार्य व्यक्ति निर्माण से ही आरम्भ होता है । संसार की सेवा करने का ब्रत लेने वाले प्रत्येक परमार्थी को अपने आपकी सेवा करने का व्रत लेकर विश्व मानव की उतने अंश में सेवा करने को तत्पर होना चाहिए जितने का कि उत्तरदायित्व अपने ऊपर है । समस्त संसार की सेवा कर सकना कठिन है । अपनी सेवा तो आप ही कर सकते हैं । समस्त संसार को सुखी बनाना और सन्मार्ग पर चलाना यदि अपने लिए कठिन हो तो अपने को सुखी-सन्तुलित एवं सन्मार्गगामी तो बना ही सकते हैं । दूसरों का उद्धार कर सकना उसी के लिए सम्भव होता है जो अपना उद्धार आप कर सकने में समर्थ होता है ।

## आत्म शोधन-अध्यात्म का श्री गणेश

कहावत है कि अकल और दूसरों की सम्पत्ति, चतुर को चौगुनी और मूरख को सौगुनी दिखाई पड़ती रहती है । संसार में व्याप्त इस भ्रम को महामाया का मोहक जाल ही कहना चाहिये कि हर व्यक्ति अपने को पूर्ण निर्दोष और बुद्धिमान मानता है । न तो उसे अपनी त्रुटियाँ सूझ पड़ती हैं और न अपनी समझ में दोष दिखाई पड़ता है । इस एक दुर्बलता ने मानव-जाति की प्रगति में इतनी बाधा पहुँचाई है, जितनी संसार की समस्त अड़चनों में मिलकर भी न पहुँचाई होगी ।

अपनी निर्दोषिता के बारे में फैले हुए व्यापक भ्रम को देखते हुए मानव-जाति की मूर्खता की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जितनी भर्त्सना की जाय उतना ही कम है । सृष्टि के सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान माना जाने वाला मनुष्य जब यह सोचता है कि ''दोष तो दूसरों में ही है, उन्हीं की निन्दा करनी है, उन्हें ही सुधारना चाहिये । हम स्वयं तो पूर्ण निर्दोष हैं, हमें सुधारने की कोई जरूरत नहीं ।'' तब यह कहना पड़ता है कि उसकी तथाकथित बुद्धिमत्ता अवास्तविक है । चौरासी लाख योनियों में अनेक दोष और कुसंस्कार जीव पर चढ़े रहते हैं, मनुष्य योनि में उसे यह अवसर मिलता है कि उन पिछली त्रुटियों और गन्दगियों का परिष्कार कर सके, अपने को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करे । इस शरीर का सबसे बड़ा उद्देश्य यह है कि मल-विक्षेप और आवरणों को ढूँढ-ढूँढ कर देखे जो पिछले जन्मों की दुरावस्था में उसके गले बँधे चले आयें हैं । इस ढूँढ खोज के पश्चात् इस बात का प्रबल प्रयत्न करे कि इन कुसंस्कारों को किस प्रकार हटा कर अपने को अधिक स्वच्छ निर्मल एवं प्रगतिशील बनाये ।

प्रगति की स्वाभाविक गति में सबसे बड़ा व्यवधान यह है कि मार्ग को रोकने वाली सबसे बड़ी बाधा का स्वरूप वह समझ नहीं पाता और न उसको हटाने का प्रयत्न रहता है । पेट में दर्द हो और सिर पर दवा मली जाय तो कष्ट कैसे दूर होगा ? अपने दोनों दुर्गणों के कारण जीवन कम अस्त-व्यस्त बना रहता है पर उसका कसूर दूसरों के मत्थे मढ़ते रहा जाय तो इसमें झूठा आत्म-सन्तोष भले ही कर लिया जाय, समस्या का हल कहाँ सम्भव हो सकेगा ? कहते हैं कि भगवान ने अक्ल की कुल डेढ़ मात्रा पैदा की है जिसमें से एक तो हर मनुष्य अपने में मानता है और शेष आधी में सारे संसार का काम चलता हुआ देखता है । इस दृष्टि दोष के कारण अपनी गल्तियों का सुधार कर सकना तो दूर उलटे जब काई उस ओर इशारा भी करता है तो हमें अपना अपमान दिखाई पड़ता है । दोष दिखाने वाले को अपना शुभ-चिन्तक मान कर उसका आभार मानने की उपेक्षा मनुष्य जब उलटे उस पर क्रुद्ध होता है, शत्रुता मानता है और अपना अपमान अनुभव करता है तो यह कहना चाहिये कि उसने सच्ची प्रगति की ओर चलने का अभी एक पैर उठाना भी नहीं सीखा ।

स्कूली शिक्षा के मूल्य पर कई व्यक्तियों को ऊँची नौकरी मिल जाती है । पूँजी होने पर ब्याज भाड़े से या किसी ढर्रे के व्यापार को अपनाये रहने से धन कमाये रहना भी सरल हो जाता है । शरीर और मस्तिष्क की अच्छी बनावट होने से सुन्दरता, चतुरता एवं कला-कौशल में निपुणता मिला जाती है । संयोग एवं परिस्थितियाँ भी किसी को सम्मानस्पद स्थिति पर ले जाकर बिठा देती हैं । इन माध्यमों से कितने ही लोग बड़े बन जाते हैं और सफलता का गर्व-गौरव अनुभव करते रहते है । पर सारे आधार बाहरी दिखावा मात्र है । संयोगवश या दुर्भाग्य से किसी कारण यह परिस्थितयाँ बदल जायँ और सम्मान छिन जाय तो ऐसे व्यक्ति सर्वथा निस्तेज और दीन-हीन दिखाई पड़ते हैं । अपने निज के सद्गुण न होने के कारण परिस्थितियों के आधार पर बड़े रहने वाले व्यक्तियों को ही राजा से रंक और अमीर से भिखारी होते देखा जाता है । जिसमें अपने गुण होंगे वह गई-गुजरी परिस्थिति में से भी अपने लिए रास्ता निकालेगा और नरक में जायगा तो वहाँ भी जमादार बनकर रहेगा ।

सरकारी ऊँचे पदों पर काम करने वाले व्यक्ति जब सेवानिवृत्त होते हैं तो उनमें से कितने ही मौत के दिन पूरे करते हुए शेष जीवन नीरस, निस्तेज और निकम्मा ही व्यतीत करते हैं । पद ने इन्हें जो गौरव दिया था वह पद छिनते ही चला गया । व्यक्तिगत सद्गुणों के अभाव में अब वे एक निकम्मे, निरर्थक, मनुष्य की तरह ही बने हुए रहते हैं, जिनकी कहीं कोई पूछ नहीं । किन्तु यदि उनमें वैयक्तिक सद्गुण रहे होते तो सेवा निवृत्त होकर अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा के आधार पर जहाँ भी रहते हैं वहीं नवीन चेतना उत्पन्न करते ।

प्राचीनकाल में वानप्रस्थी और सन्यासी लोग गृहत्याग देने के पश्चात् भी समाज की असाधारण सेवा करते थे पर आज तो लाखों साधु-महात्मा समाज के लिए भारभूत होकर निरर्थक जीवन बिताते हैं । इसका एक मात्र कारण इतना ही होता है कि उनमें अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ होता । गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से वे पिछड़े हुए या अविकसित होते हैं । ऐसे दशा में जब तक वे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


गृहस्थ या उद्योग के किसी ढर्रे में फिट थे तब तक कुछ काम कर भी सकते थे पर वे साधन न रहने पर एकाकी विरक्त जीवन में उन्हें शून्यता के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता ।

प्रगति की जड़ व्यक्तित्व को विकसित करने वाले सद्गुणों की मात्रा पर निर्भर रहती है । यह जितनी अधिक होती है उतना ही व्यक्ति सुदृढ़ या उपयोगी हो सकेगा । ऐसे व्यक्ति जहाँ भी जिस जिस परिस्थिति में भी रहते हैं वहीं अपनी उपयोगिता और आवश्यकता देखते हैं । हर स्थिति में उनका स्वागत और सम्मान होता है । अन्धे, अपाहिज और दरिद्रों में भी कितने लोग ऐसे होते हैं जिनकी समीपता को लोग अपना सौभाग्य समझते हैं । इसके विपरीत कितने ही साधन सम्पन्न लोगों से वे भी मन ही मन घोर घृणा करते हैं जो उनसे निरन्तर लाभ उठाते रहते हैं । सद्गुण तो वह जादू हैं जिसकी प्रशंसा शत्रु को भी करनी पड़ती है ।

किसने कितनी उन्नति की इसकी सच्ची कसौटी यह है कि उस मनुष्य के दृष्टिकोण और स्वभाव में कितना परिष्कार हुआ ? किसी की बाह्य स्थिति को देखते हुए उसकी उन्नति अवनति का अन्दाज नहीं किया जा सकता । कितने ही बेवकूफ और बदतमीज आदमी परिस्थितियों के कारण शहनशाह बने होते हैं, कितने ही लुच्चे लफंगे षड्यन्त्रों के बल पर सम्मान के स्थानों पर अधिकार जमाये बैठे होते हैं । कई ऐसे लोग, जिन्हें धर्म का क, ख, ग, घ, सीखना बाकी है, धर्मगुरु के पद पर पुजते देखे जाते हैं । यह संसार विडम्बनाओं से भरा है । कितने ही व्यक्ति अनुचित रीति से सफलता प्राप्त करते हैं और अयोग्यताओं से भरे रहते हुए भी सुयोग्यों पर हुकूमत चलाते हैं । इस विडम्बना के रहते हुए भी व्यक्तित्व के विकास का, सुसंस्कारिता और श्रेष्ठता का मूल्य किसी प्रकार कम नहीं होता । वहा जहाँ कहीं भी होगा । अपना प्रकाश फैला रहा होगा, अपनी मनोरम सुगन्ध फैला रहा होगा । गई गुजरी परिस्थितियों में भी उसने अपने उत्कृष्ट दृष्टिकोण के कारण उस छोटे से क्षेत्र में एक नये स्वर्ग की रचना कर रखी होगी । मानवीय स्वभाव की श्रेष्ठता गुलाब के फूल की तरह महकती है उसे मनुष्य ही नहीं, भौंरे तितली और छोटे-छोटे नासमझ कीड़े तक पसन्द कर रहे होते हैं ।

बाहरी उन्नति की जितनी चिन्ता की जाती है, उतनी ही भीतरी उन्नति के बारे में की जाय तो मनुष्य दुहरा लाभ उठा सकता है । आध्यात्मिक दृष्टि से तो वह ऊँचा उठेगा ही साथ ही लौकिक सम्मान एवं भौतिक सफलताओं की दृष्टि से भी किसी से पीछे न रहेगा । किन्तु यदि आन्तरिक स्थिति को गया बीता रखा और बाहरी उन्नति के लिए ही निरन्तर दौड़-धूप होती रही तो कुछ साधन-सामग्री भले ही इकट्ठी कर ली जाय पर उसमें भी उसे शान्ति न मिलेगी कई धनी मानी और बड़े कारोबारी व्यक्ति सामान्य स्तर के लोगों की अपेक्षा भी अधिक चिन्तित और दु:खी देखे जाते हैं । कारण यही है कि कार्यविस्तार के साथ उनकी उलझने तो बढ़ती हैं पर उन्हें सुलझाने का उचित दृष्टिकोण न होने से उन्हें अधिक उद्विग्न रहना पड़ता है । ऐसे लोग आमतौर से निरन्तर उद्विग्न रहते कुढ़ते और झुझलाते देखे जाते हैं । सम्पन्नता का सुख होता है । धन का सदुपयोग करके तथापद एवं मान द्वारा उपलब्ध प्रभाव को परमार्थ में लगा कर ऐसे ही लोग ईश्वर प्रदत्त सुविधाओं का समुचित लाभ उठाया करते हैं । दूसरे लोग तो सर्प की तरह चौकीदारी करते हुए निरन्तर उद्विग्न रहने का उलटा भार वहन करते हैं ।

आन्तरिक परिष्कार की ओर समुचित ध्यान देना यही बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का प्रथम चरण है । अध्यात्म का पहला शिक्षण यही है कि मनुष्य अपने स्वरूप को समझे । यह सोचे कि मैं कौन हूँ ? क्या हूँ ? और क्या हुआ हूँ ? आत्म-चिन्तन ही साधना का प्रथम सोपान कहा जाता है । यह चिन्तन ईश्वर जीव-प्रकृति की उच्च भूमिका से आरम्भ नहीं किया जा सकता । कदम तो क्रमश: ही उठाये जाते हैं । नीचे की सीढ़ियों को पार करते हुए ही ऊपर को चढ़ा जा सकता है । सोऽहम् की ध्वनि करने से पूर्व, अपने को सच्चिदानन्द ब्रह्म मानने से पूर्व, हमें साधारण जीवन पर विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी और यह देखना पड़ेगा कि ईश्वर का पुत्र- जीव आज कितने दोष दुर्गुणों से

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ग्रसित होकर पामरता का उद्विग्न जीवन-यापन कर रहा है । माया के बन्धनों ने उसे कितनी बुरी तरह जकड़ रखा है और षडरिपु पग-पग पर फैला त्रास दे रहे हैं । माया का अर्थ है वह अज्ञान जिससे ग्रस्त होकर मनुष्य अपने को निर्दोष और सारी परिस्थितियों के लिए दूसरे को उत्तरदायी मानता है । भव-बन्धनों का अर्थ है-कुविचारों कुसंस्कारों और कुकर्मों से छुटकारा पाना । अपने दोषों की ओर से अनभिज्ञ रहने से बड़ा प्रमाद इस संसार में और कोई नहीं हो सकता, इसका मूल्य जीवन की असफलता का पश्चात्ताप करते हुए ही चुकाना पड़ता है ।

अध्यात्म मार्ग पर पहला कदम बढ़ाते हुए साधक को सबसे पहले आत्म-विश्वास चिन्तन की साधना करनी पड़ती है । ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, सत्य, अहिंसा आदि उच्चतम आध्यात्मिक तत्त्वों को अपनाने से पहले उसे छोटी-छोटी त्रुटियों को संभालना होता है । परीक्षार्थी पहले सरल प्रश्नों को हाथ में लेते हैं और कठिन प्रश्नों को अन्त के लिए छोड़ रखते हैं । लड़कियाँ गृहस्थ की शिक्षा गुड़ियों के खेल से आरम्भ करती हैं । युद्ध में शस्त्र चलाने की निपुणता पहले साधारण खेल के रूप में उसका अभ्यास करके ही की जाती है । सबसे पहले एम० ए० की परीक्षा देने की योजना बनाना गलत है । पहले वाल कक्षा, फिर मिडिल, मैट्रिक, इण्टर, बी०ए० पास करते हुए एम० ए० का प्रमाण-पत्र लेने की योजना ही क्रमबद्ध मानी जाती है । सुधार के लिए सब से पहले सत्य, ब्रह्मचर्य दोष दुर्गुणों से करना चाहिए । उन्हें ढूँढना और हटाना चाहिए । इस क्रम से आगे बढ़ने वाले को जो छोटी-छोटी सफलतायें मिलती हैं उनसे उसका साहस बढ़ता चलता है । उस सुधार के जो प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं उन्हें देखते हुये बड़े कदम उठाने का साहस भी होता है और उन्हें पूरा करने का मनोबल भी संचित हो चुका होता है ।

जो असंयम, आलस, आवेश, अनियमितता और अव्यवस्था की साधारण कमजोरियों को जीत नहीं सका, वह षड्रिपुओं, असुरता के आक्रमणों का मुकाबिला क्या करेगा ? सन्त, ऋषि और देवता बनने से पहले हमें मनुष्य बनना चाहिए । जिसने मनुष्यता की शिक्षा पूरी नहीं की, वह महात्मा क्या बनेगा ?

जप-तप आवश्यक हैं । आत्म-कल्याण के लिए उनकी भी आवश्यकता है पर यह ध्यान रखना चाहिए कि गुण-कर्म स्वभाव में आवश्यक सुधार किए बिना न आत्मा की प्रगति हो सकती है न परमात्मा की । इसलिए आत्म-कल्याण के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-चिन्तन की साधना भी आरम्भ करनी चाहिये और उसका श्रीगणेश तप-त्याग जैसे उच्च आदर्शों से नहीं, गुण-कर्म स्वभाव का मानवोचित परिष्कार करते हुए व्यक्तित्व को सुविकसित करने से संलग्न होकर करना चाहिए ।

## हम पहले अपने को ही क्यों न सुधारें ?

सर्वत्र सुखों की अपेक्षा दुःखों की ही वृद्धि हो रही है, भलाई के स्थान पर बुराई ही पनप रही है, सज्जनों की अपेक्षा दुर्जनों का ही बाहुल्य हो रहा है, फलस्वरूप आनन्द और सन्तोष की अपेक्षा दुःख और असन्तोष की बढ़ोत्तरी दिखाई देती है । तृष्णा और वासना की ओर लोगों का झुकाव अधिक हो जाने से व्यक्ति, दूसरों के प्रति सेवा और सद्भावना का व्यवहार करने की अपेक्षा आक्रमणात्मक रुख अपनाये हुए हैं । दूसरों को हटाकर या किसी प्रकार से मजबूर करके उसके स्वत्वों का अपहरण करने और स्वयं मौज मजा करने की इच्छायें हर किसी के मन में काम करने लगी हैं । इससे परिणाम स्वरूप संघर्ष, हर क्लेश, असन्तोष, द्वेष आदि दुर्भावों की तथा अनाचार मूलक दुर्घटनाओं की अभिवृद्धि का कुचक्र चल पड़ा है । वासनाग्रसित मनुष्य अधिकाधिक इन्द्रिय सुखों की हविस से पागल होकर स्वाभाविक मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगा है फलस्वरूप बीमारी दुर्बलता और अल्प जीवन का शिकार उसे होना पड़ रहा है ।

इन परिस्थितियों में यदि कोई साधारण मनः स्थिति का व्यक्ति अपने चारों ओर अप्रिय, कष्टकर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दुर्गन्धित वातावरण अनुभव करेऔर उससे दुखी रहे तो स्वाभाविक ही है । आज अधिकांश व्यक्ति खिन्न और असन्तुष्ट दिखाई पड़ते हैं इसके कारण आवश्यकता की अपेक्षा साधन सामिग्री की कमी, वातावरण में अनाचार की अधिकता तथा असज्जनता दुष्टता से पूर्ण व्यवहार जैसे कारण ही प्रधान हैं ।

प्रश्न यह है कि क्या इन विषम परिस्थितियों के होते हुए भी हम उनसे किसी कदर अपने को अप्रभावित रख सकते हैं, उनकी प्रतिक्रिया से अपने को कम से कम प्रभावित किए अपना गुजारा कर सकते हैं, यदि ऐसा मार्ग मिलता है तो निश्चय ही इसे बड़ी बात कहा जा सकता है । यह बात ध्यान रखने की है कि हर परिस्थिति, हर घटना, हर वस्तु के लिए कुछ बातें अनुकूल हैं तो कुछ प्रतिकूल पड़ती हैं । उनका विशेष प्रभाव अनुकूलों पर ही होता है, प्रतिकूलों पर वह प्रभाव या तो नहीं होता, यदि होता भी है तो बहुत कम । आगे का विशेष प्रभाव सूखी लकड़ी पर जितना होता है उतना गीली पर नहीं । पानी को जितना रेतीली जमीन सोखती है पथरीली जमीन नहीं । बीमारी का आक्रमण जितना अशुद्ध रक्त वालों पर होता है, उतना शुद्ध रक्त वालों पर नहीं, रंग जितना साफ कपड़े पर चढ़ता है, उतना मैलेपर नहीं । इसी प्रकार बुरी परिस्थितियों, बुरे तत्वों और बुरी व्यक्तियों पर प्रभाव भी हल्के दर्जे की मनोभूमि के लोगों पर ही पड़ता है । ऊँची और सुसंस्कृत मनोभूमि वाले व्यक्ति उससे बहुत कम ही प्रभावित होते हैं ।

कुमार्ग पर ले जाने वाली अनेकों बुराइयाँ जगह-जगह मौजूद हैं और वे अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए भी सक्रिय रहती हैं । अनेकों व्यक्ति उनके चंगुल में फंसते हैं और अपने आपको उस रंग में इतना रंग लेते हैं कि फिर इस जाल से निकल सकना कठिन हो जाता है । जुएबाजी के, शराबखोरी के, सिनेमाबाजी के व्यभिचार के, आवारागर्दी के, शैतानी के अड्डे हर जगह पाये जाते हैं, और अपना समय स्वास्थ्य, धन लोक परलोक सभी कुछ गँवा कर लोग छूँछे हो जाते हैं । इससे उन बुराइयों की शक्ति और सफलता का अन्दाज सहज ही लगाया जा सकता है ।

पर यह प्रभाव खास तरह की उथली मनोभूमि के लोगों पर ही पड़ता है, वे ही इनके चंगुल में फँसते और बर्बाद होते हैं । उनका प्रभाव सभी पर पड़े ऐसी बात नहीं है । जहाँ एक व्यक्ति इन बातों में आसानी से ग्रस्त हो जाता है, वहाँ उसी क्षेत्र का, उसी का पड़ोसी उसी परिस्थितियों का व्यक्ति उन बातों से सर्वथा दूर रहता है । दूर ही नहीं रहता वरन् उन बुराइयों से घृणा भी करता है उनका विरोध भी । इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जाता है कि जहाँ वह व्यक्ति उन बुराइयों की चपेट में अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण सहज ही आ गया वहाँ दूसरा व्यक्ति उनसे अप्रभावित ही नहीं रहा वरन् उनके उन्मूलन में भी बहुत दूर तक सफल हुआ । इससे यह अन्दाज भी लगता है कि बुराइयों में, उनके अड्डों में अपना प्रभाव विस्तार करने की जो शक्ति है वह वहीं तक सीमित है जहाँ व्यक्तियों की मानसिक दुर्बलताएँ उनके अनुकूल पड़ती हों, यदि मनोभूमि परिष्कृत हो तो उन बुराइयों का पनपना ही नहीं, ठहरना भी असम्भव हो जाता है ।

यही बात बुरे व्यक्तियों के बारे में भी लागू हो जाती है । वे तरह-तरह से हमें सताने का षड्यन्त्र करते हैं और कई बार अपनी करतूतों में सफल होते हैं पर उनका कुचक्र हर किसी के ऊपर नहीं चल सकता । वे बहुत शक्तिशाली होते हुए भी हर किसी को अपनी दुष्टता से मनचाही मात्रा में सता सकने में सफल नहीं हो पाते । उनके आक्रमण का शिकार भी बहुत कर उन्हीं को होना पड़ता है जो अपने भीतर उस तरह की दुर्बलताएँ धारण किये हुए है जिन पर दुष्टता का आक्रमण सफल हो सके ।

ठगों के जाल में अनेक लोग फँस जाते हैं और उनके द्वारा बहुत सी हानि उठाते हैं पर इन समस्त लोगों में अधिकतर ऐसी मनोवृत्ति के लोग होते हैं, जो सस्ते में बहुत सा लाभ प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं । जिन्हें अपनी योग्यता एवं श्रम के आधार पर परिश्रम की कमाई पर सन्तोष है, जो केवल नीतिपूर्वक उचित तरीके से जितना प्राप्त हो सकता है उसी से काम चलाते हैं और प्रसन्न रहते

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं उन्हें कोई ठग नहीं ठग सकता । यों ठगी के अनेकों तरीके हैं पर उनमें सिद्धान्त एक ही काम करता है कि ठग लोग यह परखते हैं कि शिकार में लालच पर्याप्त है कि नहीं, वह योग्यता और श्रम की बात को भुलाकर जैसे बने वैसे अधिक लाभ प्राप्त करने का इच्छुक है कि नहीं ? यदि है तो ठग समझ लेते हैं कि यह हमारा पक्का शिकार है । इसे ठगा जा सकता है । फिर वे नोट दूना करने कराने, ताँबे से सोना बनाने, जमीन से गढ़ा धन निकालने, कोई बड़ा लाभ करा देने आदि के प्रलोभन देकर लोगों को लालायित करते हैं और यह निर्विवाद है कि लोभ से मनुष्य अन्धा हो जाता है, उसे उचित-अनुचित, सम्भव-असम्भव, कुछ सूझता नहीं । ऐसी मनोदशा जब उत्पन्न कर लेते हैं तब ठग उसका माल असबाव लेकर चम्पत हो जाते हैं । यदि मनुष्य निर्लोभ हो तो इस प्रकार के प्रलोभनों के सामने आते ही उनके गुण, अवगुण पर विचार करेगा, प्रलोभनकारी क्यों इतना उदार बन रहा है इस पर दृष्टि डालेगा । उसका विवेक सावधान रहा तो कुछ ही विचारने पर वास्तविकता का पता लग जायगा और वह उस प्रयत्न में फँस कर अपनी हानि कराने से बचा रहेगा ।

इसी प्रकार जिसके मन में अनुचित लोभ वृत्ति न होगी वह जुआ, लाटरी, सट्टा आदि की बुरी लतों से बचा रहेगा, चोरी, उठाईगिरी, बदमाशी बेईमानी के लिए उसकी इच्छा ही न होगी और वह अपकीर्ति नरक, निन्दा राजदण्ड आदि की आपत्तियों से बचा रहेगा । इन दुष्कार्मों के अड्डे चाहे उसके कितने ही समीप क्यों न हों उनका कोई आकर्षक प्रभाव उस पर नहीं पड़ेगा । वे उसे आकर्षित करने में समर्थ न हो सकेंगे ।

आजकल इन्द्रिय मनोरंजनों के अनेक साधन चल पड़े हैं, उनकी ओर इन्द्रियाँ लालच के साथ आकर्षित हो जाती है और उन्हें अधिकाधिक मात्रा में भोगने के लिए मचलती हैं । दुर्बल मनोभूमि के लोग उनमें फिसलते हैं और अमर्यादित उपभोग के लालच में अपना शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं । सिनेमा, नाच आदि मनोरंजन, मिठाई मसाले, चाट पकौड़ी आदि भोजन, काम विकार को अनुचित प्रक्रियाएँ उपलब्ध करने के अनेकों अवसर आज सर्वत्र मौजूद हैं और वे जन साधारण के लिए बड़े हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं, पर वह हानि उन्हें ही उठानी पड़ती है, जिनकी विवेक शक्ति दुर्बल है, जो दूरवर्ती हानि-लाभ की परवाह किये बिना आज के, अभी के छोटे से आकर्षण में फँस जाते हैं । यदि वह विवेक दुर्बलता न हो तो यह प्रलोभन किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते । ऐसे असंख्यों व्यक्ति है जो इनकी व्यर्थता और हानियों को जानते हैं और जबकि दूसरे लोग इनमें बुरी तरह फँसे होते हैं वे इनकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते ।

झगडालु, दुष्ट उद्दण्ड, उच्छृखंल अशिष्ट लोग कई बार अपनी दुष्टता बुरे स्वभाव से अकस्मात् ही कटुवचन कहते और दुर्व्यवहार करते देखे गये हैं । ऐसे लोगों से निपटने का सरल तरीका तो उन्हें यह अनुभव करा देना ही है कि उद्दण्डता को रोकने वाली शक्तियाँ भी इस दुनियाँ में मौजूद हैं और वे मनमानी करने वालों के लिए मजबूर कर सकती हैं । ऐसी शक्ति किसी मजबूत संगठन, शरीरबल या सत्ता बल से ही उत्पन्न हो सकती है । देखा जाता है कि आज की बढ़ती हुई गुण्डागर्दी को रोकने के लिए जैसा विरोधी प्रबल जनमत आवश्यक है वैसा उठा नहीं रहा है वरन् लोग अपनी सुरक्षा का ख्याल करके उन गुन्डों का ही सहयोग और समर्थन करने लगते हैं ।

जो हो उन लोगों की उद्दण्डता को तभी अवसर मिलता है जब सामने वाले में भी थोड़ी वैसी ही अनुकूलता हो । उनसे उदासीन रहना, न सम्पर्क बढ़ाना, न झगड़ा मोल लेना, न डरना, न खुशामद करना, न छेड़ना ऐसी अपनी नीति हो तो उनकी गुन्डागर्दी बढ़ना एक हद तक, नियमित हो जाती है । उद्दण्ड व्यक्ति यह देखते रहते हैं कि कौन आदमी उनसे डरता और खुशामद करता है वे समझ लेते हैं, कि यह हम से डरता है, बस यही एक कारण ऐसा प्रतीत होता है कि इसे और डरा धमका कर अनुचित स्वार्थ सिद्ध करना चाहिए । बन्दर का किसी आदमी से या बच्चे से मुकाबिला पड़े तो वह सामने वाले की आँखों और चेहरे को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ध्यानपूर्वक देखकर यह पहचानता है कि यह मुझसे डर रहा है या नहीं, यदि उसको सामने वाला डरता और भागता दीखा तो वह समझ लेता है कि जीत मेरी ही है, बस वह दौड़ पड़ता है और काट खाता है । पर यदि छोटा बच्चा भी निडर होकर हाथ में एक छोटा पत्थर या लकड़ी का टुकड़ा भी लिये खड़ा रहे तो बन्दर अपनी दाल गलती न देखकर चला जाता है । यही बात उद्दण्ड लोगों के सम्बन्ध में भी है । यदि हम अपने मन में उनकी विशेषता स्वीकार न करें, उनकी परवाह न करें और डरने या खुशामद करने की न सोंचें तो वे हमारी इस उपेक्षा के पीछे हमारे आत्मबल और साहस को छिपा हुआ देखेंगे और फिर उलझने की हिम्मत न करेंगे ।

एक और भी बात है कि ऐसे लोगों की अपनी ओर से छेड़ना न चाहिए । साँप, बर्रे, भेड़िये आदि दुष्ट प्रकृति के जीव वैसे तो अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण भीतर ही भीतर डरते रहते हैं, पर छेड़ने पर कई बार उनकी मनोभूमि दुर्बल पड़ती है और वे आगे बढ़ कर अनर्थ करने पर उतारू हो जाते हैं फिर चाहें वे उस संघर्ष में स्वयं ही क्यों न पिस जाँय । इसलिए सुनिश्चित रूप से इतनी शक्ति न हो कि उन्हें भली प्रकार दबाया जा सके तब तक छेड़छाड़ न करनी चाहिये, क्योंकि यदि किसी संघर्ष में विजय मिलती है तो आगे के लिए उनकी हिम्मत और भी अधिक बढ़ जाती है । इसलिए जहाँ तक हो सके अपनी ओर से तब तक छेड़छाड़ न करने की रीति ही अपनानी उचित है जब तक कि उपयुक्त अवसर दृष्टिगोचर न हो ।

इसी प्रकार दूसरों की साधारण छेड़छाड़ की भी उपेक्षा कर देनी चाहिए क्योंकि साधारण बात पर जो लोग बहुत आवेश में आ जाते हैं, बहुत घबराते और परेशान होते हैं वे भी मानसिक दृष्टि से दुर्बल माने जाते हैं और दुर्बल पर आक्रमण करने की हर किसी की इच्छा होती है । आवश्यकतानुसार विरोध किया जा सकता है और संघर्ष का अवसर आने पर इसके लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिए । पर उसके लिए यह आवश्यक है कि अधीरता, आवेश, उत्तेजना, घबराहट, रोष एवं बैचेनी की अपनी स्थिति न बन जाय, वरना सामने वाला अपनी दुर्बलता भाँप लेगा और समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा चिड़ाते या छेड़ते रह कर हमें और भी परेशान किये रहेगा । अपने चेहरे पर निर्भीकता दृढ़ता, साहस, धैर्य एवं अनुद्वेग के भाव हों और सीधे शब्दों में उसे समझा दिया जाय तो वह सामने वाले की मजबूती को भाँप कर समझ भी जाता है, क्योंकि कोई भी गुन्डा वस्तुतः पहले सिरे का कायर होता है । वह बाहर से जितना शेर बनता है उतना ही भीतर से पोला, कमजोर भी होता है ।

दैवी, आपत्तियाँ, बीमारी, घाटा, अपमान किसी प्रियजन की मृत्यु, बिछोह, चोरी, अग्निकांड आदि किसी आकस्मिक कारण भी ऐसे आ जाते हैं जब अप्रत्याशित रूप से मनुष्य को कोई हानि एवं वेदना सहन करनी पड़ती है । ऐसी परिस्थितियाँ आने पर जो लोग भावावेश में बह जाते हैं, उस हानि को अत्याधिक बढ़ा-चढ़ाकर सोचते हैं, व्याकुल और बैचेन हो जाते हैं । सर्वनाश हुआ देखते हैं और भविष्य के बारे में घोर अन्धकार पूर्ण मानस चित्र बनाते हैं, वे लोग ही अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं और आत्महत्या सरीखे कोई दुःखद कार्य कर डालते हैं या इतने दुःखी हो जाते हैं कि अपना स्वास्थ्य ही जला डालते हैं और आयुष्य का एक बड़ा भाग कम कर लेते हैं । इसके विपरीत जो लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि-''मानव जीवन सुख और दुःख के, लाभ और हानि के, सम्पत्ति और विपत्ति के ताने-बाने से बुना हुआ है, यह दोनों ही रात-दिन, के गर्मी-सर्दी के जोड़े की तरह आती और जाती ही रहती हैं, इनके प्रभाव से कोई राजा रंग, अछूता नहीं रहता, यह सभी के लिये स्वाभाविक एवं अवश्यम्भावी हैं ।'' उसे इन आपत्तियों का इतना भय नहीं होता जितना भावुक और दुर्बल मनोभूमि के लोगों का होता है । वे समझदार व्यक्ति विवेकपूर्वक अपना मन समझा लेते हैं, आपत्ति के कारण लगे हुए आघात की मरहम पट्टी कर लेते हैं और काम चलाऊ साधारण स्थिति तक थोड़े ही समय में आसानी से जा पहुँचते हैं ।

एक प्रकार की स्थिति अलग-अलग व्यक्तियों पर उनकी मनोभूमि के अनुसार अलग-अलग

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रकार के प्रभाव डालती हैं । संसार में बुराई और भलाई सभी कुछ पर्याप्त मात्रा में मौजूद है पर हम अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुसार उसे ही पकड़ते हैं जो अपने को रुचता है । यदि यह रुचि परमार्जित हो तो संसार में जो श्रेष्ठ है उसे ही पकड़ने के लिये अपने प्रयत्न होते हैं और जिस प्रकार शहद की मक्खी बगीची में से शहद और गुबरैला कीड़े गोबर इकट्ठा करते रहते हैं, उसी प्रकार मनोभूमि के अनुसार हम भी बुरे या भले तत्त्वों से अपना सम्बन्ध जोड़ कर अपने पल्ले सुख या दुख इकट्ठा कर सकते हैं । संसार में बुरा-भला सभी कुछ है पर हम प्राय: उन्हीं तत्त्वों को आकर्षित एवं एकत्रित करते हैं जिस प्रकार की अपनी मनोदशा होती है ।

इन सब बातों से विचारशील व्यक्ति इस एक ही निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि हम जैसी परिस्थितियाँ प्राप्त करना चाहते हैं उसी के अनुसार अपनी मनोभूमि को ढालें । आत्मनियन्त्रण और आत्मनिर्माण के आधार पर हम अपने लिए अपनी भली या बुरी दुनियाँ का निर्माण आप कर सकते हैं । अपने भाग्य के निर्माता स्वयं बन सकते हैं ।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि तीन गुणों के बने हुए इस संसार में जहाँ सतोगुण और रजोगुण का अपना-अपना स्थान है वहाँ तमोगुण भी रहेगा ही । दुनिया में से उसे पूर्णतया हटाना या मिटाना सम्भव नहीं । इतना मान लेने के बाद अब यह प्रश्न होता है कि उनके दुष्प्रभावों से अपने को बचाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ? इस प्रश्न को यदि ठीक तरह हल कर लिया जाय तो हमारे जीवन की आधे से अधिक परेशानियाँ हल हो सकती हैं ।

यह ध्यान में रखने की बात है कि दुनिया में जो काँटे-कंकड़ फैले हुए हैं उन्हें बीनकर अपने सभी यात्रा के मार्गों को हम निरापद बनाने का प्रयत्न करें तो इसमें सफलता मिल सकना कठिन है क्योंकि काँटे, कंकड़ों की संख्या अधिक है । विभिन्न रास्ते जिन पर हमें समय-समय पर चलना पड़ता है उनकी लम्बाई भी हजारों मील बैठती है । काँटे बीनने को हम खड़े भी हों तो जीवन की अवधि भी इतनी लम्बी नहीं है कि जब तक सब काँटे बीने जा सकते हों तब तक जीवित रहें, फिर यदि जीवित भी रहें, तो इसका भी कोई निश्चय नहीं कि जब तक यह बीने जाने की प्रक्रिया पूर्ण होगी, तब तक फिर और नये काँटे उस मार्ग पर न बिखर जायेंगे । इन परिस्थितियों में यही उचित प्रतीत होता है कि काँटे बीनने की प्रक्रिया को सीमित करके हम अपने पैरों में जूते पहनने का उपाय पसंद करें । यह अपेक्षाकृत सरल और सीधा उपाय है । थोड़ा पैसा और थोड़ा प्रयत्न करके ही अच्छे जूते पहन सकते हैं और फिर चाहें किसी मार्ग पर कितने ही काँटे-कंकड़ क्यों न बिखरे पड़े हों, निर्भय होकर चले जा सकते हैं । जूतों के तले उन कांटे-कंकड़ों का मुँह कुचलते चलेंगे और हमारे पैरों को तनिक भी आघात न पहुँचने देंगे ।

संसार के हर दुर्जन को सज्जन बनाने की, हर बुराई के भलाई में बदल जाने की आशा करना वैसी ही आशा है जैसी सब रास्तों पर से काँटे-कंकड हट जाने की । अपनी प्रसन्नता और सन्तुष्टि का, यदि हमने इसी आशा को आधार बनाया हो, तो निराशा ही हाथ लगेगी । हाँ, यदि हम अपने स्वभाव एवं दृष्टिकोण को बदल लें तो यह कार्य जूता पहनने के समान सरल होगा और इस माध्यम से हम अपनी परेशानी को बहुत अंशों में हल कर सकेंगे ।

अपने स्वभाव और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर सकना कुछ श्रमसाध्य, समयसाध्य और निष्ठासाध्य अवश्य है, पर असम्भव तो किसी भी प्रकार नहीं है । मनुष्य चाहें तो विवेक के आधार पर अपने मन को समझा सकता है, विचारों को बदल सकता है और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर सकता है । इतिहास के पृष्ठ ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं जिनसे प्रकट है कि आरम्भ से बहुत हलके और ओछे दृष्टिकोण के आदमी अपने भीतर परिवर्तन करके संसार के श्रेष्ठ महापुरुष बने हैं । इसी प्रकार ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जिनके विचार जब तक ऊँचे रहे तब तक प्रतिष्ठा के उच्च आसान पर अवस्थित रहे, पर जब उनका अन्त:करण कलुषित हो गया, विचार घटिया हो गये, तो उनका जीवन-क्रम भी पतनोन्मुख हो गया और वे अधोगति को प्राप्त हुए । सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


राजनैतिक विचारों में अनेक बार परिवर्तन करने पड़ते हैं, इसी प्रकार यदि मनुष्य चाहे तो विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के अपने तरीके को, सोचने के ढंग को बदल सकता है । अपनी विचार शैली की त्रुटियों को समझ सकना और इनके सुधार में सलंग्न होना बुद्धिमत्ता और उच्च साहस का काम है , लेकिन असम्भव नहीं माना जा सकता । यह दुरंगी दुनियाँ जैसी भी कुछ है, परमेश्वर की बनाई हुई है । इसमें विचित्रताऐं रहेंगी ही, इनसे खीझने और परेशान होने से काम न चलेगा वरन् एक ऐसा व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा जिसके अनुसार जैसे भी कुछ यहाँ के लोग हैं, जैसी भी कुछ यहाँ की परिस्थितियाँ हैं उनके साथ अपना तालमेल बिठा सकें, काम चलाऊ समझौता कर सकें और जीवन की गाड़ी को किसी प्रकार लुढ़काते हुए समय को पूरा कर लें ।

हम अपनी मनमर्जी का अपने सब निकटवर्ती लोगों की, स्वजनों को, सम्बन्धियेां को, स्त्री-पुरुष को, देखना चाहें तो यह उचित न होगा । जितना सम्भव हो, उतना उन्हें झुकाने, समझाने और अपनी मनमर्जी का बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु यह आशा कभी न रखनी चाहिए कि जैसा हम चाहते हैं पूर्णत: वे वैसा ही बन जावेंगे । क्योंकि हर व्यक्ति एक स्वतन्त्र धातु का बना हुआ है । जिस प्रकार वृक्षों की पत्तियाँ एक-सी लगने पर भी हर पत्ती एक दूसरे से भिन्नता लिए हुए होती है, उसी प्रकार हर मनुष्य अपनी कुछ खास रुचि, अभिलाषा, प्रकृति एवं प्रतिभा को लेकर बना है । हजारों जन्मों के हजारों योनियों के विविध प्रकार के कार्यों और घटना-चक्र के आधार पर उसका यह वर्तमान जीवन बना है । कोई जीव इससे पिछले जन्म में विषधर सर्प था, उसे दूसरे को काटने और क्रोध से फुफकारते रहने की आदत थी, अब वह इस जन्म में मनुष्य हो गया तो उस पिछले जन्म के क्रोध और आक्रमक संस्कारों का एक ही जन्म में पूर्ण समाधान हो सकना कठिन है । कितना ही वह बेचारा अपने में सुधार करे तो भी वे पिछले दुर्गुर्ण किन्हीं अंशों में बने ही रहेंगे । वह भी मजबूर है । इतनी तेज प्रगति कर सकना उनके लिए भी कठिन है कि बरस-छ: महीने में ही उन पुरानी सब आदतों को भुला दे और वैसे संस्कार धारण कर ले, जैसे कितने ही जन्म मनुष्य शरीर में व्यतीत करने के बाद उत्पन्न होते हैं । इन परिस्थितियों में उस सर्प से मनुष्य योनि में आने वाले अपने किसी स्वजन सम्बन्धी से असन्तुष्ट रहना, उसकी आदतें हमारी इच्छानुसार न बदल सकने पर दु:खी रहना हमारे लिए उचित नहीं है ।

दूसरों की परिस्थितियों और मजबूरियों पर हमें वेसी ही सहानुभूति के साथ विचार करना होगा जैसी कि बच्चों की, रोगियों की स्थिति का ध्यान रखते हुए अशिष्टताओं और असमर्थताओं को उदारतापूर्वक सहन किया जाता है । हमारे निकटवर्ती स्वजन सम्बन्धी हमारी आज्ञा या इच्छानुसार पूर्णतया नहीं चलते तो हमें बड़ा क्रोध आता है और असन्तोष भी होता है, क्योंकि हम यह मानते हैं कि जिस प्रकार अपने पालतू पशुओं को, कहने के अनुसार काम करने, जैसा चाहें उसी तरह रहने के लिये मजबूर किया जा सकता है, वही बात अपने स्वजनों सम्बन्धियों पर, स्त्री-पुरुषों पर भी लागू होनी चाहिए । उन्हें भी वैसा ही आज्ञानुवर्ती होना चाहिए । यहीं हम भूल करते हैं । पशुओं पर जैसा अपना स्वामित्व होता है वैसा मनुष्य पर नहीं है । जिस तरह पशु अपनी सम्पत्ति हैं और सब प्रकार हमारे अधीन हैं, वह स्थिति स्त्री-पुत्रों की, भाई-भतीजों की नहीं है । किसी मनुष्य का किसी दूसरे पर चाहे वह स्त्री या सन्तान ही क्यों न हो, पशुओं जैसा अधिकार नहीं है और न हम उनके स्वामी हैं ।

प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे के साथ एक कर्त्तव्य सूत्र में बँधा हुआ है, उसकी मर्यादा इतनी ही है कि अपने आश्रितों, परिजनों या सम्बन्धित व्यक्तियों का उचित मार्गदर्शन करे । उनकी मनोभूमि को सुसंस्कृत बनाने के लिए आवश्यक दीक्षा का, स्वाध्यय सत्संग का तथा अनुभव एकत्रित करने का अवसर दे जिससे उनका ज्ञान एवं विवेक स्वत: इतना विकसित हो जाय कि वे लाभ हानि, बुराई भलाई, उचित अनुचित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का अन्तर स्वत: समझ सकें और जिस पर हम चलना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चाहते हैं उस पर अपने विकसित विवेक के आधार पर स्वत: चल सकें ।

यदि हमने अपना स्वभाव नहीं सुधारा यदि हमें दूसरों को समझाने या सुधारने के लिए आवश्यक मधुरता, आत्मीयता एवं धैर्य उपलब्ध नहीं है, तो यही मानना पड़ेगा कि हम समझाने के अयोग्य हैं और किसी को भूले रास्ते से लौटाकर सीधे रास्ते पर लाने में सर्वथा असमर्थ रहेंगे, उल्टा वैर विरोध बढ़ा लेंगे । माना कि दूसरों को समझाने और सुधारने की आवश्यकता है, पर उससे भी पहली आवश्यकता यह है कि इस आवश्यक कार्य को करने से पूर्व अपने आपको समझाने और सुधारने का प्रयत्न करें, अपने में नम्रता, मधुरता, शिष्टाचार, स्नेह, सौजन्य, धैर्य को इतनी पर्याप्त मात्रा में भर लें कि सामने वाले को प्रभावित कर सकना हमारे लिये सम्भव और सुगम हो सके । झगड़ालू, जिद्दी वकील जिस प्रकार उथले शब्दों का प्रयोग करके घटिया दर्जे की बहस करता है और न्यायाधीश को क्रुद्ध करके अपने पक्ष को ही खराब कर लेता है उसी प्रकार दुर्भावना, व्यंग, लाँछन से भरे हुए शब्दों में सामने वाले की नियत पर हमला करते हुए, उसे मूर्ख साबित करते हुए यदि कुछ कहा या समझाया बुझाया गया है तो निश्चय ही उसका परिणाम कुछ भी सन्तोषजनक न होगा ।

दूसरों के सुधारने से पूर्व हमें अपने को सुधारना पड़ेगा और यह समझना पड़ेगा कि बलपूर्वक किसी को कुछ देर के लिये चुप या विवश किया जा सकता है पर उसे बदला या सुधारा नहीं जा सकता । जब तक विवशता रहेगी तब तक वह चुप रहेगा पर अवसर मिलते ही वे दूने वेग से उलटा आचरण करके अपने अपमान का बदला चुकावेगा । जो पति अपनी पत्नियों पर या जो पिता अपनी सन्तान पर बहुत कड़ाई बरतते हैं, उन्हें मारते-पीटते, अपमानित करते या सताते हैं उन्हें उसका बदला उस समय मिलता है जब वे बुड्ढे हो जाते हैं या अन्य असमर्थताओं के कारण उनके हाथ में कुछ शक्ति नहीं रहती । उन दिनों उनको घर वाले तरह-तरह से तिरस्कृत करते और सेवा सहायता से जी चुराते हैं । ऐसी विषम अवस्था उनकी नहीं होती जिन्होंने युवावस्था में अपने स्वजनों के साथ स्नेह, उदारता एवं सम्मान का व्यवहार किया होता है । यह संसार कुँए की आवाज की तरह है, जैसा हम बोलते हैं वैसी ही प्रतिध्वनि लौट कर आती है । इसलिये यदि हमें अपने प्रति दूसरों का व्यवहार सज्जनता का देखने की इच्छा हो तो पहले हमें अपने को इस योग्य सिद्ध करना होगा कि हम उसके वस्तुत: अधिकारी हैं ।

तीनों गुणों से भरी हुई परिस्थितियाँ तथा व्यक्तियों वाली इन दुनिया में हम अपने लिये केवल अच्छाई ही उपलब्ध करें, बुराइयों और विपत्तियों से बचकर सीधा शान्तिमय जीवन व्यतीत करें तो बाहर की हर प्रतिकूल परिस्थिति पर खीजने और झुँझलाने की आदत हमें छोड़नी पड़ेगी, अपने अन्दर सहिष्णुता, सहनशीलता का, भूलने और क्षमा करने का गुण अधिकाधिक मात्रा में एकत्रित करना पड़ेगा । अपना सुधार यदि हम नहीं कर पाते, अपने में अनुदारता अहंकार तो दूर उल्टे जिस प्रकार दर्पण में अपना चेहरा दीखता है, उसी प्रकार सामने वाले भी अपने ही दुर्गुणों की छाया से आच्छादित अपेक्षाकृत और भी अधिक दुर्गुणी दीखेंगे ।

## अपना सुधार- संसार की सबसे बड़ी सेवा

मन एक देवता है । इसे ही शास्त्रों में प्रजापति कहा गया है । वेदान्त में बताया गया है कि हर व्यक्ति की एक स्वतन्त्र दुनिया है और वह उसके मन के द्वारा सृजन की हुई है । मनुष्य की मान्यता, भावना, निष्ठा और रुचि एवं आकाँक्षा के अनुरूप ही उसे सारा विश्व दिखाई पड़ता है । यह दृष्टिकोण बदल जाय तो मनुष्य का जीवन भी उसी आधार पर परिवर्तित हो जाता है । इस मन देवता की सेवा पूजा का एक ही प्रकार है, मन को समझा बुझाकर उसे सन्मार्ग पर लगाना । सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत करना । यदि यह सेवा कर ली जाय तो सामान्य व्यक्ति भी महापुरुष बन सकता है । उसके वरदान का चमत्कार प्रत्यक्ष देख सकता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


इस तथ्य की सुनिश्चितता में रत्ती भर भी सन्देह की गुंजाइश के लिए स्थान नहीं है कि-''जो हम सोचते हैं सो करते हैं, और जो करते हैं सो भुगतते हैं ।'' मन ही हमारा मार्ग दर्शक है, वह जिधर ले चलता है शरीर उधर ही जाता है । यह मार्ग दर्शक यदि कुमार्गगामी है तो विपत्तियाँ और वेदनाओं के जंजाल में फंसा देगा और यदि सुमार्ग पर चल रहा है तो शान्ति और समृद्धि के सत्परिणाम उपलब्ध होना सुनिश्चित है । ऐसे अपने इस भाग्य विधाता की ही सेवा हम क्यों न करे ? इस मार्ग दर्शक को ही क्यों पूजें ? गौ और ब्राह्मण की सेवा से यदि पुण्य मिल सकता है तो उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण इस मन देवता की सेवा से पुण्य फल क्यों न प्राप्त होगा ? निश्चय ही सबसे अधिक पूजनीय, वन्दनीय, और सेवनीय यह मन का देवता ही है ।

सच्चे ब्राह्मणों, देवताओं और सन्तों के आशीर्वाद से बहुत सुख मिलता सुना गया है, पर मन देवता का आर्शीवाद फलित होते हुए हममें हर कोई आसानी से चाहे जब देख सकता है । यदि सेवा पूजा करके मन देवता को इस बात के लिए मना लें कि- ''वह सच्ची भूख लगने पर पेट की आवश्यकता से केवल उपयोगी पदार्थों को ही मुख में जाने दिया करे, चटोरेपन की आदत को सर्वथा छोड़ दे'' तो इतने मान लेने से आपकी बिगड़ी हुई पाचन क्रिया ठीक हो सकती है, शुद्ध रक्त बनना आरम्भ हो सकता है और जो कमजोरी तथा बीमारी निरन्तर घेरे रहती हैं उनसे बहुत ही आसानी से छुटकारा मिल सकता है । शरीर स्वस्थ, सबल और सतेज हो सकता है और जिस स्वास्थ्य के लिए तरसते रहना पड़ता है वह चिरस्थायी हो सकता है ।

यदि मन का देवता यह मान ले कि-'' सृष्टि के समस्त जीव जिस प्रकार काम सेवन के सम्बन्ध में प्रकृति की मर्यादा का पालन करते हैं उसी प्रकार वह भी करे ।'' तो इतनी मात्र उसकी स्वीकृति से आपका मुरझाया हुआ चेहरा कमल के फूल की तरह खिल उठेगा । जीवन रस बुरी तरह निचुड़ते रहने से पौरुष खोखला होता चला जाता है, इस बर्बादी को न करने के लिए यदि मन सहमत हो जाय तो आपके मस्तिष्क, शरीर स्वभाव और कार्य-कलापों में से आज टपकने लगेगा । जैसे सिंह की हर क्रिया, हर चेष्टा उसके गौरव के अनुरूप होती है वैसे ही ब्रह्मचर्य पालन करने से वह बर्बादी से बचाया हुआ ब्रह्मतेज आपकी प्रत्येक चेष्टा में प्रस्फुटित होने लगेगा । तब आप खोखले कागज के खिलौने नहीं, एक लौह पुरुष सिद्ध होंगे जिसकी आँखों में तेज, बुद्धि में प्रौढ़ता और क्रिया में प्रामाणिकता की छाप होगी । यह लाभ आपको बड़ी आसानी से मिल सकते हैं, यदि आप मन के देवता की इन्द्रियों का दुरुपयोग न करके आहार-विहार का प्राकृतिक और नियमित रखने की एक छोटी सी बात पर सहमत कर लें । सेवा में बड़ी शक्ति है, उससे भगवान भी वश में हो सकते हैं फिर मन देवता द्रवित क्यों न होंगे ?

हर आदमी को लगता है कि वह काम में बहुत व्यस्त रहता है । उस पर जिम्मेदारियों का तथा परिश्रम का बहुत बोझ रहता है । पर सही बात ऐसी नहीं है । उसका कार्यक्रम, अनियन्त्रित वे सिलसिले अस्तव्यस्त ढंग का होता है, इसलिए थोड़ा काम भी बहुत भार डालता है, यदि हर काम समय विभाजन के अनुसार सिलसिले से, ढंग और व्यवस्था के आधार पर बनाया जाय तो सब काम भी आसानी से हो सकते हैं, मानसिक भार से भी बचा जा सकता है और समय का एक बहुत बड़ा भाग उपयोगी कार्यों के लिये खाली भी मिल सकता है । हमारे अविकसित देश में तो लोग पढ़ने में ध्यान देना तो दूर उसका महत्त्व समझने तक में असमर्थ हो गए हैं । पर जिनकी विवेक की आँखें खुली हुई हैं, वे जानते हैं कि इस संसार की प्रधान शक्ति ज्ञान है और वह ज्ञान का बहुमूल्य रत्न भंडार पुस्तकों की तिजोरियों में भरा पड़ा है । इन तिजोरियों की उपेक्षा करके कोई व्यक्ति अपने अन्तः प्रदेश को न तो विकसित कर सकता है और न उसे महान बना सकता है । अध्ययन एक वैसी ही आत्मिक आवश्यकता है जैसी शरीर के लिए भोजन । इसीलिए मन देवता को राजी करना होगा कि दैनिक कार्यक्रम की व्याख्या बनाकर वे कुछ समय बचावें और उसे अध्ययन के लिये नियत कर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दें । नित्य का अध्ययन वैसा ही अनिवार्य बना दें जैसा कि शौच, स्नान, भोजन और शयन आवश्यक होता है ।

स्वास्थ्य और ज्ञान के बाद तीसरी विभूति है- स्वभाव । इन तीन को ही मिला कर पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है । अपने सब कार्यों में व्यवस्था नियमितता, सुन्दरता, मनोयोग तथा जिम्मेदारी का रहना स्वभाव का प्रथम रंग है । दूसरा अंग है दूसरों के साथ नम्रता मधुरता, सज्जनता, उदारता, एवं सहृदयता का व्यवहार करना । तीसरा अंग है । धैर्य, अनुद्वेग, साहस, प्रसन्नता दृढ़ता और समता की सन्तुलित स्थिति बनाए रहना । यह तीनों ही अंग जब यथोचित रूप से विकसित होते है तो उसे स्वरूप-स्वभाव कहा जाता है । यह तीनों बातें भी मन की स्थिति पर ही निर्भर रही हैं ।

आमतौर से लोग किसी काम को आरम्भ करते हैं, और उसे बिना पूरी तरह समाप्त किये ही अधूरा छोड़ देते हैं । पुस्तक पढ़ेंगे तो उसे समाप्त करके यथास्थान रखने की उपेक्षा जहाँ की तहाँ पड़ी छोड़ कर चल देंगे । कपड़े उतारेंगे तो उन्हें झाड़ कर तह बनाकर यथा स्थान रखने की बजाय चाहे जहाँ उतार कर फेंक देंगे । पानी पियेंगे तो खाली गिलास को उसके नियत स्थान पर रख कर तब अन्य काम करने की बजाय उसे जहाँ का तहाँ पटक कर और काम में लग जायेंगे । काम को पूरी तरह समाप्त किये बिना उसे अधूरा छोड़ कर चल देना, स्वभाव का एक बड़ा भारी दोष है । इसका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ता है और उनके सभी कार्य प्रायः अधूरे पड़े रहते हैं । व्यवस्था के साथ सफलता का अटूट सम्बन्ध है । इस बात को मन महोदय मान लें तो समझना चाहिये कि हारी बाजी जीत ली । अपनी प्रत्येक वस्तु को सुन्दर कलात्मक, सुव्यवस्थित रखने के लिए मन की सौन्दर्य भावना विकसित होनी चाहिये । उसी सौन्दर्य में किसी व्यक्तित्व का सम्मान छिपा हुआ है ।

मधुरता, नम्रता और उदारता किसी व्यक्ति की महानता का अधिकृत चिन्ह है । जिसके हृदय में दूसरों के प्रति आदर, प्रेम और सद्भाव है वह निश्चय ही उसके साथ सज्जनता का व्यवहार करेंगा । इनमें यदि थोड़ा समय लगता हो तो खर्च बढ़ता हो तो वह उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन करेगा । बहुत करके विनम्र, मुस्कुराहट के साथ मधुर शब्दों में वार्तालाप करने से काम चल जाता है । शिष्टाचार का ध्यान रखना, अपने कार्य दूसरों से कराने की अपेक्षा औरों के ही छोटे-मोटे काम कर देना यह मामूली सी बात है पर इससे हमारी सज्जनता की छाप दूसरों पर पड़ती है । दूसरों की कडुई बात को भी सह लेना, दूसरों के अनुसार व्यवहार को तो पचा जाना और बदले में अपनी ओर से सज्जनता का परिचय देना, अपनी वाणी या व्यवहार में अहंकार या उच्छृंखलता की दुर्गन्ध न आने देना सत्पुरुषों का मान्य लक्षण है । अपना स्वभाव ऐसा ही बनाने के लिए यदि मन को साथ लिया जाय तो मनुष्य अजातशत्रु बन सकता है । इस प्यार की मार से उसके सभी शत्रु मूर्छित और मृतक हो सकते हैं । मित्र तो उसके चारों ओर इसी प्रकार घिरे रह सकते हैं जैसे खिले हुए कमल के आस-पास भौंरे मँडराते रहते हैं । यह सिद्धि जीवन की सफलता के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, पर मिलती उसे ही है जिसने मन के देवता को इसके लिए तैयार कर लिया है ।

जीवन में बहुधा अप्रिय प्रसंग आते रहते हैं । यह जरूरी नहीं कि हमेशा प्रिय परिस्थितियाँ तथा अनुकूल व्यवहार ही उपलब्ध हों । हानि, घाटा, रोग, शोक, बिछोह, अपमान, असफलता, आक्रमण आपत्ति आदि की विपन्न स्थितियाँ भी सुख, सम्पत्ति की भाँति आती रहती हैं । इनका आना अनिवार्य है । कोई भी इन विविधताओं से बच नहीं पाता । इस उभय पक्षीय क्रम को सहन करने योग्य मनोभूमि बनाये रखना हर विवेकशील का कर्त्तव्य है । प्रतिकूलताएँ आने पर जो घबराते हैं, अधीर होते हैं, किंकर्त्तव्यविमूढ़ बनते हैं वे अपनी इस दुर्बलता को भी एक नई विपत्ति के रूप में ओढ़ते हैं और उनका कष्ट दूना हो जाता है । इसके विपरीत साहसी और धैर्यशील लोग कठिन से कठिन समय को भी अपने साहस के बल पर काट देते हैं और निराशा को चीर कर आशा का वातावरण बनाने के लिए प्रयत्न करके फिर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कामचलाऊ स्थिति उत्पन्न कर लेते हैं । जरा सी बात पर घबरा जाना, चिन्तित हो जाना, रोना, पीटना, निराश हो बैठना, उत्तेजित हो जाना, क्रोधान्ध होकर कहने न कहने योग्य कहने लगना और न करने योग्य कर बैठना यह सब मनुष्य की क्षुद्रता और नास्तिकता के चिह्न हैं । जिसका हृदय विशाल है, कलेजा चौड़ा है, दृष्टिकोण दूरदर्शी है, वह आपत्तियों और प्रतिकूलताओं को कुछ क्षण ठहरने वाली प्रकृति की एक लहर मात्र मानता है और उसे हँसते हुए, उपेक्षा की दृष्टि रखते हुए सरलतापूर्वक पार कर लेता है । पर यह सम्भव तभी है जब मन के देवता हमारी सेवा से प्रसन्न होकर अपने आपको इस सन्तुलित स्थिति में रखने के लिये तैयार हो जाँय । वे अपने सहयोगी बन जायें, विरोध करना और सताना छोड़ दें तो अच्छा स्वभाव बनने में देर कितनी लगेगी ? और अच्छा स्वभाव बन जाना इस संसार की एक बहुमूल्य सम्पत्ति प्राप्त करके भारी अमीरी भोगने के आनन्द से भी बढ़कर है ।

मन के देवता प्रसन्न होकर भौतिक जीवन को आनन्दमय और सुसम्पन्न बनाने के लिये हमें स्वास्थ्य, ज्ञान और स्वभाव की उत्कृष्टता प्रदान करते हैं । इन वरदानों को पाकर हमारे सांसारिक जीवन में धन, यश, प्रसन्नता-प्रफुल्लता, सन्तोष, उल्लास, प्रेम, सहयोग सभी मिलने लगता है । सफलता के द्वार हर दिशा में खुल जाते हैं । इसी जीवन में स्वर्गीय सुख की उपलब्धि उन्नति एवं जीवन लक्ष्य की प्राप्ति भी मन के सधने पर ही अबलम्बित है ।

## सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हमारा मन

सेवाओं में, समझाने की सेवा सबसे बड़ी मानी गई है । ब्राह्मण ने इसी सेवा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया इसलिए वह सब वर्णों में श्रेष्ठ सब का पूज्य माना गया । किसी को धन या कुछ वस्तुएँ दे देने का लाभ थोड़ी ही देर सुख पहुँचाता है; पर यदि कोई समझाने से समझ जाय, कुमार्ग छोड़ कर सुमार्ग पर चलने लगे तो उसके सुखद सत्परिणामों की अत्यन्त विशाल सम्भावना बन जाती है ।

सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हमारा अपना-अपना मन ही है । वह भी वाल्मीकि से कम नहीं है । यदि हम नारद बन कर उसे समझा लेते है तो आज जो आज अपनी घटिया दर्जे की स्थिति है वह न रहेगी । उसमें निश्चित रूप से परिवर्तन होगा । महानता उपलब्ध होगी जिसके फलस्वरूप अपना अन्त:करण सुख-शान्ति से भर जायेगा, शत्रु मित्र बनेंगे । असहयोग करने वाले सहयोगी बनेंगे । उपेक्षा की दृष्टि से देखने वालों की आँखों से प्रेम की श्रद्धा चमकने लगेगी । अपना स्वभाव ऐसा मधुर होगा कि हर कोई सम्पर्क में आने की लिपटने की कोशिश करेगा । कार्य ऐसे होंगे जिनसे अपना मान और महत्त्व सर्वसाधारण की दृष्टि में दिन-रात बढ़ता ही चलेगा ।

सेवा धर्म की उपयोगिता और आवश्यकता स्वीकार कर लेने के बाद यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सेवा किस की करें ? मन में विश्वहित की लोककल्याण की, जनताजनार्दन की सेवा करने की भावना तो होनी चाहिए, पर उसका कार्य-क्षेत्र एक नियत मर्यादा में ही होना चाहिये । अन्यथा बिना विवेक की सेवा का लाभ कुपात्र उठावेंगे अथवा ऊसर में बीज बोने की तरह शक्ति का अपव्यय होगा ।

सेवा करते समय सत्पात्र का ध्यान रखना आवश्यक है । अपने से पिछड़े, समीपवर्ती, सम्बद्ध और विश्वास करने वालों की ही विचारात्मक सेवा हो सकना सम्भव है । ऐसे कितने ही व्यक्ति हो सकते हैं जो उपरोक्त कसौटियों पर ठीक उतरें उन सब की भी अभिव्यक्ति सेवा आरम्भ करनी चाहिए पर अच्छा यह है कि हम अपने प्रयोग और परीक्षण के लिए किसी एक को चुनें और उसके साथ पूरा-पूरा श्रम करके यह देखें कि हमारी सेवा भावना और सेवा शक्ति कितनी सफल हो सकी ? हमने अपनी प्रयत्न को कितनी तत्परता के साथ और उसका क्या परिणाम निकला ?

इस दृष्टि से हमारा अपना मन ही सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हो सकता है । जीवात्मा से वह छोटा भी है, सम्बद्ध भी है, समीप भी है और विश्वासपात्र भी है फिर उसी को क्यों न अपना,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सेवाभाजन बनावें ? यह सोचना ठीक नहीं कि उपकार तो दूसरों का होता हैं, अपना उपकार तो स्वार्थ होगा, उसे क्यों करें ? बात ऐसी है कि इस संसार में सभी अपने या सभी विराने हैं । सब में अपना ही आत्मा समाया हुआ है इसलिए कोई भी विराना नहीं, यदि विराना ही मानना हो तो मन भी अपना कहाँ हैं ? वही अपने कहने में कब चलता है ? उसका व्यवहार भी मित्र जैसा कब है ? दुष्ट साथी और विश्वासघाती नौकर की तरह वह हमें क्या कम दु:ख देता है ? जब अन्य दुष्टों को सुधारने की बात सोची जाती है तो अपने इस चौबीस घण्टे के साथी को ही उपेक्षा क्यों की जाय ? जब दूसरों के बेटों को उपदेश देने की योजना है तो अपने बेटे को भी वैसे उपदेश करने में क्या दोष है ? जब सारे नारी समाज को उद्धार करने की इच्छा हो तो अपनी पत्नी को नारी समाज से बाहर समझ कर उसकी उपेक्षा क्यों की जाय ?

जीवन के उत्थान एवं पतन का केन्द्र मन है । यह मन जिधर चलता है, जिधर इच्छा और आकाँक्षा करता है उधर ही उसकी अपनी एक दुनिया बनकर खड़ी हो जाती है । उसमें ऐसा अद्‌भुत आकर्षण एवं चुम्बकत्व है कि जिससे खिंचती हुई संसार की वैसी ही वस्तुऐं घटनाऐं साधन सामिग्री मानवी एवं दैवी सहायता एकत्रित हो जाती है जैसी कि उसने इच्छा एवं कामना की थी । कल्पवृक्ष की उपमा मन को ही दी गई है । पृथ्वी का कल्पवृक्ष यही है । उसमें ईश्वर ने वह शक्ति विशाल परिणाम में भर दी है कि जैसा मनोरथ करे वेसे ही साधन जुट जायँ और उसी पथ पर प्रगति होने लगे । मन की ही कामधेनु कहा गया है । वही कामना भी करता है और वही उनकी पूर्ति के साधन भी जुटा लेता है ।

यदि सेवा ही करनी है तो इस कामधेनु की ही क्यों न करें, यदि पूजन और सिंचन करना है तो कल्पवृक्ष का ही क्यों न करें, जिससे हमारा अपना अभीष्ट सिद्ध हो और साथ ही संसार का भी सब प्रकार से कल्याण होने का योग बने । मन की अद्‌भुत शक्तियों का जितना-जितना पता चलता है उतना ही मनुष्य आदर्श चकित होता जाता है । मनोबल और उसकी इच्छा शक्ति के चमत्कारों को जिनने देखा है, सुना है और समझा है वे जानते हैं कि हाड़ मांस की इस ठठरी में छिपा हुआ एक प्रचण्ड बैताल के रूप में यह मन ही में बैठा रहता है । यह पैशाचिक कुकृत्य भी कर सकता है स्वर्ग जैसे नन्दन बन की रचना कर सकता है और कुम्भकरण की तरह पड़ा-पड़ा जीवन क्षणों को बर्बाद भी करता रह सकता है । और देवता की पूजा फल दे न दें ये संदिग्ध है पर मन का देवता प्रत्यक्ष है । इसकी आराधना कभी निष्फल नहीं जाती । यह तुरन्त फल देता है गाय की दिन में ठीक तरह सेवा करने से शाम को ही दूध की देगची भर देती है, यह मन की कामधेनु उससे भी अधिक उदार और निश्चित फलदायिनी है । गाय की सेवा कभी निष्फल भी हो सकती है पर इस कामधेनु का प्रत्युपकार तो निश्चित है ।

यदि हम अपने आपकी अपने मन की सेवा करने लगें तो सेवा का सत्परिणाम देखने के लिए परलोक की अगले जन्म की प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी वरन् नकद धर्म की तरह' इस हाथ दे उस हाथ ले' की उक्ति प्रत्यक्ष चरितार्थ होती दिखाई देगी । संसार के महापुरुषों के जीवन पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से पता चलता है कि परिस्थितियाँ साधनों एवं योग्यताओं की दृष्टि से वे आरम्भ में बहुत पिछड़े हुए ही थे । उनकी जन्म जाति या साँसारिक स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी औसत दर्जे के लोगों की होती है । उनमें एक ही विशेषता थी - ''मनोबल की प्रखरता'' इसी बल के आधार पर उन्होंने इतने बड़े कार्य सम्पन्न कर डाले जिन्हें देखने से हैरत होती है ।

इन पंक्तियों में विश्व की असंख्य घटनाओं के उल्लेख करने का अवसर नहीं है जिनमें साधारण स्थिति के व्यक्तियों ने अपने प्रकट मनोबल और प्रबल पुरुषार्थ के बल पर अनहोनी जैसी बातों को सम्भव करके दिखा दिया । पुराणों और इतिहासों के पन्नों पर ऐसी गाथाऐं पड़ने को मिल सकती हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की महानता उसे उपलब्ध साधनों या परिस्थितयों में नहीं वरन् उसके मनोबल में सन्निहित है । जब जिसका मनोबल

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जितनी मात्रा में विकसित हुआ है तब उसने अपने क्षेत्र में उतनी ही अद्‌भुत सफलताएँ प्राप्त करके अपने उन साथियों को आश्चर्य में डाला है, जो परिस्थितियों का रोना रोकर अपनी काहिली पर पर्दा डालने की कोशिश किया करते है ।

मन को कल्पवृक्ष कहा गया है और इस पर चार फल-धर्म अर्थ-काम मोक्ष लगते हैं, ऐसा बताया गया है । दूसरों की सेवा करने से केवल धर्म ही प्राप्त हो सकता है, पर अपनी अपने मन की सेवा करने से जब वह सुधर जाता है, सन्मार्ग पर चलने लगता है तो धर्म लाभ के अनेकों अवसर तो प्राप्त होते ही हैं साथ ही जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति एवं सफलता का द्वार खुल जाता है और सब ओर से आनन्द तथा प्रसन्नता-जनक परिस्थितियाँ उपजती दिखाई देने लगती हैं । ऐसी स्थिति में बुद्धिमत्ता इसी में दिखाई पड़ती है कि पहले सेवा करने के लिए कटिबद्ध हुआ जाय ।

यदि किसी का लक्ष्य पुण्य परमार्थ नहीं है, केवल स्वार्थ साधन ही अभीष्ट है तो उसे सेवा धर्म अरुचिकर एवं हानिकारक दिखाई देगा । अपनी शक्ति उसमें खर्च करते समय उसे संकोच एवं दुःख लगेगा पर अपनी सेवा करने में उसे वैसी कठिनाई न होगी । भौतिक जीवन की उन्नति के लिए मन का सधा हुआ होना आवश्यक है । यदि वह अव्यवस्थित असंयमित है तो कोई लौकिक सफलता भी न मिल सकेगी । इसलिए लौकिक सुख, सम्पत्ति चाहने वाले व्यक्ति को भी यह लाभदायक प्रतीत होगा कि मनोनिग्रह की दिशा में, आत्मनिर्माण की दिशा में कुछ प्रयत्न किया जाय ।

जिसका मन बेकाबू है उसका सांसारिक जीवन असफल एवं दुःखमय ही रहता है । चटोरी जीभ वाला व्यक्ति जिसका मन हर घड़ी स्वादिष्ट पदार्थों की अधिक मात्रा में खाने के लिए ललचाता रहता है, वह अपनी इस बुरी आदत के कारण ही अपनी पाचनशक्ति को खो बैठता है, और पेट खराब हो जाने पर नाना प्रकार के रोग उसे घेर लेते हैं । काम वासना की लिप्सा जिसके मन पर चढ़ी रहती है वह सोते जागते अपने जीवन रस को बे हिसाब निचोड़ता रहता है और अन्त में भीतर से खोखला होकर असमय में ही जरा जीर्णता और अकालमृत्यु का ग्रास बन जाता है । जिनका मन पढ़ने में नहीं लगता वह विद्यार्थी भला किस प्रकार विद्वान हो सकेगा ? जिस व्यापारी का चित्त अपने व्यवसाय की बारीकियों पर नहीं जमता, उछला-उछला फिरता है, उससे पग-पग पर भूलें होती रहेंगी और असावधानी की, विस्मृति की, उपेक्षा की मात्रा बढ़ते रहने से घाटे की दिशा में उसका कारोबार चलेगा ।

क्या कोई वैज्ञानिक ऐसा हुआ है जिसमें तन्मयता का, चित्त की एकाग्रता का गुण न रहा हो ? यदि उसमें ध्यान मग्न होने की विशेषता न रही होती तो वह कदापि कोई महत्त्वपूर्ण खोज न कर सका होता । इन्जीनियर, डॉक्टर, कलाकार, चित्रकार कवि साहित्यिक जो कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं उसके पीछे उनका मनोयोग ही काम करता है । राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, लोकनायक, सेनापति आदि महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियों का भार वहन करने वाले वे ही लोग हो हैं, जिनमें दूरदर्शिता होती है, समस्या के हर पहलू को बारीकी से सोच समझ सकते हैं और यह सब मन के संयमित होने पर ही सम्भव हैं । ऐसे मनुष्य जिनका चित्त किसी काम पर नहीं जमता, ऊखड़ा-उखड़ा रहता है कभी काम में सफल नहीं हो पाते, यहाँ तक कि चोरी उठाईगिरी, बेईमानी, व्यभिचार में भी वे कृतकार्य नहीं होते, वहाँ भी पकड़े जाते और बदनामी उठाते हैं ।

योग साधना तो महर्षि पांतञ्जलि के शब्दों में 'चित्त वृत्तियों का निरोध मात्र ही है । ' योग साधना का सारा कर्मकाण्ड और विधि-विधान चित्त निरोध के लिए ही है । ध्यान की तन्मयता से ही भगवान के दर्शन होते हैं । विषय विकारों की ओर से, मायामोह की ओर से चित्त को हटा लेना ही मोक्ष है । मूर्तिपूजा, कीर्तन, भजन पूजन का उद्देश्य भी मन की एकाग्रता ही है । सारी साधनाएँ मन को साधने के लिए ही है । भगवान के लिए क्या साधना करनी ? वह तो पहले से ही प्राप्त है, रोम-रोम से रमा है, अनन्त वात्सल्य और असीम करुणा की वर्षा करता हुआ अपना हस्त पहले से ही हमारे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सिर पर रखे हुए है, उसे प्राप्त करने में क्या कठिनाई है ? कठिनाई तो मन के कुसंस्कारों की ही है जो आत्मा और परमात्मा के बीच में चट्टान बन कर अड़ा हुआ है । यदि वह कृपा करके अपनी अड़ से पीछे हट जाय तो बस अध्यात्म की सारी सिद्धि करतलगत ही है । मोक्ष और ब्रह्म निर्वाण प्राप्त हुआ ही रखा है । मन के काबू में आते ही सारी सिद्धियाँ मुट्ठी में आ जाती हैं ।

मन सचमुच कल्पवृक्ष है । इसकी सेवा करके हम असीम लाभ, और अनन्त पुण्य प्राप्त कर सकते हैं । स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही इससे सध सकते हैं । लौकिक सुख और पारलौकिक शान्ति की कुन्जी हाथ में आ सकती है । पर यदि उसे साधा न गया तो वह शैतान की तरह हमारे सिर पर सवार होकर नाना प्रकार के कुकृत्य कराता है, विविध विधि नाच नचाता है । यदि हम इसे वश में नहीं करते तो इसके वश में हमें होना पड़ता है । कहते हैं कि 'भूत' लोगों को डराता और सताता रहता है पर यदि कोई तांत्रिक उसे वश में कर लेता है तो फिर उसकी इच्छानुसार नाचता है, जो कुछ करना चाहता है करता है और जो मँगाया जाता है लाकर देता है । सचमुच का भूत किसी को देखना हो तो वह अपने मन के रूप में देख सकता है । असंयमी और उच्छृंखलता मन किसी प्रबल शत्रु से-वेताल, ब्रह्मराक्षस से कम नहीं है, पर यदि उसे साध लिया जाय तो वही परम मित्र बन जाता है, देवता की तरह सहायक सिद्ध होता है ।

हजारों मनुष्यों की थोड़ी-थोड़ी सेवा कर देने से उतना लोकहित नहीं हो सकता जितना अकेले अपने मन को साध लेने और सुधार लेने से हो सकता है । इसलिये सेवा का सबसे बड़ा पात्र एवं अधिकारी हमारा अपना आपा ही है । इसकी सेवा करके हम समस्त प्राणियों की सारे विश्व ब्रह्माण्ड की सेवा कर सकते हैं । सेवाधर्म का आरम्भ करने के लिए प्रारम्भिक सीढ़ी यही है । अपनी सेवा में भगवान की विश्व मानव की सेवा सन्निहित है ।

# हम अपनी ही सेवा क्यों न करें ?

सेवा मानव जीवन का एक आवश्यक अंग है । आत्म-सन्तोष उसी के आधार पर मिलता है । सेवा से रहित जीवन एक निकृष्ट कोटि का स्वार्थी और संकीर्ण जीवन है । उसमें न लोक सधता है न परलोक । जो तुच्छ भौतिक सुखों, तृष्णाओं और वासनाओं की पूर्ति में लगा रहता है उसे नर-पशु ही कहना चाहिए ।

अपने से पिछड़े हुओं को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने समान बनाने का प्रयत्न 'सेवा' कहा जाता है । हर व्यक्ति की एक मर्यादा है और वह उतनी ही सेवा कर सकता है । अपने से छोटे, समीपवर्ती, सम्बद्ध और विश्वस्त लोग ही सेवा के पात्र हो सकते हैं । इस मर्यादा से बाहर सेवा कर सकना किसी के लिये सम्भव नहीं फिर चाहे वह कितना भी उदार और परोपकारी क्यों न हो । समस्त विश्व की सेवा करके सब को सुखी बनाने की भावना रखी जा सकती है, पर सेवा का क्षेत्र सारे संसार को, समस्त मानव समाज को नहीं बनाया जा सकता क्योंकि वे हमारी सेवा-सीमा से बाहर होते है ।

मान लीजिए, आप विश्व-सेवक हैं और अफ्रीका निवासियों के दुःख दूर करना चाहते हैं, उन्हें अपनी सेवा का लाभ देने के इच्छुक हैं, पर वे आपसे इतनी दूर हैं, सेवा की पहुँच से इतने बाहर हैं कि वहाँ तक पहुँचना, उनकी भाषा समझ सकना, उनके वातावरण में रह सकना, परिस्थिति को समझ सकना, आपके लिए कठिन है, फिर आप किस प्रकार उनकी सेवा करेंगे ?

मान लीजिये आप आज की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में अमुक प्रकार का परिवर्तन चाहते हैं । इसके लिये आपके कुछ विचार भी हैं । आप सरकार के कर्णधारों, राजनीतिज्ञों, नेताओं, अग्रणी पुरुषों से अपने विचारों के अनुसार कार्य कराना चाहते हैं । उनसे लिखित

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


या मौखिक अनुरोध भी करते हैं पर वे आपका, आपके विचारों का महत्त्व स्वीकार नहीं करते । आपकी इच्छा और सलाह को पागलपन मात्र मानकर उपेक्षा कर देते हैं फिर अपना क्या वश रह जाता है ? देश के उच्च साहित्यकार केवल युग निर्माता की रचनाएँ लिखें, कवि जागरण के गीत बनावें, फिल्म निर्माता चरित्र निर्माता की फिल्म बनावें, अध्यापक प्राचीन जैसे आदर्श गुरु बन जावें, धर्मिक नेता ऋषियों जैसा जीवनयापन करें आप इन आकाँक्षाओं के लिए उन्हें प्रेरणा भी करते हैं पर वे लोग आपको तुच्छ समझकर इन बातों को उपहास में टाल देते हें । अब आप क्या करेंगे ?

आप चाहते हैं कि मुसलमान, सिख, नागा, द्रविड, आदिवासी आदि सभी लोग अपने को भारत माता की सन्तान और एक ही रक्त से अनुप्राणित एक ही वृक्ष के डाली, पत्ते समझें और राष्ट्रीय एकता का परिचय दे । भाषा, सम्प्रदाय, जातिवाद की अपनी संकुचित वृत्ति को छोड़े । पर जिन वर्गो में आपका अधिक प्रवेश ही नहीं है जो आपको अपने से बाहर का, अपने स्वार्थो का विरोधी माने बैठे हैं, वे आपकी बात क्यों सुनेंगे ? वे समझेंगे यह अपने हिन्दूवाद के लाभ की बात कर रहा है हमारा दुश्मन है । वह आपकी बात का तिरस्कार ही नहीं विरोध भी करेंगे, आप कैसे उन्हें समझा पायेगें ?

कोई व्यक्ति आपको धूर्त, ढोंगी, चालाक, वाचाल, बेईमान, विरोधी मान बैठा है, आपके प्रति घृणा, द्वेष के भाव उसके मन में भरे हुए हैं, तब आप उसे कैसी ही उत्तम सलाह क्यों न दें, कैसा ही हितकर मार्ग क्यों न बतावें वह उस पर ध्यान ही न देगा और इस शिक्षा में भी कोई चाल या छिपा हुआ रहस्य ढूँढेगा और सोचेगा कि मुझे किसी चाल में फँसने के लिए ऐसी मीठी बातें बनाई जा रही हैं । आपका सारा प्रयत्न निष्फल चला जायगा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि अपने से अधिक ऊँची स्थिति के, दूरवर्ती, असम्बद्ध और अविश्वासी लोगों को कोई व्यक्ति चाहते हुए भी कुछ सेवा नहीं कर सकता । उसका क्षेत्रफल तो अपने से छोटे, पिछड़े हुए, समीपवर्ती-परिचित जातिधर्म, भाषा, व्यवसाय, मित्रता रिश्तेदार आदि किन्हीं आधारों पर सम्बन्धित तथा वे ही लोग हो सकते हैं जो उसे भला आदमी मानते हैं, उसे योग्य चरित्रवान और विश्वासी मानते हैं । हर सेवा परायण व्यक्ति को अपनी सेवा भावना जहाँ-तहाँ विखरने की उपेक्षा इस दायरे में सीमित करनी पड़ती है । आकस्मिक विपत्ति की बात दूसरी है, चोट, दुर्घटना, भूकम्प, अग्निकाण्ड आदि से पीड़ित व्यक्तियों की तात्कालिक सेवा के अचानक अवसर कभी भी आ सकते हैं । उनके लिए योजनाबद्ध सेवा वाली बात नहीं लागू होती ।

संसार में अनेक प्रकार की व्याधि दिखाई देती हैं । लोग नाना प्रकार के शोक सन्तापों से व्यथित हैं । इनके दु:ख मिटाने के लिए सहृदय व्यक्ति के मन में करुणा, उसके लिए उसे प्रयत्न और त्याग भी करना चाहिए । किन्तु इससे पूर्व सेवाभावी को यह भी जानना होगा कि विश्वव्यापी शोक सन्तापों, आधि-व्याधियों और द्वेश क्लेशों का क्या कारण है ? कारण को जानने के बाद उसका उचित उपचार हो सकता है । निदान हो जाने पर ही रोग की सही चिकित्सा हो सकती है ।

विश्वव्यापी समस्त दु:खों का कारण है अज्ञान और पाप, स्वार्थ और मोह, तृष्णा और वासना । इन महाव्याधियों को हटाये बिना, दु:खों को दूर करने के समस्त प्रयत्न ऐसे ही हैं जैसे रक्त-विकार की फुन्सियों पर मरहम लगाना । इससे व्याधि का समाधान नहीं होता तात्कालिक कष्टों से तथा सामयिक अभावों से पीड़ित मनुष्यों की सहायता करना कर्त्तव्य है पर उतने मात्र से न तो मानव जाति के कष्ट दूर हो सकते हैं और न समस्याएँ सुलझ सकती हैं ।

धन देकर की हुई सेवा सबसे साधारण मानी जाती है । उससे मनुष्यों की कुछ समस्याएँ थोड़ी देर के लिए सरल होती हैं । किसी को शरीर सुख पहुँचा कर की हुई सेवा भी कुछ समय तक ही दु:ख दूर करती हैं । तन और धन की सेवा नहीं करनी चाहिए, यह प्रयोजन नहीं है, वह तो उदार हृदय व्यक्ति समय-समय पर करता ही रहेगा, उन्हें तो करनी ही चाहिए, पर किसी का जीवन-क्रम जब तक न सुधरेगा तब तक इन तन-मन और धन की सहायताओं से भी उसका काम न चलेगा । आज तो सर्वत्र अशान्ति क्लेश और पीड़ा का साम्राज्य छाया हुआ है उसका कारण धन या तन के सुखों की कमी नहीं है । ये तो समयानुसार दिन-दिन बढ़ते ही जाते हैं । फिर भी तो क्लेश बढ़ रहे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हैं उनका कारण व्यक्ति और समाज का आन्तरिक स्तर, चरित्र एवं आदर्श का गिर जाना ही है । इसे उठाने की जो सेवा है उसी से विश्वव्यापी समस्यायें सुलझेंगी । अन्यथा कुआ बनवाने या प्याऊ लगाने से, दबाखाने और धर्मशाला बनवाने से भी क्या काम चलने वाला है ? जब लोगों का चरित्र चोरी, बेईमानी, दगाबाजी, लूट, शोषण, अपहरण, विलासिता, फिजूलखर्ची, व्यसन, व्यभिचार आदि अनैतिक दिशाओं की ओर तेजी से अग्रसर हो रहा है तो इन कुकृत्यों से जो दुष्परिणाम और दुःख उत्पन्न होंगे उन्हें देखते हुए प्याऊ लगवाने, गौ को चारा डाल देने या चिड़ियों को चुगाने का पुण्य जलते तवे पर दो-चार बूँद पानी डालने के समान ही होगा ।

जैसे एक व्यभिचारी अनेकों को अपनी बुराई में सान लेता है, जैसे एक नशेबाज अपनी लत कई औंरो को भी सिखा देता है उसी प्रकार एक भले गुण कर्म स्वभाव का व्यक्ति भी अपने प्रभाव से कुछ न कुछ व्यक्तियों को अवश्य ही अपने समान बना सकता है, सुधार सकता है । यदि उसका मनोबल और चरित्र उच्चकोटि का है तब तो उसका सूक्ष्म प्रभाव इतना प्रचण्ड भी हो सकता है कि असंख्यों व्यक्तियों को कुछ से कुछ बना दें । भगवान बुद्ध , महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों ने अपने आत्मबल से कितने लोगों को क्या से क्या बना दिया यह उदाहरण हमारे सामने हैं । पूर्व काल में भी, सारे संसार में यही प्रक्रिया काम करती रही है । चरित्रवान् और आत्मबल सम्पन्न लोगों ने अकेले ही विश्व को, मानव-जाति को ऊपर उठाने का इतना अधिक कार्य किया है जितना कि आत्मबल से रहित हजारों उपदेशक गला फाड़-फाड़ कर जीवन भर चिल्लाते रहने से भी नहीं कर सकते ।

यदि अपने पास गोली बारूद पर्याप्त हो, उत्कृष्ट हो तो अनेक शत्रुओं को मार गिराया जा सकता है । पर यदि लकड़ी की तलवार लेकर युद्ध के मोर्चे पर हुंकार मचावेंगे तो विजय की माला पहनने का लाभ नहीं मिलेगा । संसार के कष्टों को मिटाने के लिए जन समाज का नैतिक मानसिक स्तर ऊँचा उठाना आवश्यक है । इस प्रकार की सेवा तभी हो सकती है जब अपनी निज की स्थिति भी सब कर सकने के लिए शक्तिशाली एवं उपयुक्त हो । पटरी से नीचे उतर कर नीचे गिरी हुई रेल-गाड़ी के डिब्बों को उठाकर खड़ा करने के लिए मजबूत क्रेन मशीन की जरूरत पड़ती है । यदि वह क्रेन कमजोर हो, नकली हो, टूटी-फूटी हो, बेकार हो तो कितना ही प्रयत्न और प्रदर्शन करने पर भी गिरी हुई रेल के डिब्बे न उठेंगे । यही बात आज के व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने के सम्बन्ध में है । उसे साधारण प्रचार के बल पर नहीं उठाया जा सकता । उसके लिए मजबूत क्रेन मशीन की ही आवश्यकता है । अपने आपको फौलादी निर्माण करके क्रेन की आवश्यकता स्वयं पूरी करेंगे तभी वह सच्ची सेवा की योग्यता होगी । उसी से विश्व का कल्याण और सच्ची मानव-सेवा हो सकेगी ।

किसी बर्तन का एक भाग आग पर रखा जाय तो सारा बर्तन गरम हो जाता है और उसके भीतर रखी हुई चीजें पकने लगती हैं । आग केवल बर्तन के पेंदे को छूती है पर गरमी केवल पेंदे तक ही सीमित न रही वरन् सारे बर्तन में फैल गई । विश्व सेवा का आरम्भ हम अपने आपकी सेवा करके कर सकते हैं । व्यक्ति अकेला नहीं है । सारे समाज के साथ, सारे विश्व के साथ उसकी श्रृंखला जुड़ी हुई है । सुधार कार्य, सेवा कार्य किसी भी व्यक्ति से आरम्भ किया जाय उसका परिणाम निश्चित रूप से पूरे समाज पर होता है । यदि हम अपनी सेवा कर लें, अपने को सुधार लें तो सारी दुनिया मनुष्य जाति की सेवा उससे हो सकती है ।

किसी को सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा देकर ही उसके कष्ट और चिन्ताओं का समाधान हो सकता है । यह कार्य उपदेशों से नहीं, अपना आदर्श उपस्थित करके ही किया जा सकना सम्भव है । हम अपने को सुधार कर न केवल अपनी समस्याओं को हल करते हैं वरन् औरों के लिए आदर्श उपस्थित करके उनको ऐसी ठोस शिक्षा देते हैं जिनसे वे भी हमारी ही तरह शान्ति प्राप्त कर सकें । सेवा का यही सच्चा मार्ग है । आत्म-सुधार के आत्म सेवा के प्रयत्न में ही स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# आत्म-विकास हमारा प्रमुख कर्त्तव्य

गीता में अर्जुन और कृष्ण का सम्वाद मूलतः इन आन्तरिक बुराइयों से लड़ने के लिए ही है । कौरवों और पाँडवों के रूप में तमोगुण असुरता और सतोगुण मानवता के संघर्ष का ही महाभारत में चित्रण किया गया है । यह महाभारत युग-निर्माण योजना के साथ-साथ इसी महाभारत की विजय के लिए गाण्डीव उठाना और पांचजन्य बजाना पड़ेगा । प्रगति कितनी ही मन्द क्यों न हो, कार्यक्रम कितना ही हलका क्यों न बनाया जाय आत्म-सुधार की दिशा में हमें चल पड़ने को अब तत्पर होना ही होगा ।

आमतौर से हर आदमी अपने को सही, निर्दोष, निर्भ्रान्त और ठीक काम करने वाला मानता है । जब कि वस्तुतः उसमें अनेकों त्रुटियाँ और बुराइयाँ भरी पड़ी होती हैं । त्रुटियों के कारण उसकी उन्नति रुकी पड़ी रहती है और बुराईयों के कारण शक्तियों की बर्बादी ही नहीं होती रहती है वरन् आये दिन नित नई आपत्तियाँ भी खड़ी होती रहती है । पर कठिनाई एक ही है कि अपने दोष किसी की समझ में नहीं आते । जीवनक्रम का जो ढर्रा चल रहा है उससे असन्तोष तो रहता है पर सूझ नहीं पड़ता कि इसमें क्या परिवर्तन किया जाय और किस प्रकार किया जाय ? अपनी आँख का तिल किसी को दिखाई नहीं पड़ता । अपना चेहरा अपनी आँखों से देख सकना कठिन है । यह तभी सम्भव होता है जब दर्पण का सहारा मिले । अपनी भूलों को ढूंढने के लिए दर्पण के समान आत्म-निरीक्षण की सद्बुद्धि अभीष्ट होती है । जिस प्रकार हम दूसरों की आलोचना, बहुत बारीकी से, उसके दोषों को बताते हुए कर सकते हैं वैसी ही निष्पक्ष और तीक्ष्ण दृष्टि अपने बारे में पैदा हो जाय तो आत्म-सुधार की आधी मंजिल पार हो जाती है ।

मूल प्रश्न उन तथ्यों का है जिनके ऊपर हमारी प्रगति और शान्ति निर्भर रहती है । यह तथ्य सद्गुण ही हो सकते हैं । धन, विद्या, बुद्धि, बल, मित्र आदि अनेकों बल इस दुनिया में ऐसे मौजूद हैं जिनकी सहायता से प्रगति का पहिया आगे घूमता है पर सबसे बड़ा बल है, स्वभाव बल, चरित्र बल, विचार बल, व्यवस्था बल । इसका विचार अपनी भीतरी स्थिति को सुधारने पर ही सम्भव हो सकता है । पर कठिनाई यह है कि अपने पक्षपात का ऐसा पर्दा मनुष्य की बुद्धि पर पड़ा रहता है कि अपनी त्रुटियाँ दीख नहीं पड़ती । सारी खराबियाँ और बुराइयाँ दूसरों में दीखती हैं । लोग दूसरों को सुधारना चाहते हैं और स्वयं अपरिवर्तनशील रहना चाहते हैं ।

अपनी आलोचना कर सकना, आत्म निरीक्षण करके अपनी बुराइयाँ ढूँढ सकना, और उन्हें सुधारने के लिये तत्पर हो सकना सचमुच ही एक बड़ी बहादुरी और दूरदर्शिता का काम है । जिसमें इतना साहस आ गया उसे सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक व्यक्ति कहा जा सकता है । आत्म-कल्याण की पहली सीढ़ी आत्म-निरीक्षण और दूसरी आत्म-सुधार है । जो अपनी समीक्षा करने और अपना सुधार कर सकने की आवश्यकता को समझता है और उसके लिए ईमानदारी से तत्पर रहता है वह गिरी हुई स्थिति में नहीं पड़ा रह सकता । उसके जीवन का विकास होने वाला है, उसे प्रगति के पथ पर चलते हुए एक दिन महापुरुषों की श्रेणी में अपनी गणना कराने का अवसर मिलने ही वाला है ।

प्रातःकाल का समय ईश्वर चिन्तन के लिए और सायंकाल का समय आत्म-निरीक्षण के लिए नियत करना चाहिये । नित्य कर्म से निवृत्त होकर नियमित सन्ध्या जप ध्यान करना एक उचित धर्म विधान है । उसे पालन करने का प्रयत्न हम सब लोग करें । असुविधा और परिस्थितियों के कारण इसमें कुछ व्यतिरेक होना क्षम्य भी कहा जा सकता है पर शैय्या पर नींद खुलने से लेकर जमीन पर पैर रखने के बीच का जो थोड़ा-सा समय रहता है वह अनिवार्य रूप से हम में से हर एक को ईश्वर चिन्तन में लगाना चाहिए । इस समय में फुरसत न मिलने जैसे बहाने का कोई प्रश्न नहीं है । सर्वव्यापक निष्पक्ष, न्यायकारी, परमेश्वर से सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करने की प्रार्थना इस

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


समय मन ही मन करते रहनी चाहिये । गायत्री मन्त्र का भावार्थ भी यही है । मानसिक गायत्री जाप इसे कहा जा सकता है । भावनापूर्वक मानसिक जाप और परमात्मा का ध्यान इस समय बहुत आसानी से हो सकता है । जो लोग नियमित उपासना करते हैं उन्हें भी और जो नहीं करते हैं उन्हें भी यह क्रम आरम्भ कर देना चाहिए । चारपाई से नीचे उतरने से पूर्व १५ मिनट की यह प्रार्थना अपने परिवार के हर व्यक्ति को करनी चाहिए और अपने प्रभाव में परिवार के जो-जो सदस्य हों उनसे इसे नियमित रूप से कराना चाहिए ।

मानव-जीवन का आदर्श, कर्त्तव्य धर्म ओर सदाचार का इस संकल्प मन्त्र में भावनापूर्ण समावेश हुआ है । इसका पाठ करना किसी धर्मग्रन्थ के पाठ से कम प्रेरणा और पुण्य फल प्रदान करने वाला नहीं है ।

सायंकाल को चारपाई पर पड़ने से लेकर सोने तक का समय आत्म-निरीक्षण में लगाना चाहिए । आज के दिन हमने क्या-क्या भूलें और बुराइयाँ की इस-इस पर बहुत बारीकी से सोचना चाहिए । भूलें वे हैं जो अपराधों की श्रेणी में नहीं आतीं पर व्यक्ति के विकास में बाधक हैं । चिड़चिड़ापन, ईर्ष्या, आलस, प्रमाद, कटुभाषण, अशिष्टता, निन्दा, चुगली, कुसंग, चिन्ता, परेशानी, व्यसन, वासनात्मक कुविचारों एवं दुर्भावनाओं में जो समय नष्ट होता है उसे स्पष्ट समय की बर्बादी कहा जायगा । प्रगति के मार्ग में यह छोटे-छोटे दुर्गुण ही बहुत बड़ी बाधा बनकर प्रस्तुत होते हैं इसलिये सायंकाल को आत्म-निरीक्षण के समय यह विचार करना चाहिए कि आज इस प्रकार की भूलों में हमारा कितना समय बर्बाद हुआ । यह भूलें प्रत्यक्षत: अपराध नहीं मानी जातीं तो भी यह अपराधों के समान ही हानिकारक हैं । बुराइयों में नैतिक, बुराइयाँ गिनी जाती हैं, झूठ, हिंसा, नशेबाजी, व्यभिचार, बेईमानी, चोरी, जुआ, ठगी, क्रूरता, गुन्डागर्दी, अशिष्टता आदि की मोटी बुराइयाँ तो स्पष्टत: त्याज्य हैं । इनके विचारों का मन में प्रवेश करना भी मानसिक पाप कहा जाता है । उससे भी बचना चाहिये । आज जो बुराइयाँ और भूलें बन पड़ी हैं उनका आत्मा द्वारा मन से उसी प्रकार लेखा-जोखा लिया जाना चाहिए जिस प्रकार कोई उद्योगपति अपने कारखानों के मैनेजर से रोज के कार्य और हिसाब का लेखा-जोखा लिया करता है । दोषों की कमी होते चलना और गुणों की बढ़ोत्तरी होना आत्मिक प्रगति के व्यापार में लाभ होने का चिह्न है । यदि बुराइयाँ बढ़ रही हैं और अच्छाइयाँ घटे तो समझना चाहिए फर्म दिवालिया होने जा रही है । पूर्ण निर्दोष कोई नहीं, और न कोई पूर्ण गुणवान् ही इस दुनिया में है । फिर भी प्रयत्न करते रहा जाय तो हमारी बुराइयाँ और भूलें दिन-दिन घटती और श्रेष्ठताएँ बढ़ती चल सकती है । इससे आज का लेखा-जोखा समझने के बाद कल के लिए ऐसी योजना सोचनी चाहिए कि श्रेष्ठता की अभिवृद्धि और क्षुद्रता की कमी होने लगे । रोज-रोज यह कार्यक्रम ठीक तरह बनाया जाता रहे और उस पर अगले दिन चला जाता रहे तो आत्म-सुधार का कार्य निरन्तर गतिवान् रह सकता है ।

उत्कृष्ट श्रेणी का जीवनयापन करने के लिए यह आवश्यक है कि उस प्रकार की प्रेरणा देते रहने वाले प्रौढ़ विचार हमें निरन्तर मिलते रहें । पेट्रोल जब तक भरा रहता है तब तक मोटर चलती रहती है । तेल निबट जाने पर बढ़िया मोटर भी आगे नहीं बढ़ती । सब सुविधाएँ होते हुए भी प्रेरणास्पद विचारों के अभाव में मनुष्य न तो श्रेष्ठ सत्कर्म कर सकता है और न आत्म-निर्माण की दिशा में प्रगति कर पाता है । इसके विपरीत जिन्हें अनेक व्यस्तताएँ, समस्याएँ, घेरे रहती हैं वे भी सद्विचारों की प्रेरणा उपलब्ध होने पर आन्तरिक उत्कर्ष के पथ पर तेजी से बढ़ते चले जाते हैं ।

ईश्वर उपासना की ही तरह स्वाध्याय को भी प्रमुखता दी जानी चाहिए । साधना में निष्ठा बनाये रहना सद्भाव की ही निरन्तर प्रेरणा से सम्भव होता है अन्यथा उस नीरस कार्य से मन ऊबने लगता है, आलस आता है और उत्साहपूर्वक आरम्भ की हुई साधना पहले अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित होती है और अन्त में वह छूट जाती हैं । सद्प्रवृत्तियों की मोटर में सद्विचारों का पेट्रोल ही काम करता है । इसका प्रबन्ध रखे बिना कोई ड्राइवर अपनी गाड़ी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


को निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचाने में सफल नहीं होता । नित्य का स्वाध्याय हमारे जीवन में एक नैष्ठिक धर्म-कर्त्तव्य की तरह सुनिश्चित रहना चाहिए ।

जो कुछ प्रेरणाप्रद साहित्य पढ़ा गया है उस पर विचार करना चाहिए और यह प्रयत्न करना चाहिये कि आत्मोत्थान के लिए किस प्रकार, किन-किन विचारों को कितने अंशों में हम पूरा कर सकते हैं । आज की स्थिति में जितना कुछ सम्भव हो उतना सुधार आरम्भ कर ही देना चाहिये । पूर्ण रूपेण आदर्श जीवन तो इस संसार में किसी को भी नहीं है, हमें भी पूर्ण पवित्र जीवन एक दिन में प्राप्त हो जाने की आशा नहीं करनी चाहिए । धीरे-धीरे एक-एक कदम बढ़ाते हुए उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच सकना सम्भव होता है । अपने गुण कर्म-स्वभाव में जो-जो दोष-दुर्गुण भरे पड़े हों उनका बारीकी से निरीक्षण करना चाहिए और उन्हें हटाने का प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए ।

चिर-संचित संस्कार धीरे-धीरे ही दूर होते हैं । छोड़ देने की इच्छा रहते हुए ही अभ्यास में आई हुई बातें बार-बार प्रबल हो उठती हैं और प्रयत्नों को असफल करने की रचना रचती हैं । यह कठिनाई प्रत्येक आत्म-सुधार करने वाले के सामने आती हैं । सफल वही होता है जो असफलताओं से खिन्न होकर प्रयत्न नहीं छोड़ता । बार-बार भूलें होना स्वभाविक हैं पर उन्हें सुधारने की प्रक्रिया छोड़ी नहीं जानी चाहिए । निराश हुये बिना, बार-बार लौट आने वाली बुरी आदतों को सुधारने में लगा ही रहना चाहिये ।

अपनी अच्छाइयों को भी समझना चाहिये । जो सदगुण मौजूद हैं । उन्हें बढ़ाना चाहिए, जो नहीं हैं उन्हें उत्पन्न करना चाहिये । नशेबाजी की आदत किसी को जन्म से ही नहीं होती । पीछे से सीखी जाती हैं । जो सद्गुण हमें अब तक के वातावरण में प्राप्त नहीं हो सके हैं, उन्हें सीखने का अभ्यास अब आरम्भ किया जा सकता है । सिखाने से बन्दर जैसा उद्दण्ड जानवर तरह-तरह के खेल तमाशे करना सीख जाता है, तो कोई कारण नहीं कि मन पर लाठी के बल से नियन्त्रण रखा जाय, प्यार पुचकार से समझाया जाय तो वह भी सद्गुणों को अपने स्वभाव का अंग न बना ले । यह कार्य कठिन दीखता तो है पर वस्तुतः वैसा नहीं है ।

शरीर से प्रायः कम ही दुष्कर्म होते हैं पर मन में यह बुरी लत पड़ी रहती है कि छोटे कारणों को लेकर बुरी-बुरी बातें सोचने लगे । किसी का रूप यौवन देखकर उसकी ओर अनैतिक भाव उठते हैं, कोई हमारी थोड़ी-सी हानि कर दे तो उसके प्रति मारने मरने तक की प्रतिहिंसा जागती है, किसी की बढ़ती को देखकर ईर्ष्या होना, कहीं स्वार्थ सधता दीखे तो चोरी की इच्छा होना जैसे अनेकों दुर्भाव मन में उठते रहते हैं । यद्यपि वह दुर्भाव कार्यान्वित नहीं हो सके, किसी पर प्रकट भी नहीं हुए, पर उनसे अपनी जो हानि होनी थी वह तो हुई ही । मनोभूमि अपवित्र हुई, अनीति का प्रश्रय मिला और पाप का बीजांकुर उत्पन्न हुआ । यदि कभी ऐसा अवसर आवे कि बाहरी रोकथाम न हो तो उठने वाले कुविचार आसानी से चरितार्थ हो भी सकते हैं ।

जो चोरी करने की बात सोचता रहता है उसके लिए अवसर पाते ही वैसा कर बैठना क्या कठिन होगा ? शरीर से ब्रह्मचारी और मन से व्यभिचारी बना हुआ व्यक्ति वस्तुतः व्यभिचारी ही माना जायेगा । मजबूरी के प्रतिबन्धों से शारीरिक क्रिया भले ही न हुई, पर वह पाप सूक्ष्म रूप से मन में तो मौजूद था । मौका मिलता तो वह कुकर्म भी हो ही जाता ।

कई बार सदाचारी समझे जाने वाले लोग आश्चर्यजनक दुष्कर्म करते पाये जाते हैं । उसका कारण यही है कि उनके भीतर-ही भीतर वह दुष्प्रवृत्ति जड़ जमाये बैठी रहती है । उसे जब भी अवसर मिलता है नग्न रूप में प्रकट हो जाती है । इसलिए प्रयत्न यह होना चाहिए कि मनोभूमि में भीतर-ही भीतर छिपे रहने वाले दुर्भावों का उन्मूलन करते रहा जाय ।

आत्म-निरीक्षण करके यह देखना चाहिए कि आज कब-कब, किस-किस घटना को लेकर क्या-क्या दुर्भाव हुए ? फिर सोचना चाहिये कि इन भावों के स्थान पर किन-किन भावों का आना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उचित था । आगे जब कभी अवसर आवें तो इस प्रकार सोचने की बजाय हम इस प्रकार सोचा करेंगे, इस प्रकार की विचारणा करनी चाहिये और मन को वैसी ही सलाह देनी चाहिए । इसके लिए कोई कठोर व्रत लेने की जरूरत नहीं है, क्योंकि दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन एक दिन का काम नहीं है । रोज ही यह प्रयत्न चलता रहे तो दृष्टिकोण स्वयं ही बदलने लगता है । दुष्प्रवृत्तियाँ वहीं पनपती रहती हैं जहाँ उनकी रोकथाम नहीं होती । चोरों की दाल अँधेरे में ही गलती हैं, मच्छर सीलन के स्थान पर ही अन्डे देते हैं, इसी प्रकार दुष्प्रवृत्तियाँ वहीं पनपेंगी जहाँ उन पर कड़ी नजर न रखी जायेगी । जहाँ चौकीदारी का, जाँच पड़ताल का, ठीक प्रबन्ध रहता हैं वहाँ चोरों की घात नहीं लगती । दुर्भाव भी एक प्रकार के चोर ही हैं जो वहाँ ठहरते हैं जहाँ निरीक्षण न होता हो । चौकसी और निगरानी को देखकर उन्हें वह स्थान छोड़ने को ही विवश होना पड़ता है ।

अगले दिन क्या कार्य करने हैं और उनमें क्या-क्या ऐसे अवसर आ सकते हैं जिनमें दुर्भावनाएं उठने की सम्भावना है । यदि आशंका के अनुरूप परिस्थिति आये तो उस समय मन में क्या-क्या प्रतिक्रिया उठे ? क्या दृष्टिकोण रहे ? आदि बातों को पहले से ही सोच रखना चाहिये और अवसर आने पर वैसी ही भावनाएँ मन में लाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

इस प्रकार दिन में सद्विचारों का अभ्यास करना और रात को उनकी विवेचना करना उचित है । आज की समीक्षा और कल तैयारी करने से कुविचारों पर नियन्त्रण प्राप्त करते चलना सहज होता जाता है । उसी प्रकार जो सद्गुण अपने में नहीं थे, उन्हें किस प्रकार धीरे-धीरे अपने स्वभाव में शामिल किया जाय, इसी नित्य विवेचना होती रहे तो उनका भी अभ्यास में सम्मिलित हो जाना कुछ कठिन नहीं रहता ।

दिन में किसी समय कम से कम एक घण्टे का जीवन-निर्माता स्वाध्याय, रात को आधा घण्टा आत्म-निरीक्षण एवं निर्माण की विवेचना का यदि नित्य नियम रहे और दिन भर अपने विचारों और आचरणों पर कड़ी निगरानी रखी जाय तो हमारी आन्तरिक गतिविधियों में भारी परिवर्तन हो सकता है । दैनिक जीवन में क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर आमतौर से क्या विचार उठा करते हैं उन्हें समझना चाहिये और यह विचार करना चाहिए कि उनमें कितना औचित्य और अनौचित्य रहता है । जो अनुचित हो उसे छोड़कर उसके स्थान पर उचित दृष्टिकोण अपनाने की बात सोची जाय तो यह विचार कार्य रूप में भी परिणत होने लगती है ।

यदि विचार बदल जायेंगे तो कार्यों का बदलना सुनिश्चित है । कार्य बदलने पर भी विचारों का न बदलना सम्भव है, पर उनसे विपरीत कार्य देर तक नहीं होते रह सकते । विचार बीज है, कार्य अंकुर । विचार पिता है, कार्य पुत्र । इसलिए जीवन परिवर्तन का कार्य विचार परिवर्तन से ही आरम्भ होता है । जीवन-निर्माण का आत्म-निर्माण का अर्थ है- "विचार निर्माण ।"

लोहे से लोहा काटा जाता है, काँटे से काँटा निकलता है, विष को विष मारता हैं, सशस्त्र सेना का मुकाबिला करने के लिए वैसी ही सेना चाहिए । कुविचारों का शमन सद्विचारों से ही सम्भव है । इस लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अपने गुण, कर्म, स्वभाव में जो त्रुटियाँ एवं बुराइयाँ दिखाई दें उनके विरोधी विचारों को पर्याप्त मात्रा में जुटा कर रखा जाय और उन्हें बार-बार मस्तिष्क में स्थान मिलते रहने का प्रबन्ध किया जाय । जब आलस्य घेर रहा हो तब परिश्रम, उत्साह, स्फूर्ति और तत्परता को प्रोत्साहन देने वाले विचारों पर देर तक मनन चिन्तन करना चाहिए, आलस्य हट जायगा । जब कामुकता जग रही हो तो ब्रह्मचर्य, मातृ-भावना एवं चारित्रिक पवित्रता की विचारधारा को मन में स्थान देना चाहिए वासना शान्त हो जायेगी ।

क्रोध का आवेश चढ़ रहा हो तो शान्ति, प्रेम, क्षमा, मैत्री, सहानुभूति, उदारता की दृष्टि से विचार करना शुरू कर देना चाहिए, गुस्सा ठण्डा हो जायगा । शोक, निराशा और चिन्ता घेरने लगे तब साहस, आशा, पुरुषार्थ और पुर्ननिर्माण की बात सोचनी चाहिए मन सन्तुलित होने लगेगा । यदि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


निकृष्ट विचार मनुष्य को गिरा सकते हैं तो उत्कृष्ट विचार उसे ऊँचा भी उठा सकते हैं ।

अपनी दुर्बलताएँ छोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी हानियों पर अधिक-से अधिक विचार किया जाय । साथ ही वह बुराई छोड़ देने पर जो लाभ मिलेगा आशापूर्ण चित्र भी मन में बनाना चाहिए । नशा छोड़ना हो तो उसके द्वारा जो शारीरिक, आर्थिक और मानसिक हानियाँ होती हैं उन पर विचार करना और उसे छोड़ने पर स्वास्थ्य-सुधार, पैसे की बचत तथा मनोबल बढ़ने का सुनहरा चित्र मन:क्षेत्र में स्थापित करना आवश्यक है । कुछ दिन लगातार यह उपक्रम चलने लगे तो नशे के प्रति घृणा हो जायगी और वह अवश्य छूट जायगा । किन्तु यदि इस प्रक्रिया को पूर्ण किये बिना ही किसी जोश आवेश में नशा छोड़ देने की प्रतिज्ञा कर ली है तो यह आशंका ही बनी रहेगी कि वह उत्साह ठण्डा होने पर पुरानी आदत फिर प्रबल हो उठे और नशा करना फिर शुरू हो जाय । इसलिए इस सुनिश्चित तथ्य को भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि जीवन को सुधार की दिशा में मोड़ने के लिए उत्कृष्ट कोटि की विचारधारा की मनोभूमि में नियमित रूा से स्थान देते रहना नितान्त आवश्यक है । इस अनिवार्य आवश्यकता की उपेक्षा करके कभी कोई व्यक्ति न अब तक आत्म-निर्माण सका है और न आगे कर सकेगा ।

हमें अपने व्यक्तित्व को श्रेष्ठता के ढाँचे में ढालने के लिए सचमुच ही उत्सुक विचारधाराओं को मस्तिष्क में ठूंसने का एक नियमित विभाग बना ही लेना चाहिए । मन लगे, चाहे न लगे, फुरसत मिले चाहे न मिले, इसके लिए बलपूर्वक, हठपूर्वक, समय निकालना ही चाहिए । नित्य कितने ही काम अनिच्छापूर्वक भी करने पड़ते हैं और समय न रहने पर भी आकस्मिक स्थिति के अनुरूप समय निकालना पड़ता है । विचार-निर्माण को भी ऐसी ही एक अनिवार्य आवश्यकता मानना चाहिए और उसके लिए हठपूर्वक कटिबद्ध हो जाना चाहिये । थोड़े ही समय में यही क्रम बहुत ही रुचिकर लगने लगेगा, सन्तोष और आनन्ददायक प्रतीत होगा ।

# आप भला तो जग भला

जीवन अनेकों समस्याओं के साथ उलझा हुआ है । उन उलझनों को सुलझाने में, प्रगति पथ पर उपस्थित रोड़ों को हटाने में बहुधा हमारी शक्ति का एक बहुत बड़ा भाग व्यतीत होता है, फिर भी कुछ ही समस्याओं का हल हो पाता है, अधिकांश तो उलझी ही रह जाती हैं । उस अपूर्णता का कारण यह है कि हम हर समस्या का हल अपने से बाहर ढूँढते हैं जब कि वस्तुत: वह हमारे शरीर ही छिपा रहता है ।

यदि हम कोई आकांक्षाएँ करने के पूर्व अपनी सामर्थ्य और परिस्थितियों का अनुगमन लगा लें और इसी के अनुसार चाहना करें तो उनका पूर्ण होना विशेष कठिन नहीं है । एक बार के प्रयत्न में न सही, सोची हुई अवधि में न सही, पूर्ण अंश में न सही, आगे पीछे न्यूनाधिक सफलता इतनी मात्रा में तो मिल ही जाती है कि काम चलाऊ सन्तोष प्राप्त किया जा सके । पर यदि आकांक्षा के साथ-साथ अपनी क्षमता और स्थिति का ठीक अन्दाजा न करके बहुत बढ़ा-चढ़ा लक्ष्य रखा गया है तो उसकी स्थिति कठिन ही है । ऐसी दशा में असफलता एवं खिन्नता भी स्वाभाविक ही है । पर यदि अपने स्वभाव में आगा पीछा सोचना, परिस्थिति के अनुसार मन चलाने की दूरदर्शिता हो तो उस खिन्नता से बचा जा सकता है और साधारण रीति से जो उपलब्ध हो सकता है उतनी ही आकांक्षा करके शान्तिपूर्वक जीवनयापन किया जा सकता है ।

अपने स्वभाव की त्रुटियों का निरीक्षण करके उनमें आवश्यक सुधार करने के लिए यदि हम तैयार हो जाँय तो जीवन की तीन चौथाई से अधिक समस्याओं का हल तुरन्त ही हो जाता है । सफलता के बड़े-बड़े स्वप्न देखने की अपेक्षा हम सोच समझ कर कोई सुनिश्चित मार्ग अपनावें और उस पथ पर पूर्ण दृढ़ता एवं मनोयोग के साथ कर्त्तव्य समझकर चलते रहें तो मस्तिष्क शान्त रहेगा उसकी पूरी शक्तियाँ लक्ष्य को पूरा करने में लगेंगी और मन्जिल तेजी से पार होती चली जायगी ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समय-समय पर थोड़ी-थोड़ी जो सफलता मिलती चली जायगी उसे देखकर हर्ष और सन्तोष भी मिलता जायगा इस प्रकार लक्ष्य की ओर अपने कदम एक व्यवस्थित गति के अनुसार बढ़ते चले जायेंगे ।

इसके विपरीत यदि हमारा मन बहुत कल्पनाशील है, बड़े-बड़े मंसूबे गाँठता और बड़ी-बड़ी सफलताओं के सुनहरे महल बनाता रहता है, जल्दी से जल्दी बड़ी से बड़ी सफलता के लिए आतुर रहता है तो मन्जिल काफी कठिन हो जायगी । जो मनोयोग कार्य की गतिविधि को सुसंचालित रखने में लगाना चाहिए था वह शेखचिल्ली के सपने देखने में उलझा रहता है । उन सपनों को इतनी जल्दी साकार देखने की उतावली होती है कि जितना श्रम और समय उसके लिए अपेक्षित है वह उसे भार रूप प्रतीत होता है । ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों-त्यों बैचेनी बढ़ती जाती है और यह स्पष्ट है कि बैचेन आदमी न तो किसी बात को ठीक तरह सोच सकता है और न ठीक तरह कुछ कर ही सकता है । उसकी गति-विधि अधूरी, अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित हो जाती है ऐसी दशा में सफलता की मन्जिल अधिक कठिन एवं अधिक संदिग्ध होती जाती है । उतावला आदमी सफलता के अवसरों को बहुधा हाथ से गँवा ही देता है ।

जिसके मस्तिष्क में हर घड़ी सफलता के रंगीन सपने सँजोये रहते हैं उसे यदि असफलता का सामना करना पड़ा तो भारी आघात लगता है, भारी निराशा आती है, दिल टूट जाता है और आगे के लिये कोई बड़ा कदम उठाने का साहस जाता रहता है । कई बार तो वह असफलता का आघात इतना बड़ा होता है कि व्यक्ति आत्महत्या तक कर बैठता हैं । परीक्षा में असफल हुए कुछ छात्र हर साल आत्महत्या कर बैठते हैं । यद्यपि बात बहुत मामूली सी है । सौ में से ३०-३५ छात्रों के उत्तीर्ण होने का परिणाम जहाँ रहता हो वहाँ ६५-७० फीसदी को फेल होना ही है । जब इतने अनुतीर्ण छात्र किसी प्रकार सन्तोष कर अगले वर्ष के लिए फिर तैयारी में लग जाते हैं तो उन आत्महत्या करने वालों के लिये ही कोई ऐसा विशेष कारण नहीं है कि वे इतने खिन्न होकर ऐसा अनर्थ कर डालें । पर भावुकता तो आखिर भावुकता ही है । जिनने सफलता के इतने रंगीन सपने देखें और असफलता को इतना भयंकर समझा उनकी समझ के लिये आत्महत्या भी कोई बड़ी बात नहीं है ।

यदि मनुष्य सफलता और असफलता को दो समानान्तर रेखायें मानकर चले और यह भली-भाँति समझ ले कि किसी भी क्षेत्र में सफलता इतनी सरल नहीं है कि उसे सुनिश्चित ही मान लिया जाय कि इतना लाभ इतने समय में अवश्य ही हो जायगा । जिन लोगों ने सफलतायें प्राप्त की हैं उनने सपने कम देखे हैं और प्रयत्न अधिक किये है । असफलताओं और बाधाओं को अप्रत्याशित नहीं माना है वरन् यही समझना है कि अनेक बार असफलता को परास्त करके ही जब कोई अपनी दृढ़ता का परिचय दे लेता है तब सफलता की विजय माला उसके गले में पड़ती है । वे पहले ही से यह सोचकर चलते हैं कि हमें और धैर्य पूर्वक सफलता प्राप्त होने के दिन तक अविचल भाव से प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करने में लगा रहना है ।

बीज बोने से लेकर अंकुर पैदा होने, पौधे के बड़े होने, बढ़कर पूरा वृक्ष होने तक अन्त में फलने-फूलने में समय लगता है, प्रयत्न भी करना पड़ता है । पर जो बच्चे अभी बीज लेकर आज ही उसमें से अंकुर होते ही उसे पेड़ बनने और परसों ही फलफूल से लदा देखने की आशा करते हैं, उनका उत्साह देर तक नहीं ठहरता । पहले ही दिन वे बीच में दस बार पानी, दस बार खाद लगाते हैं, पर जब अंकुर और वृक्ष सामने ही नहीं आता तो दूसरे ही दिन निराश होकर उस प्रयत्न को छोड़ देते हैं और अपना मन छोटा कर लेते हैं । उन बालको की-सी मनोवृत्ति बहुत से व्यक्तियों की होती है । वे अधीरतापूर्वक बड़े-बड़े सत्परिणामों की आशाएँ बाँधते हैं और उसके लिए जितना श्रम और समय चाहिए उतना लगाने को तैयार नहीं होते । सब कुछ उन्हें तुर्त-फुर्त ही चाहिये । ऐसी बाल बुद्धि रखकर यदि किसी बड़ी सफलता का आनन्द प्राप्त करने की आशा की जाय तो वह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दुराशा मात्र ही सिद्ध होगी । इसमें दोष किसी का नहीं अपनी उतावली का है । यदि हम अपनी बाल चपलता को हटाकर पुरुषार्थी लोगों द्वारा अपनाये जाने वाले धैर्य और साहस को काम में लावें तो निराश होने का कोई कारण शेष न रह जायेगा । सफलता मिलनी ही चाहिए और ऐसे लोगों को मिलती भी है ।

गीता के कर्मयोग का तात्पर्य यही है कि हम अपनी प्रसन्नता को कर्त्तव्य परायणता एवं प्रयत्नशीलता पर अवलम्बित रखें । जो कुछ करें उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर करें और इस बात में सन्तोष मानें कि एक ईमानदार एवं पुरुषार्थी व्यक्ति को जो कुछ करना चाहिये था वह हमने पूरे मनोयोग के साथ किया । अभीष्ट वस्तु न भी मिले, किया हुआ प्रयत्न सफल न भी हो तो इसमें दुःख मानने, लज्जित होने या मन छोटा करने की कोई बात नहीं है, क्योंकि सफलता मनुष्य के हाथ में नहीं है । अनेकों कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति परिस्थितियों की विपरीतता के कारण असफल होते हैं, पर इसके लिए उन्हें कोई दोष नहीं दे सकता । यदि अपने मन की बनावट भी ऐसी ही हो जाय कि सफलता और असफलता की चिन्ता किये बिना अपने कर्त्तव्यपालन में ही जी सन्तुष्ट रहने लगे तो समझना चाहिए कि अपना दृष्टिकोण सही हो गया, अपनी प्रसन्नता अपनी मुट्ठी में आ गयी । कर्त्तव्य पालन पूर्णतया अपने हाथ में है इसे कोई नहीं रोक सकता । यदि प्रसन्नता को कर्त्तव्य परायणता पर आधारित कर लिया गया है तो अपनी प्रसन्नता मुट्ठी में है और वह डायनुमा से उत्पन्न होती रहने वाली बिजली की तरह कर्त्तव्य पालन के साथ-साथ स्वयंमेव उत्पन्न होकर चित्त को आनन्द होकर चित्त को आनन्द, उत्साह और सन्तोष से भरे रह सकती है ।

अपनी प्रसन्नता को जब अपनी मुट्ठी में रखा जा सकता है और हर घड़ी आनन्दित रहने का नुस्खा मालूम है तो क्यों न उसी का प्रयोग किया जाय ? फिर क्यों इस बात पर निर्भर रहा जाय कि जब कभी सफलता मिलेगी, अभीष्ट वस्तु प्राप्त होगी तब कहीं प्रसन्न होंगे ? इस प्रतीक्षा में मुद्दतें गुजर सकती हैं और यह भी हो सकता है कि सफलता न मिलने पर प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा जीवन भर हाथ रहे । इसीलिये गीताकार ने यह सहज नुस्खा हमें बताया है कि फल की प्रतीक्षा मत करो, उस पर बहुत ध्यान भी मत दो, न तो सफलता के लिए आतुरता दिखाओ और न असफलता मिलने पर परेशान होओ । चित्त को शान्त और स्वस्थ रखकर अपने कर्त्तव्य को एक पुरुषार्थी व्यक्ति की तरह ठीक तरह पालन करो । ऐसा करने से तुम्हें लोक में भी शान्ति मिलेगी और परलोक भी सुधरेगा ।

विचारणीय बात यही है कि जब हम अपनी जीवन समस्याओं में से अधिकांश को, अपना भीतरी सुधार करके अपनी विचार शैली में थोड़ा परिवर्तन करके हल कर सकते हैं तो फिर उलझन भरा जीवन क्यों व्यतीत करें ? मनुष्य बहुत चतुर है, विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण चातुर्य का परिचय देता है, उसकी बुद्धिमत्ता की जितनी सराहना की जाय उतना ही कम है । पर इतना होते हुए भी जब वह अपने दृष्टिकोण को सुधारने की आवश्यकता को नहीं समझ पाता तो उस पर समुचित ध्यान नहीं दे पाता तो उसकी बुद्धिमत्ता पर सन्देह होने लगता हैं । वह प्रयत्न पूर्वक बड़े-बड़े काम सम्पादन करता है, अपने शरीर और मस्तिष्क से बड़े-बड़े महान् कार्य पूरे करता है, तब यह बात उसके लिये क्यों कठिन होनी चाहिये कि अपनी मनोगत, भावनागत त्रुटियों पर विचार करे और उन्हें सुधारने के लिए तैयार हो जाय ।

आत्मचिन्तन, आत्मशोधन एवं आत्मनिर्माण का कार्य उतना ही सरल है जितना शरीर को सर्वाङ्गीण मयूरासन, शीर्षासन आदि आसनों के लिये अभ्यस्त कर लेना । आरम्भ में इस झंझट में पड़ने से मन आनाकानी करता है, पुराने अभ्यास को छोड़कर नया अभ्यास डालना अखरता है, कुछ कठिनाई एवं परेशानी भी होती है, यदि अभ्यासी इन बातों से डर कर अभ्यास न करे या छोड़ दे तो आसनों के द्वारा होने वाले सत्परिणामों से लाभान्वित होना सम्भव न होगा । इसी प्रकार यदि आत्म-निरीक्षण करने में, अपने दोष ढूँढने में उत्साह न हो, जो कुछ हम करते या सोचते हैं सो

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सब ठीक है, ऐसा दुराग्रह हो तो फिर न तो अपनी गलतियाँ सूझ पड़ेगी और न उन्हें छोड़ने को उत्साह होगा । वरन् साधारण व्यक्तियों की तरह अपनी बुरी आदतों का भी समर्थन करने के लिये दिमाग कुछ तर्क और कारण ढूँढता रहेगा जिससे होते हुए भी अपनी निर्दोषिता प्रमाणित की जा सके ।

अधिकांश मनुष्यों की मानसिक बनावट ऐसी होती है कि वे अपने आपको हर बात में निदोष मानते हैं । अपनी बुराइयाँ उसी प्रकार सूझ नहीं पड़ती जिस प्रकार अपनी आँख में लगा हुआ काजल दिखाई नहीं देता । कोई दूसरा व्यक्ति यदि अपनी गलती सुझावें भी तो मन इस बात के लिए तैयार नहीं होता कि उसे स्वीकार करे । हर आदमी दूसरे के दोष ढूँढने में बड़ा चतुर और सूक्ष्मदर्शी होता है, उसकी आलोचना शक्ति देखते ही बनती है, पर जब अपना नम्बर आता है तो वह सारी चतुरता सारी आलोचना शक्ति न जाने कहाँ गायब हो जाती है । जैसे खोटा व्यापारी खरीदने और बेचने के बाँट तोल में घटे-बढ़े बना कर अलग-अलग रखता है और बेचने के समय घटे बाँटों को और खरीदने के समय बढे बांटों को काम लाता है, उसी प्रकार दूसरों की बुराईयाँ ढूँढने में हमारी दृष्टि अलग तरीके और बात आने पर और तरीके से काम करती है । यदि वह दोष हटा दिया जाय और दूसरों की भाँति अपनी बुराई भी देखने लग जायें, दूसरों को सुधारने की चिन्ता करने लगें तो इतना बड़ा काम हो सकता है जितना सारी दुनियाँ को सुधार लेने पर ही हो सकना सम्भव है ।

महात्मा इर्मसन कहा करते थे कि "मुझे नरक में भेज दो, मैं वहाँ भी अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा ।" उनका यह दावा इसी आधार पर था कि अपनी निज की अन्तःभूमि परिष्कृत कर लेने पर व्यक्ति में ऐसी सूझ-बूझ की, गुण-कर्म स्वभाव की उत्पत्ति हो जाती है जिससे बुरे व्यक्तियों को भी अपनी सज्जनता से प्रभावित करने एवं उनकी बुराईयों का अपने ऊपर प्रभाव न पड़ने देने की विशेष क्षमता सिद्ध हो सके । यदि ऐसी विशेषता कोई व्यक्ति अपने में पैदा कर ले तो यही माना जायगा कि उसने सारे संसार को सुधार लिया । यों सबका सुधार हो सकना असम्भव है पर जब अपने दृष्टिकोण एवं स्वभाव में आवश्यक परिवर्तान करके ऐसी स्थिति प्राप्त कर ली गई कि बुरे आदमी भी अपना कुछ न बिगाड़ सकें तो यही मानना पड़ेगा कि अपने लिये तो संसार सुधर ही गया, भले ही वह तत्वतः ज्यों का त्यों बना रहे ।

## आध्यात्मिक दृष्टिकोण

मानव-जीवन के दो स्तर हैं एक बाह्य दूसरा आन्तरिक, एक भौतिक दूसरा आत्मिक । इनमें से जिसकी प्रधानता होती है उसी के अनुसार जीवन का स्वरूप बनता है । भौतिकतावादी जीवन भौतिक स्थूल दृष्टिकोण का प्रतिफल है और आध्यात्मिक जीवन मनुष्य की सूक्ष्म विवेक बुद्धि की प्रेरणा पर अवलम्बित है ।

बाहर से देखने में भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं पड़ता । क्योंकि शरीर के पोषण एवं निकटवर्ती स्वजनों के प्रति कर्त्तव्य पालन के लिए गृही-विरक्त सभी को जीवनोपयोगी वस्तुओं का उपार्जन एवं संग्रह करना पड़ता है । उनकी मात्रा में न्यूनाधिकता हो सकती है पर उस अनिवार्य प्रक्रिया से छुटकारा किसी को भी नहीं मिल सकता ।

गृहस्थ को आजीविका उपार्जन के लिए कृषि, व्यापार, मजदूरी, शिल्प आदि कार्य अपनाने पड़ते हैं तो विरक्तों को भिक्षा, कन्दमूल फल संग्रह आदि के लिए उद्योग करना पड़ता है । सभी को निवास के लिये घर चाहिए । पात्र चाहे कमण्डल हो, चाहे धातु का बना हो आवश्यक ही रहता है । माला पुस्तक, आसन, वस्त्र, इत्र, जल, पात्र, दीपक, अग्नि साधन, कुटी, आश्रम, गुफा तो साधु को भी चाहिए । उनके टूटने-फूटने पर उन्हें बार-बार प्राप्त करना पड़ता है । भोजन और जल भी बार-बार चाहिए । इनके साधन जुटाने में काफी समय लगाना पड़ता है । गृहस्थों का जिस प्रकार अपना ४-६ आदमियों का परिवार होता है, साधुओं के भी उसमें अधिक सहचर, शिष्य, स्नेही, मनुष्य या पशु-पक्षी बन जाते हैं । पूर्ण एकाकी जीवन किसी के लिए भी सम्भव नहीं । मनुष्य की प्रकृति ही कुछ

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ऐसी है कि उसकी भावनाओं का विकास दूसरों के सहचरत्व में ही सम्भव है । पूर्ण एकाकीपन तो जड़ता की ओर ही ले जाता है । सहचरों के साथ जो कर्त्तव्य एवं भावकुभाव गृहस्थ को रहते हैं लगभग वैसे ही साधु को भी बने रहते हैं ।

बनवासी तपस्वी को सिंह का भय, व्याध्र से घृणा, भोजन की इच्छा, साधन सामिग्री की चिन्ता, मुक्ति की अभिलाषा, बन्धनों से घृणा, सज्जनों से राग, दुर्जनों से द्वेष एवं आन्तरिक कुसंस्कारों से संघर्ष करते रहना पड़ता है । सुविधाओं को जुटाने एवं असुविधाओं को मिटाने के लिए उन्हें भी बहुत कुछ सोचना और करना पड़ता है । लगभग ऐसी ही प्रक्रिया गृहस्थ जीवन में भी बनी रहती है । इस प्रकार के-सभी प्रकार के जीवन भौतिकवादी दीखते हैं । जीवित मनुष्य इनसे छुटकारा नहीं पा सकता क्योंकि उसका निर्माण ही इस ढंग से हुआ है कि प्रयत्न पुरुषार्थ, साधन और सुविधा के लिए उसे एक निश्चित ढर्रे पर चलना ही पड़ेगा । मात्रा का अन्तर रहे तो भी वस्तु स्थिति में अन्तर नहीं आता । बाह्य जीवन हर व्यक्ति का भौतिकवादी ही होता है ।

प्रश्न भीतरी स्थिति का है । अन्तर इतना ही रहता है कि एक श्रेणी के व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के प्रति भावनाएँ रखते हैं, उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं, उनकी प्राप्ति से सुखी और दुखी होते हैं, अपना लक्ष्य इन भौतिक परिस्थितियों को ही बनाये रहते हैं, ऐसे लोगों को भौतिकवादी कहा जाता है । दूसरी श्रेणी के व्यक्ति वे हैं जो भावना को महत्ता देते हैं, वस्तु को उसका उपकरण मानते हैं । वस्तुओं की निस्सारता जड़ता और क्षण भंगुरता को समझते हुए केवल उनके सदुपयोग की बात सोचते रहते हैं । विश्व-मानव की श्रेय साधना ही उनका लक्ष्य होता है । जीवन की गतिविधियों का और अपनी कार्य पद्धति का निर्माण वे इसी आधार पर करते हैं । ऐसे व्यक्तियों को अध्यात्मवादी कह सकते हैं ।

भौतिकवादी और आध्यात्मिक का अन्तर प्रत्येक पदार्थ और स्थिति के बिल्कुल भिन्न होता है । यह भिन्नता ही उनके उत्थान और पतन का कारण बनती हैं । एक युवा लड़की को दो व्यक्ति ध्यानपूर्वक देख रहे हैं । इनमें से एक वासना की दृष्टि से और एक आत्मा की सुरम्य आभा देखकर पुलकित होने के लिए देखे तो बाह्य दृष्टि में दोनों की क्रिया एक होते हुए भी उनका प्रतिफल एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होगा ।

मन्दिर में दो व्यक्ति भगवान का दर्शन तन्मयतापूर्वक कर रहे है । एक भावनापूर्वक इस प्रतिमा में घट-घटवासी सर्वव्यापी भगवान की झाँकी करता हुआ गद्‌गद होता है । दूसरा मुकुट श्रृंगार का, पत्थर आदि का मूल्य आँकता है और दूसरी प्रतिमाओं के बाह्य साधनों के साथ तुलना करता है, उसकी दृष्टि विलास तक सीमित है । ऐसी दशा में दोनों का देव-दर्शन भिन्न परिणाम ही उत्पन्न करेगा । एक और तीसरा चोर व्यक्ति, जो मूर्ति का कीमती श्रृंगार चुराने की घात लगाकर खड़ा है और उसके लिए अवसर खोजने में तत्पर है, उपरोक्त दोनों व्यक्तियों से भी भिन्न प्रकार की परिणित का अधिकारी होगा । एक को भगवान के दर्शन का लाभ मिलेगा, दूसरा श्रृंगार एवं मन्दिर की शोभा की अलोचना करके मनोरंजन करेगा । तीसरा पाप में प्रवृत्त होकर दुख भोगेगा, पकड़ा गया तो जेल जायगा । इस प्रकार एक ही प्रकार से देव-दर्शन कर रहे तीन व्यक्ति तीन तरह की गति को प्राप्त होंगे ।

एक व्यक्ति धन-संचय में अपना गौरव मानता है, स्त्री को रमणी एवं दासी के रूप में सुखोपभोग की सामिग्री मानता है, अहंकार की तृप्ति में प्रसन्न होता है, तो उसे स्थिति की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता के अनुसार सुख दुःख मिलेगा । सच तो यह है कि उसे हर समय दुःख रहेगा । क्योंकि जो छोटी-छोटी सफलता मिलेगी वह तृष्णा के समय में कम ही होगी । इसलिए और अधिक की आकाँक्षा में उपलब्ध साधन अपर्याप्त एवं असन्तोषदायक ही मालूम पडेंगे और वह निरन्तर खिन्न ही बन रहेगा । भौतिकवादी दृष्टिकोण में सदैव, अतृप्ति, असन्तुष्टि, कुढ़न एवं खिन्नता ही बनी रहेगी क्योंकि इस संसार की सब वस्तुएँ मिलकर भी एक व्यक्ति की तृष्णा को पूरी नहीं कर सकतीं ।

दूसरा व्यक्ति जो धन को ईश्वर की अमानत' एवं उच्च आदर्शों के लिए सदुपयोग की सामिग्री

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



मात्र मानता है उसे धन के सम्बन्ध में अकुलाहट क्यों होगी ? उचित साधनों से जितना कमाया जा सकता है उतने का श्रेष्ठतम सदुपयोग कर लेने की कला यदि हो तो थोड़े पैसे से भी उतना आनन्द एवं सत्परिणाम प्राप्त किया जा सकता है, जितना धन कुबेरों के लिए भी सम्भव नहीं हो सकता । संसार के इतिहास में जगमगाते हुए महापुरुषों में से अधिकांश निर्धन श्रेणी के थे । जो कुछ पास था उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करते हुए वे प्रगति के आशाजनक साधन एकत्रित कर सके । किन्तु जिनके पास धन के अटूट भण्डार भरे पड़े थे उनने उससे अपना नाश ही किया, अगणित दोष एवं दुर्गुण खरीद लिये जो निर्धनों को कदाचित् ही प्रभावित करते हैं । अविवेकी धनवान जितनी तेजी से अपना और समस्त समाज का नाश करते हैं उतना अविवेकी निर्धन नहीं कर पाता । इन बातों पर विचार करते हुए अध्यात्मवादी दृष्टिकोण वाला व्यक्ति जो उचित मार्ग से काम कर सकता है, वह यह सोच भी नहीं पाता कि धन का जमा होना न होना भी किसी के गौरव को बढ़ाने-घटाने का कारण बन सकता है ।

नारी के प्रति माता, बहिन और पुत्री की पवित्र भावनाएँ रखने वाला व्यक्ति कितना शान्त और सन्तुलित रहता है । इसकी कल्पना भी लम्पट प्रकृति के दुष्ट दुराचारी एवं वासनाओं के कीड़ों के लिए कठिन होती है । वे सदा हाथ मलते और अपनी दुबुद्धि की आग में जलते रहते हैं, यदा-कदा जो थोड़ी सी सफलता प्राप्त कर लेते हैं उतनी में भी अपनी प्रतिष्ठा को तो वे ही खो ही बैठते हैं भले लोगों के बीच इन्हें घृणा, आशंका और तिरस्कार की ही दृष्टि से देखा जाता है । अपनी पत्नी में रूप यौवन या अन्य आकर्षण को खोजने वाले और उसी आधार पर सन्तुष्टि-असन्तुष्टि की बात सोचने वाले लोग दाम्पत्ति जीवन का आनन्द क्या उठा सकेंगे ? उनमें से हर एक को असन्तोंष ही रहेगा । क्योंकि मनुष्य अपूर्ण है । दूर से कोई पूर्ण भले ही दीखे पास से हर वस्तु अपूर्ण दिखाई पड़ती है, ऐसी दशा में, पत्नी भी कैसे मनोवान्छित मिलेगी ? हाँ जिसने पतिव्रत धर्म की तरह पत्नी-व्रत को आदर्श मान लिया है और उस धर्म कर्त्तव्य को निबाहते हुए जैसी भी कुछ सहधर्मिणी मिली है, उसे पूर्ण प्रेम प्रदान करते हुए, सन्तोष और स्नेह के साथ शिरोधार्य करते हुए, क्षमा उदारता और आत्मीयत की भावना से उसकी त्रुटियों को निवाहते हुए सुधारने का सौम्य प्रयत्न करते हुए-जो अपने गृहस्थ को स्वर्गीय बनाना चाहेगा, उसे त्रुटिपूर्ण नारी प्राप्त होने पर भी सदा सुख शान्ति का ही दर्शन होता रहेगा ।

अहंकार की तृप्ति के लिए अनावश्यक अपव्यय, फैशन, ठाट-बाट, पदवी, मान-सम्मान की आकांक्षा जिसे बनी रहेगी उसे दूसरों का गुलाम बनकर रहना होगा । दूसरे क्या पसन्द करते हैं, दूसरों को प्रभावित कैसे किया जा सकता है यही सोचने में उसे अपनी शक्ति और सामर्थ्य का बहुत बड़ा अंश खर्च कर देना पड़ेगा । किन्तु जिसने सादगी को ही सौन्दर्य और सज्जनता का प्रतीक माना है वह मितव्ययिता बरतते हुए सीधे-साधे ढंग का कम खर्चीला जीवन बना लेगा और सदा सुखी रहेगा । सामाजिक प्रतिष्ठा का माध्यम ठाठ-बाट को मानना वस्तुत बहुत ही छिछोरपन है । यदि ऐसा रहा होता तो रंग-मंच पर सजाधजा राजा का अभिनय करने वाले नटो को संसार में भारी मान मिलता । बनावट का खोखलापन और ओछापन दूर से ही दीखता है और हर समझदार आदमी उसे व्यंग, उपहास और बचकानेपन का ही प्रमाण मान सकता है । एक ओर ठाठ-बाट के नाम पर आवश्यक कार्यों से भी वंचित रहना और उस आडम्बर पर बहुत धन एवं समय खर्च करना दूसरी ओर विचारशील लोगों की दृष्टि में उपहासास्पद बनना यह दुहरी मार ढोंगी अहंकारग्रस्तों पर पड़ती है । सादगी की सज्जनता का महत्व जो समझते हैं वे अपनी शक्तियों का सदुपयोग दूसरी बातों में करते हैं और प्रगति पथ पर तेजी से अग्रसर होते चले जाते हैं ।

संसार की वस्तुओं में सौन्दर्य और सुख तलाश करते हुए उनके पीछे दौड़ते रहने वाले लोग भौतिकवादी कहे जाते हैं और उनका यह दृष्टिकोण इसलिए अनुपयुक्त माना जाता है कि उसे अपनाने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वाले को मृग तृष्णा की तरह आजीवन भटकते रहते भी कभी शान्ति और सन्तोष का दर्शन नहीं हो पाता । धनी, मानी व्यक्ति भी कितने अशान्त, उद्विग्न, असन्तुष्ट और खिन्न रहते हैं उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य कितना जर्जर बन चुका होता है उसका अनुभव दूरवर्ती को नही समीपवर्ती को ही हो सकता है । बाहर के लोग उनका ठाठ-बाट देखकर यह कल्पना करते हैं कि यह लोग सुखी होंगे पर सच बात यह है कि जिस मार्ग पर वे चल रहे हैं उसमें जीवन का निरर्थक अपव्यय हो जाने के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं मिलता ।

वस्तुओं के प्रति अत्यधिक आकर्षण, उनके प्रति अनावश्यक मोह आत्मघात के समान ही हानिकारक है । नरतन जैसा सुरदुर्लभ अवसर इन्हीं बाल क्रीड़ा में बिना ढंग और जो कुछ कमाया धमाया है उसे कूड़े करकट की तरह यों ही छोड़ कर चलते बनना इसमें कौन सी बुद्धिमानी है । आशा और तृष्णा के झूले में झूलते हुए एक अतृप्ति की चसक भी जब नशे बाजों के व्यसन की तरह पीछे लग जाती है तो छूटती भले ही न हो पर उसका परिणाम नशे बाजों द्वारा पूर्ण बर्बादी के बाद किए जाने वाले पश्चाताप जैसा ही होता है ।

हमें यह भले प्रकार समझ लेना चाहिये कि सुख पदार्थों में नहीं भावनाओं में सन्निहित हैं । भावनाओं को जितना ऊँचा उठाया जायगा, जितना परिष्कृत किया जायगा, जितना आदर्शवादी का पुट दिया जायगा उतनी ही आध्यात्मिकता बढ़ेगी और उस अध्यात्मवादी दृष्टिकोण के आधार पर हर वस्तु सुन्दर, सुरम्य एवं आनन्ददायक दृष्टिगोचर होने लगेगी । सूर्य का प्रकाश पड़ने पर हर वस्तु चमकती है । इसी प्रकार अध्यात्मवादी दृष्टिकोण अपनाने वाले के पास जो साधारण वस्तु होगी, जो सामान्य परिस्थितियाँ रहेंगी, जो सामान्य श्रेणी के मनुष्य रहेंगे वे सब आनन्ददायक, सन्तोषजनक, उत्साह-वर्धक एवं शान्ति प्रदान करने वाले परिलक्षित होने लगेंगे ।

## आत्म-सुधार से ही सच्ची शान्ति सम्भव है

संसार में फैली हुई अनेकों विषमताओं और विफलताओं को पूर्णत: बदल सकना, सुधार सकना, अपने बस की बात नहीं है । सृष्टि के आदि काल से लेकर अब तक यह प्रयत्न बराबर किये जाते रहे हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुई बुराइयों का सुधार हो, दुष्टताओं का दमन हो । इस प्रयत्न के लिये अनेकों ऋषि, महात्मा, ज्ञानी योगी सन्त-सुधारक तथा अवतारी आत्माओं के समय-समय पर अवतरण होते रहते हैं । उनके प्रबल परिश्रम से बहुत कुछ सुधार भी हुए और असन्तुलन को मिटाकर सन्तुलन भी कायम किये गये । पर यह स्थिति देर तक नहीं । फिर वही विकृतियाँ आरम्भ होगई और फिर उनको सँभालने के लिये महापुरुषों को आना पड़ा । यह क्रम चलता ही रहता है । कुत्ते की पूँछ की तरह यह दुनिया ऐसी है कि बार बार सीधी करने पर भी हाथ से छूटते ही फिर टेढ़ी हो जाती है ।

इसका अर्थ यह नहीं कि सुधार की दिशा में कुछ प्रयत्न ही न किया जाय या इसकी कुछ आवश्यकता एवं उपयोगिता नहीं है । यह तो अतीव आवश्यक है । यदि सुधार के प्रयत्न शिथिल या बन्द कर दिये जायें तब तो विकृतियाँ इतनी शीघ्र, इतनी अधिक मात्रा में एकत्रित हो जायें कि कुछ ही समय में संसार का सामान्य कार्य चलना ही रुक जाय । मेहतर रोज टट्टी साफ करता है, वह फिर रोज गन्दी हो जाती है । इसका अर्थ यह नहीं कि जब टट्टी रोज ही गन्दी होती है, सफाई का इतना प्रयत्न करने पर भी वह शुद्ध नहीं रह पाती, तो इसके लिये प्रयत्न ही क्यों किया जाय ? यदि मेहतर लोग ऐसा मान लेंगे तो थोड़े ही दिनों में इतनी गन्दगी एकत्रित हो जायगी कि दुर्गन्ध न जायगी और हैजा सरीखे रोग फूट पड़ेंगे । सफाई की भाँति ही इस दुनिया का सुधार भी होते रहना आवश्यक है, उसकी आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता । यहाँ इतना ही कहना है कि प्रयत्न करते रहने पर भी संसार में बुराइयाँ और विषमतायें रहेंगी ही, उनका सर्वथा अभाव कभी भी नहीं हो सकेगा । सतयुग में भी नहीं हो सका था । हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, होलिका सरीखे असुर सतयुग में भी पैदा हुए थे ।

इस तथ्य को हमें स्वीकार कर ही लेना चाहिये कि बुराइयों की मात्रा घटती-बढ़ती भले ही रहे पर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वह रहेगी सदा ही । जो बात संसारव्यापी परिस्थिति के बारे में कही जा सकती है वही बात व्यक्तिगत क्षेत्र में भी लागू होती है । कोई व्यक्ति चाहे कितना ही विद्वान् धार्मिक या सदाचारी क्यों न बन जाय कुछ न कुछ दोष उसमें रहेंगे ही । जब तक उसमें कुछ दोष हैं तभी तक वह इस संसार में है । पूर्ण निर्दोष होते ही आत्मा बन्धन-मुक्त होजाती है । फिर उसे संसार में रहने का कोई प्रयोजन शेष नहीं रह जाता । इसलिए ऐसे व्यक्ति ढूँढना जिनमें कोई दोष न हो एक प्रकार से असम्भव ही है । प्रत्येक में कुछ न कुछ बुराई मिलेगी, चाहे वह मात्रा में स्वल्प या महत्त्व में कम ही क्यों न हो ।

यही बात सुखदायक परिस्थितियों के बारे में भी समझनी चाहिए । सदा किसी को अनुकूल ही अवसर मिलते रहें, प्रिय व्यक्ति, प्रिय पदार्थ और प्रिय परिस्थितियाँ ही सदैव बनी रहें, यह आशा करना दुराशा मात्र ही है । जब हम सदा शुभ ही शुद्ध विचार और कार्य नहीं करते, जब हमारे मन से दुर्भाव और शरीर से दुष्कर्म होते ही रहते हैं तो उनके फलस्वरूप कष्ट, हानि, बिछोह, शोक एवं विपत्ति भोगनी ही पड़ेगी । शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगना निश्चित है । जो हमने किया है उसका भोग मिलना ही ठहरा । जब शुभ कर्मों के सुखद फल भोगते हैं तो अशुभ कर्मों के दुष्परिणामों को भोगने के लिये भी हमें ही तैयार रहना होगा ।

संसार में सज्जनता की तथा आनन्ददायक परिस्थितियों की कमी नहीं है पर यह भी मान लेना चाहिये कि दुष्टता और विपत्ति भी साथ ही पर्याप्त मात्रा में मौजूद है । हमें दोनों से ही निपटना होगा । केवल श्रेष्ठता मधुरता भलाई और आनन्द की ही हम इस दुनियाँ में आशा करें और नीचता, कुरूपता बुराई और दुःख से सर्वथा बचे रहना चाहें तो यह इच्छा कदापि पूर्ण न हो सकेगी । हमें अपनी मनोभूमि को दुःखों को सहने और बुराइयों से निपटने के लिए भी उसी तरह सुशिक्षित करना पड़ेगा, साधना पड़ेगा, जिस प्रकार वह सुखों के लिये, सज्जनता से सान्निध्य के लिए खुशी-खुशी तैयार रहती है । धूप और छाँह की भाँति, और दिन की भाँति, प्रिय और अप्रिय दोनों ही प्रकार के संयोग हमारे जीवन में आते रहने वाले हैं । इन दोनों ही की सम्भावना सुनिश्चित है । फिर हम एक के लिए- सुख के लिये, प्रिय के लिये तो हँसे-उछलें और दूसरे के लिए-दुःख के लिए, अप्रिय के लिए खिन्न हों, खेद मानें तो इसमें कोई बुद्धिमत्ता न होगी । इसे हमारा मानसिक बचपन ही कहा जायगा । बच्चे जिस तरह जरा-सी बात में रोने लगते हैं, रूठते और मचलते हैं, उसी प्रकार का आचरण हमारा भी हो तो इसे समझदारी नहीं कहा जायगा ।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि तीन गुणों से बने हुए इस संसार में जहाँ सतोगुण और रजोगुण का अपना-अपना स्थान है वहाँ तमोगुण भी रहेगा ही । दुनियाँ में से उसे पूर्णतया हटाना या मिटाना सम्भव नहीं । इतना मान लेने के बाद अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उनके दुष्प्रभावों से अपने को बचाने के लिये हमें क्या करना चाहिये ? इस प्रश्न को यदि ठीक तरह हल कर लिया जाय तो हमारे जीवन की आधे से अधिक परेशानियाँ हल हो सकती हैं ।

यह ध्यान रखने की बात है कि दुनिया में जो काँटे-कंकड फैले हुए हैं उन्हें बीन कर अपनी यात्रा के सभी मार्गों को हम निरापद बनाने का प्रयत्न करें तो इसमें सफलता मिल सकना कठिन है क्योंकि काँटों कंकड़ों की संख्या अधिक है । विभिन्न रास्ते जिन पर हमें समय-समय पर चलना पड़ता है उनकी लम्बाई भी हजारों मील बैठती है । काँटें बीनने पर हम खड़े भी हो तो जीवन की अवधि भी इतनी लम्बी नहीं है कि जब तक कांटे बीने जा सकते हो तब तक जीवित रहें, फिर यदि जीवित भी रहें तो इसका भी कोई निश्चय नहीं कि जब तक यह बीने जाने की प्रक्रिया पूर्ण होगी तब तक फिर और नये काँटे उस मार्ग पर न बिखर जायेंगे । इन परिस्थितियों में यही उचित प्रतीत होता है कि काँटे बीनने की प्रक्रिया को सीमित करके हम अपने पैरों में जूते पहनने का उपाय पसन्द करें । यह अपेक्षाकृत सरल और सीधा उपाय है । थोड़ा पैसा और थोड़ा प्रयत्न करके ही हम अच्छे जूते पहन सकते हैं और फिर चाहे किसी मार्ग पर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कितने ही काँटे-कंकड क्यों न बिखरे पड़े हों निर्भय होकर जा सकते हैं । जूतों के तले उन काँटे-कंकड़ों का मुँह कुचलते रहेंगे और हमारे पैरों को तनिक भी आघात न पहुंचने देंगे ।

संसार के हर दुर्जन को सज्जन बनाने की, हर बुराई को भलाई में बदल जाने की आशा करना वैसी ही आशा है जैसी सब रास्तों पर से काँटे-कंकड़ हट जाने की । अपनी प्रसन्नता और सन्तुष्टि का यदि हमने आशा को आधार बनाया तो निराशा ही हाथ लगेगी । हाँ यदि, हम अपने स्वभाव एवं दृष्टिकोण को बदल दें तो यह कार्य जूता पहनने के समान सरल होगा और इस माध्यम से हम अपनी परेशानी को बहुत अंशों में हल कर सकेंगे ।

अपने स्वभाव और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर सकना कुछ श्रमसाध्य समयसाध्य और निष्ठासाध्य अवश्य है, पर असम्भव तो किसी भी प्रकार नहीं है । मनुष्य चाहे तो विवेक के आधार पर अपने मन को समझ सकता है, विचारों को बदल सकता है और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर सकता है । इतिहास के पृष्ठ ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं जिनसे प्रगट है कि आरम्भ में बहुत हल्के और ओछे दृष्टिकोण के आदमी अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करके संसार के श्रेष्ठ महापुरुष बने हैं । इसी प्रकार ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जिनके विचार जब तक ऊँचे रहे तब तक वे प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर अवस्थित रहे पर जब उनका अन्त:करण कलुषित हो गया, विचार घटिया हो गये तो उनका जीवन-क्रम भी पतनोन्मुख हो गया और वे अधोगति को प्राप्त हुये । सामाजिक नैतिक, धार्मिक और राजनैतिक विचारों मे अनेकों बार परिवर्तन करने पड़ते हैं इसी प्रकार यदि मनुष्य चाहे तो विभिन्न समस्याओं पर अपने विचार करने के तरीके को, सोचने के ढंग को भी बदल सकता है । अपनी विचार शैली की त्रुटियों को समझ सकना और इनके सुधार में संलग्न होना यद्यपि बहुत बुद्धिमत्ता और उच्च साहस का काम है, वह कठिन भी है, लेकिन असम्भव नहीं माना जा सकता ।

यह दुरंगी दुनियाँ जैसी भी कुछ है, परमेश्वर की बनाई हुई है । इसमें विचित्रितायें रहेंगी ही । इनसे खीझने, झुँझलाने और परेशान होने से काम न चलेगा वरन् एक ऐसा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा जिसके अनुसार जैसे भी कुछ यहाँ के लोग हैं जैसी भी यहाँ की कुछ परिस्थितियाँ हैं उनके साथ अपना तालमेल बैठा सकें, कामचलाऊ समझौता कर सकें और जीवन की गाड़ी को किसी प्रकार लुढ़काते हुए समय को पूरा कर लें ।

हम अपनी मनमर्जी के अपने सब निकटवर्ती लोगों को स्वजन सम्बन्धियों को, स्त्री-पुत्रों को देखना चाहें तो यह उचित न होगा । जितना सम्भव हो, उतना ही झुकाने, समझाने और अपनी मनमर्जी का बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । परन्तु यह आशा कभी न रखनी चाहिये कि जैसा हम चाहते हैं पूर्णत: वे वैसा ही बन जावेंगे । क्योंकि हर व्यक्ति एक स्वतन्त्र धातु का बना हुआ है । जिस प्रकार वृक्षों की पत्तियाँ एक सी लगने पर भी हर पत्ती एक दूसरे से भिन्नता लिए हुए होती है, उसी प्रकार हर मनुष्य अपनी कुछ खास रुचि, अभिलाषा, प्रकृति एवं प्रतिभा को लेकर बना है । हजारों जन्मों के, हजारों योनियों के विविध प्रकार के कार्यों और घटनाक्रम के आधार पर उसका यह वर्तमान जीवन बना है । कोई जीव इससे पिछले जन्म में विषधर सर्प था, उसे दूसरे को काटने और क्रोध से फुफकारते रहने की आदत थी । अब वह इस जन्म में मनुष्य हो गया तो पिछले जन्म के क्रोधी और आक्रामक संस्कारों का एक ही जीवन में पूर्ण समाधान हो सकना कठिन है । वह बेचारा अपने में कितना ही सुधार करे तो भी वे पिछले दुर्गुण किन्हीं अंशों में बने ही रहेंगे । वह भी मजबूर है । इतनी तेज प्रगति कर सकना उसके लिए भी कठिन है कि वर्ष-छ: महीने में ही उन पुरानी सब आदतों को भुला दे और वैसे संस्कार धारण कर लें, जैसे कितने ही जन्म मनुष्य शरीर में व्यतीत करने के बाद उत्पन्न होते हैं । इन परिस्थितियों में उस सर्प से मनुष्य में आने वाले अपने किसी स्वजन सम्बन्धी से असन्तुष्ट रहना, उसकी आदतें हमारी इच्छानुसार न बदल सकने पर दु:खी रहना हमारे लिए उचित नहीं है ।

दूसरों की परिस्थितियाँ और मजबूरियों पर हमें वैसी ही सहानुभूति के साथ विचार करना होगा जैसी कि बच्चों की, रोगियों की स्थिति का ध्यान

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


रखते हुए उनकी अशिष्टताओं और असमर्थताओं को उदारतापूर्वक सहन किया जाता है । हमारे निकटवर्ती स्वजन सम्बन्धी हमारी आज्ञा या इच्छानुसार पूर्णतया नहीं चलते हैं कि जिस प्रकार अपने पालतू पशुओं को, कहने के अनुसार काम करने, जैसा चाहें उसी प्रकार रहने के लिए मजबूर किया जा सकता है, वही बात अपने स्वजनों सम्बन्धियों पर स्त्री-पुत्रों पर भी लागू होनी चाहिये । उन्हें भी वैसा ही आज्ञानुवर्ती होना चाहिए । यहीं हम भूल करते हैं । पशुओं पर जैसा अपना स्वामित्व होता है वैसा मनुष्यों पर नहीं है । जिस प्रकार पशु अपनी सम्पत्ति हैं और सब प्रकार हमारे अधीन हैं, वह स्थिति स्त्री-पुत्रों की, भाई-भतीजों की नहीं है । किसी मनुष्य का किसी दूसरे पर चाहे वह स्त्री या सन्तान ही क्यों न हो, पशुओं जैसा अधिकार नहीं है और न हम उनके स्वामी ही है ।

प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे के साथ एक कर्त्तव्य सूत्र में बँधा हुआ है । उसकी मर्यादा इतनी ही है कि अपने आश्रितों, परिजनों या सम्बन्धित व्यक्तियों का उचित मार्ग दर्शन करे । उनकी मनोभूमि को सुसंस्कृत बनाने के लिए आवश्यक दीक्षा का, स्वाध्याय सत्संग का तथा अनुभव एकत्रित करने का अवसर दे जिससे उनका ज्ञान एवं विवेक स्वत: इतना विकसित हो जाय कि वे लाभ-हानि, बुराई-भलाई, उचित-अनुचित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का अन्तर स्वत: समझ सकें और जिस मार्ग पर हम चलाना चाहते हैं उस पर वे अपने विकसित विवेक के आधार पर स्वत: चल सकें ।

ज्ञान, अनुभव और संस्कार एकत्रित करने के लिए समुचित अवसर यदि हम अपने आश्रित एवं सम्बन्धियों के लिए जुटा सकें तो उनके बहुत कुछ उसी ढाँचे में ढल जाने की आशा है जैसा कि हम चाहते हैं । ऐसा न करके केवल आदेश मात्र देने से सम्भव है उनकी अविकसित मनोभूमि हमारी शिक्षा को हृदयंगम न कर सके और वे आज्ञानुवर्ती न बन सकें । ऐसी दशा में झुझलाने या रुष्ट होने की कोई बात नहीं है । हमें अपना कर्त्तव्य पालन करते रहने का अधिकार है । उन्हें समझाने-बुझाने आगा-पीछा सुझाने का कोई अवसर नहीं चूकाना चाहिए, किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हर किसी का, यहाँ तक कि एक छोटे बच्चे का भी एक व्यक्तित्व और स्वाभिमान होता है । जो कुछ कहना या समझाना हो वह इस प्रकार होना चाहिए कि उसके सम्मान और स्वाभिमान को चोट न पहुँचे । हमारी वाणी में कटुता, क्रोध, अधिकार, अहंकार एवं आवेश नहीं होना चाहिए । एक चतुर वकील किसी न्यायाधीश को जिस धैर्य और शान्त मुद्रा में अपने पक्ष की दलीलों और प्रमाणों के साथ समझाता है, हमारे समझाने का तरीका भी वैसा ही होना चाहिए । इसी से दूसरों को हमारी बात सुनने और समझने की इच्छा होती है । यदि क्रोध और आवेश के साथ कहा जा रहा है तो फिर वह कितना ही उचित या सत्य क्यों न हो सामने वाला उसे हृदयगंम न करेगा वरन् क्रोध की प्रक्रिया में उसे भी क्रोध उत्पन्न होने लगेगा और वह अच्छी बात का भी विरोध करने लगेगा । अपनी गलती मानना तो दूर उल्टे अपनी बात की पुष्टि एवं आवश्यकता सिद्ध करने लगेगा ।

यदि हमने अपना स्वभाव नहीं सुधारा है, यदि हमें दूसरों को समझाने या सुधारने के लिए आवश्यक मधुरता, आत्मीयता उपलब्ध नहीं है, तो यही मानना पड़ेगा कि हम समझने के अयोग्य हैं, और किसी को भूल रास्ते से लौटा कर सीधे रास्ते पर लाने में सर्वथा असमर्थ रहेंगे, उल्टे वैर, विरोध बढ़ा लेंगे । माना कि दूसरों को समझाने और सुधारने की आवश्यकता है, पर उससे भी पहली आवश्यकता यह है कि इस आवश्यक कार्य को करने के पूर्व अपने आपको समझाने और सुधारने का प्रयत्न करें । अपने में नम्रता, मधुरता, शिष्टाचार, स्नेह, सौजन्य, धैर्य को इतनी पर्याप्त मात्रा में भर लें कि सामने वाले को प्रभावित कर सकना हमारे लिए सम्भव और सुगम हो सके । झगडालु, जिद्दी वकील जिस प्रकार उथले शब्दों का प्रयोग करके घटिया दर्जे की बहस करता है और न्यायाधीश को क्रुद्ध करके अपने पक्ष को ही खराब कर लेता है, उसी प्रकार दुर्भावना व्यंग, लांछन से भरे हुए शब्दों से सामने वालों की नीयत पर हमला करते हुए, उन्हें मूर्ख साबित करते हुए यदि कुछ कहा-सुना या

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


समझाया बुझाया गया है तो निश्चय ही उसका परिणाम कुछ भी सन्तोषजनक न होगा ।

दूसरों को सुधारने से पूर्व हमें अपने को सुधारना पड़ेगा और यह समझना पड़ेगा कि लाठी के बल पर किसी को कुछ देर के लिए चुप या विवश किया जा सकता है पर उसे बदला या सुधारा नहीं जा सकता । जब तक विवशता रहेगी तब तक वह चुप रहेगा, पर अवसर मिलते ही वह दूने वेग से उल्टा आचरण करके अपने अपमान का बदला चुकावेगा । जो पति अपनी पत्नियों पर या जो पिता अपनी सन्तान पर बहुत कड़ाई बरतते हैं, उन्हें मारते पीटते, अपमानित करते या सताते हैं, उन्हें उसका बदला उस समय मिलता है जब वे बुड्ढे हो जाते हैं या अन्य असमर्थताओं के कारण उनके हाथ, में कुछ शक्ति नहीं रहती । उन दिनों उनको घर वाले तरह-तरह से तिरस्कृत करते और सेवा-सहायता से जी चुराते हैं । ऐसी विषम अवस्था उनकी नहीं होती जिन्होंने युवावस्था में अपने स्वजनों के साथ स्नेह, उदारता एवं सम्मान का व्यवहार किया होता है । यह संसार कुएँ की आवाज की तरह है, जैसा हम बोलते हैं वैसी ही प्रतिध्वनि लौट कर आती है । इसीलिए यदि हमें अपने प्रति दूसरों का व्यवहार सज्जनता का देखने की इच्छा हो तो पहले अपने को इस योग्य सिद्ध करना होगा कि हम वस्तुतः उसके अधिकारी हैं ।

## दोषों में भी गुण ढूँढ निकालिए

संसार की प्रत्येक वस्तु गुण-दोषमय है । न तो कोई ऐसा पदार्थ है जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो और कोई न कोई ऐसी है जिसमें केवल दोष ही दोष भरे हों । मनुष्य के भीतर स्वयं दैवी और आसुरी दोनों प्रकार की वृत्तियाँ काम करती हैं । परिस्थिति के अनुसार उसमें से कभी कोई दबती है तो कभी उभरती है जिससे एक मनुष्य जो एक समय में बुरा प्रतीत होता था दूसरे समय में अच्छा लगने लगता है ।

हर वस्तु के बुरे और भले दोनों ही पहलू हैं । हम अपनी दृष्टि के अनुसार देखते और अनुभव करते हैं । हंस के सामने पानी और दूध मिलाकर रखा जाय तो केवल दूध ही ग्रहण करेगा और पानी छोड़ देगा । फूलों में शक्कर होती तो है पर उसकी मात्रा बहुत स्वल्प है । हम लोग किसी फूल को तोड़ कर चखें, तो उसमें जरा-सी मिठास प्रतीत होती है । पर शहद की मक्खी को देखिये वह फूलों में से केवल मिठास ही चूसती है शेष अन्य स्वादों का जो बहुत-सा पदार्थ फूल में भरा पड़ा है, उसे व्यर्थ का समझदार छोड़ देती है ।

स्वाति की बूँद एक ही प्रकार की होती है पर उससे अलग-अलग प्रकार के लाभ उठाते हैं । साँप के मुख में जाकर स्वाति बूँद हलाहल विष बन जाती है, सीप के मुख में पड़ने से मूल्यवान् मोती बनती है, बाँस के छेदों मे जाने से वंशलोचन उपजता है और पपीहे के मुख में जाने से उसकी प्यास-लुप्त होती है । वस्तु एक ही थी पर अलग-अलग जीवों ने उसका उपयोग अपने-अपने ढंग से किया और उसका लाभ भी अलग-अलग उठाया । एक वैद्य पारद को लेकर बहुमूल्य रसायन बनाता है जिससे अनेक व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ करते हैं । दूसरी ओर से उसी पारद को खाकर दूसरा आदमी प्राणाघात कर लेता है । चाकू से एक विद्यार्थी कलम बनाता है, कागज काटता है, दूसरा नासमझ बालक उससे अपनी उँगली काट लेता है । बिजली से एक व्यक्ति बत्ती जलाने, पंखा चलाने और रेडियों बजाने का काम लेता है । दूसरा उसी का गलत उपयोग करके अपने लिए संकट उत्पन्न कर लेता है ।

सड़े-गले कूड़े करकट का जब खाद रूप से सोना कमाया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि घटिया स्वभाव के आदमियों से भी यदि हम बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार करें तो उनसे सज्जनता की प्रतिक्रिया प्राप्त न हो । जब साँप, रीछ और बन्दर जैसे अनुपयोग जानवरों को सिखा-पढ़ाकर लोग उनसे तमाशा करते और धन कमाते हैं तो कोई कारण नहीं कि हम बुरे, ओछे और मूर्ख समझे जाने वाले लोगों को अपने लिए हानिकारक सिद्ध होने की अपेक्षा उन्हें उपयोगी, लाभदायक न बना सकें । आवश्यकता केवल इस बात की है कि हमारा निज का दृष्टिकोण और स्वभाव सही हो । यदि वही गलत है, यदि हम अपनी निज की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दुर्बलताओं के प्रवाह में बहते हैं और छोटे-छोटे कारणों को बहुत बड़ा रूप देकर कुछ का कुछ समझने लगने की भूल करते हैं, सामने वाले में केवल दोष ही दोष ढूँढते हैं, तो वही मिलेगा जो हमने ढूँढा था । दोष विहीन कोई वस्तु नहीं, यदि हम दोष ढूँढने की आदत से ग्रसित हो रहे हैं और किसी के प्रति दुर्भावपूर्ण भावना बनाये हुए हैं तो उसके जितने दोष हैं वे सब बहुत ही बढ़े-चढ़े दिखाई देंगे और वह व्यक्ति दोषों के पर्वत जैसा दीखेगा । यदि इसके विपरीत हमारा दृष्टिकोण उसी व्यक्ति के प्रति आत्मीयतापूर्ण रहा होता, उसकी सज्जनता पर विश्वास करते तो उसमें अनेकों गुण ऐसे दिखाई देते जिससे उसे सज्जन एवं सत्पुरुष कहने को ही जी चाहता ।

भूल हर किसी से होती है । दुर्गुण और दुर्बलताओं से रहित भी कोई नहीं है । पर जिसे हम प्यार करते हैं, उनकी भूलों पर ध्यान नहीं देते या उन्हें बहुत छोटी मानते हैं, यदि कोई बड़ी भूल भी होती है तो उसे हँसकर सहन कर लेते हैं और उदारतापूर्वक क्षमा कर देते हैं । यह अपनी भावनाओं का ही खेल है कि दूसरों की बुराई या भलाई बहुत छोटी हो जाती है या अनेकों गुनी बढ़ी-चढ़ी दीखती है ।

लोगों की बुराई-भलाई इतना महत्त्व नहीं रखती जितनी हमारी दृष्टि । दृष्टि में दोष उत्पन्न हो जाय तो हर चीज अटपटी दिखाई देगी । रंगीन काँच का चश्मा पहन लिया जाय तो हर चीज उसी रंग की दिखाई देगी । पीलिया रोग वाले का चेहरा, खून एवं मल-मूत्र ही पीला नहीं होता वरन् सभी चीजें उसे पीली दिखाई देने लगती हैं । कई व्यक्ति हर घड़ी किसी न किसी की निन्दा करते सुने जाते हैं, दूसरों के दोषों का वर्णन करने में उन्हें बड़ा मजा आता है, ऐसे लोग बहुधा अपने आपको आलोचक या सुधारक कहते हैं पर वस्तुतः बात दूसरी ही होती है । उनके मन में दूसरों के प्रति घृणा और द्वेष के भाव भरे होते हैं, वे ही दूसरों की निन्दा के रूप से बाहर निकलते रहते हैं । जो आदमी लहसुन खाकर या शराब पीकर आया है, उसके मुँह में से इन पदार्थों की दुर्गन्ध स्पष्ट रूप से आती है । इसी प्रकार दुर्भावना युक्त ओछे आदमियों के मुख में से निन्दा, बुराई, दोष दर्शन, छिदान्वेषण की धारा ही प्रवाहित होती रहेगी, ऐसे लोग किसी की भलाई या सदभावना पर विश्वास नहीं कर सकते, उन्हें सभी धूर्त या दुष्ट दिखाई देते हैं । ऐसे दुष्टों को दोषद्रष्टा ही कहा जायगा । उनकी अपनी दुर्बलता उनके चारो ओर धूर्तता और दुष्टता के रूप में बिखरी दिखाई पड़ेगी ।

इस प्रकार का दोषदर्शी दृष्टिकोण मनुष्य के लिए एक भारी विपत्ति के समान है । प्रेम और द्वेष छिपाये नहीं छिपते । दुर्भावों में वह शक्ति है कि जिनके प्रति उस तरह के भाव रखे जायें तो उस तक किसी न किसी प्रकार जा ही पहुँचते हैं और वह किसी दिन जान ही लेता है कि अमुक व्यक्ति मेरा निन्दक या द्वेषी है । यह जान लेने पर उनके मन में भी प्रतिक्रिया होती है, वह भी शत्रुता करेगा । इस प्रकार दोषदर्शी के शत्रु ही चारों ओर बढ़ते जायेंगे । शत्रुता के साथ विपत्ति जुड़ी हुई है, जिसके जितने ज्यादा शत्रु होंगे वह उतना ही चिन्तित, परेशान एवं आपत्तिग्रस्त रहेगा । उसके मार्ग में समय-समय पर अनेकों बाधायें आती ही रहेंगी, उन्नति के मार्ग में सहयोग देने वालों की अपेक्षा रोड़े अटकाने वाले ही अधिक होंगे । ऐसी स्थिति अपने लिए उत्पन्न कर लेना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं है । निन्दात्मक दृष्टिकोण अपनाए रखना एक अबुद्धिमत्तापूर्ण कार्य ही कहा जा सकता है ।

यदि हम अपने आपसे सच्चे और सज्जन हों तो हमें सदा दूसरों की भलाइयाँ और अच्छाइयाँ दृष्टिगोचर होंगी । जिस प्रकार हम किसी के सुन्दर चेहरो को ही बार-बार देखने में उसी से प्रभावित होते है और प्रशंसा करते हैं । पर उसी मनुष्य के शरीर में मलमूत्र के दुर्गन्धपूर्ण कुरूप और अरुचिपूर्ण स्थान भी हैं पर उनकी ओर न तो ध्यान ही देते हैं और न चर्चा करते हैं । इसी प्रकार अरुचिपूर्ण मनोभावना के व्यक्ति आमतौर से दूसरों के सद्गुणों को ही निखारते-परखते रहते हैं । उनके द्वारा जो अच्छे काम बन पड़े हैं उन्हीं की चर्चा करते हैं । उनके प्रशंसक और मित्र बनकर रहते हैं । आलोचकों और निन्दकों की अपेक्षा आत्मीयता, सद्भाव रखने वाला व्यक्ति किसी की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बुराई को अधिक जल्दी और अधिक सरलतापूर्वक दूर कर सकता है ।

कोई व्यक्ति जो अपने को सज्जन और समझदार मानता है उस पर यह जिम्मेदारी अधिक मात्रा में आती है कि सामान्य लोगों की अपेक्षा अपने में कुछ असामान्य गुण सिद्ध करे । सामने वाले से मतभेद होने पर उसे बुरा-भला कहना, निन्दा या अपमान भरे शब्द कहना, लड़-झगड़ पड़ना इतना तो निम्नकोटि के व्यक्ति भी करते रहते हैं । कुँजड़े और कंजड़ भी इस नीति से परिचित हैं । यदि इस नीति को वे लोग भी अपनावें जो अपने को समझदार कहते हैं तो उनका यह दावा करना निस्सार है कि हम उच्च मानसिक स्तर के हैं । कुँजड़े-कंजड़ जैसे फूहड़ शब्द इस्तेमाल करते हैं वैसे भले ही उन्होंने न किये हों, शिक्षित होने के कारण वे साहित्यिक शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं पर नीति तो वही रही, भावना तो वही रही, क्रिया तो वही रही । वे अपने आपको शिक्षित कुंजड़ा या कंजड़ कह सकते हैं, इतनी ही उनकी विशेषता मानी जा सकती है ।

हर समझदार आदमी पर यह जिम्मेदारी आती है कि वह जिनकी निन्दा करना चाहता है उनकी अपेक्षा अपने आपको अधिक ऊँचा अधिक सभ्य अधिक सुसंस्कृत सिद्ध करे । यह तभी हो सकता है जब वह अपने में अधिक सहिष्णुता, अधिक प्यार, अधिक आत्मीयता, अधिक उदार और अधिक क्षमाशीलता धारण किये रहना प्रमाणित करे । इन्हीं गुणों के आधार पर उसके बड़प्पन की तौल की जायगी । यदि कभी दो व्यक्तियों में से एक को चुनना पड़े एक को महत्त्व देना पड़े तो बाहर के विवेकशील आदमी इसी आधार पर महत्त्व देंगे कि किसने अधिक उदारता और सज्जनता का परिचय दिया । जिसमें यह अधिकता पाई जायगी उसी की ओर लोगों की सहज सहानुभूति आकर्षित होगी । पर यदि ऐसा नहीं है तो दोनों एक ही स्तर पर रखे जायेंगे : दोनों की ही निन्दा की जायगी और लोग उनकी बीच में पड़ने की अपेक्षा उनसे दूर रहना ही पसन्द करेंगे ।

दूसरों की अच्छाइयों को ढूँढने, उन्हें देख-देखकर प्रसन्न होने तक उनकी प्रशंसा करते रहने का स्वभाव यदि हम अपना बना लें । तो यह सारी दुनियाँ हमें एक सुरम्य सुगन्धित बगीचे की तरह मनोरम दिखाई देगी । हर व्यक्ति और हर वस्तु में कुछ न कुछ अच्छाई मौजूद हैं । हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है । शहद की मक्खी के लिए, इतना ही पर्याप्त है कि फूल में मिठास के तनिक से कण मौजूद हों, जब एक नन्ही सी विद्या और बुद्धि से होकर मक्खी इतना कर सकती है कि फूल में से अपने काम की जरा-सी चीज को निकालने मात्र का ध्यान रखें और अपना छत्ता मीठे शहद से भर लें, तो क्या हम ऐसा नहीं कर सकते कि लोगों के अन्दर उपस्थित अच्छाइयों की ही तलाश करें भले ही वे थोड़ी-सी मात्रा में क्यों न हों । यदि हमारी दृष्टि ऐसी रहे तो हमें अपने चारों ओर सज्जन एवं स्नेही ही दिखाई देंगे हमारा मन हर घड़ी प्रसन्नता और सन्तोष से ही भरा रहेगा ।

ताली एक हाथ से नहीं बजती । अन्य व्यक्ति दुर्जन भी हों तो हमारी सज्जनता उनके हथियारों को व्यर्थ बना देगी । सड़क टूटी हुई हो, जगह-जगह गड्ढे हों तो मोटर में बैठने वाले को दचके लगने स्वाभाविक हैं, पर बहुत बढ़िया किस्म की मोटर जिसमें लचकदार कमानी या स्प्रिंगदार सीटें हों-इस टूटी सड़क पर भी किसी यात्री को सुविधापूर्वक यात्रा करा सकती है । दुनिया में बुरे लोग हैं ठीक है पर यदि हम अपनी मनोभूमि को सहनशील, धैर्यवान् उदार और गुदगुदी बना लें तो बढ़िया मोटर में बैठने वाले यात्री को तरह इस टूटी सड़क वाली दुनियाँ में भी आनन्दपूर्वक यात्रा कर सकते हैं ।

जो उपलब्ध है उसे कम या घटिया मानकर अनेक लोग दुःखी रहते हैं और अपने भाग्य को कोसते हैं । कई बार ऐसा भी होता है कि अधिक ऊँची किस्म के सुख-साधन, सामग्री प्राप्त करने के लिए उतावले होकर अनुचित रीति से भी उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और अन्याय और अत्याचार करने में भी नहीं चूकते । यह मार्ग समाज में अशांति और अपने लिए दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाला ही है । ऐसे अनुचित कदम उठाने में यह असन्तोष ही मुख्य कारण है जिससे और अधिक मात्रा में, और अधिक बढ़िया किस्म की वस्तुएँ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्राप्त करने की लालसा लगी रहती है । यदि हम इन लालसाओं पर नियन्त्रण कर लें, अपना स्वभाव सन्तोषी बना लें तो मामूली वस्तुओं से भी काम चलाते हुए प्रसन्न रह सकते हैं ।

अपने से अधिक सुखी, अधिक साधन सम्पन्न, अधिक ऊँची परिस्थिति के लोगों के साथ यदि अपनी तुलना की जाय तो प्रतीत होगा कि सारा अभाव और दारिद्रय हमारे ही हिस्से में आया है । परन्तु यदि उन असंख्यों दीन-हीन पीड़ित परेशान लोगों के साथ अपनी तुलना करें तो अपने सौभाग्य की सराहना करने को जी चाहेगा । ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि अभाव या दारिद्रय की कोई मुख्य समस्या अपने सामने नहीं है । समस्या केवल इतनी ही है कि हम अपने में गिरे लोगों से अपनी तुलना करते हैं या बढ़े हुए लोगों से । इस तुलना में हेर-फेर करने से हमारा असन्तोष सन्तोष में और सन्तोष-असन्तोष में परिणत हो सकता है ।

जिन स्वजन सम्बन्धियों से उनकी छोटे-छोटे दुर्गुणों के कारण हमें झुँझलाहट आती है, जो हमें भाररूप और व्यर्थ मालूम पड़ते हैं, उनके द्वारा अपने ऊपर अब तक किये हुए अहसानों एवं उपकारों का स्मरण किया जाय तो लगेगा कि वह बड़े ही त्यागी, सेवा-भावी और उदार हैं । यदि उनकी अब तक की समस्त सेवा-सहायताओं का स्मरण किया जाय तो लगेगा कि वे साक्षात् उपकारों के देवता हैं । उनका कृतज्ञ होना चाहिए और भाग्य को सराहना चाहिए कि ऐसे उपकारी, स्नेहसिक्त स्वजन सम्बन्धी हमें उपलब्ध हुए । तृष्णा का कोई अन्त नहीं । एक से एक अच्छी और एक से एक सुन्दर चीजें इस दुनिया में मौजूद हैं । उस क्रम का अन्त नहीं । आज जो कुछ हम चाहते हैं उसे मिलनें पर कल और बढ़िया का मोह बढ़ेगा । बढ़ियापन का कहीं अन्त नहीं । इस कुचक्र में उछलने से सदा घोर असन्तोष ही बना रहेगा । इसलिये यदि चित्त का समाधान करना हो तो कहीं न कहीं पहुँच कर सन्तोष करना पड़ेगा । यदि उस सन्तोष को आज ही वर्तमान स्थिति में कर लिया जाय तो तृप्ति, पूर्णता और सन्तोष के रसास्वादन का आनन्द आज ही उपलब्ध हो सकता है । इसके लिए एक क्षण की भी प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी ।

## हम पहले अपने को ही क्यों न सुधारें ?

मनुष्य-जीवन में आये दिन उपस्थित रहने वाली कठिनाइयों का कुछ ठिकाना नहीं । कोई व्यक्ति इस संसार में ऐसा नहीं जिसे किसी न किसी प्रकार की आपत्तियों और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना न करना पड़ता हो । इस विश्व का निर्माण सत, रज तम इन तीन गुणों के मिलने से हुआ है । नि:सन्देह दुनिया में सज्जनता, नेकी, सौहार्द्र स्नेह और सहयोग की पर्याप्त मात्रा मौजूद है । उससे प्रेरित होकर लोग एक-दूसरें की भलाई करते हैं, स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख पहुँचाते हैं तथा औरों के दुर्व्यवहार सहन कर लेते हैं । इस संसार में आनन्ददायक तत्त्व भी कम नहीं हैं । यदि आशा और उल्लास के कारण समुचित मात्रा में न होते तो कोई आत्मा जीवन को जीना स्वीकार न करती । कठिनाइयों के बावजूद सुविधाओं और आकर्षणों की इतनी बड़ी मात्रा मौजूद है कि यदि मृत्यु का प्रश्न सामने आवे तो हर कोई उसे नापसन्द करता है और रोता है, मृत्यु का भय इस बात का प्रमाण है कि जीवन में दु:खों की अपेक्षा आनन्द की मात्रा अधिक है ।

फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज के युग में सर्वत्र सुखों की अपेक्षा दु:खों की ही वृद्धि हो रही है । भलाई के स्थान पर बुराई ही पनप रही है । सज्जनों की अपेक्षा दुर्जनों का ही बाहुल्य हो रहा है । फलस्वरूप आनन्द और सन्तोष की अपेक्षा दु:ख और असन्तोष की बढोत्तरी दिखाई देती है । तृष्णा और वासना की ओर लोगों का झुकाव अधिक हो जाने से व्यक्ति दूसरों के प्रति सेवा और सद्भावना का व्यवहार करने की अपेक्षा आक्रमणात्मक रुख अपनाये हुए है । दूसरों को हटाकर या किसी अन्य प्रकार से मजबूर करके उसके स्वत्त्वों का अपहरण करने और स्वयं मौज-मजा करने की इच्छायें हर किसी के मन में काम करने लगी हैं । इसके परिणाम स्वरूप संघर्ष, क्लेश, असन्तोष, द्वेष दुर्भावों की तथा अनाचार मूलक दुर्घटनाओं की अभिवृद्धि का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कुचक्र चल पड़ा है । वासनाग्रसित मनुष्य अधिकाधिक इन्द्रिय सुखों की हविस से पागल होकर स्वाभाविक मर्यादाओं का उल्लघंन करने लगा है । फलस्वरूप बीमारी, दुर्बलता और अल्प-जीवन का शिकार उसे होना पड़ रहा है ।

प्रश्न यह है कि क्या इन विषम परिस्थितियों के होते हुए भी हम उनसे किसी कदर अपने को प्रभावित रख सकते हैं ? उनकी प्रतिक्रिया से अपने को कम से कम प्रभावित किये अपना गुजारा कर सकते हैं ? यदि ऐसा मार्ग मिलता है तो निश्चय ही इसे बड़ी बात कहा जा सकता है ।

यह बात ध्यान रखने की है कि हर परिस्थिति, हर घटना, हर वस्तु के लिए कुछ बातें अनुकूल हैं तो कुछ प्रतिकूल पड़ती हैं । उनका विशेष प्रभाव अनुकूलों पर ही होता है, प्रतिकूलों पर या तो वह प्रभाव होता ही नहीं, होता भी है तो बहुत कम । आग का विशेष प्रभाव सूखी लकड़ी पर जितना होता है उतना गीली पर नहीं । पानी जितना रेतीली जमीन सोखती है उतना पथरीली जमीन नहीं । बीमारी का आक्रमण जितना अशुद्ध रक्त वालों पर होता है उतना शुद्ध रक्त वालों पर नहीं । रंग जितना साफ कपड़े पर चढ़ता है उतना गन्दे पर नहीं । इसी प्रकार बुरी परिस्थितियों, बुरे तत्त्वों और बुरे व्यक्तियों का प्रभाव भी हल्के दर्जे की मनोभूमि के लोगों पर ही पड़ता है । ऊँची और सुसंस्कृत मनोभूमि के लोग उससे बहुत कम ही प्रभावित होते हैं ।

कुमार्ग पर ले जाने वाली अनेकों बुराइयाँ जगह-जगह मौजूद हैं और वे अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए भी सक्रिय रहती हैं, अनेकों व्यक्ति उनके चंगुल में फँसते हैं और अपने आपको उस रंग में इतना रंग लेते हैं कि फिर इस जाल से निकल सकना कठिन हो जाता है । जुएबाजी के, शराबखोरी के, सिनेमाबाजी के, व्यभिचार के, आवारगर्दी के शैतानी अड्डे हर जगह पाये जाते हैं । उनके जाल में अनेक लोग रोज ही फँसते हैं और अपना समय, स्वास्थ्य, धन, लोक-परलोक सभी कुछ गंवा कर छूँछ हो जाते हैं । इससे उन बुराइयों की शक्ति और सफलता का अन्दाज सहज ही लगाया जा सकता है ।

पर यह प्रभाव एक खास तरह की उथली मनोभूमि के लोगों पर ही पड़ता है । वे ही इनके चंगुल में फँसते और बर्बाद होते हैं । उनका प्रभाव सभी पर पड़े ऐसी बात नहीं है । जहाँ एक व्यक्ति इन बातों से आसानी से ग्रस्त हो जाता है, वहाँ उसी क्षेत्र का उसी का पड़ोसी, उन्हीं परिस्थितियों का व्यक्ति उन बातों से सर्वथा दूर रहता है । दूर ही नहीं रहता वरन् उन बुराइयों से घृणा भी करता है, उनका विरोध भी करता है । इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जाता है कि जहाँ एक व्यक्ति उन बुराइयों की चपेट में अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण सहज ही आ गया, वहाँ दूसरा व्यक्ति उनसे अप्रभावित ही नहीं रहा वरन् उनके उन्मूलन में भी बहुत दूर तक सफल हुआ । इससे यह अन्दाज भी लगता है कि बुराइयों में, उनके अड्डों में अपना प्रभाव विस्तार करने की जो शक्ति है वह वहीं तक सीमित है जहाँ व्यक्तियों की मानसिक दुर्बलतायें उनके अनुकूल पड़ती हों, यदि मनोभूमि परिष्कृत हो तो उन बुराइयों का वहाँ पनपने ही नहीं ठहरना भी असम्भव हो जाता है ।

यही बात बुरे व्यक्तियों के बारे में भी लागू हो जाती है । वे तरह-तरह से सताने का हमें षडयन्त्र करते हैं और कई बार अपनी करतूतों में सफल भी होते हैं । पर उनका कुचक्र हर किसी के ऊपर नहीं चल सकता । वे बहुत शक्तिशाली होते हुए भी हर किसी को अपनी दुष्टता से मनचाही मात्रा में सता सकने में सफल नहीं हो पाते । उनके आक्रमण का शिकार भी बहुत कर उन्हीं को होना पड़ता है जो अपने भीतर उस तरह की दुर्बलतायें धारण किये हुए हैं जिन पर दुष्टता का आक्रमण सफल हो सके ।

ठगों के जाल में अनेक लोग फँस जाते हैं और उनके द्वारा बहुत-सी हानि उठाते हैं पर इन समस्त लोगों में अधिकतर ऐसी मनोवृत्ति के लोग होते हैं जो बहुत सस्ते में, बहुत-सा लाभ प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं । जिन्हें अपनी योग्यता एवं श्रम के आधार पर, परिश्रम की कमाई पर सन्तोष है जो केवल नीतिपूर्वक उचित तरीके से जितना प्राप्त हो सकता है उसी से काम चलाते हैं और

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रसन्न रहते हैं उन्हें कोई ठग नहीं सकता । यों ठगी के अनेकों तरीके हैं । पर उनमें सिद्धान्त एक ही काम करता है कि ठग लोग यह परखते हैं कि शिकार के लालच पर्याप्त है कि नहीं ? यदि है तो ठग समझ लेते हैं कि यह हमारा पक्का शिकार है । इसे ठगा जा सकता है फिर वेलोग ना कराने, ताँबे से सोना बनाने, जमीन में से गढ़ा धन निकालने, कोई लाभ करा देने आदि के प्रलोभन देकर लोगों को लालायित करते हैं और यह निर्विवाद है कि लोभ में मनुष्य अन्धा हो जाता है, उसे उचित-अनुचित सम्भव-असम्भव कुछ सूझता नहीं । ऐसी मनोदशा जब उत्पन्न कर लेते हैं, तब ठग उसका माल-असबाव लेकर चम्पत हो जाते हैं । यदि मनुष्य निर्लोभ हो तो इस प्रकार के प्रलोभनों के सामने आते ही उनके गुण-अवगुण पर विचार करेगा । प्रलोभनकारी क्यों इतना उदार बन रहा है इस पर दृष्टि डालेगा उसका विवेक सावधान रहा तो कुछ ही विचारने पर वास्तविकता का पता लग जायगा और वह उस प्रयत्न में फँसकर अपनी हानि कराने से बचा रहेगा ।

इसी प्रकार जिसके मन में अनुचित लोभ वृत्ति न होगी वह जुआ, लाटरी, सट्टा आदि बुरी लतों से बचा रहेगा । चोरी, उठाईगिरी, बदमाशी, बेईमानी के लिये न उसकी इच्छा ही होगी और वह अपकीर्ति, नरक, निन्दा राजदण्ड आदि की आपत्तियों से बचा रहेगा । इन दुष्कर्मों के अड्डे चाहे उसके कितने ही समीप क्यों न हों उनका कोई आकर्षण प्रभाव उस पर नहीं पड़ेगा । वे उसे आकर्षित करने में समर्थ न हो सकेंगे ।

आजकल इन्द्रिय मनोरंजनों के अनेक साधन चल पड़े हैं । उनकी ओर इन्द्रियाँ लालच के साथ आकर्षित होती हैं और उन्हें अधिकाधिक मात्रा में भोगने के लिए मचलती हैं । दुर्बल मनोभूमि के लोग उनमें फिसलते हैं और अमर्यादित उपभोग के लालच में अपना शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं । सिनेमा, नाच आदि मनोरंजन, मिठाई, मसाले, चाट, पकौड़ी, आदि भोजन काम-विकार की अनुचित प्रक्रियायें उपलब्ध करने के अनेकों अवसर आज सर्वत्र मौजूद हैं और वे जनसाधारण के लिये बड़े हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं । पर यह उन्हें ही उठाती पड़ती है जिनकी विवेकशक्ति दुर्बल है, जो दूरवर्ती हानि-लाभ की परवाह किये बिना आज के अभी के छोटे से आकर्षण में फस जाते हैं । यदि यह अविवेक-दुर्बलता न हो तो यह प्रलोभन किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते । ऐसे असंख्यों व्यक्ति हैं जो इनकी व्यर्थता और हानियों को जानते हैं और जबकि दूसरे लोग इनमें बुरी तरह फँसे होते हैं वे इनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते ।

झगड़ालू, दुष्ट, उद्दण्ड, उच्छृंखल, अशिष्ट लोग कई बार अपने दुष्ट स्वभाव से अकस्मात् ही कटु वचन कहते और दुर्व्यवहार करते देखे गये हैं । ऐसे लोगों से निपटने का सरल तरीका तो उन्हें यह अनुभव करा देना ही है कि उद्दण्ता को रोकने वाली शक्तियाँ भी इस दुनिया में मौजूद हैं और वे मनमानी करने वालों को वैसा न करने के लिए मजबूर कर सकती हैं । ऐसी शक्ति किसी मजबूत संगठन, शरीरबल या सत्ताबल से ही उत्पन्न हो सकती है । देखा जाता है कि आज की बढ़ती हुई गुण्डागर्दी को रोकने के लिये जैसा विरोधी प्रबल जनमत आवश्यक है वैसा उठ नहीं रहा है वरन् लोग अपनी सुरक्षा का ख्याल उन गुण्डों का ही सहयोग और समर्थन करने लगते हैं ।

जो हो उन लोगों की उद्दण्डता को तभी अवसर मिलता है जब सामने वाले में भी थोड़ी वैसी ही अनुकूलता हो । उनसे उदासीन रहना, न सम्पर्क बढ़ाना, न झगड़ा मोल लेना न डरना, न खुशामद करना, न छेड़ना-ऐसी अपनी नीति हो तो उनकी गुण्डागर्दी काफी हद तक नियमित हो जाती है । उद्दण्ड व्यक्ति यह देखते रहते हैं कि कौन आदमी उनसे डरता और खुशामद करता है । वे समझ लेते है कि यह हमसे डरता है, बस यही एक कारण ऐसा प्रतीत होता है कि इसे और डरा-धमका कर अनुचित स्वार्थ सिद्ध करना चाहिये । बन्दर का किसी आदमी से या बच्चे से मुकाबला पड़े तो वह सामने वाले की आँखों और चेहरे को ध्यानपूर्वक देख कर यह पहचानता है कि यह मुझसे डर रहा है या नहीं ? यदि उसको सामने वाला डरता और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


भागता दीखा तो वह समझ लेता है कि जीत मेरी ही है, बस वह दौड़ पड़ता है और काट खाता है । पर यदि छोटा बच्चा भी निडर होकर हाथ में एक छोटा पत्थर या लकड़ी का टुकड़ा भी लिये खड़ा रहे तो बन्दर अपनी दाल गलती न देखकर चला जाता है । यही बात उद्दण्ड लोगों के सम्बन्ध में भी है । यदि हम अपने मन में उनकी विशेषता स्वीकार न करें, उनकी परवाह न करें, और डरने या खुशामद करने की न सोचें तो वे हमारी इस उपेक्षा के पीछे हमारे आत्मबल और साहस को छिपा हुआ देखेंगे और फिर उलझने की हिम्मत न करेंगे ।

इस प्रकार दूसरों की साधारण छेड़छाड़ की उपेक्षा कर देनी चाहिये क्योंकि साधारण बात पर जो लोग बहुत आवेश में आ जाते हैं, बहुत घबराते और परेशान होते हैं वे भी मानसिक दृष्टि से दुर्बल माने जाते हैं और दुर्बल पर आक्रमण करने की हर किसी को इच्छा होती है । आवश्यकतानुसार विरोध किया जा सकता है और संघर्ष का अवसर आने पर उसके लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिये । पर उसके लिए यह आवश्यक है कि अधीरता, आवेश, उत्तेजना, घबराहट, रोष एवं बैचेनी की अपनी स्थिति न बन जाय, वरना सामने वाला अपनी दुर्बलता भाँप लेगा और समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा चिढ़ाते या छेड़ते रहकर हमें और भी अधिक परेशान किये रहेगा । अपने चेहरे पर निर्भीकता, दृढ़ता, साहस, धैर्य एवं अनुद्वेग के भाव हों और सीधे शब्दों में उसे समझा दिया जाय तो वह सामने वाले की मजबूती को भाँपकर समझ भी जाता है, क्योंकि कोई भी गुण्डा वस्तुतः पहले सिरे का कायर होता है । वह बाहर से जितना शेर बनता है उतना ही भीतर से पोला, कमजोर भी होता है ।

दैवी आपत्तियाँ, बीमारी, घाटा, अपमान, किसी प्रियजन की मृत्यु, विछोह, चोरी, अग्निकांड आदि कोई आकस्मिक कारण भी ऐसे आ जाते हैं जब अप्रत्याशित रूप से मनुष्य को कोई हानि एवं वेदना सहन करनी पड़ती है । ऐसी परिस्थितियाँ आने पर जो लोग भावावेश में बह जाते हैं, उस हानि को अत्यधिक बढ़ा-चढाकर सोचते हैं, व्याकुल और बेचैन हो जाते हैं, सर्वनाश हुआ देखते हैं और भविष्य के बारे में घोर अन्धकारपूर्ण मानस चित्र बनाते हैं, वे लोग ही अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं और आत्महत्या सरीखे दुखित कार्य कर डालते हैं यो इतने दुःखी रहते हैं कि अपना स्वास्थ्य ही जला डालते हैं और आयुष्य का एक बड़ा भाग कम कर लेते हैं । इसके विपरीत जो लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि-"मानव जीवन सुख और दुःख के, लाभ और हानि के, सम्पत्ति और विपत्ति के ताने बाने से बुना हुआ है, यह दोनों ही रात-दिन के गर्मी-सर्दी के जोड़े की तरह आती रहती हैं । इनके प्रभाव से कोई राजा-रंक अछूता नहीं रहता, यह सभी के लिये अवश्यम्भावी हैं । " उन्हें इन आपत्तियों का इतना भय नहीं होता जितना भावुक और दुर्बल मनोभूमि के लोगों को होता है । वे समझदार व्यक्ति विवेकपूर्ण अपना मन समझा लेते हैं । आपत्ति के कारण लगे हुये आघात की मरहम पट्टी कर लेते हैं, और काम चलाऊ साधारण स्थिति तक थोड़े समय में आसानी से जा पहुंचते हैं ।

इस प्रकार की स्थिति दो अलग-अलग व्यक्तियों पर उनकी मनोभूमि के अलग-अलग प्रभाव डालती है । संसार में बुराई और भलाई सभी कुछ पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं, पर हम अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुसार उसे ही पकड़ते हैं जो अपने को रुचता है । यदि यह रुचि परमार्जित हो तो संसार में जो कुछ श्रेष्ठ है उसे ही पकड़ने के लिए अपने प्रयत्न होते हैं और जिस प्रकार शहद की मक्खी बगीची में से शहद और गुबरीले कीड़े-गोबर इकट्ठा करते रहते हैं, उसी प्रकार अपनी मनोभूमि के अनुसार हम भी बुरे या भले तत्त्वों से अपना सम्बन्ध जोड़कर अपने पल्ले सुख या दुःख इकट्ठा कर सकते हैं । संसार में बुरा-भला सभी कुछ है । पर हम उन्हीं तत्त्वों को आकर्षित एवं एकत्रित करते हैं जिस प्रकार की अपनी मनोदशा होती है ।

इन सब बातों से विचारशील व्यक्ति एक ही निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हम जैसी परिस्थितियाँ प्राप्त करना चाहते हैं उसी के अनुसार अपनी मनोभूमि को ढालें । आत्म-नियन्त्रण और आत्म-निर्माण के आधार पर हम अपने लिये अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


भली या बुरी दुनिया का निर्माण कर सकते हैं । अपने भाग्य के निर्माता स्वयं बन सकते हैं ।

## अपने को बदलें तो जमाना बदले

बाह्य वातावरण का प्रभाव हम अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुरूप ग्रहण करते हैं । किस खाद्य पदार्थ का स्वाद कैसा है इसका कुछ निश्चित उत्तर नहीं हो सकता । जीभ से जैसे द्रव टपकते हैं उसके सम्मिश्रण से खाद्य पदार्थ का जो स्वरूप बनता है उसके आधार पर तथा जीभ में फैले हुये ज्ञान तन्तुओं की रचना के आधार पर स्वाद का अनुभव होता है । ऊँट को नीम की पत्ती वैसी कडुवी नहीं लगती जैसी हमें लगती है । बकरी आक के पत्ते मजे से खाती है जब कि दूसरे जानवर उसे सूँघते ही हट जाते हैं । मनुष्य-मनुष्य में यह भेद रहता है । एक व्यक्ति को माँस जैसे पदार्थ, शराब जैसे नशे बड़े मनभावन लगते हैं पर दूसरे को उनको गन्ध तक नहीं सुहाती । खाने को तो वे कभी भी तैयार नहीं हो सकते । इस तथ्य पर विचार करने से यह विदित होता है कि एक ही वस्तु विभिन्न प्राणियों को अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार प्रिय और अप्रिय लगती है इसमें प्रधानता पदार्थ की नहीं अपनी स्थिति की रही ।

ठीक इसी प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों का भला बुरा प्रभाव हमारी अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुसार पड़ता है । बहादुर सैनिक युद्ध घोषणा सुन कर अपना जौहर दिखाने एवं कर्त्तव्य पालन करने का अवसर सामने आया देखकर प्रसन्न होता है और उत्साहपूर्वक अपने कार्य में लगता है । इसके विपरीत कायर सैनिक इसी युद्ध-घोषणा को सुन कर, अपनी मौत सामने नाचती देखकर भयभीत एवं उद्विग्न होने लगता है । यहाँ युद्ध-घोषणा की प्रधानता नहीं अपनी मनोभूमि की प्रधानता है, जिसकी भिन्नता के कारण एक ही जगह रहने वाले, एक ही जैसे शरीर वाले, दो व्यक्तियों के दो भिन्न प्रकार के अनुभव हुए ।

सन्यासी की सुविधायें छूट जाने की प्रसन्नता होती है । वह उन्हें अपने आत्म-कल्याण में बाधक समझ कर खुशी-खुशी परित्याग करता है और अपरिग्रही होकर बड़ा हल्कापन एवं सन्तोष अनुभव करता है । इसके विपरीत एक लोभी को थोड़ी सी धन-हानि हो जाने पर भी बड़ी व्यथा होती है । वह बहुत दुःख पाता और पछताता है । धन दोनों का गया-पर एक ने उसे गँवाकर सन्तोष लाभ लिया, दूसरे ने पीड़ा अनुभव की । इस भिन्नता में धन अथवा उसकी हानि कारण नहीं वरन् इन व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न मनोदशा ही कारण है ।

ठीक इसी प्रकार इस संसार की विभिन्न परिस्थितियाँ विभिन्न स्तर के व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के परस्पर विरोधी अनुभव प्रदान करती हैं । हमें यह भली-भाँति जान लेना चाहिये कि बाह्य परिस्थितियाँ, व्यथित अथवा पदार्थ ही हमारे सुख-दुःख का कारण नहीं होते वरन् हमारा अपना सोचने का ढंग भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका उपस्थित करता है । स्वार्थपरता के संकीर्ण दृष्टिकोण को लेकर चलें तो हमें हर किसी से शिकायत बनी रहेगी । उसने हमारे साथ यह उपकार नहीं किया, यह प्रत्युपकार नहीं दिया, हमारे इस काम नहीं आया आदि-आदि सोचता रहेगा और सामने वाले का घृणित, नीच, दुष्ट आदि मानने लगेगा । पर यदि अपनी दृष्टि कृतज्ञतापूर्ण उदार हो तो जिससे जितना भी थोड़ा-बहुत सत्कार मिल गया, उतने को भी बहुत बढ़ा-चढ़ा कर सोचेगा और उसे धन्यवाद देगा, उदार मानेगा ।

संसार को अपनी इच्छा आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार बना सकना सम्भव नहीं । यहाँ विभिन्न प्रकृति के मनुष्य रहते हैं, विभिन्न स्तरों का व्यवहार होता है । सब कुछ हमारे अनुरूप ही बन जाय यह सम्भव नहीं । इसलिये यदि क्षोभ और असन्तोष के कारण उत्पन्न होने वाली मानसिक व्यथा से छुटकारा पाना हो तो एक ही उपाय है कि हम अपना दृष्टिकोण बदलें, अपने को सुधारें अपने सोचने का तरीका बदलें । इस परिवर्तन के साथ-साथ संसार की सभी परिस्थितयाँ बदली हुई दिखाई देने लगेंगी । जिनके प्रति हम आदरभाव रखते हैं और अपकारी मानकर कृतज्ञ रहते हैं वे हमारे लिये सहयोगी एवं प्रशंसक ही बन कर सामने आवेंगे और सबके लिये अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक परिस्थितियाँ विनिर्मित होंगी ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


## गुत्थियों का हल अपने भीतर है-

मनुष्य की आत्मा में एक ऐसा दिव्य प्रकाश मौजूद है जो यदि आलोकित होने लगे तो वह अपने प्रकाश-क्षेत्र को स्वर्गीय बना सकता है । स्वर्ग और नरक कोई स्थान नहीं, वरन् दृष्टिकोण है । जब मनुष्य तमोगुणी, तुच्छ, हीन, पतित, पाप दृष्टि अपनाकर अपने सोचने और काम करने का ढंग दूषित कर लेता है तो उसे अपने भीतर जलती हुई चिता जैसी जलन अनुभव होती है और बाहरी जगत् में संघर्ष, क्लेश, द्वेष की रोग, शोक, दारिद्र, चिन्ता, भय, पीड़ा, त्रास की परिस्थितियाँ बिखरी हुई दृष्टिगोचर होती हैं । किन्तु यदि दृष्टिकोण उच्चस्तरीय हो, उसमें सात्त्विकता, प्रेम, दया, करुणा, मैत्री, सेवा, उदारता, क्षमा, आत्मीयता, जैसी आदर्शों का समन्वय हो तो व्यक्ति का अन्तःकरण हर घड़ी सन्तोष, उल्लास एवं शान्ति से भरा रहता है । ऐसे व्यक्ति को अपने बाहरी जीवन में भी सर्वत्र सौजन्य, स्नेह, सद्भाव, सहयोग एवं सत्कर्मों का वातावरण ही फैला दीखता है । यों यह दुनियाँ तीन गुणों से बनी है । इसमें भला-बुरा सभी कुछ है । पाप और पुण्य का, देवत्व और असुरता का, दुःख और सुख का, उचित और अनुचित का अस्तित्त्व यही है । फिर भी व्यक्ति अपने दृष्टिकोण के अनुरूप ही परिस्थितियाँ प्राप्त कर लेता है । भौंरे के लिये इस बगीचे में फूलों की और गुबरीले कीड़े को गोबर की प्राप्ति हो ही जाती है । संसार बुरा भी है और भला भी । यहाँ न दुष्टों की कमी है न सज्जनों की । पर यह सब होते हुए भी हमारे दृष्टिकोण का चुम्बकत्व अपने आप में एक ऐसा शक्तिशाली तत्त्व है जो अपने आकर्षण से अपनी जाति की वस्तुओं, आत्माओं एवं परिस्थितियों को खींचकर समीप जमा कर लेता है ।

मकड़ी अपना जाला आप बुनती है और उसी में फँसी पड़ी रहती है । हम भी अपनी परिस्थितियों की सृष्टि आप करते हैं और उसी में सुख-दुःख अनुभव करते हुए जीवन को हँसते-रोते व्यतीत करते रहते हैं । आमतौर से ऐसा समझा जाता है कि हमारी वर्तमान परिस्थितियों के निर्माता कोई और हैं । जब विपरीत या कष्टकारक कोई अवसर सामने आते हैं तो उनके निदान की-कारण की ढूँढ खोज करनी आवश्यक होती है, पर हम यह खोज बीन अपने भीतर न करके, अपने दोषों पर विचार न करके बाहरी कारणों पर दोषारोपण करते हैं और यह प्रयत्न करते हैं कि दोषी कोई और सिद्ध हो जाय और हम अपने आपको निर्दोष मानकर सन्तोष कर लेने का कोई बहाना ढूँढ निकालें । हममे से अधिकांश के प्रयत्न ऐसे ही होते हैं, मानवीय बुद्धि भी जादू की पिटारी है, इसे जिधर को लगा दिया जाय उधर ही अपनी मान्यता के समर्थन में कुछ न कुछ तर्क, प्रमाण, कारण गढ़कर सामने प्रस्तुत कर देती है । फूँस का भेड़िया बनाकर खड़ा कर देने की विद्या में यह जादूगरनी परम प्रवीण है । भीतरी मन जिस बात की आकांक्षा करे उसके समर्थन में वह कल्पना एक पूरा महल नहीं, नगर नहीं संसार ही गढ़ सकती है और छोटे बच्चे की तरह मन को इस प्रकार झुठता सकती है मानो चन्दा मामा को आकाश से उतारकर हथेली पर रख दिया हो ।

हममें से अधिकांश को इसी भ्रम में भटकना पड़ता है । अपनी गुत्थियों के समाधान का हल खोजे हैं-पर वह मिले कैसे ? भूल-भुलैया में भटकने वाले दिग्भ्रांत मनुष्य की तरह हम वस्तुस्थिति को समझ कहाँ पाते हैं जो अपनी कठिनाइयों के कारण को समझें और उसका सही उपाय जानकर उसी के लिये सचेष्ट हों ? हमारी मान्यता यही होती है कि हम स्वयं निर्दोष हैं, हम न तो गलती करते हैं और न गलत सोचते हैं । हमारे अन्दर दोष हैं न दुर्गुण, न हमें अपने को सुधारने की आवश्यकता न सँभालने की । जो कुछ खराबी है सब बाहर वालों में है । वे ही प्रत्येक कठिनाई के जिम्मेदार हो सकते हैं । इस मान्यता के स्थिर होते ही कुशाग्र बुद्धि वाले वकील की तरह मन अपना काम करना आरम्भ कर देता है और मुकदमा चाहे झूँठा ही क्यों न हो उसे जिताने के लिये आकाश-पाताल के कुलावे मिलाना आरम्भ कर देता है । देखते-देखते इतने तर्क, इतने प्रमाण, इतने कारण सामने प्रस्तुत हो जाते हैं कि मनुष्य उन्हें ही सत्य मानने लगता है और किसी प्रकार

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अपनी निर्दोषिता पर आत्मसन्तोष करता हुआ थोड़ा चैन पा लेता है ।

अनेकों व्यक्ति सोचते हैं कि उन्हें सताया गया है । सताने वाले जो व्यक्ति समझ में आते हैं उनके प्रति क्रोध, द्वेष और प्रतिहिंसा के भाव उठना स्वाभाविक ही है । यह एक नई जलन अपने कष्टों के साथ और जुड़ जाती है और जले पर नमक छिड़कने की तरह और दु:ख देती है । कई बार और भी सरल तरीका समझ में आ जाता है । व्यक्तियों को दोषी न समझकर भाग्य, प्रारब्ध, विधाता, ईश्वर, ग्रह-नक्षत्र, भूत-पलीत आदि को कारण मानकर सन्तोष कर लेने की भी पद्धति का बहुत प्रचार हो चला है । कारण यह है कि इन विश्वासों के आधार पर मनुष्य को अपनी विवशता स्वीकार करने और द्वेष एवं प्रतिहिंसा से बचने का भी अवसर मिल जाता है । दैव से, भाग्य से, ग्रह-नक्षत्रों से द्वेष करने से क्या लाभ ? यह सोचकर दुर्बल मानस वाले व्यक्ति भी अपना काम गलत कर सकते हैं ।

वस्तु स्थिति सर्वथा भिन्न है । मनुष्य का आन्तरिक प्रदेश जिस घटिया या बढ़िया स्तर का होता है । उसे अपने अनुरूप व्यक्तियों, वस्तुओं एवं परिस्थितियों को प्राप्त करने में देर नहीं लगती । भीतरी प्रतिभा जब विकसित होती है उसके प्रकाश से बाहर का सब कुछ जगमगाने लगता है । इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि अधिकांश महापुरुष ऐसी अभावग्रस्त एवं हीन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे जहाँ स्वाभाविक विकास की गुंजाइश बहुत ही कम थी । यदि उनकी अन्तरात्मा प्रबल मनस्वी न रही होती तो उन्हें भी इस संसार के अनेक दीन-हीन व्यक्तियों की तरह भाग्य का रोना रोते हुए जिन्दगी के दिन पूरे करने पड़ते । पर हुआ इससे सर्वथा विपरीत । उनने अपनी आन्तरिक प्रतिभा के बल पर आगे को कदम उठाये । बढ़ते हुए कदमों को प्रोत्साहित करने वाला दैवी नियम इस संसार के आदि से ही बना हुआ है । कहते हैं कि -''ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं ।'' पुरुषार्थी के आत्मविश्वासी कदम जिस राह पर बढ़ते हैं उसके रोड़े हटते ही हैं । हिमालय से निकली हुई गंगा की समुद्र से मिलने की प्रदीप्त भावना को हजारों मील भूमि पर बिखरे हुए असंख्यों अवरोध कहाँ रोक सके ? गंगा की धड़धड़ाती हुई धारा समस्त प्रतिरोधों को कुचलकर समुद्र तक जा ही पहुँचती है । प्रगति के पथ पर बढ़ती हुई आत्मा भी क्योंकर रुकेगी । उसे कौन रोकेगा ? हिमाचल जैसा उच्च आन्तरिक स्तर जिसका होगा ओर समुद्र जैसे विशाल लक्ष्य की आकांक्षा होगी उसका मार्ग गंगा की तरह ही प्रशस्त है । उसकी लक्ष्य-पूर्ति सर्वथा सुनिश्चित है ।

इस संसार में कोई बुराई नहीं है, कोई प्रतिकूलता नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा रहा है और न यही प्रेरणा दी जा रही है कि बाह्य जगत में जो बुराइयाँ एवं त्रुटियाँ हैं उन्हें सुधारा या बदला न जाय । यह तो करना ही चाहिए पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सारे संसार को सुधार लेना या इच्छानुकूल बना लेना सम्भव नहीं है । सारी पृथ्वी पर फैले हुए काँटे नहीं बीने जा सकते, पर अपने पैरों में जूते पहने जा सकते हैं जिससे काँटों पर प्रभाव समाप्त हो जाय । अपना सुधार करना, अपने दृष्टिकोण को परमार्जित करना जूते पहनकर काँटों से निश्चिन्त होने के समान ही है । बाह्य जगत की बुराइयों के सुधारने के लिए भी अपनी उत्कृष्टता आवश्यक है । गरम लोहे को गरम लोहे से नहीं ठण्डे लोहे से ही काटा जा सकता है । कीचड़ को कीचड़ से नहीं, शुद्ध जल से ही धोया जा सकता है । क्रोध को क्रोध से नहीं, शान्ति से परास्त किया जा सकता है । यदि हम स्वयं मलीन होंगे, बुराइयों से सने होंगे तो दूसरों का सुधार कैसे कर सकेंगे ? यदि हमारी भीतरी उलझनों का जाला तना है तो बाहर की गुत्थियों को सुलझाया जा सकना किस प्रकार सम्भव होगा ?

इस संसार में अगणित कठिनाइयाँ मौजूद हैं । इस मानव-जीवन की अगणित गुत्थियाँ उलझी पड़ी हैं, उनका सुलझाया जाना नितान्त आवश्यक है । उलझनों के बीच, कठिनाइयों के बीच चैन कैसे मिल सकता है ? पर इन पहेलियों को सुलझाते हुए हम यह न भूलें कि अधिकांश समस्याओं की जड़

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हमारे भीतर है, उनका समाधान भी हमारे अपने ही अन्दर मौजूद है । अपने को सुधारना, अपने को बनाना, अपने को बढ़ाना ही वह उपाय है जिससे दुनियाँ सुधर सकती है । अपनी आकाँक्षाओं की दुनियाँ साकार हो सकती है और उन्नति के शिखर पर पहुँचा जा सकता है जहाँ पूर्णता ही पूर्णता है, जहाँ अभाव का, शोक का, भय का, दुःख का एक कण भी शेष नहीं रहता ।

## सच्चरित्रा अनिवार्य है-

कठोपनिषद् में वैवस्वत यम ने नचिकेता को आत्म-साधना पर प्रकाश डालते हुए कहा है-

**नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।**
**नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैव वाप्नुयात् ।।**

-१R R४

''हे शिष्य ! जिसने अपना चरित्र शुद्ध नहीं किया, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं, जिसका चित्त स्थिर नहीं रहता और जिसका मन सदैव अशान्त रहता है, वह केवल बाह्य जगत ज्ञान के आधार पर आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता ।''

चरित्र या कर्म अपना फल किस प्रकार देते हैं यह जानने की बात है ? बीज के अनुरूप ही फल होता है । पाप से आत्मा की पराधीनता दृढ़ होती है और पुण्य आत्मा को मुक्त अवस्था की ओर अग्रसर करता है । यही पाप पुण्य के फल का रहस्य है । बुरे कर्म आस्था के लिये आवश्यक हैं या नहीं यह बातें व्यवहार से स्पष्ट मालूम पड़ जाती हैं । मोटे तोर पर वासना पूर्ति से अशान्ति बढ़ती है, क्रोध से शरीर जलने लगता है और आत्मा को बैचेनी मालूम पड़ती है । लोभ आता है तो मनुष्य कितना उद्विग्न हो जाता है मानो वह नरक की अग्नि में प्रत्यक्ष जल रहा हो । इसी प्रकार संसार में जितने भी बुरे कर्म हैं वह आत्मा को कष्ट देने वाले और उसके शाश्वत गुणों के विपरीत ही होते हैं, फिर इनके रहते आत्मा अपने मुक्त रूप में प्रकट भी कैसे हो सकती है ?

मन की मलीनतायें, पाप, क्रोध, काम और इच्छायें नहीं रहती तो आत्मा को तुरन्त शान्ति मिलती है, गुण बढ़ते हैं, ज्ञान बढ़ता है, आनन्द मिलता है, शक्ति अनुभव होती है, सन्तोष होता है । इस प्रकार आत्मा को सुख की अनुभूति होती है । इससे भी मालूम पड़ता है कि काम-क्रोध आदि विकार है और वे आत्मा की पवित्रता को कलंकित करने वाले ही होते हैं । अतः इनके रहते हुए आत्म-ज्ञान की इच्छा कैसे पूर्ण हो सकती है ?

आत्मा से केवल वही इच्छायें सुखद अनुभव होती हैं जिन्हें हम पुण्य कहते हैं । सेवा, सद्धर्म, सद्भावना, प्रेम, स्नेह, त्याग और उदारता के क्षणों में आत्मा की शुद्ध इच्छा प्रकट होती है, जबकि सांसारिक भोग की इच्छायें पराधीनता और दूसरे पदार्थों का दास बनाती हैं । अतः राग-द्वेष सभी अस्वाभाविक हैं । इनके रहते हुए आत्म-स्थिरता या आत्मा के सुखों में एकाग्रता नहीं हो पाती और आत्मस्थिति हुए बिना उसका ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं । यह स्थिति ही ऐसी है जिसे कामनाओं के पहाड़ पर चढ़कर नहीं देख सकते । आत्मा को देखने के लिये तो विशुद्ध आत्म-गुण वाला बनना पड़ता है या आत्मा में ही बस जाना होता है । अतः आत्मा को जाग्रत करने का पहला महामन्त्र आत्मा को शुद्ध बनाना है ।

अध्यात्म योग की आधार शिला की व्याख्या करते हुए श्री शंकराचार्य ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है । उन्होंने लिखा है:-

**विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मानि समाधानमध्यात्म योगः ।**

अर्थात्- चित्त को विषयों से हटाकर आत्मा में समावेश करना ही अध्यात्म योग है ।

उपर्युक्त कथन से इस आन्तरिक प्रक्रिया पर पूरी तरह प्रकाश पड़ जाता है आत्मा की शुद्धि बिना आत्म-ज्ञान सम्भव नहीं है ।

जैन-धर्म में ''**तत्वाधिगम् सूत्र**'' में इस बात को और भी विवरणयुक्त करते हुए लिखा है-

**हिंसानृतास्तेयब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।**

-तत्वा ७।२

अर्थात्- प्राण-हिंसा करना, झूँठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार और परिग्रह इन पाँच पापों को छोड़ना ही व्रत है ।

बौद्धदर्शन में निवृत्ति मार्ग की चर्चा की जाती है । वह वस्तुतः आत्मोद्धार का ही पर्याय है । इसके

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लिये जिन साधनों का विस्तार किया गया है वे भी उपनिषदों के आत्म-शोधन एवं जैन-दर्शन के व्रतों के समान ही है । बौद्ध भिक्षु जब आत्म-कल्याण के लिए निवृत्ति पथ का अनुसरण करता है तो उसे भी इस तरह की पाँच प्रतिज्ञायें करनी पड़ती हैं-

**( १ ) पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।**

-मैं प्राणि-वध नहीं करूँगा ।

**( २ ) अदन्निदाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।**

-किसी की चोरी नहीं करूँगा ।

**( ३ ) कामे सुमिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।**

-व्यभिचार नहीं करूँगा ।

**( ४ ) मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।**

-मैं कभी झूँठ नहीं बोलूँगा ।

**( ५ ) सुरा-मेरेय-मज्ज पमाददट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।**

-माँस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा ।

हिन्दू धर्म में भी यह सम्पूर्ण दुराचरण तो विवर्जित है ही साथ ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से जानी गई मन की सूक्ष्म विकारमयी वृत्तियों से जिनके कारण बड़े दोष बन पड़ते हैं, निग्रह की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है जो वास्तव में दूसरे धर्मों के सिद्धान्तों की अपेक्षा तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक है । उदाहरणार्थ काम-वासना बुरी तन्तु है और वह आत्म-ज्ञान से विमुख करने वाली है पर मनुष्य केवल मनोबल के आधार पर वासना से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि परिस्थितियों का प्रभाव भी तो अपना महत्त्व रखता है । मन की काम-वासना वस्तुतः वैज्ञानिक दृष्टि से अन्नदोष है । अर्थातृ यदि आहार अनियमित है तो मन की वासना पर कभी भी नियन्त्रण नहीं किया जा सकता । इसलिये सच्चरित्रता के सिद्धान्तों को कुछ वाक्यों तक ही सीमित नहीं किया गया वरन् उनका बहुत अधिक विस्तृत विश्लेषण किया गया है । अर्थात् इन नियमों को प्रारम्भिक अवस्था, आहार-विहार, शिक्षा-दीक्षा, भाषा-व्यवहार, धर्म-कर्म आदि से ही बाँधने का प्रयास किया है । इस सर्वाङ्गीण बुद्धि-प्रक्रिया को अपनाये बिना मनुष्य जीवन के दोषों से कदापि मुक्त नहीं हो सकता ।

संसार में मनुष्य अपने क्षणिक सुख के लिये अनेक प्रकार के दुष्कर्म कर डालता है । उसे यह खबर नहीं होती कि इन दुष्कर्मों का फल हमें अन्त में किस प्रकार भुगतना पड़ेगा । मनुष्य को जो तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनके लिये किसी अंश तक समाज और देश-काल की परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हो सकती हैं, पर अधिकांशतया वह अपने ही दुष्कर्मों के प्रतिफल भोगता है । किन्तु मनष्य शरीर दुःख भोगने के लिये नहीं मिला । यह आत्म-कल्याण के लिये मुख्यतः कर्म-साधन है । इसीलिये अपनी प्रवृत्ति भी आत्म-कल्याण सा सुख प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति होना चाहिये और इसके लिये बुरे स्वभाव, बुरे कर्मों से बचना भी आवश्यक हो जाता है ।

विकास का क्रम भी इसी तरह चलता है । साधनों को प्राप्त कर यदि आत्मा विवेक का सदुपयोग करता है और उसे अच्छे कर्मों में लगता है तो आत्म अपनी शक्तियों को बढ़ाता हुआ अनुकूल साधनों को भी बनाता रहता है और अन्त में प्रारब्ध से स्वाधीन होकर अपनी पूर्ण उन्नति कर लेता है ।

**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।**
**तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ।।**

''सत्य का मुख ढका हुआ है ऐ सत्यशोधक ! यदि तू उसे प्राप्त करना चाहता है तो उस ढक्कन को खोलना पड़ेगा जिससे सत्य ढक गया है । यदि तू उसे नहीं छोड़ सकता तो सत्य ही तुझे छोड़ जायगा ।'' दोनों बातें एक साथ कदापि नहीं हो सकती । आत्म-ज्ञान को बुरे कर्मों इसी तरह ढक लिया है । उसे प्राप्त करने के लिये इस अशुद्ध अवस्था का परित्याग करना पड़ता है । सांसारिक विषय-वासनाओं की इच्छाओं पर विजय करनी ही पड़ती है ।



# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# स्व-संकेतों द्वारा आत्मनिर्माण की साधना

क्या अपने चिन्तन के क्षणों में इस तत्व पर मनन केन्द्रित किया है कि मानव की चित्तवृत्ति, स्वभाव, आदतें, भावनाएँ, प्रसुप्त आकांक्षायें किस आधार-शिला पर स्थित हैं ? मानसिक स्थितियों, उत्कृष्ट या निकृष्ट भूमिकाओं का निर्माण कौन करता है ? वासनाओं अथवा मनोविकारों को प्रदीप्त करने वाला कौन तत्व है ? अन्त:करण में विशुद्धि सजातीय पदार्थ अथवा विषैले विजातीय कण क्यों आन्दोलन उत्पन्न किया करते हैं ?

असंख्य व्यक्ति रात दिन किसी काल्पनिक शत्रु से प्रतिशोध लेने की युक्ति सोचा करते हैं । अमुक हमारा बैरी है, वह हमारी त्रुटियाँ, कमजोरियाँ, बुराइयाँ लोगों को बतलाता फिरता है, हमारी ओर वाक्य-वाण कसता है, हमें अभद्र शब्दावली सुनाता है, हम से ईर्ष्या, वैर, द्वेष करता है । ऐसे सुकुमार छुई-मुई प्रकति वाले व्यक्ति तनिक-सी बात में चिढ़ जाते हैं, विक्षुब्ध हो उठते हैं और आत्मबल को क्षय करने लगते हैं ।

कुछ व्यक्ति विगत प्रसंगों, पुरानी व्यवस्थाओं, बीते हुए कटु दृश्यों का स्मरण कर अनायास ही विक्षिप्त से हो उठते हैं । यदि ऐसा न करके ऐसा करते, तो सब ठीक हो जाता, रोगी को अमुक औषधि न देकर अमुक प्रदान करते, फलां डॉक्टर की औषधि न करा फलां की कराते तो प्रियजन की मृत्यु कदापि न होती । हमने अमुक समय बड़ी गलती कर डाली, बस उसी त्रुटि ने हमारा जीवन लेखा समाप्त कर डाला, अमुक बात हो जाती तो सम्पूर्ण जीवन स्वर्णमय हो जाता ।

एक वे भी हैं जो भ्रान्ति के कारण मिथ्या दु:खों के दर्शन किया करते हैं । वे ऐसी बातें सोचते हैं जिनका पृथ्वी तल पर कोई अस्तित्व नहीं । उनके मन: चित्र इतने विकृत होते हैं कि भिन्न-भिन्न हेतुओं में भयंकर उत्क्रान्ति मची रहती है । ये एकान्त में बड़बड़ाते हैं तथा अदृश्य वस्तुओं से तादात्म्य कर विक्षुब्ध हुआ करते हैं ।

ये सब मन: स्थितियाँ अन्त:करण की विभिन्न क्रियाएँ केवल एक तत्व पर स्थित हैं । यह महान वस्तु है-विचार । आज तक विश्व में जो महत्वपूर्ण आश्चर्य चकित कर देने वाले कार्य हुए हैं, जो कुछ उत्कृष्ट कार्य हो रहा है वह मनुष्य के उस दिव्य गुण का ही चमत्कार है जिसे मनोवैज्ञानिक विज्ञान वेत्ता विचार कहते हैं । व्याकुलता, सन्तुलन, उच्च या निम्न भूमिका क्षोभ, चित्त की सुस्थिरता, मित्र अथवा शत्रु हमें जो कुछ भी प्राप्त है, वो हो रहा है, यह सब हमारे विचारों के ही परिणाम हैं ।

जीवन में चहुँ ओर जो अन्धकार या प्रकाश, विपत्ति या प्रतिकूलता तुम्हें दृष्टिगोचर होती है वह विचारों के ही फल हैं । भूतकाल की स्मृतियाँ, काल्पनिक दु:ख, जादू की मिथ्या भावना, दूसरों की आलोचना स्वयं हमारे निजी विचारों की प्रतिच्छाया मात्र है ।

जीवन की यथार्थता हमारे विचारों पर निर्भर है । आज आप जो हैं, अपने जीवन को जिस-उत्कृष्ट या निम्न स्थिति में रखे हुए हैं, आपका अन्त:करण, इच्छाएँ, बाह्य स्वरूप, वातावरण, मानसिक सन्तुलन प्राय: प्रत्येक तत्व हमारे विचारों के परिणाम हैं । मनुष्य की सब महत्ता, जीवन के सर्वोत्तम कर्तव्य, उसके प्रबल स्थायी विचारों पर निर्भर हैं ।

**उत्पादक शक्ति का अखण्ड नियम**--कर्म हमारे विचारों के रूप हैं । सर्वप्रथम विचार हमारे मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं और जब ये विचार मन में प्रबलता से अंकित हो जाते हैं गहरी नींव पकड़ लेते हैं तदानुकूल ही बाह्य अंग-प्रत्यंग क्रियाएँ करते हैं । अन्त:करण में विचारों का एक वृहत भण्डार रहता है । वे क्षण-क्षण उत्पन्न एवं विनष्ट हुआ करते हैं । अन्त:करण में विचार के अभाव में कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं होती ।

इन विचारों के भी विभिन्न, प्रकट, भेद प्रभेद हैं । कुछ तो ऐसे होते हैं जो पानी के क्षणिक बुलबुले के अनुरूप क्षत-विक्षत होते रहते हैं । वे बनते बिगड़ते हैं तथा मन पर कोई गहरा प्रभाव

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


नहीं छोड़ते । जैसे पानी में नौका विहार के समय रेखाएँ हो जाती हैं किन्तु क्षण भर में विलीन हो जाती हैं वैसे ही इन क्षणिक विचारों की क्रिया भी है । ये आये और गये, उत्पन्न हुए और विनष्ट हुए ।

कुछ विचार दूसरों के संकेत में मन में प्रवेश करते हैं, आन्दोलन उत्पन्न करते हैं, कुछ काल तक टिकते हैं किन्तु तत्पश्चात विलीन हो जाते हैं ।

जिन विचारों से मनोभूमि में स्थायी छाप पड़ती है, जिनसे हमारे अन्त:करण में प्रबल सत्ता अंकित होती है जो पुनरावृत्ति के कारण स्वभाव के एक विशिष्ट अंग बन जाते हैं, उन्हीं विचारों का विशेष महत्व है । मानसशास्त्र इस तत्व का दृढ़तापूर्वक निर्देश करता है कि इस प्रबल विचार की सत्ता महान है–यह स्थूल वस्तु है । जो ठीक सम्यक रीति से विचार करने की कला से परिचित है वह अपना भाग्य, दृष्टिकोण, वातावरण को परिवर्तित कर सकता है जो उचित रीति से विचार बोना जानता है, विचार बीजों का पारखी है, औचित्य अनौचित्य से पूर्णता परिचित है, वह अपने भाग्य, स्वभाव तथा वातावरण को परिवर्तित कर सकता है ।

आज आप जैसे कुछ अच्छे बुरे हैं, अपने जीवन को जिस स्थिति में रखे हुए हैं, आपका अन्त:करण, इच्छाएँ, बाह्य स्वरूप, वातावरण, मानसिक सन्तुलन–सब कुछ आपके निजी विचारों के परिणाम हैं । जैसे तुम्हारे विचार होंगे तदनुकूल ही तुम्हारे भविष्य का निर्माण होगा ।

बीज के अनुसार वृक्ष की उत्पत्ति होती है । जैसा बीज बोओगे वैसा ही पौधा उत्पन्न होगा वैसा ही जीवन निर्माण होगा । सर्वप्रथम विचार मन में उत्पन्न होता है, मस्तिष्क से संयुक्त गति वाहक सूक्ष्म तन्तुओं पर उसका प्रभाव होता है । अन्त में प्रबल विचार के अनुकूल ही कार्य करने की बलवत्तर प्रेरणा की उत्पत्ति होती है । पहले विचार, तत्पश्चात क्रिया और व्यवहार रूप में परिणित–यही नियम है ।

उत्पादन शक्ति का अखण्ड नियम है कि जैसे विचार होंगे वैसा ही निर्माण होगा । जैसे हम विचार करेंगे वैसी ही आदतें बनेंगी । जैसे विचार मन:क्षेत्र में उत्पन्न होंगे वैसा ही स्वभाव का निर्माण होता जायगा । शोक सन्ताप के विचारों से चिड़चिड़ापन बढ़ता और रोने चिल्लाने से जीवन की मृदुता नष्ट होती है ।

मानव के जैसे विचार होते हैं वह वैसा ही होता है–जिस महापुरुष ने यह महा सत्य मालूम किया वह सचमुच महान दार्शनिक विचार का रहा होगा, क्योंकि विश्व के समग्र व्यक्तियों के भविष्य मनोरथ, उद्देश्य, सिद्धि एवं सफलता इसी महासत्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे हैं । हमारी समस्त आशा, श्रद्धा, लालसा, मनोवृत्ति सब के पृष्ठ भाग में यही महा सत्य-अलौकिक सत्य अर्न्तर्निहित है । यह वह सत्य है जो हमें उत्पादक शक्तियाँ प्रदान करता है ।

उत्पादन शक्ति का अटल नियम यह है कि जिन विचारों पर हम दृढ़तापूर्वक विश्वास करते हैं, जिन के पीछे बलवत्तर प्रेरणा प्रस्तुत रहती है, जो विचार बारम्बार मस्तिष्क में उठता है तथा जिसका पुनरावर्तन चलता रहता है उन्हीं के अनुसार हमारा जीवन ढल जाता है । बात यह है कि अपने आप को जैसा मानने लगते हैं, अपने बारे में जो दृढ़ चिन्तन कर लेते हैं, जिन विचारों में संलग्न रहते हैं, क्रमश: वैसे ही हो जाते हैं । जैसे हमारे आदर्श होते हैं, ठीक उन्हीं का प्रतिबिम्ब हमारे मुखमण्डल पर द्युतिमान हो उठता है और कुछ काल पश्चात् हम वैसे ही हो जाते हैं ।

## संकेतों द्वारा परिवर्तन

यदि मनुष्य अपने आप को स्वस्थ, निरोग, सामर्थ्यशील, होने की मानो निरन्तर इसी भावना का संकेत अपनी आत्मा को देता रहे, इसी विचार में पूर्ण निश्चय एवं विश्वास भर कर अपने आपको इसी की सूचना करे तो वह समर्थशील बन जावेगा । आवश्यकता केवल निरन्तर सूचना या संकेत देने की है । जितने परिपुष्ट संकेत होंगे उतना ही महान परिवर्तन, उत्कृष्ट तत्वों की सिद्धि होगी ।

संकेत क्या है ? पुष्ट एवं दृढ़ विचार, स्पर्श, ध्वनि, शब्द, दृष्टि तथा विभिन्न आसनों एवं क्रियाओं द्वारा किसी के मन पर प्रभाव डालने तथा अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


इच्छा द्वारा कार्य सम्पन्न कराने का नाम संकेत करना है । संकेत ऐसे वाक्यों से किया जाता है जिनमें अपूर्व दृढ़ता, गहन, श्रद्धा, शब्द-शब्द में शक्ति भरी रहती है । जिज्ञासु बारम्बार कुछ शब्दों, वाक्यों तथा सूत्रों को लेता है, बाररम्बार मस्तिष्क में उठाता है, उन पर विचार क्रिया दृढ़ करता है । इस तरह बार-बार करने से कुछ काल पश्चात् ये विचार स्थायी स्वभाव में परिणित हो जाते हैं । मन को जिस प्रकार का प्रबोध बार-बार दिया जाता है कालान्तर में वही उसकी स्थायी सम्पत्ति हो जाती है । मन हमारे सम्पूर्ण कार्यों का ड्राइवर है, यह प्रचण्ड शक्ति वाला यन्त्र है । विचारों की उत्पत्ति, परिवर्द्धन करने का कार्य भी इसी द्वारा संचालित होता है, अत: संकेत का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है ।

मन का प्रवाह, उसकी विभिन्न क्रियाएँ तीव्रगति से चलती हैं । ये विभिन्न क्रियाएँ हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन, एवं बुद्धि इत्यादि प्रत्येक मनोभाव की अधिष्ठाता हैं । बिना इसके मनुष्य का शरीर किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता । जब तक संकेत दूसरे के मानसिक संस्थान के एक विशिष्ट भाग नहीं बन जाते तब तक उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता । यदि हमारा मन उन्हें स्वीकार कर ले, उन से तादात्म्य स्थापित करले, अपना व्यापार, व्यवसाय, क्रिया उनके अनुसार करने लगे तो वे संकेत सफल हो जाते हैं ।

ये संकेत हमारे व्यक्तित्व के एक भाग बन जाते हैं, मानसिक क्षेत्र में दृढ़तापूर्वक जन्म कर कठोर हो जाते हैं । तत्पश्चात ये अपनी प्रतिक्रियाएँ आरम्भ करते हैं । ये संकेत शक्ति, सामर्थ्य के तत्व हैं । अन्त:करण में आग्रहपूर्वक ये संकेत नवीन संस्कार उत्पन्न कराते हैं । पुराने संस्कारों को नष्ट इन्हीं के द्वारा किया जा सकता है ।

जैसे कैस्ट्रायल पेट में प्रवेश करने के उपरान्त विजातीय तत्व को निकालकर बाहर कर देता है उसी प्रकार मन:क्षेत्र में प्रवेश कर संकेत, महान आन्दोलन उत्पन्न कर देते हैं । पूर्व संस्कारों तथा इन नवीन संकेतों में एक संघर्ष उत्पन्न होता है । निश्चय बल के अनुसार इस युद्ध में सफलता मिलती है । यदि हमारी पूर्व भावना बलबती हुई तो ये संकेत निष्प्रयोजन सिद्ध होते हैं, यदि इनके पीछे दृढ़ निश्चय विश्वास की बलवत्तर प्रेरणा विद्यमान रही तो इन संकेतो के अनुसार मानसिक निर्माण कार्य प्रारम्भ होता है ।

**संकेत कहाँ प्रभाव डालता है**–हमारे मन के दो स्वरूप है–एक चेतन तथा दूसरा अचेतन से निर्मित है । मन की शक्ति इन दोषों पर ही निर्भर है । जिन्हें अपनी बुद्धि इष्ट है उन्हें उस स्थान के कोषों की उन्नति करनी चाहिए । चेतन हमारी बौद्धिक प्रगतिशीलता पर निर्भर है । जो कार्य हम नित्य प्रति सोच समझ कर करते हैं, जिसके पीछे चेतनता निरन्तर कार्य करती है, जिनका प्रभाव हमारे शरीर पर सीधा पड़ता है वे सब कार्य इस चेतन मन द्वारा सम्पन्न होते हैं । हम जो काम सोच विचार कर, आगा पीछा सोचकर करते हैं वह यहीं से होता है । यह मन हमारी जाग्रतावस्था तथा चेतनता पर आश्रित है । बिना चेतन मन की आज्ञा के हमारी चेतन शक्तियाँ कार्य नहीं करेंगी ।

अचेतन मन हमारी चेतना का दास नहीं । वह तो सर्वथा उन्मुक्त स्वाधीन है । बिना चेतना की आज्ञा तथा आदेश के वह जो चाहे कर सकता है । वास्तव में मन का यह भाग हमारे बिल्कुल अधिकार में नहीं है, वह जो कार्य किया करता है अपनी मर्जी से और कभी-कभी तो वह कार्य हमारी इच्छा के विपरीत होते हैं । हम नहीं चाहते कि वे हों, उसमें हमारी कामना, निष्ठा, सहयोग तनिक भी नहीं होता तब भी यह अचेतन मन निज मनमानी किया करता है ।

अचेतन मन का एक विशिष्ट गुण यह है कि यह सोते जागते प्रत्येक अवस्था में कार्यशील रहता है । चेतन मन को हम जिस तरह चाहें दिशा परिवर्तन करा देते हैं किन्तु जब हम एक को आदेश दिया करते हैं, तो द्वितीय निज मनोनुकूल जो चाहे करता ही रहता है । निश्चेष्ट चुपचाप नहीं बैठता, न कभी थकता ही है । ऐसा प्रतीत होता है मानो यह हमसे निर्देश करता हो, "अपना काम करो, हमें अपना कार्य करने दो" अचेतन मन की उच्छृंखलता सचमुच अद्‌भुत है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अचेतन मन ही परोक्ष तत्वों का केन्द्र स्थान हैं । हमारी प्रेरणाएँ भी यहीं से उत्पन्न होती हैं । यद्यपि ये दोनों ही हमारे चेतन मन द्वारा प्रभावित हैं किन्तु इनका केन्द्र स्थान अचेतन जगत ही है इसी प्रकार अचेतन मन हमारी मूल प्रवृत्तियों तथा अनुभवों से अखण्ड रूप में सम्बद्ध है ।

# हमारी दबी हुई मनोवृत्तियाँ

हमारी अनेक टूटी फूटी इच्छाएँ, प्रसुप्त वासनाएँ अपूर्ण वृत्तियाँ इसी अव्यक्त मन में छुप जाती है । जब कभी कोई बात वस्तु जगत में पूर्ण न हुई या अवरोध उत्पन्न हुआ तो ये सर्वथा गायब ही हो जाय । ये कभी लुप्त नहीं होतीं प्रत्युत जब तक जाग्रत मन का प्रभुत्व अधिक होता है, कुछ काल के निमित्त एक ओर चुपचाप बैठ जाती हैं । जैसे एक शक्तिशाली सम्राट के राज्य में उसके आतंक में प्रतिद्वन्द्वी दब जाते हैं, कुछ द्वन्द्व नहीं करते किन्तु उसका आतंक हटने से पुनः विरोध करते हैं, उसी प्रकार जाग्रत मन के प्रभुत्व रहने तक तो ये कुछ नहीं बोलतीं, चुपचाप पड़ी रहती हैं । किन्तु उसके प्रभुत्व के क्षीण होते ही प्रसुप्त चित्त वृत्तियाँ, एक दम शक्तिशालिनी हो उठती हैं, अति सूक्ष्म रूप धारण कर लेती हैं । फिर तो जाग्रत एवं इन प्रसुप्त वासनाओं में भयंकर संघर्ष प्रारम्भ होता है । व्यक्त तथा अव्यक्त के वैषम्य से ही मनोवेगों की उत्पत्ति होती है ।

**अर्न्तद्वन्द का कारण**—सामाजिक रूढ़ियाँ इतनी जटिल तथा सख्त हैं कि हमारी उचित अनुचित इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं । अपयश, सामाजिक टीका टिप्पणी के विचार से हम निकृष्ट वासनाओं को छिपाना चाहते हैं । हमारी विवेक बुद्धि दुर्वासनाओं को व्यक्त नहीं होने देती । अतः ये वासनाएँ चेतन मन से अचेतन में जा छुपती हैं । ये जब तक परितृप्त न हो जाँय तब तक शान्ति कदापि न होगी । अतएव रेंगती हुई, ये अव्यक्त मन में बीज रूप से छुपी रहती हैं । प्रसुप्तावस्था में, चेतन मन में प्रविष्ट हो जाती है और हमारी विवेक बुद्धि से द्वन्द्व करती हैं । प्रत्येक वासना परितृप्ति का प्रयत्न करती है । अतः जब तक वह पूर्णतः तृप्त नहीं हो जाती लुप्त नहीं होती, छोटी अथवा बहुत मात्रा में वर्तमान रहती हैं, कभी क्षीणतर कभी प्रबलतर हुआ करती है ।

**स्वप्न में संघर्ष**—अव्यक्त की प्रसुप्त वासनाएँ समाज के डर से स्वप्न में निरन्तर निकला करती हैं । स्वप्न चेतन अथवा व्यक्त मन तो निष्क्रिय हो जाता है, किन्तु अव्यक्त मन रुकी हुई वासनाओं को आगे बढ़ाता है । ये क्रान्तिकारी वासनाएँ स्वप्न में भयंकर तांडव करती हैं तथा अनुकूल परितृप्त पाती हैं । ज्यों-ज्यों परितृप्ति का मार्ग ग्रहण करती हैं त्यों-त्यों उन्हें एक निर्धारित मार्ग अवलम्बन करना पड़ता है । विशिष्ट मार्ग की बागडोर अहंकार के आधीन है । अहंकार विवेक बुद्धि (चेतन मन) के आधीन पड़ता है । अतः प्रसुप्त वासनाएँ रेंगती आती हैं पर डरती हैं । इस प्रकार चेतन जगत में चुपचाप चली आने पर अहंकार अपने अनुकूल वातावरण के अनुसार अव्यक्त वासनाओं को परितृप्त या नियन्त्रित करता है । स्वप्न में देशकाल परिस्थिति की मर्यादा तोड़कर जो वासनाएँ किंचित काल के लिए शान्त होना चाहती हैं वे पुनः अहंकार द्वारा कुचल दी जाती हैं । जब मनुष्य का चेतन मन अचेतन का तिरस्कार करता है तो व्याधि की उत्पत्ति होती है ।

**पूर्णमतैक्य हमारी वास्तविक स्थिति है**—आज के समाज का सभ्य मनुष्य जिन वास्तविक मनः स्थिति से दूर जा पड़ा है । उसके मनःक्षेत्र में भावनाओं तथा आकांक्षाओं के अनेक खण्डहर, कच्चे तथा टूटे हुए अंश पड़े हैं । अनेक वासनाएँ अतृप्तावस्था में ही कुचल दी गई हैं, कितनी ही हसरतों, आशाओं, दबी हुई भावनाओं पर तुषारापात हो चुका है । उसकी आज की आकांक्षाएँ तो उन पुरातन आकांक्षाओं की छाया मात्र रह गई हैं ।

**आदि काल का पूर्व पुरुष**—देश काल, समाज के बन्धनों से मुक्त था । सभ्यता का मिथ्याडम्बर, समाज के वज्र जैसे कठोर नियम, लोक निन्दा का भय, सम्प्रदाय की थोथी उलझनें, उचित अनुचित की सीमा बन्धन या कठोर विवेक का नियन्त्रण न होने के कारण उसकी भीतरी रागात्मक प्रवृत्तियों,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


वासनाओं तथा मनोविकारों का बाह्य सृष्टि के साथ उचित सामंजस्य था । अव्यक्त वासनाओं को पूर्ण परितृप्ति का खुला अवसर मिलता था । प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हास, उत्साह, आश्चर्य, करुणा इत्यादि मनोवेगों का प्रवाह अबाध पूर्ण उन्मुक्त था । उनमें विवेक सत् असत् तथा प्रयत्न की अनेकरूपता का स्फुरण नहीं हुआ था । विशुद्ध सुख की अनुभूति होने पर दाँत निकालकर, हँसकर, कूदकर सब व्यक्त कर दिया था । दु:ख की अनुभूति पर हाथ पांव पटककर, रोकर, चिल्लाकर मन की चोट पर मरहम लगा लिया जाता था । दण्ड का भय अनुग्रह का लोभ या शासन का नियन्त्रण न होने के कारण मनोभाव स्पष्ट रूप से व्यंजित होते थे । इस उन्मुक्त काल में हमारे पूर्व पुरुष के मानसिक संस्थान में पूर्ण मतैक्य या समस्वरता विद्यमान थी । व्यक्त मन के पूर्ण मतैक्य का नाम ही मोक्ष है । यही अवस्था पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द, पूर्ण प्रसन्नता की मन:स्थिति है ।

**व्यक्ताव्यक्त के संघर्ष का प्रतिफल**—अनुभूति के द्वन्द्व से ही सभ्यता का जन्म होता है । उत्कृष्ट कहलाने वाला प्राणी उचित अनुचित का द्वन्द्व लेकर जन्म लेता है । ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता है, मानव जीवन की जटिलता, इच्छा की अनेकरूपता तथा विषय बोध की विभिन्नता बढ़ती है । मनुष्य का विवेक तथा औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान विकसित होता है, शुभ-अशुभ, यश-अपयश की भावना के कारण मनुष्य का आत्म गौरव उद्दीप्त हो उठता है । तत्पश्चात् समाज का नियन्त्रण बढ़ता है । और देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार अभद्र, प्रतिकूल समाज में से असम्बद्ध वासनाएँ कुचल दी जाती हैं ।

**मानसिक ग्रन्थियों का निर्माण**—समाज में प्रचलित नैतिक वातावरण के कारण दबी हुई वासनाएँ अव्यक्त मन में बैठी रहती हैं । विवेक उन्हें दबाये रहता है, इस प्रकार की प्रत्येक वासना दब कर एक मानसिक ग्रन्थि या गुत्थी बन जाती है । ऊपर आकर परितृप्ति की बाट देखती रहती है । जब विवेक का नियन्त्रण न्यून होता है तो ऊपर आती है और परितृप्ति का प्रयत्न करती है । मनोवैज्ञानिकों ने हमारी सब गालियों, मजाक, ठठोली, नाच, अश्लील व्यवहार, स्वप्न उन्माद, कायरता को इन्हीं मानसिक ग्रन्थियों के फलस्वरूप माना है ।

**डॉक्टर फ्रायड के क्रान्तिकारी विचार**—प्रसुप्त वासनाओं तथा मानसिक ग्रन्थियों के विषय में पाश्चात्य विद्वान डॉक्टर फ्रायड ने हमारी समस्त क्रियाओं को अव्यक्त की प्रसुप्त वासनाओं के फलस्वरूप माना है । इसमें काम वृत्ति को उन्होंने सब से सबल ग्रन्थि माना है । शिशु का माता के स्तन से दुग्ध-पान से लेकर कवियों की कवित्व-शक्ति प्राय: सब ही को उन्होंने दबी हुई अव्यक्त की कामवासनाओं के फलस्वरूप माना है । मनुष्य की काम वृत्ति या काम पिपासा, शान्त न हो सकी, उसका प्रवाह रुद्ध हो गया और अव्यक्त में बैठकर वह ग्रन्थि बन गया । इन प्रसुप्त वासना को जब अवसर मिलता है या जब विवेक ढीला पड़ता है, व्यक्त मन में आ जाती है और विभिन्न प्रकार के विकार तथा विचित्र मानसिक तथा शारीरिक चेष्टाओं से प्रकट होती हैं, डॉक्टर फ्रायड ने अनेक स्वप्नों का विश्लेषण करके सिद्ध किया है कि मन में पड़ी हुई गाँठ के फलस्वरूप ही ऐसी विचित्र चेष्टाएँ होती हैं ।

**मानसिक ग्रन्थियों का प्रभाव**—मानसिक ग्रन्थियों के अनेक प्रकार हैं । जितनी भावनाएँ हैं उतनी ही प्रकार की ग्रन्थियाँ बन सकती हैं । कुछ ग्रन्थियाँ तो प्राय: प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं कुछ किसी विशिष्ट व्यक्ति में ही होती हैं इसी प्रकार कुछ ग्रन्थियाँ सबल तथा साधारणत: निर्बल होती हैं । कुछ ग्रन्थियाँ आनन्ददायक तथा कुछ दु:खदायिनी होती हैं । जब मानसिक ग्रन्थि सबल हो जाती है तो उसकी शक्ति रूपान्तर से व्यक्त होने का उद्योग करती है । साधारण विवेक को तोड़कर प्राय: वह बाहर निकल पड़ती है । कभी-कभी इसका पागलपन होता है । अनेक अद्‌भुत चेष्टाएँ, मन की प्रतिक्रियाएँ तथा स्वप्न चेतना का नियन्त्रण तोड़ कर मन की दबी हुई वासनाओं के प्रकाशित होने के प्रयत्न मात्र हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

## १२.६ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

मानसिक ग्रन्थियों के प्रभाव अन्तर्मन से चेतन मन पर दैनिक व्यवहार में चलता रहता है । एक नवयुवक नवयुवती के प्रेमपाश में आबद्ध होता है । प्रथम दृष्टि मिलने में ही उसके अन्तर्मन में काम भावना जाग्रत हो उठती है । नैतिक बुद्धि उसके मार्ग में बाधा उपस्थित करती है । देश, काल, परिस्थिति को देखकर वह उसे दबा डालता है । वस मानसिक-संस्थानों में एक गाँठ सी पड़ जाती है । अन्तर्मन से उस ग्रन्थि से संयुक्त कामोत्तेजक विचार उसके चेतन में सम्पूर्ण क्षेत्र को आवृत्त कर लेते हैं । शनैः शनैः उसके चेतन मन पर उन्हीं विचारों का आधिपत्य स्थिर हो जाता है जिनकी जड़ें अन्दर बैठी हुई हैं । उसको सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओं के पीछे कामवासना की झलक दीखती रहेगी । उस पर बीतने वाली प्रत्येक घटना, मस्तिष्क में आने वाले सब विचार उसी ग्रन्थि में जुड़ते जायेगें । अन्तस्थल की भूमि पर ये विचार उस ग्रन्थि से जुड़ कर अंकुरित, पल्लवित एवं फलित हो उठेंगे । ये वृक्ष काँटेदार या मधुर दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं । यदि ये काँटेदार हैं तो इनका उन्मूलन करने से मनःशान्ति प्राप्ति होगी । ग्रन्थियों की यह परवशता आज के सभ्य मनुष्य को पिंजरबद्ध पक्षी बनाये हुए है ।

**मानसिक ग्रन्थियों से ग्रस्त व्यक्तियों के उदाहरण**—हमारे दैनिक जीवन के अन्तर्द्वन्द अनेक घटनाओं को लेकर, ग्रन्थियों का निर्माण करते हैं । हमारे एक अध्यापक मित्र की पत्नी को स्नान व धोने का रोग हो गया था । वे प्रत्येक वस्तु को तनिक छू जाने पर धोने लगतीं । शौच के पश्चात् सब वस्त्र धोतीं । बाल कटा डाले । नल पर मिट्टी लगाई । खाने-पीने की तमाम वस्तुओं को बार-बार धोतीं उन्हें यह बहम हो गया कि अन्य वस्तुएँ अपवित्र हैं । बहम की अनिष्टकारी ग्रन्थि की छानबीन करने पर प्रतीत हुआ कि एक बार अनजाने में महतर की झाड़ू से छू गईं थीं । अपवित्रता की ग्लानि क्रमशः एक सबल ग्रन्थि बन गई । उसी की यह प्रतिक्रिया थी ।

डॉ० दुर्गाशंकर जी ने एक ऐसे व्यक्ति का रोचक वृतान्त लिखा है, जिसकी मुट्ठी बन्द रहती थी । यह व्यक्ति कभी-कभी दो तीन घण्टे पश्चात् मुक्का मारने का उपक्रम करते । इस चेष्टा से यह बड़े क्षुब्ध थे । मानसिक विश्लेषण में उनसे अपने जीवन की विशेष घटनाओं की स्मृति पट पर लाने को कहा गया । बड़े प्रयत्न के उपरान्त उन्हें बहुत दिन पूर्व की घटना याद आई । उनका किसी ने बड़ा अपमान किया था । उसका स्मरण करते ही इनका शरीर जकड़ जाता था । इस विद्वेष-भावना की ग्रन्थि बन कर अव्यक्त मन में बैठ गई और मुट्ठी बँधी रहने लगी । यह घटना तो मस्तिष्क के किसी कोष्ठ में विस्मृति के गर्त में प्रविष्ट हो गई किन्तु उसकी प्रतिक्रिया मुट्ठी बँधी रह कर हुई । अन्तःकरण से विरोधी भावना को हटाने पर कुछ दिन बाद वह पूर्ववत हो गये ।

कुछ दिन पूर्व मैं हरिद्वार में एक ऐसे व्यक्ति से मिला जो हर की पैडी पर बिना गंगा में प्रवेश किये लोटे से स्नान कर रहा था । देखकर बड़ी उत्सुकता हुई । पूछने पर कहने लगे कि जल में हड्डियाँ इत्यादि पड़ी हैं अतः दूर से स्नान करना ठीक है । अधिक जान-पहचान हो जाने पर उन्होंने निम्न वृतान्त सुनाया-"बचपन में मैं कुछ मित्रों के साथ नदी पर सैर करने गया । कुछ लड़के लँगोट बाँधकर जल में तैरने उछल कूद कर अनेक क्रीडायें करने लगे । एक ने कहा-आओ न दूर क्यों खड़े हो ? इतने में पीछे से आकर दूसरे साथी ने मजाक में उठाकर गहरे जल में पटक दिया । मैं बहुत छटपटाया, नाक, मुँह और कान में पानी भर गया । जब पुनः ठीक हुआ तो मैं पानी के पास जाने में डरने लगा ।"

मिस्टर मायरू ने अनेक ऐसे स्वप्नों के अध्ययन प्रस्तुत किए हैं, जिनकी जड़ें मन की किसी ग्रन्थि से ही प्राप्त हुई हैं । एक नवयुवती ने स्वप्न में देखा मानो वह सुनहरे जूते पहने हुए है । स्वप्न विशेषज्ञ विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि उसने एक दिन पहले अपने प्रेमी को वैसे जूते पहने देखा था ।

एक मनःरोगी मेरे पास आया और उसने अपने पिता के क्रूर व्यवहार की कथा रो-रोकर सुनाई । उसने मुझे बताया कि यद्यपि वह पिता को बहुत

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आदर की दृष्टि से देखता है, किन्तु पिता उससे क्रुद्ध ही है । पिता का रूखा व्यवहार उसके अन्तर्मन में ग्रन्थि बन गया । कुछ दिनों पश्चात वह पुनः मेरे पास आया तो मुझे वह फीका-सा प्रतीत हुआ । उसने बताया कि ''मैने आज दो व्यक्तियों को बड़ी बुरी तरह सताये जाते देखा है । उसी का प्रभाव मुझ पर हुआ है । मन भारी-भारी सा हो रहा है ।'' विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि उस दिन प्रातः काल उसके पास उसके पिताजी का पत्र आया था जिसमें उस पर अनेक दुर्व्यवहारों, कुवचनों की मार पड़ी थी । मन भारी-भारी सा होने के कारण तो यह कटु पत्र था किन्तु उसका आरोप दूसरों को अपमानित होते देखने पर किया गया ।

कितनी बार ऐसा देखा है कि काम वासना की ग्रन्थि से ग्रस्त व्यक्ति अपने आपको ब्रह्मचर्य के नियमों का महात्म्य समझता है तथा बाह्य दृष्टि से स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखता है ।

कितने ही व्यक्तियों के अव्यक्त मनःक्षेत्र में हीनत्व की ग्रन्थि बन जाती है । ऐसा व्यक्ति अपने आपको नगण्य, दीन, हीन मानता है । सभा में बोलते शरमाता है, दूसरों से नजर मिलाते डरता है और किसी बड़े दोषी की तरह छिपा-छिपा फिरता है ।

## संकेत का प्रभाव कहाँ पड़ता है ?

संकेत का प्रभाव हमारे अव्यक्त या अचेतन मन पर जहाँ मानसिक ग्रन्थियों का जाल सा बिछा रहता है पड़ता है । वास्तव में अव्यक्त ही हमारी शक्ति का भण्डार है । अव्यक्त ही अद्भुत शक्तियों को कम संख्या में पुरुष जानते हैं । इसमें अन्तर्निहित गुत्थियों का मूलोच्छेद तथा नवीन सुख, उत्साह प्रदायक उत्कृष्ट ग्रन्थियों का निर्माण ही सजेशन या संकेत का मुख्य कार्य है । संकेत द्वारा विपरीत ग्रन्थियों को सहज ही हटाया जा सकता है । यद्यपि भौतिक जगत में प्रसुप्त वासनाओं की परितृप्ति नहीं होती किन्तु संकेत द्वारा उनकी प्रबलता हट जाती है । वह शीघ्र ही मनोभूमि को साफ छोड़ देती है । तत्पश्चात नवीन ग्रन्थियों को इच्छानुसार बीजारोपण किया जा सकता है ।

मनोविश्लेषण में इसी अव्यक्त से प्रसुप्त वासनाएँ उठाई जाती हैं । चिकित्सक अव्यक्त का ही सूक्ष्म विश्लेषण करता है । रोगी स्वयं ही जानता कि उसके इस निम्न मानसिक स्तर में कौन-कौन सी टूटी-फूटी भावनाएँ दबी पड़ी हैं ।

अव्यक्त बड़ा सतर्क है । वह किसी महत्वपूर्ण वस्तु को भूलता नहीं । सब बातें चुपचाप नोट करता रहता है । तुम चाहे किसी बात को भूल जाओ किन्तु वह अव्यक्त में इतनी बैठ जाती हैं कि आसानी से नहीं भुलाई जा सकती । अव्यक्त मन कभी सोचने वाला पहरेदार है । तुम कभी इसकी क्रियाओं को नहीं पहचान सकते ।

जिन विचारों का प्रभाव तुम्हारे मन पर पड़ता है वे तुम्हारे व्यक्त मन पर तो असर डालते ही हैं, अपना कुछ अंश अव्यक्त पर भी छोड़ जाते हैं । अपने विषय में, अपनी शक्तियों, अपनी योग्यता सामर्थ्यों में तुम जितना विश्वास रखते हो, उसी प्रकार की वृत्ति स्थिर होती है । तुम्हारे मन प्रदेश में जो भावनाएँ प्रवेश करती हैं उन्हीं के अनुसार तुम्हारी ग्रन्थियाँ बनती हैं ।

**व्यक्त मन का पुनः निर्माण**—बुरे वातावरण, कठोर व्यवहार परिस्थिति के कारण हमारे अव्यक्त मन का निर्माण उचित रूप में नहीं हो पाता । हम उसमें तुच्छता, नीचता या दीनता की ग्रन्थियाँ अनजाने में ही बना डालते हैं । जब माँ अपने पुत्र को कहती है ''तू कपूत है ! तेरा भाग्य खराब है । तुझे संसार में कोई न पूछेगा ।'' तो ये ही विचार अन्तर मन के गहरे भाग में उतर जाते हैं, वहीं इनकी ग्रन्थि बन जाती है । यही कारण है कि हजारों युवक आत्महीनता की ग्रन्थियों से ग्रसित रहकर अपनी नसीब फोड़ा करते हैं ।

दूषित संकेतों से अव्यक्त मन का निर्माण भी दूषित होता है । यदि तुम विरोधी विचार, प्रतिकूल परिस्थिति, अपनी त्रुटियों पर मानसिक क्रिया केन्द्रीभूत करोगे तो वे ही अमिट रूप से मानसिक स्तर पर अंकित हो जायेंगे । हमारे अव्यक्त मन के संसार की रूपरेखा हमारे विचारों द्वारा ही निश्चित होती रहती है ।

तुम्हारे अव्यक्त मन की रूपरेखा के अनुसार

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ही अन्य व्यक्ति तुमसे द्वेष अथवा प्रेम करते हैं तथा जगत की विविध वस्तुएँ पास या दूर हो जाती हैं । जो कार्य तुम करते हो उसमें अव्यक्त का योग अवश्य रहता है । दिन भर तुम अपने अव्यक्त में कुछ न कुछ बातें स्थिर किया करते हो तुम्हारे वातावरण से भी भव्य या कुत्सित अन्त:करण में अनेक मानसिक चित्रों की रचना हुआ करती है ।

वह मनुष्य धन्य है जिसने अपने अव्यक्त में अनेक भव्य शुद्ध एवं पवित्र चित्रों की रचना कर रखी है । जिसकी मनोभूमि स्वभाव से निष्पाप एवं भद्र है । जो अपने भविष्य के विषय में अनेक सुनहरे चित्रों का निर्माण किया करता है, जो दुर्बलता को मन:क्षेत्र में प्रवेश नहीं होने देता ।

**वांछनीय मन:स्थिति कैसे उत्पन्न कर सकते हैं ?**—जिन भावनाओं, विचारों, कल्पनाओं का हम दृढ़तापूर्वक चिन्तन करते हैं, जिन आदर्शों में हम अधिक काल तक विचार करते हैं वे अव्यक्त में उतर जाते हैं । बारम्बार चिन्तन करने से ये स्थिरता एवं गहनता धारण करते हैं । यदि दो एक बार उन्हें अन्तर्निहित कर विचार क्रिया को छोड़ दिया जाय, तो पुन: उनका क्षय हो जाता है तथा मनुष्य पूर्ववत् दयनीय स्थिति में पड़ा रह जाता है ।

जैसे नदी में पुल बाँधते समय प्रत्येक पत्थर को दृढ़ता से जमाया जाता है और प्रयत्नपूर्वक हटने नहीं दिया जाता, उसी प्रकार स्मृति पट पर एक शुभ चित्र अंकित किया जाय और तत्पश्चात् उसे मिटने न दिया जाय । उसकी रूपरेखा और भी अधिक स्पष्ट और भी रंगीन बनाई जाय । मन:प्रदेश में जो सुनहरी, आशापूर्ण तरंग भोर की सूर्य-रश्मि की तरह उदित होती है, आत्मा में जिन महत्वाकांक्षाओं का स्वर्णिम प्रकाश होता है जिन श्रेष्ठ भावनाओं का उदय होता रहता है वे मर न जाँय, उनकी सिद्धि की अग्नि शान्त न हो जाय ।

मन के समुद्र में जिन तरंगों का आदान-प्रदान चलता रहता है वे सत्य हैं, तुम्हारी उच्चता की प्रतीक हैं । तुम्हारी आत्मा में जो दिव्यता है, उसी के फलस्वरूप इन महत्वाकांक्षाओं का उदय होता है । इन्हीं दिकरूपों को लेकर तुम्हें सफलता का विशाल महल तैयार करना है । ये तुम्हारी कार्य-सम्पादिका तुम्हारी पथ प्रदर्शक, तुम्हारी सर्वोत्तम सहायिकाएँ हैं ।

मन:प्रदेश में तुम्हें उच्च आदर्श के बीज बोने चाहिए । उन्हीं के अंकुर इधर-उधर फैलें उन्हीं का पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होने का अवसर प्रदान करना चाहिए ।

**अपने अन्तर्जगत में प्रवेश करो**—चर्म चक्षुओं को मूँदकर अन्तर्पट खोलो । अपनी अन्तरात्मा का निरीक्षण करो, देखो वहाँ कौन-कौन से असत् विचार, दुर्बल मन्तव्य, निर्बल कल्पनाओं के घास-फूँस उग आये हैं ? कौन-कौन सी वे चिन्ताएँ तुम्हें उद्विग्न कर रही हैं ? कौन-सी शूलमयी स्मृति तुम्हें क्षुब्ध बना रही है । हजारों भ्रान्तियों भय, संशय इस प्रदेश में मिलेंगे, ये तुम्हारी आत्मशक्ति का क्षय करते हैं, तुम्हारे शरीर को जर्जर एवं मन को निर्बल बनाते हैं । ये व्यर्थ के भूत तुम्हें भीषण प्रतीत होते हैं । इनका दृढ़ता से विरोध करो । तुम्हें इनसे डरना नहीं है, व्यग्र या किंचित चलायमान नहीं होना है । तुममें इनकी शक्ति है कि इन शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकते हो ।

एक वैज्ञानिक कहता है-''जब मैने अपने मन:क्षेत्र में प्रवेश किया कि अनेक उलझन, मिथ्या कल्पनाओं की घास उगी हुई है । जहाँ तहाँ कुत्सित एवं अपवित्र विचारों के काँटेदार झाड़ खड़े हैं । दुर्भाग्य एवं परिस्थिति की आँधी चल रही है । असंख्य जन्म-जन्मान्तरों की वासनाएँ तूफान मचा रही हैं । दुश्चिन्ताएँ, अनिष्ट कल्पनाएँ, निराशा के काले बादल घिर रहे हैं । मैने अनुभव किया कि संसार के थोथे झमेलों, व्यर्थ के धन्धों में फँसकर अशान्ति की तरंगों में इधर-उधर मारा हुआ भटक रहा हूँ । क्षण-क्षण उद्विग्नता और उत्तेजना का अनुभव कर रहा हूँ ।

तुम स्वयं अपना अध्ययन करो । तुम्हारे अन्त: करण का गर्भभाग किन तत्वों से परिपूर्ण है । किस-किस कोने में अन्धकार है ? कौन-सी विषम बातें तुम्हें परेशान कर रही हैं ? तुम्हारी पीड़ा के लिए कौन जिम्मेदार है ।

जब तुम अपना अध्ययन कर चुको तो स्वयं से प्रश्न करो कि तुम किन-किन दुर्बलताओं को

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अपने स्वभाव से निकाल बाहर करना चाहते हो ? किन-किन गुणों, तत्वों को उत्पन्न करना चाहते हो ? तुम्हारी आकांक्षाएँ, तुम्हारी कल्पनाएँ क्या-क्या हैं ? तुम किस ओर बढ़ना चाहते हो ? तुम्हारे सुनहरे स्वप्न कौन-कौन से हैं ?

तुमने अपना आदर्श निश्चित कर लिया है अब तुम संकेत के लिए तैयार हो । इसी महाशस्त्र के द्वारा तुम अपने आदेशों को फलीभूत कर सकोगे ।

**संकेत की अद्‌भुत शक्ति**—संकेत हमारे वातावरण में चारों ओर फैले हैं । जिस प्रकार हम हवा में साँस लेते हैं, उसी प्रकार अपने वातावरण में से संकेत खींचा करते हैं । प्रात:काल से सांयकाल तक हम अपने अव्यक्त को, अपनी आत्मा को, अपनी शक्तियों को कुछ न कुछ आज्ञा देते रहते हैं । ये सब हमारे खुद के लिए है, अत: इन्हें स्वसंकेत कहना चाहिए ।

**संकेत के स्वरूप**—हमारे अव्यक्त प्रदेश में निकृष्ट वातावरण की सृष्टि अनेक वर्षों के संकलित निकृष्ट संकेतों के परिणाम स्वरूप ही हो जाती है । अनजाने में हम अपनी आत्मा पर अनुचित प्रभाव डालकर उसे इतना निर्बल बना डालते हैं कि उसके वास्तविक गुण का क्षय हो जाता है । ''मैं इस कार्य को कर भी सकूँगा या नहीं ।'' –''मुझे शायद इतनी ताकत नहीं कि इस प्रतिकूलता को सहन कर सकूँ–मैं मामूली सा आदमी हूँ''–इस प्रकार के अनेक दुर्बल संकेत दे दे कर हमने अव्यक्त प्रदेश में विरुद्ध वातावरण की सृष्टि कर ली है । हम नहीं जानते कि स्वयं अपने शत्रु बन गये हैं ।

संकेत-विद्या का उचित रीति से ज्ञान प्राप्त कर लेने से पुन: तुम अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकते हो । आगे बढ़ने के लिए तुम्हें संकेतों की शरण लेनी पड़ेगी । संसार का प्रत्येक महान पुरुष इस शक्ति से ही आगे बढ़ा है । जगत का यही संचालन करती है । यही तुम्हारे भाग्य का निर्माण भी करती है ।

हमारी नूतन शिक्षण-पद्धति में अनेक ओर ध्यान रखा गया है किन्तु वह फिर भी मृतप्राय: है । कारण स्पष्ट ही है–शिक्षा में संकेत का जो स्थान उचित है वह प्रदान नहीं किया गया । सच्ची शिक्षा मानसिक क्षेत्र की क्षुद्र ग्रन्थियों को उखाड़ फेंकने तथा नवीन सद्‌ग्रन्थियों के निर्माण से प्रारम्भ होती है ।

जिस दिन मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूपों, अपनी उत्कृष्ट शक्तियों, उत्तमतत्वों, अपने अधिक तत्वों को पहचान लेगा, उस दिन महान जागरण होगा उसी दिन वह अपने चारों ओर स्वस्थ वातावरण की सृष्टि भी कर सकेगा जैसे रेशम के कीड़े के चतुर्दिक रेशम ।

उन्नति का आधार, वास्तविक सुख का आधार, किसी बाह्य वस्तु में नहीं है । कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता केवल तुम्हारे संकेतों में ही तुम्हें ऊँचा उठाने की शक्ति है । तुम्हारा प्रारब्ध, तुम्हारे ग्रह, तुम्हारे सुख दु:ख का रहस्य तुम्हारे संकेतों में अन्तर्निहित है । शुद्ध, शुभ संकेतों द्वारा ही तुम उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ हो सकते हो ।

शुभ संकेत तुम्हारी आत्मा के प्राण हैं । वे तुम्हारे सब से अधिक स्वामिभक्त नौकर हैं । इन भृत्यों से काम लो, यह तुम्हारी सहायता के लिए हाथ जोड़े खड़े हैं ।

शुभ संकेतों के रमण करने से शारीरिक, मानसिक, एवं नैतिक अपूर्णताएँ विनष्ट होती हैं । क्षय और कुरूपता, निर्बलता तथा न्यूनता, पराजय, प्रतिकूलता कोषों दूर रहती हैं । पुराने जीर्ण कोष्ठ स्वस्थ हो उठते हैं । नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव होता है । संकेत-विद्या कायाकल्प की नवीन रीति है ।

**संकेत के दो रूप**—हमारे समस्त संकेतों के दो रूप हैं–एक निश्चयात्मक तथा द्वितीय निषेधात्मक । ''मैंने अपने अन्त:करण से गाढ़ अज्ञान रूपी तिमिर को भगा दिया है । मुझमें ज्ञान रूपी दीपक प्रकट हुआ है । मेरा मन परम निर्मल हो गया है । मेरे मन में शान्ति का सागर लहलहा रहा है । मैं शान्ति सदन में वास कर रहा हूँ ।'' इस प्रकार के संकेत निश्चयात्मक होते हैं । मानसिक परिपुष्टि में इनका बड़ा महत्व है । इनका विहार पूर्णरूप से निर्मल मानस-प्रदेश विहारियों के लिए सर्वोत्कृष्ट संकेत है ।

द्वितीय प्रकार के निषेधात्मक संकेत होते हैं । इनका कार्य मानस प्रदेश की निम्न भूमिका से पुरानी कुत्सित ग्रन्थियों को उखाड़ फेंकना है । जैसे बीज

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


बोते समय ऊबड़-खाबड़, झाड़दार भूमि को साफ करना पड़ता है, कटीली झाड़ी तोड़ डालनी पड़ती है, उसी प्रकार निषेधात्मक संकेत मनोभूमि से पुरानी ग्रन्थियों का उन्मूलन करते हैं । मन की निम्न भूमिका में नीच भावनाएँ दबी दबाई न जाने कब से पड़ी हुई होती हैं । निषेधात्मक संकेत इनको निकलने का रास्ता देते हैं ।

जब आप कहते हैं कि ''अब दुर्गुणों का बल कौशल मुझ पर नहीं चल सकता, वासना रूपी दारुण वायु मेरे चित्त को विचलित नहीं कर सकती-विषय मुझे उत्तम मार्ग से विचलित नहीं कर सकते-मेरे अन्त:करण के अज्ञान का राज्य अब मेरे अन्त:क्षेत्र में नहीं है । स्वार्थ की कामनाएँ मुझे तंग नहीं कर सकतीं-प्रबल से प्रबल दुष्ट आसुरी भावों का न मुझ पर आक्रमण हो सकता है,और वे मुझे दबा ही सकते हैं-''तो ऐसा उच्चारण करने से आपके मन के निम्न प्रदेश में सुप्त वासनाएँ एक-एक करके जाग्रत होती हैं तथा अपना रास्ता बनाकर निकल जाती है ।

हमें उचित है कि सर्वप्रथम अपने मानस प्रदेश को स्वच्छ, पवित्र एवं शुद्ध बना लें, तत्पश्चात उसमें उत्तम-उत्तम संस्कारों के वृक्ष लगावें । निष्कृष्ट के स्थान पर उत्तम तत्व जमा देने से ही जाग्रति होती है ।

**संकेत विद्या की तैयारी**–स्व-संकेतों का आधार हमारी श्रद्धा है । जितना ही हमें अपने में विश्वास होगा उतनी ही तीव्रता से संकेत कार्य करेंगे । जितना ही अविश्वास हम अपनी शक्तियों के प्रति करेंगे उतने ही अधोगति को प्राप्त होंगे । अपनी शक्तियों में अविश्वास करना मानों विषपान करना है । श्रद्धा तुम्हारे अणु-अणु को नव-जीवन प्रदान करती है । बिना आत्मश्रद्धा के ज्ञान निष्फल है, क्रिया शक्तिरहित है, संकल्प निर्जीव है तथा मनुष्य क्षुद्र प्राणी है ।

निज श्रद्धा को विस्तृत करना, दूसरों पर अपने आत्म विश्वास का जादू फेंकना अपने व्यक्तित्व का सम्यक प्रसार करना है ।

सर्वप्रथम छोटी-छोटी वस्तुओं को प्राप्त करके अपने आपकी श्रद्धा को बढ़ाने का अवसर दीजिए । प्रात:काल दो चार कार्य दिन में करने का निश्चय कर लीजिए । फिर सायंकाल तक चाहे कुछ भी हो उन्हें पूर्ण कीजिए । प्रारम्भ में कार्य छोटे-छोटे हों । तत्पश्चात कार्यों को बढ़ाते चलिए । ऐसा करने से आपके आत्म विश्वास में पर्याप्त अभिवृद्धि हो जायगी । ज्यों-ज्यों हमारी आत्मश्रद्धा में बढ़ती होगी संसार की विशेष सूक्ष्मसत्ता अर्थात् ईश्वरीय सत्ता से हमारा तादात्म्य स्थापित होता जायगा ।

जब अपने विश्वास को क्रमश: बढ़ा रहें हों तो एक बार ही कोई ऐसा दुष्कर कार्य न ले बैठो जो तुम्हारी पहुँच के बाहर हो । ऐसा करने से अनेक अनेक दिन का आत्म-विश्वास नष्ट होता देखा गया है । सच्चा विश्वास सदा प्रबल रहना चाहिए । उसमें मिश्री की फाँस न हो । वह जीता जागता ज्वलंत विश्वास हो ।

हमारा आत्मविश्वास ही तो उस दृढ़ संकल्प शक्ति को उत्पन्न करने वाला तत्व है । एक बार आत्मविश्वास उद्दीप्त हो जाने से उसका प्रभाव जीवन पर्यन्त बना रहता है ।

विश्वासी पुरुष दूसरों के विचारों का जादू उस पर नहीं चलने देता । वह स्वयं अपने मन की प्रेरणा से ही समस्त कार्य करता है ।

**प्रथम अभ्यास कैसे होना चाहिए ?**–एक ऐसे कमरे में चले जाइये जहाँ आपके अतिरिक्त कोई न हो । सामने एक बड़ा शीशा रख लीजिए, बड़ा नहीं तो छोटा ही सही । अपनी आकृति को ध्यानपूर्वक देखिए, तुम्हारे ललाट पर वीर्य झलक रहा है ! तुम्हारे नेत्रों में तीव्र झलक रहा है ! क्या तुम्हारे चेहरे से सफल पुरुषों जैसा आत्म-प्रकाश छन-छन का आ रहा है ? सफलता की आधार शिला यही है कि आप इन संकेतों पर पूर्ण विश्वास कर लें । देखिए यदि आप किंचित भी संशय लायेंगे तो आपकी मनोवाछाएँ अन्दर से घुट कर मर जायेंगी । वे आपके मुखमण्डल, नेत्रों, मुद्राओं से प्रकट न हो सकेंगी ।

शीशे के सामने अपने मुख के अंग प्रत्यंगों को विश्वासपूर्वक देखते हुए धीरे से कहो-''मैं आज अपनी सोई हुई शक्तियों को जगा रहा हूँ । मैंने कितना समय व्यर्थ की बातों में खो दिया, कितना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पुराने विचारों की रूढ़ियों में बिता दिया । कितने ही वर्ष तक अपने जन्म सिद्ध अधिकारों से वंचित रहा आज मेरी आत्मा का ''नवीन जागरण'' हैं । मैं उसकी अलौकिक शक्तियों प्रकट कर रहा हूँ । मेरी आत्मा में जो गुप्त सामर्थ्य भरे पड़े हैं उन्हें प्रकाश में ला रहा हूँ । मैं पवित्र हूँ । सत् चित्त आनन्द हूँ । सर्वोपरि चेतन धन हूँ । अविनाशी आत्मा समस्त बन्धन, चिन्ता, भय, शंका और क्षोभ से रहित हूँ । मैं अपने आत्म स्वरूप में स्थिर रहता हूँ । मैं आत्मा में ही रहता, चलता, फिरता निज अस्तित्व रखता हूँ ।

जब तुम इन अमृत-तुल्य संदेशों का पान कर चुको तो अपने चेहरे पर हाथ फेरो । पुनः खोल कर चेहरा देखने पर तुम्हें कुछ परिवर्तन प्रतीत होने लगेगा । यह विश्वासपूर्वक कहे संकेतों की सामर्थ्य है । कुछ देर पश्चात पुनः कहो-''मैं प्रत्येक क्षण ऊँचा रहा हूँ । मैं समय को व्यर्थ बरबाद नहीं करता हूँ प्रत्येक क्षण का उत्तम उपयोग कर रहा हूँ । मैं अपनी विशेषताओं को प्रकट करूँगा । मुझे ज्ञान हो गया है कि मैं असाधारण प्रतिभा सम्पन्न पुरुष हूँ । मुझमें अपनी मौलिकता है । अपनी निजी विशेषता है मैं अपूर्व विचारों का वृहत भण्डार हूँ । मैं अपने विचारों से संसार को चकित करूँगा । मैं एक दिन बड़ा आदमी बनूँगा । मेरी अभिवृद्धि का मार्ग आज खुल गया है । उसकी ओर अधिकाधिक वेग से गतिमान हो रहा हूँ । मेरी सृजन शक्ति, मेरी आकर्षक शक्ति संसार की विशेष सूक्ष्म सत्ता अर्थात् ईश्वरीय सत्ता को प्राप्त करने से जाग्रत हो उठी है । अपूर्ण को पूर्ण करने की शक्ति में वृद्धि हो रही है ।''

संसार की समस्त वृहत् शक्तियाँ मेरी रक्षा कर रही हैं । मेरे लिए संसार की किसी तत्व की न्यूनता नहीं । मैं जो कुछ कहता हूँ वह मुझे अनायास ही प्राप्त हो जाता है । मेरे मन के पृष्ठ भाग में अनन्त परिमाण में दिव्य सृजन में शक्ति निर्माण करती है, उसका स्रोत आज खुल गया है । इस प्रेरणा-केन्द्र से मैं अधिकाधिक परिमाण में क्रियाशक्ति, सामर्थ्य एवं बुद्धिबल को आकर्षित कर सकता हूँ ।''

जब तुम इतना कह चुके हो, तो पुनः चेहरे पर हाथ फेरो और सामर्थ्य शक्ति का अनुभव करो । श्रद्धापूर्वक उच्चारण किए विचारों का प्रभाव विद्युत की तरंगों से कई गुना तीव्र है । उससे तुम्हारे समस्त अवयव झंकृत हो उठेंगे । तुम्हारे आन्तरिक सामर्थ्य की, जीवन-बल की, गति तीव्र हो उठेगी । तुम्हारे आन्तरिक संकल्प का प्रकाश उद्भासित हो उठेगा । और उसी दिन से तुम्हारे मित्र तुम में एक अपूर्व विलक्षणता का अनुभव करेंगे ।

श्रद्धा व पूर्ण विश्वास के विचारों से भरे संकेतों में यौवन बल और सफलता का महान रहस्य छिपा हुआ है । संकेतों का उच्चारण करते समय अपने अभ्यन्तर प्रदेश में विश्वास करने वाली वास्तविक महत्ता पर ध्यान कर सकते हो ।

**साधक के लिए अन्य आवश्यक तत्व**—तुम्हारी दिव्य शक्तियों का अधिकाधिक जागरण हो रहा है । तुममें दिव्य तत्वों का संचार हो रहा है । चारों दिशाओं में तुम्हारी आत्म-ज्योति का प्रकाश फैल रहा है-यह धारणा तुम्हारी प्रत्येक बात से प्रकट हो । तुम्हारी वेशभूषा सफल व्यक्तियों की-सी होना अनिवार्य है । फटे हुए वस्त्र उतार फेंको । ये दरिद्रता की निशानियां तुम्हारे लिए नहीं है ।

तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अवयव में महान परिवर्तन हो रहा है अतः तुम अपने वातावरण को भी भव्य, जागरण के अनुकूल ही बनाने का प्रयत्न करो । गृह के कोनों, आले, अलमारियों को स्वच्छ करो इस धूल मिट्टी की गन्दगी से तुम सदा के लिए मुक्त हो रहे हो । तुम्हारा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है । तुम्हारे वातावरण का निर्माण तुम्हारी कामना के अनुकूल होना चाहिए ।

तुम्हारे साहित्य का उद्देश्य भी तुम्हें ऊपर उठाने का होना चाहिए । तुम वही पढ़ो जो तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं को प्रज्ज्वलित करे । वे तुम्हारी प्रगति में सहायक होंगे तथा इच्छा की अग्नि को शान्त न होने देंगे । यदि तुम खरीद सको तो आत्मा को ऊँचा उठाने वाली अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीदो । इनका अध्ययन तुम्हारे जागरण के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

आत्मा को इनके परिपुष्ट विचारों में रमण करने दो । तत्पश्चात् दैनिक कार्य प्रारम्भ करो । सारे दिन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


तुममें एक विशेष स्फूर्ति सी रहेगी । मित्रों को तुम्हारे अन्दर एक नवीनता प्रतीत होगी ।

रात्रि में शय्या ग्रहण से पूर्व एकान्त स्थान पर शान्त चित्त होकर नेत्र मूँदकर बैठ जाओ, शरीर और मन को शिथिल कर लो । सब ओर से विचार-प्रवाह हटा कर अपनी प्रगति की भावना पर दस मिनट को चित्त एकाग्र करो । नीचे दी हुई भावना में दृढ़ता से मन लगाओ । इस संदेश को मन में जमा लो-

**अपनी उन्नति की भावना-**''आज मैंने सब बलों का आश्रय त्याग दिया है, केवल एकमात्र अपनी प्रबल आत्मा का सहारा ग्रहण किया है । मेरा एकमात्र बल मेरी आत्मा है । अब मैं क्षण भर भी दूसरों की सहायता पर निर्भर नहीं रहूँगा ।''

''जब मैं व्याकुल हो जाता हूँ, एक दम निस्सहाय हो जाता हूँ, तो मैं केवल अन्तरात्मा की ओर दृष्टिपात करता हूँ । मेरे परम मित्र मेरी आत्मा हैं । मेरा सहायक, मेरा रखवाला, मुझे आगे बढ़ाने वाला मेरी आत्मा है । उसी के सहारे मैं आगे बढ़ रहा हूँ ।''

''मेरा मुख किसी वाह्य वस्तु पर निर्भर नहीं है । मेरा सुख तो मेरी आत्मा की शरण में है । राग-द्वेष से उठने वाली क्षुद्र आवेशों की तरंग मेरे दृढ़ मन को कदापि विचलित नहीं कर सकती क्योंकि मैं पर्वत के सदृश हूँ । प्रत्येक ओर से मजबूत हूँ ।'

'मुझे सच्चा यथार्थ ज्ञान, सत्प्रेरणा अपने अर्न्तमन से ही प्राप्त होती है । सत्य का उपदेश देने वाला, सीधा रास्ता दिखाने वाला, सच्चा सद्गुरु मेरी अन्तरात्मा में है । मैं अब किसी अन्य का भरोसा नहीं करता । व्यर्थ में दूसरों की खुशामद नहीं करता । अपनी आत्मा के अतिरिक्त मेरा इस संसार में कोई सच्चा रक्षक नहीं है । जिसने आत्म देव की शरण ले ली है, उसे भय, चिन्ता अज्ञान व अकल्याण का स्पर्श कैसे हो सकता है ?'

मैं अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर यों ही भटक रहा था । जैसे मृग कस्तूरी की खोज में इधर-उधर मारा-मारा फिरता है, वैसे ही मैं व्यर्थ आश्रय के लिए भटक रहा था । अब मेरे अन्धकार का पर्दा उठ गया है, मुझे आत्मा का भव्य प्रकाश प्रतीत होता है । मैं आत्मा की ध्वनि को स्पष्ट सुन सकता हूँ । मैं उन्हीं के संकेतों पर अग्रसर होता हूँ ।

मेरे संस्कारों, मेरे संकल्पों, मेरे मानसिक संस्थान पर अब किसी अन्य का जादू नहीं चल सकता । मैं प्रकाश के राज्य में निवास करता हूँ, जहाँ भ्रम, अशान्ति और दु:ख का मुझे स्पर्श तक नहीं कर सकते ।

मेरा विश्राम धाम मेरी आत्मा है, शक्ति का अक्षय भण्डार मेरी आत्मा है । मेरी आत्मा में आनन्द की लहरें उठती हैं । शुभ्र प्रकाश जगमगा रहा है और मैं श्रद्धा में मग्न होकर आत्मानन्द में मस्त हो रहा हूँ और उस अवस्था में पहुँच रहा हूँ जहाँ मोह, शोक, सन्ताप उत्पन्न नहीं होते उसकी मस्ती में ऐसा बल उत्पन्न होता है कि सब शंका सन्देह एक दम दूर हो जाते हैं ।

पुष्ट श्रद्धा एवं प्रगाढ़ आत्मविश्वास में दृढ़तापूर्वक उपरोक्त भावना पर मन केन्द्रित कीजिए । जब तुम उपरोक्त संदेश अपनी आत्मा को दे चुको तो अपने मन की क्रियाओं से पृथक होकर अन्त:करण के अन्तस्थ प्रदेश को देखो कि वहाँ क्या क्रम चल रहा है ? तुम्हारे अन्त:करण का पुन: निर्माण हो रहा है । पुराने रूढ़िग्रस्त भग्नावशेष धाराशायी हो रहे हैं । उनके स्थान पर नूतन प्रसाद का निर्माण कार्य चल रहा है ।

हम संसार में तुम्हारा कल्याण करने वाली सत्ता तुम्हारे संदेश ही हैं । तुम से बाहर की कोई सत्ता तुम्हारा कल्याण नहीं कर सकती । तुम्हारे संकेत जैसे होंगे वैसा ही तुम्हारा अन्तर्जगत निर्मित होगा । तुम्हारे संकेतो की प्रतिकृति तुम्हारे दैनिक कार्यक्रम पर आवेगी । वे ही क्रमश: तुम्हारे आन्तरिक प्रदेश में गढ़ जायेंगे । तब ही तुम बार-बार ऊँचा उठाने वाली प्रेरणा को हृदय में अनुभव कर सकोगे ।

## रात्रि में अव्यक्त का निर्माण

संकेत विद्या की साधना करने में तुम्हें अपनी रात्रियों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए । हमारा अव्यक्त मन रात्रि में अधिक तीव्रता से कार्य करता

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । जिन भावनाओं को दृढ़ता से लेकर तुम सोते हो ही वे ही निद्रित अवस्था में अव्यक्त क्षेत्र में प्रवेश करती हैं । प्रारम्भ में कुछ समय तक तो यह प्रतीत नहीं होता कि हमारे अव्यक्त का पुनः निर्माण हो रहा है किन्तु प्रभाव अवश्य पड़ता है । जितना दृढ़ तुम्हारा संकल्प होगा, उतनी ही दृढ़तापूर्वक इन शुभ्र भावनाओं की जड़ जमेंगी ।

प्रत्येक रात्रि में सोने से पूर्व आधा घण्टे का प्रोग्राम निश्चित करो । अच्छी पुस्तकों में से किसी के कुछ अंश पढ़ो ।

इस पुस्तक के कुछ अंश अवश्य पढ़ो । तुम्हारे रात्रि के प्रयोगों के लिए कुछ संकेत यहाँ दिये जाते हैं । इनसे एक-एक दिन के लिए सात प्रकार की भावनाएँ दी जाती हैं ।

**आत्म ज्योति की भावना–**"एक प्रखर आत्म-ज्योति मेरे हृदय सूर्य से प्रकाशित हो रही है । इसके दिव्य प्रकाश में मुझे निज कर्तव्य भलीभाँति दृष्टिगोचर हो रहा है । मेरा अर्न्तजगत सब ओर से प्रकाशित है । उसमें अज्ञान का अँधेरा ठहर नहीं सकता ।"

मेरी समस्त भ्रान्तियाँ विलीन हो गई हैं । अब मैं व्यर्थ के मिथ्याजाल में नहीं फँसता थोथे, झमेलों में समय तथा अपनी मनःशान्ति नष्ट नहीं करता । मैं अपनी परम पवित्र आत्मा में अचल और स्थिर हो गया हूँ । मै सांसारिक लोभ एवं तृष्णा के पंजे से छूट चुका हूँ ।

मैं अब क्षुब्ध नहीं होता । व्यग्रता मुझे नहीं सताती क्योंकि मुझे सत्पथ का निर्देश करने वाली आत्मज्योति की प्राप्ति हो गई है । अब मैं वासनाओं के मुग्धकारी थोथे जाल में नहीं फँसता, क्षण भंगुर जिह्वा के स्वादों से भ्रमित नहीं होता, कड़ी से कड़ी विपत्ति आने पर भी व्यग्र नहीं होता । मेरे वातावरण में हलचलें मेरी मनःशान्ति को भंग नहीं कर सकती । मैं बदलती दुनियाँ की मिथ्या वस्तुओं पर मनोवृत्ति को केन्द्रित नहीं करता ।

मेरा मनःजगत प्रकाशवान है । वहाँ सर्वत्र शान्ति की शीतलता है । प्रखर परिताप का प्रज्ज्वलन सदा सर्वदा के लिए चला गया । वाह्य क्लेशों की झंझटें मुझे परेशान नहीं करतीं । उनकी मेरी आत्मा तक पहुँच भी नहीं है । मेरी आत्मा तो संसार की क्षणभंगुरता से निर्लेप है । सर्वथा उन्मुक्त है ।

मुझे अपनी वृत्तियाँ बाह्य जगत की हलचलों से हटाकर आत्मा में स्थिर करने से परम आनन्द आता है । नवीन उत्साह, नवीन ज्ञान, नवीन आनन्द प्राप्त होता है ।

मैं निकृष्ट अवस्था से हटकर उत्कृष्ट अवस्था में निवास करता हूँ । उत्कृष्ट भूमिका में संसार की विविध बाधाएँ मेरा पीछा नहीं कर सकतीं । आत्मा में वृत्ति स्थिर करने के उपरान्त मैं पूर्ण निर्मलता का अनुभव करता हूँ । मेरी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक शब्द–यहाँ तक कि अणु-अणु में आत्मतेज निकल रहा है । मैं अपने परम देव–आत्मदेव की महानता से अनुरंजित हूँ । मुझमें भी वही आनन्द, शक्ति समान हो रही है । सबका पल्ला त्याग कर अब मैने परम देव का आश्रय ग्रहण किया है ।

**अपनी उन्नति की भावना–**अब मैं अज्ञानान्धकार की मोह निद्रा से जाग्रत हो गया हूँ । मुझे ज्ञान हो गया है कि इस संसार में बिना हाथ हिलाये कुछ काम नहीं हो सकता । मैं अब अपनी शक्ति का अनुभव करता हूँ । मेरी शक्तियाँ मेरे अणु-अणु से प्रकाशित हो रही है । मेरी नस-नस में शक्तिशाली रक्त दौड़ रहा है ।

मैं अपने भाग्य को दोष नहीं देता मेरे भाग्य का निर्माण अत्यन्त शुभ मुहूर्त में हुआ है । उसमें अनेक उत्कृष्ट तत्व लगाये गये हैं । क्लेश, असन्तोष, निराशा, कायरता तथा संशय उत्पन्न करने वाली वृत्तियों का उपयोग मेरे भाग्य विधान में नहीं हुआ है ।

मैं अपने विचारों का स्वामी हूँ । स्वयं विचार करना जानता हूँ । अपने जीवन की बागडोर दूसरों को नहीं सौंपता । मेरे निश्चय पूर्ण परिपुष्ट हो चुके हैं । अपने जीवन को उच्च बनाने का निश्चय कर लिया मैं जीवन संग्राम में प्रविष्ट हो रहा हूँ । मैं निरन्तर आगे ही चलता रहूँगा ।

प्रतिकूलता से युद्ध करने की शक्ति मुझ में है । अत्यन्त साहस से प्रतिकूल परिस्थितियों पर अधिकार कर सकता हूँ । विरोधी से विरोधी को भी जीत सकता हूँ । मैं अपने मनोरथों के प्रति पर्वत के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सदृश अटल हूँ, स्थिर हूँ । मैं जीवन में आने वाली कठिनाइयों को हटा दूँगा ।

किसी दूसरे का जादू या सत्ता मुझ पर नहीं चल सकती । सम्पूर्ण ब्रह्मांड में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं जो अधिकार कर सके । मैं अपनी शक्तियों का स्वामी हूँ । प्रतिकूल विकट प्रसंग उपस्थित होने पर हिम्मत नहीं तोड़ता हूँ ।

मुझे अपने जीवन में कितने ही महत्वपूर्ण कार्य करने हैं । साधारण पुरुषों की अपेक्षा बहुत ऊँचा उठ जाना है । अधिक शक्तियाँ प्राप्त करनी हैं । मैं अपनी विशेषता को प्रकाशित कर संसार को चकित करूँगा ।

**दृढ़ निश्चय, दृढ़ संकल्प तथा स्थिरता की भावना**—आज से मैं दृढ़ निश्चय करता हूँ कि अपने मनोरथों, अपने आदर्शों, अपनी प्रेरणाओं तथा अपनी आत्मा के प्रति सच्चा रहूँगा । जीवन का जो क्रम मैने निश्चय किया है उसी पर जमा रहूँगा । मैं अपने कर्तव्य के विरुद्ध आचरण न करूँगा ।

मेरे अन्तर प्रदेश में जो भव्य प्रेरणाएँ उद्दीप्त होती हैं उनका प्रकाश करूँगा उन्हें यों ही नष्ट न होने दूँगा । वे मेरी उन्नति को द्योतक हैं । मेरी सम्पत्ति हैं । इनकी ही पूर्ति से मेरी उन्नति सम्भव है । जिन वस्तुओं की मैं अभिलाषा करता हूँ वे मुझे अवश्य प्राप्त होंगी । मेरी आशापूर्ण तरंगे, आत्मा की महत्वाकांक्षाएँ मेरे मन की दिव्य भावनाएँ जीवनप्रद हैं । पूरी तरह सत्य हैं । मजबूत हैं । बड़ी प्रबल हैं, प्रभावोत्पादक हैं । मेरी शक्ति की सूचक हैं । मेरी उन्नति की बड़ी परिचायक हैं । मेरी कार्य सम्पादन शक्ति की द्योतक है ।

जिनकी मैं कामना करता हूँ, जिनकी सिद्धि के लिए मैं अन्तःकरण पूर्वक अभिलाषा करता हूँ, उसकी मुझे अवश्य प्राप्ति होगी । जो आदर्श मैने सच्चे अन्तःकरण से बनाया है वह अवश्य ही मेरे सामने सत्य के रूप में प्रकट होगा । मेरे मनोरथ सिद्ध होंगे, मेरे सुख-स्वप्न सच्चे होंगे ।

सर्वेश्वर ने मुझे आत्मशक्ति प्रदान की है । मेरे प्रत्येक अंग को शक्ति से परिपूर्ण किया है । अतः दृढ़ निश्चय द्वारा मैं उन दिव्य शक्तियों का विकास करूँगा । मुझमें आत्मज्योति की शुद्धता प्रदीप्त है । मेरे हृदय में उज्ज्वल भाव ही प्रवेश करते हैं ।

मैं दृढ़ हूँ । आजकल की अपेक्षा अधिक सबल हूँ । पर्वत की तरह स्थिर हूँ । संसार के क्षुद्र प्रलोभन या घटनाएँ मेरे दृढ़ निश्चय को चलायमान नहीं कर सकतीं । मैं दृढ़ निश्चय से कितने ही कठिन से कठिन विघ्न बाधाओं के आने पर भी हटने वाला नहीं हूँ । मैं अब पूर्ण दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति बन गया हूँ ।

**आध्यात्मिक विवेक की भावना**—मैं अपना बहुमूल्य समय, खान-पान, वस्त्र, आभूषण, पदार्थ-संग्रह आदि में व्यर्थ खराब नहीं करता । शृंगार में समय नष्ट नहीं करता । दूसरों के दोष दर्शन नहीं करता । मुझे विवेक हो गया है । मै जगत का वास्तविक स्वरूप समझा गया हूँ । संसार में मिथ्या जाल की स्थिति को भली भांति समझ गया हूँ ।

अब मैं तुच्छ वासनाओं का गुलाम नहीं बना रहूँगा । क्षुद्र इच्छाएँ अब मुझे नहीं दबा सकतीं । पानी में बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर पदार्थों के पीछे अब मैं छटपटाता न फिरूँगा । सांसारिक सम्पदा की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पत्ति में मुझे अनुभव होता है । स्वार्थ की भावनाएँ मुझे विक्षुब्ध नहीं कर सकतीं । संसार की मोहक वस्तुएँ मुझे पथ भ्रष्ट नहीं कर सकतीं प्रबल से प्रबल आसुरी वृत्तियाँ मुझे अस्तव्यस्त नहीं कर सकतीं ।

चारों दिशाओं में मेरी विशुद्ध आत्मा का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है । मेरे हृदय को परमात्मा का शुभ्र प्रकाश स्पर्श कर रहा, मेरी आत्मज्योति प्रज्ज्वलित हो रही है । मेरी स्वार्थ की वासनाएँ जड़मूल से विनष्ट हो चुकी हैं ।

उचित कर्म में प्रवृत्त कराने वाली सद्बुद्धि मेरे हृदय में जाग्रत हो चुकी है । मेरे हृदय को सतत् प्रेरणा प्राप्त हो रही है । परमात्मा के परम पावन पवित्र स्पर्श से मेरा अणु-अणु प्रकाशित हो उठा है मेरी दुर्गति नष्ट हो चुकी है । मन विशुद्ध हो चुका है मेरे हृदय में परमात्मा के प्रति अटूट श्रद्धा है । क्षण भर भी मैं इन्द्रियों का दास नहीं बन सकता । मैंने भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि संसार जिस सुख को पाने के लिए मारा जाता है । उसमें सुख नहीं है, वास्तविक सुख का भण्डार तो मेरे भीतर है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मेरी प्रबल इच्छा शक्ति के सम्मुख विघ्नबाधा तिल मात्र भी नहीं ठहर सकतीं । विघ्नबाधाएँ मेरी अन्तर्ज्योति को प्रज्ज्वलित करती हैं । मैं प्रत्येक संकट का अभिनन्दन करता हूँ ।

''मैं भीषण से भीषण विपत्ति में भी प्रफुल्लित रहता हूँ क्योंकि मेरी आत्मा में सुप्त शक्तियाँ सजग हो उठी हैं । मंगलकारी विपत्तियो आओ ! तुम मुझे झुका नहीं सकतीं क्योंकि मैं अपरिमित बल वाला आत्म पिंड हूँ ।''

**भय से मुक्ति का निर्देश**—मेरे अन्तस्तल में संचित भय के कीटाणु निकल रहे हैं । अब उनके लिए हृदय-प्रदेश में कोई स्थान नहीं । अविश्वास, चिन्ता, अश्रद्धा, संकोच, कायरता इत्यादि विजातीय तत्व मेरे अन्तःकरण में नहीं ठहर सकते ।

मुझे प्रतीत हो गया है कि निश्चित एवं निर्भय पुरुष ही उत्कृष्ट जीवन प्राप्त करते हैं । चिन्तायुक्त पुरुष कभी अग्रसर नहीं हो पाता । मैं भविष्य के लिए दुःखों की कल्पना नहीं करता । भय की पुष्टि द्वारा मैं अपनी स्फूर्ति को नष्ट-भ्रष्ट नहीं होने देता । भयभीत जीवन वास्तविक जीवन से अत्यन्त दूर है । मैं निज अन्तः करण को भूतों का डेरा कभी नहीं बनाता ।

मुझे कोई भय नहीं । डर नहीं । मैं पूर्ण निर्भय हूँ पूर्ण प्रकाशित हूँ । मुझे तो संसार से सुख का आनन्द लूटता है फिर भला भय क्यों कर डरा सकता है ? मैं परम निशंक हूँ । मुझे अस्त-व्यस्त करने की किसी को हिम्मत नहीं ।

मुझे संसार में कोई हानि नहीं पहुँचा सकता । अनुचित रीति से कोई नहीं दबा सकता । मैं निरन्तर आगे बढ़ रहा हूँ । कौन मेरे मार्ग में बाधा पहुँचा सकता है ? मैं सब ओर से पूर्ण सुरक्षित हूँ । मुझे मेरी आत्मा ने ऐसा बल प्रदान किया है कि उसके आगे सबको ही झुकना पड़ता है ।

मैं भय को फूँक से उड़ा देता हूँ । पास तक नहीं आने देता । भय से मेरा कोई रिश्ता-नाता नहीं । भय से मेरा अन्तःकरण निर्मल हो चुका है । अब उसमें उन पवित्र विचारों का समावेश हो चुका है कि भय की दाल नहीं गल सकती । भय मुझसे डरता है । मेरी शक्ति से डरता है । मेरी आत्मश्रद्धा महान है जहाँ आत्मा का प्रकाश है वहाँ भय का अन्धकार कहाँ टिक सकता है ।

मैं एक ऐसे दिव्य लोक में निवास करता हूँ जहाँ न चिन्ता है, न भय, न घृणा है, न अहंकार ! वहाँ तो अखण्ड आनन्द, अखण्ड शान्ति तथा अखण्ड प्रसन्नता निवास करती है । मैं तो परब्रह्म के अखण्ड आनन्द-स्त्रोत में बिहार करता हूँ, फिर भय मेरे ऊपर किस प्रकार आक्रमण कर सकता है ?''

**आत्मलम्बन की भावना**—मैं अपने चित्त को किसी भी प्रकार की परिस्थिति में विक्षिप्त नहीं होने देता । मैं वाह्य दुःखों और चिन्ताओं से परेशान नहीं होता । मेरे इर्द गिर्द की झंझटें मेरी शान्ति को भंग नहीं कर सकतीं । मैं क्षणभंगुर वस्तुओं पर अपनी चित्त-वृत्ति स्थिर नहीं करता ।

बड़ी से बड़ी विपत्ति, भारी कष्ट, पीड़ा, आघात आने पर भी नहीं घबराता । संसार में जो कुछ है उसका, उद्देश्य महान है इसी भावना को हृदय में धारण करके मैं संसार का व्यवहार करता हूँ । मुझे अपनी वृत्ति आत्मा में स्थिर करने में आनन्द आता है । आत्मा में मन को एकाग्र करने से मुझे नवीन उत्साह, नवीन ज्ञान और नित नवीन आनन्द प्राप्त होता है ।

अब मैं प्रकृति के जाल में नहीं फँसता और प्रकृति से हटकर आत्मा की ओर दौड़ता हूँ । मैं अब वाह्य वस्तुओं का आश्रय ग्रहण नहीं करता । मुझे अनुभव हो गया है कि आत्मा से बढ़कर संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है ।

अब मुझे किसी वाह्य वस्तु की अपेक्षा नहीं है । मेरा मन आत्मा में रमण करने लगा है । जगत में अब किसी के आधीन नहीं हूँ मेरे सत्यस्वरूप आत्मा के सम्मुख संसार की विघ्न बाधाएँ एक भण भी नहीं ठहर सकती । मैं मेरु की तरह अटल हूँ ।

''मैं अपने परम-देव का साक्षात्कार कर रहा हूँ । आत्मज्योति मेरे हृदय मन्दिर में प्रकाशमान हो रही है, मेरी समस्त भ्रान्तियाँ लोप हो गई हैं । अब मैं कभी भी संसार के क्षणभंगुर अवलम्बन के पीछे नहीं छटपटाता प्रत्युत अपनी आत्मा में पूर्ण स्थिर हो गया हूँ ।''

मुझे ज्ञान हो गया है कि आत्मा में ही वास्तविक सुख, वास्तविक आनन्द एवं वास्तविक स्वाधीनता है । मैं सांसारिक लोभ और तृष्णा से

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मुक्त हो गया हूँ । अब मैं क्षुभित नहीं होता । अस्त व्यस्त नहीं होता । परेशान नहीं होता क्योंकि मुझे अपने आपका अनुभव हो गया है ।

**विपत्ति पर विजय प्राप्त करने की भावना–** ''मुझे अनुभव हो गया है कि जीवन में जो विपत्तियाँ, कष्ट और प्रतिकूलताएँ आती हैं वे सब मेरी भलाई के लिए आती हैं । भारी से भारी विपत्ति सहन करने की सामर्थ्य मुझ में है । मेरे अन्त:करण के अन्तस्थल में ऐसा असाधारण बल है कि भारी से भारी संकट और विघ्न बाधाओं को मैं छिन्न-भिन्न कर सकता हूँ ।''

''मैं विपत्तियों का प्रसन्नता से स्वागत करता हूँ । अग्नि में तप कर हथौड़े के प्रहार सहन कर, लोहे के जैसे सुन्दर हथियार बनते हैं, उसी प्रकार विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ और बाधाएँ ही महान गुणों का विकास करती हैं ।''

''मैं विरोधी और विपरीत परिस्थिति में रहकर अपने अविचल लक्ष्य पर स्थिर रहता हूँ और अपने जीवन की दु:ख गाथा को लोगों को नहीं सुनाता फिरता । मेरे हृदय में वह दावानल है कि क्षुद्र दुर्भाव या आसुरी विचार मुझे दबा नहीं सकते ।''

## दैनिक जीवन में संकेत का प्रयोग

हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य में हमारे संकेत या निर्देश कार्य किया करते हैं । संकेत ही मनुष्य के विविध कार्यों को सफलता प्रदान करता है । हमारे चरित्र विकास में धैर्य, कर्त्तव्यपरायणता और संकल्प की दृढ़ता प्राय: हमारे पुण्य संकेतों पर ही निर्भर है । अपने नित्य प्रति के संकटों से हम अपने वातावरण की सृष्टि करते हैं । मकड़ी के जाले में सदृश्य हम कभी गुनगुनाकर, कभी मूल रूप में अपने आपको कुछ न कुछ आज्ञा दिया करते हैं । अपनी आत्मा को जैसा निर्देश देते हैं, वैसी ही सृष्टि सर्वप्रथम हमारे अन्त:करण में होती है, तत्पश्चात् उन निर्देशों के अनुसार ही वातावरण निर्मित होता चलता है । कितनी ही बार दूसरे के संकेत हमारे ऊपर जादू-सा दिखाते हैं । कितने ही मनुष्य दूसरों के संकेतों के दास होते हैं । जब तक उन्हें कोई निर्देश नहीं करता, तब तक वे कार्य में हाथ नहीं डालते । लोग उन्हें बुरे संकेत दे देते हैं, तो वे परेशान हो उठते हैं, सर्वत्र तूफान सा अनुभव करते हैं । उत्तेजना का शिकार हो उठते हैं और मन:स्थिरता खो बैठते हैं । कोई उन्हें आश्वासनयुक्त संकेत प्राप्त करा देते हैं, उनकी चिन्ता, व्यग्रता, उद्वेग, निराशा, दु:ख, चिड़चिड़ापन शान्त हो जाता है । वे शान्त होकर आशा की श्वास लेते हैं, वातावरण सुख-शान्तिमय बन जाता है, अन्तरात्मा में अपूर्व बल का संचार होता ।

कलुषित निर्देश अन्धकार की वस्तु है । वे जीवन का नाश करते हैं । तुम बुरे संकेतो को स्वीकार कदापि न करो । अनायास ही उनके अनुगामी न बनो । उनसे युद्ध करो । दूसरों के विपरीत संकेतों को ग्रहण करना अपना पतन करना है ।

**संकेत का सूक्ष्म कार्य**–एक व्यक्ति दूसरे के संकेतों का अनुगामी बन जाता है किन्तु उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि वह क्यों कर दूसरे के विचारों का अनुसरण करने लगा । संकेत बड़ी सूक्ष्म रीति से निर्देशित व्यक्ति के अव्यक्त में कार्य आरम्भ करता है । उस व्यक्ति को यह सुधि-बुधि नहीं रहती कि दूसरे के संकेत निरन्तर उसमें विचार परिवर्तन कर रहे हैं । अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण दूसरे व्यक्ति के पुष्ट संकेत उसके दुर्बल मन:क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं और सरलतापूर्वक जड़ पकड़ लेते हैं । वास्तव में अगर निर्देशित व्यक्ति को इस तत्व का ज्ञान हो जाय कि वह दूसरों के संकेतों से प्रभावित हो रहा है या जान बूझकर उस पर संकेत का प्रयोग किया जा रहा है, तो फिर उस संकेत का प्रभाव अति न्यून रह जाता है । यदि निर्देशित व्यक्ति कुछ भी संकल्प वाला हुआ तो उस पर संकेत का प्रभाव कुछ भी नहीं रह जाता ।

एक व्यक्ति का अद्‌भुत वृतान्त किसी पत्र में छपा था । वह संकेत शक्ति पर व्याख्यान दिया करता है । व्याख्यान प्रारम्भ करने से पूर्व वह अपनी जेब में से एक बोतल निकाल कर स्टेज पर तरल पदार्थ छिड़क देता है और निर्देश करता है–

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


''मैंने थोड़ी सी सुगन्ध छिड़की है । यह तीव्र गति से आपके पास पहुँचेगी । ज्यों ही यह सुगन्धि आप तक पहुँचे, आप हाथ उठाते जाइये । इससे मुझे अतीव सहायता प्राप्त होगी और मैं अपना कार्य शीघ्रता से आरम्भ कर सकूँगा । मैं यह जान सकूँगा, कि सुगन्ध कितनी तेजी से चलती है ।''

ऐसा निर्देश देकर वह अपना भाषण प्रारम्भ कर देता है । पहले अगली पंक्ति में, तत्पश्चात मध्य की पंक्तियों में और अन्ततः अन्तिम पंक्तियों में क्रमशः हाथ उठाते जाते हैं । इसी बीच वे व्याख्यानदाता सिर हिला कर हाथ उठाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को धन्यवाद देता जाता है, और जब सबसे अन्तिम व्यक्ति अपना हाथ उठा चुकता है तो तब वह कहता है-

''आपको स्मरण होगा कि मैं आज संकेत शक्ति 'पावर आफ सजेशन' पर व्याख्यान दे रहा हूँ । मैंने यहाँ स्टेज पर जो छिड़का वह सुगन्ध नहीं थी, वरन् शुद्ध जल था । आप आगे आकर बोतल को सूँघकर देख सकते हैं ।'' उपस्थित सज्जनों को बोतल सूँघ कर बड़ा कौतूहल होता है । वास्तव में प्रारम्भ में ही यदि निर्देशित व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाय कि उस पर संकेत किया जाने वाला है तो वह उससे साफ बच जाता है । उसका अव्यक्त मन अनायास ही निर्देश करने वाले के विचारों का अनुगामी नहीं बनता ।

**संकेत की दो अवस्थाएँ**-कुछ व्यक्ति ऐसे भोले भाले होते हैं जो बिना सोचे समझे, तर्क-वितर्क किये जो कुछ संकेत उन्हें दिया जाता है उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं । यह उसकी सत्यता के विषय में लेशमात्र भी संशय नहीं करते । यह संकेत की असाधारण अवस्था है जिसमें निर्देशित व्यक्ति हतबुद्धि सा होकर जो कुछ उसे सुझाया जाता है मान लेता है ।

एक समय की बात है । बाजीगर ने एक रुपया हाथ में लिया और बोला-देखिए मैं इसी रुपये में से जैसी आप चाहेंगे उसी प्रकार की सुगन्ध सुँघाऊँगा । ऐसा कहकर वह निर्देशित व्यक्ति से पूछता है- बोलो कौन सी सुगन्ध चाहते हो ? निर्देशित व्यक्ति कहता है-'गुलाब' और तुरन्त उसे रुपये में से गुलाब की सुगन्ध आती है । इसी प्रकार के अनेक भ्रम असाधारण संकेतों से उत्पन्न किये जा सकते हैं ।

एक शिक्षक अपनी कक्षा में एक सुन्दर चित्र लाया और बोला-देखो लड़को ! यह एक सुन्दर नदी का चित्र मैं तुम्हें दिखाता हूँ । तुम दूर से देखकर बताना कि इसमें और क्या-क्या है ? ऐसा कहकर वह चित्र को दूर से दिखाता है । विद्यार्थी खड़ा होता है और कहता है-इस नदी में एक नाव तैर रही है । दूसरा कहता है-नदी के किनारे दो वृक्ष खड़े हैं । तीसरा कहता है-नाव में दो व्यक्ति बैठे हैं । चौथा कहता है-नाव पश्चिम की ओर बढ़ती जा रही है इत्यादि । अन्त में एक प्रौढ़ विद्यार्थी से प्रसन्न हुआ । वह घबरा गया । और अन्त में बोला-''मास्टर साहब, मुझे तो चित्र में नाव भी नहीं दीखती ।'' सचमुच चित्र में नाव न थी । वह एक साधारण सा चित्र था जिसमें एक नदी तथा बादल अंकित किये गये थे । संकेत के कारण लड़कों के मन में भ्रम उत्पन्न हो गया था ।

असाधारण अवस्था में निर्देशित व्यक्ति का मन इतना निर्बल होता है कि निर्देशक जो कुछ चाहता है मनवा लेता है । ऐसे व्यक्ति को जो संकेत दिया जाता है वह फौरन स्वीकार कर लेता है । यह सब निर्देशित व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता के कारण होता है ।

दूसरे प्रकार के संकेत मन की असाधारण अवस्था में ही कार्य किया करते हैं । उपरोक्त असाधारण अवस्था में निर्देशित व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं रहता कि उसे संकेत किया जा रहा है । किन्तु साधारण अवस्था में संकेत का कार्य स्पष्ट परिलक्षित होता है । एक बालक अपनी माता को प्रातःकाल पूजा करते देखता है तो उसे संकेत मिलता है । वह बोलता है कि मेरी माँ इस कार्य को करती है मैं भी करूँ । और वह चुपचाप ईंट पत्थरों के ठाकुर जी की पूजा प्रारम्भ करता है । सिगरेट का शौक बच्चों को अन्य घर वालों को सिगरेट पीते देखकर लगता है । वे सोचते हैं अमुक चचा या काका सिगरेट पीता है तो मैं भी उसे पीऊँगा । क्योंकि अन्य व्यक्ति भी पीते हैं इसलिए वह जान बूझकर धूम्रपान प्रारम्भ कर देता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस अवस्था में मन साधारण अवस्था में है और संकेत कार्य स्पष्ट रूप में चलता है । इसी प्रकार के अनेक प्रभाव कभी असाधारण अवस्था में ही हमारे दैनिक जीवन में घटित होते रहते हैं ।

**शिशु के मन पर संकेत का प्रभाव**—बालकों पर असाधारण अवस्था में संकेत के अधिक कार्य करता है । जो कुछ संकेत उन्हें प्रदान किये जाते हैं वे उन्हें सहर्ष स्वीकार भी कर लेते हैं । यदि माता कहती है–तू राजा बेटा है, अच्छे-अच्छे काम करता है, दूसरों को गाली नहीं देता, इम्तहान में पास हो जाता है, सब स्थानों पर विजयी होता है इत्यादि, तो शिशु का अव्यक्त मन तुरन्त इन संकेतों को ग्रहण कर लेता है और भविष्य में ये संकेत सबसे ऊँचा उठाये रहते हैं । इसके विपरीत यदि शिशु को गाली दें और कहे–''तू जन्म भर रोता फिरेगा, भीख माँगेगा, दुनियाँ में लोगों का मुँह ताका करेगा, तुझसे कुछ होना जाना नहीं । तू हर जगह हारता है–'' इस प्रकार के घातक संकेतों का शिशु के हृदय पर बड़ा विषैला प्रभाव पड़ता है जो शिक्षक अपने शिष्यों को–'तू तो निरा गधा है' दिमाग में निरा गोबर भरा है, 'नालायक बिल्कुल बुद्धू है ।' इत्यादि संकेत देते हैं वे अपने शिष्यों के मार्ग में काँटे बोते हैं । बचपन में दिये गये घातक संकेतों से कितने ही होनहार बालकों के जीवन अन्धकारमय हो जाते हैं ।

## स्वयं अपने आपको संकेत देना

अपने संकेतो से स्वयं प्रभावित होना ही संकेत का चमत्कार है । मनुष्य स्वयं अपना निर्माण करता है । इस बात को यों कह लीजिए कि मनुष्य जो-जो संकेत समय-समय पर आने आपको दिया करता है कालान्तर में वे ही उसके भाग्य का निर्माण किया करते हैं ।

जो मनुष्य दूसरों के विचारों से प्रभावित न होकर स्वयं अपने ही विचारों पर अपने भविष्य का निर्माण करता है वह धन्य है । उसी का जीवन सुख शान्तिमय बनता है । दूसरों के विचारों से प्रभावित होना मानों दूसरों को अपना स्वामी बना लेना है । यदि मनुष्य अपने जीवन को दूसरों को ही सौंप दे तो उसका अपना रह ही क्या जावेगा ।

अनेक मनुष्यों के मासिक स्तर बड़े निर्बल होते हैं । संसार के दूसरे मनुष्य चारों ओर से भ्रान्ति के विचार ला-लाकर उनके मन में डालते हैं । वे उन्हीं को अन्त:करण की स्थायी वृत्ति बना लेते हैं । वैसे ही बन जाते हैं । यह परम दुखद अवस्था है ।

हम दूसरों के जिन संकेतों को स्वीकार कर लेंगे, वे ही हमारे मानसिक संस्थान की स्थायी सम्पति बन जायेंगे । फिर वैसे ही विचार हमारे मन में स्वत: उत्पन्न होंगे वैसा ही हमारा भविष्य बनेगा । इसमें दोष हमारा ही है । विचारों की यह परवशता मनुष्य को परतन्त्र बना रही है । खेद है कि आज अधिकांश मनुष्य अपने हृदय में जो विचार रखना चाहते हैं उनको नहीं रख पाते । वे अपने स्वयं अपने शत्रु बन गये हैं ।

तुम अपनी परीक्षा करो ! तुम्हारे स्वयं अपने विषय में क्या-क्या धारणाएँ बन गई हैं ? तुमने कहाँ तक अपने आपको समझा है ? तुम्हारी आत्मा की ध्वनि तुम्हें क्या सलाह देती रहती है ? ठीक-ठीक उत्तर दो कि तुमने अपनी आत्म-प्रेरणा को धोखा तो नहीं दिया है ? तुम्हारे विश्वास, तुम्हारे मन्तव्य तुम्हारी आकांक्षाएँ क्या हैं ? वस्तुत: तुम चाहते क्या हो ? कौन-कौन व्यक्ति तुम्हारी आलोचना करते हैं ? हृदय की अन्तर्ध्वनि तुम्हारे साथ कहाँ तक है ? कौन-कौन से भय तुम्हें विचलित कर रहे हैं ? तुम अपना अधिकांश समय किस प्रकार के विचारों में व्यतीत करते हो ?

उक्त प्रश्नों का उत्तर समुचित रीति से कागज पर लिख डालो तुम सर्वप्रथम अपना अध्ययन करो । तत्पश्चात् ही कोई नया कदम उठा सकते हो । जिस मशीन से तुम्हें कार्य लेना है उसके पुर्जे-पुर्जे से परिचित होना अनिवार्य है । आज अनेक व्यक्ति अपने जीवन का क्षय केवल अनजानेपान में रहकर ही कर रहे हैं । वे अन्धकार में पड़े हैं । उन्हें स्वयं अपने आपका ज्ञान नहीं, उनकी मन:शक्ति व्यर्थ के झमेलों में नष्ट हो रही है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**स्वसंकेत के लिए तैयारी**–आप यह धारणा बना लीजिये कि आप जिस ओर प्रवृत्त हो रहे हैं उस ओर अग्रसर होने की प्रबल शक्ति आप में है । तभी उस बात का विचार अपने मन:क्षेत्र में उदित हुआ है । विचार उस कार्य का सूचक है । यही परिवर्द्धित, पल्लवित एवं परिपुष्ट होकर कार्य बन जायगा । अपनी आशाओं को जीवित रखने कर सतत प्रयत्न करते रहिए । यदि आपकी महत्वाकांक्षायें प्रदीप्त रहेंगी तो आप साक्षात्कार शक्ति शीघ्र प्राप्त कर सकेंगे ।

तुम्हारी अभिलाषा एवं निश्चय दोनों मिलकर कार्य में प्रवृत्त हों तब तुम कार्योत्पादक शक्ति में अभिवृद्धि कर सकोगे । अभिलाषा इतनी तीव्र हो कि वह दृढ़ संकल्प में परिणित हो जाय । इच्छा के पर्वत सदृश निश्चय के सम्मेलन से संकेत में विशेष सफलता मिलती है । जो यह विश्वास रखता है कि जिस ओर मैं चल रहा हूँ उसे अवश्यमेव प्राप्त कर सकूँगा, उस संसार विश्वास करता है । विश्वास ही वह शक्ति है जिससे हमारे संकेत क्रियाशील बनते हैं ।

**स्वसंकेत का पहला कदम**–शीशे के सामने शान्त चित्त खड़े हो जाइये और अपनी प्रतिकृति को देखकर अपने आप से प्रश्न कीजिए–''क्या इस चित्र वाले व्यक्ति में सफलता का संकेत है ? क्या इसमें विजयश्री प्राप्त करने का अभ्यास परिलक्षित होता है ?'' पहला कदम यही है कि आप उत्तर में–''इस चित्र वाले व्यक्ति के मुख मण्डल पर सफलता का सूर्य प्रकाशित है । यह प्रकाशवान अवश्य होगा । यह उन्नतिशील एवं विजयी जरूर होगा । इसके नेत्रों से आत्मतेज टपक रहा है ।''

तुम्हारे मुखमण्डल से श्रद्धा, दृढ़ता प्रकाशित होनी चाहिए । ज्यों-ज्यों तुम्हारे दिव्य विचार स्थायी सम्पत्ति बनेंगे, ज्यों-ज्यों तुम अपने सम्बन्ध में आशापूर्ण शुभ सूचक भावों को स्थान दोगे, त्यों-त्यों तुम्हारे मुखमण्डल में अद्‌भुत परिवर्तन होगा । जब हम किसी वस्तु विशेष की हार्दिक कामना करते हैं तभी से उसकी ओर अपने विचार प्रवाह को भी खोलते हैं । तभी से उससे सूक्ष्म सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । उसी का प्रकाश मुखमण्डल पर भी होता है ।

आप सोचिए कि ''मेरे मुखमण्डल से, प्रभावोत्पादकता, शक्ति, सिद्धि स्पष्ट प्रकट हो रही है । जिसकी मैं चाह करता हूँ, जिसकी कामना मेरे अन्त: करण में उदित हुई उसकी मुझे अवश्य ही प्राप्ति होगी । आदर्श मैने सच्चे अन्त:करण से निर्माण किए हैं वे अवश्य मेरे सामने प्रकट होगा ।''

यही आशासूचक दृढ़भावना तुम्हारे लिखे हुए पत्रों, बोले हुए वाक्यों, वस्त्रों से प्रकट हो । यही तुम्हारे साहित्य से । तुम इस विचार में डूबे रहो । इसी में गोते लगाओ और प्रतिकूलता की भावना को कदापि पास न फटकने दो ।

तत्पश्चात अपने कार्यों पर दृष्टिपात करो । क्या तुम ढीले-ढाले रूप से कार्य करते हो ? क्या काम से बचने की प्रवृत्ति है ? क्या तुम अपने कार्य को बोझा समझकर करते हो ? परीक्षा करो । तुम्हारे प्रत्येक कार्य से सफलता प्रकट होनी अनिवार्य है । उत्तमता की छाप तुम्हारे प्रत्येक कार्य पर हो ।

तुम्हारे ऊपर दूसरों के विचारों का जादू कदापि न चलना चाहिए । ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, प्रतिशोध, भय, क्रोधादि विकारों को मनमानी करने का अवसर न मिले । काल्पनिक शत्रुओं के विषय में तुम न विचारो ।

नित्यप्रति के जीवन-युद्ध में जो भी देखो उनमें आशा उत्साह की आभा हो, तुम्हारा हृदय हरा-भरा हो गया, पवित्रता का निर्मल स्रोत वहाँ प्रवाहित होता हो । जीवन का वास्तविक आनन्द जीवन की प्रशान्त अवस्था में ही प्रकट होता है ।

तुम मित्रता के वृक्ष लगाओ जिसमें तुम्हारी आकांक्षाएँ पूर्ण हों और शत्रुता की काँटेदार झाड़ियों को उखाड़ कर फेंक दो । अमुक व्यक्ति मेरा शत्रु है, अमुक मेरी बुराई चाहता है, अमुक मेरा प्रतिद्वन्द्वी है–ऐसे विचार सदा सर्वदा के लिए बहिष्कृत कर दो अन्यथा संकेत के प्रयोग में सफलता न होगी ।

संकेत की शक्ति तुम्हारी श्रद्धा का अर्थ है बिना देखी सुनी वस्तु पर विश्वास कर लेना तथा उसी विश्वास के बल पर निज जीवन का मार्ग निश्चय करना । यदि तुम्हें अपनी बातों में खुद विश्वास न

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


होगा तो क्यों कर उन्नति कर सकोगे ? केवल श्रद्धा न्यूनता के कारण न जाने कितने व्यक्तियों का अधः पतन हो रहा है । श्रद्धा जगतजननी जगदम्बा है और विश्वास संकेत का पिता रूप है ।

**एकान्त में हमारे संकेत**—तुम्हें अपनी आत्मा के अपूर्व सामर्थ्यों का भान हो चुका है । तुम उस गुप्त भण्डार को खोलने चले हो । तुम्हें प्रतीत हो गया है कि अनन्त अपार बल का उद्‌गम स्थान श्रद्धा है । शक्ति और सामर्थ्यों की अभिवृद्धि एकान्त के क्षणों में ही सम्भव है । एकान्त में मन को तीव्र करो और उसे चिन्तन करने के लिए एक विचार दो उसी पर मनःशक्ति का तीव्र प्रवाह छोड़ दो । जितनी देर तुम्हारा मन उस एक विचार पर केन्द्रित रहेगा, उतनी देर वह तुम्हारे अव्यक्त मन की स्थायी सामग्री बनेगा ।

उदाहरण स्वरूप चित्त को निम्न वाक्यों पर कुछ कुछ क्षणों के लिए केन्द्रित करो—''अनन्त ज्ञान, अनन्त जीवन, अनन्त प्रकाश, पवित्रता एवं प्रेम करना झरना मेरे अन्तर में है । सम्पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य का मूल स्रोत अनन्त एवं अपार है । अनन्त परमात्मा में से व्यक्ति रूप में सामर्थ्य मुझ में प्रकट हो रही है ।''

''परमात्मा की शक्तियों में से मैं अपना भाग खींच रहा हूँ । चेतन तत्व मेरे शरीर, मन और आत्मा में अखण्ड नवीन रचना कर रहा है । मैं चेतन तत्व को अर्न्तवाह्य परिपूर्ण देख रहा हूँ । मुझे अपनी अद्‌भुत शक्तियों का आदि स्रोत प्राप्त हो गया है ।''

एकान्त में आप ऐसा सोचिए कि आपके मनोरथ क्रमशः आपकी ओर आकर्षित होकर खिंचे आ रहे हैं । आपका विद्युत प्रवाह दृढ़ता से आपको आगे ढकेल रहा है । आपकी मुश्किलें आसान हो रही हैं । क्रमशः सिद्धि की ओर अग्रसर हो रहे हैं ।

एकान्त स्थान आशापूर्ण, शुभ-सूचक चित्रों को मनोमन्दिर में सजाने का सबसे उत्तम समय है । शुभ भावना को एकान्त में अपने अव्यक्त मन में प्रवेश करना चाहिए । तत्पश्चात् क्रमशः उन्हें संकेत देकर दृढ़ बनाना चाहिए ।

मनुष्य को केवल जिह्वा से ही नहीं, किन्तु अपने मन, वचन, कर्म तीनों से ही संकेत में विश्वास रखना चाहिए । जो संकेत वह एकान्त में अपने आपको दे, उनमें उत्साह भरा हो, इच्छा की अग्नि प्रदीप्त हो । जैसा मनुष्य भीतर से हो, वैसा ही बाहर से अपने को प्रकट करे ।

''उत्तम समय आ रहा है । मैं प्रतिदिन अच्छे और बुरे जीवन की ओर अग्रसर हो रहा हूँ मेरा कल आज से सुन्दर होगा''—ऐसी भावना से नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है ।

''मेरी प्रकृति अभिलाषाओं के पीछे ऐश्वर्य, ईश्वरत्व अन्तर्हित है ।मैं अपने हृदय से आनन्दमय भवन में आदर्श का आभास देखता हूँ, उन्हीं का प्रकाश करता हूँ । मेरी मानसिक वृत्तियों, हार्दिक अभिलाषाओं को प्रकृति देवी सुनती है और उसका उपयुक्त उत्तर भी देती है ।'' इसी भावना में विहार कीजिए ।

**संकेत के दैनिक अभ्यास**—प्रत्येक दिन जब-जब तुम श्रद्धापूर्वक एकाग्र मन को अपने आपको संकेत देते हो, कुछ न कुछ उन्नति कर लेते हो । जब तुम अपने आपसे कोई छोटा कार्य ठीक तरह करा लेते हो, तो तुम्हारी शक्ति में वृद्धि होती है । अव्यक्त रूप से तुम्हारी शक्तियों को संकेत का शक्तिशाली अमृत प्राप्त हुआ करता है जिससे तुम्हारी परिपुष्टि होती है ।

एक ऐसा स्थान निश्चय करो जहाँ एक विशेष समय बैठकर तुम सब संकेत दे सको । जिस प्रकार तुम भोजन ग्रहण करना नहीं भूलते उसी प्रकार स्व संकेत का मानसिक भोजन ग्रहण करने में भूलचूक कदापि न करो । स्मरण रहे, एक दिन भूलने से कई दिन का प्रभाव नष्ट हो जाता है । तुम्हारी श्रद्धा को भी ठेस पहुँचती है ।

प्रत्येक दिन तुम अपने कार्य के किसी विशिष्ट अंग को हाथ में लो और प्राणपण से लग कर उसे पूर्ण कर डालो । पहले अपेक्षाकृत छोटे कार्य करते रहो, फिर क्रमशः बड़े-बड़े कार्य लेते रहो, तुम्हारी शक्ति दिन पर दिन बढ़ेगी ।

प्रत्येक दिन तुम जिस व्यक्ति पर चाहो अपना प्रभाव डालने की कोशिश करते रहो । पहले

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


साधारण व्यक्तियों पर अपनी शक्ति अजमाओ फिर ऊँचे व्यक्तियों को चुनो ।

शक्ति प्रत्येक दिन बढ़ानी चाहिए । दो-एक दिन आत्मबल संग्रह करने के पश्चात आत्मसंस्कार का कार्य छोड़ देने से एकत्रित शक्ति भी नष्ट हो जाती है ।

शक्ति संग्रह का प्रथम सोपान अपेक्षाकृत कष्टप्रद हुआ करता है । प्राय: प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का पहला कदम मुश्किल होता है । किन्तु एक बार जागरण होने के पश्चात मेधावी पुरुष रुकता नहीं । उसके अन्तर्मन में सब प्रकार के विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है किन्तु दुर्बल श्रद्धा रहित संकेत हमारे अन्तर्मन को प्रदीप्त नहीं करते । निज मन में सर्वप्रथम प्रबल और पूर्ण इच्छा उत्पन्न करो । फिर ऐसा उपक्रम करो जिससे वलवती इच्छा उत्पन्न हो। फिर ऐसा उपक्रम करो कि निरन्तर उसी प्रकार के मनोवेगों का प्रवाह चलता रहे ।

कार्य प्रारम्भ करने के कुछ दिन पश्चात तक कोई विशेष परिवर्तन प्रतीत नहीं होता क्योंकि सर्वप्रथम हमारे अर्न्तप्रदेश में उचित मन:स्थिति का निर्माण होता है । पुरानी ग्रन्थियाँ नष्टभ्रष्ट होती हैं । तथा नवीन ग्रन्थियों का निर्माण होता है । अत: जिस शक्ति, उद्देश्य, कार्य को तुम प्राप्त करना चाहते हो उसे स्पष्ट रूप से मन में स्थिर करो । उस वस्तु विशेष के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप की मन में रचना करो और प्रत्येक दिन उस उद्देश्य को सुदृढ़ करते रहो, यहाँ तक कि वह मन के गहरे भाग में अंकित हो जाय । प्रतिभा का रहस्य अन्तर्मन को जाग्रत करना है ।

**दूसरों के अनिष्टकारी संकेत**–समय-समय पर संसार के स्वार्थी मनुष्य हमारे मन में मिथ्या विचार ला कर प्रवेश कर देते हैं और हम उन्हें ग्रहण कर लेते हैं । यही पतन का मुख्य कारण है । गुलामों की तरह तुम दूसरों के अनिष्टकारी संकेतों को ग्रहण कर लेते हो और मन:प्रदेश में चारों ओर भ्रान्ति के विषैले कीटाणु फैल जात हैं ।

दृढ़तापूर्वक कहो ''मैं दूसरों के विचारों के आधीन नहीं हूँ, स्वयं अपने विचारों के बल पर खड़ा हूँ । मैं उच्च विचार ही ग्रहण करूँगा, संसार में जितने महत्वाकांक्षी पुरुष हुए है उन्होंने संसार की टीका टिप्पणी की तनिक भी परवाह न की । उन्होंने अपना कार्यक्रम-अपना वातावरण स्वयं बनाया । मैं भी स्वयं अपने पर शासन करूँगा । मैं अपने आपको सांसारिक कुटेवों से दूर रखूँगा । मैं अपने आपको बन्धनों से दूर रखता हूँ । मैं दूसरों के हाथ का खिलौना मात्र नहीं हूँ किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ । अपने जीवन का, संकल्पों का स्वामी हूँ, मैंने अपने जीवनक्रम पर पूर्ण अधिकार कर लिया है । दूसरों के प्रतिकूल संकेतों से मैं विक्षुब्ध नहीं होता । दूसरे मनुष्य कुछ का कुछ कह कर मुझे पथच्युत नहीं कर सकते । संशय मेरी प्रगति में बाधा उपस्थित नहीं कर सकते ।''

यदि कोई प्रतिकूल संकेत आप को मिलता है तो दृढ़तापूर्वक उसका सामना कीजिए । अपने मन:केन्द्र में उसे कदापि प्रवेश न होने दीजिए । यदि कोई निर्देश करता है-'आप बड़े दुबले प्रतीत होते हैं । बीमार जान पड़ते हैं । मुँह बड़ा उतरा हुआ है ।' तो संकेतों को कदापि स्वीकार न कीजिए । उत्तर दीजिए-''मैं तो शान्ति स्वरूप हूँ । मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल दुरुस्त है । आप भूल करते हैं मैं दिन प्रतिदिन ऊँचा उठ रहा हूँ ।'' ऐसा करने से भ्रान्ति के उन अनिष्टकारी विचारों का जादू तुम्हारे ऊपर न पड़ेगा । प्रत्युत वे लौटकर अनिष्टकारी संदेश देने वालों को हानि पहुँचायेंगे ।

यदि कोई आपका मजाक करे, तो उसकी ओर से ध्यान हटा लीजिए । उसके संकेतों पर कुछ न ध्यान दीजिए । ऐसा करने से मजाक करने वाले को बड़ा बुरा मालूम होगा । बुरा इसलिए मालूम होगा कि उसके अनिष्टकारी संकेत पुन: उसी को क्षुब्ध करेंगे ।

दूसरे के अनिष्टकारी संकेतों को अन्त:करण में प्रवेश न होने देना शान्ति स्थापित करने का सर्वोत्तम उपाय है इस प्रकार तुम अनेक व्यक्तियों के व्यंग-वाणों से त्राण पा सकते हो ।

तुम्हारे संकल्प इतने परिपुष्ट हों कि कोई उन्हें हिला न सके । उन की नींव इतनी गहरी हो कि प्रतिकूल तूफान उसे उखाड़ न सकें । तुम व्याख्यान दे रहो हो । कोई खड़ा होकर कुछ आक्षेप करके

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तुम्हें लज्जित करना चाहता है । तुम उधर ध्यान ही न दो । जब तुम कर्तव्य मार्ग पर अग्रसर होगे, तो अनेक अनष्टिकारी व्यक्ति तुम्हारा विरोध करेंगे । तुम उनके प्रतिकूल संकेतों को अन्त:करण की शान्ति भंग न करने दो ।

जब-जब तुम्हें दूसरों के प्रतिकूल संकेतों का प्रभाव पड़ता हो, अपनी रक्षा करो । उसे नष्ट होने दो । दूसरों के संकेतों से प्रभावित न हो जाओ । कितने ही मानसिक निर्बल व्यक्ति दवाइयों के विज्ञापन पढ़ने से संकेत ग्रहण कर लेते हैं । वे मान बैठते हैं कि उन्हें इधर-उधर रोग छिपे पड़े हैं । कितने ही बीमार पड़ जाते हैं । प्रतिकूल संकेत से मृत्यु तक सम्भव है । यदि विष का लेविल लगी हुई बोतल का पानी भी पिला दिया तो केवल उस लेबिल मात्र से इतने भयंकर संकेत मिलते हैं कि मृत्यु सम्भव है । सर्प का विष मनुष्य को इतना नहीं मारता, जितना कि यह संकेत कि उन्हें सर्प ने काटा है और सर्प के दंश से मनुष्य को मर ही जाना चाहिए । सर्प का विष इतना विषैला नहीं जितना विषैला उसका संकेत ।

आप प्रण कीजिए कि दूसरे स्वार्थी व्यक्ति जो कहते हैं उस पर विश्वास न करेंगे, उनके छलयुक्त विचारों में न फसेंगे । अपने मन की बागडोर स्वयं अपने हाथ में रखेंगे, स्वयं अपना भविष्य निर्माण करेंगे अपने प्रति सच्चे रहेंगे । फालतू विचारों से परेशान न होंगे ।

तुम्हारी समस्त चिन्ताऐं, समस्त भ्रान्तियाँ दूसरे के प्रतिकूल संकेतों के परिणाम हैं । तुम जब तक अज्ञान में हो तब तक उनसे चिपटे रह सकते हो । जब तक ये अनिष्टकारी संकेत तुम से चिपटे रहेंगे तुम्हें अशान्त बनाये रखेंगे, चैन न लेने देंगे, तुम्हारी स्वर्ण रूपी आत्मा को विशुद्ध न होने देंगे । जब तक तुम इस मल से युक्त हो, अपने वास्तविक स्वरूप को भूले हुए हो । तुम्हारे अन्त:करण की दुर्बलता, भय एवं चिन्ता का एक मात्र कारण यह अज्ञान युक्त संकेत ही है । मानव समाज का एक वृहत भाग इन दुर्बल संकेतों से मानसिक दासत्व का शिकार बन गया है । जैसी संकीर्ण मानसिक भूमिका में निवास करते हैं वैसे ही बन जाते हैं ।

# तुम दास हो या स्वामी

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति हैं-जिनका जीवन-स्रोत दासत्व, बन्धन एवं परतन्त्रता की कुत्सित विचारधारा के कारण अवरुद्ध हो गया है, जो निरन्तर डरपोक, भयभीत एवं हीनता की भावना के वशीभूत होकर निजत्व को त्याग बैठे हैं और दूसरों के विचारों पर निर्भर रहते हैं । दूसरे वे जिनमें अपनापन, मौलिकता एवं आत्माभिमान अवशेष है, जो पक्षी एवं निस्पन्द वायु की भाँति स्वतन्त्रता के पुजारी हैं, स्वयं अपने स्वामी हैं, खुद अपने शरीर के मालिक हैं । उनके विशाल हृदय में भय, शंका एवं कायरता की अनिष्ट शंकाएँ उत्पन्न नहीं होतीं । वे क्षण-क्षण अन्त:करण की शान्ति भंग करने वाले राग, द्वेष, भय, कमहिम्मती के, स्वनिर्मित बन्धनकारी नियमों को मानस क्षेत्र में कदापि प्रवेश नहीं होने देते ।

क्या तुमने कभी इस तत्व पर विचार किया है कि तुम दास हो या अपने स्वामी ? तुम अपने को किस श्रेणी में रखते हो ? अपने हो या दूसरे के ? तुम अपनी आत्मा पर भय एवं चिन्ता का बोझ डालते हो ? तुम्हारे मन के अन्तस्थल में भय का संस्कार तो प्रबल नहीं हो गया है ? क्या तुमने अपने भीतर दासत्व के, क्षुद्रत्व के, विचारों को आश्रय देते हो ? क्या तुम अपनी तुच्छता, दीनता, हीनता, गरीबी, मूर्खता की संशयात्मक विचारधारा में अस्तव्यस्त रहते हो ? क्या तुम अन्य व्यक्तियों के सहारे खड़े हो ?

तुम्हारे कितने ही दु:ख केवल भय के कारण हैं । मनुष्य के जीवन शक्तियों का नाश करने वाले भय महादुष्ट राक्षस हैं । असंख्य मनुष्य आज केवल भय के अनिष्टकारी संकेतों से जीवन बरबाद कर रहे हैं । भय से उत्पन्न दुर्वृत्तियाँ सब प्रकार के पुरुषार्थ को नष्ट कर देती है ।

**भय का कारण प्रतिकूल संकेत है**-भय क्या है ? आदिकाल से अनिष्टकारी संकेतों का बृहत भण्डार । न जाने कब से हम अधोगामी संकेतों का संचय करते आ रहे हैं । अविश्वास, अश्रद्धा, संकोच, लज्जा, कायरता, ग्लानि आज का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


नहीं है । इनका संग्रह हमारे पूर्व पुरुषों ने दैनिक जीवन में आने वाली अनेक आपदाओं को सहकर किया है ।

किसी आती हुई आपत्ति की भावना से मन में एक आवेग उत्पन्न होता है । हम सोचते हैं अब यह हुआ तो इसके साथ में कृति-स्वरूप अब अमुक बात होनी चाहिए । कल्पना करके डर जाते हैं । भय जब स्वभावगत हो जाता है तब कायरता या भीरुता कहलाता है । पुरुषों में भीरुता भयंकर दुर्गुण है ।

संसार में तुम सर्वथा स्वछन्द हो । तुम्हें पूर्ण निर्भय जीवन व्यतीत करना है । किसी से भयभीत नहीं होना है, तुम्हारे अन्तर-प्रदेश में जो भय की ग्रन्थियाँ पड़ गई हैं उनका मूलोच्छेदन करना है । केवल तुम्हारी भय की कल्पना ही तुम्हें चिन्तित करती है । जिस डर की तुम कल्पना कर रहे हो वह कभी आने वाला नहीं है ।

भय को दूर करने के लिए दिन में दो-तीन बार अभय होने की भावनाओं में प्रवेश करो । शब्दों को पूर्ण विश्वास पूर्वक अव्यक्त मन में जमाओ ।

**भय से मुक्ति की भावनायें**–"मैं भय के चंगुल से सदा सर्वदा के लिए निकल गया हूँ । अब मैं पूर्ण निर्भय, निडर, निशंक हूँ । कोई मुझे डरा नहीं सकता । भय की ग्रन्थियों को मैंने उखाड़ फेंका है । जड़ मूल से नष्ट कर दिया है । मैं अब अभ्युदय के पथ पर अग्रसर हूँ । अत: मेरा चित्त पूर्ण स्थिर है । डाँवाडोल नहीं होता । संसार के भय आघात-प्रतिघात मेरी मन की शान्ति भंग नहीं कर सकते ।

"मैं भय एवं पिशाची चिन्ता के दूषित विचारों की कल्पना को अपने अन्त:करण में पुष्ट नहीं करता । मुझे भली भाँति विदित हो गया है कि निश्चित और निर्भय व्यक्ति ही अभ्युदय के मार्ग का पथिक बन सकता है किन्तु डरपोक मनुष्य तो तनिक भी आगे नहीं बढ़ सकता ।

मैं अपने शत्रुओं की ओर से अभय हूँ, भय की कल्पना करता हूँ, न भविष्य की कल्पित चिन्ताओं को धारण करता हूँ । भय मेरा विचार सामर्थ्य नष्ट नहीं कर सकता ।

मैं तो पूर्ण निश्चित होकर यह कहता हूँ कि जिसके अन्त:करण का भय नष्ट हो गया, उसके समस्त दु:खों का अन्त सदा के लिए हो गया ।

मुझे कल की चिन्ता नहीं, कोई फिक्र नहीं, मैं उन्मुक्त हूँ, सर्वथा अपने आधीन हूँ, मेरा संसार तो आशा, श्रद्धा एवं उत्साह के सुनहरे डेरों से निर्मित है, भय के पिशाचों की शमशान भूमि नहीं है ।

"अब मैं किसी भय तथा चिन्ता के अधीन नहीं होता । भविष्य के दु:खों की कल्पना को हृदय में स्थान नहीं देता । मुझे न तो मृत्यु का भय है, न किसी मनुष्य का डर । मैं पीछे से अभय हूँ, आगे से अभय हूँ । मेरे अंग-प्रत्यंग पूर्ण परिपुष्ट हैं । उनमें शक्ति भरी हुई है, प्रबल प्रताप उत्साह भरा है । भय मेरी अभिवृद्धि में बाधा नहीं पहुँचा जा सकता, मैं भय से अधिक ताकतवर हूँ ।"

"मैने आत्म-श्रद्धा, निर्भयता, उत्साह, आशा के शुभ विचारों को अन्त:करण में आरूढ़ कर दिया है । मेरी आत्म-प्रेरणा आज से जाग्रत हो गई है, मेरी सब क्रियाएँ शक्ति से भर रही हैं ।"

"मैं विशुद्ध बलवान वातावरण का विकास करता हूँ । इस स्थान का अणु-अणु निडर है । वही निडरता मेरे रोम-रोम में प्रवेश कर रही है । मैं निर्भयता से संश्लिष्ट साहित्य पढ़ता हूँ, वैसा ही सृजन भी करता हूँ । मुझे परमेश्वर ने ऐसी अमोघ शक्तियाँ प्रदान की हैं कि संसार में कोई मुझे हानि नहीं पहुँचा सकता ।"

प्रत्येक रात्रि में उपर्युक्त अभय भावना पर मन को केन्द्रित करो । इन स्वस्थ विचारों को तन्मयता के साथ मन प्रदेश में प्रवेश दो । दो मास पश्चात् तुम्हारी भय की ग्रन्थियाँ स्वयं हट जायेंगी । निद्रा में प्रवेश करने से पूर्व मन को भय के विचारों से स्वच्छ कर लो, तत्पश्चात उपरोक्त संकेत दो । यदि कोई अनिष्ट विचार मन में प्रवेश हों या संस्कार जाग्रत हो उठे तो तत्काल ही उसे निर्मल करो ।

**आज मैं कल से बलवान् एवं सामर्थ्यशाली हूँ**–प्रत्येक दिन आपको कुछ न कुछ शक्ति संग्रह कर लेना चाहिए । रात्रि में जब तुम दिन भर के कार्यक्रम पर मनन करते हो तो कल की अपेक्षाकृत तुम्हें अधिक उन्नत जानना चाहिए । यही संकेत से कार्य निकालने की कला है । यदि तुम कल के ही स्थान पर टिके रहोगे, और शक्ति संचय न करोगे तो आत्म-विकास रुक जायगा निद्रा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


में प्रवेश होने से पूर्व जिन विचारों को तुम मन में लाते हो उनके वैसे ही संस्कार अंकित होते हैं ।

प्रात:काल आप सोचिये कि ''मैं कल से अधिक सामर्थ्यशाली हूँ, उन्नत हूँ । कल से आज तक मैंने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है । मैं उन्नति के पथ पर आरूढ़ हूँ । निरन्तर अग्रसर हो रहा हूँ । मेरी आत्म-श्रद्धा दिन प्रतिदिन बढ़ रही है । मुझ में परमात्मा ने अपूर्व बल दिया है । मुझे अपनी सफलता पर पूर्ण निश्चय है । मैं कठिन से कठिन कार्य करने में समर्थ हूँ । मेरे लिए कोई कार्य असम्भव नहीं । मैं निरन्तर आगे बढ़ता ही जा रहा हूँ । मुझे जो कार्य करना होता है, दृढ़ता तथा तत्परता से करता हूँ । मैं कभी कुमार्ग में प्रवृत्त न होऊँगा । मुझे तो महान कार्य कर दिखाने हैं । मैं सुस्त या अकर्मण्य नहीं पड़ा रहता प्रत्युत अदम्य उत्साह से अग्रसर होता हूँ । मुझे रुकना नहीं है, कोई मेरी वृद्धि को अवरुद्ध नहीं कर सकता । मैं मार्ग के कण्टक उखाड़ कर फेंकता चलूँगा । मैं अब विषय-वासनाओं के जाल में नहीं बँध सकता ।

मेरे हृदय में सद्बुद्धि का, सत-प्रेरणा का राज्य है । मैं अनासक्त होकर समस्त कार्यों में अग्रसर होता हूँ । मैं सच्चे हृदय से शुद्ध संकल्प से जीवन को महापुरुषों द्वारा बताये हुए मार्ग पर लगाता हूँ । मेरा मत पूर्ण स्थिर है । मेरा मन सुखदायक, स्फूर्तिदायक विचारों से परिपूर्ण रहता है । यही कारण है कि मैं उत्कृष्ट जीवन व्यतीत कर रहा हूँ । मैं बुराई को त्याग कर भलाई ग्रहण करता हूँ ।

इसी प्रकार के दृढ़ निर्देश बना लीजिए और पूर्ण श्रद्धापूर्वक आत्मा को उसमें स्नान कराइये । प्रतिदिन के अभ्यास से तुम्हें अपूर्व लाभ होगा । तुम्हारे मन में ऊँचा उठने की महत्वाकांक्षा प्रदीप्त होगी । यही तुम्हें परमार्थ की ओर ले जावेगी ।

**डायरी का प्रयोग कीजिए**—प्रात:काल से सायंकाल तक तुमने क्या-क्या किया ? किस-किस दशा में उन्नति की । कौन-कौन से महत्वपूर्ण कार्य किये ? इन सबको एक डायरी में दर्ज करते रहिए । निद्रा से पूर्व कुछ काल के लिए इन कार्यों पर तीव्र आलोचना कीजिए । यदि तुम्हारी अन्तरध्वनि उन कार्यों को उत्तम नहीं कहती तो दूसरे दिन प्रात:काल उत्कृष्ट जीवन की भावना का दृढ़ निश्चय कीजिए । यदि तुमने कार्य उचित किए हैं उसी प्रकार भविष्य में करने का निश्चय डायरी में नोट कर लीजिए ।

केवल सोच लेने मात्र से कि कल हम अमुक कार्य करेंगे आप अपने कर्तव्य का पालन कर सकेंगे । लिख लेने से संकेत और भी दृढ़ हो जायेंगे, सत्य का संचार होगा तथा आत्म सुधार का दृढ़ संकेत अकस्मात तुम्हारे अध्ययन अव्यक्त मन में प्रवेश कर जायगा । लिखने से तुम्हारे कार्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होंगे । नियमितता की अभिवृद्धि होगी तथा आत्मबल भी बढ़ेगा ।

सब महापुरुष डायरी लिखने के अभ्यस्त रहे हैं और उन्होंने समय का कंजूसों की भाँति उपयोग किया है । वे अपने कटु अनुभव तथा प्रेरणाएँ उन्हीं में लिखते रहे । उन्हें अपनी कमजोरियों के लिए आत्म-ग्लानि हुई । तत्पश्चात उन्होंने प्रगतिशील जीवन का पथ ग्रहण किया ।

डायरी के निम्न प्रकार कार्य प्रारम्भ कीजिए । अपना प्रथम निश्चय मुख्य पृष्ठ पर लिखिये-''मैं आज से दृढ़ निश्चय करता हूँ कि नित्य नियत समय पर ईश्वर की प्रार्थना करूँगा, मैं दृढ़ निश्चय करता हूँ कि नित्य नियमित व्यायाम करूँगा, अपने कर्त्तव्य के प्रति सच्चा बना रहूँगा । परम निर्भय होकर निज कर्त्तव्य पालन करूँगा । मैं किसी भय, चिन्ता या क्लेश से डर कर अपने निश्चित कार्यक्रम से कदापि न हटूँगा । मैं अपने संकल्पों पर अटल जमा रहूँगा । मेरे हृदय में जो उत्तम प्रेरणाएँ उठती हैं उनको अपने जीवन में प्रकट करूँगा ।

परमात्मा ने मुझे अतुल शक्ति से विभूषित किया है, अत: दृढ़ निश्चय भाव से मैं अपने व्रत में स्थिर रहूँगा । संसार के विकार मुझे सतपथ से च्युत नहीं कर सकते ।

''मुझमें अदम्य उत्साह है । मैं अपनी आत्मज्योति को शुद्धता तथा पवित्रता की भावना से प्रतिदिन प्रदीप्त करता रहूँगा । मेरे हृदय में निर्मल बुद्धि, सत्प्रेरणा, ज्ञान का प्रकाश उदय होता है । मैं ऐसा दृढ़ निश्चय से चलायमान नहीं कर सकतीं । मैंने करुणामय परमात्मा का आश्रय लिया है अत:

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अपने दृढ़ विश्वास से कठिन से कठिन विघ्न बाधाओं के आने पर भी मैं हटने वाला नहीं हूँ । आज से मैं एक नवीन पथ का अनुसरण कर रहा हूँ वह पथ सर्वथा नवीन एवं उत्कृष्ट है ।''

अपने निश्चयों को लिखकर तुम अधिकाधिक कार्य में प्रविष्ट हो सकोगे । नित्य अपने संकेतों को श्रद्धापूर्वक पढ़ो, उनका मनन करो । बुरे, डरपोक विचार आकर तुम्हें अशान्त न करें । तुम्हारी डायरी तुम्हारे आत्मोद्धार की सूचक है । यह हर कदम पर तुम्हारी सहायक हे । जितनी बार तुम अपने संकेतों का पालन करोगे, नव प्रेरणा प्राप्त होगी । दीर्घकाल तक शुभ संकेतों पर मन एकाग्र करने से तद्रूप हो जाता है । अत: जीवन को इस दिव्य संकेतों में डुबो दीजिए । आत्मा को इनमें तल्लीन कर दीजिए तथा कुछ काल के लिए सब कुछ विस्मृत कर दीजिए । जो मनुष्य अपने चंचल, अस्थिर विचारों को वश में कर सत्प्रेरणा प्राप्त कर रहा है वह प्रतिदिन ज्ञान प्राप्त कर रहा है ।

जगतपिता परमात्मा ने सृष्टि में संकीर्णता, सीमाबन्धन, दरिद्रता का स्थान नहीं रखा है । संकीर्णता, सीमाबन्धन, दरिद्रता संसार में नहीं प्रत्युत स्वयं हमारे अन्तर्मत में प्रविष्ट हो गये हैं । स्वयं हमारे अन्त:करण में ये विषैले कीटाणु बलात आ घुसे हैं और उन्होंने हमारे प्राण तत्व का भयंकर ह्रास किया है । पृथ्वी पर तो कोई भी मनुष्य दरिद्र, असमर्थ, क्षुद्र या संकीर्ण नहीं होना चाहिए । दोष स्वयं हमारा ही है । विरोधी भाव रखकर भला हम किस प्रकार उन्नत अवस्था में पहुँच सकते हैं ? आत्मविश्वास के आधार पर ही हम अपने जीवन को सुखी एवं समृद्धिशाली बना सकते हैं ।

## भीरु होकर नहीं निर्भय बनकर जियें

नैतिक गुणों में निर्भयता एक महान सद्गुण है । यही वह गुण है जिसके आधार पर मनुष्य कठिन से कठिन काम करके दिखला देता है । संसार में जहाँ जो भी महान पुरुष हुए हैं उन सबमें निर्भयता का सद्गुण अवश्य रहा है । साथ ही जो जितना अधिक निर्भय रहा है उतना ही अधिक महान पथ पर अग्रसर होने पर अथवा समाज की हानिकारक परम्पराओं को मिटाने का बीड़ा उठाने वालों को आपत्तियों और जन-विरोधों का सामना करना ही पड़ता है । एक सच्चा सुधारक होता है और दूसरी ओर विरोधियों का बड़ा जन समूह जो कि उस सत्पुरुष के प्राणों का ग्राहक बना होता है । तब भी वह व्यक्ति अपनी सच्ची बात कहता हुआ अन्ध परम्पराओं पर कुठाराघात करता रहता है । इस प्रकार एक प्रचण्ड साहस उस निर्भयता का ही प्रसाद होता है । जो कि उस महापुरुष की आत्मा में निवास करती है ।

जहाँ एक भीरु व्यक्ति सत्य का पक्ष होने पर भी किसी एक विरोधी के सम्मुख नहीं ठहर पाता, वहाँ एक निर्भय पुरुष हजारों में सिंह की तरह दहाड़ता है । निर्भयता एक महान दैवी गुण है-जो मनुष्य को सिंह पुरुष बना देता है । भगवान बुद्ध महावीर, दयानन्द, लूथर और महात्मा गाँधी प्रभृति महापुरुष निर्भयता के जीते जागते उदाहरण थे । इन्होंने अपने विरोध में लाख-लाख व्यक्तियों के होते हुए भी अपने सदुद्देश्यों को निर्भयता के बल पर पूरा कर दिखाया ।

निर्भयता का प्रभाव बड़ा प्रभावशाली होता है । एक निर्भय पुरुष अपने आस-पास के सारे लोगों को निर्भय बना देता है । जिस आबादी में एक निर्भय तथा साहसी व्यक्ति रहता है उस आबादी में गुण्डे लफंगों की गतिविधियाँ नहीं चलने पातीं । उस एक सत्पुरुष के प्रभाव से आबादी में साहस तथा निर्भयता का वातावरण छाया रहता है । लोग उसके आधार पर किसी भी बुराई से टक्कर लेने को तैयार रहते हैं । जिस देश और समाज के नेता जितने निर्भय और साहसी होते हैं उसके जनगण भी उसी अनुपात से निर्भय और साहसी बनते हैं । सेनापति का साहस और निर्भयता अपनी सेना के बीच आ जाता था, उस समय उसकी निर्भयता और साहस के प्रभाव से हर सैनिक अपने नेपोलियन का ही आदर्श अनुभव करने लगता था । निर्भय पुरुष सत्य के पक्ष में मौत के सम्मुख भी वक्ष तान कर बढ़ते चले जाते हैं ।

निर्भयता मनुष्य की जीवन्त आत्मा का प्रमाण है । जिसकी आत्मा मर चुकी होती है,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसका तेज समाप्त हो गया होता है वह मनुष्य कायर बन जाता है । आत्मा की तेजस्विता सदाचार से बढ़ती और बनी रहती है । जब मनुष्य सदा सत्य ही बोलता है, सत्य व्यवहार करता है और सत्य विचार ही करता है तो उसकी आत्मा का तेज प्रखर होता है और उसी के अनुसार ही उसकी निर्भयता का भाव भी विकसित हो जाता है । जो झूठा, छली और दम्भी होता है वह ऊपर से एक बार निर्भयता का नाटक भले ही कर दिखाए पर वास्तव में वह होता बड़ा कायर है । अपराध वृत्ति के लोग निर्भय रह ही नहीं सकते । यह असम्भव है ।

जहाँ दुराचार कायरता का दोष पैदा करता है, वहाँ कायरता मनुष्य को अपराधी बना देती है । जो व्यक्ति कायर और साहसहीन होता है वह विरोध और विपत्ति के भय से खुलकर पुरुषार्थ के क्षेत्र में नहीं उतरता । निर्भय और साहसी व्यक्ति को कपट का सहारा नहीं लेना पड़ता । वह अपनी उन्नति के लिए खुलकर ठोककर मैदान में असत्य तथा अनाचार का विरोध करता है ।

निर्भय और साहसी व्यक्तियों का ही काम है कि समाज में दुष्टताएँ तथा दुष्प्रवृत्तियाँ छाने नहीं पातीं । अन्यथा समाज के दुष्ट व्यक्ति सारे समाज को ही नरक निवास बना डालें । वास्तव में जब कायर और कुचालियों की संख्या समाज में बढ़ जाती है तब समाज बड़ी गहरी विपत्ति में फँस जाता है । वह न केवल निर्बल और संत्रस्त ही बन जाता है बल्कि उसके नष्ट हो जाने तक की आशंका पैदा हो जाती है । किन्तु धन्यभाव साहसी पुरुषों को शतशः धन्यवाद है कि वे समाज के किसी कोने से उठकर आते हैं और फैली हुई बुराइयों को न केवल ललकारते ही हैं । बल्कि उनको जड़मूल से उखाड़ कर फेंक देते हैं । यह निर्भय और साहसी व्यक्तियों का ही सौभाग्य होता है कि वे सदुद्देश्यों के लिए न केवल कष्ट ही सह लेने की शक्ति रखते हैं बल्कि उसके लिए हँसते-खेलते हुए बलिदान भी हो जाते हैं ।

भय अथवा कायरता बहुत बड़ा दोष है । जिसे यह घेर लेता है उसका जीवन बेकार कर देता है । भीरु तथा कायर पुरुष संसार में कोई महान कार्य तो नहीं कर सकते वे व्यक्तिगत सामान्य जीवन भी सुख-शान्ति से नहीं बिता पाते । कायर और डरपोक लोग संसार में सबसे ज्यादा सताये जाते हैं । जरा-जरा सी बात में हर कोई उन्हें दिखला और धमका सकता है । कायर और क्लीव व्यक्तियों के ही अधिकारों का हरण किया जाता है कायर स्वभाव के व्यक्ति संसार में पग-पग पर डरते-मरते रहते हैं । उन्हें रास्ता चलते गुण्डों लफंगों का भय सताता है । रात में अकारण ही चोर डाकुओं की आशंका उनकी नींद का हरण कर लेती है । किसी से यदि कहा सुनी हो गई है तब तो उनका सारा समय डरते-डरते ही बीता करता है । कायर व्यक्ति स्वभाव से ही अपने निर्बल और असहाय समझ लेता है । कायरता और भीरुता बड़ा भयानक दोष है । यह आत्मावान व्यक्ति के लिए एक कलंक है । भीरुता की मनीषियों ने मनुष्य की जीवित मृत्यु बतलाया है । कहा है कि जो कायर होता है उसे भय का भूत हर समय घेरे हुए त्रस्त करता रहता है जिससे वह जीवन का कोई आनन्द नहीं उठा पाता ।

कायरता की उत्पत्ति निर्बलता और चरित्रहीनता से होती है । जो मनुष्य असंयम तथा असावधानी द्वारा अपना स्वास्थ्य नष्ट कर डालता है, शरीर की शक्ति समाप्त कर डालता है वह तो स्वभावतः सबसे भयभीत ही रहेगा । जिसके शरीर में शक्ति नहीं बल और सामर्थ्य नहीं वह कदम-कदम पर हर व्यक्ति से डरता बचता ही चलेगा । यदि उसे कोई अकारण ही दबा लेगा तो भी सहन कर लेगा । निर्बलता के कारण अपने स्वत्वों को भी मजबूर होकर छोड़ देता है । संसार में निर्भय होकर रहने के लिए शक्ति की नितान्त आवश्यकता है ।

इसके साथ ही बहुत बार ऐसे लोगों को भी कायर तथा भीरु पाया जाता है जो देखने सुनने में बड़े ही स्वस्थ और बलिष्ठ विदित होते हैं । ऐसे लोगों की भीरुता का कारण मानसिक दौर्बल्य होता है । जिसकी उत्पत्ति चरित्रहीनता से होती है । जो चोर व्यभिचारी अथवा असत्यनिष्ठ है उसका हृदय बहुत कमजोर और आत्मा बड़ी मलिन होती है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उसका पाप उसे भीतर ही भीतर दमित करके खोखला बना देता है । जब तक मनुष्य का पाप खुलता नहीं उसकी आत्मा ही उसे त्रस्त अथवा भयभीत बनाए रखती है और समय आने पर भंडा फूटता है तब तो उसके भय का पारावार नहीं रहता । समाज की कोप दृष्टि उसके प्राण सोख लेती है और वह जड़वत् किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर पूरी तरह से निस्सहाय तथा निरुपाय हो जाता है । उस पर चारों ओर से निन्दा, लांछन और अपमान की बौछार होने लगती है ।

भीरु स्वभाव के व्यक्तियों के जीवन की सारी प्रगति रुक जाती है । उन्हें पग-पग पर बाधाएँ और विरोध घेरते रहते हैं । कायर व्यक्ति प्राय: परावलम्बी बन कर दूसरे की आड़ में जीवन चलाने की कोशिश करते हैं कायर व्यक्तियों को स्वाधीनता में नहीं पराधीनता में ही अपनी सुरक्षा तथा सुख शान्ति मालूम होती है । यह कारण है कि स्वावलम्बन के लिए जिस शक्ति, साहस और दृढ़ता की आवश्यकता होती है कायर व्यक्ति में उसका अभाव रहता है । इस प्रकार का पराधीन तथा परावलम्बी व्यक्ति संसार में उन्नति ही क्या कर सकता है । कायर व्यक्ति स्वभावत: निराश तथा निरुत्साह बना रहता है । प्रथम तो वह किसी प्रगति के लिए कदम उठाते डरता है, और यदि उठाता भी है तो असफलता का भय उसे पहले से ही सताने लगता है । जरा सा विरोध अथवा असहयोग देखकर वह अपना उठा हुआ कदम वापिस कर लेता है ऐसे कायर तथा साहसहीन व्यक्ति से उन्नति अथवा प्रगति की आशा नहीं की जा सकती ।

यश, सम्मान, प्रतिष्ठा तथा समृद्धि के उन्नत शिखर पर वे ही चढ़ सकते हैं जो अन्दर बाहर दोनों ओर से निर्भय तथा साहसी होते हैं । निर्भयता एक तेजस्वी गुण है । जिसकी प्राप्ति सत्य तथा सदाचार से होती है । सदाचारी व्यक्ति पवित्र जीवनयापन के कारण शरीर तथा मन दोनों से स्वस्थ रहता है । सत्य उसकी आत्मा को प्रकाशित बनाए रहता है जिससे उसे निराशा और निरुत्साह का अन्धकार नहीं घेर पाता । सदाचारी के लिए संसार में कहीं भी भय का कारण नहीं रहता । वह जिधर भी जाता है उसका आदर सम्मान भी होता है । दुष्टों का आतंक और कानून का भय उसे छूने तक नहीं पाता । सत्यनिष्ठ सदाचारी की आत्मा में निर्भयता, साहस तथा उत्साह की हिलोरें उठती और उसके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाती रहती है । मानव की सार्थकता इसी बात में है कि उसको हर प्रकार से निर्भयतापूर्वक यापन किया जाय । कायरता जीवित मनुष्य के समान होती है । वह मनुष्य का सारा सुख सारा चैन और सारा अधिकार अपहृत करा देती है ।

## विपत्ति को कैसे पराजित किया जाए

विपत्ति एक परीक्षा है । परीक्षा का उद्देश्य मनुष्य को मजबूत करना होता है । दंगल में उस्ताद अपने नये पहलवानों को खूब पटकनी देता है । बार-बार गिरता है । हाथ-पावों की कसरतें कराकर अपने शिष्य को आने वाली हर मुसीबत के लिए मजबूत बना देता है । इसी प्रकार विपत्ति हमें दो-चार पटकनी देकर मजबूत बनाने आती है । एक विपत्ति को सहन कर हम आने वाली उससे भी बड़ी मुसीबत को परास्त करने की ताकत प्राप्त कर लेते हैं । उत्तरोत्तर विपत्तियों को सहन करते-करते हम भावी जीवन के लिए हर प्रकार सुदृढ़ बन जाते हैं । आने वाली विपत्तियों को यों मात दीजिए ।

(१) जिस विपत्ति से नहीं बचा जा सकता, उसे सहन करने की ताकत इकट्ठी कीजिए । उसे ग्रहण करने के योग्य शरीर और मन को बनाइये । समय को अवसर दीजिए कि वह आपको नयी आने वाली बदली हुई परिस्थिति से युद्ध करने योग्य बना दे ।

आप जिस बात से किसी प्रकार नहीं बच सकते, उसके विषय में चिन्ता करने से भला, आपको क्या लाभ होने वाला है ? बस, आप अपनी कार्यशक्तियों को पंगुमात्र बनाकर ही रहेंगे । मृत्यु, हानि, विछोह, परीक्षा में फेल होना या और जो बात रुक नहीं सकती, उसे ग्रहण ही कर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लीजिए । समय में बड़ी ताकत है । वह बड़े से बड़े मानसिक घाव-भयंकर हानियाँ, दु:ख और तकलीफें कम कर देता है ।

मेरे एक मित्र ने एक पत्नी की मृत्यु के बाद चार विवाह किये । हर पत्नी के मरने पर स्वयं आत्म-हत्या के प्रयत्न किये । उन्हें किसी प्रकार समझा-बुझाकर रोका गया तो फिर समय के प्रवाह से उनके पुराने घाव भर गये । वे नये विवाह करते गये । आज वे वृद्ध हैं और अपनी चौथी पत्नी के साथ मधुर जीवन व्यतीत कर रहे हैं । उन्होंने समय को मौका दिया । समय बीतता गया और उनमें पत्नी के विछोह को सहन करने की ही नहीं, वरन् नया विवाह करने तक की नयी शक्ति आ गयी । अत: जो अपरिहार्य अर्थात् जरूरी है, उसे पूरी ताकत से ग्रहण कीजिये और समय को मौका दीजिए । आप विपत्ति को जरूर पराजित कर सकेंगे ।

संकट की घड़ी बीत जाने पर स्वयं आने लगती है । व्यग्र होने से कोई लाभ नहीं है ।

(२) कष्ट आने पर अपने विवेक बुद्धि द्वारा उसे परास्त करने की कोई युक्ति सोचिए । यदि आपका कोई इष्ट मित्र या सच्चा सनेही हो तो उससे सलाह लेकर उसके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही कीजिए । किसी प्रकार उससे कम से कम हानि हो, यह विचारिये । सच मानिये, आप जरूर कोई न कोई खोज निकालेगें । जो व्यक्ति कार्यवाही में तेजी और सतर्कता दिखाता है, वह अवश्य सफल होता है, कष्ट की घड़ी टल जाती है ।

(३) जीवन बहुत लम्बा है । यह पग-पग पर बहुमूल्य है । न जाने कब किस रूप में आपका भाग्य चमक उठे, अच्छे दिन आ जायें । प्रत्येक दिन नयी-नयी सम्भावनाओं से भरा पड़ा है । इसलिए निराश होने की आवश्यकता नहीं है । जीवन की सार्थकता इसी में है कि संसार के उपकार के लिए उसका अधिक से अधिक उपयोग किया जाय, मनुष्य आदर्श बने तथा पीछे विकृत होने पर भी दूसरे अंगों से जनता की सेवा की जा सकती है । दूसरों की सेवा में मनुष्य अपना दु:ख दर्द भूल जाता है । अत: दूसरों को सहायता देने पर मन को एकाग्र कीजिए ।

(४) आपको अच्छा स्वास्थ्य, प्यार करने वाला परिवार, पतिभक्ता पत्नी, बन्धु-बान्धव, मकान, वस्त्र, व्यापार, यश, प्रतिष्ठा, यौवन, कीर्ति-न जाने कितनी मंगलकारी वस्तुएँ प्राप्त हैं । असंख्य वस्तुएँ ऐसी हैं, जो दूसरों के पास नहीं है । आप इन्हें गिने और उन लोगों के जीवन की कल्पना करें, जिनके पास ये मंगलकारी वस्तुएँ नहीं हैं । फिर सोचिए, विपत्ति के लिए शोक करना कितना व्यर्थ है ।

(५) रामायणकालीन एक घटना आपकी निराशा को नव-प्रेरणा दे सकती है । लीजिए, सुनिए-

अपहृता सीता के कारण विरह-कातर राम एक दिन अत्यन्त निराश और दु:खी थे । कोई मजबूत सहारा नहीं दीख रहा था । चारों ओर जैसे अन्धकार ही अन्धकार था । सुग्रीव उन्हें एक सहारा मिला था लेकिन वह भी निरपेक्ष था ।

श्री राम को अपने असहाय एकाकीपन पर बेहद आत्मग्लानि हुई । संसार में उन्हें कुछ भी आश्रय नहीं दीख रहा था । जैसे सारा संसार ही खाली-खाली हो । परदेश में उस संकटकालीन परिस्थिति में वे लक्ष्मण को सम्बोधित कर बोले-

''लक्ष्मण ! सब दुर्दशा करके भी दुष्ट दैव न जाने मुझे अभी तक कितना कष्ट और देगा । संकटों को झेलते-झेलते मैं जैसे थक गया हूँ । साहस जबाब दे रहा है । घर छूटा, सगे सम्बन्धी छूटे, पतिव्रता सहधर्मिणी छूटी । सब ओर दु:ख ही दु:ख है । वन का संकटापन्न जीवन भी विधि को सह्य नहीं हुआ । उफ कैसी विवशता है ! हमारे वंश में आज तक मेरे जैसा दु:खभागी आदमी उत्पन्न नहीं हुआ है । लक्ष्मण ! बताओ, अब क्या करूँ ? मेरे तो हाथ-पाँव नहीं चलते ।'' भगवान ने आगे कहा-

**न वित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः ।**
**न चात्र तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल ।।**

भगवान श्री राम दु:खी ओर निराश होकर कहने लगे-

''लक्ष्मण ! मेरे पास धन (अर्थात् आर्थिक बल) नहीं है । मेरे पास शारीरिक शक्ति भी नहीं है । इस दु:ख सागर से पार उतरने का तुम्हारे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अतिरिक्त और कोई आश्रय नहीं है । मैं तो एकदम असहाय और निराश हो गया हूँ । जानकी को यदि कुछ हो गया, तो मैं जीवन से ऊबकर प्राण त्याग दूँगा ।''

लक्ष्मण महापराक्रमी भगवान की ऐसी निराशमयी वाणी सुनकर चकित रह गये । क्या भगवान श्री राम जैसे शक्ति सम्पन्न व्यक्ति को निराश-निरुपाय होना चाहिए ? कदापि नहीं ।

निराश श्रीराम को ऐसा निस्तेज और निरुत्साह देखकर लक्ष्मण ने कहा-''भगवन् ! क्या आपको अपने लक्ष्मण जैसे वीर भाई के बाहुबल पर भरोसा नहीं है ? इसके अतिरिक्त हमारे पास भाई भरत, राजा जनक एवं सुग्रीव आदि के सैन्य बल का भरोसा है । हम सब आपके साथ हैं, जीवन के हर पग पर सहायता करने वाले हैं । यह जीवन संघर्षपूर्ण है-

**'कर्मक्षेत्रं हि मानुष्यम्'** ।

*(म० भा० अनु० प० २१६।१३)*

अर्थात्- ''मानव-जीवन कर्मक्षेत्र है ।'' अतः हमें-

**'आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन'** ।

*(वा० रां० सु० का० ४६।१५)*

अर्थात्- ''हमें अपनी रक्षा प्रयत्न से करनी चाहिए । निराश नहीं होना चाहिए ।''

**तस्माच्छो भो न कर्तव्यो व्यसने सति राघव ।**
**उद्यमे चित्तामास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता ।।**

अर्थात्- ''मनुष्य को (निराश न होकर) सदा अपने उद्यम और शक्ति का ही भरोसा करना चाहिए । कष्ट दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए ।''

जीवन के दीप उत्साह से जगमगाते रहें । उद्योग का प्रकाश हमारे चरित्र में स्थायी हो । हमारे मन में सर्वरक्षिका, सर्वशक्तिमती माँ दुर्गा की शक्ति उत्पन्न हो, जिससे हम अपने और जन-जन के अनिष्ट और अमंगल दूर कर सकें ।

लक्ष्मण के समझाने-बुझाने पर भी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम आश्वस्त न हुए । इतने में महर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे और राम को निराश हुआ देखकर बोले-

''राम ! जीवन में निराश होने से कैसे काम चलेगा ? हृदय में अदम्य उत्साह और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उत्साह को लेकर ही मनुष्य अपने जीवन की विविध कठिनाइयों को पार करता है । वन में आकर आप अपनी संकल्प शक्ति खो बैठे हैं । तभी आप शक्ति के अभाव में कातर और कायर बने हुए हैं । आप नौ दिन का व्रत लेकर शक्ति की उपासना कीजिए । मैं उसमें आपकी सहायता करूँगा । शक्ति की आराधना आपको रावण-विजय के लिए काफी ताकत दे देगी । पूर्वकाल में जब-जब संकट आया, तब-तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक ने शक्ति (महिमावती दुर्गा) की आराधना करके बल पाया है ।

''वह शक्ति नित्य, सनातन, सर्वादि कारण और सर्व कामप्रदा, दुःखनाशिनी है । उसके बिना कोई पलक भी नहीं मार सकता । विष्णु की पालन शक्ति ब्रह्मा की सृजन शक्ति, रुद्र की प्रलयशक्ति का आधार वही (दुर्गा) शक्ति है । प्रलय काल में निर्गुण होकर वह परब्रह्म में लीन रहती है और सृष्टिकाल में सगुण, सक्रिय होकर विश्व का संचालन करती है । अतः शक्ति की उपासना से नवजीवन प्राप्त कीजिए ।

राम ने नौ दिनों के व्रत उपावास से शरीर और आत्मा को शुद्ध किया, भगवती दुर्गा का अनुष्ठान किया । माँ की महती शक्ति का उनमें प्रादुर्भाव हुआ । इसी के आधार पर उनकी निराशा निरुत्साह और दुःख कम हुआ । उनका शरीर और आत्मा ओजस्वी बने और उन्हें पूर्ण विजय प्राप्त हुई । शक्ति की आराधना का प्रभाव यह होता है कि उससे मनुष्य की कष्टनिरोधिनी ताकत बढ़ती है । निर्बलता और हीनता की भावना हटकर साहस और का प्रादुर्भाव होता है । कहा गया है-

**ज्ञानतृप्तो न शोचति ।**

*(महाभारत, शा० ३३७।२४)*

अर्थात्-- ''ज्ञान से तृप्त विचारशील व्यक्ति व्यर्थ ही निराश नहीं होता, न शोक ही करता है ।''

जो मनुष्य कर्म और अपने लक्ष्य में तल्लीन होकर अपनापन भूल जाते हैं वे ही सफल होते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


संसार में सबसे बड़ी भूल वे लोग करते हैं, जो सच्चिदानन्द आनन्दकन्द ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हुए भी संसार में दु:ख और पाप का साम्राज्य मानते हैं ।

कड़ी चोटें लगने दीजिए । कड़ी चोटें खा-खाकर लोहा मजबूत बनता है, कमजोर शक्तिशाली बनता है, कड़ी चोटें जीवन का सच्चा पाठ पढ़ाती हैं और परिस्थितियों पर विजय पाने का ज्ञान देती हैं । मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम पर बचपन से ही चोटें पड़ी-अनगिनत चोटें-वनवास की असंख्य असुविधाएँ, भोजन, निवास राक्षसों की परेशानियाँ, सीताजी का अपहरण, रावण से युद्ध इत्यादि, किन्तु उन चोटों के बाद राम फौलाद ही बन गये । उनकी समस्त कमजोरियाँ शक्तिरूपी बन गयीं । टक्करों का स्वागत कीजिए और उनके विरुद्ध संगठित होकर कदम उठाइये ।

## अन्ध-विश्वास से मानसिक व्याधियाँ

**अन्ध-विश्वास से मानसिक व्याधि**—सोनीपत (पंजाब) के एक प्रोफेसर मुझसे मनोवैज्ञानिक परामर्श करने आये थे । उनकी समस्या संक्षेप से इस प्रकार थी-

"जब छींक आती है, तब मैं यकायक अपना सब काम छोड़ देता हूँ । मुझे अन्दर से ऐसा अनुभव होता है, जैसे कोई अनिष्ट होने वाला है । जैसे जीवन पर कोई भावी आपत्ति आ रही है । घर, बाजार, कालेज या मार्ग में कहीं भी क्यों न रहूँ, छींक आते ही रुक जाता हूँ । प्राय: मुझसे मेरा कार्य स्वयं ही छूट जाता है । जैसे किसी चलती हुई मशीन में ब्रेक लगते हैं और उसके पहिए एक दम रुक जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मस्तिष्क और शरीर अपने कार्य करने से रुक जाते हैं । यह छींक चाहे मेरी हो अथवा आस-पास रहने वाले किसी अन्य व्यक्ति की ही हो, छींक की ध्वनि सुनते ही मैं गुप्त भय, आशंका और विपत्ति के कारण डरावने विचार से भर जाता हूँ । छींक के भय से मैं बड़ा दु:खी हूँ और यह डर मुझे आगे नहीं बढ़ने देता । कोई उपाय बताइये ।

जब इन महाशय से अधिक बातें हुईं, तो उन्होंने सुनाया कि बचपन में जब कभी उन्हें छींक आती तो उनकी अशिक्षित माता उनके कोमल मस्तिष्क पर भय के विचार जमाया करती थी । वह कहती, "छींक भावी आपत्ति का चिन्ह है । छींक आते ही हमें सावधान हो जाना चाहिए । छींक आ जाये, तो कोई नया कार्य नहीं करना चाहिए । यदि कहीं जा रहे हो और छींक आ जाय तो रुक जाना चाहिए, अन्यथा काम सफल नहीं होता । कोई विघ्न अवश्य आ जाता है । सब दुर्घटनाएँ इसलिए होती हैं कि हम छींकते ही बाहर चल देते हैं । सावधान ! छींक आ जाये, तो कोई काम न करो ।" इस प्रकार के अनिष्ट विचार उनके गुप्त मन में गहराई से बैठ गये थे, जो बार-बार उन्हें अशान्त और दु:खी किये रहते थे । यह कमजोर मस्तिष्क पर गलत संकेतों या सजेशनों का विनाशकारी प्रभाव है ।

**गुप्त मन से अन्धविश्वास को निकालिये**—मैंने प्रोफेसर साहब को समझाया कि छींकने और अनिष्ट का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है । यह केवल मनुष्य का अन्धविश्वास मात्र है । छींक तो एक शारीरिक क्रिया है । हम जिस नली से साँस लेते हैं, उनका सम्बन्ध हमारे दिमाग से है । उस नली में कभी रुकावट आती है, तुरन्त इसकी खबर दिमाग के पास पहुँच जाती है और तभी जोर की साँस चलती है, जिसे हम छींक कहते हैं । मिर्च, तम्बाकू या और किसी तीखी चीज की सुरसुराहट से भी छींकें आती हैं । जुकाम सर्दी लग जाने से छींक चलती रहती हैं । सूर्य की ओर नाक में सींक इत्यादि चलाने से छींके आ सकती है । लोग सुँघती सूँघकर प्राय: छींकें लिया करते हैं ? जब छींक आ रही हो, तब यदि नाक के निचले भाग को जहाँ हड्डी खतम हो गई है, दबा दो तो छींक रुक जायेगी, लेकिन आती हुई छींक को रोकना नहीं चाहिए । यह नाक की संचित गन्दगी को साफ करती है । जिस तरह छींकना एक गहरी साँस छोड़ना है, उसी तरह जम्हाई लेना भी गहरी साँस लेने की क्रिया का ही नाम है ।

मैं बार-बार उपर्युक्त तर्कों को भिन्न-भिन्न तरीकों और भिन्न-भिन्न शब्दों में रोगी के सामने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दोहराता रहा । स्वयं कई बार उनसे उच्चारण कराया । उनसे कागज पर लिखाया । कई दिन इसी छींक के कारणों पर विचार होता रहा । तब उनके गुप्त मन से छींक सम्बन्धी अन्धविश्वास दूर हुआ । अनेक बार ऊपरी मन से तो वे इस अन्धविश्वास की मूर्खता पर विश्वास कर लेते थे, किन्तु गुप्त मन मजबूरी से उस गलत विचार को दृढ़ता से पकड़े हुए था ।

जब कोई मानसिक रोगी किसी कल्पित रोग या भ्रम से परेशान होता है, तो उसका कारण यही होता है कि वह रोग, विचार, रूढ़ि, जादू, टोना या अन्धविश्वास उसके गुप्त मन में एक जटिल ग्रन्थि का रूप धारण कर लेता है ।

रोगी को जब उसके कल्पित भयों या अन्धविश्वासों की तथ्यहीनता समझाई जाती है, तो वह ऊपरी मन से थोड़ी देर के लिए शुभ संकेत स्वीकार करता चलता है, पर गुप्त मन में वह या दुष्ट विचार जमा ही रहता है । अत: शुभ संकेतों को बार-बार कई दिन तक सच्चे मन और पूर्ण आत्मविश्वास से दुहराना चाहिए ।

मानसिक विकारों की जड़ निर्बल, संदिग्ध और भयपूर्ण विचार में छिपी है । जो व्यक्ति अपने प्रति ऐसे पोच विचार रखता है, उसके गुप्त मन में अनेक कल्पित और मिथ्या भयों की गाठें बन्धी रहती है ।

## आप सदा यह मानिये

''मुझ में प्रचुरता से धर्म और साहस भरा हुआ है । मुझे मिथ्या विश्वास या मिथ्या भय विचलित नहीं कर सकते । मैं व्यर्थ के रोग, क्रोध, आवेश, भय, निराशा आदि के विचारों को प्रश्रय नहीं देता, मेरा पथ कंटकाकीर्ण और अन्धकारमय नहीं हो सकता ।'' -यह विचार अपनी मानसिक बुनियाद में जमा लीजिए ।

जैसा तुम अपने आपको गिनोगे, जैसा तुम्हें अपनी योग्यता पर विश्वास होगा, जैसे-जैसे तुम्हें गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास होगा, तुम संसार के लिए अपने आपको जैसे उपयोगी और बजनदार गिनोगे, वैसा ही भाव तुम्हारे चेहरे पर और तुम्हारे आचरण में दीखने लगेगा ।

यदि तुम अपने आपको रोगी मानोगे तो सावधान ? वे ही रोग धीरे-धीरे तुम्हारे शरीर में प्रकट होने लगेंगे । जिस रोग का विचार मन में जम जायगा वही रोग शरीर में प्रकट हो जायगा ।

मन में एक कमजोर विचार रखना, अन्दर ही अन्दर किसी विशेष बात से डरते रहना, अपने चरित्र में कमजोरियाँ, विकार या त्रुटियाँ देखते रहना बड़ा ही खतरनाक है ।

सद्विचार मानसिक स्वास्थ्य की आधारशिला है । जिसने अपनी विचारधारा शुद्ध कर ली है, उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है । कहा भी है ।

**त्वम् नो मेधे प्रथमा ।**

*-अथर्ववेद ६।१०८।१*

अर्थात्- सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है ।

बेकार और बुरी बातों को छोड़कर केवल उपयोगी को ही ग्रहण कीजिए-

**श्वसित्पशु हंसो न सीदत्**

*-१।६५।६६*

अर्थात्- हंस की तरह गुण ग्राहक बनिये । अन्धविश्वास तथा मिथ्या को त्याग दीजिए ।

# आत्महीनता की प्रवृत्ति एक रोग है

आत्महीनता से ग्रसित व्यक्ति अपने अन्त:करण में नाना प्रकार की भ्रमात्मक त्रुटियों, न्यूनताओं, कमजोरियों की कल्पना किया करता है । कल्पनाशक्ति का उपयोग हित तथा अहित दोनों क्षेत्रों में सम्भव है । आत्महीनता का रोगी चित्त की वृत्तियों को व्याधि, दु:ख, न्यूनता तथा निर्बलता की ओर लगाता है । यह निरन्तर प्रतिकूल की धारणा से व्याकुल रहा करता है । विगत प्रतिकूल संयोग उसके स्मृति पटल पर पुन: आते हैं । वह किसी विशेष स्थल पर अपने आपको असमर्थ देखता है, अन्य स्थान पर तिरस्कृत अपमानित पाता है, । अमुक ने उसे कैसे कटु वचन उच्चारण किये थे, कैसा व्यवहार किया था उसे असंख्य कमियों की याद निरन्तर सताया करती है । व्यर्थ की चिन्ता, फिक्र, भय का बोझ डाल-डाल कर अपनी आत्मा को जर्जर कर डालता है ।

कमी किसी कटु अनुभूति काँटे की तरह अन्त: करण को बेधती है अत: हम उसे जानकर भी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अनजान बनने का प्रयत्न करते रहते हैं । हम नहीं चाहते कि कमी का अनुभव हमें बार-बार विक्षुब्ध करे । अत: हम उसे भूलने के लिए अनेक विफल प्रयास किया करते हैं । मन का कोई भी संस्कार व्यर्थ नहीं जाता । हम किसी बात की तरफ से मनोवेग बाँध नहीं सकते । मन में एक बार प्रविष्ट करने के पश्चात् प्रत्येक संस्कार पत्थर की लकीर हो जाता है । वह निश्चेष्ट नहीं हो सकता वरन् थोड़ा बहुत सदैव क्रियाशील रहता है । अत: हम जितनी प्रबलता से कटु अनुभवों को दबाने का उद्योग करते हैं, उतनी ही शक्ति से वह मन के पर्दे में बैठ जाता है । यह संस्कार इस भाग में दबा पड़ा रहेगा किन्तु जब मन का दबाव न्यून होगा, फौरन प्रबल हो उठेगा । यह संस्कार कभी व्यर्थ नहीं जावेगा वरन् सदैव वहीं बैठकर चेतन मन के दैनिक कार्यों को प्रभावित किया करेगा ।

परिस्थितिवश, कार्यों के परिवर्तन, समाज के व्यवहार तथा गृहस्थी के झंझटों के कारण सम्भव है कि कुछ समय के लिए यह प्रसुप्त संस्कार फीका पड़ जाय किन्तु उसकी प्रतिकृति हमारे दैनिक जीवन पर रहेगी अवश्य । विभिन्न अवसरों पर अनुभूत शोक, हर्ष, दु:ख तथा सुख, आशा और भय, राग और द्वेष, ज्ञान और अज्ञान सब मनुष्य के अन्त: प्रदेश में संचित रहते हैं । वे केवल उनकी विविध भूमिकाएँ हैं । उसी प्रकार की घटनाएँ, प्रसंगों, वर्णनों को पढ़ने, देखने या सुनने से पुराने अनुभव स्मृति-पटल पर आते हैं ।

अव्यक्त मन में दबी हुई पुरानी न्यूनताएँ, कमियाँ जब अनैच्छिक रूप में गुप्त मन में आना चाहती हैं, तब हमारा चेतन मन उन्हें दबाता है तथा प्रकाशित नहीं होने देता । पर इतने से ही गुप्त मन शान्त या निराश नहीं हो जाता । जब प्रकट मन सुप्तावस्था में आता है तो यह गुप्तमन फिर अपना कार्य नये जोश से प्रारम्भ करता है । यदि देखा जाय तो वास्तव में गुप्त मन के महत्व सम्मुख 'चेतन मन' की कोई गणना नहीं की जा सकती । वास्तविक मालिक तो हमारा गुप्त मन है । दो प्रकार की वृत्तियों का द्वन्द्व चलता रहता है और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक कार्य होते हैं । मनुष्य के अनेक विक्षेपों, टालमटोलों, बहाने-बाजियों, चिढ़ने या विवेकशून्य कार्यों का सर्वप्रथम सूत्रपात अचेतन जगत में ही होता है ।

अप्रिय अनुभव का संस्कार अन्त तक जमा हुआ देख गया है । भूतप्रेत आदि की भयंकर कहानियों के संस्कार बचपन से मन में प्रविष्ट होने पर बुढ़ापे तक लगे हुए पाये जाते हैं । जो भय प्रारम्भ में बैठ जाता है वह अप्रत्यक्ष रूप में अन्दर से ही अपना प्रभुत्व दिखलाया करता है । आत्महीन व्यक्ति के ये चिरसंचित भय के संस्कार ही उसे गुलाम बनाये रखते हैं । जो कुछ वह चिन्तन करता है उसमें भय की मिथ्या भावना मिश्रित रहती है अत: ऐसा व्यक्ति अप्राकृतिक लज्जा का अनुभव किया करता है । चाहे उसे कोई बड़ी से बड़ी यंत्रणा दे किन्तु वह चुप्पी धारण किये रहता है । दूसरों से हँसते-बोलते हुए उसे अत्यधिक शर्म-सी आती है । भयभीत होना उसका मानसिक मार्ग बन जाता है । उससे और कुछ भी करा लो किन्तु बातें करने के लिए न कहो । यह हृदय खोलकर स्पष्टतापूर्वक बातें नहीं कर सकता । चार आँख करने में उसे डर-सा प्रतीत होता है ।

दृष्टि नीची कर लेना किसी नवयौवना को भले ही सुशोभित करे किन्तु पुरुषों में तो यह बड़ा भारी ऐब है । दृष्टि नीची करने के कारण बिना अपराध के हम अपराधी बन जाते हैं । कितनी ही बार तो नीची दृष्टि देख कर लोग दोषी तक समझ लेते हैं । उफ ! कैसी कारुणिक मन:स्थित है उस व्यक्ति की, जो भला चंगा होते हुए भी आत्महीनता की ग्रन्थि के कारण अपमानित होता है ।

हीनता की भावना से ग्रसित व्यक्ति जब बाजार में निकलता है, या सभा इत्यादि में जाता है तो उसे ऐसा भय लगा रहता है कि संसार के सभी व्यक्ति उसी पर तीखी दृष्टि लगाये हैं । यदि दो चार व्यक्ति खड़े होकर जरा हँस दें तो उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे जानबूझ कर उसी के लिए सब प्रपंच हों तथा उसका अपमान किया जा रहा हो । चाहे वह कहीं हो, उसे ऐसा भान होने लगता है कि संसार उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक हावभाव, कार्य, छोटी-मोटी बात को घूर-घूर कर देख रहा हो । जैसे पत्थर-

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पत्थर तथा ईंट में सहस्रों नेत्र हों, जो उसे हड़प कर जाने पर तुले हों !

उसकी कृतियाँ निरालापन लिए होती हैं । जिधर जायगा अपना निरालापन अवश्य ले जायगा । कभी-कभी वह अपनी कमी को छिपाकर दूसरों पर मिथ्या आरोप करता है । कभी अपने आपको दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया करता है । यह अति-पूर्ति की प्रतिक्रिया है ।

## आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्मित होने के कारण

यह ग्रन्थि वास्तव में अपने आप में किसी विशेष कमी की अप्रिय अनुभूति से निर्मित होती है । कोई कमी, अप्रिय संयोग, कोई चिन्ता का भाव, कोई भय अचेतन मन में पुष्ट हो जाता है । किसी अवसर पर या किसी विशेष काल में कोई विशेष प्रकार की निर्बलता हमें अपने अन्दर बड़ी बुरी तरह अखरती है । दो एक बार उसी की आवृत्ति होने के पश्चात यह अनुभूति गहन हो उठती है । उसका संसार इतना गहरा पड़ता है कि भुलाये से नहीं भूला जाता । हमारे अन्दर की वृत्ति इस कटु अनुभव को ग्रहण कर लेती है तो वह सत्वस्थ होकर मन की स्थाई वृत्ति हो जाती है । ज्यों-ज्यों अन्तर की अचेतन वृत्ति उस विशेष धारणा को ग्रहण करती है त्यों-त्यों भावना ग्रन्थि मन में प्रबल होती जाती है । एक बार अन्तःदेश में जड़ पकड़ने के पश्चात यह भावना ग्रन्थि अव्यक्त मन में पूर्ण रूप से वर्तमान हो जाती है । इस ग्रन्थि के अनुभवों की प्रतिक्रिया पर विचार करने से पूर्व उसके कारणों को जान लेना आवश्यक है । निम्नलिखित कारणों के अध्ययन के पश्चात् पाठकों को विदित होगा कि भिन्न-भिन्न स्वरूपों में भी कारण केवल एक ही है । और वह है-कमी की कटु अनुभूति ।

**प्रथम कारण-शारीरिक कमी**-अधिकांश रोगी अपने शरीर में किसी न किसी प्रकार की कमी का अनुभव करते है । शरीर एक प्रकार की मशीन समझिए । जिस किसी की मशीन कमजोर टूटी फूटी होगी वह दूसरों के मुकाबले में निश्चय ही अयोग्य रहेगा । आत्महीन व्यक्ति अपने शरीर की निर्बलता या कमी के कारण बड़ी लज्जा का अनुभव किया करता है । प्रायः बाल्यावस्था में माँ-बाप बच्चों की शारीरिक कमियों, कमजोरियों तथा न्यूनताओं की ओर ध्यान नहीं देते, अतः जब बालक अपने आप को दूसरों की अपेक्षा कमजोर पाता है तो दूसरों से अकारण ही डरता तथा दबता है । दूसरे से दबने का अर्थ है अपने आपको दीन-हीन समझना । बाल्यावस्था से ही यह आदत बच्चों की पड़ जाती है ।

मान लीजिए एक विद्यार्थी अन्यों की अपेक्षा कद में नाटा है । उसका नाटापन खिल्ली का कारण बन जाता है, बात-बात पर उसे दबना पड़ता है । उसकी सही बात भी गलत समझी जाती है । ऐसा ही बार-बार होने के कारण उसका मन बुझ जाता है । लोगों की बातों से वह अपने आपको वैसा ही मानने लगता है । अन्य व्यक्तियों के संस्कार उसके अव्यक्त में गहरे जम जाते हैं । कालान्तर में यही संस्कार आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण कर देते हैं । उस व्यक्ति के अनजाने में ही पुराने संस्कार उसके जीवन पर प्रभाव डालते रहते हैं ।

एक और उदाहरण लीजिए । एक व्यक्ति काला है, उसका कालापन समाज की आँखों में खटकता है । लोग उससे कहते हैं-क्या आप कोयला खाते हैं ? क्या आपका जन्म कोयले की खान में हुआ है ? क्या कोयले का व्यवहार करते हैं इत्यादि । इन प्रसंगों को सुनते-सुनते वह थक सा जाता है । निरन्तर प्रतिकूल सन्देशों के संस्कार उसके अव्यक्त मन पर भयंकर आघात पहुँचाया करते हैं । उसके दुःख का इतना अनुभव होता है कि वह आत्महीनता की ग्रन्थि का रूप धारण कर छिपा बैठता है । अपनी कमी का अनुभव उन अप्रिय कटु क्षणों की दुःखद स्मृति वह भूलना चाहता है पर अव्यक्त मन में ऐसे अनेक अनुभव संस्कारों के रूप में वर्तमान रहते हैं । ये ही संस्कारों के रूप में वर्तमान रहते हैं । ये ही संस्कार उस व्यक्ति को अनेक विक्षिप्त जैसे व्यवहार, विवेकशून्य कार्य तथा बहानेबाजी को उत्तेजित करते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पतले-दुबले व्यक्ति इस ग्रन्थि से अधिक ग्रसित रहते हैं । बचपन में पतले-दुबले होने के कारण मजबूत लड़के उनसे दुर्व्यहार करते हैं । ये दुर्व्यहार अपना संस्कार उनके मन पर अवश्य छोड़ जाते हैं । बात-बात में उसे अन्य व्यक्तियों का मुख निहारना पड़ता है । कालान्तर में बड़ा होने पर भी वे संस्कार नहीं छूटते तथा आत्महीनता की ग्रन्थि बन जाती हैं ।

इसी प्रकार शरीर की अन्य कमजोरियाँ, न्यूनताएँ या अभद्रताएँ भी समाज की टीका-टिप्पणी का कारण बनती हैं–जैसे काना होना, लँगड़ा या कुरूप होना । कुछ बालकों में एक और कमी होती है जैसे देखने में लड़के का लड़की जैसा प्रतीत होना । इस दशा में लड़के से वैसा ही व्यवहार किया जाता है, जो विपरीत सेक्स के व्यक्ति से होता है । ऐसा बालक बहुधा यही ग्रन्थि उत्पन्न कर लेता है क्योंकि स्वभावत: स्त्रियों के मन में पुरुषों की अपेक्षा आत्महीनता का भाव अधिक होता है ।

जब शिशु शारीरिक शक्ति में छोटा है तो अनेक कार्यों को सही नहीं कर पाता । वह अपने आपको दूसरों लोगों से मिलाकर देखता है तो अपने को ही कम पाता है । इसी प्रकार बचपन में माता-पिता के अत्याचार, डाँटना, फटकारना, मिलकर शिशु के कच्चे मन में आत्महीनता की भावना-ग्रन्थि बना देते हैं ।

**दूसरा कारण– निम्न सामाजिक स्थिति–**आत्म-हीनता की भावना ग्रन्थि विशेषकर निम्न वातावरण में जन्म लेने वाले युवको में वर्तमान रहती है । जहाँ कहीं समाज की प्रतिष्ठा या श्रेणी का सम्बन्ध होता है वहीं ऐसे युवक को दब जाना पड़ता है । उच्च वर्ग वाले धनिकों के सामने वह छाती ऊँची करके नहीं चल पाता । उनकी तरह वस्त्र, गृह, आमोद-प्रमोद उसे उपलब्ध नहीं होते । ऐसी परिस्थिति में उस व्यक्ति को लज्जा, आत्मग्लानि अथवा किसी अन्य विशेष प्रकार के दु: ख की अनुभूति होती है जिसे वह विस्मृत करने की चेष्टा करता है । यही कमी की दु:खानिभूति होना स्वाभावकि है । बड़ा हो जाने पर भी वह न्यूनता की अनुभूति अव्यक्त मन से नष्ट नहीं होती ।

प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स बड़े निर्धन गृह में पैदा हुआ था, उसका प्रारम्भिक जीवन होटल में नौकरी करते हुए व्यतीत हुआ था । न उसे अच्छे वस्त्र उपलब्ध हो सके थे, न आभूषण । यही इच्छाएँ उसके अव्यक्त प्रदेश में एकत्रित हो गई, वहाँ दुर्बलता, तुच्छता, दीनता की अनुभूतियाँ दृढ़ हो गईं । ये ही भावना, ग्रन्थियाँ उसके अनेक चित्रों में बह निकली हैं । अनेक स्थलों, हृदयों तथा स्थानों का वर्णन अन्त:स्थल की भावना ग्रन्थि के परिणाम स्वरूप है । कहते हैं डिकिन्स अपने कोट में सोने के बटन लगाता था । यह भी हीनत्व की ग्रन्थि की एक प्रतिकृति थी । अन्य किसी विद्वान ने इस प्रकार का शौक नहीं दिखाया । स्त्रियाँ वे ही अधिक आभूषणों का व्यवहार करती है जिनके अन्त:प्रदेश में आत्महीनता की ग्रन्थि अधिक संख्या में प्रस्तुत रहती है ।

आत्म-हीनता को ग्रन्थि के मूल में कमी की दु:खानिभूति अवश्य मिलती है । प्रत्येक दु:खानुभूति अन्त:करण प्रदेश में गाड़ी की लीक की तरह एक मानसिक मार्ग बनाती है । इस लकीर में उसी प्रकार की भावनाओं का उत्थान-पतन चला करता है ।

मन में जो विचार नित्यप्रति प्रबल होते हैं, वे ही हमारी अच्छी या बुरी ग्रन्थियाँ निर्माण करते हैं । दु:ख अथवा कमी की अनुभूति से जो हीनत्व की भावना ग्रन्थि बनती है वह बार-बार पीड़ा के विचार तथा कमी की भावना के पुनरावर्तन का परिणाम है । बार-बार वैसे ही दीन-हीन विचार मनरूपी पृथ्वी के गर्भ भाग में जड़ पकड़ जाते हैं फिर वे स्मृति पटल पर तो नहीं आते किन्तु जीवन को प्रभावित करते रहते हैं । सामाजिक निम्नता के विचार सदा सक्रिय रह कर हमारे मन को उद्वेलित किया करते हैं ।

निम्न सामाजिक स्थिति के साथ अन्य ऐसे कारण हो सकते हैं जिनसे मनुष्य कमी या हीनता की भावना में प्रवेश कर सके । अनुचित सम्बन्ध के द्वारा उत्पन्न बाल-बच्चे, समाज में ऊँची नाक नहीं कर पाते, अछूत गृह या निम्न श्रेणी का व्यवसाय

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


करने वालों में भी यह ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है । उनके कटु अनुभव संस्कारों के रूप में प्रस्तुत रहते हैं तथा उन्हें अग्रसर नहीं होने देते ।

कल्पना कीजिए, एक व्यक्ति को आप कहते हैं–तू नीची, ऊँची बातें क्या जाने । तेरे घर बार में भी कोई पढ़ा लिखा पैदा हुआ था ? तुम्हारा जो काम है वही काम करो । हल खुरपा चला कर जिन्दगी बिताओ इस प्रकार के कुत्सित संकेतों से हृदय संकुचित, क्षुद्र, प्रेमविहीन तथा दरिद्री बनता है । उसमें हीनता की ग्रन्थि अधिकाधिक जटिल बनती है तथा वह अन्धकार पतन तथा दरिद्रता की परिस्थितियों में फँसता है ।

एक नवयुवक यह विचार करता है मैं तुच्छ हूँ, क्षुद्र हूँ, दीन-हीन हूँ । इतने वृहत संसार में भला मैं किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकूँगा, किस प्रकार समृद्धि जीवन व्यतीत कर सकूँगा । ऐसी निषेधात्मक विचार धारा का यह परिणाम होगा कि वह वैसा ही बन जावेगा यदि हम तंगी के, निर्बलता के, कमी के अकर्मण्यता के विचारों को रखेंगे तो इन्हीं का प्रतिबिम्ब हमारी अवस्था पर पड़ेगा और आत्म-हीनता उत्पन्न कर देगा ।

**तीसरा कारण–आर्थिक कमी**–निर्धनता की अनुभूति हमें दरिद्री बनाती है । गरीब मनुष्य जो सदैव फटे हाल रहता है, रूखा सूखा खाकर जीवन की धक्के देता है, प्रायः अपने मनोमन्दिर में ऐसा कलुषित वातावरण बनाता है जिससे हृदय सीमाक्रान्त हो जाता है । मौलिकता का ह्रास हो उठता है । आदमी वास्तविक मनुष्यता–दया, प्रेम, सज्जनता, पवित्रता बुद्धिमत्ता तक की रक्षा नहीं कर पाता ।

ऋण बड़ा घातक शत्रु है । मनुष्य ऋण से दबकर जैसा-तैसा काम करके उचित-अनुचित करने पर बाध्य होता है । उसकी आत्मा पर एक बोझ सा बना रहता है, तब उसे अपने गौरव का, स्वाभिमान का सुरक्षित रखना भी कठिन होता है, जिससे वह अपना सिर ऊँचा करके चलता है ।

अनेक उच्चतम तथा लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान ऋण के भार से इतने दबे कि उनकी आत्मा तक संकुचित हो गई । बड़ी कठिनाई से वे अपनी रक्षा कर सके । कुछ दरिद्रता के भयंकर प्रहारों से सदा के लिए क्षुद्रता के गड्ढ़े में विलीन हो गये । जो मनुष्य अपने आपको दुस्सह दरिद्रता के पंजे में पाता है वह असमय ही वृद्ध सा दीखने लगता है । उसके मुखमण्डल से तेज उठ जाता है । दरिद्रता उसकी सर्वोत्कृष्ट महत्वाकांक्षाओं को नष्ट कर देती हैं और समस्त प्रतिभा को धूल-धूसरित कर देती है । यदि आप दरिद्रों के अन्तःकरण को देखें तो आपको वहाँ आत्मविश्वास तथा श्रद्धा की बेहद कमी मिलेगी । जो मनुष्य आत्मविश्वास को तिलांजलि दे देता है, उसे क्रमशः अन्य गुण इच्छा शक्ति, मनोबल, तर्कशक्ति भी छोड़ जाते हैं और उसका जीवन भारस्वरूप हो जाता है ।

आधुनिक मनोविज्ञान ने नया महासत्य का दिग्दर्शन कराया है और वह यह कि मनुष्य के मन पर पड़ा हुआ कोई संस्कार निश्चेष्ट, व्यर्थ या निष्क्रिय नहीं होता । उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है । बार-बार एक ही प्रकार के विचार मनःक्षेत्र में लाने से, गम्भीर चिन्तन करते रहने से मन में उनके संस्कार दृढ़ होते हैं । एक बार जम जाने के पश्चात वे ऐसे स्थायी हो जाते हैं कि मस्तिष्क से बाहर नहीं होते । दुष्ट विचार, पाप के विचार, भय उद्विग्नता, गरीबी, लाचारी के विचार जब मन में आने लगें तो समझना चाहिए कि इच्छा-शक्ति की निर्बलता है । डरना, घबराना, हाय-हाय करना, सन्देह करना, मन के अव्यक्त भाग में बैठे हुए संस्कारों के ही दोष हैं ।

दरिद्रता वास्तव में इतनी खराब नहीं है जितने दरिद्रता के विचार । जिस व्यक्ति के मन में यह विचार उठते हैं कि "मैं तो दरिद्र कुटुम्ब में उत्पन्न हूँ, गरीब लोगों से मेरी जान पहचान है, मुझे तो गरीब ही रहना पड़ेगा ।" वह मनुष्य अपने भावी जीवन में भिखारी के अतिरिक्त क्या हो सकता है । अज्ञान के कारण वह मन में दरिद्र वातावरण रखेगा और फलतः आत्मा के पवित्र प्रकाश की शान्ति का अनुभव न कर सकेगा ।

**चौथा कारण–निराशावाद**–कुछ व्यक्ति स्वभावतः ही निराशावादी होते हैं । निराशावाद सफलता का विघातक है, विध्वंसक तथा जीवन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का काल है । निराशावादी सदैव संकल्प-विकल्प के भ्रमजाल में फँसा रहता है । उदास, उद्विग्न, खिन्न, अशान्त, चिड़चिड़े, शोकातुर शक्ल के व्यक्ति में भला कौन विश्वास करेगा । निराशा एक प्रकार की नास्तिकता है । ''जो व्यक्ति संध्या के डूबते हुए सूर्य को देखकर दु:खी होता है तथा प्रात:काल की सुनहरी अरुणोदय से उत्फुल्ल नहीं होता वह नास्तिक है । जब रात के बाद दिन आता है, मरण के बाद जीवन होता है, पतझड़ के बाद वसन्त आता है, ग्रीष्म के बाद वर्षा आती है, दु:ख के बाद सुख आता है तो क्या कारण है कि हम अपनी कठिनाइयों को स्थायी समझें ? हमें अपनी नास्तिकता का दण्ड रोग, शोक, विपत्ति, प्रतिहिंसा तथा अल्पायु के रूप में भोगना पड़ता है ।''

आज के सभ्य कहलाने वाले जगत में, जिनकी स्तुति करते हुए हम नहीं थकते, ऐसा हिसाब लगाया जाता है कि प्रतिवर्ष दस लाख आदमी निराशा के वशीभूत होकर आत्मघात कर लेते हैं । जितने समय में आप अपना पत्र लिखते हैं उतने समय में कई व्यक्ति सुरपुर के पथिक बन जायेंगे । आत्मघात कर लेना मानसिक स्वरूप भयंकर आत्मग्लानि है । सौ में निन्यानवे लोग केवल घोर निराशा के कारण ही आत्मघात कर लेते हैं ।

निराशा से विक्षुब्ध होकर, आक्रान्त होकर, सुधबुध भूले प्राणियों को देखकर अन्य मनुष्यों को भी आत्मघात कर लेना श्रेष्ठ जान पड़ता है और कहते हैं तात्कालिक मृत्यु होना उत्तम है, यह दुर्दशा तो देखी नहीं जाती ।

निराशा अन्धकार है । उसमें हमें ठहरना कदापि न चाहिए । निराशा मन में एक प्रकार की कमी की अनुभूति उत्पन्न करती है अत: आत्महीनता प्रस्तुत होना स्वाभाविक है । आत्म पतन और निराशा का जोड़ा है ।

देखा गया है कि कुटुम्ब में केवल एक निराश और उदासीन मनुष्य के होने से समस्त कुटुम्ब आत्महीनता की ग्रन्थि निर्मित होती है । जो मनुष्य अपने आप को पापी, दोषी, अज्ञानी, अधम, मन्दमति व दरिद्र मानता है वह अपने चारों ओर वैसा ही वातावरण फैलाता है । फिर उसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति, क्रमश: वैसा ही बनता जाता है । अनिष्ट चिन्तन द्वारा आत्महीनता की सृष्टि करते हैं ।

**पाँचवाँ कारण--विघ्नबाधाओं की कल्पनाएँ--** स्विट मार्डेन ने अपनी एक पुस्तक में आत्महीनता के सिलसिले में विघ्नबाधाओं की कल्पना का निर्देश किया है । अनेक व्यक्तियों की मानसिक भित्ति इतनी कमजोर होती है कि वे निरन्तर विघ्नवाधाओं की कल्पना में व्यस्त रहते हैं, उनका हृदय असमय में ही मुरझा जाता है, वे साहसिक कार्य करने योग्य नहीं रहते, उनकी कार्य सम्पादिका शक्ति का ह्रास हो जाता है । मन प्रारम्भ से ही निषेधात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है ।

ऐसे व्यक्ति को चारों ओर विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं, उसकी कार्य-सम्पादिका शक्ति पर एक काला पर्दा पड़ जाता है । दूसरे मनुष्य संशय के विचार ला-लाकर उसके अन्त:करण में प्रवेश करा देते हैं और वह बलात् उसी के अनुसार विचार करने को विवश होता है ।

पतन की ओर उन्मुख करने वाली, मानसिक जगत में तूफान उत्पन्न करने वाली अनिष्ट कल्पना ही है । जैसी कल्पना वैसा ही उसका फल, मनोविज्ञान का यही अकाट्य नियम है । कुकल्पना का भयंकर परिणाम कितने ही व्यक्तियों में हीनत्व की ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है ।

कुकल्पना से ग्रस्त व्यक्ति यही सोचता है कि न जाने कल कौन सी अनर्थकारी घटना घटित होने वाली है ? न जाने कल कैसे व्यतीत होगा ? छींक आने पर वह महा अनिष्ट की बात सोचता है । प्रात:काल देखी हुई वस्तुओं को ले-लेकर राई का पर्वत बनाया करता है । कल्पना गर्हित चित्र खींचता है वर्षों तक वह निज मन:शक्ति को व्यर्थ के अनिष्ट चिन्तन में व्यस्त रखता है । बारम्बार एक प्रकार की कल्पना का उद्रेक होने के कारण वह अनिष्ट चित्र अन्त:करण में इच्छा के विरुद्ध आरूढ़ हो जाता है । चिन्ता, भय, विक्षेप तथा संशय मन के गहन भाग में जम जाते हैं । इस प्रकार मन के संग्रहालय में प्रतिदिन कूड़ा-करकट एकत्रित हुआ करता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**छठा कारण–लिंग सम्बन्धी न्यूनता**–प्रकृति ने पुरुष को स्त्री से स्वभावत: ही साहसी एवं निर्भीक बनाया है । नारी स्वभाव से प्रेममयी, करुणामयी तथा ममतामयी है । उसमें अपेक्षाकृत अधिक लज्जा तथा दुर्बलता है । कोमलता तथा सहानुभूति की क्रीड़ा-स्थली है । उसके हृदय में आत्महीनता स्वभाव से ही प्रस्तुत है ।

स्त्रियों में आत्महीनता के अनेक कारण हैं । सर्वप्रथम उनका शारीरिक संस्थान ही इतना कोमल होता है, कि पुष्प की पंखुरियों के समान टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाने पर तुला रहता है । शारीरिक कमी के कारण कुछ बहुत मजबूत स्त्रियों को छोड़कर, शेष सभी में हीनत्व की भावना का विद्यमान रहना स्वाभाविक सा है । कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि मजबूत से मजबूत स्त्री में ये ग्रन्थियाँ बनी रहती हैं । वे कितनी भी निर्भीकता का प्रदर्शन क्यों न करें, उनके हृदय को एक भयंकर कमी प्रज्वलित किया करती है ।

स्त्री तथा पुरुष दोनों ही एकाकार होकर ही महाशक्तिशाली बनते हैं । पुरुष के बिना स्त्री का नरम हृदय एक कमी का अनुभव किया करता है । उसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है मानों कुछ अभाव सा हो, कुछ अपूर्णता रह गई हो । यह अधूरापन कितनी ही स्त्रियों में आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण करता है ।

कुछ मनोवैज्ञानिक का कथन है कि "मनुष्य की कभी का अनुभव मात्र आत्महीनता की ग्रन्थि उत्पन्न नहीं करता, ग्रन्थि उसी अवस्था में उत्पन्न होती है जब कभी अनुभव मनुष्य को दु:खी करता है । उदाहरणार्थ, सभी स्त्रियों में आत्महीनता ग्रन्थि का होना आवश्यक नहीं यद्यपि सभी स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अपने को सभी प्रकार से नीचा पाती हैं । जंगल में आखेट करने वाली चित्रांगदा को अपनी कमी का ज्ञान अर्जुन से मिलने के पश्चात् हुआ था । अत: तभी तो हीनता की ग्रन्थि का बीजारोपण हुआ । उससे पूर्व वह उन्मुक्त वीर ललना जंगल में भयंकर कार्य करती रही थी । दु:ख का अनुभव तथा अपनी किसी विशेष कमजोरी, न्यूता की कमी की भावना आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्माण का प्रमुख कारण है ।

**सातवाँ कारण–समाज की अवहेलना**– समाज में ऊँचा मुख कर चलने वाले व्यक्तियों में प्राय: आत्महीनता की ग्रन्थि कम पाई जाती है । समाज से बहिष्कृत अथवा किसी अन्य कारण से समाज की नजर में गिरा हुआ व्यक्ति इस ग्रन्थि से ग्रसित रहता है । भंगी, चमार, भील तथा अन्य निम्न श्रेणियों के बच्चों में प्रारम्भ से ही कमी का पग-पग पर अपनी निर्बलता की प्रतीत होती है, उनका जरा-जरा सी बात पर तिरस्कार किया जाता है, गालियों की बौछार नित्य उन पर पड़ा करती है । समाज के बज्र जैसे कठोर नियन्त्रण के सम्मुख निम्न जाति वाले युवक की समाज प्रतिभा, मौलिकता, सामर्थ्य विनष्ट हो जाती है । उसे अपने घृणित कार्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं करने दिया जाता । वह अपने इस कटु वातावरण से सदैव दु:खी रहता है, एक गुप्त वेदना उसके अन्त: करण में प्रदीप्त रहती है । ऐसी दुखद, आत्मग्लानि की अवस्था में हीनत्व की ग्रन्थि मन में बनती है ।

**आठवाँ कारण–आत्मग्लानि तथा पश्चाताप की अधिकता**–"हमने अमुक कार्य में बड़ी भारी गलती कर दी है, यह हमारी बड़ी भारी भूल हुई, ऐसा हमें कदापि न करना चाहिए था । अब हमें पापों का प्रायश्चित करना चाहिए । हमारे जैसे महान पापी को तो दुनियाँ में मुँह तक न दिखाना चाहिए ।" इस प्रकार के विचार कुछ अंश तक तो उचित हैं किन्तु जब पश्चाताप अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाता है तो लाभ के स्थान पर भयंकर हानि पहुँचाता है । थोड़ा पश्चाताप होना भविष्य के लिए भूल सुधार हो जाना आध्यात्मिक लाभ के लिए बड़ा अच्छा है । प्रत्येक सात्विक वृत्ति वाले व्यक्ति को आत्म निरीक्षण के पश्चात आत्मग्लानि होना स्वाभाविक है । महात्मा एमरसन का विचार है कि पुरानी गलतियों को सुधारना ही अभ्युदय के मार्ग में आगे बढ़ता है । इस प्रकार के पश्चाताप तथा प्रायश्चित उत्तम व्यक्तियों को शोभा देते हैं ।

आत्मग्लानि की उपयोगिता यह है कि वह अपनी भूल बता दे । भविष्य में हम पुन: वही मार्ग ग्रहण करें, प्रत्युत अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति विजय तथा सफलता की ओर रखें–यदि हम अपनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


गलती में इतना पाठ सीख लें तो पर्याप्त है किन्तु यदि यह अधिकाधिक बढ़ता रहे तो आध्यात्मिक बल का क्षय होता है । अधिक आत्मग्लानि मन की सर्जन या उपज शक्ति नष्ट कर देती है । ऐसे व्यक्ति साहसिक कार्य करने योग्य नहीं रहते । उनकी महत्वाकांक्षा असमय ही मुर्झा जाती है ।

**प्रधान कारण– दुःख का अनुभव**–उक्त प्रकरणों में हमने आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्माण के अनेक कारण दर्शाये हैं किन्तु इस सब में प्रधानता केवल एक तत्व की है । यह महान तत्व है-''कमी के कारण दुःख का घोर अनुभव । अधिक काल तक दुःख की भावना रहने से, वह स्थायी वृत्ति हो जाती है । उसकी छाप अमिट बन जाती है । निष्फलता, निराशा, निर्धनता, निरुत्साह सब दुःखानुभूति की ही सन्तानें हैं । अयोग्य वातावरण के कारण अन्तःकरण प्रदेश में विविध भय, द्वेष, न्यूनता तथा अशान्ति के तूफान चला करते हैं । निर्बल कल्पनाओं के कारण दुःख का अनुभव होता है । असंख्य मनुष्य इस प्रकार की निर्बल भ्रान्तियों के शिकार बने हुए हैं । असत् चिन्तन में संलग्न रह कर चिन्ता, भय, शंका, सन्देह और दुष्ट मनोविकारों के पंजे में फँसे हुए, व्यर्थ के सन्देहों तथा कल्पनाओं में निरन्तर ग्रसित रहने के कारण विचार की प्रतिक्रिया भी असत ही होती है और वे विक्षिप्त से रहते हैं ।

मनुष्य की कल्पना शक्ति मन की सृजन शक्ति है । कल्पना के सहारे मानस पटल पर जो चिह्न अंकित किये जाते हैं उनके अनुसार ही वाह्य पटल पर निर्माण होता है । जो व्यक्ति किसी काल्पनिक शत्रु की कल्पना से त्रस्त रहता है उसके मनःपट पर भय के चित्र निर्मित होते हैं, तत्पश्चात वे बाहर विभिन्न क्रियाओं में स्थूल रूप में प्रकट होते हैं । अनेक अज्ञानी अनिष्ट कल्पना के कारण ही भयंकर दुःखानिभूति का अनुभव किया करते हैं और इसी मनोजनित अशान्ति के कारण सारे जीवन को शूलमय बना लेते हैं ।

**दुःखानुभूति तथा हमारी आशाएँ**– आत्महीनता की ग्रन्थि के मूल में हमने दो प्रधान तत्वों का उल्लेख यत्र-तत्र किया है । ये हैं- भय तथा दुःखानुभूति । भय जीवन का भारी शत्रु है । यह मन में स्थिरता का विनाश कर मानसिक शान्ति भंग करता है । मन में प्रचण्ड द्वन्द तूफान मचाया करते हैं और रोगी क्षण-क्षण उद्विग्न तथा उत्तेजित होता रहता है । दूसरा कारण है दुःखानुभूति । हमारी दुःखानुभूति और मन की कोमलता, सुकुमारता का कारण एक ही प्रकार के दुःख की प्रतिक्रिया होता है, जो विभिन्न मनों पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव डालता है ।

श्री भगवान रामचन्द्रजी के वनगमन के अवसर पर प्रायः सब ही दुःख का अनुभव कर रहे थे । श्री रामचन्द्रजी की माता को भी अत्यधिक दुःख हुआ, किन्तु महाराज दशरथ उस दुःख को सहन न कर सके तथा प्राण त्याग कर दिया । दुःख उतना ही अधिक या न्यून रहता है जितना मनुष्य का मन कोमल तथा सुकुमार होता है । जितनी ही मनुष्य की आवश्यकताएँ, कल्पनाएँ तथा आशाएँ अधिक बढ़ी-चढ़ी होती हैं, उतनी ही दुःख की अनुभूति भी प्रबल अथवा न्यून होती है । जिस व्यक्ति ने बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ अपने विषय में बना रखी है, उन कल्पनाओं में व्यवधान उपस्थित होने पर उसे उसी मात्रा में दुःखानुभूति भी अधिक होगी । जितनी आवश्यकताएँ अधिक होंगी, उनकी पूर्ति न होने से उसे उतनी ही शोक की पीड़ा होगी । अतः आत्महीनता की ग्रन्थि भी उतनी जटिल बनेगी ।

जितनी तीव्रता से न्यूनता की दुःखानुभूति होगी, जितना ही हम कमजोरी, कुरूपता, कमी, अपूर्णता, असत्यता, बेकद्री, भद्दापन, उद्विग्नता, अभाव का अनुभव करेंगे, चिन्तायुक्त मनःस्थितियों में पड़े रहेंगे और मन को अन्धकारमय पहलुओं पर केन्द्रित रखेंगे, उतना ही बुरा है । मन को भद्दी वस्तुओं में लिप्त रखना विरोधी कुभावनाओं में संलग्न रखना तथा उदासीनता में पड़े रहने से हम निरन्तर अपना विनाश किया करते हैं ।

**पश्चाताप के दुष्परिणाम**–प्रसिद्ध तत्ववेत्ता स्पेनोजा पश्चाताप की आदत को एक बड़ा मानसिक रोग मानते थे । उनका विचार था कि पश्चाताप मानसिक आरोग्य का लक्षण नहीं है । यह हमें सिखलाता है कि दैव हमारे विपरीत है,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हमें कभी सफलता प्राप्त न होगी, हमारे चारों ओर विघ्न बाधाएँ खड़ी हैं । क्रमशः यह हमारी कार्य-सम्पादिका शक्ति को पंगु कर डालता है । आत्मग्लानि के दो भयानक दृष्टिकोण है ।

१-यह हमारी इच्छा शक्ति तथा मनोबल की निर्बलता दर्शाता है । हमारी साहसिक प्रवृत्ति का दमन करता है । हमें निराशावादी, पापी बना देता है ।

२-हम अपने अव्यक्त मन या अचेतन जगत में अपनी तुलना अन्य सबल व्यक्तियों से करते हैं, अपने आपको, अपनी कमजोरी के लिए कोसते हैं, बुरा भला कहते हैं, निसत्व एवं निकम्मा, गया बीता ठहराते हैं । बस हमारा मन निषेधात्मक हो जाता है तथा कुछ काल पश्चात हमारा मन अपनी कमजोरी पर सोचते विचारते, चिन्तन करते-करते इतना निर्बल हो जाता है कि अपने आप पर, अपनी अद्‌भुत शक्तियों पर किसी प्रकार का विश्वास नहीं कर पाता ।

अपने आपको बुरा भला कहना, कोसना अपशब्दों का उच्चारण करना, विकृतमानसिक प्रवृत्ति का परिचायक है । जिस प्रकार पर छिद्रान्वेषण एक रोग है, उसी प्रकार अपने आपको कोसना भी है । इससे मनुष्य के चरित्र में कोई सुधार नहीं हो सकता ।

## अपने को तुच्छ एवं नगण्य न समझें

आत्महीनता का भाव मनुष्य की उन्नति में बहुत बाधक होता है । जो भी व्यक्ति दीन-हीन और प्रगतिहीन स्थिति में पड़े दिखलाई देते हैं, वे सब किसी न किसी प्रकार की आत्महीनता से ग्रसित होते हैं । कोई अपने को निर्बल समझ रहा होगा कोई विद्या-बुद्धि से रहित, कोई साधनहीनता का रोना रो रहा होगा तो कोई परिस्थितियों और भाग्य को कोस रहा होगा । इस प्रकार की सारी निराशा आत्महीनता का ही लक्षण होता है ।

आत्महीनों के विचार बड़े प्रतिगामी होते हैं । वे अपने अन्तःकरण में नाना प्रकार के भ्रम, न्यूनताएँ, निर्बलताएँ, कुकल्पनाएँ, आशंकाएँ और भीतियाँ पाले रहते हैं । उन्हें संसार का हर आदमी अपने से अधिक सक्षम और योग्य मालूम होता है । हर काम अपनी शक्ति से बाहर का विदित होता है । उनके विचार सदा विपरीत दिशा में ही दौड़ते हैं, उनके सोचने का ढंग इस प्रकार का होता है कि मानो परमात्मा ने उन्हें इस योग्य ही नहीं बनाया कि वे संसार में आगे बढ़कर संघर्ष कर सकें और अपने लिए सम्मानपूर्ण स्थान अर्जित कर सके । उनको यदि उन्नति और प्रगति के लिए उत्साहित किया जाता है तब भी वह भयभीत हो उठते हैं । सोचते हैं कि हमने अमुक साहसपूर्ण कोई काम हाथ में लिया तो हो सकता है कि कोई नई आपत्ति खड़ी हो जाय और हम किसी संकट में पड़ जायें । अमुक काम हमारे बलबूते का नहीं है, भला हम उसे किस प्रकार कर सकते हैं । आत्महीन व्यक्ति किसी साहसपूर्ण प्रगतिपथ पर चलने से बुरी तरह डरता रहता है । ऐसा कायर और शंकालु व्यक्ति निश्चय ही कोई उन्नति नहीं कर सकता । उसे गई बीती स्थिति में जीवन काटने को विवश होना पड़ता है ।

आशा, आकांक्षा, आत्मविश्वास और आत्मबल जिनको उन्नति और प्रगति का आधार माना गया है, आत्महीन व्यक्ति में उनका सर्वथा अभाव रहता है । उन्नति की आशा और आकांक्षा करने का अधिकार तो उसी को हो सकता है जो अपने को किसी भी कार्य करने और कोई भी संकट उठा सकने के योग्य समझता है । जिसे यह विश्वास होता है कि वह जिस काम में हाथ डालेगा उसे पूरा करके रहेगा । उसमें आ पड़ने वाले किसी भी संकट को उठा लेने के योग्य साहस, धैर्य और क्षमता है । इस विश्वास के अतिरिक्त जो कार्य करने में रुचि रखता है, साहस और उत्साह रखता है, अपनी कमियाँ दूर करने और योग्यताएँ बढ़ाने के लिए प्रयत्नशीलता रहता है उन्नति और प्रगति की आशा आकांक्षा करने का वही अधिकारी होता है । जिसने योग्यताओं, अनुभवों तथा शिक्षाओं से आत्म-विश्वास और सदाचरण द्वारा आत्मबल संचित नहीं किया हैं वह

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन्नति और प्रगति की आशा आकांक्षा करने का अधिकारी किस प्रकार हो सकता है । आत्महीन व्यक्ति में इन सारे गुणों का अभाव होता है अस्तु उसका उन्नति और प्रगति की आशा आकांक्षा से वंचित रहना स्वाभाविक ही है ।

आशा और आकांक्षा उन्नति का मूल आधार है । जिसमें ये आकांक्षा ही न होगी कि मुझे भी आगे बढ़ना चाहिए, उन्नति और प्रगति करनी चाहिए, उसे न तो उसकी प्रेरणा होगी और न वह उस दिशा में सक्रिय होगा । उन्नति और प्रगति भी संसार में कोई आवश्यक बात है–यह उसे याद ही न आयेगा । आकांक्षा ही मनुष्य की क्रियाशीलता को प्रेरित तथा उत्साहित करती है । तथापि यदि उन्नति और प्रगति की आकांक्षा तो हो किन्तु उसे प्राप्त कर सकने की आशा न हो तब भी मनुष्य की क्रियाशीलता गतिमान नहीं होने पाती । वह सोचता है जब वांछित स्थिति पा सकने की आशा नहीं है, कोई सम्भावना नहीं है तो उसके लिए प्रयत्न करना ही बेकार है । बात भी ठीक है जिसे यह आशा न हो कि वह परीक्षा में पास हो जायगा–वह उसमें बैठेगा ही क्यों । आशा का आधार पाकर ही मनुष्य सारे काम करता है । आशा से रहित अकेली आकांक्षा मनुष्य को उन्नति तथा प्रगति के लिये प्रेरित तथा सक्रिय नहीं बन सकती, आत्महीन व्यक्ति में न तो आकांक्षा का ही उदय होता है और न उसे सफलता में आशा होती है । निदान उन्नति और प्रगति के सहनीय शब्द उसके नाम के साथ जुड़ना सम्भव नहीं हो सकता ।

आत्महीनता कोई प्रकृति-प्रदत्त दोष नहीं होता । यह वास्तव में एक मानसिक रोग होता है जो मनुष्य की अनेक असावधानियों से पैदा हो जाता है । उनमें से एक असावधानी तो अयोग्यता होती है । यह अयोग्यता, कार्यकुशलता, कार्यक्षमता, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार, आचार-विहार अथवा व्यवहार-वर्ताव की क्यों न हो आत्महीनता का भाव पैदा कर देती है । जिस आदमी ने अभ्यास और लगनपूर्वक अपने कार्य में कुशलता, दक्षता और योग्यता प्राप्त करने की सावधानी नहीं बर्ती है उसे उसे विषय में न तो आत्मविश्वास प्राप्त होगा और न वह दक्ष और कुशल व्यक्तियों के साथ समकक्षता अनुभव कर सकता है । उसका उस दिशा में आत्महीनता अनुभव करना स्वाभाविक ही है । वह कितने ही दम्भ अथवा अहंकार का सहारा क्यों न ले आत्महीनता के भाव से बच नहीं सकता ।

जिसमें विद्या की कमी है । किसी बात को सोच सकने और ठीक से व्यक्त कर सकने की योग्यता नहीं है, वह जहाँ भी जायगा उचित स्थान तथा आदर न पा सकेगा । लोग स्वभावत: उसे निम्न दृष्टि से देखेंगे जिसकी प्रतिक्रिया उस पर आत्महीनता के भाव के रूप में ही होगी ! जिसके विचार दूषित होंगे, आचरण निम्नकोटि का होगा वह दूसरों की दृष्टि में ही नहीं स्वयं अपनी दृष्टि में गिरा रहेगा । वह सभ्य समाज में आता जाता भी यही अनुभव करता रहेगा कि वह इसमें आने जाने योग्य नहीं है । उसके अन्दर का चोर निश्चय ही उसे आत्महीन बना देगा ।

आहार-विहार का भी मनुष्य की आत्मा पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा । यदि एक बार दूसरे लोग किसी के आहार-विहार पर दृष्टि न भी डाले तो भी उसकी अपनी दृष्टि से तो वह बच ही नहीं सकता । वह किस प्रकार रहता है, क्या खाता-पीता और पहनता है । इस विषय में उसका उत्तर क्या है–आदि बातें भी मनुष्य में आत्म-गौरव, आत्महीनता का भाव पैदा कर देती हैं । जिनका रहन-सहन निकृष्ट और अपने अनुरूप न होगा उसमें आत्महीनता का भाव रहता ही है । आलस्य के कारण जो गन्दगी से रहता है, अपने स्तर से ऊँचा-नीचा खाता-पीता पहनता है तो उसे निम्न स्तर में लज्जा और ऊँचे स्तर पर दम्भ की आत्महीनता पैदा हो जायगी । अयोग्य आहार-विहार और अयोग्य रहन-सहन की असावधानी आत्महीनता का बहुत बड़ा कारण है ।

मनुष्य के आत्म गौरव और आत्महीनता के सम्बन्ध में व्यवहार बर्ताव का बहुत हाथ रहता है । जो अशिष्ट असभ्य और अशालीन व्यवहार का अभ्यस्त है । व्यवहार करने में यथायोग्य की सावधानी नहीं बरतता तो निश्चय ही उसे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अपमानित, लांछित तथा तिरस्कृत होना पड़ता है । तिरस्कार अथवा अपमान का सगा सम्बन्ध है जो समाज अथवा परिवार आदि में तिरस्कृत अथवा अनादृत होता रहता है उसे आत्महीनता का शिकार बनने से कोई नहीं बचा सकता निश्चय ही उसकी आत्मा-मलीन हो जायगी उसका आत्मतेज नष्ट हो जायगा और वह आत्महीनता का रोगी बन जायगा । व्यवहार वर्ताव की असावधानी आत्महीनता का बड़ा कारण है ।

आत्महीनता उत्पन्न होने का एक कारण होता है दूसरों से अपनी तुलना करना । बहुत से लोगों का स्वभाव होता है कि वे दूसरे लोगों के धन-वैभव, कारबार, मान-सम्मान और पद प्रतिष्ठा पर बहुत दृष्टि रखते हैं और अनजान में ही प्रभावित होकर उन्हें बड़ा आदमी मान लेते है । यहाँ तक तो गनीमत होती है । किन्तु जब इससे आगे बढ़कर उनकी स्थिति में अपनी तुलना करके ऊहापोह में पड़ जाते हैं तभी उनमें आत्महीनता के अंकुर उगने लगते हैं । उनके इस प्रकार सोचने का ढंग कि-देखो अमुक आदमी के पास कितनी धन दौलत है, उसका कारबार कितनी जोर से चल रहा है । समाज में उसे कितनी पद प्रतिष्ठा मिली है । कैसे शान-शौकत से रह रहा है । संसार के सारे सुख उसके पास हैं । भगवान की कृपा है । बड़ा भाग्यवान आदमी है । और एक मैं हूँ न धन न दौलत, न मान न सम्मान, न कार न रोजगार । थोड़ी सी आमदनी है । पेट भर रोटी खा लो और सन्तोष करो । अपने-अपने भाग्य की बात है । हमारे भाग्य में जब गरीबी लिखी है तो हो भी क्या सकता है ? उसमें स्वभावतः आत्महीनता की भावना पैदा कर देता है । किसी की उच्च स्थिति से अपनी साधारण स्थिति की स्पृहा के साथ तुलना करने का अर्थ है अपने लिए आत्महीनता की भूमिका बनाना ।

यदि किसी से तुलना न करके भी केवल अपने अभावों, कमियों और कष्टों का भी चिन्तन किया जाता रहे तब भी आत्महीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है, मैं गरीब हूँ । मेरे घर का खर्च ही पूरा नहीं पड़ता है । मैं ज्यादा कमा ही नहीं पाता अपने पर कोई आपत्ति और उलझन आती ही रहती है-आदि विचार मनुष्य को आत्महीन बना देते हैं । मनुष्य अपने प्रति जितने हीन और ओछे विचार रखेगा वह उतना ही आत्महीन बन जायेगा । विचार का स्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । यदि कोई मनुष्य यथार्थ रूप में गरीब न हो अच्छा खाता-पीता हो किन्तु लोभ, लालच अथवा भय दुराव आदि के कारण अपने को निरन्तर गरीब समझता अथवा कहता रहे तो निश्चिय ही एक दिन परिस्थितियाँ न भी घूमें तो भी पैसा होते हुए भी अपने को गरीब और दीन हीन मानने व कहने वाला यों ही दीन ही होता है । जो अपनी स्थिति और वैभव का अनुभव न कर सके और दूसरों को उसको समझाने से वंचित रखे वह दीन हीन ही तो होता है । ऐसे निम्न और निकृष्ट वृत्ति वाले अवश्य ही आत्महीनता के रोगी बन जाते हैं ।

यह और इस प्रकार की अनेक न्यूनताओं और सावधानियों के कारण लोगों में आत्महीनता का भाव आ जाता है । यदि उसे तत्परतापूर्वक जल्दी ही दूर न किया जाय तो वह प्रौढ़ होकर एक मानसिक रोग में बदल जाता है । आत्महीनता का भाव नैसर्गिक न होकर मनुष्य का अपना पैदा किया हुआ होता है । यह भाव उन्नति और प्रगति में बहुत बाधक होता है । अस्तु इसे अपने पास न दें आने और न रखें ।

आत्महीनता से बचकर रहना कोई कठिन बात नहीं है । थोड़ी-सी सावधानी बरतने से इससे आसानी से बचा जा सकता है । उसमें से एक तो यह है कि अपने कार्य और क्षेत्र में दक्षता तथा कुशलता प्राप्त कर ली जाय ! सबके साथ यथायोग्य व्यवहार किया जाय । इसके अतिरिक्त दो विशेष बातें यह हैं कि न तो कभी किसी की उच्च स्थिति से अपनी सामान्य स्थिति की तुलना की जाय और न अपना न अपने कार्यों तथा भाग्य की अवमानना करने के साथ अपनी क्षमताओं में अविश्वास और अपनी स्थिति का अवमूल्यन ही किया जाय । अपने को महत्वहीन और अभागा समझने वाले लोग अवश्य ही आत्महीनता के शिकार बन जाते हैं । इन दुष्प्रवृत्तियों से सावधान रहकर जीवन में विश्वास और आदरभाव से अपना कर्त्तव्य किया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जाय और अपनी स्थिति में प्रसन्न रहकर चला जाय तो आत्महीनता का कोई प्रश्न ही न रह जाय ।

## आत्महीनता से मुक्ति के उपाय

नब्बे फीसदी व्यक्ति अपनी काल्पनिक डर से क्लान्त रहा करते हैं–''हम कुछ नहीं, कमजोर हैं, क्षुद्र हैं, दूसरे हमसे उत्तम हैं, बड़े हैं, सर्वगुण सम्पन्न हैं ।'' ऐसी भावना ही उन्हें विदग्ध किया करती है । ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं । ऐसी भय-सूचक कल्पनाएँ अन्तःकरण की समस्त उत्तम योजनाओं को क्षण भर में धूल में मिला दिया करती हैं ।

भय जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है । यह एक ऐसा महाराक्षस है जिसकी कल्पनामात्र से हजारों जीवन बरबाद हो रहे हैं तथा समय से पूर्व ही काल के ग्रास बन रहे हैं । जिस प्रकार तेज आँधी वर्षा कोमल पुष्प, पौधों, कलिकाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं । उसी प्रकार भय रूपी दानव की कल्पनाएँ अबोध, अविकसित हृदयों पर अपनी काली परछाहीं डालकर सदैव के लिए उन्हें बरबाद करती है ।

भय हमारी अज्ञानता का सूचक है । ज्यों-ज्यों मानव मन में अज्ञानता को अँधेरा बढ़ता है त्यों-त्यों मनुष्य अपना विकृत स्वरूप देखता है । उसका वास्तविक सिंह जैसा बहादुर व्यक्तित्व अन्धकार के बोझ से विलीन-सा हो जाता है । अत्यन्त खेद का विषय है कि अज्ञानी जन केवल अपने तक ही दुःख, दर्द, चिन्ता, कायरता, संकोच, लज्जा, अविश्वास के विचार सीमित नहीं रखते प्रत्युत अपने आस पास के पड़ोसियों, अपने मित्रों यहाँ तक कि अपने बच्चों तक में वैसे ही अधोगामी संस्कार दृढ़ कर देते हैं और इसका दुष्परिणाम उन बेचारों को पूर्ण जीवन भर भुगतना पड़ता है । कायरता तथा भय हमारे मनोबल को क्षीण करते हैं और हमारे मानसिक विकास में बाधा पहुँचाते हैं । ये हमारी तुलनात्मक शक्तियों को विकृत करते हैं ।

**अपना दृष्टिकोण बदल दीजिए**–अभी तक आप मन को अप्रीतिकर, अस्वास्थ्यकर तथा चिन्ता के विचारों में लगाये रहे हैं । इस प्रकार के डरपोक विचारों द्वारा तुमने भय के वातावरण के सृष्टि कर ली है । विचार एक महाशक्तिशाली चुम्बक है । वह वैसी ही वस्तुएँ वायुमण्डल से आकर्षित करेगा जैसा वह स्वयं है । अतः हमें उचित है कि मन को जीवन के अप्रीतिकर पहलुओं से सदा सर्वदा के लिए हटा लें । उधर की बातें सोचें ही नहीं । जब मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाता है तो वह लज्जा तथा संकोच के स्थान पर विश्वास तथा श्रद्धा से कार्य कर लेता है, कायरता बदलकर वीरत्व का तेज धारण कर लेता है, ग्लानि के स्थान पर भविष्य की उज्ज्वल आशा से प्रकाशित हो जाता है ।

प्रिय पाठक ! तनिक सोचिए, विचार कर देखिए यदि आप उम्र भर दूसरों से डरते ही रहेंगे, स्वयं अपने आपको नहीं सम्हालेंगे, अपनी आत्मिक शक्तियों को प्रकाशित नहीं करेंगे, तो आपका ठौर ठिकाना कहाँ रहेगा ? कौन पूछेगा ? तुम क्या कर सकोगे ?

आपको चाहिए फिजूल के डरों, कल्पित चिन्ताओं तथा कुविचारों को हृदय केन्द्र से सदा के लिए बहिर्गत कर दें । अपने आजू-बाजू निर्भयता तथा निश्चिन्तता के वातावरण की सृष्टि करें । लोगों से कहें कि वे भी हमारी तरह किसी से भयभीत न हों । पुराने आक्रमणों, दुःखदायी प्रसंगों तथा अन्धकारपूर्ण घटनाओं को सदा के लिए भूल जायें । मन को भविष्य के दुःख की गड़बड़ी में न पड़ने दें ।

भय के विचार हम उद्विग्न कर देते हैं । कुछ काल के लिए हम पागल से हो जाते हैं । हमें कर्तव्य का मार्ग नहीं दीखता । अन्तःकरण की समस्वरता नष्ट हो जाती है । हमें अच्छा भी बुरा मालूम लगता है । हम अपनी मुसीबतों को स्वयं पैदा कर लेते हैं ।

**दूसरे क्या सोचते हैं ?**–आप इस पचड़े में न पड़िए कि दूसरे आपके विषय में क्या विचार रखते हैं ? क्या-क्या कहते हैं, तथा उन्होंने आपको कैसा समझा है ? आप यह क्यों सोचते हैं कि आपके विषय में उनके विचार उत्तम नहीं, या वे आपकी आलोचना करने में संलग्न रहते हैं । आप थोड़ी देर के लिए यही सोच लें कि वे हमारे विषय में बड़ी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उत्तम धारणाएँ रखते हैं, हमें ऊँचा समझते हैं, हमारे गुणों पर दृष्टि रखते हैं । वे हमारे विषय में कोई भी बुरी बात नहीं सोच सकते क्योंकि हम वैसे हैं ही नहीं, हम तो उन्नति के लिए जन्मे हैं और प्रत्येक दिन कुछ उन्नति कर रहे हैं । सुभावनाओं को मनोमन्दिर में सजा रहे हैं तथा महत्वपूर्ण विचारों के चिन्तन में संलग्न रहते हैं ।

जो व्यक्ति दूसरों के विचारों, मन्तव्यों तथा टीका टिप्पणी पर निर्भर रहता है वह सदैव नीचे गिरता रहता है । लोगों के हाथों का खिलौना बन जाता है । जरा-जरा सी बात में संसार के स्वार्थी पुरुष उसे नाच नचाते हैं । पागल बनाते हैं ।

**लोगों की हँसी की ओर ध्यान न दीजिए–** सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त यही है कि आप लोगों की व्यर्थ आलोचना की ओर से नेत्र मूँद लो । यदि तुम्हें कोई चिढ़ाये, बुरा भला कहे और तुम उसकी ओर ध्यान न दो, तो हँसी करने वाले को बड़ा दु:ख होता है । कटु वाक्य उलट कर उसी का हृदय बेधते हैं ।

हमें दुनियाँ में निवास करना है, यहाँ हँसी उड़ाने वाले थोड़े बहुत सदैव रहेंगे । आज चार हैं तो कल आठ हो जायें या सम्भव है दो हो जायें । जब यही संसार चक्र है तो हमें हँसी उड़ाने वालों की से भयभीत हो विक्षुब्ध होने का कोई प्रयोजन नहीं । संसार ने, इस परम स्वार्थी दुनियाँ ने, अच्छे से अच्छे व्यक्ति की आलोचना की तथा खूब हँसी उड़ाई है । यहाँ तक कि इतने श्रेष्ठ पुरुष श्री रामचन्द्रजी, जो एक वचनी, एक-पत्नीव्रत धारण करने वाले थे, वे भी लोगों की हँसी का कारण बने । श्री कृष्ण और सत्यवचनी धर्मराज युधिष्ठिर की भी हँसी उड़ाने में लोगों ने कमी नहीं की । महाराज शिवाजी ने बाल्यावस्था से ही स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रारम्भ किया था । उस समय उनके घरवाले तक उनकी हँसी उड़ाते थे । नौकरी तथा दासत्व का मार्ग छोड़ स्वतन्त्र कार्य करने का निश्चय सुनकर कितने ही लोगों ने लोकमान्य तिलक की कम हँसी नहीं उड़ाई ? विज्ञानवेत्ताओं, तत्ववेत्ताओं तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन में एक अवसर ऐसा अवश्य आया जब उनकी खूब अवहेलना की गई, किन्तु वे कर्त्तव्य पथ पर स्थिर रहे ।

**संसार की बन्दर घुड़की–**बन्दर जैसे दूर-दूर से घुड़की देकर तुम्हें डराना चाहते हैं किन्तु यदि तुम उसका करते हो तो उलटे पाँव भागता है, उसी प्रकार की मनोवृत्ति संसार की है । दूर-दूर से लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते हैं किन्तु जब तुम उनका विरोध करते हो तो वे दूर भाग खड़े होते हैं । दूरदर्शिता से विचार करो । स्वार्थी मनुष्यों की हँसी के फन्दे में पड़कर भय के बन्धन में न पड़ो । जब कभी ऐसा अवसर सामने आये तो दृढ़ निश्चय से काम लो । लोगों को हँसने दो, गला फाड़ने दो किन्तु तुम अपने अटल उद्देश्य में प्रवृत्त रहो, जनता की मनोवृत्ति का थोथापन पहचानो ।

**साहस हमेशा बाजी मारता है–**साहस को देखकर भय, भयभीत होता है । आप साहस से मित्रता कर लीजिए फिर भय स्वयं दूर हो जायेगा । साहस का एक कण मिट्टी के मनुष्य में भी नवजीवन डाल देता है ।

कहाँ जटायु और कहाँ बलशाली रावण । कहाँ गगनचुम्बी एल्पस कहाँ नेपोलियन । एक बार दो पठानों ने महाराज रणजीत सिंह की हत्या के निश्चय से उनके यहाँ नौकरी की तथा बनावटी स्वामिभक्ति से उन्हें प्रसन्न कर लिया । महाराज उनके दिल की बात जान तो गये थे पर उन्हें यह मालूम न होने दिया कि वे सब कुछ समझ गए हैं । एक दिन महाराज शिकार के लिए गए । एकान्त में एकाएक महाराज ने घूमकर एक पठान से कहा– "मेरा गला घुटता है, अपनी कटार से बटन काट दो ।" इस पर दोनों पठान किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए । तब महाराज ने कहा–"हम पहले से ही सब भेद जानते थे, परन्तु आज हम अपने साहस के प्रभाव को देखना चाहते थे और अब हमें वह ज्ञात हो गया ।"

जरा से साहस से तुम्हारी भ्रमात्मक कल्पनाएँ काफूर हो जायेंगी तथा मनुष्य रूपी पुरुष तरु को विध्वंस करने वाला भय रूपी कीड़ा स्वयं बाहर हो जायगा ।

जीवन का पौधा साहस की खाद माँगता है, बिना खाद के वह संसार के तेज झोंके नहीं सहन कर सकता मगर इस खाद को आप बाजार में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जाकर नहीं खरीद सकते, कोई यार दोस्त आपको उसकी सौगात नहीं भेज सकता, कोई जादू मन्तर भी उसे लाकर आपके हाथ में नहीं दे सकता । उसे तो स्वयं ही अपने बल से प्राप्त करना होता है ।

**न जाने कल क्या विपत्ति आयेगी ?**—भविष्य में क्या होगा, हमारे ग्रह शुभ हैं या अशुभ, हमारे भाग्य की रेखाओं की प्रगति किस ओर है, हमारे शगुन ग्रह नक्षत्र अच्छे है या बुरे यह सब भयंकर प्रश्न है जो कितने ही व्यक्तियों की मानसिक शान्ति भंग किया करते हैं । भविष्य में दु:ख आने वाले हैं-भय की यह धारणा मन में आते ही हाथ-पाँव निर्जीव से हो जाते हैं तथा हम निरुत्साह हो उठते हैं ।

भविष्य जानने के लिए कितने ही भयभीत व्यक्ति फकीरों, ज्योतिषियों तथा मुल्लाओं के पास भटकते हैं । जिससे तनिक भी भविष्यत के विषय में पता चलने की आशा हुई कि उसके पीछे-पीछे लगे रहते हैं और खून पसीने की गहरी कमाई सहर्ष सौंप दिया करते हैं । किसी ने उनके मन की बात कह दी कि ये फूल उठे । किसी ने कुछ भयंकर बात बता दी कि मुर्झाकर निरुत्साह हो गये और अपने भाग्य को कोसने लगे । कमनसीवी, नाकामयावी तथा असफलता की घातक कल्पना मात्र से वे झींकने लगते हैं, परेशान हो जाते हैं और यह मान बैठते हैं कि हम तुच्छ हैं, क्षुद्र हैं, हीन हैं । हमारे भाग्य में तंगी, कमजोरी, अकर्मण्यता ही है । हमारे पल्ले रूखी-सूखी ही बदी है ।

**जिन बातों से डरते हो वे होने वाली नहीं हैं**—प्रिय पाठक ! स्मरण रखो कि भविष्य का ज्ञान असम्भव है । आज तक कोई उसे जान नहीं सका है । यदि उसका ज्ञान भी हो जाय तो क्या लाभ ? भवितव्यम् ही होता है । नियति का लेखा बँधा है । उसमें से हम एक अक्षर भी इधर से उधर नहीं कर सकते । फिर उसे जानकर ही क्या करेंगे । यदि हम उसे इच्छानुसार बदल नहीं सकते, वह अतर्क्य है, शाश्वत है तो उस रहस्य को जान लेने से क्या प्रयोजन ? हाँ हानि की अधिक सम्भावना है यदि हमें यह मालूम हो जावे कि कल इतने रुपये अवश्य प्राप्त हो जायेंगे, तो सम्भव है कि हम आज गाँठ की पूंजी ही समाप्त कर डालें ।

इसी प्रकार यदि हमें ज्ञात हो जाय कि हमें कल इस संसार से विदा हो जाना है तो भय चिन्ता, उद्वेग, क्लेश से कल के स्थान पर आज ही मृत्यु हो जाय । प्राय: देखा गया है कि फाँसी का दण्ड पाने वाले कैदी केवल मृत्यु के विषम विचार द्वारा पहले से ही अधमरे हो जाया करते हैं ।

भविष्य में क्या होने वाला है, इस तत्व की अनभिज्ञता जीव को इसलिए प्रदान की गई है कि जिसने भविष्य में आने वाले अनिष्ट की शंका से उस परम शूलमय घटना के पूर्ववर्ती दिनों के सुख को हम खो न बैठें ।

उस बलि के बकरे को दखिए जिसके सिर पर मृत्यु पल-पल नाचती रहती है, यमदूत उसे हड़प जाने को तत्पर रहते हैं, बधिक पत्थर पर छुरा तेज करता है किन्तु बलि पशु अन्तिम क्षणों तक आनन्द से क्रीड़ा करता है । सत्य तो यह है कि आगम का अज्ञान परमेश्वर का परम अनुग्रह है । यदि उस पशु को यह ज्ञान हो जाय कि जरा देर में वह मृत्यु के घाट उता दिया जावेगा, तो कदाचित बध से पूर्व ही उसका अस्तित्व विलीन हो जाए और मृत्यु के पूर्ववर्ती दिनों के सुख को भी वह खो बैठे ।

**अनिष्ट की कल्पना न कीजिए**—सचमुच अनिष्ट की कल्पना विषमय है । भय तथा सन्देह से ही हम अपने को कष्टों तथा मुसीबतों में डालते हैं । मृत्यु का भय लोगों को खाये डालता है । मौत आयगी, सब प्राणी मात्र को आती है-यह निश्चय है पर जिस घटना से हम नहीं बच सकते, उससे डरना भी क्यों ? जब आयगी देखा जायगा । जितने दिन हमें रहने को मिले हैं उनका तो पूर्ण आनन्द उठा लें । आज का सुन्दर दिन हमें विश्व नियंता ने प्रदान किया है । आइये, उसे तो आनन्दपूर्वक प्रेम का अमृत छिड़क व्यतीत कर लें । कल क्या होगा कौन जाने ? किसे यह ज्ञान है कि कल आयेगी भी या नहीं । हम आज के लिए कह सकते हैं कि हमारा अस्तित्व है, हमारे गृह, बाल-बच्चे, बन्धु बान्धव इत्यादि हैं, किन्तु कल क्या हो यह सब कुछ सात परदों के भीतर छिपा है और जिसको कोई जानता नहीं उसकी फिक्र क्यों की जाय ?

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जीवन की पुस्तक का एक पृष्ठ ही, केवल आज वाला ही सफा आपके सम्मुख खुला है । उसे देखकर सिर्फ आप आज की बात जान सकते हैं पर अन्य पृष्ठों में कौन बाते छिपी है यह तथ्य तुरन्त प्रकाशित नहीं किया जा सकता । परमेश्वर अत्यन्त सावधानी से एक-एक पंक्ति और एक-एक पृष्ठ हमारे सामने आने देता है । यदि पूरी पुस्तक की विचारधारा, जीवन का पूरा लेखा एक बार ही हमें बता दिया जाय तो कदाचित दूर के अनिष्ट की बाट देखते-देखते शायद कुछ दिन में ही हम मृत्यु के ग्रास बन जायें ।

**''कल'' की चिन्ता छोड़ो**–यदि तुम सर्वांगपूर्ण आनन्द लेना चाहते हो तो कल के अनिष्ट की मिथ्या चिन्ता को दूर करो । तुम अपने चारों ओर उत्कृष्ट रस भरे जीवन के बीज बोओ । भविष्य के सुनहरे सपने देखने की आदत बनाओ । सदैव के लिए अपने मन में यह निश्चय बैठा लो कि आपका कल प्रकाशमय, मधुर तथा आनन्ददायक होगा । कल आप अपने को आज से अधिक सौभाग्यशाली पावेंगे ।

आप ऐसा सोचते रहिए कि हमें कल अपने कार्यों में और अधिक सफलता प्राप्त होगी । कल मेरा मन उत्पादक शक्ति से परिपूर्ण हो जायेगा । मैं अपने जीवन में और अधिक बढ़ जाऊँगा, ऊँचा उठ जाऊँगा, उत्तरोत्तर उन्नतिशील हूँगा, अधिकाधिक उज्ज्वल हो जाऊँगा प्रतिदिन, प्रतिपल मेरे अन्दर कुछ न कुछ इच्छाशक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है । कल पर मुझे पूर्ण विश्वास है । मेरी कल मुझ पर दिव्यता का संचार करने वाली देवी है ।

मुझ में इतनी शक्ति है कि विघ्नबाधाएँ डर कर स्वयं दूर भाग जायेंगी । कल मैं आज से अधिक प्रसन्न रहूँगा । मेरे मनोरथ, मेरी महत्वाकांक्षाएँ, मेरे स्वप्न खिंचकर मेरे और समीप चले आयेंगे । त्रिकाल में भी मुझे कोई हानि न पहुँचा सकेगा । संसार की कोई विरोधी शक्ति मेरे इष्ट मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती–ऐसी विचारधारा जब अन्त:करण में दृढ़ता से बैठ जाती है तो मनुष्य व्यर्थ की भ्रान्तिमय कल्पनाओं से बच जाता है ।

जब तुम अपने अन्दर साँस खींचों तो ऐसा ही विचार करो कि उत्कृष्ट प्राणशक्ति को खींच रहे हो । शोक, भय, दु:खों से ऊँचे उठ रहे हो । तुम्हारी आत्मा शुद्ध तथा निर्विकार बन रही है । तुम अपने जीवन को और देदीप्यमान कर रहे हो । अपने मस्तिष्क के प्रत्येक कण के साथ आध्यात्मिक सुख का दृढ़ चिन्तन करो जब तक तुम इसे पूर्ण रूप से चित्त में गहरा न उतार लो जब तक निरन्तर उसी का मनन करते रहो । इसे रस की तरह पान कर जाओ । जब तुममे दृढ़ता का संचार होगा तो तुम अपने आपको इसी अवस्था के साँचे में ढलता हुआ पाओगे । तुम्हारे मिथ्या संशय उड़ जायेंगे और तुम्हें अनिष्ट अधिक चिन्तित न कर सकेगा ।

## अभय होने का अमोघ उपाय

''सैंकड़ों मार्गों में बहती हुई नदी में क्या जहाज चल सकता है ? इसी प्रकार सैंकड़ों वस्तुओं में बिखरी हुई मनोवृत्ति कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकती । विचार और क्रिया के परस्पर विरुद्ध दिशा में चलते रहने से किसी कार्य में सिद्धि प्राप्त नहीं होती ।''

हमारे दु:ख क्लेश परस्पर विरोधी इच्छाओं के कारण उत्पन्न होते हैं । हमारी व्यथा को कोई दूसरा सहने वाला नहीं है । हम असली अवस्था में ही नहीं हैं । हमारी असली अवस्था वह है जहाँ दु:ख, अशान्ति, दर्द, शोक और मोह की आवाज बिल्कुल ही नहीं पहुँच सकती । वहाँ तो आनन्द ही आनन्द है, प्रसन्नता ही प्रसन्नता का प्रवाह चारों ओर अखण्ड बहता रहता है ।

हमारे मन में जो आज निश्चय है, जो विचार है, जिनको हम अपना मान बैठे हैं उनमें कितने विचार तो हमारे माता-पिता के हैं, कितने ही मित्र तथा सम्बन्धियों के हैं और कितने ही दूसरों के सुन कर ग्रहण किए हुए हैं । स्थिर चित्त करके अन्तर्मुख होकर अपने अन्त:पुर में प्रवेश करो । अपने अन्त:करण को टटोलो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम दूसरों के विचारों के वशीभूत हो रहे हो । दूसरों के विचार ही तुम्हें नचा रहे हैं । ऐसी मानसिक अवस्था में हृदय को कैसे शान्ति प्राप्त हो सकती है ।

जब तुम निद्रा में प्रवेश करो तो मन को परमात्मा पर एकाग्र कर दो फिर तुम्हें अनुभव होगा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कि तुम परमात्मा की गोद में सुरक्षित खेल रहे हो, महानिर्भय और आनन्द के समुद्र में मग्न हो रहे हो । निम्नलिखित वैदिक भावना पर अपनी समग्र बुद्धि को गढ़ा दो–

**अभयं मित्रात् अभयं अमित्रात्**
**अभयं ज्ञानात् अभयम् परोक्षात्**
**अभयं नक्तम् अभयम् दिबा**
**नः सर्वा आशा मम मित्रम् भवन्तु**

*–अथर्ववेद*

अर्थात्– ''हम अपने मित्रों से अभय हैं, हम अपने शत्रुओं से अभय हैं, हम अपने जाने हुओं से, जो मालूम हो गये हैं उनसे अभय हैं और जो अज्ञाता रहने वाले हैं उनसे भी अभय हैं । रात्रि के समय हम निर्भय हैं । सब दिशाएँ हमारी मित्र हो रही हैं ।

इस महामन्त्र की भावना को तन्मयता के साथ अपने हृदय में प्रवेश होने दो और फिर कुछ दिन बाद तुम देखोगे कि भय और चिन्ता काफूर हो जाती है । तुम्हारे अन्तःकरण की दुर्बलता दूर हो जाती है और तुम्हारे अन्तःकरण में आशा, उत्साह, विश्वास का संचार होगा । परमात्मा के राज्य में तुम सदैव निर्भय हो और तीनों लोकों में तुम्हें फिर किसका डर है ।

**तुम्हारे भय स्वनिर्मित हैं**–प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य पूर्ण स्वछन्द रहना पसन्द करता है । वह डरता नहीं । भयभीत होकर अप्राकृतिक बात है । प्रकृति नहीं चाहती कि मनुष्य डर कर अपनी आत्मा पर बोझ डाले । तुम्हारे सब भय तुम्हारे दुःख, तुम्हारी नित्यप्रति की चिन्ताएँ तुमने स्वयं उत्पन्न कर ली हैं । यदि तुम चाहो तो अन्तःकरण को भूत, प्रेत, पिशाचों की श्मशान भूमि बना सकते हो । इसके विपरीति यदि तुम चाहो तो अपने अन्तः करण को निर्भयता, श्रद्धा, उत्साह के सद्गुणों से परिपूर्ण कर सकते हो । अनुकूलता या प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाले तुम स्वयं ही हो । तुम्हें दूसरा कोई नहीं पहुँचा सकता । तुम चाहो तो निर्भय परम निःशंक बन सकते हो । तुम्हारी शुभ अशुभ वृत्तियाँ, यश अपयश के विचार, विवेक बुद्धि ही तुम्हारा भाग्य निर्माण करती है ।

भय की शंका मन में प्रवेश करते ही, वातावरण को सन्देहपूर्ण बना देती है । हमें चारों ओर वही चीज नजर आने लगती है जिससे हम डरते हैं । यदि हम भय की भावनाएँ हमेशा के लिए मनोमन्दिर से निकाल डालें, उचित रूप से तृप्त और सुखी रह सकते हैं । आनन्दित रहने के लिए अत्यन्त जरूरी है कि अन्तःकरण भय की कल्पना में सर्वथा मुक्त रहे । यदि हमें यह प्रतीत होता है कि अमुक मनुष्य ज्ञान तथा अनुभव में हमसे श्रेष्ठतर है, तो उससे भयभीत होने के स्थान पर शिक्षा ग्रहण करने का निश्चय ही मिथ्या भय को निकाल बाहर करेगा ।

आप दिमाग में बुरी-बुरी बातें लाते हैं, व्यर्थ के भयों से उद्विग्न रहते है, जो कोई भला बुरा आपको कह देता है उसे एकदम मान बैठते हैं । पर आप पूछते हैं कि क्या इस प्रकार का ताना-बाना बुनते रहने से आपकी दीनता या हीनता दूर हो सकेगी ? क्या वाह्य दुःखों तथा इच्छाओं में घुलते रहने से आप आत्मा के निर्भय स्वरूप को पहचान सकेंगे ? क्या क्षणभंगुर वस्तुओं पर अपनी वृत्ति स्थिर करने पा आप स्थायी शान्ति की शीतलता का अनुभव कर सकेंगे ? यदि आप समझते हैं कि ''हाँ ! हो जायगी '' तो आप भारी भूल करते हैं ।

आप साधारण स्थिति के व्यक्ति हैं, पैसा पास नहीं है, एक के बाद एक रोग आप पर आक्रमण कर रहा है, शरीर क्षीण हो रहा है, व्यापार में हानि हो रही है, आपका प्रिय व्यक्ति आपको रोता बिलखता छोड़ चला गया है । आपके बाप दादा को भयंकर रोग हुआ और वही आपको है, आपके अफसर आप पर अत्याचार करते हैं या किसी भयंकर कमी से आप खिन्न हो रहे हैं, चिन्ता सताती है, दूसरे लोग हमारे विषय में न जाने क्या-क्या शिकायतें करते होंगे । हम पूछते हैं कि क्या यह भय का मार्ग ही इन विकट परिस्थितियों से मुक्त होने का है ? क्या आप शोक संताप में डूबकर इन दुःखदायी भूमिकाओं को हटाना चाहते हैं ? क्या भय ग्रस्त रहने, भय तथा चिन्ता के दूषित विचारों की कल्पना में लिपटे रहने से आपके दुःखों का अन्त हो जायगा ?

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


**रोने से काम न चलेगा**—भय तथा चिन्ता स्वार्थी विकार हैं । तनिक-सा झुकाव देखकर ये धर दबाते हैं । बीती हुई कटु परिस्थितियों पर आँसू बहाना, आने वाले कल को भी वैसा ही बना डालता है । तो फिर क्या तुम भविष्य में भी दूषित विकारों की कल्पना से अन्त:करण को भूत पिशाचों की शमशान भूमि बनाना चाहते हो ? इसलिए, उठिए, फिजूल के डर को कल्पित दु:खों तथा चिन्ताओं को दूर भगा दीजिए । आइए, नए ''कल''का मानसिक चित्र आज से ही निर्माण करें और मानसिक चित्रांकन में शोक संताप, चिन्ता, निराशा तथा उदासीनता को निकट न आने दें । आइए हम आज से ही प्रतिज्ञा करें कि ''हम अभय हैं, सब समय सदा सर्वदा, परम निर्भय, परम निशंक है । हमें भगवान ने ऐसा बल दिया है कि कोई भी भय, चिन्ता निराशा हमें नहीं सता सकती । हम भय को फूँक से उड़ा सकते हैं । भय का पिशाच हमारे निकट नहीं आ सकेगा क्योंकि हमने आत्मश्रद्धा के दीपक को अपने अन्त:करण में सदा के लिए आलोकित कर लिया है ।''

उठिए, भय से हाथ झाड़ दीजिए । रोने से काम न चलेगा । रूखी रोटी खाकर हँसिए, कूदिए और कल चुपड़ी खाने का प्रयत्न कीजिए रोते रहकर विषम परिस्थितियों का निर्माण न कीजिए ।

**आत्म-परीक्षा कीजिए**—गम्भीरता से अपनी आत्म-परीक्षा कीजिए । अर्थात्—मन में इस प्रकार विश्लेषण कीजिए कि पुरानी सब स्मृतियाँ एक-एक कर स्मृति-पटल पर आ जाय । खोद-खोद कर पुरानी बातें याद कीजिए । कभी आपको किसी ने सताया है ? दु:खी किया है ? मान-हानि की है ? किसी ने आप पर आक्रमण तो नहीं किया ? आपके माता पिता तथा गुरुओं इत्यादि का व्यवहार आपके साथ कैसा रहा है ? इस प्रकार के बहुत से प्रश्न आपसे करते जाइए । आपको यह मालूम करना है कि आपको कौन-कौन सा मानसिक कष्ट है ? वह कौन से भय से जुड़ा हुआ है ? कौन-कौन सी भ्रान्तिमयी धारणाएँ आपके अव्यक्त मन में गहरी प्रतिष्ठित हो गई हैं ?

मनोविश्लेषण में आप किसी योग्य मनोवेत्ता से सहायता ले सकते हैं । मनोविश्लेषण करने वाला आपसे बहुत सी बातें करेगा, आपको अपने विचार निर्भयता से प्रकट करने की इजाजत देगा और गौर से आपके उत्तर को सुनेगा । बीच-बीच में वह आपको विश्वास दिलाता जायेगा कि आपकी गुप्त मन्त्रणाएँ दूसरे से प्रकट न की जायेंगी । उसे तो मन के अन्तिम परदे तक मन के पेंदे तक में से रोगी का भय देखना है । अत: जब तक वह भेदी न बने उसका कार्य नहीं चलता ।

जब आप विगत स्मृतियों को स्मृति पटल पर लाते हैं, तो कभी किसी न किसी रूप में अव्यक्त प्रदेश से प्रसुप्त भय निकल आता है । यह प्रसुप्त भय ही आपकी आत्महीनता की ग्रन्थि का कारण है । बस, इसको बाहर निकाल देना है ।

एक डॉक्टर ने एक अजीब रोगी का वृन्तात लिखा है । एक शरीर से बलवान युवक जिसका विवाह हुए कुछ ही मास हुए थे, सदा इस बात से खिन्न रहता था कि वह अपने को दाम्पत्य कार्यों में बहुत निर्बल पाता है । उसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दर एवं रूपवती थी । वह युवक जब मनोवैज्ञानिक से मिला और जब उसका मनोविश्लेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि वह युवक बचपन में हस्तमैथुन की आदत में फँसा था । उसके साथियों ने सुझाया कि ऐसी आदत वाले की स्तम्भन शक्ति अत्यन्त निर्बल हो जाती है । इस प्रकार की भ्रान्तिमूलक बातों का बहुत सा वृतान्त उसने विज्ञापनों में भी पढ़ा था । अचेतन ज्ञानशक्ति पर इस बात का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा था जिससे वह युवक दाम्पत्य कार्यों में बेतरह भयभीत हो जाता था । उसके मन में यह कल्पना आती थी कि जैसे वह अपने आपको सब कुछ करने में असफल पा रहा हो जैसे उसे बड़ा बेशर्म बनना पड़ रहा हो । क्रमश: यह ''भय'' हीनत्व की आत्म ग्रन्थि बन कर अव्यक्त में बैठ गया तथा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के समय निकाला गया ।

**''भय'' निर्मूल था**—यदि आप हीनत्व की भावना वाले किसी रोगी की चिकित्सा कर रहे हैं तो कल्पित ''भय'' का कारण विदित हो जाने पर रोगी को यह विश्वास दीजिए कि जो लक्षण उसमें पाये जाते हैं, उनमें से गूढ़ बीमारी प्रकट नहीं होती । वह तो स्वाभाविक स्थिति है । ऐसा हो ही जाता है । जिन

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कारणों से रोगी डर रहा है सर्वथा निर्मूल हैं, व्यर्थ ही दिमाग में प्रवेश कर गये हैं । इस प्रकार की बातचीत करने से, प्रोत्साहन देने से, उसके साथ सहानुभूति प्रदर्शन करने से बीमारी स्वतः दूर हो जाती है ।

कभी-कभी रोगी मानता नहीं है । उसे बार-बार निर्देश किया जाता है पर वह पुनः पुनः निराशावादी बना रहता है । ऐसी परिस्थिति में बहुत से तर्क-वितर्क प्रस्तुत करने पड़ते हैं । अनेक वृतान्त सुनाने पड़ते हैं । कितने ही उदाहरण पेश करने पड़ते हैं तब रोगी के मन से भ्रमात्मक भावना निकल पाती है ।

**आत्म संकेत का प्रयोग**—जो व्यक्ति बिना किसी तर्क वितर्क के संकेतों को ग्रहण कर लेता है, उसे मनोवैज्ञानिक चिकित्सा से बड़ा लाभ पहुँचता है । मन एक प्रकार की उर्वराभूमि की तरह है । इसमें आप आत्म संकेत द्वारा जैसे विचार बीज बो देंगे कालान्तर में वे आपके कार्यों में प्रकट होंगे । अतः आप कायरता के स्थान पर आत्मविश्वास के बीज मनोभूमि में लगाने प्रारम्भ कीजिए । आशावाद की शुभ प्रेरणा में गोता लगाइये । मन में से संदिग्धवृत्ति निकाल कर स्थिरता तथा दृढ़ता का समावेश कीजिए । अपने कल्पित शत्रुओं के स्थान पर अपने अनन्य मित्रों की मृदुल कल्पना में अवगाहन कीजिए । विनाश भावना की जगह आत्म कल्याण की नई युक्तियों का निर्माण कीजिए ।

आधुनिक मनोविज्ञान ने अनेक खोजों के पश्चात यह सिद्ध कर दिया है कि आत्महीनता जन्मजात दुर्गुण नहीं वरन् एक प्रकार की आदत है । जिस प्रकार सिगरेट की आदत नित्य के अभ्यास से बढ़ जाती है, उसी प्रकार आत्महीनता की भावना भी दीर्घकाल के अभ्यास से प्राप्त होती है । अभ्यास से हम वीर पुंगव महान साहसी नायक बन सकते हैं, तथा अनुचित अभ्यास द्वारा हम डरपोक कायर भी हो सकते हैं । आत्महीनता ऐसे ही अशुभ अभ्यास परिणाम है ।

जरा विचार कीजिए, यदि आप डरपोक बने रहने का अभ्यास करेंगे, बात-बात में कायरता दिखायेंगे, दूसरों की विनाशकारी बातों में आ जाया करेंगे, तो क्या आप इस कर्मभूमि में कुछ न कर सकेंगे ? यहाँ तो पग-पग पर युद्ध करना होता है । इस प्रलय कारी युद्ध में कितनी ही बार आँधी तथा तूफान का वेग आता है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे जीवन नौका उलट कर समुद्र की लहरों में विलीन हो जायगी, अब बचने का कोई मार्ग नहीं दृष्टिगोचर होता किन्तु फिर देखते हैं कि आँधी तूफान शान्त हो गया और नौका पुनः आनन्द से चलने लगी । यदि आप जरा-जरा सी क्षुद्र कठिनाइयों को देखकर भयभीत होंगे, या घबरा जायेंगे तो विषम परिस्थितियों का क्यों कर मुकाबला कर सकेंगे ? जो मनुष्य प्रत्येक चीज से डरता है वह नर्क की घोर यन्त्रणा भुगता करता है । ऐसे मनुष्य को मृत्यु जीते जी ही समझिए । दूसरे उसे यों ही हड़प जाते हैं ।

तुम्हें दूर से अपनी कठिनाइयाँ दुर्भेद्य प्रतीत होती हैं किन्तु वास्तव में वे तुम्हारी संदिग्ध वृत्ति की छाया मात्र है । जैसा तुम्हारा अभ्यन्तर प्रदेश है जैसी तुम्हारी भावनाएँ, वृत्तियाँ हैं उन्हीं के अनुसार तुम्हारा वातावरण भी है । तुम सदा अपने भावों, विचारों संकल्पों के मेघों से आच्छादित रहते हो । जैसे मकड़ी अपने चारों ओर जाला बुनती है और निरन्तर उसी में निवास करती है, उसी प्रकार तुम अपनी कल्पनाओं से अपना अन्तःकरण बसाते हो । अन्तः करण एक बस्ती है । इसमें तुमने जिस-जिस को स्थान दिया वही इसमें बस गया है । तुम्हारी बस्ती में कौन-कौन है ? आरोग्य, पुष्ट और आशावादी संकल्प या अनिष्ट की ओर झुकने वाली प्रवृत्तियाँ ?

आज से ही अपनी बस्ती के प्राणियों को देखो । जो अशुभ, दुःख, दुर्दैव और अनिष्टकारी हैं उन्हें सर्वदा के लिए देश निकाला दे दो । आनन्द के, उत्साह के तथा साहस के संकल्पों को बस्ती में बसाओ । निष्प्रयोजन वासनाओं से मुक्त हो जाओ । ''मेरे जीवन की देवी उत्कृष्ट अवस्था का प्रत्यक्ष जगत में अवश्य प्रादुर्भाव होगा—ऐसे संकल्प को लेकर मन में गहरे उतर जाइये और मन की समस्त शक्तियाँ उसी पर केन्द्रीभूत कर दीजिए । आपको केवल उस पर ''अटल विश्वास'' तथा ''आत्मश्रद्धा'' रखने की आवश्यकता है । फिर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आप देखेंगे कि शुभ संकल्प की शक्ति आप में कैसा अद्‌भुत परिवर्तन कर दिखाती है । संसार में बड़े-बड़े विचारकों और मनीषियों ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है और उन्नति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग यही बतलाया है कि मनुष्य अपने ऊपर विश्वास रखकर सद्‌विचारों का बीजारोपरण करता रहे । देखिए विचार-शक्ति की महिमा को जानने वाले प्रसिद्ध विद्वान स्वेट मार्डन क्या कहते हैं-

''विचार कर लो मन, वचन, काम से इस बात को मान लो-कि अब भी हम वैसे ही मनुष्य हैं, जैसे कि हम होना चाहते हैं, जैसा कि हमारा आदर्श है । हम कमजोर नहीं, निर्बल नहीं, दरिद्र नहीं वरन् शक्तियुक्त, समृद्धियुक्त और महान आत्मा हैं । ऐसा करने से थोड़े ही दिनों में आपको मालूम होगा कि आपके आदर्शों की सिद्धि बड़ी शीघ्रता के साथ आपकी आत्मा में हो रही है-उन आदर्शों से आपका चरित्र परिपुष्ट हो रहा है ।

''हमें आवश्यकता है उन सद्‌गुणों की जो हमें ऊँचा चढ़ावें । हमें आवश्यकता है उन सद्‌गुणों की जो हमारी आत्मा में दिव्यता लावें । हमें आवश्यकता है उन सद्‌गुणों की जो हमारे भीतर सद्‌गुणों का विकास करें । हमें आवश्यकता है उन गुणों की जो हमारी निर्माण शक्ति को तेज करें और हमारी अकर्मण्यता और दुःख दारिद्रता का नाश करें ।

इसी प्रकार एक भारतीय विचारक श्रेष्ठ विचारों की शक्ति का विवेचन करते हुए कहते हैं-

''जीवन-रूपी क्षेत्र में विचार एक बीज के सदृश है । यदि काँटे का बीज बोया जायगा तो आम कैसे उत्पन्न होंगे ? ऐसे ही, जैसा विचार होगा, वैसा ही उसका फल होगा । इससे हम आम का बीज क्यों न बोयें ? अपने विचारों के रचियता, पालनकर्ता और संहारकर्ता तुम्हीं हो । जिस विचार को प्रकट करना चाहो उसे तुम प्रकट कर सकते हो, जिसे चाहो बढ़ाकर विकसित और पालन कर सकते हो और जिसे चाहो उसे नाश भी कर सकते हो । इसलिए विचारों के बीज बोने में सदा सावधान रहो । दृढ़ विश्वास रखो कि सूर्य चाहे प्रकाश करना बन्द कर दे पर विचारों का परिणाम कभी निष्फल नहीं होता । इसलिए आत्म-विश्वास से कभी मत डिगो, मन को धैर्य के साथ साधन में लगाये रहो, जिससे तुम सदैव सफलता प्राप्त करते रहो ।''

# संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करें

आपसे पूछा जाय कि क्या आप इस संसार और मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं ? आप पूछेंगे, बतलाइये वह क्या है और सब छोड़कर उसे अवश्य ही प्राप्त करना चाहेंगे ।

हमारे पास जो भी धन है, उसे देकर हम संसार की सबसे अच्छी वस्तु प्राप्त करना चाहेंगे । अपनी छोटी-बड़ी सब सम्पत्ति बेचकर हम विश्व की सर्वश्रेष्ठ वस्तु ही पाना चाहेंगे । हम साधारण से कभी सन्तुष्ट न होगें ।

हमारे पास दो हाथों की शक्ति है, यदि उनके द्वारा हम उस श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं, तो इसमें कोई कमी नहीं रखेंगे । अपनी पूरी शारीरिक शक्ति और सामर्थ्य लगाकर उसके लिए प्रयत्न करेंगे ?

हमारे पास क्रियाशील मस्तिष्क है । उसकी सहायता से यदि हम विश्व की इस को पा सकते हैं तो क्यों पीछे रहेंगे ।

लेकिन निश्चय जानिये, वह बहुमूल्य वस्तु न धन से, न शारीरिक शक्ति से, न किसी बाहरी ताकत से ही जीती जा सकती है । ईश्वर की कितनी बड़ी कृपा है कि संसार की अन्य दुर्लभ वस्तुओं जैसे जल, वायु इत्यादि की तरह वह भी हम सबके लिए सच्ची चाह एवं सतत् और निरन्तर अभ्यास मात्र की ही आवश्यकता है ।

संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु बड़ी दिव्य और अदृश्य है । ईश्वर ने हम सभी को वह बहुमूल्य मशीन दी है, जिसके द्वारा यह वस्तु उत्पन्न की जा सकती है ।

अथर्ववेद में इस महाशक्ति-इस सर्वश्रेष्ठ वस्तु का संकेत इन शब्दों में कर दिया गया है-

**त्वं नो मेधे प्रथमा ।**

*-अथर्व० ६।१०८।१*

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अर्थात् ''सद्विचार ही संसार में सर्वश्रेष्ठ है ।'' विचार उत्पन्न करने का यन्त्र हमारा अपना मस्तिष्क है । हमारा वह मस्तिष्क हमारी रुचि, संगति मनोवृत्ति, बुद्धि और आचार-विचार के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के अच्छे बुरे (जैसे हम चाहें) विचार पैदा कर सकते हैं ।

मस्तिष्क को सही दिशा में चलायें तो अच्छे स्वास्थ्य प्रदान करने वाले प्रेरक विचार पैदा होते हैं, किन्तु यदि उसी को गलत दिशा में मोड़ दें तो उससे रोग, चिन्ता उद्वेग और क्रोध इत्यादि मनोविकार उत्पन्न हो जायेंगे ।

सद्विचार-आशा, उत्साह, पौरुष, धैर्य, त्याग, प्रेम, आनन्द और उन्नति के विचार एक महान उत्पादक शक्ति हैं । जो विचार मनुष्य को नई-नई प्रेरणा, नई दिशा, नई जिन्दगी की नई आशा दे, उसे सही मार्ग में बढ़ाये, वही मानव की बहुमूल्य सम्पत्ति है ।

विचार-यन्त्र मनुष्य शरीर का सबसे कीमती भाग है । आप पागल खाने में जाकर देखिए । आपको भारी भरकम, मजबूत, खूबसूरत तरह-तरह के जवान मिलेंगे । उनका तन आपको खूब स्वस्थ दिखाई देगा । वे कुश्ती लड़ें तो अच्छों-अच्छों को जमीन पर पटक मारें । पर स्वस्थ तन में स्वस्थ मन रहेगा ही, यह आवश्यक नहीं । उन पागलों को बाहर से देखकर नहीं कहा जा सकता कि वे वास्तव में पागल हैं या नहीं । पर तीखी दृष्टि से देखने और कुछ देर के साथ रहने पर आप पायेंगे कि उनका मस्तिष्क ठीक विचार पैदा नहीं कर रहा है । उनकी रुचि विकृत हो गई है । वे समाज के लिए खतरनाक सिद्ध हो गए हैं । उनमें कुछ न कुछ मानसिक विक्षेप अवश्य हैं । उनका मानसिक सन्तुलन गड़बड़ हो गया है । साधन और साध्य, उचित और अनुचित, जरूरी और बिना जरूरी, कौन कार्य पहले करे, कौन बाद में करें इसका विवेक, कहाँ जोर डालें, कहाँ कम महत्व दें इन सबमें सही सन्तुलन न होना ही मानसिक विकृति है । कभी भय, कभी उत्तेजना, कभी लोभ, कभी अहंकार, कभी चिन्ता इत्यादि किसी भी मनोविकार का आधिक्य मन में एक प्रकार की गाँठ सी उत्पन्न कर देता है यही विचार यन्त्र का गलत प्रयोग है । मनोविकारों के उच्छशृंखल और अनियन्त्रित हो जाने से ही भाँति-भाँति के मन के रोग पैदा होते हैं ।

मानस रोग असंख्य हैं । बहुरूपी हैं । नाना स्तर के हैं । किसी को उग्र हैं तो किसी में कुछ न्यून । कोई निराशा में रो रहा है, कोई काल्पनिक भय को देखकर मरा जा रहा है । किसी को अपने मातहतों, परिवार के सदस्यों या देश के नेताओं पर क्रोध आ रहा है । कोई बार-बार अपने शरीर को धो-धोकर आन्तरिक एकत्रित गन्दगी से पीछा छुड़ाने जा रहा है । किसी की मानसिक विकृति ने उसमें विशेष प्रकार की शारीरिक अंग-भंगिमा पैदा कर दी है । कुछ व्यक्ति बार-बार रूमाल से अपना मुँह पोंछते हैं, कुछ गुप्त अंग को खुजलाते हैं, नाक में हाथ डालते हैं, कुछ बनाव शृंगार टोपी को खास तरीके से सजाते हैं, शीशे के आगे घण्टों खड़े रहकर अपना रूप निहारते हैं, छैल-छबीले बने रहते हैं, उचक-उचक कर औरतों को देखते हैं । यह सब मन में वर्षों से इकट्ठे, बचपन से चले आते कुविचारों का विष है । ऐसे असंख्य मानस रोगी आपको दैनिक जीवन में मिल जायेंगे । ये विचार-यन्त्र अर्थात् अपने मस्तिष्क के गलत उपयोग के दुष्परिणाम हैं । गन्दे विश्वास, वासनाएँ, चिन्ताएँ अन्तर्मन में जमकर मानस-रोग उत्पन्न करते हैं ।

विचार-यन्त्र को आन्तरिक संघर्षों के थपेड़ों से बचने की अतीव आवश्यकता है । मन में विकार अधिक दिनों तक ठहराकर हम जीवन भर के लिए मनोरोगों को न्यौता देते हैं । मन का गलत उपयोग आजन्म कष्टों में फँसाने वाला होता है ।

ऐसे व्यक्ति भाग्यशाली हैं जो विचार-यन्त्र को सही दिशाओं में चलाकर जीवन को सत् प्रेरणाओं, उत्तम योजनाओं और स्वास्थ्य से भर लेते हैं तथा किसी प्रकार की दूषित भ्रान्तियों या अन्धविश्वासों में नहीं फँसते ।

राक्षस कहीं और नहीं, इस दुनियाँ में ही होते हैं । जो व्यक्ति मानसिक गन्दगी से भरा हुआ है और उसी को दैनिक जीवन में उभार रहा है, वह

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


राक्षस ही है–चाहे उसका शरीर मनुष्य का ही क्यों न हो । विचार यन्त्र को उलटी दिशा में घुमा देने से मनुष्य की भ्रान्तियाँ, गलत मान्यताएँ और अन्तर्मन की जटिल ग्रन्थियाँ उभर उठती हैं । उसका राक्षसी स्वरूप ऊपर आ जाता है । हमारे समाज में तो अधिकांश व्यक्ति भ्रमित, चिन्तित और उद्विग्न हैं, नाना प्रकार की मानसिक परेशानियों से आक्रांत रहते हैं, झाड़-फूँक, जादू-टोने, जन्तर-मन्तर कराया करते हैं, उससे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि वे अपने मस्तिष्क को राक्षसी दिशा में विकसित कर रहे हैं । जिस यन्त्र से देवत्व को जाग्रत कर सकते हैं, उसी को गलत दिशा में घुमाकर अपने निन्द्य घृणित स्वरूप को जगाकर नरक में पड़े हुए हैं ।

सही रूप में प्रयुक्त मस्तिष्क का फल सद्विचार है गलत रूप में प्रयुक्त मस्तिष्क का कुफल विषैले विचार और कुकल्पनाएँ हैं । हमेशा किसी को प्रत्यक्ष देखना, अपना तिरस्कार करना, जरा-सी असफलता से निराश और हतोत्साह हो जाना झींकना उत्तेजित हो उठना, छोटी-सी बात पर बिगड़ जाना, भावना में बहुत अधिक बह जाना, आवेश में आकर जली-कटी सुनाने लगना विचारशक्ति का दुरुपयोग है जो हर प्रकार से घातक और त्याज्य है । मनोविकार प्रत्यक्ष नरक-तुल्य हैं । कुविचार मनुष्य को जीते-जी नरक की अग्नि में ढकेल देते हैं । वह सारे दिन अन्दर ही अन्दर जला करता है । कुविचारी सबको अपना शत्रु मान बैठता है या अपने को सबसे कमजोर मानकर दुबका, सकुचाया-शर्माया रहता है । अपने लिए शोच विचार रख दुःख में डूबा रहता है । रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि, कटुता, ग्लानि , निर्बलता, शक्तिहीनता के विचार मनुष्य के भारी शत्रु हैं । सही दिशा में चलने वाला मस्तिष्क मनुष्य का प्रेरक है, गलत दिशा में चलने वाला सबसे बड़ा शत्रु !

संसारी मनुष्यों ! आपका मस्तिष्क ईश्वर की बड़ी देन है । वह आपको सही दिशा में उत्पादक-सृजनात्मक भव्य विचार उत्पन्न करने के लिए दिया गया है । अपने आपको अन्तर्द्वन्दों, द्विविधापूर्ण परिस्थितियों, सन्देहों तथा व्यर्थ के वितर्कों में मत डालिए । आपके मस्तिष्क से स्वस्थ और आशावादी विचार ही उत्पन्न होना चाहिए । प्रत्येक विचार से आत्मविश्वास पैदा होना चाहिए ।

यहाँ हम जो कुछ विचार-बीज दे रहे हैं । ये विचार-यन्त्र को सही दिशाओं में घुमाने की रीतियाँ हैं । जैसे रम्य बाटिका में हम बीज बोते हैं और भाँति-भाँति के वृक्ष और पुष्प पैदा होते हैं, वैसे ही इन विचारों पर मन को दृढ़तापूर्वक एकाग्र करने से विचार यन्त्र उन्हीं दिशाओं में चलता है । बाइबिल में लिखा है, 'माँगो और तुम्हें मिलेगा । खटखटाओ और तुम्हारे लिए द्वार खुल जायेंगे । तलाश करो तुम पा लोगे ।' ये सब वाक्य हमारे अन्तर में बैठी हुई उस दैवी शक्ति के सूचक हैं, जिसे अन्तरात्मा कहते हैं और जो हमें सदा ऊँचा उठाती हैं और आगे बढ़ाती हैं ।

कुछ दिव्य प्रेरक विचार-बीज–मन में कहिए, मैं सदा आशा, विश्वास, उत्साह और स्थिर बुद्धि रखता हूँ । मैं अपनी उन्नति की आशा अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों के प्रतिपूर्ण विश्वास और अपने लक्ष्य के प्रति उत्साह की पूँजी लेकर जीवन में प्रविष्ट हुआ हूँ । अपने उद्देश्य में मेरी बुद्धि पूर्ण रूप से स्थिर है ।

जिसका अपनी शक्तियों में विश्वास होता है, पृथ्वी पर उसके लिए कौन सी वस्तु साध्य नहीं है ? आत्मा ही सब शक्तियों और उच्चतम गुणों का अपने आप में एक उत्पत्ति स्थल है । मैं अपनी आत्मा को अपना दिव्य रूप समझता हूँ । मुझमें ईश्वर मेरे आत्मा को धारण कर विराजमान है । मेरे मन, वचन, कर्मों के माध्यम से ईश्वर ही प्रकट हो रहे हैं ।

जिसका आत्मा में विश्वास नहीं होता, जो उसकी आज्ञा को नहीं सुनता, उसका चित्त सदा संशय से उद्भ्रान्त बना रहता है और वह सर्वत्र भ्रान्ति ही भ्रान्ति को पाता है । मैं यह जानकर सदा सही दिशा में ही चलता हूँ । स्वस्थ और उत्तम विचार ही मन में रखता हूँ । विद्याधरनीतिरत्नम् के लेखक का कथन है–

**यस्य तस्मिन्न विश्वासस्तदाज्ञां न शृणोति यः ।**
**संशयोद्भ्रान्तचित्तः स भ्रान्तिमेवाधिगच्छति ।।**

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अर्थात्- ''थककर भी यदि कोई अपने साहस और उत्साह को न छोड़े, तो दुर्गम अरण्य में भ्रान्त होकर भी वह अपने मार्ग को अवश्यमेव पा जाता है ।''

मैं कठिन स्थिति में भी अपने साहस और उत्साह को सम्हाले रहता हूँ । अत: मैं अपने सही मार्ग पर चलता रहूँगा ।

**अनन्ते के वयं क्षुद्रा नैवं चिन्त्यं कदाचन ।**
**कणस्य पर्वतस्यापि स्थितिस्तस्मिन् यत: समा ।।**

अर्थात्- ''इस अनन्त ब्रह्माण्ड में हम क्षुद्रों की क्या पूछ है-ऐसा मैं कभी नहीं विचारता हूँ । विश्व में कण और पर्वत दोनों की एक समान स्थिति है । इन दोनों को विकास का समान अवसर मिलता है । मैं चाहे कण हूँ तो भी विकसित हो सकता हूँ । मुझे कभी भी किसी भी दशा में निराश होने की आवश्यकता नहीं है ।'' बूँद-बूँद से सागर बनता है । इसी नियम के अनुसार शक्ति का कण-कण एकत्रित कर मैं महानता की ओर बढ़ रहा हूँ ।

निर्धन और निर्बल होकर भी मानव सदा ही महान विभूतियों से भरा हुआ है । मानव को देवता बनना चाहिए । महानता प्राप्त करना उसकी अन्तिम गति है । मैंने अपने इस जीवन में महानता की सिद्धि को ही अपना लक्ष्य चुना है ।

**किं धनं किं बलं लोके का वा राजादिसत्क्रिया ।**
**नैतिकं बलमाधेयं यद्धि सर्वार्थसाधकम् ।।**

''धन क्या, बल क्या अथवा राजाओं से प्राप्त सत्कार भी कौन सी विशेषता रखता है ? ये कुछ नहीं । मैं सदा सर्वदा नैतिक बल को ही धारण करता हूँ, जो कि समस्त अर्थों को सिद्ध करने वाला है ।''

**हीनोऽहं हन्त दीनोऽहं व्यामोहं त्यज सत्वरम् ।**
**नाकाशो रजसाऽऽक्रान्तश्चिरं म्लानो हि तष्ठिति ।।**

''मैं हीन हूँ, मैं दीन हूँ-इस प्रकार व्यामोह को सदा के लिए मैंने त्याग दिया है । आकाश चिरकाल तक केवल धूल, मिट्टी और तूफान से भरा नहीं रह सकता । अन्त में उसे अवश्य ही स्वच्छता प्राप्त होगी ।'' धूल इत्यादि तो क्षणिक हैं । इसी प्रकार मेरी सारी परेशानियाँ क्षणिक हैं । कल को अवश्य दूर हो जायेंगी । वे अल्पकालिक हैं ! अब उनका अन्त निकट आ गया है अब मैं व्यर्थ न घबराता हूँ न अशान्त ही होता हूँ ।

मैं दीन नहीं हूँ । मैं निर्बल नहीं हूँ ! मैं किसी भी प्रकार से हीन या निर्बल नहीं हूँ । मैं तो सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप परम शक्तिशाली आत्मा हूँ । मुझ में असंख्य गुप्त आत्मशक्तियाँ छिपी पड़ी हैं । आत्मविश्वास की कुंजी से मैं उन्हें खोल रहा हूँ ।

**प्रसुप्तं नाम यत् किंचिज्ज्योतिस्तेऽन्तर्विराजते ।**
**कुरु यत्नेन तद् बुद्धं लोको बुद्धो भविष्यति ।।**

''जो दिव्य ज्योति मुझमें सुप्त हो रही है, उसको मैं यत्नूपर्वक प्रबुद्ध कर रहा हूँ । उस ज्योति के प्रबुद्ध होने पर समस्त संसार ही प्रबुद्ध हो जायगा ।''

हमारा यह कर्तव्य है कि हम सदा इस भावना को दृढ़ रखें कि हम सब स्थानों में, सदा सब कुछ करने में निश्चित रूप से पूर्ण समर्थ हैं । इस बात को दृढ़ करने से हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित होती हैं । अपनी शक्तियों के प्रति मनुष्य का जितना दृढ़ विश्वास पकता जाता है, वह ज्यों-ज्यों जीवन की छोटी सफलताएँ प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों उसमें महानता के गुणों का विकास होता जाता है ।

सद्विचार (अर्थात् अपनी बुद्धि, प्रतिभा और शक्तियों के प्रति अखण्ड विश्वास) ही मनुष्य की उन्नति का मूल-मन्त्र और संसार की सर्वश्रेष्ठ कीमती वस्तु है । उसे धारण करने से मनुष्य सफलताओं की ओर स्वत: अग्रसर होने लगता है । जिसने अपने विचार यन्त्र को सही दिशा में चलाना सीख लिया है, उसकी उन्नति में देर नहीं समझनी चाहिए ।

## विचारों की जाग्रति

प्रत्येक विचार कमल के समान एक लम्बी जड़ रखता है । जिस प्रकार कमल दल की जड़ें पानी की सतह के नीचे मिट्टी कीचड़ में उगी रहती हैं, ऊपर केवल तनिक-सा पुष्प मात्र दिखाई देता है, उसी प्रकार विचार रूपी पुष्प मनुष्य के गुप्त मन में जमी हुई संस्कार रूपी मिट्टी में जड़ पकड़े रहता है । जो मनोभाव ऊपर आता है, वह अपने भीतर

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


तदनुरूप विचार रखता है । यह विचार संस्कार के साथ जुड़ा रहता है । देर तक मस्तिष्क की चेतना पर रहकर कोई विचार संस्कार का रूप धारण कर सकता है, या संस्कार अपने जैसे विचार को जन्म दे सकता है ।

आपके विचार का एक गुण यह है कि उसके साथ जितनी भावनात्मक अनुभूति होती है, वह उतना ही गहरा प्रभाव आप पर छोड़ता है । भाव विचार को शक्तिमान बनाने वाला तत्व है । यदि हम किसी विचार के साथ किसी भाव को संयुक्त कर लें, तो विचार अधिक स्थाई हो जाता है । उसका संस्कार भी मजबूत बनता है । यदि किसी विषय या व्यक्ति या घटना के सम्बन्ध में मनुष्य की मधुर स्मृति होती है–अर्थात् भावनात्मक अनुभूति आनन्दमय होती है, तो उसका उतना ही गहरा प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है । प्रत्येक शुभ विचार व्यक्तित्व को खोलने वाला है, उसका सही दिशा में विकास करने वाला है । अच्छा विचार मस्तिष्क की चेतना पर रखने से अचेतन मन का भी निर्माण करता है । यह अवचेतन मन शक्ति का भण्डार है । आपके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाला गुप्त केन्द्र है । यह शक्तिशाली ढंग से जिन विचारों को प्रतिपादित करता है, वे ही विचार, भावनाएँ, संकल्प, मान्यताएँ, मन के द्वारा हमारे व्यक्तित्व का अंग बन जाती हैं ।

मान लीजिए आप उत्तम स्वास्थ्य का दृढ़ विचार और चिन्तन स्थाई रूप से टिकाने के लिए अपने गुप्त मन को देते हैं । आप उत्तम स्वास्थ्य के विषय में, जो भी भव्य-भव्य मानसिक चित्र हों, उन्हें ध्यान शक्ति में खींचना प्रारम्भ कर दीजिए । एक सर्वोत्तम स्वास्थ्य वाले, ऐसे पुरुषार्थी दीप्तिवान स्वस्थ मनुष्य का मानस-चित्र कल्पना में बनाइये जिसमें यौवन पुरुषार्थ और सौन्दर्य कूट-कूट कर भरा हो, जिसके अंग प्रत्यंग भरे-पूरे हों, पूर्ण विकसित हों । मुख पर प्रसन्नता थिरक रही हो । इस मानस-चित्र के साथ धीरे-धीरे मन मन कहिए, मैं सदा पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द लेता हूँ । मेरे सब अंग हर प्रकार विकसित हैं । पूर्ण रूप से पुष्ट हो रहे हैं मैं उत्तम पाचन का आनन्द लूट रहा हूँ । मैं जो भी भोजन करता हूँ वह उचित रीति से मुझे पच जाता है और रक्त, माँस, मज्जा, वीर्य, इत्यादि तत्वों की वृद्धि करता है । मैं कभी बीमार नहीं पड़ता । ईश्वर ने मुझे पूर्ण स्वस्थ बनाया है । मेरा सब शारीरिक संस्थान अपना कार्य उचित रीति से सम्पन्न करता है । मैं खूब खुलकर हँसता हूँ और उस हँसी से मुझे यौवन, ताजगी और उत्तम मानसिक आह्लाद बनता जा रहा है । इस प्रकार के उत्तम स्वास्थ्यकारी विचारों को मन में प्रचुरता से रखिये । फिर इसकी रचनात्मक प्रक्रिया का असर अपने स्वास्थ्य और जीवन पर देखिये । आप पायेंगे कि इन शुभ विचारों की शक्ति धीरे-धीरे आपके स्वास्थ्य के निर्माण कार्य में जुट जायगी । देर तक मस्तिष्क में रहने से ये विचार अपना संस्कार आपके गुप्त मन पर छोड़ पायेंगे ।

**मानस-चित्रों का स्थाई प्रभाव**–आप किसी विचार को लेकर उसके अनुकूल जैसा मानस चित्र बनायेंगे, वैसा ही रूप आपके शरीर से स्पष्ट होकर रहेगा । संसार में शक्तियाँ बहुत सी हैं पर यह विचारशक्ति सर्वोत्कृष्ट है ।

अब आप एक दूसरा विचार लीजिए 'आत्म-विश्वास ।' इस विचार को स्पष्ट करते हुए मानसिक चित्र बनाइये । एक ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ बलवान् व्यक्ति को नेत्रों से देखिए, जो प्रत्येक कार्य स्वयं अपने पुरुषार्थ और स्वावलम्बन से करता है । किसी बात के लिए अन्य पर निर्भर नहीं रहता । वह यश, प्रतिष्ठा स्वयं अपने बाहुबल से प्राप्त करता है ।

फिर मन को स्वाबलम्बन के प्रचुर विचारों से भर लीजिए । मन ही मन कहिए 'मैं किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता । स्वयं अपने परिश्रम और उद्योग से सारे काम पूरे करता हूँ । मैं कभी दूसरों का सहारा नहीं चाहता । मुझे मालूम है कि परमुखापेक्षी सदैव निर्बल रहता है । जिसे स्वयं अपनी गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों को ज्ञान हो गया है, उसके लिए सफलता का द्वार खुला हुआ है । स्वाबलम्बी को किसी भी विषम परिस्थिति से हार नहीं माननी है । मैं अपना सब काम खुद करता हूँ, मेरी उन्नति का कारण मेरा स्वाबलम्बन ही है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मैं अपने पैरों पर खड़ा हूँ । मेरे मन, शरीर और आत्मा में अपार शक्ति और बल भरे हुए हैं ।

मैं आत्म-निर्भर रह कर सदैव अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करता हूँ तथा निरन्तर प्रतिष्ठा और यश प्राप्त करता जा रहा हूँ ।

आपका अवचेतन मन इन विचारों से अपूर्व शक्ति खींचेगा । इनमें रमण करने से इसी विचार के इर्द-गिर्द के और अनेक छोटे-बड़े सहायक विचार भी आपके मन में पैदा होंगे । आशा, उत्साह, उल्लास, उदारता आदि अनेक शुभ शक्तिशाली, जीवनपूर्ण उत्थान की भावनाएँ मन के कोने-कोने को भर देंगी । परिणाम यह होगा कि मानसिक और शारीरिक दोनों ही दृष्टियों से आप आरोग्य और पुरुषार्थ प्राप्त करेंगे । बार-बार इसमें विचरण करने से ये अपना स्थायी संस्कार मन पर छोड़ जायेंगे । मनोविज्ञान का नियम है कि प्रत्येक संस्कार मनुष्य के स्वभाव में क्रिया द्वारा प्रकाशित होता है । वैसी ही क्रियाओं द्वारा स्वाबलम्बन के विचार आपके व्यक्तित्व के अंग बन जायेंगे । आपका अवचेतन मन इसी प्रकार दृढ़, आशाप्रद, रचनात्मक विचारों को ग्रहण करने को प्रस्तुत रहता है ।

इसी प्रकार और उपयोगी स्वास्थ्य, यौवन दीर्घ जीवन का निर्माण करने वाले भव्य विचार शान्ति, प्रसन्नता, उदारता के हैं । इन सबके नाना मानस-चित्र बनाते रहना चाहिए । इन्हें व्यक्तित्व में उतारने और जड़ें जमाने के लिए जरूरी है कि सशक्त विचारों को अधिक से अधिक देर तक मन में ठहराने दिया जाय, इस पर मन को एकाग्र किया जाय देर तक इन्हीं पर भिन्न-भिन्न रूपों में विचार किया जाय ।

महात्माओं का अनुभव है कि नित्य कुछ समय ध्यान में बिताना, विचारों को स्पष्ट एवं स्वच्छ बनाता है । मानसिक शक्ति को एकत्र करने से गहराई में छिपे आपके विचार स्पष्ट होते जाते हैं और बड़े-बड़े कार्यों के विचार आपके सामने आते हैं । उन्हें पूर्ण करने के चित्र आपके मन में बनते हैं । जीवन को विशाल और मूल्यवान बनाने के लिए इस तरह मस्तिष्क का प्रशिक्षण आवश्यक हैं । सहज ज्ञान इच्छा और आकांक्षाएँ वे शिल्पी हैं, जो मनुष्य के चरित्र और आचरण को गढ़ते हैं ।

शान्तिपूर्वक इस तरह के विचार केन्द्रीयकरण के लिए कोई समय निश्चित कीजिए । इस समय जीवन को उच्च बनाने और उच्च कार्यों को करन के सम्बन्ध में विचार कीजिए । प्रत्येक विचार, जिस पर आप मन को एकाग्र करते हैं और आप अपनाते हैं, आपकी सम्पूर्णता का अंग बनता है ।

जिस प्रकार उपयोगी स्वस्थ उत्पादक विचारों से जीवन सुखी बनता है, उसी प्रकार क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, कामुकता आदि विषैले विचारों को मन में स्थान देने से मानसिक रोग और जीवन में अशान्ति पैदा होती है । तरह-तरह के आवेश आते हैं । हम झगड़ालू बनते हैं । दुःखों की सृष्टि होती है । बुरी घटनाएँ घटती हैं । भाँति-भाँति के झगड़े, मारपीट, मुकदमे चलते हैं । हत्याएँ तक हो जाती हैं । दूसरों को हानि पहुँचाने के भाव पैदा होते हैं । मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं । अतः व्यर्थ के इन विध्वंसक विचारों से मुक्त होने के लिए उनके स्थान पर सही सृजनात्मक विचारों को ही स्थान दीजिए । सद्गुणों के चिन्तन से शक्ति बढ़ती है और स्वस्थ विचारों की जाग्रति होती है ।

## शुभ विचार गुप्त मन में जमायें

क्या आप जानते हैं कि मनुष्य के, स्वास्थ्य, यौवन और दीर्घ जीवन का आदि स्रोत कहाँ है ? उसके व्यक्तित्व का निर्माण कहाँ से होता है ? उन्नति की नई योजना का प्रारम्भ कहाँ से होना चाहिए ?

मनुष्य की समस्त शक्ति उद्गम स्थान उसका गुप्त मन है उसमें जो संकल्प, जो विचार और अच्छी बुरी भावनाएँ निवास करती हैं, इनके इर्द-गिर्द ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है । विचार एक बीज की तरह है । जैसे बीज में से अंकुर फूटता है फिर नन्हा सा पौधा उत्पन्न होता है, पौधा से वृक्ष बनकर पृथ्वी में मजबूती से जड़े जमा लेता है, वैसे ही एक शुभ संकल्प या उत्तम विचार मनुष्य के गुप्त मन में प्रविष्ट होकर नई भाव-सृष्टि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


का निर्माण करता है । उन्नति की नई योजना का प्रारम्भ इसी गुप्त शक्ति केन्द्र से होना चाहिए ।

मनुष्य का गुप्त मन प्रचण्ड शक्ति वाला डाइनुमा है । यही मनुष्य के समग्र जीवन को चुपचाप संचालित किया करता है । जो विचार या अक्षर एक बार इस मन में दृढ़ता से जमा दिये जाते हैं, वे हमारे सारे जीवन पर छा जाते हैं, क्रियाओं को परिचालित करते हैं । मुख, कण्ठ और तालु में छिपी हुई अनेक ग्रन्थियों को प्रभावित करते हैं । हिन्दू शास्त्रों में मन्त्रों के रूप में विचार शक्ति को ग्रहण करने का मनोवैज्ञानिक प्रयत्न किया गया है और वह बहुत सफल रहा है । हमारे पूर्वज अति प्राचीनकाल से नाना मन्त्रों के जाप की सिफारिश करते आये हैं वेदों, पुराणों, धर्मग्रन्थों में सैंकड़ों उपयोगी उत्तमोत्तम मन्त्र, स्वर्ण सूत्र, उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं, जिनके जप द्वारा आत्मकल्याण और परमार्थ के कार्य होते हैं । आज भी करोड़ों व्यक्ति नियमित रूप से उपयोगी मन्त्रों को जपते रहते हैं, परन्तु मन्त्र विज्ञान का गुप्त रहस्य नहीं समझते । पूरा फल भी नहीं पाते । इसलिए बार-बार मन्त्र को बदलते हैं और अन्त में निराश हो जाते हैं । मन्त्र को त्याग देते हैं और मूर्खतापूर्ण निन्दा में लग जाते हैं ।

प्रत्येक भारतीय मन्त्र कुछ शुभ प्रचण्ड विचारों का संक्षिप्त रूप हैं । उनमें विद्वानों ने युग-युग का अनुभव निचोड़ दिया है । उस मन्त्र का पुनः पुनः उच्चारण करने से सात्विक भाव स्वयं गुप्त मन में जमते हैं । पुराने कुसंस्कार नष्ट होते हैं । व्यक्तित्व का नव-निर्माण होता है । पाश्चात्य मनोविज्ञान इन्हें ''सजेशन'' या प्रेरणात्मक सन्देश कहता है । इन सन्देशों या विचारों को जितना ही गुप्त मन में धारण किया जाता है उतना ही ये दिव्य शक्तियों की वृद्धि करने वाले होते हैं । ये जीवनदात्री औषधियों की तरह उपयोगी रसायन है । भारतीय मन्त्र मनुष्य को अन्तःकरण की उच्च स्थिति में लाने के गुप्त मनोवैज्ञानिक प्रयोग हैं । सुख, दुःख एवं उन्नति, अवनति उत्पन्न करने वाली हमारे मन की शुभ अशुभ स्थिति है । शुभ और दृढ़ विचार मन में धारण करने से मन में अद्भुत सामर्थ्य प्रकट होती है । इसके लिए केवल मन को कुछ पवित्र मन्त्रों पर एकाग्र हो उनका उच्चारण करना पड़ता है । मनुष्य अपने अन्तःकरण में देर तक जिस प्रकार के विचारों को स्थान देता है, उसी प्रकार की मनः स्थिति बन जाती है । अन्तःकरण में उत्पादक शक्ति सम्पन्न, उत्कृष्ट विचारों को स्थान देने से गुप्त शक्तियों का प्रादर्भाव होता है । मन्त्र शक्ति यह सजेशन (संकेत) की ही गुप्त मनःशक्ति है ।

उदाहरण स्वरूप हम गायत्री मन्त्र को ही लेते है । जब आप ''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्'' मन्त्र का उच्चारण करते हैं तो ''भगवान सविता (सूर्य) के तेज का हम ध्यान करते हैं कि वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे ।'' मन्त्र का पुनः पुनः उच्चारण और उस पर मन को एकाग्र करने से ये शुभ विचार हमारे सम्पूर्ण शरीर में, मन में, प्राण और आत्मा में व्याप्त होते हैं हमारी बुद्धि को सत् प्रेरणा मिलती है । इस मन्त्र में बुद्धि कई प्रकार की मानी गई है । अतः इस पर विचार करने से मनुष्य की भौतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी प्रकार की उन्नति होती है । इसी प्रकार एक मन्त्र है-

**प्रब्रवाम शरदः शतम् । अदीनाःस्याम शरद शतम् ।**

हम सौ वर्ष तक अधिकार पूर्ण वाणी से बोलते रहेंगे । सौ वर्ष तक दैन्य रहित जीवन बितायेंगे । इस मन्त्र पर विचार करने और उच्चारण करने से आयुवृद्धि होती है । ज्ञानेश्वर महाराज ने एक स्थान पर कहा है-

''दुर्जनों का बुद्धि के विपरीत स्वभाव दूर हो और सत्कर्म के प्रति उनके दिल में प्रीति बढ़े । सभी प्राणियों में एक दूसरे के प्रति हार्दिक प्रेम भाव और मित्रता पैदा हो ।'' इस संकल्प को मन में धारण करने से पारस्परिक प्रीति बढ़ती है । कल्याण की भावना दूर तक फैलती है ।

अन्तःकरण में उत्तम-उत्तम भाव धारण करने चाहिए । अन्तःकरण में जो रहता है वही बाह्य संसार में प्रकट होता है । अतः आनन्द प्रेम, क्षमा, दया, उत्साह और उन्नति के शुभ भाव ही धारण करने चाहिए । जब तक पुष्प रूपी ये पवित्र भाव मन में नहीं जमते मनुष्य तब तक अन्तःकरण की उच्च स्थिति का आनन्द नहीं ले सकता ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# कलुषित विचारों से बचें

कलुषित विचार ही दु:ख और निराशा का प्रधान कारण है । यदि किसी प्रकार का दुष्ट विचार मन में जम जाता है तो वह अपने आस-पास दूषित वातावरण ही बनाता है और मन के स्वास्थ्य को नष्ट करता है ।

जब आपके शरीर में एक छोटी-सी फुन्सी उभड़ती है, तब शरीर का वह अंग अकड़ा-सा रहता है, छूने से दुखता है, चारों ओर की त्वचार लाल हो जाती है, दो-चार दिन बाद उसमें पीब भर जाता है और वह एक बड़े फोड़े का रूप धारण कर लेती है । उसके चारों ओर का भाग सूज उठता है । डॉक्टर जब उस फोड़े में चीरा लगाता है, तब गहराई तक से दबा-दबा कर पीब और दूषित रक्त निकाल देता है । इसी प्रकार किसी भी प्रकार का दूषित विचार अपने आस-पास कष्ट, पीड़ा और वेदना का वातावरण बनाया करता है । यों तो कलुषित विचार अनेक प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु भगवान बुद्ध ने इन्हें तीन बड़े भागों में विभाजित किया है–१-काम-वितर्क २-अमैत्री-वितर्क ३-व्यापाद-वितर्क ।

**काम-वितर्क–**इस वर्ग में भगवान बुद्ध ने मनुष्य के विषय वासना सम्बन्धी सब प्रकार के कष्टों का समावेश किया है । कामवासना के नाना रूप, नाना भाव-विभाव, लक्षण और दु:खद वितर्क हैं । किसी भी रूप में कामचिन्तन आकार मन की शान्ति और सन्तुलन को विचलित कर देता है । सम्भव है शरीर से काम-तृप्ति न करें, पर मन और वचन से काम-वितर्क के शिकार हो सकते हैं । मन में काम-वासना सम्बन्धी बात सोचने से, स्त्रियों के हावभाव, नखशिख या तत्सम्बन्धी अन्य काम-वासनात्मक कुकल्पनाएँ लाने से मानसिक पाप हो जाता है । कुछ व्यक्ति मुँह से वासना-मिश्रित कामोत्तेजक गालियाँ उच्चारण किया करते हैं । वे समझते हैं कि कायिक पाप ही असली पाप है । मन में सोचने या मुँह से गन्दी बातें या अपशब्द कहने से कोई पाप नहीं होता । यह नितान्त भ्रान्तिमूलक धारणा है । शरीर चाहे बाह्य रूप से काम-तृप्ति न करे, पर उच्चारण की जड़ गुप्त मन में जमी रहती है । वह चुपचाप वहीं विकसित होती रहती है । मन सदा अभद्र कामवासनाओं से परिपूर्ण रहता है ।

कामवितर्क में विषय वासना सम्बन्धी कुकल्पनाओं के अतिरिक्त अनेक और इच्छाएँ आती हैं । ये अपनी परिस्थिति, पेशा, आय, समाज, परिवार, स्वार्थ-सम्बन्धी हो सकती हैं । प्रत्येक कामनापूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि आपके साधन सीमित हैं । कुछ इच्छाएँ और अभाव सदा ही अपूर्ण रहने वाले हैं । इन अपूर्ण इच्छाओं और अभावों की अतृप्ति से दु:ख उत्पन्न होता है । मन नाना द्वन्द्वों से भरा रहता है । प्रत्येक द्वन्द्व दु:खी बनाने वाला है । अत: कम से कम कामनाएँ रखिए ।

**योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ।**

–वृह० उप० ४।४।६

अर्थात्- जो व्यक्ति कामनाओं (विशेषत: कामवासना-सम्बन्धी पापमूलक विचारों) से रहित है, जो इन दुष्ट कामनाओं से बाहर निकल गया है, या जिसकी कामनाएँ नष्ट हो गईं हैं या जिसको केवल आत्मा की ही कामना है, उसके प्राण नहीं निकलते हैं । वह ब्रह्म ही हुआ ब्रह्म को पहुँचता है ।

काम-वितर्कों का स्वभाव यह है कि वे कामोपभोग से शान्त नहीं होते । जितना मनुष्य विषय-वासना की पूर्ति में लगता है, उतना ही वह अशान्त और दु:खी रहता है । काम तृप्ति पूरी तरह वृद्ध हो जाने तक भी नहीं होती । यह तो एक ऐसी अग्नि है जो सदा धधकती ही रहती है । काम का स्वभाव है कि चिन्तन मात्र से ही इसका अधिकाधिक विकास होता जाता है । कहा गया है–

**न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति ।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिबर्धते ।।**

अर्थात्- ''यह कामवासना उपभोग से कदापि शान्त नहीं होती । कामवासना की पूर्ति करके यह सोचना कि 'अब आगे और कामोपभोग की इच्छा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उत्पन्न नहीं होगी'–ऐसा ही है जैसे कोई अग्नि में घी छोड़ता जाय और यह सोचता रहे कि इस प्रकार यह आग बुझ जायगी ।''

काम का सदुपयोग हो सकता है । जिस प्रकार चतुर वैद्य विष को दबाई के काम लेकर रोगी को स्वस्थ करता है, उसी प्रकार कामवासना को भी शक्ति में बदला जा सकता है । सो कैसे ?

भगवान श्रीकृष्ण ने इसका राजमार्ग बताया है । वे कहते हैं–

**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभः ।**

*–गीता*

अर्थात्– ''हे अर्जुन ! प्राणियों में काम मैं हूँ, पर मेरा काम धर्म से विरुद्ध नहीं चलता । संसारी पुरुषों का काम धर्मविरोधी होता है । धर्म से हट जाने के कारण वह दु:ख का कारण बन जाता है । दूसरे शब्दों में इच्छाओं की धर्मानुकूल पूर्ति हो, तो कामवासना भी उपयोगी हो सकती है । काम का प्रवाह उपयोगी और कल्याणकारी मार्गों की ओर खोल देना चाहिए । तुलसीदास ने कामवासना का प्रवाह भक्ति-सम्बन्धी उत्कृष्ट कविता में खोल दिया, इसी प्रकार सूरदास ने कामवासना को भगवान के अर्पण कर वात्सल्य-रस-सम्बन्धी मधुर कृष्ण काव्य लिखा । मीराबाई भी अपनी इच्छाओं की भक्ति-संगीत में प्रवाहित कर सदा-सर्वदा के लिए अमर बन गई । आप चाहें तो काम के उदात्तीकरण के लिए समाज सेवा का कोई कार्य हाथ में ले सकते हैं, या अपने परिवार के सदस्यों को ही समुन्नत कर सकते हैं । पिछड़ी जातियों को उठाने का कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं । बाल-प्रेम, कला-प्रेम, संगीत-प्रेम तथा अनेक लोकसेवा के कार्यों में पूर्ण तन्मयतापूर्वक संलग्न हो जाने से मनुष्य की कामवासना निम्न स्तरों से हटकर ऊँची रीतियों से प्रवाहित होने लगती है । ईश्वर का प्रेम तथा उच्चतम साहित्य की सृष्टि काम के उदात्तीकरण के उपाय हैं । एक-एक सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते अन्त में मनुष्य कामवासना के नीचे रूपों से बचकर उच्चतम अवस्था में पहुँच जाता है ।

जिस प्रकार पक जाने पर फल स्वयं वृक्ष की डाली से अलग हो जाता है, इसी प्रकार पकी हुई मानसिक अवस्था आ जाने पर मनुष्य के काम-वासना सम्बन्धी सभी वितर्क दूर होने लगते हैं । प्रश्न मानसिक और नैतिक विकास का है । जो व्यक्ति अपनी विवेक बुद्धि को जितना अधिक विकसित कर लेता है, वह कामवासना सम्बन्धी कलुषित विचारों से उतना ही सुरक्षित रहता है । वासना को धर्म-बुद्धि से ऊँचा उठाना चाहिए । अपना दिन धार्मिक भावना से प्रारम्भ करना चाहिए तथा निद्रा से पूर्व ईश्वरीय शक्तियों तथा अपने धार्मिक स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए ।

**अमैत्री-वितर्क**–अमुक व्यक्ति हमारा शत्रु है । वह हमारा अहित करने पर तुला हुआ है । उससे हमारा निरन्तर अनिष्ट ही हो रहा है । हमें भी उसका विनाश करना चाहिए । यह अमैत्री या शत्रुभाव रखते रहने से मनुष्य अपने काल्पनिक जगत में तनाव का शत्रुभाव उत्पन्न करता है । वह अपने आस-पास के व्यक्तियों में सर्वत्र शत्रुओं का ही दर्शन करता है । इससे मनुष्य के आन्तरिक जगत में भयंकर संघर्ष सदा चलता रहता है । हमारे हिंसा, द्वेष, वैमनस्य और प्रतिकार के भाव दूसरे लोगों पर आरोपित होकर उन्हें शत्रुरूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । हम इस अमैत्री भाव से प्रभावित होकर आस-पास के व्यक्तियों के दुर्गुण और निर्बलाताओं का ही दर्शन करते हैं । उनके प्रति मन में घृणा रखते हैं । हमारे मन का द्वन्द्व निरन्तर बढ़ता ही जाता है । हम इस घृणाभाव के कारण दूसरों को हानि पहुँचाने की सोचते रहते हैं ।

श्री जोशुआ लोथलीवमेन के शब्दों में, 'मनुष्य अपनी त्रुटियों और भावात्मक द्वन्द्वों को संसार पर आरोपित करता है और उनसे बदला लेने की चेष्टा करता है ।'

अमैत्री के कारण यह मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति चलती रहती है । ऐसा व्यक्ति मन में बड़ी बेचैनी का अनुभव करता है ।

इससे मुक्त होने का क्या उपाय है ?

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अमैत्री का भाव मित्रता और प्रेम के अभ्यास और प्रयोग से दूर हो सकता है । हम अपना दृष्टिकोण बदलें । तृष्णा-द्वेष के

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्थान पर प्रेम और विश्वास आरोपित करें, सबको अपना दोस्त और हितैषी समझें, मित्रवत् व्यवहार करें, तो अमैत्री की ग्रन्थि दूर हो सकती है ।

हमारा कोई शत्रु नहीं है । सभी हमारे प्रेमी हैं । सभी अपने हितैषी हैं । सभी हमारे सहायक हैं । सभी हमारी सहायता कर रहे हैं । अपना प्रेम और विश्वास दे रहे हैं । सभी से हमारा तत्व बिखरा पड़ा है । यह मित्रता, प्रेम, सौहार्द्र का मंजुल और उदार वातावरण ही हमारे चारों ओर है । इन विचारों में रहने का अभ्यास करना चाहिए । मन और शरीर को पूर्ण शिथिल कर लीजिए और सुखासन से बैठकर पूर्ण विश्वास से ऊपर लिखे को दुहराइये । पुनः पुनः दोहराने से ये विचार गुप्त मन में जम जायेंगे और चरित्र निर्माण में सहायक होंगे । भव्य विचार व संकेत स्वयं भी बनाये जा सकते हैं ।

मानसिक रोगियों को भव्य विचारों को गुप्त मन में जमाने का अभ्यास करना चाहिए । जो दुष्टभाव सताये, उसका विरोधी सात्विक विचार मन में दृढ़ता से स्थापित करना चाहिए । मन में प्रचुरता से सात्विक विचारों का प्रवाह बनाये रखने से गुप्त मन का नव-निर्माण होता है । शक्ति, साहस और शान्ति-प्राप्ति के लिए अभ्यास के साथ किसी महापुरुष की मूर्ति को जोड़ लीजिए । उदाहरण के लिए घबराहट को दूर करने के लिए मन में भगवान बुद्ध की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए । कमजोरी दूर करने के लिए शक्तिशाली विचारों के साथ हनुमान या दुर्गा की मूर्ति मन में धारण करनी चाहिए । आपका जो प्रिय देवी या देवता हो, उसका स्वरूप मन में बैठाना चाहिए । सोने से पूर्व मैत्रीभाव का अभ्यास गुणकारी है, क्योंकि निद्रा में अव्यक्त (अचेतन मस्तिष्क) का नव-निर्माण हुआ करता है । थोड़े काल के अभ्यास से ही मानसिक तनाव दूर हो जाता है ।

व्यापाद-वितर्क-इस श्रेणी में हम इन वितर्कों पर कलुषित भावनाओं को रख सकते हैं, जो उपयोगी न होकर भी बार-बार मन में आते है और मन की शान्ति को भंग करते हैं । एक व्यक्ति लिखते हैं कि अँधेरे में उनके मन में भूत-बाधा का भय आता है । उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भूत उनके जीवन का अन्त कर देंगे । एक व्यक्ति आत्महत्या की कुकल्पनाएँ किया करता है । एक सज्जन छींक से परेशान हो उसे अपशकुन का सूचक मानते हैं । हमने एक ऐसी महिला देखी है, जो चोरों के भय से उद्विग्न रहती और रात दिन सोने से पूर्व सब किबाड़ों को ताला लगाती । कुछ व्यक्ति रेल में सफर करते हुए सदा यह डरते हैं कि टिकट न खो जाय, युवतियों को भय रहता है कहीं कोई अंग खुला न रह जाय । कुछ लोग शौच के पश्चात हाथ को बार-बार मिट्टी से मलते हैं, फिर भी उन्हें गन्दगी के विचार सताते रहते हैं । कुछ अपने को रोगी ही मानते रहते हैं और सदा दवाइयाँ ही लिया करते हैं । इसी प्रकार लोगों की धारणाएँ और बहम अनेक प्रकार के होते हैं । नमक बिखर जाना, पलंग पर झाड़ू रखना, झाड़ू सीधी करके रखना, कातते-कातते तागा टूट जाना, खाट पर बैठकर टाँग हिलाना, कन्धे मटकाना, बगल बजाना, सूर्य डूबे चूड़ी पहनना मकान बदलना, चूड़ी तोड़ना आदि बहम कलुषित, और अभद्र विचारों से संयुक्त हैं । इनके साथ अनिष्ट जुड़ा हुआ है ।

वास्तव में इन मन की शंकाओं में कुछ भी वास्तविक तथ्य नहीं है । ये कलुषित विचार मन की शान्ति को भंग करते रहते हैं । इनका आधार कुकल्पनाएँ ही है, जिनका आधार कुछ नहीं है । ये मन की अस्वस्थ दिशा की सूचक हैं । मन की शान्त और स्थिर अवस्था में व्यर्थ के विचार नहीं सताते ।

शान्त और सन्तुलित रहिए और व्यर्थ की कुकल्पनाओं से अपने मन की रक्षा कीजिए । सद्भावना का अभ्यास प्रारम्भ कीजिए । मन को पवित्र बनाइये । जब मन पवित्र रहता है, तब दुर्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं ।

भगवान बुद्ध ने मन के आरोग्य के लिए 'आनापानसति'' के अभ्यास को आवश्यक बताया है । इसमें मानसिक और शारीरिक शैथिलीकरण करना चाहिए । शान्त अवस्था में भव्य विचारों को जमाने से कुतर्क दूर हो जाते हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


''प्रधानमध्यात्मसुखसुखेभ्यः''

-अश्वघोष

सब सुखों में आध्यात्म विचार ही सुख के साधन हैं ।

# उन्नति का मूल है—कर्मशीलता

जीवन क्रिया है । क्रियाशीलता ही जीवन का मूल लक्षण है । जो निष्क्रिय है, कुछ नहीं करता, हाथ पाँव नहीं हिलाता, आलस में पड़ा रहता है, वह वास्तविक अर्थों में जीवित नहीं कहा जा सकता ।

यह ठीक है कि सफलता का प्रारम्भ मनुष्य के आन्तरिक जीवन में ही होता है । पहले मन में सफलता के उपयुक्त मनःभूमि का निर्माण होता है, समस्त महान कार्य विचार के कण के रूप में मानस पटल पर उदित होते हैं, तब धीरे-धीरे बाह्यजगत में उनका प्रादुर्भाव होता है ।

किसी कार्य की योजना बनाना, लम्बी-लम्बी बातें सोचना एक बात है, उसे वास्तविक जीवन में कार्यों द्वारा अभिव्यक्त करना बिल्कुल दूसरी बात है । अनेक व्यक्ति यह गलती करते हैं कि अपनी समस्त शक्तियाँ केवल सोचने विचारने, योजना निर्मित करने में क्षय कर देते हैं, वास्तविक संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाने का उन्हें अवसर ही प्राप्त नहीं होता । ठोस परिश्रम करने की उन्हें आदत नहीं होती । वे हाथ-पाँव के कार्य से दूर भागते हैं । बातें हजार बनायेंगे किन्तु कार्य रत्ती भर न करेंगे ? संसार में इतनी आवश्यकता बातचीत, योजनाओं, जवानी जमा खर्च की नहीं है, जितनी कार्य की । जो विचार कार्यरूप से परिणत हो गया वह जीवित विचार कहा जायगा, जिन विचारों, योजनाओं, पर अमल नहीं हुआ, जिन्हें प्रत्यक्ष जीवन में नहीं उतारा गया है, वे मृतप्राय हैं । उन पर व्यय की गई शक्ति अपव्यय ही है ।

क्रियात्मक कार्य ही संसार का निर्माण करता है । सफल व्यक्ति अपने विचार तथा बाह्य कार्य में पर्याप्त समन्वय करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं । उनके पास क्रियात्मक विचारों की शक्ति रहती है । वे अपने विचारों को जीवन देते हैं अर्थात् उन पर निरन्तर काम करते हैं और प्रत्यक्ष जीवन में उतारते हैं ।

एक महापुरुष ने कहा है, ''नर्क का मार्ग अच्छी योजनाओं से बना है ।'' तात्पर्य यह है कि अच्छी बाते सोचने वाले केवल सोचते ही रह जाते हैं, हवाई जमा खर्च करते रह जाते हैं । वास्तविक कार्य नहीं करते । सोचने ही सोचने में उनकी इतनी शक्ति व्यय हो जाती है कि कार्य करने की शक्ति नहीं बचती । जिन महत्वपूर्ण योजनाओं का कोई उपयोग न हो और जो कपोल कल्पना मात्र हों, उनसे क्या लाभ ?

कहते हैं रावण के पास अमृत के कई घड़े थे । यदि युद्ध से पूर्व वह उसका पान कर लेता, तो सम्भवतः मृत्यु को प्राप्त न होता किन्तु रावण बात को टालता गया । योजनाएँ बनाता रहा । अन्ततः वह क्षय को प्राप्त हुआ ।

नैपोलियन कहा करता था, ''मुझसे कोरी बातें न करो । कार्य करके दिखाओ । मैं कार्य चाहता हूँ । ठोस जीता जागता पुरुषोचित कार्य । बातें नहीं, मुझे कार्य चाहिए ।

''पर उपदेश कुशल बहुतेरे''—इन कथन में भी कार्य की महत्ता और ऊपरी उपदेश की मूर्खता पर व्यंग्य है । दूसरों को उपदेश देना, बड़ी-बड़ी बातें बनाना, ''ऐसा करो वैसा करो''—यह कहने वाले आपको अनेक साधू, सन्त, ढोंगी मिलेंगे । भगवा वस्त्र धारण कर सरल प्रकृति के नागरिकों का मूर्ख बनाना कितना सरल है । लेकिन जहाँ वास्तविकता का प्रश्न है, ये उपदेशक दिखावटी नेता अपने असली स्वरूप में प्रकट हो जाते हैं । अनेक चोर गँठकटे, खुफिया पुलिस वाले, उपदेशक का बाना बनाये डोलते रहते हैं । आवश्यकता इस बात की है कि किसी के उपदेश या विचार ग्रहण करने से पूर्व उसके प्रत्यक्ष कार्यों को भी देखा और परखा जाय । जो कार्य की कसौटी पर खरा उतरे, जिसके नियम आचरण की भित्ति पर खड़े हों, उसी कर्ममार्गी के विचार ग्रहण किए जायें ।

इच्छाओं का सागर सब हिलोरें लेता है, तब वह कल्पना के समस्त मादक आकर्षण के साथ अनेक बात कहता है, हम कल्पना के लम्बे हाथों

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से संसार का सब कुछ पकड़ लेना चाहते हैं । संसार की कठोर चट्टानों का, जिन पर सृष्टि के अगणित व्यक्तियों की सुकुमार महत्वाकांक्षाएँ टूट चुकी हैं, हमें ज्ञान नहीं रहता । कामनाएँ नित्य ही हाथ पसारा करती हैं पर संसार की सीमाएँ और हमारी मजबूरियाँ हमें जहाँ की तहाँ रहने देती हैं । कामनाएँ उतनी ही सिद्ध होती हैं, जितनी कर्म में परिवर्तित हो जाती हैं ।

जब तक जीवन में अनुभवजन्य ज्ञान की कमी है, तब तक मनुष्य स्वप्नों के मनोरम लोक में विहार करता रहता है । परन्तु जैसे-जैसे उसे संसार की बाधाओं का ज्ञान होता है, वैसे-वैसे उसे प्रतीत होता है कि कल्पनाओं और योजनाओं को जो रूप उसने प्रारम्भ में कल्पना के नेत्रों से देखा था, वास्तव में वह वैसा नहीं है । वास्तविक रूप अज्ञान के अनुभव को ही कहते हैं । अनुभव कर्म से प्राप्त होता है । कर्म के साथ ही जीवन में सफलता जुड़ी रहती है ।

एक कवि ने लिखा है, "जहाँ जीवन घायल पंछी-सा रात-दिन चींखें मार रहा है, वहाँ कल्पना की ऊँची उड़ानों में डूबा रहना, जीवन का उपहास करना है ।"

## कुंठा ग्रस्त बनना ठीक नहीं

मन का भाव दब कर मन की एक ग्रन्थि बन जाता है । जो व्यक्ति अनेक मानसिक व्याधियों से ग्रस्त है उसका कारण यह दबे हुए नाना प्रकार के कुण्ठित भाव ही हैं । बचपन की किस कटु अनुभूति के कारण ये दलितभाव दु:ख और व्याधि के कारण बनते हैं और मनुष्य को परेशान किए रहते हैं ।

क्रोधी, चिड़चिड़ी बात बात में झगड़ने वाली कर्कशा नारी के बिगड़े हुए स्वभाव का कारण बचपन में उस पर नाना प्रकार के दमन हैं । कठोर व्यवहार भी विकसित होकर गुप्त भावना ग्रन्थि का रूप धारण कर लेता है । जो नारी या पुरुष बच्चों से घृणा करता है, उसका कारण यह है कि उसमें मातृत्व या पितृत्व के सहज स्वाभाविक भाव पनपने नहीं पाये हैं । अनेक पाश्चात्य अविवाहित नारियाँ पालतू कुत्तों तथा बिल्लियों को अपने पास रखती हैं, उनका प्रेम से चुम्बन करती हैं और अपने मातृत्व के सहज वात्सल्य का माधुर्य लूटती है । जो कोमल स्नेह नारी की प्राकृतिक सम्पदा हैं जिससे मानव शिशु पलता-पनपता है । वह कुत्तों बिल्लियों पर न्यौछावर कर के तृप्त किया जाता है । वात्सल्य और प्रेम की इन भावनाओं को निकालने से पाश्चात्य नारियाँ कृत्रिम मातृत्व के सुख का अनुभव करती हैं तथा मन में अह्लादित रहती है ।

जिन पुरुषों तथा नारियों में इस प्रकार की अन्य इच्छाएँ कुंठित पड़ी हैं, वे समाज के भय से दलिल होकर मन में कुंठा उत्पन्न कर सकती है । महत्वाकाँक्षा, प्रसिद्ध, महत्ता आदि न मिलने से मनुष्य चोर, डाकू या शैतान बन सकता है । नारियों की सेक्स भावना अतृप्त रहने से उनमें हिस्टीरिया, प्रमाद, चिड़चिड़ापन उत्पन्न हो सकते हैं । अत: मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक स्वस्थ स्त्री पुरुष का अवरुद्ध भावनाओं को निकालने के मार्ग ढूंढ़िये । ऐसी नारियाँ समाज सेवा में तन मन लगाकर अपने हृदय का भार हल्का कर सकती हैं अथवा यतीमखाने के अनाथ बच्चों की देख रेख, प्यार, सेवा, पालन, पोषण, सेवा, सुश्रुसा कर मातृत्व की सहज वृत्ति की तृप्ति कर सकती है । उन्हें चाहिए कि वे गरीबों की बस्तियों की ओर निकल जाया करें । वहाँ के अर्द्ध नग्न और भूखे बच्चों की देख रेख किया करें । उन्हें स्नान करायें और स्वच्छ वस्त्र धारण करायें, उनके साथ खेलें, गावें, बातचीत करें । इस प्रेम से गुप्त भावनाओं को निकालने का स्वस्थ मार्ग मिलता है जो मानसिक स्वास्थ्य और सुख के लिए अमृत तुल्य है । आपके मन की कोई भी भावना, यदि अतृप्त है तो मानसिक संस्थान में भावना ग्रन्थि (काम्लेक्त) उत्पन्न करेंगी और नाना मनोविकारों में प्रस्फुटित होगी । वह हमारे गुप्त प्रदेश में बाहर निकलने और तृप्ति प्राप्त करने के अवसर देखा करती हैं । जो उसे निर्दयता से कुचल डालते हैं, वे मानसिक रोगों के शिकार बनते हैं ।

सेक्सभावना की अतृप्ति से नैराश्य और उदासीनता उत्पन्न हो जाती है । कुछ स्त्री पुरुष तो अर्द्धविक्षिप्त से हो जाते हैं, कुछ का विकास रुक

जाता है । औरतों में हिस्टीरिया, मिर्गी, पागलपन, त्वचा रोग हो जाते हैं । पुरुष गन्दी गालियाँ देते हैं । इस भावना का उदात्तीकरण ही उचित है । उच्च साहित्य के अध्ययन, भजन कीर्तन, पूजन, काव्यनिर्माण, चित्रकारी, समाज सेवा के नाना कार्यों द्वारा वृत्ति को तृप्त किया जा सकता है ।

वह लड़का, जो छोटे जानवरों को पीटने या सताने में आनन्द लेता है, वास्तव में अपने छिपे पौरुष और शासन करने के भाव को गलत तरीके से प्रकट कर रहा है । इस मार्ग पर चलते-चलते सम्भव है वह एक मारने पीटने वाले दुष्ट व्यक्ति के रूप में पनप जाये । इसके विपरीत यदि यह अपनी इन्हीं भावनाओं को सुनियंत्रण करे, तो एक नेता, सैनिक, सर्जन, बन सकता है । जो बच्चे छोटे-छोटे खिलौने या खेलने के नए-नए आविष्कार करते रहते हैं, वे उन्हीं भावनाओं का विकास कर अच्छे इन्जीनियर या वैज्ञानिक बन सकते हैं ।

मान लीजिए एक युवक का विवाह उसको प्रेमिका से तय हो चुका है । उसे उससे नई प्रेरणा मिली है और वह नए जोश से अपना काम करने में लगा हुआ है । अकस्मात् वह सम्बन्ध टूट जाता है । उसे भारी निराशा का भारी धक्का लगता है । सम्भव है आवेश में आकर वह आत्म हत्या कर डाले या किसी विध्वन्सात्मक प्रवृत्ति में लगकर प्रतिशोध लेने पर उतारू हो जाय । यह भाव का गलत विकास है । इससे स्वयं उसके भी मस्तिष्क और शरीर को क्षति होगी । उसे किसी प्रिय कार्य में पूरी तरह प्रवृत्त होकर, तन्मय होकर आत्म-विस्मृति करनी चाहिए । भावात्मक शक्ति को उत्पादक मार्ग देना चाहिए जिससे स्वयं उनका ओर समाज का कुछ हित हो सके । महाकवि तुलसीदास, भक्त प्रवर सूरदास, प्रेम दिवानी मीराबाई, भावविह्वल भक्त कबीर, गुरु नानक आदि की भावनाएँ शाश्वत कवि के रूप में प्रवाहित हुईं जिनसे युग दिव्य प्रेरणाएँ आज भी ले रहा है । तुलसी का प्रेम ईश्वरीय शक्ति के यशोगान में लगा, सूर के भजनों में आज भी उनकी आत्मा के दर्शन मिलते हैं । यह महामानव स्वयं अपने कार्य से ही प्रेम करने लगे थे । इन्होंने रुके हुए गुप्त भावों को प्रकट होने का स्वस्थ रूप दिया । हम स्वयं भी अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए मनोनुकूल इच्छानुरूप, माध्यम ढूँढ़ सकते हैं ।

आत्म-निरीक्षण कर देखिए कि किस प्रकार की भावात्मक शक्ति आप में जमी पड़ी है ? और उसके विकास का सबसे स्वस्थ रूप क्या हो सकता है ? किससे आपकी आन्तरिक तृप्ति होती है ? क्रोध का ज्वालामुखी, घृणा का तूफान आवेश की सुलगती अग्नि मनोनुकूल प्रिय कार्यों में लगने से शान्त होती है । जिस भावना से सम्बन्धित रुकी हुई शक्ति हो, उसके अनुकूल ही रुचिकर उत्पादक प्रिय कार्य का चुनाव कीजिए । इन माध्यमों पर ही सही सफलता निर्भर है ।

हमें अपने एक उत्पातकारी विद्यार्थी की स्मृति आज भी हरी है । वह कालेज आते हुए बाग के पेड़ और फल तोड़ता, मालियों की परेशान करता, छोटे विद्यार्थियों को पीटता था । सभी उससे तंग थे । पढ़ने में उसका किंचित भी मन न था । उसे फौज में जाने की सलाह दी गई । वही पेशा उसके कठोर भावों के अनुकूल पड़ता था । विद्यार्थी ने राय मान ली । आज वही उत्पातकारी विद्यार्थी अच्छा जनरल है । फौजी जीवन की कठोरताओं में भी वह सफलता प्राप्त करता जा रहा है । जब तक उसे अपनी रुचि, प्रकृति, स्वभाव, संस्कारों के अनुकूल क्षेत्र नहीं मिला, तभी तक वह शरारती रहा । अपना क्षेत्र मिलते ही, वह द्रुतगति से आगे बढ़ने लगा । सफलता तो तभी मिली हुई समझिये जब मनुष्य अपने मनोनुकूल क्षेत्र पा ले ।

जीविका उपार्जन के बाद किसी दूसरे प्रिय आनन्ददायक प्रेरणाप्रद मनोरंजन कार्य में तन्मय हो जाने से अवरुद्ध मनोग्रन्थियाँ को खुलने और बचपन तक की भावात्मक शाक्ति को बाहर निकालने का स्वस्थ अवसर मिलता है ।

अपने से पूछिए क्या मैं अपने भावों को ठीक तरह पहचानता हूँ । जब मैं क्रोधित हो उठता हूँ तो क्या उसमें दूसरे का कसूर होता है या यह स्वयं मेरी भावात्मक कमजोरी है ? मेरे व्यक्तित्व में वह छिपा हुआ भाव कौन सा है, जो प्रायः मुझे परेशान किया करता है ? क्या मैं उसे किसी उत्पादक शुभ कार्य की ओर मोड़ सकता हूँ ?

निश्चय जानिये, आपको अपनी भावना के

उदात्तीकरण का कोई न कोई स्वस्थ मार्ग अवश्य मिल जायगा । यह मनुष्य का स्वयं अपने आपको अध्ययन करने, स्व परीक्षा द्वारा अपनी गुप्त रुचि का ज्ञान प्राप्त करने तथा मन की नाना क्रियाओं को देखने से सम्बन्ध रखता है । आप खुद ही अपनी मनोवृत्तियों की दिशा तथा प्रवाह को पहचान सकते हैं । भावनाओं का प्रवाह में केवल यह ध्यान रखिए कि वह दिशा स्वस्थ, सुन्दर और समाज के लिए कल्याणकारी हो, जन हितकारी हो । आपका भी लाभ हो तथा अधिक जनता का हित साधन हो । विषय वासना की कलुषिता तथा दुर्गन्धि से उसका सम्बन्ध तनिक भी न हो । आपका चुना हुआ मार्ग नैतिक हो और आपके अन्दर के देवता को जानने वाला हो । उसके प्रति आपका उत्साह सदा ही बना रहे और उससे आपकी मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ सतत जाग्रत और विकसित होती रहें ।

## मन का भार हल्का कीजिए

क्या आप मन ही मन दु:खी रहते हैं । क्या अन्दर ही अन्दर घुने जा रहे हैं ? कोई आन्तरिक दु:ख, पीड़ा या अन्तर्वेदना आपको व्यथित-पीड़ित कर रही है ? दुर्दमनीय विषम मानसिक व्यथा आपको परेशान रखती है ? यदि दु:ख, पीड़ा, कसक वेदना या आन्तरिक हाहाकार से विह्वल रहते हैं, तो आपको सावधान हो जाना चाहिए इसका तात्पर्य यह है कि आप पर कोई गम्भीर और स्थायी मानसिक कष्ट आने वाला है । इस स्थिति से जितनी शीघ्रता से हो छुटकारा प्राप्त कीजिए ।

मानसिक दु:ख का कारण गुप्त मन में कटु स्मृतियों या भावी आशंकाओं को सहेजना और विपरीत विचार रख कर निरन्तर उन्हें पोसते जाना है । मानसिक कष्टों से आक्रान्त व्यक्ति अन्दर ही अन्दर घुले जाते हैं, ऊपर से हँसते रहने पर् भी अन्दर से नैराश्य की काली छाया उन पर पड़ती रहती है । जब वे एकान्त में होते हैं, बिक्षुब्ध होकर रोते हैं, अश्रुधारा बहाते हैं । संसार उन्हें अन्धकार मय और नैराश्यपूर्ण प्रतीत होता है ।

आप मन में कष्ट, पीड़ा लिए फिरते हैं, तो मानों अपने साथ भयंकर अत्याचार कर रहे हैं, अपनी महत्वाकांक्षाओं और उल्लास पर पानी फेर कर जीवन उजाड़ देते हैं । अपने मन का भार हल्का कीजिए ।

मन में गुप्त इच्छाओं, दलित भावनाओं को रखना अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक रोगों की सृष्टि करना है । गुप्त मन में कष्ट रखना रुई में अग्नि छिपाये रखने के अनुरूप घातक है ।

जैसे आप कूड़ा-करकट बाहर नाली में फेंक कर अपने घर को झाड़ते बुहारते स्वच्छ करते हैं, वैसे ही अपने मन के रुके हुए इन दुष्ट विकारों को फेंक दीजिए, बाहर निकाल दीजिए । निम्न उपायों से आप आन्तरिक गन्दगी से सहज ही मुक्ति पाकर गुप्त मन को स्वच्छ कर सकते हैं ।

अपने इष्ट मित्रों की संख्या में वृद्धि कीजिए । आत्म भाव का जितना व्यापक प्रसार होगा उतना ही मन का भार हल्का होगा । इनसे आप खुल-खुलकर बातें कीजिए । अपने मन की व्यथा इन्हें अपनी अनुभूतियाँ सुना कर हल्का कर सकते हैं ।

मनुष्य यह चाहता है कि कोई उनकी अन्तर्कथाएँ सुने उसके साथ सम्वेदना प्रकट करे, उसे सच्ची सान्त्वना प्रदान करे और निरन्तर ऊँचा उठने की प्रेरणा प्रदान करे । आपका यह मित्र आपकी दु:ख भरी कहानियाँ सुनकर मन की व्यथा को हलका करेगा । सच मानिए, आपकी बात सुनकर किसी दूसरे से कह देना मन के भार को हलका करने का एक अमोघ साधन है ।

क्या आपके गुप्त मन में मिथ्या भय, शंकाएँ रहती हैं ? यदि ऐसा है, तो इनका दूसरों से समाधान कर निकाल दीजिए, अन्यथा इसके फल भयंकर हो सकते हैं । मनोवैज्ञानिक सलाह पूछने वाले एक पाठक का यह पत्र देखिए और फल की भयंकरता पर विचार कीजिए ।

आपके सुन्दर तथा मनोवैज्ञानिक लेख पढ़ कर मन में अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है और एक नया मार्ग दिखाई पड़ता है । परन्तु क्या बताऊँ मेरे मन पर एक बोझा है, जिसे हटाने की लाख कोशिश करने पर भी हल्का नहीं हो पाता वह बोझा है शारीरिक जो कि समय के प्रवाह के साथ मानसिक रूप धारण कर चुका है । दुर्भाग्यवश अपनी कम

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अक्ली के कारण मेरा चेहरा अत्यन्त कुरूप बन गया है । मुहासों और काले दागों ने मेरे मुख के लावण्य को हटाकर अजीव सा बना दिया है । दिल तो चाहता है कि चमड़ी को उधेड़ दूँ । उपचार भी करता हूँ तो बेफायदा । दूसरों के सामने ऐसा भद्दा और कान्तिहीन मुख ले जाते हुए लज्जा सी अनुभव होती है । बचपन की स्मृति याद आती है तो मन और भी दु:खित होता है । कभी-कभी नौबत यहाँ तक पहुँचती है कि आत्म-हत्या कर लूँ । मेरा मन अत्यन्त दु:खित और मलीन है किसी काम में मन नहीं लगता । सब व्यर्थ सा जान पड़ता है । मानसिक व्यथा के कारण मन में कभी प्रसन्नता नहीं रहती । जीवन निराशापूर्ण और अन्धकार मय लगता है । इस चेहरे की कुरूपता ने मेरे मन और मस्तिष्क को घुन के समान चाट लिया है ।

इस पत्र में अभिव्यक्त समस्त मानसिक कष्ट केवल आत्मग्लानि और हीनत्व भावना की ग्रन्थि के कारण हैं । मुँहासा होना यौवन के आगमन का प्रतीक हैं । पेट में कब्ज के कारण या रक्त में उष्णता के कारण मुँहासे हो सकते हैं । प्राय: अनेक सम्वेदनशील व्यक्ति ऐसी या फिर छोटी-छोटी नगण्य बातों को लेकर मानसिक वेदना से परेशान रहते हैं । अपना दु:ख कहें तो दूसरे उसमें हिस्सा बटायें, कुछ कम करें । दु:ख बटे । अन्दर ही अन्दर मानसिक कष्ट को पोसते रहने से आत्महत्या जैसी घृणित स्थिति तक आ सकती है । अत: गुप चुप कष्ट को दूसरों से कहकर सलाह लीजिए, उसका हल ढूँढ़िये । अनेक व्यक्ति गुप्त घृणित रोगों के शिकार हो कर मन ही मन पश्चाताप किया करते हैं झूठे वैद्यों या हकीमों के चक्र में पड़ कर रुपया नष्ट करते हैं । यह भयंकर भूल है । जब आप अपनी समस्या को दूसरों पर प्रकट करते हैं कहते हैं, या लिखते हैं, तो वह मन से दूर हो जाती हैं । गुप्त भार हलका हो जाता है । किसी गुप चुप पीड़ा के कारण आत्म-हत्या कर बैठना भयंकर पाप है ।

कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका हल न हो, कोई ऐसी परिस्थिति नहीं जिसे सुधारा न जा सके । संसार की जटिल मानसिक, सामाजिक समस्या का कोई हल हो सकता है, जिससे जीवन स्थिर रह सकता है और समस्या का निवारण भी हो सकता है ।

क्या आप कुरूपता से व्यग्र हैं ? यह स्मरण रखिए कि पुरुष का सौन्दर्य उसके चेहरे या त्वचा, रूप की बनावट में न होकर उसके पुरुषत्व में है । पुरुष होकर आप नारी सुलभ लज्जा या कमनीयता की आकांक्षा न कीजिए । अपनी शक्ति की वृद्धि कीजिए । स्त्रियाँ प्राय: कुरूप, बेडौल, काले रंग के या वीर, साहसी, निर्भय, शक्तिशाली वीरों को पसन्द करती हैं । पुरुष का भूषण उसका पुरुषत्व, उनका साहस ओज और वीरता है ।

क्या आप किसी दिशा विशेष में पाई जाने वाली न्यूनता, या कमजोरी से तो परेशान नहीं है, किन्तु क्या आपने अपने गुणों और विशेषताओं की ओर भी ध्यान दिया है ? यदि अपने गुण नहीं देखे हैं, तो अपने साथी भारी अन्याय किया है ।

आप में कुछ गुण हैं, अवश्य हैं । बहुत बड़े पैमाने में हैं । कभी अपने गुणों को खोजने और सतत अभ्यास से उन्हें विकसित करने की कोशिश की है । सम्भव है, आप कुशल वक्ता, व्यापारी, सेक्रेटरी, या अध्यापक बन सकते हैं । संगीत, साहित्य, कला इत्यादि में आपको प्रसिद्धि प्राप्त हो सके । सम्भव है नेतृत्व करने के गुण आप में भरे पड़े हों । दुनियाँ में हजारों एक से एक बड़े महत्वपूर्ण कार्य आपके करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । यदि आप तन मन से उनमें लग जायें तो निश्चय जानिए आपके मन का भार हल्का हो सकता है । क्षतिपूर्ति का नियम आपके लिए कल्याणकारी है । विधि के विधान में सर्वत्र न्याय है । परमेश्वर ने एक बात की एक स्थान पर कमी रखी है, तो दूसरी ओर उससे भी शक्तिशाली गुणों का प्रादुर्भाव किया है ।·वह एक चीज छीनते हैं, तो दस देते भी हैं । उनके विधान में कोई कमी नहीं है । सर्वत्र प्राचुर्य्य है । मुक्त हस्त से इस अक्षय भण्डार से गुणों का दान निरन्तर आता रहता है ।

अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण सहृदयता से कीजिए । स्वयं न करें तो किसी मन:विश्लेषण वाले विशेषज्ञ से कराइये । अपने गुणों का विकास कर अपने क्षेत्र में महान बनिए । निश्चय जानिए, संसार में आपके लिए कहीं न कहीं बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मानसिक भार हलका करने के लिए संगीत से उत्तम अमोघ औषधि दूसरी नहीं है । सुमधुर स्वर में गाना गाने से मन की दु:ख पीड़ा को बाहर निकलने के हेतु एक द्वार प्राप्त हो जाता है । संचित मानसिक भार बह जाता है । मन हलका हो जाता है । आदिकाल से वेदना के निवारणार्थ भक्त, योगी तथा सांसारिक व्यक्ति संगीत का उपयोग करते रहे हैं ।

यह न समझिए कि आप अच्छा गा नहीं सकते, तो न गायें । यह कुछ नहीं । चाहे आप अच्छा गाना गाना जानते हों, अथवा नहीं, अवश्य गाइए, अकेले में जाकर गाइए । भगवान की मूर्ति के समक्ष अपने पाप, शंका, व्यथाओं को बहा दीजिए । पश्चातापमयी वाणी में मन को हलका करने की अद्‌भुतशक्ति है । ''मो सम कौन कुटिल खल कामी''–कवि के इस पश्चाताप भरे गान से उसे कितनी मानसिक शक्ति प्राप्त हुई होगीं, वह एक संगीत प्रेमी ही जान सकता है ।

यदि कोई प्रेमी बन्धु, परिवार का सदस्य हितैषी मित्र स्वर्गवासी हो गया है और आप दु:ख का अनुभव कर रहे हैं, तो कृपया रो डालिए । फूट-फूटकर रो दीजिए । अश्रुधारा के साथ आपके मन का भार बह जायगा । आप हलके हो जायेंगे । मन में व्यथा को रखना घातक है । इस विष को आँसुओं से धो डालना शान्ति और मानसिक स्वास्थ्य का सूचक है । रोना एक मनोवैज्ञानिक शान्ति मार्ग है । रोकर हम मन का भार हल्का करते हैं ।

अपने व्यक्तित्व का अध्ययन कर उन रुचिकर कार्यों की एक सूची बनाइए, जिनमें आप विशेष दिलचस्पी रखते हैं–बागवानी, साहित्य, कला, चित्रकारी, खेल-कूद इत्यादि । इसमें इस तल्लीनता से संलग्न हो जाइए कि पुरानी व्यथाओं के बारे में सोचने विचारने का अवकाश ही न प्राप्त हो । खाली मन शैतान का घर कहा गया है । अत: यदि आप खाली हाथ रहेंगे, तो पीड़ा का आक्रमण हो सकता है । व्यस्त जीवन में मन को कुछ न कुछ करने का आधार मिल जाता है और दु:ख का बोझ घट जाता है ।

मुस्कराने का स्वभाव बनाकर हर समय मन्द-मन्द मुस्कराने का नुसखा आजमाइए । हँसते और मुस्कराते रहने से तनाव दूर होता है और मन में ताजगी का संचार होता है । डॉक्टर पैस्किड, डॉक्टर पैवक इत्यादि ने नवीन मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों से यह प्रमाणित किया है कि हँसकर दु:खों का निवारण करना कोरी भावुकता मात्र नहीं प्रत्युत एक निगूढ़ मनोवैज्ञानिक तथ्य है ।

डॉ. पैस्किड ने लगभग १५० प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में किए हैं । वे लिखते हैं कि हँसने से मनुष्य के थके हुए मज्जातन्तु सचेत एवं पुन: नवस्फूर्ति और ताजगी से युक्त हो जाते हैं । मन का भार कम हो जाता है । इसके विपरीत क्रोध, आवेश और उत्तेजना के खिंचाव में भरे रहने से माँस-पेशियों में अनुचित दवाब आ जाता है । हँसने से रुका हुआ तनाव दूर होकर मन: शान्ति आती है । हँसकर हम कितने ही आन्तरिक अवयवों तथा निष्क्रिय माँसपेशियों को व्यायाम देते हैं । चिन्ता, भय, क्रोध या चिड़चिड़ाना थकान उत्पन्न करते हैं । इससे जीवनशक्ति का क्षय होता है ।

प्रतिहिंसा की अग्नि को दमन करने वाली दवा है, हँसना और मुस्कराना । आप दुकानदार हैं ग्राहक शिकायत करते हैं, आप क्लर्क हैं और मालिक झिड़कियाँ देते या जुरमाना कर देते हैं, घरवाली अपनी बड़ी-बड़ी फरमाइशें पैदा करती है, तो इन सभी कुटिल मानसिक अवस्थाओं में मुस्कराने के नुस्खे से काम निकालिए अर्थात् मन का उनके विपरीत संकेतों से प्रभावित मत होने दीजिए ।

मृदु मुस्कान द्वारा उत्पन्न स्निग्ध वातावरण से हम अन्दर ही अन्दर एक ऐसी शीतलता का अनुभव करते हैं जो हमें संसार के प्रकोप से, बाहर के दूषित वातावरण से बचाती है ।

हमने एक स्थान पर लिखा है, मैं ऐसे प्रसन्न स्वभाव, जो सदैव प्रत्येक वस्तु का अच्छे दृष्टिकोण से देखने का आदी है, प्राप्त करना अधिक पसन्द करूँगा, बनिस्वत इसके कि मैं दस हजार पौन्ड वार्षिक आय की जायदाद का स्वामी बन जाऊँ ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


त्कोफेनर के अनुसार, प्रसन्नता प्रत्यक्ष और शीघ्र तम लाभ है । वह अन्य सिक्कों की तरह केवल बैंक का ही सिक्का नहीं वरन् प्रत्यक्ष सिक्का है । धन प्रसन्नता का सबसे छोटा साधन है और स्वास्थ्य सबसे अधिक ।

ऊपर आपने पाश्चात्य चिकित्सकों तथा विद्वानों के विचार देखे । भारत में प्रफुल्लिता की शक्ति को स्वीकार किया गया है । सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री बिट्ठलदास मोदी के अनुसार, मुस्कराना हमारे स्वास्थ्य के लिए तो आवश्यक है ही, जीवन की कठोरता एवं संघर्ष को भी कम करता है । मोदी जी के विचार देखिए–

''क्रोध, आशंका, चिन्ता, डर आदि मानसिक रोग हैं । जिस प्रकार शारीरिक रोगों का हमारे चेहरे पर प्रभाव पड़ता है, उसी तरह हमारे चेहरे पर पड़ता है । इन रोगों की दबा है–प्रसन्न चित्त रहना, मुस्कराना । मुस्कराना वह दबा है, जो इन रोगों का निशान आपके चेहरे से ही नहीं उड़ा देगा, वरन् इन रोगों की जड़ भी आपके दिल से निकाल देगा । यह हो नहीं सकता कि मुस्कराने वाले का दिल काला या भारी रहे ।

## मुस्कराहट की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया

जब आप मुस्कराते हैं तो अपने आन्तरिक मन को एक स्वस्थ्य स्वसंकेत देते हैं । दर्पण में अपना खिला हुआ मुख कमल देखकर आपको आन्तरिक अह्लाद होता है । इसका विद्युत प्रभाव आपके शरीर पर पड़ता है । माँसपेशियाँ स्फूर्ति से उत्तेजित हो उठती हैं और काम में मन लगता है । मुस्कराने वाला व्यक्ति ही अपने अवयवों को पूर्ण स्वस्थ दशा में रख सकता है ।

मुस्कराने का दूसरा अर्थ यह है कि आपका मन मधुर कल्पनाओं, शुभ भावनाओं तथा पवित्र विचारों से परिपूर्ण है । इन पवित्र संकल्पों से ऐसी किरणें निकलती हैं, जो मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम स्थिति में रखती हैं । मुस्कराहट स्थायी रूप से आपके स्वास्थ्य का एक अंग बन जाता है, तो स्वभाव में एक महान परिवर्तन हो जाता है । ऐसे मधुर स्वभाव से हमारा सर्वत्र स्वागत किया जाता है ।

# आप क्या नहीं कर सकते ?

श्री हेनरी हैरिसन ब्राउन ने मनोविज्ञान के दो संकेतों का विस्तृत विश्लेषण किया है और उनका विचार है कि इन दोनों की शक्तियों को सही रूप में समझने वाला व्यक्ति ही संसार में विजयी हो सकता है । वे मनुष्य की समस्त मानसिक शक्तियों को इन दो संकेतों के पीछे-पीछे आना मानते हैं–

१– मैं कर सकता हूँ (सफलता और विजय संकल्प)

२– मैं नहीं कर सकूँगा (मँझधार में डुबो देने वाला संकेत)

जब हम इन दोनों संकेतों में से किसी एक का उच्चारण करते हैं अथवा हमारा गुप्त मन इनमें से किसी को दृढ़ता से स्वीकार कर लेता है, तो हमारी मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ भी उसी उसी के इर्द-गिर्द इकट्ठी होने लगती हैं । वे हमें वैसा ही उत्तर या सहयोग देती हैं ।

मान लीजिए आप यह मानते हैं कि ''मैं यह कार्य कर सकता हूँ '' तो इस संकेत के कारण आपके शरीर, मन और आत्मा की सब उत्पादक शक्तियाँ एकत्रित होकर आपकी लक्ष्यपूर्ति के लिए तैयार हो जाती हैं । आप मन में एक गुप्त शक्ति का अनुभव करते हैं और आपकी शक्ति और सामर्थ्य बढ़ते जाते हैं । नए साहस और नए उत्साह से आप इच्छा पूर्ति के लिए अग्रसर होते हैं । इसी विश्वास के कारण आपके मार्ग से विघ्न बाधाएँ दूर होती जाती हैं ।

दूसरी ओर यदि आप भूल से यह मान बैठे हैं कि ''मैं यह कार्य नहीं कर सकता '', तो इस गलत संकेत के कारण आप अन्दर ही अन्दर एक प्रकार की कमजोरी का अनुभव करेंगे । शरीर ढीला पड़ जायगा, इन्द्रियाँ जवाब देने लगेंगी, कन्धे झुक जायेंगे, कमर में दर्द मालूम होगा, सारी शक्तियाँ क्षय हो जायेंगी । आपको अन्दर ही अन्दर ऐसा लगेगा कि न जाने क्यों शरीर और मन गिरा-गिरा सा लग रहा है । काम में तबियत नहीं है ।

पहला संकेत ''मैं कर सकता हूँ'' मनुष्य के आत्मविश्वास को पुष्ट करता है, शक्तियों का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जगाता है, उसे अपनी सिद्धि और सफलता पर विश्वास हो जाता है । इस सृजनात्मक विचार का शक्तिबर्द्धक प्रभाव हमारे शरीर के संगठन पर पड़ता है । इन निश्चित दृढ़ और आशा भरे विचारों से हमारा मुखमण्डल दमकता हुआ मालूम पड़ता है और हमारे सम्पूर्ण कार्य सजीव मालूम पड़ते हैं ।

दूसरे संकेत ''मैं कुछ नहीं कर सकूँगा'' से निराशा के विचार हमारे गुप्त मन में छा जाते हैं, मुख मलीन हो उठता है और शरीर तथा मस्तिष्क की शक्तियों का ह्रास होने लगता है । इस तथ्य को प्रमाणित किया जा चुका है कि निराशा, अविश्वास, चिन्ता और शोक इत्यादि हमारी अवांछनीय और दुर्बलता पैदा करने वाली मनः स्थितियाँ हैं । अपने प्रति अविश्वास का एक विषैला शब्द या वाक्य मानसिक संस्थान में ही गड़बड़ नहीं मचाता, बल्कि पूरे शरीर पर और विशेषतः हमारे हृदय पर दूषित प्रभाव डालकर उसे कमजोर बना देता है । अनेक कच्चे मन वाले व्यक्ति तो काल्पनिक बीमारियों से व्यर्थ ही परेशान रहा करते हैं । अपने प्रति कमजोर भावनाएँ रखकर रक्त के प्रवाह में रुकावट पैदा कर लेते हैं । रुधिर में विकार उत्पन्न हो जाता है और उसमें उसकी पोषण शक्ति में भी विकार पैदा हो जाता है । ''मैं कमजोर हूँ'', ''रोगी हूँ'',-ऐसा कहने से तन्तुजाल में भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है । और इनसे शरीर के समस्त कार्यों में आंशिक शिथिलता आ जाती है ।

दूसरी ओर ''मैं इस कार्य को अवश्य कर सकता हूँ''-ऐसा कहने और मानने से मन में आशा और विश्वास, शक्ति और साहस पैदा होते हैं । मन में गुप्त ताकत आती है । रुधिर प्रवाह भी ठीक होकर समस्त शरीर को पुष्ट करता है, जिससे मन प्रसन्न तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है । अड़चने और विरोध स्वतः दूर होते जाते हैं । ऐसे व्यक्ति कभी निरुत्साहित नहीं होते । भय आदि दूषित विकारों का कोई प्रभाव नहीं होता । यह संकेत दृढ़ संकल्प पैदा करता है जो सफलता की कुंजी हैं । जो यह मान लेता है कि मुझमें अपने आदर्श तक पहुँचने की शक्ति और सामर्थ्य है वह अन्त में एक दिन अपनी इष्ट सिद्धि कर ही लेता है । जो यह सोचता रहता है कि ''मैं यह कार्य कर सकूँगा या नहीं'' वह संशय वृत्ति के कारण कुछ नहीं कर पाता ।

कहाँ चीटीं, कहाँ पक्षियों में सब से तेज उड़ने वाला पक्षी गरुड़ । यदि चीटी गरुड़ की तेज रफ्तार को सोच-सोचकर स्वयं अपनी धीमी गति से भी काम करना छोड़ दे, तो क्या वह कुछ कर सकती है ? नहीं चीटी स्वयं अपने पक्के निश्चय से ही जो कुछ बन पड़ता है, उतनी ही मात्रा में अपना कार्य करती जाती है, दूसरों से निरुत्साहित नहीं होती, फिर अपने लक्ष्य पर पहुँच ही जाती है । उसी प्रकार मनुष्य को अपनी छोटी शक्तियों को देखकर निरुत्साहित नहीं होना चाहिए । अपनी छोटी शक्ति से ही कार्य प्रारम्भ कर उसे पूर्ण करने का सतत उद्योग करना चाहिए ।

इन्हीं दोनों संकेतों को सामने रखकर हम समग्र मनुष्य जाति को दो बड़े भागों में विभाजित कर सकते हैं-१- वे जो कार्य को कर सकने में आत्मविश्वास रखते हैं । इन्हें हम मिस्टर कैन (अर्थात् कर सकने वाला) तथा २- वे व्यक्ति जो सदा अपनी कमजोरी तथा असफलता के विचारों में डूबे रहते हैं, इन्हें हम मिस्टर कान्ट (न कर सकने वाला व्यक्ति) कह सकते हैं ।

मिस्टर कैन उद्देश्यपूर्ति में अपनी गुप्त शक्तियों, सामर्थ्य और मनोबल का पूरा-पूरा उपयोग करते हैं, असंख्य विघ्न बाधाओं के बाबजूद अपने मार्ग से विचलित नहीं होते और अन्ततः कार्य को पूरा करके ही दम लेते हैं ।

इसके विपरीत मिस्टर कान्ट प्रत्येक निश्चय में ढीले ढाले अधमन से कार्यों में हाथ डालने वाले शक्की मिजाज होते हैं । वे किसी बड़े कार्य को पूर्ण करने के लिए बाहरी शक्तियों का इन्तजार किया करते हैं । भाग्य को दोष देते रहते हैं । ज्योतिषियों से भाग्य पलटने की तिथियाँ और उपाय पूछते रहते हैं । अवसर की प्रतीक्षा में टकटकी लगाये रहते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हम पूछते हैं कि आप मिस्टर कैन हैं, या मिस्टर कान्ट ? तनिक अपने गत जीवन पर तीव्र दृष्टि डालिये और निर्णय कीजिए कि आप किस वर्ग के व्यक्ति हैं ।

क्या आप मिस्टर कैन हैं जो उच्च पद, प्रतिष्ठा, नेतृत्व, बड़ा लाभ, सामर्थ्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए उत्साह से कार्य करते हैं, नए-नए प्रयत्न करते हैं । उत्साह और शक्ति विकसित करते हैं, और विपरीत परिस्थितियों से परास्त नहीं होते, पराजय जैसी निकृष्ट मनः स्थिति को जानते तक नहीं । सम्पद और विपद में समान भाव से अग्रसर होते हैं ।

यदि आप मिस्टर कान्ट हैं, तो इसके दोषी आप स्वयं ही हैं । इसमें स्वयं आपकी गुप्त पराजय की ग्रन्थि (हीनत्व की भावना)ही कसूरवार है । अपने विषय में दीन हीन सोच विचार करते-करते ही आपने अपने आपको गिरा लिया है । विघ्न बाधाओं, हानियों, विरोधों के भय से भयभीत होकर आपने कायरता को अपने अन्तःकरण में प्रविष्ट करा दिया है । इसी क्षण मन की दुर्बलता को जड़ मूल से उखाड़ फेंकिये । आपकी अश्रद्धा और अपनी शक्तियों के प्रति अविश्वास ही आपके दुर्भाग्य की जननी है । अपनी शक्तियों पर पूरा-पूरा ज्वलन्त आत्म-विश्वास कीजिए । अपनी श्रेष्ठता, अच्छाई, ताकत की बात अपने अन्तःकरण में जमा लीजिए । दृढ़ निश्चय, तीव्र इच्छा और प्रबल प्रयत्न के द्वारा अपने गुप्त सामर्थ्य को प्रकट कीजिए । फिर देखिए आपका कैसा भाग्योदय होता है । आप में अपना ईश्वरत्व प्रकट करने की पूरी सामर्थ्य है । फिर क्यों दुःख असफलता और चिन्ता में जीवन नष्ट कर रहे हैं ।

निश्चय जानिए आप मिस्टर कैन हैं । आपकी इच्छाशक्ति दृढ़ है । आपकी संकल्प शक्ति अजेय है । आप जिस कार्य को हाथ में लेंगे, उसे पूर्ण कर देने की आप में गुप्त आत्मिक शक्ति छिपी हुई है ।

आप शक्ति के साक्षात केन्द्र हैं । आप अपने आन्तरिक आत्मबल पर पूर्ण विश्वास रखते है । प्रत्येक कार्य आपकी इच्छा के अनुसार ही होता है । आत्मबल के अनन्त भण्डार से आप सब अभिषित कार्यों में सिद्धि पाते हैं । आप प्रबल इच्छा शक्ति से इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करते हैं । आपकी इच्छाशक्ति बड़ी प्रबल है ।

# आप कितना मानसिक आघात सहन कर सकते हैं

हमारे सामने मानसिक आघात से मृत्यु के दो उदाहरण हैं, जो बार-बार स्मृति में हरे हो आते हैं । हमारे एक विवाहित शिष्य की मृत्यु बड़ी रहस्यमय हुई । उनकी पत्नी बीमार हुई । तीन-चार बच्चों के पिता थे । यथेष्ट चिकित्सा के बाबजूद भी स्त्री चल बसी । पति महाशय असीम हार्दिक वेदना के वशीभूत हो गए । लोग छाती फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हैं, सिर पीट लेते हैं, डूब मरते हैं, उनके आँसू नहीं सूखते, पर इन महाशय ने ऐसा कोई रुदन स्पष्ट नहीं किया । पत्नी का दाह कर्म करके वे गुमसुम हो गए । हम लोग गमी करने भी गए, फिर भी वे सुस्त-गुमसुम ही बैठे रहे, बाहर आना-जाना भी न हुआ । मित्रों के साथ भी उनका दिल हलका न हुआ । कई नए रिश्ते भी आए, मित्र दुबारा उनसे विवाह का आग्रह करते रहे । पर वे गुम-सुम निष्क्रिय ! उनका चेहरा पीला पड़ता गया, रक्त कम होता गया ।और पत्नी की मृत्यु के कोई आठ दिन बाद जब पत्नी के मृत्यु भोज की तैयारियाँ हो रही थीं, हमने बड़े दुःख से उनकी मृत्यु का समाचार सुना । सन्न रह गये ! वे पत्नी की मृत्यु से हुए मानसिक आघात को सहन नहीं कर पाये थे । प्रबल मानसिक आघात ने उनके अचेतन जगत पर ऐसा हानिकारक प्रभाव डाला कि उन्हें निराशा और वेदना (मेलेन्कोलिया) का रोग हो गया था । उनका हँसना, उठना-बैठना, खाना-पीना और मिलना-जुलना सब कुछ जैसे बन्द हो गया था । नींद की तो भारी कमी हो गई थी । रोने पीटने से जो शोक की मात्रा कम हो जाती, उसके अभाव में वे चल बसे ।

## मानसिक आघात से आत्म-हत्या

दूसरा उदाहरण एक नवीन आत्महत्या का है । एक चालीस वर्षीय गृह पत्नी, जिनकी कन्या एम. ए. पास है, वस्त्रों में मिट्टी का तेल छिड़क आग

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लगाकर जल गईं । सर्वत्र तहलका मच गया । पुलिस आई, पर मालूम हुआ कि उनके पति दफ्तर गए हुए थे और कन्याएँ स्कूल में थीं । तहकीकात करने से मालूम हुआ कि ये बड़े अमीर की पत्नी थीं, प्रारम्भिक जीवन बड़े ऐश-आराम में व्यतीत हुआ था । दुर्भाग्य से पति को सट्टे की कुटेव लगी । उसमें सब कुछ धन हार गए और सेठ के यहाँ लगी हुई पुरानी नौकरी भी छूट गई । गरीबी के अभावपूर्ण दिन आये । पति पर भी भयंकर मानसिक आघात लगा, पर वे तो उसे किसी प्रकार सहन कर गए । उनकी पत्नी रहकर पुरानी अमीरी और वैभव का जीवन याद किया करती और आठ-आठ आँसू बहाया करती थीं । उन्हें बड़ी ही निराशा और पति के प्रति क्रोध की अनुभूति हुई । जीवन नीरस हो गया । चलना, फिरना और बोलना चालना बन्द सा हो गया । उनके दिमाग में तरह-तरह के ऊलजलूल विचार उत्पन्न होने लगे । वे अपनी नई गरीबी की बदली हुई परिस्थिति से समझौता न कर पाईं । पति-पत्नी की अनबन चलती रही । एक दिन पति की परिस्थिति में प्रबल आवेग के फलस्वरूप वे आत्महत्या कर बैठीं । मूल में उनकी मृत्यु का कारण अपने मानसिक आपत्ति को सहन न कर पाना था ।

## मानसिक आघात सहन करने की शक्ति

हमारे जीवन में मानसिक आघात दिन रात आते रहते हैं । यह छोटे और बड़े सब तरीके के हो सकते हैं । प्रायः देखा जाता है कि कुछ व्यक्ति तो इसे आसानी से सह लेते हैं, पर दूसरे उन्हीं में पागल और निराश तक हो उठते हैं । आत्म-हत्या कर डालते हैं । अन्धापन, पेट के रोग, पेचिस, दस्त और क्षय रोग आदि शारीरिक व्याधियों के शिकार हो जाते हैं, खाना-पीना सोना तक छोड़ देते हैं, जीर्ण सिर दर्द के रोगी हो जाते हैं । कभी-कभी हिस्टारिया पागलपन मूर्छा के रोगी हो जाते हैं ।

इन मानसिक आघातों को सहन करने की सब की शक्ति अलग-अलग है । कभी-कभी देखा जाता है कि बड़ी उम्र के व्यक्ति छोटी-छोटी बातों पर मानसिक दुःख का अनुभव करते हैं । उसी से परेशान हो उठते हैं । अपने जीवन को शून्य बना लेते हैं ।

मनुष्य के गुप्त मन में जो मानसिक ग्रन्थियाँ होती हैं, उनके कारण अनेक घटनाओं का तो बहुत तीव्र प्रभाव पड़ता है, जबकि दूसरों की मामूली सा आघात पड़ कर रह जाता है । वातावरण भी मानसिक आघात को बढ़ाने या घटाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता रहता है । जब दुःख और रोने पीटने का वातावरण होता है, तो जिसके यहाँ गमी हुई है, उसका मानसिक आवेग बहुत बढ़ जाता है । साधारण चीज को भी वह बहुत बढ़ा-चढ़ा कर महसूस करता है । हमारे यहाँ गमी मनाने और सहानुभूति प्रदर्शित करने जो व्यक्ति आते हैं, गमगीन व्यक्ति के गुप्त मानसिक घावों को कुरेद कर वास्तव में दुःख पहुँचाते हैं । वेदना को बहुत बढ़ा देते हैं । इस प्रकार अनजान में ही वे पापा के भागी बनते हैं और रोगी के अनेक गुप्त मनोजनित रोगों को बढ़ा देते हैं । बेचारा रोगी इन देखने वालों के गुप्त संकेतों पर निर्भर रहता है । वे क्षुद्र बाते ही चुपचाप उस पर अधिकार कर लेती है । निर्बल मन पर अनर्थकारी संकेतों का दूषित प्रभाव पड़ता है । जब मानसिक भार बहुत एकत्रित हो जाता है, तो वह किसी भयंकर मानसिक रोग के रूप में फूट पड़ता है । यह मन की अधोगामी अवस्था का सूचक है ।

# ध्यान और प्रार्थना से आत्म विकास

संसार का अर्थ है गतिशील वस्तु । जगत् निरन्तर चलता रहता है-बदलता रहता है और इस परिवर्तन का भला-बुरा प्रभाव निरन्तर व्यक्ति के ऊपर पड़ा करता है । पर आश्चर्य का विषय है कि ये परिवर्तन किस में हो रहे हैं, इसका हम कभी स्मरण नहीं करते । इसका परिणाम यह होता है कि हम दिशा भूले हुये मुसाफिर की तह इधर-उधर भटकते रहते हैं ।

अगर इन सदैव पड़ने वाले संस्कारों को विवेक युक्त और सार्थक बनाना हो, तोड़ मनुष्य को बार-बार यह विचार करना चाहिय कि से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


संस्कार किस पर पड़ रहे हैं इसका बराबर ध्यान करते रहना चाहिये । सब प्राणी जीते हैं उसी प्रकार हम भी जीते हैं और जैसे सब मरेंगे वैसे ही हम भी मर जायेंगे-यह कथन एक दृष्टि से सत्य ही है, पर इसमें जीवन-रहस्य की कोई बात नहीं है । सब प्राणी जीते हैं यह ठीक है, पर उनका प्रत्यक्ष अनुभव तो हम को नहीं है । जिस प्रकार अन्य व्यक्ति मरते हैं वैसे ही हम भी मर जायेंगे-यह भी ठीक-ठीक कहा जा सकता । मृत्यु का वास्तविक अनुभव तो मरने वाले को ही होता है । सारांश यह है बिना सोचे समझे और नित्य मनन और स्मरण किये बिना हम अपने ऊपर पड़ने वाले संस्कारों का महत्व नहीं समझ सकते और उनका पड़ना या नन पड़ना हमारे हित की दृष्टि से व्यर्थ ही रहता है ।

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये मुख्य उपाय ध्यान और प्रार्थना ही है । व्यक्ति के जीवन को संकलित करने का कार्य इन्हीं से होता है । प्रार्थना का तात्पर्य यह नहीं कि मनुष्य अपने धर्मात्मा या ईश्वर भक्त होने का अभिमान करें वरन् यह अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में सदा सर्तक और जागृत रह यह प्रार्थना का उद्देश्य है । हम अपने भीत की चैतन्य शक्ति को सहज ही में नहीं पहिचान सकते । उसका बारम्बार स्मरण करते रहना जीवन-विकास के लिये आवश्यक है और इसके ध्यान तथा प्रार्थना द्वारा मनुष्य को अपने अन्तर में प्रवेश करना चाहिये । इसका दूसरा उद्देश्य बाहरी वस्तुओं में से आत्म-विकास के लायक तत्त्व ग्रहण करना भी है । जिस प्रकार वृक्ष अपने बीज के गुण और शक्ति के अनुसार तत्वों को भूमि तथा वातावरण से ग्रहण करके अपना विकास करती है उसी प्रकार आत्मा भी संसार में से अपने उपयुक्त संस्कारों को ग्रहण करके विकसित हो सकती है । ध्यान और प्रार्थना इस कार्य को साल बनाती हैं । संसार यात्रा में इसके द्वारा बीच-बीच में रुककर आत्मा की प्रगति का निरीक्षण किया जा सकता है ।

इस आत्म-तत्व को निर्बल समझना चाहिये । वैसे तो सूक्ष्म वस्तु स्थूल के मुकाबले में अल्प शक्ति वाली जान पड़ती है, पर वास्तव में उसमें बहुत अधिक शक्ति होती है । हमारी वाणी हमारे भीतरी भावों का आधा-पर्धा रूप होती है, पर जब किसी कार्य का अवसर आता है तो हम अपने आन्तरिक भावों के अनुसार ही काम करते हैं । दूसरी तरफ सब से बलवान हमारे हाथ पैर ही होते हैं पर जब वेदना-जनक घटना होती है तो हमारे हाथ-पैर बिल्कुल शिथिल पड़ जाते हैं इन उदाहरणों से यह मानना ही पड़ता है कि मनुष्य के आत्म-तत्व में कोई ऐसी गूढ़ शक्ति मौजूद है जिसे हम ढूँढ़ सकते हैं, विकसित कर सकते हैं, काम में ला सकते हैं । ध्यान के द्वारा मनुष्य को इस बात का अनुभव होता है कि आत्म-तत्व कोई सबसे अलग किसी से सम्बन्ध न रखने वाला पदार्थ नहीं है । यह समस्त विश्व एक चेतना का महासमुद्र है, हमारी व्यक्तिगत चेतना भी उसी का एक अंश है । हमारी चेतना का विश्व चेतना के साथ क्या संबंध है इसका ज्ञान प्राप्त होने स हमाी सामर्थ्य, स्थिरता और ज्ञान की वृद्धि होती है ।

परम तत्व की तरफ से अभिमुख या उन्मुख होते ही उसकी शक्ति का व्यक्ति में संचार होता है । कमल जैसे ही सन्मुख होता है वैसे ही सूर्य की किरणें उसके दलों को प्रफुल्लित कर देती हैं । इसी प्रकार ध्यान तथा प्रार्थना द्वारा ईश्वर का स्मरण, प्रार्थना, ध्यान, उपासना करने से उसकी समस्त शक्ति का झुकाव हमारी तरफ हो जाता है । पर्वत का दर्शन जिस प्रकार स्थिरता का भाव उत्पन्न करता है, उसी प्रकार ईश्वर का ध्यान करने से ईश्वर की शक्ति का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है, चाहे उसका परिमाण कितना भी कम क्यों न हों ?

आत्मा का परमात्मा के साथ अल्प अंश में सम्पर्क होना शुभ है, पर इससे मनुष्य कृतकृत्य नहीं हो सकता । इसके लिये ध्यान और प्रार्थना का प्रयत्न निरन्तर जारी रहना चाहिये । तभी व्यक्ति का पूर्ण विकास (मोक्ष) होना संभव है । पर इस प्रयत्न के होते हुये भी मनुष्य का सम्बन्ध संसार से टूट नहीं जाता है । पर अब उसका दृष्टिकोण बदल जाता है । उसके सांसारिक सम्बन्ध अब भी कायम रहते हैं, पर अब उनके विषय में उसे उत्तम दृष्टि पाप्त हो जाती है ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य मनुष्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


की कर्तव्यता अथवा कर्तव्यपरायणता में कमी नहीं करता है, वरन् इसके कारण अनासक्तता और कर्तव्य कुशलता की वृद्धि होती है । जिस प्रकार आकाश, समुद्र, पर्वत, वर्षा, बसन्त, वृक्ष, पुष्प, नदी, सरोवर आदि सांसारिक पदार्थों और घटनाओं को आत्म-विकास का पोषक बनाया जाता है उसी प्रकार सांसारिक सम्बन्धों को भी मनुष्य आत्मदर्शन का साधन बना सकता है । जो सबके लिय हितकर कार्य है उसका त्याग मुमुक्ष को नहीं करना है, वरन् उस कार्य के द्वारा भी उसे मोक्ष-मार्ग में अग्रसर होना है । इस कार्य के लिये उसे चेतना औरर शुद्ध बुद्धि की आवश्यकता होगी जो ध्यान और प्रार्थना के द्वारा प्राप्त हो सकेगी ।

हमारी सनातन प्रार्थना का भाव यही है कि मैं सत्य के दर्शन करूँ, मेरी बुद्धि शुद्ध बने और सत्य को प्राप्त करें और सब मनुष्यों के लिए कल्याणकारक पदार्थों में प्रवृत्त रहे । सत्य दर्शन के बिना न तो व्यक्ति का कल्याण हो सकता है और न समष्टि का ।

## प्रसन्नता की साधना

जिन लोगों को उदासीनता, चिन्ता और निराशा घेरे हुए है, किसी काम पर मन नहीं लगता, मन टूटता रहता है, उनके लिए निम्न अभ्यास बहुत उपयोगी होगा ।

सूर्य अस्त के पश्चात् या सूर्य के पूर्व किसी स्वच्छ और हवादार कोठरी में अकेले प्रवेश करो और आत्मचिन्तन और ईश्वर उपासना के लिए एक घण्टा उसी में बने रहो । बाहर का एक भी विचार इस समय मन में नहीं आना चाहिए । शरीर को ढीला करके किसी मुलायम बिछौना या आराम कुर्सी पर शान्ति पूर्वक बैठ जाओ । नेत्र बन्द करके अपने अन्दर हृदय का ही ध्यान करो, बाहरी बातों को इस समयय बिलकुल भुला देना चाहिए । शरीर और मन को स्थिर करके मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना करो कि ''हे प्रभो ! मुझे ऐसी दिव्य दृष्टि प्रदान कीजिए जिससे मैं सर्वत्र आपके सत् चित् आनन्द स्वरूप का दर्शन कर सकूँ । आप विशव में निरन्तर आनन्द और प्रसन्नता की वर्षा करते हैं । मुझे ऐसी योग्यता दीजिए कि उस सर्व व्यापी आनन्द रस का सदैव पान करता रहूँ ।''

इस मन्त्र को धीरे-धीरे दस बीस बार मन में दुहराओ और हर एक शब्द पर अच्छी तरह विचार करते जाओ । इसके उपरान्त कुछ देर के लिए बिलकुल शान्त हो जाओ और भावना करो कि तुम्हारे अन्दर शान्ति, प्रसन्नता और प्रफुल्लता का समुद्र उमड़ हा है और तुम उसमें प्रेमपूर्वक स्नान कर रहे हों । इस ध्यान में जब तक मन लगे तब तक करते रहो । कभी-कभी इस ध्यान से निद्रा सी आने लगती है । प्रेम और प्रसन्नता के पुनीत जल से समस्त विश्व को भरा हुआ देखने और उसी अमृत को खींचकर अपने में धारण करने की मानसिक साधना ऐसी है, जिससे तत्क्षण आनन्द का प्रादुर्भाव होता है । ध्यान से उठने पर शान्ति मिलती है, चिन्ताऐं चली जाती हैं और चेहरे पर प्रसन्नता की किरणें प्रस्फुटित होने लगती हैं ।

प्रातः काल के अभ्यास के अन्तिम भाग में जब प्रकाश फैल गया हो, एक बड़े से दर्पण के सम्मुख खड़े होकर अपना मुख उसमें देखिए । लगातार दस मिनट तक मौन भाव से अपनी छाया को विश्वास और सम्मान के साथ देखते रहिए, तदुपरान्त इस मन्त्र को धीरे-धीरे, हलके किन्तु विश्वसनीय शब्दों में कहिए । मानों तुम अपनी दर्पण वाली छाया से इन शब्दों को सुनिश्चित रूप से कह रहे हो । ''मैं तुम्हारी आत्म शक्ति के ऊपर, तुम्हारे ऊपर, पूर्ण विश्वास करता हूँ । तुम योग्य और कुशल हो तुम्हारी शक्ति संपूर्ण परिस्थितियों पर विजय पाप्त कर सकती है । तुम शान्ति-स्वरूप, प्रसन्न मुख और स्थिर चित्त हो । मैं देखता हूँ कि तुम्हारे चेहरे पर प्रसन्नता की किरणें अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट होती आ रही हैं ।''

इन शब्दों को तोता की तरह रटना नहीं चाहिए वरन् आन्तरिक विश्वास के साथ अपनी छाया में समालोचन की तरह कहना चाहिए । कुछ देर इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्र का पाठ करो । पीछे ने बन्द करके अपने मानस लोक में दर्पण वाली छाया और भावना करो कि तुम्हारी छाया को देखो और भावना करो कि तुम्हारी छाया प्रसन्न शान्त आनन्द स्वरूप है । चेहरे पर प्रफुल्लता का तेज विद्यमान है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उपर्युक्त अभ्यास से सचमुच प्रसन्नता का आविर्भाव होता है । उदासी, निराशा और मानसिक अवसाद इससे दूर होकर चित्त में दृढ़ता एवं उत्साह का संचार होता है । प्रसन्नता प्राप्त करने के इच्छुक इस साधना को कुछ दिन नियम पूर्वक करके देखें तो उन्हें संतोषजनक लाभ प्राप्त हो सकता है ।

## वृत्तियों का परिमार्जन, व्यक्तित्व का उदात्तीकरण

स्वच्छ दीखने के दो तरीके हैं-अस्वच्छता को ढक देना या उसे साफ कर देना । आवरण चढ़ाने से अंतर इतना ही आयेगा कि निहित गंदगी बाह्य दृष्टि से ओझल बनी रहेगी । इतने पर भी उसकी सत्ता अपने स्थान पर यथावत् रहती और मौका पाते ही, आवरण हटते ही अपना परिचय पूर्ववत् देने लगती है ।

मनुष्य की यह आम आकांक्षा होती है कि वह दूसरों की नजर में सम्मानित दीखे और सुसंस्कृत कहलाये । इसके लिए एक मात्र तरीका यही है कि व्यक्तित्व का रूपांतरण हो और उसे इतना प्रामाणिक, प्रखर और परिष्कृत बनाया जाय कि सौरभ बिखेरने वाले फूलों की ओर जिस प्रकार भौंरे खिंचते चले आते हैं, वैसे ही लोगों की श्रद्धा और सहायता अनायास मिलती चले ओ। यह किंचित कठिन प्रक्रिया है । इन दिनों लोग पुरुषार्थ प्रधान ऐसे कार्यों से प्रायः बचना चाहते किसी ऐसे सरल, संस्करण की तलाश में रहते हैं, जो आसान हो एवं सुविधाजनक भी, साथ ही देखने में भी ऐसा न लगे, जिससे जल्द ही उसके असल की नकल होने का अनुमान लगता हो । व्यक्तित्व के संदर्भ में ऐसा उपाय यही हो सकता है कि बुराई पर आकर्षक पर्दा डाल दिया जाय और सज्जन एवं सरल होने का प्रदर्शनन किया जाय । ऐसे में कई बार व्यक्तित्व की पहचान में धोखा हो जाता है और बुरे के अच्छे होने का भ्रम होने लगता है ।

मानवी व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं-भावना, विचारणा और व्यवहार । इनमें से व्यवहार शारीरिक प्रवृत्ति है, जबकि विचारणा मानसिक वृत्ति है । इन दोनों का सम्बन्ध स्नायु तंत्र से है, किंतु भाव-संस्कार का सम्बन्ध स्नायु संस्थान से नहीं होता, वह चेतना का विषय है, अतएव उसको परिष्कृत करने की जरूरत पड़ती है । यही कारण है कि जब ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा आदि संवेगात्मक तत्वों के नियंत्रण की बात आती है, तो शरीर विज्ञानी और मनोविज्ञानी स्वयं को असहाय महसूस करने लगते है और यह बता पाने में असमर्थ साबित होते हैं कि शरीर, मन के किन हिस्सों द्वारा किस प्रकार इनका संचालन उत्पादन होता है । अब तक मन के सम्बन्ध में काफी शोधें मनोविज्ञान के क्षेत्र में हो चुकी हैं और मस्तिष्क के बारे में भी अगणित अनुसन्धान शरीरशास्त्री कर चुके और कर रहे हैं, पर उक्त दोनों विधाओं के विशेषज्ञ यह सुनिश्चित कर पाने में एक प्रकार से विफल ही रहे हैं कि आखिर मन-मस्तिष्क में से कहाँ किस अंग में ठीक-ठीक इनकी अवस्थिति है ? जबकि अध्यात्मवेत्ता इनका अवस्थान-स्थान भी बताते और उन्हें प्रभावित करने की पद्धति भी सुझाते हैं, कहते हैं कि यदि इनका उदात्तीकरण हो जाय, तो हर किसी के लिए ईर्ष्या को उत्फुल्लता में, राग को विराग में, द्वेष को सहयोग में और घृणा को प्रेम में बदल पाना सम्भव हो जायगा । इसका तात्पर्य यह हुआ कि नियन्त्रण प्रणाली स्थूल शरीर के ज्ञान-तन्तुओं की क्रियाओं तक ही सीमित है । इसके आगे जो कुछ होता है, वह प्राकृतिक और संस्कारगत है एवं चेतना से सम्बद्ध है । इसका उदात्तीकरण तथा शोधन ही हो सकता है, रूपान्तरण का इसके लिए अन्य कोई दूसरा तरीका नहीं । इस प्रकार नियन्त्रण और रूपान्तरण बदलाव की यह दो पद्धतियाँ हैं । हम इन दोनों को भली-भाँति समझें और एक के स्थान पर दूसरे को प्रयुक्त न करें । दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं । नियन्त्रण के क्षेत्र में शोधन को न लायें और शोधन की जगह नियन्त्रण का प्रयोग न करें । यह यदि सही-सही सम्पन्न हुआ, तो फिर शोधन के उपरान्त नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं रह जायगी इतना सुनिश्चित है ।

देखा गया है कि व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में स्वयं को बदलना चाहता है, बुराइयों को छोड़ना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


चाहता है, वासनाओं को त्यागना चाहता है, किन्तु लाख कोशिशों के बाबजूद उसे असफलता ही हाथ लगती है । तात्कालिक सफलता तो इसमें मिलती देखी गई है, पर वह चिरस्थायी नहीं होती । कारण की तलाश करने पर यही ज्ञात होता है कि जो प्रयास किए गये, वह कायिक अथवा मानसिक स्तर के उथली परत मात्र के थे । इस स्तर पर मात्र नियन्त्रण ही सम्भव है, रूपान्तरण नहीं । जहाँ नियन्त्रण होगा, वहाँ उसके हटने-घटने की सम्भावना भी बनी रहेगी । ऐसी स्थिति में दुष्प्रवृत्तियों को बार-बार सिर उठाने का अवसर मिलता रहता है । इसलिए सुधार संशोधन सम्बन्धी नियन्त्रण की पद्धति अपूर्ण एवं अधूरी है । इसकी तुलना में यदि उदात्तीकरण को अपनाया गया, तो इससे सम्पूर्ण एवं चिरकालिक रूपान्तरण होता तथा समस्या का स्थायी समाधान मिलता । कारण कि हमारी अधिकांश प्रवृत्तियों का सम्बन्ध संस्कार-चेतना से है । जब उसका परिमार्जन किया जाता है, तो उससे सम्बन्धित समस्त चेष्टाओं का उदात्तीकरण हो जाता है । शरीर के विज्ञान और मनोविज्ञान इतनी गहराई में उतर कर वास्तविक निमित्त को समझ पाने के कारण ही बार-बार विफल रहते देखे जाते हैं ।

कायशास्त्र के बारे में शरीरवेत्ता स्खलन को रोक लेना ही सर्वोपरि मानते और उतने से ही ब्रह्मचर्य की अखण्डता स्वीकार लेते हैं । मनः शास्त्री उस पर दमन के द्वारा विजय प्राप्त करने की बात कहते हैं । ज्ञातव्य है कि कुचलने का यह तरीका हर जगह सफल नहीं होता । 'काम' स्वयं में एक प्रचण्ड ऊर्जा है । शक्तिशाली ऊर्जा को बहुत समय तक दमित नियन्त्रित नहीं किया जा सकता । यदि किया गया, तो ऐसी विस्फोटक स्थिति पैदा होगी, जो व्यक्ति को सनकी, उन्मादी, पागल स्तर का बना देगी । इसलिए उस ऊर्जा का रूपान्तरण किस प्रकार का, कैसा हो ? मनोवेत्ता यह बता पाने में नाकामयाब रहे, जबकि अध्यात्मवादियों के पास इसका सुनिश्चित उत्तर है । उनका कहना है कि यदि इस वासना से आवेग को सात्विक भावना में, ईश्वरीय अनुराग में बदल दिया गया, तो फिर 'काम' के सताने का सवाल ही पैदा नहीं होगा । इसके अतिरिक्त मनोविज्ञानियों के काम-दमन का प्रतिवाद करते हुए वे कहते हैं कि इस रीति से मन प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से बराबर ही उस ओर लगा रहता है और जिसका अनवरत स्मरण हो रहा हो, उस ओर से मन भला कैस हट सकता है ? निश्चय ही इस नियन्त्रण के माध्यम से काम विकार का उद्दीपन ही होता रहता है । इस सूक्ष्मशास्त्र को न समझ पाने के कारण ही मनोविज्ञान का यह सूत्र कारगर न हो सका । अध्यात्म में इसकी दिशा मोड़कर ईश्वरोन्मुख कर दिया जाता है । इसलिए सामान्यजन में जो ऊर्जा काम-विकार उत्पन्न करने में जो खर्च होती रहती है, वही शक्ति भगवद्परायण व्यक्ति में स्वतः ही रूपान्तरित होकर उच्चस्तरीय बनती रहती है, अतएव वहाँ वासना के सताने की बात तो दूर उसकी स्मृति तक नहीं उभरती । यही वास्तविक रूपान्तरण है ।

उदात्तीकरण और नियन्त्रण के बीच उपरोक्त अन्तर और उनकी सीमाओं को समझ लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शारीरिक स्तर पर जो हमारी चेष्टाएँ और क्रियाएँ होती हैं तथा मानसिक स्तर पर जैसा हमारा चिन्तन होता है, वह सब विशुद्धतः उन्हीं-उन्हीं स्तरों से सम्बन्धित होते हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता । उनका न्यूनाधिक लगाव भाव-संस्थान की संस्कार-चेतना से भी होता है । इसलिए मानवी चेष्टाओं को शुद्ध करने की जहाँ बात आती है, वहाँ उसके चित्तगत संस्कारों को भी ध्यान में रखना होगा ? कारण कि मनुष्य ८४ लाख योनियों की लम्बी यात्रा के उपरान्त यह शरीर धारण करता है इसलिए चित्त में उनके भी सूक्ष्म संस्कार विद्यमान रहते हैं । जिस-जिस योनि के जैसे-जैसे संस्कार मानवी अन्तराल में जमे रहते हैं, वैसी ही उनमें दुष्प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं । इस आधार पर व्यक्तित्व भेद की व्याख्या भी अत्यन्त सरल हो जाती है और यह बताया जा सकना शक्य हो जाता है कि यदि किसी में क्रोध, किसी में घृणा, किसी में प्रेम तत्व प्रबल है, तो ऐसा क्यों है ? मनोविज्ञान की इस सम्बन्ध में जो व्याख्याएँ हैं, वह

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अत्यधिक दुरूह हैं और अधूरी भी, क्योंकि व्यवहार की व्याख्या वहाँ परिस्थिति के आधार पर की जाती है । यदि किसी व्यक्ति में अधिकता की घृणा है, तो इस बारे में उसका कहना है कि चूँकि उसे किसी वातावरण में रहना पड़ा हो, जहाँ, तिरस्कार, अपमान, घृणा बड़े पैमाने पर मिला हो, अथवा बचपन में माता-पिता, भाई-बहन से फटकार मिलती रही हो, तो इसका परिणाम उसमें घृणा की उत्पत्ति के रूप में सामने आ सकता है । प्रेम, भय, क्रोध जैसी मानवी प्रवृत्तियों की व्याख्या, व्यवहार मनोविज्ञानी इसी प्रकार करते और कहते हैं कि परिस्थिति और समाज से वह जैसा कुछ सीखता है, वैसा ही बनता और विकसित होता चला जाता है । चूँकि व्यक्ति को समाज में पग-पग पर इन मनोवैज्ञानिक तत्वों से पाला पड़ता है, अतः उसमें ये सभी तत्व विकसित हो जाते हैं । घृणा प्रेम के सन्दर्भ में व्यवहार मनोविज्ञान का यही निष्कर्ष है । इसके आगे उसके पास और कोई समाधान नहीं, किन्तु मानवी व्यवहार इतना सरल कहाँ ? वह इतनी जटिलताओं से भरा हुआ है कि केवल परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में उसकी न तो व्याख्या हो सकती है, न हल हो सकता है, किन्तु यदि उसे हम क्रमशः व्यवहार जगत से विचार जगत, विचार जगत से भाव और संस्कार जगत तक ले जायँ और चिन्तन करें कि ऐसा व्यवहार हुआ, तो इसका कारण क्या है ? तो अन्ततः हम संस्कार जगत के उस मूल बिन्दु पर पहुँचेंगे, जहाँ आकर मानवी आचरण को एक परिभाषा, सर्वांगपूर्ण व्याख्या तथा सर्वांगपूर्ण समाधान मिल जाता है । जब व्यवहार का उदगम ज्ञात हो जाय, तो आदतों को बदल पाना सरल हो जाता है ।

वस्तुतः हम जो कुछ भीतर हैं, वही बाहर अभिव्यक्त करते रहते हैं । हमारी संस्कार-चेतना शुद्ध अवस्था मलिन जैसी होती है, आदतों के द्वारा आचरण के द्वारा वह उन्हीं रूपों में प्रकट और प्रत्यक्ष होती रहती हैं । इसी से स्वभाव का निर्माण होता है । प्रकृति यदि हेय और निम्नस्तरीय है, तो इसके लिए भी अन्तराल की वह भूमि जिम्मेदार है और वह यदि उच्चस्तरीय है, तो उसका भी निमित्त वही है । व्यक्तित्व का सारा ढाँचा उसी से निर्मित है, अतः व्यक्तित्व को बदलने के लिए उसे उत्कृष्ट बनाने के लिए हमें उसी संस्थान को परिमार्जित और परिष्कृत करना होगा । इसके लिए एकमात्र उपचार आध्यात्मिक ही है । जप, तप, व्रत, उपवास, ध्यान आदि कुछ ऐसे साधन हैं, जिनका यदि नियमित अभ्यास किया जाता रहे, तो यह उस अपरिष्कृत आन्तरिक भूमि पर सुनिश्चित असर डालते और गन्दगी को आवृत्त करने की बजाय निकाल-बाहर करते हैं । आचरण सम्बन्धी अस्वच्छता को दबाने की तुलना में मिटाना ही उत्तम होगा । रूपान्तरण और उदात्तीकरण का यही एकमात्र आधार है । व्यक्तित्व सम्पन्न इसी के द्वारा बना जा सकता है । अपनाया इसे ही जाना चाहिए । यही वह माध्यम है जो प्राणशक्ति के अभिवर्धन उन्नयन में सहायक होते और आत्मनिर्माण का पथ प्रशस्त करते हैं ।

प्राण का अर्थ है-शक्ति सामर्थ्य बल, जीवन एवं क्रियाशक्ति । कई व्यक्ति शरीर से बड़े स्थूल, मोटे, ताजे और लम्बे तगड़े दीखते हैं पर उनके भीतर जीवन शक्ति बड़ी न्यून होती है । एक दो कोस चलने में उनका दम फूल जाता है, पिंड़लियाँ भड़कने लगती हैं, जरा सी सर्दी गर्मी से बीमार पड़ जाते हैं, दो दिन बुखार आ जाय. तो महीनों तक कमजोरी नहीं जाती, जरा सा भय होने पर आशंका और घबराहट से कलेजा काँपने लगता है । किसी से लड़ाई झगड़ा हो जाय या कोई विशेष घटना घटित हो जाय तो उसका विचार बुरी तरह मन में घर कर लेता है । चित्त को उस बात पर से हटाया जाय तो हटता नहीं, तुच्छ सी बात मन को घेर बैठती है, मस्तिष्क खाली नहीं होता कि दूसरी बात सोची जा सके । रात को नींद आना कठिन हो जाता है । किसी की छोटी सी धमकी या भावी अनिष्ट की मामूली सी सूचना, मानसिक सन्तुलन बिगाड़ देती है ऐसे लोगों के लिए कहा जाता है कि वे निष्प्राण हैं । जीवित मृतक हैं । अन्नमय कोष की दृष्टि से वे सुडौल हैं, परन्तु प्राणमय कोष की निर्बलता के कारण वे एक प्रकार से निर्जीवों में ही गिने जाने हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो शरीर की दृष्टि से बड़े दुबले पतले, हलके, कम रक्त माँस के होते हैं, हड्डियों का ढाँचा दीखता है और गाल पिचके होते हैं फिर भी उनमें जीवनी शक्ति प्रचुर मात्रा में होती है । महात्मा गाँधी की शारीरिक दुर्बलता प्रसिद्ध है, वे हलके, नाटे, दुबले और कमजोर थे । थोड़ा सा बकरी का दूध और जरा से फल खाते थे फिर भी उनकी प्राणशक्ति असीम थी । अंग्रेजी सरकार उनकी शक्ति को देखकर थर्राया करती थी, विदेशी राजनीतिज्ञ यह उन्हें ९६ पौन्ड का बम गोला बताया करते थे, सदियों से गुलामी में सड़ने वाली भारतीय जनता में उन्होंने प्राण फूँक दिया और युग को पलट डाला और भी इतने कैसे ही मनुष्य जो शरीर की दृष्टि से तुच्छ हैं पर उनका साहस, ओज, तेज, पराक्रम, पुरुषार्थ महान हैं ऐसे लोग जन समूह के मुकट मणि बनते हैं, अपने विक्रम से संसार का पथ प्रदर्शन करते हैं । अपने ऊपर उन्हें अटूट विश्वास होता है, अपने भाग्य का वे आप निर्माण करते हैं, आत्म सम्मान, आत्म गौरव, आत्म कल्याण का वे स्वयं आयोजन करते हैं ।

प्राणशक्ति का चमत्कार मनुष्य के शरीर पर भी चमकता है । किसी का मुर्दा सा मुरझाया हुआ, डरता सा, सकपकाया हुआ, दीनतापूर्ण या उजड़ा चेहरा देखकर यह आसानी से जाना जा सकता है कि यह भीतर से खोखला है । जिसके नेत्रों में भीतर से एक बिजली सी चमक रही है, जिसके होठों पर प्रसन्नता के स्फुल्लिंग उड़ रहे हैं जिसके चेहरे पर गम्भीरता और दृढ़ता जमी हुई है, उसकी ऊँची गरदन और स्थिर भवें विश्वासनीयता निर्भयता और आत्म सम्मान प्रकट कर रही हैं, जिसकी वाणी में प्रभाव और प्रामाणिकता है उसे हम ओजस्वी, तेजस्वी और प्राणवान कह सकते हैं ।

यह प्राण ही जीवन है । प्राण के निर्बल होते ही जीवन लड़खड़ा जाता है । प्राण निकलते ही देह ऐसी हो जाती है कि उसे छूना तक अशुभ समझा जाता है और उसे जल्द से जल्द जलाकर या गाढ़ कर नष्ट कर डालने का प्रबन्ध किया जाता है क्योंकि यदि कुछ समय वह यों ही रखी रहे तो सड़कर भारी दुर्गन्ध एवं रोग विस्तार का करण बन जाती है । प्राणवान भीष्म जी ने उत्तरायण सूर्य में देह त्याग करने की इच्छा से अपने प्राणों को शर-शैय्या पर कई महीने प्राण को रोक रखा था ।

जैसे उचित आहार, उचित श्रम, उचित विश्राम, उचित स्वच्छता द्वारा शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है वैसे ही (१) निर्भयता, (२) प्रसन्नता, (३) ईमानदारी और (४) आत्मनिर्भरता, द्वारा प्राण शक्ति को सुस्थिर रखा जा सकता है ।

निर्भयता का अर्थ है कि हम किसी से भी न डरें, समुचित साहस और शौर्य हममे होना चाहिए । जब बेचारी मृत्यु तक हमें नष्ट नहीं करती तो इन तुच्छ से क्षण-क्षण में धूप छांह की तरह आने जाने वाले सुख दु:खों की क्या बिसांत है जो हमें डरावे । जो परमात्मा से, और उसके दण्ड से डरता है उसे किसी से भी डरने की आवश्यकता नहीं । विपत्ति कागज के हाथी के समान है । जो दूर से डराता है पर जब वह पास आ जाती है तो तुच्छ मालूम पड़ता है । कोई न कोई रास्ता ऐसा निकल आता है कि वह मुसीबत बात की बात में कट जाती है । ईश्वर की अपार दया करुणा और शक्ति शालीनता पर जिन्हें भरोसा है वे जानते हैं कि कोई भी दुख, कष्ट, नुकसान अनिष्ट या अभाव ऐसा नहीं है जो इतना अधिक दुख दे सके कि हमें उससे डरने की आवश्यकता पड़े । साहसी बाजी मारता है । गायत्री का महाप्राण जिसके पास है उसे तो साधारण साहसी नहीं दुस्साहसी होना चाहिए, वह किसी से डरना तो दूर, कठिनाइयों से, उलझनों में जूझने में एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करता है, उसे दु:खों में तितीक्षा और तप की सुखद सरसता की अनुभूति होती है ।

प्रसन्नता मनुष्य के आन्तरिक सन्तोष, उचित दृष्टिकोण सद्भावना, सुव्यवस्था और मधुर स्वभाव की प्रतीक है । जो प्रसन्न रहता है उसकी जीवनी शक्ति बढ़ती है उसमें प्राणतत्त्व का निरन्तर अभिवर्धन होता है । जो निडर है, जो सन्तुष्ट है, जो हँसता है उसकी मनोभूमि अपने आप प्राणपूर्ण होती चली जाती है । अच्छे स्वभाव की सुलझे हुए दृष्टिकोण की छाया ही प्रसन्नता है । जो हँसता रहता है, प्रसन्नता जिसकी सहचरी है वह प्राणशक्ति से वंचित नहीं रह सकता ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ईमानदारी, निष्कपटता, सरलता सच्चाई एक ऐसी वृत्ति है जो जीवन को खुले पन्ने की तरह रखती है । जहाँ चोरी, ठगी, धूर्तता, कपट, धोकेबाजी, बेईमानी की इच्छा नहीं वहाँ कोई गोपनीयता भी नहीं रहेगी । एक झूठ छिपाने के लिए बीस नये झूठों की रचना करनी पड़ती है, वह खुल न जाय इसलिए बड़े प्रयत्नों की आड़ बनानी पड़ती है पर जहाँ सरलता है, सच्चाई है, खरा व्यवहार है वहाँ कोई मायाचार बनाने की जरूरत नहीं है । कहते हैं कि ''सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है'' पर वास्तविक बात यह है कि सच्चाई में अकूत बल भरा हुआ है । जिसके मन में बेईमानी नहीं, जिसके कार्य में चोरी नहीं उसका मन सदा हलका रहेगा और उसे किसी से भी डरने की आवश्यकता न रहेगी । इस प्रकार की पवित्र मनोभूमि में प्राण का स्वभाविक संचय होता है और वह ईमानदार व्यक्ति दिन-दिन प्राणवान होता जाता है ।

आत्म निर्भरता का मतलब है-दूसरों के ऊपर निर्भर न रहकर अपने प्रयत्न पुरुषार्थ, उद्योग और परिश्रम पर विश्वास करना । जो लोग अपनी योग्यताओं, शक्तियों और सामर्थ्यों को तो बढ़ाते नहीं और दूसरों से यह आशा करते हैं कि अमुक की कृपा से हमारे काम हो जायेंगे वे सदा घाटे में रहते हैं । भले ही किसी की कृपा से कोई अनायास लाभ हो जाय परन्तु पराश्रय,. परमुखापेक्षी रहने पर उनकी अपनी प्राणशक्ति न बढ़ेगी और प्राणमय कोष सुव्यवस्थित न हो सकेगा । सफलता चाहे छोटी हो, थोड़ी हो, पर होनी चाहिए अपने बाहुबल द्वारा उपार्जित ऐसी दशा में ही साहस, उत्साह और आत्मविश्वास बढ़ सकता है । जिसे अपनी महानता का, अपने आत्म गौरव का ध्यान है वह नीच विचारों और पतित कर्मो को नहीं अपना सकता अतएव उसकी उच्च विचार धारा और उत्तम कार्य प्रणाली अपने आप ही स्वचलित डायनुमा की तरह प्राणशक्ति की बिजली उत्पन्न करती है और साधक का प्राणमय कोष सुविकसित होता चलता है ।

विशेष साधनाओं द्वारा भी प्राणशक्ति का विकास होता है । परन्तु जीवन में उपरोक्त चार सद्गुणों को अधिकाधिक मात्रा में सम्मिलित करते चलना भी एक ऐसी व्यवहारिक एवं सर्व सुलभ साधना है जिसको अपना कर हर कोई मनुष्य बिना योगिक साधनाओं के भी प्राणमय कोष को सुव्यवस्थित कर सकता है । प्राणशक्ति का विकास कर सकता है ।

जिसमें निर्भयता, प्रसन्नता, ईमानदारी और आत्मनिर्भरता के गुण होंगे उसका अन्तःकरण निरन्तर प्रफुल्ल, उत्साहित एवं सन्तुष्ट रहेगा । ऐसी ही मनोभूमि में प्राणशक्ति का विकास होता है । यह सद्गुण मनुष्य को प्राणवान बनाते हैं उसकी प्रतिभा, तेजस्विता और पुरुषार्थ शक्ति को बढ़ाते हैं फलस्वरूप वह व्यक्ति व्यवहारिक जीवन के प्रत्येक मोर्चे पर सफल होता है, उसकी वाणी में, भावभंगिमा में, चेष्टा में, क्रिया में, विचार धारा में सर्वत्र प्राण ही प्राण, परिलक्षित होता है ऐसे ही सद्गुणी एवं प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा संसार में महान कार्यों का सम्पादन होता है और वे ही महापुरुष कहलाते हैं ।

✷ ✷ ✷

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

# जीवन श्रेष्ठ एवं सार्थक कैसे बने ?

## जीवन की श्रेष्ठता और उसका सदुपयोग

मनुष्य निस्सन्देह इस सृष्टि की सबसे बड़ी विभूति है । कल्पना कीजिये यह मानवीय प्रतिभा एवं बुद्धिमत्ता यदि इस धरती पर न रही होती, दूसरे वन्य पशुओं की तरह यदि मनुष्य भी बुद्धिरहित होता तो बन्दरों वनमानुषों की तरह वह अपना निर्वाह तो किसी प्रकार कर लेता, पर संसार ऐसा ही ऊबड़-खाबड़ पड़ा रहता जैसा कि सृष्टि के आदि में था । सर्वत्र नदी, नाले, गड्ढे, पर्वत, जंगल, बीहड़ ही दृष्टिगोचर होते । सुनसान, डरावना, निरुद्देश्य और कुरूप, वातावरण बना रहता । जिन ग्रह-नक्षत्रों में बुद्धिरहित प्राणी रहते होंगे उनकी नीरस स्थिति के साथ जग मानवीय बुद्धिमत्ता से सुसज्जित इस धरती की तुलना करते हैं तो लगता है कि हम उतनी महत्त्वपूर्ण स्थिति में माने जा सकते हैं जितना कि हम अपने लोक की अपेक्षा स्वर्ग लोक को श्रेष्ठ मानते हैं ।

आज का उपयोग कृषि, पशुपालन, गृह-निर्माण, वस्त्र, वस्तु विनिमय, धन, विवाह, परिवार पद्धति, शासन, समाज रचना, धर्म कर्त्तव्य, नीति, सदाचार, ईश्वर, भाषण, लेखन आदि की प्रकियाओं का आविष्कार करके मनुष्य ने अपनी स्थिति को दूसरे जीवों की तुलना में अत्यन्त उच्च एवं महत्त्वपूर्ण दर्जे पर पहुँचाया है । विकास द्वारा उन्नति करके तो उसने अपनी जानकारी एवं सुविधाओं को इतना बढ़ा लिया है कि आदिम-युग का मनुष्य यदि उसे आकर देखे तो आश्चर्य से चकित हुए बिना न रहे । सड़कें, सवारी, रेल, मोटर, जहाज आदि द्वारा जल, थल, नभ में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करना उसके लिये सरल हो गया है । द्रुतगामी, जलचरों, थलचरों और नभचरों को जो सुविधायें प्राप्त हैं उनसे असंख्य गुनी सुविधायें मनुष्य ने अपने बुद्धिबल से प्राप्त कर ली हैं । ज्योतिष, चिकित्सा, रसायन, शिल्प, उद्योग, शस्त्रास्त्र, शिक्षा, संगीत, कला, शिल्प, मशीनें, तार, रेड़ियों, बिजली, मुद्रण, बैंक आदि अगणित प्रकार के आविष्कारों ने उसे इतनी सुविधायें प्रदान की हैं कि आदिम स्थिति की तुलना से आज की स्थिति का अन्तर जमीन-आसमान जैसा दिखाई पड़ता है ।

दूसरे जीव-जन्तुओं की आँखों से यदि मनुष्य की स्थिति का अवलोकन किया जाय तो वैसी ही कल्पना कर सकते हैं जैसी कि हम देवताओं के बारे में करते हैं । हम अपने जीवन में जिन अभावों का अनुभव करते हैं, उनकी पूर्ति कल्पना स्वर्गस्थ देवताओं में करते रहते हैं । अपनी असंख्य कामनायें अधूरी रहती हैं, प्रयत्न करने पर भी असफलता एवं असन्तोष के अवसर सामने आते ही रहते हैं । यह अभाव खटकते हैं । स्वर्ग के बारे में हम सोचते हैं कि वहाँ हर इच्छा को तत्काल पूरा करने वाला कल्पवृक्ष मौजूद है, उसकी सहायता से जो कुछ इच्छा करें वह तुरन्त पूरी हो सकती है । देवताओं को यह लाभ प्राप्त है ही, हमें भी होंगे, यह सोचकर स्वर्ग प्राप्ति के लिये नाना प्रयत्न किये जाते रहते हैं । सृष्टि के दूसरे जीव अपने अभावों और मनुष्य के सुख-साधनों को देखते हुए ऐसी ही आकांक्षा रखते होंगे कि हमें मनुष्य जैसी सुविधा मिल सके तो आनन्द की सीमा न रहे । संसार के अन्य जीव शारीरिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते, उन्हें निर्वाह की समस्या हल करने के लिये सतत प्रयत्न करना पड़ता है । कठिनाई से ही वे शरीर रक्षा जितनी सफलता प्राप्त कर पाते हैं । ऋतुओं का प्रभाव, आहार की न्यूनता, अपने से सबलों का आक्रमण उन्हें सदा कष्टमय स्थिति में डाले रहता है । मानसिक सुविधाओं का तो प्रश्न ही नहीं । बुद्धि के अभाव में प्रगति, अन्वेषण विचारणा, सहयोग, व्यवस्था, उत्पादन जैसी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में तो वे कुछ कर ही नहीं पाते । फलस्वरूप गया-गुजरा जीवन ही उन्हें

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जीना पड़ता है । मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए दीन-हीन परिस्थिति वाले व्यक्ति को भी जो सुविधायें रहती हैं वे अन्य योनियों में श्रेष्ठ माने जाने वाले सिंह, हाथी आदि को भी प्राप्त नहीं हैं ।

संसार को बहुत ही सुन्दर, सुसज्जित और व्यवस्थित बनाने में मानव प्राणी की बुद्धिमत्ता को ही सारा श्रेय प्राप्त है । विज्ञान की उन्नति करके उसने सुखोपभोग की प्रचुर सामग्री उत्पन्न की है और विचार-विज्ञान का विकास करके भावना क्षेत्र की एक नई दुनियाँ का ही सृजन कर लिया है । प्रेम, सेवा, करुणा, मैत्री, त्याग, संयम, धर्म उपासना जैसा उदात्त, आकांक्षा या कल्पना-वासना, विलासिता, मनोरंजन, शृंगार, सुसज्जा, सौन्दर्य, संगीत, नृत्य, विनोद कविता, साहित्य, क्रीड़ा जैसा कलात्मक और क्रोध, संघर्ष, चिन्ता, द्वेष, शोक, प्रतिशोध, भय, जैसी निकृष्ट मनोवृत्तियों का एक पूरा संसार ही मनुष्य ने रच डाला है । वह उसमें विचरण करते हुए एक नई दुनियाँ का ही वासी बना रहता है । यह दुनियाँ पशु-पक्षियों के लिये सर्वथा अविज्ञात है । इस क्षेत्र में उनका प्रवेश नगण्य ही होता है । भावनात्मक सूक्ष्म ज्ञान की रचना मनुष्य की प्रतिभा का अत्याधिक अद्‌भुत चमत्कार है । इस कल्पना जगत् के सुख-दु:ख इतने सम्वेदनशील हैं कि स्थूल जगत् के भाव-अभाव उनकी तुलना में तुच्छ गिने जा सकते हैं । मनुष्य की रची हुई भाव-सृष्टि कैसी विलक्षण है उस पर विचार करने से यही मानना पड़ता है कि मानवी प्राणी निस्सन्देह इस सृष्टि की विभूति है । उनका स्थान इस संसार में सर्वोपरि है ।

सृष्टि की सर्वोपरि सत्ता का अधिपति होने के कारण उससे यही आशा की जानी चाहिये कि वह आनन्द से परिपूर्ण जीवन-यापन करेगा और उसके सम्पर्क में जो भी आयेंगे उन्हें आनन्द लाभ से लाभान्वित करेगा । इतने महत्त्वपूर्ण स्थान और पद पर पहुँचने के बाद निश्चय ही मनुष्य के कन्धे पर कुछ उत्तरदायित्व भी आते हैं । उचित यही है कि उन्हें निबाहा जाय । निम्न स्थिति में पड़े हुए जीव का उत्तरदायित्व उतना ही छोटा होता है । यदि वह न करने योग्य काम करे, न सोचने योग्य सोचे तो उसकी प्रतिक्रिया भी सीमित रहेगी । किन्तु यदि अधिक सशक्त जीव कुमार्ग पर चल पड़े तो उसकी हानि का क्षेत्र बहुत बढ़ जाता है । क्रुद्ध बकरा उतनी हानि नहीं करता जितनी उन्मत्त हाथी कर सकता है ।

सत्य पर चलते हुए, अपने उत्तरदायित्वों को निबाहते हुए, सज्जनता का, विवेकशीलता का जो सुसंयत कार्यक्रम अपनाया जाता है, वही श्रेयस्कर होता है । मनुष्य को जो स्थिति और सुविधा प्राप्त है उसका उपयोग यदि वह रचनात्मक विषय में करे तो उसकी प्रतिक्रिया निस्सन्देह बड़ी उपयोगी और आनन्दवर्धक होगी । जिस बुद्धि ने अन्य जीव-जन्तुओं की तुलना में इतना ऐश्वर्य इकट्ठा कर लिया, इतनी प्रगति कर ली, उसके लिये यह क्यों कठिन होना चाहिये कि शान्तिमय जीवन स्वयं जियें और दूसरों को जीने दें । इस बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग करके आज चारों ओर क्लेश और कलह का वातावरण बनाया जा रहा है । उन्मत्त हाथी जिस प्रकार दूर-दूर तक फसल को तोड़-मरोड़ डालता है, कितनों ही को कुचल कर रख देता है, आज वैसी स्थिति मनुष्य की हो रही है । पागल कुत्ता और पागल सियार जिस प्रकार कितने ही लोगों को अकारण काट लेते हैं, दूसरों को मारते और स्वयं मरते हैं उसी प्रकार की गतिविधियाँ अपनाकर मानव-प्राणी अपनी उच्च स्थिति के अनुरूप उपयोगिता सिद्ध करने की अपेक्षा पागलों जैसा आचरण कर रहा है । सुख-शान्ति के सारे साधन मौजूद रहते हुए भी दु:खदायक और शोक-सन्ताप की परिस्थितियाँ बनाये हुए है ।

विचारशीलता ही मनुष्य की एकमात्र निधि है । इसी आधार पर उसने उच्च स्थान प्राप्त किया है । इस शक्ति का यदि दुरुपयोग होने लगे तो जितना उत्थान हुआ है उतना ही पतन भी सम्भव है । जितने सुख-साधन जुटे हैं उतना ही क्लेश, कलह भी इकट्ठा हो सकता है । बुद्धि दुधारी तलवार है, वह सामने वाले को भी मार सकती है और अपने को काटने के लिये भी प्रयुक्त हो सकती है । उच्च स्थिति पर पहुँचा हुआ मनुष्य अपने उत्तरदायित्वों को न पहचाने, अपने कर्त्तव्य-कर्म के प्रति

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


आस्थावान् न रहे तो वह अपनी विशेष स्थिति के कारण संसार में भारी अहित करने और भारी अव्यवस्था उत्पन्न करने का कारण बन सकता है । आज यही तो हो रहा है ।

मनुष्य को अपने बड़प्पन का, गौरव का अनुभव करना चाहिये । स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान का ध्यान रखना चाहिये । क्या सोंचें और क्या करें इस सम्बन्ध में उसे बहुत ही दूरदर्शिता के आधार पर अपनी गतिविधियों का निर्धारण करना चाहिये । हल्के और ओछे दृष्टिकोण को अपनाकर यदि वह निकृष्ट कोटि का जीवन क्रम अपनाता है तो न केवल इस अलभ्य अवसर को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद उपलब्ध हुए नर तनु को व्यर्थ गँवा देगा वरन् अपना भविष्य भी अन्धकारमय बना लेगा । जो बुद्धिमत्ता समस्त सृष्टि को चमत्कृत कर रही है वह अपने निजी के जीवन का उचित कार्यक्रम निर्धारित करने में असफल रहे तो इसे एक दुर्भाग्य ही कहा जायेगा । विश्व के भाग्य का निर्माता मनुष्य यदि अपनी समस्या का हल करने के अवसर पर मूर्ख एवं अभागा सिद्ध हो तो इसे एक प्रवंचना ही कहा जायगा ।

प्रगति के इतने उच्च स्तर तक चढ़ आने के बाद यदि हम पतनोन्मुख गतिविधियाँ अपनाते हैं तो इसमें भारी चोट लगने का -चूर-चूर हो जाने का खतरा मौजूद है । जो जितने ऊँचे से गिरता है उसे उतनी ही गहरी चोट लगती है । चौरासी लाख योनियों की मंजिल पार करते-करते चौरासी लाख सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते जिसने सबसे ऊपर वाली मंजिल तक पहुँचने की सफलता प्राप्त कर ली है और लक्ष्य की पूर्ति के लिये जिसे केवल एक कदम बढ़ाना ही शेष रह गया है क्या उसके लिये यही उचित है कि आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे हटे ? ऊँचे उठने की अपेक्षा नीचे गिरने की बात सोचे ?

अनेकों की समस्याओं का हल ढूँढ़ने में सफलता प्राप्त करने वाला मनुष्य अपने जीवन की सफलता-असफलता की, सार्थकता की गुत्थी न सुलझा सके तो इसे एक विधि-विडम्बना ही कहा जायेगा । इस धरती पर जितने सुख-साधन मौजूद है उन सबका अधिकारी बन जाने के बाद भी यदि हम दुःखी, असन्तुष्ट और संत्रस्त रहें तो यही कहना पड़ेगा कि उपलब्ध बुद्धिमत्ता का सही प्रयोग नहीं हो रहा है । सीधा रास्ता छोड़कर कँटीली झाड़ियों में भटकने का उपक्रम किया जा रहा है ।

आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने बारे में भी सोचें, अपने लक्ष्य की भी चिन्ता करें । समस्त जीवों की तुलना में अधिक ऊँची स्थिति प्राप्त करके भी, अपार सुख-साधनों की उपलब्धियाँ प्रस्तुत रहने पर यदि हम दुःख, दारिद्रय से घिरे हैं, शोक-सन्ताप में डूबे हैं तो इसमें हमारी कोई भारी भूल ही कारण हो सकती है । उस भूल को जितनी जल्दी खोजना और हटाना सम्भव हो सके उतना ही हमारा कल्याण सम्भव होगा ।

## जीवन को सार्थक बनाया जाय

मनुष्य की अन्तरात्मा में ईश्वरीय तत्त्व का, सतोगुण का, जितना प्रकाश बढ़ता है, उतनी ही उसकी परमार्थ बुद्धि जाग्रत होती है । जो जितना स्वार्थी है, जिसकी भावनायें जितनी संकीर्ण हैं, दूसरों के दुःख दर्द में जिसे जितनी अरुचि है उसे उतना ही नीच, क्षुद्र या पतित कहना होगा । पशुता का, तमोगुण का चिह्न एक ही है-केवल अपनी ही बात सोचना। यह भावना जब इतनी प्रबल हो जाती है कि दूसरों को हानि पहुँचाकर भी, अनुचित और अधर्म करके भी अपना लाभ सिद्ध किया जाता है तो उसे असुरता कहते हैं । नर-पिशाचों की गतिविधियाँ ऐसी ही होती हैं, वे अपने छोटे लाभ के लिये दूसरों का बड़ा से बड़ा अनर्थ कर डालने में संकोच नहीं करते ।

मानवता का चिह्न यह है कि दूसरों की सुख-सुविधाओं का उनके उचित अधिकारों का ध्यान रखते हुए ही अपनी सुविधा एवं उन्नति की व्यवस्था करे । नीति और सदाचार पूर्वक उन्नति करने का मार्ग मनुष्यों का है । देवता उन्हें कहते हैं जो अपने स्वार्थों की हानि सहन करके भी दूसरों की सुख-सुविधा बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं । अपनी उन्नति रोककर भी दूसरों को उन्नतिशील बनाने में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


प्रसन्न होते हैं । दूसरों के सुख में अपना सुख और उनके दु:ख में अपना दु:ख समझकर जो परमार्थ में संलग्न रहते हैं, इसके लिये अपने स्वार्थ को भुला देते हैं । ऐसे त्यागी और परमार्थी व्यक्ति देवता कहे जाते हैं । जहाँ देवताओं का निवास होता है वहाँ स्वर्ग बन जाता है । स्वर्ग में किसी बात की कमी नहीं रहती, दु:ख, दारिद्रय भी वहाँ फटकने नहीं पाते ।

आध्यात्मिक उन्नति की परीक्षा इस कसौटी पर की जाती है कि मनुष्य का स्वार्थ कितना घटा और परमार्थ कितना बढ़ा है । भजन-पूजन यदि सच्चा हो तो उसका प्रतिफल इसी रूप में परिलक्षित होना चाहिये । तृष्णा और वासनायें निम्न स्तर की मनोभूमि में बढ़ी-चढ़ी रहती हैं । जैसे-जैसे आन्तरिक स्तर बढ़ता है वैसे-वैसे मनुष्य संयम और सेवा की बात सोचने लगता है तब संग्रह की नहीं, त्याग की वृत्ति बढ़ती है । दूसरों से अपना स्वार्थ कैसे सधे, यह सोचने की अपेक्षा उसकी इच्छा यह रहती है कि जो कुछ अपने पास है उसका लाभ दूसरे उठा सकें, ऐसा कुछ करते रहा जाय ।

कई व्यक्ति अपने लाभ के उद्देश्य से भजन करते हैं, कामनाओं से प्रेरित होकर उनके अनुष्ठान चलते हैं, स्वर्ग और मुक्ति की, ऋद्धि और सिद्धि की प्राप्ति के मनोरंजन को पूर्ण करना ही उनकी ईश्वर भक्ति का प्रयोजन रहता है । अध्यात्म क्षेत्र का यह निम्नतम है । इसी प्रकार बाह्य जीवन में जिन्हें अपनी सुख-सुविधायें बढ़ाने के लिये प्रयत्न में संलग्न देखते हैं, वे भी नीचे स्तर के ही लोग माने जायेंगे । जिस देश, समाज में लोगों का आन्तरिक स्तर नीचा रहता है वहाँ कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति दृष्टिगोचर नहीं हो सकती । आन्तरिक सन्तोष एवं उल्लास का आधार परमार्थ ही माना गया है । जिसकी अन्तरात्मा सेवा, पुण्य, परोपकार, और उदारता की भावनाओं से ओत-प्रोत रहती है वस्तुत: वही महान् है । कर्त्तव्य पथ पर बढ़ते रहने का जिसमें जितना साहस हैं उसे उतना बड़ा बलवान् और योद्धा माना जा सकता है । पुण्य और परमार्थ के मार्ग पर चलते हुए जो कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ती है उन्हें जिसने हँसते-हँसते बिना किसी शिकायत के उठा लिया वस्तुत: उसे ही महापुरुष कहा जायगा । जहाँ ऐसे नर-रत्नों का बाहुल्य होता है वह देश, जाति धन्य बन जाती है ।

मानव-प्राणी में उसकी विकसित चेतना ही विशेषता एवं महत्ता का कारण है । यदि यह चेतना भूखी, मुरझाई, अतृप्त एवं अविकसित ही पड़ी रहे तो मनुष्य जीवन की सार्थकता कहाँ हुई ? आत्मा ने सुख माना, अन्त:करण यदि विकसित न हुआ तो शरीर के मोटे हो जाने या इन्द्रियों की ही लालसा तृप्त होने से क्या प्रयोजन सधा ? घोड़ा जलेबी खाये मालिक भूखा मरे तो इस व्यवस्था की कौन प्रशंसा करेगा ? आत्मा की तृप्ति का कोई प्रयत्न न हो तो शरीर ही मौज-मजा करता रहे तो यह कहाँ की बुद्धिमत्ता कही जायगी ।

जिस प्रकार शरीर की सुविधा की दृष्टि से धन, मकान, वाहन, नौकर, वस्त्र आदि को सुखदायक उपकरण माना गया है, उसी प्रकार आत्मा की सम्पत्ति सद्गुण होते हैं । उन्हें ही दैवी सम्पत्ति कहते हैं । सद्गुणों की दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करके ही आत्मा अपने को सुखी एवं समुन्नत अनुभव करती है अन्त:करण को तृप्ति देने वाला वातावरण केवल सद्गुणों की अभिवृद्धि से ही सम्भव होता है । सद्भावनाओं से खाली हृदय सदा श्मशान की तरह सूना और भयंकर बना रहता है । उसमें सन्तोष, शान्ति, आनन्द एवं उल्लास का एक कण भी विकसित नहीं हो सकता । ये विशेषताएँ सद्गुणों के बीच ही अन्त:करण की उर्वर भूमि में उपजकर आत्म-सन्तोष की हरियाली का रूप धारण करती हैं । जहाँ बीज ही न होगा वहाँ पौधा कैसे उपजेगा ? आन्तरिक सद्भावनायें ही भीतरी शान्ति और बाहरी सुख रूपी ताना-बाना बुनती हैं और उसी के आधार पर कोई व्यक्ति सुविकसित एवं समुन्नत दिखाई पड़ता है ।

सत्कर्मों के द्वारा पुण्यफल स्वर्ग आदि प्राप्त होने का जो लाभ प्राप्त होता है उसका कारण यह है कि सत्कर्मों के द्वारा सद्भावनायें परिपुष्ट होती हैं । कोई व्यक्ति मन-ही मन उत्तम विचार तो रखे रहे पर उन्हें कार्य रूप में परिणित न करे, तो वे विचार ऊसर भूमि में पड़े हुए कमजोर बीज की तरह

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निरर्थक ही रहेंगे । उनका सत्परिणाम तभी मिलेगा जब वे कार्यान्वत हों । विचारों की परिपक्वता का चिन्ह उनके अनुरूप कर्मों का आरम्भ होना है । उच्च विचार यदि बलवान होंगे तो उनके अनुरूप उत्कृष्ट कार्य भी अवश्य ही होने लगेंगे । जो विचार तो अच्छे-अच्छे रखता है पर वैसे कार्य करने के अवसर नहीं आते देता, तो समझना चाहिये विचार केवल कल्पना जैसे ही धुंधले हैं, उनमें प्रौढ़ता और परिपक्वता नहीं आने पाई । जिन विचारों में गहरी आस्था होगी वे कार्य रूप में परिणित हुए बिना नहीं रह सकते ।

कर्म से ही विचार परिपक्व होते हैं । परिपक्व विचारों का ही समुचित प्रतिफल प्राप्त होता है । कर्मों को देखकर ही किसी व्यक्ति की भावनाओं को परखा जाता है और उन्हीं के अनुरूप भला या बुरा परिणाम मिलता है । मन ही मन किसी के प्रति बुरे या भले भाव रखे जाँय तो उसका थोड़ा प्रभाव अपनी मनोभूमि की शुद्धता, अशुद्धता पर तो पड़ता ही है, पर यश, अपयश, पुण्य, पाप,दण्ड, पुरस्कार उन्हीं को मिलता है जो प्रयत्क्ष रूप से कार्यान्वित होकर सामने आते हैं । सद्भावनाएँ मानव-जीवन की सबसे बड़ी शक्ति और श्रेष्ठता मानी गई हैं । पर वे सजीव तभी कहलाती हैं जब उनमें कार्यान्वित होने लायक प्रेरणा मौजूद हो । सत्कर्मों के करते रहने से सदभावनाओं की पुष्टि होती है ।

मानव-जीवन की सार्थकता इस बात पर निर्भर है कि उनमें कितनी उत्कृष्ट भावनायें भरी हुई हैं । भावनाओं की उत्कृष्टता सजीवता और प्रौढ़ता सत्कर्मों से परखी जाती है । इसलिये सत्कर्मों को लोक और परलोक की सुख-शान्ति का श्रेष्ठ साधन माना गया है । सत्कर्म करते रहने से ही सद्भावनायें बलवती एवं परिपुष्ट होती हैं । निरन्तर कार्यान्वित होते रहने पर ही वे संस्कार का रूप धारण करती हैं । संस्कारों के आधार पर ही स्वर्ग एवं पुनर्जन्म की सुखद स्थिति का निर्माण होता है और उन्हीं के आधार पर स्वभाव बनता है । जिन स्वभाव संस्कारों को लेकर प्राणी जन्मता है वे बहुधा वही होते हैं जो उसके पूर्व जन्म में विचार और कार्यों के समन्वय से परिपक्व किये गये थे ।

अगला जन्म हमें कहाँ, कैसी परिस्थितियों में मिले, इसकी तैयारी के लिये अपनी कार्य-पद्धति में सत्-असत् के लिये स्थान निर्धारित कर लेना चाहिये । जिन्हें नरक की-क्लेश, द्वेष, रोग, शोक की निकृष्ट परिस्थितियाँ अभीष्ट हों-उन्हें बुरे विचारों को, बुरे कामों को अपनाये रहना चाहिये । धीरे-धीरे कुसंस्कारों की परिपुष्टता होती जायेगी और अगला जन्म दुर्दशाग्रस्त परिस्थितियों में होगा । जिन्हें स्वर्गीय सुख-शान्ति से परिपूर्ण भविष्य की आकांक्षा हो उनके लिये केवल एक ही मार्ग शेष रहता है कि अपना हृदय उदार बनावें और उदारतापूर्वक श्रेष्ठ सत्कर्मों को दैनिक-जीवन में प्रमुख स्थान देते रहें । हमारी कार्य पद्धति ही भाग्य-रेखा बनती है, उसी के आधार पर भविष्य रचा जाता है, प्रारब्ध लिखा जाता है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है । वह अपनी प्रवृत्तियों और कृतियों के आधार पर ही अपने भविष्य को उज्ज्वल या अन्धकारपूर्ण बनाता है ।

सबसे बड़ा स्वार्थ-साधन परमार्थ ही है । परमार्थ अर्थात् परम स्वार्थ । छोटे और ओछे, संकीर्ण और घृणित स्वार्थ की ही निन्दा की गई है । पर जिससे अपना और सबका वास्तविक हित-साधन होता है, उस स्वार्थ को, परमार्थ को निन्दित नहीं प्रशंसनीय ही कहा जायगा । आजीविका कमाना एक आवश्यक कार्य है, मनोरंजन एवं शरीर सुख का भी ध्यान रखा जाना चाहिये पर इतने तक ही यदि सारी गतिविधियाँ सीमित हो जावें तो यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य-जीवन जैसे बहुमूल्य सौभाग्य को कौड़ी मोल बर्बाद किया जा रहा है । सद्भावनाओं और सत्कर्मों के समन्वय से जो आत्म-सन्तोष मिलता है, आन्तरिक उल्लास और आनन्द का जैसा रसास्वादन मिलता है उससे अधिकांश लोग अपरिचित ही रहते हैं । जिन बेचारों ने उस अमृत को चखा ही नहीं वे तुच्छ स्वार्थों को महत्त्व देते रहते हैं पर जिन्होंने उच्च स्तर में प्रवेश करके उत्कृष्ट भावनाओं और श्रेष्ठ सत्कर्मों से अपने जीवन क्रम को समाविष्ट किया उन्हीं का नर तन धारण करना सार्थक होता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


हममें से प्रत्येक को जीवन का सही मूल्यांकन करना चाहिये और अपने समय सम्पत्ति का एक भाग उन कार्यों के लिये सुरक्षित रखना चाहिये । कमाने-खाने की कठिनाई और सुविधाओं की चिन्ता तो नहीं करनी चाहिये, दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने की ओर ध्यान भी देना चाहिये, पर उन्हीं में इतना निमग्न रहना उचित नहीं कि आत्मा के हित-साधन की उपेक्षा ही होने लगे । पशुवृत्ति को लेकर जिन्दगी के दिन पूरे कर देने में कोई समझदारी नहीं । बुद्धिमान वे हैं, जो लोक-परलोक की, धर्म और कर्त्तव्य की, पुण्य और परमार्थ की ओर भी प्रयत्नपूर्वक अग्रसर होते रहते हैं । हमें अपने पद, सौभाग्य और उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुए वह भी सोचना और करना चाहिये जिस पर जीवन की सफलता और सुख-शान्ति निर्भर है ।

## जीवन महान कैसे बने ?

जो भी जीवित है, सजग है, सचेत तथा स्वस्थ मस्तिष्क वाला है, निरन्तर बढ़ने, महान् बनने की इच्छा रहती है । जो व्यक्ति जिस स्थिति में है उससे ऊपर उठने का प्रयत्न करना ही वास्तविक कर्मशीलता है । उन्नति की अभिलाषा ही अधिकांश में मनुष्य की क्रियाशीलता को उत्तेजित करती है । सामान्य से सामान्य व्यक्ति को ही क्यों न देख लिया जाय, चाहे यह रोटी-दाल तक ही क्यों न सीमित हो, तब भी वह आज की अपेक्षा कल अच्छी रोटी पाने की कामना रखता है । जिसमें अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ने की इच्छा नहीं है उसे एक प्रकार से मृत ही मानना चाहिये । अगति जड़ता का लक्षण है जीवन का नहीं । जो जीवित है, वह एक स्थान पर खड़ा ही नहीं रह सकता ।

जीवन में आगे बढ़ना, प्रगति करना कोई आकस्मिक घटना नहीं है और न यह कोई स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसके प्रवाह में कोई आगे बढ़ ही जायेगा । आगे बढ़ना, उन्नति करना एक सुनियोजित कर्त्तव्य है । मनुष्य अपने बल पर संघर्ष करता हुआ एक-एक कदम ही आगे बढ़ पाता है । इस भीड़ से भरी दुनियाँ में जहाँ लोग एक-दूसरे को धकेलकर अपना स्थान बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वहाँ किसी लक्षित स्थान पर पहुँच सकना कोई ऐसा काम नहीं है जो यों ही बैठ-बैठाये हो जायगा । इसके लिये मनुष्य को परिश्रम, पुरुषार्थ, तथा त्याग और तपस्या करनी पड़ती है । जो संघर्ष भीरू है, स्वार्थी है, सुखलोलुप और पलायनवादी है, वह कभी भी उन्नति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता । उन्नति और प्रगति कर्मवीरों का ही लक्ष्य है ।

संसार में उन्नतियाँ, प्रगतियाँ तथा सफलतायें असंख्यों प्रकार की हो सकती हैं । नित्य ही लोग उन्नति करते देखे जाते हैं । छोटी-सी दुकान बड़ी फर्म में बदल जाती हैं, मशीन-मिस्त्री, मिल मालिक बन जाता है । झोपड़ी में रहने वाला कोठी पा लेता है और निर्धन धनवान् बन जाता है । संसार में नित्य ही परिवर्तन होते रहते हैं । किन्तु इनको वास्तविक उन्नति नहीं कहा जा सकता । वास्तविक उन्नति वह है जिसमें अवनति अथवा ह्रास का कोई अवसर न हो । जिस प्रकार मनुष्य निर्धन से धनवान बनता है उसी प्रकार धनवान से निर्धन बन सकता है । कोठी बिक सकती है, मिल मिट सकती है और फर्म बन्द हो सकती है ।

इस प्रकार की उन्नतियाँ सांसारिक व्यवहार तथा गतिविधियों का फल हैं । पुरुषार्थ तथा परिश्रम का समन्वय होने पर भी ये उन्नति की उस कोटि में नहीं आतीं जिनके आधार पर कोई व्यक्ति महान् कहा जाता है । मनुष्य की महानता कोई सामयिक वस्तु नहीं है कि आज वह है, कल न रहेगी ! पतन तथा परिवर्तन से मुक्त उच्चता ही वास्तविक उन्नति है, महानता है ।

इस प्रकार की महानतायें केवल वे ही व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जिनके जीवन का प्रत्येक अखण्ड क्षण परहित के लिये ही होता है । जो मनुष्य मात्र की उन्नति के लिये अपने जीवन का दाँव लगा देते हैं, अपना सर्वस्व समष्टि को समर्पित कर देते हैं । वे ही उस उच्च शिखर पर पहुँचते हैं जहाँ से पतन की कोई आशंका नहीं रहती ।

उच्चता के उन्नत शिखर पर पहुँचने के लिये मनुष्य को अपने जीवन को एक सुघड़ साँचे में

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


ढालना होता है । जो अपने जीवन को सुघड़, सुन्दर और समृद्ध नहीं बना सकता वह कितना ही प्रतिभावान्, धनवान् और जनवान् क्यों न हो, महानता की कोटि में नहीं पहुँच सकता ।

महानता के उपयुक्त साँचे में ढलने के लिये मनुष्य को सबसे पहले अपने व्यक्तित्व का विकास करना होगा । जिसका व्यक्तित्व अविकसित है, अपूर्ण है, वह बहुत कुछ आगे बढ़ जाने पर भी पीछे हट सकता है । जब तक उसे निम्न अथवा समकक्ष व्यक्तियों से पाला पड़ता रहेगा, तब तक तो वह बढ़ता जा सकता है, किन्तु ऊँचा व्यक्तित्व सामने आते ही उसे ठिठक जाना पड़ेगा । अथवा जब वह सामान्य समूह से ऊपर उठकर स्तरीय समाज में पहुँचेगा तब उसके व्यक्तित्व के दब जाने की सम्भावना रहेगी ।

अस्तु, उन्नति के प्रथम सोपान-व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित कर लेना बहुत आवश्यक है । व्यक्तित्व के विकास की सबसे पहली शर्त है, स्पष्ट एवं असंदिग्ध होना । मनुष्य जो कुछ है वह साफ दिखाई देना चाहिये, जो साफ नहीं दिखाई देता वह समाज का विश्वासपात्र नहीं बन पाता । ईमानदार होते हुए भी लोग उसे गैर-ईमानदार तथा महान होने पर भी निम्न समझ सकते हैं ।

व्यक्तित्व की दूसरी शर्त है-एक समता । मनुष्य जो स्वरूप समाज के सामने रखता है उसका आचरण भी वैसा होना चाहिये । दूसरों को कितना ही सन्मार्ग दिखलाने वाला, कितना ही हित चाहने वाला, यदि अपने निजी आचरण में यथावत् नहीं है, तो लोग उसे छली, मतलबी अथवा स्वार्थी समझ कर दूर भागेंगे ।

व्यक्तित्व की तीसरी शर्त है-शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सुघड़ता, शिष्टता, सभ्यता आदि गुण । जो अशिक्षित है, रोगी है, मलीन अथवा अनपढ़ है, लोग सहज ही उसकी ओर आकर्षित नहीं होते । किसी भी फूहड़ अवस्था में फूहड़ भाषा अथवा फूहड़ शैली में कितनी ही महान् एवं हितकारी बात क्यों न कही जाय कोई उसे सुनना पसन्द न करेगा और यदि उसकी बात सुनी भी जायगी तो उपहास की दृष्टि से, जिसका न कोई प्रभाव होगा और न फल ।

उन्नति का दूसरा सोपान-शक्ति है । जिसका शरीर, मन और आत्मा शक्तिशाली है वह ही उन्नति पथ पर आये अवरोधों से टकरा सकता है समाज विरोधी तत्त्वों से मोर्चा ले सकेगा । जो निर्बल है, साहसहीन है, वह एक छोटे से विरोध को भी सहन न कर सकेगा और शीघ्र ही मैदान छोड़कर भाग जायेगा । जो संयमी है, ज्ञानवान् है, निःस्पृह और निःस्वार्थ है, मन, प्राण, शरीर और आत्मा उसके ही हो समर्थ सकते हैं । इसके विपरीत जो असंयमी है, अज्ञानी है, लिप्सु और लोलुप है, उसका निर्बल होना निश्चित है, अटल है ।

उन्नति का तीसरा सोपान है- अनुशासन । जो व्यक्ति अनुशासनहीन है, अस्त-व्यस्त है, बिखरे मन, चंचल बुद्धि और कम्पित आत्मा वाला है, उसके विचारों तथा कर्मों में वांछत तेज नहीं आ पाता, जिसके अभाव में वह जनमानस में प्रवेश कर सकने में असफल रहता है । मन जीते बिना जन-समुदाय को अनुशासित रखकर उपयुक्त दिशा में नहीं चलाया जा सकता । अनुशासनहीन व्यक्ति कितना ही शक्तिशाली, प्रतिभाशाली, प्रभाववान और प्रतापवान क्यों न हो किसी को अपने वश में नहीं रख सकतीं । उन्नति के इच्छुक व्यक्ति के लिये आत्मानुशासन उतना ही आवश्यक है जितना समुद्र के लिए मर्यादा ।

उन्नति का चौथा सोपान है- परिश्रम तथा पुरुषार्थ । इन दोनों गुणों से रहित व्यक्ति आलसी, प्रमादी तथा दीर्घसूत्री होता है । उन्नति के पथ में पहाड़ जैसे अवरोध हैं । उन्नति-पथ के पथिकों के लिये क्या दिन, क्या रात, क्या गर्मी क्या धूप समान होती हैं । उनके पास हर समय काम रहता है और हर समय उस काम का समय है । जो आलसी है, प्रमादी और दीर्घसूत्री है, वह आज के काम को कल पर टालेगा, दूसरों पर निर्भर रहेगा । ऐसी दशा में उन्नति के शिखर पर चढ़ने का उसका स्वप्न ही रहेगा ।

उन्नति का पंचम सोपान है-निष्काम कर्मभाव । निष्काम कर्मभाव के बिना कोई भी व्यक्ति ईमानदारी से काम नहीं कर सकता । कभी उसे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सफलता-असफलता आन्दोलत करेगी, कभी निन्दा रुष्ट और प्रशंसा प्रसन्न करेगी, महान पथ पर जिन राग-द्वेष से रहित होना आवश्यक है, बिना निष्काम-कर्मभाव के उसकी उपलब्धि सम्भव नहीं और यह निष्काम कर्मभाव तभी प्राप्त हो सकता है, जब मनुष्य अपने प्रत्येक कर्त्तव्य को परम प्रभु का आदेश समझकर उसकी शक्ति से ही, उसके लिये ही करता हुआ अनुभव करे । जो अपने प्रत्येक कर्म को परमात्मा का ही काम समझकर करेगा वह उसे पूर्ण दक्षता, पूर्ण मनोयोग तथा पूर्ण श्रद्धा से करेगा जिसके फलस्वरूप उसे उस सर्वशक्तिमान् से सामर्थ्य एवं शक्ति प्राप्त होती रहेगी । जिसने अपनी सीमित शक्ति को ईश्वर की परम शक्ति में तिरोधान कर दिया है वह उन्नति के किस शिखर पर पहुँच सकता है यह बतलाना कठिन है ।

इस प्रकार जो व्यक्ति उन्नति के इन पाँच सोपानों पर पाँव रखता हुआ आगे बढ़ता है, वह निश्चय ही उस महानता को प्राप्त कर लेता है जिसका न ह्रास होता है और न पतन । ऐसी ही महानता के पद पर प्रतिष्ठित महापुरुषों को इतिहास लिखता है और संसार याद करता है ।

## उत्कृष्ट जीवन की आवश्यकता

जीवन का सदुपयोग कर सकना मानवीय बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शिता का सबसे बड़ा प्रमाण है । जिसने इस सुर-दुर्लभ मानव-जीवन का ठीक उपयोग कर लिया, उसका समुचित लाभ उठा लिया, वह आन्तरिक दृष्टि से निरन्तर सन्तुष्ट और प्रसन्न रहता है । बाह्य-जीवन में उसे दूसरों का सम्मान, सहयोग एवं स्नेह मिलता है तथा सद्गुणों के फलस्वरूप सुख-साधनों की भी कमी नहीं रहती है । मुनष्य-जन्म ऐसा अलभ्य अवसर है जो कठिनाई से ही मिलता है । उसे अस्त-व्यस्त रीति से गँवा देने को नादानी ही कहा जायगा ।

बुद्धिमत्ता और पूर्णता की कसौटी दुनियाँ की दृष्टि में धन और पद को माना जाता है । जिसने जितना कमा लिया, जिसको जितना बड़प्पन मिला वह उतना ही चतुर कहलाता है । पर विचार करने से यह मापदण्ड सर्वथा अनुपयुक्त एवं भ्रमपूर्ण सिद्ध होता है । अनीति से कोई दुष्ट व्यक्ति भी धनवान् हो सकता है और धूर्तता से बड़प्पन पाया जा सकता है । अमीर बाप का अयोग्य बेटा भी प्रचुर सम्पत्ति का अधिकारी हो सकता है । लाटरी आ जाने पर कोई हीन स्तर का व्यक्ति भी समृद्ध कहला सकता है, अथवा कोई सज्जन, सद्गुणी व्यक्ति परिस्थितिवश गिरी दशा में पड़ा रह सकता है । इससे बुद्धिमत्ता की परख कहाँ हुई ? संयोगवश मिली हुई सफलता-असफलताओं से किसी व्यक्ति का बौद्धिक स्तर नापा जाना किसी प्रकार भी उचित नहीं ।

बुद्धिमत्ता की सबसे बड़ी बात यह है कि मनुष्य अपने जीवन का उद्देश्य और लक्ष्य समझे और उसे प्राप्त करने के लिये गम्भीरतापूर्वक सोचे एवं साहस के साथ कदम उठावे । इस दिशा में समुचित विचारणा, भावना, प्रेरणा एवं गति प्राप्त हो सके इसलिये अध्यात्म ज्ञान को सुनना, समझना आवश्यक होता है । आत्म-शास्त्र की रचना इसी उद्देश्य से हुई है । अपनी मानसिक और शारीरिक गतिविधियों की समुचित समीक्षा कर सकने, अपने गुण-दोषों को पूरी तरह जान सकने, दोषों को हटाने और गुणों को बढ़ाने में तत्पर हो सकने की प्रवृत्ति आध्यात्मिक विचारधारा से ही प्राप्त होती है । इसीलिये सद्ज्ञान एवं तत्त्व ज्ञान को जान लेने से जीवन सार्थक एवं सरल बन जाता है । ऋषियों ने सद्ज्ञान को ही जीवनमुक्ति माना है ।

आवश्यकता इस बात की है कि हम मानव-जीवन की महत्ता को समझें और उसकी विशेषताओं का सदुपयोग करते हुए भौतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करें । बुद्धिमत्ता का यही सच्चा प्रमाण है । भगवान् ने हमें बुद्धि दी है तो उसका उपयोग उस प्रकार ही करना चाहिये जिससे हम वस्तुतः समझदार और सच्चे बुद्धिमान् ही कहला सकें ।

परमात्मा ने हमारे भीतर वे सभी योग्यतायें, विशेषतायें और क्षमतायें भर रखी हैं जिनका सदुपयोग करने में अन्तर्जगत् में शान्ति एवं बाह्य जगत में सुख की सम्भावना प्रत्यक्ष प्रकट होने लगती है । सुख-साधन प्राप्त करने के लिये बाह्य

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जगत में हम जितना श्रम करते हैं उसका एक चौथाई भी यदि हम अन्तर्जगत् की स्थिति को समझने और सुधारने में लगा दें तो उतना बड़ा कार्य हो सकता है जिसके फलस्वरूप समृद्धि और प्रसन्नता की अगणित सम्भावनायें हाथ बाँधकर आगे आ खड़ी होंगी ।

आत्म-निर्माण के आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव का विकास करते हुए जो प्रगति की जाती है वही स्थिर रहती है और वही निरन्तर अग्रसर होती चली जाती है । चतुरता और परिस्थितियों की अनुकूलता से जो लाभ उठा लिया जाता है वह देर तक ठहरता नहीं । जो परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर समृद्धि लाई थीं वे प्रतिकूल होने पर विपत्ति भी प्रस्तुत कर सकती हैं । पर यदि आधार मजबूत है, मनुष्य अपना व्यक्तित्व सुदृढ़ बना चुका है तो फिर कठिन परिस्थितियाँ भी उसे देर तक विपन्न स्थिति में नहीं रख सकतीं । अपने सद्गुणों द्वारा वह अपने खोये वैभव एवं सम्मान को पुनः प्राप्त कर लेगा । प्रतिकूल परिस्थितियाँ उन्हें ही दबोच सकती हैं जिनका व्यक्तित्व खोखला है । जिसने अपनी जड़ें गहराई तक जमीन में धँसा रखी हैं, वह बरगद का पेड़ बड़े-बड़े आँधी-तूफान को आसानी से सहन कर लेता है । सुसंस्कृत स्वभाव और परिष्कृत व्यक्तित्व के मनुष्य ही संसार की हर प्रतिकूलता से टकराकर अनुकूलता उपलब्ध कर सकने में समर्थ और सफल होते है ।

सुख-समृद्धि की स्थिति प्राप्त करने के लिये हमें काफी तैयारी करनी पड़ती है । स्वास्थ्य, शिक्षा, मित्रता, धन आदि का संग्रह इसलिये किया जाता है कि इनके द्वारा उन्नतिशील सुख-साधनों को उपलब्ध किया जा सके । पर हम यह भूल जाते हैं कि उससे भी महत्त्वपूर्ण माध्यम है-व्यक्तित्व का निर्माण । छिछोरा, बचकाना, अशिष्ट उतावला एवं अस्त-व्यस्त व्यक्तित्व वाला मनुष्य बाह्य साधनों में चाहे कितना ही सम्पन्न क्यों न हो किसी की दृष्टि में श्रद्धा एवं सम्मान का पात्र न बन सकेगा । सामने न सही पीठ पीछे उसे केवल उपहास एवं भर्त्सना का भाजन ही बनना पड़ेगा । किन्तु सुसंस्कृत, शालीन सभ्य एवं परिष्कृत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति भले ही आर्थिक या अन्य प्रकार की कठिनाइयों में पड़े हों अपना सम्मान अक्षुण्ण रख रहे होंगे । बादलों में छिपे सूर्य का भी प्रकाश तो फैलाता ही है, सज्जनता सम्पन्न मनुष्य भी अपने महत्त्व को किसी भी परिस्थिति में गिरने नहीं दे सकता ।

जीवन का सदुपयोग करने का पहला का कदम यह है कि हम अपने व्यक्तित्व को सुधारने, बनाने एवं विकसित करने पर समुचित ध्यान दें । उस साहित्य को पढ़ें जो उस सम्बन्ध में मार्ग-दर्शन कर सके, उन प्रवचनों को सुनें जो जीवन-विकास के लिये व्यावहारिक मार्ग-दर्शन दे सकें, उन लोगों की संगति करें जिनने अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सज्जनोचित परिष्कार कर लिया हो । आत्म-ज्ञान की प्राप्ति इन उचित माध्यमों से करनी चाहिये । सच्चा अध्यात्म ज्ञान यही है । वह भले ही वेद शास्त्र से, सन्त-महात्माओं से प्राप्त होता हो अथवा किसी मामूली पुस्तिका या सामान्य गृहस्थ से । हमें तथ्य को पकड़ना चहिये । बाह्य परिधान से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं । सोने की डली चाहे मखमल की डिब्बी में रखकर दी जाय चाहे ढाक के पत्ते में लिपटी हुई हो, उसके मूल्य में कोई अन्तर नहीं आता । सद्ज्ञान वही कहला सकेगा जो हमें व्यक्तित्व सम्पन्न बना सके ।

जान लेने के बाद, करना सुगम होता है । अपने दोषों को ढूँढ़ने, समझने और उन्हें सुधारने की विधि हमें सीखनी चाहिये । अपने गुणों को पहचानने और उन्हें निरन्तर बढ़ाने की पद्धति का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये । इसी मार्ग पर चलते हुए उनका सदुपयोग कर सकने की प्रक्रिया हाथ लगेगी । इसी आत्म-निर्माण को सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण कार्य समझकर उसे करने के लिये कटिबद्ध होने का साहस मिल गया तो समझना चाहिये कि नर-तनु को सार्थकता के लक्ष्य तक पहुँचा देने वाली आधी मंजिल पार हो गई ।

निर्माण का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । उत्पादक और निर्माता ही यश, धन और श्रेय प्राप्त कर सकते हैं । सबसे बड़ा उत्पादन-अपने गुण कर्म, स्वभाव के क्षेत्र में उत्कृष्टता को उत्पन्न करना और निर्माणों में सबसे बड़ा आत्म-निर्माण ही माना गया

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । इस ओर जिसका ध्यान है, जिसका प्रयत्न इस दिशा में लगा हुआ है वस्तुतः वही सबसे बड़ा बुद्धिमान है । जीवन का सदुपयोग कर सकने का श्रेय उसे ही मिलेगा और उस सफलता के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली विभूतियों का अधिकारी भी वही बनेगा ।

## जीवन और उसका सहयोग

मनुष्य की सफलता का बहुत कुछ आधार जीवन का लक्ष्य निर्धारण है । जीवन के लक्ष्य, आदर्श, जीवनध्वनि से प्रेरणा पाकर ही समस्त क्रिया-कलापों को गति मिलती है । किसी इमारत को बनाने से पूर्व बड़े-बड़े इन्जीनियर, वास्तु कला-विशारद बहुत कुछ सोच-विचारकर उसका नक्शा बनाते हैं और उसी नक्शे के अनुसार क्रियाशक्ति सृजन प्रारम्भ करती है । राह पर चलने से पूर्व पथिक अपने गन्तव्य स्थान का नक्शा बना लेता है और उसी के अनुरूप चलता है । लक्ष्य निर्धारण में दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता, विचार और विवेकशीलता, सही-सही सूझ-बूझ का होना और ठीक-ठीक निष्कर्ष पर पहुँच जाना सफलता की आधी मन्जिल तय कर लेना है ।

अंग्रेजी में कहावत है- ''मकान देने से पहले किसी किरायेदार के प्रति यह जानना आवश्यक नहीं कि उसकी जेब में पैसे हैं या नहीं, वरन् इस सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि उसका जीवन दर्शन, लक्ष्य आदर्श क्या है ?'' वस्तुतः किराया देना न देना मनुष्य के दृष्टिकोण और आदर्श से अधिक सम्बन्ध रखता है । जिनके जीवन का ध्येय ही लूट-खसोट, दूसरों की हानि करना, अपने लाभ में उचित-अनुचित को न देखना है, वे जेब में पैसे होते हुए भी किराया न देंगे । इसके विपरीत सच्चाई, भलमनसाहत, नैतिक आदर्शों के प्रति आस्थावान् व्यक्ति आर्थिक तंगी में रहता हुआ भी किराया चुकाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेगा ।

जीवन में किये जाने वाले कार्यों और विभिन्न गतिविधियों का मूल प्रेरक, मनुष्य का जीवन के प्रति दृष्टिकोण, जीवनलक्ष्य ही होता है । चोरी, जुआ, रिश्वत, ठगी, भ्रष्टाचार वही व्यक्ति करते हैं जिनका उद्देश्य हराम की कमाई, बिना परिश्रम का पैसा खाना ही बन गया है । उचित-अनुचित जिस किसी भी ढंग से जिन्होंने अपने को समृद्ध, सम्पन्न धनवान् बनाने के लिए स्वप्न सँजोकर रखे हैं वे ही लोग धोखाधड़ी, मिलावट, ब्लैकमार्केट, शोषण आदि करते हैं । खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ के जीवन-दर्शन से प्रेरित होकर ही आज का मनुष्य भौतिकवाद में दिन-दिन अधिकाधिक डूबा जा रहा है ।

ठीक इसी तरह सत्य, प्रेम, न्याय को जीवन का आदर्श चुनने वाले मनुष्य लाख कठिनाइयाँ भोगकर भी इन्हें नहीं छोड़ते । ईश्वर प्राप्ति के लिए मनुष्य संसार के समस्त आकर्षणों को भी मिट्टी के ढेर की तरह त्याग कर देता है । मानवता की सेवा में जीवन का लक्ष्य बनाकर चलने वाले महापुरुष सुख-सुविधाओं का भी ध्यान नहीं रखते । मातृभूमि के सपूत जन्मभूमि की रक्षा के लिये प्राणों की बलि चढ़ाने में संकोच नहीं करते । अपने किसी भी लक्ष्य विशेष के लिए मनुष्य सब कुछ करने को तैयार हो जाता है अथवा यों कहिये कि लक्ष्य की प्रेरणा उससे सब कुछ करा लेती है । जीवन-लक्ष्य की उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता पर ही व्यक्तित्व का अच्छा या बुरा होना निर्भर है और इसी पर जीवन की महत्ता-क्षुद्रता, सफलता, सन्तोष, असन्तोष आदि निर्भर करते हैं । जीवन लक्ष्य के दर्पण में ही मानव-जीवन का प्रतिबिम्ब, स्वरूप निखर कर आता है ।

मनुष्य का लक्ष्य, आदर्श दृष्टिकोण ठीक उसी तरह जीवन गतिविधियों का संचालन करता है जैसे किसी राष्ट्र का नायक । सेना का सेनापति अथवा प्रधान ठीक हुआ तो शासन-सूत्र विधिवत्, व्यवस्थित और ठीक-ठीक चलेगा । राष्ट्र विकास और प्रगति की ओर अग्रसर होगा । सुयोग्य सेनापति के नेतृत्व में, निर्देशन में कोई भी सेना अच्छी जम सकेगी । ठीक इसी तरह जीवन लक्ष्य की उत्कृष्टता, उच्च आदर्शों की प्रेरणा पर ही मनुष्य के उज्ज्वल महान् उत्कृष्ट प्रगतिशील जीवन का महल खड़ा होता है । इसी से शक्तियों का नियमन होता है और वे एक दिशा में लगकर क्रान्तिकारी परिणाम

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पैदा करती हैं । सामान्य शक्ति वाले व्यक्ति भी उत्कृष्ट लक्ष्य की प्रेरणा से महान् कार्यों का सृजन करते हैं ।

जीवन का कोई लक्ष्य न हो, कोई आदर्श-उद्देश्य न हो तो मनुष्य की स्थिति ठीक इस तरह होती है, जैसे बिना ड्राइवर के चलने वाली मोटर । इससे शक्तियों का दुरुपयोग होना और कहीं भी नष्ट-भ्रष्ट होकर अवनति के गर्त में पड़ जाना निश्चित है । लक्ष्य विहीन उल्टे-सीधे पथ पर चलने वाला राही जीवन में असन्तुष्ट, क्षुब्ध, अशान्त, दु:खी परेशान रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । बिना पूर्व नक्शे-नमूने के भवन का उल्टा-सीधा निर्माण प्रारम्भ कर देने पर उसका कमजोर, फूहड़, भद्दा होना स्वाभाविक ही है, और बनावट की कमजोरियों से किसी भी समय धराशायी हो जाना सम्भव है ।

जीवन लक्ष्य के सुदृढ़, उत्कृष्ट, उचित होने के अभाव में मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विघटन, क्षय, उनका स्वेच्छाचार होना निश्चित है । निरुद्देश जीवन बिताने वाले व्यक्ति को जिन्दगी भार की तरह लगती है । किसी न किसी काल्पनिक या प्रगट रोग से भयभीत मनुष्य जैसे-तैसे जिन्दगी के दिन पूरे करता है, मानो उसे कोई अभिशाप मिला हो । लक्ष्यविहीन व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का गठन छिन्न-भिन्न हो जाता है । वे स्वेच्छाचारी हो जाती है । आलस्य, अकर्मण्यता, प्रमाद, भोग-विलास, वासना आदि प्रबल होकर मनुष्य को धर दबाते हैं । लक्ष्य और मानसिक दृढ़ता के अभाव में मनुष्य की प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है और दुष्प्रवृत्तियाँ, दुर्भावनायें, दुर्विचार मनुष्य पर हावी होकर उसे इसी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, जैसे अरक्षित दुर्ग को दुश्मन की सेना ।

लक्ष्यविहीन व्यक्ति का अनियन्त्रित मन भी चाहे जिधर ही दौड़ता है । किसी भी काम में जमता नहीं । फलस्वरूप मनुष्य को आन्तरिक और उसके साथ ही बाह्य जीवन में भी असफलताओं के सिवा कुछ नहीं मिलता । मनुष्य अपने आप को कोसने लगता है । अनेकों चिन्ता, परेशानी, क्लेश, मनोविकारों की बाढ़ में सराबोर होकर बेमौत मरता है ।

सही-सही उत्कृष्ट जीवन लक्ष्य लेकर जीवन-पथ पर अग्रसर होने वाला व्यक्ति सामान्य परिस्थितियों में रहकर भी एक दिन असामान्य बन जाता है । सुदृढ़, निश्चित, उत्कृष्ट जीवन लक्ष्य होने से जैसे जहाज की मजबूत डोरी से बँधा हुआ मनुष्य भवसागर की भीषण लहरों, भयंकर थपेड़ों में भी आगे निकलता हुआ एक न एक दिन जीवन की मंजिल का सुरम्य तट प्राप्त कर ही लेगा, जहाँ सफलता की खुशी, विश्रान्ति, लक्ष्य-प्राप्ति का अपूर्व आनन्द, महानतायें उसका स्वागत उज्ज्वल सत्कार करने को तैयार मिलेंगे ।

उच्च आदर्श, महान लक्ष्य, उच्च व्यक्तित्व, कार्यक्रम, उच्च व्यवहार को लक्ष्य बनाकर ही मनुष्य उत्कृष्ट आन्तरिक स्थिति प्राप्त करता है और उसकी यह स्थिति ही सांसारिक जीवन में विकास का मार्ग प्रशस्त करती है । जिसने अपने भीतर स्तर का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर ली उसके लिये बाह्य जीवन की सफलता भी सुनिश्चित है । आन्तरिक स्थिति का निर्माण ही लक्ष्य निर्धारिण का मूल स्वरूप है । उसके लिये दृढ़आस्था, अटल विश्वास अनन्य निष्ठा का किला तैयार कर लेना ही बाह्य जीवन की सफलता का साधन बनता है । जीवन संग्राम में अन्त तक वे ही व्यक्ति मोर्चे पर डटे रहते हैं जिनका उद्देश्य आदर्श, लक्ष्य, दृढ़, पक्का, अचल और एक होता है । धूर्तता या प्रतिभा के बल पर कोई व्यक्ति थोड़े दिनों छोटे से क्षेत्र में चमक सकता है, पर विश्व इतिहास के अनन्तर आकाश में सूर्य-चन्द्र की तरह केवल वे ही महापुरुष चमकते रह सकते हैं जिन्होंने अपना अन्त:करण ऊँचा बनाया है । जिनका लक्ष्य जिनकी अन्त:स्थिति जितनी ऊँची है वस्तुत: वह उतना ही ऊँचा माना जायगा ।

## जीवन का कुछ उद्देश्य भी तो हो

मनुष्य को विचारशक्ति इसलिये मिली है कि उचित-अनुचित को ध्यान में रखकर वह सृष्टि संचालन की नियमित व्यवस्था बनाये रखने में प्रकृति को सहयोग देता रहे । जो केवल खाने-पीने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


और मौज उड़ाने की ही बात सोचते हैं, इसी को जीवन का श्रेय मानते हैं, उनमें और मनुष्येतर पशुओं पक्षियों और कीट-पतंगों में अन्तर कहाँ रहा ? यह क्रियायें तो पशु भी कर लेते हैं ।

विशृंखलित ऊबड़-खाबड़, धरती को क्रमबद्ध व सुसज्जित रूप देने का श्रेय मनुष्य को है । घर, गाँव, शहर, देश आदि की रचना, सुविधा और व्यवस्था की दृष्टि से कितनी अनुकूल है ? अपनी इच्छायें, भावनायें दूसरों पर प्रकट करने के लिये भाषा-साहित्य और लिपि की महत्ता किससे छिपी है ? आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और सांसारिक आह्लाद प्राप्त करने के लिये कला-कौशल, लेखन, प्रकाशन की कितनी सुविधायें आज उपलब्ध हैं । यह सब मनुष्य की विचारशक्ति का परिणाम है । मनुष्य को ज्ञान न मिला होता तो वह भी रीछ, बन्दर की तरह जंगलों में घूम रहा होता । सृष्टि को सुन्दर रूप मिला है तो वह मनुष्य की विचार-शक्ति का ही प्रतिफल है । विचारों का उपयोग निस्सन्देह अतुल्य है ।

विचारों की विशिष्ट शक्ति का स्वामी होते हुए भी मनुष्य का जीवन निरुद्देश्य दिखाई दे तो इसे दुर्भाग्य ही कहा जायगा । जिसके कार्यों में कोई सूझ न हो, विशिष्ट आधार न हो उस जीवन को पशु-जीवन कहें तो इसमें अतिशयोक्ति क्या है ? हवाई जहाज निराधार आकाश में उड़ता है, अभीष्ट स्थान तक पहुँचने का उसे निर्देश न मिलता रहे तो वह कहीं से कहीं भटक जायेगा । कुतुबनुमा की सुई वायुयान चालक को बताती रहती है कि उसे किस दिशा में चलना है । इस निर्देश के आधार पर ही वह सैकड़ों मील का रास्ता पार कर लेता है । प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ किसी न किसी उद्देश्य से निर्मित है । सूर्य प्रतिदिन आसमान में आता है और लोगों को प्रकाश, गर्मी और जीवन देने का अपना लक्ष्य पूरा करता रहता है । वृक्ष, वनस्पति, वायु, जल, समुद्र नदियाँ सभी किसी न किसी लक्ष्य को लेकर चल रहे हैं । इस संसार में यह व्यवस्था तभी तक है जब तक प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक पदार्थ अपनी अवस्था के अनुसार अपने कर्त्तव्य-कर्म पर स्थिर है ।

मानव-जीवन की महत्ता इस पर है कि हम वर्तमान साधनों का उपयोग अन्तर्दर्शन या आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिये करें । उद्देश्य का मार्ग बहुधा किसी विशिष्ट दिशा की ओर ही होता है । प्रकृति जिस ओर ले जाना चाहे उधर ही चलते रहें तो इन प्राप्त शक्तियों की सार्थकता कहाँ रही ? जैसा जीवन दूसरे प्राणी जीते हैं वैसा ही हम भी जियें तो विचारशीलता का महत्त्व क्या रहा ? बुद्धि की सूक्ष्मता, आध्यात्मिक अनुभूतियाँ, विराट् की कल्पना आदि ठीक वायुयान का मार्ग-दर्शन करने वाले कुतुबनुमा की सुई के समान हैं, जिलसे मनुष्य चाहे तो अपना उद्देश्य पूरा करने का निर्देशन प्राप्त कर सकता है । उद्देश्य कभी श्रमहीन और मात्र सांसारिक नहीं हो सकते । जिन साधनों से ऐहलौकिक रसानुभूति मिलती है, वे केवल मानव-जीवन की सरसता और श्रेष्ठता को कायम रखने के अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं होते । इन्हीं के पीछे पड़े रहें तो अपना वास्वविक लक्ष्य । जीवन लक्ष्य पूरा न हो सकेगा ।

यदि यह विचार बना लिया कि हमारा उद्देश्य जीवन-मुक्ति है तो अभी से इसकी पूर्ति में लग जाइये । एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लेने के बाद अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओं को उसमें जुटा दीजिये । अपने धैर्य से विचलित न हों, जो राह पकड़ी है उस पर दृढ़तापूर्वक चलते रहें । तब देखें कि आप कितनी शीघ्रता से अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त करते हैं ।

**"न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ।"** अर्थात्- महापुरुषों का यह प्रधान सद्गुण है कि वे अपने जीवनोद्देश्य से कभी डिगते नहीं । महापुरुषों के जीवन में उद्देश्य की एकता और तल्लीनता, लगन और तत्परता इस ऊँचे दर्जे तक पाई जाती है कि वह पाठक के अन्तःस्तल को झकझोरे बिना मानती नहीं । आपकी महानता की कसौटी भी इससे है कि आप अपने लक्ष्य के प्रति कितने आस्थावान् हैं ? उसकी पूर्ति के लिये आप कितना त्याग और बलिदान करते हैं ?

उद्देश्य बना लेना ही पर्याप्त नहीं हो सकता । यह भी परखना पड़ेगा कि आपका ध्येय कितना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


मूल्यवान् है । उद्देश्य उच्च न हुआ तो परिस्थिति बदलते ही उस विचारणा का बदल जाना भी सम्भव है । असाधारण लक्ष्यों में ही वह शक्ति होती है जो मनुष्य को नियमित प्रेरणा देती रहे और उसे उत्साह से ओत-प्रोत रखती रहे । मन्जिल तक पहुँचने में जो बाधायें आती हैं उनसे संघर्ष करने और धैर्यपूर्वक अन्त तक डटे रहने की क्षमता लक्ष्य की उत्कृष्टता से सम्भव होती है ।

आत्म-कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति के लिये उच्च गुणों की आवश्यकता पड़ती है । बहुतेरे कष्ट उठाने होते हैं । अपने को संकट में डालना पड़ता है । यह बात सच है कि कष्ट सहन करते-करते असाधारण सहिष्णुता उत्पन्न हो जाती है, किन्तु आरम्भ में मानवोचित साहस का परिचय तो देना ही पड़ता है । लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम और क्रोध के प्रबल मनोविकार भी अपना हथियार चलाने से बाज नहीं आते । इन सब आघातों को धैर्यपूर्वक, ध्येय सिद्धि तक सहन करना पड़ता है, जो इस निश्चय में दृढ़ हो जाता है । **'देह वा पातयेत् कार्य वा साधयेत्'** अर्थात् सिद्धि या मृत्यु ही जिनका सिद्धान्त बन जाता है, वे ही अन्त तक लक्ष्य प्राप्ति के दुर्गम पथ पर टिके रहते हैं । ऐसे लोगों को ही सफलता के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है ।

इसमें सन्देह नहीं है कि जीवन-लक्ष्य प्राप्ति कठिन प्रक्रिया है, किन्तु इस प्रकार के उद्देश्य संरक्षण से ही मनुष्य का नैतिक विकास होता है । जो अपने शरीर और मन को कष्टपूर्ण कसौटी में भली-भाँति कस लेते हैं, उन्हीं का चरित्र उज्ज्वल बनता है । नैतिक विकास और चरित्र-संगठन ही अध्यात्म का विशुद्ध उद्देश्य है । विकारों को दूर करना और सद्गुणों का अभिवर्द्धन ही धर्म है । इसलिये आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक विकास के साधनों को सर्वप्रथम अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित करना चाहिये । उद्देश्य की आँच पर तपाई हुई आत्मायें ही संसार का कुछ कल्याण कर सकती हैं । **उद्देश्य हीना पशुभिः समाना**''-अर्थात् जिनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं उनमें और पशुओं में कोई अन्तर नहीं होता ।

# जीवन एक अमूल्य सम्पदा

वस्तु का मूल्य समझ में न आने पर वह व्यर्थ की कूड़ा-करकट जैसा मालूम पड़ती हैं । फिर न उसे सँभालकर रखा जाता है और न उस उपयोग की बात सोची जाती है जो उसका सही उपयोग करके लाभ उठाया जा सकता है । इसे कहते हैं सौभाग्य के साथ जुड़ा हुआ दुर्भाग्य ।

बात पुराने जमाने की है । एक करोड़पति सेठ थे । किसी महामारी की चपेट में आकर वे मरने लगे तो छोटे इकलौते बेटे के बारे में विचार करने लगे कि यह घर की सम्पदा तो सँभाल नहीं सकेगा । सम्बन्धी और नौकर ही हड़प कर जायेंगे । इसलिए उनने एक बहुमूल्य मोतियों की माला उसके गले में पहना दी और हिदायत कर दी कि वह कभी उसको उतारे नहीं । अभिभावकों के मरते ही लूट मची और सगे-सम्बन्धी ही कुछ दिन के भीतर उसे निर्धन बना गये जिसके हाथ जो पड़ा उसे वे लूट ले गये । बच्चा अबोध था वह जैसे-तैसे घर-घर भीख माँग कर अपना गुजारा करने लगा । इसी प्रकार दीन-हीन स्थितियों में कई वर्ष बीते । न कहीं सोने का ठिकाना था न रहने का । गरीबी की चरम सीमा थी ।

एक दिन वह लड़का किसी दुकानदार की दुकान के सामने खड़ा भीख माँग रहा था । लड़के पर दुकानदार की दृष्टि पड़ी उसने सूर्य की किरणों में मोती चमकते देखा । पास बुलाकर पूछा इस कंठे की कीमत सौ रुपया लोगे ? लड़का तो कंठों की बात भूल ही चुका था उसे पहली बार भान हुआ कि उसके पास कोई चीज भी है । वह चतुर था । घर चला गया । माला खोली । एक दाना जौहरी की दुकान पर लेकर गया उसने उसकी कीमत हजार रुपये दे दी । इसके बाद लड़के को नई समझदारी जगी वह एक-एक करके मोती बेचता गया और दुकान चलाने लगा । आवश्यक पूँजी जुट जाने पर वह बड़ा व्यापार करने लगा । निज का मकान बनाया, विवाह हुआ और किशोर होते ही वह धनी सेठों में गिना जाने लगा । जब तक माल के मूल्य से अनजान था तब तक भिखारी की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दुर्दशा में रहा, पर गले में पड़ी वस्तु का जब मूल्य और उपयोग मालूम हुआ तो वह पिता-माता के सदृश मालदार बन गया । यह था, वस्तु का मूल्य समझने और उसका सदुपयोग करने का परिणाम ।

यह उपलब्धि हम सभी को मिली है । जीवन मणि-मुक्तकों की माला से बढ़कर है पर न हम उसका मूल्य समझते हैं और न सदुपयोग । साथियों को जो कुछ करते देखते हैं वही करने लगते हैं । अपने निज के विवेक का यह उपयोग नहीं करते कि इसका कितना मूल्य हो सकता है और उसका लाभ किस प्रकार उठाया जाना चाहिए ?

वह कहानी प्रसिद्ध है कि एक शेर का बच्चा भेड़ों के झुण्ड में पलने लगा था । उन्हीं की तरह घास खाता और वैसी ही बोली बोलता । एक दिन एक सिंह ने उसे देखा और अलग बुलाकर कहा-मूर्ख तू तो महापराक्रमी है । आओ हमारे साथ, अपनी छाया पानी में देखो फिर मुझसे मिलान करो और देखो कि मेरी और तुम्हारी शक्ल मिलती है या नहीं । मिलान करने पर उसे विश्वास हो गया कि मैं भेड़ नहीं सिंह हूँ । उस दिन से उसने झुण्ड से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और सिंह की तरह एक बड़े वन का राजा बनकर रहने लगा ।

यह कथा भी हर मनुष्य पर पूरी तरह लागू होती है । महामानवों की शरीर रचना और सामान्य अथवा हेय मनुष्यों की काया में कोई अन्तर नहीं होता । दोनों के ही नख-शिख लगभग एक जैसे होते हैं । मनुष्यों की कायिक और मानसिक संरचना में भगवान ने कोई अन्तर नहीं किया है । अन्तर शिक्षा का भी नहीं, भावना की उत्कृष्टता का होता है । मध्यकालीन संतों में से प्राय: सभी नाममात्र को शिक्षित थे । मीरा, कबीर, रैदास, दादू, चरनदास आदि की कविताओं में शब्द शास्त्र और पिंगलशास्त्र की दृष्टि से ढेरों अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं । इसी से प्रतीत होता है कि उनने ऊँची शिक्षा नहीं पाई थी । इसके विपरीत उच्चकोटि के विद्वानों ने ऐसी हेय पुस्तकें भी लिखी हैं जो वढ़ने वाले की भावनाओं में पशुता भड़काती हैं । महानता शिक्षा के साथ जुड़ी हुई नहीं, भावना और दृष्टिकोण के साथ जुड़ी हुई है । यदि उस क्षेत्र को कोई ग्रामीण भी उच्चस्तरीय बना ले तो वीरपुर गुजरात के बापा जलाराम की तरह उच्चकोटि का सिद्ध पुरुष हो सकता है । नरसी मेहता और सन्त बोडाना ने किसी कालेज की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी । फिर भी उनकी महिमा इतनी उच्च कोटि की थी कि संसार का सिर उनके चरणों में झुकता था ।

मस्तिष्क तो शरीर का ही एक अवयव है । उसका तीक्ष्ण या विद्वान होना ऐसे ही है जैसे किसी की कलाइयाँ मजबूत होना । उनसे व्यक्ति अपनी विद्वत्ता के बल पर अधिक वाचाल या चतुर हो सकता है । उसका स्तर नहीं बढ़ सकता । एक व्यक्ति चारों वेदों का विद्वान था । फिर भी उसकी शिक्षा न उसे महान बना सकी न यशस्वी ।

ओछे मनुष्य की विरादरी संसार में मक्खी मच्छरों की तरह भरी पड़ी है । उनका लोभ, मोह, अहंकार इतना बढ़ा-चढ़ा होता है कि समूची सामर्थ्य झोंक देने पर भी कामना की पूर्ति नहीं हो पाती और घिनौने से घिनौने अपराधी दुष्कर्म तक करने में नहीं चूकते । यही बात सम्पन्नों के बारे में भी है । धनी लोग कुबेर बनने के लए अपना ताना-बाना बुनते रहते हैं और इतना धन जमा करके रख जाते हैं कि उस मुफ्त के माल पर उत्तराधिकारियों का वर्ग सिर फोड़ता और भयंकर विग्रह खड़े करता है ।

शिक्षा का महत्त्व तो है पर इतना ही जितना कि किसी का पेट बढ़ जाना और किसी अंग का मोटा तगड़ा होना जाना । इससे उसका स्तर नहीं बढ़ता, मात्र लोग कौतूहल देखते और चकित होते हैं । बड़प्पन तो भावनाओं के साथ जुड़ा हुआ है और वह गाड़ी खींचने वाले रैक्य जैसों में भी हो सकता है । इसके विपरीत संस्कृत और हिन्दी के कितने ही विद्वान कवि हुए है जिन्होंने कामुकता भड़काने वाली ऐसी रचनाएँ रची हैं जिन्हें पढ़ने के उपरान्त पाठक का मन विलासिता की दिशा में ही उन्मत्त बेकाबू होने लगता है ।

महानता-भावनाओं की उत्कृष्टता के साथ जुड़ी हुई है । उनका स्तर ऊँचा उठाना मात्र विवेक के ऊपर निर्भर है । यह आवश्यक नहीं कि इसके लिए सम्पन्नता या विद्वत्ता एकत्रित करनी पड़े और लम्बी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अवधि तक पूर्व तैयारी करनी पड़े । सिंह, शावक को भेड़ों का समूह छोड़ने और सिंह स्तर की गतिविधियाँ अपनाने में जो निर्णय करना पड़ा होगा, उसकी अवधि थोड़ी ही रही होगी । इसी प्रकार मनुष्यों में से भी जिनने अपने जीवन का कायाकल्प किया है उन्हें उस निर्णय के लिए कोई बड़ी पंचायतें या सभाएँ इकट्ठी नहीं करनी पड़ती थीं । अपने और भगवान के बीच परामर्श कर लेने से ऐसे उच्च कोटि के निर्णय सहज ही हो जाते हैं और शीघ्र भी ।

बाल्मीकि, अंगुलिमाल, अजामिल, अशोक, विल्वमंगल आदि का पिछला जीवन निकम्मा ही था । अम्बपाली, गणिका आदि की गतिविधियाँ भी भूतकाल में प्रशंसनीय नहीं रहीं पर जब उनने अपने अन्तरात्मा का, परमात्मा का परामर्श माना और उत्कृष्टता का अवलम्बन किया तो उनका, कायाकल्प होने में देर न लगी । मनुष्य की क्षमता और विशिष्टता ऐसी है कि वह अकेले भी निर्णय कर सकता है और अकेला भी दुर्गम दीखने वाले पथ को पार कर सकता है ।

संसार के महापुरुषों की जीवन गाथाओं को पढ़ा जाय तो उनमें से प्रत्येक का क्रियाकलाप ऐसा ही होता है । उनके मित्र, कुटुम्बी, सम्बन्धी, सहयोगी कदाचित ही किसी की उत्कृष्टता का मार्ग अपनाने में सहयोग देते रहे हों । अधिकांश ने रोका ही है । गये-गुजरे लोगों का समूह से भरा हुआ यह संसार निकृष्ट कोटि का चिन्तन और भ्रष्ट स्तर का जीवनयापन करते ही देखा जाता है । एक को देखकर दूसरा इसी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण करता है और जिधर भी आँख उठाकर देखा जायगा व्यक्तित्व की दृष्टि से क्षुद्र और हेय मनुष्यों की ही भरमार दीखती है । आदर्शवादी और महानता का अवलम्बन करने वाले तो हजारों-लाखों पीछे ढूँढ़ने पर कठिनाई से एकाध मिलते हैं । ऐसी दशा में जो बहुमत के अनुकरण की प्रतिक्षा करते हैं उनका हौसला टूट जाता है और पानी के प्रवाह में बहते हुए तिनके की तरह वही मार्ग अपनाना पड़ता है जिस पर कि अधिकांश का प्रवाह बह रहा है ।

उत्कृष्ट भावनाओं को अपनाना और तद्नुरूप आदर्शवादी आचरण करने के लिए दुनियादारी का परमुखापेक्षी नहीं होना पड़ता वरन् केवल अपनी अन्तरात्मा की पुकार और दूरदर्शी विवेकशीलता को प्रधानता देनी पड़ती है ।

गीताकार ने योगी और भोगियों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि दुनियाँ जब सोया करती है तब योगी जागा करते हैं । योगी जब सोते हैं तब दुनियाँ जागा करती है । इस कथन के पीछे सीधा मन्तव्य एक ही है कि दुनियादारों और आदर्शवादियों की पटरी आपस में नहीं खाती । एक को एक दिशा अपनानी पड़ती है तो दूसरे को सर्वथा दूसरी । ऐसी दशा में परस्पर एक-दूसरे को मूर्ख कहें तो इसे आश्चर्य नहीं मानना चाहिए । पागलखाने में बन्द विक्षिप्त डाक्टरों और उपचारकों को ही मूर्ख कहते हैं और अपनी स्थिति को सही मानते हैं । वास्तविकता क्या है इसका निर्णय तो विज्ञान और इतिहास के विशेषज्ञ ही कर सकते हैं । असंख्य मनुष्यों में से प्रतिभावानों, बुद्धिमानों, शिक्षितों, सुन्दरों, सम्पन्नों की कमी नहीं । पर जब यह देखा जाता है कि इन्होंने इन विभूषणों का उपयोग किन कार्यों के लिए किया ? उनके कृत्यों से कितनों को क्या-क्या सहना पड़ा और वातावरण कितना दूषित हुआ ? परम्पराएँ कितनी घिनौनी चल पड़ी तो तत्त्वदर्शी यही कहते हैं कि ऐसी प्रतिभा होने की अपेक्षा यही अच्छा होता की यह तथाकथित समर्थ लोग अपंग, अपाहिज बनकर रह रहे होते तो संसार में जितने विग्रह खड़े किये वे तो न करते । इसके विपरीत ऐसे भी अनेक हुए हैं जिनने गरीबी और अशिक्षा के वातावरण में जन्म लिया, अभावों में पले, जगह-जगह ठुकराये जाते रहे किन्तु रास्ता ऐसा पकड़ा जिस पर चलते हुए स्वयं लक्ष्य तक पहुँचे और अपने साथियों तथा अनुयायियों को भी महानता के उच्च शिखर तक उठाकर ले गये । इतिहास का हर पृष्ठ ऐसे ही महामानवों की गुण-गाथा सुनाता है । पीढ़ियाँ उन्हीं से प्रेरणा लेती हैं और मनुष्य शरीर में अवतरित हुए देवता की संज्ञा देती हैं । ऐसे ही लोगों ने लाखों को दिशाएँ दी हैं और वातावरण को उलटकर सीधा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


किया है । भले ही उन्हें कठिनाइयों से भरा जीवन जीना पड़ा हो । कठिनाइयाँ सामान्य मनुष्यों के सामने भी कम नहीं आतीं । स्वार्थी और पतित व्यक्तियों में से कोई बिरले ही मौज-मजा उठा पाते हैं अन्यथा प्रकृति व्यवस्था उनके कान भी हाथों हाथ खींचती रहती है ।

मनुष्य जीवन भगवान की अनुपम कलाकृति है । इसलिए नहीं कि उसे उत्कृष्ट स्तर की शरीर रचना और विलक्षणताओं से भरी-पूरी बुद्धि क्षमता मिली है वरन् इसलिए भी कि उसे आदर्शवादी भाव संवदेनाओं का ऐसा अनुभव मिला है जिसे देखते हुए मनुष्य जन्म को सुर-दुर्लभ कहा गया है । पशु अपने निकृष्ट कर्मों का फल भोगते हैं और देवता उत्कृष्ट कर्मों का रसास्वादन करते हैं दोनों ही भोग योनियाँ हैं । मात्र मनुष्य जन्म ही ऐसा है जिसमें उच्च कर्म करने का अवसर मिला है । यह अद्‌भु समन्वय है । इसी को देखे हुए ऋषि ने कहा-न मुझे स्वर्ग की कामना है न मुक्ति की, मेरी तो एक ही कामना है कि दु:खी जनों की सेवा के लिए बार-बार जन्म लेता रहूँ । भगवान बुद्ध ने भी मरते समय शिष्यों के प्रश्न का यही उत्तर दिया था कि संसार में एक भी व्यक्ति जब तक बन्धन में बँधा हुआ है तब तक मैं मुक्ति में जाने के लिए उद्यत न होऊँगा । वे संसार के सभी व्यक्तियों को सद्‌गति का लाभ दिलाने के उपरान्त तब अपनी सुख-सुविधा की बात सोचते थे । महानता का यही चिह्न, लक्षण और कार्यक्रम है । जिनके अन्तराल में अन्यान्य लोगों की पीड़ा, व्यथा करुणा उत्पन्न नहीं करती उन्हें तो नर-पशु ही कहा जा सकता है । पशुओं में तो भी अनेक ऐसे होते हैं जो अपने बच्चे या साथियों की सहायता के लिए अपने को जोखिम में डालते हैं, पर जो लोग दूसरों से भिक्षा प्राप्त कर के गुलछर्रे उड़ाते हैं और अपने लिए सिद्ध, मुक्ति, स्वर्ग की उड़ानें उड़ते हैं उनसे तो वही अच्छे जो अपने मेहनत से कमाकर अपने मौज-मजे में खर्च करते हैं ।

मनुष्य जीवन की सर्वोपरि गरिमा 'भाव संवेदना' है । इसके अन्तर्गत व्यक्ति दूसरों के दु:ख को बँटा लेता है और अपने सुख को बाँट देता है । सहृदयता इसी का नाम है । सहानुभूति इसी को कहते हैं । शालीनता और सज्जनता के नाम से इसी गुण की प्रशंसा होती है । साधु और ब्रह्माण वर्ग को भूसुर इसीलिए कहा जाता है कि वह आत्मवत्‌सर्वभूतेषु की भावना से अपने को निरन्तर ओत-प्रोत रखता है ।

स्वार्थ सिद्धि का ताना-बाना बुनने के लिए हिंस्र पशुओं की अक्लमंदी पर्याप्त है । पेट भरने और बच्चा पैदा करने में मक्खी-मच्छर तक प्रवीण हैं यह सब बातें जीवन धारियों की प्रत्येक योनि में अभ्यस्त परम्परा के सहारे विद्यमान है । केवल मनुष्य ही एक ऐसा है जो दया और सेवा भाव लेकर जन्मा है । त्याग और बलिदान मात्र उसी में है । यही उनकी विशेषता और महानता है । जिसके भीतर यह वृत्ति न हो जो अपनी क्षुद्रताओं को देखकर लज्जित होता है और अपूर्णताओं को पूर्ण करता है वह अकेला मनुष्य ही है । जो दूसरों के दु:ख को देखकर दुखी होता है और उन्हें सुखी बनाने के लिए अपने को जोखिम में डालता है वह अकेला मनुष्य ही है यही उसकी गरिमा और महत्ता है अन्य बातों में तो वह साधारण जन्तुओं से भी पीछे है । न वह मछली की तरह तैर सकता है न बन्दर की तरह पेड़ पर चढ़ सकता है । हिरन के समान चौकड़ी भरना भी उसे नहीं आता, हाथी की तरह वह ऊँचा भी नहीं है और सिंह के समान आक्रन्ता और विजेता भी । पक्षियों की तरह उसे आसमान में उड़ना भी नहीं आता । अन्य प्राणियों की तुलना में उसकी विशेषता एक ही है कि तात्कालिक लाभों की उपेक्षा करके भविष्य के सत्परिणामों पर विचार कर सकता है और अन्तरात्मा की कसौटी पर कसकर उचित-अनुचित का भेद कर सकता है । उसके भीतर बीज रूप में ऋद्धियों और सिद्धियों के भण्डार भरे हैं । यदि वह उनका सदुपयोग कर सके तो महामानव, ऋषि, देवात्मा और अवतार बन सकता है । तब उसकी वह वाणी को सोऽहम्, शिवोऽहम् सच्चिदानन्दोऽहम आदि की देववाणी बोलता और अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानब्रह्म, तत्वमसि आदि अभिवचनों की प्रत्यक्ष अनुभूति करता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऐसा जन्म बार-बार नहीं मिलता । भगवान करुणावश एक बार ही यह अवसर देते हैं कि यह अभी कीट-पतंगों के स्तर का ही बना हुआ है या उत्कृष्टता का भार वहन करने योग्य हो गया इसी का परीक्षा काल है । जो वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है उसे अगली बार के लिए ठहरना पड़ता है और वही पाठ पढ़ने पड़ते हैं जो गर्त वर्ष पढ़े थे । मनुष्य के लिए ८४ लाख पुस्तकें पढ़ने के लिए तो योनि चक्र में भ्रमण करने की सुनिश्चित अवधि है । परीक्षा काल एक मनुष्य जन्म ही है । उसी में यह परखा जाता है कि इस अमूल्य अवसर का उपयोग किस प्रकार किया गया ।

परीक्षक न रिश्वत माँगते हैं न अपनी खुशामद करवाते हैं । वे तो सभी छात्रों के सम्मुख प्रश्न-पत्र रखते हैं कि किसने किस प्रकार उन्हें हल किया । यह प्रश्न पत्र दो ही हैं-एक यह कि अपने गुण, कर्म, स्वभाव को कितनी अच्छी तरह ऊँचा उठाया, आदर्श, उत्कृष्ट बनाया दूसरा प्रश्न-पत्र यह कि करुणा और सेवा भावना का किस स्तर का परिचय दे सका । अपने सुखों को बाँटने और दूसरों के दु:खों को बाँटने में किस स्तर का शौर्य-साहस दिखा सका । यह सब अपनी गतिविधियों के सहारे परिचय देना होता है । इसका और कोई विकल्प नहीं पूजा-पत्री और स्तोत्र गायन, उपहार, उपचार में छुट-पुट वस्तुएँ चढ़ाना भी नहीं ।

यह अवसर एक बार ही मिलता है । यहाँ एक अन्धे की कहानी याद आ जाती है, जिसे किसी जन्म में आजन्म कारावास का दण्ड मिला । राजा जेल का निरीक्षण करने गये, तो उस अन्धे पर दया आयी और इतनी सुविधा कर दी कि यह बिना किसी के सहारे जेल के फाटक से निकलना चाहे तो उसे रोका न जाय, निकल जाने दिया जाय । अन्धे ने इस सुविधा को एक वरदान माना । एक हाथ से दीवार पकड़कर चक्कर लगाने लगा कि कब फाटक आए और कब वह बाहर निकले ।

पर अन्धे में एक खोट थी । उसके सिर में खाज थी । फाटक के निकट पहुँचते ही सरोवर की ठण्डी हवा लगती और खुजली जोरों से उठती । वह दीवार वाला हाथ छोड़कर दोनों हाथों से सिर के खाज खुजाने लगता । इतने में फाटक निकल जाता और उसे फिर उसी लम्बी जेल के चक्र में घूमना पड़ता । ऐसा बार-बार होता रहा और वह उसी प्रकार भ्रमण करते-करते मर गया, उस सुविधा का लाभ न उठा सका ।

यह कहानी तो कल्पित है, पर मनुष्य जीवन पर पूरी तरह लागू होती है । उसे जब भी मनुष्य जन्म का अवसर मिलता है तभी लोभ, मोह और अन्धकार का ऐसा उन्माद चढ़ता है कि लक्ष्य को पूरी तरह भूल जाता है यहाँ तक स्मरण नहीं रहता कि पेट प्रजनन के कोल्हू में पिसने का अवसर तो हर जन्म में मिल जाता है इस जन्म की जो महान उपलब्धियाँ हैं उनसे लाभ क्यों न उठाया जाय ? उसे गये-गुजरे, दीन-हीन, विक्षिप्त अपराधी तो अपनी मंडली के दीखते हैं, पर यह नहीं समझ पाता कि वस्तुत: वह उस बिरादरी का नहीं है । पागलों की चिकित्सा करने वाला डॉक्टर है । उसके कर्त्तव्य और दायित्व भिन्न हैं । यह पगले बहुमत में तो हैं' पर उसकी बिरादरी के लिए उनकी तरह उन्हें जीवनयापन नहीं करना है और उस रीति-नीति को अपनाना है जिसमें अपने को गौरव मिले और इन पागलों को बन्धन से छुटकारा मिले ।

मनुष्य की बुद्धिमत्ता का ठिकाना नहीं कि वह सृष्टि का मुकुटमणि कहलाता है, ईश्वर का युवराज । आये दिन अनेकों समस्याओं का समाधान निकालता और आणविक कापी पर ढेरों प्रश्नों के सही उत्तर लिखता है, पर अपनी प्रमुख समस्याओं को भूल जाता है कि मुझे जो बहुमूल्य जीवन मिला है उसका उद्देश्य और सदुपयोग क्या है ? इन प्रश्न का उत्तर वह हर बात गलत देता है और हर बार अनुत्तीर्ण होने की भर्त्सना सहता है यह अपने को, अपने स्वरूप और दायित्व को भूल जाने का प्रतिफल है ।

हम संसार भर की जानकारियाँ समेटे फिरते हैं, कॉलेजों की ऊँची डिग्री प्राप्त करते हैं, पर इस छोटे-से प्रश्न को हल नहीं कर पाते कि हम क्या हैं ? कौन हैं ? और किसलिए हैं ? विस्मृति का अभिशाप इस बुरी तरह अपने ऊपर लदा है कि हर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


घड़ी बारहसिंगा की तरह कस्तूरी की महक ढूँढ़ते हैं, पर नाभि की ओर ध्यान न जाने पर निरन्तर असफलता, निराशा, थकान और खीझ के साथ दुर्भाग्य का रोना-रोते रहते हैं ।

कहानी है कि एक बार दस जुलाहे पड़ोस के गाँव में मेला देखने गये । उन्हें अपनी बुद्धि पर सन्देह था, सो चलते समय अपनी गिनती गिन ली । मेले में साथ-साथ बैठे कि कोई बिछुड़ न जाय । शाम को लौटे तो एक जगह बैठकर गिनती पूरी कर लेने का विचार आया । गिने गये तो वे नौ थे । हर गिनने वाला अपने को भूल जाता था । बैठ कर रोने लगे कि हममें से एक किधर गया ? घर में क्या जबाब देंगे ? एक समझदार ने इन सब को रोते देखा और कारण पूछा तो वजह समझ में आ गई उसने कहा हम अभी तुम्हारी समस्या हल किये देते हैं, जो खो गया है, उसे बुलाये देते हैं । उसने उन्हें लाइन में बिठाया और जोर-जोर से उनके सिर में थप्पड़ लगाया साथ ही एक, दो, तीन, चार गिनती भी गिनी । जब पूरे दस के सिर में करारी चपतें लग गईं तो उसने कहा घर जाओ और किसी समझदार को बुलाकर गिनती गिनवा लेना तुम पूरे दस हो । गाँव में दुबारा गिनती गिनी गई, तो वे पूरे दस निकले, रोने-पीटने का सिलसिला बन्द हो गया ।

हम सब उन्हीं जुलाहों का उदाहरण अपनाते हैं । दुनिया भर की जानकारी बटोरते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि हम भी कहीं कोई हैं या नहीं, हमारा भी कोई अस्तित्त्व और कर्त्तव्य है या नहीं ?

दुनिया को हम चित्र-विचित्र रूपों में देखते हैं । यह अपनी आँखों पर रंग-बिरंगे चश्मे पहने रहने का प्रतिफल है । दुनिया तो जैसी है, वैसी ही है उसका वास्तविक स्वरूप देखने के लिए खुली आँखें रखने की जरूरत है । साथ ही रंग-बिरंगे चश्मों को उतार-कर एक कोने में रख देने की । रंगीन चश्में पहनते-उतारते, बदलते रहने का ही प्रतिफल है कि दुनिया चित्र-विचित्र दिखाई पड़ती है-कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल । यदि हम अपना दृष्टिकोण सही और साफ रखें, तो प्रतीत होगा कि संसार की छवि साफ-सुथरी है ।

जो कुछ अप्रिय दीखता है वह इसलिए है कि हम अपनी बुद्धिमत्ता, प्रतिभा और पुरुषार्थ-परायणता का प्रयोग करके अनौचित्य को पछाड़ें और उसे ठीक करें । डॉक्टरों की ड्यूटी यही होती है कि रोगों को पहचानने और उन्हें निरस्त करने में अपनी साज-सज्जा का उपयोग करें । माली का कर्त्तव्य है कि जो पौधा मुरझाने लगे उसे खाद-पानी दे कर हरा-भरा करे । दुनिया में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं । उनके प्रति रोष-आक्रोश व्यक्त करते हुए अपना मानसिक सन्तुलन गड़बड़ाने की अपेक्षा यही अच्छा है कि परिस्थितियों के अनुरूप अपने कर्त्तव्यों में हेर-फेर करें और सन्तुलन को यथावत बनाये रहने में कहीं कोई चूक न करें ।

भगवान ने मनुष्य को अपना संसार उद्यान इसलिए सौंपा है कि वह उसे चतुर माली की तरह हरा-भरा और फला-फूला बनाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न करे । उसे इसलिए जन्म नहीं दिया है कि उसका नाम रटा करे और फूल-पत्ते समेट, बटोर कर उसकी प्रतिमा पर चढ़ाया करे । भगवान मात्र यह देखते हैं कि किसने क्या किया ? उन्हें इतनी फुरसत नहीं है कि यह गिना करें कि किसने हमारी प्रशंसा में क्या-क्या कहा । भगवान के दरबार में कथनी काम देती है न कि कर्मकाण्डों का खिलवाड़ । उसे तो एक ही कसौटी पर सबको कसना पड़ता है कि किसने मनुष्य की गरिमा के अनुरूप श्रेष्ठता अपनाई और किसने कुकर्मों द्वारा उसे बदनाम किया ?

गीता का वह मन्त्र हमें सदा याद रखना चाहिए कि अपनी आत्मा को निजी प्रयासों से ऊँचा उठाओ उसे गिराओ मत । अपना मन ही तुम्हारा मित्र है और वही तुम्हारा शत्रु । कुमार्गगामी मन से बढ़कर अपना और कोई शत्रु नहीं और जो सन्मार्ग पर चलता और चलाता है, वह मित्र है ।

हमें दूसरों को प्रकाश देना चाहिए । समुद्र में पड़े हुए प्रकाश स्तम्भ अपनी ज्योति से उस क्षेत्र में होकर निकलने वाले जलयानों को रास्ता बताते हैं उन्हें भटकने नहीं देते । हमारी जीवनचर्या ऐसी होनी चाहिए जिसे देखकर लोग उन चरण चिह्नों पर चलते हुए जीवन लक्ष्य तक पहुँचे । हमें इस तरह नहीं भटकना चाहिए जिसमें खुद कँटीली झाड़ियों में भटकें और पीछे आने वाले को उस जंजाल में फँसायें ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

## १३.१९ अपरिमित सम्भावनाओं का आगार

मनुष्य जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग, यह सबसे बड़ी बुद्धिमानी है । उसे अस्त-व्यस्त, रीति से भटकाना, यही सबसे बड़ी मूर्खता है । दुनियाँ जैसी भी भली-बुरी है वह स्रष्टा ने बनायी है । हमारे जिम्मे उतना ही सौंपा है कि जहाँ गन्दगी दिखाई पड़े उसे स्वच्छ करें साथ ही इसे ऐसे स्थान पर दबायें कि उपजाऊ खाद बनकर, दुर्गन्ध फैलाने के स्थान पर हरे-भरे फल-फूल उगाने के काम आये ।

ईश्वर ने हमारा वर्तमान और भविष्य सब प्रकार सुखी समुन्नत बनाने के लिए सभी साधन प्रदान किये हैं । यह अपनी समझ की बात है कि उसका किस तरह उपयोग करें ।

एक राजा वन विहार को गया । रास्ता भटक गया । रात किसी किसान के झोपड़े में काटी । परिचय तो परस्पर हुआ नहीं । राजा ने अपने पते का पर्चा लिखकर दे दिया और कहा कभी मुसीबत आये तो इस पते पर चले आना । अगले वर्ष दुर्भिक्ष पड़ा । किसान उस पर्चे के सहारे राजा के पास पहुँचा और कठिनाई बतायी । राजा ने सोचा धन दे दिया तो इस मूर्ख से कोई छीन लेगा । उसके घर के समीप ही चन्दन का विशाल उद्यान था, सो दे दिया । किसान सोचने लगा लकड़ियाँ काटकर बेचने में झंझट है । इन पेड़ों को जलाकर कोयले बना लूँ तो सरलता से अच्छे दाम मिल जायेंगे । उसने वैसा ही करना आरम्भ कर दिया । एक दिन वर्षा हुई । कोयला न बनने से वह लकड़ियाँ ही सिर पर लादकर कस्बे में बेचने ले गया । चन्दन महक रहा था । ढेरों ग्राहक जमा हो गये । थोड़ी-सी लकड़ियाँ सौ रुपये की बिक गईं जबकि कोयले एक पेड़ पीछे दो चार रुपये के ही बिकते थे । रहस्य मालूम हुआ तो किसान पछताया कि मैंने इतनी कीमती लकड़ियों का बाग कोयला बनाकर इतने सस्ते में बेच दिया । हम सब यही करते हैं । जीवन उद्यान का हर दिन एक बहुमूल्य पेड़ की तरह है, पर हम उसे कोयला मानकर बेचते हैं तो पूरा परिश्रम करने के उपरान्त भी पेट के लायक रोटी कठिनाई से पाते हैं ।

यह अपनी मूर्खता का चिह्न है । यदि इसके सदुपयोग की राह पाई होती तो घर गरीबी में पलते हुए भी सन्त विनोवा, गोपाल कृष्ण गोखले, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की तरह महामानवों में भी गिने जाते और भूखे मरने वाले दुर्दिन भी न आते ।

हम हैं जो न लोक का ध्यान रखते हैं न परलोक का, न प्रयत्क्ष जीवन को सुखी बनाते हैं न परोक्ष जीवन को । श्रम, समय, प्रतिभा, शिक्षा, सम्पदा आदि जो कुछ हाथ पड़ती है, उसे इस हाथ कमाते और इस हाथ दुर्व्यसनों में खर्च कर देते हैं । यदि यह विचार आया होता कि गुजारा आसानी से हो जाता है तो जो कुछ बचता है उसे परमार्थ में लगा दें तो इसे भविष्य निर्माण की चतुरता कहा जाता ।

एक राज्य का नियम था कि राजा पाँच वर्ष को नियुक्त होता था । इसके बाद उसे ऐसे निर्जन वन में छोड़ दिया जाता जहाँ वह साधनों के अभाव में भूखा प्यासा मर जाता । बहुत से राजा इसी प्रकार मर चुके थे । एक चतुर एक बार राजगद्दी पर बैठा । उसने पता लगा लिया कि पाँच वर्ष बाद उसे किस निर्जन द्वीप में भेजा जायेगा । उसने तुरन्त यह व्यवस्था की कि उस वीरान में जलाशय बनवाये, उद्यान लगाये प्रजा बसाई, यातायात के साधन जुटाये । पाँच वर्ष में वह निर्जन टापू इतना हरा-भरा और उपजाऊ हो गया कि वहाँ अनेकों उद्यान, व्यवसाय बन गये और अनेक निवासियों से भरा-पूरा बन गया । जब पाँच वर्ष पूरे होने को आये तो राजा स्वेच्छापूर्वक वहाँ चला गया और जिस राज्य में रहता था, उससे कहीं अधिक सुविधा-साधनों के बीच रहने लगा । दूरदर्शिता इसी को कहते हैं । हमारा जन्म एक ही नहीं है, अब तक कितने ले चुके ? इस जन्म को सत्कर्मों से सुखी बनाकर अगले जन्मों को सुखी, समुन्नत बनाने के लिए पुण्य-परमार्थ की सम्पदा जमा कर लें तो यह कदम सब प्रकार बुद्धिमान कहलाते हुए भी उस बुद्धि का उपयोग केवल बहिर्मुखी प्रयोजनों में खर्च कर देते हैं । तृष्णा और वासना की खाई पाटने में अपना बहुमूल्य जीवन समाप्त कर देते हैं । संसार को देखते हैं, पर अपनी ओर दृष्टि नहीं डालते । यदि अपने हित-साधन को ध्यान में रखें तो लोक और परलोक दोनों ही बनते हैं । इसके विपरीत यदि लिप्सा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लालसा के पीछे पड़े रहे तो वह पश्चिम की छाया की तरह आगे-ही आगे भागती जाती है । हम थक जाते हैं, पर छाया हाथ नहीं आती वह आगे ही दौड़ती जाती है ।

अनाड़ी व्यक्ति कूड़े-क़रकट की भाँति बहुमूल्य वस्तुओं को भी बेच देता है । जिसे काँच और हीरे के अन्तर का मूल्य का ज्ञान नहीं है वह हीरे को भी काँच के भाव बेच सकता है । बिना पढ़े व्यक्ति की दृष्टि में बहुमूल्य दस्तावेज और रद्दी कागज में कोई अन्तर नहीं । वह घर की सफाई करते हुए रद्दी के भाव कीमती दस्तावेजों को भी बेच सकता है । हममें से अधिकांश यही करते हैं । यदि योजनाबद्ध रूप से जीवन को आदि से अन्त तक योजनाबद्ध बनाया जाय तो उतनी सी आयु में ही न जाने क्या-से क्या सत्परिणाम सामने आ सकते हैं । आद्यशंकराचार्य ज्ञानेश्वर, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि भरी जवानी में ही उठ गये, पर उन्होंने समय का सदुपयोग करते हुए इतनी छोटी ही अवधि में इतने बड़े काम कर डाले कि उनकी कृतियाँ स्मृति पर चिरकाल तक छायी रहेंगी ।

हाथी; गैंड़ा, भैंसा जैसे बड़े पेट और मात्र मुँह जैसा एक साधन होने पर पेट की चिन्ता करने की बात समझ में आती है, किन्तु मनुष्य को भगवान ने इस चिन्ता से आरम्भ से ही मुक्त रखा है । उसका छः इन्च का पेट, इतने पराक्रमी हाथों, इतनी तीखे मस्तिष्क, और आजीविका के सुनिश्चित साधनों के रहते उस प्रकार की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है । सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श सामने रखते हुए कुछ ही समय के श्रम में न केवल पेट भर सकता है, वरन् औसत भारतीय स्तर का गुजारा भी हो सकता है । इसके उपरान्त भी उसके पास इतना समय बच जाता है कि यदि वह उसका उपयोग उच्च आदर्शों के अनुरूप करे तो अपनी जीवनचर्या ऐसी बना सकता है, जो अपने लिए प्रचुर आत्मसन्तोष प्रदान करे और समाज का इतना हित-साधन कर सके जिसकी हर किसी को भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़े ।

मनुष्य जीवन के निर्वाह की आवश्यकताएँ बहुत ही सीमित हैं । फिर उसके शरीर और मन की बनावट ऐसी है कि उन आवश्यकताओं की पूर्ति कुछ ही घण्टे के श्रम में पूरी हो सकती है । फिर इतना लम्बा जीवन, इतनी व्यस्तता एवं चिन्ता से भरा क्यों बीतता है जिसमें परमार्थ के लिए राई-रत्ती भर गुंजायश नहीं बचती ? इतना ही नहीं निर्वाह भी इतना भारी पड़ जाता है कि उसके लिए छल, प्रपंच, अनीति, अन्याय और अपराधों तक का आश्रय लेना पड़ता है । इसका कारण क्या है ? क्या मँहगाई या बेरोजगारी इतनी बढ़ी है कि निर्वाह कठिन होने के कारण लोगों को अवाँछनीयताओं पर उतरना पड़ रहा है ? नहीं बात ऐसी नहीं है । रुपया सस्ता हुआ है । पहले जिन वस्तुओं के बदले जो चीजें जितनी मिलती थीं अब भी प्रायः वही सन्तुलन बना हुआ है । वस्तु मँहगी हुई है तो मजदूरी भी बढ़ी है । यह कथन अत्युक्ति है कि रुपया सस्ता हुआ है । उसी का नाम मँहगाई कहा जाने लगा है ।

लोग विलासिता, ठाठ-बाट और संग्रह पर टूट पड़े हैं । बड़प्पन का मूल्यांकन इस प्रकार होने लगा है कि कौन कितना कमाता और कितना खर्च करता है । यह दिमागी फितूर है । यदि इसे बदलकर नई मान्यता चल पड़े कि कौन कितना सादगी अपनाता है ? कौन कितना फिजूलखर्ची से अपना समय बचाता है तो उसके लिए यह तनिक भी कठिन न रहेगा कि व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने, आदर्शवादी कार्यक्रम अपनाने में सराहनीय काम कर सके । धर्म-धारणा और सेवा-भावना की उपेक्षा, लालसा-लिप्सा में संलग्नता यह मानसिक दोष है, जिनके कारण मनुष्य को वह करना पड़ रहा है जो नहीं करना चाहिए और वह नहीं कर पा रहा है जो करना चाहिए । इसमें व्यस्तता, मँहगाई, प्रचलन आदि कारण नहीं हैं । लोगों की मानसिक विकृति ही प्रधान कारण है । यह बनी रही तो जिन आर्थिक कारणों को सब दुर्गुणों की जड़ माना जाता है वे अर्थ समस्याओं के सुलझ जाने पर भी बनें रहेंगे । मनुष्य की विलासिता और बड़प्पन में अपना महत्त्व सूझता है और यह विस्मृत होता जाता है कि आदर्शों के परिपालन के साथ भी जीवन की महानता जुड़ी हुई है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


होना यह चाहिए कि हर मनुष्य को जीवन का स्वरूप और सदुपयोग समझाया जाना चाहिए जिसे कि आज व्यक्ति बुरी तरह भूल गया है । इस विस्मरण को स्मरण में बदला जाना चाहिए और स्मरण का विस्मरण हो । जीभ का स्वाद, जननेन्द्रिय का स्वाद ऐसा मालूम पड़ता है कि धरती पर इसी के इर्द-गिर्द स्वर्ग घूमता है । मस्तिष्क पर ऐसा उन्माद छाया है कि लोभ, मोह और अहंकार की विडम्बनाएँ इस कदर छाई हुई हैं कि प्रतीत होता है कि इन्हीं लालसाओं के सम्पर्क में लगे रहने में ही आनन्द भरा हुआ है । इन दो तीन में से एक भी ऐसा नहीं है जिन्हें किसी भी सीमा तक उपलब्ध करने पर मनुष्य को सन्तोष मिल सके । वे जितनी हस्तगत होती हैं, उससे अनेक गुनी विवस बढ़ जाती है ओर उनमें अभाव ही अभाव दृष्टिगोचर होता रहता है । ऐसी स्थिति में चैन नाम की किसी वस्तु से सम्पर्क बन ही नहीं पाता और मृग-तृष्णा में भटकता हुआ प्यासा हिरण जैसे बालू की हरियाली पर पड़ने वाली चमक को तालाब मान कर भागता रहता है और प्यास तथा घुटन हैरान करके उसका प्राणान्त कर देती है । यह हालत आज जन साधारण की है । लालसाएँ और लिप्साएँ, वासनाएँ और तृष्णाएँ इस उद्धतता के साथ चढ़ी रहती हैं कि विवेक और आदर्श को कुछ सोचने या करने का अवसर ही नहीं मिलता । यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि मनुष्य न आत्मा और न परमात्मा के मध्यवर्ती सम्बन्धों को समझे और न यह अनुभव करे कि यह अवसर किसी महत्त्वपूर्ण प्रयोजन के लिए स्रष्टा द्वारा अनुग्रहपूर्वक दिया गया है । उसे अपनी बिरादरी वह नहीं दीखती जो महामानवों के रूप में इस धरती पर अवतरित हुई और सूर्य चन्द्र की तरह प्रकाशवान वातावरण में धन्य हुई । उसे अपने सिर्फ, वंशधर, कुटुम्बी, सम्बन्धी तथा मित्र पड़ौसी दीखते हैं, जिनके सम्बन्ध चाय पीने, पिलाने गपबाजी करने और दुर्व्यसनों की चर्चा करके उसे और उत्तेजना देने भर का है । वे सभी प्रेमी लगते हैं और उनकी सलाह ऐसी प्रतीत होती है मानो सचमुच ही हित साधन की बात वह कह रहे हैं । उनके कथन में लोभ, स्वार्थ, एवं अनाचार अपनाने के अतिरिक्त और कोई परामर्श नहीं होता । इसी में वे अपना हित चिन्तन समेटे होते हैं और बात को इस प्रकार कहते हैं मानो उन्हीं की सलाह अपनाने में उनका वास्तविक हित हो । उन्हें शुभचिन्तक समझा जाता है । वे सभी आदर्शों के विपक्ष में बोलें और अनाचार को हित साधन बतायें तो उनके परामर्श पर चलने वाले का ईश्वर ही रक्षक है ।

तराजू के एक पलड़े में है सुख-शान्ति सफलता और महानता । दूसरे में है, विलास-वैभव के साथ जुड़ा हुआ अपयश और सर्वनाश । मनुष्य की अपनी इच्छा है कि जिसे चाहे वरण कर ले । चमकती आग भी नयनाभिराम लगती है और काला सर्प भी चलता चमकता आकर्षक प्रतीत होता है पर इन्हें छूने के बाद हाथ में फफोले पड़ने और विषदंश से प्राण निकलने जैसे दुष्परिणाम निश्चित हैं । महत्त्वाकाक्षाएँ किसी को चैन नहीं लेने देतीं कामचलाऊ भर से किसी को सन्तोष नहीं मिलता । चले तो किसी दिशा में ऊँचा उठने के लिए निजी क्षमता भी चाहिये और आधार भी । दोनों में से एक भी न हो फिर नीचे की ओर खिसकना और पतन के गर्त में जा गिरना ही एक मात्र मार्ग रह जाता है । जिसने आत्म बल संग्रह नहीं किया, जिसने आदर्शों का अवलम्बन नहीं अपनाया उसके लिये पतन और पराभव ही निश्चित है ।

मनुष्य जन्म पाकर अन्य कृमि-कीटकों की तरह समय काट लेने से भी बात नहीं बनती । सेनापति का पद पाकर अफीम की पिनक में पड़ा रहे, उचित निर्देशन न दे सके तो सेना भी कटेगी और पराजय भी होगी । इतने भर अपराध में उसे गोली से उड़ा दिया जायगा । कोषाध्यक्ष यदि गिनती ठीक से न कर सके और किसी को अधिक रकम दे दे तो वह घटोत्तरी अपने घर के बर्तन बेचकर पूरी करनी पड़ती है ।

मनुष्य का पद ऊँचा है । उसे सृष्टि का मुकुटमणि कहा है और इस उद्यान को सुविकसित करने के लिए नियुक्त किया गया है । अपने पद और दायित्त्व को भुलाकर समय को ऐसे ही अवारागर्दी में गवाँ दे तो उच्च पद की उपेक्षा का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


दण्ड ही उसे असाधारण रूप में मिलेगा । किनके ओछे और छोटे काम हैं उन्हें प्रमाद का दण्ड भी हल्का मिलता है किन्तु सेनापति को ड्यूटी पर से गैरहाजिर होने भर के बदले अक्षम्य अपराध समझा जाता है और गोली से उड़ा दिया जाता है । मनुष्य का पद ऐसा ही ऊँचा है । न केवल उसे अपने निज के कर्त्तव्यों का निर्वाह सही रीति से करना पड़ता है वरन् सारे समाज को, सारे संसार को सन्मार्ग पर चलाने और अन्यान्यों को उच्चस्तर तक उठाने का दायित्त्व भी निभाना पड़ता है । उसे इतने भर से मुक्त नहीं किया जा सकता कि अपने निजी काम धन्धे में लगे रहे, अपनी इच्छायें पूरी करे । यह उत्तर उसकी गरिमा को देखते हुये सन्तोषजनक नहीं हो सकते । आवश्यकताओं को पूरा करने के साधन तो उसे उच्चस्तर के तथा बड़े परिमाण में पहले से ही मिले हुए हैं । वे अनायास ही नाम मात्र से पूरे होते रह सकते हैं । उसके लिये न चिन्ता की आवश्यकता है न भाग-दौड़ की ।

यह अपनी इच्छा की बात है जिन चट्टानों को उठाने के लिए कहा नहीं गया है उसे सिर पर लादे और उस वजन को लादकर बहुत दूर चल सकना आसानी से न बन पड़े तो व्यर्थ ही अपना सिर धुनें । शरीर का गुजारा वहाँ मुश्किल है । सन्मार्ग पर चल पड़ने से सेवा-साधना में जुट जाने पर सृष्टि क्रम के अनुसार समय पर रोटी मिल जाती है और लक्ष्य को पूरा कर लेने का भी अवसर मिल जाता है । इसके विपरीत अनावश्यक लोगों का बोझ सिर पर लादकर चलने और जब गरदन टूटने और रीढ़ झुकने लगे तब यह कहा जाय कि हमारे ऊपर भार लाद दिया गया । इस कथन में यथार्थता कम और बहानेबाजी अधिक है । बहाने बनाकर आत्मप्रवंचना हो सकती है । समाधान न अपना होता है और न किसी दूसरों का । अपनी कामुकता ही विवाह के लिए उकसाती है । लम्बे दुष्परिणाम और विष-वेलि को पहले से ही ध्यान में रखा जा सके तो क्यों हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ बाँधनी पड़ें ? गुजारे भर को पर्याप्त मानकर चला जाय तो लालच इतना क्यों सताये जिसकी पूर्ति में दिन-रात बेचैन रहना पड़े और कुकर्मों से हाथ सानना पड़े ?

हाड़-माँस के पुतले भर, मल-मूत्र के ठीकर का क्या अहंकार हो सकता है ? ऊपर की चमड़ी उतार देने पर भीतर गन्दा ही गन्दा भरा है, ऐसा व्यक्ति अपने सौन्दर्य पर इतराये या दूसरे की सुन्दरता पर रीझे तो उसे दृष्टि दोष ही कह सकते हैं । चमड़ की झिल्ली दीखती है और उसके भीतर क्या भरा पड़ा है, यह सूझ ही नहीं सकता ।

शरीर वाहन भी उपकरण की तरह मिला है । उसकी उतनी ही चिन्ता करनी चाहिए जिससे वह अपने को सही रूप में बनाये रह सके । इसे इतना सजाने, रिझाने की क्या आवश्यकता कि वह देवताओं जैसा सुन्दर लगने लगे । यह मात्र भ्रान्तियाँ हैं जो अपनी लिप्सा, लालसाओं का पहाड़ बारम्बार बढ़ा लेता है और फिर पीछे पश्चात्ताप करता है कि अमुक इच्छा पूरी नहीं हो सकी । अमुक कामना से वंचित रहना पड़ा । वस्तुतः शरीर की आवश्यकताएँ नगण्य हैं । गधा चलता भी जाता है और रास्ते में पड़े घास-पात से पेट भी भरता चलता है । मनुष्य की क्षमता तो गधे से अधिक ही है फिर उसे हैरान होने की, तृष्णा, वासनाओं की आग में झुलसते रहने की क्या आवश्यकता है ? शरीर की शोभा सज्जा के लिए वासना तृष्णा के लिये उसे क्यों बैचेन होना चाहिए मुख्य बात कल्याण की है । उसके लिए बहुत बड़ा पुरुषार्थ करने या कष्ट सहने की आवश्यकता नहीं है । यदि अपने चिन्तन को उत्कृष्ट, चरित्र को शुद्ध और व्यवहार को उदार सेवा-साधना से भरा जा सके, तो इतने में ही योग और तप की कष्टसाध्य साधनाओं का सरलीकरण हो जाता है ।

आवश्यक नहीं कि जंगलों, गुफाओं, शीत प्रदेशों आरक्षित स्थानों में ही रहकर अध्यात्म साधना की जाय । यह कार्य तो तब करने पड़ते हैं कि जब सिद्धियों, चमत्कारों, विशेषताओं का संग्रह करना पड़े । यह कार्य विशिष्ट स्तर के वैज्ञानिक का है । वे ही इन आधारों पर अपने अन्तराल में समाहित दिव्य शक्ति केन्द्रों को खोजने और प्रसुप्त बीज संस्थानों को जगाने के लिए इस मार्ग को अपनाते हैं और किसी सामने प्रस्तुत भयंकर कठिनाई से जुझते हैं किन्तु सर्वसाधारण के लिए

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उतने बड़े कदम उठाने की आवश्यकता नहीं है । वे आवश्यकताओं को घटाकर अपरिग्रही, स्वल्प-सन्तोषी बनकर रहें और अपनी शक्तियों को लोक-मंगल के लिए समर्पित कर दें तो इतने भर से आत्म-कल्याण और आत्मोत्कर्ष करने का उद्देश्य पूरा हो सकता है ।

ईश्वर ने श्रेष्ठ काम सभी सरल बनाये हैं । जिनकी प्रचुरता से आवश्यकता है वे सभी सरलतापूर्वक उपलब्ध होते हैं हवा सबसे अधिक मूल्यवान है । वह बिना जानकारी दिये ही नाक के द्वारा समस्त शरीर में सोते-जागते निरन्तर आती-जाती रहती है । इसके बाद पानी की आवश्यकता है । यह भी जहाँ-तहाँ बिना मोल लिया जाता है इसके बाद अन्न की आवश्यकता है वह भी दो क्यारी भूमि में एक आदमी के लायक उगाया जा सकता है या फिर एक दो घण्टे के श्रम से जुटाया जा सकता है । इसी प्रकार वस्त्र विस्तर आदि भी हैं । यह इतने महँगें नहीं हैं कि कोई मनुष्य इन्हें अपने पुरुषार्थ के बलबूते उपलब्ध न कर सके । कठिनाई तो उनके लिए है जिनने हिरण्यकश्यप, वृत्रासुर, रावण, जरासन्ध जैसी तृष्णायें सँजो रखी हैं । जो संसार भर का वैभव अपनी पोटली में समेटना चाहते हैं । अरबों-खरबों वर्ष जीना चाहते हैं । जिन्हें अपनी तुच्छता का ज्ञान है उनकी आवश्यकताएँ तो एक-दो घंटे के परिश्रम में ही पूरी हो जाती हैं । भगवान ने इतनी कम आवश्यकताओं में गुजर करने वाला मनुष्य को बनाया है ताकि वह बचे हुए समय को पुण्य-परमार्थ प्रयोजनों में अपनी क्षमता को लगाकर शेष राशि समय सम्पदा को उच्च प्रयोजन में लगाकर भविष्य को उज्ज्वल बना सके और असंख्यों के सम्मुख अपना आदर्श उपस्थित कर सके ।

पर क्या किया जाय ? भटकावभरी अनभिज्ञता साधारणजनों के सिर पर मूढ़ता बनकर चढ़ बैठी है । सीधा मार्ग उलटा दीखता है और उलटा मार्ग सीधा । इसी को मति भ्रम कहा जा सकता है । जैसी कोरवों को द्रौपदी के भवन में जाने पर जल थल और थल जल दीखने लगता था आश्चर्य इसी का है कि बुद्धिमान समझे जाने वाले मनुष्य अपने हितों को समझ नहीं पाता और उन्हीं पर कुठाराघात करता है । मुसीबतें जान-बूझकर बुलाता है । जितना बोझ लादकर चल नहीं सकता उनको उठाता और पिसता है । जितना पेट में खाया नहीं जाता उतना ठूँसता है और उदरशूल की वेदना से कुहराम मचाता है । इसी को कहते हैं बुद्धिमान की मूर्खता । हम न बुद्धिमान बन पाते हैं न मूर्ख । मूर्ख होते तो पशुओं की तरह पेट पालते और बैल, घोड़े, गधे की तरह काम आते । बुद्धिमान होते तो इस मनुष्य शरीर का ऐसा शानदार उपयोग करते कि आत्मा को अनन्त आनन्द मिलता और आकाश से भगवान का अजस अनुग्रह बरसता । दुनियाँ चरण पर मस्तक झुकाती और पद चिह्नों पर चलकर कृत-कृत्य होती ।

यहाँ एक बात और ध्यान रखने की है कि काम करने में समर्थ लोगों को भिक्षा देना उसके स्वावलम्बन और स्वाभिमान को नीचे गिराना और भविष्य के लिए ऋण भार लादना है । जिनमें काम-चलाऊ सामर्थ्य मौजूद है उन्हें काम देना चाहिए । भले ही उस काम के बदले अधिक पैसा ही क्यों न देना पड़े । गाँधी जी ने खादी उद्योग को इसी दृष्टि से प्रश्रय दिया था ।

उच्चस्तरीय सेवा का जहाँ प्रसंग है, वह एक ही है कि मनुष्य के उलटे विचारों को सीधा कर दिया जाय । विचारों को अपनाकर हनुमान, अगंद, जामवन्त, जटायु, केवट, शबरी जैसे स्वस्थ सामर्थ्य वाले इतने बड़े काम कर सके जितनी स्मृति मात्र से आँखें नम हो जाती हैं । हाड़-माँस के पुतले में एक ही वस्तु महान है, वह है उच्चस्तरीय विचारणा । इसी को अमृत, पारस और कल्पवृक्ष कहते हैं । जो उत्कृष्ट चिन्तन को अपनाकर लोक मानस, परिष्कार को प्रयास करने में जुट गये समझना चाहिए कि उनने इस मनुष्य जीवन में बन पड़ने वाला महानतम पुरुषार्थ सम्पन्न कर लिया ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# जीवन को सार्थक बनाने का सही सुयोग

मानवीय मस्तिष्क जीवन भर अनेकानेक प्रकार के ताने-बाने बुनता रहता है । शरीर भी कुछ न कुछ उठा-पटक जैसी हलचलें करने में हर घड़ी लगा रहता है । उसके सामने बाह्य जगत की अगणित समस्याएँ अड़ी-खड़ी रहती हैं और उन्हीं को सुलझाने में, इच्छानुरूप हल निकालने में समूचा समय गुजर जाता है । इतने पर भी यह देखा जाता है कि कदाचित ही मनोरथों में से किसी का यत्किंचित अंश ही किसी के हाथ लगता है । अधिकांश तो खाली हाथ आते और खाली हाथ ही लौट जाते हैं । असन्तोष, विक्षोभ और उन्माद ही अपने-अपने रंग चढ़ाते और मजे चखाते रहते हैं । सुर-दुर्लभ मनुष्य जीवन प्रायः इसी प्रकार भ्रमते-भ्रमाते गुजर जाता है और भगवान के दरबार में वापस लौटने पर अपराधी की तरह लज्जा से आँखें-सिर झुकाये पश्चात्ताप से जलते हुए ही जा खड़ा होना होता है ।

बड़ी भूल यह होती रहती है कि संसार भर का ज्ञान समेटने के लिए लालायित व्यक्ति, ज्ञानवान-विद्वान होने का दावा तो करता रहता है, पर ज्ञान इतना भी नहीं पाता कि वह स्वयं क्या है ? किस लिए आया है ? क्या करना और कहाँ जाना है ? इस आत्म-विस्मृति के कारण वह भुलावों में रहता, छलावों में उलझता, अभावों के लिए रुदन करता-कराता किसी प्रकार मौत के दिन पूरे करता है ।

## स्वरूप समझें-लक्ष्य पहचानें

यदि अपने स्वरूप और लक्ष्य की जानकारी रही होती, तो जिन्दगी को दाँव पर लगाकर इस प्रकार न हारना पड़ता, जिस प्रकार कि आम लोग हारे जुआरी की तरह सब कुछ गँवाकर, भारी उद्विग्नता के बीच विकट दुर्भाग्य का अनुभव करते हैं । अपने को चतुर और समर्थ समझने वालों तक जब ऐसी दुर्गति के बीच दिन गुजारने पड़ते हैं, तब उन नर-वानरों के सम्बन्धों में क्या कहा जाय, जो पेट और प्रजनन के अतिरिक्त और कुछ सोच या कर ही नहीं पाते ? जिन्हें कोल्हू की तरह पिलते और पिलाते रहना ही भाग्य समझकर किसी प्रकार जीवित रहना पड़ता है । आत्मबोध के अभाव में, दिशाज्ञान से रहित उड़नेवाली पतंग की तरह, कुछ देर उचकने-मचकने के उपरान्त धराशायी होना और पानी के बबूले की तरह अपने अस्तित्व का अन्त करना पड़ता है ।

समझा जाना चाहिए कि मनुष्य जीवन, ईश्वर की विभूति-वैभव में सबसे ऊँचे दर्जे की अनुकम्पा-सम्पदा है । इस कलाकृति को उसने बड़े अरमानों के साथ सँजोया है । उसे सृष्टि का मुकुटमणि और अपना राजकुमार घोषित किया है । इसी के अनुरूप उसे ऐसा शरीर, ऐसा मानस और इतना वैभव प्रदान किया है कि वह उसके सहारे विश्व उद्यान का सँभालने-सँजोने का पुण्य-परमार्थ करने की अतिरिक्त उत्कृष्टता का परिचय देते हुए, मानवों जैसा जीवन जी सके । उदात्त दृष्टिकोण अपनाकर स्वयंम् स्वर्गीय भाव-सम्वेदनाओं का रसास्वादन करता रहे । पर इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि वह पथ भूले बनजारे की तरह कँटीली झाड़ियों में उलझता, पग-पग पर ठोकरें खाता किसी प्रकार समय गुजारता है । भूल-भुलैयों में जिसे उलझना पड़ रहा है, उसे मृग-तृष्णा में भटकते, थकते, खोजते ही दम तोड़ना पड़ता है । कई तो और भी निकृष्ट-दुष्टता पर उतरते देखे गए हैं । उन्हें मरघट के प्रेत-पिशाचों की तरह जलने-जलाने, डरने-डराने वाली दुष्टता और भ्रष्टता को चरितार्थ करते देखा जाता है । जिस प्रयोजन के लिए देव-मानव स्तर का मनुष्य जीवन किसी महान सौभाग्य की तरह उपलब्ध हुआ था, उसकी ऐसी बर्बादी पर-ऐसा अनर्थ बन पड़ने पर, दाता और ग्रहीता दोनों को अपार कष्ट सहना पड़ता है ।

## प्राप्त का दुरुपयोग न होने दें

खंजाची, उच्च अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में बहुत कुछ सँजोए रहते हैं ; पर वह सारा वैभव, नियुक्तिकर्त्ता द्वारा निर्धारित किए प्रयोजनों के लिए ही होता है । यदि उनमें से कोई, हस्तगत वैभव को मन-मर्जी से स्वार्थ प्रयोजन के लिए खर्च करने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लगे, तो समझना चाहिए कि अब इसे भर्त्सना ही नहीं प्रताड़ना भी सहनी पड़ेगी । पदच्युत होकर अप्रामाणिक लोगों की तरह तिरस्कृत होते हुए भी भटकना पड़ेगा । इतनी छोटी बात भी जो अपने सम्बन्ध में न सोच सके और दुनियाँ भर की जानकारी बटोरने का घमण्ड करते हुए बुद्धिमान होने का अहंकार जताता रहे, तो उसे मूढ़मति के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा ?

जन्मा, कुछ दिन खेला-कूदा, किशोरावस्था आने पर कल्पना की रंगीली उड़ानें भरना, युवा होते-होते विवाह बन्धनों में बँधना, जो बोझ लादा उसे वहन करते रहने के लिए दिन-रात कमाने के लिए खटते रहना, बढ़ाए हुए परिवार की बढ़ती समस्याओं को जिस-तिस प्रकार किसी हद तक सुलझाना, ढलती आयु के साथ अशक्तता और रुग्णता का चढ़ दौड़ना, समर्थ सन्तानों द्वारा समस्त वैभव पर कब्जा जमा लेना, स्वयं को असहाय, अपमानित स्थिति में दिन गुजारने के लिए बाधित होना और रोते-कलपते मौत द्वारा दबोच लिया जाना, क्या यही है आम लोगों की नियति ?

इस बीच सुखद सम्भावनाओं की आशा तो जब-तब बँधती रहती है, पर उसकी झलक-झाँकी तो क्षण भर के लिए सामने प्रकट, हस्तगत होने से पहले ही तिरोहित हो जाती है । तृष्णा अपनी जगह ज्यों की त्यों बनी रहती है । एक आकांक्षा पूरी होने से पहले ही दस और नई उपज खड़ी होती हैं । इस प्रकार अभाव और असन्तोष की स्थिति ही बनी रहती है । बाहर के लोगों को सुखी और सम्पन्न दीखने वाला भी, भीतर कितना अशान्त और उद्विग्न है, इस वस्तुस्थिति को कोई क्या समझे ? अपने आस-पास की ही वास्तविकता से कोसों दूर, भ्रान्तियों में उलझे रहकर, अधिकांश लोगों से तो आत्म-समीक्षा तक नहीं बन पड़ती ।

जिन्दगी का बोझ तो किसी प्रकार वहन कर लिया जाता है पर उसके साथ अपने को, विशाल विश्व को और भारी अरमानों के साथ हमें निहाल करने वाले स्रष्टा को क्या मिला ? इस प्रकार विचार करने पर एक ही उत्तर प्रतिध्वनित होता है कि जो सुयोग-सौभाग्य उपलब्ध हुआ था, वह जलने-भुनने पर उठने वाले काले धुएँ की तरह कुछ बना तो सही; पर अदृश्य अन्तरिक्ष में एक विस्मृत तथ्य बनकर न जाने कहाँ तिरोहित हो गया ?

बात बर्बादी तक ही होती, तो भी किसी प्रकार उसे सहा जा सकता था ; पर पतन और पराभव की, अपयश-असन्तोष की बोझिल पाप-पिटारी भी सिर पर लदती है और वही साथ जाती है । यह वस्तु स्थिति जब समझ में आती है, तभी अपने द्वारा ही अपना अनर्थ बन पड़ने पर, इस चौकाने वाली बात का अनुभव होता है कि भौतिक महत्त्वाकांक्षाएँ सीधे ढंग से पूरी नहीं हो सकतीं । इस संसार में मात्र इतनी साधन-सामग्री है कि सभी लोग मिल-बाँटकर खा सकें और समता एवं एकता अनुभव करते हुए, हँसते-हँसाते जी सकें । किन्तु जिन पर बड़प्पन बटोरने की हविस चढ़ी है, जो इन्द्र से कम शक्तिवान और कुबेर से कम सम्पन्न नहीं रहना चाहते उन अतिवादियों के लिए मात्र एक ही काम शेष रहता है-अनाचार के अवलम्बन का । दीवार ऊँची उठानी हो तो कहीं न कहीं से मिट्टी खोदनी पड़ेगी, गड्ढ़ा बनेगा । अनेकों को अभाव के गर्त में धकेले बिना कोई सुसम्पन्न नहीं बन सकता । महत्त्वाकांक्षी तो सर्व-साधारण की तुलना में बहुत बड़ा रहना चाहता है । इस तृष्णा की सुरसा को तृप्त तो कोई नहीं कर पाया, पर इस विभ्रम में अपना और दूसरों का अहित इतना अधिक कर लेता है कि उस असीम ललक-लिप्सा को मात्र धिक्कारा ही जा सकता है । भले ही कुछ चाटुकार चापलूस उस अनर्थ संचय को सौभाग्य और पराक्रम कहकर बखानते रहें; भले ही कोई अपने को दूसरों से बढ़कर दिखाता अथवा स्वयं के गौरव का उपहासास्पद बखान करता रहे ।

यही है वह समूचा भ्रम-जंजाल, जिसमें उलझकर जीवन सम्पदा को फुलझड़ी जैसा कौतुक-कौतुहल मात्र बनकर रह जाना पड़ता है । नशेबाजों जैसी अर्ध-विक्षिप्तता जब तक सिर पर चढ़ी रहती है, तब-तक तो कुछ पता ही नहीं चलता कि अपने ही हाथों अपने ऊपर कितना अनर्थ लादा जा रहा है; पर जब आँख खुलती है, तब बहुत देर हो चुकी होती है । तब न तो पीछे

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


लौटना बन पड़ता है और न सुधार करके नये सिरे से गिनती गिनते ही बन पड़ती है ।

मनुष्य जीवन की सम्पदा निरर्थक विडम्बनाओं में गँवा देने पर, भावी सम्भावनाएँ घोर संकट से भरी-पूरी ही सामने आ खड़ी होती हैं । चौरासी लाख योनियों में फिर से कष्ट-साध्य परिभ्रमण, पापों के दण्डों से भरी-पूरी लम्बे समय की नारकीय यातना, सताए, बहकाए गए लोगों की अभिशाप भरी हाय, अपयश की लम्बे समय तक चलने वाली भर्त्सना, बस इतना भर शेष रह जाता है । जीवन की पूर्णाहुति हो जाने पर, पीछे के लिए क्या बुद्धिमानी, पुरुषार्थ-परायणता और सफलता इसी समूचे जाल-जंजाल को कहते हैं ? इतने पर भी, मूर्खों को लज्जित होना तक आवश्यक प्रतीत नहीं होता और मरते-मरते भी मूँछ मरोड़ते और शेखी बघारते रहते हैं ।

## विवेक का सम्बल लें

अच्छा होता यदि सघन अन्धकार में भटकते हुए जीवन धर्म को कहीं से प्रकाश की एक किरण हस्तगत होने का सुयोग बनता और भ्रान्तियों की भयानकता से उबरने का सुयोग प्राप्त हो पाता । अपने सम्बन्ध में विचार करने और जो बचा है, उसका सही सदुपयोग करके कुछ तो बना लेने का परामर्श प्राप्त होता; पर वह भी कहाँ बन पाता है । कदाचित् कहीं से उपयोगी सुझाव उभरता है, तो उसे अनसुना कर दिया जाता है । प्रकाश की ओर से मुँह मोड़ लिया जाता है । इस दयनीय-दुर्मति और उसके साथ जुड़ी हुई दुर्गति का आँकलन करने वाह विवेक ''हा-हन्त''-कहकर, पेट में घूँसा मारकर, मुँह को हाथों में छिपाकर किसी कहने में जा बैठता है । जहाँ लाभ को हानि और हानि को लाभ समझने की सनक ठण्डे उन्माद की तरह सिर पर सवार हो रही हो, वहाँ कोई करे भी क्या ? कहे भी क्या ?

इस भौंड़ें संसार में ऊपर से नीचे गिराने का ही प्रचलन है, हर वस्तु ऊपर से नीचे गिरती है । आकाश में विचरने वाली उल्काएँ तक जमीन में आ गिरती हैं । ऊँचाई में उड़ने वाले बादल तक गुरुत्वाकर्षण से खिंचकर जमीन पर आ गिरते और धूल चाटते देखे जाते हैं । आदम-हव्वा तक ऊपर से नीचे कूद पड़े थे । हिमालय की बर्फ पिघलकर गहरे गड्ढों वाली नदी बनकर ही खारे समुद्र में जा मिलती है, जिसका पानी पशु-पक्षी तक नहीं पीते । यही है इस संसार का पतनोन्मुख प्रचलन, जिसका अनुसरण करके लोग अधोगामी चिन्तन और प्रयास अपनाते हैं । ऐसे ही लोग बड़ी संख्या में पाये और अपने इर्द-गिर्द मक्खी-मच्छरों की तरह विद्यमान दिखाई पड़ते हैं । इन बहुसंख्यकों का अनुसरण करके भला कोई अपना क्या हित साधन कर सकता है ? उनके प्रश्न भी ऐसे ही अधोगामी ही होते हैं । तथाकथित स्वजन-सम्बन्धी भी ऐसे ही सुझाव देते और आग्रह करते देखे जाते हैं । उनका बुलावा अपने जैसी काक मण्डली में आ बैठने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता । अपने संचित कुसंस्कार भी उसी कीचड़ में लौट चलने के लिए प्रेरित करते हैं जिनमें मुद्दतों रहना पड़ा दूसरे अधिकांश लोग भी अन्धी भेड़ों की तरह उसी दिशा में बढ़ते चले जा रहे हैं ।

सोचा अपने स्वयं में भी जाना चाहिए । अपने स्वयं के भूत, वर्तमान और भविष्य से भी ज्ञान उपलब्ध करना चाहिए । देखना अधोगामियों को ही नहीं चाहिए, वरन् वायु और अग्नि की तरह ऊपर की दिशा में ही बढ़ने वालों पर भी ध्यान देना चाहिए । नजर उठाकर उस ओर भी निहारना चाहिए, जिस दिशा-धारा को महामानवों ने अपनाया और उत्कृष्ट आदर्शवादिता पर चलते हुए पीछे वालों के लिए ऐसा मार्ग छोड़ा है, जिसका अनुकरण करने पर अपने को और साथी-सहचरों को भी धन्य बनाया जा सके । समझदारी यदि साथ दे सके, तो पहुँचा इस निष्कर्ष पर जाना चाहिए कि पतन से विमुख होकर उत्थान का मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर है ।

नाविक अपने को, अपनी नाव को उसमें बैठे यात्रियों को खेकर इस पार से उस पार पहुँचाता है । क्या उस स्तर का मनोरथ अपने भीतर नहीं उठ सकता ? क्या नर-पामरों जैसी दुर्गन्ध भरी जिन्दगी जीने की अपेक्षा ऊपरी लोक में रहने वाले देवताओं की स्थिति में जा पहुँचने के लिए अपने

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को उल्लसित-तरंगित नहीं किया जा सकता ? क्या इस स्तर की साहसिकता और दूरदर्शिता अपना सकना अपने लिए सम्भव नहीं हो सकता ?

यह सब भी अपने ही हाथ की बात है । जिसे अपने भाग्य का निर्माता माना गया है, वह उत्थान-पतन में से किसी को भी चुन सकता है । स्वर्ग या नरक में से किसी भी दिशा में चल पड़ने के लिए पूरी तरह स्वतन्त्र है । परिस्थितियों को दोष देना व्यर्थ है । वे तो मनःस्थिति के अनुरूप ही ठहरती और बदलती रहती हैं । दूसरों का न सही, अपना भविष्य निर्माण करने के सम्बन्ध में कोई भी बात अपनाना और किसी राह पर चल पड़ना, पूरी तरह अपनी आकांक्षा और निर्धारण पर अवलम्बित है ।

## जो हाथ में है, उसे सम्भालें

जो बीत गया, वह यदि अनुपयुक्त रहा हो, तो भी इतनी गुंजाइश अभी भी है, कि शेष का सदुपयोग करके, बन पड़े अनर्थ का परिमार्जन किया जा सके ! सूर, तुलसी, अम्बपाली, अंगुलिमाल, अजामिल, अशोक आदि आरम्भ से ही वैसे न थे, जैसे कि विवेक का उदय होने पर पीछे हो गये । नये सिरे से अपनायी गयी श्रेष्ठता इतनी समर्थ होती है कि उसके दबाव से पिछले दिनों बरती गयी अवांछनीयता को दबाया-दबोचा जा सके । जो खाई पिछले दिनों खोदी गयी थी, उसे भरने का प्रयत्न नये सिरे से चल पड़े तो ऐसा समतल क्षेत्र विनिर्मित हो सकता है, जिस पर कुछ भी उगाया या खड़ा किया जा सके ।

ऊर्ध्वगमन का निश्चय बन पड़ने पर, देवता लम्बे हाथ पसारते और डूबते को ऊबारने में कोई कुछ भी कोर-कसर नहीं रखते हैं । ऊर्ध्वगामियों को भगवान ने सदा सहारा दिया है और असमर्थता को, असमंजस को समाप्त करने में पूरा-पूरा सहयोग दिया है । दिव्य जीवन जीने के लिए संकल्प उभारने, साहस करने और ऊँची छलाँग लगाने के लिए उद्धत समर्पित लोगों में से किसी को भी मझधार में डूबना नहीं पड़ा है । देवमानवों के उदाहरण इस तथ्य की साक्षी देने के लिए अभी भी इतिहास के पृष्ठों पर यत्र-तत्र विद्यमान हैं । ईसा, बुद्ध, गाँधी, विवेकानन्द, दयानन्द आदि की आरम्भिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि इनसे कोई बड़ी आशा की जाती । पर जब वे उत्कृष्टता अपनाने के लिए तरंगित हो उठे, तो दिव्य सत्ता ने उनकी भरपूर सहायता की, कठिनाईयों को सरल बनाया, आवश्यक सुविधा-साधनों को जुटाया और उससे कहीं अधिक आगे पहुँचाया, जहाँ तक उनने पहुँचने की अभिलाषा रक्खी और योजना बनायी । भगीरथ का गंगावतरण, संकल्प आरम्भ में असम्भव जैसा लगता था, पर दैवी सत्ता ने उसे सर्वथा सम्भव करके दिखा दिया, साथ ही उस दिव्य प्रवाह को भागीरथी नाम दिलाकर यह भी प्रसिद्ध कर दिया कि भगीरथ जनक और भागीरथी उनकी पुत्री भर थी । कदाचित् आरम्भ में भगीरथ ने इस उपलब्धि की कल्पना तक न की होगी । ऐसे उच्च आदर्श के लिए समर्पित होने पर दधीचि, हरिश्चन्द्र जैसे कितने ही बड़भागी बन चुके हैं । हनुमान, अर्जुन ने जो श्रेय प्राप्त किया, उसकी पृष्ठभूमि तभी बनी, जब उनने अपने आप को उत्कृष्टता के चरणों में समर्पित कर दिया । ऋषि-तपस्वी की ऋद्धि-सिद्धियों के पीछे यही तथ्य काम करते और चमत्कार दिखाते जाते हैं ।

ईश्वर को मनुहार करके या छुट-पुट उपहार देकर फुसलाया नहीं जा सकता । न उसे छुट-पुट कर्मकाण्डों के सहारे चंगुल में फँसाया जा सकता है । किन्हीं की बकवाद भी उस सर्वज्ञ को किसी के उद्देश्य के सम्बन्ध में बहका नहीं सकती । व्यक्ति के चिन्तन और कर्म की दिशा धारा ही उसे प्रभावित करने और सहयोगी बनाने में सफल हो सकते हैं । महामनीषियों ने इसी लक्ष्य को समझा और समझाया है ।

## वर्तमान सुयोग समझें

इन दिनों एक अद्‌भुत सुयोग-संयोग है, ईश्वर इस संसार की वर्तमान परिस्थितियों का काया-कल्प करना चाहता है । युग परिवर्तन की सुनिश्चित योजना उसने बना ली है । इक्कीसवीं सदी में उस नियोजन का अधिकांश भाग पूरा हो चुका होगा । यही समय है जब भगवान के सहचर होकर उसका हाथ बँटा सकते हैं, वह सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


जो कभी केवट, शबरी, गीध, गिलहरी ने भौतिक दृष्टि से असमर्थ होते हुए भी अपनी भावनाओं को क्रिया-रूप में परणित करके पाया था । उनमें से कोई घाटे में नहीं रहा । सुग्रीव और विभीषण भगवान के सहयोग बनकर घाटे में नहीं रहे । सुदामा को अपनी बगल में दबी हुई चावल की पोटली तो सौंपनी पड़ी, पर बदले में उसने फूस-छप्पर वाली झोपड़ी को द्वारिका के रूप में परिवर्तित और सुसज्जित पाया । कल परसों गुजरात वीरपुर के जलाराम वापा अक्षय अन्न भण्डार की झोली पा चुके हैं । उनने अपना समूचा साधन और वैभव भगवत् प्रयोजन के लिए समर्पित जो किया था ।

यशोधरा के पुत्र राहुल और अशोक की पुत्री संघमित्रा ने तथागत के संकेतों पर अपने को निछावर करके वह श्रेय पाया, जिसे कदाचित् वे सामान्य जनों जैसा संकीर्ण स्वार्थपरक जीवन जीते हुए किसी प्रकार पा नहीं सकते थे । बुद्ध और गाँधी की सफलताओं के पीछे भी यही तथ्य काम करते हुए देखा जा सकता है । ईश्वरीय शक्ति तथा अनुकम्पा तो मनुष्य मात्र के लिए उपलब्ध रहती है । अर्जुन का रथ हाँकने वाला अभी भी खोजबीन में है कि कोई ऐसा और मिले, जिसका सारथी बनने का उसे सुयोग मिल सके । देवताओं के संयुक्त अनुदानों का संग्रह, महाकाली-दुर्गा के रूप में प्रकट हुआ था, उसने महिषासुर जैसे दुर्दान्तों को धूलि चटाने और देवताओं को अपने पद पर पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया था । उसी शक्ति को, सामयिक सुधार-परिवर्तन करने के लिए ऐसे देवमानवों की आवश्यकता पड़ रही है, जिन्हें समवेत करके पाण्डवों की तरह मोर्चे पर अड़ाया और महाभारत जीतने का श्रेय दिलाया जा सके । महाकाल की इस पुकार को सुनने, समझने और अपनाने में आज के दूरदर्शियों में से किसी को भी पीछे नहीं रहना चाहिए ।

सुर-दुर्लभ मनुष्य जीवन को धन्य बनाने का सनातन राजमार्ग सभी के लिए सदा खुला रहा है; पर इस प्रकार की सफलता के लिए यह अधिक सरल और अधिक सुनिश्चित सुयोग आ उपस्थित हुआ है । भगवान की योजना में सहयोगी होकर शान्तिकुञ्ज की कार्य पद्धति अपने को धन्य बना रही है । किसी के रूप में विनिर्मित हो सके, ऐसी ही श्रेय साधना का जीवन को धन्य बनाने का ठीक यही पर्व-मुहूर्त है । इसे चूका न जाय, तो ही ठीक होगा ।

✷ ✷ ✷

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# मानव जीवन का उद्देश्य, स्वरूप और सदुपयोग

## केवल अपना ही नहीं सबका हित सोचें

फल जब पक जाता है, तब उसकी अन्तरात्मा सीमित के बाधा-बन्धन तोड़कर असीम बनने के लिए मचलती है । फलतः वह वृक्ष के साथ निरर्थक रहने का मोह त्यागकर भूमि पर गिरता है और गूदे से दूसरों की क्षुधा बुझाता हुआ अपने को छूँछ बना देने को उद्यत होता है । इतना ही नहीं, अपने को गलाकर अभिनव वृक्ष उगाने को उपक्रम करता है ।

दधीचि और भगीरथ बड़े थे । फल उनके समतुल्य तो नहीं हो सकता, पर परम्परा वही अपनाता है । आत्मिक-विकास इससे कम में बन नहीं सकता । आत्मिक प्रगति की सार्थकता इतने सत्साहस का परिचय दिये बिना सिद्ध नहीं होती । पके हुए फल की यही स्थिति है । जो इसे स्वीकार नहीं करता है और पत्तों के झुरमुट में मुँह छिपाने और जान बचाने की कोशिश करता है, वह चाहता भले ही हो-पर सुरक्षित रह नहीं पाता । प्रकृति उसका वैभव छीन लेती है और पत्तों के बीच सूखे, दुर्गन्धित और कुरूप जरा-जीर्ण जैसी दुर्गति में उसे धकेल देती है । मानवी-प्रकृति का भी यही उचित गतिचक्र है । जो उसे तोड़ते हैं, वे चतुर बनते भर हैं, अन्ततः ऐसे व्यक्ति मूर्ख सिद्ध होते हैं ।

निर्झर अपने पिता का उत्तराधिकार धन-वैभव पाता तो है, पर उसका मन तो उपभोग करता है और न संग्रह । नियति की इच्छा को समझता है और गतिचक्र को अग्रगामी बने रहने में व्यवधान उत्पन्न नहीं करता है । यहाँ सब कुछ आगे बढ़ रहा है । पिछले पग को उठाने पर ही उसे आगे बढ़ाना सम्भव होता है । दौड़ने के लिए जो तैयार न हो, उसे पाने की आशा त्यागनी ही पड़ती है । सृष्टि का यही सनातन नियम है । निर्झर को अस्थायी जैसा ज्ञान-विज्ञान तो नहीं मिला, पर अनुकरण वह उन्हीं की नीति का करता है । पर्वत के दिये अनुदान को वह एक हाथ से पाता और दूसरे से आगे बढ़ाता है । उपलब्ध अनुदान की जल-राशि बहना आरम्भ करती है तो उसे अन्यान्य जल-धाराओं का स्नेह, सहयोग मिलता चला जाता है । निर्झर नहीं बनता है और पुण्य तथा यश अर्जित करता हुआ समुद्र में जा मिलता है । अपूर्णता को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग भी तो नहीं है ।

बादलों की कुल परम्परा बरसने की है । अपने को गलाने और भूतल पर हरीतिमा उगाने में उन्हें घाटा नहीं दीखता । यों स्वार्थ परायणी के लिए तो दुस्साहस कल्पनातीत है । वे इसे उपहासास्पद मूर्खता ही कह सकते हैं । किन्तु बादलों को दूरदर्शिता और उदारता का जो वरदान मिला है, उसका परित्याग करते भी उनसे नहीं बन पड़ता । फलतः न घाटा बताने वाला गणित सीखते हैं और न उपहास की परख करते हैं । नियति उनकी पीठ थपथपाती है, आकाश में उड़ने और असंख्यों को आशा का केन्द्र बनने का अवसर देती है । मेघ गरजते हैं तो सभी हरसते हैं । कोई उन्हें इन्द्र कहता है, कोई वरुण । उनका कर्तृत्व काल पावस कहा जाता है और धन्य बनता है । मोरों को नृत्य और मेघ-मल्हारों के गीत उन्हें अपनाई गई नीति की सार्थकता बताते हैं । प्रत्यक्षवादियों के लिए इस प्रयास में मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता पर दूरदर्शी जानते हैं कि बादलों ने खोया कुछ नहीं, उन्होंने पाया ही पाया । वैभव तो वस्तुतः समुद्र का था । उन्हें मात्र परिवहन और वितरण भर करना पड़ा । श्रेय इतना अधिक मिला कि वास्तविक दानी समुद्र को उनके सौभाग्य पर गद्‌गद् हो जाना पड़ा ।

फूल सुन्दर लगते हैं, सुगन्धित होते हैं और सम्मान पाते हैं, क्योंकि वे मधुर फलों की पूर्व भूमिका होते हैं । वृक्षों को आश्रयदाता कहा जाता है, क्योंकि वे शीतआतप सहते हुए अनेकानेकों को

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सुविधा प्रदान करते हैं । सूर्य देवता है और चन्द्रमा भी । निर्जीव पिण्डों को वह श्रेय-सौभाग्य कैसे मिलता है ? उसका उत्तर एक ही है, देव-परम्परा का अनुगमन । अनवरत श्रम करते हैं । अपने लिए नहीं, उनके लिए जिनको तमिस्रा से छुटकारा पाने की आवश्यकता है । बालक माता को उदर दरी में सुविधा और सुरक्षा पाने को जब पर्याप्त नहीं मानता और विश्व-वैभव में अपने पुरुषार्थ को नियोजित करने के लिए मचलता है, तभी उसे जन्म धारण करने का अवसर मिलता है । दार्शनिकों के बहुचर्चित 'मुक्ति' या प्रत्यक्ष दर्शन शिशु-जन्म की प्रक्रिया को देखकर भली प्रकार समझा जा सकता है कि भारतीय-संस्कृति का मेरुदण्ड वर्णाश्रम धर्म है । उस विधान का शैशव भी है और यौवन भी । शैशव को पूर्वार्द्ध और यौवन को उत्तरार्द्ध कहते हैं । स्वकेन्द्रित शूद्र और वैश्य, पर समर्पित ब्राह्मण और क्षत्रिय । एक 'सद्ज्ञान के लिए, दूसरा संरक्षण के लिए समर्पित ।' स्वकेन्द्रित बचपन और गृहस्थ । पर-केन्द्रित वानप्रस्थ और संन्यास । अविकसित पूर्वार्द्ध अपने लिए परिपक्व प्रौढ़ परमार्थ के लिए । यही है-वर्णाश्रम धर्म का तात्त्विक विवेचन । धर्म की इसके बिना गति नहीं । आत्मिक क्षेत्र में उदास उदारता अपनाये बिना एक पग प्रगति नहीं । महामानवों का यही राजमार्ग है । देवत्त्व पाने के लिए उसी का अवलम्बन करना होता है । पूर्णता के लक्ष्य तक इसी पर अनवरत क्रम से चलने वाले पहुँच पाते हैं । समष्टि ही विराट् है । विराट् ही ब्रह्म है । स्व को पर में समर्पित करना ही परब्रह्म की प्राप्ति है । साधना के उपक्रम से जो भी अपनाया जाय-मध्यवर्ती ध्रुव-तत्त्व यही है ।

भौतिक सुख और आत्मिक-शान्ति पाने की सुनिश्चित रीति-नीति नहीं है । संकीर्ण स्वार्थपरता ही माया है । मृग-मरीचिका उसी को कहते हैं । पाने की जिज्ञासा में खोने की विडम्बना सही है । बुद्धिमत्ता का कलेवर ओढ़कर मूर्खता अपना व्यंग्य नृत्य इसी तरह दिखाती और जन-जन को भ्रमाती है । उदारता, लाभ और कृपणता का घाटा यदि समझा जा सके तो मनुष्य निस्सन्देह सुखी बन सकता है और समुन्नत भी । (उसका लोक भी सध सकता है और परलोक भी ) किन्तु दुर्बुद्धि को क्या कहा जाय ? हाथ और पैरों को ललक-लिप्सा जकड़े रहती है और लोभ-मोह के कोल्हू में पिलने के अतिरिक्त और कुछ सोचने तक नहीं देती । कुछ ऐसा करने की छूट तो मिल ही कहाँ पाती, जिसमें मानवी-जीवन की सार्थकता सम्भव हो सके ।

अखण्ड-ज्योति के परिजन उस दृष्टि से सौभाग्यशाली हैं कि उन्हें उत्कृष्ट चिन्तन और उपयुक्त कर्त्तव्य के लिए आवश्यक आलोक तो मिलता ही रहता है । द्वार तो उनके लिए खुला है । अनजान तो उन्हें नहीं रहना पड़ रहा है । अन्धकार का घेरा तो उनके सामने नहीं है । यह दूसरी बात है कि मन:स्थिति में साहसिकता और परिस्थिति में प्रगतिशीलता का समावेश कर सकना उनसे बन पड़ता है या नहीं । होना यही चाहिए कि ज्ञान की प्रौढ़ता कर्म में विकसित हो । लिप्साओं पर अंकुश लगे । निर्वाह के साधनों को औचित्य तक ही बढ़ाया जाय । इसके बाद जो असीम बच रहता है, उसे उसी को लौटाया जाय, जिनसे स्तर की जाँचने के लिए अनुदान की धरोहर की आशा और अपेक्षा के साथ सौंपा था । जो जीवन-तथ्य को समझ सकेगा, उसे इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि उपलब्धियों का उपभोग एवं संग्रह नहीं, वरन् उसका उदार उपयोग करने में ही बुद्धिमत्ता है ।

नीति-निर्धारण का सौभाग्य वरदान यदि किसी को मिल सके तो उसे उसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि ललक-लिप्सा सीमित रखने से काम चल सकता है । सीमित समय, श्रम एवं साधनों में शरीर-निर्वाह एवं परिवार-पोषण का उत्तरदायित्व निभ सकता । अतृप्त तो तृष्ण ही रहता है । द्ररिद्रता तो लिप्सा भर की है । वैभव को कनिष्ठ और वर्चस्व को वरिष्ठ माना जा सके तो परिस्थितियाँ पूरी तरह उलट सकती हैं । शरीर को विलासी और परिवार को अमीर बनाये बिना काम चल सके तो स्वावलम्बी तथा सुसंस्कारी बने रहकर निर्वाह के हजार उपाय सोचे जा सकते हैं । कठिनाई तो उस तृष्णा की है, जो विवेक के अभाव में मिटती भी नहीं और पुरुषार्थ के अभाव में फलित भी नहीं होती । देव-जीवन जीना और स्वर्गीय सम्वेदनाओं

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


का रसास्वादन करना-किसी के अनुग्रह पर नहीं, मात्र अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत करने पर निर्भर है । ढर्रे का चिन्तन और अभ्यस्त क्रियाकलाप में उपयुक्त परिवर्तन करने में जो ऊर्जा प्रयुक्त होती है, उसी का नाम-'आत्म-बल' है । इसकी प्रचुर मात्रा हर किसी को जन्मजात् रूप से उपलब्ध है । कठिन तो आन्तरिक-परिवर्तन ही पड़ता है । वह जिससे जितना बन पड़ता है, वह उसी अनुपात से कृतकृत्य बनता है । आत्म-निर्माण और भाग्य-निर्माण दोनों एक ही हैं, एक को क्रिया और दूसरे को परिणिति कह सकते हैं । सबसे बड़ा पुरुषार्थ एक ही है-जीवन नीति का दूरदर्शी निर्धारण । देव अनुग्रह यही एक है । सौभाग्यों का सूर्योदय इसी को समझा जाना चाहिए । विपदाओं का पलायन और सम्पदाओं का आगमन जिन ऋद्धि-सिद्धियों के अनुग्रह से होता है, वे आसमान से नहीं उतरतीं और न किसी की कृपा-अनुकम्पा से मिलती हैं । जीवन-क्रम में उत्कृष्टता का समावेश ही वह मन्त्र साधन है, जिसे सिद्ध कर लेने पर सब कुछ मिल जाता है, जो मिलने योग्य है ।

उदार चेता और दूरदर्शी ऐसी नीति अपनाते हैं जिसमें सीमित स्वार्थ और असीम परमार्थ की पूर्ति सुसन्तुलित रीति से होती रहे । इसके लिए न किसी को भूखा मरने की आवश्यकता है और न परिवार को निराश्रित छोड़ने की । औचित्य की मर्यादा में दोनों का परिपोषण करने में किसी सामान्य को भी असामान्य दौड़-धूप या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । मानवी-काया में सन्निहित पुरुषार्थ एवं कौशल इतनी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, जिसके सहारे औचित्य की परिधि में रहते हुए हँसते-हँसते हर किसी का निर्वाह हो सकता है । साथ ही जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक परमार्थ-प्रयोजनों के लिए भी पर्याप्त अवसर मिल सकता है । जो उसका सुसन्तुलित उपयोग कर सके, उनके लिए निर्वाह और विकास की, सुख और शान्ति की, समृद्धि और प्रगति की उभयपक्षीय उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकना तनिक भी कठिन न रहेगा । सुसंस्कृत ही समुन्नत होते हैं । दृष्टिकोण ऊँचा रहे तो उत्कर्ष के प्रत्येक शिखर का दर्शन ही नहीं, परिभ्रमण भी सहज हो सकता है । यही है-सुखद सफलता, जिस पर जीवन का उपभोक्ता और दाता-दोनों ही सन्तुष्ट और प्रसन्न हो सकते हैं ।

यह एक सुविज्ञात तथ्य है कि सभ्य समाज श्रेष्ठ मनुष्यों से ही बनता है । यहाँ तक कि संसार के समाज शास्त्री भी यह मानते रहे हैं कि किसी देश या समाज को समुन्नत या प्रगतिशील तभी माना जा सकता है जब वहाँ के नागरिक व्यक्तित्व सम्पन्न हों । ऊँचा दृष्टिकोण और सुदृढ़ चरित्र ही मनुष्य की वास्तविक मजबूती है । मजबूत ईंट, पत्थरों को प्रयोग होने से ही कोई इमारत सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनती है । यही बात समाज या देश के सम्बन्ध में भी है । यदि नागरिक व्यक्तित्व की दृष्टि से घटिया रहेंगे तो वैभव की दृष्टि से प्रचुर सम्पदा के अधिपति होते हुए भी वे दोष-दुर्गुणों से ग्रस्त रहेंगे । सामर्थ्य का अनुपयुक्त कार्यों में अपव्यय करेंगे तथा दुष्प्रवृत्तियों से संलग्न रहकर समूचे समाज के लिए विक्षोभ संकट उत्पन्न करेंगे । फलतः वह सम्पदा निकम्मी सिद्ध होगी और उस समाज की सशक्तता तथा प्रगति कही जाने वाली सफलताएँ उत्पन्न करने में तनिक भी सहायक सिद्ध न होगी ।

चरित्रवान नागरिकों वाला समाज वैभव की दृष्टि से पिछड़ा कहा जाय तो भी कुछ बनता बिगड़ता नहीं । सद्गुणी व्यक्ति स्वल्प साधनों का मिल-जुल कर नीति युक्त सदुपयोग करते हैं और उतने भर से उतना काम चला लेते हैं, जितना कि धन-कुबेरों के लिए भी सम्भव नहीं हो पाता । युद्ध में मनस्वी जीतते हैं । अस्त्र-शस्त्रों की विपुलता रहने पर भी उस पक्ष को पराजित होना पड़ता है जिसके सैनिकों में वीरता एवं देशभक्ति की कमी रहती है ।

इतिहास के सभी वर्गों पर दृष्टिपात करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि व्यक्तिवादी लोभ-संकीर्णता की रीति-नीति अपनाते हैं । फलतः समाज की उपेक्षा करके निजी लाभों का ताना-बाना बुनते रहते हैं । इस बिखराव का प्रतिफल समाज की दुर्बलता बनकर प्रकट होती है । सभी जानते हैं कि समन्वय, संगठन, एकीकरण में कितनी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अधिक सामर्थ्य होती है । तिनके मिलकर रस्सी बनते और सींकों का समूह बुहारी बनकर उपयोगी भूमिका निभाता है । यदि तिनकों और सींकों को बिखेर दिया जाय तो वे निरुपयोगी तो होंगे ही, साथ ही अपने अस्तित्त्व की रक्षा कर सकने में भी समर्थ न होंगे ।

एकता को दृढ़ता का प्रतीक माना गया है । संगठन को जीवित प्राणियों की क्षमताओं में मूर्धन्य समझा जाता है । यह एकता सैनिकों में पाई और मधुमक्खियों, चीटीं, दीमकों में देखी जाती है । फलतः उनकी संयुक्त शक्ति का प्रतिफल चमत्कारी देखा जाता है । यदि इन समुदायों के सदस्य पृथक्-पृथक् ढंग से सोचें और अपनी ढपली अपना राग की नीति अपनायें तो समझना चाहिए कि उनकी विशिष्टता समाप्त हो गई ।

बन्दर अनुपयोगी, हानिकारक होते हुए भी लम्बे समय से मनुष्य का विरोध, आक्रोश सहते हुए भी अपना अस्तित्त्व अभी तक इसीलिए अक्षुण्ण रखे हुए है, कि उनमें मिल-जुल कर प्रतिरोध या आक्रमण करने की एक मौलिक विशेषता विद्यमान है । इसके विपरीत सिंह, व्याघ्र अति समर्थ होते हुए भी पारस्परिक विग्रह के कारण अपना अस्तित्व धरती से समाप्त करते चले जा रहे हैं ।

एकता तो एक रूपता में सम्मिलित निवास में भी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु वास्तविकता एकता भावनात्मक ही है । इसको आत्मीयता, सहाकारिता सामाजिकता आदि नामों से पुकारते हैं । मिल-जुलकर रहना, मिलकर खाना यों एक प्रथा परम्परा जैसी प्रतीत होती है, पर वस्तुतः वह है विशुद्ध रूप से वैयक्तिक उत्कृष्टता । दूसरों के प्रति प्रेम भाव, सम्मान रखने पर ही यह सम्भव होता है कि कोई अस्तित्त्व सच्चे अर्थों में समूहवादी बन सके ।

एकाकीपन, व्यक्तिवादी ,संकीर्ण स्वार्थपरता में लाभ दीखता है कि दूसरों के मामले में दिलचस्पी लेकर या सहायता देकर क्यों अपना समय, श्रम या धन खर्च किया जाय ? इसमें दूसरों का लाभ हो सकता है, पर अपने को तो नुकसान ही पड़ेगा । खुदगर्जी इसी तर्क एवं मान्यता की परिणति है । उथले चिन्तन से यह तर्क मजबूत मालूम पड़ता है, पर थोड़ी-सी गहराई में प्रवेश करते ही उसका खोखलापन सिद्ध हो जाता है । मनुष्य में सामर्थ्य तो अनेक हैं पर खाने, सोने को छोड़कर और कोई उपलब्धि ऐसी नहीं है जो दूसरों के सहयोग बिना हस्तगत हो सके । इसलिए सहयोग मिलने की आवश्यकता तो पग-पग पर रहेगी ही । यह कैसे मिले ? न मिले तो काम कैसे चले ? एकाकी प्रयत्न एवं सीमित साधन निर्वाह से लेकर प्रगति तक के अनेकानेक प्रयोजनों की पूर्ति कैसे सम्भव हो ? दूसरों की सहायता यदि पग-पग अपेक्षित रहती है तो उसे प्राप्त कैसे किया जाय ? मुफ्त में कोई क्यों देगा ? जिस प्रकार हम खुदगर्जी को बुद्धिमत्ता मानते हैं - उसी प्रकार अन्य लोग क्यों न मानेंगे ? पैसा देकर हर सहयोग कहाँ तक खरीदा जाता रहेगा ? फिर उतना पैसा कमाया कैसे जायगा ? एकाकी पुरुषार्थी से तो कमाई भी सीमित ही हो सकती है । आर्थिक क्षेत्र के आदान-प्रदान को श्रम, समय, साधन बेचकर पैसे के रूप में या अन्य अपने उपयोग की वस्तुओं के रूप में खरीदा जा सकता है । पर इतने से ही सारी आवश्यकताओं की पूर्ति तो नहीं हो जाती । मैत्री, आत्मीयता, स्नेह, सौजन्य जैसी भावात्मक आवश्यकताएँ पैसा देकर नहीं खरीदी जा सकतीं । माता से सन्तान को मिलने वाला वात्सल्य, पत्नी का एकात्म समर्पण कहाँ, कितने मूल्य पर कोई खरीद सकता है । बफादार मित्र कोई कहाँ से किस प्रकार क्रय करेगा ? यदि इस स्तर का कुछ न मिल सका तो क्या रूखी, नीरस, निराश, कुरूप, कर्कश जिन्दगी जीनी न पड़ेगी ? कुटुम्बिकता में वस्तु परक आदान-प्रदान की प्रमुखता नहीं होती वरन् उस आनन्द में पारिवारिकता के रूप में अनुभव की जाने वाली उदार आत्मीयता ही सारी पृष्ठभूमि बनाती है । भावनात्मक आदान-प्रदान के बिना एक पक्षीय सहयोग कैसे मिले ? एक अपने मतलब में चौकस रहे और दूसरा उसे अकारण ही स्नेह सहयोग देता रहे इसकी व्यवस्था कैसे बन सकेगी ?

इस विश्व व्यवस्था में हर वस्तु मूल्य देकर खरीदनी पड़ती है । कर्म फल इसी प्रक्रिया का नाम है । सहयोग प्राप्त करने के लिए भी सहयोग देना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पड़ता है । भावनात्मक सहयोग के लिए भावनात्मक सहयोग देना होता है । उच्चस्तरीय सहयोग जिस वस्तु के बदले मिलता है, वह है प्रामाणिका, सदाशयता । इससे कम में किसी के प्रति किसी के मन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती । वह न हो तो फिर सम्मान और सहयोग का ढोंग भर रचा जा सकता है वैसा कुछ स्वाभाविक रूप से उमड़ता, उभरता नहीं देखा जा सकता है । यदि किसी को सद्भाव अपेक्षित हो तो अपने खेत में उसकी अच्छी-खासी फसल उगानी पड़ेगी, जिसे बेचकर अनेकों से अनेक स्तर के स्नेह सम्मान अर्जित किये जा सकें । अपनी जेब खाली होने पर दूसरों से माँग-जाँचकर काम चलाने का धन्धा बहुत समय तक नहीं चल सकता ।

प्रगति के लिये शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रशिक्षण आर्थिक वैभव, पद कौशल आदि की आवश्यकता तो है ही, पर यह भी भुला न दिया जाय कि इन सबसे अधिक सहयोग की आवश्यकता है । यह जितने ऊँचे स्तर का, जितनी अधिक मात्रा में, उन्हें उपलब्ध होता है वे अनुपात से ऐसी परिस्थितियाँ प्राप्त करते हैं जो प्रगति पथ पर अग्रगामी बनाने में असाधारण रूप से अनुकूलता उत्पन्न कर सकें । उपार्जन सभी अच्छे हैं क्योंकि उनके बदले अभीष्ट वस्तुओं, परिस्थितियों एवं सेवकों को खरीदा जा सकता है ।

तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक समझा जाना चाहिए कि महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों एवं सफलताओं के लिए उत्सुक व्यक्ति अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ऐसे ढाँचे में ढालें जिससे प्रामाणिक आकर्षक एवं सम्मानास्पद प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सके । यह प्रतिक्रिया ही चिरस्थायी एवं उच्चस्तरीय प्रगति का पथ-प्रशस्त करती है । यही कारण है कि समाज शास्त्री इस बात पर बहुत जोर देते रहे हैं कि किसी देश या समाज को समुन्नत बनाने के लिए उसके सदस्यों को व्यक्तित्व की दृष्टि से वजनदार होना चाहिए । यह वजन जिन कारणों से बढ़ता है उसमें मूर्धन्य वे हैं जो व्यक्ति को ऐसी विशेषताओं से सम्पन्न कर सकें, जो किसी भी सम्पर्क में आने वाले पर अपनी छाप छोड़ती और प्रभावित करके सहयोगी बनाती हैं । अध्यात्म विज्ञान यही सिखाता है । सारी शिक्षाओं का निष्कर्ष यही है कि व्यक्ति का अन्तःमहान बने, हर मनुष्य आत्मिक प्रगति की दिशा में अग्रसर हो । आत्मिक प्रगति का अर्थ है

**अन्तःकरण में उत्कृष्टता का अभिवर्धन ।**

उत्कृष्टता का तात्पर्य है-दृष्टिकोण की शालीनता और व्यवहार में उदारता । इन दोनों का सम्वर्धन जिस उपाय से हो सकता है, वह है-सेवा-साधना का अवलम्बन । उपासना कृत्यों की तरह ही इसकी गरिमा है । साधना और उपासना के युग को अन्योन्याश्रित एक दूसरे का पूरक माना गया है । सेवा-साधना में संलग्न होने से मात्र लोक-मंगल द्वारा ईश्वरीय-आकांक्षा की पूर्ति ही नहीं होती वरन् व्यक्तित्व में गुण, कर्म, स्वभाव की श्रेष्ठता की अभिवृद्धि भी होती है । सेवा-धर्म अपनाने से स्वार्थ और परमार्थ दोनों की पूर्ति होती है आत्म-सन्तोष, लोक-श्रद्धा, जन-सहयोग एवं दैवी अनुग्रह के चारों ही लाभ सेवा धर्म अपनाने वाले को हाथों-हाथ मिलने लगते हैं । हर व्यक्ति को यह तथ्य मानकर चलना चाहिए आत्मिक प्रगति और साथियों का सहयोग सेवा धर्म के साथ जुड़े हुए हैं । बिना उत्कृष्टता अपनाए प्रगति नहीं होती और बिना उदार आत्मीयता के जीवन में समावेश के सहयोग नहीं मिलता । जो देता है, वह बदले में भरपूर पाता है । समाजनिष्ठा हर व्यक्ति का परम धर्म है जिसे निभाकर प्रविधि लाभ अर्जित करना सम्भव है ।

## 'समाज-निष्ठा' हर दृष्टि से अनिवार्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में सुख- शान्ति का वातावरण होने पर ही वैयक्तिक सुख-शान्ति अक्षुण्ण रह सकती है । अविवेकी और असभ्य समाज के बीच रहने वाला कोई श्रेष्ठ एवं सज्जन व्यक्ति भी सुख-शान्ति का लाभ नहीं ले सकता । भयंकर विषधर सर्पों से लिपटे रहने पर भी चन्दन वृक्ष की तरह उनसे अप्रभावित रहने वाले प्रबल मनस्वी व्यक्ति तो विरले ही होते हैं जो यह

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कह सकें कि 'मुझे नरक में भेज दो, मैं अपने लिए वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा ।' बुरे लोगों के बीच रहते हुए भी जो अपनी मानसिक शान्ति और सन्तुलन स्थिर रख सकें ऐसे व्यक्तियों की संख्या उँगलियों पर गिनने लायक ही होती है अन्यथा भोले-भाले सीधे-साधे सज्जन व्यक्ति ही प्रायः दुष्ट लोगों की दुष्टता के शिकार होते हैं ।

अविवेकी, दुष्ट व्यक्तियों के बीच रहते हुए सज्जनों को भी कष्ट ही होता है । जहाँ नरबलि चढ़ाने की कुप्रथा है, उन जंगली, असभ्य, अविवेकी निर्दय लोगों की बस्ती में रहने वाले भोले आदमी को भी अपनी सुरक्षा कहाँ अनुभव होगी ? बेचारा भय-त्रस्त ही रहेगा कि किसी दिन उसी का नम्बर न आ जाय । गन्दे लोगों के मुहल्ले में बसने वाले स्वच्छताप्रिय व्यक्ति भी महामारी फैलने में खैर कहाँ ? अपनी एकाकी स्वच्छता के बल पर वह व्यापक गन्दगी से अछूता कैसे रह सकता है । पड़ोस में आग लग जाय तो अपना छप्पर भी उसकी लपटों से कैसे बच सकता है ।

किसी गाँव के कुछ लोग साम्प्रदायिक दंगा करें या अन्य कोई उपद्रव करें तो सरकार उस पूरे गाँव पर सामूहिक जुर्माना करती है । सज्जन और शान्तिप्रिय व्यक्तियों को भी यह दण्ड चुकाना पड़ता है । कानून की दृष्टि से उन सज्जन और शान्ति प्रिय लोगों को भी निर्दोष नहीं माना जाता क्योंकि किसी भी व्यक्ति का कर्त्तव्य यहीं तक सीमित नहीं कि वह स्वयं भलमनसाहत से रहे वरन् यह भी उसका कर्तव्य है कि दूसरे उपद्रवकारियों को समझाये अथवा रोके, न रुकने पर प्रतिरोध भी करे । यदि कोई अपने तक ही शान्ति को सीमित रखता है, उपद्रवियों को रोकने का प्रयास नहीं करता तो यह मानवीय कर्तव्य शास्त्र की दृष्टि से एक अपराध है और उसका दण्ड सामूहिक जुर्मानो के रूप में चुकाना पड़ता है । उसकी एकाकी शान्ति प्रियता एवं सज्जनता की यह दलील निरर्थक मानी जाती है कि उसने स्वयं कोई अपराध नहीं किया वह तो निर्दोष है ।

स्वयं अपराध न करना किसी को निर्दोषिता का प्रमाण नहीं कहा जा सकता । अपराधों और बुराईयों को रोकना भी प्रत्येक सभ्य एवं प्रबुद्ध नागरिक का कर्तव्य है । बन्दूकों के लाइसेन्स भले एवं सज्जन व्यक्तियों को इसीलिए दिए जाते हैं कि वे अवांछनीय तत्त्वों का मुकाबला करें । गाँवों में जिनके पास बन्दूकें रहती हैं उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि गाँव में यदि दूसरे व्यक्तियों के यहाँ डकैती पड़े तो डाकुओं से मुकाबला करने के लिए उन बन्दूकों का उपयोग करें । यदि वे बन्दूकधारी डर के कारण चुपचाप अपने घरों में बैठे रहें तो दूसरों के यहाँ डकैती बिना प्रतिरोध के पड़ती रहे तो इस काण्ड में डकैती की तरह उन डरपोक बन्दूकधारियों को भी अपराधी माना जायेगा और सरकार उनकी बन्दूकें जब्त कर लेगी ।

सामाजिकता के नाते प्रत्येक सभ्य नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह बुराइयों से स्वयं तो बचे ही दूसरों को भी उनसे बचाने में सहायता करे । अपराध न तो स्वयं करे और न करने दे । जो व्यक्ति स्वयं तो पाप नहीं करता पर पापियों का प्रतिरोध नहीं करता वह एक प्रकार से पाप का पोषण ही करता है । मनुष्य एक-दूसरे से परस्पर इतनी घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है कि अपना स्वयं का पाप ही नहीं, दूसरों का पाप भी उसे भुगतना पड़ता है । जयचन्द्र और मीरजाफर की गद्दारी से सारे भारत की जनता को कितने लम्बे समय तक दासता की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं ।

समाज में यदि चारों ओर अज्ञान, अविवेक, कुसंस्कारों अन्धविश्वासों, मूढ़ मान्यताओं, कुरीतियों, अनैतिकता और अशिष्टता का वातावरण बना रहेगा तो कोई विवेकशील परिपक्व व्यक्ति भले ही उससे प्रभावित न हो, अविकसित, अल्पविकसित लोगों पर उसका प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता । जिस स्कूल के बच्चे गन्दी गालियाँ बकते हैं, उसमें पढ़ने वाला किसी श्रेष्ठ परिवार का बच्चा भी गालियाँ देना सीखकर आयेगा । गन्दे गीत, गन्दे सिनेमा, भौंड़े प्रदर्शन, अश्लील पुस्तक, नग्न चित्र आदि कितने असंख्य अबोध मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और उन्हें कितना निकृष्ट एवं हेय बना देते हैं इसे कहीं भी आँखों से प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । बुराई की

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


उपेक्षा करना ही पर्याप्त नहीं, पाप की ओर से आँखें फेर लेना सज्जनता का चिह्न नहीं है, इससे तो बुराइयाँ एवं अनाचार अधिक फैलेंगे जिनके दुष्प्रभाव से सज्जन व्यक्ति अछूते नहीं रह सकेंगे ।

समाज में पनपने एवं फैलने वाली बुराइयों और दुष्प्रवृत्तियों को रोकना केवल सरकार का ही काम नहीं है, वरन् उसका पूरा उत्तरदायित्व प्रबुद्ध एवं सभ्य नागरिकों पर है । प्रबुद्ध एवं मनस्वी व्यक्ति जिस बुराई या कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाते हैं वह देर-सवेर में मिटकर ही रहती है । महिलाओं को पति के मरने पर बलपूर्वक जबरदस्ती चिता में झोंक देने की सती प्रथा का अन्त हो गया । अँग्रेजों के फौलादी चंगुल में जकड़ी हुई भारत की स्वाधीनता को मुक्त कराने के लिए दासता के बन्धन तोड़ने के लिए जब प्रबुद्ध वर्ग ने आवाज उठाई तो वह होकर ही रहा । आज समाज में अनैतिकता, अविवेक, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, असभ्यता आदि बुराइयाँ इसीलिए विद्यमान हैं कि उनका विरोध करने के लिए प्रबुद्ध वर्ग कटिबद्ध नहीं हुआ है । यदि प्रबुद्ध वर्ग में सामाजिक बुराइयों से जूझने की वैसी ही सक्रियता उत्पन्न हो जाय, जैसी कि राजनैतिक गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए हुई थी तो देखते-देखते हमारे समाज पर छाये कलंकों की कालिमा धुल जाय ।

समाज में संव्याप्त कुरीतियों, मूढ़ मान्यताओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों ने सामाजिकता, सुख-शान्ति एवं समृद्धि की जड़ों को खोखला कर दिया है । भारतीय समाज में दहेज कुरीति इतनी बुरी तरह जड़ जमाये बैठी है कि पारिवारिक शान्ति, समृद्धि एवं प्रगति को ही नष्ट किये दे रही है । एक कन्या के विवाह में मध्यम परिवार तबाह हो जाता है और यदि किसी के कई कन्यायें हैं तब तो उसको जीवित मृत ही समझिए । ऐसा भी नहीं कि उस धन का सदुपयोग होता हो । लड़के वालों पर तो 'जस थोरेहु धन खल इतराई,' वाली कहावत लागू होती है, विवाह-शादी के अवसर पर तो उस पर उन्माद सा छा जाता है और बारात की निकासी, बाजे-गाजे, नाच-स्वांग, तमाशा, नौटंकी दावत आदि में अपनी गाढ़ी कमाई से अर्जित पैसों की होली जला देते हैं । दुनिया के अन्य देशों में विवाह एक सामान्य सा पारिवारिक पर्व उत्सव जैसा होता है । अब कुछ विचारशील प्रबुद्ध वर्ग की आँखें खुलने लगीं हैं और विवाह सादगीपूर्ण ढंग से धार्मिक वातावरण में सम्पन्न होने लगे हैं किन्तु अभी वह प्रचलन 'ऊँट के मुँह में जीरे' के समान है ।

विवाह एवं दहेज भी तो एक कुरीति है । ऐसी अगणित कुरीतियाँ हमारे समाज को खाये जा रही हैं । धर्म के नाम पर पाखण्डों पर, झोली भरी जनता, अपने कड़े परिश्रम का अरबों रुपया स्वाहा कर देती है । यदि यह समय, श्रम एवं धन उपयोगी कार्यों पर खर्च किया जाने लगे तो प्रगति और समृद्धि के अनेकों द्वार खुल जायें । मृतक भोज, पशु बलि, बाल-विवाह, जाति-पाँति, ऊँच-नीच, नौते-स्याने, भूत-पलीत, टोना-टोटका, पर्दा प्रथा, कन्या विक्रय, दिवाली पर जुआ खेलना, होली पर कीचड़ उछालना आदि असंख्य कुरीतियाँ, नशेबाजी, हरामखोरी, कामचोरी, जमाखोरी, बेईमानी मिलावट आदि की अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ समाज को जर्जर बनाये दे रही हैं । ऐसे में स्वयं को इनसे सम्वर्द्धन मानकर 'इक्कड़' सी जिन्दगी जीना एक प्रकार से असभ्यता ही कहा जायेगा । अपने मतलब से मतलब रखें या दूसरों से सम्बन्धित कामों में भी हाथ डालें ? इस प्रश्न के उत्तर में आमतौर से समझदारी यह कहती है कि जिन कामों से अपना कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो, कोई लाभ उपलब्ध होता न दीखे उससे दूर रहना ही अच्छा है ।

यह दृष्टिकोण अपनाने वाले प्रायः झंझटों से बचे रहते हैं और अपने धन्धे में लगे रहने के लिए अवसर भी पूरा पाते हैं । दूसरों के काम में हाथ बँटाने से अपना समय तो जाता ही है, कई बार आर्थिक उपार्जन में भी कमी आती है । इस आशंका से अधिकांश लोग अपने को दूसरों के झंझट में न फँसाने की ही नीति अपनाते हैं । लगता है कदाचित् यही नीति लाभदायक भी है ।

पर बात ऐसी है नहीं । अपने को, अपने तक ही सीमित रखने की नीति से मनुष्य एक बहुत बड़े लाभ से वंचित हो जाता है । वह है-दूसरों की सहानुभूति खो बैठना । स्वार्थी व्यक्ति किसी का

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


कुछ प्रत्यक्ष बिगाड़ नहीं सकता किन्तु अपने लिए सम्बद्ध व्यक्तियों की सद्भावना खो बैठना ऐसा घाटा है जिसके कारण उन सभी लाभों से वंचित होना पड़ता है जो सामाजिक जीवन में पारस्परिक स्नेह, सहयोग पर टिके हुए हैं । स्वार्थी से दूसरों को आदान-प्रदान की आशा नहीं होती इसलिए वे भी अपनी मुट्ठी सिकोड़ लेते हैं । तिरस्कृत न सही, उपेक्षित तो ऐसे व्यक्ति निश्चित रूप से रहते हैं । आगे चलकर ऐसे व्यक्तियों को अपनी प्रगति के लिए अपने पर ही निर्भर करना पड़ता है । दु:ख, शोक में साथी भी ढूँढ़े नहीं मिलते । आर्थिक न सही मनुष्य को नैतिक, सामाजिक तथा भावनात्मक सहायता की कमी किसी न किसी रूप में आवश्यकता पड़ती ही है । जो अपने मतलब से मतलब रखने की चतुरता बरतते हैं उन्हें ऐसे अवसरों पर निराश रहना पड़ता है । स्वयं किसी के काम न आया जाय तो दूसरा क्यों कोई अपने काम आये । जब अपनी दिलचस्पी किसी में नहीं तो कोई अपने कामों में हाथ क्यों बँटाये ? क्यों दिलचस्पी दिखाये ? एकाकीपन कितना नीरस होता है इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं । स्वार्थ सीमित दृष्टिकोण पर एकाकीपन की नीरसता छाई रहती है ।

किसी दुर्घटना या अपराध को देखते हुए भी अनेक लोग साक्षी देने के झंझट से बचना चाहते हैं । सबूत के अभाव में अपराधी छूट जाते हैं । यह संकट अपने ऊपर भी आ जाता है । और अपराधी तत्त्व यह समझकर कि हमारे विरुद्ध कोई गवाह तक न मिलेगा निर्भयतापूर्वक अपनी दुष्टता चलाते रहते हैं । इसकी चपेट में वे भी आ सकते हैं जिनने अपराध को रोकने या सच्ची गवाही देने में भी उत्साह नहीं दिखाया । यह अनुत्साह भी समाज में बढ़ते हुए अपराधों का एक बहुत बड़ा कारण है ।

सार्वजनिक संस्थाओं में भाग लेने वालों को उनके स्वजन, सम्बन्धी आमतौर से बुरा मानते हैं और इसे बेवकूफी कहते हैं । किन्तु यह भुला दिया जाता है कि जन-सम्पर्क से उपलब्ध होने वाली योग्यता वृद्धि का कितना मूल्य है । कितने ही व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में विशुद्ध सेवा भावना से ही आये किन्तु इस आधार पर उन्हें मिलने वाले श्रेय, अनुभव तथा कौशल ने कहीं से कहीं पहुँचा दिया । महामानवों को प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचने का अवसर इसी आधार पर मिला है । स्वार्थियों के लिए यह द्वार सदा बन्द ही रहते हैं ।

किसी अपरिचित की संकट में सहायता करना, अन्याय के विरुद्ध लड़ना, लोकहित के कामों में हिस्सा बटाना, संयमी जीवन बिताना, यों तत्काल तो घाटे का सौदा प्रतीत होता है, पर बदले में अनेकों की श्रद्धा, मित्रता एवं सहायता के जो हाथ बढ़ते हैं उससे देखते हुए लगता है वस्तुत: यह रास्ता नफे का है । जो गँवाया जाता है उससे अनेक गुना वापिस होकर लौटता है ।

## मानवी गरिमा अन्त की उत्कृष्टता पर निर्भर

मनुष्य और पशुओं में यह अन्तर है कि अपनी इच्छाओं और आकाक्षांओं को उठता, उमँगता अनुभव करता है लेकिन पशु नहीं । यों मनुष्य और पशु में बुद्धि का अन्तर भी है पर वह गौण है । कई प्राणी मनुष्य से भी अधिक बुद्धिमान होते हैं और अपना हित और अहित मनुष्य से भी ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं । मनुष्य की बुद्धिमत्ता और सर्वोपरि लगती है तो इसलिए कि इसके अन्तस् में इच्छा, आकांक्षाओं के ज्वार निरन्तर उठते हैं और उनकी प्रेरणाओं से ही वह नयी उपलब्धियाँ प्राप्त करता है । नयी शोधें करता है । जबकि पशुओं में सीमित इच्छायें होती हैं या कि वे अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही बुद्धि का प्रयोग करते हैं ।

कहने का आशय यह कि आकांक्षायें ही मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को गति देती हैं उन्हें सक्रिय करती हैं मनुष्य अपने आस-पास कुछ ऐसी स्थितियाँ, ऐसी क्षमतायें और ऐसे साधन देखता है जो उसके पास नहीं हैं । बुद्धि उन्हें पास कर देती है और उसी का सूक्ष्म रूप अन्त:करण उन्हें पाने के लिये मचल उठता है, तथा जिसे बुद्धि के नाम से जानते हैं वह चेतना उसे प्राप्त करने के उपाय

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


सोचती है । उन्हें प्रयोग में लाने की चिन्ता और व्यवस्था करती है ।

अतः बुद्धि कहें या इच्छायें-यही वह तत्त्व या चेतना है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करती है । अन्य प्राणी न स्वास्थ्य की कामना करते हैं, न धन चाहते हैं, न ही उन्हें इस बात की चिन्ता है कि उनका प्रभाव क्षेत्र कितना व्यापक है तथा न ही वे यश की कामना करते हैं । यह मनुष्य ही है जिसके मन में कामना, आकाक्षायें उठा करती हैं और वह उन आकाँक्षाओं की पूर्ति में व्यस्त हो जाता है । सामान्य मनुष्य स्वास्थ्य, धन, यश और प्रभाव की कामना करता है । उसके मन में इन्हीं के कल्पना चित्र बनते बिगड़ते रहते हैं । जैसे ही कल्पना चित्र स्थिर हुआ कि वह इनकी पूर्ति में लग जाता है । उसकी मानसिक शक्तियाँ उस चित्र को साकार करने में जुट जाती हैं । उसके शारीरिक क्रिया-कलाप अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये सक्रिय होने लगते हैं ।

इच्छाओं और आकांक्षाओं को इसी कारण मनुष्य की प्रगति का मूल कहा जाता है । क्योंकि दिखाई देने वाली प्रवृत्तियाँ तो बाद में उभरती हैं, वे प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं के रूप में ही जन्म लेती हैं । यों हमारे मन में कितनी ही इच्छायें उठती रहती हैं पर पूरी शायद उनकी एक प्रतिशत भी नहीं हो पातीं । बाजार जा रहे हैं और दुकानों पर कई सुन्दर-सुन्दर चीजें दिखाई देती हैं । मन चुपचाप उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता चलता है । उन्हें अच्छा या बुरा बताता जाता है । इसका यही अर्थ है कि मन उन्हें प्राप्त करने और छोड़ देने के निर्णय करता जा रहा है । ये प्रतिक्रियायें इस बात का संकेत हैं कि मन उन चीजों की प्राप्ति की कल्पना करता चल रहा है और उस कल्पना से आनन्दित होता जा रहा है । क्योंकि मन का स्वभाव है कि जिस चीज को वह पसन्द करता है उसे वह प्राप्त भी करना चाहता है ।

लेकिन कई इच्छायें तो उठकर बैठ जाती हैं । कुछ होती हैं जिन्हें साकार करने का विचार भर आता है और कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें प्राप्त करने की व्यक्ति चेष्टा भी करता है । इन सब के बाद कुछ एक ऐसी होती हैं जो पूरी हो पाती हैं । पर वह सत्य है कि मनुष्य इच्छाओं का पुतला है और उसकी इच्छायें किस स्तर की हैं यह उसकी कार्य पद्धति, विचारों और क्रिया-कलापों से पता चल जाता है । यह बात कई लोग कहते हैं कि मनुष्य कैसा है-यह उसके चेहरे पर लिखा होता हैं और उसके चेहरे को देखकर पता लगाया जा सकता है कि वह क्या चाहता है ? यह ठीक भी हो सकता है । शान्त झील में जिस प्रकार एक पत्थर फेंकने से लहरें उठने लगती हैं और किनारे पर आकर ही दम लेती हैं । ठीक इसी प्रकार हमारी इच्छायें क्या हो सकती हैं ? यह चेहरे पर आने वाले हाव-भावों से मालूम पड़ जाता है । कुछ ऐसी मोटी कसौटियाँ भी हैं जिनके आधार पर मनुष्य का निर्णय किया जा सकता है, जैसे व्यभिचारी और कामुक व्यक्ति की आँखों से निर्लज्जता टपकती रहती है । चोर, डाकू और बदमाशों के चेहरे पर एक नृशंस डरावनापन रहता है । बधिक की दुर्गन्ध से ही बकरी मिमियाने लगती है । इसी प्रकार सदाचारी, सौम्य और सज्जन स्वभाव के व्यक्तियों की मुखाकृति बता देती है कि यह व्यक्ति सात्त्विक स्वभाव का है । विचार युक्त और गम्भीर मुँह कह देता है कि यह व्यक्ति विद्वान और विचारशील है । प्रेम व आत्मीयता के भाव से जीव-जन्तुओं की ओर देखें तो वे हमारी ओर खिंचे चले आते हैं । उसी क्षण यदि हम अपने चेहरे का भाव बदलते और उन्हें क्रूर दृष्टि से देखने लगें तो पास खड़े जानकर दूर खिसक जायेंगे ।

यह सब सिद्ध करता है कि मनुष्य इच्छाओं का पुतला है और आकांक्षायें उसका जीवन हैं । इच्छाओं और आकांक्षाओं के चक्कों पर ही मनुष्य जीवन की गाड़ी दौड़ती है अन्यथा उसकी सामान्य आवश्यकतायें तो इतनी थोड़ी सी हैं जिन्हें आधारभूत कहा जा सके कि वे थोड़े से समय और थोड़े श्रम द्वारा ही पूरी हो सकती हैं । आवश्यकताओं के आधार पर ही यदि मनुष्य का मूल्यांकन और महत्त्व विश्लेषित किया जाय तो लगेगा कि पेट भर खाना मिल जाय तन ढकने को कपड़ा मिल जाय और हवादार आराम देह मकान

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हो-तो इसके बाद उसकी कोई जरूरत नहीं है । इससे आगे शिक्षा और मनोरंजन भी जोड़े जा सकते हैं, पर वे भी बौद्धिक विकास के आधार पर हैं । बौद्धिक आवश्यकता न हो तो इनकी कोई जरूरत नहीं है । शिक्षा जहाँ मनुष्य के बौद्धिक विकास और मानसिक शिक्षण से सम्बन्ध रखती है वही मनोरंजन इन विशिष्ट चेतनाओं को विश्राम देने तथा सुख प्राप्त कराने के लिए होता है । पशु भी अपने बच्चों के साथ अठखेलियाँ करते हैं और किलकारियाँ भरते हैं । क्रियाओं को मनोरंजन नहीं कहा जा सकता क्योंकि पशुओं में वृद्धि और उसकी स्फुरणा इच्छा जैसी कोई हलचल नहीं दिखाई देती । अगर कुछ होती भी है तो नहीं के बराबर ।

इसलिए मनुष्य के समग्र विकास और उसकी सभ्यता के उच्चस्तर का दारोमदार बुद्धि आकांक्षा पर जाता है । सामान्य इच्छाओं से ऊँचा उठकर और समाज को दृष्टिगत रखकर अपनी क्रियाओं को नियोजित करने वाले व्यक्ति मनुष्यता के विकास में योगदान दे पाते हैं । इस श्रेणी के व्यक्ति महामानव स्तर के होते हैं और इसका सबसे निचला छोर है, उन लोगों की मनोभूमि जो अपने ही सुख को केन्द्र मानकर चलते हैं । एक को श्रेय, सम्मान मिलता है तो दूसरे की आत्यन्तिक लिप्तता उसे अपमान तथा निन्दा का पात्र बनाती है क्योंकि दूसरों का सहयोग, अनुदान और उपकारों से हम आगे बढ़ते हैं तो देवत्व की इस मर्यादा के अनुरूप हमें भी तो चलना होगा ।

देवत्व की यह विशेषता है जिसके कारण मनुष्य जीवन और समाज आगे बढ़ता है, गतिवान होता है । उस स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती जबकि कोई वैज्ञानिक दुनियाँ के राग-रंगों को छोड़कर मशीनों का आविष्कार नहीं करता और मनुष्य के श्रम की कठोरता को कम नहीं करता तो क्या होता ? कोई चिकित्सा विज्ञान का साधक होता है और अपनी सारी जिन्दगी बीमारियों से लड़ने तथा उसका इलाज खोजने में बिता देता है । कोई एक साहित्यकार होता है जो मनुष्य के चिन्तन को आगे बढ़ाता है और पुस्तकों के रूप में अपनी विरासत अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाता है । सम्भव है कि इन कार्यों के मूल में व्यक्ति की अपनी महत्त्वाकाँक्षा भी जुड़ी हो, पर वह महत्त्वाकांक्षा इतने ऊँचे स्तर की होती है कि उसमें मनुष्य जाति के कल्याण का उद्देश्य भी जुड़ा होता है और उन आकांक्षाओं को पूरा करने में जो कठोर श्रम करना पड़ता है तथा जिन कठिनाइयों से सामना होता है वे स्थितियाँ व्यक्ति की साधना को तपसाधना बना देती हैं ।

उत्कृष्ट और मध्यम स्तर की इच्छाओं के साथ ऐसी इच्छायें रखने वाले व्यक्ति भी मिलते हैं जिन्हें न समाज की चिन्ता रहती है और नहीं इस बात से कोई सरोकार कि हमारे प्रयत्नों में से थोड़े बहुत देवत्व की सीमा में भी आते हैं या नहीं । अपना सुख ही उनके लिये सर्वोपरि लक्ष्य होता है और उसकी प्राप्ति के लिए हर तरह के प्रयास, औचित्य में आते हैं । उन्हें इस बात की चिन्ता भी नहीं रहती कि हमारे प्रयत्नों से किसी का भला हो रहा है अथवा बुरा ? जैसे कोई व्यक्ति धन को ही सर्वोपरि मानता है और उसे प्राप्त करने के लिए हर उचित, अनुचित प्रयास करता है । अगर व्यापारी हो तो मुनाफाखोरी से लेकर मिलावट और अपने उत्पादन का गुणानुवाद कर अपने माल को खपाने की कोशिश करेगा । नौकरपेशा हुआ तो किसी काम के लिए आने वाले व्यक्ति से अनाप-शनाप रिश्वत ऐंठने का प्रयत्न करेगा । मजदूर हुआ तो कम काम कर अधिक पैसा प्राप्त करना चाहेगा । यह सब इच्छायें निकृष्ट स्तर की पशुता से भी गिरी हुई कही जायेंगी ।

यद्यपि उचित तो यह है कि व्यक्ति जितना समाज से ग्रहण करता है । उसके बराबर समाज को दे भी । माना कि पैसे से हर चीज खरीदी जा सकती है । पास में पैसा हो और इच्छित चीज न मिले तो पैसे की क्या उपयोगिता ? पैसे की व्यवस्था और उससे क्रय-विक्रय की परम्परा तो इसलिए बनी है कि उसके माध्यम से समाज के सभी सदस्यों की आवश्यकतायें पूरी होती रहें अन्यथा पैसा देकर खरीदने से उस वस्तु का पूरा मूल्य नहीं चुकाया जा सकता और हम अपने समस्त जीवन में जिन

वस्तुओं का उपयोग करते हैं-ज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि व्यवस्थाओं का लाभ उठाते हैं और इन व्यवस्थाओं के निर्माण में जिन एकान्त साधकों का हाथ है, उनके नैतिक रूप से ऋणी हो जाते हैं । उस ऋण से उऋण होने का तकाजा है कि हम अपने प्रयत्नों द्वारा आंशिक रूप से ही सही उन परम्पराओं को कायम रखें जो कि उनके आविष्कर्त्ताओं ने आरम्भ की हैं । अब यह हो नहीं सकता कि रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रची गयी कृतियों से अथवा पुरातन काल से चली आ रही ज्ञान-विज्ञान की धाराओं के प्रेणताओं की अपनी कृतांजलि अर्पित करें । जिन मनीषियों और साधकों का इन उपलब्धियों के मूल में सारे जीवन का पुरुषार्थ और सम्पूर्ण जीवन की साधना कारण रूप से उपस्थित है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का यही व्यावहारिक उपाय रह जाता है कि उसी अनुपात में थोड़ा समाज के लिए भी करते रहें ।

और जो इस नैतिक दायित्त्व से पलायन करते हैं उन्हें मानवीय गुणों से सम्पन्न तो नहीं कहा जा सकता । इतना भी न बन पड़े तो कम से कम यह नहीं होना चाहिए कि हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दूसरों को हानि पहुँचाकर अनैतिक, अनुचित उपाय अपनाकर अपना लाभ कमाने की बात सोचें । इस रीति-नीति को अपनाकर कोई व्यक्ति थोड़े समय के लिए सुखी बनकर अपने अहं को भले ही तुष्ट करे पर परिणामतः वह बुरा है । समाज के पक्ष में तो यह स्थिति बुरी कही जायगी जिससे कि सामाजिक सुव्यवस्था में कोई सहयोग मिलने के स्थान पर उल्टा विघ्न पड़ता है । स्वयं व्यक्ति के लिए भी कोई स्थायी लाभ का आधार नहीं बनाती ।

मनुष्य को अपनी गरिमा को सतत् याद रखना होगा । नर, पशु एवं देव-मानव में यही तो अन्तर है । सृष्टि के क्रम में यह स्वाभाविक है कि प्रगति वांछित दिशा में हो । यही श्रेयस्कर भी है । इसमें सृष्टा की इच्छा पूर्ण होती है-सृष्टि का क्रम चलता है और प्राणी को उत्साहपूर्वक अग्रगमन का मार्ग मिलता है । बुद्धिमत्ता इसमें है कि इस गति चक्र की दिशाधारा को सही बनाये रखी जाय और श्रम की सार्थकता प्रकट होते रहने का सुनियोजित निर्धारण एवं व्यवस्था क्रम बनाया जाय ।

भटकाव वहाँ उत्पन्न होता है जब मात्र भौतिक प्रगति को ही सब कुछ मान बैठा जाता है और उसी के साथ-साथ आत्मिक प्रगति के जिस सन्तुलन को अनिवार्य रूप में बनाये रहना आवश्यक है, उसकी उपेक्षा की जाने लगती है । एकाकीपन, काना, कुबड़ा, लंगड़ा-लूला एवं पक्षाघात पीड़ित जैसा विचित्र अनगढ़ लगता है । उपार्जन में जिस कुशलता की आवश्यकता है, उपयोग में इससे कम नहीं वरन् अधिक ही दूरदर्शिता चाहिए अन्यथा अनगढ़ दृष्टिकोण उपलब्धियों का सदुपयोग न कर सकेगा । दुरुपयोग होने पर तो उपयोगी वस्तुएँ भी हानिकारक सिद्ध होती हैं । बन्दर के हाथ तलवार जैसा बहुमूल्य शस्त्र पड़ जाने पर संकट ही संकट उत्पन्न खड़ा होता है उसी प्रकार सम्पदा का प्रयोक्ता यदि अदूरदर्शी हो तो हर स्तर के भौतिक उपार्जन अपने तथा दूसरों के लिए हानिकारक, कष्टकारक सिद्ध होते रहेंगे । अतएव भौतिक उपलब्धियों का उत्साहपूर्ण उपार्जन करते समय यह ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है कि प्रयोक्ता का विवेक उपयुक्त मात्रा में जग रहा है या नहीं ।

कोई किसी को सहयोग क्यों दे ? अपनी इच्छा सहयोग प्राप्त करने की हो, सो ठीक है, पर देखना यह भी है कि दूसरा कोई क्यों अपने समय, श्रम, मनोयोग, उत्साह, कौशल आदि किसी को देने की हानि उठाये ? अपनी ही तरह दूसरों के भी स्वार्थ हैं । जब हम अपने ही लाभ या सुख की बात सदा सोचते रहते हैं और उसी आधार पर कुछ करने के लिए प्रयत्नरत होते हैं तो दूसरे भी क्यों न वैसे ही स्वभाव के होंगे ? मनुष्यों की आकृति में बहुत अन्तर नहीं है उसी प्रकार प्रकृति भी प्रायः मिलती-जुलती ही है । स्वार्थ सभी को प्रिय है पर इसके लिए साधन जुटाने में आदान-प्रदान की आवश्यकता तो पड़ेगी ही । वह न मिल सके तो फिर अकेले प्रयत्नों से न जीवनोपयोगी साधन जुटेंगे, न सहयोग मिलेंगे और न उल्लास उभरेंगे ।

जीवन सत्ता एक साझे का व्यवसाय है । जिसमें शरीर और चेतना दो हिस्सेदारी की अपने-अपने ढंग की महत्त्वपूर्ण भागीदारी है । इन दोनों के समन्वय, सहयोग से ही समग्र उद्देश्य की पूर्ति होती

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


है । गाड़ी के दो पहिये मिलकर ही उसे गति प्रदान करते हैं । एक पैर से चल सकना तो दूर खड़े रह सकना भी कठिन है । असली न सही नकली पैर का सहारा तो लेना ही पड़ता है । नाव खेने में एक हाथ से डांड़ चलाने पर सन्तुलन नहीं बनता । इसी प्रकार प्रगति की आकांक्षा मात्र दूसरों का श्रम या साधन उपलब्ध करने भर से पूरा नहीं होता । उसमें जीवित रहने की,शरीर निर्वाह की आवश्यकताएँ पूरी होती रह सकती हैं । पर प्रगति इतने तक ही सीमित नहीं है ।

जीवन सत्ता का सर्वोपरि पक्ष चेतना है । चेतना की भी अपनी कुछ आवश्यकताएँ हैं । शरीर की भूखों से सभी परिचित हैं और उसकी पूर्ति इन्द्रिय तृप्ति के रूप में-पेट, प्रजनन के साधन जुटाने के रूप में-प्रयत्न चलते भी रहते हैं । समझा जाना चाहिए कि अन्त:चेतना की भूखें भी अपने ढंग की हैं और वे विशुद्ध रूप से भावनात्मक हैं । चेतना ज्ञान एवं भावना के समन्वय में प्रकट परिलक्षित होती है । इसकी तृप्ति एवं पुष्टि दूसरों की सद्भावनाएँ अर्जित करने पर ही सम्भव है । अस्तु प्रयत्न यह ही होना चाहिए कि सहकारिता का आश्रय लेते हुए यह भी देखा जाय कि अन्त:करण को उल्लास दे सकने वाली सद्भावनाओं को अर्जित कर सकना सम्भव हो रहा है या नहीं । यदि नहीं तो समझना चाहिए कि सर्वतोमुखी प्रगति की बात बनी ही नहीं ।

सहकारिता का भाव पक्ष अन्तरात्मा की तुष्टि के लिए साधन-पक्ष शरीर-पोषण के लिए समान रूप से आवश्यक है । अस्तु दोनों ही क्षेत्रों में दोनों ही प्रयोजनों के लिए समग्र सहायता उपलब्ध करने के लिए प्रयत्न चलने चाहिए । यह कैसे हो ? इसका उत्तर एक ही है मूल्य चुकाकर । जिस प्रकार सुविधा-सामग्री उपलब्ध करने के लिए अपने श्रम साधनों का प्रतीक पैसा देना पड़ता है, उसी प्रकार दूसरों की सद्भावना प्राप्त करने के लिए बदले में अपनी बनावटी-शिष्टाचार परक नहीं वरन् अन्तराल की गहराई से निकली हुई आत्मीयता प्रदान करनी पड़ती है । सर्वविदित है कि जैसा बोया जाता है वैसा ही पौधा उगता है और फल मिलता है । घटिया बीजा बोया जाय तो उसी स्तर की फसल कटेगी । आरम्भ अपनी ओर से-प्रतिक्रिया दूसरों को ओर से प्रस्तुत किये जाने की परम्परा है । ऐसा कहाँ होता है कि पहले दूसरे लोग अपना सहायता उपक्रम चलायें, इसके बाद अपनी ओर से कृतज्ञता व्यक्त की जाय या कीमत चुकाई जाय ? पोस्ट आफिस, स्टेशन कहीं भी जाइए पहले पैसा देना पड़ता है पीछे टिकट, पोस्टकार्ड आदि मिलता है क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, न कि प्रतिक्रिया उपलब्ध होने के बाद क्रिया के रूप में बदला चुकाना । पहले अपनी ओर से करने और बदला दूसरों की ओर से मिलने का सिद्धान्त सर्वमान्य है । उधार खाता तो कभी-कभी किन्हीं-किन्हीं विशेष अवसरों पर विशेष व्यक्तियों के लिये ही प्रयुक्त होता देखा गया है । बैंक में राशि जमा करने पर ही तो चैक भुनाने की सुविधा मिलती है ।

हमें दूसरों के खेत में अपनी सद्भावना के बीज बोने चाहिए ताकि उपयुक्त समय पर उपयुक्त परिणति की आशा बँध सके । अभिभावक बच्चों के साथ जो स्नेह-दुलार करते हैं उसी की परिणति बच्चे बड़े होने पर अभिभावकों की सेवा सुश्रुषा के रूप में प्रस्तुत करते हैं । प्रगति स्वाभाविक भी है और सुखद भी, पर उसके लिये आकांक्षा की मौलिक किन्तु अनगढ़ प्रवृत्ति को उद्देश्यपूर्ण, उच्चस्तरीय बनाना पड़ता है अन्यथा अनगढ़ आकांक्षा पाशविक हो सकती है और नीति मर्यादाओं के समस्त अनुबन्धों की उपेक्षा करके अनैतिक एवं आक्रमण तरीके अपनाकर भी उद्धत, तृष्णा, वासना के रूप में प्रकट हो सकती है । इससे प्रयास भी निरर्थक जायगा और परिणाम भी उलटा मिलेगा । ठीक इसी प्रकार दूसरों की सेवा, सहायता, अनुकूलता, सद्भावना उपलब्ध करने के लिए शालीनता, सज्जनता, आत्मीयता, उदारता-सेवा भावना का अभ्यास आचरण करना होगा । अन्यथा बिना मूल्य पाये मुफ्त में सद्भावना सिक्त सहायता करने के लिए किसी के मन में क्यों उत्साह उठेगा । दोनों ही क्षेत्रों में दूरदर्शिता भरे निर्धारण एवं प्रयास अपनी ही ओर से आरम्भ करने होंगे । अन्त:क्षेत्रों में उद्धत आकांक्षाओं का नियमन करते हुए उन्हें सदाशयता पूर्ण बनाना होगा । इसी

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रकार सद्भावना प्राप्त करने के लिए अपने चिन्तन एवं चरित्र में ऐसी उत्कृष्टता का समावेश करना होगा जो दूसरों की प्रशंसक, समर्थ की ही नहीं, सच्चे अर्थों में मित्र-सहयोगी भी बना सकने में सफल हो सके । इन दो निर्धारणों को क्रियान्वित होने की व्यवस्था बनते ही प्रगति की आकांक्षा को पूरा कर सकने वाले अनेकों आधार खड़े होते तथा सफल बनते दृष्टिगोचर होने लगते हैं ।

## आत्मा की एक ही प्यासः सहानुभूति

मनुष्य एक चेतन प्राणी है । वह मात्र भौतिक वस्तुओं से सन्तुष्ट नहीं हो सकता । अन्तर्निहित चेतना को दूसरों का स्नेह-आत्मीयता पाने की आकांक्षा होती है । पाने पर ही वह तुष्ट होती है । पूर्ति न होने पर खिन्न, अतृप्त बनी रहती है । इन मनोवैज्ञानिक तथ्य को जानकर ही परिवार बसाने, समाज गठित करने की योजना ऋषियों ने बनायी होगी । परिवारिकता एवं सामाजिकता के जहाँ भौतिक लाभ हैं, वहीं इस आत्मिक आवश्यकता की भी पूर्ति अपने आप होती रहती है । पर्व, त्यौहार, बड़े आयोजनों में समूह को एकत्रित करने के पीछे यही तथ्य निहित है कि परस्पर एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता उभरे-सहानुभूति का आदान-प्रदान चले । सहृदयता एवं सेवा का भाव उमड़े ।

सामान्यतया मान्यता यह है कि दूसरों की सेवा, परोपकार, परमार्थ भौतिक वस्तुओं द्वारा किये जा सकते हैं, पर यह एक सीमा तक सच है । वास्तविकता तो यह है कि सहृदयता, स्नेह-सहानुभूति से भरे-पूरे शब्द आश्वासन दूसरों के लिए कहीं अधिक प्रेरणादायक एवं लाभप्रद सिद्ध होते हैं । जबकि इनके अभाव में उपेक्षा अन्यमनस्कता से किया गया सहयोग भी उतना प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाता । उपयोगी बनने के लिए उसमें आत्मीयता का पुट जोड़ना होता है । कितनी बार तो सहानुभूति का चमत्कारी प्रभाव पड़ते देखा गया है । मनोचिकित्सा का सम्पूर्ण काय-कलेवर इसी तथ्य पर अवलम्बित है । मानसिक रूप से विक्षुब्ध मनोरोगी भी स्नेह एवं सम्वेदना का अवलम्बन पाकर ठीक होते देखे गये हैं । मनोचिकित्सक अपनी सहानुभूति दर्शाकर, विश्वास अर्जित कर कठिन मनोरोगी की भी चिकित्सा करने में सफल होते हैं । आत्मीयता पाकर रोगी के मन में आशा का संचार होने लगता है । असाध्य समझे जाने वाले मनोरोग भी कई बार ठीक होते देखे गये हैं । अन्तरंग से छलकने वाली सहृदयता का अधिक योगदान होता है, जिस का चमत्कारी प्रभाव रोगी के ऊपर पड़ता है ।

सहृदयता स्वयं में एक बड़ी शक्ति है-समग्र उपचार पद्धति है । सन्त, महात्मा, ऋषि, देवदूत इसी के पुंज होते हैं । उनके हृदय के अन्तराल से निकलने वाली सहानुभूति की किरणें निकटवर्ती व्यक्तियों पर चमत्कारी प्रभाव डालती हैं । उनके आशीर्वाद, आश्वासन से कठिन रोग भी ठीक होते देखे गये हैं । आश्वासन पाकर रोगी का मनोबल बढ़ जाता है । दुर्बल मनःस्थिति ही समस्त रोगों की जड़ है । जिसके रहते कोई भी उपचार पद्धति सफल नहीं होती । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से अवगत सन्त, महात्मा रोगी के मनोबल को ही बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं । उनके आश्वासन एवं आशीर्वाद के चमत्कारी प्रभाव के पीछे मनोबल का बढ़ना ही प्रमुख कारण होता है । जिससे रोगी भविष्य के प्रति आशान्वित हो जाता है ।

सहानुभूति की आवश्यकता रोगी को ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को होती है । मनुष्य की यह मौलिक आवश्यकता है, जिसकी आपूर्ति वह चाहता है । नर-नारी, बच्चे, युवक, वृद्ध सभी को अपेक्षा होती है कि उनसे अन्य लोग सहानुभूति रखें स्नेह, सम्मान दें दुःखों में हिस्सा बँटायें । इसकी पूर्ति जहाँ जितनी मात्रा में होती रहती है, वहाँ की परिस्थितियाँ भी उतनी ही श्रेष्ठ, स्नेह-सद्भाव से भरी-पूरी होती हैं । व्यक्ति की सहृदयता ही पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की शालीनता एवं सुव्यवस्था का मूल आधार है । सेवा, सहयोग के अधिकाधिक भावों से ही आत्मीयता का विस्तार होता है । सुख-साधनों की बहुलता भी, उपेक्षा के रहते मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं कर सकती ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


मनोरोगियों के पर्यवेक्षण अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि अधिकांश का जीवन उपेक्षित रहा । वांछित सहानुभूति न मिल पाने के कारण वे छोटे-छोटे आघातों को भी सहन करने में असमर्थ रहे । प्रेरणाओं के अभाव में वे भविष्य के प्रति निराशावादी बन गये । सामने आयी प्रतिकूलताओं को चिरस्थायी मान लेने, किसी से सहयोग का आश्वासन न मिलने से, वे अपना सन्तुलन खो देते हैं । जिससे सामने आये अवरोध जिनको थोड़े प्रयास से टाला जा सकता था, वे भी असम्भव बन जाते हैं ।

सहृदयता मानवी गरिमा का मेरुदण्ड है । जिसका सम्बल पाकर ही व्यक्ति एवं समाज ऊँचे उठते, मानवी गुणों से भरे-पूरे बनते हैं । इसका अभाव निष्ठुरता, कठोरता, असहिष्णुता जैसी प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट होता है । पारिवारिक विग्रहों एवं सामाजिक विघटनों में परस्पर की आत्मीयता का अभाव एवं इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पनपने वाले संकीर्ण स्वार्थपरता का ही प्रमुख योगदान होता है । चिन्ता, कुण्ठा, आत्म-हीनता, आवेश, उत्तेजना जैसे मनोरोग में परिस्थितियों का कम उपेक्षा का अधिक योगदान होता है । स्नेह, आश्वासन के अभाव से निराशावादी चिन्तन चलता तथा भविष्य अन्धकारमय दिखायी पड़ता है ।

मानसिक स्वास्थ्य का एक मात्र आधार है- मनुष्य स्नेह एवं आनन्द का अनुभव करे तथा अन्यों को भी अपने स्नेह आनन्द में सहभागी बनाये । मूर्धन्य मनोविश्लेषक डॉ० 'सिगमण्ड फ्रायड' का कहना है कि ''समस्त मानसिक विकृतियों का कारण स्नेह का अभाव है । स्नेह स्वीकार करने की तथा स्नेह देने की तत्परता मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण है ।'' आदान-प्रदान का यह क्रम जिस भी परिवार अथवा समाज में जितना ही अधिक चलेगा वह उतना ही सभ्य एवं समुन्नत होगा । समस्याओं की अधिकता एवं परिस्थितियों की विकटता आज चरम सीमा पर है । मनुष्य के बीच सौहार्द के बन्धन टूटते जा रहे हैं । अविश्वास एवं निराशा का ही साम्राज्य दिखाई पड़ता है । स्वार्थपरता, संकीर्णता की तरह फैलती जा रही है । यह इस बात के प्रमाण है कि भाव-सम्वेदनाओं की दृष्टि से मनुष्य खोखला होता जा रहा है । मानवी गरिमा के टूटते हुए इस मेरुदण्ड को हर कीमत पर बचाया जाना चाहिए । सहृदयता विकसित करने, उभारने, स्नेह, सहानुभूति बिखेरने के लिए हर सम्भव प्रयास करना चाहिए ।

## सहृदयता भी जीवन में उतनी ही अनिवार्य

सम्पन्नता: और समर्थता की शक्ति से सभी परिचित हैं । बुद्धि और परिश्रम की सहायता से प्रगति पथ पर बढ़ना और सफलताएँ पाना सम्भव होता है, यह तथ्य भी अविज्ञात नहीं है किन्तु उससे भी अधिक जिनकी गरिमा और उपयोगिता है उन दो महान विभूतियों से लोग प्राय: अपरिचित ही बने रहते हैं । वे दिव्य सम्पदाएँ हैं-सज्जनता और सहृदयता । इनके बिना श्रेय पथ पर अग्रसर हो सकना और जीवन के सुअवसर का आनन्द ले सकना सम्भव ही नहीं हो सकता ।

सज्जनता के साथ मनुष्य की प्रामाणिकता और सदाशयता जुड़ी रहती है । फलत: मनुष्य का वजन अपनी और दूसरों की आँखों में कहीं अधिक बढ़ जाता है । अप्रामाणिक और कुचक्री मनुष्य दुरभिसन्धियाँ रचते रहते हैं । इसमें उन्हें छद्म के सहारे आरम्भ में कुछ लाभ भी मिलता है पर कुछ ही दिनों में वस्तुस्थिति प्रकट होकर रहती है और उन्हें छूत के रोगी की तरह सब से अलग-थलग होकर रहना पड़ता है । अविश्वासजन्य असहयोग कितना कष्टकारक होता है और कितना भारी पड़ता है उसे यदि आरम्भ में ही जाना जा सके तो कोई दुर्जन बनने की मूर्खता न करे । आतन्क तो कोई भी मचा सकता है किन्तु आत्मिक प्रगति और संसार की सेवा करने का श्रेय प्राप्त कर सकना सज्जनता अपनाये बिना सम्भव नहीं ।

सहृदयता इससे भी उच्च स्थिति है । कला और करुणा के सहारे उत्पन्न होनी वाली भावसम्वेदना ही अन्त:करण को आनन्द विभोर बनाती है । उदारता और आत्मीयता का समन्वय ही देवत्व है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


देवता स्वयं धन्य बनते और अन्य असंख्यों को धन्य बनाते हैं । उनका यह वैभव जिस आधार पर बना और बढ़ा है उसे सहृदयता ही कह सकते हैं । इस संसार में जो कुछ अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है उस सब का उद्‌भव सहृदयता की पृष्ठभूमि पर ही सम्भव हुआ है ।

हृदयहीन होना मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है । इस दुष्प्रवृत्ति के कारण अपराध और अनाचार पनपते हैं । आततायी जिस शस्त्र के सहारे विनाश लीला रचते, आतंक फैलाते और चीत्कार उत्पन्न करते हैं वह और कुछ नहीं निष्ठुर दुष्टता ही है, इसी को हृदयहीनता कहते हैं । यों रक्त फेंकने वाली थैली सभी के सीने में विद्यमान है पर जिस अर्थ में हृदय-हीनता का उल्लेख होता है वह करुणा और मैत्री का अभाव ही है । इस दरिद्रता के कारण मनुष्य घृणित बनता और जन-जन का कोप भाजन बनता अभिशाप सहता है, जबकि आर्थिक तंगी वाले दरिद्र लोग सहानुभूति एवं सहायता भी अर्जित कर लेते हैं ।

रक्त फेंकने वाली थैली-हृदय का नाम करुणा की भाव सम्वेदना के साथ किस प्रकार जुड गया ? यह एक असमंजस जैसा प्रश्न है । शरीर में अनेकों अवयव हैं वे सभी अपनी हलचलों से शरीर यात्रा के साधन भर जुटाते और जड़ तत्त्वों से विनिर्मित समझे जाते हैं । फिर हृदय को क्यों भाव सम्वेदनाओं की अध्यात्म विभूतियों के साथ जोड़ा गया ।

इस प्रश्न का उत्तर एक सीमा तक विज्ञान देता है । उसने चेतना की उच्चस्तरीय विभूतियों में से मस्तिष्क को बुद्धि का और हृदय को भावना का केन्द्र माना है । जड़ शरीर के साथ चेतना का समीकरण करने वाले इन दो अवयवों का अपना विशेष स्थान है । इसलिए आत्मिक प्रगति के प्रयोजनों में समय-समय पर इनका विशेष उपयोग होता रहता है । ध्यान धारणा की साधनाएँ प्राय: इन्हीं दो केन्द्रों के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं ।

सूक्ष्म संस्थाओं में मस्तिष्क एवं हृदय का महत्त्व सर्वोपरि है । सामान्य वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर तो मस्तिष्क में स्नायु तन्तुओं का जाल बिछा दिखाई पड़ता है, रासायनिक तत्त्वों का सम्मिश्रण मात्र दीखता है । पर सूक्ष्म विश्लेषण-अध्ययन करने पर पता चलता है कि भली-बुरी विचारणाएँ इसी क्षेत्र में उपजती, अवतरित होती हैं । मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं, रासायनिक तत्त्वों में से वे कहीं प्रयत्क्ष दिखायी नहीं पड़तीं, पर अनुभव बताते हैं कि इनके माध्यम से ही विचारों को प्रकट होने का अवसर मिलता है । इन्द्रियों की सम्वेदनाओं को ग्रहण करने, उन्हें उपयुक्त निर्देश देने, संचालन करने में मस्तिष्क की ही प्रधान भूमिका होती है ।

हृदय आकुंचन, प्रकुंचन करता हुआ रक्त से भरी थैली जान पड़ता है, जो शरीर के विभिन्न अंगों को रक्त भेजता, अशुद्ध रक्त को एकत्रित, परिशोधित करता मात्र प्रतीत होता है । जीव-विज्ञान इसी सीमा तक हृदय का महत्त्व स्वीकार करता रहा है कि यह संस्थान शरीर में रक्त संचार की भूमिका सम्पन्न करता है । यह तो इसका स्थूल पक्ष रहा । आध्यात्मिक प्रतिपादनों में इस संस्थान को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । योगियों ने इस अंग को चेतना का केन्द-बिन्दु माना है । तीन शरीरों से बनी मानवी काया विकसित करने पर अत्याधिक जोर दिया है । यह अकारण नहीं है । इस आग्रह के पीछे ठोस वैज्ञानिक आधार हैं । जिन्हें समझा और लाभ उठाया जा सके तो मनुष्य का व्यक्तित्व एवं उसकी सामर्थ्य कई गुनी अधिक प्रखर हो सकती है ।

धड़कते हृदय एवं उससे निकलने वाली ध्वनि में भाव सम्वेदनाओं की सघनता हो तो उसका चमत्कारी प्रभाव-परिणाम दिखाई पड़ता है । दूसरों को प्रभावित करने, अनुकूल बनाने तथा श्रेष्ठ मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित करने में भाव-सम्वेदनाओं की ही प्रमुख भूमिका होती है । सभी महात्माओं, महापुरुषों में यह विशेषता देखने को मिलती है कि वे अन्त:करण की महानता द्वारा ही दूसरों को अनुवर्ती बनाते हैं । अन्यों को श्रेष्ठ जीवन जीने-परमार्थ प्रयोजनों में जुटने को बाध्य करते हैं । आध्यात्मिक क्षेत्र में हृदय की महत्ता, उसमें उठने वाली भाव सम्वेदनाओं की उपयोगिता को बहुत पहले से ही स्वीकार किया जाता रहा है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


इस तथ्य को अब वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा भी मान्यता मिल रही है । सामान्यतया माताएँ नव जात शिशुओं को अपने बायें वक्षस्थल से चिपकाये रहती हैं । इसका कारण दाहिने हाथ का कामों में व्यस्त रहना कहा जा सकता है पर कारण यह नहीं है । एक सर्वेक्षण के अनुसार बायें हाथ से काम करने वाली महिलाएँ भी शिशुओं को बायीं गोद में ही लिए रहती हैं । पुरातत्व संग्रहालयों में संकलित मूर्तियों, प्राचीन तैल चित्रों में उन चित्रों, कलाकृतियों का अध्ययन किया गया जिनमें नवजात शिशु को माँ के साथ चित्रित किया गया है । निष्कर्षों में पाया गया कि ८० प्रतिशत महिलाएँ अपने शिशुओं को बायें वक्षस्थल से चिपकाये हुए हैं । इसे चित्रकारी परम्परागत विशेषता कहकर नहीं टाला जा सकता । मूर्तियाँ, चित्र अपने काल की स्थिति का वास्तविक चित्रण करती है । कर्नेल विश्वविद्यालय अमेरिका के मानव शास्त्री ने नये तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया है । प्रख्यात अमेरिकी पत्रिका साइंटिफिक अमेरिकन में उपर्युक्त विषय से सम्बन्धित एक लेख में डा० ली० साल्क ने लिख है कि, ''माताओं को शिशुओं को बायीं ओर चिपकाये रहने में विशेष कारण है हृदय बायीं और अवस्थित होता है । जाने-अनजाने माँ बच्चों की हृदय का अधिक सामीप्य देना चाहती हैं । मातृ हृदय की धड़कन के साथ भाव सम्वेदनाएँ भी तरंगित होती उभरती रहती हैं । उनके आदान-प्रदान से वे स्वयं तो सन्तोष की अनुभूति करती ही हैं । बच्चों के ऊपर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है । हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर बच्चा एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूबा रहता है । इस सन्दर्भ में प्रख्यात मानवशास्त्री डा० डिस्पाण्ड मारिस द्वारा लिखी पुस्तक 'द इन्टिमेट विहेवियर' एण्ड 'द नेकेड एथ' उल्लेखनीय हैं । इस पुस्तक में डा० डिस्माण्ड ने महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है । उनका कहना है कि हृदय की ध्वनि ही एक मात्र एवं शाश्वत ध्वनि है जिसे शिशु गर्भावस्था में सुनता है । माँ के गर्भ से बाह्य संसार में आने पर वह विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ सुनकर परेशान रहता है । पूर्व परिचित ध्वनि की आस लगाये रहता है । माँ जब उसे गोद में लेती है तो उसे सुखद अनुभूति होती है । देखा यह गया है कि रोते हुए बच्चों को वक्ष से चिपकाते ही वे चुप हो जाते हैं । माँ के धड़कते सम्वेदनशील हृदय की प्रतिक्रिया है, जिनकी सुखद ध्वनि को सुनते ही बच्चे रोना बन्द कर देते हैं ।

इस तथ्य को परीक्षण की कसौटी पर कसने के लिए अमेरिका कार्नेल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० ली० साल्क ने कुछ प्रयोग किये जिसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले । यह परिणाम मातृ हृदय के साथ जुड़ी सम्वेदनशीलता की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं । डा० ली साल्क ने मातृ धड़कन की ध्वनि को टेप में रिकार्ड किया । रोते हुए नवजात शिशुओं को रिकार्डेड ध्वनियों को सुनाया । बच्चों ने तत्काल रोना बन्द कर दिया, उनके मुखमण्डल पर शान्ति एवं प्रसन्नता के भाव उभरने लगे । डा० ली साल्क ने निष्कर्ष निकाला कि माताओं के धड़कते हृदय के साथ उनकी सुकोमल भावनाएँ जुड़ी रहती हैं । इस ध्वनि से पूर्व परिचित होने के कारण बच्चे सहज ही आकर्षित हो जाते हैं । ध्वनि तरंगों में घुलती भाव सम्वेदनाएँ बच्चे के हृदय को उद्वेलित करती सुखद प्रभाव डालती हैं ।

इस निष्कर्ष की ओर भी प्रमाणित पुष्टि के लिए इन्होंने कुछ शिशुओं पर अन्य प्रकार की रिकार्ड की गई ध्वनि टेपों का प्रयोग किया । उन्हें तीन माह तक निरन्तर सुनाया । परिणामस्वरूप विकास रुक गया । वे अन्यमनस्क तथा अस्वस्थ बने रहे । उनमें से कुछ तो टेप आरम्भ करते ही रोना आरम्भ कर देते थे । कुछ शारीरिक हलचलों द्वारा अपनी दुखद प्रतिक्रिया व्यक्त करते । स्थिति संकटपूर्ण हो जाने पर डॉ० ली को अपना प्रयोग रोक देना पड़ा । इस प्रयोग द्वारा निष्कर्ष निकाला कि सामान्य ध्वनियों एवं मातृ हृदय के धड़कने से निकलने वाली ध्वनि तंरगों में विशेष अन्तर है । जहाँ माँ के हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर बच्चा प्रसन्नचित्त हो जाता है वही अन्य ध्वनियों की दुखद प्रतिकिया व्यक्त करता है ।

यह तो प्रकृति प्रदत्त मातृ हृदय के साथ जुड़ी भाव सम्वेदनाओं का सामान्य पक्ष रहा, जिसका

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लाभ बच्चे सहज ही उठाते रहते हैं । असामान्य पक्ष की सामर्थ्य एवं सम्भावनाएँ अनन्त हैं । कारण शरीर में विद्यमान भाव-सम्वेदनाओं को उभारा-उछाला जा सके तथा उन्हें मानव मात्र की भावनाओं के साथ जोड़ा जा सके तो मनुष्य जाति को एकता स्नेह, सौहार्द्र के सूत्र में बाँध सकने का एक महत्त्वपूर्ण, सूत्र हाथ लग जाय । प्रार्थना, उपासना, साधना में भावनाओं का महत्त्व प्रतिपादन करने, उन्हें विकसित करने पर जोर देने के पीछे यही मनोवैज्ञानिक आधार है कि परमात्मा द्वारा दिये भाव सूत्रों में ही मनुष्य को बाँधा जा सकता है ।

इस दृष्टि से शरीर के अन्य अंगों की तुलना में हृदय का महत्त्व कहीं अधिक है । सामान्य बोल-चाल के प्रसंगों में सबसे प्रिय वस्तु व्यक्ति का सम्बन्ध हृदय से जोड़ने के पीछे यहीं कारण है । नारी की सहज सम्वेदनशीलता बच्चे ही नहीं अन्यों को भी प्रभावित करती है । भाव सम्वेदनाओं से भरपूर व्यक्ति असंख्यों को अपना बना लेते हैं और सहयोग करने के लिए विवश कर देते हैं । वस्तुतः यह भावनाओं का ही चमत्कार है । मनुष्य को एकता के सूत्र में बाँधने के अन्य प्रयत्नों की सफलता तब तक संदिग्ध बनी रहेगी ? जब तक कि भाव सम्वेदनाओं को विकसित करने की उपेक्षा हानि होती रहेगी ।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उसमें दोनों ही प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं । बुद्धि का योगदान तो इन दोनों में ही होता है । किन्तु एक के साथ सम्वेदनाओं का पुट जुड़े होने से रचनात्मक बनकर मानव मात्र के लिए उपयोगी बनती हैं । वहीं दूसरी प्रखर होते हुए भी सम्वेदनाओं से रहित होने के कारण स्वार्थी, संकीर्ण बनकर संकट ही खड़ा करती हैं ।

महत्त्व उपलब्धियों का नहीं उनके साथ जुड़े उद्देश्यों का है । आदर्शों एवं सिद्धान्तों के लिए प्रयुक्त होने वाले साधन ही मानवी विकास के आधार बनते । भले ही वे अल्प क्यों न हों, किन्तु महत्त्व उनका ही है जो सदुद्देश्य के लिए प्रयुक्त हों । सही अर्थों में वे ही सामाजिक विकास के कारण होते हैं । बढ़े हुए साधन व्यक्ति विशेष के लिए उपयोगी हो सकते हैं । किन्तु आदर्शों के अभाव में तो वे संकट ही खड़ा करते हैं । समीक्षा की जाय तो बुद्धि का सही उपयोग जिस कारण बन पढ़ता है- वह ही मानवी सम्वेदना । उससे जुड़कर बुद्धि सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ अपनाती तथा सबके लिए उपयोगी बनती है । साधनों का प्रयोग श्रेष्ठ कार्यों के लिए तभी हो पाता है । व्यक्ति तथा समाज का उत्थान-पतन इसी आधार पर निर्भर करता है ।

बुद्धि के अनुदान भौतिक उपलब्धियों के रूप में सर्वत्र परिलक्षित हो रहे हैं । प्रकृति के एक से बढ़कर एक रहस्य इसके द्वारा खोले जा रहे हैं । वैज्ञानिक शोधों में इसकी ही प्रखरता दिखायी पड़ती है । बहिरंग जगत की सम्पन्नताएँ इसी के द्वारा बढ़ी हैं । किन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि मनुष्य बुद्धि एवं साधनों की दृष्टि से कितना भी विकसित क्यों न हो गया हो, मानवी गुणों की दृष्टि से उसका पतन ही हुआ है । इसका एक ही कारण है-जिस आधार पर व्यक्तित्व की श्रेष्ठता होती है, उसकी उपेक्षा करना । दिव्य सम्वेदनाओं से रहित होने पर तो पशु-प्रवृत्तियों को ही प्रोत्साहन मिलता है । निरंकुश बुद्धि, संकीर्ण, स्वार्थी संकीर्ण बनकर सामाजिक विग्रह खड़ा करती है ।

उद्देश्यों के अनुरूप मनुष्य की विचारणा चलती तथा उसकी पूर्ति के लिए अनेकों जाल-जंजाल खड़े करती है । मानवी आदर्श यदि भौतिक साधनों की प्राप्ति तक ही सिमटकर रह गया है तो स्पष्ट है कि उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य नीति, अनीति पर ध्यान दिये बिना वह मार्ग अपनायेगा जो उसकी गरिमा के अनुकूल नहीं है । फलस्वरूप संकीर्णता बढ़ेगी । अधिक संग्रह करने की होड़ चल पड़ेगी । मानवोचित आदर्शों से समाज विमुख हो जायेगा । स्पष्ट है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने से परस्पर असहिष्णुता, ईर्ष्या की भावना को ही पोषण मिलेगा । प्रवृत्तियाँ पनपने तथा नर-पशुओं की संख्या ही बढ़ती जायगी ।

इसे समय का अभिशाप ही कहा जाना चाहिए कि बुद्धि ने भौतिक उपलब्धियों को ही अपना आदर्श माना । उसे पाने के लिए अपनी सारी सामर्थ्य झोंक दी । प्रयत्न करने पर सफलता का

मिलना असंदिग्ध है । सम्पन्नताएँ अनुगामी हुईं किन्तु मात्र इतने मात्र से मनुष्य सन्तुष्ट न हो सका । अधिक प्राप्त करने एवं संग्रह की ललक बनी रही । प्रकृति के सीमित साधनों को यदि एक मनुष्य की झोली में डाल दिया जाय तो भी उसकी असीम तृष्णा की पूर्ति सम्भव नहीं है । अपूर्तिनीय तृष्णा की पूर्ति के लिए बुद्धि ने वह मार्ग अपनाया जो समस्त मानव जाति के लिए हानिकारक है ।

अस्त्र-शस्त्रों एवं अन्यान्य विनाशकारी यन्त्रों के निर्माण में बात सुरक्षा की होती तो समझ में भी आती । किन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा इस विनाशकारी यन्त्रों पर नहीं टिकी है । उनके लिए तो सामान्य अस्त्र, शस्त्र एवं कुशल सैनिक भी पर्याप्त होते हैं । उनके शौर्य, पराक्रम के विकास से ही राष्ट्र को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखा जा सकता है । विनाशकारी बमों तथा अन्यान्य विस्फोटक यन्त्रों में तो बुद्धि की कुटिलता ही झाँकती दिखायी देती है ।

समाज में जैसा भी आदर्श होगा, उसके अनुरूप ही प्रवृत्तियाँ पनपेंगी एवं गतिविधियाँ चल पायेंगी । आदर्श विलासिता और सम्पन्नता को बनाया गया । फलस्वरूप संसार उसी ओर चल पड़ा । श्रेष्ठ आदर्शों एवं सिद्धान्तों के अभाव में गतिविधियों में उत्कृष्टता का समावेश नहीं रहा । कारणों की गहराई म जाने पर एक ही तथ्य का पता चलता है । वह है-बुद्धि द्वारा मानवी सम्वेदना की उपेक्षा की जाना । बुद्धि की निरंकुशता इसी कारण बढ़ी और संकीर्णताओं को प्रोत्साहन मिला । ध्वंसात्मक गतिविधियाँ अपनाकर व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने का सिलसिला चल पड़ा ।

बुद्धि का महत्त्व एवं उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है । किन्तु यह तभी बन पड़ती है जब उसके साथ सम्वेदनाओं का संयोग हो । बुद्धि की उच्चतम स्थिति को 'प्रज्ञा' के नाम से विभूषित किया गया है । सघन सम्वेदनाओं के साथ जुड़कर ही वह इस उच्चतम स्थिति तक पहुँचती है । सृजनात्मक प्रवृत्तियों को इसी के द्वारा प्रोत्साहन मिलता है । सांस्कृतिक विकास की सारी सम्भावनाएँ इसी पर आधारित हैं । बुद्धि की प्रखरता एवं उससे मिलने वाले भौतिक अनुदानों का सही उपयोग विकसित भाव-सम्वेदनाओं द्वारा ही सम्भव हो पाता है ।

आदर्शवादी भाव-सम्पन्नता से ही भौतिक उपलब्धियाँ मानव मात्र के लिए उपयोगी बन सकती हैं । बुद्धि की प्रखरता, भावनाओं की उदात्तता से जुड़कर ही, सर्वतोमुखी विकास का आधार प्रस्तुत कर सकती है ।

## करुणा महानता का प्रथम चिन्ह

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपने एक मित्र के साथ बंगाल के कालना गाँव जा रहे थे । रास्ते में उन्हें एक मजदूर सा दिखाई देने वाला व्यक्ति पड़ा हुआ दीखा उसकी भारी गठरी एक ओर लटकी पड़ी थी, तथा उसके कपड़ों से भी बदबू आ रही थी । रास्ते में अन्य लोग भी चल रहे थे, पर वे उसे देख-देखकर भी अनदेखा करते हुए मुँह फेर-फेरकर निकलते जा रहे थे । कोई-कोई व्यक्ति उसकी रुग्ण काया की वीभत्सता देखकर धृणा से नाक भी सिकोड़ता और थूक भी देता था ।

मजदूर की दशा यह थी कि वह लगभग बेहोश था । भूख के कारण उसमें उठने की भी सामर्थ्य नहीं थी । विद्यासागर जी ने जब उसे इस दशा में देखा तो वे उसके पास गये, उसे सहारा देकर उठाया तथा खाने-पीने की भी व्यवस्था की । खा पीकर जब मजदूर कुछ चैतन्य हुआ तो उन्होंने मजदूर को अपनी पीठ पर उठाया । उसकी गठरी विद्यासागर जी के मित्र ने उठाई और उसे लेकर कालना गाँव पहुँचे जहाँ मजदूर की चिकित्सा कराई और उसके चलने फिरने योग्य होने तक उसकी देखभाल करते रहे ।

सहृदयता मनुष्यत्व का प्रधान लक्षण है और महानता की पहली निशानी । ऐसे व्यक्ति सब में एक ही परमात्मा का निवास होने का सिद्धान्त तर्कों और तथ्यों के आधार पर प्रतिपादित करते हों अथवा नहीं, परन्तु अपने आचरण और व्यवहार द्वारा अवश्य सिद्ध करते हैं कि उन्होंने मनुष्य मात्र में

बसने वाले परमात्मा को न केवल पहचाना है बल्कि उसे अपनाया और इस सिद्धान्त को अपने जीवन क्रम में उतारा भी था ।

उदारता और सहृदयता के कारण महापुरुषों के रूप में पहचाने जाने वाले व्यक्तियों का जब भी प्रसंग आता है तो महाकवि निराला का नाम उसमें चमक कर उभर उठता है । पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला यद्यपि हिन्दी साहित्य के इतिहास प्रवर्तक कवि हैं परन्तु उन्हें उनकी सहृदयता, उदारता और करुणा के कारण देवता के रूप में उल्लेखित किया जाता है । उन्होंने अपने पास की सारी सम्पदा और समूचे साधन दीन-दुखियों के लिए बाँट दिये थे तथा स्वयं अकिंचन होकर रहते थे । यही नहीं जब भी कभी उनके पास किसी और से और भी कुछ मिलता तो वे उसे भी अपने पास रखने की अपेक्षा दूसरे जरूरतमन्द व्यक्तियों को बाँट देते थे ।

एक बार की बात है । जेठ की तपती दुपहरी में वे अपने घर में विश्राम कर रहे थे । किसी काम से बाहर निकले तो देखा एक वृद्ध क्षीणकाय और दुबला-पतला जिसके शरीर में अस्थियाँ मात्र ही थीं, सिरपर लकड़ियों का भारी गठ्ठर उठाये चला जा रहा था । उसका शरीर तो जवाब दे ही रहा था ऊपर से सूरज की गर्म किरणें और नीचे जलती हुई धरती, वातावरण ही ऐसा था कि उसमें चलना तो क्या खड़े रह पाना भी कठिन था तिस पर फटे, पुराने कपड़े तथा नंगे पैर । निराला की दृष्टि उस वृद्ध पर पड़ी तो वे अपना काम भूल गये और तुरन्त वृद्ध के पास जा पहुँचे । उन्होंने वृद्ध को कुछ कहा तथा उसके सिर पर रखा लकड़ियों का गट्ठर उतारकर उसे अपने घर के भीतर ले आये । उनके लिये कुछ दिनों पहले ही कुछ मित्रों ने जूते और वस्त्र आदि खरीदे थे । निराला ने सारा सामान लाकर उस वृद्ध व्यक्ति के सामने रख दिए और आग्रहपूर्वक कहा, 'इन्हें पहन लो ।'

वह वृद्ध व्यक्ति यह सब देखकर सकपका गया । उसे समझ में नहीं आया कि क्या करे, क्या न करे ? न कोई जान-पहचान न कोई परिचय । अपरिचित ही यह सब क्यों किया जा रहा है ? वह बड़ी मुश्किल से साहस जुटाकर बोला, 'बिना कुछ जान-पहचान के यह सब ।'

वह वृद्ध अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि निराला बीच में ही उसकी बात काटते हुए बोले, अच्छी तरह जानता हूँ बाबा तुम्हें ! तुम मेरे करोड़ों भाइयों में से एक हो ।' इतना कहकर वे स्वयं अपने हाथ से उस वृद्ध को जूते पहनाने लगे ।

सहृदय और उदार व्यक्तियों का अन्त:करण कष्ट पीड़ितों तथा अभावग्रस्तों को देखकर वैसे ही पसीज उठता है जैसे आग में जलने वाली लकड़ी या ईंधन की व्यथा से क्षोम । उनके लिए न कोई अपना होता है न पराया । यहाँ तक कि वैर-भाव रखने वाले व्यक्तियों को भी कष्ट कठिनाई में पड़ा देखकर उनकी सहायता के लिए तत्परतापूर्वक आगे आते हैं ।

अँग्रेजी साहित्य के उपन्यास जगत में जो स्थान हेनरी जेम्स को प्राप्त है, वह शायद ही अन्य किसी उपन्यासकार को मिल सका हो । उनकी कृतियाँ पाकर आज भी बड़े चाव से पढ़ते हैं और उसका प्रभाव ग्रहण करते हैं । अपने जीवनकाल में ही उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली थी और उस समय उनसे ईर्ष्या-द्वेष रखने वालों की कमी नहीं थी । यहाँ तक उनका पड़ौसी तक उन्हें कानी आँख से देखता था । बात-बात पर वह उनसे झगड़ उठता, कुछ न बोलने पर इधर-उधर की बातें लेकर उन्हें खरी-खोटी सुनाने लगता । एक दिन उस पड़ोसी की पत्नी बुरी तरह बीमार पड़ी, पीड़ा के मारे वह बुरी तरह छटपटा और चिल्ला रही थी । पड़ौसी को सूझ नहीं रहा था कि क्या करे और क्या न करे ? तभी उसने देखा कि हेनरी जेम्स उसके मकान में प्रवेश कर रहे थे ।

उस व्यक्ति ने जेम्स को देखा तो विस्मित रह गया । वह बोला, ''जेम्स तू! और यहाँ ?''

'हाँ ! क्यों मुझे यहाँ नहीं आना चाहिए था । देखो मैंने तुम्हारी पत्नी के लिए डॉक्टर को बुलवाया है । वह आता ही होगा ।

परन्तु मुझे आशा नहीं थी तुम इस वक्त में मेरे काम आओगे । क्योंकि मैं तुम्हें हमेशा दुश्मन की

तरह देखता रहा और इसी कारण सोचता था, तुमसे किसी प्रकार की मदद के लिए कहना व्यर्थ है ।

सहृदयता अथवा करुणा अहित चिन्तन करने वालों को भी अपना बना देती है । सौमनस्यता उत्पन्न करने के लिये किए गये हजारों-हजार प्रयास वह परिणाम उत्पन्न नहीं कर पाते जो करुणा उत्पन्न करती है । सब में अपने ही समान आत्मा देखने और प्राणिमात्र का दु:ख-दर्द समझने वाले व्यक्ति अपने लाभ के लिए भी किसी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचा सकते । घटना सन् १९४० की है । उन दिनों महात्मा गाँधी के आश्रम सेवाग्राम में परचुरे शास्त्री नामक एक विद्वान भी रहते थे जो कुष्ठ रोग से पीड़ित थे । बापू स्वयं उनका उपचार किया करते थे । वे उनकी मालिश किया करते, घावों को धोते और दवाई लगाते ।

एक दिन जब बापू शास्त्री जी की मालिश कर रहे थे आश्रम के ही एक कार्यकर्त्ता पंडित सुन्दरलाल भी वहीं उपस्थित थे । उन्होंने गाँधी से कहा, बापू ! कोढ़ की तो एक अचूक औषधि है । कोई जीवित काला नाग पकड़कर मँगवायें और कोरी मिट्टी की हाँड़ी में बन्दकर उसे उपलों की आग पर इतना तपाये कि नाग जलकर भस्म हो जाए । उस भस्म को यदि शहद के साथ रोगी को खिलाया जाय तो कुष्ठ कुछ ही दिनों में दूर हो सकता है ।

महात्मा गाँधी इस उपाय के सम्बन्ध में कुछ कहें इसके पहले ही शास्त्री जी ने कहा, 'बेचारे निर्दोष साँप ने क्या बिगाड़ा है ? जो उसको जला कर अपना रोग ठीक किया जाय । इससे तो मेरा स्वयं का मरना ही ठीक है क्योंकि हो सकता है पूर्व जन्म के किसी पाप के कारण मुझे यह रोग लगा हो । '

अब्राहिम लिंकन को एक सभा में भाषण देने के लिए शीघ्र ही पहुँचना था । उन दिनों वे राष्ट्रपति का कार्य भार सँभाल चुके थे । मोटरकार में बैठते ही उनकी निगाह सड़क के किनारे लेटे एक भिखारी पर पड़ी । उसके दोनों पैर लगभग बेकार हो चुके थे । वह कुष्ठ रोग से ग्रस्त था तथा उसके पैरों से रक्त एवं मवाद बह रहा था । भयंकर पीड़ा से वह छटपटा रहा था । लिंकन ने ड्राइवर को गाड़ी से उतारकर वे रोगी के निकट पहुँचे । रोगी ने कातर दृष्टि से लिंकन की ओर देखा जैसे सहयोग के लिए मूक रूप से याचना कर रहा हो । इसी बीच निजी सचिव ने लिंकन को याद दिलाया कि सभा में निर्धारित समय पर पहुँचने में विलम्ब हो रहा है । उसमें महत्त्वपूर्ण निर्धारण होने एवं निर्णय लिये जाने हैं । अतएव वहाँ अविलम्ब पहुँचना अनिवार्य है ।

लिंकन ने सचिव की बात को अनसुनी करते हुए कहा ''महोदय ! इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यही है । सभा में सम्बन्धित विषयों पर निर्णय तो कुछ घण्टे बाद भी लिए जा सकते हैं किन्तु पीड़ा से कराहते इस भाई की देखभाल न की गई तो यह दम तोड़ देगा । मनुष्य होने के नाते मानवी दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य एवं दायित्त्व सामने प्रस्तुत है जिसका निर्वाह अविलम्ब किया जाना आवश्यक ।'' लिंकन ने बिना किसी हिचक के उसके रुग्ण शरीर एवं गन्दगी की परवाह न करके कन्धे का सहारा दिया और उसे जीप में बिठा लिया । समीपवर्ती अस्पताल में रोगी को भर्ती कराकर तथा देखरेख उपाचार की आवश्यक व्यवस्था बनाकर रोगी से विदा लेने पहुँचे । रोगी की आँखों से कृतज्ञता के आँसू बह चले । लिंकन ने उसका मस्तक सहलाया और सभा में सम्मिलित होने के लिये चल पड़े ।

मानवी गुणों में सहृदयता का सर्वोपरि स्थान है । धन, बुद्धि, प्रतिभा, योग्यता से सम्पन्न होते हुए भी जिस व्यक्ति में ,अभाव है, उसे पिछड़ा, एकांगी और अपूर्ण ही माना जाएगा । समृद्धि, वैभव एवं बौद्धिक प्रखरता मनुष्य के लिये साधन मात्र जुटा सकते हैं किन्तु वे आधार नहीं दे पाते जिनसे परस्पर एक दूसरे के प्रति, समस्त समाज के प्रति आत्मीयता उमड़ती हो-पीड़ा पतन को देखकर सेवा-सहयोग के लिये हृदय मचलता हो । संसार भर में जितने भी महापुरुष अथवा महामानव हुए हैं उनके साथ चाहे अन्य कोई विशेषतायें भले न जुड़ी रही हों किन्तु सहृदयता प्रचुर परिमाण में थी । दया, करुणा के भाव से उसका हृदय लबालव भरा रहता

था । फलस्वरूप अपनी इस विशेषता के सहारे दूसरों के हृदय को जीतने में समर्थ हो सके । दु:ख, दर्द को पीड़ा जतन को देखकर उनकी करुणा फूट पड़ती थी ।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर नियत समय पर अध्यापन कार्य के लिये विद्यालय जा रहे थे । एक गरीब बालक ने एक पैसा माँगा । वे चलते-चलते रुक गये । और बच्चे से पूछा-''तुम पैसे का क्या करोगे ?'' लड़के ने कहा मैं भूखा हूँ-चना खरीद कर खाऊँगा । ईश्वरचन्द्र ने फिर पूछा-यदि हम दो पैसा दे दें तो क्या करोगे ? लड़का प्रसन्न होकर बोला एक पैसा का चना खाऊँगा और दूसरे से खाने की कुछ वस्तुएँ लेकर माँ को दे दूँगा । उन्होंने पुन: प्रश्न किया अगर तुम्हें दो आने दे दूँ, तब ? लड़का कहने लगा तब मैं उसके आम खरीद कर बेचूँगा और जो आमदनी होगी उससे अपना तथा माँ का पेट भरुँगा । विद्यासागर उसकी मातृभक्ति एवं भविष्य के प्रति सही दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने एक रुपया जेब से निकालकर दिया और चल पड़े ।

कुछ वर्ष बाद वे बाजार से होकर जा रहे थे इतने में एक लड़के ने सामने से आकर उनके पैर छुए । पूछने पर मालूम हुआ कि यह वही लड़का है, दुकान खोलकर, उसकी आय से अपना तथा अपनी माता का निर्वाह सम्मानपूर्वक कर रहा था । रुँधे स्वर में वह बोला ''बाबूजी यह सब आपके ही आशीर्वाद, अनुदान का प्रतिफल है । उस दिन आपने जो एक रुपया दिया था उसी से सामानों की खरीद-बिक्री करता रहा और अपनी पूँजी बढ़ाता रहा । अब वह स्थिति बन गई है कि अपना गुजारा सम्मानपूर्वक कर सकूँ । मैं आपका आजीवन ऋणी रहूँगा । ''

साधनों के अभाव में भी कितने व्यक्ति आगे नहीं बढ़ पाते । उपरोक्त अनुकरणीय उदाहरण तो कितने समर्थ और सम्पन्न प्रस्तुत कर सकते हैं । इस दिशा में कदम उठाने में मात्र हृदय की कठोरता ही आड़े आती है ।

ऐसे सुयोग एवं सुअवसर हर मनुष्य के जीवन में कभी न कभी आते हैं । अपने ही स्वार्थ की बात सोचते रहने वाले संकीर्णमना निष्ठुर व्यक्ति ऐसे अवसरों से कन्नी काटने का प्रयास करते हैं जबकि हृदय सम्पन्नों की करुणा उन्हें बड़े से बड़ा जोखिम उठाने को भी बाध्य करती है । घटना नई दिल्ली की है जब पंजाबी सूबा को लेकर साम्प्रदायिकता का विष फूट पड़ा था और इस क्षेत्र में हिंसा का नंगा नाच हो रहा था । सैंकड़ों व्यक्ति मारे गये । एक अशिक्षित रिक्शा चालक, एक महिला तथा शिशु को लिये मुख्य सड़क से निकल रहा था । साथ में महिला का सामान भी था । दंगा शुरू होते ही महिला अपना सारा सामान छोड़कर चाँदनी चौक की एक गली में दौड़कर भाग गई । उसका सामान तो दूर रहा बच्चे का भी ध्यान न रहा । चारों ओर से पत्थर फिक रहे थे । कहीं-कहीं से गोलियों की आवाज भी गूँज रही थी । चाहता तो भागकर रिक्शा चालक भी अपनी सुरक्षा कर सकता था किन्तु रिक्शे पर एक वर्षीय मासूम बच्चे की सुरक्षा का प्रश्न था, उसने सोचा फेंके जाने वाले पत्थरों से बच्चे की जान भी जा सकती है । अविलम्ब उपाय सोचना होगा । बच्चे को गोद में लेकर अपने सिर से ढाल का काम लेते हुए वह रिक्शे पर ही बैठ गया निकट से होकर भागने वालों ने समझाया कि-क्यों अपनी जान देने पर तुला है । किन्तु रिक्शे वाले के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । बीच सड़क में होने के कारण चारों ओर से पत्थर रिक्शा चालक के ऊपर फिंकने लगे । शरीर के विभिन्न भागों से खून की धार बह चली । बच्चे को गोद में ही लिये हुये वह अचेत हो गया । घण्टे बाद जब उसे होश आया तो अपने को पुलिस से घिरा पाया । सामने ही सजल नेत्रों से वह महिला देख रही थी । रुँधे गले से वह बोली-''भैया ! तुमने मेरे बच्चे को आज नया जीवन दिया है । मैं जीवनपर्यन्त तुम्हारी ऋणी रहूँगी ।'' कुछ पैसे निकाल कर महिला ने रिक्शा चालक को देने चाहे किन्तु उसने यह कहते हुए लेने से इन्कार कर दिया कि ''मनुष्य होने के नाते यह तो मेरा कर्त्तव्य था ।''

यह आन्तरिक करुणा ही मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है । शरीर बल, बुद्धिबल, एवं धन की दृष्टि से समर्थ होते हुए भी जिसका अन्त:करण सूखा और कठोर है, पीड़ा और पतन को देखकर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


पिघलता नहीं, यह समझना चाहिए कि वह सही अर्थों में मानव कहलाने का अधिकारी नहीं । स्वामी विवेकानन्द ने इस तथ्य को अपने एक भाषण में इस प्रकार प्रस्तुत किया था ''बुद्धिमान होना अच्छी बात है । बुद्धिमान और भाव सम्पन्न होना और भी अच्छी बात है । किन्तु यदि दोनों में चयन की बात आये तो बुद्धिमान होने की तुलना में भाव सम्पन्न बनना अधिक पसन्द करूँगा । हृदय की सम्वेदनशीलता के अभाव में बुद्धि निरंकुश और कठोर बन जाती है ।

विश्व के मूर्धन्य महामानवों, महापुरुषों ने हृदय की महानता को विकसित करने पर जोर दिया है । उनके प्रयास भी अन्तः सम्वेदनाओं को उभारने और उसे सत्प्रयोजनों में-पीड़ा पतन के निवारण में नियोजित करने के लिए ही अधिक लगे रहे हैं । यही वही आधार है, जिसके सम्बल से मानवता गौरवान्वित होती है और समाज में सुख-शान्ति से भरी-पूरी परिस्थितियाँ विनिर्मित होती हैं ।

## अहिंसा का सही अर्थ समझें

भारतीय धर्म शास्त्रों का बड़ा महत्त्व बताया गया है । इसका सामान्यता अर्थ है किसी की हिंसा न करना, निरपराध प्राणियों को न सताना और न ही किसी को कष्ट पहुँचाना । इस अर्थ के कारण बहुत से लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि जब किसी को किसी भी प्रकार न सताना और कष्ट न देना अहिंसा है तो अपराधियों और हिंसक प्राणियों के लिए निर्द्वन्द होने की सम्भावना खुल जाती है । वस्तुतः ऐसा है नहीं । किसी को कष्ट न पहुँचाने की रीति-नीति का अर्थ यह नहीं है कि अपराधियों और दूसरों को हानि पहुँचाने वालों को भी दण्डित न किया जाए, उनके कृत्यों का प्रतिकार न किया जाय । ऐसे कृत्यों का दमन करने के लिए बरती गई, दण्ड-नीति को मनीषियों ने वैदिक हिंसा कहा है और यह घोषित किया है, ''वैदिक हिंसा हिंसा न भवति ।'' वैदिक हिंसा से तात्पर्य है विचार और विवेकपूर्वक अवांछनीय तत्त्वों का दमन ।

इस युग के विश्वबन्धु राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अहिंसा का उपयोग कर ही विदेशियों के शासन से भारत को मुक्ति दिलाई थी । अहिंसा का अर्थ बताते हुए उन्होंने लिखा है, ''अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि के सामने है । किसी को न मारना तो दूर कुविचार मात्र हिंसा है । मिथ्या भाषण हिंसा है । द्वेष हिंसा है । किसी का बुरा चाहना हिंसा है । जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर अनाधिकारपूर्वक, स्वार्थवश कब्जा रखना भी हिंसा है ।''

अहिंसा का सूक्ष्म अर्थ करते हुए भारतीय मनीषियों ने प्राणी मात्र में आत्मभाव रखना, उनमें अपनी ही आत्मा के दर्शन करना अहिंसा बताया है परन्तु यह कहीं भी नहीं लिखा है कि आततायी, अनाचारी के अत्याचारों को भी सहन किया जाना भी अहिंसा है । महात्मा गाँधी ने स्वयं कई अवसरों पर अवाँछनीय तत्त्वों का कड़ाई से सामना करने को अहिंसा बताया है । घटना उन दिनों की है जब गाँधीजी ने अहिंसक आन्दोलन के कई कार्यक्रम दिये थे और बताया था कि विदेशी शासन को अहिंसात्मक उपायों से किस प्रकार हटाया जाय ? उन्हीं दिनों गुजरात विद्यापीठ की कुछ लड़कियाँ गाँधीजी के पास पहुँची । वहाँ उन्होंने किशोरीलाल भाई से कहा' देखिए कुछ लड़के कभी-कभी इनसे छेड़खानी किया करते हैं । बताइये क्या करें ? कैसे उनका प्रतिकार करें ?

निश्चय ही वे लड़कियाँ अहिंसात्मक प्रतिकार का उपाय पूछ रही थीं । किशोरीलाल भाई ने कहा, तुम्हारे पैरों में चप्पलें तो होती ही हैं । क्यों न उन्हें निकालकर लड़कों की उनसे पिटाई कर देती हो ।''

यह उत्तर सुनकर लड़कियाँ आश्चर्यचकित रह गईं । उन्होंने कहा, 'यह तो हिंसा है । हम तो अहिंसात्मक उपाय जानने के लिए आई हैं ।' किशोरीलाल भाई बोले, ' यदि तुम्हें इसमें शक हो या तुम्हारा समाधान न हुआ हो तो तुम खुद ही बापू से जाकर पूछ लो ना ।'

लड़कियाँ गाँधीजी के पास गईं और उन्होंने वही बातें दोहरा दीं जो किशोरी भाई से हुई थीं । गाँधीजी ने इस पर कहा, बस ! किशोरीलाल ने इतना ही कहा । मैं तो कहूँगा तुम सब लड़कियाँ

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एकजुट होकर उन लड़कों को रस्सी से बाँधकर वह पिटाई करो कि वे जीवन भर याद रखें । बताओ तो बलात्कारी के सामने क्या अहिंसात्मक उपाय हो सकता है ? उनके अत्याचारों को सहन कर लेना अहिंसा नहीं कारयता है । उस समय तो यही उचित होगा कि जो ऐसा अत्याचार करना चाहे और जिसके प्रति अत्याचार करना चाहे और जिसके प्रति अत्याचार किया जाए, उसके पास यदि छुरी हो तो वह छुरी भौंक दे उस समय उस परिस्थिति में यही अहिंसा है ।

गांधीजी अहिंसा को कायरों का नहीं वीरों का भूषण कहा करते थे । इसे उन्होंने वीरों का मार्ग बताया था । अहिंसात्मक प्रतिकार से उनका आशय था बिना किसी को कष्ट दिए ऐसा नैतिक दबाव उत्पन्न करना कि अत्याचारी को हारकर सही रास्ते पर आना पड़े । निश्चित ही इसके लिए बड़े साहस, सन्तुलन और धैर्य की आवश्यकता है । अहिंसा के शस्त्र से लड़े गए स्वाधीनता संग्राम में हजारों स्वतन्त्रता सेनानी अपनी पीठ पर लाठी, कोड़ो और बन्दूक के कुन्दों का बार सहते थे परन्तु आन्दोलनों से विरत नहीं होते थे ।

घटना सन् १९२३ की है । तब गुजरात के पंचमहल एवं गोधरा जिले में भीषण साम्प्रदायिक उपद्रव हुए । वहाँ के बहुसंख्यक वर्ग द्वारा पीड़ित, हिन्दू भागकर महात्मा गाँधी के पास पहुँचे और उन्होंने मुसलमानों के अत्याचारों की शिकायत उनसे की । बापू ने सारी बातें सहानुभूतिपूर्वक सुनीं और पूछा-तुम लोगों ने इसके मुकाबले में क्या किया ? आगन्तुकों में एक नेता जैसा व्यक्ति था । उसने कहा, करते क्या ? आपकी अहिंसा का यह अर्थ सुनकर बापू क्षुब्ध मन से बोले, 'सो तो ठीक है । लेकिन मेरी अहिंसा ने यह थोड़ें ही कहा था कि तुम वहाँ कायरों की तरह भागकर अपनी बुजदिली की रिपोर्ट देने के लिए मेरे पास आओ । मेरी अहिंसा तो साहसपूर्वक मर मिटने का सन्देश देती है । तुममें यदि मर मिटने का साहस नहीं था तो अपने मन के अनुसार उस स्थिति का मुकाबला करना चाहिए था । तुमने मेरे मत को समझा नहीं और अपने मत पर चलने की हिम्मत नहीं की । अहिंसा कायरों की नहीं वीरों की है । जहाँ किसी तरह जान बचा लेने की भावना है या जहाँ खतरों से मुँह मोड़ने या भाग जाने की सम्भावना है वहाँ अहिंसा नहीं हो सकती । इससे तो मैं हिंसा को श्रेष्ठ मानता हूँ, जिसमें भय, संकट या हमले का सीधा सामना किया जाता है ।

दुष्टता या अवांछनीयता का दमन, प्रतिरोध किसी भी प्रकार किया जाए, ऐसा 'मन्यु' अहिंसा के अन्तर्गत ही आता है । शास्त्र से हो या शस्त्र से, दुष्टता का, अवांछनीयता का प्रतिकार कदापि हिंसा से नहीं हो सकता उसकी गणना भी अहिंसा में ही होगी । क्योंकि आवांछनीय तत्त्वों का दमन करने से उनके कारण पीड़ित होने वाले अधिक लोगों को सुख चैन से रहने का अवसर मिलेगा, निरापद प्राणियों को अनावश्यक कष्ट न सहना पड़ेगा ।

किसी भी प्रकार आततायी एवं अत्याचारी का दमन मनुष्यता के हित में है और अहिंसा का अर्थ ही है मनुष्य जाति का हित-अधिक से अधिक लोगों का कल्याण । इसके लिए अहिंसक स्वभाव के व्यक्ति दृढ़तापूर्वक उन विषयों में दृढ़ रहते है जिनसे कि मनुष्य का हित सधता हो । प्रसिद्ध अणु वैज्ञानिक 'नील्स बोहर' ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वे अपनी 'बौद्धिक सामर्थ्य का उपयोग केवल मानव जाति के कल्याण के लिए ही करेंगे उल्लेखनीय है कि नील्स बोहर ने ही सर्वप्रथम अणु की संरचना पर प्रकाश डाला और उसकी व्याख्या की थी ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हिटलर के नाजी सैनिक उन्हें पकड़कर ले गये और अणुबम बनाने के लिए दबाव डालने लगे । बोहर अणु की विनाशकारी क्षमता से परिचित थे । वे जानते थे कि यदि अणुबम बना लिया गया तो उसके द्वारा भयंकर विनाश ही होगा । इसलिए उन्होंने नाजी अधिकारियों के प्रस्ताव को ठुकरा दिया । पहले तो उन्हें कई प्रलोभन दिये गए, पर मनुष्य कल्याण के लिए समर्पित यह मनीषी इन प्रलोभनों के आगे क्या झुक सकता था ? प्रलोभनों को ठुकरा दिये जाने के बाद उन्हें तोड़ने के लिए यन्त्रणाएँ दी गईं । इससे भी वे विचलित नहीं हुए । एक उनकी जान ही नहीं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org



ली और तो सब कुछ कर लिया गया । अनेकों बार उन्हें मृत्यु के द्वार पर ले जाया गया और वापस पीछे खींच लिया गया ताकि वे डरकर तैयार हो जाएँ । दृढ़व्रती नील्स बोहर न तो डरे और न अपनी प्रतिज्ञा से डिगे । किसी प्रकार भागकर वे अमरीका जा पहुँचे, जहाँ आजीवन मानवता की सेवा करते रहे । अहिंसा सही अर्थों में साहस का पर्याय है, शूरवीरों का भूषण है । आतंक एवं दमन का प्रतिकार भी अहिंसा में ही आता है । इस शब्द का दुरुपयोग न हो, न उसकी ओट में कोई अपनी कायरता छिपायें । इस आध्यात्मिक गुण की व्याख्या का आज की परिस्थितियों में सही रूप में प्रस्तुतीकरण किया जाना जरूरी है ।

अहिंसा का वास्तविक अभिप्राय है, प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूति का भाव रखना; सहानुभूति का तात्पर्य है दूसरे की मन:स्थिति के साथ अपनी मन:स्थिति को जोड़कर उसी जैसी अनुभूति करना । आवश्यक नहीं कि दूसरा व्यक्ति हमारे जैसे परिष्कृत स्तर का हो । उसका चिन्तन एवं मस्तिष्कीय विकास जिस सीमा तक जिस दिशा में हुआ होगा यह उसी का दृष्टिकोण से विचार कर सकने में समर्थ होगा । उसकी स्थिति में अपने को रखकर ही यह समझा जा सकता है कि जो वह कर रहा है वह किस हद तक उचित या अनुचित है । इस प्रकार दूसरों के सम्बन्ध में सोचने का तरीका 'सहानुभूति' कहा जायेगा । दूसरों जैसी अनुभूति ही सहानुभूति है । इस प्रकार हम दूसरों के साथ न्याय कर सकते हैं । अपनी स्थिति में दूसरों को मानकर उनसे उसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है । हर व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण है और अपना स्तर । वह उसी आधार पर विचार और कार्य करता है । छोटे बच्चों से वह अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए जो बड़ों से की जाती है । क्योंकि उनका ज्ञान और अनुभव स्वल्प है । बच्चे बड़ों जैसा व्यवहार करें और बड़े बच्चों जैसा तो आश्चर्य किया जा सकता है ।

अविकसित स्थिति के लोग अपनी स्थिति के अनुरूप जो कार्य कर रहे हैं उसे उनकी विवशता माना जा सकता है और अधिक विकसित होने के लिए उसे अधिक सहयोग एवं मार्ग-दर्शन किया जा सकता है । क्रोध की अपेक्षा वह दया का पात्र है । छोटे बालक यदि ठीक से खड़े नहीं हो सकते लड़खड़ा कर चलते हैं, बार-बार गिर पड़ते हैं तो वे क्रोध के नहीं दया के पात्र हैं । उन्हें सहारा देकर चलाना, सिखाया जाना चाहिए न कि दण्ड दिया जाना । अविकसित लोगों के साथ यदि इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो उसे सहानुभूति कहा जायगा ।

दूसरों के दु:ख में उस जैसा ही कष्ट अनुभव करना यह भी सहानुभूति है । अपने कष्ट का निवारण करने के लिए जैसे आकुलता होती है यदि वैसी ही दूसरों के कष्ट में भी की जा सके और उसका निवारण करने के लिए दया, करुणा भरा सहयोग दिया जा सके तो उसे सहानुभूति का मूर्त रूप कहेंगे । क्रियात्मक न बन पड़े तो वाणी से अथवा भावना से भी उसे व्यक्त किया जा सकता है । उससे कष्ट पीड़ित को किसी सीमा तक लाभ ही होता है साथ ही अपने में उस कोमलता का विकास होता है जो सज्जन एवं सहृदय व्यक्ति में होनी नितान्त आवश्यक है । इसके बिना व्यक्ति निष्ठुर बनता चला जाता है और फिर उसे क्रूर कर्म करने में भी कोई आपत्ति नहीं रहती ।

ईर्ष्या का अर्थ है-दूसरों के लाभ को देखकर दु:खी होना, किसी की प्रगति एवं सम्पत्ति को देखकर कुढ़ जाना इसी मन:स्थिति का दूसरा नाम मत्सर है । दूसरे सफलता प्राप्त व्यक्तियों के साथ अपनी तुलना करने पर जब अपना छोटापन और दूसरे का बड़प्पन सामने आता है तो एक हलचल पैदा होती है जिसका उद्देश्य होता है हम भी उसी स्थिति को प्राप्त करें । स्पष्ट है कि प्रगति के लिए अधिक योग्यता सम्पादन और अधिक पुरुषार्थ की जरूरत पड़ती है । इसके लिए साहस, लगन और धैर्य जैसे गुणों की आवश्यकता पड़ती है । वे होते नहीं, तो दूसरे सफल व्यक्तियों के समतुल्य पहुँचने में कठिनाई दीखती है और अवरोध सामने आ खड़ा होता है ।

ईष्यालु व्यक्ति दूसरे सफल या सुखी व्यक्तियों को नीचा दिखाने की बात सोच सकते हैं । चोरी,

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


डकैती, हत्या जैसे क्रूर कर्म करने का तो साहस एवं अवसर नहीं होता, उसमें जोखिम भी बहुत है । ऐसी दशा में उसकी मानहानि करना सरल दीखता है । अस्तु, निन्दा, विरोध करने की बात जँच जाती है । उसमें, परिवार परिचय के क्षेत्र में निन्दात्मक चर्चायें फैलाकर वैर, विरोध घृणा, असहयोग, विग्रह उत्पन्न करना आसान हो जाता है, इसलिए उस मार्ग पर चलते हुए निन्दा, चुगली के झूठे-सच्चे आधार गढ़ने शुरू कर दिये जाते हैं । इससे सामने वाले को कुछ तो परेशानी होती है, उतने से भी कहने वाले के अपने घाव किसी कदर भरते हैं ।

ईर्ष्या सहानुभूति का ठीक उलटा भाव है । सहानुभूति में दूसरों के कष्ट देखकर स्वयं दु:ख होता और उसकी सहायता करने को मन करता हैं । दूसरों को सफल एवं सुखी होते देखकर लगता है कि लाभ हमें स्वयं या हमारे आत्मीय जनों को हो रहा है । इससे प्रसन्नता होती है और इच्छा उठती है कि उसका सुख बढ़ाने में और अधिक सहयोग दिया जाय । इस दिशा में जितना कुछ सोचना या करना बन पड़ता है उससे अपने को बड़ी शान्ति मिलती है । सद्भावना जिस भी मन में उठेगी उसे शीतलता की अनुभूति होगी । सद्भाव बढ़ेंगे और व्यक्तित्व को ऊर्ध्वगामी बनने के लिए पथ-प्रशस्त होगा । इसके ठीक विपरीत ईर्ष्या है । जिसमें दूसरे को सुख पाते देखकर अपने को कष्ट होता है । कुढ़न, जलन एवं विक्षोभ लेकर ईर्ष्या आती है । इससे दूसरों का अहित हो या न हो पर अपना अवश्य ही होता है । दुर्भाव जन्य द्वेष की आग में आन्तरिक समस्वरता जलती है और अनेक विकासोन्मुख कोमल वृत्तियां उसी में जल भुनकर नष्ट होती रहती हैं । ईर्ष्या बढ़ते-बढ़ते आक्रमणकारी हो उठती है और उन्हें तरह-तरह की क्षति पहुँचाने का ताना-बाना बुनती हैं जिनने अपना कुछ भी अहित नहीं किया है किसी ने हमें बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाये यदि सुख साधन प्राप्त कर लिये हैं-सफलता अर्जित कर ली है तो उससे अपनी कुछ भी हानि नहीं हुई । इतने पर भी यदि दु:ख होता है तो उसे चिन्तन की निकृष्टता ही कहा जायगा । इससे ईर्ष्यालु की, दूसरों की ओर समस्त समाज की हानि होती है । ईर्ष्या से दुरभिसंधियाँ पनपती हैं और उसकी प्रतिक्रिया तरह-तरह के अनर्थ ही उत्पन्न करती है ।

जान स्टुअर्ट मिल के अनुसार 'ईर्ष्या सबसे घृणित मनोवृत्ति है ।' किसी से अपना अहित हुआ हो उसके प्रतिशोध में द्वेष उत्पन्न होता हो तो उसमें कुछ तथ्य भी हो सकता है पर दूसरों की सफलता अथवा सुख-सुविधा देखकर कुढ़ जाना-अकारण आक्रमण करने और उसमें पहले अपनी सद्भावनाओं को जला डालने का कुकृत्य है । कारण होने पर आक्रमणकारी होने की बात समझ में आती है पर अकारण दूसरों को शत्रु मानना, अहित सोचना और वैसा ताना-बाना बुनने में अपनी सद्भाव सम्पत्ति को नष्ट करना यह तीनों ही बातें अवांछनीय हैं । इस अवांछनीयता से अपार हानि ईर्ष्यालु को होती है । यों कुछ न कुछ हानि तो दूसरों की भी होती है ।

मन्थरा द्वारा कैकयी को भड़काया जाना और उससे राम वनवास के साथ जुड़े हुए अनेकों विग्रह उत्पन्न होना ईर्ष्या का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है । मन्थरा और कैकयी की चेष्टा उतनी लोभ प्रेरित नहीं थी, जितनी ईर्ष्या प्रेरित थी । ईर्ष्या जब उठती है तो आवश्यक नहीं कि द्वेष के लिए कोई कारण होना ही चाहिए । भरत को राज्य मिले यह बात तो पीछे सूझी, पहली बात तो वहीं से उठी जहाँ राम को युवराज और कौशल्या को राजमाता बनने का प्रसंग सामने आया और उनकी तुलना में अपनत्व की परिधि में आने वाले लोगों को छोटा होने की बात का आघात लगा । राजतिलक होने से कैकयी मन्थरा या भरत की वर्तमान स्थिति में कोई क्षति पहुँचने वाली नहीं थी । उन लोगों को सारी सुविधाएँ यथावत् मिलती रहने वाली थीं । फिर भी कष्ट इसलिए हुआ कि दूसरों को अधिक सुविधा या सम्मान का अवसर क्यों मिले ? ईर्ष्यालु को पग-पग पर द्वेष करने और शत्रु परिवार बढ़ाने का अवसर मिलता रहता है । फलत: उसकी प्रवृत्ति आक्रमण कारी, हिंसक जैसी बनी रहती है इस अभ्यास से बढ़ता हुआ असुरत्व हर दृष्टि से अवांछनीय सिद्ध होता है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


विद्वान काल्टन ने इस बात पर बहुत दु:ख प्रकट किया है कि लोग दूसरों को दु:खी देखकर तरस खाने की अपेक्षा मोद मनाते हैं । सुखी को देखकर प्रसन्न होने और प्रशंसा करने की अपेक्षा खिन्न होकर आक्रमणकारी गतिविधियाँ अपनाते हैं । तत्त्वदर्शी हरोडोटस के अनुसार ईर्ष्या वह व्यथा है-जिसे सफल व्यक्ति अपने मित्र पड़ोसियों में बाँटते हैं ।' मनीषी सेनेका ने कहा है-उन मनुष्यों की कमी नहीं जो सफल सजातीयों पर अकारण कुत्तों की तरह भौंकते हैं ।

अँग्रेजी कहावत है-कि अपने से अधिक अच्छा गा सकने वाले पक्षी की आवाज सुनकर बुलबुल मौन धारण कर लेती है । मन:शास्त्री-नीश ईष्यालुओं को बाजारू मक्खियों की संज्ञा देते थे और कहते थे-'इन आठों पहर गन्दगी में लिप्त रहने वाले घृणित प्राणियों ने स्वच्छ पदार्थों को भी अस्वच्छ बनाने में अपनी चेष्टा लगाकर पाया कुछ नहीं, खोया बहुत है ।''

## विवेकशील बनें-दूरदर्शिता अपनाएँ

दैनिक जीवनचर्या में पहले निश्चय, पीछे काम की नीति अपनाई जाती है किस खेत में क्या बोना है पहले यह निर्धारण किया जाता है बाद में उसकी क्रिया आरम्भ होती है । फैक्टरी किसकी लगानी ? शिक्षा किस स्तर की पानी ? यात्रा कहाँ से करनी ? जैसे छोटे-छोटे प्रसंग पर उपयोगिता-अनुपयोगिता के पक्ष विपक्ष में आवश्यक चिन्तन मन्थन कर लिया जाता है इसके उपरान्त ही सरंजाम जुटाये और कदम उठाये जाते हैं । हाट, बाजार में खरीद के लिए जाने वाले पहले लिस्ट बनाते हैं । समझदार आदमी आय-व्यय का बजट बनाते समय अर्थ सन्तुलन बिठाते हैं । मूढ़ मति और बाल-बुद्धि लोगों के अतिरिक्त हर छोटे-बड़े कामों में पूर्व निर्धारण की नीति अपनाई जाती है । बी० गिलेसीन ने 'दि क्रिएटिव प्रॉसेस' को इस यथार्थवादी दृष्टिकोण को महत्त्व देते हुए कहा है-

''भावुकता को कलात्मक सम्वेदना के रूप में तो सराहा जा सकता है, पर तथ्य तक पहुँचने और सम्बद्ध प्रसंग पर सही निर्णय करने में तो उसे एक अवरोध ही माना जायगा । वस्तुस्थिति सदा वैसी ही नहीं होती जैसी कि घटना का तात्कालिक स्वरूप देखने से प्रतीत होती है । उसके पीछे ऐसे कारण भी हो सकते हैं जो दण्ड का भी औचित्य सिद्ध करें और उदार सहायता को भी अवांछनीय ठहरायें । औचित्य एक बात है और भावुकता दूसरी ।''

भावुकों को तनिक से कष्ट में विचलित और तनिक से व्यवधान में चिन्तातुर होते देखा गया है । इस प्रकार की बाल-बुद्धि न तो सही निष्कर्ष पर पहुँचती है और न समयानुरूप उपाय अपनाने में को सहायता देती है । सच तो यह है कि हड़बड़ी में ऐसे कदम उठ जाते हैं जो विपत्ति को और भी अधिक बढ़ा दें । शोकाकुल, आवेशग्रस्त एवं आतुर लोग लिप्सा से ग्रस्त व्यक्ति भावुकता के कारण अस्त-व्यस्त हुई मन:स्थिति में कुछ सोचते या करते हैं वह समस्या के समाधान में सहायक न होकर उसे उलटी और उलझा देते हैं ।

वस्तुस्थिति को समझने-अवरोधों से निपटने तथा प्रगति के लिए पथ-प्रशस्त करने में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती है । ऊँची उड़ानें उड़ने की अपेक्षा यह देखना आवश्यक है कि आज की अपनी परिस्थिति, योग्यता कितना कुछ कर सकने में समर्थ हो सकती है । आज जो सम्भव है वही तथ्य है । भविष्य में जब जैसी स्थिति आये तब वैसे सोचने का उपाय बरतने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है । पर वर्तमान को तो तथ्यों के अनुरूप ही समझना चाहिए और इस समय जो कर सकना सम्भव है उतना ही कदम उठाना चाहिए और उतने में ही सन्तोष करना चाहिए । जो मन: स्थिति और परिस्थिति का तालमेल नहीं बिठा पाते और विसंगतियों से भरे निर्णय करते हैं उन्हें भावोन्माद से ग्रसित समझा जाता है । ऐसे लोग अवास्तविकता के चंगुल में फँसकर गलत सोचते, गलत कदम उठाते और गलत परिणाम पर पहुँचते हैं ।

प्रगतिशीलता का यथार्थवादिता से सघन सम्बन्ध है । वे दूसरों की सहायता पर अवलम्बित योजनाएँ नहीं बनाते वरन् स्थिति को समझकर आरम्भ उतना

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ही करते हैं जितना अपने बलबूते सम्भव है । आत्म-विश्वास बढ़ाया जाना चाहिए और क्षमता सम्वर्धन में कुछ उठा न रखना चाहिए ताकि अगले दिनों अधिक बड़े काम करना सम्भव हो सके, पर आज को तो यथार्थता के साथ ही जुड़ा रहने देना चाहिए । भावुकता के वशीभूत होकर ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जैसा कि अदूरदर्शी, आवेशग्रस्त किया करते हैं ।

भविष्य अनिश्चित और अविज्ञात है । इसे ईश्वर ने जान-बूझकर गोपनीय रखा है ताकि प्रगति के लिए पुरुषार्थ करने का अवसर मिलता रहे ।

निराशावादी एक ऐसा भविष्यवक्ता है जो तथ्यों और सम्भावनाओं से सर्वथा अपरिचित होते हुए भी ऐसे निष्कर्ष निकालता है जो न केवल अवास्तविक वरन् हानिकारक भी है ।

अगला समय कैसा आने वाला है इसे कौन जानता है ? बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी ऐसा दावा नहीं करते हैं वे लाभदायक या सफल ही होकर रहेंगे । इतने पर भी वे प्रयत्नरत रहते हैं और भविष्य अनिश्चित होते हुए भी उज्ज्वल सम्भावनाओं की आशा लगाये रहते हैं । यह आशा ही उनका उत्साह एवं साहस बनाये रहने में समर्थ होती है । सफलता प्राप्त करने वालों ने अपनी मन: स्थिति को सदा ऐसी ही बनाये रखा है जिसमें उज्ज्वल भविष्य का सपना दीखता और विश्वास बढ़ता रहे ।

निराशावादी भी एक अजीब प्राणी है जो पहले से ही असफलता की बात सोचता और अन्धकार भरे भविष्य का पूर्ण निर्धारण करता है । ऐसा अनुमान उसने किस आधार पर लगाया यह ढूँढ निकालना कठिन है । हो सकता है कि कुछ कारण ऐसे भी हैं जो निराशा जैसी झलक दिखाते हों पर उसके अतिरिक्त ऐसे कारण या आधार भी तो हो सकते हैं जो दूसरे प्रकार के परिणाम उत्पन्न करें और अप्रत्याशित सफलताओं के अवसर ला खड़े करें । जब सपना ही गढ़ना है तो निराशा को क्यों गढ़ें ? जब अनिश्चित को ही निश्चित मानना हो, विपत्ति की सम्भावना क्यों मान बैठा जाय ? सम्पत्ति और सफलता की आशा लगाने से क्या हर्ज है ।

अनिश्चित को भयावह मान बैठने में सबसे बड़ी हानि यह है कि दुर्दिन आने से पूर्व ही चिरकाल तक डरावनी मन:स्थिति का दु:ख उठाते रहने और साहस गँवाते रहने की दुहरी हानि उठानी पड़ती है । जबकि आशावादी सपने देखने पर समय आने तक उत्साह भरी मन:स्थिति बनी रहती है और आशा भरी उमंगें अधिक पुरुषार्थ करने और अधिक सफलता पाने का आधार बनाती रहती हैं ।

कितनी ही बार सम्भावनाएँ अप्रत्याशित रूप से उल्टी देखी गई हैं । निराशा की बात सोचने वाले भी कई बार चमत्कारी अवसर प्राप्त करते और उन्हें दैवी अनुग्रह या भाग्य का चमत्कार कहकर मोद मनाते देखे गये हैं । ऐसी दशा में निराशा भरी मान्यताएँ बना लेना एक प्रकार से ऐसा दुस्साहस है जो विधाता से प्रतिद्वन्द्विता करता है । जिस विधाता ने भी अपने भाग्य का निर्माण स्वत: करने की छूट मनुष्य को दे रखी है तो फिर ऐसा भविष्य वक्ता बनाने से क्या लाभ जिसका सृजन, उत्पादन मात्र भयावह ही भयावह होता रहता है ।

आर० डैबी ने '' डैवलपमेन्ट ऑफ ह्यूमन विहेवियर'' में लिखा है- जब व्यक्ति सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप में भाग लेने लगता है और अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करता है तब उसकी सामाजिक अभिरुचियों का समुचित विकास होता है । उसमें सामाजिक भावना पैदा होती है, वह अपने साथियों के प्रति सहानुभूति रखता है और उसकी सामाजिक चेतना जागृत हो जाती है । व्यक्ति में सामाजिक अभिरुचि जन्मजात होती है । जिस प्रकार व्यक्ति श्रेष्ठता एवं पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है उसी प्रकार वह अपनी जीवन-शैली को विकसित करने के लिए अपनी सुसुप्त सामाजिक अभिरुचियों को जागृत करता है । सामाजिक अभिरुचियों को जागृत एवं सक्रिय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सामाजिक जीवन में भाग ले और यथाशक्ति सामाजिक कार्य में लगा रहे । सामाजिक सम्बन्धी सभी गुणों के बीज व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित होते हैं । वे अनुकूल पर्यावरण पाकर प्रस्फुटित हो उठते हैं । ''

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org


आर० डैबी० ने अपने ग्रन्थ 'डैवलपमेन्ट ऑफ ह्यूमन विहेवियर' में विकास को आत्म-विस्तार के रूप में प्रतिपादित किया है । वे कहते हैं-''सुपर व्यक्तित्व के प्रेरणा केन्द्र सामूहिक चेतना के पूर्ण विकसित स्वरूप को 'ग्राहम' सामाजिक वृत्ति (सोशल सेन्स) कहते हैं । उनका कहना है कि जिस भी समाज में वह 'सोशल सेन्स' जितना अधिक विकसित होगा, वहाँ के व्यक्ति उतने ही श्रेष्ठ एवं महानता से युक्त होंगे । अनेकानेक मानवी समस्याओं को सुलझाने एवं मनुष्य को देवोपम बनाने के लिए इस 'सामाजिक वृत्ति' का होना परमावश्यक है ।''

''उत्कृष्ट व्यक्तित्व उसे कहते हैं जिसमें व्यक्ति की सम्पूर्ण निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास हो चुका हो । स्पष्ट है कि इन शक्तियों के विकास में मानव की शक्ति, लालसा एवं सामूहिक चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति आवश्यक है । दोनों के सामन्जस्य से बना हुआ व्यक्तित्व ही श्रेष्ठ कहा जाता है ।

विकास का एक अर्थ विस्तार भी है । नैतिक क्षेत्र में तो यही व्याख्या अधिक उपयुक्त पड़ती है । सीमित 'स्व' ही वस्तुतः तुच्छ है । विकसित वर्ग में हेय समझा जाता है । बोने अपनी बिरादरी में भले ही बढ़-चढ़कर बातें करें । तगड़े पहलवानों के समीप जाकर सकुचने और उपहास के भाजन पाये जायेंगे । जीवन क्रम में क्षुद्रता वह है, जिसमें व्यक्ति अपने निजी लाभ की ही बात सोचता है और स्वार्थपरता की दुनिया में ही खोया रहता है । विकसित व्यक्तित्वों का 'स्व' अन्य जनों को भी अपनी परिधि में लपेटे रहता है और अपने सुख-दुःख की तरह ही दूसरों की प्रगति-अवनति में भी प्रसन्नता, खिन्नता की अनुभूति करने लगता है । ऐसा व्यक्ति समूह को भी अपना ही अंग विस्तार मानकर उसका पिछड़ापन दूर करने के लिए भी वैसा ही प्रयास करता है जैसा कि अपनी दरिद्रता, रुग्णता अथवा कठिनाई के निवारण में किया जाता है ।

यह सामूहिक चेतना बढ़ते-बढ़ते विश्व परिवार के रूप में विकसित होती है और मनुष्य सब को अपना-अपने को सबका-मानने लगता है । जहाँ भी यह प्रवृत्ति पनप रही होगी वहाँ सहज ऐसे सद्गुणों ऐसे सत्प्रयोजनों का बाहुल्य पाया जायगा जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में विकासवान बनाते हैं ।

सुप्रसिद्ध यूनानी महात्मा सुकरात ने कहा है-''ज्ञान ही सद्गुण है ।'' उनके अनुसार व्यक्ति बुराइयों एवं व्यसनों में इसलिए पड़ जाता है कि उसे जानकारी नहीं होती-और अन्य विकल्प नहीं सूझ पड़ते जिनसे वह शुभ आचरण की ओर प्रवृत्त हो । यदि व्यक्तियों को बचपन से ही नैतिक कर्त्तव्यों के प्रति सुशिक्षित किया जाय उन्हें आध्यात्मिकता के विचारों का पोषण मिले तो वे कुमार्ग पर कदापि कदम न बढ़ायें ।

महात्मा सुकरात की दिनचर्या इस प्रकार की थी कि वे सदैव उत्कृष्ट विचारों में ही निमग्न रहते । यूनान के अनेकों नवयुवकों से घिरे रहते, उनका पथ प्रदर्शन किया करते थे । रास्ते में चलते फिरते भी वे उनसे गम्भीर चर्चा करते एवं जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए व्यावहारिक सुझाव व प्रेरणा देते रहते । सुकरात का जीवनक्रम उनके सिद्धान्तों के अनुरूप ही था । अनेक विचारशील युवकों ने उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर अपना अर्थ प्रधान दृष्टिकोण बदला उनमें प्लेटो (अफलातून) महाशय का नाम प्रमुख है ।

अन्य विवेकवादियों ने भी मनुष्य के भले-बुरे कार्यों के लिए 'ज्ञान' को एक प्रमुख कारक माना है । अपनी जानकारी के अनुसार ही मनुष्य क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । जिसके बारे में ज्ञान नहीं होता उसके सम्बन्ध में तो साधारण मनुष्य कल्पना कर सकने में तक अपने को अक्षम पाता है । इन्द्रिय जन्य सुखों के अतिरिक्त उसकी न जानकारी होती है न अधिक जानने की उत्सुकता होती है । व्यक्ति को जब इन्द्रियजन्य भोगों के मिथ्यात्व का ज्ञान हो जाता है तो वह उनकी ओर नहीं दौड़ता । 'स्व' का बोध होते ही मनुष्य नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों को प्राप्त करने की चेष्टा प्रारम्भ कर देता है । उसे इसके लिए सर्वप्रथम ज्ञान-सम्वर्धन करना होता है । मानव से महामानव बनने का एक सोपान 'ज्ञान' की अभिवृद्धि करना है ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


# समाज की उत्कृष्टता मनुष्य के समग्र परिष्कार द्वारा ही सम्भव

सभी चाहते हैं कि वर्तमान परिस्थितियाँ बदलें, व्यक्ति देवत्व का वरण करे और धरती को स्वर्ग तुल्य बनाये । पर यह तथ्य अपनी जगह अडिग रहेगा कि युग बदलने का कार्य आत्मिक पुरुषार्थ के बल पर स्वयं अपने को बदलकर ही सम्भव है । आर्य ग्रन्थों में षटरिपुओं का वर्णन आता है । दुश्चिन्तन, भ्रष्ट आचरण, अन्याय, लोभ, मोह और अहंकार रूप में ये व्यक्ति व समाज को जकड़े हुए हैं । जब तक मानव में अवतरित होने वाली दैवी सत्ता इनसे संघर्ष नहीं करती तब तक नव-निर्माण की बात कल्पना लोक तक ही सीमित रहेगी । जब-जब दैवी सत्ता ने अवतार लिया है तब-तब उनका उद्देश्य रहा है कि उन षटरिपुओं से मानवता की रक्षा की जाय, जो सभी व्यक्तियों में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं दैवी सत्ता सद्विचार व सद्भाव के रूप में प्रकट होती है और इस प्रकार यह देवासुर संग्राम सबके अन्दर सतत् चलता रहता है ।

यह तथ्य भली-भाँति समझा जाना चाहिए कि सुखी, सन्तुष्ट और समुन्नत बनने का राजमार्ग एक ही है कि लोभ-मोह की उन अनियन्त्रित लिप्साओं पर अंकुश लगाया जाय जो अपने साधनों में सन्तुष्ट न रहकर कभी कर्ज माँगती है, कभी सहायता के लिये पल्ला पसारती हैं कभी अनीति उपार्जन के लिए प्रेरणा देती हैं और अन्ततः तृष्णा की पूर्ति असम्भव रहने पर खुद कोसने पर विवश कर देती है । नरक का वरण इसी को कहते हैं । भव बन्धन यही हैं जो आरम्भ में तो निर्दोष दीखते हैं, अधिक से अधिक लोभ मोह के पक्ष धर स्वार्थ, साधन मात्र दिखाई पड़ते हैं पर जब उनकी विषबेल बढ़ती है तो कण्टकों से लेकर दुर्गन्ध एवं कडुवाहट से सारा वातावरण विपन्न बनाकर रख देती हैं ।

इस कुचक्र को उल्टा जाना चाहिए । आकांक्षाओं का नये सिरे से निर्धारण करना चाहिए । विलास-वैभव की, ठाठ-बाट की अमीरी और पदवी धारी की लिप्सा अन्ततः जीवन की सार्थकता में किस प्रकार अवरोध उत्पन्न करती है, किन-किन कण्टकाकीर्ण झाड़ियों में भटकाती है इस पर दूरदर्शिता पूर्ण चिन्तन होना चाहिए । यदि ऐसा बन पड़े तो तत्काल दूसरा राजमार्ग खुलता है । वह है परमार्थ महत्त्वाकांक्षाओं का नन्दन वन जिनमें आदि से अन्त तक सत्परिणामों का शीतल सुगन्ध भरा वातावरण और फल-फूलों से लदा वैभव ही चारों ओर परिभ्रमण करता है ।

वृक्ष, वनस्पति तक परोपकार करते रहते हैं । पशुपक्षी भी विश्व-वैभव को बढ़ाने और दूसरों की सहायता करने में समर्थ रहते हैं । फिर कोई कारण नहीं कि मनुष्य वैसा कुछ न कर सके । सच तो यह है कि सृष्टा ने मानवी सत्ता की सरंचना ही इस प्रकार की है कि वह शरीर यात्रा की व्यवस्था कुछ घण्टे के श्रम एवं कौशल के सहारे जुटा सके । परिवार एक सहकारी संस्था है । उसमें कुछ पर खर्च करना पड़ता है तो कुछ कमाऊ भी होते हैं ।

गाय कमाऊ होती है और बच्चा कुछ खर्च कराता है । दोनों के साथ रहने पर भी अन्ततः उनकी समन्वित सत्ता हर दृष्टि से लाभदायक ही सिद्ध होती है । परिवार का गठन यदि दूरदर्शिता पूर्वक किया जाय उसमें शालीनता का वातावरण एवं प्रचलन जमाया जाय तो कोई कारण नहीं कि परिवार संस्था अपने पैरों पर खड़ी होने और सभी सदस्यों के लिए सुखद न बन सके ।

परिवार भार तब बनता है जब उसके सदस्यों को अपाहिज अहंकारी, विलासी एवं पराश्रयी रहने की कुसंस्कारिता का मन्द विष आरम्भ से पिलाना शुरू कर दिया जाता है । जापान, इस्राइल, युगोस्लाविया, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड रूस आदि देशों के परिवारों का पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि वे किसी गृहपति की गरदन पर लदे नहीं होते । सहकारी श्रमशीलता अपनाकर वे न केवल आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बने रहते हैं वरन् इस परम्परा के अन्तर्गत अनेक सदस्य मानवी सद्गुणों के अभ्यस्त बने रहते हैं ।

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org


अपने देश में परिवार पोषण की चिन्ता गृह संचालकों को खाती,निचोड़ती रहती है । इसमें दोष परिवार संस्था का नहीं उसके संचालन में बरती गई मूढ़ता का है, जिसने उसके सदस्यों को आलसी, अपव्ययी बनाकर ऐसी गई-गुजरी स्थिति में लाकर पटक दिया है जिससे आपाधापी, खींचातानी और अवज्ञा, उद्दण्डता के अतिरिक्त और कुछ उपजने की सम्भावना ही नष्ट हो गई है । निर्वाह और परिवार की चिन्ता से लदे लोग जिस तरह अपनी समस्याएँ हल करना चाहते हैं, उसमें चिरस्थायी सफलता किसी को कभी भी मिल न सकेगी । अनीति अपनाकर उद्देश्य विलासिता की पूर्ति का रिवाज तो है पर उसके परिणामों को यदि देखा जा सके तो प्रतीत होगा कि उस अवलम्बन को अपनाकर किसी ने भी अपने कुटुम्ब का, अपने समाज का हित साधन नहीं किया वरन् बाहरी सफलता और भीतरी प्रताड़ना की दुहरी मार खानी पड़ी ।

बहुसंख्यक लोग जिस मार्ग पर चलते हैं उसी पर चला जाय यह आवश्यक नहीं । अन्धी भेड़ें खड्ड में गिरती चली जाती हैं । जिन्हें सूझता है वे क्यों गिरें ? हाथ, पाँव छोड़कर बहाव में बहने लगने से तो निचाई वाले गर्त में ही पहुँचा जायेगा । तैरकर पार जाने या उलटकर ऊँचाई को चल पड़ने की बात क्यों न सोची जाय ?

प्रचलन में आवांछनीयता की विषाक्तता घुस पड़ने का दुर्भाग्य तो स्पष्ट ही है अन्यथा चिर अतीत में यदि स्वल्प साधनों में स्वर्गीय वातावरण, सतयुग चलता रहा तो आज की सर्वतोमुखी समर्थता, सम्पन्नता के रहते प्रस्तुत परिस्थितियाँ उतनी ही सुखद होती हैं जिन पर तथाकथित दिव्य लोकों को सहज ही निछावर किया जा सकता । किन्तु कुचाल तो कुचाल ही ठहरी । कुचक्र तो कुचक्र ही है । इस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय ? अवांछनीयता प्रचलनों के रूप में वह उसकी दुर्बल मन:स्थिति पर इस बुरी तरह हाबी हो गया है कि निरीह जन- समुदाय उससे आत्मरक्षा कर सकने के लिए पुरुषार्थ करना तो दूर सोचने तक में समर्थ नहीं हो रहा है ।

सद्ज्ञान के इस आलोक की प्रथम किरण जागृत आत्माओं के प्राणवान व्यक्तियों के अन्तराल में इस प्रकार चमकनी चाहिए कि वे अपनी स्थिति का पर्यवेक्षण करें और औचित्य, अनौचित्यका वर्गीकरण करके उनमें से उपयोगी चयन करने का साहस जुटा सकें । यह शुभारम्भ इन निर्धारण के साथ होना चाहिए कि आकांक्षाओं को मोड़ा-मरोड़ा जायेगा । औरों से उपलब्ध करने की ललक और अनावश्यक अपव्यय की लिप्सा पर नियन्त्रण किया जायगा । रिक्शा न आने पावे इसलिए उसके स्थान पर पारमार्थिक महत्त्वाकांक्षा की उससे भी अधिक तीव्रता के साथ जगाया जायेगा, जितना कि तृष्णाएँ, ऐषणाएँ उमंगती, उफनती थीं ।

मध्यकाल में वैराग्य के नाम पर ऐषणाओं का दमन तो किया जाता रहा किन्तु चिर पुरातन की तरह परमार्थपरक सम्वेदनाओं को उभारा नहीं गया । फलत: तथाकथित साधु-सन्त और भक्त विरक्त शून्यता के शिकार हो गए । नीरस और निरुपयोगी जीवन जीने लगे । भारभूत बने और उपलब्धियों से वंचित रहने के कारण उपहासास्पद बनते चले गये । लम्बे कटु अनुभव के उपरान्त अब उस भूल को दुहराने की आवश्यकता नहीं है । हमें उस राजमार्ग पर चलना चाहिए जिसे देव संस्कृति के नाम से जाना जाता और परमार्थ ,परायण पुण्य परम्परा के रूप में अपनाया जाता रहा है ।

देने की आकाँक्षा का उभार ही देव परम्परा है । भारत के तैतीस कोटि नागरिक इसी को चिरकाल तक अपनाये रहे और इस धरती को स्वर्गीय वैभव से सुसम्पन्न बनाए रहने का श्रेय पाते रहे । पुनर्निर्माण की प्रभात बेला सामने है । तमिस्रा से उभरने और आलोक-आभा का वरण करने के इस पावन पर्व पर अग्रदूतों के निजी निर्धारण यह होने चाहिए कि वे याचना का हिजड़ापन छोड़कर उदार अनुदानों के अधिष्ठाता बनने के लिए साहस जुटाएँ । इसके लिए संचित कुसंस्कारिता के अभ्यस्त ढर्रे को बदलने सुधारने की हिम्मत जुटानी होगी ।

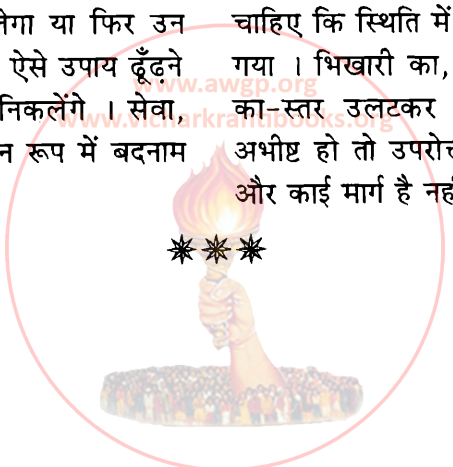
'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष अकाट्य तर्कों तथ्यों से भरा है । उस नीति को अपनाए बिना और कोई चारा नहीं । युग परिवर्तन के लिए जिस आत्म-परिवर्तन की आवश्यकता है उसका शुभारम्भ श्री गणेश इस प्रकार होना है कि

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अमीरी के सपनों को विदा करें और शालीनता की रीति-नीति अपनाने की आत्म-निर्भरता का संकल्प पूर्वक वरण करें । पिछला कदम उठाना और अगला बढ़ाना ही प्रगति क्रम है, दोनों का समन्वय हुए बिना बात बनती ही नहीं ।

अवांछनीयता छोड़ देना भर पर्याप्त नहीं । तत्परता को कोई दूसरा काम चाहिए और वह एक ही हो सकता है, सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में संलग्नता । दोनों परस्परपूरक है । इसमें से किसी एक को अपनाना और दूसरे को छोड़ सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं, जो सेवा धर्म तो अपनाना चाहते हैं और तृष्णाओं से आकुल मन:स्थिति को बदलता नहीं चाहते, उनका मनोरथ पूरा ही नहीं हो सकेगा । या तो तृष्णाओं की व्यस्तता में समय ही नहीं निकलेगा या फिर उन सेवा कृत्यों में ही स्वार्थ साधन के ऐसे उपाय ढूँढने में जिनके कारण उल्टे परिणाम निकलेंगे । सेवा, सेवक और योजना तीनों ही समान रूप में बदनाम होंगे ।

'सादा जीवन-उच्च विचार' का सिद्धान्त शत-प्रतिशत सही है । जो उच्च विचारों को वरण करना चाहते हैं, श्रेय पथ पर चलना चाहते हैं, उन्हें सादगी अनिवार्यत: अपनानी पड़ेगी । अन्यथा लिप्सा-लालसाओं के अन्धेड़ में उच्चविचार मात्र कल्पना भर बने रहेंगे । चरितार्थ होने की दिशा में दो कदम भी आगे बढ़ न सकेंगे । बढ़ेंगे तो इतनी थकान और कठिनाई अनुभव करेंगे कि जो सोचा था उसे छोड़ बैठने के अतिरिक्त और कोई उपाय बचेगा ही नहीं । उत्कृष्टता अपनाने की बात वहीं से आरम्भ होती है जहाँ से व्यक्तिगत लोभ-मोह पर, तृष्णा अहंता, पर लिप्सा-लालसा पर अंकुश लगाने और प्रगति का-सफलता के केन्द्र बिन्दु परमार्थ प्रयोजनों के साथ जोड़ने का निश्चय निर्धारण किया जाता है । इतना बन पड़े-सध सके तो समझना चाहिए कि स्थिति में काया-कल्प जैसा हेर-फेर हो गया । भिखारी का, पराश्रयी का, उद्विग्न असन्तुष्ट का-स्तर उलटकर महामानवों जैसा देव जीवन अभीष्ट हो तो उपरोक्त मार्ग पर चलने के अतिरिक्त और काई मार्ग है नहीं ।



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

# परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत:स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

***परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–***

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

**युगतीर्थ आँवलखेड़ा** का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

**अखण्ड ज्योति संस्थान**, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

**गायत्री तपोभूमि, मथुरा** को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

**शान्तिकुंज, हरिद्वार** ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को, अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

**ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान** परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

# पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

*परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-*

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
( सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

**वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड भिन्न विषयों पर होंगे--**

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-बोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

# Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
# Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org